संस्कृत-सूक्तिसागरः

[संस्कृतकी सरस सूक्तियोंका सरल नागरी-अनुवाद-सहित अनुपम संग्रह

संकलनकर्ता तथा अनुवादक

श्री १०८ नारायण स्वामी

सम्पादक

आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी

—प्रकाशक—

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्,

काशी

[संवत् २०१४]

प्रकाशक
अखिल भारतीय विक्रम परिषद्,
काशी।

मूल्य [illegible]

प्रथम संस्करण

प्राप्ति-स्थान

१. अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी

२. राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि०,
दिल्ली, बम्बई, इलाहाबाद, पटना।

३. श्रीनारायणप्रसाद नवलगढ़िया
७७, बाँगड़ बिल्डिंग
१६१/१ हरीसन रोड,
कलकत्ता



श्री १०८ नारायण स्वामी

श्रीचिरंजीलाल बाजोरिया

के

उर्दू-प्रेमको संस्कृत-प्रेममें

परिवर्त्तित करनेके निमित्त

साशीर्वाद समर्पित

प्रस्तावना

श्रीनारायण स्वामी वैदिक तथा संस्कृत साहित्य, दर्शन, ज्यौतिष, तन्त्र तथा उर्दू, अँगरेज़ी आदि अनेक भाषा-साहित्योंके मर्मज्ञ विद्वान् तथा अत्यन्त मनीषी अवधूत हैं। अपने अध्ययन-प्रवाहमें कुतूहलवश आपने अनेक भाषाओंकी रमणीय और सरल सूक्तियाँ मस्तीमें आकर समय-समयपर संगृहीत कीं। उनमेंसे हिन्दी और उर्दू के सूक्ति-संग्रहके अतिरिक्त संस्कृतकी सूक्तियोंका अनुवाद भी कर लिया। जब यह संग्रह अगाध, अथाह और विस्तृत सागरका रूप धारण करने लगा तब उनकी इच्छा हुई कि अब इसे लोकरंजनकी दृष्टिसे और संस्कृत साहित्यका प्रचार करनेके लिये प्रकाशित भी कर दिया जाय।

उस विचारसे जब इसके प्रकाशनके सम्बन्धमें विचार-विमर्श किया गया और आदिसे अन्त-तक उसका पारायण कर लिया गया तब यह प्रतीत हुआ कि इस संग्रहमें संस्कृत साहित्यका कोई ऐसा क्षेत्र तथा कोई लोकप्रसिद्ध ग्रंथ नहीं रह गया जो इस संग्रहकी सीमासे बाहर छूट गया हो। किन्तु अनुवादकी भाषा निश्चय ही साधुओंवाली ऐसी नग्न थी कि बहुतसे पाठक निश्चय ही उसकी विवेचना-वृत्ति तथा उसके ग्राम्यत्वपर नाक-भौं सिकोड़ सकते थे।

इस संग्रहको लोक-सुलभ बनानेकी दृष्टिसे और पाठकोंके लिये अधिकसे अधिक सुविधाजनक करनेकी दृष्टिसे इसके प्रत्येक प्रसंगके सब श्लोकोंको अकारादि क्रमसे रख दिया गया है जिससे उसके श्लोकोंका अलग अकारादि-क्रम न देखना पड़े जैसा अन्य सुभाषित-ग्रन्थोंमें प्राप्त है। इसके अतिरिक्त इसके अनुवादकी भाषा भी इतनी सरल तथा साधु कर दी गई जो साधारण जन-समाज तथा विद्वन्मंडल दोनोंको समान रूपसे ग्राह्य हो और सब लोग इसका आनंद लेते हुए उसे भली प्रकार हृदयंगम करते और समझते चलें।

यद्यपि संस्कृतमें अनेक सूक्ति-संग्रह और सुभाषित-संग्रह अनेक नामों और आकारोंके साथ प्रकाशित हुए और होते भी जा रहे हैं किन्तु सरल और सरस अनुवाद साथ न होनेके कारण वे केवल गिने-चुने संस्कृतके विद्वानोंके ही काम आ पाए। सबसाधारणका उनसे कोई विशेष लाभ नहीं हो सका। आजकल देश अपना होनेसे और हिन्दी भाषाका व्यापक प्रचार होनेके कारण संस्कृतकी ओर स्वभावतः सबकी प्रवृत्ति बढ़ चली है और सब लोग संस्कृतका अध्ययन करनेकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। विभिन्न राज्य-सरकारोंको ओरसे हिन्दीके पाठ्यक्रमके साथ संस्कृतका अध्ययन भी अनिवार्य कर दिया गया है। यों भी भारतके प्रत्येक विद्वान्, नेता, उपदेष्टा, सभीकी यह इच्छा होती है कि हम अपने लेखों, भाषणों और प्रवचनोंमें अपने प्राचीन संस्कृत साहित्यके रत्नोंका आभास यदा-कदा देते चलें। उनकी ओरसे भी निरंतर यह माँग होती रही कि संस्कृत साहित्यके अमूल्य सुभाषितर-त्नोंका ऐसा संग्रह प्रकाशित हो जिसमें उसका सरल अनुवाद भी दिया गया हो और जिनमसे सुभाषित चुनकर लोग अपने लेखों और प्रवचनोंमें निर्द्वन्द्व होकर प्रयोग भी कर सकें। यह संग्रह इसी दृष्टिसे अत्यन्त सरल और

सुबोध नागरी भाषाके अनुवादके साथ इतना उपयुक्त और उपादेय बना दिया गया है कि प्रत्येक रसिक उसका आनन्द ले सकता है और जन-साधारण भी उसका अध्ययन करके संस्कृत-के प्रतिभाशाली व्युत्पन्न कवियोंकी अलौकिक कल्पना तथा सरस वाणीका आनन्द ले सकते हैं।

यह संग्रह इतना विशाल है कि एक ही जिल्दमें सम्पूर्ण ग्रन्थको समाविष्ट करना सम्भव नहीं हो सका। इसलिये इस प्रथम खण्डमें केवल देव-सूक्तियाँ और रस-सूक्तियाँ ही दी जा रही हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि संस्कृतके कवियोंने केवल देवताओंकी स्तुतियाँ ही की हैं। उन्होंने देवताओंके स्वरूप और उनकी रीति-नीतिपर ऐसे विचित्र, सरस, आकर्षक और चुटीले व्यंग्य किए हैं कि बिना उन्हें पढ़े उनका रस नहीं प्राप्त हो सकता। रस सूक्तियोंमें भी रसराज शृङ्गारका विस्तारके साथ तथा अन्य आठ रसोंका संक्षिप्त विवरणके साथ सूक्ति-संग्रह किया गया है। रस और उसके अङ्गों तथा विभिन्न रसोंके उपादानोंका सूक्ष्म अध्ययन करने और उसका रस लेनेवालोंको इसमें पर्याप्त उदाहरण तो मिलेंगे ही साथ ही संस्कृतके कवियोंकी अनुपम कल्पनाका भी उन्हें आनन्द मिलता रहेगा।

अनेक प्रकारकी कठिनाइयों और व्याघातोंके कारण यह ग्रन्थ लगभग तीन वर्षतक यंत्रकी यंत्रणा सहता रहा। आज भगवान्‌की कृपासे इसने आलोक के दर्शन किए और इसका प्रथम खण्ड आज प्रकाशित हो रहा है।

सूक्तिसागरके इस खंडमें केवल दो ऊर्मियोंका ही साक्षात्कार कराया जा सका है। इसके द्वितीय खण्डमें चित्र-सूक्तियाँ, नीति-सूक्तियाँ तथा अन्य अनेक विषयोंपर कवियों-द्वारा कही हुई पूर्ण श्लोकों अथवा खंडोक्तियोंमें सूक्तियोंका विशाल संग्रह होगा।

यद्यपि आकार-प्रकारमें वह दूसरा खंड इस खंडकी अपेक्षा कहीं अधिक विशाल और विस्तृत होगा किन्तु परिषद्‌का विचार है कि उसका मूल्य भी इसीके समान रक्खा जाय। इस ग्रन्थकी रचना और प्रकाशनमें कितना परिश्रम हुआ होगा यह इसी बातसे स्पष्ट है कि अनेक विद्वानोंका सहयोग होनेपर भी केवल ग्रन्थ प्रस्तुत करनेमें ही लगभग तीन वर्ष लग गए। किन्तु ग्रन्थ पूर्ण हो गया है। अतः, दूसरा खंड छपनेमें एक वर्षसे अधिक विलंबकी आशंका नहीं है। हम अपने उन कृपालु ग्राहकोंको हृदयसे धन्यवाद देते हैं जिन्होंने पूर्व-ग्राहक होकर अत्यन्त सन्तोष और धैर्यके साथ इतने दिनोंतक प्रतीक्षा की। हमें विश्वास है कि इस खंडके प्रकाशित हो जानेसे उन्हें सन्तोष होगा। हम परिषद्‌की ओरसे श्रीनारायण स्वामीको भी हृदयसे धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने परिषद्‌को इस ग्रन्थके प्रकाशनका भार देकर अनुगृहीत किया।

तुलसी-जयन्ती,
सं० २०१४

प्रधान मंत्री,
अखिल भारतीय विक्रम परिषद्,
काशी

विषय-विन्यास

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संस्कृत-सूक्तिसागरः

या दुग्धाऽपि न दुग्धेव कविदोग्धृभिरन्वहम्। हृदि नः सन्निधत्तां सा सूक्तिधेनुः सरस्वती ॥ १ ॥
किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः। परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥ २ ॥
शब्दार्थमात्रमपि ये न विदन्ति तेऽपि यां मूर्च्छनामिव मृगाः श्रवणैः पिबन्तः।
संरुद्ध-सर्व-करण-प्रसरा भवन्ति चित्रस्थिता इव कवीन्द्रगिरं नुमस्ताम् ॥ ३ ॥

[नित्य प्रति कविरूपी दूहनेवालोंसे दूही जानेपर भी जो सूक्तिरूपी गौ बनी हुई सरस्वती कभी दूधरहित नहीं होतीं, वे हमारे हृदयमें आकर विराजमान हो जायँ ॥ १ ॥ उस कविके काव्यसे और उस धनुषधारीके बाण चलानेसे क्या लाभ, जो दूसरेके हृदयपर चोट करके उसे झूमनेके लिये बाध्य न कर दे ॥ २ ॥ जैसे सङ्गीतकी मूर्च्छना सुनकर मृग अपनी सब इन्द्रियोंके व्यापार रोककर चित्रलिखे-से हो जाते हैं, वैसे ही शब्द और अर्थतक न जाननेवाले लोग भी महाकविकी जिस वाणीको केवल कानोंसे सुनकर अपनी सुध-बुध खोकर तन्मय हो जाते हैं, उस कवि-वाणीको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३ ॥]

देवसूक्तयः

परब्रह्म

अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने। त्यक्तक्रम-ागाय चैतन्यज्योतिषे नमः ॥ १ ॥ अध्यस्ताध्यम-र्थधिषणैर्ग्राह्यं पुमर्थास्पदं लक्ष्यं लक्षणभेदतः श्रुति-गतं निर्धूतसाध्यार्थकम्। आम्नायान्तविभातविश्वविभवं सर्वाविरुद्धं परं सत्यं ज्ञानमनर्थसार्थविधुरं ब्रह्म प्रपद्ये सदोम् ॥ २ ॥ अनन्तनामधेयाय सर्वाकारविधायिने।

देवताओंपर सूक्तियाँ

परब्रह्म

जो ब्रह्म सदा एक-सा रहता है, जिसमें कभी किसी प्रकारका र-फेर या बिगाड़-सुधार नहीं होता, जो पापोंका नाश ाला है, जो किसी भी ढङ्गके नियम या बन्धनमें बँधा नहीं है, उस सदा चमकते रहनेवाले चेतन प्रकाशको कार है ॥१॥ जगत्से सम्बन्ध न होनेपर भी जिसमें जगत्का माना जाता है, जिससे पहले कोई वस्तु नहीं रही, जिसे योगी लोग ही समझ पाते हैं, जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंका भण्डार है, जिसे अनेक प्रकारके लक्षणोंसे ही समझा जा सकता है, वेदोंने जिसका वर्णन किया है, सब कुछ कर चुकनेके कारण जिसे कुछ करना शेष नहीं है, जिसके प्रभावका वर्णन वेदान्तमें भली प्रकार किया गया है, जिसका किसीसे कोई विरोध नहीं है, जो सब तत्त्वोंसे परे है, जो सत्य-स्वरूप और ज्ञान-स्वरूप है, जो अर्थ-रहित और अर्थ-सहित दोनोंके झमेलोंसे दूर है, ऐसे सत् तथा ओम् नामवाले ब्रह्मकी मैं शरण लेता हूँ ॥ २ ॥ जिस ब्रह्मके अनगिनत नाम हैं, जो सब ढङ्गके रूपोंमें अपनेको ढाल सकता है, संसारके सब मन्त्र

समस्तमन्त्रवाच्याय विश्वैकपतये नमः ॥३॥ कर्णिकादिष्विव स्वर्णमर्णवादिष्विवोदकम्। भेदिष्वभेदि यत्तस्मै परस्मै महसे नमः ॥ ४ ॥ गगनमिव विकारैर्हीनमासञ्च विष्वक्प्रतिविषयमनन्यस्फूर्त्तिमत्स्वात्मरूपम्। श्रुतिशिरसि महीयः सत्प्रमोदैकहेतुं सकलवृजिनभङ्गं ज्योतिरेकं सदाद्यम् ॥ ५ ॥ चराचरजगत्स्फारस्फुरत्तामात्रधर्मिणे। दुर्विज्ञेयरहस्याय युक्तैरप्यात्मने नमः ॥६॥ त्रिभुवनविकाशनिदानं निरुपममनन्तररूपम्। परिहृतविकारमनन्तं सदनुभवमात्रमुपासे ॥ ७ ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्त्तये। स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥ ८ ॥ नमोवाङ्मनसातीतमहिम्ने परमेष्ठिने। त्रिगुणाष्टगुणानन्तगुणनिर्गुणमूर्त्तये ॥ ९ ॥ नमः स्वतन्त्रचिच्छक्तिमुद्रितस्वविभूतये। अव्यक्तव्यक्तरूपाय कस्मैचिन्मन्त्रमूर्त्तये ॥ १० ॥ न यस्य जन्मादिविकारलिङ्गं तद्यस्य सत्तावशतः सदाभम्। मायाविहीनं तदुदारमोदं स्वात्मस्वरूपं ननु तद्भकास्तु ॥ ११ ॥ न स्त्री न ना न च नपुंसकमायतं न नाल्पं महन्न न च पीनसपीनतोनम्। नासन्न सन्न विकलं सकलं च यन्न तत्केवलं स्फुरति भास्वररूपमेकम् ॥ १२ ॥ नित्यं निरावृति निजानुभवैकमानं आनन्दधाम जगदङ्कुरबीजमेकम्। दिग्देशकालकलनादिसमस्तहस्तमर्दासहं दिशतु शर्म महन्महो वः ॥ १३ ॥ निषेधे कृते नेति-नेत्यादिवाक्यैः समाधिस्थितानां यदाभाति पूर्णम्। अवस्थात्रयातीतमेकं तुरीयं तदेकं स्वमात्रप्रकाशं प्रपद्ये ॥ १४ ॥ परिमितिशून्यं प्रकृतिविशुद्धम्। त्रिभुवनदृश्यं निरवयवं तत् ॥१५॥ ब्रह्मा दक्षः कुबेरो यमवरुणमरुद्वह्निचन्द्रेन्द्ररुद्राः शैला नद्यः

जिस अकेले ब्रह्मका ही वर्णन करते हैं और जो अकेला इस संसारका स्वामी है उस ब्रह्मको नमस्कार है ॥ ३ ॥ कानमें पहने जानेवाले कुण्डल आदि गहनोंमें जो सोना बनकर रमा हुआ है, समुद्र आदिमें जो जल बनकर रमा हुआ है, संसारकी सब नाश होनेवाली वस्तुओंमें जो अमर बनकर घुला हुआ है, उस सबसे बड़े प्रकाशमान तेजको नमस्कार है ॥ ४ ॥ जो आकाशके समान शुद्ध होकर संसार-भरमें फैली हुई है, जो संसारकी सब वस्तुओंमें स्फूर्त्ति और चेतना भरनेवाले परमात्माका तेज है, वेद भी जिसे बहुत बड़े सच्चे आनन्दका कारण मानते हैं, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है उस परम शुद्ध ज्योतिको नमस्कार है ॥ ५ ॥ इस समूचे चल और अचल संसारको बढ़ाना और गढ़ना जिसका काम है और जिसका भेद योगी भी नहीं जान पा सकते, उस परमात्माको नमस्कार है ॥ ६ ॥ जो तीनों लोकोंको चमकाने और फैलानेवाला है, जिसके समान कोई नहीं है, जिसके अनगिनत रूप हैं, जिसमें कभी कोई बनाव-बिगाड़ या हेर-फेर नहीं होता, जिसका अन्त नहीं है और जो अनुभवसे ही समझा जा सकता है उसकी मैं उपासना करता हूँ ॥ ७ ॥ जो दिशा और कालके बन्धनोंमें बँधा नहीं है, जिसका कोई पार नहीं पा सकता, जो साक्षात् ज्ञान-रूप है और जो अनुभवसे ही समझा या जाना जा सकता है, उस शान्त और तेजस्वी रूपवाले देवताको नमस्कार है ॥ ८ ॥ जिसके पासतक वाणी और मन दोनोंकी पहुँच नहीं हो पाती, उस महा शक्तिवाले और तीन गुण (सत्त्व, रज और तम), आठ गुण (दया, क्षमा, अनसूया, शौच, अनायास, मङ्गल, अकृपणता और अस्पृहा), सांख्यमें बताए हुए चौबीस गुण और अनन्त गुण होनेपर भी जो गुणरहित बना रहता है उस ब्रह्मको नमस्कार है ॥ ९ ॥ अपनी ज्ञान-शक्तिसे अपने ऐश्वर्यको अपनेमें छिपाए रखनेवाली उस मन्त्र-रूपी किसी मूर्त्तिको नमस्कार है, जो दिखाई भी देती है और नहीं भी दिखाई देती ॥ १० ॥ जिसका न कभी जन्म हुआ, न आरम्भ हुआ, जिसमें कभी कोई बनाव-बिगाड़ नहीं होता, जो अपनी शक्तिसे सदा चमकता रहता है, माया जिसे बाँध नहीं पाती, वह फैले हुए आनन्दवाला अपना स्वरूप चमकता रहे ॥ ११ ॥ जो न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है, न फैला है, न छोटा है, न बड़ा है, न मोटा है, न पतला है, न है, न नहीं है, न अधूरा है, न पूरा है, वह केवल प्रकाशमय रूपवाला (ब्रह्म) ही चमक रहा है ॥१२॥ जो सदा रहता है, जो न कभी जन्म लेता है न मरता है, जो अपने अनुभवसे ही जाना जा सकता है, जो आनन्दका धाम है, जो संसार-रूपी अँकुएको उगानेवाला अकेला बीज है, जो दिशा, देश, काल और गिनतीके बन्धनसे बहुत दूर है, वह बड़ेसे भी बड़ा परमात्मा तुम्हारा सदा मङ्गल करे ॥ १३ ॥ वेदोंमें जिसका यह कहकर पूरा वर्णन नहीं हो पाया है कि 'इतना ही नहीं है', समाधि लगानेवाले योगी जिसे पूर्ण रूपमें देखते हैं और जो न उत्पन्न होता है, न रहता है, न नष्ट होता है, उस अपने आप चमकनेवाले परमात्मकी शरणमें जाता हूँ ॥ १४ ॥ जो किसी भी बन्धनमें बँधा हुआ नहीं है, जो स्वभावसे ही शुद्ध है, जो निराकार होते हुए भी तीनों लोकोंके रूपमें दिखाई पड़ता है, वही ब्रह्म है ॥ १५ ॥ वह विश्वरूप या

समुद्रा ग्रहगणमनुजा दैत्यगन्धर्वनागाः। द्वीपाः नक्षत्रतारारविवसुमुनयो व्योम भूरश्विनौ च संलीना यस्य सर्वे वपुषि स भगवान् पातु वो विश्वरूपः ॥ १६ ॥ मध्याह्नार्कमरीचिकास्विव पयःपूरो यदज्ञानतः खं वायुर्ज्वलनो जलं क्षितिरिति त्रैलोक्यमुन्मीलति। यत्तत्त्वं विदुषां निमीलति पुनः स्रग्भोगिभोगोपमं सान्द्रानन्दमुपास्महे तदमलं स्वात्मावबोधं महः ॥ १७ ॥ यथा तथापि यः पूज्यो यत्र यत्रापि योऽर्चितः। योऽपि वा सोऽपि वा योऽसौ देवस्तस्मै नमोस्तु ते ॥ १८ ॥ यथा स्थाणौ प्रेतो जलमिव मरौ व्योम्नि पुरवद्भुजङ्गो वा रज्जाविव भुवनमेतत्सदुपमम्। भ्रमाद्यत्राभातं तदविकलमेकं निरुपमं सदा सर्वत्राप्तं किमपि कमनीयं स्फुरति तत् ॥ १९ ॥ यदनवगमतोऽसदपि सदिव तत्। प्रकृतिविलसितं सदमलमुदितम् ॥ २० ॥ यस्माद्विश्वमुदेति यत्र रमते यस्मिन्पुनर्लीयते भासा यस्य जगद्विभाति सहजानन्दोज्ज्वलं यन्महः। शान्तं शाश्वतमक्रियं यमपुनर्भावाय भूतेश्वरं द्वैतध्वान्तमपास्य यान्ति कृतिनः प्रस्तौमि तं पूरुषम् ॥ २१ ॥ यः सृष्टिस्थितिसंहृतीर्वितनुते ब्रह्मादिमूर्त्तित्रिकैर्यस्याधीनतया स्थितानि सदसत्कर्माण्यपि प्राणिनाम्। नित्येच्छाकृतिबुद्धिमानथ परो जीवात्परात्मा स्वयं सोऽयं वो विदधातु पूर्णमचिराच्चेतोगतं यद्भवेत् ॥ २२ ॥ लोकत्रयस्थितिलयोदयकेलिकारः कार्येण यो हरिहरद्रुहिणत्वमेति। देवः स विश्वजनवाङ्मनसातिवृत्तशक्तिः शिवं दिशतु शश्वदनश्वरं वः ॥ २३ ॥ विश्वस्मिञ्जगति समन्ततः प्रकाशस्याधाने कुशलमनन्तरं प्रभूतम्। उद्दीप्तं विकृतिविहीनमेकमाद्यं किञ्चित्तत्प्रकृतिपरश्चकास्ति वस्तु ॥२४॥ विश्वेशो वः स पायात्त्रिगुणसचिवतां योवलम्ब्यानुवारं विश्वद्रीचीनसृष्टिस्थितिविलयमजः स्वेच्छया निर्मिमीते। यस्येयत्तामतीत्य प्रभवति महिमा कोऽपि लोकव्यतीतः

संसारके रूपमें दिखाई देनेवाला भगवान् तुम्हारी रक्षा करे जिसके शरीरमें ब्रह्मा, दक्ष, कुबेर, यम, वरुण, वायु, अग्नि, चन्द्र, इन्द्र, रुद्र, पर्वत, नदी, समुद्र, सम्पूर्ण ग्रह, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, नाग, द्वीप, तारे, सूर्य, वसु, मुनि, आकाश, पृथ्वी और दोनों अश्विनीकुमार आदि सब समाए हुए हैं ॥ १६ ॥ जैसे दोपहरको सूर्यकी किरणोंकी चमकसे दिखाई देनेवाली झिलमिलीको लोग पानीका कुण्ड समझ बैठते हैं, वैसे ही जिस ब्रह्मको अयानपनमें लोग आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वीके रूपमें देखते हैं और जिस आत्म-ज्ञान रूपी शुद्ध महातत्त्वके कारण विद्वान् या ज्ञानी भी मालाको सर्प समझ बैठते हैं, उस अत्यन्त आनन्दकी मैं उपासना करता हूँ ॥ १७ ॥ जो देव सब प्रकारसे, सब स्थानोंमें और सब रूपोंमें पूज्य है उसे मेरा प्रणाम है ॥ १८ ॥ जैसे सूखे पेड़के ठूँठमें प्रेतका, मरुस्थलमें जलका, आकाशमें नगरका और रस्सीमें साँपका भ्रम होता है उसी प्रकार जिसमें भ्रमसे जगत्का भान होता है और जो पूर्ण, एक, अद्वितीय तथा सर्वत्र व्यापक कोई एक सौन्दर्य भासित होता है वही ब्रह्म है ॥१९॥ जिस ब्रह्मको ठीक-ठीक न जाननेके कारण असत्य पदार्थ भी सत्यसे प्रतीत होते हैं, जो स्वयं ऐसा प्रकाश है कि उसे प्रकाशित करनेके लिये दूसरे किसी प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है और वेदोंने जिसे सत्य तथा शुद्धरूप बताया है, वही ब्रह्म है ॥ २० ॥ जिस पुरुष (ब्रह्म) से यह संसार उत्पन्न होता है, जिसमें वास करता है और जिसमें लय हो जाता है, जिसके प्रकाशसे यह जगत् चमक रहा है, जो स्वभावतः आनन्दस्वरूप, शान्त, अनश्वर और क्रियाशून्य है और ज्ञानी लोग अपनी ज्ञान-ज्योतिसे भेदका अन्धकार दूर करके सब प्राणियोंके जिस स्वामीमें मिल जाते हैं उसकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २१ ॥ जो परमात्मा अपने ब्रह्मा, विष्णु और महेश-रूपोंसे संसारका सर्जन, पालन और संहार करता है, जिसके अधीन सब प्राणियोंके अच्छे-बुरे कर्म हैं, जिसकी इच्छा, प्रयत्न और ज्ञानका कभी नाश नहीं होता और जो जीवात्मासे कहीं बढ़कर है वह शीघ्र आप लोगोंके मनकी अभिलाषाएँ पूर्ण करे ॥ २२ ॥ जो तीनों लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका खेल खेलता रहता है और जो काम पड़नेपर ब्रह्मा, विष्णु या शिव बन जाता है, जिसके पासतक किसीके मन और वचनकी पहुँच नहीं हो पाती (जिसकी न मनमें कल्पना की जा सकती है, न वाणीसे वर्णन किया जा सकता है), ऐसी वह विचित्र शक्ति (ब्रह्म) सदा आप लोगोंका अखण्ड मङ्गल करे ॥ २३ ॥ जिसके प्रत्येक अंशमें उसी प्रकार प्रकाश व्याप्त है जैसे घड़ेमें मिट्टी, वह पूर्ण, ब्रह्माण्डमें श्रेष्ठ, मङ्गलमय, अवकाशरहित, प्रकाशरूप, अपरिवर्त्तनीय, एक, अनादि, सत्त्व, रज और तम गुणवाली प्रकृतिसे परे जो कुछ भासमान है वही ब्रह्म है ॥ २४ ॥ वह संसारका स्वामी आप लोगोंकी रक्षा करे जो स्वयं उत्पन्न होनेवाला न होकर भी सत्त्व, रज और तम गुणोंकी सहायतासे निरन्तर चर-अचरकी रचना, पालन और संहार करता रहता है, जिसकी

त्यक्तो यश्चक्षुराद्यैरपि निपुणतमैर्वीक्षणादिक्रियासु ॥२५॥ विष्णुर्वा त्रिपुरान्तको भवतु वा ब्रह्मा सुरेन्द्रोऽथवा भानुर्वा शशलक्षणोऽथ भगवान्बुद्धोऽथ सिद्धोऽथवा। रागद्वेषविषार्त्तिमोहरहितः सत्त्वानुकम्पोद्यतो यः सर्वैः सह संस्कृतो गुणगणैस्तस्मै नमः सर्वदा ॥ २६ ॥ शक्यं यन्न विशेषतो निगदितुं प्रेम्णैव यच्चिन्तितं मृद्वङ्गीवदनेन्दुमण्डलमिव स्वान्ते विधत्ते मुदम्। यन्मुग्धानयनान्तचेष्टितमिवाध्यक्षेऽपि नो लक्षितं तत्तेजो विनयाद्मन्दहृदयानन्दाय वन्दामहे ॥ २७ ॥ शान्तं शुद्धं पुराणं त्रिभुवनभवनं भावि भूतं भवच्च नित्यं बुद्धं प्रभूतं सकलमनवरं भव्यमेकं प्रसिद्धम्। पूर्णं विष्वक्प्रकाशं शरणमनुपमं निष्क्रियं निर्विकारं रुद्रं सन्तुष्टमक्षा करणविषयताशून्यमुद्भाति शश्वत् ॥२८॥ शिवमनुपधिसङ्घासं सकलमघमानन्दम्। अमृतमुदितमात्मैकानुभवविषयरूपं सत् ॥२९॥ सर्वः किलायमवशः पुरुषाणुकर्म-कायादिकारणगणो यदनुग्रहेण। विश्वप्रपञ्चरचनाचतुरत्वमेति स त्रायतां त्रिभुवनैकमहेश्वरो वः ॥ ३० ॥

त्रिमूर्त्तयः

नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने। गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥ १ ॥ नमोविश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते। अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधा स्थितात्मने ॥ २ ॥ रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे। अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥ ३ ॥ श्यामश्वेतारुणाङ्गा जलधरणिधरोत्फुल्लपङ्केरुहस्था मोमा-सावित्र्युपेता रथचरणपिनाकोग्रहुङ्कारशस्त्राः। देवा द्वित्र्यष्टनेत्रा जगदवनसमुच्छेदनोत्पत्तिदक्षाः प्रीता वः पान्तु नित्यं हरिहरविधयस्तार्क्ष्यगोहंसपत्राः ॥ ४ ॥ श्यामश्वेतासि-

महिमाकी कोई सीमा नहीं है, जो सब लोकोंसे परे है तथा देखने, सुनने, छूने, सूँघने और चखनेमें समर्थ इन्द्रियाँ भी जिसके पासतक नहीं पहुँच पातीं ॥२५॥ जो राग और द्वेष रूपी विष तथा दुःख और मोहसे शून्य है, जो सदा सावधान होकर प्राणियोंपर कृपा करता रहता है और जो सब गुणोंसे अलङ्कृत है, उसे हमारा सदा नमस्कार है, चाहे वह विष्णु हो, शङ्कर हो, ब्रह्मा हो, सूर्य हो, चन्द्र हो, बुद्ध हो या सिद्ध ही क्यों न हो॥२६॥ जिसका ठीक-ठीक वर्णन नहीं किया जा सकता, जो प्रेमसे स्मरण करने-मात्रसे कोमलाङ्गी नायिकाके मुखचन्द्रके समान हृदयको आनन्दित करता है, जो किसी भोली नायिकाके कटाक्षपातके समान सम्मुख होनेपर भी देखा नहीं जा सकता (सहा नहीं जा सकता), उस तेज (ब्रह्म) को मैं इसलिये विनयपूर्वक प्रणाम करता हूँ कि मुझे अपने हृदयमें सबसे बड़ा आनन्द मिले ॥२७॥ जो पूर्णतः शान्त, शुद्ध, सबसे पुरातन, सारे संसारका आश्रय, भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान-स्वरूप, सदा रहनेवाला, ज्ञानरूप, सर्वैश्वर्ययुक्त, सर्वमय, सर्वश्रेष्ठ, भव्य, एक, प्रसिद्ध, पूर्ण, सब ओरसे प्रकाशवान्, सबका आधार, अनुपम, क्रियाहीन, विकार-रहित, रुद्ररूप, सदा सन्तुष्ट, अगोचर, शून्य तथा सदा प्रकाशवान् है, वही ब्रह्म है ॥२८॥ जो स्वयं कल्याण-स्वरूप है, जो सब उपाधियोंसे परे है, जो सूर्य आदि सबसे अधिक प्रकाशवान् है, जो पूर्णतः निष्पाप है, जो आनन्द-स्वरूप है, जिसे लोग अमृत कहते हैं, जो केवल आत्मज्ञानसे ही समझा जा सकता है और जो सदा है, वही ब्रह्म है ॥ २९ ॥ तीनों लोकोंका वह सबसे बड़ा स्वामी आप लोगोंकी रक्षा करे, जिसकी इच्छासे सभी पुरुष, परमाणु, कर्म, शरीरादि सब कारण स्वयं पराधीन होते हुए भी इस विस्तृत संसारका निर्माण करनेमें समर्थ हो जाते हैं ॥ ३० ॥

तीनों मूर्त्तियाँ

सृष्टिके पहले केवल अकेले ही एक रूपवाले और फिर तीनों गुणोंको अलग-अलग करनेके लिये तीन अलग-अलग रूपोंवाले आपको प्रणाम है ॥ १ ॥ पहले ब्रह्मा-रूपसे इस संसारको रचनेवाले, फिर विष्णु-रूपसे इसे पालनेवाले और फिर रुद्र-रूपसे इस संसारको नष्ट कर देनेवाले तीन रूपोंमें रहनेवाले आपको प्रणाम है ॥ २ ॥ जो रजोगुणसे युक्त होकर संसारकी रचना करते हैं, सत्त्वगुणसे युक्त होकर संसारका पालन करते हैं और तमोगुणसे युक्त होकर संसारका नाश करते हैं, ऐसे रज, सत और तमोगुणवाले तथा इस संसारकी रचना, पालन और नाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूपवाले अजन्मा (ब्रह्म) को प्रणाम है ॥ ३ ॥ क्रमशः साँवले, उजले और लाल रूपवाले, समुद्र, पर्वत और खिले हुए कमलमें रहनेवाले, चक्र, पिनाक (धनुष) और भयङ्कर हुङ्कार रूपी शस्त्रवाले, दो तीन और आठ आँखोंवाले तथा गरुड़, नन्दी और हंसपर चढ़कर चलनेवाले, संसारका पालन, नाश और रचना करनेवाले लक्ष्मी, पार्वती और सरस्वतीसे संयुक्त रहनेवाले तीनों देव (विष्णु, शिव और ब्रह्मा) प्रसन्न होकर आपकी रक्षा करें ॥४॥ क्रमशः साँवले, उजले और लाल रङ्गोंके धनी, भक्तोंके कष्ट

तत्त्वाख्या प्रणतार्त्तिनिवारिणी। संसारोत्तारणे दक्षा मुदे देवत्रयी भवेत् ॥ ५ ॥

ब्रह्मा

अविरताम्बुजसङ्गतिसङ्गलद्वहलकेसरसंवलितेव वः। ललितवस्तुविधानसुखोल्लसत्तनुरुहा तनुरात्मभुवोऽवतात् ॥ १ ॥ आगस्कारिणि कैटभप्रथमने तत्ताडनार्थं रुषा नाभीपङ्कजमस्त्रतां गमयितुं जाते प्रयत्ने श्रियः। स्वावासोन्मथनोपपादितभयभ्रान्तात्मनस्तत्क्षणाद्ब्रह्मण्यपराः पुरातनमुनेर्वाग्वृत्तयः पान्तु वः ॥ २ ॥ कुलशैलदलं पूर्णसुवर्णगिरिकर्णिकम्। नमोऽधितिष्ठतेऽनन्तनालं कमलविष्टरम् ॥ ३ ॥ कृतकान्तकेलिकुतुकश्रीशीतश्वाससेकनिद्राणः। घोरितविततालिरुतो नाभिसरोजे विधिर्जयति ॥ ४ ॥ जातस्तेऽधरखण्डनात्परिभवः कापालिकादस्य यत्तद्ब्रह्मादिषु कथ्यतामिति वचो बाल्याच्छिशौ जल्पति। गौरी पाणियुगेन षण्मुखवचो रोद्धुं निरीक्ष्याक्षमां वैलक्ष्याच्चतुराननस्य वदनावृत्तिश्चिरं पातु वः ॥ ५ ॥ तं वन्दे पद्मसद्मानमुपवीतच्छटाच्छलात्। गङ्गा स्रोतस्त्रयेणैव यं सदैव निषेवते ॥ ६ ॥ मूर्त्तिः स्मर्तृतमोहरा सहचरी वाचां परा देवता व्याहाराः श्रुतयः कुटुम्बकमिदं विश्वञ्चरस्थावरम्। यस्यैतच्छ्रुतिमूलसूलकतया सन्दर्शितप्रक्रियं स्वारम्भम्भगवन्तमन्तरहितस्त्रह्माणमीडामहे ॥ ७ ॥ सृजति कमलसंस्थो दृश्यमात्रं सदा यो निखिलनिगमतत्त्वज्ञानिनाञ्च प्रधानम्। अपरिहतसमाधिं सत्यसङ्कल्पमेतं परिविमलचरित्रं तं स्तुवे हंसवाहम् ॥ ८ ॥

सरस्वती—आशासु राशीभवदङ्गवल्लीभासैव दासीकृतदुग्धसिन्धुम्। मन्दस्मितैर्निन्दितशारदेन्दुं वन्देऽरविन्दासनसुन्दरि त्वाम् ॥ १ ॥ करवदरसदृशमखिलं भुवनतलं

दूर करनेवाले और प्राणियोंको संसारसे पार करनेमें चतुर तीनों देव आपका कल्याण करें ॥ ५ ॥

ब्रह्मा

ब्रह्माका वह अपने आप ही उत्पन्न शरीर आपकी रक्षा करे जो नाना प्रकारकी सुन्दर-सुन्दर वस्तुओंको बना चुकनेकी सफलताके सुखसे रोमाञ्चित होकर ऐसा जान पड़ता है मानो घने कमलोंके बीचमें रहनेसे उनसे गिरे हुए परागके ढेरसे रँग गया हो ॥ १ ॥ अपराधी कैटभासुरसे युद्ध करते समय क्रोध होनेपर जब उसे मारनेको कुछ न मिला तब विष्णुकी नाभिमें उगे हुए कमलको ही अस्त्रके रूपमें लेनेको जैसे ही लक्ष्मीजी उठीं वैसे ही अपना घर उजड़ जानेके डरसे घबराकर 'रक्षा करो, रक्षा करो' चिल्ला उठनेवाले प्राचीन मुनि ब्रह्माकी वे पुकारें आपकी रक्षा करें ॥ २ ॥ कुलाचल पर्वत ही जिसकी पँखुड़ी है, समूचा सुमेरु पर्वत ही जिसका छत्ता है और जिसके नालका कहीं अन्त ही नहीं है, ऐसे कमलपर बैठे हुए ब्रह्माजीको प्रणाम है ॥ ३ ॥ अपने प्रियसे विलास करनेके पश्चात् लक्ष्मीजीने जो ठण्ढी साँसें लीं उनकी तरावटसे विष्णुकी नाभिके कमलपर बैठकर ऊँघते हुए उन ब्रह्माजीकी जय हो जिनके आसपास भौंरे बलपूर्वक गुञ्जार करते हुए मँडरा रहे हैं ॥ ४ ॥ 'हे माँ! उस अघोरीने आपका नीचेका ओठ काट लिया, इससे जो आपकी हार हुई यह समाचार ब्रह्मा आदि देवताओंसे भी कहिए।' यह बात जब बचपनके कारण स्वामी कार्त्तिकेयने कही और उनके छः मुख केवल अपने दो हाथोंसे पार्वतीजी न मूँद पाईं तब उसी बातको चतुरतासे अपने चारों मुखोंसे दुहरानेवाले ब्रह्माजी आपकी रक्षा करें ॥५॥ कमलके भवनमें रहनेवाले उन ब्रह्माजीको प्रणाम करता हूँ जिनके शरीरमें अपनी तीनों धाराओंसे जनेऊकी तीन लड़ोंकी शोभा बनाती हुई गङ्गाजी सदा उनकी सेवा करती रहती हैं ॥ ६ ॥ जिनका स्वरूप ध्यान करनेवालोंका तमोगुणरूपी अँधेरा दूर करता है, वचनोंकी एक मात्र स्वामिनी देवी सरस्वती जिनकी गृहिणी हैं, जिनके मुँहसे निकले हुए बोल ही चारों वेद हैं, सारा चर और अचर विश्व ही जिनका परिवार है, अपने सब कार्य वेदोंसे प्रमाणित करके जिन्होंने वेदोंकी प्रामाणिकता दिखाई, जो एक-मात्र अपनी शक्तिसे ही चाहे जो रचना कर डालते हैं और जिनका अन्त ही नहीं है ऐसे ब्रह्माजीकी हम स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥ कमलमें बैठे हुए ही जो इस दिखाई देनेवाले सारे विश्वको रच डालते हैं, वेदोंके रहस्यको जाननेवालोंमें जो सबसे प्रधान हैं, जिनकी समाधि कभी खण्डित नहीं होती, जिनके मनके सङ्कल्प सदा सत्य होते हैं, ऐसे पवित्र और विचित्र चरित्रवाले एवं हंसपर सवारी करनेवाले ब्रह्माजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥

सरस्वती : दसों दिशाओंमें जिसकी अङ्गरूपी लताएँ फैली हैं, जिसने अपनी देहके उजलेपनसे दूधके समुद्रको भी नीचा दिखा दिया है और जिसकी मन्द मुसकान देखकर शरद्का चन्द्रमा भी लजा जाता है, ऐसी हे कमलपर बैठी हुई अत्यन्त सुन्दरी सरस्वती देवी ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥ उस सरस्वती देवीकी जय हो, जिसकी कृपासे पैनी समझवाले कवि लोग सारे संसारको ऐसी सरलतासे देख लेते हैं मानो वह

यत्प्रसादतः कवयः। पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी ॥ २ ॥ जलदुग्धनिर्णयविधौ यस्यावाहोऽपि विश्रुतो दक्षः। सा सदसत्त्वविबोधकवागीशा स्तान्ममाद्य गतिः ॥ ३ ॥ ज्योतिस्तमोहरमलोचनगोचरं तज्जिह्वादुरासदरसं मधुनः प्रवाहम्। दूरे त्वचः पुलकवन्धि परं प्रपद्ये सारस्वतं किमपि कामदुवं रहस्यम् ॥४॥ तद्दिव्यमव्ययं धाम सारस्वतमुपास्महे। यत्प्रसादात्प्रलीयन्ते मोहान्धतमसच्छटाः ॥ ५ ॥ तमोगणविनाशिनी सकलकालमुद्योतिनी धरातलविहारिणी जडसमाजविद्वेषिणी। कलानिधिसहायिनी लसदलोलसौदामिनी मदन्तरवलम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी ॥ ६ ॥ तव करकमलस्थां स्फाटिकीमक्षमालां नखकिरणविभिन्नां दाडिमीबीजबुद्ध्या। प्रतिकलमनुकर्षन्येन कीरो निषिद्धः स भवतु मम भूत्यै वाणि ते मन्दहासः ॥ ७ ॥ धातुश्चतुर्मुखीकण्ठशृङ्गाटकविहारिणीम्। नित्यं प्रगल्भवाचालामुपतिष्ठे सरस्वतीम् ॥ ८ ॥ पातु वो निकषग्रावा मतिहेम्नः सरस्वती। प्राज्ञेतरपरिच्छेदं वचसैव करोति या ॥ ९ ॥ यस्याः प्रसादविरहे मूकत्वं सर्वदा स्फुटम्। तामेकां वागधिष्ठात्रीं महादेवीमुपास्महे ॥१०॥ या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना। या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥ ११ ॥ वचांसि वाचस्पतिमत्सरेण साराणि लब्धुं ग्रहमण्डलीव। मुक्ताक्षसूत्रत्वमुपैति यस्याः सा सप्रसादास्तु सरस्वती वः ॥१२॥ वीणावादनदम्भेन शास्त्रतत्त्वविकासिका। हंसासनमुपासीना वाग्देवी श्रेयसेऽस्तु नः ॥१३॥ शरणं करवाणि शर्मदं ते चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम्। करुणामसृणैः कटाक्षपातैः कुरु मामम्ब कृतार्थसार्थवाहम् ॥ १४ ॥ शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे। सर्वदा सर्वदा-

---

उनके हाथपर रक्खा हुआ बेर हो ॥ २ ॥ वाणीकी स्वामिनी वे सरस्वती देवी आज मुझे शरण दें जो अच्छे और बुरेका भेद करनेकी शक्ति देती हैं और जिनका वाहन हंस भी जल और दूधके घोलको अलग-अलग कर सकनेकी चतुराईके लिये संसारमें प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ सब इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली सरस्वतीजीकी उस रहस्य-भरी शक्तिकी मैं शरण लेता हूँ जो अँधेरा मिटानेवाली चकाचौंध भरी चमकसे युक्त होनेपर भी नेत्रोंसे दिखाई नहीं पड़ती, अमृतकी मीठी धारा होनेपर भी जीभ जिसका स्वाद नहीं पा सकती और जो दूर रहते हुए भी शरीरमें रोमाञ्च उत्पन्न कर देती है ॥ ४ ॥ सरस्वतीजीके उस दैवी और कभी भी न घटनेवाले तेजकी मैं उपासना करता हूँ जिसकी कृपासे मोह रूपी घने अँधेरेकी कालिमाका नाश हो जाता है ॥ ५ ॥ घने अँधेरेको मिटा डालनेवाली, सदा उजाला करती रहनेवाली, पृथ्वीपर घूमती रहनेवाली, जड़ों (मूर्खों और प्राणहीन पत्थर आदि) से दूर रहनेवाली, कलाकी खान, चन्द्रमा और विद्वानोंको सहायता देनेवाली और सदा चमकती रहनेवाली विजली (चमक) से सजी कोई उजली चमकीली बदली (सरस्वतीजी) मेरे हृदयमें आकर फैल जाय ॥ ६ ॥ हे सरस्वती देवी ! आपके कमल जैसे सुन्दर हाथकी उँगलियोंके नखोंकी लाल छाया पड़नेसे लाल हो उठनेवाली चिकनी स्फटिककी मालाको अनारके दाने समझकर उसपर चोंच मारनेके लिये उतावले तोतेको आपने जिस मुस्कराहटसे रोका, वह मन्द मुस्कान मेरा कल्याण करे ॥ ७ ॥ उन सरस्वती देवीको नमस्कार करता हूँ जो बोलनेमें सदा बहुत निडर और चतुर हैं तथा जो ब्रह्माके चौराहेके समान चारों कण्ठोंमें सदा घूमती रहती हैं ॥ ८ ॥ वे सरस्वती देवी आप लोगोंकी रक्षा करें जो बुद्धि-रूपी सोनेके लिये कसौटी हैं और जो वचनोंसे ही विद्वानों और मूर्खोंको सदा भेद बताती रहती हैं ॥ ९ ॥ मैं उन सबसे बड़ी सरस्वती देवीकी उपासना करता हूँ जो वाणीकी अकेली ही स्वामिनी हैं और जिनकी कृपा न मिलनेसे किसीकी बोली ही नहीं खुल पा सकती ॥१०॥ कुन्दके फूल, चन्द्रमा, हिम और मोतियोंकी मालाके समान उजली, उजले वस्त्र पहननेवाली, सुन्दर लगनेवाली, उजले कमलपर बैठी हुई, सारी मूर्खताको नष्ट करनेवाली तथा ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर आदि देवताओंसे पूजी जानेवाली सरस्वती देवी मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ जिनके गलेमें मोतियोंकी माला ऐसी शोभा दे रही है मानो बृहस्पतिसे ईर्ष्या करके उनके समान वाणीका तत्त्व प्राप्त करनेके लिये सारी ग्रह-मण्डली कण्ठसे आ चिपटी हो, वे सरस्वतीजी आप लोगोंपर प्रसन्न हों ॥ १२ ॥ वे सरस्वती देवी हम लोगोंका कल्याण करें जो हंसके ऊपर बैठी हुई वीणा बजा-बजाकर उसके स्वरोंसे ही सब शास्त्रोंके गुप्त भेद समझाती रहती हैं ॥ १३ ॥ हे सरस्वती देवी ! मैं आपके उन कल्याण करनेवाले चरणोंकी शरण लेता हूँ जिनके सहारे सारा जड़ और चेतन संसार जीता है। हे माता ! आप मुझे अपनी दया-भरी तिरछी चितवनसे देखकर ऐसा बना दें कि मेरे मुँहसे निकली हुई वाणी सदा सफल होती रहे ॥ १४ ॥ भक्तोंको

स्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात् ॥ १५ ॥ सूक्ष्माय शुचये तस्मै नमो वाक्तत्त्वतन्तवे । विचित्रो यस्य विन्यासो विदधाति जगत्पटम् ॥ १६ ॥ हंसासीना हसन्ती मृदुमधुरकलां वादयन्ती स्ववीणां तत्त्वग्रामं समस्तं प्रकटमविकलं सन्नयन्ती विकासम् । मुक्तामालां दधाना गुणगणमहिता स्तूयमाना सुरेन्द्रैर्वागीशा सुप्रसन्ना निवसतु वदनाम्भोरुहान्तः सदा मे ॥ १७ ॥

हरिहरौ

अवलाढ्यविग्रहश्रीरमर्त्यनतिरक्षमालयोपेतः । पञ्चक्रमोदितमुखः पायात्परमेश्वरो मुहुरनादिः ॥ १ ॥ गवीशपत्रो नगजार्त्तिहारी कुमारतातः शशिखण्डमौलिः । लङ्केशसम्पूजितपादपद्मः पायादनादिः परमेश्वरो वः ॥२॥ गाङ्गयामुनयोगेन तुल्यं हारिहरं वपुः । पातु नाभिगतं पद्मं यस्य तन्मध्यगं यथा ॥ ३ ॥ जाह्नवी मूर्ध्नि पादे वा कालः कण्ठे वपुष्यथ । कामारिं कामतातं वा कञ्चिद्देवं भजामहे ॥ ४ ॥ पन्नगधारिकराग्रो गङ्गोमालङ्कितोऽङ्गदोऽग्रभुजः । शशिखण्डशेखर उमापरिग्रहो मुहुरनादिरवतु त्वाम् ॥ ५ ॥ पायात्कुमारजनकाख्य उमाविलासः शङ्खप्रभश्च निधनेशगवीशयानः गङ्गाश्च पन्नगधरश्च पिनाकसक्त आद्याक्षरेण सहितो रहितोऽथवा

सब कुछ देनेवाली और शरद्‌के कमलके समान सुन्दर मुखवाली सरस्वती देवी हम लोगोंके मुख-रूपी कमलमें रहकर सदा हमें ज्ञानका भण्डार देती रहें ॥१५॥ उन सरस्वती देवीको प्रणाम है जो सुन्दर बोलीका रूप धारण करके ऐसे पवित्र और पतले डोरेके समान सारे संसारमें फैली हैं जिसके विचित्र ताने-बानेसे ही यह संसार-रूपी वस्त्र बुना हुआ है ॥ १६ ॥ हंसपर बैठकर हँसती हुई, अपनी कोमल और सरस रागवाली वीणा बजाकर ही सारे शास्त्रोंके तत्त्वको भली-भाँति प्रकट करती तथा उसे और भी निखारती हुई, मोतीकी माला धारण की हुई, उत्तम गुणोंकी महत्तासे बढ़ी हुई महिमावाली तथा इन्द्र आदि देवताओंसे स्तुति की जाती हुई, वचनोंकी स्वामिनी (सरस्वतीजी) अति प्रसन्न होकर सदा मेरे मुख-कमलमें निवास करें ॥ १७ ॥

विष्णु और शिव

गिनतीमें पाँच मुँहवाले (पञ्चक्रमोदितमुखः), अक्षमाला धारण किए हुए (अक्षमालयोपेतः), देवताओंसे प्रणाम किए जाते हुए (अमर्त्यनतिः) तथा आधे भागमें विराजमान स्त्री-रूपसे सुशोभित देहवाले (अबलाढ्यविग्रहश्रीः) अजन्मा भगवान् अर्धनारीश्वर सदा ही रक्षा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे पहला अक्षर निकाल देनेपर शक्तिकी अधिकतासे सुन्दर देहवाले (बलाढ्यविग्रहश्रीः), मनुष्योंसे प्रणाम किए जानेवाले (मर्त्यनतिः), क्षमाके भण्डारसे युक्त (क्षमालयोपेतः) भगवान् विष्णु सदा ही रक्षा करें जिनका मुँह चक्र धारण करते ही प्रसन्न हो उठता है (चक्रमोदितमुखः) ॥ १ ॥ गौओंके स्वामी नन्दीकी सवारीवाले (गवीशपत्रः), हिमालयकी पुत्री पार्वतीके कष्ट दूर करनेवाले (नगजार्त्तिहारी), कार्त्तिकेयके पिता (कुमारतातः), चन्द्रमाकी कला सिरपर धारण करनेवाले (शशिखण्डमौलिः), लङ्काके अधिपति रावण-द्वारा पूजित चरण-कमलोंवाले (लङ्केशसम्पूजितपादपद्मः), अजन्मा भगवान् (शिव) आपकी रक्षा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे प्रथम अक्षर निकाल देनेपर पक्षियोंके स्वामी गरुड़की सवारीवाले (वि+ईशपत्रः), गजकी पीड़ा दूर करनेवाले (गजार्त्तिहारी), कामदेव (प्रद्युम्न) के पिता (मारतातः), सिरपर मोरपंख धारण करनेवाले (शिखण्डमौलिः) तथा ब्रह्मा और शिवसे पूजित चरणकमलोंवाले (क+ईशसम्पूजितपादपद्मः), भगवान् (विष्णु) आपकी रक्षा करें ॥ २ ॥ गङ्गा और यमुनाके सङ्गमके समान जान पड़नेवाले विष्णु और शिवके श्याम और श्वेत रङ्गवाले मिले हुए शरीरकी नाभिसे निकला हुआ वह कमल रक्षा करे जो ऐसा जान पड़ता है मानो गङ्गा और यमुनाके सङ्गममें ही उत्पन्न हुआ हो ॥ ३ ॥ गङ्गा जिनके मस्तक या चरणसे निकली हैं, काल जिनके गले या शरीरमें है, ऐसे किसी देव—कामके शत्रु (शिव) या पिता (विष्णु) की हम स्तुति करते हैं ॥४॥ हाथके आगेके भागमें नाग लपेटे हुए, गङ्गा और पार्वतीसे संयुक्त, बाँहमें सर्पका भुजबन्ध पहने हुए, टेढ़ा चन्द्रमा सिरपर धारण किए हुए तथा आधे शरीरमें पार्वतीजीके रूपवाले अजन्मा भगवान् शिव सदा तुम्हारी रक्षा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे पहला अक्षर निकाल देनेपर गोवर्धन पर्वतको हाथकी उँगलीमें उठाए हुए, गौ तथा लक्ष्मीसे संयुक्त, श्रेष्ठ हाथमें गदा धारण किए हुए, मोरमुकुट पहने हुए तथा लक्ष्मी जैसी पत्नीवाले (भगवान् विष्णु) आपकी सदा रक्षा करें ॥ ५ ॥ स्वामी कार्त्तिकेयके पिता, पार्वतीके साथ विलास करनेवाले, शङ्खके समान शुभ्र, काल और बैलपर सवारी करनेवाले, गङ्गा तथा साँप धारण करनेवाले और पिनाक धनुषमें रुचि रखनेवाले भगवान् शिव आपकी रक्षा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे प्रथम अक्षर निकाल देनेपर कामके पिता, लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले, आकाशके

त्वाम् ॥ ६ ॥ यस्मादासीत्कुमारः कुवलयदलवल्लीलयोवाह गङ्गां वामा यस्याङ्गसङ्गा पिहितजनचयो यो-गवीशध्वजोऽपि । लङ्केशाद्येकनाथो हिमकररुचिभृद्भूविशेषाशयोऽसौ वर्णस्याद्यस्य लोपादपहरतु हरिः पातकं वः स्मरारिः ॥ ७ ॥ यौ तौ शङ्खकपालभूषितकरौ मालास्थिमालाधरौ देवौ द्वारवतीश्मशाननिलयौ नागारिगोवाहनौ । द्वित्र्यक्षौ बलिदक्षयज्ञमथनौ श्रीशैलजावल्लभौ पापं वो हरतां सदा हरिहरौ श्रीवत्सगङ्गाधरौ ॥ ८ ॥ लोले ब्रूहि कपालकामिनि पिता कस्ते पतिः पाथसां कः प्रत्येति जलादपत्यजननं प्रत्येति यः प्रस्तरात् । इत्थं पर्वतसिन्धुराजसुतयोराकर्ण्य वाक्चातुरीं संस्मेरस्य हरेर्हरस्य च मुदो निघ्नन्तु विघ्नं तु वः ॥ ९ ॥ श्यामिम्ना धवलिम्ना च यमुनाजाह्नवीप्रभाम् । तीर्थराजवदव्यग्रां दधती कापि देवता ॥ १० ॥ सम्प्राप्तं मकरध्वजेन मथनं त्वत्तो मदर्थे पुरा तद्युक्तं बहुमार्गगां मम पुरो निर्लज्ज वोढुस्तव । तामेवानुनयस्व भावकुटिलां हे कृष्ण कण्ठग्रहं मुञ्चेत्याह रुषा यमद्रितनया लक्ष्मीश्च पायात्स वः ॥ ११ ॥ स्फटिकमरकतश्रीहारिणोः प्रीतियोगात्तदवतु वपुरेकं कामकंसद्विषोर्वः । भवति गिरिसुतायाः सार्धमम्भोधिपुत्र्या सदृशमहसि कण्ठे यत्र सीमाविवादः ॥ १२ ॥

विष्णुः

अतिकरुणं निजशरणं प्रार्थयमानं निरस्तहृन्मानम् । स्मावति वाहोपेक्षायानो यः श्रेयसे स हरिः ॥ १ ॥ अतिविपुलं कुचयुगलं रहसि करैरामृशन्मुहुर्लक्ष्म्याः । तदपहृतं निजहृदयं जयति हरिर्मृगयमाण इव ॥ २ ॥

समान आभावाले, ऐश्वर्यके स्वामी, गरुड़की सवारीवाले, पृथ्वी एवं गोवर्धन पर्वत धारण करनेवाले तथा वैकुण्ठ-निवासी भगवान् विष्णु आपकी रक्षा करें ॥ ६ ॥ स्वामी कार्त्तिकेयके पिता, गङ्गाको कमलकी पँखुड़ीकी भाँति सहज ही धारण किए हुए, शरीरके बाएँ भागमें ही पत्नीको रखनेवाले, प्रलय-कालमें जन-समूहका नाश कर देनेवाले, नन्दीके चिह्नकी पताकावाले, रामचन्द्रके एकमात्र स्वामी, चन्द्रमाकी कान्तिवाले तथा पृथ्वीके एक विशेष भाग (कैलास) में रहनेवाले वे कामके शत्रु शिवजी आपके पापोंका हरण करें तथा इन विशेषणोंमेंसे प्रथम अक्षर निकाल देनेपर कामदेवके पिता, पृथ्वीको कमलकी पँखुड़ीकी भाँति सरलतासे ले आनेवाले, सदा लक्ष्मीको साथ रखनेवाले, सब प्राणियोंका उपकार करनेवाले, गरुड़से चिह्नित पताकावाले, ब्रह्मा और शिवके एकमात्र स्वामी, मकरकुंडलसे सुशोभित तथा गरुड़की सवारी एवं शेषनागकी शैयावाले विष्णु भगवान् आपके पाप नष्ट करें ॥ ७ ॥ क्रमशः शङ्ख और खोपड़ीसे शोभित हाथोंवाले, फूलों और मुण्डोंकी माला धारण करनेवाले, द्वारकापुरी और श्मशानमें रहनेवाले, गरुड़ और नन्दीकी सवारीवाले, दो और तीन नेत्रवाले, बलि और दक्षके यज्ञको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाले, लक्ष्मी और पार्वतीको प्रिय लगनेवाले तथा श्रीवत्स (चरण-चिह्न) और गङ्गाको धारण करनेवाले दोनों देव आपके पाप हरें ॥ ८ ॥ पार्वतीजीने लक्ष्मीजीको सम्बोधित करके कहा—चञ्चले ! कुछ बताओ तो ! लक्ष्मीजी बोलीं—कहो औघड़की पत्नी ! पार्वतीजी बोलीं—तुम्हारे पिता कौन हैं ? लक्ष्मीजी बोलीं—मेरे पिता समुद्र हैं । पार्वतीजी बोलीं—भला समुद्रसे सन्तान उत्पन्न होनेकी बातपर कौन विश्वास करेगा ? लक्ष्मीजी बोलीं—वही जो पत्थरसे सन्तान उत्पन्न होनेपर विश्वास कर सकता है । इस प्रकार पर्वतराज हिमालय और सिन्धुराज क्षीरसमुद्रकी कन्याओंकी वचन-चातुरी सुनकर मुस्कराते हुए शिव और विष्णुकी प्रसन्नता आपके विघ्न दूर करे ॥ ९ ॥ कोई देवता अपने नीलेपन और उजलेपनसे तीर्थराज प्रयागकी भाँति गङ्गा और यमुनाके सङ्गमकी शोभा धारण कर रहा है ॥ १० ॥ मुझे ही पानेके लिये तुमने कामदेवको नष्ट किया या समुद्रको मथा और अब उस कुमार्ग या अनेक मार्गोंसे चलनेवाली कुब्जा या गङ्गाको सिरपर बैठाते तुम्हें लज्जा नहीं आती ! अतः अब हे कृष्ण या नीलकण्ठ ! उसी दुःस्वभाववाली या स्वभावसे ही टेढ़ी चलनेवाली कुब्जा या गङ्गाको ही जाकर मनाओ, मेरा गला छोड़ो, इस प्रकार क्रोधपूर्वक लक्ष्मी या पार्वतीने जिनसे ये बातें कहीं वे आपकी रक्षा करें ॥ ११ ॥ स्फटिक और नीलमणिकी-सी कान्तिवाले तथा कंस और कामदेवके शत्रु विष्णु और शिवका अत्यन्त प्रेमके कारण वह मिला हुआ एक ही शरीर आपकी रक्षा करे जिसके एक-सी कान्तिवाले गलेकी सीमाके विषयमें पार्वतीके साथ लक्ष्मीका यह विवाद होने लगा कि यहाँसे शिवका गला है या यहाँसे विष्णुका ॥ १२ ॥

विष्णु

जिन विष्णु भगवान्ने शीघ्रताके कारण सवारीका भी तिरस्कार करके अपनी शरणमें आकर प्रार्थना करते हुए अत्यन्त दयनीय तथा अभिमानरहित गजेन्द्रकी नङ्गे पैर दौड़कर रक्षा की थी, उनकी जय हो ॥ १ ॥ उन विष्णु भगवान्की जय हो जो

अनाहतचमूपतिप्रहितहस्तमस्वीकृतप्रणीतमणिपादुकं किमिति विस्मितान्तःपुरम् । अवाहनपरिष्कृतं पतगराजमारोहतः करिप्रवरबृंहिते भगवतस्त्वरायै नमः ॥३॥ आकल्पं मुरजिन्मुखेन्दुमधुरोन्मीलन्मरुन्माधुरीधीरोदात्तमनोहरः सुखयतु त्वां पाञ्चजन्यध्वनिः । लीलालङ्घितमेघनादविभवो यः कुम्भकर्णव्यथादायी दानवदन्तिनां दशमुखं दिक्चक्रमाक्रामति ॥४॥ आदिमध्यान्तरहितं दशाहीनं पुरातनम् । अद्वितीयमहं वन्दे मद्वस्त्रसदृशं हरिम् ॥५॥ आश्रित्य नूनममृतद्युतयः पदं ते देहक्षयोपनतदिव्यपदाभिमुख्याः । लावण्यपुण्यनिचयं सुहृदि त्वदास्ये विन्यस्य यान्ति मिहिरं प्रतिमासभिन्नाः ॥६॥ उद्घाट्य योगकलया हृदयाब्जकोशं धन्यैश्चिरादपि यथारुचि गृह्यमाणः । यः प्रस्फुरत्यविरतं परिपूर्णरूपः श्रेयः स मे दिशतु शाश्वतिकं मुकुन्दः ॥७॥ एकस्थं जीवितेशे त्वयि सकलजगत्सारमालोकयामः श्यामे चक्षुस्त्ववास्मिन्वपुषि निविशते नाल्पपुण्यस्य पुंसः । कस्यान्यत्रामृतेऽस्मिन्नतिरतिविपुला दृष्टिरेवामृतं ते दैत्यैरित्युच्यमानो मुनिभिरपि हरिः स्त्रैणरूपोऽवताद्वः ॥ ८ ॥ कचकुचचिबुकाग्रे पाणिषु व्यापृतेषु प्रथमजलधिपुत्रीसङ्गमेऽनङ्गधाम्नि । ग्रथितनिबिडनीवीबन्धनिर्मोचनार्थं चतुरधिककराशः पातु चक्रपाणिः ॥ ९ ॥ कमलाकुचकनकाचलजलधरमाभीरसुन्दरीमदनम् । अचित-तल्पशेषफणावलि-कमलवनभृङ्गमच्युतं वन्दे ॥ १० ॥ किञ्चिन्मुञ्चमाने गगन इव मुखे शान्तनिद्रापयोदैर्व्यञ्जुर्वाणे स्वभासा फणिपतिशिरसां रत्नदीपांशुजालम् । पायास्तां वो मुरारेः शशितपनमये लोचने यद्विभासा लक्ष्म्या हस्तस्थमर्थं विकसति कमलस्यार्थमभ्येति निद्राम् ॥ ११ ॥ केलिचलाङ्गुलिलम्भितलक्ष्मी-

---

लक्ष्मीजीके विशाल स्तनपर बार-बार अपने हाथ फेरते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो अपना खोया हुआ हृदय ढूँढ़ रहे हों ॥२॥ सङ्कटमें पड़े हुए गजेन्द्रके लिये गरुड़की नङ्गी पीठपर बैठे हुए भगवान् विष्णुकी उस शीघ्रताकी जय हो जिसमें उन्होंने सहारेके लिये बढ़ाए हुए सेनापतिके हाथका अनादर कर दिया तथा पैरोंमें पहनाई जाती हुई मणियोंकी पादुकाओंको भी ठुकरा दिया जिससे अन्तःपुरकी स्त्रियाँ 'क्या हो गया! क्या हो गया!' कहकर आश्चर्य करने लगीं ॥३॥ मुर राक्षसको मारनेवाले भगवान् विष्णुके मुख-चन्द्रकी हल्की-सी फूँकसे बजे हुए उनके पाञ्चजन्य शङ्खकी वह घोर, गम्भीर ध्वनि आपको प्रलयकालतक सुख पहुँचाती रहे जिसके आगे अनायास ही बादलोंकी गड़गड़ाहट मन्द पड़ गई तथा जो राक्षसोंके हाथियोंके कान फोड़ती हुई दसों दिशाओंके छोरोंतक जा फैली ॥ ४ ॥ मैं उन विष्णु भगवान्को प्रणाम करता हूँ जो मेरे अत्यन्त पुराने वस्त्रके समान न जाने कबसे हैं और कबतक रहेंगे, जो सदा एकसे रहते हैं तथा जो अपने ढङ्गके एक अकेले ही हैं ॥ ५ ॥ भगवद्भक्त जब शरीरका अन्त करने लगते हैं तो वे अपने सब सुकृत अपने मित्रोंको बाँटकर ही सूर्य-मण्डलको जाते हैं । इस श्रुति-प्रसिद्ध विषयको लेकर यह सूक्ति की है—हे भगवन्! प्रत्येक मासके सब भिन्न-भिन्न चन्द्रमा, मोक्ष पानेकी अभिलाषासे मृत्युके समय अपनी देह क्षीण करके आपके चरण (आकाश) का सहारा लेकर जाते समय अपना सौन्दर्यरूपी सुकृत अपने मित्र आपके मुखको समर्पित करके अमावस्याको सूर्य-मण्डलमें चले जाते हैं ॥ ६ ॥

बड़े भाग्यवान् योगी लोग योगसाधनसे अपने हृदयका कमल खिलाकर जिन भगवान्को अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उसमें बैठाते हैं और जो सदा उनके हृदयमें अपने पूर्ण रूपसे विराजमान रहते हैं वे मुकुन्द भगवान् मुझे ऐसा ऐश्वर्य दें जो कभी नष्ट न हो ॥७॥ मोहिनी रूप धारण किए हुए वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें जिनसे दैत्य तथा मुनि भी मोहमें पड़कर ऐसा कहने लगे कि 'हे जीवनकी स्वामिनी! सारे संसारका सार हम आपमें ही एकत्र हुआ देखते हैं, हे श्याम रंगवाली! इस कम पुण्यवाले पुरुषकी ओर आपकी दृष्टि नहीं पड़ती किन्तु अब कहीं दूसरे स्थानपर अमृत आदिमें किसीकी रुचि नहीं रह गई है क्योंकि आपकी दृष्टि ही तो अमृत है ॥८॥ समुद्रकी कन्या लक्ष्मीजीसे प्रथम संयोगके समय कामकी अधिकता होनेपर लक्ष्मीजीके केश, दोनों स्तनोंके अग्रभाग और ठोड़ीमें जब विष्णुजीके चारों हाथ उलझ गए उस समय अत्यन्त कसकर बाँधी हुई साड़ीकी गाँठ खोलनेके लिये जिनके मनमें दो और हाथ प्राप्त करनेकी लालसा हुई वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ९ ॥ उन विष्णु भगवान्को प्रणाम करता हूँ जो लक्ष्मीजीके स्तनरूपी सुमेरु पर्वतके लिये मेघ हैं, गोपिकाओंके लिये कामदेव हैं तथा शय्या बने हुए शेषजीके फणरूपी कमलवनके लिये भौंरे हैं ॥ १० ॥ सृष्टिके आरम्भमें शेषशय्यापर सोए हुए भगवान् विष्णुके आकाशरूपी मुँहसे जब बादलरूपी योगनिद्राकी जड़ता कुछ दूर हुई उस समयके उनके सूर्य और चन्द्रमारूपी वे दोनों नेत्र आपकी रक्षा करें जिनके प्रकाशसे शेषके फणोंमें स्थित

नाभिर्मुरद्विपश्चरणः । स जयति येन कृता श्रीरनुरूपा पद्मनाभस्य ॥१२॥ चक्र ब्रूहि विभो गदे जय हरे कम्बो समाज्ञापय भो भो नन्दक जीव पन्नगरिपो किं नाथ भिन्नो मया । को दैत्यः कतमो हिरण्यकशिपुः सत्यं भवद्भ्यः शपे केनास्त्रेण नखैरिति प्रवदतो विष्णोर्मुखं पातु वः ॥ १३ ॥ चत्वारः प्रथयन्तु विद्रुमलतारक्ताङ्गुलिश्रेण्यः श्रेयः शोणसरोजकोरकरुचस्ते शार्ङ्गिणः पाणयः । भालेष्वब्जभुवो लिखन्ति युगपद्ये पुण्यवर्णावलीः कस्तूरीमकरीः पयोधरयुगे गण्डद्वये च श्रियः ॥ १४ ॥ जयति स नाभिर्जगतां स्वनाभिरन्ध्रोद्भवजगद्बीजः । दामोदरो निजोदरगह्वरनिर्विष्टजगदण्डः ॥ १५ ॥ जयति स भगवान् कृष्णः शेते यः शेषभोगशय्यायाम् । मध्ये पयः पयोधेरपर इवाम्भोनिधिः कृष्णः ॥१६॥ जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सया यः क्षणलब्धलक्ष्यया । दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम् ॥१७॥ जीयादम्बुधितनयाधररसमास्वादयन्मुरारिरयम् । अम्बुधिमथनक्लेशं कलयन्विकलञ्च सफलञ्च ॥ १८ ॥ तापत्रयौषधवरस्य तव स्मितस्य निःश्वासमन्दमरुता निवुसीकृतस्य । एते कडङ्करचया इव विप्रकीर्णा जैवातृकस्य किरणा जगति भ्रमन्ति ॥ १९ ॥ त्वद्वक्त्रसाम्यमयमम्बुजकोशमुद्राभङ्गात्ततत्सुषममित्रकरोपक्लृप्त्या । लब्ध्वापि पर्वणि विधुः क्रमहीयमानः शंसत्यनीत्युपचितां श्रियमाशुनाशाम् ॥ २० ॥ दृक्पातः कमलासनेऽस्तु भवतो ज्ञानं मनाङ्मारुते श्रीकण्ठोऽयमितः सुरानिति नतांस्तार्क्ष्येण विज्ञापितः । प्रेयस्याः क्व तदासनं क्व च रुतं

मणियोंकी कान्ति भी मलिन हो गई और लक्ष्मीजीके हाथका कमल आधा खिलने और आधा मुँदने लगा ॥ ११ ॥ खेल-खेलमें अपने पैरकी चञ्चल उँगलियोंसे लक्ष्मीजीकी नाभि गुदगुदाते हुए विष्णु भगवान्के उस चरणकी जय हो जिसके कारण थोड़ी देरके लिये लक्ष्मीजी भी नाभिमें कमल उगाए हुए विष्णुके समान जान पड़ने लगीं ॥ १२ ॥ हिरण्यकशिपुको मारनेके पश्चात् आवेशमें भरे हुए विष्णु भगवान् अपने पार्षदोंके पास पहुँचे और एकाएक उन्होंने चक्रसे आवेशमें कहा—अरे चक्र, बोल ! चक्र—(घबराकर) प्रभो ! विष्णु—अरे गदा ! गदा—(घबराकर) हरिकी जय हो ! विष्णु—अरे कम्बु (शङ्ख) ! कम्बु—(नम्रतापूर्वक) आज्ञा दीजिए ! विष्णु—अरे, अरे नन्दक ! नन्दक—(डरकर) महाराज ! विष्णु—अरे गरुड़ ! गरुड़—(उत्सुकतासे) क्या नाथ ! विष्णु—मैंने फाड़ डाला । गरुड़—(अचरजसे) किसे ? विष्णु—दैत्यको ! गरुड़—(कुतूहलसे) किस दैत्यको ? विष्णु—हिरण्यकशिपुको । गरुड़—(प्रसन्नतासे) क्या सच ? विष्णु—तुम लोगोंकी सौगन्ध ! गरुड़—कैसे ? विष्णु—(भयङ्कर नख दिखाते हुए) अरे इन नखोंसे । इस प्रकार आवेशमें भरकर बातचीत करते हुए विष्णु भगवान्का तमतमाता हुआ मुख आपकी रक्षा करे ॥ १३ ॥ विष्णु भगवान्के वे चारों मूँगेकी लताके समान लाल-लाल उँगलियोंवाले और लाल कमलकी कलियोंके समान कान्तिवाले हाथ (ऐश्वर्य) दें जो एक साथ ही ब्रह्माके माथेपर पवित्र अक्षर लिखते हैं तथा लक्ष्मीजीके दोनों स्तनों और दोनों कपोलोंपर कस्तूरीसे चित्रकारी भी करते हैं ॥१४॥ सारे संसारके नाभिरूप उन विष्णु भगवान्की जय हो जिन्होंने सारे संसारके बीज (रचनेवाले) ब्रह्माको अपनी नाभिसे निकले हुए कमलसे उत्पन्न किया और जो उस सारे संसारके आधार-दण्डके समान कमलकी नालको अपने पेटमें छिपाए हुए हैं ॥१५॥ नीले रङ्गवाले उन भगवान् विष्णुकी जय हो जो दूधके समुद्रमें शेषकी शय्यापर सोए हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो दूधके समुद्रपर नीले रङ्गका कोई दूसरा पानीका समुद्र हो ॥ १६ ॥ उन नृसिंह-वेषधारी भगवान् विष्णुकी जय हो जिन्होंने फाड़ डालनेकी इच्छासे जब क्रोधपूर्वक अपने लाल-लाल नेत्रोंसे दूरसे देख-भर दिया कि शत्रु (हिरण्यकशिपु) का हृदय डरके मारे अपने आप फटकर रक्तसे लाल हो गया ॥१७॥ उन भगवान् मुरारिकी जय हो जो समुद्रकी पुत्री लक्ष्मीजीके अधर-रसका स्वाद लेते हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो समुद्र मथनेकी थकावट या तो दूर कर रहे हों या सफल कर रहे हों ॥ १८ ॥ हे विष्णु ! चन्द्रमाकी ये फैली हुई किरणें ऐसी जान पड़ती हैं मानो तीनों प्रकारके दुःखोंका नाश करनेवाली आपकी मुस्कान आपकी ही साँसके हल्के पवनसे फैलकर कडङ्कर भुसा-सी फैली हो ॥ १९ ॥ हे विष्णु ! यद्यपि कमलके मुकुलित (बन्द) कोश (भण्डार) खोलकर उनकी सुन्दरता हर ले जानेवाली सूर्य-किरणें पाकर यह चन्द्रमा इतना अधिक सुन्दर हो गया कि पूर्णिमाको आपके मुँहकी ही समता करने लगा तथापि पूर्णिमाके पश्चात् क्षीण होता हुआ वह मानो यह बतलाता है कि अन्यायसे कमाई हुई सम्पत्ति बहुत दिन टिकती नहीं ॥ २० ॥ योगनिद्रासे जब भगवान् जागे तब आसपास खड़े हुए देवताओंका परिचय

कण्ठः क्व चेत्युल्लसल्लक्ष्म्यावासितमानसो विजयते सुप्तप्रबुद्धो हरिः ॥ २१ ॥ नक्रग्रस्तपदं समुद्धृतकरं ब्रह्मादयो भो सुरा रक्षन्तामिति दीनवाक्यकरिणं देवेष्वशक्तेषु यः । मा भैषीरिति तस्य नक्रहनने चक्रायुधः श्रीधरो विश्वत्राणपरायणो विजयते नाथः स नारायणः ॥ २२ ॥ नमस्त्रिभुवनोत्पत्तिस्थितिसंहारहेतवे । विष्णवेऽपारसंसारपारोत्तरणसेतवे ॥२३॥ नाथ त्वदङ्घ्रिनखधावनतोयलग्नास्तत्कान्तिलेशकणिका जलधिं प्रविष्टाः । ता एव तस्य मथनेन घनीभवन्त्यो नूनं समुद्रनवनीतपदं प्रपन्नाः ॥ २४ ॥ नाभीपद्मवसच्चतुर्मुखमुखोद्गीतस्तवाकर्णनप्रोन्मीलत्कमनीयलोचनकलाखेलन्मुखेन्दुद्युतिः सक्रोधं मधुकैटभौ सकरुणस्नेहं सुताम्बुधेः सोत्प्रासप्रणयं सरोजवसतिं पश्यन्हरिः पातु वः ॥२५॥ नामैव ते वरद वाञ्छितदातृभावं व्याख्यास्यतो न वहसे वरदानमुद्राम् । विश्वप्रसिद्धतरविप्रकुलप्रसूतेर्यज्ञोपवीतवहनं हि न खल्वपेक्ष्यम् ॥२६॥ निर्मग्नेन मयाम्भसि स्मरभरादालिः समालिङ्गिता केनालीकमिदं तवाद्य कथितं राधे मुधा ताम्यसि । इत्युत्स्वप्नपरम्परासु शयने श्रुत्वा वचः शार्ङ्गिणः सव्याजं शिथिलीकृतः कमलया कण्ठग्रहः पातु वः ॥२७॥ निष्प्रत्यूहमुपास्महे भगवतः कौमोदकीलक्ष्मणः कोकप्रीतिचकोरपारणपटु ज्योतिष्मती लोचने । याभ्यामर्धविबोधमुग्धमधुरश्रीरर्धनिद्रायितो नाभीपल्वलपुण्डरीकमुकुलः कम्बोः सपत्नीकृता ॥ २८ ॥ पद्मापयोधरतटीपरिरम्भलग्नकाश्मी-

---

देते हुए गरुड़जीने उनसे कहा—'ये कमलपर बैठे ब्रह्माजी हैं, इनपर आपकी कृपादृष्टि हो, ये पवनदेव हैं, इन्हें आप पहचानें, ये श्रीशिवजी हैं तथा ये प्रणाम करते हुए सब देवता खड़े हुए हैं।' पर अपनी प्रियतमा श्रीलक्ष्मीजीको न देखकर जो यह कहते हुए चिन्ता प्रकट कर रहे हैं 'श्रीलक्ष्मीजी कहाँ बैठी हैं, उनकी वाणी भी नहीं सुनाई पड़ती, न उनका कण्ठ ही दिखाई पड़ता' उन परम सुन्दरी लक्ष्मीजीमें ही जिनका चित्त बसा है उन विष्णु भगवान्‌की जय हो ॥२१॥ मगरसे पैर पकड़ लिए जानेपर अपनी सूँड़ ऊपर उठाकर कातर वाणीसे 'हे ब्रह्मा आदि देवताओं ! बचाइये, बचाइये!' पुकारनेवाले गजराजको जब कोई भी देवता न बचा सका तब 'मत डरो, मत डरो,' कहते हुए उस मगरको मारनेके लिये हाथमें चक्र लेकर दौड़नेवाले तथा इसी प्रकार लक्ष्मीसे युक्त होकर सारे संसारकी रक्षा करनेवाले नारायण भगवान्‌की जय हो ॥ २२ ॥ तीनों लोकोंको उत्पन्न करने तथा उनका पालन और नाश करनेवाले उन भगवान् विष्णुको प्रणाम है जो इस संसाररूपी अपार समुद्रसे पार जानेके लिये मानो पुल ही हैं ॥ २३ ॥ हे स्वामी ! आपके पैर धोते समय आपके नखोंमें लगी जलकी बूँदोंके साथ घुलकर जो उन नखोंकी कान्ति (सुन्दरता) का नन्हा-सा कण समुद्रमें चला गया था वही मथे जानेपर सिमटकर मक्खनके रूपमें (लक्ष्मी बनकर) निकल आया है ॥२४॥ नाभिसे निकले हुए कमलपर बैठे ब्रह्माजीके चारों मुँहोंसे गाई हुई स्तुति सुनकर सुन्दर नेत्रकी कोर कुछ खुलनेसे खिले हुए उजले चन्द्रमाके समान सुन्दर मुँहवाले वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्होंने मधु और कैटभ राक्षसोंको क्रोधसे, समुद्रकी कन्या लक्ष्मीजीको अत्यन्त दया और स्नेहसे और कमलपर बैठे ब्रह्माजीको व्यंग्यभरे प्रेमसे देखा ॥२५॥ हे वरदान् देनेवाले ! तुम्हारा नाम ही यह बतलाता है कि तुम चाही हुई वस्तु देनेवाले हो इसलिये तुम दूसरे देवताओंके समान अपनेको वरदान देनेवाला सिद्ध करनेके लिये कोई विशेष चिह्न नहीं रखते क्योंकि जो संसारमें प्रसिद्ध ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुआ है उसे अपनेको ब्राह्मण बतानेके लिये यज्ञोपवीत पहननेकी आवश्यकता नहीं होती ॥२६॥ 'हे राधे ! पानीमें डुबकी लगाकर मैंने कामासक्त होकर तुम्हारी सखीका आलिङ्गन किया है, यह झूठी बात तुमसे किसने कही ! तुम क्यों व्यर्थ ही क्रोधित हो रही हो ?' यह बात अपने पास सोए हुए विष्णुजीकी नींदमें जो लक्ष्मीजीने सुनी तो उन्होंने रूठकर विष्णुजीके गलेमें कसकर लिपटे हुए अपने हाथ शिथिल कर दिए । उनका वह रूठकर हाथ शिथिल कर देना आपका कल्याण करे ॥ २७ ॥ कौमोदकी नामकी गदा धारण करनेवाले विष्णुके सूर्य और चन्द्रमय उन दोनों नेत्रोंकी हम उपासना करते हैं जिनमेंसे एक सूर्यवाला नेत्र खुलनेपर तो चकवा-चकवीमें प्रेम उत्पन्न होता है, चन्द्रवाला नेत्र खुल जानेपर चकोर आनन्दसे भोजन करनेको दौड़ता है और दोनोंके खुले रहनेपर उनके नाभिरूपी सरोवरमें उगा हुआ कमल आधा खिलनेसे अत्यन्त सुन्दर और आधा मुँदा होनेसे उनके कम्बु नामके शङ्खकी बराबरी करता-सा जान पड़ता है ॥२८॥ मधुसूदन भगवान्‌का वह वक्षःस्थल आपकी इच्छाएँ पूर्ण करे जो श्रीलक्ष्मीजीके स्तनोंका आलिङ्गन करनेसे उनमें लगे हुए कस्तूरीके लेपसे रँग गया है और जो रतिके परिश्रमके कारण पसीनेकी बूँदें निकल आनेसे ऐसा जान पड़ता है

रमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य । व्यक्तानुरागमिव खेलदनङ्गखेदस्वेदाम्बुपूरमनुपूरयतु प्रियं वः ॥ २९ ॥ पर्यङ्कीकृतनागनायकफणाश्रेणीमणीनां गणे संक्रान्तप्रतिबिम्बसंवलनया विभ्रद्वपुर्विक्रियाम् । पादाम्भोरुहधारिवारिधिसुतामक्ष्णां दिदृक्षुः शतैः कायव्यूहमिवाचरन्नुपचिताकूतो हरिः पातु वः ॥ ३० ॥ पाथोधेः परिमथ्यमानसलिलादर्द्धोत्थितायाः श्रियः सानन्दोल्लसितभ्रुवा कुटिलया दृष्ट्यैव पीताननः । अज्ञातस्वकरद्वयीविगलितव्यालोलमन्थोरगशून्ये वाहुगतागतानि रचयन्नारायणः पातु वः ॥३१॥ प्रतिविम्बितप्रियातनु सकौस्तुभं जयति मधुभिदो वक्षः । पुरुषायितमभ्यस्यति लक्ष्मीर्यद्वीक्ष्य मुकुरमिव ॥३२॥ प्रत्यग्रोन्मेषजिह्मा क्षणमनभिमुखी रत्नदीपप्रभाणामात्मव्यापारगुर्वी जनितजललवाजृम्भितैः साङ्गभङ्गैः । नागाङ्कं भोक्तुमिच्छोः शयनमुरुफणाचक्रवालोपधानं निद्राच्छेदाभिताम्रा चिरमवतु हरेर्दृष्टिराकेकरा वः ॥३३॥ भक्तिप्रह्वविलोकनप्रणयिनी नीलोत्पलस्पर्धिनी ध्यानालम्बनतां समाधिनिरतैर्नीते हितप्राप्तये । लावण्यैकमहानिधी रसिकतां लक्ष्मीदृशोस्तन्वती युष्माकं कुरुतां भवार्त्तिशमनं नेत्रे तनुर्वा हरेः ॥ ३४ ॥ भानुर्निशासु भवदंघ्रिमयूखशोभालोभात्प्रताप्य किरणोत्करमाप्रभातम् । तत्रोद्धृते हुतवहात्क्षणलुप्तरागे तापम्भजत्यनुदिनं स हि मन्दतापः ॥ ३५ ॥ भ्राम्यन्मन्दरकन्दरोदरदरीव्यावर्त्तिभिर्वारिधेः कल्लोलैरलमाकुलं कलयतो लक्ष्म्या मुखाम्भोरुहम् । औत्सुक्यात्तरलाः स्मराद्विकसिता भीत्या समाकुञ्चिताः क्रोधेन ज्वलिता मुदा मुकुलिताः शौरेर्दृशः पान्तु वः ॥ ३६ ॥ मन्थक्ष्माधरघूर्णितार्णवपयःपूरान्तरालोल्लसल्लक्ष्मीकन्दलकोमलाङ्गदलनप्रादुर्भवत्सम्भ्रमाः । हर्षोत्कण्टकितत्वचो मधुरिपोर्देवासुराकर्षणव्यापारोपरमाय पान्तु जगतीमाबद्धवीप्सा

मानो लक्ष्मी-नारायणका पारस्परिक प्रेम प्रकट कर रहा हो ॥ २९ ॥ वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें जो पलँगके समान बनाए हुए शेषजीके फणोंके मणियोंमें अपने शरीरकी अनगिनत परछाईं पड़नेसे ऐसे जान पड़ते हैं मानो अपने चरण दाबती हुई समुद्र-पुत्री लक्ष्मीजीको सैकड़ों नेत्रोंसे देखनेकी इच्छासे ही अपने सैकड़ों रूप बनाए हुए हों ॥ ३० ॥ मथे जाते हुए समुद्रके जलसे जैसे ही लक्ष्मीजी आधी बाहर निकलीं तैसे ही अत्यन्त प्रसन्नतासे भौंहें नचाकर तिरछी चितवनसे ही मानो लक्ष्मीजीके मुखको पिए जाते हुए वे भगवान् नारायण आपकी रक्षा करें जिनके दोनों हाथोंसे अनजाने ही मथनी बने हुए चञ्चल नागराज छूट गए और जो आकाशमें ही अपने दोनों हाथोंको ऐसा चलाने लगे मानो समुद्र मथ रहे हों ॥ ३१ ॥ भगवान् विष्णुके उस वक्षःस्थलकी जय हो जिसमें कौस्तुभ मणि पड़ा हुआ है और जो लक्ष्मीजीकी परछाईं पड़नेसे ऐसा जान पड़ता है मानो दर्पणके समान उस वक्षःस्थलमें अपनी परछाईं देखती हुई लक्ष्मीजी विपरीत रतिका अभ्यास कर रही हों ॥ ३२ ॥ शेषनागके बड़े-बड़े फणोंसे घिरी तथा उनकी देहसे बिछी हुई शैयारूपी उनकी गोदमें फिर लेटना चाहते हुए विष्णु भगवान्की वे आँखें सदा आपकी रक्षा करें जो एकाएक खुल जानेसे टेढ़ी-सी हैं, शेषनागके मणियोंकी चमकके कारण जो स्थिर नहीं हो पातीं, अँगड़ाई और जँभाई आनेसे जिनमें तनिक-सा पानी भी भर आया है और जो नींदके टूट जानेसे लाल-लाल होकर पूरी खुल नहीं पातीं ॥ ३३ ॥ अपना कल्याण करने एवं मनोरथ सफल होनेके लिये समाधिमें स्थित लोगोंसे ध्यान किए जाते हुए तथा भक्तिके कारण अत्यन्त नम्र भक्तोंको बड़े स्नेहसे देखनेवाले, अपने साँवलेपनसे नीले कमलोंकी समता करनेवाले, लक्ष्मीजीके नेत्रोंको आनन्दित करनेवाले तथा सुन्दरताके महासागर वे विष्णुजीके दोनों नेत्र या शरीर आपकी सांसारिक बाधाएँ नष्ट करें ॥ ३४ ॥ हे भगवान् ! सूर्य रात्रिमें आपके चरणोंकी किरणोंकी सुन्दरताके लालचसे आपके पास ही विश्राम करके प्रतापयुक्त होकर अग्निसे कुछ ताप ले लिए जानेपर कुछ समयके लिये मन्द होकर पुनः उसी तापसे दिनभर तपता रहता है, वस्तुतः उसमें ताप देनेका सामर्थ्य नहीं है ॥ ३५ ॥ विष्णु भगवान्की वह दृष्टि आपकी रक्षा करे जो समुद्रमें घूमते हुए मन्दराचलकी गुफाओं और खाइयोंसे टकराती हुई बड़ी-बड़ी लहरोंके थपेड़ोंसे व्याकुल लक्ष्मीजीके कमलके समान मुखको देखकर चावसे चञ्चल हो उठी, कामके कारण खिल उठी, 'दूसरेकी कन्या बिना दिए कैसे पाई जा सकती है' यह सोचकर डरसे सिकुड़ गई, क्रोधसे चमक उठी और फिर आनन्दके मारे झेंप गई ॥ ३६ ॥ देवता और असुरोंकी खींचातानी शान्त करनेके लिये कही गई, प्रसन्नतासे रोमाञ्चित देहवाले विष्णुजीकी वे वाणियाँ संसारकी रक्षा करें जो मथनी बने हुए मन्दराचलसे मथे जाते हुए समुद्रके भरे हुए जलके भीतरसे निकली आती हुई लक्ष्मीके

गिरः ॥३७॥ मुग्धे मुञ्च विषादमत्र बलभित्कम्पो गुरुस्त्यज्यतां सद्भावम्भज पुण्डरीकनयने मान्यानिमान्मानय। इत्थं शिक्षयतः स्वयंवरविधौ धन्वन्तरेर्वाक्छलादन्यत्र प्रतिषेधमात्मनि धियं शृण्वन्हरिः पातु वः ॥३८॥ मोहञ्जगत्त्रयभुवामपनेतुमेतदादाय रूपमखिलेश्वरदेहभाजाम्। निस्सीमकान्तिरसनीरधिनाऽमुनैव मोहं प्रवर्धयसि मुग्धविलासिनीनाम् ॥३९॥ यस्योद्दामदिवानिशाकरविलसद्बाहुद्रुमगहनवनच्छेदगोष्ठीकुठारश्चक्रन्निष्क्रान्ततीव्रानलवहलकणाकीर्णधारं विचिन्त्य। जातग्रासावसायो दिवसकृति लसन्मांसलांशुप्रवाहे मुह्यत्यद्यापि राहुः स दहतु दुरितान्याशु दैत्यान्तको वः ॥४०॥ येनोत्थाप्य समूलमन्दरगिरिश्छत्रीकृतो गोकुले राहुर्येन महाबलः सुररिपुः कार्यादशेषीकृतः। कृत्वा त्रीणि पदानि येन वसुधा बद्धो बलिर्लीलया सोऽयं पातु युगे युगे युगपतिस्त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥ ४१ ॥ यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः। अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥ ४२ ॥ रोमावली मुरारेः श्रीवत्सनिवेशिताग्रभागा वः। उन्नालनाभिनलिनच्छायेवोत्तापमपहरतु ॥ ४३ ॥ लक्ष्मीकपोलसंक्रान्तकान्तपत्रलतोज्ज्वलाः। दोर्द्रुमाः पान्तु वः शौरेर्घनच्छाया महाफलाः ॥ ४४ ॥ लक्ष्मीपाणिद्वयविरचितं मूलमूर्धश्रुतीनां व्यक्तं वन्दे चरणकमलद्वन्द्वमाद्यस्य पुंसः। यत्रैकस्य व्यधितबलिनापाद्यतोयैर्वितीर्णैरार्द्रस्यैव प्रणतितरलः क्षालनं पद्मयोनिः ॥ ४५ ॥ लक्ष्मीलालितपादपङ्कजयुगं भोगीन्द्रभोगासनं क्षीरोदार्णवबिन्दुभिः परिपूतं कारुण्यकल्पैः सदा। नाभ्युद्भूतकुशेशयान्तरखि-

---

मांसल और कोमल अङ्गोंके मर्दनकी कल्पनासे लटपटाने लगी थीं और जो लक्ष्मीको प्राप्त करनेकी इच्छासे ही कही जा रही थीं ॥ ३७ ॥ 'हे सुन्दरी! शोच न करो, वह बलका नाश करता है, इतना अधिक न काँपो, हे कमलके समान नेत्रवाली! अपनेमें सुन्दर भाव ले आओ और इन आदरणीय व्यक्तियोंका आदर करो, दूसरे पक्षमें—हे सुन्दरी! शङ्करजीको छोड़ो, इन्द्र, वरुण और बृहस्पतिको भी छोड़ो और कमलके समान नेत्रवाले विष्णु भगवान्‌में सुन्दर भाव रक्खो तथा इन आदरणीय व्यक्तियोंका स्वागत करो।' इस प्रकार स्वयंवरमें धन्वन्तरिने लक्ष्मीको छलभरी वाणीसे अपने वरण करने और दूसरोंको छोड़नेकी भेदभरी शिक्षा दी उसे सुनते हुए विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ३८ ॥ हे सारे संसारके स्वामी विष्णु! तीनों लोकोंके प्राणियोंका मोह दूर करनेके लिये जो आपने सुन्दरता और सुखका यह अपार रूपका समुद्र धारण किया है उससे आप सुन्दरी स्त्रियोंका मोह और भी बढ़ा देते हैं ॥ ३९ ॥ दैत्योंका नाश करनेवाले वे विष्णु भगवान् आपके पापोंको शीघ्र नष्ट कर दें जिनके उस चक्रका स्मरण करके दिनकी रचना करनेवाले और मांसल किरणोंसे भरे सूर्यको मुँहमें दबाकर भी राहु हिचक जाता है जो शत्रुओंकी बाण छोड़नेवाली भुजारूपी वृक्षोंके वनको काटनेके लिये कुल्हाड़ीके समान है तथा अपनी धारसे भयङ्कर आगकी ढेरसी चिनगारियाँ उड़ाता है ॥ ४० ॥ तीनों लोकोंके तथा चारों युगोंके स्वामी वे विष्णु भगवान् प्रत्येक युगमें सबकी रक्षा करें जिन्होंने मन्दर पर्वतको जड़से उखाड़कर उसे गोकुलपर छत्रकी तरह तान दिया, जिन्होंने देवताओंके बड़े बलवान् शत्रु राहुको कुछ भी करने-योग्य न रहने दिया और जिन्होंने पृथ्वीको तीन पगोंमें नापकर बलिको सहज में ही बाँध लिया ॥ ४१ ॥ तीनों लोकोंके स्वामी वे विष्णु भगवान् आपके मनोरथ सफल करें जिन्हें शिवको माननेवाले शिव-रूपमें, वेदान्ती ब्रह्म-रूपमें, बुद्धके माननेवाले बुद्धरूपमें, प्रमाण देनेमें चतुर न्याय शास्त्रवाले कर्त्ताके रूपमें, जैन लोग अर्हत्‌के रूपमें और मीमांसक लोग कर्मके रूपमें मानते हैं ॥ ४२ ॥ भगवान् विष्णुकी वह रोमावली आपके ताप दूर करे जिसके आगे श्रीवत्स चिह्न है और जो नाभिसे निकलकर ऊपर बढ़े हुए कमलकी छायाके समान जान पड़ती है ॥४३॥ श्रीलक्ष्मीजीके कपोलोंपर लिखी सुन्दर कस्तूरीके चिह्नरूपी लतासे संयुक्त विष्णु भगवान्‌के वे भुजा-रूपी वृक्ष आपकी रक्षा करें जो अत्यन्त घनी छाया (आश्रय) वाले तथा अत्यधिक फल देनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ आदिपुरुष विष्णु भगवान्‌के उन दोनों चरणोंको प्रणाम करता हूँ जिन्हें लक्ष्मीजी सदा अपने दोनों हाथोंसे सहलाती रहती हैं, जो दोनों वेदोंके आदि और अन्तके समान हैं और जिनमेंसे एकको जैसे ही बलिने धोया वैसे ही उन्हें प्रणाम करते हुए ब्रह्माजीने भी उस गीले ही पैरको धो लिया ॥ ४५ ॥ सारे संसारकी रचना करनेवाले ब्रह्माको अपनी नाभिसे निकले कमलमेंसे उत्पन्न करके विना कारण ही सारे संसारको आनन्दित करनेवाले उन अनादि, निष्पाप, परमेश्वर मुकुन्दको प्रणाम करता हूँ जिनके दोनों चरणोंकी सेवा लक्ष्मीजी

लसद्धारमुद्भाव्य निर्व्याजं नन्दितविश्वमाद्यमनघं वन्दे मुकुन्दं प्रभुम् ॥ ४६ ॥ वक्षस्थली रक्षतु सा जगन्ति जगत्प्रसूतेर्गरुडध्वजस्य । श्रियोऽङ्गरागेण विभाव्यते या सौभाग्यहेम्नः कषपट्टिकेव ॥ ४७ ॥ विरमति महाकल्पे नाभीपथैकनिकेतनस्त्रिभुवनपुरःशिल्पी यस्य प्रतिक्षणमात्मभूः । किमधिकरणं कीदृक्कस्य व्यवस्थितिरित्यसावुदरमविशच्छ्रष्टुं तस्मै जगन्निधये नमः॥४८॥ वृन्दारका यस्य भवन्ति भृङ्गा मन्दाकिनी यन्मकरन्दबिन्दुः । तवारविन्दाक्ष पदारविन्दं वन्दे चतुर्वर्गचतुष्पदं तत् ॥ ४९ ॥ शरणं भवभीतानां भक्तभव्यार्थभावुकः । भाव्यमानः सुरैरन्तर्विष्णुर्भवतु भूतये ॥ ५० ॥ श्यामं श्रीकुचकुङ्कुमपिञ्जरितमुरो मुरद्विषो जयति । दिनमुखनभ इव कौस्तुभविभाकरो यद्विभूषयति ॥५१॥ श्रीकरपिहितञ्चक्षुः सुखयतु वः पुण्डरीकनयनस्य । जघनमिवेक्षितुमागतमञ्जनिभं नाभिसुषिरेण ॥ ५२ ॥ श्रीधाम्नि दुग्धोदधिपुण्डरीके यश्चञ्चरीकद्युतिमातनोति । नीलोत्पलश्यामलदेहकान्तिः स वोऽस्तु भूत्यै भगवान्मुकुन्दः ॥ ५३ ॥ श्रीराजीवाक्षवक्षःस्थलनिलयरमाहस्तवास्तव्यलोलल्लीलाब्जान्निस्सरन्ती मधुरमधुझरी नाभिपद्मे मुरारेः । अस्तोकं लोकमात्रा द्वियुगमुखशिशोराननेष्वर्प्यमाणं शङ्खप्रान्तेन दिव्यं पय इति विबुधैः शङ्क्यमाना पुनातु ॥ ५४ ॥ श्रेयः सदा दिशतु सालसपक्ष्मपाते निद्रायिते अपि दृशौ भृशमुन्नमय्य । संवाह्यमानचरणाम्बुजजातहर्षो लक्ष्मीमुखेक्षणपरः परमेश्वरो वः ॥ ५५ ॥ सकलभुवनवन्द्योर्वैरमिन्दोः सरोजैरनुचितमिति मत्वा यः स्वपादारविन्दम् । घटयितुमिव मायी योजयत्याननेन्दौ वटदलपुटशायी मङ्गलं वः कृशीष्ट ॥ ५६ ॥

लक्ष्मी— अशेषभुवनामोदमादधानां शुचिस्मिताम् । करुणामधुराकारां लक्ष्मीदेवीमुपास्महे ॥ १ ॥

करती रहती हैं, जो शेषनागके शरीरकी शय्यापर सोते हैं और जो दूधके समुद्रकी बूँदोंसे घिरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो चारों ओरसे दया ही उमड़ रही हो ॥ ४६ ॥ सारे संसारको उत्पन्न करनेवाले गरुड़ध्वज भगवान्‌का वह वक्षःस्थल सारे संसारकी रक्षा करे जो लक्ष्मीके शरीरमें लगे लेपसे रँगकर सौभाग्यरूपी सोनेकी कसौटी-सा जान पड़ता है ॥ ४७ ॥ सारे संसारके श्रेष्ठ सम्पत्ति-रूपी उन भगवान् विष्णुको प्रणाम करता हूँ जिनकी नाभिमें तीनों लोकोंकी सबसे पहले रचना करनेवाले चतुर कारीगर ब्रह्मा सदा महाप्रलयके समय रहते हैं, मानो यह जाननेके लिये ही ब्रह्माजी उनके पेटमें घुस जाते हैं कि इतने बड़े भगवान् किसके सहारे तथा कैसे रहते हैं ॥ ४८ ॥ हे कमलके समान नेत्रवाले भगवान्! मैं आपके उन चरण-कमलोंको प्रणाम करता हूँ जिनमें सब देवता-रूपी भौंरे गुञ्जार करते हैं, गङ्गा ही जिनमें रसरूपसे स्थित हैं तथा जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाले चतुष्पद ही हैं ॥४९॥ वे विष्णु भगवान् सबका कल्याण करें जो संसारसे डरे हुए जीवोंको शरण देनेवाले हैं, जो भक्तकी श्रेष्ठ भावनासे ही प्रसन्न रहते हैं तथा देवता अपने मनमें जिनका ध्यान करते रहते हैं ॥५०॥ मुर राक्षसको मारनेवाले विष्णु भगवान्‌के उस श्याम रङ्गके वक्षःस्थलकी जय हो जो लक्ष्मीजीके स्तनोंपर लगे कुङ्कुमके लेपसे रँग गया है और जिसे कौस्तुभ मणिकी किरणें ऐसे चमकाती हैं जैसे नीले आकाशको सूर्य चमका देता है ॥५१॥ कमलके समान नेत्रवाले विष्णु भगवान्‌के लक्ष्मीजीके हाथोंसे मूँदे गए उस नेत्रकी जय हो जो मानो जघनको देखनेके लिये नाभिके छेदसे कमलके रूपमें प्रकट हुआ है ॥ ५२ ॥ दूधके समुद्रमें खिले लक्ष्मीरूपी कमलसे जो भौंरोंके समान प्रेम आचरण करते हैं तथा नीले कमलकी भाँति जो नीले रङ्गवाले हैं वे भगवान् मुकुन्द आपका कल्याण करें ॥५३॥ कमलके समान नेत्रवाले विष्णु भगवान्‌के वक्षःस्थलपर रक्खे हुए लक्ष्मीजीके हाथके खेलके कमलके हिलनेसे नाभिके कमलपर झड़कर गिरती हुई वह रसकी धारा सबको पवित्र करे जिसे देखकर देवताओंको यह शङ्का हो गई कि जगज्जननी लक्ष्मीजी किसी आठ मुँहवाले बच्चेको, शङ्खमें भरकर स्वर्गीय दूध पिला रही हैं ॥ ५४ ॥ लक्ष्मीजीके चरण दाबनेसे जिन्हें बड़ा आनन्द मिल रहा है ऐसे वे विष्णु भगवान् सदा आपको ऐश्वर्य दें जो नींदके बोझसे दबे हुए उनींदे नेत्रोंको भी बलपूर्वक खोलकर लक्ष्मीजीका मुँह देखते रहते हैं ॥५५॥ सारे संसारको प्रिय लगनेवाले चन्द्रमाका कमलोंसे वैर होना अनुचित जानकर उस वैरको मेल-मिलापसे नष्ट कर देनेके लिये ही मानो जो अपने चरण-कमलका मुखचन्द्रसे संयोग कराते रहते हैं (अँगूठा चूसते रहते हैं) ऐसे वे वटके पत्तेपर सोनेवाले भगवान् आपको आनन्द दें ॥ ५६ ॥

लक्ष्मी : सारे संसारको सुख देनेवाली, पवित्र मुस्कानवाली, दयामयी तथा मधुर रूपवाली लक्ष्मी देवीकी हम उपासना करते हैं ॥१॥ स्वयंवरके समय जब भाट (धन्वन्तरि) एक-एकका परिचय

आख्याते हसितं पितामह इति त्रस्तङ्कपालीति च व्यावृत्तं गुरुरित्ययं दहन इत्याविष्कृता भीरुता। पौलोमीपतिरित्यसूयितमथ व्रीडाविनम्रश्रिया पायाद्वः पुरुषोत्तमोऽयमिति यो न्यस्तः स पुष्पाञ्जलिः ॥ २ ॥ उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुरगपतौ पाणिनैकेन कृत्वा धृत्वा चान्येन वासो विगलितकवरीभारमंसे वहन्त्याः। भूयस्तत्कालकान्तिद्विगुणितसुरतप्रीतिना शौरिणा वः शय्यामालिङ्ग्य नीतं वपुरलसलसद्बाहु लक्ष्म्याः पुनातु ॥ ३ ॥ उत्तुङ्गस्तनमण्डलोपरि लसत्प्रालम्बमुक्तामणेरन्तर्विम्बितमिन्द्रनीलनिकरच्छायानुकारि द्युतिः। लज्जाव्याजमुपेत्य नम्रवदना स्पष्टं मुरारेर्वपुः पश्यन्ती मुदिता मुदेऽस्तु भवतां लक्ष्मीर्विवाहोत्सवे ॥ ४ ॥ कमलासनकमलेक्षणकमलारिकिरीटकमलभृद्वाहैः। नुतपदकमलाकमला करधृतकमला करोतु मे कमलम् ॥५॥ किञ्जल्कराजिरिव नीलसरोजलग्ना लेखेव काञ्चनमयी निकषोपलस्था। सौदामिनी जलदमण्डलगामिनीव पायादुरःस्थलगता कमला मुरारेः ॥ ६ ॥ क्रीडाभिन्नहिरण्यशुक्तिकुहरे रक्तात्मनावस्थितान्हारं हारमुदारकुङ्कुमरसान्व्याजभव्यान्नखैः। वीरश्रीकुचकुम्भसीम्नि लिखतो वीरस्य पत्रावलीस्तत्कालोचितभावबन्धमधुरं मन्दस्मितं पातु वः ॥ ७ ॥ जयन्ति जगतां मातुः स्तनकुङ्कुमबिन्दवः। मुकुन्दाश्लेषसंक्रान्तकौस्तुभश्रीविडम्बिनः ॥ ८ ॥ तल्पीकृताहिरगणितगरुडो हाराभिहतविधिर्जयति। फणशतपीतश्वासो रागान्धायाः श्रियः केलिः ॥ ९ ॥ दन्तैः कोरकिता स्मितैर्विकसिता भ्रूविभ्रमैः पत्त्रिता दोर्भ्यां पल्लविता नखैः कुसुमिता लीलाभिरुद्वेलिता। उत्तुङ्गस्तनमण्डलेन फलिता भक्ताभिलाषे हिता काचित्कल्पलता

देने लगे उस समय लक्ष्मीजी ब्रह्माजीको देखकर हँस पड़ीं, शिवजीको देखकर सहम गईं, बृहस्पतिजीको देखकर सङ्कुचित हो गईं, अग्निदेवको देखकर डर गईं, इन्द्राणीके पति इन्द्रको देखकर उन्हें कुछ ईर्ष्या हुई तथा पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको जब देखा तो लजाकर प्रसन्नतासे सिर नीचा करके उन्होंने फूलोंकी जो अञ्जलि विष्णुजीपर धीरेसे छोड़ दी वह आपकी रक्षा करे ॥ २ ॥ रतिके पश्चात् अपनी देहके भारको एक हाथसे शेषनागकी शैयापर रखकर उठती हुई तथा दूसरे हाथसे अपने खुले हुए वस्त्रोंको सँभालती हुई उन लक्ष्मीजीका शरीर आपको पवित्र करे जिनके सिरका जूड़ा खुलकर कन्धोंपर बिखर गया था और फिर उसी क्षण रतिके लिये दुगुने चाव और सुन्दरताके साथ भगवान् विष्णुने आलससे शिथिल बाँहोंवाले जिस शरीरका आलिङ्गन करके उसे अपनी शैयापर खींच लिया था ॥ ३ ॥ विवाहके समय अपने ऊँचे-ऊँचे स्तनोंपर लटकती हुई मालाके मोतियों और मणियोंमें भगवान् विष्णुके नीले कमलोंकी कान्तिके समान सुन्दर नीली कान्तिवाले शरीरकी पड़ती हुई परछाईंको लज्जाके बहाने सिर नीचा करके ध्यानसे देखकर प्रसन्न होती हुई वे लक्ष्मीजी आपको सुख दें ॥ ४ ॥ कमलमें रहनेवाले ब्रह्मा, कमलके समान नेत्रवाले विष्णु और कमलके शत्रु चन्द्रमाका मुकुट पहननेवाले शिव तथा कमलको धारण करनेवाले ऐरावत हाथीके वाहनवाले इन्द्र आदि जिनके चरण-कमलोंको प्रणाम करते हैं तथा जो कमलको धारण किए रहती हैं, ऐसी लक्ष्मीजी मेरा कल्याण करें ॥ ५ ॥ नीले रङ्गवाले विष्णुजीके वक्षःस्थलपर लेटी वे पीले रङ्गवाली लक्ष्मीजी रक्षा करें जो नीले कमलपर लगे हुए पराग-सी, कसौटीपर लगी सोनेकी लकीर-सी तथा मेघोंके बीचमें चमकती हुई बिजली-सी जान पड़ती हैं ॥६॥ खिलवाड़में ही फाड़ डाले हुए हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलरूपी सीपीमें भरे हुए रक्तरूपी केशरके रसको स्वभावसे ही सुन्दर नखरूपी तूलिकाओंसे निकाल-निकालकर लक्ष्मीजीके वीर (पुष्ट) स्तनोंपर चित्रकारी करते हुए वीर (गरुड़की सवारीवाले या शूर) नृसिंहजीकी उस समयके भावसे अधिक सुन्दर मन्द मुस्कान आपकी रक्षा करे। भाव यह था कि हिरण्यकशिपु जैसे महापराक्रमीके वक्षःस्थलको भी फाड़ डालनेवाले मेरे ये कठोर और वीर नख जिन स्तनोंका वाध्य होकर आदर करते हैं उनकी कठोरता तथा वीरताकी क्या सीमा हो सकती है ॥ ७ ॥ जगन्माता श्रीलक्ष्मीजीके स्तनोंपर लगी हुई कुङ्कुमकी उन बूँदोंकी जय हो जो विष्णुजीके आलिङ्गन करते समय कौस्तुभ मणिके समान शोभित होती हैं ॥ ८ ॥ कामके मदसे अत्यन्त मतवाली होकर की जानेवाली लक्ष्मीजीकी उस क्रीड़ाकी जय हो जिसमें शेषनागको शय्या बना लिया गया, जिसमें गरुड़की कोई आड़ न की गई, हारकी झकझोरसे ब्रह्माको भी चोट लगती गई और जिसमें वेगसे निकली साँसोंको शेषनाग अपने सैकड़ों फणोंसे पीते चले गए॥९॥ देवताओं और असुरोंसे प्रणाम की जाती हुई कल्प-वृक्षकी लताके समान वे समुद्रकी पुत्री लक्ष्मीजी रक्षा करें जिनके दाँत लताकी कलियोंके समान हैं, जिनकी मुस्कान ही उस लताका खिलना है, भौंहें कोंपलें हैं,

सुरासुरनुता पायात्सुधाब्धेः सुता ॥ १० ॥ दरिद्रतोन्मूलनकर्मदक्षा प्रत्यक्षसिद्धेश्वरतानिदानम्। सम्पद्विधात्री करुणानिधात्री धात्रीव सा सौख्यपदस्य दात्री ॥ ११ ॥ देवेऽर्पितवरणस्रजि बहुमाये वहति कैटभीरूपम्। जयति सुरासुरहसिता लज्जाजिह्मेक्षणा लक्ष्मीः ॥ १२ ॥ पद्मायाः स्तनहेमसद्मनि मणिश्रेणीसमाकर्षके किञ्चित्कञ्चुकसन्धिसन्निधिगते शौरेः करे तस्करे। सद्यो जागृहि जागृहीति वलयध्वानैर्ध्रुवं गर्जता कामेन प्रतिवोधिताः प्रहरिका रोमाङ्कुराः पान्तु वः ॥ १३ ॥ पयोधिसम्भूततया समन्ताद्दुग्धस्य विन्दूनिव गात्रलग्नान्। लावण्यसन्तानमिषेण विष्वग्विभावयन्ती भवताद्विभूत्यै ॥ १४ ॥ पायात्पयोधिदुहितुः कपोलामलचन्द्रमाः। यत्र संक्रान्तविम्बेन हरिणा हरिणायितम् ॥ १५ ॥ पीनश्रोणि गभीरनाभि निभृतं भूभृद्वृशोच्चस्तनं पायाद्वः परिरब्धमब्धदुहितुः कान्तेन कान्तं वपुः। स्वावासानुपघातनिर्वृतमनास्तत्कालमीलद्दृशे यस्मै सोऽच्युतनाभिपद्मवसतिर्वेधाः श्रियं ध्यायति ॥ १६ ॥ मनाक्प्रपन्नेऽपि कृपाकटाक्षे यस्याः कृतार्था सकलाश्चिराय। सा निर्मलाऽऽसेचनकस्वरूपा पायादपायात् कमलासना माम् ॥ १७ ॥ यादृग्जानासि जाम्बूनदगिरिशिखरे कान्तिरिन्दोः कलानामित्यौत्सुक्येन पत्यौ स्मितमधुरमुखाम्भोरुहं भाषमाणे। लीलादोलायमानश्रुतिकमलमिलद्भृङ्गसङ्गीतसाक्षी पायादम्भोधिजायाः कुसुमशरकलानाट्यनान्दीनकारः ॥ १८ ॥ राजाधिराजस्य सखापि नग्नोऽनुपेत्य यां भ्राम्यति भिक्षमाणः। उपेतवान् हन्त जनार्दनोऽपि शेतेऽस्तचिन्तं मम सा श्रिये श्रीः ॥ १९ ॥ लोकेषु लोकोत्तरतानिधाननिदानभूता विभवाधिदेवी। मन्दाररूपा नमताञ्जनानान्न कस्य वन्द्या विबुधस्य लक्ष्मीः ॥ २० ॥ सहोदरत्वं प्रतिपद्य यस्याः स्फुरत्कलङ्कोऽपि मतो द्विजेशः। सम-

---

भुजाएँ कोमल पत्ते हैं, नख फूल हैं, हाव-भाव लताका हिलना है, ऊँचे-ऊँचे स्तन जिसके फल हैं और जो भक्तोंकी इच्छाओंके लिये हितकारिणी हैं ॥ १० ॥ दरिद्रताका नाश करनेमें चतुर, ऐश्वर्य और सिद्धियोंको उत्पन्न करनेवाली, सम्पत्तियोंकी रचना करनेवाली तथा दयाकी खान लक्ष्मीजी माताके समान सुख देनेवाली हैं ॥ ११ ॥ स्वयंवरमें जयमाला पहनाते समय बड़े मायावी विष्णु भगवान्‌ने जब कैटभीका रूप धारण कर लिया उस समय देवताओं और दैत्योंके हँस पड़नेसे लजाकर तिरछी चितवन कर लेनेवाली लक्ष्मीजीकी जय हो ॥ १२ ॥ मणि आदिसे घिरे हुए लक्ष्मीजीके स्तनरूपी सोनेके घरमें चोलीकी तनिकसी सन्धिसे विष्णुजीके चोररूपी हाथके घुसनेपर तुरन्त ही हाथके कङ्गनोंके 'जागो ! जागो !!' इस प्रकार चिल्लाते ही कामके द्वारा जगाए गए रोमाञ्च रूपी रखवाले आपकी रक्षा करें ॥ १३ ॥ दूधके समुद्रसे उत्पन्न होनेके कारण देहमें लगी दूधकी बूँदोंको सुन्दरताके कणोंकी भाँति चारों ओर चमकाती हुई लक्ष्मीजी कल्याण करनेवाली हों ॥ १४ ॥ समुद्रकी पुत्री लक्ष्मीजीका स्वच्छ चन्द्रमाके समान वह कपोल रक्षा करे जिसमें पड़ती हुई विष्णुजीकी परछाईं हिरण-सी जान पड़ती है ॥ १५ ॥ प्रियतमसे आलिङ्गन किया हुआ वह पुष्ट नितम्बवाला, गहरी नाभिवाला तथा पर्वताकार ऊँचे स्तनोंवाला समुद्र-पुत्री लक्ष्मीजीका सुन्दर शरीर आपकी रक्षा करे, जिसका विष्णुजीकी नाभिसे निकले कमलमें रहनेवाले ब्रह्माने अपने निवास-स्थानके सकुशल बच जानेपर स्वस्थचित्त होकर नेत्र बन्द करके ध्यान किया था ॥ १६ ॥ जिनकी तनिक-सी कृपामयी तिरछी चितवन पड़ते ही सब लोग सदाके लिये सन्तुष्ट (निहाल) हो जाते हैं और जिनके स्वच्छ स्वरूपको देखते रहनेपर भी मन नहीं भरता, वे कमलपर बैठी हुई लक्ष्मीजी सदा मेरी रक्षा करें ॥ १७ ॥ लक्ष्मीजीके सुमेरु पर्वत जैसे गोरे एवं ऊँचे स्तनोंसे ऊपर उनके मुखचन्द्रकी शोभाको देखकर मुस्कराते हुए मुखकमलवाले लक्ष्मीपति विष्णुजीने लक्ष्मीजीसे पूछा—'तुम जानती हो, सुमेरु पर्वतकी चोटीके ऊपर खिले हुए चन्द्रमाकी कलाओंकी कैसी शोभा होती है ?' इसके उत्तरमें 'नहीं' कहनेके लिये जो लक्ष्मीजीने सिर हिलाया, उससे उनके कानोंके कमलोंपर मँड़राते भौंरोंकी गुञ्जार सुनकर ऐसा जान पड़ा मानो कामदेवकी कला (रति) रूपी नाटकके पूर्व भौंरोंके गुञ्जाररूपी सङ्गीतके साथ लक्ष्मीजीने सिर हिलाकर नान्दी (नाटकका प्रारम्भ) किया हो। लक्ष्मीजीका यह नान्दी कार्य रक्षा करे ॥ १८ ॥ कुबेरके मित्र होते हुए भी शिवजी जिन्हें न पानेके कारण भीख माँगते फिरते हैं और खेद है कि जिन्हें पाकर विष्णु निश्चिन्त होकर सोते ही रहते हैं, ऐसी लक्ष्मीजी मेरा कल्याण करें ॥ १९ ॥ संसारमें अत्यधिक ऐश्वर्यको जन्म देनेवाली, ऐश्वर्योंकी स्वामिनी देवी तथा प्रणाम करनेवालोंके लिये कल्पवृक्षके समान लक्ष्मी देवीको कौन देवता प्रणाम नहीं करेगा ॥ २० ॥

स्तत्साग्दुगयविधानदक्षा सदा शरण्या मम सास्तु लक्ष्मीः ॥ २१ ॥ स्मेराननेन हरिणा सस्पृहमाकारवेदिनाकलितम् । जयति पुरुषायितायाः कमलायाः कैटभीध्यानम् ॥ २२ ॥ स्वपादपीठं विनमत्सु सत्सु स्मितच्छलेन श्रियमादधाना । पद्मासना पद्मभवादिवन्द्या सा मे शरण्या विभवाय पद्मा ॥ २३ ॥ हिरण्यकान्तापि निजस्मिताभावितानसम्बन्धमुपेत्य शुभ्रा । अवद्यजातं निपुणा निहन्तु सदा शरण्यास्तु महेश्वरी सा ॥ २४ ॥

शङ्खः—पायात्स वः कुमुदकुन्दमृणालगौरः शङ्खो हरेः करतलाम्बरपूर्णचन्द्रः । नादेन यस्य सुरशत्रुविलासिनीनाङ्काञ्च्यो भवन्ति शिथिला जघनस्थलीषु ॥ १ ॥ भिन्दन्नरातिहृदयानि हरेः पुनातु निःश्वासवातमुखरीकृतकोटरो वः । संक्रान्तकुक्षिकुहरासप्तसिन्धुसङ्घट्टघोरतरघोष इवाशु शङ्खः ॥ २ ॥

चक्रम्—उद्वृत्तदैत्यपृतनापतिकण्ठपीठच्छेदोच्छलद्बहलशोणितशोणधारम् । चक्रं क्रियादभिमतानि हरेरुदारदिग्दाहदारुणनभः श्रियमुद्वहद्वः ॥ १ ॥ दृष्टस्य यस्य हरिणा रणमूर्ध्नि मूर्त्तिरुद्भूतदुःसहमहःप्रसरा समन्तात् । तल्लोचनस्थितरविप्रतिबिम्बगर्भेवाभाति चक्रमरिचक्रनुदेऽस्तु तद्वः ॥ २ ॥

शेषः—ब्रह्माण्डकुम्भकारं भुजगाकारञ्जनार्दनन्नौमि । स्फारे यत्फणचक्रे धरा शरावश्रियं वहति ॥ १ ॥

गरुडः—सौवर्णाङ्कितपत्रमारुतहृताहिव्रातकान्ताकुचस्फूर्जन्मौक्तिकभूषणः खगपतिः पूर्णेन्दुबिम्बाननः । पद्माधीश्वरपादपद्मयुगलस्पर्शामलाङ्गानतः पायाद्वो विनतासुतो हरिकृपालोकैकपात्रीकृतः ॥ १ ॥

समुद्रः—आयान्ति यत्र निवसन्ति चिराय चेमं

जिनका सगा भाई होनेके नाते स्पष्ट कलङ्कवाला चन्द्रमा भी आदरणीय हो गया, वे सब सद्गुण रचनेमें चतुर लक्ष्मीजी सदा मुझे अपनी शरणमें रक्खें ॥२१॥ पुरुषकी भाँति आचरण करनेवाली लक्ष्मीजी द्वारा किए जाते हुए उस कैटभी-रूपके ध्यानकी जय हो जिसे सुन्दर मुखवाले विष्णु भगवान् बड़े चावसे लक्ष्मीजीका मुख देखते ही समझ गए ॥२२॥ अपने पैरोंमें नम्र होकर प्रणाम करनेवालोंको मुस्कराहट-मात्रसे सुख-सम्पत्ति देनेवाली, कमलपर बैठी हुई, सबको शरण देनेवाली तथा ब्रह्मा आदि देवताओंसे प्रणाम की जाती हुई वे लक्ष्मीजी मुझे ऐश्वर्य दें ॥२३॥ सोनेके समान कान्तिवाली होती हुई भी अपनी मुस्कराहटकी घनी कान्तिसे घिरकर उजले रूपवाली तथा सारे पाप-समूहको नष्ट करनेमें चतुर वे सबसे बड़ी स्वामिनी लक्ष्मीजी सदा शरण दें ॥ २४ ॥

शङ्ख : चन्द्रमा, कुन्दके फूल और कमलके डोरोंकी भाँति उजले रङ्गवाला तथा हथेली रूपी आकाशमें पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति रहनेवाला विष्णु भगवान्का वह शङ्ख आपकी रक्षा करे जिसके गम्भीर शब्दको सुनकर देवताओंके शत्रु राक्षसोंकी स्त्रियोंकी करधनियाँ डरके मारे सरककर जघन-स्थलमें आ जाती हैं ॥ १ ॥ (फूँकनेसे) जिसके खोखलेमें ऐसा शब्द होने लगता है जो शत्रुओंके हृदयोंको फाड़ डालता है, वह विष्णुजीका शङ्ख आप सबको पवित्र करे जो ऐसा जान पड़ता है मानो मुँहसे निकले पवनके वेगसे उसके खोखलेमें भरे सातों समुद्रोंके अंशमें टक्कर हो जानेसे ही उसमेंसे इतनी गम्भीर ध्वनि निकल पड़ती है ॥ २ ॥

चक्र : दैत्योंके सेनापतिका गला काटनेसे बहुत वेगसे बहे हुए रक्तसे रँगी हुई धारवाला तथा ऊपरको बढे हुए आरोंवाला वह विष्णु भगवान्का चक्र आपकी इच्छाएँ पूर्ण करे जो दसों दिशाओंमें आग लग जानेपर आकाशके समान अत्यन्त भयङ्कर दिखाई पड़ता है ॥ १ ॥ भगवान् विष्णुका वह चक्र आपके शत्रुओंका नाश करे जो युद्धस्थलमें विष्णुजीके देख लेने-मात्रसे असहनीय तेजवाला हो जाता है और जो उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो भगवान् विष्णुके नेत्रमें स्थित सूर्यकी चमचमाती हुई परछाईं हो ॥ २ ॥

शेष : ब्रह्माण्ड रूपी घड़ेकी रचना करनेवाले, नागके आकारवाले उन जनार्दन भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ जिनके फणके ऊपर रक्खी हुई यह पृथ्वी परईके समान जान पड़ती है ॥ १ ॥

गरुड : लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके दोनों चरण-कमलोंके छू जानेसे अत्यन्त निर्मल अङ्गवाले, झुककर प्रणाम करते हुए, संसार-भरमें भगवान्की कृपाके सबसे बड़े अधिकारी, विनताके पुत्र तथा पूर्ण चन्द्रमाके समान मुँहवाले वे पक्षियोंके स्वामी गरुड़जी आपकी रक्षा करें जो सोनेसे सजे अपने पङ्खोंके पवनके वेगसे खिंचे हुए नागोंकी स्त्रियोंके स्तनोंकी मोतियोंसे सजे हुए हैं ॥ १ ॥

समुद्र : ये असंख्य नदियाँ सदाके लिये जहाँ आकर

निर्यान्ति चैवममिताः सरितो यतोऽमी। देवैर्हृतेषु बहुलेषु मणिष्वपीभ्यो यः पूर्ववत्स जयतादमृतैकभूमिः ॥१॥ वत्से मा गा विषादं श्वसनमुरुजवं सन्त्यजोर्ध्वप्रवृत्तं कम्पः को वा गुरुस्ते किमिह बलभिदा जृम्भितेनात्र याहि। प्रत्याख्यानं सुराणामिति भयशमनच्छद्मना कारयित्वा यस्मै लक्ष्मीमदाद्वः स दहतु दुरितं मन्थमुग्धः पयोधिः ॥ २ ॥

दशावताराः

पाठीनः कमठः किटिर्नरहरिः खर्वाकृतिर्भार्गवो रामः कंसनिषूदनो दशबलः कल्की च नारायणः। युष्माकं स विभूतयेऽस्तु भगवान्सेतुर्भवाम्भोनिधावुत्ताराय युगे युगे युगपतिस्त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥ १ ॥ यस्यालीयत शल्कसीम्नि जलधिः पृष्ठे जगन्मण्डलं दंष्ट्रायां धरणी नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी। क्रोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो ध्याने विश्वमसावधार्मिककुलं कस्मैचिदस्मै नमः ॥२॥ वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते। पौलस्त्यञ्जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥३॥ वेदा येन समुद्धृता वसुमती पृष्ठे धृताप्युद्धृता दैत्येशो नखरैर्हतः फणिपतेर्लोकं बलिर्प्रापितः। क्ष्माऽक्षत्रा जगती दशास्यरहिता माता कृता रोहिणी हिंसा दोषवती धराप्ययवना पायात्स नारायणः ॥ ४ ॥ वेदोद्धारकृते गिरिं धृतवते पृथ्वीतलोद्धारिणे दैत्योरःस्थलदारकाय ददते त्रैलोक्यराज्यं सरान्। राजन्यान्वयशत्रवे हतवते रक्षोऽर्कजां कर्षते कारुण्यं दधते कृतं भृतवते भूयो नमः शार्ङ्गिणे ॥ ५ ॥

निवास करती हैं और इच्छानुसार जहाँसे निकलकर चली जाती हैं तथा देवताओं-द्वारा मणियोंके बार-बार निकाले जानेपर भी जिसमें तनिक भी कमी नहीं आती उस अमृतको जन्म देनेवाले समुद्रकी जय हो ॥ १ ॥ 'हे बेटी ! शोक न करो, अत्यन्त वेगसे चलते हुए ऊर्ध्वश्वासको छोड़ दो, यह तुम बड़े वेगसे काँप क्यों रही हो ? अरे, बलका नाश करनेवाली यह जँभाई क्यों लेती हो ? यहाँ आओ।' दूसरे पक्षमें—'हे बेटी ! विषभक्षी (शिव) के पास न जाओ, अत्यन्त वेगवान्, ऊपरतक बढ़े हुए इस पवनको भी छोड़ दो, ये गुरु अथवा वरुण भी तुम्हारे कौन हैं ? कोई नहीं, इन अँगड़ाते हुए इन्द्रसे भी क्या सम्बन्ध है ? यहाँ विष्णुके पास आओ, इस प्रकार डर छुड़ानेके बहाने दूसरे देवताओंका वरण करनेसे रोकते हुए वे भगवान् विष्णुको लक्ष्मीका दान करनेवाले तथा मथनेसे थके हुए समुद्र पापोंका नाश करें ॥ २ ॥

दशावतार : तीनों लोकों और युगोंके स्वामी वे विष्णु भगवान् आपका कल्याण करें जो मछली, कछुआ, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्की और नारायण आदि वेषोंसे प्रत्येक युगमें संसार-समुद्रसे जीवोंको पार उतारनेके लिये सेतु हैं ॥ १ ॥ मत्स्यवेषसे जिन भगवान्ने अपनी खालमें सारा समुद्र समा लिया, कछुआ-वेषसे जिन्होंने अपनी पीठपर सारे संसारका भार रक्खा, वराह-वेषसे जिन्होंने अपनी डाढ़ोंमें पृथ्वीको लटका लिया, नृसिंह-वेषसे जिन्होंने अपने नखोंसे दैत्योंके स्वामी हिरण्यकशिपुको फाड़ डाला, वामन-वेषसे जिन्होंने अपने पैरोंमें सारे आकाश-पृथ्वीको समा लिया, परशुराम-वेषसे जिनके क्रोधमें सब क्षत्रिय जल मरे, राम-वेषवाले जिन्होंने अपने बाणसे रावणको मार डाला, कृष्ण-वेषमें जिन्होंने अपने पैरसे प्रलम्बासुरको मार डाला तथा कल्कि-वेषसे जिन्होंने अपने खड्गसे सारे अधर्मी संसारका नाश कर दिया, ऐसे उस किसी परमात्माको प्रणाम है ॥२॥ मत्स्यरूपसे वेदोंकी रक्षा करनेवाले, कच्छपरूपसे संसारका भार सँभालनेवाले, वराहरूपसे पृथ्वीको उठा लानेवाले, नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुको मारनेवाले, वामनरूपसे बलिको छलनेवाले, परशुराम-रूपसे क्षत्रियोंका नाश करनेवाले, रामरूपसे रावणको जीतनेवाले, बलभद्र-रूपसे हल चलानेवाले, बुद्ध-रूपसे सबपर दया करनेवाले और कल्किरूपसे सब म्लेच्छोंको दण्ड देनेवाले हे कृष्ण भगवान् ! आपको प्रणाम है ॥ ३ ॥ वेदोंकी रक्षा करनेवाले, पृथ्वीको पीठपर धारण करके उसकी रक्षा करनेवाले, दैत्योंके स्वामीको नखोंसे मारनेवाले, बलिको पाताल भेजनेवाले, पृथ्वीको क्षत्रिय-रहित कर देनेवाले, रावणको पृथ्वीसे नष्ट करनेवाले, रोहिणीको माता बनानेवाले, 'प्राणियोंको कष्ट देना महापाप है' यह बतानेवाले तथा पृथ्वी-भरके यवनोंका नाश करनेवाले, वे भगवान् नारायण आपकी रक्षा करें ॥ ४ ॥ वेदोंका उद्धार करनेवाले, पर्वतको धारण करनेवाले, पृथ्वीकी रक्षा करनेवाले, दैत्यकी छाती फाड़नेवाले, तीनों लोकोंका राज्य देवताओंको देनेवाले, क्षत्रिय-कुलका नाश करनेवाले, रावण राक्षसको मारनेवाले, यमुनाको खींचनेवाले, दया धारण करनेवाले तथा कलियुगमें सतयुग ले आनेवाले उन विष्णुको बार-बार प्रणाम है ॥ ५ ॥

मत्स्यः—आदिमत्स्यस्स जयताद्यः श्वासोल्लासितैर्जलैः। विदधे गगनेऽम्भोधिं गगनञ्च महोदधौ ॥ १ ॥ चन्द्रादित्योरुनेत्रः कमलभवभवस्फारपृष्ठप्रतिष्ठो भास्वत्कालाग्निजिह्वः पृथुलगलगुहादृष्टनिःशेषविश्वः। अद्भिः पुच्छोत्थिताभिश्चकितसुरवधूनेत्रसञ्चालिताभिर्मत्स्यश्छिन्नाब्धिवेलं गगनतलमलं क्षालयन्वः पुनातु ॥२॥ जीयासुः शकुलाकृतेर्भगवतः पुच्छच्छटाच्छोटनादुद्यन्तः शतचन्द्रितास्वरतलं ते बिन्दवः सैन्धवाः। यैर्व्यावृत्य पतद्भिरौर्वशिखिनस्तेजोजटालं वपुः पानाध्मानवशादरोचकरुजां चक्रे चिरायास्पदम् ॥ ३ ॥ जृम्भाविस्तृतवक्त्रपङ्कजविधेर्हृत्वा श्रुतीः सागरे लीनं त्रस्तसमस्तनक्रनिकरं शङ्खं जघानाजिरे। पुच्छोत्क्षिप्तजलोत्करैः प्रतिदिशं सन्तर्प्य यो वै धरां पायाद्वः स मृणालकोमलतनुर्मीनाभिधानो हरिः॥ ४ ॥ दिङ्मूढं तं सुरारिं किल शितदशनैः पीड्यमानं रटन्तं हत्वा तीरे पयोधेः करतलकलितं पूरयामास शङ्खम्। नादेनाक्षोभ्य विश्वं प्रमुदितविबुधं त्रस्तदैत्यं स देवैर्दत्तार्घः पद्मयोनेः प्रहसितवदनः पातु वो दत्तवेदः ॥ ५ ॥ दिश्याद्वः शकुलाकृतिः स भगवान्नैःश्रेयसीं सम्पदं यस्य स्फूर्जदतुच्छपुच्छशिखरप्रेङ्खोलनक्रीडनैः। विश्वग्वार्धिसमुच्छलज्जलभरैर्मन्दाकिनीसङ्गतैर्गङ्गासागरसङ्गमप्रणयिनी जाता विहायःस्थली ॥६॥ पुच्छश्चेदहमुन्नयाम्यनवधिस्तुच्छो भवेदम्बुधिः क्रीडाश्चेत्कलये मनागपि जले पीडा परं यादसाम्। निष्पन्दो भृशमामृशन्निति भरब्रह्माण्डभाण्डक्षयक्षोभाकुञ्चितवेष एष भगवान्प्रीणातु मीनाकृतिः ॥ ७ ॥ मग्ने मेरौ प्रतति तपने तोयबिन्दावितिन्दावन्तर्लीने जलधिसलिले व्याकुले देवलोके। मात्स्यं रूपं मुखपुटतटाकृष्टनिर्मुक्तवार्धि श्रीकान्तस्य स्थलजलगतं वेत्यलक्ष्यं पुनातु ॥ ८ ॥ मायामीनतनोस्तनोतु भवतां पुण्यानि पङ्कस्थितिः पुच्छा-

---

मत्स्य : उन सबसे प्रथम मछली रूपवाले भगवान्की जय हो जिन्होंने अपनी साँसोंसे जल उछालकर आकाशमें समुद्र और समुद्रमें आकाश रच डाला ॥ १ ॥ चन्द्रमा और सूर्यरूपी बड़े-बड़े नेत्रवाले, ब्रह्माजीसे उत्पन्न इतने बड़े ब्रह्माण्डको अपनी पीठपर रखनेवाले, प्रलयकालके अग्निके समान लपलपाती जीभवाले, अत्यन्त मोटे गलेकी सन्धिसे सारे संसारको देखनेवाले तथा अपनी पूँछसे उछाले गए और देवताओंकी स्त्रियों-द्वारा अचरजसे देखे गए जलसे समुद्रकी मर्यादा तोड़कर आकाशका मैल धोते हुए-से वे मत्स्यरूपी भगवान् आपको पवित्र करें ॥ २ ॥ मत्स्य-रूपधारी भगवान्की पूँछकी फटकारसे उड़कर आकाशमें सैकड़ों चन्द्रमाकी भाँति जान पड़नेवाली उन समुद्रकी बूँदोंकी जय हो जिन्होंने आकाशसे गिरकर अत्यन्त तेजवाले बड़वानलको सदाके लिये 'अधिक पानी पीनेसे उत्पन्न अरुचि' रोगका रोगी बना दिया ॥ ३ ॥ जँभाई लेते समय मुँहके फैलते ही वेदोंको चुराकर समुद्रमें छिपे हुए तथा घड़ियाल आदि सब जलचरोंको डरानेवाले शङ्खासुरको युद्धमें जिसने मार डाला और अपनी पूँछसे जल उछालकर सब दिशाओंको सींचकर पृथ्वीको बचा लिया वे कमलकी जड़के समान कोमल देहवाले मत्स्य-रूपवाले भगवान् आपकी रक्षा करें ॥४॥ देवताओंके शत्रु शङ्खासुरको अपने पैने दाँतोंसे पकड़कर, अत्यन्त व्याकुल होकर चिल्लाते हुए ही उसे समुद्रके तीरपर लाकर, हाथोंसे पकड़कर जिसने बड़े वेगसे फूँककर बजा डाला, जिसके गम्भीर नादसे संसार व्याकुल हो उठा, देवता प्रसन्न हो गए, सब दैत्य डर गए, सब देवता प्रसन्न होकर अर्घ्य देने लगे और ब्रह्माजी वेदोंको पाकर जिन्हें देखकर हँस पड़े, वे आपकी रक्षा करें ॥ ५ ॥ मत्स्य-रूपवाले वे भगवान् आपको कल्याणकारी ऐश्वर्य दें जिनकी बड़ी भारी पूँछके वेगसे समुद्र उछलकर आकाश-गङ्गातक पहुँच गया और गङ्गा-सागर तीर्थका समीपमें ही आनन्द लेते हुए आकाशरूपी थल प्रसन्न हो गया ॥ ६ ॥ 'यदि मैं पूँछ ऊपर उठाता हूँ तो इस समुद्रकी मर्यादा टूट जायगी, यदि जलमें तनिक भी क्रीड़ा करूँगा तो जलचरोंको बड़ा कष्ट होगा' इस प्रकार सोचकर जो अपनी देहको तनिक भी हिला नहीं पाते तथा 'ऊपर रखा यह ब्रह्माण्डरूपी घड़ा फूट न जाय' इस डरसे जो अपने रूपको सिकोड़े हुए हैं ऐसे वे मछली-रूपवाले भगवान् प्रसन्न हों ॥७॥ जब सुमेरु पर्वत समुद्रमें डूब गया, पानीकी बूँदोंमें सूर्य छिप-सा गया, चन्द्रमा समुद्रमें डूब-सा गया और देवता व्याकुल होने लगे तब अपने मुँहके ओठोंके किनारोंसे समुद्रको खींचते-छोड़ते हुए मछली रूपवाले भगवान्के उस शरीरकी जय हो जिसे देखकर समझमें नहीं आता था कि यह जलमें है या धरतीमें है ॥ ८ ॥ मायासे मछलीका रूप धारण करनेवाले नारायण भगवान्का वह कीचड़में रहना आपके पुण्योंकी रक्षा करे जब उनकी पूँछके वेगसे हिलनेके कारण समुद्रका सारा जल उछल गया और नीचे पातालके छेदमें बड़े सङ्कोच और बहुत कष्टके

रिरीयान्न विलयम्। न शुष्येयुः श्वासैस्सलिलनिधयः सप्त च कथं वराहो वः पायादिति विपुलचिन्तापरिकरः ॥६॥ पातु त्रीणि जगन्ति सन्ततमकूपारात्समभ्युद्धरन्धात्रीं कोलकलेवरस्स भगवान्यस्यैकदंष्ट्राङ्कुरे। कूर्मः कन्दति नालति द्विरसनः पत्रन्ति दिग्दन्तिनो मेरुः कोशति मेदिनी जलजति व्योमापि रोलम्बति ॥७॥ पातु वो मेदिनीदोला चालेन्दुद्युतितस्करी। दंष्ट्रा महावराहस्य पातालगृहदीपिका ॥८॥ पातु वः कपटकोलकेशवो यस्य निश्वसितमारुतोद्धता। उच्छ्रितिप्रपतनैस्त्रीकृपत्केलिकन्दुकतुलामिला मुहुः ॥९॥ पातु श्रीस्तनपत्रभङ्गिमकरीमुद्राङ्कितोरःस्थलो देवो वः स जगत्पतिर्मधुवधूवक्त्राब्जचन्द्रोदयः। क्रीडाक्रोडतनोर्नवेन्दुविशदे दंष्ट्राङ्कुरे यस्य भूर्भाति स्म प्रलयाब्धिपल्वलतलोत्खातैकमुस्ताकृतिः॥१०॥ बिभ्राणोऽभिनवेन्दुकोटिकुटिलं दंष्ट्राङ्कुरं लीलया क्रोडाकारधरो हरिः स भगवान्भूयाद्विभूतिप्रदः। यस्योत्क्षिप्तवतः क्षमाकमलिनीमालम्बमानः क्षणं लोलद्वालमृणालनालतुलनाम्भेजे भुजङ्गेश्वरः ॥११॥ भूयादेष सतां हिताय भगवान्कोलावतारो हरिः सिन्धोः क्लेशमपास्य यस्य दशनप्रान्ते नटन्त्या भुवः। तारा हारति वारिदस्तिलकति स्वर्वाहिनी माल्यति क्रीडादर्पणति क्षपापतिरहर्देवश्च ताटङ्कति ॥१२॥ मुक्तैर्यास्यति कुत्रचिद्वसुमती दंष्ट्राङ्कुरस्थेयसी कुक्षौ क्षोभमवाप्स्यति त्रिभुवनं रुद्धैरमीभिः क्रमात्। इत्यस्वल्पविकल्पमीलितमतेः कण्ठे लुठन्तो मुहुः क्रोडाकारधरस्य कैटभजितः श्वासानिलाः पान्तु वः ॥१३॥ मेरूरुकेसरमुदारदिगन्तपत्त्रमामूललम्बिचलशेषशरीरनालम्। येनोद्धृतक्ष्वलयं सलिलात्सलीलमुत्तंसकार्थमिव पातु स वो वराहः ॥१४॥ लीने श्रोत्रैकदेशे नभसि नयनयोः तेजसि क्वापि नष्टे श्वासग्रासोपभुक्ते मरुति जलनिधौ पादरन्ध्रार्धपीते।

यह अत्यन्त कोमल पृथ्वी नष्ट क्यों न हो गई! मेरे मुँहके तापसे यह सुमेरु पर्वत पिघल क्यों न गया और मेरी साँसोंके तीव्र पवनसे ये सातों समुद्र सूख क्यों न गए!' इस प्रकार बड़े सोच-विचारमें पड़े हुए वे वराह भगवान् आपकी रक्षा करें ॥६॥ पृथ्वीको समुद्रमेंसे निकालकर लाते हुए वे वराह भगवान् सदा तीनों लोकोंकी रक्षा करें जिनके कमलके अँकुएके समान उजले दाँतके नीचे चिपटे कच्छप उस अँकुएके कन्दके समान, उसपर स्थित शेषनाग उस कमलके नालके समान, दिग्गज पत्तोंके समान, सुमेरु पर्वत कोशके समान, पृथ्वी खिले कमलके समान और आकाश मँडराते हुए भौंरोंके समान जान पड़ता है ॥७॥ बड़े भारी शूकर भगवान्का वह टेढ़े चन्द्रमाकी चाँदनीको चुराकर उजला दिखाई देनेवाला दाँत आपकी रक्षा करे जो ऐसा जान पड़ता है मानो पृथ्वीका झूला हो अथवा पाताल-गृहका दीपक हो ॥८॥ शूकरका मायामय शरीर धारण करनेवाले वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें जिनकी साँसोंके वायुसे बारम्बार उछलती-गिरती यह पृथ्वी गेंद-सी जान पड़ती है ॥९॥ अपनी छातीपर लक्ष्मीजीके स्तनोंकी चित्रकारीकी बिगड़ी हुई छापवाले तथा मधु दैत्यकी स्त्रीके मुख-कमलको उदास करनेके लिये चन्द्रोदयके समान वे संसारके स्वामी तथा लीला करनेके लिये शूकर-देह धारण करनेवाले भगवान् आपकी रक्षा करें जिनके टेढ़े चन्द्रमाके समान उजले दाँतरूपी अँकुएमें, प्रलय-समयकी गढ़ीके समान समुद्रसे निकाली गई पृथ्वी मोथा-सी जान पड़ती थी ॥१०॥ लीलाके लिये शूकर-देह धारण करनेवाले तथा टेढ़े चन्द्रमाकी भाँति उजले दाँतवाले वे विष्णु भगवान् ऐश्वर्य दें जिनके पृथ्वीरूपी कमलिनीको ऊपरकी ओर फेंकनेपर उसके नीचे सिर लगाए शेषनाग एक क्षणके लिये ऐसे जान पड़े मानो हिलती हुई कोमल कमलकी जड़वाले कमल-नाल हों ॥११॥ वराह अवतारवाले वे विष्णु भगवान् सज्जनोंकी भलाई करें जिनके दाँतपर पृथ्वीरूपी नर्त्तकीके नाचते समय तारा उस नर्त्तकीके हारके समान, मेघ तिलकके समान, आकाश-गङ्गा हारके समान, चन्द्रमा खिलवाड़के दर्पणके समान और सूर्य कनफूलके समान जान पड़ते थे ॥१२॥ 'यदि मैं साँस छोड़ता हूँ तो दाँतपर रखी पृथ्वी उड़कर न जाने कहाँ चली जायगी, यदि नहीं छोड़ता तो इसके रुकनेसे कोखमें स्थित तीनों लोकोंको बड़ा कष्ट होगा' इस प्रकारके असमञ्जसमें पड़े हुए शूकर देहवाले विष्णु भगवान्के गलेमें ही रुककर मचलनेवाले वे साँसके पवन आपकी रक्षा करें ॥१३॥ वे वराह भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्होंने सुमेरुरूपी केसरवाले, दूरतक फैली हुई दिशारूपी पत्तोंवाले और नीचेतक फैले हुए शेषनागके हिलते हुए शरीररूपी नालवाले इस समूची पृथ्वीरूपी कमलको खेल-खेलमें ही मानो गहना बनानेके लिये उखाड़ लिया ॥१४॥ अपने कानोंमें सारे आकाशके समा जानेपर, नेत्रोंके किसी कोनेमें तेजके लीन हो जानेपर, साँसोंके द्वारा पवन खींच लिए जानेपर, खुरोंके

पोत्रप्रान्तैकरोमान्तरविवरगतां मार्गतश्चक्रपाणेः क्रोडाकारस्य पृथ्वीमकलितविभवं वैभवं वः पुनातु ॥ १५ ॥ स जयति महावराहो जलनिधिजठरे चिरं निमग्नोऽपि । येनान्त्रैरिव सह फणिगणैर्बलादुद्धृता धरणी ॥ १६ ॥ सिन्धुष्वङ्गावगाहः खुरविवरविशत्तुच्छतोयेषु नाप्तः प्राप्ताः पातालपङ्के न लुठितरुचयः पोत्रमात्रोपयोगात् । दंष्ट्राविष्टेषु नाप्तः शिखरिषु च पुनः स्कन्धकण्डूविनोदो येनोद्धारे धरित्र्याः स जयति विभुताविघ्नितेच्छो वराहः ॥ १७ ॥ हरेर्लीलावराहस्य दंष्ट्रादण्डः स पातु वः । हेमाद्रिकलसा यत्र धात्री छत्रश्रियं दधौ ॥ १८ ॥

नृसिंहः—अन्तःक्रोधोज्जिहानज्वलनभवशिखाकारजिह्वावलीढप्रौढब्रह्माण्डभाण्डः पृथुभुवनगुहागर्भगम्भीरनादः । दृप्यत्पारीन्द्रमूर्तिर्मुरजिदवतु वः सुप्रभामण्डलीभिः कुर्वन्निर्धूमधूमध्वजनिचितमिव व्योम रोमच्छटानाम् ॥ १ ॥ आदित्या किं दशैते प्रलयभयकृतः स्वीकृताकाशदेशाः किं वोल्कामण्डलानि त्रिभुवनदहनायोद्यतानीतिभीतः । पायासुर्नारसिंहं वपुरमरगणैर्बिभ्रतः शार्ङ्गपाणेर्दंष्ट्रा दृप्तासुरोरःस्थलदरणगलद्रक्तरक्ता नखा वः ॥ २ ॥ किं किं सिंहस्ततः किं नरसदृशवपुर्देव चित्रं गृहीतो नैतादृक्कापि जीवोऽद्भुतमुपनय मे देव संप्राप्त एषः । चापश्चापं न चापीत्यहहहहहहहा कर्कशत्वं नखानामित्थं दैत्येन्द्रवक्षः खरनखमुखरैर्जघ्निवान्यः स वोऽव्यात् ॥३॥ क्वेदं गर्जितमेष किन्नु दलति स्तम्भो नृसिंहस्ततस्सोऽत्राधावति कोऽत्र भो धनुरसी हंहेति दैत्येश्वरम् । जल्पन्तं निजगर्जितेन वलवत्स्तम्भान्नि-

---

छेदके आधे भागसे ही समुद्रके पी लिए जानेपर तथा अपने थूथनके किसी एक रोमकूपमें पृथ्वीके घुस जानेपर, उस पृथ्वीको ढूँढ़नेवाले, वराहरूपवाले, उन भगवान्‌का असीम ऐश्वर्य आप लोगोंको पवित्र करे ॥ १५ ॥ उन भारी वराह शरीरवाले भगवान्‌की जय हो जो समुद्रके गर्भमें बहुत समयतक रहकर मानो अँतड़ियों जैसे साँपोंसे उलझे-पुलझे बलपूर्वक पृथ्वीको खींचे निकले चले आ रहे हैं ॥ १६ ॥ पृथ्वीका उद्धार करते समय अपने खुरोंमें ही सारे समुद्रोंके जलके समा जानेसे जो समुद्रमें गोता लगाकर स्नान करनेका आनन्द न ले सके, अपने थूथनकी नोकमें ही पातालके समूचे कीचड़के लिपट जानेसे जो कीचड़में लोटनेका आनन्द न ले सके, अपने दाँतोंमें ही सारे पर्वतोंके समा जानेसे जो पर्वतोंसे रगड़कर कन्धोंको खुजलानेका आनन्द नहीं पा सके तथा इस प्रकार अपनी व्यापकताके कारण ही जिनकी इच्छा पूरी न होने पाई ऐसे उन वराह भगवान्‌की जय हो ॥ १७ ॥ लीला करनेके लिये वराह-शरीरधारी विष्णु भगवान्‌का वह दाँतरूपी दण्ड आपकी रक्षा करे जिसपर सुमेरु पर्वतरूपी कलशवाली पृथ्वी तने हुए छत्रके समान सुन्दर जान पड़ती है ॥ १८ ॥

नृसिंह : अत्यन्त वेगसे दहाड़ते हुए सिंह-रूपवाले वे दैत्यको मारनेवाले नृसिंह भगवान् आपकी रक्षा करें जो अपने भीतर बढ़े हुए क्रोधसे उत्पन्न अग्निकी लपटोंके समान रङ्गवाली जीभसे इतने बड़े ब्रह्माण्डरूपी घड़ेको चाटे जा रहे हैं, जिनके गरजनेसे संसारमें ऐसा गम्भीर शब्द होता है जैसा गुफाके भीतर सिंहके दहाड़नेसे होता है और जिनके गलेके फैले हुए चमकीले बालोंसे भरा आकाश ऐसा जान पड़ता है मानो बिना धुएँकी आगसे भर गया हो ॥ १ ॥ 'अरे ! क्या आकाशमें ये प्रलय समयके भयङ्कर दसों सूर्य हैं ! अथवा तीनों लोकोंको जला देनेके लिये ये उल्काएँ ही आकाशमें निकल आई हैं !' इस प्रकार हड़बड़ाकर देवताओंने नृसिंह रूप धारण करनेवाले जिन विष्णु भगवान्‌का नृसिंह-रूप देखा उनके वे नख आपकी रक्षा करें जो बमण्डी हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़नेपर उससे बहे हुए रक्तमें सनकर लाल-लाल हो गए हैं ॥२॥ नृसिंह भगवान्‌को चले आते देखकर डरके मारे सेवक जब भागकर हिरण्यकशिपुके पास आए तो उन्हें घबड़ाते देखकर हिरण्यकशिपुने उनसे पूछा—'अरे क्या है?' सेवक—महाराज ! सिंह है ! हिरण्यकशिपु—तो इसमें डरनेकी क्या बात है ! सेवक—महाराज ! मनुष्यके समान शरीर धारण किए है ! बड़ा विचित्र है ! हम लोगोंने ऐसा विचित्र जीव कहीं नहीं देखा । हिरण्यकशिपु—तो मेरे पास ले आओ पकड़कर ! सेवक—महाराज ! वह तो इधर ही....यह आ ही गया...! हिरण्यकशिपु—धनुष कहाँ है धनुष ? धनु...अरे ! अरे ! हाय ! आह ! ये कितने कठोर नख हैं !' इस प्रकार अपने तीखे ! नखोंसे जिन्होंने हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़कर उसे मार डाला, वे आपकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ नृसिंहजीकी दहाड़ सुनकर हिरण्यकशिपु पूछने लगा—यह गर्जना कहाँ हो रही है ? क्या फट रहा है ? क्या खम्भा फट रहा है ? सेवकोंने उत्तर दिया—नृसिंह हैं, वे इसी ओर दौड़े आ रहे हैं। हिरण्यकशिपु बोला—अरे यहाँ कोई है ! अरे धनुष, तलवार लाओ.......'इस प्रकार

रीयावर्धीदेकस्मिन्क्षण एव हा नरहरिस्त्राता स एवास्तु वः ॥ ४ ॥ चटच्चटिति चर्मणि च्छमिति चोच्छलच्छोणिते धगद्धगिति मेदसि स्फुटरवोऽस्थिनि ष्टागिति । पुनातु भवतो हरेरमरवैरिवक्षःस्थलक्षणक्रकचपञ्जरकचकापजन्मानलः ॥ ५ ॥ चञ्चच्चण्डनखाग्रभेदविगलद्दैत्येन्द्रवक्षःक्षरद्रक्ताभ्यक्तसुपालोद्भटसटासम्भ्रान्तभीमाननः । तिर्यक्कण्ठकठोरघोषघटनासर्वाङ्गखर्वीभवद्दिङ्मातङ्गनिरीक्षितो विजयते वैकुण्ठकण्ठीरवः ॥ ६ ॥ चन्द्रार्धायितनिष्पिधानदशनो व्योमायितान्तर्मुखो बालार्कायितलोचनः सुरधनुर्लीलायितभ्रूलतः । अन्तर्नादनिरोधपीवरगलन्यक्कूपनिर्यत्तडित्तारस्फारसटावरुद्धगगनः पायान्नृसिंहो जगत् ॥ ७ ॥ जयन्ति नरसिंहस्य स्फुरन्नखशिखाङ्कुराः। हरिणक्रोधकृष्टेन्दुकलाखण्डैरिवाङ्किताः ॥८॥ दिश्यात्सुखं नरहरिर्भुवनैकवीरो यस्याहवे दितिसुतोद्दलनोद्यतस्य । क्रोधोद्धतं मुखमवेक्षितुमक्षमत्वज्ञानेऽभवन्निजनखेष्वपि यन्नतास्ते ॥ ९ ॥ दैत्यानामधिपे नखाङ्कुरकुटीकोणप्रविष्टात्मनि स्फारीभूतकरालकेसरसटासङ्घातघोराकृतेः । सक्रोधश्च सविस्मयश्च सगुलव्रीडश्च सान्तःस्मितं क्रीडाकेसरिणो हरेर्विजयते तत्कालमालोकितम् ॥ १० ॥ दैत्यास्थिपञ्जरविदारणलब्धरन्ध्ररक्ताम्बुनिर्झरसरिद्वनजातपङ्काः। बालेन्दुकोटिकुटिलाः शुकचञ्चुभासा रक्षन्तु सिंहवपुषो नखरा हरेर्वः ॥ ११ ॥ दंष्ट्रासङ्कटवक्त्रकन्दरलसज्जिह्वस्य हव्याशनज्वालाभासुरभूरिकेसरसटाभारस्य दैत्यद्रुहः । व्यावल्गद्बलवद्धिरण्यकशिपुक्रोडस्थलास्फालनस्फारप्रस्फुटदस्थिपञ्जरखरकूरा नखाः पान्तु वः ॥ १२ ॥ नमस्तस्मै नृसिंहाय दैत्यराजान्तकारिणे । अन्तःक्रोधशिखा यस्य समुत्पन्नः सटामिषात् ॥ १३ ॥ पायान्मायामृगेन्द्रो जगदखिलमसौ यत्तनूदर्चिरर्चिर्ज्वालाजालाव-

---

बड़बड़ाते हुए हिरण्यकशिपुको सुदृढ़ खम्भेसे निकलकर दहाड़ मारते हुए एक ही क्षणमें जिन नृसिंहजीने मार डाला, वे ही नरहरि आपकी रक्षा करें ॥४॥ नखरूपी दाँतोंवाला विष्णुजीका हाथ रूपी आरा जब देवताओंके शत्रु हिरण्यकशिपुकी छाती चीरने लगा उस समय उसकी रगड़से उत्पन्न हुई वह आग आपको पवित्र करे जो उसकी खालपर पड़कर चट-चट, उछलते हुए रक्तमें पड़कर छम्-छम्, चर्बीमें धग्-धग् और हड्डीमें पड़कर स्पष्ट रूपसे कड़ाक्-कड़ाक् शब्द करने लगी ॥ ५ ॥ उन सिंहवेशवाले विष्णु भगवान्की जय हो जो अपने चञ्चल और तीखे नखोंकी नोकसे फाड़ी जाती हुई हिरण्यकशिपुकी छातीसे बहते हुए रक्तसे सनकर फैली हुई गलेकी केसरोंसे बड़े भयङ्कर हो रहे हैं और जिनके तिरछा गला करके दहाड़नेसे उसे सुनकर दिग्गजोंकी सारी देह थर्रा उठी और वे डरके मारे इन्हें देखने लगे ॥ ६ ॥ वे नृसिंह भगवान् संसारकी रक्षा करें जिनके खुले हुए दाँत आधे चन्द्रके समान टेढ़े हैं, मुखका भीतरी भाग आकाशके सामान गहन है, नेत्र उदय होते हुए सूर्यके समान लाल-लाल हैं, भौंहें इन्द्र-धनुषके समान बाँकी हैं तथा भीतरसे निकलती हुई दहाड़को रोकनेसे जिनके गलेके फूल जानेपर बिजलीकी रेखाओंके समान केसरोंके बिखर जानेसे आकाश घिर-सा गया है ॥ ७ ॥ नृसिंहजीके उन अग्निकी लपटोंके समान चमकीले नखोंकी जय हो, जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमाके भीतर स्थित हिरणपर क्रोध करके झपटकर खींचे हुए चन्द्रमाकी टेढ़ी कलाएँ हों ॥ ८ ॥ युद्धमें दितिके पुत्र हिरण्यकशिपुको मारनेको तैयार हुए, चौदहों भुवनोंमें सबसे बड़े वीर वे नृसिंह भगवान् आपको ऐश्वर्य दें जिनके क्रोधसे भरे मुँहको देखनेकी शक्ति जान पड़ता है उनके नखोंमें भी नहीं है, तभी तो वे नीचेको नवे हुए हैं ॥ ९॥ अपने नखोंके छेदके एक कोनेमें ही राक्षसराज हिरण्यकशिपुके समा जानेपर लीला करनेके लिये सिंह वेष धारण करनेवाले उन विष्णु भगवान्के क्रमशः क्रोधित होते हुए, आश्चर्य करते हुए, लजाते और मुस्कुराते हुए देखने की जय हो, जो तनकर फैली हुई भयङ्कर केसरोंके हिलनेसे और भी भयङ्कर रूपवाले दिखाई पड़ते हैं ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपु दैत्यकी हड्डियोंके टूटनेपर उनसे बही रक्तरूपी गङ्गाके कीचड़से सनकर तोतेकी चोंचके समान कान्तिवाले तथा द्वितीयाके चन्द्रमाके समान टेढ़े वे सिंह वेषधारी विष्णुके तीक्ष्ण नख आपकी रक्षा करें ॥ ११ ॥ दाँतोंकी दाढ़से घिरी मुँहरूपी गुफामें लपलपाती हुई जीभवाले और अग्निकी लपटोंकी भाँति चमकीले केसरोंका बोझ धारण करनेवाले, दैत्यके शत्रु नृसिंह भगवान्के वे नख आपकी रक्षा करें जो बलवान् हिरण्यकशिपुको गोदमें रखकर फाड़नेसे उसकी फटती-टूटती हड्डियोंके चड़-चड़ शब्दसे और भी भयङ्कर हो गए हैं ॥ १२ ॥ हिरण्यकशिपुका नाश करनेवाले उन नृसिंह भगवान्को प्रणाम है जिनके भीतरके क्रोधकी लपटें केसरके रूपमें बाहर निकल

लीढं वत भुवि सकलं व्याकुलं किन्न भूयात् । न स्याच्चेदाशु तस्याधिकविकटसटाकोटिभिः पाट्यमाना-दिन्दोरानन्दकन्दात्तदुपरि तुहिनासारसन्दोहवृष्टिः ॥ १४ ॥ पूर्यन्तो जलराशयो वसुमती मज्जत्यधो लुप्यते पातालं शतधा गतं निपतति ब्रह्माण्डखण्डं दिवः । निक्षिप्तेन सुरद्विषोऽस्य वपुषा मत्वेति मन्ये वहन्नुत्सङ्गेन हतं हिरण्यकशिपुं सिंहो हरिः पातु वः ॥ १५ ॥ प्रोज्ज्वलज्ज्वलनज्वालाविकटोरुसटाच्छटः । श्वासक्षिप्तकुलक्ष्माभृत्पातु वो नरकेसरी ॥ १६ ॥ भूयः कण्ठावधूतिव्यतिकरतरलोत्तंसनक्षत्रमालावालेन्दुक्षुद्रघण्टारणितदशदिशादन्तिचीत्कारकारी । अव्याद्वो दैत्यराजप्रथमयमपुरीयानघण्टानिनादो नादो दिग्भित्तिभेदप्रसरखरभसः कूटकण्ठीरवस्य ॥ १७ ॥ वपुर्दलनसम्भ्रमात्स्वनखरं प्रविष्टे रिपौ क्व यात इति विस्मयात्प्रहितलोचनस्सर्वतः । वृथेतिकरताडनान्निपतितं पुरो दानवं निरीक्ष्य भुवि रेणुवज्जयति जातहासो हरिः ॥ १८ ॥ विद्युच्चक्रकरालकेसरसटाभारस्य दैत्यद्रुहः शोणान्नेत्रहुताशडम्बरभृतः सिंहाकृतेः शार्ङ्गिणः । विस्फूर्जद्गलगर्जितर्जितककुम्मातङ्गदर्पोदयाः संरम्भाः सुखयन्तु वः खरनखक्षुण्णाद्विषद्वक्षसः ॥ १९ ॥ व्याधूतकेसरसटाविकरालवक्त्रं हस्ताग्रविस्फुरितशङ्खगदासिचक्रम् । आविष्कृतं सपदि येन नृसिंहरूपं नारायणं तमपि विश्वसृजं नमामि ॥ २० ॥ शत्रोः प्राणानिलाः पञ्च वयं दश जयोऽत्र कः । इति कोपादिवाताम्राः पान्तु वो नृहरेर्नखाः ॥२१॥ सन्ध्यारञ्जितशीतदीधितिकलासौन्दर्यभाजो नखाः प्रीतिं पीवरयन्तु कैटभरिपोः क्रीडानृसिंहस्य वः । दैत्योरःस्थलपीठकुण्ठिततया दीनेन दम्भोलिना सासूयं सकुतूहलं सविनयं साश्चर्यमालोकिताः ॥ २२ ॥ ससत्वरमितस्ततस्ततविहस्तहस्ताटवीनिकृत्तसुरशत्रुहृत्क्षत-

---

पड़ी हैं ॥१३॥ मायावी सिंहरूपवाले वे भगवान् सारे संसारकी रक्षा करें जिनकी देहसे केसर रूपमें निकली आगकी लपटें जब लपलपाने लगती हैं उस समय उन्हींकी करोड़ों भयङ्कर केसरोंसे ढके हुए आनन्दके ढेर चन्द्रमासे यदि संसारपर हिमकी मोटी धारकी वर्षा न होने लगे तो कहो तो भला, सारे संसारके प्राणी क्यों न व्याकुल हो जायँ ! ॥ १४ ॥ 'यदि मैं इस देवताओंके शत्रुकी देहको फेंकता हूँ तो समुद्र उमड़ पड़ेंगे, पृथिवी धँस जायगी, पाताल लुप्त हो जायगा, ब्रह्माण्डके टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे और स्वर्ग नीचे गिर पड़ेगा ।' यह सोचकर ही मानो मरे हुए हिरण्यकशिपुको गोदमें ही रक्खे रहनेवाले सिंहरूपधारी विष्णुजी आपकी रक्षा करें ॥१५॥ वेगसे जलती हुई आगकी लपटोंके समान भयङ्कर बड़ी-बड़ी घनी केसरवाले वे नृसिंहजी आपकी रक्षा करें जो अपनी साँससे कुलाचल पर्वतको भी उछाले दे रहे हैं ॥१६॥ दिशाओंकी दीवालोंको मानो फाड़ डालनेके लिये वेगसे दौड़ते हुए भयङ्कर नृसिंह भगवान्की वह घोर दहाड़ आपकी रक्षा करे जो उनके बार-बार हिलते हुए गलेमें पड़ी फहराती हुई मालाके समान ताराओंके समूहमें बँधे चन्द्रमारूपी घण्टेके उस शब्दके समान है जिसे सुनकर दसों दिशाएँ और दिग्गज चिग्घाड़ उठते हैं तथा जो ऐसी जान पड़ती है मानो हिरण्यकशिपुके यमलोकपर सर्वप्रथम चढ़ाई करते समय बजाए जाते हुए घण्टेका नाद हो ॥ १७ ॥ जब अपनी देहके फाड़े जानेके भयसे हिरण्यकशिपु नृसिंह भगवान्के नखमें घुसकर छिप गया तो वे आश्चर्यसे 'कहाँ गया, कहाँ गया ?' कहते हुए चारों ओर देखने लगे, जब वह न दिखाई दिया तो 'अरे, सब व्यर्थ हो गया !' ऐसा कहकर जो उन्होंने झुँझलाकर हाथ फटकारा तो वह नीचे गिर पड़ा, उस समय उस हिरण्यकशिपु दैत्यको पृथ्वीपर धूलकी भाँति पड़ा देखकर हँस पड़नेवाले उन नृसिंह भगवान्की जय हो ॥ १८ ॥ बिजलीके समूहके समान भयङ्कर केसरोंके भारवाले, लाल-लाल नेत्रोंसे अग्निकी बराबरी करनेवाले, तीखे नखोंसे हिरण्यकशिपुकी छाती चीरनेवाले, सिंहरूपवाले तथा हिरण्यकशिपुके शत्रु विष्णुजीके फड़कते हुए गलेकी दहाड़से दिग्गजोंके घमण्डको कुचल देनेवाली वे चेष्टाएँ आपको सुख पहुँचावें ॥ १९ ॥ इस संसारकी रचना करनेवाले उन नारायण भगवान्को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने एकाएक हिलती हुई केसरोंसे भयङ्कर मुखवाला, ऐसा नृसिंह-वेष प्रकट कर दिया जिसके हाथोंके अग्रभागमें शङ्ख, गदा, तलवार और चक्र चमचमा रहे थे ॥२०॥ नृसिंह भगवान्के वे नख आपकी रक्षा करें जो मानो यह विचारकर क्रोधसे लाल-लाल हो रहे हैं कि 'शत्रुके प्राणवायु तो पाँच ही हैं और हम दस हैं, अतः कैसे शत्रु हमें जीत पावेगा' ॥ २१ ॥ सन्ध्याकालीन लाल चन्द्रमाकी कलाकी सुन्दरताके समान कान्तिवाले वे लीलाके लिये नृसिंह रूपधारी, कैटभासुरके शत्रु (विष्णु) के नख आपका आनन्द बढ़ावें जिन्हें हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़नेमें असमर्थ वज्रने डाह, कुतूहल, नम्रता और अचरजपूर्वक देखा

जसिक्तवक्षःस्थलः। स्फुरद्धरगसस्तिभिः स्थगितसप्तसप्तिद्युतिः समस्तनिगमस्तुतो नृहरिरस्तु नः स्वस्तये ॥ २३ ॥ सुरासुरशिरोरत्नकान्तिविच्छुरिताङ्घ्रये। नमस्त्रिभुवनेशाय हरये सिंहरूपिणे ॥ २४ ॥

वामनः—अङ्घ्रिदण्डो हरेरूर्ध्वमुत्क्षिप्तो बलिनिग्रहे। विधिविष्टरपद्मस्य नालदण्डो मुदेऽस्तु नः ॥ १ ॥ अपसर पृथिवि समुद्राः संवृणुताम्बूनि भूधरा नमत। वामनहरिलघुतुन्दे जगतां कलहः स वः पायात् ॥ २ ॥ अव्याद्वो वामनो यस्य कौस्तुभप्रतिबिम्बिता। कौतुकालोकिनी जाता जाठरीव जगत्त्रयी ॥ ३ ॥ आकृष्टः शिखया नखैर्विलिखितः स्पृष्टः कपोलस्थले मौलौ दामभिराहतः प्रतिदिशं क्रामन्सलीलं पथि। इत्थं वारविलासिनीकृतपरीहासस्य दैत्याध्वरे विष्णोर्वामनवेषविभ्रमभृतो हासोर्मयः पान्तु वः ॥ ४ ॥ कस्त्वं ब्रह्मन्नपूर्वः क्व च तव वसतिर्याखिला ब्रह्मसृष्टिः कस्ते नाथो ह्यनाथः क्व च तव जनको नैव तातं स्मरामि। किं तेऽभीष्टं ददामि त्रिपदपरिमिता भूमिरल्पं किमेतत्त्रैलोक्यं भावगर्भं बलिमिदमवदद्वामनो वः स पायात् ॥ ५ ॥ खर्वग्रन्थिविमुक्तसन्धिविलसद्वक्षःस्फुरत्कौस्तुभं निर्यन्नाभिसरोजकुड्मलपुटीगम्भीरसामध्वनि। पात्रावाप्तिसमुत्सुकेन बलिना सानन्दमालोकितं पायाद्वः क्रमवर्धमानमहिमाश्चर्यं मुरारेर्वपुः ॥६॥ ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः। ज्योतिश्चक्राक्षदण्डस्त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः

॥ २२ ॥ अपनी श्रेष्ठ चमकीली केसररूपी किरणोंसे सूर्यके प्रकाशको ढाँप देनेवाले तथा वेदोंसे स्तुति किए जाते हुए वे नृसिंह भगवान् हमारे लिये कल्याणकारी हों जो हड़बड़ाहटके मारे यहाँ-वहाँ फैले हुए शत्रुके व्याकुल हाथोंरूपी वनको काट डालनेके लिये कुल्हाड़ी हैं तथा देवताओंके शत्रु हिरण्यकशिपुके फटे हुए हृदयसे बहते हुए रक्तसे जिनका वक्षःस्थल रँग गया है ॥ २३ ॥ तीनों लोकोंके स्वामी उन नृसिंहरूपी विष्णुको प्रणाम है जिनके चरण देवता और राक्षसोंके मुकुटोंके रत्नोंकी कान्तिसे चकमका उठे हैं ॥ २४ ॥

वामन : बलिको बाँधते समय ऊपर उठा हुआ भगवान् विष्णुका वह चरण हम लोगोंको सुख दे जो ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्माजीको उत्पन्न करनेवाले कमलका नालदण्ड हो ॥ १ ॥ छोटेसे पेटवाले वामन भगवान्के विषयमें उठा हुआ वह सारे संसारका कलह आपकी रक्षा करे जिसमें यह घोषणा की गई कि 'हे पृथिवी ! दूर हट जाओ, हे समुद्रो ! आप अपना जल सँभालिए और हे पर्वतो ! आप और नव जाइए।' ॥ २ ॥ वे वामन भगवान् आपकी रक्षा करें जिनके चमचमाते हुए कौस्तुभ मणिमें तीनों लोकोंकी परछाईं पड़कर ऐसा कौतुक उत्पन्न कर रही थी मानो तीनों लोक उनके पेटमें स्थित हों ॥३॥ बलिके यज्ञमें चारों ओर लीलापूर्वक घूमते हुए, वामन-वेशकी शोभा धारण करनेवाले उन भगवान् विष्णुकी हँसीकी छटाएँ आपकी रक्षा करें जिनसे वेश्याओंने उनकी चोटी खींचकर, नखोंसे उनकी देहमें चिह्न बनाकर, उनके गालोंको छूकर तथा सिरपर रस्सियाँ मारकर परिहास किया था ॥ ४ ॥ आए हुए वामन भगवान्को देखकर बलिने उनसे पूछा—हे विचित्र रूपवाले तुम कौन हो ? वामन—मैं ब्राह्मण हूँ। बलि—तुम्हारा निवास-स्थान कहाँ है ? वामन—यह सारी ब्रह्माकी रचना मेरा निवास-स्थान ही तो है। बलि—आपका स्वामी कौन है? वामन—मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई स्वामी नहीं है। बलि—आपके पिता कौन हैं ? वामन—मुझे अपने पिताका स्मरण नहीं है। बलि—तुम क्या चाहते हो, तुम्हें क्या दूँ ? वामन—केवल तीन पग पृथ्वी चाहता हूँ। बलि—यह तो बहुत कम है, यह क्या तुमने माँगा ? वामन—अरे, उसमें तीनों लोकोंको माँगनेका भाव है। इस प्रकार बलिसे कहनेवाले वे वामन भगवान् आपकी रक्षा करें ॥५॥ दानके योग्य पात्रको ढूँढ़नेकी चिन्ता करनेवाले बलिसे प्रसन्नतापूर्वक देखा जाता हुआ विष्णुका वह वामन-वेष आपकी रक्षा करे जिसकी बीच छातीमें कौस्तुभ मणि चमचमा रहा है, जिसमें नाभिसे निकले कमलमें बैठे ब्रह्माजीके साम-गानका गम्भीर स्वर सुनाई पड़ रहा है तथा जो धीरे-धीरे बढ़कर इतना बड़ा हो गया कि देखकर अचरज होने लगा ॥ ६ ॥ वामन वेषवाले त्रिविक्रम भगवान्का वह उठा हुआ समूचा पैर तुम्हारा कल्याण करे जो सारे ब्रह्माण्डरूपी छातेकी डण्डीके समान, ब्रह्माको उत्पन्न करनेवाले कमलके नालदण्डके समान, पृथ्वीरूपी नावके मस्तूलके समान, ऊपरसे झर-झर बहती हुई आकाश गङ्गारूपी पताकामें लगे दण्डके समान, सारे नक्षत्रोंसे भरे आकाशरूपी पहिएकी धुरीके समान और तीनों लोक जीत लेनेके पश्चात् गाड़े हुए विजयस्तम्भके समान जान पड़ता है तथा जो देवताओंके

॥ ७ ॥ यस्मादाक्रामतो द्यां गरुडमणिशिलाकेतुदण्डाय-
मानादाश्च्योतन्त्याबभासे सुरसरिदमला वैजयन्तीव
कान्ता । भूमिष्ठो यस्तथान्यो भुवनगृहमहास्तम्भशोभां
दधानः पातामेतौ पयोजोदरललिततलौ पङ्कजाक्षस्य
पादौ ॥ ८ ॥ स्वस्ति स्वागतमर्थ्यहं वद विभो किं
दीयतां मेदिनी का मात्रा मम विक्रमत्रयपदं दत्तं जलं
दीयताम् । मा देहीत्युशनाब्रवीद्धरिरयं पात्रं किमस्मा-
त्परश्चेत्येवं बलिनार्चितो मखमुखे पायात्स वो वामनः
॥ ९ ॥ स्वामी सन्भुवनत्रयस्य विकृतिं नीतोऽसि किं
याच्ञया यद्वा विश्वसृजा त्वयैव न कृतं तद्दीयतां ते
कुतः । दानं श्रेष्ठतमाय तुभ्यमतुलं बन्धाय नो मुक्तये
विज्ञप्तो बलिना निरुत्तरतया ह्रीतो हरिः पातु वः
॥ १० ॥ हस्ते शस्त्रकिणाङ्कितोऽरुणविभाकिर्मीरितोरः-
स्थलो नाभिप्रेङ्खदलिर्विलोचनयुगप्रोद्भतशीतातपः ।
बाहूर्मिश्रितवाडवेष तदिति व्याक्षिप्य वाक्यं कवेस्ता-
रैरध्ययनैर्हरन्बलिमनः पायाज्जगद्वामनः ॥ ११ ॥

परशुरामः—किं दोर्भ्यां किमु कार्मुकोपनिषदा भर्ग-
प्रसादेन किं किं वेदाधिगमेन भास्वति भृगोर्वंशे च किं
जन्मना । किं वानेन ममाद्भुतेन तपसा पीडां कृता-
न्तोऽपि चेद्विप्राणां कुरुतेऽन्तरित्यनुशयो रामस्य
पुष्णातु वः ॥ १ ॥ कुलाचला यस्य महीं द्विजेभ्यः
प्रयच्छतः सीमदृषत्वमापुः । बभूवुरुत्सर्गजलं समुद्राः
स रैणुकेयः श्रियमातनोतु ॥ २ ॥ द्वारे कल्पतरुं गृहे
सुरगवीं चिन्तामणीनङ्गदे पीयूषं सरसीषु विप्रवदने

शत्रुओंका नाश करनेके लिये कालदण्ड ही है ॥७॥ आकाशकी ओर बढ़ते हुए कमलके समान नेत्रवाले वामन भगवान्‌के कमलके भीतरी भागके समान लाल-लाल वे दोनों चरण रक्षा करें जिनमेंसे एक चरण मरकत मणिसे बने उस केतुदण्डके समान जान पड़ता है जिसपरसे झरती हुई निर्मल आकाश-गङ्गा सुन्दर पताका-सी जान पड़ती है तथा दूसरा धरतीपर रखा पैर ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानो चौदहों भुवनरूपी बड़े भारी घरका खम्भा हो ॥८॥ वामनरूपी भगवान्‌ने आते ही आशीर्वाद देनेकी मुद्रामें बलिसे कहा—आपका कल्याण हो। बलिने कहा—आइए, आपका स्वागत है। वामन—मैं भिखारी हूँ। बलि—कहिए नाथ! आपको क्या दिया जाय! वामन—मुझे पृथ्वी चाहिए। बलि—कितनी चाहिए महाराज! वामन—मेरे पगोंसे नापकर केवल तीन पग! बलि—अच्छा महाराज दिया, (शुक्राचार्य पुरोहितसे) जल दीजिए तो! शुक्राचार्य—अरे मत दो, ये विष्णु हैं। बलि—तो इनसे अच्छा दानका पात्र दूसरा कौन होगा! इस प्रकार अपने यज्ञमें बलिने जिनका पूजन किया था वे वामन भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ९ ॥ 'आप तीनों लोकोंके स्वामी होते हुए भीख माँगकर क्यों अपने हाथों अपनेको ओछा (हीन) बनाते हैं! अथवा संसारको अपने हाथोंसे रचते हुए भी आपने जो वस्तु नहीं बनाई वह आपको कहाँसे दी जाय? आप जैसे दानके श्रेष्ठ पात्रको दिए गए दानका फल तो बन्धनोंसे छूटना है, बन्धनमें पड़ना नहीं, और मैं आपको इतना बड़ा दान दे रहा हूँ फिर भी आप ही मुझे बाँधते हैं!' बलिकी इन बातोंको सुनकर निरुत्तर होनेसे लज्जित होते हुए वे वामन भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ १० ॥ 'अरे, इनके हाथोंमें शस्त्र धारण करनेका चिह्न है अर्थात् ये सुदर्शन चक्रधारी हैं, इनकी छातीपर लाल-लाल चकमकाहट है अर्थात् ये कौस्तुभ मणि धारण करनेवाले हैं, इनकी नाभिपर भौंरे मँडरा रहे हैं अर्थात् इनकी नाभिमें कमल है, इनकी आँखोंमेंसे एकसे ठण्ढक और एकसे गर्मी निकल रही है अर्थात् चन्द्रमा और सूर्य दोनों इनके नेत्र हैं, अरे ये विष्णु भगवान् बाहुरूपी लहरोंके भीतर छिपे बड़वानल हैं, इन्हें दान न देना', आए हुए वामन भगवान्‌को दान देनेसे बलिको रोकते हुए शुक्राचार्यकी इन बातोंको अनसुनी करके अपने ऊँचे स्वरके वेदपाठ आदिसे बलिके मनको अपनी ओर आकर्षित करनेवाले वे वामनरूपी भगवान् संसारकी रक्षा करें ॥ ११ ॥

परशुराम: 'मेरी इन भुजाओंके बलवान् होनेसे, मुझे धनुर्विद्यारूपी वेदोंके रहस्यका ज्ञान होनेसे, शिवजीकी कृपा-शक्ति प्राप्त होनेसे, वेदोंको पढ़नेसे, सूर्यके समान तेजस्वी भृगुवंशमें जन्म लेनेसे अथवा मेरी इतनी बड़ी अद्भुत तपस्यासे ही क्या लाभ हुआ! जब कि यमराज अभी भी ब्राह्मणोंको कष्ट दे ही लेता है!' परशुरामके भीतरका इस प्रकारका सोच-विचार आपको स्वस्थ रक्खे ॥ १ ॥ वे रेणुकादेवीके पुत्र परशुरामजी ऐश्वर्य दें जिन्होंने ब्राह्मणोंको इतनी अधिक पृथ्वी दानमें दी कि कुलाचल पर्वतसे ही एक-एकके भागकी सीमा बाँधी गई और जिनके दानका सङ्कल्प करते समय छोड़े हुए जलसे सारे समुद्र भर गए ॥२॥ सारे क्षत्रियोंका नाश करनेवाले, ब्राह्मणोंको सजानेवाले मणि तथा भृगुके वंशके आभूषणके समान वे परशुराम भगवान् आपकी रक्षा करें जो केवल इसलिये तपस्या करते हैं कि ब्राह्मणोंके द्वारपर कल्पवृक्ष लग जायँ, उनके घर-घर

विद्याश्चतस्रो दश। एवं कर्त्तुमयं तपस्यति भृगोर्वंशावतंसो मुनिः पायाद्वोऽखिलराजकक्षयकरो भूदेवभूषामणिः ॥ ३ ॥ नाशिष्यः किमभूद्भवः किमभवन्नापुत्रिणी रेणुका नाभूद्विश्वमकार्मुकं किमिति वः प्रीणातु रामत्रपा। विप्राणां प्रतिमन्दिरं मणिगणोन्मिश्राणि दण्डाहतेनाब्धीनां स मया यमोऽपि महिषेणाम्भांसि नोद्वाहितः ॥ ४ ॥ नो सन्ध्यां समुपासते यदि तदा लोकापवादाद्भयं सा चेत्स्वीक्रियते भविष्यति तदा राजन्यबीजे नतिः। इत्थं चिन्तयतश्चिरं भृगुपतेर्निश्वासकोष्णीकृतो नेत्रान्तःप्रतिबिम्बकोणसलिलः सन्ध्याञ्जलिः पातु वः ॥ ५ ॥ पायाद्वो जमदग्निवंशतिलको वीरव्रतालङ्कृतो रामो नाम मुनीश्वरो नृपवधे भास्वत्कुठारायुधः। येनाशेषहताहिताङ्गरुधिरैः सन्तर्पिताः पूर्वजा भक्त्या चाश्वमखे समुद्रवसना भूर्हन्तकारी कृता ॥ ६ ॥ लीलोन्मूलितमौलिमस्तचरणं मूर्धस्वपि क्ष्माभृतामास्कन्धादपबाहुशाखमभितः कृत्वा सहस्रार्जुनम्। यश्चक्रे भुवने तमेव विजयस्तम्भं कुठारायुधो दत्तां वः शिवमाहवैकरसिको रामः स राजान्तकः॥७॥

रामः—अधिपञ्चवटीकुटीरवर्त्तिस्फुटितेन्दीवरसुन्दरोरुमूर्त्तिः। अपि लक्ष्मणलोचनैकसख्यं भजत ब्रह्म सरोरुहायताक्षम् ॥ १ ॥ उत्फुल्लामलकोमलोत्पलदलश्यामाय रामामनःकामाय प्रथमाननिर्मलगुणग्रामाय रामात्मने। योगारूढमुनीन्द्रमानससरोहंसाय संसारविध्वंसाय स्फुरदोजसे रघुकुलोत्तंसाय पुंसे नमः ॥२॥ ऋक्षाणां भूरिधाम्नां श्रितमधिपतिना प्रस्फुरद्भीमतारं स्फारं नेत्रानलेन प्रसभनियमितोद्यापमीनध्वजेन। रा-

---

कामधेनुएँ हो जायँ, उनके भुजबन्दमें चिन्तामणि जड़ जायँ, उनकी तलैयों-बावलियोंमें अमृत भर जाय और मुँहमें ही चौदहों विद्याएँ रहने लगें ॥३॥ 'शिवजी शिष्य-रहित ही क्यों न हुए! रेणुका पुत्ररहित क्यों न हुई! विश्व कर्मशीलोंसे रहित क्यों न हुआ! जब कि मेरे डरसे यमराज अपने भैंसेको डण्डेसे पीटता हुआ उसपर समुद्रोंका मणियोंसे मिला हुआ पानी लादकर ब्राह्मणोंके घर-घर नहीं पहुँचा आता!' श्रीपरशुरामजीकी इस प्रकारकी ग्लानि आपको प्रसन्न करे ॥ ४ ॥ 'यदि सन्ध्या नहीं करता तो सारे संसारमें बड़ी निन्दा होगी, यदि सन्ध्या करता हूँ तो राजाओंके ही वंशवाले सूर्यको सिर नवाना पड़ेगा', सन्ध्या-समय देरतक ऐसे सोच-विचारमें पड़े हुए परशुरामकी ही साँसोंसे गरम होकर उनके नेत्रके कोनेसे बहते हुए आँसूरूपी जल-द्वारा दी जाती हुई वह अञ्जलि आपकी रक्षा करे ॥५॥ जमदग्निवंशके तिलक-से सुन्दर जान पड़नेवाले, वीर-व्रतसे सुशोभित होनेवाले, 'राम' नामवाले, राजाओंको मारते समय चमचमाती हुई कुल्हाड़ीरूपी शस्त्रवाले, वे मुनियोंके स्वामी परशुरामजी आपकी रक्षा करें जिन्होंने सम्पूर्ण मारे गए राजाओंके रक्तसे पितरोंको सन्तुष्ट किया और अश्वयज्ञमें भक्तिके मारे समुद्रसे घिरी पृथ्वीको ही हन्तकार (दानकी वस्तु) बना दिया ॥६॥ सदा युद्धसे ही प्रेम रखनेवाले, परशुरूपी शस्त्रवाले तथा राजाओंका नाश करनेवाले वे परशुरामजी आपको ऐश्वर्य दें जिन्होंने सहजमें ही राजाओंमें श्रेष्ठ सहस्रार्जुनके शिर, पैर और कन्धोंके पाससे बाहुएँ काटकर (सहज ही सहस्रार्जुन वृक्षकी जड़ें, फुनगी तथा चारों ओरकी डालियाँ काटकर उसे पर्वतकी चोटियोंपर गड़ाकर) उसे ही अपना विजयस्तम्भ बनाया ॥ ७ ॥

रामचन्द्र: पञ्चवटीमें कुटीके भीतर रहनेवाले, कमलके समान विशाल नेत्रवाले उस ब्रह्मका भजन करो जो खिले हुए नीले कमलके समान सुन्दर कान्तिवाले हैं और केवल लक्ष्मणजीके नेत्रोंसे ही जिनकी मित्रता है अर्थात् जिन्हें लक्ष्मणजी एकटक निहारते रहते हैं ॥१॥ खिले हुए स्वच्छ नीले कमलकी पँखुरीके समान श्याम रङ्गवाले, सीताजीके मनको प्यारे लगनेवाले, संसारमें प्रसिद्ध सुन्दर गुणोंवाले, बड़े-बड़े योगी और मुनियोंके हृदय रूपी मानसरोवरमें हंसकी भाँति विहार करनेवाले, संसार (जन्म-मरण) का नाश करनेवाले तथा रघुकुलकी शोभा बढ़ानेवाले, राम-नामवाले तेजस्वी पुरुषको प्रणाम है ॥२॥ दस सिरवाले रावणके सिर कटानेवाली बन्दरोंकी सेना या शिवजीकी देह ऐश्वर्य दे जो बड़े तेजस्वी रीछोंके स्वामी जाम्बवान्‌से युक्त है अथवा अत्यन्त तेजस्वी नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमासे युक्त है, जिसमें तार नामका भयङ्कर बन्दर कूद रहा है अथवा जिसमें तीसरे नेत्रकी भयावनी पुतली चमक रही है, नल सेनापतिको पाकर जो अत्यन्त बलवाली जान पड़ती है अथवा जो तीसरे नेत्रकी आगसे चमचमा रही है, ऊँची-ऊँची लहरोंवाला समुद्र जिसका रास्ता रोके हुए है अथवा कामदेवने धनुष उठाकर जिसपर हठात् चढ़ाई कर दी है, जो रामजीके वशमें रहनेवाली है अथवा जो पार्वतीजीके अधीन है, जो कुमुद बन्दरके रहनेसे अत्यन्त उजली है अथवा जो कुमुद फूलके समान उजली है, जो नील और सुग्रीव वानरोंसे सुशोभित है अथवा जो सुन्दर नीले रङ्गके गलेसे सुशोभित

मायस्तं पुरारेः कुमुदशुचि सलल्नीलसुग्रीवमङ्के सावज्ञं चापि सैन्यं दशवदनशिरश्छेदहेतुः श्रियेऽस्तु ॥३॥ एतौ द्वौ दशकण्ठकण्ठकदलीकान्तारकान्तिच्छिदौ वैदेहीकुचकुम्भकुङ्कुमरजःसान्द्रारुणाङ्काङ्कितौ । लोकत्राणविधानसाधुसवनप्रारम्भयूपौ भुजौ देयास्तामुरुविक्रमौ रघुपतेः श्रेयांसि भूयांसि वः ॥ ४ ॥ कनकनिकषभासा सीतयालिङ्गिताङ्गो नवकुवलयदामश्यामवर्णाभिरामः । अभिनव इव विद्युन्मण्डितो मेघखण्डः शमयतु मम तापं सर्वतो रामचन्द्रः॥५॥ कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य । विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥ ६ ॥ कल्याणोल्लाससीमा कलयतु कुशलं कालमेघाभिरामा काचित्साकेतधामा भवगहनगतिक्लान्तिहारिप्रणामा । सौन्दर्यह्रीणकामा धृतजनकसुतासादरापाङ्गधामा दिक्षु प्रख्यातभूमा दिविषदभिनुता देवता रामनामा ॥ ७ ॥ कारुण्यामृतनीरसाश्रितजनश्रीचातकानन्ददं शार्ङ्गाखण्डलचापमम्बुजभवाग्नीन्द्रादिबर्हिप्रदम् । चारुस्मेरमुखोल्लसज्जनकजासौदामिनीशोभितं श्रीरामाम्बुदमाश्रयेऽखिलजगत्संसारतापापहम् ॥ ८ ॥ कूर्मो मूलवदालवालवदपां राशिर्लतावद्दिशो मेघाः पल्लववत्प्रसूनफलवन्नक्षत्रसूर्येन्दवः । स्वामिन्व्योमतरुः क्रमे मम कियानित्युक्तवन्तं गां मारुतेः सीतान्वेषणमादिशन्दिशतु वो रामः सलज्जः श्रियम् ॥ ९ ॥ नमो रामपदाम्भोजं रेणवो यत्र सन्ततम् । कुर्वन्ति कुमुदप्रीतिमरण्यगृहमेधिनः ॥ १० ॥ परिणयविधौ भङ्क्त्वानङ्गद्विषो धनुरग्रतो जनकसुतया दत्तां कण्ठे स्रजं हृदि धारयन् । कुसुमधनुषा पाशेनेव प्रसह्य वशीकृतोऽवनतवदनो रामः पायात्त्रपाविनयान्वितः ॥११॥ बालक्रीडनमिन्दुशेखरधनुर्भङ्गावधि प्रह्वता ताते काननं

है ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजीकी अत्यन्त शक्तिशाली वे दोनों भुजाएँ आपको अत्यन्त सुख-सम्पत्ति दें जो दस सिरवाले रावणके गले रूपी केलेके घने वनकी सुन्दरता नष्ट करनेवाली हैं, जो जानकीजीके दोनों स्तनोंमें लगे कुङ्कुमकी रज लगनेसे सुन्दर लाल चिह्नवाली हैं और जो तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये साधुओं-द्वारा किए जाते हुए यज्ञके आरम्भ-यूप हैं ॥ ४ ॥ खिले हुए नीले कमलकी भाँति अत्यन्त सुन्दर नीले रङ्गवाले वे रामचन्द्र सब ओरसे मेरे दुःख दूर करें जो जानकीजीसे आलिङ्गन करके सोनेकी कसौटीके समान दिखाई देते हुए ऐसे सुन्दर जान पड़ते हैं मानो बिजलीसे भरे नये बादलके टुकड़े हों ॥ ५ ॥ कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला, वैकुण्ठ पानेके लिये चले हुए मोक्षकी इच्छावाले पुरुषके मार्गका भोजन, सुख-सम्पत्तिका भण्डार, पवित्र वस्तुओंमें सबसे अधिक पवित्र तथा धर्मरूपी वृक्षका बीज वह राम-नाम आपका कल्याण करे जिसका वर्णन करनेपर ही कवियोंकी वाणीको शान्ति मिलती है ॥ ६ ॥ अधिकसे अधिक कल्याण और सुख-सम्पत्तिवाले, काले मेघोंकी भाँति सुन्दर दिखाई देनेवाले, अयोध्यामें रहनेवाले, प्रणाम करनेमात्रसे जीवोंकी संसारके आड़े-टेढ़े मार्गसे चलनेकी थकावट दूर करनेवाले, अपनी सुन्दरतासे कामदेवको भी लज्जित करनेवाले और दसों दिशाओंमें प्रसिद्ध यशवाले—'राम' नामवाले वे भगवान् कुशलता दें जिन्हें श्रीजानकीजी अपनी चञ्चल तिरछी चितवनसे देखती हैं और देवता प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥ मेघके समान जान पड़नेवाले उन श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरण लेता हूँ जो दयारूपी अमृतके समान जलसे भरे हुए हैं, अपने भक्त और लक्ष्मीरूपी चातकको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, जिनका 'शार्ङ्ग' नामवाला धनुष ही इन्द्रधनुषके समान है, जो ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र आदि देवतारूपी मोरोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, अत्यन्त प्रसन्न मुखवाली जानकीजीरूपी बिजलीसे सुन्दर दिखाई देनेवाले हैं तथा सारे संसारकी तपन (कष्ट) नष्ट कर देनेवाले हैं ॥ ८ ॥ सीताको ढूँढनेके लिये आदेश देते समय जब हनुमान्जीने कहा कि 'हे नाथ! कछुआरूपी जड़वाला, समुद्ररूपी थालेवाला, दिशारूपी लतावाला, मेघोंरूपी पत्तोंवाला, ताराओंरूपी फूल और सूर्य-चन्द्ररूपी फलवाला यह आकाशरूपी वृक्ष मेरी उछालके सामने कितना है !' तब उनकी इस बातको सुनकर लजा जानेवाले रामचन्द्रजी आपको ऐश्वर्य दें ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके उस चरणकमलको प्रणाम है जिससे उड़ी हुई रज वनमें रहनेवाले गृहस्थोंको कुमुदिनीका आनन्द देती थी अर्थात् रामचन्द्रजीके चन्द्रमाके समान मुखके सामने उनके कोमल चरण खिली हुई कुमुदिनीसे जान पड़ते थे ॥ १० ॥ विवाहके समय कामदेवके शत्रु शिवजीका धनुष तोड़कर सामनेसे आती हुई जानकीजी-द्वारा पहनाई गई जयमाला हृदयमें धारण करते हुए, नम्रतापूर्वक लजाकर नीचे मुँह कर लेनेवाले वे रामचन्द्रजी रक्षा करें जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो फूलोंका धनुष धारण करनेवाला कामदेव अपने बन्धनसे उन्हें बलपूर्वक बाँध रहा हो ॥ ११ ॥

सेवनावधि कृपा सुग्रीवसख्यावधि। आज्ञा वारिधिबन्धनावधि यशो लङ्केशनाशावधि श्रीरामस्य पुनातु लोकवशता जानक्यपेक्षावधि ॥ १२ ॥ यस्तीर्थानामुपास्त्यागलितमलभरं मन्यते स्म स्वमेवं नाज्ञासीज्जज्ञिरे यन्ममचरणरजःपादपूतान्यमूनि। पादस्पर्शेन कुर्वन्झटिति विघटितग्रावभावामहल्यां कौसल्यासूनुरूनं व्यपनयतु स वः श्रेयसा च श्रिया च ॥ १३ ॥ योऽद्धा योद्धावधीत्तान्सपदि पलभुजः सम्पराये परा ये येनायेनाश्रितानां स्तुतिरवनमितेशानचापेन चापे। लङ्कालङ्कारहर्त्ता ककुभि-ककुभि यः कान्तया सीतयासीदूनो दूनोऽथ हृष्टः स विभुरवतु वः स्वःसभार्यः सभार्यः ॥ १४ ॥ यो रामो न जघान वक्षसि रणे तं रावणं सायकैर्हृद्यस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्या ह्यहं राघवः। मय्यास्ते भुवनावली परिवृता द्वीपैः समं सप्तभिः स श्रेयो विदधातु नस्त्रिभुवनत्राणैकचिन्तापरः ॥ १५ ॥ राज्यं येन पटान्तलग्नतृणवस्त्यक्तं गुरोराज्ञया पाथेयं परिगृह्य कार्मुकवरं घोरं वनं प्रस्थितः। स्वाधीनः शशिमौलिचापविषये प्राप्तो न वै विक्रियां पायाद्वः स विभीषणाग्रजनिहा रामाभिधानो हरिः ॥ १६ ॥ वन्दामहे महेशानचण्डकोदण्डखण्डनम्। जानकीहृदयानन्दचन्दनं रघुनन्दनम् ॥ १७ ॥ स्वर्णैणाजिनशायिनो योजितनयनो दशास्यदिग्भागे। मुहुरवलोकितचापः कोऽपि दुरापः स नीलिमा शरणम् ॥ १८ ॥

सीता—उन्मृष्टं कुचसीम्नि पत्त्रमकरं दृष्ट्वा हठालिङ्गनात्कोपो मास्तु पुनर्लिखाम्यमुमिति स्मेरे रघूणां वरे। कोपेनारुणितोऽश्रुपातदलितः प्रेम्णा च विस्तारितो दत्तो मैथिलकन्यया दिशतु नः क्षेमं कटाक्षाङ्कुरः ॥ १ ॥

हनूमान्—अशेषलङ्कापतिसैन्यहन्ता श्रीरामसेवाचरणैककर्त्ता। अनेकदुःखाहतलोकगोप्ता त्वसौ हनू-

---

श्रीरामजीका वह खेल जिसमें उन्होंने शिवजीका धनुष तोड़ डाला, वह उल्लास, जो वन जाते समय भी था; वह नम्रता, जो पिताके प्रति थी; वह कृपा, जिससे सुग्रीवसे भी मित्रता की गई; वह आज्ञा, जिससे समुद्रमें भी पुल बँध गया; वह यश, जो रावणका नाश होनेसे बढ़ा; वह संसारमें लिप्त रहना पवित्र करे, जिसके कारण वे वनोंमें सीताके वियोगमें रोते फिरे ॥ १२ ॥ अपने पैरसे छूकर पत्थर बनी हुई अहल्याका उद्धार करते हुए वे कौशल्याके पुत्र रामचन्द्रजी अपनी शोभा और ऐश्वर्यसे आपके दुःख दूर करें जो यह तो जानते हैं कि तीर्थोंमें स्नान करनेसे मेरे सब पाप धुल गए, पर यह नहीं मानते कि मेरे ही चरणोंकी धूलि लगनेसे ये सब तीर्थ पवित्र हो रहे हैं ॥ १३ ॥ युद्धमें मांसभक्षी शत्रुओंका विनाश करनेवाले, शिवजीका धनुष चढ़ानेवाले, बड़े-बड़े भाग्यशालियोंसे स्तुति की जानेवाले, लङ्काकी सारी शोभा धूलमें मिला डालनेवाले, सीताके वियोगसे पहले तो सर्वत्र दुखी होनेवाले किन्तु उसके पश्चात् शत्रुका नाश करके अपनी प्राणप्रियासे मिलकर प्रसन्न होनेवाले तथा देवताओंकी सभामें सम्मान प्राप्त करनेवाले व्यापक भगवान् रामचन्द्र भगवती जानकी सहित आपकी रक्षा करें ॥ १४ ॥ 'रावणके हृदयमें सदा जानकी बसती है, जानकीके हृदयमें मैं बसता हूँ और मेरे हृदयमें सातों द्वीप और चौदहों भुवन रहते हैं, अतः मेरे बाणके लगते ही सबका नाश हो जायगा', इस प्रकार तीनों लोकोंको बचानेकी चिन्ता करते-हुए जिन्होंने युद्ध-भूमिमें भी रावणके हृदयमें बाण नहीं मारा वे रामचन्द्रजी कल्याण करें ॥ १५ ॥ विभीषणके बड़े भाई रावणको मारनेवाले वे 'राम' नामवाले भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्होंने अपने पिताकी आज्ञा मानकर सारे राज्यको वस्त्रके छोरमें लगे पानीकी भाँति छोड़ दिया, एकमात्र धनुषका सहारा लेकर जो भयङ्कर वनको चल पड़े तथा चन्द्रमाका मुकुट पहननेवाले शिवजीका धनुष तोड़कर सबको जीत लेनेपर भी जिन्हें तनिक भी घमण्ड नहीं हुआ ॥ १६ ॥ उन रामचन्द्रजीको प्रणाम करता हूँ जिन्होंने शङ्करजीका अत्यन्त कठोर धनुष तोड़ डाला और जो जानकीजीका हृदय प्रसन्न करनेके लिये चन्दन हैं ॥ १७ ॥ उन किसी अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होनेवाले नीलेपनकी शरण लेता हूँ जो सोनेके मृगकी खालपर सोए हुए भी दस मुँहवाले रावणकी दिशा (दक्षिण) की ओर देखकर बार-बार अपने धनुषको ताकते हैं ॥ १८ ॥

सीता : बलपूर्वक आलिङ्गन करनेसे स्तनोंकी चित्रकारी मिटी हुई देखकर 'जानकीजीको क्रोध न हो' ऐसा सोचकर 'मैं फिरसे वैसी ही चित्रकारी किए देता हूँ ?' ऐसा कहकर हँसते हुए रामजीको तिरछी चितवनसे देखती हुई जानकीजीके वे कटाक्ष हम लोगोंको ऐश्वर्य दें जो क्रोधके मारे लाल-लाल, आँसू गिरनेसे भींगे हुए और प्रेमके कारण फैले हुए हैं ॥ १ ॥

हनूमान् : रावणकी सारी सेनाका नाश करनेवाले, श्रीरामजीके चरणोंकी सेवा करनेवाले और अनेक प्रकारके दुखोंसे

मांस्तव सौख्यकर्त्ता ॥ १ ॥ कृतक्रोधे यस्मिन्नमरनगरी मङ्गलरवा नवातङ्का लङ्का समजनि वनं वृश्चति सति । सदा सीताकान्तप्रणतिमतिविख्यातमहिमा हनूमान्-व्याघ्रः कपिकुलशिरोमण्डनमणिः ॥ २ ॥

रामकृष्णौ—त्रातः काकोदरो येन द्रोग्धापि करुणात्मना । पूतनामारणख्यातः स मेऽस्तु शरणं प्रभुः ॥१॥ मर्दितरावणकंसौ सरयूयमुनाविहारिणौ देवौ। अर्पितविप्रकुमारौ हरिपतिहरिकेतनप्रियौ वन्दे ॥ २ ॥ यः पूतनामारणलब्धकीर्त्तिः काकोदरो येन विनीतदर्पः । यशोदयालङ्कृतमूर्त्तिरव्यात्पतिर्यदूनामथवा रघूणाम्॥३॥

बलभद्रः—उष्णालु क्वचिदर्कधामनि मनाङ् निद्रालु शीतानिले हालानां गृहयालु चुम्बदलकृल्लज्जालु जायामुखम् । नित्यं निष्पतयालु तिर्यगवनीशय्याशयालु क्षणं गीतेभ्यः स्पृहयालु धामधवलं दीने दयालु श्रये ॥ १ ॥ निष्पात्याशु हिमांशुमण्डलमधः पीत्वा तदन्तःसुधां कृत्वैनं चषकं हलस्त्रिति हलापानाय कौतूहलात् । भो देव द्विजराजि मादृशि सुरास्पर्शोऽपि न श्रेयसे मां मुञ्चेति तदर्थितो हलधरः पायादपायाज्जगत् ॥ २ ॥ प्रेमोच्चामितरेवतीमुखगतामास्वाद्य कादम्बरीमुन्मत्तं क्वचिदुत्पतत्क्वचिदपि भ्राम्यत्क्वचित्प्रस्खलत् । रक्तापाङ्गमधीरलाङ्गलमलिश्यामाम्बराडम्बरं क्लेशं नः कवलीकरोतु सकलं पाकाभिरामं महः ॥ ३ ॥ फालाग्रेण समुद्धरन्कुरुपुरं दृप्तप्रमादं हरन्स्मारं स्मारमनादरोक्तिमविदां तां तां किरन्सुस्मितम् । संहारोऽसमये कुतोऽयमिति तैर्निर्मुक्तदर्पैः स्तुतः शान्तो दीनदयानिधिः स भगवान्पायात्प्रलम्बान्तकः ॥ ४ ॥

कृष्णः—अङ्गुल्या कः कपाटं प्रहरति कुटिले माधवः किं वसन्तो नो चक्री किङ्कुलालो नहि धरणिधरः

नष्ट होते हुए संसारकी रक्षा करनेवाले वे हनुमान्‌जी आपको सुखी रक्खें ॥ १ ॥ वन्दरोंके कुलरूपी सिरमें जड़े मणिके समान अत्यन्त श्रेष्ठ वे हनुमान्‌जी आपकी रक्षा करें जो सीतापति रामजीके चरणोंको प्रणाम करनेमें अपना मन लगाए रहते हैं, जिनकी महिमा सारे संसारमें प्रसिद्ध है तथा जिनके क्रोधपूर्वक अशोकवाटिकाको उजाड़ते समय लङ्कामें एक नये प्रकारका भय छा गया और देवताओंके नगरमें आनन्दसे गाने-बजानेका स्वर गूँजने लगा ॥ २ ॥

राम और कृष्ण : वे दयालु कृष्ण भगवान् मुझे शरण दें जिन्होंने सबसे द्रोह करनेवाले कालिय नागकी भी रक्षा की और जो पूतना राक्षसीको मारनेके लिये प्रसिद्ध हैं तथा पवित्र नामवाले और युद्धमें यश पानेवाले वे रामचन्द्रजी मुझे शरण दें जिन्होंने अत्यन्त निडर और अपराध करनेवाले कौएकी भी रक्षा की ॥१॥ क्रमशः रावण और कंसका मर्दन करनेवाले, सरयू और यमुनामें विहार करनेवाले, ब्राह्मणोंको उनके मरे हुए पुत्र देनेवाले तथा सुग्रीव और अर्जुनके अत्यन्त प्यारे उन दोनों देवों (राम और कृष्ण)को प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ पूतनाको मारकर यश पानेवाले, नागके घमण्डको चूर्ण करनेवाले तथा यशोदा-द्वारा सजाई गई सुन्दर देहवाले वे यदुवंशके स्वामी (कृष्णजी) अथवा पवित्र नामवाले, युद्धमें यश पानेवाले, ढीठ कौएका घमण्ड नष्ट करनेवाले तथा यश और दयासे सजी हुई सुन्दर देहवाले वे रघुवंशके स्वामी (रामचन्द्रजी) रक्षा करें ॥ ३ ॥

बलभद्र : दीनोंपर दया करनेवाले, कहीं सूर्यकी कड़ी धूपमें किञ्चित् उष्ण होनेवाले, ठण्ढे वायुमें थोड़ा सोनेवाले, हल ग्रहण करनेवाले, पत्नीके मुखका बार-बार चुम्बन करनेमें लजानेवाले, सदा ही ऊँची-नीची पृथिवीके बिछौनेपर सोनेवाले और गानेसे भी थोड़ा प्रेम करनेवाले उस उज्ज्वल तेजकी मैं शरण लेता हूँ ॥१॥ हल धारण करनेवाले वे बलभद्र सदा सारे संसारकी रक्षा करें जिन्होंने चन्द्रमण्डलको नीचे गिराकर उसमेंका सब अमृत पीकर जब मदिरा पीनेके लिये उसे खेल-खेलमें ही प्याला बना लिया तब चन्द्रमा जिनसे यह प्रार्थना करके ही छूट पाए कि 'हे देव! मैं द्विजराज हूँ, मुझसे मदिरा छू भी गई तो मेरा कल्याण नहीं है अतः मुझे कृपया छोड़ दीजिए' ॥ २ ॥ प्रेमपूर्वक रेवतीके मुँहको नवाकर उसमेंकी मदिरा चखकर, मतवाले होकर कहीं घूमते, कहीं गिरते, कहीं उठते हुए, लाल नेत्रवाले, चञ्चल हलवाले तथा भौंरोंके समान श्याम वस्त्र पहननेवाले वे सिद्धियोंसे शोभित तेज हमारे सब दुःख नष्ट कर दें ॥ ३ ॥ प्रलम्बासुरको मारनेवाले तथा दीनोंपर अत्यन्त दया करनेवाले वे वे भगवान् बलभद्र रक्षा करें जिन्होंने मूर्ख कौरवोंकी अपमानभरी बोलीका स्मरण कर-करके एक-एक बातपर मुस्कराते हुए कुरुपुरको अपने हलकी नोकसे खींचकर उन घमण्डियोंका घमण्ड चूर कर डाला और तब 'अरे यह असमयमें कैसे प्रलय होने लगा' इस प्रकार डरते हुए, घमण्ड छोड़कर उनके प्रार्थना करनेपर प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥

कृष्ण : जैसे ही कृष्णजीने सत्यभामाका द्वार खटखटाया तो सत्यभामा भीतरसे बोलीं—कौन उँगलियोंसे किवाड़पर

किं द्विजिह्वः फणीन्द्रः । नाहं घोराहिमर्दी किमुत खगपतिर्नो हरिः किं कपीन्द्र इत्येवं सत्यभामाप्रतिवचनजितः पातु वश्चक्रपाणिः ॥ १ ॥ अतसीकुसुमोपमेयकान्तिर्यमुनातीरकदम्बमध्यवर्त्ती । नवगोपवधूविनोदशाली वनमाली वितनोतु मङ्गलं वः ॥ २ ॥ अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दारविस्रंसनः स्तब्धाकर्षणदृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम् । दृप्यद्दानववध्यमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां भ्रंशः कंसरिपोर्व्यपोहयतु वोऽश्रेयांसि वंशीरवः ॥३॥ अभिनवनवनीतप्रीतमाताम्रनेत्रं विकचनलिनलक्ष्मीस्पर्धिसानन्दवक्त्रम् । हृदयभवनमध्ये योगिभिर्ध्यानगम्यं नवगगनतमालश्यामलं कञ्चिदीडे ॥ ४ ॥ अभिनवनवनीतस्निग्धमापीतदुग्धं दधिकणपरिदिग्धं मुग्धमङ्गं मुरारेः । दिशतु भुवनकृच्छ्रच्छेदितापिच्छगुच्छच्छवि नवशिखिपिच्छालाञ्छितं वाञ्छितं वः ॥ ५ ॥ अम्ब श्राम्यसि तिष्ठ गोरसमहं मथ्नामि मन्थानकं प्रालम्ब्य स्थितमीश्वरं सरभसं दीनाननो वासुकिः । सासूयं कमलालया सुरगणः सानन्दमुद्वन्द्वयं राहुः प्रैक्षत यं स वोऽस्तु शिवदो गोपालबालो हरिः ॥ ६ ॥ अर्धोन्मीलितलोचनस्य पिबतः पर्याप्तमेकं स्तनं सद्यःप्रस्नुतदुग्धदिग्धमपरं हस्तेन सम्मार्जतः । मात्रा चाङ्गुलिलालितस्य चिबुके स्मेरायमाणे मुखे विष्णोः क्षीरकणाम्बुधामधवला दन्तद्युतिः पातु वः ॥ ७ ॥ अवलोकितमनुमोदितमालिङ्गितमङ्गनाभिरनुरागैः । अधिवृन्दावनकुञ्जं मरकतपुञ्जं नमस्यामः ॥८॥ अवेमव्यापाराकलनमतुरीस्पर्शमचिरादनुन्मीलत्तन्तुप्रकरघटनायासमसकृत् । विपीदत्पाञ्चालीविपदपनयैक-

---

खटखट करता है? बाहरसे श्रीकृष्णजी बोले—मैं हूँ माधव। सत्यभामा—माधव कौन ? क्या वसन्त हो ? श्रीकृष्ण—नहीं चक्री (चक्र धारण करनेवाला) हूँ । सत्यभामा—क्या कुम्हार हो? श्रीकृष्ण—नहीं, मैं धरणीधर (पृथ्वीको धारण करनेवाला) हूँ । सत्यभामा—क्या दो जीभवाले साँप हो ? श्रीकृष्ण—नहीं मैं भयङ्कर साँपका मर्दन करनेवाला हूँ। सत्यभामा—क्या गरुड़ हो ? श्रीकृष्ण—नहीं मैं हरि (विष्णु) हूँ । सत्यभामा—अरे, बन्दर हो ? बातचीतमें इस प्रकार सत्यभामासे हारे हुए वे कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ १ ॥ अलसीके फूलकी कान्तिके समान श्याम रङ्गवाले वे वनमाली (श्रीकृष्णजी) आपका कल्याण करें जो यमुनाके तटपर कदम्बके नीचे खड़े हुए नई-नई गोपियोंसे मनबहलाव करते हैं ॥ २ ॥ कंसके शत्रु भगवान् श्रीकृष्णकी वंशीसे निकले हुए वे स्वर आप लोगोंके दुःख दूर करें जो गोपियों के भीतर घुसकर उन्हें मोहित करके उनके सिर हिला-हिलाकर उनके माथेसे मन्दारपुष्प गिरा देते हैं, जो मृगके समान नेत्रवाली स्त्रियोंको ज्यों की त्यों बुला लेने और उनकी दृष्टिको प्रसन्न करनेके लिये मानो मन्त्र हैं और जो अत्यन्त मतवाले राक्षसोंसे कष्ट पाते हुए देवताओंकी भारी विपत्तियोंके अन्त हैं ॥ ३ ॥ भगवान् कृष्णके उस ताजे मक्खनको चाहनेवाले, लाल-लाल नेत्रवाले तथा अत्यन्त प्रसन्न मुँहको प्रणाम करता हूँ जो खिले हुए कमलकी सुन्दरतासे मानो होड़ कर रहा है, योगी लोग अपने हृदयरूपी घरमें ध्यान करके ही जिसे देख पाते हैं तथा जो स्वच्छ आकाश और तमालके समान श्याम रङ्गवाला है ॥४॥ संसारके सारे दुःख दूर करनेवाला तमालके गुच्छोंकी कान्तिके समान कान्तिवाला तथा मोरोंकी नई-नई पूछोंसे सजा हुआ वह श्रीकृष्णका मुख आपकी इच्छाएँ पूर्ण करे जो तत्काल निकला हुआ मक्खन खानेसे स्निग्ध है, अभी ही दूध पी चुका है और जिसमें अभी भी दहीके कण लिपटे हैं ॥ ५ ॥ 'हे माँ ! तुम थक गई हो, ठहर जाओ, अब मैं दूध मथे देता हूँ' ऐसा कहकर मथनी हाथमें लेते ही जिन्हें वासुकिने यह सोचकर अत्यन्त दीन होकर देखा कि 'कहीं फिर मुझे मथनीमें न लिपटना पड़े', लक्ष्मीने यह सोचकर ईर्ष्याके साथ देखा कि 'फिर मेरी कोई दूसरी सौत (लक्ष्मी) न निकल आवे', देवताओंने यह सोचकर प्रसन्नतासे देखा कि 'फिर अमृत पीनेको मिलेगा' और राहुने यह सोचकर डरके साथ देखा कि 'फिर सिर कटनेका समय आया जान पड़ता है,' वे गोपके बालक कृष्णजी आपको सुख दें ॥ ६ ॥ आधी आँखें मूँदकर, जी भरकर माँका एक स्तन पीते हुए, दूध झरते हुए दूसरे स्तनपर हाथ फेरते हुए तथा माताकी उँगलियोंसे ठोड़ी सहलाए जानेपर मुस्कराते हुए श्रीकृष्णजीके दाँतोंकी वह कान्ति आपकी रक्षा करे जो अपने तेजसे दूधकी बूँदोंके समान चमचमा रही है ॥ ७ ॥ मरकत मणिके ढेरकी भाँति श्याम रङ्गवाले उन कृष्णजीको प्रणाम करता हूँ जिन्हें वृन्दावनके कुञ्जोंमें गोपियोंने बड़े प्रेमसे देखा, जिनकी प्रशंसा की और जिनका आलिङ्गन किया ॥ ८ ॥ स्नेहपूर्वक सङ्कटमें पड़ी हुई द्रौपदीकी विपत्ति दूर करनेके लिये गरुड़के चिह्नवाली पताकावाले कृष्ण भगवान्का वह तत्काल वस्त्रका बुनना हमारी रक्षा करे जिसमें न तो वेमका हिलना दिखाई पड़ा, न तुरी दिखाई दी और न बार-बार

प्रणयिनः पटानां निर्माणं पतगपतिकेतोरवतु नः ॥ ९ ॥ अव्यक्तमक्षरमुपास्य बभूव कश्चित्स्वं लब्धवर्णमवगत्य कृतार्थमानी। सव्यत्रिभङ्गललितस्फुरणादमन्दनन्दोत्थया जडतयैव वयं कृतार्थाः ॥ १० ॥ अस्मिन्कुञ्जे विनापि प्रचलति पवनाद्वर्त्तते कोऽपि नूनं पश्यामः किं न गत्वेत्यनुसरति गणे भीतभीतेऽर्भकाणाम्। तस्मिन्राधासखो वः सुखयतु विलसल्लीलया कैटभारिर्व्यात्तास्यो मृगारिप्रबलघुरघुरारावरौद्राग्निनादान् ॥ ११ ॥ आताम्रे नयने स्फुरन्कुचभरः श्वासो न विश्राम्यति स्वेदाम्भःकणदन्तुरं तव मुखं हेतुस्तु नो लक्ष्यते। धिक्को वेद मनः स्त्रिया इति गिरा रुष्टां प्रियां भीपर्यस्तस्यास्तत्क्षणकातरेक्षणपरिस्पृष्टो हरिः पातु वः ॥ १२ ॥ आनन्दधामनि चिदेकरसेऽद्वितीये तस्मिन्पदेऽस्तु मम चित्तमगोचरेऽपि। यत्सङ्ग्जस्थितिजुषां सुहृदां कुमारादीनामधीनमिव गोचरतामुपैति ॥ १३ ॥ आनन्दमादधतमायतलोचनानामानीलमावलितकन्धरमात्तवंशम्। आपादमामुकुटमाकलितामृतौघसाकारमाकलयताममुमान्तरज्ञः ॥ १४ ॥ आनन्देन यशोदया समदनं गोपाङ्गनाभिश्चिरं साशङ्कं बलविद्विषा सकुसुमं सिद्धैः पृथिव्याकुलम्। सेर्ष्यं गोपकुमारकैः सकरुणं पौरैः सुरैः सस्मितं यो दृष्टः स पुनातु वो मधुरिपुः प्रोत्क्षिप्तगोवर्धनः ॥ १५ ॥ इन्दीवरदलश्याममिन्दिरानन्दकन्दलम्। वन्दारुजनमन्दारं वन्देऽहं यदुनन्दनम् ॥ १६ ॥ उत्फुल्लमानसरसीरुहचारुमध्यानिर्यन्मधुव्रतभरद्युतिहारिणीभिः। राधाविलोचनकटाक्षपरम्पराभिर्दृष्टो हरिस्तव सुखानि तनोतु कामम् ॥ १७ ॥ अंसालम्बितवामकुण्डलधरं मन्दोन्नतभ्रूलतं किञ्चित्कुञ्चितकोमलाधरपुटं साचिप्रसारीक्षणम्। आलोलाङ्गुलिपल्लवैर्मुरलिकामापूरयन्तं मुदा मूले कल्पतरोस्त्रिभङ्गललितं ध्याये जगन्मोहनम् ॥ १८ ॥ कठिनतरदामवेष्ट-

---

सूतोंको सँजोने-सँभालनेका परिश्रम ही करना पड़ा ॥ ९ ॥ दिखाई न पड़नेवाले तथा माया-जालसे परे रहनेवाले निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करके कोई अपनेको भले ही कृतकृत्य समझकर धन्य हो जायँ पर हम तो उन तिरछे खड़े हुए श्रीकृष्णकी झाँकीके दर्शनसे उत्पन्न हुए आनन्दकी मस्तीमें ही अपनेको धन्य समझते हैं ॥ १० ॥ राधाके प्रिय और कैटभके शत्रु वे श्रीकृष्णजी आपको सुख पहुँचावें जिन्होंने खेल-खेलमें ही कुञ्जमें छिपकर सिंहके समान ऐसा भयङ्कर घुरघुर शब्द किया कि साथके सब ग्वालवाल ऐसा कहकर डरके मारे एकके पीछे एक होकर उस कुञ्जकी ओर चल पड़े 'यहाँ कुछ आहट हो रही है, वायु भी नहीं बहता, अवश्य ही कोई इस कुञ्जमें होगा, चलो, देखें, कौन है!' ॥ ११ ॥ 'तुम्हारे नेत्र लाल हैं, स्तन ऊपर-नीचे हो रहे हैं, साँस नहीं थम रही है और मुँहपर पसीनेकी बूँदें निकल आई हैं, कुछ समझ में नहीं आता क्या कारण है! धिक्कार है! स्त्रीके मनकी बात कौन जान सकता है!' अपनी कही हुई इस बातसे क्रोधित प्रियतमाको फटकारते हुए वे श्रीकृष्णजी आपकी रक्षा करें जिन्हें तत्काल ही वह बड़ी कातर दृष्टिसे देखने लगी ॥ १२ ॥ उन भगवान्‌के चरणोंमें मेरा चित्त रम जाय जो आनन्दके भण्डार हैं, प्रकाशरूप हैं, सदा एकसे रहते हैं, जिनके समान कोई दूसरा नहीं है, जो इन्द्रियोंसे नहीं जाने जाते और जो इस रूपमें दिखाई पड़ते हैं मानो व्रजमें रहनेवाले सब मित्रों और बालकोंके वशमें हों ॥ १३ ॥ बड़े-बड़े नेत्रवाली स्त्रियोंको आनन्द देनेवाले, श्याम रङ्गवाले, झुके हुए गोल और ऊँचे कन्धोंवाले, श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न तथा सिरसे पैरतक अमृतके ढेरके समान जान पड़नेवाले श्रीकृष्णजी हम लोगोंके हृदयके भीतर आकर अपना रूप दिखावें ॥ १४ ॥ मधु राक्षसको मारनेवाले वे कृष्ण भगवान् आपको पवित्र करें जिन्हें गोवर्धन पर्वत उठाते समय यशोदाने आनन्दसे, गोपियोंने काम-भावसे, कंसने शङ्कित होकर, सिद्धोंने फूल बरसाकर, पृथिवीने व्याकुल होकर, ग्वालबालोंने ईर्ष्याके साथ, गाँववालोंने दयापूर्वक और देवताओंने मुस्कराहटके साथ देखा था ॥ १५ ॥ नीले कमलकी पँखुड़ीके समान श्याम रङ्गवाले, लक्ष्मीजीका आनन्द अत्यधिक बढ़ानेवाले तथा यदुवंशियोंको आनन्द देनेवाले उन श्रीकृष्णको प्रणाम करता हूँ जो भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये मानो कल्पवृक्ष हैं ॥ १६ ॥ वे कृष्णजी आपकी इच्छाएँ पूर्ण करें और आपको सुख दें जिन्हें राधाजी अपनी उस तिरछी चितवनसे देख रही हैं जिसने मानो मानसरोवरमें खिले हुए कमलसे निकलनेवाले भौंरोंकी शोभा चुरा ली हो ॥ १७ ॥ मैं उन श्रीकृष्णजीका ध्यान करता हूँ जो कल्पवृक्षके तले तिरछे खड़े होकर प्रसन्नतासे अपनी चञ्चल उँगलियोंसे मुरलीमें स्वर भरते हैं, जिनके बाएँ कानमें कन्धेतक कुण्डल लटकता है, जिनकी भौंहें कुछ ऊपरको खिंची हुई हैं, जिनके नेत्र बड़े-बड़े और बाँके हैं, जिन्होंने वंशी फूँकनेके लिये अपने

नलेखासन्देहदायिनो यस्य। राजन्ति वलिविभङ्गाः स पातु दामोदरो भवतः ॥ १९ ॥ कण्ठालिङ्गनमङ्गलं घनकुचाभोगोपभोगोत्सवं श्रोणीसङ्गमसौभगञ्च सततं मत्प्रेयसीनां पुरः। प्राप्तुं कोऽयमितीर्ष्ययेव यमुनाकूले बलाद्यः स्वयं गोपीनामहरद्दुकूलनिचयं कृष्णः स पुष्णातु नः ॥ २० ॥ कनककलशस्वच्छे राधापयोधरमण्डले नवजलधरश्यामामात्मद्युतिं प्रतिबिम्बिताम्। असितसिचयप्रान्तभ्रान्त्या मुहुर्मुहुरुत्क्षिपञ्जयति जनितव्रीडाहासप्रियाहसितो हरिः ॥ २१ ॥ कपोले पत्रालीं पुलकिनि विधातुं व्यवसितः स्वयं श्रीराधायाः करकलितवर्त्तिर्मधुरिपुः। अभूद्वक्त्रेन्दौ यन्निहितनयनः कम्पितभुजस्तदेतत्सामर्थ्यं तदभिनवरूपस्य जयति ॥ २२ ॥ कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुं करे कङ्कणम्। सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावलीं बिभ्रत्स्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः ॥ २३ ॥ कस्त्वं कृष्णमवेहि मां किमिह ते मन्मन्दिराशङ्कया युक्तं तन्नवनीतभाजनपुटे न्यस्तः किमर्थं करः। कर्त्तुं तत्र पिपीलिकापनयनं सुप्ताः किमुद्बोधिता बाला वत्सगतिं विवेक्तुमिति सञ्जल्पन्हरिः पातु वः ॥ २४ ॥ कान्ते विलासिनि कलावति पद्मनेत्रे नित्यं त्वयि प्रियतमे रमते मनो मे। इत्थं भवन्तमुरुभावनया वदन्तं श्रीकृष्ण मां बुधजना अपि हा हसन्ति ॥ २५ ॥ कालिन्दीपुलिनोदरेषु मुसली यावद्गतः क्रीडितुं तावत्कर्बुरिकापयः पिब हरे वर्धिष्यते ते शिखा। इत्थं बालतया प्रतारणपराः श्रुत्वा यशोदागिरः पायाद्वः स्वशिखां स्पृशन्प्रमुदितः क्षीरेऽर्धपीते हरिः ॥ २६ ॥ कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं गच्छन्तीमनु-

---

नीचेके कोमल ओठको कुछ सिकोड़ लिया है और जो सारे संसारको मोहित किए हुए हैं। ॥ १८ ॥ वे दामोदर भगवान् आपकी रक्षा करें जिनके पेटपर शोभित होनेवाली त्रिवलीको देखकर यह भ्रम होने लगा है कि रस्सीसे कसकर बाँधे जानेके कारण उसकी ही तीन साटें पड़ गई हैं ॥ १९ ॥ 'मेरी प्यारी गोपियोंको गले लगानेका सुख, उनके पुष्ट स्तनोंके उपभोगका आनन्द और उनके नितम्ब भागसे संयोग करनेका सौभाग्य मेरे रहते कौन पाना चाहता है' इस प्रकारकी ईर्ष्यासे ही मानो जिसने यमुनाके तीरपर बलपूर्वक गोपियोंके वस्त्र चुराए हों वे कृष्णजी हमारा पालन करें ॥ २० ॥ सोनेके कलशोंके समान कान्तिवाले राधाके स्तनोंपर पड़ती हुई नये मेघोंके समान श्याम रङ्गवाली अपनी परछाईंको भ्रमसे काली साड़ीका आँचल समझकर उसे बार-बार हटानेका प्रयत्न करते हुए उन कृष्ण भगवान्की जय हो जिन्हें देखकर लजाती और हँसती हुई राधा उनकी खिल्ली उड़ा रही हैं ॥ २१ ॥ उस निराले चित्रकारके रूपवाले श्रीकृष्णजीकी उस कलाकी जय हो कि राधाजीके पुलकित गालोंपर चित्रकारी करनेके लिये ज्योंही हाथमें तूलिका लेकर तैयार हुए कि उनके सामने पहुँचते ही वे एकटक होकर चित्रकारी भूलकर उनका कमल जैसा मुँह ताकने लगे और उनके हाथ काँपने लगे ॥२२॥ गोपियोंसे घिरे हुए तथा ग्वालोंमें चूड़ामणिके समान उन कृष्णजीकी जय हो जो अपने चौड़े माथेपर कस्तूरीका तिलक, छातीपर कौस्तुभ मणि, नाकके नथनेमें मोतीका बेसर, हाथमें वंशी, गलेमें मोतियोंकी माला, हाथमें कङ्गन तथा सारी देहमें हरिचन्दनके लेपसे सुशोभित हैं ॥ २३ ॥ कोई गोपी अपने घर आकर दही चुराते हुए कृष्णसे कहती है—'तुम कौन हो ?' कृष्णजी बोले—'मैं कृष्ण हूँ,' गोपी—'तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे ?' कृष्ण—'मैं धोखेसे अपना घर समझकर चला आया।' गोपी—'ठीक है, पर इस मक्खनकी मटकीमें क्यों हाथ डाला ?' कृष्ण—'उसमें चींटियाँ पड़ी हुई थीं, उन्हींको हटा रहा था।' गोपी—'अच्छा, तो तुमने सोते हुए बालकोंको क्यों जगाया ?' कृष्ण—'बछड़े सब न जाने कहाँ चले गए होंगे, उन्हें ढूँढ़नेके लिये ही मैंने इन्हें जगाया है।' इस प्रकार गोपीसे बातें करनेवाले कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ हे श्रीकृष्णजी ! यद्यपि मैं शुद्ध भावनासे ही आपसे कहती हूँ कि 'अत्यन्त सुन्दर, विलासी, चतुर, कमलके समान नेत्रवाले और अत्यन्त प्रिय आपमें ही मेरा मन सदा रमता है,' तथापि खेद है कि बड़े-बड़े बुद्धिमान् लोग भी यह सुनकर मेरी हँसी उड़ाते हैं ॥ २५ ॥ वे कृष्णजी आपकी रक्षा करें जिनसे माँने खिलवाड़के लिये जैसे ही कहा कि 'कृष्ण ! जबतक बलराम यमुना किनारे खेलने गए हैं तबतक तुम कबरी गायका दूध पी लो तो तुम्हारी चोटी बढ़ जायगी,' वैसे ही वे उस गायका दूध पीने लगे और आधा दूध पीकर तत्काल ही चोटी छूकर देखने लगे कि बढ़ी या नहीं ॥ २६ ॥ यमुनाके तीरपर खेल-खेलमें रूठी हुई, आँसू बहाती हुई तथा रास छोड़कर जाती हुई राधाके पीछे-

गच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्। तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गतेरक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः ॥ २७ ॥ कासि त्वं वद चौरकारिणि कुतः कस्त्वं पुरो यामिकः किं ब्रूषे मुषितौ सुवर्णकलशौ भूपस्य केन त्वया। कुत्र स्तः प्रकटौ तवाञ्चलतटे कुत्रेति तत्पश्यतामित्युक्ते धृतवल्लवीकुचयुगस्त्वां पातु पीताम्बरः ॥ २८ ॥ किं विश्राम्यसि कृष्ण भोगिभवने भाण्डीरभूमीरुहि भ्रातर्यासि न दृष्टिगोचरमितः सानन्दनन्दास्पदम्। राधाया वचनं तदध्वगमुखान्नन्दान्तिके गोपतो गोविन्दस्य जयन्ति सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भा गिरः ॥ २९ ॥ किं युक्तं वत मामनन्यमनसां वक्षःस्थलस्थायिनीं भक्तामप्यवधूय कर्तुमधुना कान्तासहस्रं तव। इत्युक्त्वा फणभृत्फणामणिगतां स्वामेव मत्वा तनुं निद्राच्छेदकरं हरेरवतु वो लक्ष्म्या विलक्षस्मितम् ॥ ३० ॥ कुञ्चिताधरपुटेन पूरयन्वंशिकां प्रचलदङ्गुलिक्रमः। मोहयन्निखिलवामलोचनाः पातु कोऽपि नवनीरदच्छविः ॥ ३१ ॥ कृष्ण त्वं नवयौवनोऽसि चपलाः प्रायेण गोपाङ्गनाः कंसो भूपतिरब्जनालमृदुलग्रीवा वयं गोदुहः। तद्याचेऽञ्जलिना भवन्तमधुना वृन्दावनं मद्विना मा यासीरिति नन्दगोपवचसा नम्रो हरिः पातु वः ॥ ३२ ॥ कृष्ण त्वं पठ किं पठामि ननु रे शास्त्रं किमु ज्ञायते तत्त्वं कस्य विभोः स कस्त्रिभुवनाधीशश्च तेनापि किम्। ज्ञानं भक्तिरथो विरक्तिरनया किं मुक्तिरेवास्तु ते दध्यादीनि भजामि मातुरुदितं वाक्यं हरेः पातु वः ॥ ३३ ॥ कृष्णेनाम्ब गतेन रन्तुमसकृन्मृद्भक्षिता स्वेच्छया सत्यं कृष्ण क

पीछे उन्हें मनानेके लिये चले हुए कृष्णजी उनके न लौटनेपर उनकी प्रतिमाके चरणमें ही अपना चरण उलझाकर (रासका सुख प्राप्त करते हुए) रोमाञ्चित हो गए। कंसके शत्रु कृष्णका वह अनोखा मनावन आपका पालन करे जिससे राधाजी तत्काल प्रसन्न होकर उन्हें देखने लगीं ॥ २७ ॥ किसी गोपीको देखकर कृष्णजीने सहसा उससे पूछा—'ऐ चोरी करनेवाली ! तू कौन है ? कहाँ रहती है ?' गोपीने पूछा—'तुम कौन हो ?' कृष्ण—'मैं नगर-रक्षक हूँ।' गोपी—'क्या बात है ?' कृष्ण—'राजाके दो सोनेके कलश चोरी गए हैं।' गोपी—'किसने चुराए ?' कृष्ण—'तूने और किसने !' गोपी—'मेरे पास कहाँ है ?' कृष्ण—'सामने ही तो तेरे आँचलके भीतर दिखाई दे रहे हैं।' इस बातको सुनकर जैसे ही उसने यह कहकर अपना आँचल उघाड़ा कि 'देख लो, कहाँ हैं,' वैसे ही उसके दोनों स्तन पकड़कर, 'यही तो हैं' कहनेवाले पीताम्बरधारी कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ २८ ॥ नन्द बाबाके घर रातको अतिथिके रूपमें टिकनेवाले किसी व्यक्तिने आकर कृष्णसे राधाका सन्देश कहा—'कृष्ण ! साँपोंके घर इस भाण्डीर नामक वट-वृक्षके तले क्यों घूसते हो। सन्ध्या हो गई है। आनन्दसे अपने (नन्दके) घर क्यों नहीं चले जाते जो यहाँसे दिखाई पड़ रहा है।' इस बातको नन्दजीके आगे छिपानेके लिये उन्होंने उस समय उस अतिथिसे जो इधर-उधरकी चापलूसीकी बातें कीं, उनकी जय हो ॥ २९ ॥ उन लक्ष्मीजीकी व्यंग्य-भरी मुस्कान आपकी रक्षा करे जिन्होंने शेषनागके फणोंमें अपनी ही परछाईं देखकर यह कहकर विष्णुजीकी नींद उचाट दी थी कि 'आपमें ही मन लगाए रहनेवाली, आपकी छातीपर लेटी रहनेवाली मुझ भक्ताको छोड़कर क्या आपका सहस्रों स्त्रियाँ रख लेना अच्छा है ?' ॥ ३० ॥ नये मेघोंके समान श्याम रङ्गवाला वह कोई रक्षा करे जो उँगलियाँ नचा-नचाकर, अपने नीचेके ओठको सिकोड़कर, वंशी बजाते हुए सब बाँकी चितवनवाली स्त्रियोंको मोहित कर रहा है ॥ ३१ ॥ 'हे कृष्ण ! तुम्हारी नई अवस्था है और गोपियाँ प्रायः सभी चञ्चल (ढीठ) हैं, यहाँका राजा कंस बड़ा दुष्ट है और हम सब ग्वालोंके गले कमलकी डण्डीके समान कोमल हैं, अतः मैं इस समय हाथ जोड़कर तुमसे भीख माँगता हूँ कि तुम मेरे बिना वृन्दावन मत जाया करो।' नन्दजीकी ऐसी बातें सुनकर सकुचा जानेवाले कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ ३२ ॥ यशोदाने कृष्णसे कहा—'कृष्ण ! तुम कुछ पढ़ा करो !' कृष्ण बोले—'माँ, क्या पढ़ूँ ? यशोदा—'अरे, शास्त्र पढ़, और क्या पढ़ेगा !' कृष्ण—'शास्त्र पढ़नेसे क्या ज्ञान होगा ?' यशोदा—'बेटा ! उससे तत्त्वका ज्ञान होगा।' कृष्ण—'किस तत्त्वका ?' यशोदा—'अरे, परमात्माके तत्त्वका।' कृष्ण—'वह परमात्मा कौन है ?' यशोदा—'बेटा, वह तीनों लोकोंका स्वामी है।' कृष्ण—'तो उससे क्या लाभ होगा ?' यशोदा—'अरे, ज्ञान होगा, भक्ति होगी और वैराग्य होगा ?' कृष्ण—'फिर, इनसे क्या लाभ होगा ?' यशोदा—'इन्हें जाननेसे मुक्ति मिलेगी।' कृष्ण—'मिला करे मुक्ति, मैं तो तुम्हारे घरका दही, दूध आदि ही खाया करूँगा।' इस प्रकारकी यशोदा और कृष्णकी बातचीत आपकी रक्षा करे

एवमाह मुसली मिथ्यास्व पश्याननम्। व्यादेहीति विकासिते च वदने दृष्ट्वा समस्तं जगन्माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात्स वः श्रीपतिः ॥३४॥ कृष्णो गोरसचौर्यमम्ब कुरुते किं कृष्ण मातः सुरापानं न प्रकरोमि राम किमिदं नाहं परस्त्रीरतः। किं गोविन्द वदत्यसौ हलधरो मिथ्येति तां व्याहरन्गोपीगोपकदम्बकं विहसयन्मुग्धो मुकुन्दोऽवतु ॥ ३५ ॥ केयं भाग्यवती तवोरसि मणी रूपेऽग्रवर्णं विना कृत्वास्याः प्रथमं विना क सहजो वर्णो मणेस्तादृशः। स्त्रीरूपं कथमस्य लिङ्गनियमात्पृच्छामि वध्वाकृतिं मुग्धे त्वत्प्रतिविम्बमित्यपलपन्राधां हरिः पातु वः ॥ ३६ ॥ कोऽयं द्वारि हरिः प्रयाह्युपवनं शाखामृगस्यात्र किं कृष्णोऽहं दयिते बिभेमि सुतरां कृष्णादहं वानरात्। राधेऽहं मधुसूदनो व्रज लतां तामेव पुष्पान्वितामित्थं निर्वचनीकृतो दयितया ह्रीणो हरिः पातु वः ॥३७॥ कौन्तेयस्य सहायतां करुणया गत्वा विनीतात्मनो येनोल्लङ्घितसत्पथः कुरुपतिश्चक्रे कृतान्तातिथिः। त्रैलोक्यस्थितिसूत्रधारतिलको देवः सदा सम्पदे साधूनामसुराधिनाथमथनः स्ताद्देवकीनन्दनः ॥ ३८ ॥ कंसं ध्वंसयते मुरं तिरयते हंसं तथा हिंसते बाणं क्षीणयते बकं लघयते पौण्ड्रं तथा लुम्पते। भौमं क्षामयते बलाद्बलभिदो दर्पं पराकुर्वते क्लिष्टं शिलष्टगणं प्रणम्रमवते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥ ३९ ॥ क यासि खलु चौरिके प्रमुषितं स्फुटं दृश्यते द्वितीयमिह मामकं वहसि कन्दुकं कञ्चुके। त्यजेति नवगोपिकाकुचयुगं प्रमथ्नन्बलाल्लसत्पुलकपञ्जरो जयति गोकुले केशवः ॥ ४० ॥ खिन्नोऽसि मुञ्च

॥ ३३ ॥ बलभद्रने यशोदासे कृष्णकी चुगली करते हुए कहा—देख माँ! कृष्ण खेलने गया था, वहाँ इसने बार-बार जान-बूझकर मिट्टी खाई है। यशोदाने कृष्णसे पूछा—क्यों कृष्ण यह बात सच है? कृष्ण—कौन कहता है माँ! यशोदा—यही बलभद्र तो कह रहा है। कृष्ण—यह झूठ कह रहा है माँ! तुम मेरा मुँह देख लो न! यशोदा—अच्छा खोल अपना मुँह! ऐसा सुनकर मुँह खोलते ही जिसके मुँहमें सारा संसार देखकर यशोदा आश्चर्य-चकित रह गईं वे लक्ष्मीपति भगवान् कृष्ण आपकी रक्षा करें ॥ ३४ ॥ बलभद्रने यशोदासे चुगली की—माँ! कृष्ण दूध चुराया करता है। यशोदाने कृष्णसे पूछा—क्यों रे कृष्ण? कृष्ण—माँ! मैं इसकी भाँति मदिरा नहीं पीता। यशोदाने बलभद्रसे पूछा—क्यों राम! यह क्या बात है? बलभद्रने कृष्णकी ओर उँगली उठाकर कहा—मैं दूसरोंकी स्त्रियोंमें नहीं फँसा रहता। यशोदाने कृष्णसे कहा—क्यों कृष्ण? यह राम क्या कह रहा है! 'बलभद्र झूठ कह रहे हैं' यह कहकर सारे ग्वाल-बालोंको हँसाते हुए कृष्णजी रक्षा करें ॥ ३५ ॥ राधाने कृष्णसे पूछा—तुम्हारे हृदयमें यह कौन भाग्यवती बैठी है? कृष्ण—यह मणी है। राधा—क्या उस (रमणी) का पहला अक्षर (र) छोड़कर कह रहे हो? कृष्ण—मणीके पहले आनेवाले 'र' से अधिक सरल, स्वाभाविक अक्षर और हो ही क्या सकता है? राधा—इसका स्त्री-रूप क्यों है? कृष्ण—यह शब्द तो स्त्रीलिङ्ग है हीं। राधा—मैं पूछती हूँ—यह मणी स्त्री-जैसी क्यों दिखाई पड़ रही है? कृष्ण—प्रिये! यह तो तुम्हारी परछाईं इसपर पड़ रही है। इस प्रकारकी बातोंसे राधाको छकाते हुए कृष्ण आपकी रक्षा करें ॥ ३६ ॥ राधाने पूछा—द्वारपर कौन है? कृष्ण—मैं हूँ हरि। राधा—तो वनमें जाओ, यहाँ हरि (वन्दर) का क्या काम है? कृष्ण—प्रिये! मैं कृष्ण हूँ। राधा—काले वन्दरसे तो मैं और भी अधिक डरती हूँ। कृष्ण—राधे! मैं मधुसूदन (फूल चूसनेवाला) हूँ। राधा—तो किसी फूली हुई लतापर जाकर बैठो। इस प्रकार अपनी प्रेमिकाको उत्तर न दे सकनेके कारण लजाए हुए कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥३७॥ तीनों लोकोंके श्रेष्ठ सञ्चालक, असुरोंके स्वामी तथा कंसको मारनेवाले वे देवकीके पुत्र कृष्णजी सज्जनोंको ऐश्वर्य दें जिन्होंने दयाके मारे अत्यन्त सुशील (उद्धत) भीमकी सहायता करते हुए श्रेष्ठ मार्ग छोड़कर चलनेवाले (अन्यायी) कुरुवंशके स्वामी दुर्योधनको मरवा डाला ॥ ३८ ॥ कंसका नाश करनेवाले, मुर राक्षसको मिटा डालनेवाले, हंसासुरकी हिंसा करनेवाले, बाणासुरको मार डालने वाले, बकासुरका प्राण हर लेनेवाले, पौण्ड्रको काट डालनेवाले, भौमासुरको धूलमें मिला देनेवाले, इन्द्रका घमण्ड बलपूर्वक चूर करनेवाले तथा विपत्तिमें पड़े हुए और प्रणाम करते हुए सुशील भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हे कृष्ण! आपको प्रणाम है ॥३९॥ 'अरी चोट्टी! मेरी दूसरी गेंद चुराकर चोलीमें छिपाए कहाँ भागी जा रही है। यह देख सामने तो दिखाई दे रही है, रख दे मेरी गेंद!' ऐसा कहकर बलपूर्वक गोकुलमें नई गोपीके दोनों स्तन मसलकर रोमाञ्चित होनेवाले कृष्ण भगवान्की जय हो ॥४०॥ ग्वालबालोंने गोवर्धन धारण किए हुए कृष्णजीसे कहा—'हे कृष्ण! आप थक गए होंगे; लाइए इस पर्वतको

शैलं विभृमो वयमिति वदत्सु शिथिलभुजः । भरभुग्नविनतवाहुषु गोपेषु हसन्हरिर्जयति ॥ ४१ ॥ गच्छाम्यच्युत दर्शनेन भवतः किं तृप्तिरुत्पद्यते किन्त्वेवं विजनस्थयोर्हतजनः सम्भावयत्यन्यथा । इत्यामन्त्रणभङ्गिसूचितवृथाप्रस्थानखेदालसामाश्लिष्यन्पुलकाङ्कुराञ्चितवपुर्गोपीं हरिः पातु वः ॥ ४२ ॥ गायन्तीनां गोपसीमन्तिनीनां स्फीताकाङ्क्षामक्षिरोलम्बमालाम् । निश्चाञ्चल्यामात्मवक्त्रारविन्दे कुर्वन्नव्याद्देवकीनन्दनो वः ॥ ४३ ॥ गीतावैणवमन्द्रगानमधुराः सम्भावयन्निर्भरस्वेदाम्बुस्नपितं विलोक्य पुरतो राधामुखाम्भोरुहम् । उत्कम्पस्खलदङ्गुलिः परिगलद्वेणुर्निमीलध्वनिः स्विद्यत्पाणिरपाकरोतु दुरितं गोपालवेषो हरिः ॥ ४४ ॥ गोपीलोचनयुग्मगोलवसतिर्गोपालगोष्ठीरतिर्गोरक्षाधृतगोपवेषरुचिरो गोवर्द्धनाद्गोद्धरः । गोलोकाधिपतिः खगोत्तमरथो गोत्रासमुद्धारकृद्गोविन्दोऽवतु गोकुलाहृतरसो गोपालगोत्रोद्भवः ॥ ४५ ॥ गोवर्धनोद्धरणहृष्टसमस्तगोपनानास्तुतिश्रवणलज्जितमानसस्य । स्मृत्वा वराहवपुरिन्दुकलाप्रकाशदंष्ट्रोद्धृतक्षिति हरेरवतु स्मितं वः ॥ ४६ ॥ चण्डचाणूरदोर्दण्डमण्डलीखण्डमण्डितम् । अव्याद्वो बालवेषस्य विष्णोर्गोपतनोर्वपुः ॥ ४७ ॥ जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः स्वयं सिन्दूरेण द्विपरणमुदा मुद्रित इव । भुजापीडक्रीडाहतकुवलयापीडकरिणः प्रकीर्णासृग्बिन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः ॥ ४८ ॥ तप्तं कैर्न तपोभिः फलितं तद्गोपबालानाम् । लोचनयुगले यासामञ्जनमासीन्निरञ्जनं ब्रह्म ॥ ४९ ॥ तिर्यक्कण्ठविलोलमौलितरलोत्तंसस्य वंशोच्चरद्गीतस्थानकृतावधानललनालक्षैर्न संलक्षिताः । सम्मुग्धं मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ मृदुस्पन्दं पल्लवितान्चिरं ददतु वः क्षेमं कटाक्षोर्मयः ॥ ५० ॥ त्वामप्राप्य मयि स्वयंवरपरे क्षीरोदतीरोदरे

इधर दीजिए, हम उठाए लिए लेते हैं ।' उनके ऐसा कहनेपर ज्योंही कृष्णने अपना हाथ ढीला किया त्योंही ग्वालवालोंके हाथ पर्वतके बोझसे दबने लगे, उस समय उन्हें देखकर हँस पड़नेवाले कृष्णजीकी जय हो ॥ ४१ ॥ एकान्तमें उदासीन भावसे बैठे हुए कृष्णके पास बैठी हुई गोपी यह कहकर जैसे ही जानेका ढोंग रचती हुई चलने लगी कि 'हे अच्युत ! मैं यहाँसे जाती हूँ । तुम्हारे देखते रहने-मात्रसे क्या लाभ है, वरन् दुष्ट लोग कुछका कुछ समझ बैठते हैं,' वैसे ही दुखी होती हुई उस गोपीका आलिङ्गन करके रोमाञ्चित होनेवाले कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ ४२ ॥ गाती हुई गोपिकाओंके चावसे भरे नेत्ररूपी भौंरोंकी पाँत जिनके मुखकमलपर स्थिर हो गई है वे देवकीके पुत्र कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ ४३ ॥ वंशीसे मन्द्र तानका मधुर गीत गाकर उसका आनन्द लेते हुए, गोपाल वेषवाले वे कृष्ण पाप नष्ट करें जिनकी उँगलियाँ सामने राधाका मुख पसीने-पसीने हुआ देखते ही, काँपकर इधर-उधर पड़ने लगीं, वंशी हाथसे छूटने लगी, ध्वनि मन्द पड़ गई और हाथोंसे पसीना छूटने लगा ॥ ४४ ॥ गोपियोंके नेत्रोंकी पुतलियोंमें बसनेवाले, ग्वाल-बालोंकी सभासे प्रेम रखनेवाले, गौओंकी रक्षाके लिये सुन्दर ग्वालेका वेष बनानेवाले, गोवर्धन पर्वत धारण करनेवाले, गरुड़की सवारीवाले, गौओंकी विपत्ति दूर करनेवाले, ग्वालबालोंके प्रेमका आदर करनेवाले तथा गोपालगोत्रमें उत्पन्न होनेवाले, गोलोक (वैकुण्ठ) के स्वामी रक्षा करें ॥ ४५ ॥ गोवर्धन पर्वतके उठनेसे मगन हो उठनेवाले, ग्वालोंकी प्रशंसा सुनकर लजाते हुए तथा अपने वराह अवतारके समय चन्द्रमाकी कलाके समान चमकते हुए दाँतसे पृथ्वीको उठानेका स्मरण करते हुए भगवान्की मुस्कराहट आपकी रक्षा करे ॥ ४६ ॥ ग्वालेके बालकका रूप धारण करनेवाले भगवान् कृष्णकी वह देह आपकी रक्षा करे जो अत्यन्त बलिष्ठ तथा भयङ्कर चाणूरकी बाहें तोड़कर उनके टुकड़े धारण करके शोभित हो रही थीं ॥ ४७ ॥ खेल-खेलमें ही कुवलयापीड़ हाथीको अपनी भुजाओंसे मसलकर मार डालनेवाले तथा मुर राक्षसको जीतनेवाले भगवान् कृष्णके उस भुजदण्डकी जय हो जिसमें लटकते हुए कल्पवृक्षके फूल ऐसे जान पड़ते हैं मानो जीत जानेपर जयमालासे उसकी पूजा की गई हो तथा उसपर छिटककर पड़ी रक्तकी बूँदें ऐसी जान पड़ती हैं मानो हाथीसे युद्ध करनेकी प्रसन्नतामें सिन्दूरसे उसपर चित्रकारी की गई हो ॥ ४८ ॥ वैसे तो बहुतोंने तपस्या की है पर तपस्याका फल उन गोपियोंको ही मिला है जिनके नेत्रोंमें उस निरञ्जन ब्रह्म श्रीकृष्णका श्याम रूप ऐसा बस गया है जैसे नेत्रोंमें काजल लग जाता है ॥ ४९ ॥ श्रीराधाके मधुर चन्द्रमुखपर विकसित होकर मन्द-मन्द, लगातार, एकटक पड़ती हुई भगवान् श्रीकृष्णकी वह तिरछी चितवन आपको ऐश्वर्य दे जिसे तिरछी गर्दन करके मुकुट हिला-हिलाकर वंशी बजाते हुए कृष्णकी वंशी-ध्वनि सुननेमें डूबी हुई गोपियाँ देख ही नहीं पाईं ॥ ५० ॥ 'हे

शङ्के सुन्दरि कालकूटमपिबन्मूढो मृडानीपतिः। इत्थं पूर्वकथाभिरन्यमनसो विक्षिप्य वासोऽञ्चलं राधायाः स्तनकोरकोपरिलसन्नेत्रो हरिः पातु वः ॥ ५१ ॥ त्वां पातु नीलनलिनीदलदामकान्तेः कृष्णस्य पाणिसरसीरुहकोशबन्धः। राधाकपोलमकरीलिखनेषु योऽयं कर्णावतंसकमलं विपुलीचकार ॥ ५२ ॥ दर्पणार्पितमालोक्य मायास्त्रीरूपमात्मनः। आत्मन्येवानुरक्तो वः शिवं दिशतु केशवः ॥ ५३ ॥ दूरं यातु भुजङ्गपुङ्गवपतिः पेयं दिनेशात्मजातोयं चास्तु खलप्रसङ्गवशतो मोच्या च निर्दूषणा। इत्थं पातितकन्दुकोद्धृतिकृते प्रोत्कूर्द्य नीपाद्बलान्नृत्यन्दुर्दमभोगिमूर्धसु मुदे वेणुं स मे वादयन् ॥ ५४ ॥ दृङ्मार्गमेष्यति विभुः स्वयमित्यमन्दानन्दाशया न गणिता विपदो दुरन्ताः। पीयूषसागरतरङ्गनिभैरपाङ्गैः श्रीनन्दनन्दन दयोदय नन्दयास्मान् ॥५५॥ दृष्टः क्वापि स केशवो व्रजवधूमादाय काञ्चिद्गतः सर्वा एव हि वञ्चिताः खलु वयं सोऽन्वेषणीयो यदि। द्वे द्वे गच्छत इत्युदीर्य सहसा राधां गृहीत्वा करे गोपीवेषधरो निकुञ्जभवनम्प्राप्तो हरिः पातु वः ॥५६॥ दृष्ट्या केशव गोपरागहृतया किञ्चिन्न दृष्टं मया तेनात्र स्खलितास्मि नाथ पतितां किं नाम नालम्बसे। एकस्त्वं विषमेषु खिन्नमनसां सर्वाबलानां गतिर्गोप्यैवं गदितः सलेशमवताद्गोष्ठे हरिर्वश्चिरम् ॥ ५७ ॥ देवः पायात्पयसि विमले यामुने मज्जतीनां याचन्तीनामनुनयपदैर्वञ्चितान्यंशुकानि। लज्जालोलैरलसवलितैरुन्मिषत्पञ्चबाणैर्गोपस्त्रीणान्नयनकुसुमैरञ्चितः केशवो नः ॥५८॥ देवः पायादपायान्नः स्मरेन्दीवरलोचनः। संसारध्वंसविध्वंसहंसकंसनिषूदनः ॥ ५९ ॥ देहि मत्कन्दुकं राधे परिधाननिगूहितम्। इति विस्रंसयन्नीवीं तस्याः

सुन्दरी राधे! जान पड़ता है क्षीरसमुद्रके तीरपर स्वयंवरमें जब तुम मुझे वरनेका निश्चय कर चुकीं तब तुम्हें न पा सकनेके कारण ही दुःखके मारे पार्वतीके स्वामी शिवजीने कालकूट विष पी लिया था।' इस प्रकार पहलेकी बीती हुई कथापर मन लगाई हुई राधाका आँचल उघाड़कर उसके स्तनोंके अग्रभागपर दृष्टि गड़ाए हुए कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ ५१ ॥ नीली कमलिनीकी पँखड़ीके समान श्याम रङ्गवाले कृष्णजीका वह कमलके कोशके समान हाथ आपकी रक्षा करे जिससे राधाकी कनपटीपर चित्रकारी करते समय उसके कानपर लगे कमलके भूषणकी सुन्दरता और भी बढ़ गई थी ॥ ५२ ॥ दर्पणमें अपने बनावटी स्त्री-रूपकी परछाईं देखकर उसीपर मोहित हो जानेवाले कृष्णजी आप लोगोंको सुख दें ॥ ५३ ॥ 'यह सर्पराज कहीं दूर चला जाय और सूर्यपुत्री यमुनाका जल पीने योग्य हो जाय तथा यह निर्दोष यमुना दुष्टके साथसे छूट जाय', ऐसा सोचकर ही अपनी गेंद फेंककर फिर उसे ले आनेके बहाने कदम्बके वृक्षसे कूदकर अत्यन्त भयङ्कर नागके सिरपर मुरली बजा-बजाकर नाचते हुए कृष्णजी मुझे सुख दें ॥ ५४ ॥ 'वे व्यापक भगवान् आप ही कृपा करके दर्शन देंगे' इस बड़े भारी सुखकी आशामें बड़ी-बड़ी दुखदाई विपत्तियोंको भी मैंने कुछ नहीं समझा (किन्तु अबतक आपका दर्शन न हुआ) अतः नन्दको सुख देनेवाले हे दयालो! अब तो आप अमृत-सिन्धुकी तरङ्गोंके समान सुखदाई अपनी तिरछी चितवनसे देखकर हमें आनन्द दीजिए॥ ५५ ॥ 'उस कृष्णको किसीने देखा है? वह किसी गोपीको लेकर न जाने कहाँ चला गया? उसने तो हम सबको छका दिया! उसे ढूँढ़ना हो तो चलो, दो-दो मिलकर उसे यहाँ-वहाँ ढूँढ़ा जाय।' गोपीका वेश धारण करके सब गोपियोंसे ऐसा कहकर स्वयं राधाका हाथ पकड़कर एक कुञ्जमें घुस जानेवाले कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ ५६ ॥ 'हे कृष्ण! गौओंके खुरोंसे उड़ी हुई धूलके कारण मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ा, इसीसे मैं यहाँ गिर पड़ी। हे नाथ! विपत्तिके समय सब दुखी स्त्रियोंके आप ही तो एक-मात्र रक्षक हैं। मुझ गिरी हुईको आप सहारा क्यों नहीं देते!' अथवा 'हे केशव! आपके प्रेममें अन्धी होनेसे मुझे कुछ भी नहीं सूझता, इसीसे मैं इस प्रकार पतित हो गई हूँ। हे नाथ! कामके बाणोंसे कष्ट पाती हुई सब स्त्रियोंके एकमात्र आप ही तो रक्षक हैं, फिर आप मुझ पतिताको क्यों नहीं सँभालते?' गौओंके स्थानमें इस प्रकार किसी गोपीसे ऐसी बातें सुननेवाले श्रीकृष्णजी सदा भली-भाँति आपकी रक्षा करें ॥ ५७ ॥ वे कृष्ण भगवान् हमारी रक्षा करें जिनसे यमुनाके निर्मल जलमें स्नान करती हुई गोपियाँ प्रार्थना करती हुई, अपने लाजके कारण चञ्चल, आलससे झुके हुए तथा कामके कारण खिले हुए फूलोंके समान नेत्रोंसे मानो उनकी पूजा करती हुई अपने चुराए हुए वस्त्र माँगती हैं ॥ ५८ ॥ खिले हुए लाल कमलके समान नेत्रवाले तथा कंसका नाश करनेवाले वे कृष्ण भगवान् सदा हमारी रक्षा करें जो संसाररूपी घना अँधेरा नष्ट करनेके लिये सूर्य हैं ॥ ५९ ॥ 'राधे! अपने वस्त्रोंमें छिपाई हुई मेरी गेंद

कृष्णो मुदेऽस्तु नः ॥ ६० ॥ दैत्यं परासुमपि निर्दहदुग्रमेकं बालं स्वभक्तममृतैरिव सिञ्चदन्यत्। आश्वासयत्सुरगणानपरं भयार्त्तान्नेत्रत्रयं नरहरेर्दिशतात्सुखं नः ॥ ६१ ॥ नामोदस्ताखिलामो दमनियमयुजां यः प्रकामोदवाहश्यामो दर्पाढ्यधामोदयमिलितयशोधारया मोदते यः। वामोदन्यासदामोदरतरलदृशां दत्त-कामोदयो यः सामोदः श्रीललामो दलयतु दुरितं सोऽत्र दामोदरो वः ॥ ६२ ॥ नीतन्नवनवनीतं कियदिति पृष्टो यशोदया कृष्णः। इयदिति गुरुजनसंसदि करधृतराधापयोधरः पातु ॥ ६३ ॥ नीलाम्भोरुहकोशकोमलतनुं स्मेराननं मालिनं सुस्निग्धं दधतं दुकूलयुगलं वाग्वैभवस्यास्पदम्। स्वीयानामुदितामृतेन हृदयं सन्तर्पयन्तं सतां राधाकेलिकथासु सन्ततरतं श्रीकृष्णचन्द्रं नुमः ॥६४॥ नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय। तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय ॥ ६५ ॥ पद्मे त्वन्नयनं स्मरामि सततं भावो भवत्कुन्तले नीले मुह्यति किं करोमि महितैः क्रीतोऽस्मि ते विभ्रमैः। इत्युत्स्वप्नवचो निशम्य सरुषा निर्भर्त्सितो राधया कृष्णस्तत्परमेव तद्व्यपदिशन्क्रीडाविटः पातु वः ॥ ६६ ॥ पातु वो जलदश्यामाः शार्ङ्गज्याघातकर्कशाः। त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरिबाहवः ॥ ६७ ॥ पीठे पीठनिषण्णबालकगले तिष्ठन्स गोपालको यन्त्रान्तःस्थितदुग्धभाण्डमवभिद्याच्छाद्य घण्टारवम्। वक्त्रोपान्तकृताञ्जलिः कृतशिरःकम्पं पिबन्यः पयः पायादागतगोपिकानयनयोर्गण्डूषफूत्कारकृत् ॥ ६८ ॥ पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानां मूर्त्तीभूतं भागधेयं यदूनाम्। एकीभूतं गुप्तवित्तं श्रुतीनां श्यामीभूतं ब्रह्म मे सन्निधत्ताम् ॥ ६९ ॥ प्रातर्नीलनिचोलमच्युतमुरःसंवीतपीतांशुकं राधायाश्चकितं विलोक्य हसति स्वैरं सखीमण्डले। व्रीडाचञ्चलमञ्चलं नयनयोराधाय राधा-

---

दो।' ऐसा कहकर उनकी धोतीकी गाँठ खोल देनेवाले कृष्ण हमें सुख दें ॥६०॥ नृसिंह-वेषधारी भगवान् कृष्णके वे तीनों नेत्र हमें सुख दें जिनमेंसे एक नेत्रने तीक्ष्ण होकर भयङ्कर दैत्यको जला डाला, एक नेत्रने अपने भक्त बालक प्रह्लादको मानो अमृतसे सींच दिया और एक नेत्रने डरे हुए देवताओंको धीरज दिया ॥६१॥ जिनका नाम लेते ही इन्द्रियोंको वशमें रखनेवालों तथा नियमसे रहनेवालोंकी दरिद्रता भाग जाती है, जो अपने पराक्रमसे बढ़े हुए तेजसे मिली यशकी धारासे मानो प्रसन्न रहते हैं, जिन्हें देखते ही प्रसन्न तथा चञ्चल नेत्रवाली कामिनियोंमें कामके भाव उत्पन्न हो जाते हैं ऐसे मेघोंके समान श्याम वर्णवाले तथा सदा प्रसन्न रहनेवाले लक्ष्मीके सहित परम सुन्दर विष्णु आपके पाप नष्ट करें ॥ ६२ ॥ जैसे ही यशोदाने पूछा कि 'कृष्ण ! तुमने टटका मक्खन कितना लिया है ?' वैसे ही सब बड़े-बूढ़ोंके सामने अपने हाथसे राधाका स्तन पकड़कर 'इतना लिया है' बतानेवाले कृष्ण रक्षा करें ॥ ६३ ॥ नील कमलके कोशके समान कोमल देहवाले, प्रसन्न मुँहवाले, वनमालाधारी, स्नेह-भरे, दुपट्टा और पीताम्बर धारण करनेवाले, उत्तम वाणीके भण्डार, राधाकी क्रीड़ाकी बातोंमें सदा मग्न रहनेवाले और अपने मित्रों एवं भक्तोंके हृदयको (समुद्रसे निकले) अमृतसे सन्तुष्ट करनेवाले श्रीकृष्णजीको हम प्रणाम करते हैं ॥ ६४ ॥ नये मेघोंकी-सी कान्तिवाले और गोपियोंके वस्त्र चुरानेवाले उन कृष्णको नमस्कार है जो इस सारे संसार-रूपी वृक्षके बीज हैं ॥६५॥ 'हे कमलवदनी! मैं सदा ही तुम्हारे नेत्रोंका स्मरण करता रहता हूँ, तुम्हारे घुँघराले काले बालोंमें मेरा चित्त उलझा रहता है और तुम्हारे सुन्दर हाव-भावपर तो मैं बिना मोल बिक गया हूँ' ऐसा स्वप्नमें बर्राते हुए वे चतुर खेलाड़ी कृष्ण आपकी रक्षा करें जिन्होंने राधाके क्रोधित होकर डाँटनेपर तुरन्त ही कह दिया कि 'राधे ! यह सब तुमसे ही तो कह रहा था,' ॥ ६६ ॥ बादलोंके-से रङ्गवाली विष्णुकी वे चारों भुजाएँ आपकी रक्षा करें जो शार्ङ्ग धनुषकी डोरी खींचनेसे कड़ी हो गई हैं और जो त्रैलोक्य-रूपी मण्डपके चार स्तम्भ हैं ॥ ६७ ॥ अहीरके वे बालक रक्षा करें जो पीढ़ेपर चढ़े हुए ग्वालबालोंके कन्धेपर चढ़कर छींकेमें रक्खी दूधकी मटकी फोड़कर सिर हिला-हिलाकर अञ्जलिसे दूध पी रहे हैं, उस छींकेमें बँधे घण्टेको बजनेसे रोके हुए हैं और जो 'फूः' करके उसका समय आई हुई गोपीके मुँहपर अपने मुँहमें भरा दूध छोड़ रहे हैं ॥ ६८ ॥ श्याम रङ्गवाले वे ब्रह्म मुझे अपने पास रक्खें जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो गोपियोंके प्रेमके ढेर हों या ग्वालोंका सुन्दर भाग्य ही मूर्त्ति धारण करके आ गया हो अथवा वेदोंका रहस्य ही इकट्ठा होकर प्रत्यक्ष हो गया हो ॥ ६९ ॥ प्रातःकाल नीले वस्त्र पहने हुए श्रीकृष्णको और पीले वस्त्रोंसे लिपटा राधाका वक्षःस्थल देखकर जब सखियाँ चकित होकर हँसने लगीं तब लाजके मारे चञ्चल तिरछी चितवनसे राधाका मुँह और नेत्र देख-

नने स्वादुस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः ॥ ७० ॥ प्रीतिं वस्तनुतां हरिः कुवलयापीडेन सार्धं रणे राधापीनपयोधरस्मरणकृत्कुम्भेन सम्भेदवान् । पत्रे विभ्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकनाद्व्यामोहेन जितञ्जितञ्जितमभूद्व्यालोलकोलाहलः ॥७१॥ प्रीतिस्तवास्ति मधुपेषु विटेषु चौरेष्वद्यापि हन्त यदि दुर्जन नो जहासि । गोपीविटे च मधुपे नवनीतचौरे तां क्वापि धामनि बधान धृतावधानः ॥ ७२ ॥ बलिनोऽपि बलान्निहत्य मल्लाननु मध्ये यदुवीरवृन्दमद्धा । विनिगृह्य कचेषु कंसमेव व्रजबालैर्विहरन् मुदेऽस्तु कृष्णः ॥ ७३ ॥ भक्तान्रक्षन्खलान्निघ्नन्विरक्तानुद्धरन्भवात् । अभयञ्च ददद्दीनाञ्छरणं मे चतुर्भुजः ॥ ७४ ॥ भुजप्रभादण्ड इवोर्ध्वगामी स पातु वः कंसरिपोः कृपाणः । यः पाञ्चजन्यप्रतिबिम्बभङ्ग्या धाराम्भसः फेनमिव व्यनक्ति ॥ ७५ ॥ मकरीविरचनभङ्ग्या राधाकुचकलशपीडनव्यसनी । ऋजुमपि रेखां लुम्पन्बल्लववेषो हरिर्जयति ॥ ७६ ॥ मदमयमदमयदुरगं यमुनामवतीर्य वीर्यशाली यः । मम रतिसमरतिरस्कृतिशमनपरः स क्रियात्कृष्णः ॥ ७७ ॥ मातः किं यदुनाथ देहि चषकं किं तेन पातुं पयस्तन्नास्त्यद्य कदास्ति तन्निशि निशा का वान्धकारोदये । आमील्याक्षियुगं निशाप्युपगता देहीति मातुः पुनर्वक्षोजाम्बरकर्षणोद्यतकरः कृष्णः स पुष्णातु नः ॥ ७८ ॥ मातस्तर्णकरक्षणाय यमुनाकच्छं न गच्छाम्यहं कस्माद्वत्स पिनष्टि पीवरकुचद्वन्द्वेन गोपीजनः । भ्रूसंज्ञाविनिवारितोऽपि बहुशो जल्पन्यशोदाग्रतो गोपीपाणिसरोजमुद्रितमुखो गोपीपतिः पातु वः ॥ ७९ ॥ मामेकमेव शरणं व्रज मा स्म शोचीरित्यर्जुनञ्जिगदिषोः परमस्य पुंसः । तत्कालजातकरुणोद्गतगद्गदत्वहस्वाक्षरा जयति मा शुच इत्यसौ वाक् ॥८०॥ मालाबर्हमनोज्ञकुन्तलभरां वन्यप्र-

---

मुस्करा उठनेवाले नन्दके पुत्र कृष्ण संसारको सुख दें ॥ ७० ॥ उस कुवलयापीड़ हाथीको युद्धमें मार डालनेवाले कृष्ण भगवान् आपको सुख दें जिसका गण्डस्थल देखकर उन्हें राधाके स्तनोंका स्मरण हो गया था और जिसके डरकर भागते समय घबराकर देखते ही 'जीत गए, जीत गए, जीत गए', ऐसा हल्ला मच गया ॥७१॥ हे दुर्जन मनुष्य ! यदि तू मधु पीनेवालों, लम्पटों या चोरोंकी ही सङ्गति करना चाहता है और तू अब भी उनका प्रेम नहीं छोड़ता तो गोपियोंमें लम्पट, मधु पीनेवाले तथा मक्खन चुरानेवाले उन किसी तेजस्वी शक्ति कृष्णसे क्यों नहीं मन लगाता ॥ ७२ ॥ वे कृष्णजी आनन्द दें जिन्होंने सब वीर यदुवंशियोंके देखते-देखते बड़े-बड़े मल्लोंको मार डाला और जो कंसके बाल पकड़कर उसे मारकर ग्वालबालोंके साथ खेलने लगे ॥ ७३ ॥ भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, दुष्टोंको मारनेवाले, विरक्तोंको संसार-सागरसे पार करनेवाले, दीनोंको अभयदान देनेवाले तथा चार भुजावाले भगवान् कृष्णकी शरणमें हूँ ॥७४॥ कंसके शत्रु श्रीकृष्णकी वह ऊपर उठती हुई तलवार आपकी रक्षा करे जो उनकी भुजाओंकी कान्ति-सी जान पड़ती हुई पाञ्चजन्य शङ्खके परछाईं-रूपी जलकी धारामें तैरते हुए फेनकी भाँति शोभित होती है ॥ ७५ ॥ गोपवेषधारी उन कृष्णजीकी जय हो जो राधाके स्तनोंपर चित्रकारी करते हुए उन्हें अधिक देरतक दबाते रहनेकी इच्छासे सीधी रेखाको भी दबा-दबाकर मिटा देते हैं ॥ ७६ ॥ देवताओंके अपमानका बदला लेनेवाले वे पराक्रमशाली कृष्ण मुझसे प्रेम करें जिन्होंने यमुनामें घुसकर मतवाले नागका दमन कर डाला था ॥७७॥ श्रीकृष्णने यशोदाको पुकारा—माँ ! यशोदा बोलीं—क्या है यदुवंशके स्वामी ! श्रीकृष्ण—माँ ! पानपात्र दे । यशोदा—उसे ! क्या करोगे ? श्रीकृष्ण—दूध पीना है । यशोदा—वह अभी नहीं मिलेगा । कृष्ण—कब मिलेगा ? यशोदा—रात्रिमें । कृष्ण—रात्रि कब होगी ? यशोदा—जब अँधेरा हो जायगा। यशोदाके ऐसा कहते ही आँखें बन्द करके 'अब तो रात हो गई माँ ! अब दे', ऐसा कहते हुए माँका आँचल खींचनेको हाथ बढ़ाए हुए कृष्णजी हमारा पालन करें ॥ ७८ ॥ कृष्णने यशोदासे कहा—माँ ! मैं अब बछड़े चरानेके लिये यमुना किनारे नहीं जाऊँगा । माँने पूछा—क्यों बेटा ! वे बोले—'माँ ! गोपियाँ मुझे अपने बड़े-बड़े स्तनोंसे दबा डालती हैं ।' यह सुनते ही पासमें खड़ी हुई गोपीने कृष्णको हाथसे चुप रहनेका सङ्केत किया पर जब वे न माने और यशोदाके सामने कहते ही चले गए तो गोपीने जिन कृष्णके मुँहपर हाथ रखकर उनकी बोली बन्द कर दी, वे गोपीपति कृष्ण आपकी रक्षा करें ॥७९॥ 'हे अर्जुन ! शोच न करो, एक मेरी ही शरणमें आ जाओ', ऐसा अर्जुनसे कहना चाहते हुए तुरन्त ही दयासे गद्गद कण्ठ हो जानेके कारण बड़ी कठिनतासे उन परम पुरुष भगवान्के मुँहसे निकल पाई हुई—'शोच न करो' इस बोलीकी जय हो ॥ ८० ॥ सुन्दर मोरपङ्खसे सजे केशवाले, वनमाला धारण करनेवाले, कस्तूरी और अगर

सूनोच्छितां शैलेयागुरुसक्तचित्रतिलकां शश्वन्मनोहारिणीम्। लीलावेणुरवामृतैकरसिकां लावण्यलक्ष्मीमयीं बालां बालतमालनीलवपुषं वन्दे परां देवताम्॥ ८१॥ मीमांसार्णवसोमं लसदर्कं तर्कपद्मस्य। वेदान्तविपिनसिंहं वन्दे गोविन्दसाभिधं ब्रह्म॥ ८२॥ मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैर्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय। इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः॥ ८३॥ मौलौ केकिशिखण्डिनी मधुरिमाधाराधरे वंशिनी पीनांसे वनमालिनी हृदि लसत्कारुण्यकल्लोलिनी। श्रोण्यां पीतदुकूलिनी चरणयोर्व्यत्यस्तविन्यासिनी लीला काचन मोहिनी विजयते वृन्दावनावासिनी॥ ८४॥ यत्किञ्चिदस्ति विगुणं विरसं विरूपं तद्वस्तु भोः कृतधियः स्वदतां भवद्भ्यः। लोकोत्तराखिलगुणं मथुरालयं यत्तस्मिन्नितान्तरुचिरे रुचिरस्तु नस्तु॥ ८५॥ यामिन्यां परिवृत्तिभाजि चरिते चाराय वृन्दे गवां गोपानाञ्च विषाणवेणुतुमुलध्वाने समुत्सर्पति। गाढालिङ्गितराधिकाभुजलताबद्धस्य कंसद्विषो यातुं स्थातुमनीश्वरस्य मनसो दोलायितं पातु वः॥ ८६॥ यावन्निरञ्जनमजं पुरुषं जरन्तं सञ्चिन्तयामि सकले जगति स्फुरन्तम्। तावद्बलात्स्फुरति हन्त हृदन्तरे मे गोपस्य कोऽपि शिशुरञ्जनपुञ्जमञ्जुः॥८७॥ यां दृष्ट्वा यमुनापिपासुरनिशं व्यूहो गवां गाहते विद्युत्त्वानिति नीलकण्ठनिवहो यां द्रष्टुमुत्कण्ठते। उत्तंसाय तमालपल्लवमितिच्छिन्दन्ति यां गोपिकाः कान्तिः कालियशासनस्य वपुषः सा पावनी पातु वः॥ ८८॥ राधामधुसूदनयोरनुदिनमुपचीयमानस्य। प्रणयतरोरिव कुसुमं मिथोऽवलोकस्मितं पायात्॥८९॥

मिलाकर रङ्ग-बिरङ्गा तिलक लगानेवाले, सदा मन हरनेवाले, खेल-खेलमें ही बाँसुरी बजाकर अमृतके समान मधुर स्वर निकालनेवाले, अत्यधिक लावण्यवाले तथा तमालके छोटेसे वृक्षके समान श्याम रङ्गवाले बालकरूप सबसे बड़े देवता (कृष्ण) को प्रणाम करता हूँ॥ ८१॥ गोविन्द नामवाले उन ब्रह्मको प्रणाम करता हूँ जो मीमांसारूपी समुद्रको प्रसन्न करनेके लिये चन्द्र, न्यायरूपी कमलको विकसित करनेके लिये सुन्दर सूर्य और वेदान्तरूपी वनके सिंह हैं॥ ८२॥ कृष्णको साथ लेकर कहीं जाते हुए नन्दजीको मार्गमें राधा मिल गईं। कृष्ण और राधा दोनों एकान्तमें खेलना चाहते थे अतः भगवान्‌ने तत्काल अपनी मायासे आकाशमें मेघोंकी ऐसी घटाएँ छा दीं कि रात हुई जान पड़ने लगी और नन्दजीने राधासे ही कहा कि 'राधे! आकाशमें बादल छा गए हैं, तमालके इन काले-काले वृक्षोंसे जङ्गली मार्ग और भी अँधियारे जान पड़ने लगे हैं, रात हो गई है और यह (कृष्ण) बड़ा डरपोक है। अतः तुम ही इसे अपने साथ घरतक पहुँचाती जाओ।' नन्दजीकी यह आज्ञा पाकर कुञ्जोंमें होकर यमुना तटकी ओर चले हुए राधा और कृष्णकी एकान्तकी क्रीड़ाओंकी जय हो॥ ८३॥ वृन्दावनमें निवास करनेवाली उस मनमोहनी भगवल्लीलाकी जय हो जिसके लिये भगवान्‌ने मस्तकपर मोरपङ्ख लगाए हैं, गोवर्धन पर्वतपर मधुर वंशी बजाई, मोटे-मोटे कन्धोंपर वनमाला लटकाई, हृदयमें करुणाकी नदी लहराई, कमरमें पीताम्बर फहराया तथा वे पैर तिरछे रखकर खड़े हुए॥ ८४॥ हे खोटी बुद्धिवालो! इस संसारमें जो भी बुरे रूप, रस, और गुणवाली वस्तुएँ हों उनका आप लोग ही स्वाद लें। हम तो चाहते हैं कि संसारमें सबसे अधिक उत्तम गुणवाले और अत्यन्त सुन्दर मथुरा-निवासी कृष्णमें ही हमारा प्रेम रहे॥ ८५॥ कुछ रात्रि शेष रहते ही जब गौएँ छूटकर चरनेके लिये उत्सुक हो उठीं और बाहर ग्वाल-बालोंके सिंगों और वंशियोंका तीव्र कोलाहल होने लगा, उस समय कसकर राधाका आलिङ्गन किए हुए तथा उसकी भुजलताओंमें बँधे हुए कृष्णकी वह दुविधा आपकी रक्षा करे जिसके कारण न तो वे उठकर जा ही सकते थे, न सो ही सकते थे॥ ८६॥ 'खेद है कि जैसे ही मैं निर्विकार, अजन्मा, अपने आप प्रकाशवान् और सारे संसारमें चमकते हुए उस पुरुषका चिन्तन करता हूँ, वैसे ही बलपूर्वक मेरे हृदयमें काजलकी पिण्डीके समान सुन्दर कोई गोपका बालक चमचमाने लगता है॥ ८७॥ कालिय नागपर शासन करनेवाले भगवान् कृष्णके देहकी वह पवित्र कान्ति आपकी रक्षा करे जिसे यमुनाका जल समझकर उसे पीना चाहती हुई गौएँ सदा घेरे रहती हैं, जिसे बिजलीभरा मेघ समझकर मोर देखनेको छटपटाते रहते हैं तथा गोपियाँ जिसे तमालके पत्ते समझकर गहना बनानेके लिये नोचती रहती हैं॥८८॥ आपसमें एक दूसरेकी ओर देखते हुए राधा और कृष्णकी वह मुस्कराहट रक्षा करे जो ऐसी जान पड़ती है मानो उन दोनोंके क्रमसे बढ़े हुए प्रेमरूपी वृक्षका पुष्प हो॥ ८९॥ देवकीको आनन्दित करनेवाले तथा पृथ्वीका भार उतारनेमें समर्थ वे कृष्ण सदा तुम्हारी रक्षा करें जो राधाके प्रसन्न

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थलीनेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारक्षमः। स्वच्छन्दव्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ॥ ९० ॥ राधामोहनमन्दिरं जिगमिषोश्चन्द्रावलीमन्दिराद्राधे क्षेममिति प्रियस्य वचनं श्रुत्वाह चन्द्रावली। क्षेमं कंस ततः प्रियः प्रमुदितः कंसः क्व दृष्टस्त्वया राधा क्वेति तयोः प्रसन्नमनसोर्हासोद्गमः पातु वः ॥९१॥ रामो नाम बभूव हुं तदबला सीतेति हुं तौ पितुर्वाचा पञ्चवटीवने निवसतस्तामाहरद्रावणः। कृष्णेनेति पुरातनीं निजकथामाकर्ण्य मात्रेरितां सौमित्रे क्व धनुर्धनुर्धनुरिति प्रोक्ता गिरः पान्तु वः ॥ ९२ ॥ रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रुवामभ्यर्णे परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमान्धया राधया। साधु त्वद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुतिव्याजादुद्भटचुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातु वः ॥ ९३ ॥ ललितगमना नार्यो राजन्मनोजनितान्तभाः सुरतिसदृशास्ताः सन्मुख्यो भवानपि तद्भुवे। वनभुवमितो गेहादेको न गच्छतु मां विनेत्यसकृदुदितः पुत्रः पित्रा जयत्यनघो हरिः ॥९४॥ लुभ्यन्भवन्मधुरिमानुभवाय कृष्ण न प्राप्नुवंस्तमहमेव न वञ्चितोऽस्मि। शुच्याभमप्यशुचि मे नवनीतबुद्ध्या चेतो हरंस्त्वमपि वञ्चक वञ्चितोऽसि ॥ ९५॥ वामांसस्थलचुम्बिकुण्डलरुचा जातोत्तरीयच्छविं वंशीगीतिभवत्त्रिभङ्गवपुषं भ्रूलास्यलीलापरम्। किञ्चित्स्रस्तशिखण्डशेखरमतिस्निग्धालिनीलालकं राधादिप्रमदाशतावृतमहं वन्दे किशोराकृतिम् ॥ ९६ ॥ विलिख्य सत्याकुचकुम्भसीम्नि पत्रावलिन्यासमिषेण राधाम्। लीलारविन्देन तया सरोषं पायाद्विटः कोऽप्यभिहन्यमानः ॥ ९७ ॥ विहाय पीयूषरसं मुनीश्वरा ममांघ्रिरा-

---

मुखकमलका रस पीनेवाले भौंरे हैं, जो त्रैलोक्यके सिरपर स्थित मुकुटमें जड़े हुए नीलमणि हैं, जो व्रजकी स्वतन्त्र सुन्दरियोंका मन सन्तुष्ट करनेके लिये रात्रि हैं और जो कंसका नाश करनेके लिये धूमकेतु हैं ॥ ९० ॥ चन्द्रावलीके घरसे राधाके सुन्दर घरकी ओर जाना चाहते हुए कृष्णने चन्द्रावलीसे पूछा—'राधे! सब कुशल तो है!' चन्द्रावलीने अपने प्रियतमकी इस (विचित्र) बातको सुनकर उत्तर दिया— 'हाँ, कंस! सब कुशलता है।' फिर प्रसन्न होकर कृष्णने जैसे ही पूछा— 'तूने कंसको कहाँ देखा?' वैसे ही चन्द्रावली बोल उठी— 'आपने राधाको कहाँ देखा?' इस प्रकार आपसमें परिहास करते हुए उन दोनोंकी हँसी आपकी रक्षा करे ॥ ९१ ॥ यशोदाजी कृष्णको पुरानी कथा सुना रही थीं और कृष्ण हुँकारी भर रहे थे। यशोदा बोलीं—'बेटा! पुराने समयमें 'राम' नामके एक राजा थे। कृष्ण—हूँऽ। यशोदा—उनकी स्त्रीका नाम सीता था। कृष्ण—हूँऽ। यशोदा—वे दोनों पिताकी आज्ञा मानकर पञ्चवटीमें रहते थे, जहाँसे रावणने सीताको हर लिया। कृष्ण—अरे लक्ष्मण! धनुष कहाँ है? धनुष? धनुष? इस प्रकार माँसे कही हुई, अपनी पहले अवतारकी कथा सुनकर आवेशमें कृष्णजीके मुँहसे निकले ये वचन आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ ९२ ॥ अपनी मुसकानसे सबका मन हरनेवाले वे कृष्ण आपकी रक्षा करें जिन्हें रासके परमानन्दसे भरी, प्रेममें अन्धी राधाने मदमाती गोपियोंके सामने ही छातीसे लगा लिया और 'आपका यमृतमय (अमृतके समान मधुर गीतोंसे भरा हुआ) मुख बहुत ही सुन्दर है' इस प्रकार प्रशंसा करते हुए जी भरकर उनका मुँह चूमा ॥९३॥ 'बेटा! (इस गाँवमें) सुन्दर चालवाली, कामकी मस्तीसे अत्यधिक कान्तिवाली और रतिके समान सुन्दर मुखवाली स्त्रियाँ अधिक हैं और तुम भी अत्यन्त मधुर गीत गाते हो, कामकी सुन्दरता भी तुम्हारे सामने कुछ नहीं है, कामक्रीडामें बड़े चतुर तथा रति करने योग्य हो, तुम्हारे जैसा कोई श्रेष्ठ (पुरुष) है ही नहीं, इसलिये मैं तुमसे कहता हूँ कि अकेले घरसे निकलकर बिना मुझे साथ लिए वृन्दावनकी ओर कभी न जाना।' इस प्रकार पिता (नन्दबाबा) से बार-बार समझाए जाते हुए निष्पाप पुत्र श्रीकृष्णकी जय हो ॥ ९४ ॥ हे धूर्तराज (कृष्ण)! आपकी सुन्दरताका दर्शन पानेका लालच होते हुए भी जो मैं उसे न पा सका, इससे केवल मैं ही नहीं ठगा गया, वरन् पवित्रसे जान पड़नेवाले मेरे अपवित्र मनको मक्खन समझकर चुराते हुए आप भी ठगे ही गए ॥ ९५ ॥ तिरछे खड़े होकर और भौंहें नचा-नचाकर वंशी बजानेवाले, भौंरोंके समान काले और अत्यन्त चिकने केशवाले तथा राधा आदि सैकड़ों मतवाली स्त्रियोंसे घिरे हुए उन किशोर अवस्थावाले कृष्णको प्रणाम करता हूँ जिनके बाएँ कन्धेतक लटकते हुए कुण्डलकी कान्ति दुपट्टे-सी जान पड़ती है और जिनका मोरमुकुट कुछ टेढ़ा-सा हो गया है ॥ ९६ ॥ चित्रकारीके बहाने सत्याके स्तनोंपर राधाका चित्र बनानेवाले वे कोई धूर्त (कृष्ण) रक्षा करें जिन्हें प्रेममें क्रोधित होकर सत्या हाथमें लिए हुए क्रीडा-कमलसे ही मारने लगी थी ॥ ९७ ॥ 'सब श्रेष्ठ मुनि

जीवरसं पिबन्ति किम्। इति स्वपादाम्बुजपानकौतुकी स गोपबालः श्रियमातनोतु वः ॥ ९८ ॥ वृन्दारण्ये चरन्ती विभुरपि सततं भूर्भुवः स्वः सृजन्ती नन्दोद्भूताप्यनादिः शिशुरपि निगमैर्लक्षिता वीक्षितापि। विद्युल्लेखावनद्धोन्नमदमलमहाम्भोदसच्छायकाया माया पायादपायादविदितमहिमा कापि पैताम्बरी वः ॥ ९९ ॥ वृन्दारण्ये तपनतनयातीरवानीरकुञ्जे गुञ्जन्मञ्जुभ्रमरपटलीकाकलीकेलिभाजि। आभीराणां मधुरमुरलीनादसम्मोहितानां मध्ये क्रीडन्नवतु नियतं नन्दगोपालबालः ॥ १०० ॥ वृष्टिव्याकुलगोकुलावनरसादुद्धृत्य गोवर्धनं बिभ्रद्वल्लववल्लभाभिरधिकानन्दाच्चिरञ्चुम्बितः। कन्दर्पेण तदर्पिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो बाहुर्गोपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः ॥१०१॥ व्रजजनवनिताभिर्हेमपुष्पप्रभाभिः सहजलद इवास्थञ्चलाभिः समन्तात्। सपदि निविडतापोल्लासशान्तौ प्रवीणो मृगमदरमणीयो हन्तु दैन्यं दयालुः ॥ १०२ ॥ शत्रुघ्नलक्ष्मणयुतो दलितोग्रधन्वा गोवर्धनोद्धरणकृत्कृतधर्मजश्रीः। सम्पादितार्जुनयशाश्चतुराकृतिर्वः श्रेयः प्रभुर्दिशतु कोऽपि मनुष्यमूर्त्तिः ॥ १०३ ॥ शरणं व्रजजनतायाः हरणं कंसादिदानवान्ववायस्य। भरणं प्रणतकुलस्य प्रणवे वल्लवीमनोहरणम् ॥ १०४ ॥ शिरश्छायां कृष्णः क्षणमकृत राधाचरणयोर्भुजावल्लिच्छायाभियमपि तदीयप्रतिकृतौ। इति क्रीडाकोपे निभृतमुभयोरप्यनुनयप्रसादौ जीयास्तामपि गुरुसमक्षं स्थितवतोः ॥ १०५ ॥ श्रीमद्गोपवधूस्वयंग्रहपरिष्वङ्गेषु तुङ्गस्तनव्यामर्दाद्गलितेऽपि चन्दनरजस्यङ्गे वहन्सौरभम्। कश्चिज्जागरजातरागनयनद्वन्द्वः प्रभाते श्रियं बिभ्रत्कामपि वेणुनादरसिको जाराग्रणीः पातु वः ॥ १०६ ॥ श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु भवभीताः। अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं

अमृतको छोड़कर मेरे चरणकमलका रस क्यों पीते हैं? देखूँ तो इसमें क्या है!' यह सोचकर अपने चरण-कमलको चूसनेकी इच्छा करनेवाले ग्वाल-बालक (कृष्ण) आपको ऐश्वर्य दें ॥९८॥ भूः, भुवः और स्वः लोकोंको रचनेवाली वह कोई पीताम्बरधारिणी माया (कृष्ण) आप लोगोंकी सदा रक्षा करे जो सदा व्यापक होकर भी वृन्दावनमें घूमती दिखाई पड़ती है, जिसे वेदोंने अनादि कहते हुए भी नन्दके बालकके रूपमें देखा है, जो बिजलीसे भरकर झुके हुए बड़े-बड़े स्वच्छ मेघोंकी-सी कान्तिवाली है और जिसकी महिमा कोई भी नहीं जानता ॥ ९९ ॥ यमुनाके किनारे मधुर गुञ्जार करके मँडराते हुए भौंरोंवाले वानीरके कुञ्जमें वंशीकी ध्वनि सुनकर मोहित हुई गोपियोंके बीचमें मिलकर खेलनेवाले तथा नन्दकी गौएँ चरानेवाले बालक सदा रक्षा करें ॥ १०० ॥ कंसको मारनेवाले कृष्णकी वह भुजा आपका कल्याण करे जिसने घनी वर्षासे गोकुलको बचानेकी धुनमें जब गोवर्धन पर्वतको उठा लिया तब गोपियाँ अत्यन्त प्रसन्न होकर जिसे चूमने लगीं तथा कामके कारण उनके अधर चिपकानेसे जिसमें सिन्दूरके चिह्न लग गए हैं ॥ १०१ ॥ क्षण भरमें सारे कष्ट नष्ट कर देनेमें चतुर तथा कस्तूरी लगानेसे अत्यन्त सुन्दर वे दयालु कृष्ण दीनता दूर करें जो हेमपुष्पके समान कान्तिवाली व्रजकी स्त्रियोंसे घिरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो बिजलियोंसे घिरे हुए तत्काल ही तपन मिटानेवाले मेघ हों ॥ १०२ ॥ शत्रुघ्न और लक्ष्मणके साथ रहनेवाले, अति कठोर धनुष तोड़नेवाले, पृथ्वीका विस्तार और उद्धार करनेवाले धर्मपूर्वक सम्पत्तिका उपार्जन करनेवाले, उज्ज्वल यश प्राप्त करनेवाले तथा चार वेषोंवाले अथवा शत्रुविनाशक चिह्न (चक्र, गदा आदि) धारण करनेवाले, उग्रधन्वाको मारनेवाले, गोवर्धन पर्वतका उद्धार करनेवाले, युधिष्ठिरको सम्पत्ति देनेवाले, अर्जुनका यश फैलानेवाले तथा सुन्दर आकृतिवाले वे कोई मनुष्य रूपधारी ईश्वर आपका कल्याण करें ॥ १०३ ॥ सारी व्रज-जनताको शरण देनेवाले, कंस आदि दानवोंका कुलसहित नाश करनेवाले, भक्तोंका पालन करनेवाले और गोपियोंका मन हरनेवाले श्रीकृष्णको मैं भली भाँति प्रणाम करता हूँ ॥१०४॥ खेल-खेलमें रूठी हुई राधाके पैरोंपर जैसे ही क्षणभर कृष्णजीने अपने सिरकी छाया डाली (पैरों पड़नेका भाव दिखाया) वैसे ही राधाजीने प्रसन्न होकर उनकी परछाईंपर अपनी दोनों भुजाओंकी छाया कर दी (आलिङ्गन करनेका भाव दिखाया)। इस प्रकार बड़े-बूढ़ोंके बीच बैठे-बैठे ही उन दोनोंके मनाने और प्रसन्न होनेकी जय हो ॥ १०५ ॥ जारोंके मुखिया, वंशीकी ध्वनिका रस लेनेवाले तथा रातभर जागनेके कारण लाल-लाल नेत्र हो जानेसे एक निराली शोभा धारण किए हुए वे कृष्णजी आपकी रक्षा करें जिनकी छातीपर बलपूर्वक गोपीका आलिङ्गन करते समय उसके मोटे-मोटे स्तनोंकी रगड़से उनपर लगा चन्दन गिर पड़नेपर भी चन्दनकी सुगन्ध बस गई ॥१०६॥ भले ही संसारसे डरनेवाले लोग वेदों,

ब्रह्म ॥ १०७ ॥ स पातु वो यस्य हतावशेषास्तत्तुल्यवर्णाञ्जनरञ्जितेषु । लावण्ययुक्तेष्वपि वित्रसन्ति दैत्याः स्वकान्तानयनोत्पलेषु ॥ १०८ ॥ साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्धम्मिल्लमुल्लासितभ्रूवल्लीकमलीकदर्शितभुजामूलार्धदृष्टस्तनम् । गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य ललितं काश्चिच्चिरञ्चिन्तयन्नन्तर्मुग्धमनोहरो हरतु वः क्लेशं नवः केशवः ॥ १०९ ॥ सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्वृन्दैरमन्दादरादानम्रैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दीवरम् । स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दरगलन्मन्दाकिनीमेदुरं श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे ॥ ११० ॥ सुपर्णः स्वर्णाद्रौ रचितमणिशृङ्गे जलधिजामुखाम्भोजे भृङ्गो निगमविलसत्पञ्जरशुकः । त्रिलोकीकस्तूरीतिलककमनीयो व्रजवधूविहारी श्रीकृष्णो दिशतु भवतां शर्म सततम् ॥ १११ ॥ संसक्तानिव पातु गोपनिषद्व्याहारमाध्वीरसानुन्मार्ष्टुं व्रजसुन्दरीकुचतटीपाटीररेणूनिव । उन्मीलन्मुरलीनिनादबहुलामोदोपसीदद्गवीजिह्वालीढमलीकवल्लवशिशोः पादाम्बुजं पातु वः ॥ ११२ ॥ स्तनन्धयन्तञ्जननीमुखाब्जं विलोक्य मन्दस्मितमुज्ज्वलाङ्गम् । स्पृशन्तमन्यं स्तनमङ्गुलीभिर्वन्दे यशोदाङ्कगतं मुकुन्दम् ॥ ११३ ॥ स्वप्नासादितदर्शनामनुनयन्प्राणेश्वरीमादरादंसेऽस्मिन्पतितैरपाङ्गवलितैर्यद्बोधितोऽप्यश्रुभिः । प्रत्याय्यस्त्वमतो मया ननु हरे कोऽयं क्रमव्यत्ययः पातु त्वां व्रजयोषितेत्यभिहितं लज्जाकरं शार्ङ्गिणः ॥ ११४ ॥ स्वामी मुग्धतरो वनं घनमिदं बालाहमेकाकिनी क्षोणीमावृणुते तमालमलिनच्छाया तमःसंहतिः । तन्मे सुन्दर कृष्ण मुञ्च सहसा वर्त्मेति गोप्या गिरः श्रुत्वा तां परिरभ्य मन्मथकलासक्तो हरिः पातु वः ॥ ११५ ॥ हृदयं कौस्तुभोद्भासि

स्मृतियों (धर्मशास्त्र) या महाभारतको मानते रहें, पर मैं तो उन नन्दजीको प्रणाम करता हूँ जिनके आँगनमें ही परब्रह्म विराजमान हैं ॥ १०७ ॥ वे कृष्णजी रक्षा करें जिनके मारनेसे बचे हुए दैत्य अपनी स्त्रियोंके परम सुन्दर कमल-नयनमें आँजे हुए कृष्णजीके रङ्गका अञ्जन देखकर डर जाते हैं ॥ १०८ ॥ वे सुन्दर नवयुवक कृष्ण आपके कष्ट हरें जो कहीं छिपकर चुपचाप एकान्तमें बैठी गोपियोंकी मुस्कराहट, बिखरे हुए केश, तनी हुई भौंहें, अँगड़ाई-जँभाई लेते समय अधखुले स्तन और हाव-भाव देखकर उनमेंसे किसी एकका देरतक चिन्तन करते हुए भीतर ही भीतर प्रसन्न होते रहे ॥ १०९ ॥ पाप नष्ट करनेके लिये श्रीगोविन्दके उस चरण-कमलको प्रणाम करते हैं जो उस समय नीलकमलसे जान पड़ते हैं जब इन्द्र आदि सब देवताओंके आनन्दित होकर अत्यन्त आदरपूर्वक इन्द्रनील-मणि-जटित मुकुट नवाकर प्रणाम करते समय उनपर मणियोंकी कान्ति पड़ती है और जिनमें परागसे सुवासित जल बहानेवाली स्वच्छ गङ्गा भरी हुई है ॥ ११० ॥ स्वर्णमय सुमेरु पर्वतके मणिजटित शिखरपर सिन्धु-पुत्री लक्ष्मीके मुखकमलको भौंरेके समान चाहनेवाले, ब्रजकी गोपियोंसे विहार करनेवाले, वेदरूपी पिंजड़ेमें तोतेके समान शोभित होनेवाले तथा त्रिलोकीके तिलकके समान सुन्दर भगवान् वासुदेव (श्रीकृष्णजी) आपको सदा ऐश्वर्य दें ॥ १११ ॥ गोप-बालक कृष्णजीका वह चरणकमल आपकी रक्षा करे जिसे उनकी वंशीकी दूरतक गूँजती हुई ध्वनि सुनकर अत्यधिक आनन्दसे विह्वल गौएँ, मानो उसमें लिपटा हुआ उपनिषदोंका सूक्तिरूपी माध्वीरस (महुएसे बनी सुरा) पीनेके लिये अथवा ब्रजकी सुन्दरी गोपियोंके स्तनोंसे गिरकर उसमें लिपटी हुई चन्दन-रज हटानेके लिये ही, चाट रही हैं ॥ ११२ ॥ यशोदाकी गोदमें लेटकर दूध पीनेवाले, माँका मुखकमल देख-देखकर मुस्करानेवाले, उँगलियोंसे दूसरा स्तन छूनेवाले तथा उजली देहवाले बालक मुकुन्दको प्रणाम करता हूँ ॥ ११३ ॥ 'मैंने आपको जगानेके लिये नेत्रके कोनोंसे आपके कन्धेपर आँसू भी गिराए, पर आप तो स्वप्नमें प्राप्त हुई प्राणेश्वरीको ही आदरपूर्वक मनानेमें मग्न थे ! हे कृष्ण ! यह क्या गड़बड़ है ? अब क्या आप मेरे विश्वासके योग्य रह गए हैं ?' इस प्रकार ब्रजकी गोपीने कृष्णको लज्जित करनेवाली जो वाणी कही वह आपकी रक्षा करे ॥ ११४ ॥ 'हे सुन्दर कृष्ण ! मेरा पति मुझे बहुत चाहता है (मुझे जल्दी जाना चाहिए), यह वन बहुत घना है, एक तो मैं नई-नवेली दूसरे अकेली हूँ, इन तमालोंकी काली-काली छाया भी धरती ढँके लेती है और अन्धकार घना होता जाता है अतः मुझे छोड़ दो (अर्थात् देर न करो) ।' इस प्रकार मार्गमें गोपीकी बात सुनकर एकाएक उसका आलिङ्गन करके कामकला (रति) में जुट जानेवाले श्रीकृष्ण आपकी रक्षा करें ॥ ११५ ॥ कौस्तुभ मणिकी कान्तिसे चमकता हुआ श्रीकृष्णजीका वह हृदय आपका ऐश्वर्य बढ़ावे जो ऐसा जान पड़ता है मानो उसमें राधाको न घुसने देनेके लिये लक्ष्मीने ताला लगा दिया हो ॥ ११६ ॥ हे गोपबालक (कृष्ण) !

हरेः पुष्णातु वः श्रियम्। राधाप्रवेशरोधाय दत्तमुद्रमिव श्रिया ॥ ११६ ॥ हे गोपबालक भवानवलम्ब्य लीलां चिक्षेप नः किमिति हन्त ! तमोन्धकूपे। अस्यां महाविपदि सन्ततमर्दितांस्त्वं पश्यन् कदा नु करुणामवलम्बितासे ॥ ११७ ॥ हे मुक्तिदेवि बहुजन्मभिरप्यलभ्यामघर्यापि गोपशिशुकस्य करं गतासि। पर्णस्य खण्डमपि हन्त निवेद्य यस्मै क्रीणन्ति मङ्क्षु भवतीं बत भिक्षवोऽपि ॥ ११८ ॥

देवकी—अव्यात्स्वर्लोकचूडामणिपटलशिखाश्रेणिशोणीकृताङ्घ्रिः क्षोणीभारं विनेतुं जठरजुपि जगद्बान्धवे देवकी वः। राज्ञामुद्दामदोष्णां रणशिरसि रणत्कीकसच्छेदभीमाः शस्त्राणां खणत्काराः प्रतिहतगुरवो यच्छ्रुतेर्दोहदोऽभूत् ॥ १ ॥

राधा—राधा पुनातु जगदच्युतदत्तचित्ता मन्थानमाकलयती दधिरिक्तपात्रे। यस्याः स्तनस्तवकचूचुकलोलदृष्टिर्देवोऽपि दोहनधिया वृषभं दुदोह ॥ १ ॥ सुधाधाम्नः कान्तिस्तव वदनपङ्केरुहगुणैर्जितेव म्लानत्वं व्रजति सहसा प्राणदयिते। वदत्येवं कान्ते दिवसविरहातङ्कचकिता तदङ्गे संलग्ना तव दिशतु राधा प्रियशतम् ॥ २ ॥ हेलोदस्तमहीधरस्य तनुतामालोक्य दोष्णो हरेर्हस्तेनांसतटेऽवलम्ब्य चरणाधारोत्पतत्पादकम्। शैलोद्धारसहायतां जिगमिषोरस्पृष्टगोवर्धना राधाया गगने जयन्ति सुचिरं वन्ध्याः करभ्रान्तयः॥३॥

रुक्मिणी—श्लाघ्याशेषतनुं सुदर्शनकरः सर्वाङ्गलीलाजितत्रैलोक्यां चरणारविन्दललितेनाक्रान्तलोको हरिः। बिभ्राणां मुखमिन्दुसुन्दररुचश्चन्द्रात्मचक्षुर्दधत् स्थाने यां स्वतनोरपश्यदधिकां सा रुक्मिणी वोऽवतात् ॥ १ ॥

वेणुः—क्रेङ्कारः स्मरकार्मुकस्य सुरतक्रीडापिकीनां रवो झङ्कारो रतिमञ्जरीमधुलिहां लीलाचकोरीध्वनिः। तन्व्याः कञ्चुलिकापसारणभुजाक्षेपस्खलत्कङ्कणक्काणः प्रेम तनोतु वो नववयोलास्याय वेणुस्वनः ॥ १ ॥

आपने लीलाका आश्रय लेकर हमें तमोगुणरूपी अन्धकूपमें क्यों डाल दिया ? हाय ! इस घोर विपत्तिसे निरन्तर कष्ट पाते हुए हमें देखकर अब आप कब दयालु होंगे ॥ ११७ ॥ हे मुक्ति देवि ! खेद है ! अनेक जन्मोंमें भी प्राप्त न होनेवाली तथा अत्यन्त श्रेष्ठ होकर भी तुम ऐसे अहीरके बच्चे (कृष्ण) के हाथ लगीं जिसे भिखमङ्गे भी पत्तेका टुकड़ा (तुलसीदल) अर्पण करके तत्काल उस मूल्यमें तुम्हें ले जाते हैं ॥ ११८ ॥

देवकी : स्वर्गके चूड़ामणियोंकी कान्ति पड़नेसे लाल-लाल चरणवाली तथा संसारका भार हटानेको अवतरित होनेवाले संसारके हितैषी प्रभुको गर्भमें धारण करनेवाली वे देवकीजी आपकी रक्षा करें जिनके गर्भके बालकके संस्कार भी उस समय युद्धभूमिमें अपनेसे बड़ोंका भी वध करनेवाले उद्दण्ड राजाओंकी मार-काट तथा शस्त्रोंकी भयङ्कर ध्वनि सुननेसे वैसे ही बन रहे थे ॥ १ ॥

राधा : वे राधा संसारको पवित्र करें जिनका चित्त कृष्णमें ऐसा जमा हुआ है कि वे बिना दही डाले ही मटकेमें मथनी चलाने लगीं और जिनके स्तनोंके अग्रभागपर दृष्टि जमाए कृष्ण भी चले तो गौ दुहने, पर बैलको ही दुहने लगे ॥ १ ॥ 'हे प्राणप्यारी ! तुम्हारे मुखकमलके सुन्दर गुणोंसे लजाकर ही मानो इस अमृतके भण्डार चन्द्रमाकी कान्ति मन्द पड़ने लगी' ऐसा अपने प्रिय कृष्णके मुँहसे निकलते ही दिन-भर उनसे न मिल पानेके भयसे चकित होकर तुरन्त ही कृष्णकी देहसे लिपट जानेवाली राधा आपकी सैकड़ों इच्छाएँ पूर्ण करें ॥ २ ॥ जब श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही पर्वत उठा लिया तब उनके हाथोंको निर्बल समझकर पर्वत उठानेमें सहायता करनेकी इच्छासे धरतीसे उचक-उचककर भी गोवर्धन पर्वतको न छू सकनेवाली राधाकी कृष्णजीके कन्धोंतक ही पहुँचनेवाली भुजाओंके व्यर्थ ही आकाशमें हिलनेकी जय हो ॥ ३ ॥

रुक्मिणी : अपने सब अङ्गोंके हावभावोंसे तीनों लोकोंको जीतनेवाली, चन्द्रमाके समान सुन्दर कान्तियुक्त मुँहवाली तथा बड़ाई करने-योग्य सारे शरीरवाली वे रुक्मिणी आप लोगोंकी रक्षा करें जिन्हें अपने चरणकमलकी सुन्दरतासे सारे संसारको जीत लेनेवाले, हाथमें सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले, तथा चन्द्रमाको नेत्ररूपमें धारण करनेवाले विष्णु भगवान्‌ने अपनी देहसे भी अधिक आदरपूर्वक देखा ॥ १ ॥

वंशी : वंशीका वह मधुर स्वर आपके मनमें नई अवस्थामें नृत्यके प्रति प्रेम उत्पन्न करे जो ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेवके धनुषकी टङ्कार हो, या रति-क्रीड़ा करती हुई कोयलोंका मीठा स्वर हो, या रतिरूपी मञ्जरीका रस लेनेवाले भौंरोंकी गुञ्जार हो, या क्रीड़ा करती हुई चकोरीका स्वर हो, या नवयुवती सुन्दरीके कञ्चुकी (चोली) उतारते समय उसके हाथोंके हिलनेसे बजे हुए कङ्कणोंकी मधुर ध्वनि हो ॥ १ ॥

नन्दकः—सान्द्रां मुदं यच्छतु नन्दको वः सोल्लासलक्ष्मीप्रतिबिम्बगर्भः। कुर्वन्नजस्रं यमुनाप्रवाहसलीलराधास्मरणं मुरारेः ॥ १ ॥

बुद्धः आबाहूद्गतमण्डलाग्ररुचयः सन्नद्धवक्षःस्थलाः सोष्माणो व्रणिनो विपक्षहृदयप्रोन्माथिनः कर्कशाः। उत्सृष्टाम्बरदृष्टिविभ्रमभरा यस्य स्मराग्रेसरा योधा वारवधूस्तनाश्च न दधुः क्षोभं स वोऽव्याज्जिनः ॥ १ ॥ कामेनाकृष्य चापं हतपटुपटहं वल्गुभिर्मारवीरैर्भ्रूभङ्गोत्क्षेपजृम्भास्मितललितदृशा दिव्यनारीजनेन। सिद्धैः प्रह्वोत्तमाङ्गैः पुलकितवपुषा विस्मयाद्वासवेन ध्यायन्यो योगपीठादचलित इति वः पातु दृष्टो मुनीन्द्रः ॥ २ ॥ किं स्याद्भास्वान्न भानोरमृतघनरसस्यन्दिनः सन्ति पादाः किं वा राकाशशाङ्को न हि तुहिनरुचिः कुत्रचिन्निष्कलङ्कः। साक्षाच्चिन्तामणिः किं विपुलफलमणेः सौकुमार्यं कुतस्त्यं सन्देहान्मुग्धधीभिः प्रथममिति मुनेः पातु दृष्टं वपुर्वः ॥ ३ ॥ ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं पश्यानङ्गशरातुरं जनमिमं त्रातापि नो रक्षसि। मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यः पुमाञ्छश्वन्मारवधूभिरित्यभिहितो बुद्धो जिनः पातु वः ॥ ४ ॥ निःशेषापि त्रिलोकी विनयपरतया सन्नमन्ती पुरस्ताद्यस्याङ्घ्रिद्वन्द्वसक्ताङ्गुलिविमलनखादर्शसङ्क्रान्तदेहा। निर्भीतिस्थानलीना भवदभवमहारातिभीत्येव भाति श्रीमान्सर्वज्ञदेवः स भवतु भवतां शर्मणे कर्मभक्तः ॥ ५ ॥ बद्ध्वा पद्मासनं यो नयनयुगमिदं न्यस्य नासाग्रदेशे धृत्वा मूर्त्तौ च शान्तौ समरसमिलितौ चन्द्रसूर्याख्यवातौ। पश्यन्नन्तर्विशुद्धं किमपि च परमञ्ज्योतिराकाररहीनं सौख्याम्भोधौ निमग्नः स दिशतु भवतां ज्ञानबोधं बुधोऽयम् ॥६॥ रेतोरक्तमयान्यमूनि भविनां विण्मूत्रपूर्णोदराण्यालोक्येव कलेवराणि विगलत्तोयाद्ररन्ध्राणि यः। मायाजालनियन्त्रितानि घृणया नोन्मीलयत्यक्षिणी निर्व्याजप्रणिधाननिश्चलमतिर्बुद्ध्यै स

नन्दक : वह 'नन्दक' नामका खड्ग आपको अत्यधिक आनन्द दे जो हँसती हुई लक्ष्मी तथा साँवले कृष्णजीकी परछाईं अपने भीतर धारण करके हिलता हुआ, कृष्णको सदा लहराती हुई यमुनाके तीरपर सुन्दर हाव-भाववाली राधाका स्मरण दिलाता है ॥ १ ॥

बुद्ध : वे बुद्ध भगवान् आपकी रक्षा करें जिनका मन कामदेवके आगे चलनेवाली प्रधान अप्सराओंके छातीपर भुजाओंतक उभरे हुए, आगेकी ओर कान्तिवान्, नखचिह्नोंसे सुशोभित, दूसरोंके हृदय मथ डालनेवाले, आँचल उघड़ जानेपर देखने-मात्रसे व्याकुल कर देनेवाले उष्ण तथा कठोर स्तन भी नहीं डिगा सके ॥ १ ॥ ध्यानमें मग्न तथा आसनसे न डिगनेवाले वे बुद्ध भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्हें कामदेवने धनुष खींचते हुए, कामदेवके सैनिकोंने डंका बजाते हुए, बाँकी चितवनवाली अप्सराओंने मुस्कराकर, भौंहें नचा-नचाकर अँगड़ाई, जँभाई लेते हुए, सिद्धोंने प्रसन्नतापूर्वक सिर नवाते हुए तथा इन्द्रने आश्चर्यचकित होकर पुलकित होते हुए देखा ॥ २ ॥ वे तेजस्वी बुद्ध भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्हें सबसे पहले देखकर लोग मोहित होकर इस प्रकार शंका करने लगे कि 'क्या यह सूर्य है ! नहीं, सूर्यकी किरणें इस प्रकार अमृत जैसा सुन्दर रस नहीं बरसातीं, वे तो बहुत उष्ण होती हैं, तो क्या यह पूर्णिमाका चन्द्रमा है ? नहीं, चन्द्रमा क्या कहीं निष्कलंक होता है ! हो सकता है यह प्रत्यक्ष चिन्तामणि ही हो ! पर उसमें इतनी कोमलता कहाँ होती है !' ॥३॥ वे महायोगी बुद्ध आपकी रक्षा करें जिन्हें उत्तेजित करनेके लिये कामदेवकी स्त्रियाँ बार-बार उनसे कहतीं 'तुम ध्यानके बहाने किस स्त्रीका चिन्तन कर रहे हो ? क्षण भरके लिये नेत्र खोलकर देखो तो हम कामकी पीड़ासे कितनी व्याकुल हैं, तुम रक्षक होकर भी हमारी रक्षा नहीं करते ! तुम झूठमूठ अपनेको दयालु कहते हो, तुमसे अधिक निठुर तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन हो सकता है !' ॥ ४ ॥ वे शोभासम्पन्न तथा कर्ममार्गपर चलनेवाले सर्वज्ञ (बुद्ध) भगवान् आपकी रक्षा करें जिनके चरणोंकी उँगलियोंके स्वच्छ नखरूपी दर्पणमें सामने झुककर प्रणाम करते हुए त्रैलोक्यके प्राणियोंकी पड़ती हुई परछाईं देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो आगे होनेवाले किसी भयङ्कर महाप्रलयके भयसे वे सब इस सब प्रकारसे सुरक्षित स्थानमें आ छिपे हैं ॥ ५ ॥ वे बुद्ध भगवान् आपको ज्ञान-मार्गका बोध दें जो पद्मासन लगाकर नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि स्थिर करके, शरीरके पूर्ण शान्त हो चुकनेपर, चन्द्र और सूर्य नाड़ी के एकाकार होते ही अपनेमें अत्यन्त विशुद्ध निराकार ज्योतिस्वरूप प्रभुका दर्शन पाकर ब्रह्मानन्दमें मग्न हो गए ॥६॥ मायाजालमें फँसे हुए संसारी प्राणियोंके रक्त-वीर्यमय तथा मल-मूत्र-भरे शरीरोंका प्रत्येक छिद्र बहते हुए जलसे भींगा देखकर घृणाके मारे नेत्र न खोलनेके बहाने प्राणायाम-द्वारा बुद्धि स्थिर

वुद्धोऽस्तु वः ॥७॥ षट्चक्रे क्रमभावनापरिगतं हृत्पद्ममध्यस्थितं सम्पश्यच्छिवरूपिणं लयवशादात्मानमध्याश्रितः। युष्माकं मधुसूदनो बुधवपुर्धारी स भूयान्मुदे यो संस्थः कमलासने कृतरुचिर्बुद्धैकलिङ्गाकृतिः॥ ८॥

कल्किः—उद्यत्करकरवालः शकतिमिरध्वंसने महानिपुणः। कल्किहरिर्वः पायादपायतः कलिनिशान्तोत्थः॥ १॥ प्रेङ्खद्वाजितरङ्गमुन्मदगजग्राहप्रगल्भं भटव्यावल्गत्स्फुटपुण्डरीकनिलयं डिण्डीरपिण्डावलिम्। म्लेच्छानीकमहार्णवं सुविपुलं संग्रामकल्पावधौ यश्चौर्वाग्निरिवाभवद्व्यतु स वः कल्पानि कल्की हरिः॥२॥ यवनीनयनाम्बुधोरणीभिर्धरणीनामपनीय तापवह्निम्। सुकृतद्रुमसेकमाचरन्तं धृतकल्कं प्रणमामि निर्विकल्पम्॥ ३॥

शिवः

अरुणनयनं सभ्रूभङ्गं दरस्फुरिताधरं सुतनु शशिनः क्लिष्टां कान्तिं करोतु तवाननम्। कृतमनुनयैः कोपोऽयन्ते मनस्विनि वर्धतामिति गदितया श्लिष्टो देव्या शिवाय शिवोऽस्तु वः॥१॥ असोढा तत्कालोल्लसदसहभावस्य तपसः कथानां विश्रम्भेष्वपि च रसिकः शैलदुहितुः। प्रमोदं वो दिश्यात्कपटवटुवेषापनयने त्वराशैथिल्याभ्यां युगपदभियुक्तः स्मरहरः॥ २॥ अहिभूषणोऽप्यभयदः सुकलितहालाहलोऽपि यो नित्यः। दिग्वसनोऽप्यखिलेशस्तं शशधरशेखरं वन्दे॥३॥ आखुर्वाञ्छति भस्मसूत्रहरणं व्यालस्तथा मूषकं व्यालं वर्हिरयं हरिश्च वृषभं गङ्गा तथा चन्द्रकम्। इत्थं दुःखमहर्निशं शृणु विभो सोढव्यमेतत्कथं शम्भोरात्मदशानिवोधनपरं त्वां पातु दीनं वचः॥ ४॥ आदाय चापमचलं कृत्वाहीनं गुणं

किए हुए बुद्ध भगवान् आपको बुद्धि दें॥ ७॥ क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा चक्रोंपर ध्यान करनेसे दिखाई पड़े हुए तथा हृदय-कमलपर विराजमान कल्याणमय परमात्माका एकाग्र होकर दर्शन करनेमें लीन होकर आत्मामें स्थित, पद्मासन लगाकर बैठे हुए, बुद्धके वेषमें अवतार लेनेवाले, ज्ञानमय स्वरूपवाले मधुसूदन (कृष्ण) भगवान् आपको आनन्द दें॥ ८॥

कल्कि: कलियुगरूपी रात्रि नष्ट करनेके निमित्त उठे हुए हाथमें किरणरूपी शस्त्र धारण किए हुए तथा अन्धकार नष्ट करनेमें चतुर वे उदय होते हुए सूर्यके समान कल्कि भगवान् आपको नाशसे बचावें॥ १॥ वे कल्कि भगवान् आपके पाप नष्ट करें जो म्लेच्छोंकी सेनाके उस समुद्रको सोखनेवाले वड़वानलके समान हैं जिसमें दौड़ते हुए घोड़े ही लहर हैं, मतवाले हाथी ही मगर हैं, योद्धाओंके कटे हुए सिर ही कमल हैं और पिण्ड ही फेन हैं॥ २॥ यवनोंकी स्त्रियोंकी आँसूरूपी जलधारासे धरतीकी तपन बुझाकर धर्मरूपी वृक्षको सींचनेवाले तथा कल्क धारण किए हुए उन निर्विकल्प भगवान्को प्रणाम करता हूँ॥ ३॥

शिव

रूठी हुई पार्वतीजीको मनानेके लिये भगवान् शङ्करजीने कहा—हे सुन्दरी! लाल-लाल आँखों, टेढ़ी भौहों तथा नीचेके कुछ-कुछ हिलते हुए ओठोंवाला तुम्हारा मुख हमारे माथेपर बैठे हुए चन्द्रमाकी सुन्दरताको लज्जित कर दे। मैं चाहता हूँ कि ज्यों-ज्यों मैं तुम्हें मनाऊँ त्यों-त्यों तुम और भी रूठती जाओ। यह सुनते ही पार्वतीजीने शिवजीका जो आलिङ्गन किया उस आलिङ्गनसे युक्त भगवान् शङ्कर आप लोगोंका कल्याण करें॥ १॥ [पार्वतीजीका तप देखकर उनकी स्नेह-परीक्षाके लिये जब स्वयं शङ्करजी ब्रह्मचारीका वेष बनाकर गए उस समय] कोमल शरीरवाली पार्वतीजीकी कठोर तपस्याका दुःख सहन न करनेके कारण जो अपना ब्रह्मचारी-वेष छोड़नेको उतावले हो रहे थे, साथ ही पार्वतीजीकी विश्वास करने योग्य वातोंमें अत्यन्त रस पानेके कारण वेष छोड़नेमें ढिलाई भी कर रहे थे, वे एक साथ उतावलापन और शिथिलता दोनोंका साथ-साथ अनुभव करनेवाले शङ्करजी आपको अत्यधिक आनन्द दें॥ २॥ चन्द्रमाका मुकुट पहने हुए उन शङ्करजीको प्रणाम करता हूँ जो साँपोंके गहने पहने हुए भी दूसरोंको भयसे बचाते हैं, जो भयङ्कर विष पीकर भी अमर हैं और जो नङ्गे रहते हुए भी सारे ब्रह्माण्डके स्वामी हैं॥ ३॥ विष्णुजीसे अपनी दशाका वर्णन करते हुए शङ्करजीके ये दीन वचन आपकी रक्षा करें कि 'चूहा तो भस्म और जनेऊपर दाँत लगाए है, चूहेको साँप गटक जाना चाहता है, साँपको मोर खा लेना चाहता है, सिंह नन्दीको दबोचनेके लिये झपटना चाहता है और गङ्गा चन्द्रमाको पाना चाहती है, इस प्रकार हे भगवान्! दिन-रातका यह दुःख कैसे सहा जाय!'॥४॥ उन तीन नेत्रवाले शङ्कर भगवान्को प्रणाम है जिन्होंने अटल हिमालय पर्वतको धनुष बनाकर शेषनागकी डोरी उसपर लगाकर और विष्णुका अचूक वाण चढ़ाकर ही

विषमदृष्टिः । यश्चित्रमच्युतशरो लक्ष्यमभाङ्क्षीन्नमस्तस्मै ॥ ५ ॥ आहतकुपितभवानीकृतकरमालादिबन्धनव्यसनः । केलिकलाकलहादौ देवो वः शङ्करः पायात् ॥ ६ ॥ आनन्दश्लथिताः समाधिषु मुखे गौर्या विलासोल्लसाः सम्भ्रान्ताः क्षणमुद्गताः क्षणमथ स्मेरा निजे वैकृते। क्रूराः कृष्टशरासने मनसिजे दग्धे घृणाकूणितास्तत्कान्तारुदितेऽश्रुपूरतरलाः शम्भोर्दृशः पान्तु वः ॥७॥ आसन्नाय सुदूराय गुप्ताय प्रकटात्मने । सुलभायातिदुर्गाय नमश्चित्राय शम्भवे ॥८॥ आसीने पूष्णि तूष्णीं व्यसनिनि शशिनि व्योम्नि कृष्णे सतृष्णे दैत्येन्द्रे जातनिद्रे द्रवति मघवति क्लान्तकान्तौ कृतान्ते। अब्रह्मण्यं ब्रुवाणे कमलपुटकुटीश्रोत्रिये शान्त्युपाये पायाद्वः कालकूटञ्झटिति कवलयँल्लीलया नीलकण्ठः॥९॥ उज्झित्वा दिशमम्बरं वरतरं वासो वसानश्चिरं हित्वा वासरसं पुनः पितृवने कैलासहर्म्याश्रयः । त्यक्त्वा भस्म कृताङ्गरागनिचयः श्रीखण्डसारद्रवैर्देवः पातु हिमाद्रिजापरिणयं कृत्वा गृहस्थः शिवः ॥१०॥ उद्दामभ्रमिवेगविस्तृतजटावल्लीप्रणालीपतत्स्वर्गङ्गाजलदण्डिकावलयितं निर्माय तत्पञ्जरम् । सम्भ्राम्यद्भुजदण्डपक्षपटलद्वन्द्वेन हंसायितस्त्रैलोक्यव्ययनाटिकानयनटः स्वामी जगत्त्रायताम् ॥११॥ उपहरणं विभवानां संहरणं सकलदुरितजालस्य । उद्धरणं संसाराच्चरणं वः श्रेयसेऽस्तु विश्वपतेः ॥१२॥ एकैश्वर्यस्थितोऽपि प्रणतबहुफलो यः स्वयं कृत्तिवासाः कान्तासम्मिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः पुरस्ताद्यतीनाम् । अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स नस्तामसीं वृत्तिमीशः ॥ १३ ॥ एकोऽन्ते द्विसमस्त्रिलोचन इति ख्यातश्चतुर्भिः स्तुतो

त्रिपुरासुरको मार डाला ॥ ५ ॥ वे शङ्कर भगवान् आप लोगोंकी रक्षा करें जिन्होंने रतिके समय रूठी हुई पार्वतीजीको मनानेके लिये उन्हें अपने दोनों हाथोंसे इस प्रकार चिपटा लिया मानो उन्हें माला बनाकर पहनना चाहते हों ॥ ६ ॥ शङ्करजीके वे नेत्र आपकी रक्षा करें जो समाधि लगाते समय आनन्दसे भर जाते हैं, पार्वतीके मुँहके हाव-भाव देखकर खिल जाते हैं, जो कामदेवके पीड़ा पहुँचानेपर अपनेमें कामका विकार देखकर घबराहटसे भरकर ऊपर उठ गए, फिर एक क्षणमें हँसीसे भर गए और कामदेवकी स्त्री (रति) का विलाप सुनकर आँसू बहाने लगे थे ॥ ७ ॥ उन निराले रङ्ग-ढङ्गवाले शङ्करजीको प्रणाम है जो बहुत पास भी हैं, बहुत दूर भी हैं, पीछे भी हैं और सामने भी हैं, जो सरलतासे पाए जा सकते हैं और कठिनतासे भी नहीं पाए जा सकते ॥ ८ ॥ समुद्र मथनेपर उससे निकले हुए महाविषकी भयङ्करतासे जब सूर्य हारकर चुपचाप बैठ गए, चन्द्रमा उदास हो गए, आकाश काला पड़ गया, यमराज मलिन पड़ गए और ब्रह्मा जब 'बचाओ, बचाओ!' चिल्लाते हुए अपनी कमलकी कुटियामें प्राण बचानेको घुसे उस समय शान्ति करनेके लिये जिन शंकरजीने झटपट सरलतासे वह कालकूट नामक महाविष घूँटकर अपना गला नीला कर लिया वे आप सबोंकी रक्षा करें ॥ ९ ॥ जिन्होंने दिशारूपी वस्त्र छोड़कर (नङ्गे रहना छोड़कर) सदाके लिये अच्छे-अच्छे मूल्यवान् कपड़े पहन लिए, जो श्मशानमें रहना छोड़कर कैलासमें महल बनाकर रहने लगे, शरीरमें भस्म रमाना छोड़कर चन्दनादिके तेलसे बने सुन्दर लेप लगाने लगे और सब प्रकारसे सुन्दर होकर जो पार्वतीसे ब्याह करके गृहस्थ हो गए ऐसे शङ्कर भगवान् सबकी रक्षा करें ॥ १० ॥ संसारको नष्ट होनेसे बचानेवाले नाटकके नायक, सबोंके स्वामी वे भगवान् शङ्कर संसारकी रक्षा करें जिन्होंने आकाश-गङ्गाको उतरते देखकर बड़े झटकेसे सिर घुमाकर अपनी जटारूपी लताएँ फैला दीं, जो आकाश-गङ्गाकी उजली धाराओंके उनमें समा लेनेपर, उन्हें लपेटकर बाँधे जानेपर ऐसी जान पड़ने लगीं मानो हंसका शरीर है और उसके ऊपर उठकर घूमते हुए गङ्गाके दोनों हाथ हंसके दोनों पङ्खोंके समान दिखाई देने लगे ॥ ११ ॥ संसारके स्वामी शङ्करके वे चरण आप सबका कल्याण करें जो सब प्रकारका ऐश्वर्य देनेवाले, सारे पाप-तापोंका नाश करनेवाले और संसारके प्राणियोंका उद्धार करनेवाले हैं ॥१२॥ एक प्रकारकी सम्पत्तिवाले होते हुए भी जो अपने भक्तोंको कई प्रकारकी सुख-सम्पत्ति देनेवाले हैं तथा स्वयं खाल ओढ़े रहते हैं, आधी देह स्त्रीकी होते हुए भी जो विषय-वासनासे दूर रहनेवाले संन्यासियोंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं और अपने आठ शरीरोंसे भली-भाँति संसारका पोषण करते हुए भी जिन्हें तनिक भी घमण्ड नहीं होता वे शङ्कर भगवान् हमारी तमोगुणी बुद्धि दूर करें, जिससे हम अच्छे मार्गपर चल सकें ॥ १३ ॥ वे शङ्करजी सबकी रक्षा करें जो महाप्रलयके पश्चात् अकेले बच रहनेसे गिनतीमें एक ही रह जाते हैं, जो पार्वती-समेत दो हैं, जो तीन नेत्रवाले हैं, चारों वेद जिनके गुण गाते

वेदैः पञ्चमुखः षडाननपिता सप्तर्षिभिर्वन्दितः। अष्टाङ्गो नवतुल्य आमरगणे वासो दशाशा दधत्स्वश्चैकादश सोऽवतान्न विजितो यो द्वादशात्मांशुभिः ॥ १४ ॥ एकं दन्तच्छदस्य स्फुरति जयवशादर्धमन्यत्प्रकोपादेकः पाणिः प्रणन्तुं शिरसि कृतपदः क्षेप्तुमन्यस्तमेव। एकं ध्यानान्निमीलत्यपरमविपहं वीक्षितुश्चक्षुरित्थं तुल्यानिच्छापि वामा तनुरवतु स वो यस्य सन्ध्यावसाने ॥१५॥ एषा ते हर का सुगात्रि कतमा मूर्ध्नि स्थिता किञ्जटा हंसः किं भजते जटां नहि शशी चन्द्रो जलं सेवते। मुग्धे भूतिरियं कुतोऽत्र सलिलं भूतिस्तरङ्गायते यश्चैवं विनिगूहते त्रिपथगां पायात्स वः शङ्करः॥ १६ ॥ ओं नमः परमार्थैकरूपाय परमात्मने। स्वेच्छावभासितासत्यभेदभिन्नाय शम्भवे ॥१७॥ अङ्गं येन रथीकृतन्नयनयोर्युग्मं रथाङ्गीकृतं पत्रं स्वं रथकर्मसारथिकृतं श्वासास्तुरङ्गीकृताः। कोदण्डीकृतमात्मवीर्यमचिरान्मौर्वीकृतं भूषणं वामाङ्गं विशिखीकृतं दिशतु नः क्षेमं स धन्वी पुमान् ॥१८॥ कथयत कथमेषा मेनया विप्र दत्ता शिव शिव गिरिपुत्री वृद्धकापालिकाय। इति वदति पुरन्ध्रीमण्डले सिद्धिलेशव्ययकृतवरवेषः पातु वः श्रीमहेशः॥१९॥ कल्पान्ते शमितत्रिविक्रममहाकङ्कालवद्धस्फुरच्छेषस्यूतनृसिंहपाणिनखरप्रोतादिकोलामिषः। विश्वैकार्णवताविशेषमुदितौ तौ मत्स्यकूर्मावुभौ कर्षन्धीवरतां गतः स्यतु सतां मोहं महाभैरवः ॥ २० ॥ कल्पान्तक्रूरकेलिः क्रतुकदनकरः कुन्दकर्पूरकान्तिः क्रीडन्कैलासकूटे कलि-

---

रहते हैं, जिनके पाँच मुँह (सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान) हैं, जो छः मुँहवाले कार्त्तिकेयजीके पिता हैं, सातों ऋषि (विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ और कश्यप) जिनकी प्रार्थना करते हैं, जिनके आठ (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, चन्द्र और सूर्य) अङ्ग हैं, जो नवग्रहोंके समान तेजस्वी देवताओंसे घिरे रहते हैं, जो दशों दिशाओं (पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, ऊपर और नीचे) को अपनेमें टिकाए हुए हैं और जिनके ग्यारह (अज, एकपात्, अहिर्बुध्न, पिनाकी, अपराजित, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हरण और ईश्वर) रूप हैं और बारहों (विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र और उरुक्रम) सूर्योंकी किरणें भी जिनके तेजकी बराबरी नहीं कर सकतीं ॥ १४ ॥ वे अर्धनारीश्वर शिवजी आपकी रक्षा करें जिनका पार्वतीजीवाला बायाँ अङ्ग सन्ध्याके पश्चात् रूठ गया है, जिनके ओठका आधा शिववाला भाग पार्वतीजीके रूठनेके भयसे काँप रहा है और दूसरा गौरीवाला आधा भाग क्रोधसे फड़क रहा है, जिनका दाहिना शिववाला हाथ क्षमा-याचनाके लिये सिर छू रहा है और बायाँ पार्वतीवाला हाथ उसे हटा रहा है, जिनका दाहिना नेत्र पार्वतीके ध्यानमें मुँदा है और बायाँ नेत्र दाएँ अङ्गको न देखनेकी इच्छासे बन्द है ॥ १५ ॥ पार्वतीजीने शङ्करजीसे गङ्गाजीकी ओर सङ्केत करके पूछा—शङ्करजी ! ये तुम्हारी कौन है ? शङ्करजीने कहा—हे सुन्दर देहवाली ! किसे पूछ रही हो ? पार्वती—उसे, जो सिरपर चढ़ी बैठी है। शङ्करजी—यह तो जटा है। पार्वतीजी—तो जटापर हंस कैसे बैठा है ? शङ्करजी—यह तो चन्द्रमा है। पार्वतीजी—चन्द्रमा क्या जलके पास रहता है ? शङ्करजी—पगली ! यह तो भस्म है, जल कहाँ है ! पार्वतीजी—भस्ममें क्या लहरें उठती हैं ? इस प्रकार जो शङ्करजी बहाना कर-करके पार्वतीजीसे गङ्गाको छिपा रहे हैं वे आप सबकी रक्षा करें ॥ १६ ॥ जिन्हें लोग ओम्, सत्यस्वरूप और परमात्मा कहते हैं पर जो सचमुच देखनेपर अपनी इच्छासे न जाने कितने असत्य प्रतीत होनेवाले स्वरूप धारण कर लेते हैं, उन शङ्करजीको प्रणाम है ॥ १७ ॥ धनुषधारी पुरुषके रूपमें वे शङ्करजी हमें आनन्द दें जो अपने शरीरको रथ, दोनों नेत्रोंको दोनों पहिए, मनको रथ हाँकनेवाला, साँसोंको घोड़े, अपने बलको धनुष, सूर्यको धनुषकी डोरी और बाएँ अङ्गको बाण बनाए हुए ऐसे लगते हैं मानो सजा हुआ धनुष खींचे हुए रथपर बैठे हों ॥ १८ ॥ वे शङ्कर भगवान् आप लोगोंकी रक्षा करें जिन्होंने बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंके मुँहसे ज्यों ही यह सुना कि 'शिव ! शिव !! इस बूढ़े औघड़को मैनाने कैसे अपनी कन्या दे दी !' त्यों ही थोड़ी-सी ही सिद्धिसे अपना रूप बहुत सुन्दर बना लिया था ॥१९॥ वे महा भयङ्कर रूपवाले शङ्करजी सज्जनोंका मोह दूर करें जो कल्पके अन्तमें विराट् रूप धारण किए हुए वामन भगवान्से भी बड़े दिखाई देने लगे, अपने उतने बड़े हड्डियोंके ढाँचेमें लिपटे शेषनागसे जिन्होंने नृसिंह रूपवाले विष्णुको बाँधकर उनके हाथके तीखे नखोंमें वराहावतारको उलझा लिया तथा सारे संसारके जलमग्न होनेपर अत्यन्त प्रसन्न होते हुए मत्स्य और कच्छप अवतारको बाँधकर खींचते हुए मछली मारनेवाले मछुएके समान जान पड़ने लगे ॥ २० ॥ जिनका खेल भी महाप्रलयके समान भयङ्कर होता है,

तकुमुदिनीकामुकः कान्तकायः । कङ्कालक्रीडनोत्कः कलितकलकलः कालकालीकलत्रः कालिन्दीकालकण्ठः कलयतु कुशलं कोऽपि कापालिको नः ॥२१॥ कल्पान्ते क्रोधनस्य त्रिपुरविजयिनः क्रीडया सञ्चरिष्णोः कृत्वापि प्राणिजातैर्निजमुखकुहरातिथ्यमप्राप्ततृप्तेः । दिग्भित्तीः प्रेक्ष्य शून्याः प्रलयजलनिधिप्रेङ्खितात्मीयमूर्त्तिग्रासव्यासक्तमोघश्रमजनितरुषः पान्तु वो गर्जितानि ॥ २२ ॥ कल्याणं वः क्रियासुर्मिलदटनियुगस्थास्नुगीर्वाणभोगिस्त्रैणव्यत्यस्तकल्पद्रुमनवसुमनोनागहारावलीनि । नालीकाशिलष्टलक्ष्मीकरतलकमलभ्रान्तमाध्वीकधारातिम्यत्फालेक्षणानि त्रिपुरहरधनुर्ज्यालताकर्षणानि ॥२३॥ कस्त्वं शूली मृगय भिषजं नीलकण्ठः प्रियेऽहं केकामेकां कुरु पशुपतिर्नैव दृश्ये विषाणे । स्थाणुर्मुग्धे न वदति तरुर्जीवितेशः शिवायाः गच्छाटव्यामिति हतवचाः पातु वश्चन्द्रचूडः ॥ २४ ॥ कान्तां कामपि कामयत्यनुदिनं ध्यानापदेशादयं येनामुं मुनयोऽप्यनादिनिधनं ध्यायन्ति धौतस्पृहाः । इत्यङ्कात्स्वकरे हृते गिरिजया पादे च पद्मासनाद्धिश्वं पातु पुरन्ध्रिनद्धवपुषः शम्भोः समाधिव्ययः ॥ २५ ॥ किं गोत्रं किमु जीवनं किमु धनं का जन्मभूः किं वयः किञ्चारित्रममुष्य के सहचराः के वंशजाः प्राक्तनाः । का माता जनकः शिवस्य क इति प्रह्वेण पृथ्वीभृता पृष्टाः सस्मितनम्रमूकवदनाः सप्तर्षयः पान्तु वः ॥२६॥ कुसुमशरविलासे भङ्गुरस्याद्रिपुत्रीकरतलवलयस्य क्ष्मागतस्यार्धमेकम् । निजमिव शशिखण्डं

जिन्होंने दक्षका यज्ञ विध्वंस किया, जिनकी कान्ति कुन्दके फूल और कपूरके समान उजली है, जिनका शरीर कैलास पर्वतकी चोटीपर कामी होकर कुमुदिनीसे खेलते समय बहुत सुन्दर लगता था, जो प्रलयके समय हड्डियोंके ढाँचोंसे खेलनेको उत्सुक रहते हैं, जो भयङ्कर कलकल शब्द करते हैं, अत्यन्त भयङ्कर कालीजी जिनकी स्त्री हैं और जिनका कण्ठ यमुनाके समान श्याम है, ऐसे कोई औघड़ हमारा कल्याण करें ॥ २१ ॥ त्रिपुरासुरको मारनेवाले शङ्करजी जब महाप्रलय करते हुए क्रोधित होकर सरलतासे टहलते हुए संसारके सब प्राणियोंको अपने मुँहमें भरने लगे पर पेट न भरा तब उन्होंने सब दिशाओंकी ओर दूरतक देखा पर केवल अपने समान प्रलय-कालके बढ़े हुए भयङ्कर समुद्रके अतिरिक्त कुछ न दिखाई पड़ा, उस समय चबा डालनेको कुछ पानेका प्रयत्न करनेपर भी कुछ न मिलनेसे खीझकर जो बहुत वेगसे उन्होंने गर्जनाएँ कीं, वे गर्जनाएँ आपकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ [त्रिपुरासुरको जीतनेके लिये शिवजीने जब शेषनागकी प्रत्यञ्चा बनाई और विष्णुको बाण बनाया उस समय] जब धनुषके दोनों छोरोंपर शेषनाग बँधे थे और विजयकी आशासे प्रसन्न होकर शेषनागकी स्त्रियाँ कल्पवृक्षको हिलाकर उसके गिरे हुए फूलोंसे सर्पके समान कुण्डलीवाली गोल मालाएँ बनाकर धनुष खींचनेवाले शिवजीको समर्पण कर रही थीं तथा बाणके रूपमें लगे हुए विष्णुजीके पास खड़ी हुई लक्ष्मीके हाथके कमलसे निकलती हुई रसकी धारा शङ्करके मस्तकके तीसरे नेत्रकी अग्नि बुझाए दे रही थी उस समयका शिवजीका प्रत्यञ्चा खींचना आप लोगोंका कल्याण करे ॥ २३ ॥ द्वार खटखटानेवाले शङ्करजीसे पार्वतीजीने भीतरसे पूछा—आप कौन हैं? शङ्करजीने कहा—मैं हूँ शूली (त्रिशूलवाला या पीड़ावाला)। पार्वतीजीने कहा—तो जाकर औषधि ढूँढ़ो । शङ्करजी—प्यारी ! मैं नीलकण्ठ (नीले कण्ठवाला या मोर) हूँ। पार्वतीजी—मोर हो तो एक कूक सुनाओ। शङ्करजी—मैं पशुपति (प्राणियोंका या पशुओंका स्वामी) हूँ। पार्वतीजी—पर आपके सींग तो दिखाई नहीं देते। शङ्करजी—मैं स्थाणु (स्थिर या ठूँठ) हूँ। पार्वतीजी—ठूँठ तो बोलता नहीं ! शङ्करजी—मैं शिवा (पार्वती या सियारी) का पति हूँ। पार्वतीजी—तो जङ्गलोंमें जाकर घूमो। पार्वतीजीके इस प्रकार कहनेपर कोई उत्तर न दे सकनेवाले शङ्करजी सबकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ 'जान पड़ता है कि ध्यान करनेका बहाना करके ये किसी दूसरी स्त्रीका ही चिन्तन करते रहते हैं, और इच्छाओंका दमन करनेवाले मुनि लोग भी धोखेमें पड़कर ही इन जन्म-मरणसे रहित शङ्करजीका ध्यान करते हैं' ऐसा मनमें आते ही पार्वतीजीने शङ्करजीकी गोदसे अपने अङ्गका हाथ और पद्मासनसे अपने अङ्गका पैर खींच लिया। ऐसा होनेसे जिन शिवजीकी समाधि टूट गई वे संसारकी रक्षा करें ॥ २५ ॥ शङ्करजीके विवाहके समय पृथ्वीको धारण करनेवाले हिमालयने जब नम्र होकर पूछा कि 'इनका (शङ्करजीका) क्या गोत्र है, क्या जीवन-चर्या है, क्या सम्पत्ति है, कहाँ जन्म-भूमि है, क्या अवस्था है, चरित्र कैसा है, इनके साथी कौन-कौन हैं, इनके पूर्वज कौन हैं और इनके माता-पिता कौन हैं?' उस समय मुसकानके साथ सिर झुकाकर चुप हो जानेवाले सप्तर्षि आपकी रक्षा करें ॥ २६ ॥ फूलोंकी सेजपर विलास करते समय जो कङ्गन टूटकर आधा

याचमानस्य शम्भोर्भवतु सह विवादः कान्तया कौतुकाय ॥ २७ ॥ केयूरीकृतकङ्कणीकृतजटाजूटावतंसीकृतज्यावल्लीकृतकुण्डलीकृतकटीसूत्रीकृताहीश्वरः। पायाद्वस्तिलकीकृतप्रियतमादर्शीकृताक्षीकृतद्यूतारम्भपणीकृतेन्दुशकलः कात्यायनीकामुकः ॥२८॥ केयं मूर्ध्न्यन्धकारे तिमिरमिह कुतः सुभ्रु कान्तेन्दुयुक्ते कान्ताप्यत्रास्ति काचिन्ननु भवतु मया पृष्टमेतावदेव । नाहं द्वन्द्वं करोमीत्यपनय शिरसस्तूर्णमेनामिदानीमित्थं प्रोक्तो भवान्या प्रतिवचनजितः पातु वश्चन्द्रचूडः ॥२९॥ कैलासाद्रावुदस्ते परिचलति गणेषूल्लसत्कौतुकेषु क्रोडं मातुः कुमारे विशति विषमुचि प्रेक्षमाणे सरोषम्। पादावष्टम्भसीदद्वपुषि दशमुखे याति पातालमूलं क्रुद्धोऽप्याश्लिष्टमूर्त्तिर्भयघनमुमया पातु हृष्टो शिवो नः ॥३०॥ क्रीडन्मन्दरकन्दरोदरवलन्मन्दारवृन्दावने क्रोधान्धान्धकटातटासुहरणे जृम्भत्त्रिशूलोद्गमः। त्रैलोक्याखिलसङ्कटोत्कटभयोद्वेलान्धकारांशुमान्पायाद्वस्त्रिपुरप्रमाथनपटु - र्देवो हि पञ्चाननः ॥३१॥ क्रोधेद्धैर्दृष्टिपातैस्त्रिभिरुपशमिता वह्नयोऽमी त्रयोऽपि त्रासार्त्ता ऋत्विजोऽधश्चपलगणहृतोष्णीषपट्टाः पतन्ति । दक्षः स्तौत्यस्य पत्नी विलपति कृपणं विद्रुतं चापि देवैः शंसन्नित्यात्तहासः मखमथनविधौ पातु देव्यै शिवो वः ॥ ३२ ॥ क्व तिष्ठतस्ते पितरौ ममेवेत्यपर्णयोक्ते परिहासपूर्वम्। क्व वा ममेवं श्वसुरौ तवेति तामीरयन्सस्मितमीश्वरोऽव्यात् ॥३३॥ क्षिप्तो हस्तावलग्नः प्रसभमभिहतोऽप्याददानोऽशुकान्तं गृह्णन्केशेष्वपास्तश्चरणनिपतितो नेक्षितः सम्भ्रमेण। आलिङ्गन्योऽवधूतस्त्रिपुरयुवतिभिः साश्रुनेत्रोत्पलाभिः

पृथ्वीपर गिर पड़ा उसे अपना टेढ़ा चन्द्रमा समझकर जब पार्वतीजीसे शङ्करजी माँगने लगे उस समय उन दोनोंमें जो विवाद हुआ वह सबके लिये आनन्द देनेवाला हो ॥ २७ ॥ कात्यायनी देवीको चाहनेवाले वे शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा करें जो साँपोंके स्वामी वासुकिको ही भुजबन्द, कङ्कन, जटाजूट, मुकुट या कुण्डल बना लेते हैं, उसे ही लपेटकर कमरकी तगड़ी और उसीको धनुषकी डोरी बनाते हैं तथा चन्द्रकलाको तिलक और प्रियतमा गौरीका दर्पण बनाते हैं और जुआ खेलते समय उसीको पासा और पैसा बना लेते हैं ॥२८॥ शङ्करजीकी जटापर गङ्गाको देखकर पार्वतीजीने उनसे पूछा—हे अन्धकारे ! (अन्धकासुरके शत्रु) तुम्हारे सिरपर यह कौन है ? शङ्करजी—हे सुन्दर भौंहोंवाली ! मेरे मस्तकपर तो चन्द्र बैठा हुआ है, वहाँ अँधेरा कैसे हो सकता है ! पार्वतीजी—वहाँ कोई स्त्री भी तो है। शङ्करजी—होगी कोई, मैं तो केवल यही पूछना चाहता था कि वहाँ अँधेरा कैसे हो सकता है ? पार्वतीजी—मैं झगड़ा नहीं करना चाहती। आप इसे शीघ्र ही अपने सिरसे अलग कर दें। इस प्रकार पार्वतीजीसे बातचीतमें हारकर कोई उत्तर न दे पानेवाले शिवजी आपकी रक्षा करें ॥ २९ ॥ रावणके कैलास पर्वत उठा लेनेपर उसके हिलनेसे उसपर आनन्दसे हँसते-खेलते शिवजीके गण जब चल-विचल होने लगे, स्वामिकार्त्तिकेय डरके मारे माँकी गोदमें घुसने लगे, साँप क्रोधित होकर देखने लगे तथा शिवजीके पैरोंकी दुमकसे दबता हुआ रावण पातालमें धँसने लगा, उस समय अत्यन्त क्रोधित होनेपर भी जो डरी हुई पार्वतीजीके चिपट जानेसे प्रसन्न हो गए, वे शङ्करजी हम सबकी रक्षा करें ॥३०॥ जिन्होंने मन्दराचलकी गुफाके भीतर लगे हुए मन्दार और तुलसीके वनमें खेलते हुए ही क्रोधसे अन्धे अन्धकासुरके कपोल फाड़कर उसके प्राण लेनेको चमकता हुआ त्रिशूल उठा लिया था, जो तीनों लोकोंके दुःख और बड़ेसे बड़ा भय-रूपी अँधेरा नष्ट करनेके लिये साक्षात् सूर्य हैं और जिन्होंने त्रिपुरासुरको बड़ी चतुरतासे मार डाला था वे पाँच मुँहवाले भगवान् शङ्कर आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ ३१ ॥ अट्टहास कर-करके सतीके अपमानका बदला लेनेके लिये दक्षका यज्ञ विध्वंस करनेमें लगे हुए वे शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा करें जिनकी क्रोधसे तीखी तीन दृष्टियोंके पड़नेसे तीनों अग्नियाँ (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय) शान्त हो गईं, जिनके चञ्चल गणोंने झटकेसे ऋत्विजोंकी पगड़ियाँ उतार लीं और वे डरके मारे गिरने लगे, दक्ष जिनकी स्तुति करने लगे, दक्षकी स्त्री जिनके सामने आकर दुखी होकर विलाप करने लगी और देवता हड़बड़ाकर जहाँ-तहाँ भागने लगे ॥ ३२ ॥ जब पार्वतीजीने शङ्करजीसे पूछा कि 'मेरे माता-पिताके समान आपके माता-पिता कहाँ हैं ?' तब उसके उत्तरमें हँसकर जिन्होंने कहा कि 'मेरे सास-ससुरके समान तुम्हारे सास-ससुर कहाँ हैं ?' वे शिवजी सबकी रक्षा करें ॥ ३३ ॥ शङ्करजीके बाणकी वह अग्नि सबके पाप भस्म करे जो रोती हुई त्रिपुरासुरकी स्त्रियोंके रोकनेपर भी परस्त्रीगामी कामीके समान उनके हाथ पकड़ लेता था, झटका देनेपर भी बलपूर्वक साड़ीका आँचल पकड़ लेता था, सिर हटानेपर भी केश

कामीवार्द्रापराधः स दहतु दुरितं शाम्भवो वः शराग्निः ॥३४॥ गर्जद्भीमभुजङ्गभूषणफणाफूत्कारभीतिप्रदः क्रीडत्प्रेतपिशाचराक्षसगणः प्रत्याह्वतः प्रान्ततः। भालस्थप्रलयानलोद्धटशिखः सङ्क्रान्तसर्वास्पदः शार्दूलाजिनभृद्भयानकभयो भूयाद्भवो भूतये ॥३५॥ गौरीचुम्बनचञ्चलं परिचलद्दण्डप्रभामण्डलं व्यावल्गत्फणिकुण्डलं रतिरसप्रस्विन्नगण्डस्थलम्। प्रौढप्रेमपरम्परापरिचयप्रोत्फुल्लनेत्राञ्चलं शम्भोरस्तु विभूतये हि भवतामुन्मत्तगङ्गं शिरः ॥ ३६ ॥ चिन्ताचक्रिणि हन्त चक्रिणि भिया कुब्जासनेऽब्जासने नश्यद्धामनि तिग्मधामनि धृताशङ्के शशाङ्के भृशम्। भ्रश्यच्चेतसि च प्रचेतसि शुचा तान्ते कृतान्ते च यः व्यग्रोऽभूत्कटुकालकूटकवलीकाराय पायात्स वः ॥ ३७ ॥ चञ्चच्चन्द्रिकचन्द्रचारुकुसुमो माद्यज्जटापल्लवो दृप्यद्दारुणदन्दशूकमणिमाँस्तत्पञ्चशाखालयः। स्थाणुर्मे फलदो भवत्वतितरां गौरीमुखेन्दुद्रवत्पीयूषद्रवदोहदादिव दधद्देवद्रुमत्वं सदा ॥ ३८ ॥ चन्द्राननार्धदेहाय चन्द्रांशुसितमूर्त्तये। चन्द्रार्कानलनेत्राय चन्द्रार्धशिरसे नमः ॥३९॥ चूडाभस्मकणाङ्किताविव जटापत्राञ्चलेनामृशन्नेत्राग्निद्युतितापिताविव करैस्सिञ्चन्सुधादीधितेः। नागश्वासकलङ्किताविव मुहुर्गङ्गाजलैः क्षालयन्मानिन्याश्चरणौ गिरीन्द्रदुहितुर्भूत्यै गिरीशोऽवतु ॥ ४० ॥ चूडोत्तंसितचारुचन्द्रकलिकाचञ्चच्छिखाभासुरो लीलादग्धविलोलकामशलभः श्रेयो दशाग्रे स्फुरन्। अन्तर्गूढदुरन्तमोहतिमिरप्राग्भारमुच्छेदयँश्चेतःसद्मनि योगिनां विजयते बोधप्रदीपो हरः ॥ ४१ ॥ च्युतामिन्दोर्लेखां रतिकलहभग्नञ्च वलयं द्वयं चक्रीकृत्य प्रहसितमुखी शैलतनया। अवोचद्यं पश्येत्यवतु स शिवः सा च गिरिजा स च

ग्रहण कर लेता था, आँखें फेर लेनेपर भी गिरा पड़ता था और झटक देनेपर भी आलिङ्गन किए ले रहा था ॥ ३४ ॥ वे शिवजी विश्वका कल्याण करें जिनके फुफकारते हुए बड़े-बड़े साँपोंकी भयानक फूत्कारसे सब लोग डरे रहते हैं, जिनके चारों ओर प्रेत, पिशाच और राक्षस खेलते रहते हैं, जिनके मस्तकके तीसरे नेत्रसे प्रलय-कालकी अग्निके समान लपटें उठती रहती हैं, जो सर्वत्र व्यापक हैं, जो बाघकी खाल ओढ़े रहते हैं और जिन्हें देखकर भयानक जीव भी भयभीत हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ लहराती हुई गङ्गासे युक्त वह शङ्करजीका मस्तक आप लोगोंका कल्याण करे जो पार्वतीजीको चूम लेनेके लिये चञ्चल होकर चमक उठता है, जिसपर कुण्डली मारे हुए साँप मस्त होकर डोलते हैं, जिसके माथेपर रतिके आनन्दसे पसीनेकी बूँदें झलक आई हैं और अपना घना प्रेम जताते समय जिसकी आँखें और भी अधिक खिल उठती हैं ॥ ३६ ॥ महाविषकी उठती हुई ज्वालाओंसे जब सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले विष्णु अधिक चिन्तत हो गए, ब्रह्मा प्राण बचानेको कमलमें घुस गए, सूर्य निस्तेज हो गए, चन्द्रमा असमञ्जसमें पड़ गए, कुबेरका चित्त व्याकुल हो गया और यमराज शोकसे मूर्च्छित हो गए उस समय उस भयङ्कर कालकूट नामक महाविषको निगल जानेकी उतावलीमें हड़बड़ाकर उठ खड़े होनेवाले शङ्करजी आपकी रक्षा करें ॥ ३७ ॥ 'स्थाणु' (ठूँठ) नामवाले तथा कल्पवृक्षके समान वे शङ्कर भगवान् मेरी इच्छाएँ पूर्ण करें जिनके सिरपर छिटकी हुई चाँदनीवाला चन्द्रमा मानो सुन्दर फूल है, बिखरी हुई जटाएँ मानो पत्ते हैं, गलेमें सिर उठाए हुए मणिवाले भयङ्कर पाँच साँप ही डालियाँ हैं और पार्वतीके चन्द्रमुखसे टपकता हुआ रस ही मानो अमृत है ॥ ३८ ॥ उन शङ्करजीको प्रणाम है जिनकी आधी देहमें चन्द्रमुखी पार्वतीजी विराजमान हैं, जो चन्द्रमाकी किरणोंसे उजले दिखाई पड़ते हैं, चन्द्रमा और सूर्य दोनों जिनके नेत्र हैं और जो टेढ़ा चन्द्रमा सिरपर धारण किए हैं ॥ ३९ ॥ वे गिरीश (शिवजी) आपको ऐश्वर्य दें जो रूठी हुई पार्वतीजीके पैर पड़ते हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो अपनी जटाओंसे उनके पैरोंमेंसे अपने मस्तककी लगी हुई भस्म पोंछ रहे हों, अपने तीसरे नेत्रके तापसे तपे हुए उनके चरणोंपर चन्द्रमाकी अमृतमयी किरणें बरसाकर उन्हें शीतल कर रहे हों अथवा नागकी विषैली साँसोंकी भापसे मैले किए हुए उनके चरण गङ्गाजलसे धो रहे हों ॥ ४० ॥ मस्तककी शोभा बढ़ानेवाली चन्द्रकलाकी उजली कान्तिसे चमचमाते हुए, स्वभावसे ही चञ्चल कामरूपी पतङ्गेको जला देनेवाले, योगियोंके चित्तरूपी भवनमें विराजमान तथा उनके भीतर छिपे हुए अपार मोहरूपी घने अन्धकारकी घटाका विनाश करनेवाले कल्याणरूपी वत्तीके अग्रभागमें चमकनेवाले ज्ञान-दीपक शिवकी जय हो ॥ ४१ ॥ रतिके समय कलहमें गिरे हुए शङ्करजीके टेढ़े चन्द्रमाको और टूटकर गिरे हुए अपने हाथके आधे कङ्गनको मिलाकर उसे चन्द्रमाके समान गोल बनाकर हिमालयकी पुत्री पार्वतीजीने हँसते हुए जिन शङ्करजीको 'यह देखिए' कहकर दिखाया, तथा दाँतोंकी कान्तिसे जिसका सारा शरीर चमक रहा है वे शङ्करजी, वे पार्वतीजी और शङ्कर-पार्वतीके दाँतोंकी चमकसे

क्रीडाचन्द्रो दशनकिरणापूरिततनुः ॥४२॥ जगज्जीवनमव्याद्वः शम्भोरम्भोमयं वपुः। ब्रह्माण्डमपि यस्यान्तस्तरत्तुम्बीफलायते ॥ ४३ ॥ जगत्सिसृक्षाप्रलयक्रियाविधौ प्रयत्नमुन्मेषनिमेषविभ्रमम्। वदन्ति यस्येक्षणलोलपक्ष्मणां पराय तस्मै परमेष्ठिने नमः ॥ ४४ ॥ जयति जटाकिञ्जल्कं गङ्गामधु मुण्डवलयबीजमयम्। गलगरलपङ्कसम्भवमम्भोरुहमाननं शम्भोः ॥ ४५ ॥ जयति प्रियापदान्ते गरलग्रैवेयकः स्मरारातिः। विषमविशिखे विशन्निव शरणं गलबद्धकरवालः ॥४६॥ जीर्णेऽप्युत्कटकालकूटगरले प्लुष्टे तथा मन्मथे नीते भासुरभालनेत्रतनुतां कल्पान्तदावानले। यः शक्त्या समलङ्कृतोऽपि शशिनं शैलात्मजां स्वर्धुनीं धत्ते कौतुकराजनीतिनिपुणः पायात्स वः शङ्करः ॥ ४७ ॥ ज्वाला जातु करालतां न दधतां भाले कृशानोरिति स्वर्गङ्गा विहिता कपर्दनिलया प्रागेव येन स्वयम्। क्ष्वेडत्रासहृते सुधाकरकला मूर्ध्न्यर्चिता येन च प्राज्ञोऽसौ भवभीतिशान्तिविधये भूयात्पिनाकी शिवः ॥ ४८ ॥ तत्कालारभटीविजृम्भणपरित्रासादिव भ्रश्यता वामार्धेन तदेकशेषकरणं बिभ्रद्वपुर्भैरवम्। तुल्यश्चास्थिभुजङ्गभूषणमसौ भोगीन्द्रकङ्कालकैर्बिभ्राणः परमेश्वरो विजयते कल्पान्तकर्मान्तकः ॥ ४९ ॥ तातं तत्ताततातं कथय हरकुलेऽलङ्कृते सम्प्रदाने तच्छ्रुत्वा चन्द्रमौलिर्नतमुखकमलो जातलज्जो बभूव। ब्रह्मावादीत्तदानीं शृणुत हरकुलं वेदकण्ठोग्रकण्ठौ श्रीकण्ठान्नीलकण्ठः प्रहसितवदनः पातु वश्चन्द्रचूडः ॥५०॥ तादृक्सप्तसमुद्रमुद्रितमहीभूभृद्भिरभ्रङ्कषैः स्रोतोभिः परिवारिता दिशि दिशि द्वीपैः समन्तादयम्। यस्य स्फारफणावलीमणिचये मज्जत्कलङ्काकृतिः शेषः सोऽप्यगमद्यदङ्गदपदं तस्मै नमः शम्भवे ॥५१॥ तारानायकशेखराय जगदाधाराय धाराधरच्छायाधारककन्धराय गिरिजासङ्गैकभृङ्गारिणे। नद्या शेखरिणे दृशा तिलकिने

चमकता हुआ खेल-खेलमें बना वह चन्द्रमा, ये सब संसारकी रक्षा करें ॥ ४२ ॥ सारे संसारके जीवन, शङ्कर भगवान्का वह जलमय शरीर आपकी रक्षा करे जिसमें तैरता हुआ सारा ब्रह्माण्ड तूँबीके समान जान पड़ता है ॥४३॥ जिनके विषयमें लोग कहते हैं कि उन्हें संसारकी सृष्टि और प्रलय करनेमें केवल अपने नेत्रोंकी चञ्चल पलकें गिराने और उठाने-मात्रका प्रयत्न करना पड़ता है उन सर्वश्रेष्ठ परमपदरूप भगवान् शिवको प्रणाम है ॥ ४४ ॥ गलेके काले विषरूपी कीचड़से उत्पन्न कमलके समान जान पड़नेवाले उस शङ्करजीके मुखकी जय हो जिसमें जटाएँ ही केशर हैं, गङ्गा ही मकरन्द है और सिरका घेरा ही मानो कोश है ॥ ४५ ॥ कामदेवके शत्रु उन नीले कण्ठवाले भगवान् शिवकी जय हो जो प्रियाके पैर पड़ते समय ऐसे जान पड़ते हैं मानो गलेमें खड्ग बाँधकर कामदेवकी शरण जा रहे हों ॥ ४६ ॥ खेल और राजनीतिमें चतुर वे शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा करें जिनमें कालकूट विषको पचा लेनेपर, कामदेवको भस्म कर देनेपर और महाप्रलयके समय भयङ्कर दावाग्नि उत्पन्न करनेसे चमकते हुए ललाटके नेत्रके शान्त हो जाने (मुँद जाने) पर भी इतनी शक्ति है कि वे आकाश-गङ्गा, पार्वती और चन्द्रमाको एक साथ सिरपर धरे रहते हैं ॥ ४७ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान तथा पिनाक धनुष धारण किए हुए वे भगवान् शङ्करजी संसारका भय शान्त करें जिन्होंने पहलेसे ही साँपोंके विषसे बचानेके लिये चन्द्रमाको सिरपर धारण कर लिया और माथेकी अग्निकी लपटोंको अत्यधिक प्रबल न होने देनेके लिये गङ्गाको जटाओंमें ही समा लिया ॥ ४८ ॥ सबका संहार करके एक अकेले बच रहनेवाले, हड्डियों और नागोंका आभूषण धारण करनेसे हड्डियोंके ढाँचे और वासुकिके समान ही भयावने दिखाई देनेवाले, घोर वेष धारण करके महाप्रलयके समय आरभटी नृत्य करनेवाले उन परमात्मा शिवकी जय हो जिनके जँभाई लेते समय भयके मारे बाएँ भागमें स्थित पार्वती गिरने लगी थीं ॥ ४९ ॥ विवाहमें शाखोच्चार होते समय जब पुरोहितने शिवजीसे पूछा कि 'आप अपने पिता, पितामह और प्रपितामहका नाम बताइए' उस समय शङ्करजीने तो लज्जित होकर अपना मुँह नीचा कर लिया किन्तु ब्रह्माजीने टोककर कहा—'सुनिए, इनके पूर्वजोंके नाम हैं क्रमशः—वेदकण्ठ, उग्रकण्ठ और श्रीकण्ठ!' यह सुनते ही मुस्करा देनेवाले तथा सिरपर चन्द्रमा सजाए हुए शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ ५० ॥ इतने बड़े सात समुद्रोंसे घिरी हुई, आकाशको चूमनेवाले ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंसे भरी हुई तथा स्थान-स्थानपर बहते हुए सैकड़ों झरनों और द्वीपोंवाली पृथ्वी जिसके चमकते हुए फणोंमें रक्खी ऐसी जान पड़ती है मानो मणिमें छोटा-सा काला धब्बा लग गया हो, ऐसे शेषको भी जिन्होंने हाथका कङ्कन बनाकर लपेट रक्खा है उन शिवजीको प्रणाम है ॥ ५१ ॥ उन स्वामी भगवान् शङ्करको सदा प्रणाम है जो मेघोंके समान उजले कन्धेवाले हैं,

नारायणेनास्त्रिणे नागैः कङ्कणिने नगेन गृहिणे नाथाय नित्यन्नतिः ॥५२॥ त्राता भीतिभृतां पतिश्चिदचितां क्लेशं सतां शंसतां हन्ता भक्तिमतां सतां स्वसमतां कर्त्तापकऽर्त्तासताम् । देवः सेवकभुक्तिमुक्तिरचनाभूर्भूर्भुवःस्वस्त्रयीनिर्माणस्थितिसंहृतिप्रकटितक्रीडो मृडः पातु वः॥५३॥ दास्येऽहं परिरम्भणानि कितव द्यूते जितानि त्वया धैर्यं धेहि यतः कृतः शतमहोरात्राणि तत्रावधिः । इत्युक्तः शिवया निशादिवसकृज्ज्योतिर्मयाक्षिद्वयद्रागुन्मेषनिमेषकोटिघटनाव्यग्रो हरः पातु वः॥५४॥ दिक्कालात्मसमैव यस्य विभुता यस्तत्र विद्योतते यत्रामुष्य सुधीभवन्ति किरणा राशेः स यासामभूत् । यस्तत्पित्तमुषःसु योऽस्य हविषे यस्तस्य जीवातवे वोढायद्गुणमेष मन्मथरिपोस्ताः पान्तु नो मूर्त्तयः ॥५५॥ दिगम्बरनितम्बिन्याः किमम्बरविभूषणम् । इत्यम्बरहरः पायात्परीरम्भपरो हरः॥५६॥ दिव्यं वारि कथं यतः सुरधुनी मौलौ कथं पावको दिव्यं तद्धि विलोचनं कथमहिर्दिव्यं स चाङ्गे तव । तस्माद्यूतविधौ त्वयाद्य मुषितो हारः परित्यज्यतामित्थं शैलभुवा विहस्य लपितः शम्भुः शिवायास्तु वः ॥५७॥ दिश्यात्स शीतकिरणाभरणः शिवं वो यस्योत्तमाङ्गभुवि विस्फुरदूर्मिपक्षा । हंसीव निर्मलशशाङ्ककलामृणालकन्दार्थिनी सुरसरिन्नभसः पपात ॥५८॥ दीव्यन्मौलि त्रिदशपरिपज्जीवनीयेन धाम्ना पश्यद्वालं वलभितकरं प्राणता कङ्क-

---

जो सारे संसारको अपने ऊपर टिकाए हुए हैं, जो एकमात्र पार्वतीजीके साथ विहार करते हैं, चन्द्रमा और गङ्गासे जिनका मुकुट सजा हुआ है, जिनका तीसरा नेत्र ही तिलक है, भगवान् विष्णु ही जिनके अस्त्र हैं, साँप ही जिनके कङ्कण हैं और हिमालय ही जिनका घर है ॥ ५२ ॥ डरे हुए लोगोंको डरसे बचानेवाले, जड़ और चेतनके स्वामी, सज्जनोंको कष्ट देनेवालोंको मारनेवाले, भक्तोंको अपने समान करनेवाले, दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, अपने सेवकोंको सांसारिक सुख और मोक्ष देनेवाले तथा भूः भुवः स्वः लोक आदिको खेल-खेलमें ही बनाते, बिगाड़ते या पालते रहनेवाले शङ्कर भगवान् आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ ५३ ॥ जब पार्वतीजी शिवजीको आलिङ्गन करनेकी बाजी लगाकर जुएमें हार गईं तब उन्होंने शङ्करजीसे कहा—'हे धूर्तराज ! मैं तुम्हें जुएमें हारे हुए आलिङ्गन एक सौ दिनोंके पश्चात् दूँगी, तबतक तुम धीरज रक्खो ।' तबसे जो शङ्कर भगवान् सूर्य और चन्द्रमाकी पुतलियोंवाले दिन और रातरूपी नेत्रोंको करोड़ों बार जल्दी-जल्दी मूँदने-खोलनेमें लगे हुए अपना समय बिता रहे हैं, वे आपकी रक्षा करें ॥ ५४ ॥ १-जो दिशा और कालमें अपनी व्यापकता समान रखता है (आकाश), २-जो उस आकाशमें प्रकाश देता है (सूर्य), ३-जहाँ उस सूर्यकी किरणें अमृतमयी हो जाती हैं (चन्द्रमा), ४-जो उन अमृत-बिन्दुओंका विस्तृत रूप हुआ (जल), ५-अग्नि, ६-जो अग्निमें हविष्य डालता है (यजमान), ७-जो जीवनको वहन करता है (वायु), और ८-जो उसमें सहन करनेका गुण है (पृथ्वी), ये मन्मथरिपु शिवजीकी आठ मूर्त्तियाँ हमारी रक्षा करें ॥ ५५ ॥ 'नङ्गे रहनेवालेकी स्त्रीको वस्त्र पहननेकी क्या आवश्यकता है !' ऐसा कहते हुए आलिङ्गन करनेके लिये पार्वतीके वस्त्र खींचनेवाले शिवजी संसारकी रक्षा करें ॥ ५६ ॥ जुआ खेलते हुए शिवजीने पार्वतीजीका हार जीत लिया, उस हारको लौटानेके लिये पार्वतीजीने कहा—आपको जलकी सौगन्ध है जो आप हार न लौटा दें । शिवजीने कहा—जल कैसा ? पार्वतीजी बोलीं—यही जो गङ्गारूपमें आपके सिरपर है (अर्थात् आपको अपने सिरकी सौगन्ध है जो आप हार न लौटावें) । जब शिवजीने न दिया तो पार्वतीजीने अग्निकी सौगन्ध दिलाई । शिवजीने पूछा—यह क्यों ? पार्वतीजी बोलीं—वह आपका नेत्र है न ! (अर्थात् आपको अपने तृतीय नेत्रकी सौगन्ध है जो आप हार न लौटावें) । इसपर भी असफल होकर पार्वतीजीने सूर्यकी सौगन्ध दिलाई, शिवजीने पूछा—यह क्यों ? पार्वतीजी बोलीं—वह आपके शरीरपर है न ! (अर्थात् आपको अपने शरीरकी सौगन्ध है !) आज जो आपने जुएमें मेरा हार झटक लिया है उसे सीधेसे लौटा दीजिए । इस प्रकार पार्वतीजी-द्वारा हँसे गए महादेवजी आप लोगोंका कल्याण करें ॥ ५७ ॥ शीतल किरणोंवाले चन्द्रमाको गहना बनाकर पहने हुए वे शङ्करजी आपको आनन्द दें जिनके सिरपर स्थित चञ्चल लहररूपी पङ्खोंवाली गङ्गारूपी हंसिनी मानो उजले ठण्डे चन्द्रमाको कमलनाल समझकर उसे खानेके लिये ही आकाशसे झपट पड़ी हो ॥ ५८ ॥ देवताओंकी सभाको जिलानेवाले तेज (चन्द्रमा) से चमकते हुए मस्तकवाले, बाएँ अङ्गसे प्रत्यक्ष ही काम-कलारूपी ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेवाले (काम-कला-स्वरूपिणी तथा ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी पार्वतीजीको धारण करनेवाले) तथा त्रिपुरासुरकी युवती स्त्रियोंके स्तन, कपोल आदिकी चित्रकारीरूपी लताको काटनेवाले चाकूरूपी उन शिव-स्वरूप

णेन। वामाङ्गेन स्फुटमभिदधन् मान्मथीं ब्रह्मविद्यां जीयादोजस्त्रिपुरयुवतीपत्रवल्लीलवित्रम् ॥ ५९ ॥ दूरे दारुवनाभिसारक वृथाचाटूनि मुञ्चाधुना भूयस्त्वम्पुनरप्यहं यदि तदा चन्द्रः क्षितिं यास्यति। इत्युक्तः शशिमौलिरद्रिसुतया चूडेन्दुभूलस्वनव्याजव्यञ्जितपादपद्मपतनप्रीतप्रियः पातु वः ॥ ६० ॥ दृष्टः सप्रेम देव्या किमिदमिति भयात्सम्भ्रमाच्चासुरीभिः शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितेन। आदायास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसम्भ्रमैर्दैत्यवीरैः सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान्॥६१॥ देव्याः प्राक्परिरम्भणे किल करौ द्वौ द्वौ पुनस्तत्करौ रोद्धुं तन्मुखमुन्मुखं रचयितुं द्वौ चाधरास्वादने। द्वौ नेत्रान्तपलालकापनयने मोक्तुञ्च नीवीं दृढां द्वावित्थं सफलीकृताखिलकरः पायात्स वः शङ्करः॥६२॥ देहार्धानद्धकान्ताकचकुसुमचयो भालनेत्रानलार्चिः पीनोष्मामौलिखेलन्मुखरसुरनदीनीररम्यो जगन्ति। स्फीतोत्तंसेन्दुकान्तिर्द्विरददतिदृढाच्छादनव्यक्तशीतः शम्भुर्भूपास्थिकुन्दप्रकरपरिवृतः पातु सर्वर्त्तुमूर्त्तिः ॥ ६३ ॥ धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्नु नामैतदस्याः नामैवास्यास्तदेतत्परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः। नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दुर्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः॥६४॥ न क्रोधः क्रियतां प्रिये स तु भवन्मौलिस्थगङ्गोदरे मुग्धे मानमपूजितं त्यज कृतं युष्मद्वियोगद्वयम्। वक्त्रे श्लेषममुं निराकुरु कदा श्लिष्टोऽसि वक्त्रे मया वामाङ्ग्येति हृतोत्तरः स्मरहरः स्मेराननः

तेजकी जय हो जो अपने उस मस्तकको देख रहे हैं जिसपर स्थित चन्द्रमाको समानताके कारण ही बाएँ भाग (पार्वती) वाला प्राणप्रिय कङ्कन प्रेमपूर्वक सहला रहा है ॥ ५९ ॥ 'हे दारुवनमें अभिसरण करनेवाले! दूर हटो! व्यर्थकी चाटुकारी मत करो, यदि हम और तुम बने रहे तो फिर भी चन्द्रमा पृथ्वीपर दिखाई देगा।' पार्वतीके ऐसा कहते ही आभूषण बने हुए चन्द्रमाको पृथ्वीपर रखनेके बहाने पार्वतीजीके चरणकमलमें सिर रखकर उन्हें प्रेमपूर्वक मनानेवाले शिवजी आपकी रक्षा करें ॥ ६० ॥ त्रिपुरासुरका नगर जलाए डालते हुए वे शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा करें जिन्हें उस समय पार्वतीने प्रेमपूर्वक, 'अरे यह क्या' इस प्रकार कहकर डरती हुई राक्षसियोंने घबड़ाकर, शान्त अन्तःकरणवाले तत्त्वज्ञानी ऋषियोंने दयापूर्वक, विष्णुने मुस्कराते हुए, घमण्डी वीर दैत्योंने अपनी घबराती हुई स्त्रियोंको शान्त (निर्भय) करके हाथोंमें शस्त्र लेते हुए और देवताओंने बड़े आनन्दपूर्वक देखा था ॥ ६१ ॥ वे शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा करें जिन्होंने पार्वतीजीका सर्वप्रथम आलिङ्गन करते समय दो हाथोंसे पार्वतीजीके चञ्चल हाथ पकड़े, और दो हाथोंसे पार्वतीजीका मुँह ऊपर उठाया, दूसरे दो हाथोंकी सहायतासे पार्वतीजीका अधर पान किया, और दो हाथोंसे पार्वतीजीकी आँखोंपर आते हुए बालोंको पीछे हटाया तथा शेष दो हाथोंसे पार्वतीजीकी कमरमें कसकर बँधी हुई साड़ीकी गाँठ खोलकर अपने दसों हाथ सार्थक कर लिए ॥ ६२ ॥ वे शङ्करजी सबकी रक्षा करें जो अपनी देहसे सटी हुई पार्वतीके बालरूपी फूलोंसे वसन्त ऋतुवाले, माथेके नेत्रकी अग्निके तापसे गर्मी ऋतुवाले, मस्तकपर कलकल करके बहती हुई सुन्दर जलवाली गङ्गासे वर्षा ऋतुवाले, खिले हुए चन्द्रमाकी सुन्दर चाँदनीसे शरद् ऋतुवाले और उजली हड्डियों और कुन्दके फूलोंकी सजावटसे हेमन्त ऋतुवाले, अर्थात् एक साथ ही छहों ऋतुओंवाले जान पड़ते हैं ॥ ६३ ॥ पार्वतीजीने शङ्करजीसे पूछा—आपके सिरपर यह कौन भाग्यवती है? शङ्करजीने कहा—यह चन्द्रमाकी कला है। पार्वतीजी—इसका नाम क्या है? शङ्करजी—इसका यही नाम है। यह तो तुम जानती ही हो, भूल कैसे गई? पार्वतीजी—मैं स्त्रीको पूछती हूँ, चन्द्रमाको नहीं। शङ्करजी—विजयाको ही कहो वह देखकर बता दे कि यह चन्द्रमा है या नहीं। इस प्रकार अपने सिरपर स्थित गङ्गाको पार्वतीजीसे छिपाना चाहते हुए शिवजीकी यह धूर्त्तता आप लोगोंकी रक्षा करे ॥ ६४ ॥ शिवजीने कहा—प्रिये! क्रोध न करो (न क्रोधः क्रियताम्)। पार्वतीजीने कहा—नक्र (घड़ियाल) तो तुम्हारे सिरपर स्थित गङ्गामें है। शिवजी—मान करना अच्छा नहीं, तुम मान छोड़ दो। पार्वतीजी–वह (मान=प्रतिष्ठा) तो तुम्हारे मिल जानेसे और बढ़कर दूना हो गया। शङ्करजी—प्रिये! अपने मुँहका यह श्लेष (व्यंग्य) दूर करो। पार्वतीजी—तुम मेरे मुँहसे कब सटे हो जो मैं अलग करूँ? इस प्रकार अपने बाएँ भागमें बैठी पार्वतीजीकी बातोंका उत्तर न दे सकते हुए तथा हँसते हुए शिवजी आप लोगोंकी रक्षा करें ॥६५॥ उन शिवजीको प्रणाम है जिनके ऊँचे सिरको चूमनेवाला चन्द्रमा चँवरके समान सुन्दर जान पड़ता है और जो त्रैलोक्यरूपी नगरको सँभाले

पातु वः ॥६५॥ नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे। त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे ॥ ६६ ॥ नमस्तुभ्यं देवासुरमुकुटमाणिक्यकिरणप्रणालीसम्भेदस्नपितचरणाय स्मरजिते। महाकल्पस्वाहाकृतभुवनचक्रेऽपि नयने निरोद्धुं भूयस्तत्प्रसरमिव कामं हुतवते ॥ ६७ ॥ नमः शिवाय निःशेषक्लेशप्रशमशालिने। त्रिगुणग्रन्थिदुर्भेदभवबन्धविभेदिने ॥ ६८ ॥ निरुपादानसम्भारमभित्तावेव तन्वते। जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघाय शूलिने ॥ ६९ ॥ नृत्यारम्भरसत्त्रसद्गिरिसुतारिक्तार्धसम्पूर्त्तये निर्व्यूढभ्रमिविभ्रमाय जगतामीशाय तुभ्यं नमः। यच्चूडाभुजगेश्वरप्रभृतिभिस्ताद्दग्भ्रमन्तीर्दिशः पश्यद्भिर्घनघूर्णमाननयनैः शान्तोऽपि न श्रद्दधे ॥ ७० ॥ पर्यङ्कग्रन्थिबन्धत्रिगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानोरन्तःप्राणावरोधव्युपरतसकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य। आत्मन्यात्मानमेव व्यपगतकरणं पश्यतस्तत्त्वदृष्ट्या शम्भोर्वः पातु शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः समाधिः ॥७१॥ पाणिग्रहे पर्वतराजपुत्र्याः पादाम्बुजं पाणिसरोरुहाभ्याम्। अश्मानमारोपयतः स्मरारेर्मन्दस्मितं मङ्गलमातनोतु ॥ ७२ ॥ पाणिग्रहे पुलकितं वपुरैशं भूतिभूषितञ्जयति। अङ्कुरित इव मनोभूर्यस्मिन्भस्मावशेषोऽपि ॥७३॥ पाणौ कङ्कणमुत्फणं फणिपतिर्नेत्रं लसत्पावकं कण्ठः कुण्ठितकालकूटविषमो वस्त्रं गजेन्द्राजिनम्। गौरीलोचनलोभनाय सुभगो वेषो वरस्यास्ति मे गण्डोल्लासविभावितः पशुपतेर्हासोद्गमः पातु वः ॥ ७४ ॥ पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने रक्षतः स्वैरपातैः सङ्कोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयतः सर्वलोकातिगानाम्। दृष्टिं लक्ष्येषु नोग्रज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीतेरित्याधारानुरोधात्त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्तम् ॥७५॥ पार्श्वस्थपृथ्वी-

---

रखनेके लिये सुदृढ़ खम्भे हैं ॥ ६६ ॥ देवता और असुरोंके मुकुटोंमें लगे मणियोंकी उजली चमकसे धोए गए चरणोंवाले, कामदेवको जीतनेवाले तथा महाप्रलयके समय तीसरे नेत्रकी अग्निको भड़कनेसे रोकनेके लिये उसमें चौदहों भुवनोंकी आहुति देकर 'फिर भी वह न भड़क उठे' इसलिये कामदेवकी आहुति छोड़कर उस अग्निको शान्त कर देनेवाले हे शिवजी ! आपको प्रणाम है ॥ ६७ ॥ सम्पूर्ण कष्टोंको मिटा डालनेवाले तथा सत्, रज और तमरूपी तीन डोरोंकी बहुत कड़ी गाँठोंवाले संसारका बन्धन खोल डालनेवाले शिवजीको प्रणाम है ॥ ६८ ॥ शूल धारण किए हुए उन बड़े भारी कलाकार शिवजीको प्रणाम है जिन्होंने विना किसी सामग्रीके इतना बड़ा संसाररूपी चित्र शून्यमें ही रच डाला ॥ ६९ ॥ अर्धनारीश्वर शिवजीने जब नाचना आरम्भ किया उस समय डरके मारे पार्वतीके गिर जानेसे आधे रीते हुए अङ्गको पुनः भरनेके लिये जिन्होंने नाचना बन्द तो कर दिया पर उतने वेगसे घूमती हुई दिशाओंको देखनेसे घना चक्कर खानेवाली आँखोंवाले सर्पोंके डोलते रहनेसे जो अभी भी शान्त नहीं हो पाए, ऐसे सारे संसारके स्वामी हे शिवजी ! आपको प्रणाम है ॥ ७० ॥ पर्यंक आसन लगानेपर साँपोंके तिगुने लिपट जानेसे जिसमें घुटने ढके हुए हैं, जिसके-द्वारा प्राणवायु रोक लेनेके कारण किसी प्रकारका ज्ञान न रह जानेसे सब इन्द्रियाँ शान्त हो चुकी हैं, जिसके द्वारा अपने आत्माकी सब क्रियाएँ आत्मामें ही लीन करके दिव्य दृष्टिसे भी वे संसार-प्रपञ्चको न देखते हुए अपने मनको एकाग्र करके ब्रह्ममें मिल गए हैं ऐसी शिवजीकी समाधि आप लोगोंकी रक्षा करे ॥७१॥ हिमालयकी पुत्री पार्वतीका पाणिग्रहण करते समय उनके कमल जैसे कोमल पैरोंको मुस्कराते हुए अपने कमल जैसे हाथोंसे पत्थरपर रखनेवाले तथा कामदेवको जला देनेवाले शिवजीकी मन्द मुसकान आनन्द देती रहे ॥ ७२ ॥ शंकरजीकी वह राखसे लिपटी हुई देह विजयी हो जिसमें पार्वतीजीका पाणिग्रहण करते समय रोमाञ्च होनेसे ऐसा जान पड़ा मानो शरीर जल जानेपर भी भस्मरूपमें बचे हुए कामदेवके अङ्कुर निकल रहे हों ॥ ७३ ॥ 'मेरे हाथोंमें फण उठाए हुए साँपोंके कङ्कन हैं, आँखमें अग्नि चमक रही है, गलेमें भयङ्कर कालकूट विष अटका हुआ है और हाथीकी खाल वस्त्रोंका काम दे रही है, पार्वतीके नेत्रोंको लुभानेके लिये मेरा यह दुलहा-रूप बहुत सुन्दर है' ऐसा सोचकर शङ्करजीके कपोल जिस हँसीसे खिल उठे वह हँसी आप लोगोंकी रक्षा करे ॥ ७४ ॥ त्रिपुरासुरको जीतनेकी प्रसन्नतामें शिवजीका वह दुःखपूर्वक नाचना आपकी रक्षा करे जिसमें धमकसे पृथ्वीके नष्ट होनेके डरसे पृथ्वीके आग्रहसे वे स्वच्छन्द होकर पैर न पटक पाए, सब लोकोंसे परे पहुँचनेवाली बाहुओंको इच्छा न रहते हुए भी उन्हें सङ्कुचित करना पड़ा तथा त्रैलोक्यके जल जानेके डरसे भयङ्कर चिनगारियाँ उड़ाती हुई दृष्टिको वे कहीं स्थिर न कर पाए ॥ ७५ ॥ सायंकाल बाएँ भागमें स्थित, पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमालयकी पुत्री पार्वतीको क्रोधसे काँपती हुई देख डरके मारे 'माँ ! तुम्हें प्रणाम है' ऐसा

धरराजकन्याप्रकोपविस्फूर्जच्छुक्कातरस्य । नमोऽस्तु ते मातरिति प्रणामाः शिवस्य सन्ध्याविषया जयन्ति॥७६॥ पिनाकफणिबालेन्दुभस्ममन्दाकिनीयुता । पवर्गरचिता मूर्त्तिरपवर्गप्रदास्तु वः ॥७७॥ पौलस्त्यपीनभुजसम्पदुदस्यमानकैलाससम्भ्रमविलोलदृशः प्रियायाः। श्रेयांसि वो दिशतु निह्नितकोपचिह्नमालिङ्गनोत्पुलकमासितमिन्दुमौलेः ॥ ७८ ॥ प्रणयकुपितप्रियापदलाक्षासन्ध्यानुबन्धमधुरेन्दुः । तद्वलयकनकनिकषग्रावग्रीवः शिवो जयति ॥ ७९ ॥ प्रणयकुपितां दृष्ट्वा देवीं ससम्भ्रमविस्मितस्त्रिभुवनगुरुर्भीत्या सद्यः प्रणामपरोऽभवत्। नमितशिरसो गङ्गालोके तया चरणाहतावचतु भवतस्त्र्यक्षस्यैतद्विलक्षमवस्थितम् ॥ ८० ॥ प्रतिबिम्बितगौरीमुखविलोकनोत्कम्पशिथिलकरगलितः । स्वेदभरपूर्यमाणः शम्भोः सलिलाञ्जलिर्जयति ॥ ८१ ॥ बिभ्रत्पाथः कपर्दे सुरनगरनरीमिन्दुलेखां ललाटे नेत्रान्तः कालवह्निं गरलमपि गले व्याघ्रचर्माङ्गभागे। पञ्चास्यो वै त्रिनेत्रो वृषभगतिरतिर्वामभागार्धवामः सन्दिश्यात्सम्पदं वः सह सकलगुणैरद्भुताकार ईशः ॥ ८२ ॥ भस्मान्धोरगफूत्कृतिस्फुटधवद्भालस्थवैश्वानरज्वालास्विन्नसुधांशुमण्डलगलत्पीयूषधारारसैः । सञ्जीवद्द्विपचर्मगर्जितभयभ्राम्यद्वृषाकर्षणव्यासक्तः सहसाद्रिजोपहसितो नग्नो हरः पातु वः ॥८३॥ भिक्षुकोऽपि सकलेप्सितदाता प्रेतभूमिनिलयोऽपि पवित्रः । भूतमित्रमपि योऽभयसत्री तं विचित्रचरितं शिवमीडे ॥८४॥ भीतिर्नास्ति भुजङ्गपुङ्गवविषात्प्रीतिर्न चन्द्रामृतान्नाशौचं हि कपालदामलुलनाच्छौचं न गङ्गाजलात्। नोद्वेगश्चितिभस्मना न च सुखं गौरीस्तनालिङ्गनादात्मारामतया हिताहितसमः स्वस्थो हरः पातु वः ॥ ८५ ॥ भुजङ्गकुण्डलीव्य-

कहकर शङ्करजी-द्वारा किए गए प्रणामोंकी जय हो ॥ ७६ ॥ पिनाक (धनुष), फणी (साँप), बालेन्दु (टेढ़ा चन्द्रमा), भस्म (राख) और मन्दाकिनी (गङ्गा) इन पवर्गके पाँच अक्षरोंसे आरम्भ होनेवाले नामकी वस्तुएँ धारण करनेवाले शिवजी आपको अपवर्ग (मोक्ष) दें ॥ ७७ ॥ रावणकी बलवान् भुजाओंपर उठे हुए कैलास पर्वतके डगमगानेपर डरके मारे चञ्चल आँखोंवाली पार्वतीका क्रोध छिपाकर शङ्करजीसे लिपटकर पुलकित होना और शङ्करजीका बैठ जाना आप लोगोंका कल्याण करता रहे ॥७८॥ उन शङ्करजीकी जय हो जो सायङ्काल प्रेममें क्रोधित हुई पार्वतीके पैरोंमें लगे महावरसे रँगे हुए लाल रङ्गवाले सुन्दर चन्द्रमाको माथेपर धरे हैं और पार्वतीजीका हाथ अपने कण्ठमें डालनेसे जिनका गला ऐसा जान पड़ता है मानो पार्वतीके हाथोंमें पहने हुए सोनेके कङ्गनकी परख करनेवाली कसौटी हो ॥ ७९ ॥ पार्वतीजीको प्रेममें क्रोधित देखकर हड़बड़ाते हुए अचरजमें पड़कर तीनों लोकोंके स्वामी भगवान् शङ्कर तुरन्त डरके मारे जैसे ही उन्हें प्रणाम करने लगे वैसे ही सिर नवाए हुए शङ्करजीके सिरकी गङ्गा और चन्द्रमा दोनोंको पार्वतीने लात मार दिया। तीन नेत्रवाले भगवान् शङ्करका यह अनोखा रङ्ग-ढङ्ग आप लोगोंकी रक्षा करे ॥८०॥ अञ्जलिके पानीमें पड़ती हुई पार्वतीजीकी परछाईं देखनेपर हाथोंके काँपकर ढीले पड़ जानेके कारण पानी गिर जानेसे रीती हुई, पर तुरन्त ही बहते हुए पसीनेसे फिर भरी हुई शङ्करजीकी अञ्जलिकी जय हो ॥ ८१ ॥ देवलोककी युवतीके समान जान पड़नेवाली चन्द्रमाकी कला तथा गङ्गाको अपने जटामुकुटमें तथा प्रलय कर देनेवाली अग्निको माथेके तीसरे नेत्रमें धारण किए हुए, गलेमें महाविष धरे हुए तथा देहपर बाघकी खाल ओढ़े हुए, पाँच मुँह तथा तीन नेत्रोंवाले, बैलकी सवारीको ही अच्छा समझनेवाले, अपनी देहके आधे बाएँ भागमें पार्वतीजीको धारण किए रहनेवाले तथा इन सब गुणोंसे अनोखे रङ्ग-ढङ्गवाले शङ्कर भगवान् आपको सम्पत्ति दें ॥ ८२ ॥ शिवजीकी देहमें लगी भस्मके उड़कर आँखोंमें पड़नेसे अन्धेसे होते हुए साँपकी फुफकारसे माथेकी अग्निके धधक पड़नेपर, उसके तापके कारण चन्द्रमासे पसीने-रूपमें टपकता हुआ अमृत जब हाथीकी खालपर पड़ा तो वह जी उठा और उसके चिग्घाड़नेसे डरके मारे भागते हुए बैलको खींचते हुए जिन नङ्गे शिवजीको देखकर हिमालयकी पुत्री पार्वतीजी हँस पड़ीं वे शङ्कर भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ८३ ॥ उन अनोखे रङ्ग-ढङ्गवाले शिवजीको मैं प्रणाम करता हूँ जो भिखमङ्गे होकर भी भक्तोंकी सब प्रकारकी इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, जो श्मशानमें रहते हुए भी पवित्र हैं और भूत-प्रेतोंके मित्र होते होते हुए भी जो डरसे छुड़ानेवाले हैं ॥ ८४ ॥ ब्रह्मानन्दमें मस्त रहनेके कारण जिन्हें न विषैले साँपोंका डर है, न अमृतसे भरे चन्द्रमासे ही प्रेम है, न लुढ़कती हुई खोपड़ियोंकी मालासे अपवित्रता है, न गङ्गाजलसे कोई पवित्रता है, न चिताकी राखसे जिन्हें कोई कष्ट है, न पार्वतीजीके स्तनोंका आलिङ्गन करनेमें आनन्द ही है, इस प्रकार अपनी भलाई और

-क्शशिशुश्रांशुशीतगुः। जगन्त्यपि सदापायादव्याच्चेतोहरः शिवः ॥ ८६ ॥ भूत्यालेपनभूषितः प्रविलसन्नेत्राग्निदीपाङ्कुरः कण्ठे पन्नगपुष्पदामसुभगो गङ्गाजलैः पूरितः। ईषत्ताम्रजटाग्रपल्लवयुतो न्यस्तो जगन्मण्डपे शम्भुर्मङ्गलकुम्भतामुपगतो भूयात्सतां श्रेयसे ॥ ८७ ॥ मल्लीमालधिया सुधाकरकलां कण्ठश्रियं कज्जलभ्रान्त्या भालविलोचनानलशिखां सिन्दूरपूराशया। कैलासे प्रतिबिम्बितात्स्ववपुषो गृह्णन्हसन्त्या मुहुः पार्वत्याः प्रतिकर्मकर्मणि चिरं मुग्धो हरः पातु वः ॥८८॥ मातर्जीव किमेतदङ्गुलिपुटे तातेन गोपाय्यते वत्स स्वादु फलं प्रयच्छति न मे गत्वा गृहाण स्वयम्। मात्रैवं प्रहिते गुहे विघटयत्याकृष्य सन्ध्याञ्जलिं शम्भोर्भिन्नसमाधिरुद्धरभसो हासोद्गमः पातु वः ॥८९॥ मा वम संवृणु विषमिदमिति सातङ्कं पितामहेनोक्तः। प्रातर्जयति सलज्जः कज्जलमलिनाधरः शम्भुः ॥९०॥ मुक्तिर्हि नाम परमः पुरुषार्थ एकस्तामन्तरायमवयन्ति यदन्तरज्ञाः। किं भूयसा भवतु सैव सुधामयूखलेखाशिखाभरणभक्तिरभङ्गुरा वः ॥ ९१ ॥ मौनादस्तमितैव चाटुभणितिः स्वस्तैकहस्ताद्गतं दूरेऽप्यञ्जलिबन्धनं प्रणमनं स्तब्धार्धमूर्ध्नः कुतः। इत्थं सङ्घटितैकविग्रहतया व्यग्रो गिरिग्रामणीर्जायाञ्जातरुषञ्जयत्यनुनयन्देवस्त्रिलोकीगुरुः ॥ ९२ ॥ मौलिस्रग्गृहिणी दृगर्चिरुदयस्विनार्द्धचन्द्रामृतप्रत्युज्जीवितदेवदैत्यशिरसामन्योन्यविद्वेषिणाम्। जाते वाक्कलहे प्रहासनपरे तन्द्रायितारे परं किं

बुराई करनेवालोंके साथ एक-सा बर्त्ताव करनेवाले शान्त शिव भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ८५ ॥ वे मनको हरण करनेवाले शिवजी सदा संसारको नष्ट होनेसे बचावें जिनके कुण्डल बने हुए साँपमें एक साथ ही उनके नेत्रोंमें स्थित सूर्य, चन्द्र और अग्निकी परछाईं पड़कर चमक रही है ॥ ८६ ॥ शुभ कार्योंमें सजाए हुए मङ्गल-कलशके समान, वे संसाररूपी मण्डपमें स्थित शिव भगवान् सज्जनोंका कल्याण करें जिनकी देहमें कलशमें लगे लेपकी भाँति राख लिपटी है, कलशके ऊपर जलते हुए दिएके समान माथेकी आँखमें अग्नि चमक रही है, कलशमें लिपटी फूल-मालाओंके समान जिनके गलेमें साँप सजे हैं, कलशमें भरे गङ्गाजलके समान जिनके माथेमें स्वयं गङ्गा भरी हैं तथा कलशमें रक्खे पञ्च-पल्लवके समान जिनके सिरपर कुछ लाल-लाल जटाएँ सजी हैं ॥ ८७ ॥ कैलाश पर्वतपर पड़ती हुई अपनी परछाईंपर सजी हुई चन्द्रकला जब शिवजीको पार्वतीजीके केशोंमें सजी मल्लीकी मालाके समान जान पड़ी, गलेका कालापन पार्वतीजीकी आँखोंमें लगे काजल-सा जान पड़ा, माथेमें चमचमाती आगकी लौ पार्वतीजीके माथेपर लगे सिन्दूर-सी जान पड़ी तो उस परछाईंको पार्वती ही समझकर जैसे ही शिवजी उसे पकड़ने चले वैसे ही श्रृङ्गार करती हुई पार्वतीजी यह देखकर हँस पड़ीं, तब अपनी वास्तविक पार्वतीका श्रृङ्गार देखकर जो सदाके लिए उस श्रृङ्गारपर मोहित हो गए वे शिव भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ८८ ॥ सन्ध्या करते हुए शिवजीको हाथ जोड़कर ध्यान लगाए बैठे देखकर स्वामिकार्त्तिकेयजीने माता पार्वतीके पास आकर कहा—माँ! पार्वतीजी बोलीं—जियो बेटा! क्या है? कार्त्तिकेयजी—पिताजी अपनी उँगलियोंके बीचमें क्या छिपाए हुए हैं? पार्वतीजी—बेटा, उसमें कोई मीठा फल है जिसे वे मुझे नहीं देते, तुम स्वयं जाकर ले लो। इस प्रकार माता पार्वतीजीके भेजनेपर कार्त्तिकेयजीने जैसे ही जाकर शिवजीके जुड़े हाथोंको खींचकर अलग-अलग किया वैसे ही शिवजीकी वह समाधि टूट गई जिसमें वे वेगसे आत्म-तत्त्वोंकी ओर बढ़े जा रहे थे। माता पार्वतीके किए इस परिहासका ध्यान करके हँस पड़नेवाले शिवजीकी हँसी आपकी रक्षा करे ॥ ८९ ॥ प्रातःकाल अपने ओठमें लगे काजलको छिपाते हुए शिवजीसे जब ब्रह्माजीने कहा कि 'विषको वमन न कीजिए इसे सँभालकर कण्ठमें ही रखिए' उस समय अत्यन्त लज्जित होनेवाले शिवजीकी जय हो ॥ ९० ॥ अधिक कहनेसे क्या लाभ! अमृतसे भरी हुई किरणोंवाले, चन्द्रमाका मुकुट पहने हुए शिवजीके चरणोंमें आपकी वह भक्ति ही और अधिक दृढ़ हो, जिसके आनन्दको जाननेवाले लोग सबसे बड़ा पुरुषार्थ (लाभ) समझी जानेवाली मुक्तिको भी विघ्न ही समझते हैं ॥ ९१ ॥ अपनी आधी बाँईं देहमें बैठी पार्वतीजीके क्रोधित होकर चुप हो जानेसे शिवजीकी चापलूसी भरी बोली भी बन्द हो गई, पार्वतीजीके अपना एक हाथ खींच लेनेपर जो हाथ भी नहीं जोड़ सकते, पार्वतीजी अपना सिर नहीं हिलातीं तो शिवजी सिर भी कैसे झुका सकते हैं, इस प्रकार एक ही शरीरमें दोनों रूप होनेके कारण इतनी झञ्झटोंके आ पड़नेसे तङ्ग आए हुए, क्रोधित पार्वतीको मनाते हुए, कैलासरूपी गाँवके मुखिया और त्रिलोकीके स्वामी शिवजीकी जय हो ॥ ९२ ॥ तीसरे नेत्रकी उठी हुई लपटोंके तापसे पिघलकर

कुर्यादिति तद्वचःस्मितमुखः पायात्स वः शङ्करः ॥ ६३ ॥ मौलौ किन्नु महेश मानिनि जलं किं वक्त्रमम्भोरुहं किं नीलालकवेणिका मधुकरी किं भ्रूलता वीचिका। किं नेत्रे शफरौ किमु स्तनयुगं प्रेङ्खद्रथाङ्गद्वयं साशङ्कामिति वञ्चयन्गिरिसुतां गङ्गाधरः पातु वः ॥६४॥ यत्तत्त्वं श्रुतिभिस्तथोपनिषदां वृन्देन बन्दारुवन्नित्यं गीयत ईशता निरवधिर्यत्रैव सर्वात्मना। पूर्णानन्दतनुं दयैकजलधिं शुद्धं प्रबुद्धं सदा मायेशानमनन्तमव्ययमजं वन्दे परं शङ्करम् ॥ ६५ ॥ यत्ताण्डवभ्रमिघूर्णमानवसुधाचक्राधिरूढे भृशं मेरौ पार्श्वनिवासिवासरनिशाचित्रे परिभ्राम्यति। तैजस्यस्तडितो भवन्तु शतशो दृष्टा हि तास्ताः कथं तामस्योऽपि स वः पुनातु जगतामन्त्येष्टियज्वा विभुः ॥६६॥ यस्मिन्बुद्बुदसङ्करा इव बहुब्रह्माण्डखण्डाः क्वचिद्भ्रान्ति क्वापि च सीकरा इव विरिञ्च्याद्याः स्फुरन्ति भ्रमात्। चिद्रूपा लहरीव विश्वजननी शक्तिः क्वचिद्द्योतते स्वानन्दामृतनिर्भरं शिवमहापाथोनिधिं तन्नुमः ॥ ६७ ॥ यस्याहुरागमविदः परिपूर्णशक्तेरंशे कियत्यपि निविष्टममुं प्रपञ्चम्। तस्मै तमालरुचिभासुरकन्धराय नारायणीसहचराय नमः शिवाय ॥ ६८ ॥ या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री ये द्वे काले विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।

टेढ़े चन्द्रमासे गिरा हुआ अमृत पड़नेसे मुण्डमालामें गूँथे हुए एक दूसरेके वैरी देवताओं और दैत्योंके सिर जब जी उठे और आपसमें लड़ने लगे, उपेक्षा-पूर्वक हँसने लगे तथा थककर ऊँघने लगे उस समय 'अब क्या करना चाहिए' कहकर मुस्करा देनेवाले शिवजी आपकी रक्षा करें ॥ ६३ ॥ शिवजीके सिरपर गङ्गाको देखकर सौतियाडाहसे पार्वतीजीने उनसे पूछा—हे शिव! यह मस्तक पर क्या है? शिवजी बोले—मानिनि! यह तो जल है। उन्होंने पूछा—उसमें मुख कहाँसे आया? शिवजी बोले—मुख कहाँ, यह तो उसी जलका कमल है। पार्वतीजीने पूछा—तब यह काली-काली चोटी कैसी है? शिवजी बोले—यह तो कमलपर मँडरानेवाली भौंरोंकी पाँत है। पार्वतीजीने पूछा—ये भौंहें कैसी दिखाई पड़ रही हैं? शिवजी बोले—ये तो लहरें हैं। पार्वतीजीने पूछा—तब इनमें आँखें कहाँसे आईं? शिवजी बोले—ये तो मछलियाँ हैं। पार्वतीजीने पूछा—इनके स्तन कैसे हैं? शिवजी बोले—ये तो चकवी-चकवे हैं। इस प्रकार मस्तकपर बैठी हुई गङ्गासे सौतियाडाह करनेवाली पार्वतीजीको चकमा देते हुए शिवजी आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ ६४ ॥ ब्रह्मानन्दसे भरे हुए, दयाके एक अकेले समुद्र, अत्यन्त शुद्ध, सदा ज्ञानमय, मायाके स्वामी, अपार, अमिट, अजन्मा तथा सबसे बड़े उन भगवान् शिवजीको मैं प्रणाम करता हूँ जिनके तत्त्वको सब वेद और उपनिषद् एक साथ मिलकर भाटोंकी भाँति गाया करते हैं और जिनमें सब प्रकारकी अपार शक्ति भरी हुई है ॥ ६५ ॥ संसारका अन्तिम संस्कार करनेवाले वे शिवजी आप लोगोंको पवित्र करें जिनके नाचते समय घने चक्कर खानेसे वेगसे घूमती हुई पृथ्वीरूपी चक्रपर स्थित सुमेरुके आस-पास रहनेवाले दिन और रात्रिरूपी चित्र (सूर्य, चन्द्र) जब वेगसे घूमने लगे तो ऐसा जान पड़ा मानो उन चन्द्र-सूर्यके सैकड़ों टुकड़े होकर चारों ओर बिखर गए हों या बिजलीके सैकड़ों टुकड़े बिखरकर चमक रहे हों जो अधिक तेजके कारण देखे नहीं जाते ॥ ६६ ॥ बड़े भारी समुद्रके समान उन शिवजीको हम प्रणाम करते हैं जिनमें कहीं-कहीं निकले हुए अनेक ब्रह्माण्ड पानीके बुलबुलोंके समान दिखाई देते हैं और ब्रह्मा आदि देवता भ्रमके कारण कहीं-कहीं उड़ी हुई बूँदोंके समान जान पड़ते हैं, सारे संसारको उपजानेवाली चित् शक्ति महामाया जिनमें कहीं उठी हुई लहर-सी जान पड़ती हैं और जो अपने ही आनन्द-रूपी अपार जलसे भरे हुए हैं ॥ ६७ ॥ यह सारा दिखाई देनेवाला जड़-चेतन संसार जिनके किसी एक अंशमें जमा हुआ है, जो तमालके रङ्गके समान चमचमाते हुए नीले कण्ठवाले हैं और नारायणीके सहचर हैं उन बहुत बड़ी शक्तिसे भरे हुए भगवान् शिवको प्रणाम है ॥ ६८ ॥ शिवजी उस जलके रूपमें हमें प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं जिसे ब्रह्माने सबसे पहले बनाया, उस अग्निके रूपमें दिखाई देते हैं जो विधिके साथ दी हुई हवन-सामग्री ग्रहण करती है, उस होताके रूपमें दिखाई देते हैं जिसे यज्ञ करनेका काम मिला है, उन सूर्य और चन्द्रमाके रूपमें दिखाई देते हैं जो दिन और रातका समय निश्चित करते हैं, उस आकाशके रूपमें दिखाई देते हैं जिसका गुण शब्द है और जो संसार-भरमें रमा हुआ है, उस पृथ्वीके रूपमें दिखाई देते हैं जो सब वस्तुओंको उत्पन्न करनेवाली बताई जाती है और उस वायुके रूपमें दिखाई देते हैं जिसके कारण सब प्राणी जी रहे हैं। जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, और वायु

यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥ ९९ ॥ योगिध्येयं विमलविशदप्रस्फुरद्रम्यकान्तिं शान्तं शुद्धं सुरपरिवृढैरानतैरर्च्यमानम्। कारुण्यार्द्रं हसितसुषमामोदिताशेषविश्वं साक्षात्तत्त्वप्रतिकृतिमुमासंयुतं नौमि शम्भुम् ॥ १०० ॥ यं वेदाः सततं स्तुवन्ति नितरां ध्यायन्ति यं योगिनो यः सृष्ट्यादिनिदानमुष्णकिरणेन्द्वग्नीक्षणो यः पुमान्। यस्मिन्शैलसुताकृतार्धवपुषि प्रज्ञात्मके शाश्वते मच्चित्तं रमतां सदा भयहरे श्रीमत्परब्रह्मणि ॥ १०१ ॥ यः कन्दुकैरिव पुरन्दरपद्मसद्मपद्मापतिप्रभृतिभिः प्रभुरप्रमेयः। खेलत्यलङ्घ्यमहिमा स हिमाद्रिकन्याकान्तः कृतान्तदलनो लघयत्वघं वः ॥१०२॥ रचयति सहसा यश्चित्रमेतत्प्रपञ्चं प्रशमयति च तद्वत्केनचित्कौतुकेन। अविदितमपरैस्तच्चण्डमुण्डादिनानादनुजदलनदक्षं शर्वसर्वस्वमव्यात् ॥ १०३ ॥ राजा राजार्चिताङ्घ्रेरनुपचितकलो यस्य चूडामणित्वं नागा नागात्मजार्धे न भसितधवलं यद्वपुर्भूषयन्ति। मा रामारागिणी भून्मतिरिति यमिनां येन वोऽदाहि मारः सप्ताः सप्ताश्वनुन्नारुणकिरणनिभाः पातु विभ्रत्त्रिनेत्रः ॥ १०४ ॥ लीलाद्यूतजितां कलाधरकलां मौलौ दृढं कीलितां स्वीकर्तुं युगमुन्नमय्य भुजयोर्विश्लेषयन्त्यास्तदा। पार्वत्याः कुचकुम्भपार्श्वयुगले सप्रेमदत्तेक्षणः कालक्षेपणमिन्दुमोचनविधौ देवः स नो रक्षतु ॥ १०५ ॥ वक्त्राणि पञ्च कुचयोः प्रतिबिम्बितानि दृष्ट्वा दशाननसमागमनभ्रमेण। भूयोऽपि शैलपरिवृत्तिभयेन गाढमालिङ्गितो गिरिजया गिरिशः पुनातु ॥ १०६ ॥ वक्त्राम्भोरुहि विस्मिताः स्तबकिताः वक्षोरुहि स्फारिताः श्रोणीसीमनि गुम्फिताश्चरणयोरक्ष्णोः पुनर्विस्तृताः। पार्वत्याः प्रतिगात्रचित्रगतयस्तन्वन्तु भद्राणि वो विद्धस्यान्तिकपुष्पसायकशरैरीशस्य दृग्भङ्गयः ॥ १०७ ॥ वामाङ्गीकृतवामाङ्गि कुण्डलीकृतकुण्डलि। आविरस्तु पुरो वस्तु भूतिभूत्यम्बराम्ब-

---

इन आठ प्रत्यक्ष रूपोंमें जो भगवान् शिव सबको दिखाई देते हैं वे आपका कल्याण करें ॥ ९९ ॥ योगियोंसे ध्यान किए जानेवाले, चारों ओर फैलती हुई स्वच्छ कान्तिवाले, देवताओंके द्वारा झुक-झुककर पूजे जानेवाले, दयाकी बाढ़से भीगे हुए, ज्ञानमय, अत्यन्त शान्त तथा अपनी अत्यन्त सुन्दर हँसीसे सारे संसारको सुन्दर बना देनेवाले, पार्वतीजीके साथ बैठे हुए उन शङ्करजीको प्रणाम करता हूँ जो ब्रह्मके साक्षात् दूसरे रूप ही हैं ॥ १०० ॥ बुद्धिके भण्डार, तीनों कालमें रहनेवाले, भय हर लेनेवाले, उस ज्योतिःस्वरूप परब्रह्ममें मेरा मन सदा रमता रहे जिनकी स्तुति वेद सदा ही करते रहते हैं, जो संसारके उत्पन्न होनेके प्रधान कारण हैं, सूर्य, चन्द्र और अग्नि ये तीनों जिनके नेत्र हैं और जिन्होंने अपने आधे बाएँ शरीरमें हिमालयकी पुत्री पार्वतीको बैठा लिया है ॥ १०१ ॥ इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवोंको जो गेंद बनाकर खेलते हैं, जिन्हें बुद्धि-द्वारा समझा नहीं जा सकता, जिनकी महिमाकी कोई थाह नहीं लगा सकता और जो कालके भी महाकाल हैं वे पार्वतीजीके पति भगवान् शङ्कर आप लोगोंके पाप दूर करें ॥ १०२ ॥ खेल-खेलमें ही जो इस अनोखे संसारको एकाएक रच डालते और नष्ट कर डालते हैं, जिन्हें कोई भी जान नहीं पाया वे चण्ड-मुण्ड आदि बहुतसे राक्षसोंको बड़ी चतुरतासे मार डालनेवाले भगवान् शिव सदा सबकी रक्षा करें ॥१०३॥ तीन नेत्रवाले तथा तीसरे नेत्रमें सूर्यसे निकलती हुई लाल किरणोंके समान सात अग्नि-शिखाएँ धारण करनेवाले, कुबेरसे पूजे जाते हुए चरणवाले वे शिवजी रक्षा करें जिनके सिरके आभूषणके रूपमें देदीप्यमान चन्द्रकला विराजमान है तथा जिनके बाईं ओरके पार्वतीवाले भस्म-रहित भागकी शोभा साँप बढ़ा रहे हैं ॥ १०४ ॥ शिवजीकी जटामें अच्छे ढङ्गसे बँधी हुई चन्द्रमाकी कलाको जुएमें जीतकर पार्वतीजी जब अपने फैले हुए दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर उसे जटासे निकालने लगीं तब उनके दोनों स्तनोंको बड़े प्रेमसे बारी-बारीसे देखकर चन्द्रमा निकालनेमें देर करनेवाले शिवजी हमारी रक्षा करें ॥ १०५ ॥ अपने स्तनोंमें शिवजीके पाँच मुँहोंकी परछाईं देखकर दस सिरवाले रावणके आ धमकनेके भ्रमसे कैलास पर्वतके पुनः डगमगानेके भयसे पार्वतीजी जिनसे भली-भाँति चिपट गईं, वे शिव भगवान् सबको पवित्र करें ॥ १०६ ॥ कामदेवके बाणोंसे पीड़ित होनेपर पार्वतीजीके कमलके समान मुँहपर अचरजसे, स्तनोंपर गुच्छोंके समान गोल होकर, नितम्बोंपर चौड़ी होकर तथा पैरोंपर सिमटकर पड़नेवाली शिवकी अनोखी दृष्टियाँ आप लोगोंको सुख दें ॥ १०७ ॥ अपनी देहके आधे बाएँ भागमें पार्वतीजीको रखनेवाले, साँपोंको कुण्डल बनाकर पहननेवाले, कल्याणमयी भस्म लपेटे हुए तथा आकाशरूपी वस्त्रवाले (नङ्गे रहनेवाले) शिव भगवान् प्रत्यक्ष प्रकट हों ॥ १०८ ॥

रम् ॥ १०८ ॥ विष्णोरागमनं निशम्य सहसा कृत्वा फणीन्द्रं गुणं कौपीनं परिधाय चर्म करिणः शम्भौ पुरो धावति। दृष्ट्वा विष्णुरथं सकम्पहृदयः सर्पोऽपतद्भूतले कृत्तिर्विस्खलिता ह्रियानतमुखो नग्नो हरः पातु वः ॥ १०९ ॥ वृत्ताभिख्यां हतार्यां श्रितविविधगणां छन्दसां वर्णनीयां यातां सर्वादिमत्त्वं सुरगणकलितां भासमत्त्वं दधानाम्। युक्तं स्थानं नयन्तीं लघुमपि सकलं बिभ्रतीं मालयायान्वन्दे बाधींभवर्णां धृतमुनियतिकां स्रग्धरां शम्भुमूर्त्तिम् ॥ ११० ॥ वृषाङ्काय नमस्तस्मै यस्य मौलिविलम्बिनी। जटावेष्टनजां शोभां विभायति जाह्नवी ॥ १११ ॥ वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः। अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः ॥११२॥ वन्दे देवं जलधिशरधिं देवतासार्वभौमं व्यासप्रष्ठा भुवनविदिता यस्य वाहाधिवाहाः। भूपापेटी भुवनमधरं पुष्करं पुष्पवाटी शाटीपालाः शतमखमुखाश्चन्दनद्रुर्मनोभूः ॥ ११३ ॥ व्योम्नीव नीरदभरः सरसीव वीचिव्यूहः सहस्रमहसीव सुधांशुधाम। यस्मिन्निदं जगदुदेति च लीयते च तच्छाम्भवं भवतु वैभवमृद्धये वः ॥११४॥ शुद्धान्ते सीधुपानोन्मदमदनमदोन्मादमत्तालिकालीतालीसन्ताड्यमानोद्भटमु-

---

ज्योंही शिवजीने सुना कि विष्णुजी आ रहे हैं त्योंही वे साँपरूपी डोरेके सहारे बँधी हुई हाथीकी खालका कौपीन पहने हुए उनसे मिलने दौड़े, पर विष्णुकी सवारी (गरुड़) को देखते ही डरके मारे काँपते हुए साँपके धरतीपर खिसक पड़नेसे जिनका कौपीन भी गिर पड़ा और लाजके मारे जिन्होंने अपना सिर नीचे कर लिया वे नङ्गे शिव भगवान् आपकी रक्षा करें ॥१०९॥ लोकप्रसिद्ध पार्वतीजीको तथा अनेक गणोंको धारण करनेवाले, वेदोंमें वर्णन किए जानेवाले, सबसे पहले गिने जानेवाले, देवताओंसे घिरे रहनेवाले, प्रकाश धारण करनेवाले, मोक्ष-पद देनेवाले, सब दीन-दुखियोंका भार सँभालनेवाले, चन्दनसे पुते हुए अङ्गवाले, क्षीरसागरकी-सी कान्तिवाले, यति-मुनियोंका धारण-पोषण करनेवाले तथा माला धारण किए हुए शिवजीके उस स्वरूपको प्रणाम करता हूँ जो लोक-प्रसिद्ध आर्या छन्दको धारण करनेवाले, अनेक गणोंवाले, छन्द-शास्त्रमें वर्णन किए जानेवाले, सब छन्दोंमें प्रधान, सगण और रगणवाले, समान रूपसे भगणयुक्त, उचित स्थान (राजसभा या पण्डित-सभा आदि) में पहुँचानेवाले, लघु अक्षर धारण करनेवाले, चन्दनकी गन्धके समान हृदयको शीतल करनेवाले, अक्षरोंके भण्डारसे समुद्रके समान जान पड़नेवाले, मगण और नगणपर यतिवाले तथा कल्याणकारी स्रग्धरा छन्दके समान है ॥ ११० ॥ बैलके चिह्नवाले उन शिवजीको प्रणाम है जिनके माथेपर बहती हुई गङ्गा उनकी लिपटी हुई जटाकी सुन्दरताको और भी बढ़ा रही है ॥ १११ ॥ वेदान्ती लोग जिन्हें ऐसा अकेला पुरुष बताते हैं जो पृथ्वी और आकाशमें रमा हुआ होनेपर भी सबसे अलग बना रहता है, जिनका 'ईश्वर' नाम ऐसा सटीक और सच्चा है कि और किसीको भी इस नामसे नहीं पुकारा जा सकता और मोक्ष पानेकी इच्छा करनेवाले लोग जिन्हें प्राणायाम साधकर अपने हृदयके भीतर खोजते हैं वे सच्ची भक्तिसे मिलनेवाले शिवजी आप सब लोगोंका कल्याण करें ॥ ११२ ॥ विष्णुको बाण बनाकर त्रिपुरासुरको मारनेवाले तथा देवताओंके सबसे बड़े स्वामी उन भगवान् शिवको प्रणाम करता हूँ जिनकी सत्ताके ज्ञानको अपनेमें धारण कर रखनेसे भगवान्‌के निवास-स्थान कहे जानेवाले वेदोंको संसारमें प्रसिद्ध व्यास आदि मुनि अपनेमें धारण किए हैं, साँपोंका आभूषण पहने रहनेसे साँपोंको अपनेमें रखनेवाला पाताल जिनकी शृङ्गारकी पिटारी-सा जान पड़ता है, चन्द्रमाको खिले हुए फूलके समान अपने सिरपर रखनेसे उसे अपनेमें रखनेवाला आकाश जिनकी ऐसी फुलवारी-सा जान पड़ता है जिसमें उनके दिशारूपी वस्त्रोंकी सदा रखवाली करते रहनेवाले इन्द्र आदि देवता उगे हुए वृक्षके समान जान पड़ते हैं और कामदेवकी राखको अपनी देहमें चन्दनके समान लगाए रहनेसे कामदेव भी जिसमें उगा हुआ चन्दनका वृक्ष-सा जान पड़ता है ॥ ११३ ॥ मेघ जैसे आकाशमें दिखाई देते और मिटते रहते हैं, लहरें जैसे तालाबमें उठती और विलीन होती रहती हैं और चाँदनी या किरणें जैसे चन्द्रमासे ही निकलती और उसीमें लीन हो जाती हैं ठीक वैसे ही यह सारा संसार जिसमें उत्पन्न होता और नष्ट होकर उसीमें फिर मिल जाता है ऐसा शिवजीका ऐश्वर्य आपकी उन्नति करे ॥११४॥ जिस कालीकी सखियाँ मदिरा पीनेसे बढ़े हुए कामके वेगसे उन्मत्त हो गई थीं उस कालीने जब विशाल मृदङ्गपर वेगसे थाप लगाई तब उसकी प्रचण्ड ध्वनि सुनकर शिवजीका शरीर हर्षसे इतना फूल उठा कि वे रनिवासमें ही लाज छोड़

रजरवाडम्बरोन्नाखिताङ्गः। नृत्यन्नग्नो विलज्जश्चलचिकितटतटैः स्नस्तयैर्चिनार्धैर्दृष्टः स्त्रीभिः सहासं प्रहसनमुदितः पातु वो वामदेवः ॥११५॥ शैलेन्द्रप्रतिपाद्यमानगिरिजाहस्तोपगूढोल्लसद्रोमाञ्चादिविसंष्ठुलाखिलविधिव्यासङ्गभङ्गाकुलः। आः शैत्यं तुहिनाचलस्य करयोरित्यूचिवान्सस्मितं शैलान्तःपुरमातृमण्डलगणैर्दृष्टोऽवताद्वः शिवः ॥११६॥ श्रीकण्ठस्य सकृत्तिकार्त्तभरणीमूर्त्तिः सदा रोहिणी ज्येष्ठा भाद्रपदा पुनर्वसुयुता चित्राविशाखान्विता। दिश्यादत्तहस्तमूलघटितापाढा मघालङ्कृता श्रेयो वैश्रवणान्विता भगवतो नक्षत्रपालीव वः ॥११७॥ श्रेयांसि वो दिशतु यस्य सिताभ्रशुभ्रा विभ्राजते सुरसरिद्वरमौलिमाला। ऊर्ध्वेक्षणज्वलनतापविलीयमानचन्द्रामृतप्रविततामृतवाहिनीव ॥११८॥ स जयति हिमकरलेखा चकास्ति यस्योमयोत्सुकान्निहिता। नयनप्रदीपकज्जलजिघृक्षया रजतशुक्तिरिव ॥११९॥ सदसत्त्वेन भावानां युक्ता या द्वितयी स्थितिः। तामुल्लङ्घ्य तृतीयस्मै नमश्चित्राय शम्भवे ॥१२०॥ सन्ध्यानतौ नरपुरन्ध्रितनोः सरोषमुत्सारिते गिरिजया निजपाणिपद्मे। उत्सर्पिकङ्कणफणीन्द्रफणार्पणेन पूर्णोऽञ्जलिर्जयति बालमृगाङ्कमौलेः ॥१२१॥ सन्ध्यासलिलाञ्जलिमपि कङ्कणफणिपीयमानमविजानन्। गौरीमुखार्पितमना विजयाहसितः शिवो जयति ॥ १२२ ॥ स पातु वो यस्य जटाकलापे स्थितः शशाङ्कः स्फुटहारगौरः। नीलोत्पलानामिव नालपुञ्जे निद्रायमाणः शरदीव हंसः ॥१२३॥ समस्तलक्षणायोग एव यस्योपलक्षणम्। तस्मै नमोऽस्तु देवाय कस्मैचिदपि शम्भवे ॥ १२४ ॥ सहस्राक्षैरङ्कैर्नमसितरि नीलोत्पलमयीमिवात्मानस्मालामुपनयति पत्यौ दिविपदाम्। जिघृक्षौ च क्रीडार-

कर नङ्ग-धड़ङ्ग नाचने लगे, उस समय रनिवासकी स्त्रियाँ जो अपनी चञ्चल अधखुली आँखोंसे आश्चर्यमें भरी उन्हें देख-देख हँस रही थीं, उनकी हँसीसे मगन होते हुए शिवजी आप लोगोंकी रक्षा करें ॥११५॥ हिमालयके द्वारा समर्पित की गई पार्वतीजीके हाथोंको छूनेसे उत्पन्न हुए आनन्दको छिपानेपर भी रोमाञ्च द्वारा उसे प्रकट होते देख व्याकुल होकर मुस्कराते हुए 'आह ! हिमालयके हाथ कितने ठण्डे हैं !' ऐसा कहते हुए, हिमालयके अन्तःपुरकी माताओंसे देखे जाते हुए शिवजी आपकी रक्षा करें ॥११६॥ खाल धारण करनेवाला, दीन-दुखियोंका भरण - पोषण करनेवाला, सतोगुणी स्थितिमें रहनेवाला, सबसे बड़ा, कल्याणका भण्डार, ऐश्वर्य-सम्पन्न, नेत्रमें अग्नि धारण करनेवाला, अत्यन्त विचित्र, कुबेरसे संयुक्त, मेघपुष्पसे शोभित तथा कन्धेपर पलाशका दण्ड (ब्रह्मचारीका चिह्न) धारण करनेवाला वह शिव-स्वरूप आपका कल्याण करे जो भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, भाद्रपदा, पुनर्वसु, चित्रा, विशाखा, हस्त, मूल, पूर्वापाढ़ा, मघा, वैश्रवण आदि नक्षत्रोंकी पंक्तिके समान है ॥ ११७ ॥ वे शिवजी आपको आनन्द दें जिनके माथेपर माला बनी हुई उजले मेघोंके समान स्वच्छ गङ्गाजी ऐसी जान पड़ती हैं मानो तीसरे नेत्रकी अग्निके तापसे पिघलकर चन्द्रमासे बहे हुए अमृतकी नदी हों ॥ ११८ ॥ उन शिवजीकी जय हो जिनकी चन्द्रकला आदरपूर्वक पार्वतीजीके माथेपर रक्खी जाकर ऐसी सुन्दर जान पड़ती है मानो उनके नेत्र रूपी दिएका काजल उतारनेकी सीपी हो ॥ ११९ ॥ सत् और असत् रूपसे पदार्थोंकी दो प्रकारकी स्थितिको भी पार करके किसी तीसरी स्थितिमें रहनेवाले विचित्र शिवजीको प्रणाम है ॥ १२० ॥ सायङ्काल आधे बाएँ भागमें बैठी पार्वतीजीने जब क्रोधित होकर अपना हाथ हटा लिया तब उन्हें मनानेके लिये हाथ जोड़ते समय कङ्गन बने हुए साँपके उठे हुए फनको चौड़ा करके बाएँ हाथके स्थानपर लगा देनेसे दूजके चन्द्रमाका मुकुट धारण किए हुए शिवजीके जुड़े हुए दोनों हाथवाली अञ्जलिकी जय हो ॥ १२१ ॥ सन्ध्या करते समय पार्वतीजीके मुँहको एक टक देखते रहनेके कारण 'अञ्जलिका पानी कङ्गन बने हुए साँपने पी लिया' यह न जाननेवाले जिन शिवजीको देखकर विजया हँस पड़ी थी उन शिवजीकी जय हो ॥ १२२ ॥ वे शिवजी आपका कल्याण करें जिनके जटा-मुकुटपर चमकते हुए हारके समान उजला चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो शरद् ऋतुमें खिले नीले कमलके डण्ठलोंके बीच कोई हंसिनी सो रही हो ॥१२३॥ किसी प्रकारके कोई लक्षण न घटना ही जिसका लक्षण है ऐसे किसी 'शम्भु' नामवाले भगवान्को प्रणाम है ॥ १२४ ॥ देवताओंके स्वामी इन्द्र जब साष्टाङ्ग प्रणाम करके सहस्रों नयनोंसे दर्शन करने लगे तो ऐसा जान पड़ा मानो वे शिवजीको नीले कमलोंकी माला पहना रहे हों ! उस समय अपने गणोंके साथ क्रीड़ाके वेगमें भरे हुए स्वामी कार्त्तिकेय जैसे ही इन्द्रके नयनोंको कमल समझकर उन्हें सूँघने चले वैसे ही उन्हें देखकर हँस पड़नेवाले पार्वतीजीसे आलिङ्गित शिवजी आपका ऐश्वर्य स्थिर करें ॥१२५॥ 'साँपके

सुखतरणे श्रीमहेशानसंज्ञम् । प्रालेयज्ज्योतिरन्तः-परिणततिमिरव्यूहविच्छेददत्तं किञ्चिद्वाचामधीशं स्फुरतु मम हृदि त्र्यक्षरं विश्वसाक्षि ॥ १३४ ॥

पार्वती—अङ्कनिलीनगजाननशङ्काकुलबाहुलेयहृतवसनौ । सस्मितहरकरकलितौ हिमगिरितनयास्तनौ जयतः ॥१॥ अपर्णैव लता सेव्या विद्वद्भिरिति मे मतिः। यया वृतः पुराणोऽपि स्थाणुः सूतेऽमृतं फलम् ॥ २ ॥ आदौ प्रेमकषायिता हरमुखव्यापारलोला शनैर्व्रीडाभारविघूर्णिता मुकुलिता धूमोद्गमव्याजतः। पत्युः सास्मिलिता दृशा सरभसव्यावर्त्तनव्याकुला पार्वत्याः परिणीतमङ्गलविधौ दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥ ३ ॥ आनन्दमन्थरपुरन्दरमुक्तमाल्यं मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य। पादाम्बुजं भवतु वो विजयाय मञ्जुमञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥ ४ ॥ आस्ये पूर्णसुधानिधिश्चरणयोः कल्पद्रुमं वैभवं देहे काञ्चनकान्तता त्वचि पुनर्हैयङ्गवीनं स्वयम्। यस्या लोचनयोर्निरूपधिसदोदीतानुकम्पाततिः सा माता जगतां प्रसादपदवी साक्षान्मुदे स्तादुमा ॥५॥ उद्वाहारोपिताद्रीक्षतनिजपदयोः सङ्गतामिन्दुमौलावानम्रे यां सुधांशोर्व्यधित किल कलां तूर्णमेवान्नपूर्णाम्। सक्तानामक्षतानामसृतदहनलोपाधितः पक्वभावान्नानार्थैरन्नपूर्णा प्रणतजनततेः पूर्णतामातनोतु ॥ ६ ॥ उन्नालनाभिपङ्केरुह इव येनावभाति शम्भुरपि। जयति पुरुषायितायास्तदाननं शैलकन्यायाः॥७॥ औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्त्तमाना ह्रिया तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः। दृष्ट्वाग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे सङ्गमे संरोहत्पुलका हरेण हसताश्लिष्टा शिवायास्तु वः ॥ ८ ॥ कण्ठोचितोऽपि हुङ्कृतिमात्रनिरस्तः पदान्तिके पतितः। यस्याश्चन्द्रशिखः स्मरभल्लनिभो जयति सा चण्डी ॥ ९ ॥ कैलासालयभाललोचनरुचा निर्वर्त्तितालक्तकव्यक्तिः पादनखद्युतिर्गिरिभुवः सा वस्सदा त्रायताम्। स्पर्धाबन्धसमृद्धयेव सुदृढं रूढा यया नेत्रयोः कान्तिः

(उदासीन), वाणीके स्वामी, कोई तीन अक्षरके 'महेश' नामवाले उत्कृष्ट ज्योतिःस्वरूप परमात्मा मेरे हृदयमें प्रकाशित हों ॥ १३४ ॥

पार्वती : 'गोदीमें छिपा-छिपा गणेश ही माँका दूध पिए लेता है,' ऐसी शङ्कासे स्वामी कार्त्तिकेयने जैसे ही वस्त्र अलग किए वैसे ही मुस्कराते हुए शिवजीके हाथों-द्वारा ग्रहण किए गए पार्वतीजीके स्तनोंकी जय हो ॥ १ ॥ मेरी बुद्धिसे तो विद्वानोंको अपर्णा (बिना पत्तोंवाली) लता (पार्वतीजी) का ही सेवन करना चाहिए जिससे लिपटे हुए (वरण किए हुए) स्थाणु (ठूँठ या शिवजी) भी अमृतमय फल देने लगते हैं ॥ २ ॥ पार्वतीकी वे दृष्टियाँ आपका कल्याण करें जो विवाहके समय पहले तो प्रेमके कारण अलसाई-सी थीं फिर शिवजीको देखकर चञ्चल होकर लज्जासे भर उठीं, फिर धुआँ लगनेके बहाने मूँद ली गईं और शिवजीकी नेत्रोंसे मिलकर वेगसे वहाँसे हट जानेको व्याकुल हो उठीं ॥३॥ नूपुरोंकी मधुर झनकारसे अत्यन्त मनोहर वे पार्वतीजीके चरण आपको विजय दें जिनपर शिथिल होकर इन्द्रने मालाएँ चढ़ाई थीं तथा जो बलपूर्वक महिषासुरके सिर पर रक्खे गए थे ॥ ४ ॥ साक्षात् प्रसन्नताकी मूर्त्ति वे जगन्माता पार्वती आपको सुख दें जिनके मुँहमें पूर्ण चन्द्रमा विराजमान है, चरणोंमें कल्प-वृक्षका सारा ऐश्वर्य लोट रहा है, देहमें सोनेके समान सुन्दरता है, त्वचामें मक्खनके समान कोमलता है और जिनकी आँखें ऐसी जान पड़ती हैं मानो अबाध रूपसे कृपाकी पाँत हों ॥५॥ वे पार्वतीजी अनेक प्रकारकी सम्पत्ति देकर प्रणाम करनेवालोंकी मनोकामनाएँ पूर्ण करें जिनके चरणोंकी ओर विवाहके समय झुके हुए शिवजीकी चन्द्रकलापर उनके चरणोंपर लगे हुए गीले अक्षत चिपक जानेसे ऐसा जान पड़ रहा था मानो प्रणाम करते हुए शिवजीके चन्द्रकलारूपी भिक्षापात्रको अन्नपूर्णाजीने अन्नसे भर दिया हो और वह शिवजीके तीसरे नेत्रकी अग्निसे पक रहा हो ॥ ६ ॥ पुरुषके समान आचरण करती हुई हिमालयकी पुत्री पार्वतीके उस मुँहकी जय हो जिससे शिवजी भी ऐसे विष्णुके समान शोभित होने लगे जिनकी नाभिमें बढ़ी हुई नालवाला कमल खिला रहता है ॥७॥ वे पार्वतीजी आपका कल्याण करें जो शिवजीसे प्रथम समागमके समय पहले तो मिलनेके लिये शीघ्रता करती हुई भी स्वाभाविक लाजके कारण लौट आईं, फिर जब सखियाँ कह-सुनकर शिवजीके सामने ले गईं तो वे उन्हें देखकर भयभीत हो गईं और फिर रोमाञ्चित होती देखकर हँसते हुए शिवजीने जिनका आलिङ्गन कर लिया ॥८॥ क्रोधमें भरी हुई उन पार्वतीजीकी जय हो जिनके 'हुं' करने-मात्रसे कण्ठमें धारण करने योग्य चन्द्रकला पैरोंके पास गिरकर ऐसी जान पड़ती थी मानो कामदेवका भाला हो ॥ ९ ॥ [रूठी हुई प्रियतमाके पैर पड़कर उन्हें मनाते हुए] कैलास-

कोकनदानुकारसरसा सद्यः समुत्सार्यते ॥ १० ॥ क्रीडासरोषगिरिजाचरणारविन्दं वन्दे यदग्रपतिता हरिणाङ्कलेखा । कामापहस्तितवृषध्वजधैर्यलक्ष्मीपातावभग्नवलयार्द्धनिभा विभाति ॥ ११ ॥ गोनासाय नियोजितागदरजाः सर्पाय वद्धौषधिः कण्ठस्थाय विषाय वीर्यमहतः पाणौ मणीन्विभ्रती। भर्त्तुर्भूतगणाय गोत्रजरतीनिर्दिष्टमन्त्राक्षरा रक्षत्वद्रिसुता विवाहसमये प्रीता च भीता च यः ॥ १२ ॥ चण्डीजङ्घाकाण्डः शिरसा चरणस्पृशि प्रिये जयति। शङ्करपर्यन्तजितो वीरस्तम्भः स्मरस्येव ॥१३॥ चिरमाविष्कृतप्रीतिभीतयः पान्तु वो द्विषाम् । वलयज्यारवोन्मिश्राश्चण्ड्याः कोदण्डकृष्टयः ॥ १४ ॥ जन्मान्तरीणरमणस्याङ्गसङ्गसमुत्सुका । सलज्जा चान्तिके सख्याः पातु नः पार्वती सदा ॥१५॥ जङ्घाकाण्डोरुनालो नखकिरणलसत्केसरालीकरालः प्रत्यग्रालक्तकाभाप्रसरकिसलयो मञ्जमञ्जीरभृङ्गः । भर्त्तुर्नृत्तानुकारे जयति निजतनुस्वच्छलावण्यवापीसम्भूताम्भोजशोभां विदधदभिनभो दण्डपादो भवान्याः॥१६॥ ज्याकृष्टिवद्धखटकामुखपाणिपृष्ठप्रेङ्खन्नखांशुचयसंवलितोऽम्बिकायाः । त्वां पातु मञ्जरितपल्लवकर्णपूरलोभभ्रमद्भ्रमरविभ्रमभृत्कटाक्षः॥१७॥ ज्योत्स्नासन्दोहरूपा प्रमुदितवदना प्रस्फुटत्कान्तिकान्ता भक्तान्तस्था पुरस्तान्नयनविषयतामानयन्ती स्वरूपम् । देवीभिः सेव्यमाना परभयहरणप्रेक्षणा प्रेक्षणीया कारुण्याधारभूता मम भवतु मुदे सर्वदा सा भवानी ॥१८॥ तद्वः प्रमार्ष्टु विपदः प्रणतार्त्तिहन्त्र्या न्यस्तं पदं महिषमूर्धनि चण्डिकायाः । वैरी यदीयनखरांशुपरीतश्रृङ्गः

वासी शिवजीके मस्तकके नेत्रकी लाल कान्ति पड़नेसे महावर लगे-से जान पड़नेवाले पार्वतीजीके नखोंकी वह कान्ति सदा आपकी रक्षा करे जो शिवजीका क्रोध शान्त हो जानेसे उनके नेत्रकी ललाई मिटनेपर ऐसी जान पड़ती है मानो शिवजीके नेत्रोंकी लाल कमलकी कान्तिवाली ललाईसे होड़ करके उसे मिटाकर पुनः तत्काल शान्त हो गई हो ॥१०॥ खेल ही खेलमें रूठी हुई पार्वतीके उस चरणकमलको प्रणाम करता हूँ जिसके पैरोंपर पड़ी शिवजीके माथेपरके चन्द्रमाकी कला ऐसी लगती है मानो कामदेवके धक्केसे गिरी हुई शिवजीकी धीरजरूपी लक्ष्मीके टूटे हुए कङ्गनका आधा टुकड़ा हो ॥ ११ ॥ विवाहके समय एक साथ (अपनी तपस्या सफल होती देखकर) प्रसन्न तथा (शिवजीका वेष देखकर) भयभीत होनेवाली वे पार्वतीजी आपकी रक्षा करें जिन्होंने अपने पतिके गोनाससे वचनेके लिये औषधिका चूर्ण लगा लिया था, साँपोंसे वचनेके लिये जड़ी वाँध ली थी, गलेके विषके तापसे वचनेके लिये मणियाँ पहन ली थीं और भूत-प्रेतोंसे वचनेके लिये अपने घरकी वड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंसे मन्त्र-तन्त्र सीख लिए थे ॥ १२ ॥ क्रोधमें भरी पार्वतीजीको मनानेके लिये जब शिवजी उनके पैरों पड़ने लगे उस समयकी पार्वतीजीकी उस जाँघकी जय हो जो ऐसी जान पड़ती थी मानो कामदेवके शत्रु (शिव) जैसे विरागी-तकको जीत लेनेका विजयस्तम्भ हो ॥ १३ ॥ पार्वतीजीका वह वार-वार कङ्गन और प्रत्यञ्चाकी मिली हुई झनकारसे युक्त धनुष खींचना सदा आपकी रक्षा करे जिससे शत्रुओंको (धनुषकी टङ्कार सुनकर) डर भी लगता था और (कङ्गनोंकी झनकार सुनकर) मोह भी होता था ॥ १४ ॥ अपने पिछले जन्मके पति (शिवजी) का आलिङ्गन करनेको उत्सुक होते हुए भी सखीके सामने लजानेवाली पार्वतीजी सदा हमारा कल्याण करें ॥ १५ ॥ शिवजीके नृत्यका अनुकरण करते समय उजली देहरूपी वावड़ीके सौन्दर्यरूपी जलमें उत्पन्न होनेवाले, जाँघरूपी लम्बी डण्डीवाले, नखोंकी सुन्दर किरण-रूपी केसरवाले, तत्काल लगाए हुए महावरकी फैली हुई कान्ति-रूपी कोमल पत्तोंवाले, नूपुरकी झनकाररूपी भौंरोंकी गुञ्जारवाले तथा आकाशकी ओर उठकर कमलके समान शोभित होनेवाले भवानीके चरण-दण्डकी जय हो ॥ १६ ॥ धनुषकी डोरी खींचते समय मुँहके पासतक हाथका ऊपरी भाग पहुँचते ही नखोंकी घनी कान्ति पड़नेसे अत्यधिक सुन्दर दिखाई देनेवाली तथा कानोंमें पहने हुए मञ्जरीवाले कोमल पत्तोंसे वने कनफूलोंके रसके लोभसे मँडराते हुए भौंरोंके समान सुन्दर शोभित होनेवाली पार्वतीजीकी वाँकी चितवन आपकी रक्षा करे ॥१७॥ चाँदनीके ढेरके समान जान पड़नेवाली, प्रसन्न मुखवाली, भक्तोंके हृदयमें वसनेवाली, भक्तोंके नेत्रोंको अपने स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन भी करानेवाली, देखने-मात्रसे दूसरोंका भय हरनेवाली, सव कुछ देनेवाली, अपनी विखरती हुई कान्तिके कारण अधिक सुन्दर तथा दर्शन करने योग्य वे भगवती पार्वती मुझे सुख दें जिनके सहारे दया टिकी है और सव देवियाँ जिनकी सेवा करती हैं ॥ १८ ॥ भक्तोंकी पीड़ा हरनेवाली तथा क्रोधमें भरी पार्वतीजीका वह महिषासुरके मस्तकपर रक्खा हुआ चरण आपकी विपत्तियाँ दूर करे जिसके नखोंकी किरणें

शक्रायुधाङ्कितनवाम्बुधरप्रभोऽभूत् ॥१६॥ तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव। गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ ॥ २० ॥ दिश्यान्महासुरशिरःसरसीप्सितानि प्रेङ्खन्नखावलिमयूखमृणालनालम् । चण्ड्याश्चलच्चटुलनूपुरचञ्चरीकझङ्कारहारिचरणाम्बुरुहद्वयं वः ॥ २१ ॥ दीप्तक्षुद्वेगयोगाद्वदनलहलहल्लम्बजिह्वाग्रलीढब्रह्माण्डक्षौद्रविन्दुप्रबलतरभवज्जाठराग्निस्फुलिङ्गाम्। कालीङ्कङ्कालशेषामतुलगलचलन्मुण्डमालाकरालीङ्खड्गासंवादिनेत्रामजिननिवसनान्नौमि पाशासिहस्ताम् ॥२२॥ दुर्गा दानवनाशिनी हरजटाश्रेणीव्यलोल्लासिनी वीणाशङ्खकपालतोमरधरा मुण्डस्रजा शोभिता। रक्ताक्षी ननु रक्तबीजमथिनी भक्त्या सदानन्दिनी पायात्सा परमेश्वरी प्रतिदिनं कल्याणमुक्तिप्रदा ॥ २३ ॥ देव्याः सुवर्णरुचिरां परिभाव्यमानभूपाविभातिशयतां प्रकृतेर्दधानाम् । कामं द्विपन्तमपि कामवशं नयन्तीं स्मेराननां भगवतीं शिरसा नमामि ॥ २४ ॥ धूमव्याकुलदृष्टिरिन्दुकिरणैराह्लादिताक्षी पुनः पश्यन्तीव समुत्सुका नतमुखी भूयो ह्रिया ब्रह्मणः। सेर्ष्या पादनखेन्दुदर्पणगते गङ्गां दधाने हरे स्पर्शाद्युत्पुलका करग्रहविधौ गौरी शिवायास्तु वः ॥ २५ ॥ नमामि यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलाम् । भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम् ॥ २६ ॥ पादाग्रस्थितया मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रतां शम्भोः सस्पृहलोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराधने। ह्रीमत्या शिरसीहितं सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया विश्लिष्यन्कुसुमाञ्जलिर्गिरिजया क्षिप्तोऽन्तरे पातु वः ॥ २७ ॥ पार्वतीमोषधीमेकामपर्णां मृगयामहे। शूली हालाहलं पीत्वा यया मृत्युञ्जयोऽभवत् ॥२८॥ पुरारितनुहारिणी दुरितसङ्घसंहारिणी भजन्मति-

---

पड़नेसे शत्रु (महिषासुर) का सिर उन नये मेघोंके समान शोभित होता है जिनमें इन्द्रधनुष चमक रहा हो ॥ १९ ॥ शिवजीकी भस्मसे जिनका अग्रभाग उजला हो गया है उन पार्वतीजीके स्तनोंको मैं प्रणाम करता हूँ जो मानो यह सोचकर मुस्करा रहे हैं कि शिव जैसे तपस्वी भी कैसे हमारे चक्करमें पड़ गए !' ॥ २० ॥ महिषासुरके मस्तकरूपी बावड़ीमें खिले कमलोंके समान वे दोनों श्रीपार्वतीजीके चरण आपकी मनोकामनाएँ पूर्ण करें जिनके नखोंसे निकलनेवाली किरणें ही मृणाल और नाल हैं तथा हिलते हुए नूपुरोंकी झनकार ही भौंरोंकी गुञ्जार है ॥ २१ ॥ घुँघचीके समान लाल नेत्रोंवाली तथा हाथोंमें तलवार और पाश (फाँस) धारण करनेवाली उन भयंकर रूपवाली कालीजीको प्रणाम करता हूँ जो गलेमें पड़ी बहुतसे मुण्डोंकी मालाके हिलनेसे अत्यन्त भयंकर लग रही हैं, अत्यन्त वेगसे भूख लगनेपर मुँहमें लपलपाती हुई लम्बी जीभके अग्रभागसे छोटी-सी बूँद जैसे सारे ब्रह्माण्डको चाट लेनेपर जिनके पेटकी ज्वालाकी चिनगारियाँ और भी प्रबल हो उठी हैं, जो खाल-भर पहने हैं और जिनका शरीर हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया है ॥२२॥ दानवोंका नाश करनेवाली, शिवजीकी जटाओंसे खेलवाड़ करनेवाली, वीणा, शङ्ख, खोपड़ी और तोमर धारण करनेवाली, मुण्डमालासे शोभित होनेवाली, लाल आँखोंवाली, रक्तबीजको मथ डालनेवाली, भक्तिसे ही सदा प्रसन्न होनेवाली तथा कल्याण और मुक्ति देनेवाली सबसे बड़ी स्वामिनी दुर्गा प्रति दिन मेरी रक्षा करें ॥२३॥ सोनेकी कान्तिके समान सुन्दर कान्तिवाली, इच्छानुसार शत्रुओंको भी कामदेवके वशमें कर देनेवाली तथा प्रसन्न मुखवाली उन भगवती पार्वतीको सिर नवाकर प्रणाम करता हूँ जिनके चमकते हुए आभूषणोंकी सजावटसे उनकी स्वाभाविक सुन्दरता अत्यधिक बढ़ गई है ॥२४॥ विवाहके समय धुआँ लगनेसे कड़ुआनेपर शिवजीके मस्तकके चन्द्रमाकी शीतल किरणें पड़नेसे प्रसन्न आँखोंवाली, शिवजीको देखनेके लिये उनकी ओर मुँह करते ही ब्रह्माजीको सामने देखकर लाजसे सिर नीचे कर लेनेवाली, चन्द्रमाके समान चमकीले अपने पैरके नखरूपी दर्पणमें गङ्गा धारण किए हुए शिवजीकी परछाईं देखनेवाली तथा पाणिग्रहणके समय शिवजीसे छू जानेपर रोमाञ्चित हो उठनेवाली पार्वतीजी आपका कल्याण करें ॥ २५ ॥ रातके स्वामी चन्द्रमाकी कलासे शोभित केशोंवाली उन भवानीजीको प्रणाम करता हूँ जो सांसारिक कष्टोंको बहानेके लिये अमृतमयी नदी हैं ॥ २६ ॥ शिवजीके सिरकी पूजा करनेके लिये उनके चाहसे भरे तीनों नेत्रोंके सामने जाकर पैरके पञ्जेके सहारे खड़ी हुई, स्तनोंके भारसे झुकी हुई और लजाती हुई पार्वतीजीके हाथोंसे शिवजीके माथेपर चढ़ानेके लिये रक्खी हुई वह पुष्पाञ्जलि आपकी रक्षा करे जो शिवजीको देखकर पार्वतीजीके रोमाञ्चित होने और काँप उठनेके कारण पहले ही गिर पड़ी ॥२७॥ पर्वतसे उत्पन्न होनेवाली (पार्वती नामवाली) और बिना पत्तोंवाली (अपर्णा नामवाली) उस एक औषधिको हम ढूँढते हैं जिसे पीकर पेटकी पीड़ावाले (त्रिशूल धारण करनेवाले शिवजी) भयङ्कर महाविष पीकर भी

विवर्धिनी प्रबलदानवोन्मर्दिनी । तुषारगिरिनन्दिनी मुनिहृदन्तरालस्थिता कुमारमुखचुम्बिनी हरनितम्बिनी पातु वः ॥ २९ ॥ प्रचण्डचण्डमुण्डयोर्महाबलैकखण्डिनी ह्यनेकरुण्डमुण्डयुग्रणे बलैकदायिनी । क्वचित्स्वशक्तिकारिणी रमाविलासदायिनी मुदेऽस्तु कालिका सदा समस्तपापहारिणी ॥ ३० ॥ प्रत्यासन्नविवाहमङ्गलविधौ देवार्चनव्यग्रया दृष्ट्वाग्रे परिणेतुरेव लिखितां गङ्गाधरस्याकृतिम् । उन्मादस्मितरोषलज्जितधिया गौर्य्या कथञ्चिच्चिराद्वृद्धस्त्रीवचनात्प्रिये विनिहितः पुष्पाञ्जलिः पातु वः ॥ ३१ ॥ प्रातः कालाञ्जनपरिचितं वीक्ष्य जामातुरोष्ठं कन्यायाश्च स्तनमुकुलयोरङ्गुलीभस्ममुद्राम् । प्रेमोल्लासाज्जयति मधुरं सस्मिताभिः सखीभिर्गौरीमातुः किमपि-किमपि व्याहृतं कर्णमूले ॥ ३२ ॥ प्रियकण्ठपरिष्वङ्गमीलिताक्षीं नमाम्युमाम् । कालकूटस्य संस्पर्शाज्जातमूर्च्छागमामिव ॥ ३३ ॥ वालीयुतश्रवणपालीयुगा ललितचूलीविराजिचकुला केलीगतानुगमरालीकुला मधुरमालीभिरादृतकथा । नालीकदृक्कुसुमनालीकपाणिरिह कालियशासिसहजा तालीदलाभतनुमाली सदा भवतु काली शुभाय मम सा ॥ ३४ ॥ ब्रह्मादयोऽपि यदपाङ्गतरङ्गभङ्ग्या सृष्टिस्थितिप्रलयकारणतां व्रजन्ति । लावण्यवारिनिधिवीचिपरिप्लुतायै तस्यै नमोऽस्तु सततं हरवल्लभायै ॥ ३५ ॥ भिक्षार्थी स क यातः सुतनु बलिमखे ताण्डवं क्वाद्य भद्रे मन्ये वृन्दावनान्ते क नु स मृगशिशुर्नैव जाने वराहम् । बाले कच्चिन्न दृष्टो जरठवृषपतिर्गोप एवास्य वेत्ता लीलासंलाप इत्थं जलनिधिहिमवत्कन्ययोस्त्रायतां वः ॥ ३६ ॥ भिक्षुः क्वास्ति बलेर्मखे पशुपतिः किं नास्त्यसौ गोकुले मुग्धे पन्नगभूषणः सखि सदा शेते च तस्यो-

---

'मृत्युञ्जय' (मृत्युका नाश करनेवाले) हो गए ॥२८॥ शिवजीके आधे बाएँ शरीरको अपना शरीर बना लेनेवाली, पापोंके ढेरका नाश करनेवाली, भक्तोंकी बुद्धि बढ़ानेवाली, अत्यन्त बलवान् दानवोंको मार डालनेवाली, मुनियोंके हृदयोंमें रहनेवाली और कार्त्तिकेयका मुँह चूमनेवाली शिवजीकी पत्नी तथा हिमालयकी पुत्री पार्वतीजी आपकी रक्षा करें ॥ २९ ॥ अत्यन्त बलवान् चण्ड और मुण्डकी बहुत बड़ी सेनाका नाश करनेवाली, बहुतसे सिर और धड़ोंसे भरी हुई युद्ध-भूमिमें लड़नेकी शक्ति देनेवाली, कहीं शत्रुओंकी शक्तिका नाश करनेवाली, कहीं लक्ष्मीका ऐश्वर्य देनेवाली तथा सारे पापोंका नाश करनेवाली कालीजी सदा आनन्द देती रहें ॥ ३० ॥ विवाहमें देव-पूजनके लिये सामने भावी पति (शिवजी) की ही गङ्गा धारण की हुई मूर्त्ति स्थापित देखकर घबराहट, हँसी, क्रोध और लज्जासे भरी हुई पार्वतीजीकी वह पुष्पाञ्जलि आपकी रक्षा करे जिसे बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंके बहुत समझाने-बुझानेपर उन्होंने शिवजीकी मूर्त्तिपर चढ़ाया था ॥ ३१ ॥ प्रातःकाल दामाद (शिवजी) के नीचेके ओठमें लगा काला आँजन और कन्या (पार्वतीजी) के स्तनोंपर उँगलीके भस्मयुक्त चिह्न देखकर अत्यधिक प्रेम और आनन्दसे मुस्कराती हुई सखियोंने पार्वतीजीकी माँ (मैना) के कानमें जो धीरे-धीरे कोई मधुर बातें कहीं, उनकी जय हो ॥३२॥ शिवजीके गलेसे लिपटकर आनन्दसे आँखें मूँद लेनेवाली उन पार्वतीजीको प्रणाम करता हूँ जो ऐसी जान पड़ती हैं मानो छूशिवजीके कण्ठका विष जानेसे बेसुध हो गई हों ॥३३॥ दोनों कानोंमें बाली, बालोंमें मौलसिरीके फूल और हाथोंमें फूलके बाण धारण किए हुए वे ताड़पत्रों-जैसी साँवली कमलनयनी कालीजी मेरा कल्याण करें जिनकी लीलामयी चालका हंसिनी अनुगमन करती हैं, जिनकी बातोंका सखियाँ प्रेमपूर्वक आदर करती हैं तथा जो कालिय नागको शिक्षा देनेवाले श्रीकृष्णजीकी बहन हैं (दुर्गाजी यशोदाकी कन्या थीं) ॥ ३४ ॥ सुन्दरताके समुद्रमें उठनेवाली लहरोंसे ओत-प्रोत उन शिवजीकी प्रियतमा पार्वतीजीको प्रणाम है जिनकी तिरछी चितवनका थोड़ा-थोड़ा सङ्केत पानेपर ही ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी सारे संसारका निर्माण, पालन और नाश करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ३५ ॥ लक्ष्मीजीने पार्वतीजीसे पूछा—भिखमङ्गे (शिवजी) कहाँ गए हैं ? पार्वतीजीने कहा—हे सुन्दर देहवाली ! वे (वामन) तो बलिकी यज्ञशालामें होंगे। लक्ष्मीजी—कल्याणी ! आज नृत्य (ताण्डव) कहाँ होगा ? पार्वतीजी—मैं तो सोचती हूँ कि (रास) वृन्दावनमें ही कहीं होगा। लक्ष्मीजी—और वह पशु-बालक (गणेश) वाला (शिव) कहाँ गया ? पार्वतीजी—उसे (वराहको) तो मैं नहीं जानती। लक्ष्मी—बाले ! बुड्ढे बैलके स्वामी (शिवजी) नहीं दिखाई पड़े ? पार्वती—उसे तो ग्वाल (गौएँ चरानेवाले कृष्ण) ही जानें ! इस प्रकार समुद्रसे उत्पन्न लक्ष्मी और हिमालय पर्वतसे उत्पन्न पार्वतीजीकी आपसकी मन-बहलावके लिये होनेवाली बातचीत आपकी रक्षा करे ॥ ३६ ॥ लक्ष्मीजीने पार्वतीजीसे पूछा—भीख माँगनेवाले (शिवजी) कहाँ हैं ? पार्वतीजीने कहा—वे (वामन

परि । आर्ये मुञ्च विषादमाशु कमले नाहं प्रकृत्या चला चेत्थं वै गिरिजासमुद्रसुतयोः सम्भाषणं पातु वः ॥३७॥ मातस्तातजटासु किं सुरसरित्किं शेखरे चन्द्रमाः किं भाले हुतभुग्लुठत्युरसि किं नागाधिपः किं कटौ। कृत्तिः किञ्जघनद्वयान्तरगतं यद्दीर्घमालम्बते श्रुत्वा पुत्रवचोऽम्बिका स्मितमुखी लज्जामुखी पातु वः ॥३८॥ मृणालव्यालवलया वेणीबन्धकपर्दिनी। हरानुकारिणी पातु लीलया पार्वती जगत् ॥ ३९ ॥ यस्याङ्घ्रिद्वितयं नमन्ति विबुधाः स त्वेककः सर्ववित्तं मृत्युञ्जयमामनन्ति मुनयः सोऽद्यापि यातिव्रताः। इत्याकर्ण्य कथां रहस्यपि यया पत्युर्विवाहात्पुरा भङ्क्त्वाङ्गानि विजृम्भितं गिरिभुवो मोट्टायितं पातु वः ॥ ४० ॥ या वाचः साधुतायास्त्रिभुवनभुवनस्याङ्गने सञ्चरन्ती वामांसासक्तवीणाध्वनिगणविलसन्मूर्च्छनानन्दपूर्णा । सन्तोषोल्लासिमौलिः स्फुरदमलमणिः स्वर्णताटङ्कभूषा विभ्राजत्सुस्मितास्या भवतु भवमुदे भव्यभाग्यस्भवानी ॥ ४१ ॥ रचयति सहसा यच्चित्रमेतत्प्रपञ्चं प्रशमयति च तद्वत्केनचित्कौतुकेन । अविदितमपरैस्तच्चण्डमुण्डादिनानादनुजदलनदक्षं शर्वसर्वस्वमव्यात् ॥ ४२ ॥ रामाद्याचय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाल्लाङ्गलं प्रेतेशान्महिषं तवास्ति वृषभः फालं त्रिशूलं तव। शक्ताहं तव चान्नदानकरणे स्कन्दोऽस्ति गोरक्षणे खिन्नाहं हर भिक्षया कुरु कृषिं गौरीवचः पातु वः ॥ ४३ ॥ रामार्चिताङ्घ्रिरभिरामाकृतिः कृतविरामा सुपर्वविपदां कामार्तिहृत्सफलकामा निदेशरतकामादिनिर्जरवधूः। भामा हरस्य नुतभामा जपासदृशभा माननीयचरिता

भगवान्) तो बलिकी यज्ञशालामें होंगे ! लक्ष्मीजी—पशुपति (नन्दीके स्वामी) कहाँ हैं ? पार्वतीजी—क्यों क्या (पशुओंके स्वामी कृष्ण) गोकुलमें (गोकुल नगर या गौओंके बीचमें) नहीं हैं ? लक्ष्मीजी—अरी पगली ! पन्नगभूषण (सर्पविभूषित) को पूछती हूँ । पार्वती—सखी ! वे (साँपोंकी शोभा बढ़ानेवाले विष्णु) तो उन्हींपर (शेषनागपर) ही सोते होंगे । लक्ष्मीजी—आर्ये ! विषादी (विषभक्षी) को छोड़ो । पार्वतीजी—हे लक्ष्मी ! मैं चञ्चल स्वभाववाली नहीं हूँ । समुद्र और हिमालयकी पुत्रियोंकी यह बातचीत आपकी रक्षा करे ॥ ३७ ॥ गणेशजीने पार्वतीजीसे पूछा—माँ ! पिताजीकी जटामें क्या है ? पार्वतीजीने कहा—उनकी जटामें गङ्गा है । गणेशजी—उनके सिरपर क्या है ? पार्वतीजी—वह चन्द्रमा है । गणेशजी—उनके मस्तकमें क्या है ? पार्वतीजी—वह अग्नि है । गणेशजी—उनके हृदयपर क्या लोट रहा है ? पार्वतीजी—वह शेषनाग है । गणेशजी—उनकी कमरमें क्या है ? पार्वतीजी—वह खाल है । गणेशजी—उनकी दोनों जाँघोंके बीचमें वह लम्बा-सा क्या लटक रहा है ? पुत्रकी इस बातको सुनकर मुस्कराकर लजा जानेवाली भगवती पार्वती आपकी रक्षा करें ॥ ३८ ॥ साँपके समान मृणालोंके कङ्कन पहनकर और अपनी चोटीसे जटामुकुट बाँधकर शिवजीका अनुकरण करनेवाली पार्वतीजी अपने खेलवाड़से संसारकी रक्षा करें ॥ ३९ ॥ विवाहसे पहले शिवजीके विषयमें जब बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ ऐसी चर्चा करने लगती थीं कि 'उसके चरणोंमें देवता भी प्रणाम करते हैं, वे ही एक सर्वज्ञ हैं, उन्हें सब मुनि 'मृत्युञ्जय' (मृत्युको जीतने वाला) कहते हैं और अबतक वे तपस्या ही कर रहे हैं', उसे सुनकर उनके सामने बैठी हुई पार्वतीजीका कान खुजलाने या अँगड़ाई-जँभाई लेने आदिकी चेष्टाएँ आपकी रक्षा करें ॥ ४० ॥ जो सरस्वती बनकर वाणीके रूपमें तीनों लोकोंके सज्जनता-रूपी घरके आँगनमें नाचती रहती हैं (सज्जनोंके मुँहमें बसती हैं) तथा अपने कन्धोंपर रक्खी हुई वीणाके अत्यन्त मीठे स्वरोंके आनन्दमें मस्त हैं, जिनका मुँह सन्तोषसे खिला रहता है, जिनके उजले मणि चमक रहे हैं, जो सोनेके कर्णफूल पहने हैं तथा जिनका मुँह मीठी मुस्कानसे सजा हुआ है, ऐसी कल्याणकारी सौभाग्यके समान पार्वतीजी सारे संसारको आनन्द दें ॥४१॥ चण्ड-मुण्ड आदि अनेक दानवोंका विनाश करनेमें जो चतुर हैं और जिन्हें दूसरे जान नहीं पा सकते हैं, जो एकाएक इस विचित्र संसारको रच डालती हैं और न जाने किस खेलमें ही उसे नष्ट कर डालती हैं वे शिवजीकी सब-कुछ श्रीपार्वतीजी रक्षा करें ॥४२॥ 'हे शिव ! तुम परशुराम (अपने शिष्य) से धरती (खेत), कुबेर (अपने मित्र) से धन, बलभद्रसे हल और यमराजसे भैंसा माँग लो, एक बैल तुम्हारे पास है ही, तुम्हारा त्रिशूल ही बने-बनाए फालका काम देगा, मैं तुम्हें अन्न दे सकती हूँ और यह कार्त्तिकेय बैलोंकी देख-भाल कर ही लेगा, अब तुम खेती करो क्योंकि भीखसे तो मैं ऊब चुकी हूँ ।' शिवजीसे पार्वतीजीका यह कथन आपकी रक्षा करे ॥ ४३ ॥ लक्ष्मी जिनके चरणोंकी पूजा करती हैं वे सुन्दर रूपवाली, राक्षसोंसे (देवोंपर) आनेवाली विपत्ति नष्ट करनेवाली, बढ़ी हुई पीड़ाको हरनेवाली

सा सामवत्वखिलसामाद्दतस्तुतिरसामान्यमुक्तिसुखदा ॥ ४४ ॥ लग्नः केलिकचग्रहश्लथजटालम्बेन निद्रान्तरे मुद्राङ्कः शितिकन्धरेन्दुशकलेनान्तःकपोलस्थलम् । पार्वत्या नखलक्ष्मशङ्कितसखीनर्मस्मितव्रीडया प्रोन्मृष्टः करपल्लवेन कुटिलाताम्रच्छविः पातु वः ॥४५॥ वक्त्रं शीतकरोऽधरो घनरसः कामप्रदो विग्रहः श्वासो गन्धवहः सरोरुहसुहृत्पाणिः स्मिताभा शुचिः । वक्षः पीनपयोधराधिकरणं पृथ्वी नितम्बस्थलीत्यष्टौ धूर्जटिमूर्त्तयः स्मरभयाद्दुर्गाश्रिताः पान्तु वः ॥ ४६ ॥ वक्षःपीठे निरीक्ष्य स्फटिकमणिशिलामण्डलस्वच्छभासि स्वां छायां साभ्यसूयां त्वमियमिति मुहुः सत्यमाश्वासितापि । वामे मे दक्षिणेऽस्याः श्रवसि कुवलयन्नाहमित्यालपन्ती दत्ताश्लेषा सहासं मदनविजयिना पार्वती वः पुनातु ॥ ४७ ॥ वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकवरीभारतिमिरत्विषां वृन्दैर्वन्दीकृतमिव नवीनार्ककिरणम् । तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरीपरीवाहस्रोतःसरणिरिव सीमन्तसरणिः ॥४८॥ विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुवेरे । वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्नं निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ॥ ४९ ॥ विरिञ्चिनारायणवन्दनीयो मानं विनेतुं गिरिशोऽपि यस्याः । कृपाकटाक्षेण निरीक्षणानि व्यपेक्षते साऽवतु वो भवानी ॥ ५० ॥ वेणीबन्धकपर्दिनी सिततनुः श्रीखण्डपांसूत्करैः केतक्येकदलेन्दुभृद्विसलताव्यालोपवीतिन्यपि । प्राक्पाणिग्रहणाद्विनोदरभसा सख्याः पुरो लीलया कुर्वाणानुकृतिं

(कामकी पीड़ा नष्ट करनेवाली), भक्तोंकी इच्छाएँ पूर्ण करनेवाली (पूर्णकाम रहनेवाली), राक्षसोंका नाश करनेके लिये क्रोध करनेवाली, जपाकुसुमके रङ्गके समान कान्तिवाली और श्रेष्ठ आचरणवाली वे शिवजीकी पत्नी सदा ही मेरी रक्षा करें जिनकी आज्ञाके वशमें कामदेव आदि सब देवोंकी स्त्रियाँ रहती हैं, सामवेदके श्रेष्ठ मन्त्र जिनकी स्तुति करते रहते हैं तथा जो अत्यन्त श्रेष्ठ मुक्ति देनेवाली हैं ॥ ४४ ॥ कामक्रीडाके समय पार्वतीजीने शिवजीकी ढीली जटाओंको खींचा तो उसके साथ टेढ़े चन्द्रमाके लटकने और सोती हुई पार्वतीजीके गालोंके नीचे दब जानेसे उनके गालोंपर जो चिह्न पड़ गया, जिसे देखकर सखियाँ पतिका नखचिह्न समझकर मुस्कराने लगीं और पार्वतीजीने जिसे लजाकर अपने हाथोंसे पोंछ डाला उस टेढ़े चिह्नकी लाल कान्ति आपकी रक्षा करे ॥ ४५ ॥ कामदेवके डरसे शिवजीके पाससे भागकर पार्वतीजीके देहरूपी दुर्गमें बैठी शिवजीकी वे आठ मूर्तियाँ आपका कल्याण करें जिनमेंसे चन्द्रमाने पार्वतीजीके मुँहमें, श्रेष्ठ जलने उनके नीचेके ओठमें, यजमानने शरीरमें, पवनने साँसमें, सूर्यने हाथोंमें, अग्निने मन्द मुस्कानमें, बड़े-बड़े पयोधरों (बादलों) ने हृदयमें और पृथ्वीने नितम्बोंमें छिपकर मानो अपने प्राण बचाए ॥ ४६ ॥ श्रीशिवजीकी स्फटिक मणिके समान उजली छातीकी चमकमें पार्वतीजीने अपनी परछाईं देखी तो वे सौतिया-डाहसे भर गईं। शिवजीने बहुत समझाया कि 'यह तुम्हारी ही परछाईं है, दूसरी कोई नहीं' पर पार्वतीजीको विश्वास नहीं हुआ और वे कहने लगीं कि 'यह अवश्य ही कोई दूसरी स्त्री है। देखो न, मेरे तो बाएँ कानमें कुमुदिनीका फूल है और इसके दाहिने कानमें, अतः यह मेरी परछाईं नहीं है।' इस प्रकार कहती हुई जिन पार्वतीजीका कामदेवको जीनेवाले शिवजीने हँसते हुए आलिङ्गन किया वे आपको पवित्र करें ॥ ४७ ॥ हे पार्वतीजी! आपके घने बालोंके बीचमें चमकती हुई लाल रङ्गवाली वह माँगके सिन्दूरकी रेखा हमारा कल्याण करे जो उदय होते हुए सूर्यकी ऐसी किरणके समान जान पड़ती है जिसे मानो अँधेरेकी काली रेखाओंने बन्दी बना रक्खा हो या जो आपके मुँहकी सुन्दरतारूपी नदीके उछलते हुए जलकी सीधी बहती हुई धारा हो ॥ ४८ ॥ जिससे डरकर रुद्र-गण भाग गए, सूर्य निस्तेज हो गए, इन्द्रका वज्र टूट गया, चन्द्रमा शङ्कामें पड़ गए, पवनका बहना रुक गया, कुबेरने शस्त्र डाल दिए और विष्णुका चक्र कुण्ठित हो गया, उस बड़े-बड़े बलवानोंको मारनेवाले तथा देवताओंके भी छक्के छुड़ानेवाले अत्यन्त क्रोधी महिषासुरको सहज ही मारनेवाली, अपार शक्तिवाली, शिवजीकी पत्नी आपके पापोंका नाश करें ॥ ४९ ॥ जिन शिवजीको ब्रह्मा और विष्णुतक प्रणाम करते हैं वे भी जिनके रूठ जानेपर उन्हें मनाते समय उनकी दयाभरी तिरछी चितवन पानेके लिये लालायित रहते हैं वे पार्वतीजी आपकी रक्षा करें ॥५०॥ वे पार्वतीजी आपको ऐश्वर्य दें जिन्होंने विवाह होनेसे पहले सखियोंके साथ खेलते समय अपनी चोटीको जटाके समान लपेटकर, उजली भस्मके स्थानपर देहमें चन्दनका चूर्ण लपेटकर, टेढ़े चन्द्रमाके स्थानपर केतकीके फूलकी पँखुड़ी लगाकर तथा साँपोंके जनेऊके स्थानपर कमलनाल धारण करके अपना रूप शिवजीके समान बनाया था ॥ ५१ ॥ अपने प्रिय

हरस्य दिशतु श्रेयांसि वः पार्वती ॥ ५१ ॥ व्यानम्राः दयितानने मुकुलिता शार्दूलचर्माम्बरे सोत्कम्पा भुजगे निमेषरहिता चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि। मीलद्भ्रूः सुरसिन्धुदर्शनविधौ म्लाना कपालोदरे पार्वत्या नवसङ्गमप्रणयिनी दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥ ५२ ॥ शम्पाकस्य रजः प्रमृज्य चरणे दत्तो मया यावको निर्मृज्य स्तनकुड्मले च भसितं पत्राङ्कुरो निर्मितः। स्वच्छन्दं विहरेति जल्पितगिरं साकूतमालीजनं दृष्ट्वा केवलमाघ्नती कुटिलया दाक्षायणी पातु वः ॥५३॥ शिरसि धृतसुपरागे स्मरारावरुणमुखेन्दुरुचिर्गिरीन्द्रपुत्री। अथ चरणयुगानते स्वकान्ते स्मितसरसा भवतेऽस्तु भूतिहेतुः ॥ ५४ ॥ श्रुत्वा षडाननजनुर्मुदितान्तरेण पञ्चाननेन सहसा चतुराननाय। शार्दूलचर्म भुजगाभरणं सभस्म दत्तं निशम्य गिरिजाहसितं पुनातु ॥ ५५ ॥ सत्त्वादिस्थैरगणितगुणैर्हन्त विश्वं प्रसूय व्यक्तं धत्ते प्रहसनकरीं या कुमारीति संज्ञाम्। मोहध्वान्तप्रसरविरतिर्विश्वमूर्तिः समन्तादाद्या शक्तिः स्फुरतु मम सा दीपवद्देहगेहे ॥ ५६ ॥ सन्ध्यारागवती स्वभावकुटिला गङ्गा द्विजिह्वः फणी वक्राङ्गैर्मलिनः शशी कपिमुखो नन्दी च मूर्खो वृषः। इत्थं दुर्जनसङ्कटे पतिगृहे वस्तव्यमेतत्कथं गौरीत्थं नृकपालपाणिकमला चिन्तान्विता पातु वः ॥ ५७ ॥ सव्रीडा दयितानने सकरुणा मातङ्गचर्माम्बरे सत्रासा भुजगे सविस्मयरसा चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि। सेर्ष्या जह्नुसुतावलोकनविधौ दीना कपालोदरे पार्वत्या नवसङ्गमप्रणयिनी दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥५८॥ सिंहारूढैकपादा दशभुजविलसच्चापचर्मासिचक्रप्रोद्यत्पाशाङ्कुशालीदरवरविलसत्तर्जनीबाणरस्या। घ्नन्ती शूलेन वक्षस्यसुरमहिहरिग्रस्तहस्तन्तु काञ्चीपीतक्षौमार्धचन्द्रा त्रिनयनललिता सा भवान्यस्तु सिद्ध्यै ॥ ५९ ॥ स्वेदस्ते कथमीदृशः प्रियतमे त्वन्नेत्रवह्नेर्विभो कस्माद्-

---

(शिवजी) का मुँह देखकर नीचेको झुक जानेवाली, बाघम्बर देखकर कुछ मुँद जानेवाली, नागको देखकर काँप उठनेवाली, अमृत चुआनेवाले चन्द्रमाको एकटक देखनेवाली, गङ्गाको देखते ही बन्द हो जानेवाली, मुण्डमाला देखकर मलिन हो जानेवाली, तथा शिवजीके नये समागममें प्रेम रखनेवाली पार्वतीजीकी दृष्टि आपका कल्याण करे ॥ ५२ ॥ 'मैंने अमलतासकी पुष्प-रज पोंछकर पैरोंमें महावर लगा दिया तथा स्तनमें लगी हुई भस्म अलग करके वहाँ चित्रकारी रच दी, अब तुम स्वच्छन्द होकर विहार करो अर्थात् अब कोई न जान पायगा कि तुमने शिवजीसे रमण किया है' ऐसा कहनेवाली सखीको तिरछी दृष्टिसे क्रोधपूर्वक देखनेवाली भगवती आपकी रक्षा करें ॥ ५३ ॥ चन्द्रमाकी कान्तिके समान कान्तियुक्त मुँहवाली वे हिमालयकी पुत्री पार्वतीजी आपका कल्याण करें जो कामदेवको नाश करनेवाले और गङ्गाको सिरपर धारण करनेवाले पति शिवजीको अपने पैरों पड़ते देखकर प्रसन्न होकर मुस्कराने लगी थीं ॥ ५४ ॥ 'कार्तिकेयका जन्म सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर पाँच मुँहवाले शिवजीने चार मुँहवाले ब्रह्माको अपनी बाघकी खाल, साँपोंके गहने और भस्म दे डाला' यह सुनकर हँसनेवाली पार्वतीजी सबका कल्याण करें ॥ ५५ ॥ सत्, रज, तम आदिमें स्थित अनगिनत गुणोंसे इतने बड़े संसारको उत्पन्न करके भी अपना हँसने योग्य 'कुमारी' नाम रखनेवाली, मोहरूपी वने अँधेरेके फैलावको रोकनेवाली, इतने बड़े संसारके रूपवाली, सबसे बड़ी और प्रथम शक्ति (स्वामिनी) मेरे हृदयमें दीपककी भाँति चमकती रहें ॥५६॥ 'जहाँ लाल रङ्गवाली सन्ध्या, जन्मसे टेढ़ी (दुष्ट स्वभाववाली) गङ्गा, दो जीभवाला (चुगलखोर) साँप, टेढ़े अङ्गोंवाला मलिन और कान्तिहीन (कुरूप) बन्दर जैसे मुँहवाला नन्दी और मूर्ख बैल आदि एक साथ रहते हों, ऐसे दुष्टोंसे भरे पतिके घरमें कैसे रहा जाय!' इस प्रकार अपने हाथमें खोपड़ी लेकर सोचमें पड़ी हुई पार्वतीजी आपकी रक्षा करें ॥ ५७ ॥ शिवजीसे पहले-पहल मिलनके लिये उत्सुक पार्वतीजीकी वह दृष्टि आपका कल्याण करे जो शिवजीका मुँह देखकर लज्जित हो उठती है, हाथीकी खाल देखकर दयासे भर जाती है, साँप देखते ही डर जाती है, अमृत टपकाते हुए चन्द्रमाको देखकर अचरजसे भर जाती है, गङ्गाको देखकर डाहसे भर उठती है और खोपड़ियोंके भीतर झाँककर घृणासे भर उठती है ॥५८॥ सिंहकी पीठपर एक पैरसे खड़ी हुई, अपने दसों हाथोंमें धनुष, ढाल, तलवार, चक्र, चमकते हुए पाश, अङ्कुश आदि धारण की हुई, अपनी तर्जनी उँगलीसे बाण खींचती हुई, उस राक्षसकी छातीमें त्रिशूल घुसेड़नेवाली जिसका एक हाथ पाशसे बँधा है तथा एक हाथ सिंहने दबोच लिया है, करधनी, पीले रेशमी वस्त्र और आधे चन्द्रमाको धारण करनेवाली तथा तीन नेत्रोंसे अत्यन्त सुन्दर दिखाई देनेवाली भवानी सबको सिद्धि दें ॥ ५९ ॥ शिवजीने पार्वतीजीसे पूछा—प्रियतमे ! तुम्हें पसीना क्यों छूट रहा है? पार्वतीजी—स्वामी ! आपके

पितमेतदिन्दुवदने भोगीन्द्रभीतेस्तव। रोमाञ्चः कथमेष देवि भगवन्गङ्गाम्भसां सीकरैरित्थं भर्त्तरि भावगोपनपरा गौरी चिरं पातु वः ॥ ६० ॥ स्वेदस्यन्दितसान्द्रचन्दनचयं दोर्वल्लिबन्धश्रमादूर्ध्वश्वासपरिस्खलत्स्मरकथं सन्दष्टदन्तच्छदम्। सीत्काराञ्चितलोचनं सपुलकं भ्रान्तभ्रु नृत्यत्करं पार्वत्यां सुरतं मुदे रसवतामास्तां मृडानीपतेः ॥६१॥ हे गङ्गाधरपत्नि चक्रिगृहिणि कुत्रास्त्यसौ नर्त्तको वृन्दारण्यभुवि क्व सर्पकुतुकी स्यात्कालियस्य ह्रदे। भिक्षुः कुत्र गतोऽस्ति यज्ञसदने क्वासौ विषादी बकीक्रोडे स्यादिति पद्मजागिरिजयोर्वाग्भङ्ग्यः पान्तु वः ॥६२॥ हे हेरम्ब किमम्ब रोदिषि कथं कर्णौ लुठत्यग्निभूः किन्ते स्कन्द विचेष्टितं मम पुरा संख्या कृता चक्षुषाम्। नैतत्तेऽप्युचितं गजास्य चरितं नासां मिमीतेऽम्ब मे तावेवं सहसा विलोक्य हसितव्यग्रा शिवा पातु वः ॥ ६३ ॥

चण्डिकाभृङ्गिरिटी—देवी सूनुमसूत नृत्यत गणाः किं तिष्ठतेत्युद्भुजे हर्षाद्भृङ्गिरिटाववाञ्छितगिरा चामुण्डयालिङ्गिते। अव्याद्वो हतदेवदुन्दुभिघनध्वानातिरिक्तस्तयोरन्योन्यप्रचलास्थिपञ्जरजरत्कङ्कालजन्मा रवः ॥ ५५ ॥

अर्धनारीश्वरः—अच्छिन्नमेखलमलब्धदृढोपगूढमप्राप्तचुम्बनमवीक्षितवक्त्रकान्तिः। कान्ताविमिश्रवपुषः कृतविप्रलम्भसम्भोगसख्यमिव पातु वपुः पुरारेः ॥१॥ अर्धाङ्गनापुंवपुषः पुरारेर्मूर्त्तिः श्रियं नौरिव वस्तनोतु। प्रेमादिभारादपरं यमर्धं ममज्ज शृङ्गाररसाम्बुराशौ ॥२॥ आश्लेषाधरबिम्बचुम्बनसुखालापस्मितान्यासतां दूरे

नेत्रकी अग्निके तापसे पसीना छूट रहा है। शिवजी—तुम्हारा चन्द्रमुख काँप क्यों रहा है? पार्वतीजी—आपके शेषनागके डरसे काँप रहा है। शिवजी—देवि! तुम्हें रोमाञ्च क्यों हो रहा है? पार्वतीजी—भगवन्! आपकी गङ्गाकी फुहारोंसे रोमाञ्च हो रहा है। ऐसा कहकर अपना काम-भाव छिपानेवाली पार्वतीजी सदा आपकी रक्षा करें ॥ ६० ॥ पुलकित होकर हाथ और भौंह नचा-नचाकर शिव और पार्वतीजीकी वह रतिक्रीड़ा रसिकोंको आनन्द दे जिसमें पार्वतीजीके स्तनोंपर लगा हुआ चन्दनका लेप पसीनेसे भीग गया एक दूसरेको कसकर आलिङ्गन करनेके कारण बाँहोंके थक जानेसे साँसें फूलने लगीं और रतिका वेग कम हो गया, शिवजीने पार्वतीजीका ओठ काट लिया और पार्वतीजी सी-सी करके आँखें मींचकर पुलकित हो गईं ॥ ६१ ॥ लक्ष्मीजीने पार्वतीजीसे कहा—हे गङ्गाधरकी पत्नी! लक्ष्मीजी बोलीं—क्या है चक्रधारीकी गृहिणी! लक्ष्मीजी—वे नाचनेवाले (ताण्डव करनेवाले) कहाँ है? पार्वतीजी—वृन्दावनमें ही होंगे। लक्ष्मीजी—साँपोंसे खेलवाड़ करनेवाले कहाँ हैं? पार्वतीजी—वे तो कालिय कुण्डमें होंगे। लक्ष्मीजी—भीख माँगनेवाले कहाँ गए? पार्वतीजी—वे बलिकी यज्ञशालामें होंगे। लक्ष्मीजी—विष खानेवाले कहाँ हैं? पार्वतीजी—वे तो सर्प (शेषनाग) की गोदमें होंगे। लक्ष्मी और पार्वतीजीकी यह व्यंग्यभरी बातचीत आपकी रक्षा करे ॥ ६२ ॥ पार्वतीजीने कहा—अरे गणेश! गणेशने कहा—क्या है माताजी? पार्वतीजी—रोते क्यों हो? गणेशजी—ये (स्कन्द) मेरे कान ऐंठते हैं। पार्वतीजी—क्यों रे स्कन्द! तेरा इसने क्या बिगाड़ा है? स्कन्द—यह मेरी आँखें गिनता था। पार्वतीजी—गणेश! तुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था! गणेशजी—माँ! ये मेरी नाक मसल रहे थे। इन दोनोंको इस प्रकार देखकर हँसनेवाली पार्वतीजी आपकी रक्षा करें ॥ ६३ ॥

चण्डिकाके द्वारपाल: जब अत्यन्त प्रसन्न होकर चामुण्डाका आलिङ्गन करके पार्वतीजीके द्वारपालने हाथ उठाकर कहा कि 'देवी (पार्वती) ने पुत्रको जन्म दिया है, हे गण! तुम नाचो। बैठे क्यों हो?' उस समय उन दोनोंके हड्डियोंके ढाँचोंकी रगड़से उत्पन्न उस भीषण खड़खड़ाहटकी जय हो जिसके सामने देवताओंके पीटे हुए नगाड़ोंकी ध्वनि भी मन्द पड़ गई ॥ १ ॥

अर्धनारीश्वर: बाएँ भागमें स्त्रीको धारण करनेवाले तथा त्रिपुरासुरके शत्रु (शिवजी) का वह अर्धनारीश्वर शरीर आपकी रक्षा करे जिसकी करधनी एक होते हुए भी न तो उसके दोनों रूप कसकर एक दूसरेका आलिङ्गन कर पाते, न चुम्बन कर पाते और न मुँहकी सुन्दरता ही देख पाते। इस प्रकार जो मानो एक दूसरेके विरोधी विप्रलम्भ और सम्भोग शृङ्गारमें मित्रता स्थापित कर रहा है॥१॥ आधे स्त्री और आधे पुरुष शरीरवाले शिवजीका वह नावके समान जान पड़नेवाला रूप आपको ऐश्वर्य दे जिसने मानो प्रेमका भार न सँभाल सकनेके कारण अपने दूसरे आधे भागको शृङ्गार-रसरूपी समुद्रमें डुबो दिया ॥ २ ॥ 'यह कैसा प्रेमका ढोंग है कि आलिङ्गन, अधर-चुम्बन, प्रेमालाप या हँसना तो दूर रहा, एक दूसरेका मुँह भी हम नहीं देख पाते, व्यर्थ ही हम दोनोंका शरीर एक हो गया'

तावदिदं मिथो न सुलभं जातं मुखालोकनम् । इत्थं व्यर्थकृतैकदेहघटनोपन्यासयोरावयोः केयं प्रेमविडम्बनेत्यवतु वः स्मेरोऽर्धनारीश्वरः ॥३॥ एकः स्तनस्तुङ्गतरः परस्य वार्त्तामिव प्रष्टुमगान्मुखाग्रम् । यस्याः प्रियार्धस्थितिमुद्वहन्त्याः सा पातु वः पर्वतराजपुत्री ॥ ४ ॥ गिरितनयैकपयोधरनिहितकरः पातु वश्चिरं गिरिशः । विश्वासयितुं मनसिजमिव स्पृशन् काञ्चनं लिङ्गम् ॥ ५ ॥ तद्वः पुनातु शिवयोरर्धनारीश्वरं वपुः । भवेदिव यदद्य श्वः शिवः एव शिवैव वा ॥ ६ ॥ देहार्द्धङ्करु पार्वति स्थिरपदं हस्ते धनुर्धारय स्वेदार्द्रं यदि मृज्यतां करतलं भस्माङ्गरागेण मे । एवं जल्पत एव बाणशिखिनि प्रोद्धीय शिञ्जाफणिश्वासैः प्रज्ज्वलिते पुरेषु जयति स्मेरं पुरारेर्मुखम् ॥ ७ ॥ मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय । दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ८ ॥ यस्योपवीतगुण एव फणावृतैकवक्षोरुहः कुचपटीयति वामभागे। तस्मै ममास्तु तमसामवसानसीम्ने चन्द्रार्धमौलिशिरसे महसे नमस्या ॥९॥ सम्भोगानतिरिच्यमानविभवो यद्विप्रलम्भो रसस्तद्दिव्यं मिथुनं परस्परपरिस्यूतं नमस्कुर्महे । एकस्याः प्रतिबिम्बसम्भूतविपर्यासे मुहुर्दर्पणे सव्याङ्गस्थितिकौतुकं शमयति स्वामी स यत्रापरः॥१०॥ स्वच्छन्दैकस्तनश्रीरुभयदलमिलन्मौलिचन्द्रः फणीन्द्रप्राचीनावीतवाही सुखयतु भगवानर्धनारीश्वरो वः।यस्यार्धे विश्वदाहव्यसनविसृमरज्ज्योतिरर्धे कृपोद्यद्बाष्पं चान्योन्यवेगप्रहतिसिमसिमाकारि चक्षुस्तृतीयं ॥ ११ ॥ स्वेदार्द्रवामकुचमण्डलपत्रभङ्गसंशोषिदक्षिणकराङ्गुलिभस्मरेणुः । स्त्रीपुंनपुंसकपदव्यतिलङ्घिनी वः शम्भोस्तनुः सुखयतु प्रकृतिश्चतुर्थी ॥ १२ ॥

गङ्गा—इयं चिद्रूपापि प्रकटजडरूपा भगवती यदी-

इस प्रकार बातें करके मुस्करानेवाले, स्त्री और पुरुष दोनोंके इकट्ठे रूपवाले भगवान् शिव आपकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ अपने प्यारे शिवजीकी आधी देह ढोनेवाली वे (लेटी हुई) पर्वतराज हिमालयकी पुत्री आपकी रक्षा करें जिनका एक ऊँचा बायाँ स्तन झुककर मानो दूसरे दाहिने (छोटे) स्तनका कुशल-समाचार पूछ रहा हो ॥ ४ ॥ आधे शरीरमें स्थित पार्वतीके एक अकेले स्तनपर हाथ रक्खे हुए वे गिरीश (शिवजी) आपकी सदा रक्षा करें जो मानो कामदेवको विश्वास दिलानेके लिये स्वर्णमय लिङ्गको छूकर शपथ ले रहे हों ॥ ५ ॥ पार्वती और शिवका वह अर्धनारीश्वर शरीर आपको पवित्र करे जो मानो आजकलमें या तो शिव ही हो जायगा या पार्वती ही हो जायगा ॥ ६ ॥ 'हे पार्वती ! अपने आधे शरीरको स्थिर करके हाथमें धनुष ले लो, यदि हाथ पसीजता हो तो मेरी देहमें लगानेवाली भस्मसे हाथ मल लो।' ऐसा शिवजी कह ही रहे थे कि भूषण बने हुए साँपोंकी फुफकारसे प्रज्वलित होकर तीसरे नेत्रकी अग्निने पुर राक्षसको भस्म ही तो कर दिया। यह देखकर मुस्करा उठनेवाले शिवजीके मुखकी जय हो ॥ ७ ॥ उन पार्वती और शिवजीको प्रणाम है जिनमेंसे एकके सिरके बाल मन्दार-पुष्पोंकी मालासे सजे हैं और दूसरेके सिरमें खोपड़ियोंकी माला शोभित है तथा एक तो अति सुन्दर वस्त्रोंसे विभूषित हैं और दूसरे दिगम्बर अर्थात् नङ्गे हैं ॥ ८ ॥ जिनके एक अकेले बाएँ स्तनपर यज्ञोपवीतके समान पड़े हुए सर्पका फण ही चोली के समान है ऐसे उन अर्धनारीश्वर रूपवाले अत्यन्त तेजस्वी शिवजीको मेरा प्रणाम है जो अँधेरा दूर करनेवाला चन्द्रमा सिरपर धारण किए हुए हैं ॥९॥ सम्भोग शृङ्गारके रसको भी निन्दित कर देनेवाले उस विप्रलम्भ और सम्भोग शृङ्गारके मिले हुए अनोखे जोड़े (शिव और पार्वतीके मिले हुए रूप) को हम प्रणाम करते हैं जिसे दर्पणमें देखकर पार्वतीजीको दाहिनी ओर देखते ही शिवजीने दर्पण हटा दिया ॥ १० ॥ अपने एक ही स्तनकी शोभासे सुन्दर दिखाई देनेवाले वे अर्धनारीश्वर शिवजी आपको सुख दें जिनके सिरके दोनों भागोंपर चन्द्रमा सजा हुआ है, जो पुराने साँपका जनेऊ धारण किए हैं जिनका तीसरा नेत्र आधे भागकी ज्योतिसे सारे संसारको जला डालनेके लिये निकली पड़ने और आधे भागकी दयासे भरनेके दोनों भाव एक साथ उत्पन्न होनेसे चिपचिपाने लगी है ॥ ११ ॥ बाएँ भागमें धारण की हुई पार्वतीके स्तनपर लगे लेपको नष्ट करनेवाला पसीना सुखानेके लिये एक चुटकीमें भस्म लिए हुए शिवजीका वह शरीर आपको ऐश्वर्य दे जो मानो पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्गको भी पार करके कोई चौथी प्रकृतिवाला बन रहा हो ॥ १२ ॥

गङ्गा : वे चेतन रूपवाली भगवती गङ्गाजी सदा ही सारे संसारको नाशसे बचावें जो संसारमें जड़ रूपसे प्रकट हैं, जिनकी एक ही बूँद जीवको शिव बना देती है और जो सदा ही संसार-

याम्भोविन्दुर्वितरति च शम्भोरपि पदम् । पुनाना धुन्वाना निखिलमपि नानाविधमघं जगत्कृत्स्नं पाया-दनुदिनमपायात्सुरधुनी ॥१॥ एषा धर्मपताकिनी तट-सुधासेवावसन्नाकिनी शुष्यत्पातकिनी भगीरथतपः-साफल्यहेवाकिनी। प्रेमारूढपिनाकिनी गिरिसुतास्या-केकराक्षोकिनी पापाडम्बरडाकिनी त्रिभुवनानन्दाय मन्दाकिनी ॥ २ ॥ गौरीविभज्यमानार्धसङ्कीर्णे हर-मूर्धनि । अम्ब द्विगुणगम्भीरे भागीरथि नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥ चूडाशीतकरस्तनन्धयसुधानीरन्ध्रगन्धस्पृशः क्रीडाकङ्कणपन्नगेश्वरफणापीतावशिष्टा मुहुः। अङ्का-सीनगिरीन्द्रजास्तनतटीहारावलीलोलनाः सन्तापं शमयन्तु वो हरजटागङ्गातरङ्गानिलाः ॥४॥ जङ्घालस्फू-र्जदूर्जस्वलकरिमकरप्रौढसम्मर्दखेलत्कल्लोलोत्फुल्लविन्दु-स्तवकतिलकितव्योमकुक्षिम्भरीणि। वारीणि स्वर्गसि-न्धोस्त्रिपुरहरजटाजूटरथ्याध्वनीनान्युच्चैरुच्चण्डजा-ग्रत्कलिकलुषमषीशोषमुत्पोषयन्तु ॥ ५ ॥ तावत्कर्णा-ध्वयाता जनघनकलुषाधूनने गन्धवाहा दृष्टाः किं हव्य-वाहाः सकृदघदहने स्वर्गतौ पुण्यवाहाः । स्पृष्टाः संसारहाहारवकटुकमहाम्भोधिमग्ने वराहाः पीताः पीयूषधाराधिकतरमधुराः पान्तु गोदोदवाहाः ॥ ६ ॥ दृष्टाः सङ्कष्टदाहाः श्रवणपथगताः पुण्यपुञ्जावगाहाः स्पृष्टाः संसारपाथोनिधिपतितधरोद्धारधुर्या वराहाः। पीतास्तापोपशान्तिप्रजननपटवस्ते सुधावारिवाहाः कल्याणं कल्पयन्तां कलिकलुषहरा विष्णुपद्याः प्रवाहाः ॥७॥ पर्वतभेदि पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमत-ङ्गहनम्। हरिमिव हरिमिव हरिमिव सुरसरिदम्भः पतन्नमत ॥ ८ ॥ मुक्ताभा नृकपालशुक्तिषु जटावल्लीषु मल्लीनिभा वह्नौ लाजनिभा दृशोर्मणिनिभा भोगोत्करे भोगिना। नृत्यावर्तविवर्तनेरितपयःसम्मूर्च्छनोच्छा-लिताः खेलन्तो हरमूर्ध्नि पान्तु भवतो गङ्गापयो-

---

भरके सब पापोंका नाश करती रहती हैं ॥१॥ धर्मकी ध्वजा-सी जान पड़नेवाली तथा उत्सुकतापूर्वक भगीरथकी तपस्या सफल करनेवाली पार्वतीजीके मुखकी ओर तिरछी दृष्टिसे देखनेवाली और पापोंके समूहका नाश करने तथा सुखा डालनेवाली वे गङ्गाजी तीनों लोगोंको आनन्द दें जिनके तीरपर सब देवता अमृत पीनेके लिये बैठे हैं तथा जिन्हें शिवजी इतना चाहते हैं कि सिरपर बैठा रक्खा है ॥ २ ॥ पार्वतीजी-द्वारा आधे बटाए हुए शिवजीके मस्तककी सन्धिमें रहनेसे दुगुनी गहरी हे माँ गङ्गे ! आपको प्रणाम है ॥ ३ ॥ शिवजीकी जटामें बहती गङ्गाकी लहरोंका वह पवन आपके दुःख दूर करे जो शिवजीके मस्तकपर बैठे बच्चेके समान चन्द्रमाके अमृतकी घनी गन्धसे भरा है, जो खेलवाड़में कङ्कन बने हुए साँपके फणोंसे बार-बार पिए जानेपर भी बचा हुआ हैं और जो शिवजीकी गोदमें बैठी पार्वतीजीके स्तनोंपर लटके हारको हिलाता रहता है ॥४॥ त्रिपुरासुरके शत्रु शिवजीकी जटाओंके मार्गोंसे होकर अत्यन्त वेगसे बहता हुआ, आकाशकी कोख भरता हुआ वह गङ्गाजीका जल कलियुगकी प्रचण्ड पाप-रूपी कालिमाको सुखाता हुआ संसारका पोषण करे जिसमें बड़े-बड़े घड़ियाल आदि उछल रहे हैं, बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही हैं, बड़ी-बड़ी बूँदें उड़ रही हैं तथा जो ऐसा जान पड़ता है मानो आकाशका तिलक हो ॥ ५ ॥ गङ्गाका वह जल आप लोगोंकी रक्षा करे जिसका नाम सुनना ही मनुष्योंके बड़े-बड़े पापोंको उड़ा देनेके लिये पवनके समान है, जिसका दर्शन तुरत ही पापोंको जलानेके लिये अग्निके समान है, जो स्वर्ग जाते समय साथ-साथ पुण्य ढोता चलता है, जो छू लेनेपर संसारके कठोर 'हा ! हा !!' शब्द-रूपी बड़े भारी समुद्रमें डूबे हुए प्राणियोंको बचानेके लिये वराह भगवान्‌के समान है और जो पीनेमें अमृतकी धारसे भी अधिक मीठा है ॥६॥ दर्शन करनेसे कष्टोंका नाश करनेवाला, अपनी चर्चा सुननेपर पुण्योंके ढेरसे नहला देनेवाला, स्पर्श-मात्रसे संसार-रूपी समुद्रमें डूबनेवालोंको बचानेके लिये वराह भगवान्‌के समान, पी लेनेसे तुरन्त दुःख मिटानेवाला, अमृतकी धाराके समान जान पड़नेवाला, कलियुगके पाप नष्ट करनेवाला और विष्णुके चरणोंसे बहता हुआ गङ्गाजल सबका कल्याण करे ॥७॥ इस गिरते हुए अत्यन्त श्रेष्ठ और गहरे गङ्गाजलको प्रणाम करो जो पर्वतको तोड़-फोड़कर बहनेके कारण पर्वतोंके पङ्ख काटनेवाले इन्द्रके समान है, पवित्र होनेसे विष्णुके समान है और नरकको नष्ट करनेवाला होनेसे नरकासुरको मारनेवाले कृष्णके समान है ॥८॥ शिवजीके गलेमें पड़ी खोपड़ियों-रूपी सीपीमें पड़कर मोतीके समान, जटाकी चोटीमें पड़कर उनमें गुँथे मल्लिकाके फूलोंके समान, शिवजीके तीसरे नेत्रकी अग्निमें पड़कर धानकी खीलोंके समान, साँपोंके फैले हुए फणोंमें पड़कर मणिके समान जान पड़नेवाली तथा भँवरोंके पड़नेसे घूमते हुए तथा रुककर उछलते हुए जलसे उत्पन्न होकर शिवजीके माथेपर खेलनेवाली गङ्गाजीकी बूँदें आपका कल्याण करें ॥ ९ ॥ जिसके 'भागीरथी' नामका पहला अक्षर 'भा' भानु (सूर्य) के नाममें शोभा पाता है, दूसरा अक्षर 'गी' (वाणी) सदा श्रेष्ठ कवियोंके मुँहमें नाचता रहता

विन्दवः ॥ ९ ॥ यन्नाम्नः प्रथमाक्षरं विजयते भानौ द्वितीयाक्षरं नित्यं नृत्यति सत्कवीन्द्रवदने भूत्वान्तवर्णद्वयम् । रामो रावणमाजघान समरे शम्भोः शिरःशालिनी सा सर्वाक्षरमालिनी भवतु मे भाग्याय भागीरथी ॥ १० ॥ वाते वाति यदङ्गसङ्गमवशाच्छ्रीशम्भुरूपप्रदे गौरी रुष्यति तुष्यति त्वहिपतिर्विन्ध्याटवी शोचति । चन्द्रस्त्रस्यति कुप्यते हरिरपि ब्रह्मा परं कम्पते सा गङ्गा निखिलं कलङ्कनिचयं भङ्गं तरङ्गैर्नयेत् ॥ ११ ॥ शार्ङ्गी ब्रह्मकमण्डलोरधिगतैर्यैः प्रापि तीर्थाङ्घ्रितां यैर्मृत्युञ्जयतामनायि गरलग्रस्तो जटाजूटगैः । येभ्योऽशिक्षत माधुरीं मृदुजटाजूटे मठे चन्द्रमास्तानीमानि पयांसि गौतमि तव श्रेयांसि यच्छन्तु नः ॥ १२ ॥ शैवालश्रेणिशोभां दधति हरजटावल्लयो हन्त यस्यास्तद्धासोल्लासवेल्लद्वरशफरतुलां यत्र धत्ते कलावान् । उन्मीलद्भोगिभोगावनिसुभगसिताम्भोजसम्भाविताम्भा गङ्गानङ्गारिसङ्गा महति तव विधौ मङ्गलान्यातनोतु ॥ १३ ॥ स्वच्छन्दोच्छलदच्छकच्छकुहरच्छातेतराम्बुच्छटा मूर्च्छन्मोहमहर्षिहर्षविहितस्नानाह्निकाह्नाय वः । भिन्द्यादुद्यदुदारदर्दुरदरीदीर्घा दरिद्रद्रुमद्रोहोद्रेकमहोर्मिमेदुरमदा मन्दाकिनी मन्दताम् ॥ १४ ॥

जटाजूटः—गङ्गावारिभिरुक्षिताः फणिफणैरुत्पल्लवास्तच्छिखारत्नैः कोरकिताः सितांशुकलया स्मेरैकपुष्पश्रियः । आनन्दाश्रुपरिस्रुताक्षिहुतभुग्धूमैर्मिलद्दोहदा नाल्पं कल्पलताः फलं ददतु वोऽभीष्टं जटा धूर्जटेः ॥ १ ॥ चूडापीडकपालसङ्कुलगलन्मन्दाकिनीवारयो विद्युत्प्रायललाटलोचनपुटज्योतिर्विमिश्रत्विषः । पान्तु त्वामकठोरकेतकशिखासन्दिग्धमुग्धेन्दवो भूतेशस्य भुजङ्गवल्लिवलयस्रङ्नद्धजूटाजटाः ॥ २ ॥ जयति हरजटाभरो यदन्तर्वहति निराकुलमेव देवसिन्धुः । लहरिषु तरलेन्दुराजहंसा विततविरिञ्चिकपालफेनमाला ॥ ३ ॥ स धूर्जटि-

---

है और रामजीने जिसके अन्तके दो अक्षर (रथी) होकर रावणको युद्धमें मार डाला, ऐसे अक्षरोंवाली तथा शिवजीके सिरपर शोभा पानेवाली 'भागीरथी' नामवाली गङ्गाजी मेरा सौभाग्य बढ़ावें ॥ १० ॥ जिनको छूकर शिवजीका रूप देनेकी शक्तिवाले पवनके चलनेपर पार्वतीजी क्रोधित हो जाती हैं, साँप प्रसन्न हो जाते हैं, विन्ध्याचल सोचमें पड़ जाता है, चन्द्रमा डर जाता है, विष्णु भी क्रोधित हो जाते हैं और ब्रह्मा काँपने लगते हैं, ऐसी गङ्गाजी अपनी लहरोंसे सारे पापोंका नाश कर डालें ॥११॥ हे गोमती गङ्गा ! ब्रह्माके कमण्डलुमें भरे आपके जिस जलने विष्णुके चरणोंको पवित्र कर दिया, शिवजीकी जटाओंमें भरे हुए जिस जलने विषसे ग्रस्त शिवजीको 'मृत्युञ्जय' (मृत्युको जीतनेवाला) बना दिया और शिवजीके जटामुकुट-रूपी मठमें रहकर चन्द्रमाने जिससे मधुरता (मिठास) सीखी, वह आपका जल हमें आनन्द दे ॥ १२ ॥ शिवजीकी जटाएँ जिस जलमें फैली सेवार-सी दिखाई देती हैं, चन्द्रमा जिस जलकी उछालरूपी हँसीमें सुन्दर मछलीके समान जान पड़ता है और आँख मूँदे हुए साँपके सिरपर रक्खी पृथ्वी जिस जलमें सुन्दर कमलके समान दिखाई पड़ती है, ऐसी शिवजीके साथ रहनेवाली गङ्गाजी आप लोगोंको बड़े-बड़े कार्योंमें यश दें ॥ १३ ॥ जिनके स्वच्छन्द उछलते हुए, स्वच्छ और पासकी गुफाओंमें फैलकर छितराए हुए जलकी कान्तिसे अज्ञान नष्ट हो जाता है, जिनके जलमें महर्षि लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर अपना स्नान आदि नित्यकर्म करते हैं, जिसमें मेंढकोंकी बहुत बड़ी-बड़ी गड़हियाँ बनी हैं और जिसकी बड़ी-बड़ी लहरोंके तीव्र प्रवाहसे विशाल वृक्ष भी उखड़कर बह जाते हैं, वे गङ्गाजी तत्काल आपका अभाग्य नष्ट करें ॥ १४ ॥

जटाजूट : कल्पवृक्षकी लताओंके समान जान पड़नेवाली वह शिवजीकी जटा आपकी सब इच्छाएँ पूर्ण करे जिसे गङ्गाजल ही मानो सींचता है, साँपोंके फण ही जिसके पत्ते हैं, उन फणोंमें चमकनेवाले मणि ही जिसकी कलियाँ हैं, चन्द्रमाकी कला ही जिसका एक खिला हुआ फूल है और आनन्दके आँसुओंसे भर जानेपर अग्निसे भरे नेत्रसे उठनेवाला धुआँ ही जिसपर मँडराते हुए भौंरोंके समान है ॥ १ ॥ शङ्करजीके माथेपर बँधी हुई उनकी वे जटाएँ आपकी रक्षा करें जिनमेंसे गङ्गाजल बह रहा है, जो बिजलीके समान चमचमाते हुए मस्तक और नेत्रोंकी चमकके समान चमकती हैं और जो कोमल केतकीके फूलकी कलीके समान जान पड़नेवाले सुन्दर चन्द्रमासे सुशोभित हो रही हैं ॥ २ ॥ शिवजीके जटारूपी उस पर्वतकी जय हो जिसमें स्वच्छन्द रूपसे लहराती हुई गङ्गारूपी समुद्रकी लहरोंके बीचमें टेढ़ा चन्द्रमा हंसके समान तथा ब्रह्माकी खोपड़ियोंकी माला फेनके समान शोभित होती है ॥ ३ ॥ शङ्करजीका वह जटाजूट आपकी जीत कराता रहे जिसमें बहती

जटाजूटो जायतां विजयाय वः । यत्रैकपलितभ्रान्तिं करोत्यद्यापि जाह्नवी ॥ ४ ॥

शशिलेखा—जयति परिमुषितलक्ष्मा भयादनुपसर्पतेव हरिणेन । इह केसरिकरजाङ्कुरकुटिला हरमौलि विधुलेखा ॥१॥ दिश्याद्धूर्जटिजूटकोटिसरिति ज्योत्स्नालवोद्भासिनी चान्द्री वः कलिका जलभ्रमिवशादाकृष्टनष्टा मुदम् । याञ्चञ्चच्छफरीभ्रमेण मुकुलीकुर्वन्फणालीं मुहुर्मुह्यल्लक्ष्महिर्जिघृक्षतितमामाकुञ्चनप्रोञ्चनैः ॥ २ ॥ देहप्रविष्टाद्रिसुतामुखेन्दुद्वितीयखण्डार्धमिवागतो यः। अवाप्तुकामः परिपूर्णभावं स पातु वः शम्भुजटार्धचन्द्रः ॥ ३ ॥ पूर्णनखेन्दुद्विगुणितमञ्जीरा प्रेमशृङ्खला जयति । हरशशिलेखा गौरीचरणाङ्गुलिमध्यगुल्फेपु ॥ ४ ॥ लसल्लीलाचन्द्रश्चरणगतमौलेः स्मरजितः किरद्भिः सुज्योत्स्नां नखमणिभिरापूरितकलः । व्यलीके पार्वत्याः परिलघुलवैरञ्जनजुषः पतद्भिर्बाष्पस्य क्रमलिखितलक्ष्मा विजयते ॥ ५ ॥ श्रीकण्ठस्य कपर्दबन्धनपरिश्रान्तोरगग्रामणीसन्दष्टां मुकुटावतंसकलिकां वन्दे कलामैन्दवीम् । या बिम्बप्रतिपूरणाय परितो निष्पीड्य संदंशिकायन्त्रेणैव ललाटलोचनशिखिज्वालाभिरावर्त्यते ॥ ६ ॥

लोचनम्—अन्तर्नाडीनियमितमरुल्लङ्घितब्रह्मरन्ध्रं स्वान्ते शान्तिप्रणयिनि समुन्मीलदानन्दसान्द्रम् । प्रत्यग्ज्योतिर्जयति यमिनः स्पष्टलालाटनेत्रव्याजव्यक्तीकृतमिव जगद्व्यापि चन्द्रार्धमौलेः ॥१॥ एकं ध्याननिमीलनान्मुकुलितश्चक्षुर्द्वितीयं पुनः पार्वत्या वदनाम्बुजस्तनतटे शृङ्गारभारालसम् । अन्यद्दूरविकृष्टचापमदनक्रोधानलोद्दीपितं शम्भोर्भिन्नरसं समाधिसमये नेत्रत्रयं पातु वः ॥२॥ जयति ललाटकटाक्षः शशिमौलेः पक्ष्मलः प्रियाप्रणतौ । धनुषि स्मरेण निहितः सकण्टकः केतकेषुरिव ॥ ३ ॥ नीललोहितललाटलाञ्छने लोचने

हुई गङ्गाकी उजली धाराको देखकर आज भी यह भ्रम हो जाता है कि पूरी जटा पक गई है ॥ ४ ॥

शशिलेखा : मलिन कान्तिवाले और सिंहके नखोंके समान टेढ़े रूपवाले उस चन्द्रमाकी जय हो जो भयके मारे न भाग सकनेवाले हरिणके समान जान पड़ता है ॥ १ ॥ शिवजीकी जटाओंकी छोरपर लगी हुई वह चन्द्रकला आपको आनन्द दे जिसे गङ्गाकी लहरोंके बीचमें पड़कर हिलनेसे चञ्चल मछली समझकर साँप बार-बार भ्रममें पड़कर अपने फणोंको सिकोड़ते-फैलाते हुए सूँघते हैं ॥ २ ॥ शिवजीकी जटामें लगा वह आधा चन्द्रमा आपकी रक्षा करे जो ऐसा जान पड़ता है मानो शिवजीकी देहमें बैठी पार्वतीके मुखकमलका दूसरा आधा भाग बनकर उसे पूर्ण बनानेकी इच्छासे आ गया हो ॥ ३ ॥ शिवजीके सिरपर स्थित उस चन्द्रकलाकी जय हो जो पर्वतीजीके पैर पड़ते समय ऐसी जान पड़ती है मानो उनकी उँगलियों और शिवजीके मस्तकके बीचमें पड़ी हुई, बढ़े हुए नखरूपी पूर्ण चन्द्रमासे दुगुनी जान पड़नेवाली प्रेमकी साँकल हो ॥ ४ ॥ कामको जीतनेवाले शिवजीकी उस चन्द्रकलाकी जय हो जो रूठी हुई पार्वतीजीके पैर पड़ते समय उनके नखरूपी मणियोंकी उजली किरणोंसे ओत-प्रोत है तथा जिसपर पार्वतीजीके आँखोंके काजलयुक्त आँसू गिरनेसे ऐसा जान पड़ता है मानो उसमें क्रमपूर्वक चिह्न बनाए जाते हों ॥ ५ ॥ शिवजीके मुकुटमें सजी कलीके समान जान पड़नेवाली उस चन्द्रकलाको प्रणाम करता हूँ जो शिवजीकी जटा बाँधनेसे थके हुए साँपोंके लिपट जानेसे ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ती है मानो शिवजीके नेत्रकी अग्निरूपी संसीसे दबाया जाकर गोल किया जा रहा हो ॥ ६ ॥

लोचन : बड़े भारी योगी शङ्करजीके तीसरे नेत्रकी उस नवीन ज्योतिकी जय हो जो ऐसी जान पड़ती है मानो उनकी नाड़ियोंके भीतर बँधे पवनके द्वारा ब्रह्मरन्ध्रको लाँघ जानेवाली, हृदयमें शान्ति पहुँचानेवाली, घने आनन्दसे मुँदे हुए नेत्रमें रहनेवाली तथा नीचेकी ओर पड़नेवाली योग-शक्ति ही नेत्रके बहाने प्रकट हो गई हो ॥ १ ॥ शङ्करजीके उन तीनों नेत्रोंकी जय हो जिनमेंसे एक तो भगवान्का ध्यान करते हुए मुँदा हुआ है, दूसरा गौरीके कमलके समान मुँह और स्तनोंको देखकर मस्त हो रहा है और तीसरा समाधि लगानेके समय धनुष खींचते हुए कामदेवपर बढ़े हुए क्रोधरूपी अग्निके तेजसे जलकर रसभङ्ग करता हुआ-सा जान पड़ता है ॥२॥ चन्द्रमाको सिरपर धारण किए हुए शङ्करजीके माथेके उस पलकवाले नेत्रकी जय हो जो अपनी प्रिया पार्वतीके पैर पड़ते समय ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेवने अपने धनुषपर काँटोंवाली केतकीके फूलका बाण चढ़ा रक्खा हो ॥ ३ ॥ शिवजीके नीले और लाल चिह्नवाले नेत्रमें स्थित उस किसी अग्निकी जय हो जिसका प्रलयके लिये जलना ही अगली सृष्टिके लिये ब्रह्मारूप हो जाता है ॥ ४ ॥ जिस नेत्रके पलककी पाँतमें लगी भूरे

जयति कोऽपि पावकः। रक्षितस्य जगदन्तहेतवे यस्य सञ्ज्वलनमात्मभूरभूत् ॥ ४ ॥ पद्मालीपिङ्गलिम्नः कण इव तडितां यस्य कृत्स्नः समूहो यस्मिन्ब्रह्माण्डमीषद्विघटितमुकुले कालयज्वा जुहाव। अर्चिर्निष्टप्तचूडाशशिगलितसुधाघोरझाङ्कारिकोणं तार्तीयं यत्पुरारेस्तदवतु मदनप्लोषणं लोचनं वः ॥ ५ ॥ पायात्कृतानङ्गपतङ्गदाहः खट्वाङ्गिनो नेत्रशिखिप्रदीपः। यस्यान्तिके शुभ्रदशानिवेशश्रियं किरीटेन्दुकलाः श्रयन्ते ॥ ६ ॥ सानन्दा गणनायके सपुलका गौरीमुखाम्भोरुहे सक्रोधा कुसुमायुधे सकरुणाः पादानते वज्रिणि। सस्मेरा गिरिजासखीषु सनयाः शैलाधिनाथे वहन्भूमीन्द्र प्रदिशन्तु शर्म विपुलं शम्भोः कटाक्षच्छटाः ॥ ७ ॥

कण्ठः—कस्तूरीतिलकन्ति भालफलके देव्या मुखाम्भोरुहे रोलम्बन्ति तमालबालमुकुलोत्तंसन्ति मौलिं प्रति। याः कर्णे विकचोत्पलन्ति कुचयोरंसे च कालागुरुस्थासन्ति प्रथयन्तु तास्तव शिवं श्रीकण्ठकण्ठत्विषः ॥१॥ कस्तूरयन्ति भाले तदनु नयनयोः कज्जलीयन्ति कर्णप्रान्ते नीलोत्पलीयन्त्युरसि मरकतालङ्कृतीयन्ति देव्या। रोमालीयन्ति नाभेरुपरि हरिमणी मेखलीयन्ति मध्ये कल्याणं कुर्युरेते त्रिजगति पुरजित्कण्ठभासां विलासाः ॥२॥ पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बुदोपमः। गौरीभुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते ॥ ३ ॥ पातु वः शितिकण्ठस्य तमालश्यामलो गलः। संसक्तपार्वतीबाहुसुवर्णनिकषोपलः ॥ ४ ॥

मुण्डमाला—पित्रोः पादाब्जसेवागतगिरितनयापुत्रपत्रातिभीतक्षुभ्यद्भूषाभुजङ्गश्वसनगुरुमरुद्दीप्तनेत्राग्नितापात्। स्विद्यन्मौलीन्दुखण्डस्रुतबहुलसुधासेकसञ्जातजीवा पूर्वाधीतं पठन्ती ह्यवतु विधिशिरोमालिका शूलिनो वः ॥१॥ भूत्यै वोऽस्तु कपालदाम जगतां पत्युर्यदीयां लिपिं क्वापि-क्वापि गणाः पठन्ति पदशो नातिप्रसिद्धाक्षराम्। विश्वं स्रक्ष्यति वक्ष्यति क्षितिमपा-

---

रङ्गवाली बरौनियाँ बिजलीकी चिनगारीके समान दिखाई देती हैं, जिस आधे खुले हुए नेत्रमें स्वयं भगवान् शङ्कर प्रलय-यज्ञ करते समय इतने बड़े ब्रह्माण्डकी आहुति दे देते हैं, जिसके तापसे पिघलकर शिवजीके माथेपर स्थित चन्द्रमासे अमृत टपकनेसे उसके कोने छन-छना उठते हैं, वह कामदेवको जला डालनेवाला शङ्करजीका तीसरा नेत्र सबकी रक्षा करे ॥ ५ ॥ कामदेवरूपी पतङ्गको जला डालनेवाला, वह शिवजीके तीसरे नेत्रमें स्थित अग्निदीपक रक्षा करे जिसके पास लगा हुआ टेढ़ा चन्द्रमा उस दीपकमें लगनेवाली बत्तीके समान जान पड़ता है ॥ ६ ॥ हे राजन्! गणेशजीको देखकर आनन्दसे भर जानेवाले, पार्वतीजीका मुखकमल देखकर पुलकित हो उठनेवाले, कामदेवको देखकर क्रोधित हो उठनेवाले, पैर पड़ते हुए इन्द्रको देखकर करुणासे भर जानेवाले, गौरीकी सखियोंको देखकर मुस्करा उठनेवाले और हिमालयके सामने सँभले रहनेवाले शङ्करजीके तिरछे नेत्रोंकी सुन्दरता अत्यधिक आनन्द बढ़ावे ॥७॥

कण्ठ : शङ्करजीके गलेकी वह कान्ति आपका कल्याण करे जो गौरीजीके माथेपर कस्तूरीके तिलकके समान, उनके मुख-कमलपर भौंरोंके समान, सिरपर तमालकी खिली हुई छोटी-सी कलीके समान, कानोंपर खिलते हुए कमलके समान तथा स्तनों और कन्धोंपर काले अगरके समान शोभित होती हैं ॥ १ ॥ त्रिपुरासुरको मारनेवाले शङ्करजीके गलेकी वह नीली चमक कल्याण करे जो गिरिजाके माथेपर कस्तूरीके समान, नेत्रोंमें काजलके समान, कानोंमें खिले नीले कमलके समान, छातीमें मरकत मणिके गहनेके समान, नाभिपर रोएँकी पाँतोंके समान और कमरमें हरे मणियोंकी करधनीके समान शोभित होती है ॥ २ ॥ काले बादलके समान सुन्दर दिखाई पड़नेवाला शङ्करजीका वह नीला कण्ठ सबकी रक्षा करे जिसमें पड़ी पार्वतीजीकी गोरी बाँह बिजलीके समान सुन्दर जान पड़ती है ॥ ३ ॥ शङ्करजीका वह तमालके समान साँवला गला आपकी रक्षा करे जो पार्वतीकी सोनेके समान बाँहोंकी परख करनेवाली कसौटीके समान जान पड़ता है ॥ ४ ॥

मुण्डमाला : हिमालयकी पुत्री पार्वतीजी जब अपने माता-पिताकी सेवा करने चली गईं, उस समय उनके पुत्र स्वामिकार्त्तिकेयके वाहन मोरसे डरकर अत्यन्त घबड़ाते हुए, भूषण बने हुए साँपकी फुफकारसे शङ्करजीके तीसरे आँखकी धधकी हुई अग्निके तापसे तपकर पसीजते हुए चन्द्रमासे टपकती हुई अमृतकी धारा पी-पीकर फिर जी उठनेवाली, पहले पढ़े हुए वेदका पाठ दुहरानेवाली शङ्करजीके गलेमें पड़ी हुई ब्रह्माके सिरोंकी माला सबकी रक्षा करे ॥ १ ॥ संसारके स्वामी शिवजीकी वह मुण्डमाला आपको ऐश्वर्य दे जिसमें ब्रह्मा-द्वारा लिखे हुए अस्पष्ट पदोंको उनके गण कहीं-कहीं इस प्रकार पढ़ पाते थे—विश्वकी रचना करेगा—बोलेगा—पृथ्वीको—जलका—

मीशिष्यते शिष्यते भागे राशिषु रंस्यतेऽत्स्यति जगन्निर्वेद्यति द्यामिति ॥ २ ॥

पन्नगः—फण इव पुरां वह्नेर्भस्मावधूलनसङ्गतो जयति वहलालोकस्फाराववधूतनिशोदयः। स्मरहरजटावन्धग्रन्थिर्भुजङ्गफणामणिस्त्रिदशतटिनीपूरानीतः स्फुरन्निव तारकः ॥ १ ॥

ताण्डवम्—अस्थीन्यस्थीन्यजिनमजिनं भस्म भस्मेन्दुरिन्दुर्गङ्गा गङ्गोरग उरग इत्युल्लसत्सम्भ्रमाणाम्। भूषावेषोपकरणकरणप्रापणव्यापृतानां नृत्तारम्भप्रणयिनि शिवे पान्तु वाचो गणानाम् ॥ १ ॥ आर्द्रां कण्ठे मुखाब्जस्रजमुपनयत्यम्बिका जानुलम्बां स्थाने कृत्वेन्दुलेखां निविडयति जटाः पन्नगेन्द्रेण नन्दी। कालः कृत्तिं निवध्नात्युपनयति करे कालरात्रिः कपालं शम्भोर्नृत्तावतारे परिषदिति पृथग्व्यापृता वः पुनातु ॥२॥ आसीनैः स्वं विमानं कतिपरिवृतिभिः सुन्दरीसङ्गतैस्तै र्देवैः सिद्धैश्च यक्षैरनिमिषनयनैर्दृश्यमानः सतृष्णम्। मध्ये मध्ये पयोदैर्मुरजसदृशतां बोधयद्भिः सुमन्दमम्भः सम्पात्य पुष्पैरिव ननु महितस्ताण्डवः श्रेयसे स्तात् ॥ ३ ॥ इन्दोः किं द्रुहिणस्य वा सुरपतेः किं वा कृतान्तस्य वा किं भूतेश दिशास्थिभूषणगणेष्वाकृष्य देयं मया। इत्थम्मण्डनमन्दिरोदरचरव्याहारतो भीकरात् भीता यस्य सुराः प्रसाधनविधौ पायात्स वः शङ्करः॥४॥ उच्चैरुत्तालखेलद्भुजवनपवनोद्धूतशैलौघपातस्फारोदश्चत्पर्योधिप्रकटितमुकुटस्वर्धुनीसङ्गमानि। जीयासुस्ताण्डवानि स्फुटविकटजटाकोटिसङ्घट्टभूरिभ्रश्यन्नक्षत्रचक्रव्यवसितसुमनोवृष्टिपातानि शम्भोः ॥५॥ चञ्चद्देवेन्द्रकुल्यश्लथितदशदिशाकीर्णकोटीरकोट्यः सङ्गायत्स्ववर्धूत्यः सरभसविनमत्सिद्धगन्धर्वधात्र्यः। विश्लिष्यच्चर्मपट्यो विगलितशतपत्रासनोद्यत्करोट्यस्त्रुट्यत्कैलासतट्यस्त्रिपुरविजयिनः पान्तु मामारभट्यः ॥६॥ देवा

पढ़ावेगा—सिखावेगा—राशियोंमें भागोंसे रमण करेगा—खा डालेगा—पृथ्वी और आकाशसे मुक्त करेगा आदि ॥ २ ॥

साँप : कामदेवको नष्ट करनेवाले शिवजीकी जटामें गाँठ लगाकर बँधे हुए साँपके फणमें चमकते हुए उस मणिकी जय हो जो ऐसा जान पड़ता है मानो पुर राक्षसको जलाकर उसकी राख उड़ाते समय कोई अग्निका कण चिपक गया हो अथवा अत्यन्त तेजस्वी तेजसे तिरस्कृत होकर रात्रिमें कोई छोटा तेज उदय हुआ हो अथवा देवनदी गङ्गाकी बाढ़में बहकर कोई चमकता तारा आ लगा हो १ ॥

ताण्डव : ताण्डव नृत्यके लिये तैयार होते हुए शिवजीको सजाते समय उनके शृङ्गारकी सामग्री जुटानेमें व्यस्त गणोंकी ये वाणियाँ रक्षा करें कि—'अरे! हड्डियाँ, हाथीकी खाल, भस्म, चन्द्रमा, गङ्गा, साँप आदि (कहाँ हैं, शीघ्र लाओ)' ॥१॥ शिवजीके ताण्डव नृत्य करनेको तैयार होते समय, उन्हें सजानेमें लगे हुए उनके वे सब सभासद आपको पवित्र करें जिनमेंसे पार्वतीजी उनके गलेमें घुटनोंतक लटकनेवाली मुण्डोंकी गीली माला पहनाने लगीं, नन्दी जटाएँ सँभालकर उनमें साँप और चन्द्रकला सजाने लगे, काल हाथीकी खाल बाँधने लगे और कालरात्रि उनके हाथमें खोपड़ी देने लगीं ॥ २ ॥ साधुओंसे घिरकर, अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ विमानोंपर बैठे देवता, सिद्ध और यक्ष आदि जिसे बड़े भावसे एकटक देखते थे और बीच-बीचमें गड़गड़ाते हुए नगाड़ोंके समान जान पड़नेवाले बादल जिसपर इस प्रकार धीरे-धीरे पानीकी बूँदे बरसाते थे मानों फूल बरसा रहे हों, वह शङ्करजीका ताण्डव सबका कल्याण करे ॥ ३ ॥ वे शिवजी आपकी रक्षा करें जिनके नृत्य करनेको तैयार होते समय जब उन्हें सजानेके लिये उनके सेवक शृङ्गार-घरके भीतरसे पूछने लगे कि 'हे प्रभो! आज्ञा दीजिए—चन्द्रमा, ब्रह्मा, इन्द्र, यमराज आदिमेंसे किसकी हड्डी खींचकर ले आवें?' तब सब देवता डर गए थे ॥ ४ ॥ शिवजीके उस ताण्डवकी जय हो जिसमें ऊपर उठकर नाचते हुए शिवजीके हाथरूपी वृक्षोंकी झोंकके पवनसे उड़े हुए पहाड़ोंके गिरनेसे फटकर उछले हुए समुद्रसे उनके सिरपर मुकुटके समान धारण की हुई आकाश गङ्गाका सङ्गम-सा होता जान पड़ता है और फैली हुई जटाओंकी तीव्र फटकारसे तारे आकाशसे गिरते हुए ऐसे सुन्दर जान पड़ते हैं मानो फूल बरस रहे हों ॥ ५ ॥ त्रिपुरासुरको जीतनेवाले भगवान् शङ्करके ताण्डव नृत्यकी वह प्रचण्डता मेरी रक्षा करे जो इन्द्रभवनको भी हिलाकर झकझोर डालती है, जिसके कारण जटाकी छोरें लहराती हुई दसों दिशाओंमें फैल जाती हैं, जिसके साथ देवियाँ स्वर भरकर तानें ले रही हैं, जिसकी झोंकमें सिद्ध-गन्धर्वोंकी नगरियाँ वेगसे ढही पड़ रही हैं, जिसके कारण शिवजीके व्याघ्र-चर्मके वस्त्र ढीले पड़ गए हैं, जिसके वेगसे अपना कमलासन हिलता हुआ देखकर ब्रह्मा भी आश्चर्यसे सिर ऊपर उठा लेते हैं और जिसकी चपेटसे कैलास पर्वतकी

दिक्पतयः प्रयात परतः खं मुच्यताम्भोमुचः पातालं व्रज मेदिनि प्रविशत क्षोणीतलं भूधराः। ब्रह्मन्नुन्नय दूरमात्मभुवनं नाथस्य नो नृत्यतः शम्भोः सङ्कटमेतदित्यवतु वः प्रोत्सारणा नन्दिनः ॥ ७ ॥ देवस्त्रैगुण्यभेदात्सृजति वितनुते संहरत्येष लोकानस्यैव व्यापिनीभिस्तनुभिरपि जगद्व्याप्तमष्टाभिरेव। वन्द्यो नास्येति पश्यन्निव चरणगतः पातु पुष्पाञ्जलिर्वः शम्भोर्नृत्यावतारे वलयमणिगणफूत्कृतैर्विप्रकीर्णः ॥८॥ दोर्दण्डद्वयलीलया चलगिरिभ्राम्यत्तदुच्चैरववाध्नोद्धीतजगद्भ्रमत्पदभरालोलत्फणाग्रघोरगम्। भृङ्गापिङ्गजटाटवीपरिसरोद्गोर्मिमालाचलच्चन्द्रश्चारु महेश्वरस्य भवतां निःश्रेयसे ताण्डवम् ॥९॥ पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने रक्षतः स्वैरपातैः सङ्कोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयतः सर्वलोकातिगानाम्। दृष्टिं लक्ष्येषु नोग्राञ्ज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीतेरित्याधारानुरोधात्त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्तम् ॥ १० ॥ भद्रश्चन्द्रकले शिवं सुरनदि श्रेयः कपालावले कल्याणं भुजगेन्द्र वह्नि कुशलं विष्वग्जटासन्तते। इत्याहुर्मिलिताः परस्परममू यस्मिन्प्रशान्तिं गते कल्पान्तारभटीनटस्य भवतात्तद्वः श्रियै ताण्डवम् ॥ ११ ॥ मूर्धव्याधूयमानध्वनदमरधुनीलोलकल्लोलजालोद्भूताम्भःक्षोदद्म्भात्प्रसभमभिनभः क्षिप्तनक्षत्रलक्षम्। ऊर्ध्वन्यस्ताङ्घ्रिदण्डभ्रमिभवरभसोद्यन्नभस्वत्प्रवेशभ्रान्तब्रह्माण्डखण्डं प्रवितरतु शिवं शाम्भवं ताण्डवं वः॥१२॥ यस्यां मौलिमिलत्सुधांशुकलया सम्पूर्णविम्बायितं भालावस्थितलोचनेन सहसैवालातचक्रायितम्। आवर्त्तायितमाकपर्दममरस्रोतस्वती धारया पातु त्रीणि जगन्ति खण्डपरशोः सा ताण्डवाङ्गभ्रमिः ॥ १३ ॥ शर्वाणीपाणितालैश्चलवलयझण-

---

चट्टानें भी टूट-टूटकर गिरने लगती हैं ॥ ६ ॥ 'हे देवताओ और दिक्पालो ! तुम लोग कहीं और सरक जाओ; बादलो ! तुम आकाशसे हट जाओ, पर्वतो ! तुम पृथ्वीमें धँस जाओ, पृथ्वी ! तुम पातालमें जा छिपो और हे ब्रह्मा ! तुम भी अपने लोकको कहीं दूर ले जाओ क्योंकि अब हमारे स्वामी शङ्करजी नाचना चाहते हैं !' इस प्रकार शङ्करजीके ताण्डव नृत्य करते समय आनेवाली बाधाओंको दूर करनेके लिये सबको दी हुई नन्दीकी चेतावनी आप लोगोंका कल्याण करे ॥ ७ ॥ शङ्करजीके ताण्डव नृत्य करते समय उनके हाथोंके कङ्कन बने हुए साँपोंकी फुफकारसे उड़कर गिरी हुई वह फूलोंकी अञ्जलि आपकी रक्षा करे जो यह सोचकर शङ्करजीके चरणोंपर गिर जाती है कि 'यही शङ्कर भगवान् सत्, रज और तम इन गुणोंसे संसारकी रचना करते हैं, यही प्रलय-समयमें उसका नाश करते हैं और इन्हींकी आठ मूर्त्तियोंसे संसार भरा हुआ है अतः इनसे बड़ा कोई नहीं जान पड़ता है' ॥ ८ ॥ हिलते हुए दोनों हाथोंसे पर्वतोंको डगमगा देनेवाला, बड़े-बड़े पर्वतोंके गिरनेके डरसे डरे हुए संसारको घुमानेवाला, शिवजीके पैरोंके भारसे शेषनागके फणके आगेके भागको झुका देनेवाला और भौंरेके समान साँवले रङ्गकी जटाओंमें लहराती हुई गङ्गाकी बड़ी-बड़ी लहरोंसे चन्द्रमाको चञ्चल कर देनेवाला शङ्करजीका ताण्डव आपका कल्याण करे ॥ ९ ॥ पृथ्वीके प्रार्थना करनेपर शङ्करजी अपने जिस ताण्डवमें पृथ्वीको धँस जानेसे बचानेके लिये इच्छानुसार अपने पैर नहीं चला पाते, सब लोकोंसे परे फैल जानेवाली भुजाओंको भली प्रकार फैला नहीं पाते और सबको जलनेसे बचानेके लिये अपनी तीसरी आँखकी दृष्टिको लक्ष्यपर भली भाँति स्थिर नहीं कर पाते, इस प्रकार त्रिपुर राक्षसको मारनेवाले शङ्करजीका कष्टपूर्ण ताण्डव आपकी रक्षा करे ॥१०॥ प्रलय-कालमें आरभटी नृत्य करनेवाले शिवजीका वह ताण्डव आपको ऐश्वर्य दे जिसके शान्त होनेके पश्चात् आपसमें मिलकर सबने एक दूसरेसे इस प्रकार कुशलता पूछी कि 'हे चन्द्रकले ! कल्याण तो है? कहो गङ्गा! अच्छी तो हो! खोपड़ियोंकी माला ! सुरक्षित तो हो ? क्यों सर्पराज ! क्यों जटाओ ! क्या स्थिति है ? आदि' ॥ ११ ॥ शिवजीका वह ताण्डव आपको आनन्द देता रहे जिसमें सिरपर हिलकर शब्द करती हुई गङ्गाकी चञ्चल लहरोंके वेगसे उड़कर फैली हुई पानीकी बूँदें आकाशमें फैले तारोंके समान जान पड़ती हैं और ऊपर उठकर घूमते हुए पैरोंके वेगसे उत्पन्न तीव्र वायुके कारण जिसमें सारा ब्रह्माण्ड घूमता-सा जान पड़ता है ॥ १२ ॥ ताण्डव नृत्य करते समय शिवजीके अङ्गोंका वह घूमना तीनों लोकोंकी रक्षा करे जिसमें घूमते हुए माथेपर स्थित चन्द्रमाकी कलासे सारा संसार चन्द्रमण्डल-सा जान पड़ता है, माथेके तीसरे नेत्रके चमकनेसे सारा संसार चारों ओरसे आधा जला-सा जान पड़ता है तथा जटाजूटमें सजी गङ्गाकी धारासे सारा संसार ऐसा जान पड़ता है मानो वह गङ्गासे घिरा हो ॥ १३ ॥ शिवजीका वह ताण्डव आपको प्रसन्नता दे जिसमें अचानक गणेशजीके गरजनेसे शिवजीमें उत्साह आ गया था, जिसमें पार्वतीजीके

त्कारिभिः श्लाघ्यमानं स्थाने सम्भाव्यमानं पुलकितवपुषा शम्भुना प्रेक्षकेण। खेलत्पिच्छालिकेलाकलकलकलितं क्रौञ्चभिद्बर्हियूना हेरम्बाकाण्डबृंहातरलितमनस्ताण्डवं त्वां धिनोतु ॥ १४ ॥ सन्ध्याताण्डवडम्बरव्यसनिनो भर्गस्य चण्डभ्रमिव्यानृत्यद्भुजदण्डमण्डलभुवो झञ्झानिलाः पान्तु वः। येषामुच्छलतां जवेन झगिति व्यूहेषु भूमीभृतामुड्डीनेषु विडौजसा पुनरसौ दम्भोलिरालोकितः ॥ १५ ॥ संरम्भादविभावितत्रिभुवनायासस्य कामद्विषो नृत्तारम्भविजृम्भितैरवयवैर्ब्रह्माण्डमुद्भिन्दतः। निर्यन्मौलि विनिर्गताग्रचरणं प्रोल्लासि दोःपल्लवं पायाद्वो बहिरम्भसः प्रविचलत्कूर्मायमाणं वपुः ॥ १६ ॥

गणेशः—अगजाननपद्मार्कं गजाननमहर्निशम्। अनेकदं तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे ॥१॥ अन्तरायतिमिरोपशान्तये शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम्। तन्नरं वपुषि कुञ्जरं मुखे मन्महे किमपि तुन्दिलं महः ॥२॥ अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः। सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥३॥ अविरलविगलन्मदजलकपोलपालीनिलीनमधुपकुलः। उद्भिन्ननवश्मश्रुश्रेणिरिव द्विपमुखो जयति ॥४॥ अविरलमदधाराधौतकुम्भः शरण्यः फणिवरवृतगात्रः सिद्धसाध्यादिवन्द्यः त्रिभुवनजनविघ्नध्वान्तविध्वंसदक्षो वितरतु गजवक्त्रः सन्ततं मङ्गलं वः ॥५॥ अशेषविघ्नप्रतिषेधदक्षमन्त्राक्षतानामिव दिङ्मुखेषु। विक्षेपलीलाकरशीकराणां करोतु वः प्रीतिमिभाननस्य ॥६॥ आनन्दमात्रमकरन्दमनन्तगन्धं योगीन्द्रसुस्थिरमिलिन्दमपास्तबन्धम्। वेदान्तसूर्यकिरणैकविकासशीलं हेरम्बपादशरदम्बुजमानतोऽस्मि ॥७॥ आलम्बे जगदालम्बे हेरम्बचरणाम्बुजे। शुष्यन्ति यद्रजःस्पर्शा-

---

कङ्कणोंकी झनकार मिली तालियाँ बज रही थीं, जिसमें स्वामी-कार्त्तिकेयका वाहन मोर अपनी विचित्र पूँछ फैलाकर मनोहर कूक सुनाने लगा था और दर्शक रूपमें पुलकित होते हुए शिवजीने भी जिसकी प्रशंसा की थी ॥ १४ ॥ सन्ध्या समय ताण्डव नृत्य करनेके प्रेमी शङ्करजी जब अत्यन्त वेगसे घूमकर नाचने लगे तब उनके हाथोंके सञ्चालनसे उत्पन्न हुई वह आँधी आपकी रक्षा करे जिसके वेगसे पर्वतोंको उड़ते हुए देखकर इन्द्रको फिर अपना वज्र देखना पड़ा ॥ १५ ॥ ताण्डव नृत्य करनेसे पहले अँगड़ाई-जँभाई लेते हुए अपने अङ्गोंसे ब्रह्माण्डको फोड़े डालते हुए तथा प्रबल उत्साहके कारण तीनों लोकोंके क्षोभका ध्यान न रखनेवाले कामके शत्रु शिवजीका जलके बाहर ही कछुएके आकारवाला वह शरीर आपकी रक्षा करे जिसमें सिर, पैर और हाथ धीरे-धीरे क्रमशः उठकर चञ्चल हो रहे हैं ॥ १६ ॥

गणेश : हाथीके मुँहवाले तथा एक दाँतवाले उन गणेशजीकी हम उपासना करते हैं जो हिमालयकी पुत्री पार्वतीजीके मुखकमलको खिला देनेके लिये सूर्य हैं और जो दिन-रात भक्तोंकी बहुत-सी इच्छाएँ पूर्ण करते रहते हैं ॥ १ ॥ जो विघ्नरूपी अँधेरा नष्ट करनेवाले हैं, जो बिलकुल सीधे और पवित्र हैं, जिनके पास इतना ऐश्वर्य है कि समझा नहीं जा सकता, जिनका पूरा शरीर मनुष्यका और केवल मुँह ही हाथीका है, ऐसे बड़ी तोंदवाले तेजस्वी देवको हम प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥ उन गणेशजीको नमस्कार है जो अपने गणोंके मुखिया और सब विघ्नोंको नाश करनेवाले हैं और अपने मनोरथोंको पूरा करनेके लिये सब देवताओंने मिलकर जिनकी पूजा की थी ॥ ३ ॥ उन गणेशजीकी जय हो जिनका मुँह हाथीका है और जिनके गण्डस्थलसे लगातार धार बाँधकर बहती हुई मदजलकी लीकमें बैठी भौंरोंकी कतारें ऐसी जान पड़ती हैं मानो उन्हें नई दाढ़ी-मूँछ निकल रही हो ॥ ४ ॥ लगातार बहनेवाली मदकी धारासे जिनका सिर सदा धुलता रहता है, बड़े भारी साँप जिनके शरीरपर पड़े हैं, सिद्ध और देवता जिनके आगे सदा सिर नवाते रहते हैं, जो तीनों लोकोंमें रहनेवालोंके सब विघ्नोंका नाश करनेमें बड़े चतुर हैं, ऐसे सबको शरण देनेवाले हाथीके मुँहवाले गणेशजी आपको सदा आनन्द बाँटते रहें ॥ ५ ॥ जब गणेशजी अपनी सूँड़ चारों ओर उछालते तथा साँस छोड़ते चलते हैं और उससे फुहारें उड़ती हैं तो ऐसा जान पड़ता है मानो सब विघ्नोंको नष्ट करनेमें चतुर गणेशजी उन विघ्नोंको नाश करनेके लिये चुपचाप मन्त्र पढ़-पढ़कर अपने हाथोंसे अक्षत फेंक रहे हों। हाथीके मुँहवाले गणेशजीकी यह लीला आप सबको सुख पहुँचावे ॥ ६ ॥ शरद् ऋतुमें खिले हुए कमलके समान गणेशजीके उन चरणोंको प्रणाम करता हूँ जिनमेंका आनन्द ही मानो पराग है, जिनकी कीर्त्तिरूपी सुगन्ध बहुत दूरतक फैल रही है, जिनमें मन लगाए योगी लोग ही मानो भौंरे हैं, जो किसी प्रकारके बन्धनमें नहीं हैं इसलिये खिले हुए हैं तथा जो केवल वेदान्तरूपी सूर्यकी कथाओंरूपी किरणोंसे ही खिलते हैं अर्थात्

त्सद्यः प्रत्यूहवार्धयः ॥ ८ ॥ उच्चैर्ब्रह्माण्डखण्डद्वितयसहचरं कुम्भयुग्मं दधानः प्रेङ्खन्नागारिपक्षप्रतिभटविकटश्रोत्रतालाभिरामः। देवः शम्भोरपत्यं भुजगपतितनुस्पर्धिवर्धिष्णुहस्तस्त्रैलोक्याश्चर्यमूर्त्तिः स जयति जगतामीश्वरः कुञ्जरास्यः ॥ ९ ॥ उच्चैरुत्तालगण्डस्थलबहुलगलद्दानपानप्रमत्तस्फीतालिव्रातगीतिश्रुतिविधृतिकलोन्मीलिताधोंधिपद्मा। भक्तप्रत्यूहपृथ्वीरुहनिवहसमुन्मूलनोच्चैरुदञ्चच्छुण्डादण्डाग्र उग्रार्भक इभवदनो वः स पायादपायात् ॥१०॥ एकदन्तद्युतिसितः शम्भोः सूनुः श्रियेऽस्तु वः। विद्याकन्दद्वोद्भिन्ननवाङ्कुरमनोहरः॥ ११ ॥ एकरद द्वैमातुर निस्त्रिगुण चतुर्भुजोऽपि पञ्चकरः। जय षण्मुखनुत सप्तच्छदगन्धिमदाष्टतनुतनय ॥१२॥ कल्याणं वो विधत्तां करटमदधुनीलोलकल्लोलमाला खेलद्रोलम्बकोलाहलमुखरितदिक्चक्रवालान्तरालम्। प्रत्नं वेतण्डरत्नं सततपरिचलत्कर्णतालप्ररोहद्वाताङ्कूराजिहीर्षादरविवृतफणाश्टङ्गभूषाभुजङ्गम् ॥ १३ ॥ कुम्भोपान्तात्पतद्भिर्मदजलनिवहैर्लब्धसेकातिरेका प्रोन्मीलद्वालचन्द्राकृतिदशनमिषादङ्कुरं धारयन्ती। आलोलत्कर्णतालप्रचलमधुकरा शीकरासारपुष्पा विस्तीर्णा हस्तवल्ली दिशतु गणपतेः प्रार्थ्यमानं फलं वः ॥ १४ ॥ क्रोडं तातस्य गच्छन्विशदबिसधिया शावकं शीतभानोराकर्षन्भालवैश्वानरनिशितशिखारोचिषा तप्यमानः। गङ्गाम्भः पातुमिच्छुर्भुजगपतिफणाफूत्कृतैर्दूयमानो मात्रा सम्बोध्य नीतो दुरितमपनयेद्वालवेषो गणेशः ॥१५॥

प्रसन्न होते हैं ॥ ७ ॥ गणेशजीके उन दोनों चरणोंकी मैं शरण लेता हूँ जिनके बलपर सारा संसार टिका हुआ है और जिनकी धूलिके स्पर्श-मात्रसे पापोंके समुद्र अपने आप सूख जाते हैं ॥ ८ ॥ शङ्करजीके पुत्र उन हाथीके मुँहवाले और तीनों लोकोंमें आश्चर्य-भरी मूर्त्तिवाले गणेश भगवान्की जय हो जो संसारके स्वामी हैं, जिनका सिर ऐसा जान पड़ता है मानो इस बड़े ब्रह्माण्डके दोनों गोलोंके समान ही एक दूसरा छोटा ब्रह्माण्ड इन्होंने ऊपर उठाकर अपनी दोनों कनपटीमें आधा-आधा धर लिया है, जिनके कानोंको देखनेसे जान पड़ता है मानो उड़ते हुए साँपोंके वैरी गरुड़के बड़े-बड़े पङ्खोंकी बराबरी करनेके लिये ही ये इतने बड़े-बड़े ताड़के पत्तों-जैसे सुन्दर कान हिलाते रहते हैं और जिनकी सूँड़ देखनेसे ऐसा जान पड़ता है मानो साँपोंके स्वामी वासुकिके लम्बे शरीरसे होड़ करनेके लिये ही इन्होंने अपनी सूँड़ इतनी लम्बी बढ़ा ली हो ॥ ९ ॥ वे अत्यन्त उग्र बालक गणेशजी आप लोगोंकी रक्षा करें जो अपने सिरसे लगातार बहनेवाले मदके पीनेसे मस्त होकर गानेवाले भौंरोंके गीत सुनकर आनन्दसे आँखें मूँदे हुए हैं और जो भक्तोंके विघ्नरूपी वृक्षोंको उखाड़ फेंकनेके लिये ही मानो अपनी सूँड़ बराबर झटकेसे फटकारते रहते हैं ॥ १० ॥ वे शङ्करजीके पुत्र गणेशजी आप लोगोंकी शोभा बढ़ावें जो अपने एक ही दाँतकी स्वच्छ चमकसे उजले हैं और जिनका दाँत ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानो विद्यारूपी कन्दसे कोमल अँकुआ निकला आ रहा हो ॥ ११ ॥ हे गणेशजी ! आपके एक दाँत है, पार्वती और गङ्गा दो आपकी माता हैं, आप तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) से बहुत दूर हैं, आप चार हाथवाले होकर भी सूँड़ समेत पाँच हाथोंवाले जान पड़ते हैं, छः मुँहवाले स्वामिकार्त्तिकेय आपको बहुत चाहते हैं, आप सदा सप्तपर्ण (छतिवन) के समान सुगन्धित मदजल बहाते रहते हैं तथा आठ मूर्त्तिवाले शङ्करजीके पुत्र हैं। आपकी जय हो ॥ १२ ॥ वे अत्यन्त पुराने तथा हाथियोंमें रत्न (गणेशजी) आपका कल्याण करें जिनके सिरसे बहनेवाली मदकी नदीमें उठती हुई चञ्चल लहरोंमें खेलते हुए भौंरोंका हल्ला धरतीके कोने-कोनेमें भर गया है, और जिनके हिलते हुए कानोंके पास पहुँची हुई सूँड़ ऐसी सुन्दर जान पड़ती है मानो ताड़के हिलते हुए पत्तोंसे निकले हुए वायुको कोई साँप अपने फणके आगेका भाग थोड़ा फैलाकर पी लेना चाहता हो ॥ १३ ॥ गणपतिकी वह बड़ी भारी सूँड़रूपी लता आपको मनचाहा फल दे जो उनके गण्डस्थलसे बहते हुए मद-जलकी मोटी धारसे मानो भली प्रकार सींची जा रही हो, जिसमेंसे द्वितीयाके चन्द्रमाके समान टेढ़ा चमकीला एक दाँतरूपी अँकुआ निकल रहा हो, जिसमेंसे ताड़पत्रके समान बड़े-बड़े कानोंके हिलनेसे भौंरे उड़ रहे हों तथा जिससे उड़ती हुई पानीकी फुहारे ही मानो पुष्प हों ॥१४॥ अपने पिता शङ्करजीके सिरपर सजे हुए चन्द्रमाकी कलाको कमलकी नालका डोरा समझकर उसे खींच लानेके लिये शङ्करजीके गोदमें चढ़कर ऊपरको बढ़े हुए, उनके माथेकी तीसरी आँखसे निकलती हुई लपटकी झर लगनेपर उनकी जटाओंमें बहनेवाली गङ्गाजीका पानी पीनेको लपके हुए किन्तु शिवजीके गलेमें पड़े हुए साँपके फनकी फुफकारसे डरे हुए वे बच्चे रूपवाले घबराए हुए गणेशजी संसारके सब पाप मिटा डालें जिन्हें माता पार्वतीजी बहला-फुसलाकर साथ ले गईं ॥ १५ ॥ मनुष्यकी-सी देहवाले,

गजवदनं मनुजतनुं तुन्दिलमर्च्यं फणीश्वराभरणम् । भाले लोचनवन्तं विधुमौलिं नौमि विघ्नेशम् ॥१६॥ गजाननाय महसे प्रत्यूहतिमिरच्छिदे । अपारकरुणापूरतरङ्गितदृशे नमः ॥१७॥ गण्डस्थलीगलदमन्दमदप्रवाहमाद्यद्द्विरेफमधुरस्वरदत्तकर्णः। हर्षादिवालसनिमीलितनेत्रयुग्मो विघ्नच्छिदे भवतु भूतपतिर्गणेशः ॥१८॥ चलत्कर्णानिलोद्धूतसिन्दूरारुणिताम्बरः । जयत्यकालेऽपि सृजन् सन्ध्यामिव गजाननः ॥१९॥ जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद्बलिं बध्नता स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम्। पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात्स नागाननः ॥ २० ॥ ते दूरोद्दण्डशुण्डाकुहरकवलितोज्झितसप्ताब्धिलब्धस्वेच्छासेकप्रमोदप्रभवनवरवक्रान्विताशागजेन्द्राः । देवस्याकाण्डकण्डूकरकरटतटाटोपसङ्घट्टभग्नक्षोणीभृत्तुङ्गशृङ्गाः पुरमथनशिशोः पान्तु वो दुर्विलासाः ॥ २१ ॥ दधानं भृङ्गालीसनिशममले गण्डयुगले ददानं सर्वार्थान्निजचरणसेवासुकृतिने दयाधारं सारं निखिलनिगमानामनुदिनं गजास्यं स्मेरास्यं तमिह कलये चित्तनिलये ॥ २२ ॥ दन्ताग्रनिर्भिन्नहिमालयोर्वीरन्ध्रोत्थिताहीन्द्रमणिप्रभौघे । नागाननः स्तम्भधिया कपोलौ घर्षन्पितृभ्यां हसितः पुनातु ॥२३॥ दन्ताञ्चलेन धरणीतलमुन्नमय्य पातालकेलिषु धृतादिवराहलीलम् । उल्लाघनोत्फणफणाधरगीयमानक्रीडायदानसभराजमुखं नमामः ॥२४॥ दानस्रोतस्सहस्रैर्दशनरुचिचयैः कुम्भसिन्दूरपूरैरुद्भूतैरेककालं प्रकटितरजनीघस्रसन्ध्याविलासाः। आस्फालस्फारघण्टावहलकलकलव्याकुलाहीन्द्रदाराः हेरम्बस्याङ्गहारप्रचलदवनयः पान्तु वो नृत्तलीलाः ॥२५॥ दुरितसमूहवलाहकपटलीसंहरणपवमा-

हाथीके मुँहवाले, बड़ी तोंदवाले, माथेपर तीसरा नेत्र रखनेवाले, चन्द्रमाका मुकुट पहननेवाले, साँपोंका गहना शरीरपर सजाए रखनेवाले तथा सब विघ्नोंका नाश करनेवाले गणेशजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥ हाथीके मुँहवाले, बड़े तेजस्वी, विघ्नरूपी अँधेरा मिटा डालनेवाले तथा अत्यन्त दयाकी बाढ़से छलकती हुई आँखोंवाले गणेशजीको प्रणाम है ॥ १७ ॥ माथेसे लगातार बहता हुआ मद पीकर मस्तीसे गुनगुनाते हुए भौंरोंकी मधुर गुञ्जार सुनकर आनन्दसे दोनों आँखें मूँदकर बैठे हुए वे गणेशजी सब विघ्नोंका नाश करें जो संसारके सब जीवोंके स्वामी हैं ॥ १८ ॥ हाथीके मुँहवाले उन गणेशजीकी जय हो जिनके हिलते हुए कानोंकी बयारसे माथेपर लगे सिन्दूरके उड़नेसे आकाश लाल हो जाता है और बिना साँझके ही साँझ-सी जान पड़ने लगती है ॥ १९ ॥ त्रिपुरासुरको मारते समय शङ्करजीने, छलसे बलिको बाँधते समय विष्णुने, संसारकी रचना करते समय कमलसे जन्म लेनेवाले ब्रह्माने, अपने सिरपर पृथ्वी धारण करते समय शेषनागने, महिषासुरको मारते समय पार्वतीजीने, संसारको जीतनेके समय कामदेवने और सिद्धि पानेके लिये सिद्धोंने जिनका ध्यान किया था वे हाथीके मुँहवाले गणेशजी सबकी रक्षा करें ॥ २० ॥ गणेशजीने अपनी अत्यन्त लम्बी सूँड़के छिद्रसे सातों समुद्रोंका जल पीकर उसे छोड़ा और उससे जो सुगन्ध उत्पन्न हुई उसे सूँघकर अत्यन्त मस्त होकर जो दिग्गजोंने गर्जनाएँ कीं उन्हें सुनकर दिग्गज भाग खड़े हुए और बड़े-बड़े पर्वतोंके करारोंपर जो उन्होंने भयङ्कर रूपसे अपना माथा खुजलाना प्रारम्भ किया उससे पर्वतके ऊँचे-ऊँचे शिखर टूट-टूटकर गिरने लगे। यह सब त्रिपुरासुरके शत्रु शिवजीके पुत्र गणेशजीकी नटखटी आपकी रक्षा करे ॥ २१ ॥ मैं अपने मनमें उन हाथीके मुँहवाले प्रसन्न गणेशजीका ध्यान करता हूँ जिनकी दोनों उजली कनपटियोंपर सदा भौंरोंके झुण्ड मँडराते रहते हैं, जो अपने चरणोंकी सेवा करनेवाले भक्तोंकी सब इच्छाएँ पूरी करते हैं और जो सदा उस दयाको धारण किए हुए हैं जिसे वेदोंने जीवनका सार बताया है ॥ २२ ॥ अपने दाँतसे हिमालयकी धरती फाड़ते समय जब पातालतक छेद हो गया और उसमेंसे शेषनागके माथेकी मणिका चमकीला उजाला ऊपर निकल आया तब उसे खम्भा समझकर उससे अपना माथा रगड़नेको बढ़े हुए वे गणेशजी संसारको पवित्र करें जिन्हें इस ढङ्गसे बढ़ते देखकर शङ्कर और पार्वती हँस पड़े थे ॥२३॥ हाथीके मुँहवाले तथा खेल-खेलमें ही पराक्रम दिखानेवाले उन गणेशजीको हम प्रणाम करते हैं जिन्होंने पातालका खेल खेलते हुए अपने दाँतकी नोकसे पृथ्वीको ऊपर उठाकर वराह अवतारकी लीला कर दिखाई और जिन्हें देखकर शेषनागने भी प्रसन्नतासे अपना फन ऊपर उठाकर स्तुति की थी ॥ २४ ॥ गणेशजीके वे नाचनेके ढङ्ग आपकी रक्षा करें जिनमें उनके अङ्ग हिलनेमात्रसे पृथ्वी काँप उठती थी, जिनमें उनके गलेके हिलते हुए बड़े भारी घण्टेका घोर शब्द सुनकर नागराजकी स्त्रियाँ व्याकुल हो जाती थीं और जिनमें उनकी कनपटीसे बहते हुए मद-जलकी

नम् । शिवयोरङ्काभरणं वन्दे कञ्चिद्गजाननं तेजः ॥२६॥ दोर्धोतद्दन्तखण्डः सकलसुरगणाडम्बरेपु प्रचण्डः सिन्दूराकीर्णगण्डः प्रकटितविलसच्चारुचान्द्रीयखण्डः । गण्डस्थानन्तषण्डः स्मरहरतनयः कुण्डलीभूतशुण्डो विघ्नानां कालदण्डः स भवतु भवतां भूतये वक्रतुण्डः ॥२७॥ नमस्तस्मै गणेशाय यत्कण्ठः पुष्करायते । मदाभोगघनध्वानो नीलकण्ठस्य ताण्डवे ॥ २८ ॥ पायाद्गजेन्द्रवदनः स इमां त्रिलोकीं यस्योद्धतेन गगने महता करेण। मूलावलग्नसितदन्तविसाङ्कुरेण नालायितं तपनविम्बसरोरुहस्य ॥२६॥ मङ्गलकलशद्वयमयकुम्भमदम्भेन भजत गजवदनम् । यद्दानतोयतरलैस्तिलतुलनालम्बि रोलम्बैः ॥ ३० ॥ युगपत्स्वगण्डचुम्बनलोलौ पितरौ निरीक्ष्य हेरम्बः । तन्मुखमेलनकुतुकी स्वाननमपनीय परिहसन्पायात् ॥३१॥ यः सिन्धौ फेनराशिर्भुवि कुमुदवनं व्योम्नि नक्षत्रलक्ष्मीरब्धौ मुक्तासमूहस्तरुपु सुमनसो मानसे हंससङ्घः। श्रीकण्ठे भूतिलेशः शिखरिपु मणयो दिक्षु नीहारपातः पायाद्वः शुण्डाग्रजन्मा जयति गणपतेः शीकराणां विलासः ॥ ३२ ॥ रक्ताम्बराय फणिराजविभूषणाय प्रोद्धूतभस्मकणकीर्णसुमोत्कराय। सङ्गीयमानयशसे मदपानलुब्धैर्भृङ्गैः सुरैरिव नमोऽस्तु गणाधिपाय ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीं तनोतु सुतरामितरानपेक्षमङ्घ्रिद्वयं निगमशाखिशिखाप्रवालम्। हैरम्बमम्बुरुहडम्बरचौर्यनिघ्नं विघ्नाद्रिभेदशतधारधुरन्धरं नः ॥३४॥ वन्दे तं गणनायकं गुणनिधिं गण्यं विभूनां पुरो रम्यं भक्तजनस्य विघ्नपटलं दुर्नीय सम्पद्विधौ । यस्याराधनमन्तरेण जगतां कश्चिन्न सिद्धिं गतो यश्चाराध्य चिराय विन्दति परां

सहस्रों धाराओंकी काली चमक, दाँतकी उजली चमक और मस्तकके सिन्दूरकी लाल चमकसे एक साथ ही रात, दिन और साँझकी शोभा उत्पन्न हो जाती थी ॥ २५ ॥ हाथीके मुँहवाले तथा शङ्कर और पार्वतीकी गोदकी शोभा बढ़ानेवाले उन अत्यन्त तेजस्वी गणेशजीको मैं प्रणाम करता हूँ जो बादल-जैसे पापोंका नाश करनेके लिये पवन हैं ॥ २६ ॥ टेढ़ी सूँड़वाले वे गणेशजी आप लोगोंका कल्याण करें जिनकी सूँड़के पास उनका एक दाँत चमकता रहता है, जो सब देवताओंमें अकेले अत्यन्त बलशाली हैं, जिनके माथेपर सिन्दूर पुता हुआ है और सुन्दर टेढ़ा चन्द्रमा सजा हुआ है, जिनकी कनपटीपर बहुतसे भौंरें जुटे हुए हैं, जिनकी सूँड़ गोल जलेबीके समान है, जो विघ्नोंका नाश करनेके लिये यमराजके दण्डके समान हैं और जो कामदेवके शत्रु शङ्करजीके पुत्र हैं ॥ २७ ॥ महादेवजीके ताण्डवके समय जिनका कण्ठ मद पीनेसे बादलके समान ध्वनि करता हुआ मृदङ्ग बनकर बोलने लगता है, उन गणेशजीको नमस्कार है ॥ २८ ॥ हाथीके मुँहवाले वे गणेशजी तीनों लोकोंकी रक्षा करें जिनकी सूँड़ ऊपर आकाशमें उठी हुई ऐसी जान पड़ती है मानो सूर्यकी ओर मुँह किए हुए कमलकी नाल हो और सूँड़की जड़में निकला हुआ उजला दाँत ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानो वह उस कमलकी जड़ हो ॥२६॥ हाथीके मुँहवाले उन गणेशजीकी शरण लो, जो शुभ कार्योंमें सजाए जानेवाले कलशोंके समान अपने दोनों पवित्र माथोंमें सदा मद भरे रहते हैं और जिनके माथेसे बहते हुए मदमें लिपटे हुए भौंरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो उन कलशोंपर काले तिल चिपके हुए हों ॥ ३० ॥ जब दोनों ओर बैठे हुए शिव और पार्वतीजी दोनों ओरसे गणेशजीके गाल चूमनेके लिये अपने-अपने मुँह बढ़ाने लगे उस समय गणेशजीने नटखटपन करनेके लिये अपना सिर पीछे हटा लिया और उससे शिव और पार्वतीजीके मुँह परस्पर मिल गए यह देखकर ठहाका मारकर हँसनेवाले गणेशजी सबकी रक्षा करें ॥ ३१ ॥ गणेशजीकी सूँड़से निकली हुई उन उजली-उजली बूँदोंकी फुहारोंकी बरसातकी जय हो जो फेन बनकर समुद्रका, कमलका समूह बनकर पृथ्वीका, तारोंका झुण्ड बनकर आकाशका, मोतियोंके गुच्छे बनकर समुद्रका, फूल बनकर वृक्षोंका, हंस बनकर मानसरोवरका, भस्म बनकर शङ्करजीके गलेका, मणि बनकर पर्वतोंका और पाला बनकर सब दिशाओंका शृङ्गार करती रहती हैं ॥ ३२ ॥ गणोंके स्वामी उन गणेशजीको प्रणाम है जो लाल वस्त्रोंसे सजे हुए हैं, साँपोंके स्वामी वासुकिको ही जिन्होंने अपना आभूषण बनाया है, आकाशमें उठी हुई जिनकी सूँड़में उजली भस्म पुती हुई है और जिनका मद पीकर मस्त हुए भौंरे ही देवताओंके समान उनकी कीर्त्ति गाते रहते हैं ॥ ३३ ॥ सब कुछ करनेमें समर्थ गणेशजीके वे दोनों चरण हमें ऐश्वर्य दें जो वेदरूपी वृक्षकी डालीकी कोंपलें हैं, जो कमलोंकी सब शोभा छीने बैठे हैं और जो विघ्नका पहाड़ तोड़नेके लिये पैने वज्र हैं ॥३४॥ जो सभी अच्छे गुणोंके भण्डार हैं, संसारकी बड़ी-बड़ी शक्तियोंमें जो सबसे पहले गिने जाते हैं, जो अत्यन्त सुन्दर हैं, जो अपने भक्तोंके विघ्नोंको ऐश्वर्य बना डालते

क्षुद्रोऽपि मालां श्रियाम् ॥३५॥ वन्दे वन्दारुमन्दारमिन्दुभूषणनन्दनम्। अमन्दानन्दसन्दोहबन्धुरं सिन्धुराननम् ॥ ३६ ॥ विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाट् विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः। विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधौ वाडवो विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु वः ॥३७॥ विघ्नेशो वः स पायाद्विहृतिषु जलधीन्पुष्कराग्रेण पीत्वा यस्मिन्नुद्धृत्य तोयं वमति तदखिलं दृश्यते व्योम्नि देवैः। क्वाप्यम्भः क्वापि विष्णुः क्वचन कमलभूः क्वाप्यनन्तः क्वचिच्छ्रीः क्वाप्यौर्वः क्वापि शैलाः क्वचन मणिगणाः क्वापि नक्रादिसत्त्वाः ॥ ३८ ॥ विघ्नेशः सर्वविघ्नान्परिहरतु स यत्कर्णतालादुदञ्चद्वायुव्याधूतकण्ठस्थलयुगलगलद्भूरिसिन्दूरपूरैः। आरुण्याद्वैतभावं गतवति जगति क्वापि नो भाति भानुर्नैवासौ शीतभानुः क्वचिदपि नितरां भासते वा कृशानुः ॥३९॥ शिवयोः सुधाहरिद्राद्युतिमतोः सारभृज्जगरिपत्त्रोः। त्रिभुवनविघ्नध्वंसी करिकल्पः कश्चिदरुणिमा जयति ॥ ४० ॥ सानन्दं नन्दिहस्ताहतमुरजरवाहूतकौमारबर्हित्रासान्नासाग्ररन्ध्रं विशति फणिपतौ भोगसङ्कोचभाजि। गण्डोड्डीनालिमालामुखरितककुभस्ताण्डवे शूलपाणेर्वैनायक्यश्चिरं वो वदनविधुतयः पान्तु चीत्कारवत्यः ॥ ४१ ॥ सुवर्णगिरिकर्णिके तरलतारकाकेसरे चलज्जलदषट्पदे स्फुटदिगन्तपत्राष्टके। स वः प्रथमनायकः प्रदिशतु श्रियं यत्करः करोति जगदम्बुजे वलितनाललीलायितम् ॥४२॥ हस्तपङ्कजनिविष्टमोदकव्याजसञ्चरदशेषपुमर्थम्। नौमि किञ्चिदवधूनितशुण्डादण्डकुण्डलितमण्डितगण्डम् ॥ ४३ ॥

षण्मुखः—अर्चिष्मन्ति विदार्य वक्त्रकुहराण्यासृक्कितो

हैं, जिनकी पूजा किए विना आजतक किसीको सिद्धि नहीं मिली और जिनका पूजन करके अत्यन्त नीच मनुष्य भी सदाके लिये धन-धान्यसे पूर्ण हो जाता है उन गुणोंके स्वामी गणेशजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥ शिवजीको आनन्द देनेवाले उन हाथीके मुँहवाले गणेशजीको प्रणाम करता हूँ जो अपने भक्तोंकी इच्छा पूरी करनेके लिये कल्पवृक्ष हैं तथा जो अत्यन्त आनन्दसे पूर्ण होनेके कारण और भी सुन्दर लगते हैं ॥ ३६ ॥ विघ्नोंका नाश करनेवाले वे गणेशजी आप लोगोंकी रक्षा करें जो विघ्नरूपी घने अँधेरेको मिटा डालनेके लिये सूर्य हैं, विघ्नरूपी जङ्गलको जला डालनेके लिये अग्नि हैं, विघ्न-रूपी सर्पोंका अभिमान नष्ट करनेके लिये गरुड़ हैं, विघ्नरूपी मतवाले हाथीको मारनेके लिए वज्र हैं, विघ्नरूपी समुद्रको सोखनेके लिये वड़वानल हैं और भयङ्कर पाप-समूहके विघ्न-रूपी बादलोंकी घटा उड़ानेके लिये प्रचण्ड पवन हैं ॥ ३७ ॥ विघ्नोंको नाश करनेवाले वे गणेशजी रक्षा करें जो खेल-खेलमें ही अपनी सूँड़के थूँथनेसे सारा समुद्र पी गए और जब वह जल उन्होंने अपनी सूँड़से आकाशमें छोड़ा तो देवताओंने देखा कि व्यवस्थित रहनेवाले वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, शेषनाग, लक्ष्मी, वड़वानल, पर्वत, मणि आदि रत्न और मगर-घड़ियाल आदि जीव सब न जाने कहाँ-कहाँ इधर-उधर छितराए पड़े हैं ॥ ३८ ॥ विघ्नोंका नाश करनेवाले वे गणेशजी सब विघ्न मिटा डालें जिनके तालके पत्तोंके समान हिलते हुए कानोंकी बयारसे उनके माथेपर पुते हुए सिन्दूरके उड़नेसे सारे संसारके लाल हो जानेपर यही नहीं जान पड़ा कि कौन सूर्य है, कौन चन्द्रमा है और कौन अग्नि है ॥ ३९ ॥ अमृतके समान उजले शिवजी और हल्दीके समान पीली कान्तिवाली पार्वतीजी जो माता-पिताके समान संसारका पालन-पोषण करते हैं उनकी किसी ललाई (गणेशजी) की जय हो जो त्रिलोकीके विघ्न मिटा डालनेवाले हाथीके रूपवाली है ॥ ४० ॥ शिवजीका ताण्डव आरम्भ होते समय जैसे ही नन्दीने मस्त होकर मृदङ्गपर थाप दी वैसे ही उस शब्दको सुनकर वहाँ आ पहुँचनेवाले स्वामिकार्त्तिकेयके मोरके डरसे गणेशजीके शरीरमें लिपटा हुआ साँप जब अपने प्राण बचानेके लिये फण सिकोड़कर उनकी सूँड़के छेदमें घुसने लगा उस समय उन गणेशजीका चिग्घाड़कर सूँड़ फटकारना सदा आपकी रक्षा करे जिनके मस्तकपर मँडराते हुए भौंरोंकी गुञ्जारसे दसों दिशाएँ भर गई थीं ॥ ४१ ॥ वे सर्वप्रथम गणनायक गणेशजी आपको ऐश्वर्य दें जिनकी सूँड़ उस संसाररूपी कमलकी मुड़ी हुई नालके समान शोभित है जिसमें सुमेरु पर्वत ही कोश है, झिलमिलाते हुए तारे ही केसर हैं, मँडराते हुए मेघ ही चञ्चल भौंरे हैं, और प्रत्यक्ष आठ दिशाएँ ही अष्टदल हैं ॥४२॥ गोल कुण्डलीके रूपमें हिलती हुई सूँड़से अत्यन्त सुन्दर मुखवाले उन गणेशजीको मैं प्रणाम करता हूँ जो अपने कमलके समान चारों हाथोंमें लड्डू लिए हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो चारों पुरुषार्थ (धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष) बाँटनेके लिये बैठे हों ॥४३॥

स्कन्द : शिवजीके शरीरमें लिपटे हुए वासुकि नागके चम०

वासुकेरङ्गुल्या विषकर्बुरान्गणयतः संस्पृश्य दन्ताङ्कुरान्। एकं त्रीणि च सप्त पञ्च षडिति प्रध्वस्य संख्याक्रमा वाचः क्रौञ्चरिपोः शिशुत्वविकलाः श्रेयांसि पुष्णन्तु वः ॥ १ ॥ विकसदमरनारीनेत्रनीलाब्जखण्डान्यधिवसति सदा यः संयमाधःकृतानि। न तु रुचिरकलापे वर्त्तते यो मयूरे वितरतु स कुमारो ब्रह्मचर्यश्रियं वः ॥ २ ॥ शरण्यः सर्वदेवानां दनुवंशदवानलः। शक्तिमान्धृतिमाञ्शान्तः कार्त्तिकेयोऽस्ति मे गतिः ॥ ३ ॥ शैलराजतनयास्तनयुग्मव्यापृतास्ययुगलस्य गुहस्य। शेषवक्त्रकमलानि मलं वो दुग्धपानविधुराणि हरन्तु ॥ ४ ॥ स्वेच्छारम्यं लुठित्वा पितुरुरसि चिताभस्मधूलीसिताङ्गो गङ्गावारिण्यगाधे झटिति पृथुजटाजूटतो दत्तझम्पः। सद्यः सीत्कारकारी जलजडिमरणद्दन्तपङ्क्तिर्गुहो वः कम्पो पायादपायाज्ज्वलितशिखिशिखे चक्षुषि न्यस्तहस्तः ॥ ५ ॥

गणेशकुमारौ—दत्तस्तन्यरसं कराग्रिमभुवा वक्त्रान्तरे स्वादराद्दोर्विक्षेपनिपिद्धकुम्भविचरन्मत्तद्विरेफोत्करम्। अम्बायाः पिबतोः पयोधरयुगं तिर्यङ्मिथःपश्यतोर्बाल्यस्नेहविजृम्भितं विजयते द्वैमातुरस्कन्दयोः ॥१॥ पित्रोरुत्सङ्गसंस्थौ विबुधगणनुतौ विघ्नदैत्यार्त्तिनिघ्नौ स्वे-स्वे पार्श्वे च कन्दुं शिखिनमभिरुचिप्रेक्षमाणौ प्रहृष्टौ। बिभ्राणौ पाणिपद्मैः कमलमथ गदामङ्कुशादिञ्च चञ्चत्केशौ स्निग्धौ सुभूषावविरतमवतां कौञ्चनैशौ कुमारौ ॥ २ ॥

गणाः—सन्ध्याताण्डवडम्बरप्रणयिनोर्देवस्य चण्डीपतेर्भ्रष्टापीडविशीर्णमुण्डचयनव्यग्रा गणाः पान्तु वः। यैरौत्सुक्यवशीकृतैर्ग्रहगणाद्राहौ गृहीते हठात्सूर्याचन्द्रमसोर्मिथः स्मितवतोर्जातं करास्फालनम् ॥ १ ॥

नन्दी—कण्ठालङ्कारघण्टाघणघणरणिताध्मातरोदःकटाहः कण्ठे कालाधिरोहोचितघनसुभगं भावुक-

---

चमाते और विषके कारण चितकबरे मुँहोंको बचपनकी खेलवाड़में खोल-खोलकर अपनी उँगलीसे उनके दाँत छू-छूकर उलटे-पुलटे क्रमसे एक, तीन, सात, पाँच, छः आदि गिननेवाले स्कन्दकी तोतली बोली आपको आनन्द दे ॥ १ ॥ देवताओंकी स्त्रियोंके खिले हुए नीले कमलके समान सुन्दर और संयमसे झुके हुए नेत्रोंसे जो कभी प्रभावित नहीं होते और सुन्दर पूँछवाले अपने मोरपर ही जो सदा बैठा करते हैं वे स्वामिकार्त्तिकेय आप लोगोंको ब्रह्मचर्यका तेज दें ॥ २ ॥ अत्यन्त शक्तिवाले, धैर्यवाले और शान्त उन स्वामिकार्त्तिकेयकी मैं शरण लेता हूँ जो राक्षसोंके कुलरूपी बाँसके लिये दावाग्नि हैं और सबको शरण देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ पर्वतोंके राजा हिमालयकी पुत्री पार्वतीजीके दोनों स्तनोंको अपने दो मुँहसे पीते हुए स्कन्दके वे शेष चार मुखकमल आपके पाप हर लें जो दूध नहीं पी पा रहे हैं ॥ ४ ॥ वे स्वामि कार्त्तिकेय आपको विनाशसे बचावें जिनकी देह पिताजी (शिवजी) की छातीपर जी भर लोटनेसे उसपर लगी हुई चिताकी भस्म लिपट जानेसे जब उजली हो गई तो वे तत्काल शिवजीके भारी जटाजूटपरसे गङ्गाके अगाध जलमें कूद पड़े किन्तु गङ्गा-जलकी ठण्ढक लगते ही जब वे सी-सी करके ठिठुरने लगे और उनके दाँत किटकिटाने लगे तब तत्काल पिताजीके तीसरे नेत्रकी जलती हुई अग्निकी लपटोंमें हाथ सेंकने लगे ॥ ५ ॥

गणेश और स्कन्द : माँका दूध पीते हुए उन स्वामि-कार्त्तिकेय और गणेशकी जय हो जो अपने हाथकी उँगलियोंसे माँके स्तन पकड़कर बड़े चावसे मुँहमें डाले हैं, गण्डस्थलमें उड़ते हुए भौंरोंको हाथ और सूँड़ हिला-हिलाकर उड़ाते हैं, तिरछी चितवनसे एक दूसरेको देखते हैं तथा बचपनके कारण अँगड़ाई-जँभाई लेते जा रहे हैं ॥ १ ॥ क्रमशः विघ्नों और राक्षसी पीड़ाका नाश करनेवाले, अपने-अपने पास बैठे चूहे और मोरको प्रेमसे देखनेवाले, कमलके समान हाथोंमें कमल तथा गदा और अङ्कुश आदि धारण करनेवाले, सुन्दर केशवाले, सुन्दर सजावटवाले, कोमल देहवाले, पिताजीकी गोदमें बैठे हुए वे कोई शिवजीके दोनों बालक सदा रक्षा करें जिन्हें देवता प्रणाम कर रहे हैं ॥ २ ॥

गण : सन्ध्याको हो चुकनेवाले ताण्डव नृत्यका आनन्द लेनेवाले तथा शङ्करजीकी टूटी हुई मालासे गिरी हुई खोपड़ियोंको इकट्ठा करनेमें लगे हुए वे गण आपकी रक्षा करें जिन्होंने खेल-खेलमें ही जब ग्रहोंके बीचसे राहुको बलपूर्वक पकड़ लिया तो सूर्य और चन्द्रमा प्रसन्नतासे मुस्कराते हुए अपनी किरणें फैलाने लगे ॥ १ ॥

नन्दी : गलेमें गहनेके रूपमें बँधे घण्टेके घनघन शब्दसे आकाश और पृथ्वी-रूपी खण्डको भर देनेवाले, शङ्करजीके पीठपर बैठ जानेसे और भी अधिक सुन्दर दिखाई देनेवाले, भावुकोंको अनुरक्त कर देनेवाले, चिकनी पीठवाले, अपने उजले डिल्लसे कैलासकी ऊँची चोटीको भी नीचा दिखानेवाले तथा

स्निग्धपृष्ठः। साक्षाद्धर्मो वपुष्मान्धवलककुदनिर्धूतकैलासकूटः कूटस्थो वः ककुद्मान्निबिडतरतमः स्तोमतृण्यां वितृण्यात् ॥ १ ॥

मन्मथः

स एव भुवनत्रयप्रथितसंयमः शङ्करो बिभर्त्ति वपुषाधुना विरहकातरः कामिनीम्। अनेन किल निर्जिता वयमिति प्रियायाः करं करेण परिताडयञ्जयति जातहासः स्मरः ॥ २६ ॥

रतिः—देवी रतिर्विजयते मृगनाभिचित्रपत्रावली पृथुपयोधरसीम्नि यस्याः। भाति त्रिलोकविजयोपनतस्वकान्तप्रक्रान्तसायकनिशातनकालिकेव ॥ १ ॥

सूर्यः

अतिविततगगनसरणिप्रसरणपरिमुक्तविश्रमानन्दः। मरुदुल्लासितसौरभकमलाकरहासकृद्रविर्जयति ॥ १ ॥ आदौ रक्तं पुना रक्तं मध्य उज्ज्वलभास्वरम्। दुर्निरीक्ष्यप्रभावन्तं दृश्यं द्रष्टारमाश्रये ॥ २ ॥ एकस्मिन्नयने भृशं तपति यः काले स दाहक्रमो येनातन्यत यत्प्रकाशसमयेनैषां पदं दुर्लभम्। सा व्योमावयवस्य यन्न विदिता लोके गतिः शाश्वती श्रीसूर्यः सुरसेवितोऽपि हि महादेवः स नस्त्रायताम् ॥३॥ कटुभिरपि कठोरचक्रवाकोत्करविरहज्वरशान्तिशीतवीर्यैः। तिमिरहतमयं महोभिरञ्जयति जगन्नयनौघमुष्णभानुः ॥४॥ करजालनपूर्वचेष्टितं वस्तदभीष्टप्रदमस्तु तिग्मभासः। क्रियते भवबन्धनाद्विमुक्तिः प्रणतानामुपसेवितेन येन ॥ ५ ॥ किं छत्रं किन्नु रत्नं तिलकमुत तथा कुण्डलं कौस्तुभो वा चक्रं वा वारिजं वेत्यमरयुवतिभिर्यद्बलिद्वेषिदेहे। ऊर्ध्वं मौलौ ललाटे श्रवसि हृदि करे नाभिदेशे च दृष्टं पायात्तद्वोऽर्कबिम्बं स च दनुजरिपुर्वर्धमानः क्रमेण ॥६॥ खं येऽत्युज्ज्वलयन्ति लूनतमसो ये चानखोद्भासिनो ये पुष्णन्ति सरोरुहश्रियमधिक्षिप्ताब्जभासश्च ये। ये

पहाड़पर बसनेवाले धर्मके साक्षात् स्वरूप नन्दी अत्यन्त घने तथा भयानक पापरूपी घासका ढेर चर जायँ ॥१॥

कामदेव

'यही वे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध शङ्करजी हैं जिन्होंने हमें जीत लिया है। अब देखो वे वियोगसे व्याकुल होकर प्रियतमाको अपने शरीरमें ही धारण किए हैं।' ऐसा कहकर हँसते हुए रतिके हाथपर वेगसे हाथ मारनेवाले कामदेवकी जय हो ॥ १ ॥

रति : उन रतिदेवीकी जय हो जिनके मोटे स्तनोंपर शोभा पाती हुई कस्तूरीकी चित्रकारी ऐसी जान पड़ती है मानो त्रिलोकीको जीतनेके लिये कामदेवके द्वारा तेज किए जाते हुए बाणकी कालिमा हो ॥ १ ॥

सूर्य

वायु जिनकी सुगन्धि उड़ाता फिरता है उन कमलोंके भण्डार तालाबको हँसानेवाले (विकसित करनेवाले) उन सूर्यकी जय हो जिन्होंने अत्यन्त लम्बे-चौड़े आकाश-मार्गमें निरन्तर चलते रहनेके लिये अपना विश्राम और आनन्द सब छोड़ दिया है ॥ १ ॥ सारे जगत्को देखनेवाले उन सूर्यकी शरणमें जाता हूँ जो उदय और अस्त होते समय लाल तथा दोपहरमें इतने अधिक चमकीले रहते हैं कि देखे नहीं जाते ॥ २ ॥ अपने एक ही नेत्रसे अत्यधिक तपनेवाले, प्रलयकालमें क्रमशः अपना ताप बढ़ानेवाले, आकाशके अंशके समान वे सबसे बड़े देव सूर्य हमारी रक्षा करें जिन्हें उदय होनेके पश्चात् कोई पा नहीं सकता तथा जिनकी नित्य गतिको संसारमें कोई नहीं जानता ॥ ३ ॥ उन सूर्यकी जय हो जिनकी किरणें तीक्ष्ण होते हुए भी चकवा-चकवीके भयङ्कर वियोगरूपी ज्वरको नष्ट करते समय शीतल हो जाती हैं और उन किरणोंसे संसारका अँधेरा दूर करते हुए जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो अँधेरेसे अन्धे हुए संसारके प्राणियोंके नेत्रोंमें प्रकाशका आँजन लगा रहे हों ॥ ४ ॥ अत्यन्त तेजस्वी सूर्यकी अद्भुत चालवाली वे किरणें आपके मनोरथ पूर्ण करें जो स्मरण करने मात्रसे भक्तोंको संसारके बन्धनोंसे मुक्त कर देती हैं ॥ ५ ॥ बलिको छलते समय जब वामन भगवान् क्रमशः ऊपरकी ओर बढ़ने लगे उस समय जिस सूर्य-मण्डलको देखकर देवताओंकी स्त्रियाँ क्रमशः यह सोचने लगीं कि—'क्या यह वामन भगवान्के ऊपर तना हुआ छत्र है या उनके मुकुटमें जड़ा हुआ रत्न है या उनके मस्तकमें लगा हुआ तिलक है या कानोंपर पहना हुआ कुण्डल है, या हृदयमें धारण किया हुआ कौस्तुभ-मणि है या हाथोंमें धारण किया हुआ चक्र या कमल है अथवा उनकी नाभिसे निकला हुआ कमल है, वह सूर्यका मण्डल तथा वे दैत्यको मारनेवाले वामन भगवान् आपकी रक्षा करें' ॥ ६ ॥ दिनके स्वामी सूर्यकी वे किरणें हमें ऐश्वर्य देनेवाली हों, जो अँधेरा नष्ट करके आकाशको अत्यन्त उज्ज्वल करती रहती हैं, जो सिरसे पैरतक चमकती रहती हैं, जो कमलोंकी शोभा बढ़ाती और उनमें कान्ति भरती रहती

मूर्धस्ववभासिनः क्षितिभृतां ये चामराणां शिरांस्याक्रामन्त्युभयेऽपि ते दिनपतेः पादा श्रियै सन्तु नः ॥ ७ ॥ खण्डितानेत्रकञ्जालिमञ्जुरञ्जनपण्डिताः । मण्डिताखिलदिक्प्रान्ताश्चण्डांशोः पान्तु भानवः ॥ ८ ॥ चक्री चक्रारपङ्क्तिं हरिरपि च हरीन्धूर्जटिर्धूर्ध्वजान्तानक्षं नक्षत्रनाथोऽरुणमपि वरुणः कूबराग्रं कुबेरः । रंहः सङ्घः सुराणां जगदुपकृतये नित्ययुक्तस्य यस्य स्तौति प्रीतिप्रसन्नोऽन्वहमहिमरुचेः सोऽवतात्स्यन्दनो वः ॥ ९ ॥ जम्भारातीभकुम्भोद्भवमिव दधतः सान्द्रसिन्दूररेणुं रक्तैः सिक्ता इवौघैरुदयगिरितटीधातुधाराद्रवस्य । आयान्त्या तुल्यकालं कमलवनरुचेवारुणा वो विभूत्यै भूयासुर्भासयन्तो भुवनमभिनवा भानवो भानवीयाः ॥ १० ॥ निपीतध्वान्ताय प्रसृमरकरायोग्रमहसे निकामं कामानां वितरणविनोदव्यसनिने । समस्तप्रत्यूहप्रशमनकृते श्रीदिनकृते नमस्तस्मै यस्मै स्पृहयति समस्ताम्बुजततिः ॥११॥ प्राचीकुङ्कुमतिलकं पूर्वाचलरोहणैकमाणिक्यम् । त्रिभुवनगृहैकदीपं वन्दे लोकैकलोचनं देवम् ॥ १२ ॥ ब्रह्माण्डसम्पुटकलेवरमध्यवर्त्ति चैतन्यपिण्डमिव मण्डलमस्ति यस्य । आलोकितोऽपि दुरितानि निहन्ति यस्तं मार्तण्डमादिपुरुषं प्रणमामि नित्यम् ॥ १३ ॥ भक्तिप्रह्वाय दातुं मुकुटपुटकुटीकोटरक्रोडलीनां लक्ष्मीमाक्रष्टुकामा इव कमलवनोद्घाटनं कुर्वते ये । कालाकारान्धकाराननपतितजगत्साध्वसध्वंसकल्याः कल्याणं वः क्रियासुः किसलयरुचयस्ते करा भास्करस्य ॥ १४ ॥ यद्बिम्बमम्बरमणिर्यदपां प्रसूतिर्नक्तं निषिञ्चति यदग्निशिखासु भासः । ज्योत्स्ना निशासु हिमधाम्नि च यन्मयूखाः पूषा पुराणपुरुषः स नमोऽस्तु तस्मै ॥ १५ ॥ युष्माकमम्बरमणेः प्रथमे मयूखास्ते मङ्गलं विदधतूदयरागभाजः । कुर्वन्ति ये दिवसजन्ममहोत्सवेषु सिन्दूरपाटलमुखीरिव दिक्पुरन्ध्रीः ॥ १६ ॥ यो रक्ततामतितरामतुलं दधानो दिक्प्रौढदारनृह मोहनवासवासः । योषिद्द्वयीपतिवि-

---

हैं, जो महाराजाओंके मुकुटोंमें चमकती रहती हैं और जो देवताओंके सिरके ऊपर घूमती रहती हैं ॥ ७ ॥ खण्डिता नायिकाके कमल-नयनोंको विकसित करनेमें चतुर तथा सब दिशाओंकी शोभा बढ़ानेवाली सूर्यकी किरणें रक्षा करें ॥ ८ ॥ सदा संसारकी भलाईमें लगे रहनेवाले तथा उष्ण किरणवाले सूर्यका वह रथ आपकी रक्षा करे जिसके पहिएकी विष्णु भगवान्, घोड़ोंकी इन्द्र, सामनेके भागकी शिवजी, धुरेकी चन्द्रमा, अरुण (सारथी) की वरुण, जुएकी कुबेर तथा वेगकी सब देवता स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ जम्भासुरके शत्रु इन्द्रके ऐरावत हाथीके मस्तकमें लगे हुए घने सिन्दूरकी धूलकी भाँति लाली धारण करके उदय होते हुए सूर्यकी वे नई लाल-लाल किरणें आपको ऐश्वर्य दें जो ऐसी जान पड़ती हैं मानो उदयाचलसे बहती हुई गेरूकी धारासे रँगी हुई हों अथवा कमलोंके खिलनेके साथ ही उदय होनेसे जिनपर उन कमलोंकी ललाई पड़ रही हो ॥ १० ॥ सब प्रकारके विघ्न शान्त करनेवाले तथा अँधेरी पी डालनेवाले उन अत्यन्त तेजस्वी सूर्यको प्रणाम है जो जी भरकर भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करके अपना मन बहलाते रहते हैं तथा जिन्हें कमलोंके समुदाय सदा चाहते हैं ॥ ११ ॥ सारे संसारके एक-मात्र नेत्ररूपी उन श्रीसूर्यको प्रणाम करता हूँ जो मानो पूर्व दिशामें लगे हुए कुङ्कुमके तिलक हैं अथवा त्रिलोकीरूपी गृहके एक-मात्र दीपक हैं अथवा उदयाचलके शिखररूपी मुकुटमें जड़े हुए एकमात्र माणिक्य हैं ॥ १२ ॥ सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले उन सूर्यको सदा प्रणाम करता हूँ जिनका मण्डल ब्रह्माण्डरूपी डिबियाके बीचमें चेतन गोलेके समान चमकता है तथा जिन्हें देख लेने-मात्रसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१३॥ अन्धकाररूपी कारागारके मुँहमें पड़े सारे संसारके पापोंका नाश करनेमें चतुर तथा नये पत्तोंके समान लाल कान्तिवाली वे सूर्यकी किरणें आपका कल्याण करें जो भक्तिसे पुलकित भक्तोंको पंखुड़ीरूपी कुटियाकी गोदमें सोती हुई लक्ष्मी देनेके निमित्त कमलकी (लक्ष्मी) से स्वीकृति लेनेके लिये ही मानो कमल-वनको विकसित करते हों ॥ १४ ॥ उन प्राचीन पुरुष सूर्यको प्रणाम है जिनका मण्डल आकाशमें मणिके समान चमकता है, जो जल उत्पन्न करनेवाले हैं, जो रातको अग्निकी लपटोंमें तेज बरसा देते हैं तथा जिनकी किरणें रातको चन्द्रमामें चाँदनी भर देती हैं ॥१५॥ उदय होते हुए आकाशके मणि (सूर्य) की वे लाल-लाल किरणें आपका कल्याण करें जो ऐसी जान पड़ती हैं मानो दिनके जन्मोत्सवमें दिशारूपी स्त्रियोंके मुँह सिन्दूरसे रँग रही हों ॥१६॥ दो स्त्रियों (संज्ञा और छाया) के पति होनेकी विडम्बना धारण करनेवाले (दो स्त्रीवाले), पाप-समूहको हरनेवाले तथा अत्यन्त गाढ़ी ललाई धारण करनेवाले वे सूर्य सदा हमारी रक्षा करें जिन्होंने मानो दिशाओं-रूपी युवतियोंको रिझानेके लिये ही लाल वस्त्र धारण कर रक्खे हों ॥१७॥ कमलके वनोंको खिला देनेवाले,

डम्बनभृत्स शश्वत्पायादपायसमुदायहरो रविर्नः ॥१७॥ लालयन्तमरविन्दवनानि चालयन्तमभितो भुवनानि। पालयन्तमथ कोककुलानि ज्योतिषां पतिमहं महयामि ॥ १८ ॥ शीर्णघ्राणाङ्घ्रिपाणीन्व्रणिभिरपघनैर्घर्घराव्यक्तघोषान्दीर्घाघ्रातानघौघैः पुनरपि घटयत्येक उल्लाघयन्यः। घर्मांशोस्तस्य वोऽन्तर्द्विगुणघनघृणानिघ्ननिर्विघ्नवृत्तेर्दत्तार्घाः सिद्धसङ्घैर्विदधतु घृणयः शीघ्रमंहोविघातम् ॥ १९ ॥ शुकतुण्डच्छवि सवितुश्चण्डरुचेः पुण्डरीकवनबन्धोः। मण्डलमुदितं वन्दे कुण्डलमाखण्डलाशायाः ॥ २० ॥ साटोपव्योमहट्टोपितरजनिवणिङ्नायकोन्मुक्ततारा मुक्ताहारापहारात्तरलखगरवप्रोत्थिताकीर्त्तिशान्त्यै। कर्षन्नम्भोजकुम्भोदरकुहरबहिर्निःसरत्षट्पदालीकालव्यालीं करेणाकलयतु दिनकृत्कल्मषोन्मूलनं वः ॥ २१ ॥ सिन्दूरस्पृहया स्पृशन्ति करिणां कुम्भस्थमाधोरणा भिल्ली पल्लवशङ्कया विचिनुते सान्द्रद्रुमद्रोणिषु। कान्ताः कुङ्कुमशङ्कया करतले मृद्नन्ति लग्नश्च यत्तत्तेजः प्रथमोद्धवं भ्रमकरं सौरश्चिरं पातु वः ॥ २२ ॥ सिन्दूराणीव सीदत्कृपणकुलवधूमूर्ध्नि ये सञ्चरन्तः प्रेक्ष्यन्ते दिक्षु शैलाः शिखरभुवि लसत्पद्मरागाङ्कुरा यैः। धुन्वन्ते धौतधाराः सह दुरितचयैर्दूरदृश्याः सुदृश्या पान्तु त्वां पद्मबन्धोरकरणकिरणाः पूरणाः पद्मबन्धोः ॥ २३ ॥

सूर्यतुरगाः—अवतु नः सवितुस्तुरगावली समतिलङ्घिततुङ्गपयोधरा। स्फुरितमध्यगतारुणनायका मरकतैकलतेव नभश्रियः ॥ १ ॥ निरालम्बमपि प्राप्याक्रामन्तोऽनुदिनञ्जगत्। अनूरोर्यमनायत्ताः श्रिये सन्तु रवेर्हयाः ॥ २ ॥

चन्द्रः

नित्यं कुवलयोल्लासवर्धनैकपरायणः। आदधत्सर्वतः शान्तिमेष भाति द्विजेश्वरः॥ १ ॥ भो भो चन्द्र! कलानिधानमसि यत्त्वां तन्न पूर्णं सदा द्रष्टुं वाञ्छति

सब लोकोंको चारों ओरसे धो देनेवाले, चकवा-चकवियोंका पालन करनेवाले तथा नक्षत्रों एवं ग्रहोंके स्वामी सूर्यका मैं आदर करता हूँ ॥ १८ ॥ जिन लोगोंके हाथ, पैर, नाक आदि अङ्ग सड़ गए हैं, शरीरोंमें घाव होनेके कारण जो अस्पष्ट घर-घर शब्द कर रहे हैं तथा जिन्हें बहुत समयसे पापोंके समूह ग्रसे हुए हैं, ऐसे लोगोंको भी स्वस्थ करके एक-सा बना देनेवाले और अपने भीतरकी अत्यन्त कृपाके कारण निर्दोष आचरणवाले सूर्यकी वे किरणें शीघ्र ही आपके पाप नष्ट करें जिन्हें सिद्धोंके समूह अर्घ्य दिया करते हैं ॥१९॥ सुग्गेकी चोंचके समान लाल कान्तिवाले, प्रचण्ड तेजवाले तथा कमल-वनके प्यारे, तत्काल उदय हुए सूर्यके उस मण्डलको प्रणाम करता हूँ जो मानो इन्द्रकी पूर्व दिशारूपी नायिकाके कुण्डल हों ॥ २० ॥ बड़े भारी आकाशरूपी हाटमें बैठी रात्रिरूपी नायिकाके लिये चन्द्ररूपी नायकने जो तारारूपी मोतियोंके हार फैलाए तो उन्हें चुराते समय बीचमें ही पक्षियोंके कोलाहल किए जानेपर इस अकीर्त्तिको दबानेके लिये तत्काल कमलरूपी घड़ोंके भीतरसे बाहर निकलती हुई भौंरोंकी पाँतरूपी काली नागिनको किरणों (हाथों) से खींचते हुए, दिनको रचनेवाले सूर्य आपके पापोंको जड़से नष्ट कर दें ॥ २१ ॥ हाथियोंके मस्तकों, वृक्षों और स्त्रियोंके हाथोंपर पड़ी हुई तत्काल उदय हुए सूर्यकी वह कान्ति सदा आपकी रक्षा करे जिसे क्रमशः महावत भ्रमसे सिन्दूर समझकर छूते हैं, भीलनी नये कोमल पत्ते समझकर तोड़ती हैं और स्त्रियाँ कुङ्कुम समझकर मलती हैं ॥ २२ ॥ पापोंके साथ-साथ अन्धकारका भी नाश करनेवाली, दूरसे ही सुन्दर दिखाई देनेवाली तथा कमलोंकी इच्छाएँ पूर्ण करनेवाली वे बिना देहवाली सूर्यकी किरणें आपकी रक्षा करें जो कृपणके घरोंकी सिन्दूर न पानेवाली दुखी स्त्रियोंकी माँगोंमें पड़कर सिन्दूरके समान तथा पर्वतकी चोटियोंपर पड़कर पद्मराग मणिके चमकीले अङ्कुरोंके समान शोभित होती हैं ॥ २३ ॥

सूर्यके घोड़े : ऊँचे-ऊँचे मेघोंको लाँघनेवाले सूर्यके घोड़ोंकी वह पाँत हमारी रक्षा करे जिसके बीचमें चमकते हुए अरुण (सारथी) ऐसे जान पड़ते हैं मानो आकाशकी शोभा (नीलिमा) रूपी मरकत मणिकी मालामें लाल रङ्गका सुमेरु गूँथा गया हो ॥ १ ॥ अनूरु (सारथी) के शासनमें चलनेवाले वे सूर्यके घोड़े ऐश्वर्य दें जो प्रतिदिन शून्य आकाशमें चलकर सारे संसारका भ्रमण करते रहते हैं ॥ २ ॥

चन्द्रमा

सदा कुमुदिनियोंको विकसित करनेमें लगे हुए तथा चारों ओर शान्ति रखनेवाले ये चन्द्रमा चमक रहे हैं ॥ १ ॥ हे चन्द्रदेव! आप कलाओंके भण्डार हैं, इसीलिये सारे संसारको तपानेवाला तेजस्वी सूर्य आपकी पूर्णता नहीं देख सकता। छोड़िए इस बातको, आप कृपया अपनी शान्ति न छोड़िए तथा

लोकतापनपरस्तेजस्वितागर्भभृत् । तत्स्थाने द्विजराज किन्तु भवता हेया न सा शान्तता स्वोल्लासाय कला विलासय यतः सोऽस्तं स्वयं पत्स्यते ॥ २ ॥ रविमावसते सतां क्रियायै सुधया तर्पयते सुरान्पितॄंश्च । तमसां निशि मूर्च्छतां विहन्त्रे हरचूडानिहितात्मने नमस्ते ॥ ३ ॥ स्वर्भानुप्रतिवारपारणमिलद्दन्तौघयन्त्रोद्भवश्वभ्रालीपतयालुदीधितिसुधासारस्तुषारद्युतिः । पुष्पेष्वासनतातिप्रियापरिणयानन्दाभिषेकोत्सवे देवः प्राप्तसहस्रधारकलशश्रीरस्तु नस्तुष्टये ॥ ४ ॥

पृथ्वी

अयि सर्वसहे देवि त्वां नमामि पुनः पुनः । यदिमं दुर्भरं भारं वहन्त्यपि न खिद्यसि ॥ १ ॥ नानाम्भोनिधयः शिलोच्चयगणाः हिंस्राश्च सिंहादयो बाधन्ते भवतीं सदैव वसुधे मूर्त्तिः क्षमायाः मता । किं ब्रूयामितरद्भवन्ति पतयो येऽमी भवत्या मताः सैन्यौघैर्वत तेऽपि भूरि सततं बाधन्त एवोद्धताः ॥ २ ॥ स्वर्गौकोभिरदोनिवासिपुरुषारब्धातिशुद्धाध्वरस्वाहाकारवषट्क्रियोत्थममृतं स्वादीय आदीयते । आम्नायप्रवणैरलङ्कृतिजुषेऽमुष्यै मनुष्यैः शुभैर्दिव्यक्षेत्रसरित्पवित्रवपुषे देव्यै पृथिव्यै नमः ॥ ३ ॥

वारणः

कुम्भद्वयं तदमरद्विरदस्य वोऽव्यादुद्धियमानमुदधेर्मथनावसाने । प्रोद्यद्द्वितीयकमलाकुचशङ्किनीभिः सेर्ष्यं यदैक्षत सुरासुरसुन्दरीभिः ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमन्नारायणस्वामिभिः सङ्कलिते सूक्तिसागरे देवसूक्तय इत्यभिधानकं सानुवादं प्रथमप्रकरणं सम्पूर्णम् ॥

देवताओंके आनन्दके लिये अपनी कलाएँ बढ़ाते रहिए, क्योंकि सूर्य तो अस्त होकर गिरेगा ही ॥२॥ सज्जनोंके धार्मिक कार्य पूरे करनेके लिये सूर्यमें निवास करनेवाले, देवताओं तथा पितरोंको अमृतसे सन्तुष्ट करनेवाले, रातमें अँधेरा नष्ट करनेके लिये भ्रमण करनेवाले तथा शिवजीके मस्तकमें निवास करनेवाले चन्द्रदेवको प्रणाम है ॥३॥ पालेके समान कान्तिवाले वे चन्द्रदेव हमें सन्तोष दें जिनपर बार-बार निगलनेका प्रयत्न करनेवाले राहुके दाँतरूपी कीलोंके चुभनेसे बने हुए बहुतसे छेदोंमेंसे अमृत जैसा श्रेष्ठ पदार्थ चू रहा है तथा जो रति और कामदेवके विवाहमें सहस्र धारावाले कलशके समान शोभित होते थे ॥ ४ ॥

पृथिवी

सब कुछ सहन करनेवाली हे देवि ! आप इतना भारी बोझ ढोते हुए भी नहीं थकतीं ? मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥ हे पृथ्वी देवि ! अनेक समुद्र, पर्वतोंके समूह तथा सिंह आदि हिंसक प्राणी आपको सदा कष्ट देते हैं। अधिक क्या कहें, आपकी ही कृपासे आपके स्वामी बने हुए ये महाराज भी उद्दण्ड होकर अपनी बड़ी-बड़ी सेनाओंके समूहोंसे आपको सदा कष्ट ही देते हैं। आप सचमुच क्षमाकी मूर्त्ति ही हैं ॥ २ ॥ अनेक तीर्थ और नदियोंसे पवित्र देहवाली उस पृथ्वी देवीको प्रणाम है, जिसमें वेद-पुराण आदिके माननेवाले सब मनुष्य आभूषणके समान हैं और जिसमें बसनेवाले मनुष्योंके पवित्र यज्ञोंमें स्वाहा और वषट्कारात्मक क्रियाओंसे उत्पन्न अमृतको स्वर्गके निवासी देवता भी बड़े स्वादके साथ चखते हैं ॥ ३ ॥

ऐरावत

समुद्र मथनेपर उससे निकलते हुए देवताओंके हाथी (ऐरावत) के वे दोनों गण्डस्थल (कनपटी) आपकी रक्षा करें जिन्हें देवता और असुरोंकी स्त्रियोंने दूसरी निकलती हुई लक्ष्मीके स्तन समझकर ईर्ष्यापूर्वक देखा था ॥ १ ॥

॥ श्री १०८ नारायण-स्वामी-द्वारा सङ्कलित सूक्तिसागरका देवसूक्ति नामक प्रथम प्रकरण अनुवादसहित पूर्ण हुआ ॥

रससूक्तयः

तामनङ्गजयमङ्गलश्रियं किञ्चिदुच्चभुजमूललोकिताम्।
नेत्रयोः कृतवतोऽस्य गोचरे कोऽप्यजायत रसो निरन्तरः॥ १॥
नायकनायिकयोर्विलासचरितं दृष्ट्वा सुधापूरितं नानाहावसुभावरागललितं वागङ्गचेष्टायुतम्।
सद्यो यद्रसराड्रसज्ञहृदये सञ्जायते सद्रसस्तच्छृङ्गाररसः रसाशनप्रियः प्रेयस्सदा पातु वः॥ २॥

[कामदेवकी शोभाको जीतनेवाली यह कल्याणकारी शोभावाली कामिनी जब अपने हाथ उठाती है उस समय दिखाई देनेवाले उसके स्तनोंको देखकर इस युवकके हृदयमें कोई (श्रृङ्गार) रस निरन्तर उत्पन्न होने लगा॥ १॥ नायक और नायिकाकी अनेक हाव-भाव, अनुराग तथा वाणी और अङ्गकी चेष्टाओंसे भरी अमृतमयी प्रेम-लीलाएँ देखकर रसका स्वाद लेनेवाले रसिक सहृदयके हृदयमें जो सब रसोंका राजा 'श्रृङ्गाररस' नामक सुन्दर और प्रिय आनन्द उत्पन्न होता है वह आप लोगोंकी रक्षा करे॥ २॥]

श्रृङ्गारप्रकरणे कामप्रशंसा

अनङ्गेनाबलासङ्गाज्जिता येन जगत्त्रयी। स चित्रचरितः कामः सर्वकामप्रदोऽस्तु वः॥ १॥ अबला अपि वीरेशान्यत्साहाय्यमुपाश्रिताः। पराभवन्ति दृक्कोणपातेनैव स मन्मथः॥ २॥ अबलानां दृशैवाशु यो निहन्ति बलीयसः। तस्मै कुसुमबाणाय नमो लोकोत्तरौजसे॥ ३॥ इक्षुर्धन्व शराः प्रसूनविततिर्भृङ्गावली शिञ्जिनी यस्याज्ञावशवर्त्तिनः प्रमनसो निर्विघ्नराष्ट्रादयः। यद्बाणाभिहता विरिञ्चिमुरजिन्मृत्युञ्जयेन्द्रादयो व्याप्ताशेषमखा इव त्रिभुवनं पायादजेयः स्मरः॥४॥ एकं वस्तु द्विधा कर्त्तुं बहवः सन्ति धन्विनः। धन्वी स मार एवैको द्वयोरैक्यं करोति यः॥ ५॥ कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान्यो जने जने। नमोऽस्त्वपारवीर्याय तस्मै मकरकेतवे॥ ६॥ कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुलश्रोणीभरेत्युन्नमत्पीनोत्तुङ्गपयोधरेति सुमुखाम्भोजेति

श्रृङ्गार रसके प्रकरणमें कामदेवकी प्रशंसा

बिना शरीरवाला होनेपर भी जिसने अबला (निर्बल स्त्री) के सहयोगसे तीनों लोक जीत लिए, वह अद्भुत करतब करनेवाला कामदेव आप लोगोंकी सब कामनाएँ पूरी करे॥ १॥ यह कामदेव ही है जिसका सहारा पाकर बड़े-बड़े वीरोंको भी केवल अपनी तिरछी चितवन मात्रसे स्त्रियाँ घायल कर डालती हैं॥ २॥ जो फूलोंके बाण धारण करनेवाला केवल अबलाओंके नेत्रोंसे ही बड़े-बड़े वीरोंको घायल कर डालता है उस अद्वितीय शक्तिवाले कामदेवको नमस्कार है॥ ३॥ ईख ही जिसका धनुष है, फूलोंके समूह ही जिसके बाण हैं, भौंरे ही जिसके धनुषकी डोरी हैं, ऊँचे मनवाले विभिन्न राष्ट्रोंके लोग ही जिसकी आज्ञा पालन करनेवाले सेवक हैं, ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर तथा इन्द्र आदि भी जिसके बाणसे घायल किए जा चुके हैं और जो सब यज्ञोंके समान तीनों लोकोंमें व्याप्त है, वह किसीसे भी जीता न जा सकनेवाला कामदेव आप लोगोंकी रक्षा करे॥ ४॥ ऐसे तो बहुतसे धनुषधारी वीर हैं जो किसी वस्तुके दो टूक कर दें किन्तु दो (चित्तों) को एकमें मिला देनेवाला धनुषधारी वीर यदि कोई है तो वह केवल कामदेव ही है॥ ५॥ कपूरके समान जल जानेपर भी जो संसारके प्रत्येक व्यक्तिपर अपनी धौंस जमाए हुए है, उस मकरकी ध्वजावाले अपार बलशाली कामदेवको प्रणाम है॥ ६॥ आह! कामदेवकी ये चेष्टाएँ कैसी अनुचित और अचरज-भरी हैं कि

सुभ्रूरिति। दृष्ट्वा माद्यति मोदतेऽभिरमते प्रस्तौति विद्वानपि प्रत्यक्षाशुचिपुत्रिकां स्त्रियमहो कामस्य दुश्चेष्टितम् ॥ ७ ॥ कुमारा वा जरन्तो वा सन्तु काममुपेक्षिताः। इतरे किन्तु सर्वेऽपि कन्दर्पेण सुमर्दिताः ॥८॥ कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य। अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता जयति सुरतलीलानाटिकासूत्रधारः ॥ ९ ॥ को नाम त्रिषु लोकेषु कामेन न पराजितः। वयं तु विजितं येन पश्यामो भुवनत्रयम् ॥ १० ॥ चन्द्रं शीतलयत्यलीकनयनं शम्भोः सुधाशीकरैर्विष्वग्व्याकुलयत्सु संयमधनान्कान्तादृगन्तेषु च। लीलायै परमैक्षवं धनुरिषून्विभ्रत्प्रसूनात्मनः स्वच्छन्दं रतिवल्लभो विजयते त्रैलोक्यवीरः स्मरः ॥ ११ ॥ चेतोभुवश्चापवति प्रसङ्गे का वा कथा मानुषलोकभाजाम्। हर्तुः पुरामप्यलिकेक्षणस्य तथाविधं पौरुषमर्धमासीत् ॥ १२ ॥ जयति मनसिजः सुखैकहेतुर्मिथुनकुलस्य वियोगिनां कठोरः। वपुषि यदिषुपातवारणार्थं वहति वधूं शशिखण्डमण्डनोऽपि ॥ १३ ॥ न कठोरं न वा तीक्ष्णमायुधं पुष्पधन्वनः। तथपि जितमेवासीदमुना भुवनत्रयम् ॥ १४ ॥ न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्यविषयो न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशतैः। भ्रमावेशादङ्गे किमपि विदधद्भङ्गमसमं स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च ॥ १५ ॥ प्रासादीयति वैणवादिगहनं दीपीयति ध्वान्तमः पर्यङ्कीयति भूतलं दृषदपि श्लक्ष्णोपधानीयति। कस्तूरीयति कर्दमः किमपरं यूनो रसाविष्टयोर्येनालोकितयोस्स वन्द्यमहिमा देवो नमस्यः स्मरः ॥ १६ ॥ बाणेष्वारोप्य गुणान्विधाय चापं वियो-

---

अपवित्रताकी पुतली नारीको देखकर विचारवान् पुरुष भी उसे कान्ता (सुन्दरी), कमलके समान नेत्रोंवाली, बड़े-बड़े नितम्बोंवाली, मोटे-मोटे और उठे हुए स्तनोंवाली, कमलके समान सुन्दर मुखवाली और सुन्दर भौंहोंवाली कहकर उसपर मस्त होता है, प्रसन्न होता है, रीझता है और उसके गुण बखानता है ॥ ७ ॥ केवल बालक और वृद्ध ही ऐसे बचे हुए हैं जो कामदेवकी चपेटमें नहीं आते अन्यथा इनके अतिरिक्त सबको कामदेवने चुटकीसे मसल दिया है ॥८॥ अनेक पीढ़ियोंसे स्त्रियोंको काम-क्रीड़ाका उपदेश देनेवाला, रोहिणीके पति चन्द्रमाका लँगोटिया यार, फूलोंके बाणोंसे भगवान् शङ्करको भी जीत लेनेवाला और काम-क्रीड़ाके नाटकको आरम्भ करनेवाला सूत्रधार कामदेव ही सबसे अधिक जय प्राप्त करनेवाला है ॥ ९ ॥ तीनों लोकोंमें कौन ऐसा माईका लाल है जिसे कामदेवने पीड़ित न कर दिया हो! हम तो समझते हैं कि तीनों लोकोंको यदि कोई जीत पाया है तो वह कामदेव ही है ॥ १० ॥ जब इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले महात्माओंको भी स्त्रियोंकी बाँकी चितवन घायल कर देती हैं और जब अपनी किरणोंकी अमृत-वर्षासे भगवान् शङ्करके नेत्रोंको ठण्ढा करनेवाला चन्द्रमा भी सबको व्याकुल कर सकता है तब निर्भय होकर रतिको प्यारा लगनेवाला और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध वीर कामदेव यदि ईखके धनुषपर फूलोंके बाण चढ़ाकर बातकी-बातमें विजय प्राप्त कर ले रहा है तो आश्चर्य क्या है! उसे तो तीनों लोकोंपर विजय पानी ही चाहिए ॥ ११ ॥ जब त्रिपुरका नाश करनेवाले तथा अग्निके नेत्रवाले भगवान् शङ्करजीका बल भी धनुषधारी कामदेवके सामने आधा हो गया तब साधारण मनुष्य किस गिनतीमें हैं ॥ १२ ॥ जिसके बाणोंकी वर्षासे बचनेके लिये चन्द्रमाको अपना भूषण बनानेवाले शङ्करजी भी अपनी पत्नीके साथ ही निवास करते हैं, वह एक साथ रहनेवाले पति-पत्नीको सुख देनेवाला, वियोगियोंको दुःख देनेवाला और मनसे उत्पन्न होनेवाला कामदेव सबको जीतता चला जा रहा है ॥१३॥ फूलोंका धनुष धारण करनेवाले कामदेवके अस्त्र न तो कठोर ही हैं और न बहुत तीखे ही, फिर भी आश्चर्य तो यह है कि उसने तीनों लोक जीतकर अपनी मुट्ठीमें कर लिए हैं ॥ १४ ॥ जिसमें न तो मन्त्र कुछ कर सकते हैं, न औषधियोंसे काम चल सकता है, न शान्तिके उपायोंसे ही कुछ लाभ होता है वह एक विचित्र (प्रेमका) रोग सारे शरीरमें सहसा ऐंठन उत्पन्न करता हुआ, स्मरण मात्रसे उत्पन्न होनेवाले मिरगी रोगके समान शरीरमें ऐसा आ घुसता है कि माथा घूमने लगता है और आँखें चकरा जाती हैं ॥ १५ ॥ जिस कामदेवकी दृष्टि पड़नेपर बँसवारीकी ऊबड़-खाबड़ धरती ही अटारियोंके समान आनन्द देनेवाली बन जाती हो, घना अँधेरा ही दीपकके समान प्रकाश-दाता हो जाता हो, धरती ही सुन्दर पलँग बन जाती हो, पत्थरके टुकड़े अत्यन्त ही सुन्दर तकिएका आनन्द देने लगते हों, यहाँतक कि कीचड़ भी कस्तूरीके समान सुहावनी लगने लगती हो, वह महिमाशाली कामदेव सचमुच प्रणाम करने योग्य है ॥ १६ ॥ संसारके सब धनुषधारियोंमें यह

गिनीनयने । स्वयमतनुर्जगदेतज्जयति सुमास्त्रो विचित्रधानुष्कः ॥ १७ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाना अपि कामेन निर्जिताः । इतरे तत्पराभूता इति किं चरितं महत् ॥ १८ ॥ ब्रह्मा वा मधुहापि वा पुररिपुर्वापि त्रिलोकीश्वरम्मन्या वाच्यपरे भवन्तु कृतिनस्तावत्स्तुतास्सर्वतः । यावत्पुष्पशरस्य लक्ष्यविषयीभूता न हा तत्परं स्वस्त्रीणामपि किङ्कराः किमु भवेत्तुल्यं बलं तादृशाम् ॥ १९ ॥ भस्मीभूतशरीरोऽपि पुष्पधन्वापि वा भवान् । विश्वं व्याकुलयत्येव स एव परमेश्वरः ॥ २० ॥ याभिरनङ्गः साङ्गीकृतः स्त्रियोऽस्त्रीकृताश्च ता येन । वामाचरणप्रवणौ प्रणमत तौ कामिनीकामौ ॥ २१ ॥ वक्षःस्थलीवदनवामशरीरभागैः पुष्यन्ति यस्य विभुतां पुरुषास्त्रयोऽपि । सोऽयं जगत्त्रितयजित्वरचापधारी मारः परान्प्रहरतीति न विस्मयाय ॥ २२ ॥ वयं वीरा वयं वीरा इति गर्जन्तु तेऽनिशम् । ताञ्जयन्त्यचला यस्य सङ्गात्तं स्तौमि मन्मथम् ॥ २३ ॥ शतशो धन्विनः सन्तु धीरम्मन्या वतस्ततः । वयं त्वेकं स्तुमः कामं तादृशामपि यो जयी ॥ २४ ॥ शम्भुस्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानां येनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः । वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥ २५ ॥ शिव शिव हि शिवेन पुष्पधन्वा प्रलयनटेन किमित्यकारि भस्म । स हि पुनरुदितश्छलाय लोके स तु मणिमन्त्रमहौषधैरसाध्यः ॥ २६ ॥ स एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुधः । हरतापि तनुं यस्य शम्भुना न हृतं बलम् ॥ २७ ॥ सन्त्यज्य देहमपि यो निशिताञ्शरांश्च कृत्वाऽवलैकनिचयं स सहायवर्गम् । यो देवदानवमनुष्यसरीसृपादीन्सर्वान्विजित्य हृदि नः स सुमेपुरीड्यः ॥ २८ ॥ सम्पदमतरललभ्यामनन्यसा-

---

कोई निराला ही धनुपधारी है जो विना शरीरका होकर वाणोंपर गुण (डोरी) चढ़ाकर वियोगिनी स्त्रियोंके नेत्रोंका धनुप लेकर फूलोंके अस्त्रोंसे ही तीनों लोकोंको जीतता चला जा रहा है ॥ १७ ॥ इस कामदेवने जब ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजीको भी छका दिया है तब अन्य साधारण लोग यदि उससे हार गए हों तो कौन बड़ी बात है ॥ १८ ॥ अपनेको त्रिलोकीश्वर माननेवाले ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्करजी जैसे अथवा अन्य लोग तभीतक प्रशंसाके योग्य हैं जबतक वे कामदेवके आखेट नहीं बन जाते हैं क्योंकि कामदेवकी चपेटमें आ जानेपर तो वे सबके सब अपनी-अपनी पत्नियोंके दास बन जाते हैं ॥ १९ ॥ शङ्करजीके तीसरे नेत्रसे भस्म हो जानेपर और केवल फूलोंके धनुपसे काम लेनेपर भी जो सारे संसारको व्याकुल कर देता है, वही (कामदेव ही) वास्तवमें सबसे बड़ा परमेश्वर है ॥ २० ॥ हे मनुष्यो ! जिन कामिनियोंने विना शरीरवाले कामदेवको भी सब अङ्गोंसे पूर्ण कर दिया है और जिस कामदेवने स्त्रियोंको ही अपना अस्त्र बना रक्खा है इन दोनों उलटा आचरण करनेवाली कामिनी और कामको सिर झुकाकर प्रणाम करो ॥ २१ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर ये तीनों भी जब अपनी-अपनी पत्नियोंको क्रमशः अपने मुख, हृदय और शरीरके बाएँ भागमें बसाकर कामदेवका लोहा मान रहे हैं तब वह तीनों लोकोंको जीतनेके लिये धनुप धारण करनेवाला कामदेव यदि अन्य लोगोंको भी चपेटे डाल रहा हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं ॥ २२ ॥ जो लोग यह कहकर अपनी डींग हाँका करते हैं कि 'हम वीर हैं, हम वीर हैं' उन्हें भी कामिनी क्षण भरमें जीत लेती है । इसका श्रेय मैं कामदेवको ही देता हूँ क्योंकि उसीके सङ्गसे तो वह सबको जीत पाती है ॥ २३ ॥ ऐसे सैकड़ों धनुपधारी हो सकते हैं जो अपने आपको बड़ा धीर मानते हों किन्तु हम तो उस कामदेवका ही लोहा मानते हैं जो उन धनुपधारियोंको भी जीत लेता है ॥२४॥ वाणीकी पहुँचसे परे और अद्भुत चरित्रवाले उस फूलोंके अस्त्र धारण करनेवाले भगवान् कामदेवको प्रणाम है जिसने शङ्कर, ब्रह्मा और विष्णुको भी अपनी हरिणके नेत्रोंके समान आँखोंवाली पत्नियोंके घरोंमें काम करनेवाला चाकर बना दिया है ॥ २५ ॥ शिव ! शिव !! भला बताइए तो कि प्रलयकालके समय नाचनेवाले शिवने फूलोंका धनुप धारण करनेवाले कामदेवको भस्म करके किया क्या, क्योंकि वह तो अब मणि, मन्त्र और औषधि, सबके प्रभावसे निकलकर संसारको ठगनेके लिये फिर संसारमें आ धमका है ॥ २६ ॥ जिसका शरीर नष्ट करके भी भगवान् शङ्कर उसका बल नहीं नष्ट कर सके वह कामदेव अपने फूलोंके अस्त्रसे विना किसीकी सहायताके ही अकेला तीनों लोकोंको जीतता रहता है ॥ २७ ॥ जो अपनी देहका त्याग करके भी अपने नुकीले वाणों तथा वसन्त आदिकी सहायतासे देवता राक्षस, मनुष्य तथा सर्प आदि जीवोंको जीत चुका है, उस फूलोंका धनुप धारण करनेवाले कामदेवका हम अपने हृदयमें आदर करते हैं ॥ २८ ॥ गम्भीर स्वभाववाले व्यक्तियोंको भी न मिल सकनेवाली सम्पत्तिका जो स्वामी है, असाधारण

मान्यवहलदर्पनिधेः। पुष्णातु चित्तयोनेरघटितघटनापटीयसी विभुता ॥ २९ ॥ स्तोकास्त्रसाधनवता भवता मनोज स्वैरं जगज्जितमनङ्गतयापि सर्वम्। स्याचेद्भवान्बहुशरः प्रतिलब्धगात्रः कुर्यास्ततो यदपि कर्म कियन्न जाने ॥ ३० ॥ स्वामाज्ञां वत सर्वतोऽप्रतिहतां सञ्चार्य धन्यो यदि त्रैलोक्ये ननु केवलं मनसिजो देवः समुद्गीयते। अन्ये त्वस्य शरप्रतापभयतः सम्पीडिताः प्राणिनः स्वस्वस्त्रीः पुरतो विधाय कृपणाः कुर्वन्ति वीरा अपि ॥ ३१ ॥ हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि प्रालेयसीकरमुचस्तुहिनांशुभासः। यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः ॥ ३२ ॥ हृदयतृणकुटीरे दीप्यमाने स्मराग्नावुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि। किमु कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्यस्त्रिदशपतिरहल्यां तापसीं यत्सिषेवे ॥ ३३ ॥

शृङ्गाररस्य आलम्बनविभावाः—नायकप्रशंसा

दाने शौर्ये कवित्वे वा पाण्डित्ये साधुतार्जने। सुयशः प्रथितं येषां जन्मवन्तस्त एव कौ ॥ १ ॥ मदनः स्त्रीणां करुणो दीनानां दण्डभृत्तथा द्विपताम्। धर्मः साक्षान्महतां विभाति यः कोऽपि धन्योऽसौ ॥ २ ॥ यद्यपि लावण्यकलाधरं भृतं मार्दवेन गात्रं स्यात्। तदपि रिपूणां विजये पविवत्कठिना भवन्ति ते केऽपि ॥३॥ लज्जा कृतापराधेव कुलीनानां मृगीदृशाम्। येषु दृष्टेषु निर्याति त एव युवनायकाः ॥ ४ ॥ वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥ ५ ॥ वयं कृतार्था विभवप्रपूर्णा मन्यन्त एवान्तरिति प्रभूताः। तथा भवन्तोऽपि पुनर्नता ये गीताः परैरेव त एव केचित् ॥ ६ ॥ वसनं सुदृशां मानो मानिनां दीनतार्थिनाम्। येषु दृष्टेषु लीयेरँस्त एव भुवि भावुकाः ॥ ७ ॥ स्त्रीणां नितम्बाद्र-

---

लोगोंमें रहनेवाले गर्वका जो भण्डार है और जिसका जन्म मनसे हुआ है, उस कामदेवकी वह शक्ति आप सबको पुष्ट करे जिसकी सहायतासे वह बड़ी-बड़ी अनहोनी बातें कर डालता है ॥ २९ ॥ हे मनसे उत्पन्न होनेवाले कामदेव! जब तुम थोड़ेसे अस्त्र लेकर और अङ्ग न होनेपर भी केवल अपनी इच्छासे ही सम्पूर्ण जगत्को जीत लेते हो तब यदि तुम शरीरवाले होते और तुम्हारे पास बहुतसे बाण होते तब तो तुम न जाने क्या-क्या कर डालते ॥ ३० ॥ तीनों लोकोंमें यदि कोई अडिग आज्ञा देनेवाला है तो वह कामदेव ही है क्योंकि अन्य जितने भी वीर हैं वे सब कामदेवके बाणके भयसे व्याकुल होकर अपनी-अपनी स्त्रियोंके आगे कायर बने बैठे हैं ॥ ३१ ॥ जब हार, जलसे भींगा हुआ वस्त्र, कमलिनीके पत्ते, ठण्ढी फुहारें छोड़नेवाली चन्द्रमाके किरणोंकी चाँदनी और गीला चन्दन भी मनसे उत्पन्न होनेवाली (कामकी) अग्निके लिये ईंधन बने हुए हैं तब क्या वह अग्नि किसीके बुझाए बुझ सकती है ॥ ३२ ॥ जब यह हृदयरूपी झोपड़ी कामदेवरूपी आगसे जलने लगती है तब विचारवान् लोग भी उचित-अनुचितका विचार छोड़ बैठते हैं। बताइए, क्या देवलोकमें कमलके समान नेत्रोंवाली देवाङ्गनाएँ कम थीं कि स्वर्गके स्वामी इन्द्रने तपस्वीकी पत्नी अहल्याके साथ सम्भोग किया ॥ ३३ ॥

शृङ्गाररसके आलम्बन विभाव : नायक-प्रशंसा

पृथ्वीपर उन्हींका जन्म सफल है जिन्होंने दान, वीरता, कवित्व, विद्वत्ता तथा सज्जनतामें नाम कमाया हो ॥ १ ॥ वह व्यक्ति धन्य है जो स्त्रियोंको कामदेवके समान, दीनोंको कृपाके समान, शत्रुओंको दण्डधारीके समान और महापुरुषोंको साक्षात् धर्मके समान प्रतीत होता है ॥ २ ॥ वे कोई विचित्र ही पुरुष होते हैं जिनका शरीर यद्यपि लावण्यकी कलासे भरा हुआ और कोमलतासे पूर्ण होता है किन्तु जो शत्रुओंपर विजय पाते समय वज्रके समान कठोर हो जाते हैं ॥ ३ ॥ जिन्हें देख लेनेपर हरिणीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली कुलीन महिलाओंके मुखपरसे अपराधीकी भाँति लज्जा भाग जाती है वे ही वास्तवमें युवा नायक हैं ॥ ४ ॥ संसारमें निराले उन महापुरुषोंके मनकी भावनाओंको कौन जान सकता है जो वज्रसे भी कठोर और फूलसे भी अधिक कोमल हो जाती हैं ॥ ५ ॥ ऐसे बहुतसे लोग हैं जो अपनेको समझते हैं कि 'हम सब कुछ कर चुके हैं, हमारे पास सब प्रकारकी सम्पत्ति है और आप भी वैसे ही हैं' किन्तु ऐसे लोग इने-गिने होते हैं जो सब वैभव पाकर भी नम्र होते हैं और जिनकी प्रशंसा शत्रु भी करते हैं ॥ ६ ॥ जिन्हें देखकर सुनयनी युवतियोंके वस्त्र ढीले पड़ जाते हैं, अभिमानियोंका गर्व चूर-चूर हो जाता है और कङ्गालोंकी दीनता दूर हो जाती है, वे ही वास्तवमें पृथ्वीपर भावुक कहलानेके योग्य हैं ॥ ७ ॥ जिन्हें देखते ही स्त्रियोंके

सनं शस्त्रञ्च द्विषतां करात्। पतन्तो येषु दृष्टेषु त एव कृतिनो नराः ॥ ८ ॥

नायकभेदाः

विनीतः—यद्ब्रह्मवादिभिरुपासितवन्द्यपादे विद्यातपोव्रतनिधौ तपतां वरिष्ठे। दैवात्कृतस्त्वयि मया विनयापचारस्तत्र प्रसीद भगवन्नयमञ्जलिस्ते ॥ १ ॥ *प्रियदर्शनः*—राम राम नयनाभिरामतामाशयस्य सदृशीं समुद्वहन्। अप्रतर्क्यगुणरामणीयकः सर्वथैव हृदयङ्गमोऽसि मे ॥ २ ॥ *त्यागी*—त्वचं कर्णः शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः। ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ॥ ३ ॥ *दक्षः*—स्फूर्जद्वज्रसहस्रनिर्मितमिव प्रादुर्भवत्यग्रतो रामस्य त्रिपुरान्तकृद्दिविषदां तेजोभिरिद्धं धनुः। शुण्डारः कलभेन यद्वदचले वत्सेन दोर्दण्डकस्तस्मिन्नाहित एव गर्जितगुणं कृष्टं च भग्नं च तत् ॥ ४ ॥ *प्रियंवदः*—उत्पत्तिर्जमदग्नितस्स भगवान्देवः पिनाकी गुरुर्वीर्यं यत्तु न तद्गिरां पथि ननु व्यक्तं हि तत्कर्मभिः। त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः सत्यब्रह्मतपोनिधेर्भगवतः किं वा न लोकोत्तरम् ॥ ५ ॥ *रक्तलोकः*—स्नेहं दयां तथा सौख्यं यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥ ६ ॥ *शुचिः*—का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते। आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्तिः ॥ ७ ॥ *वाग्मी*—बाह्वोर्बलं न विदितं न च कार्मुकस्य त्रैयम्बकस्य तनिमा तत एष दोषः। तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्व डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम् ॥ ८ ॥ *दृढवंशः*—ये चत्वारो दिनकरकुलक्षत्रसन्तानमल्लीमालाम्लानस्तबकमधुपा जज्ञिरे राजपुत्राः। रामस्तेषामचरमभव-

---

नितम्बसे वस्त्र और शत्रुओंके हाथसे शस्त्र खिसक पड़ते हैं वे ही मनुष्य वास्तवमें भाग्यशाली हैं ॥ ८ ॥

नायकोंके भेद

नम्र : परशुरामसे राम कहते हैं—जिसके वन्दनीय चरणोंकी उपासना ब्रह्मज्ञानी लोग करते हैं, जो विद्या, तप और व्रतके निधान हैं और जो तपस्वियोंमें श्रेष्ठतम हैं, ऐसे आप महापुरुषके प्रति मैंने जो दैवयोगसे ढिठाई और अविनय किया है, उसे हे भगवन्! आप क्षमा करें, मैं आपके सम्मुख अत्यन्त नम्रतासे हाथ जोड़ता हूँ ॥१॥ **प्रियदर्शन या मधुर :** हे राम! मेरी भावनाके अनुकूल सुन्दरता धारण किये हुए, अपने अद्वितीय गुणकी सुन्दरता लेकर आप पूर्ण रूपसे मेरे हृदयमें विराजमान हैं ॥२॥ **त्यागी :** कर्णने अपनी खाल (कवच) दे दी, शिबिने (कबूतरकी रक्षाके लिये) अपना मांस दे दिया, जीमूतवाहनने अपने प्राण दे डाले और दधीचिने अपनी हड्डी दे डाली क्योंकि महात्मा लोग कुछ भी देनेमें सङ्कोच नहीं करते ॥ ३ ॥ **दक्ष :** हाथीके बच्चोंकी सूँड़के समान शोभा देनेवाली रामकी दोनों भुजाओंपर जब त्रिपुरासुर शिवजीका वह धनुष रक्खा गया जो देवताओंके तेजसे युक्त था तथा अत्यन्त प्रभावशाली सहस्रों वज्रोंसे निर्मित जान पड़ता था तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह उनके हाथपर रक्खा-रक्खा क्षणमात्रमें गूँजकर और खिंचकर अपने आप ही टूट गया हो ॥ ४ ॥ **प्रियवादी :** रामचन्द्रजी परशुरामसे कहते हैं—'जमदग्नि आपके पिता हैं, भगवान् महादेवजी आपके गुरु हैं, आपका पराक्रम वाणीसे नहीं कहा जा सकता, वरन् आपके कर्मोंसे ही प्रकट होता है क्योंकि आप जैसे प्रतापी पुरुषने सातों समुद्रोंसे घिरी हुई पृथ्वी तत्काल दानमें दे दी, इसे त्यागकी पराकाष्ठा कहना चाहिए। सचमुच सत्य, ब्रह्मज्ञान और तपकी निधिवाले आप जैसे भगवान्की कौन-सी बातें संसारमें निराली नहीं होतीं' ॥ ५ ॥ **रक्तलोक या लोक-सेवक :** अपने बहनोई शृङ्गी ऋषिके यज्ञमें पहुँचे हुए वशिष्ठजीका सन्देश पाकर उनके उत्तरमें रामने उन्हें कहलाया—'यदि प्रजाके सुखके लिये मुझे स्नेह, दया, सुख यहाँतक कि जानकीका भी परित्याग करना पड़े तो मुझे कोई व्यथा नहीं होगी' ॥६॥ **पवित्र :** जब कुशने अपनी राजधानी अयोध्यासे हटाकर कुशावतीमें बना ली थी उस समय अयोध्याकी राज्य-लक्ष्मीने कुशके अन्तःपुरमें स्त्रीका रूप बनाकर प्रवेश किया। उसे देखकर पवित्र मनवाले कुशने कहा—'हे शुभे! तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो और तुम मेरे पास क्यों आई हो? तुम यह समझकर मुँह खोलना कि रघुवंशी बड़े संयमी होते हैं और वे कभी परस्त्रीकी ओर आँख नहीं उठाते' ॥ ७ ॥ **वाग्मी :** श्रीरामचन्द्रजी परशुरामसे कहते हैं—'हे परशुरामजी! मैं न तो आपकी भुजाओंका बल जानता था और न महादेवजीके धनुषकी कोमलता जानता था इसीलिये मुझसे यह भूल हो गई। कृपया मेरी ढिठाई क्षमा कीजिए क्योंकि यदि बालक कुछ नटखटपन करें भी तो बड़े लोग उससे प्रसन्न ही होते हैं ॥ ८ ॥ सूर्यकुलकी क्षत्रिय-सन्तानरूपी मल्लिकाकी मालाके खिले हुए गुच्छेके भौंरोंके रूपमें जो चार

स्ताडकाकालरात्रिप्रत्यूषोऽयं सुचरितकथाकन्दलीमूलकन्दः ॥ ९ ॥ *स्थिरः*—प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात्। न त्वेव दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम् ॥ १० ॥ प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः। विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥ ११ ॥ *युवा*—महोन्नतां वत्सतरः स्पृशन्निव द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव। रघुः क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः पुपोष गाम्भीर्यमनोहरं वपुः ॥ १२ ॥ *बुद्धिसमन्वितः*—श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः। अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसम्भवम् ॥ १३ ॥ *उत्साहसमन्वितः*—स्वर्लोकलक्ष्मीकचकर्षणाय दोर्मण्डलं वल्गति यस्य चण्डम्। इहैव तच्छोणितपानकेलिमहाय कुर्वन्तु शरा ममैते ॥ १४ ॥ *स्मृतिसमन्वितः*—कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः। शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ॥ १५ ॥ *प्रज्ञावान्*—इत्यर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य रघोरुदारामपि गां निशम्य। स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाशस्तमित्यवोचद्वरतन्तुशिष्यः ॥१६॥ *कलावान्*—स स्वयं प्रहतपुष्करः कृती लोलमाल्यवलयो हरन्मनः। नर्तकीरभि न याति लङ्घिनीः पार्श्ववर्तिषु गुरुष्वलज्जयत् ॥ १७ ॥ *मानसमन्वितः*—ततः प्रहस्यापभयः पुरन्दरं पुनर्बभाषे तुरगस्य रक्षिता। गृहाण शस्त्रं यदि सर्ग एष ते न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान् ॥ १८ ॥ *शूरः* स एवमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः सशरं शरासनम्। अतिष्ठदालीढविशेष-

---

राजपुत्र (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) हुए हैं उनमें राम सर्वप्रथम हैं। वे ताड़कारूपी कालरात्रिके प्रातःकाल हैं और संसारके श्रेष्ठ मनुष्योंकी कथारूपी लताके स्वादिष्ट कन्द हैं ॥९॥ **स्थिर :** यदि आप जैसे पूज्योंका अनादर करनेका प्रायश्चित्त मैं नहीं करूँगा तो शस्त्र-ग्रहण करनेके महाव्रतको कलङ्क लगाऊँगा ॥ १० ॥ बाधा पड़नेके भयसे नीच लोग कोई काम प्रारम्भ ही नहीं करते, जो ढुलमुल लोग होते हैं वे प्रारम्भ तो कर देते हैं किन्तु बाधा पड़नेपर रोक देते हैं किन्तु उत्तम मनुष्य वे ही हैं जो बार-बार बाधाएँ पड़नेपर भी प्रारम्भ किए हुए कामको कभी पूरा किए विना नहीं छोड़ते ॥ ११ ॥ **युवा :** जैसे गायका बछड़ा बड़ा होकर साँड़ हो जाता है और हाथीका बच्चा बढ़कर गजराज हो जाता है वैसे ही जब रघुने अपना बचपन बिताकर युवावस्थामें पैर रक्खा तब उनका शरीर यौवनसे और भी खिल उठा ॥१२॥ **बुद्धिसे युक्त :** शब्दोंके ठीक अर्थ पहचाननेवाले राजाने 'रघि' धातुका 'गमन' अर्थ समझकर अपने पुत्रका नाम इसलिये रघु रक्खा कि वह सम्पूर्ण शास्त्रोंको भी पार कर लेगा और युद्ध-क्षेत्रमें शत्रुओंके व्यूहोंको तोड़कर उनके भी पार जायगा ॥ १३ ॥ **उत्साहसे युक्त :** देवलोकपर अधिकार किए हुए तारकके डरसे जब देवता लोग देवलोकमें जानेसे डरने लगे तब देवताओंकी सेनाका नेतृत्व करते हुए कुमार कार्तिकेयने कहा—'हे देवताओ ! मैं तो चाहता हूँ कि जिस तारक असुरकी भुजाएँ बल-पूर्वक लक्ष्मीके बाल पकड़कर उनकी दुर्दशा करते हुए उन्हें खींचनेके लिये मचली रहती हैं, उसका लहू पीनेका आनन्द मेरे बाणोंको झटसे यहींपर मिल जाय' ॥ १४ ॥ **स्मृतिमान् :** राजा दुष्यन्त अपनी प्रिया शकुन्तलाका चित्र बनाते हुए पुराने दृश्यको स्मरण करके माढव्यसे कहते हैं—'सुनो ! यहाँ अभी मालिनी नदी बनानी है जिसकी रेतमें हंसके जोड़े बैठे हों, उसके दोनों ओर हिमालयकी वह तलहटी दिखानी है जहाँ हरिण बैठे हुए हों, इसीके साथ मैं एक ऐसा वृक्ष भी बनाना चाहता हूँ जिसपर वल्कलके वस्त्र टँगे हुए हों और जिसके नीचे एक हरिणी काले हरिणके सींगसे रगड़कर अपनी बाँईं आँख खुजला रही हो ॥ १५ ॥ **प्रज्ञावान् :** कौत्सने ध्यानसे रघुकी उदार बातें सुनीं पर देखा तो उनके हाथमें केवल मिट्टीका पात्र बचा था अतः उन्होंने इसीसे समझ लिया कि यहाँ काम नहीं बनेगा और वे उनसे बोले ॥१६॥ **कलावान् :** राजा अग्निवर्ण नर्तकियोंके नाचते समय जब स्वयं मृदङ्ग बजाने लगता था, तब उसके गलेकी माला हिल उठती थी और उस समय वह ऐसा सुन्दर लगता था कि नर्तकियाँ सुध-बुध खोकर नाचना भी भूल जाती थीं। इसका फल यह होता था कि उन्हें नाचना सिखानेवाले उनके जो गुरु वहाँ बैठे रहते थे उनके आगे उन नर्तकियोंको लज्जित होना पड़ता था ॥१७॥ **मानसमन्वित :** जब रघुके ललकारनेपर भी इन्द्रने दिलीपका छोड़ा हुआ घोड़ा नहीं लौटाया वरन् युद्धके लिये चुनौती दी तब अश्वके रक्षक रघुने निडर होकर हँसते हुए कहा—'यदि आपने यही निश्चय किया हो तो शस्त्र उठाइए और युद्ध कीजिए, रघुको जीते बिना आप घोड़ा नहीं ले

शोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः ॥ १६ ॥ *दृढः*—क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः। राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ॥ २० ॥ *तेजस्वी*—न प्रहर्तुमलमस्मि निर्दयं विप्र इत्यभिभवत्यपि त्वयि। शंस किं गतिमनेन पत्त्रिणा हन्मि लोकमुत ते मखार्जितम् ॥ २१ ॥ *शास्त्रचक्षुः*—कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले तस्य लोचने। चक्षुष्मत्ता तु शास्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना ॥ २२ ॥ *धार्मिकः*—भवानपीदं परवानवैति महान्हि यत्नस्तव देवदारौ। स्थातुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन ॥२३॥

चत्वारो नायकाः

धीरललितः—राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः। प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ॥१॥ *धीरशान्तः*—तत उदयगिरेरिवैक एव स्फुरितगुणद्युतिसुन्दरः कलावान्। इह जगति महोत्सवस्य हेतुर्नयनवतामुदियाय बालचन्द्रः ॥ २ ॥ *धीरोदात्तः*—आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च। न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥ ३ ॥ शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति। तृप्तिं न पश्यामि तवैव तावत्किं भक्षणात्त्वं विरतो गरुत्मन् ॥ ४ ॥ स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव। अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छाययोपाश्रितानाम् ॥ ५ ॥ *धीरोद्धतः*—किं ब्रूथ रे व्योमचरा महासुराः स्मरारिसूनुप्रतिपक्षवर्त्तिनः।

जा सकते' ॥ १८ ॥ **शूर** : यह कहकर रघुने धनुषपर बाण चढ़ाया और पैंतरा साधकर वे इन्द्रकी ओर ऊपर मुँह करके खड़े हो गए। उस समय वे ऐसे लग रहे थे मानो इन्द्रसे युद्ध करनेके लिये स्वयं शङ्कर भगवान् आ डटे हों ॥१९॥ **दृढ** : जब सिंहने वशिष्ठजीकी गायपर आक्रमण किया तब दिलीपने उस गायकी रक्षा करनेके लिये उससे कहा—'हे सिंह! 'क्षत्रिय' शब्दका अर्थ ही 'दूसरेको नष्ट होनेसे बचानेवाला' है। यदि मैंने यह काम नहीं किया तो मेरा राज्य करना ही किस कामका और अपयश लेकर जीते रहना ही किस कामका' ॥२०॥ **तेजस्वी** : रामने परशुरामसे कहा—'यद्यपि आपने हमारा अपमान किया है पर आप ब्राह्मण हैं इसलिये मैं निर्दय होकर आपको मारूँगा नहीं। पर यह बताइए कि अब इस बाणसे मैं आपकी गति रोकूँ या आपका उन दिव्य लोकोंमें पहुँचना रोक दूँ जो आपने यज्ञ करके जीत लिए हैं' ॥२१॥ **शास्त्रचक्षु** : यद्यपि रघुके नेत्र कानोंतक फैले हुए और बहुत बड़े-बड़े थे पर उन्हें सबसे अधिक भरोसा अपने उस शास्त्रचक्षुपर था जिससे वे सूक्ष्मसे सूक्ष्म बात भी समझ जाते थे ॥ २२ ॥ **धार्मिक** : अपने गुरुकी गायकी रक्षा करनेके लिये दिलीपने सिंहसे कहा—'हे भाई! तुम भी दूसरेके सेवक हो और बड़ी लगनसे देवदारुकी रक्षा कर रहे हो। तुम यह जानते होगे कि जिसकी रक्षाका भार सेवकको मिलता है यदि वह नष्ट हो जाय और सेवक जीता रह जाय तो वह अपने स्वामीके आगे क्या मुँह लेकर जायगा' ॥ २३ ॥

चार प्रकारके नायक

धीरललित : उदयनके सम्बन्धमें कहा गया है—'उसने शत्रुओंको जीतकर अपनी भली प्रकार लालित और पालित प्रजाके दुःख दूर करके राज्यका सब भार योग्य मन्त्रियोंको सौंप दिया है, अब वे प्रद्योतकी पुत्री वासवदत्ताको साथ लेकर वसन्त समयमें आनन्द लें। मैं इसीको अपना सबसे बड़ा उत्सव मानता हूँ' ॥ १ ॥ **धीरशान्त** : उदयाचलके गुण और प्रकाशसे सुन्दर तथा कलावान् एक ही बालचन्द्र (बुद्ध) उदय हुआ है जो संसारमें आँखवालोंके लिये सबसे बड़े महोत्सवका कारण है ॥ २ ॥ **धीरोदात्त** : रामको जब अभिषेकके लिये निमन्त्रित किया गया और वन जानेकी आज्ञा दी गई तब भी उनके मुखपर किसी प्रकारके हर्ष या शोककी तनिक-सी भी रेखा नहीं दिखाई पड़ी ॥ ३ ॥ जीमूतवाहन गरुड़से कहते हैं 'हे गरुड़! अभी भी मेरी नसोंसे रक्त बह रहा है, मेरे शरीरमें मांस भी बचा हुआ है और मैं यह भी देख रहा हूँ कि तुम्हारा पेट नहीं भरा, तब बताओ तुम खाते-खाते रुक क्यों गए' ॥ ४ ॥ एक वैतालिक दुष्यन्तका वर्णन करता है—'अपने सुखकी इच्छा छोड़कर आप प्रजाकी भलाईमें लगे रहते हैं या यह कहना चाहिए कि इस प्रकार आप अपना धर्म ही पाल रहे हैं क्योंकि वृक्ष अपने सिरपर तो कड़ी धूप सह लेता है पर अपने तले बैठे हुए जीवोंको छाया ही देता रहता है' ॥ ५ ॥ **धीरोद्धत** : तारकासुर देवताओंको

मदीयवाणव्रणवेदना हि साऽधुना कथं विस्मृतिगोचरीकृता ॥ ६ ॥

श्रृङ्गारनायकाः

दक्षिणः—प्रसीदेत्यालोके किमपि किमपि प्रेमगुरवो रतिक्रीडाः कोऽपि प्रतिदिनमपूर्वोऽस्य विनयः। सविश्रम्भः कश्चित्कथयति च किञ्चित्परिजनो न चाहं प्रत्येमि प्रियसखि किमप्यस्य विकृतिम् ॥ १ ॥ *शठः*—शठोऽन्यस्याः काञ्चीमणिरणितमाकर्ण्य सहसा यदाश्लिष्यन्नेव प्रशिथिलभुजग्रन्थिरभवः। तदेतत्क्वाचक्षे घृतमधुमयं त्वद्बहुवचोविषेणाघूर्णन्ती किमपि न सखी मे गणयति ॥ २ ॥ *धृष्टः*—लाक्षालक्ष्म ललाटपट्टमभितः केयूरमुद्रा गले वक्त्रे कज्जलकालिमा नयनयोस्ताम्बूलरागोऽपरः। दृष्ट्वा कोपविधायिमण्डनमिदं प्रातश्चिरं प्रेयसो लीलातामरसोदरे मृगदृशः श्वासाः समाप्तिं गताः ॥ ३ ॥ *अनुकूलः*—अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः। कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं भद्रं तस्य सुमानुपस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥ ४ ॥ *प्रतिनायकः*—इत्युक्तवन्तमवदत्त्रिपुरारिपुत्रं दैत्यः क्रुधौष्ठमधरं किल निर्विभिद्य। युद्धार्थमुद्भटभुजाबलदर्पितोऽसि बाणान्सहस्व मम सादितशत्रुपृष्ठान् ॥ ५ ॥

सात्त्विकनायकगुणा

घृणा—उत्तालताडकोत्पातदर्शनेऽप्यप्रकम्पितः। नियुक्तस्तत्प्रमाथाय स्त्रैणेन विचिकित्सति ॥ १ ॥ *स्पर्धा*—एतां पश्य पुरःस्थलीमिह किल क्रीडाकिरातो हरः कोदण्डेन किरीटिना सरभसं चूडान्तरे ताडितः। इत्याकर्ण्य कथाद्भुतं हिमनिधावद्रौ सुभद्रापतेर्मन्दं मन्दमकारि येन निजयोर्दोर्दण्डयोर्मण्डलम् ॥ २ ॥ *शौर्यशोभा*—रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान्दृप्तस्स राजन्यकमेकवीरः। निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः ॥ ३ ॥ *विलासः*—एवंविधेनाहवचे-

---

ललकारकर कहता है—'अरे कार्त्तिकेयकी बड़ाई करनेवाले तथा आकाशचारी देवताओ! क्या आज तुम्हें मेरे बाणोंके घावोंकी पीड़ा भूल गई है जो इस प्रकार बक-बक कर रहे हो ॥ ६ ॥

श्रृङ्गार रसके नायक

दक्षिण नायक : उसे देखकर बड़े-बड़े प्रेमी लोग कुछ न कुछ आनन्द ही पाते हैं, वह प्रतिदिन कोई न कोई नई रतिक्रीड़ा करता है, उसका विनय भी कुछ निराला ही है, उसके परिजन भी अत्यन्त विश्वासके साथ उससे बातचीत करते रहते हैं। हे सखी! मैं उसमें कोई भी तो दोष नहीं पाती ॥ १ ॥ **शठ नायक :** मुझे अपनी भुजाओंमें लिपटाए हुए जब शठनायकने किसी दूसरी नायिकाकी तगड़ीकी मणियोंकी खनखनाहट सहसा सुनी तो अपने हाथ ढीले कर दिए, उस समय जब मैंने पूछा कि 'यह क्या?' तब उसने बड़ी मीठी-मीठी बातें बनाकर मुझे बहला दिया। मैं विषकी आँखोंसे उसे घूरती भी रही फिर भी उसने मेरी तनिक भी परवाह न की और बात बनाकर चलता बना ॥२॥ **धृष्ट (ढीठ नायक :** 'उसके माथेपर लाखका चिह्न बना हुआ था, गलेमें भुजबन्दकी छाप पड़ी हुई थी, ओठोंपर काजलकी कालिमा थी, दोनों नेत्रोंमें पानकी लालीकी छाप थी' इस प्रकार अपने प्रियके इस क्रोध उत्पन्न करनेवाले श्रृङ्गारको प्रातःकाल देरतक देखकर उस मृगनयनीके श्वास लीला-कमलमें ही समाप्त हो गए ॥ ३ ॥ **अनुकूल :** जो सुख और दुःख दोनोंमें एक सा रहता है, सब अवस्थाओंमें साथ देता है, जिससे हृदयको बुढ़ापेमें विश्राम मिलता है, जिसमें सदा प्रेम बना रहता है तथा जो बहुत काल बीत जानेपर भी प्रेमपात्र बना रहता है, ऐसा स्नेही मनुष्य कोई विरला ही प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ **प्रतिनायक :** कुमार कार्तिकेयकी बात सुनकर तारकने क्रुद्ध होकर, कार्तिकेयपर दाँत पीसकर दाँतोंसे ओठ चबाते हुए कहा—'यदि तुम्हें युद्धके लिये अपनी प्रचण्ड भुजाओंका घमण्ड है तो आओ और शत्रुओंके पीठको चलनी बना देनेवाले मेरे बाणोंकी चोट चखो ॥ ५ ॥

सात्त्विक नायकके गुण

घृणा : जो राम भयङ्कर ताड़काके उत्पातको देखकर भी अडिग रहे वे ही जब उस ताड़काको मारनेके लिये नियुक्त किए गए तब उन्हें यह हिचकिचाहट होने लगी कि स्त्रीपर कैसे बाण चलावें ॥ १ ॥ **स्पर्धा :** 'देखिए, यही आगे वह स्थली है जहाँ किरात-वेशधारी शिवजीके सिरपर अर्जुनने अपने धनुषसे चोट की थी।' हिमालय पर्वतपर अर्जुनकी यह कथा सुनकर उन्होंने भी अपनी दोनों भुजाएँ धीरे-धीरे मिलाकर गोल कर लीं ॥ २ ॥ **शौर्य :** जैसे प्रलयके समय वराह भगवान् समुद्रके बढ़े हुए जलको चीरते चलते थे वैसे ही घोड़ेपर चढ़े, तूणीर बाँधे, स्वाभिमानी वीर आज अकेले ही शत्रुओंकी सेनाको चीरते चले जा रहे थे ॥ ३ ॥ **विलास :** जब अजने अपने

ष्टितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगता ममैभिः। तस्याः प्रतिद्वन्द्विभवाद्भिपादात्सद्यो विमुक्तं मुखमाबभासे ॥ ४ ॥ *माधुर्यम्*—कपोले जानक्याः करिकलभदन्तद्युतिमुषि स्मरस्मेरं गण्डोड्डमरपुलकं वक्त्रकमलम्। मुहुः पश्यञ्छृण्वन्रजनिचरसेनाकलकलं जटाजूटग्रन्थिं द्रढयति रघूणां परिवृढः ॥ ५ ॥ *गाम्भीर्यम्*—प्रसन्नतां यो न गतोऽभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः। मुखाम्बुजः श्रीरघुनन्दनस्य सदास्तु मे मञ्जुलमङ्गलप्रदः ॥ ६ ॥ *स्थैर्यम्*—श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन्हरः प्रसंख्यानपरो बभूव। आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ॥ ७ ॥ *तेजः*- ब्रूत नूतनकूष्माण्डफलानां के भवन्त्यमी। अङ्गुलीदर्शनाद्येन न जीवन्ति मनस्विनः ॥ ८ ॥ *ललितम्*—लावण्यमन्मथविलासविजृम्भितेन स्वाभाविकेन सुकुमारमनोहरेण। किं वा ममेव सखि योऽपि ममोपदेष्टा तस्यैव किं न विषमं विदधीत तापम् ॥ ९ ॥ *औदार्यम्*—गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः। श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ॥ १० ॥ *सदुपग्रहः*—एते वयममी दाराः कन्येयं कुलजीवितम्। ब्रूत येनात्र वः कार्यमनास्था बाह्यवस्तुषु ॥ ११ ॥

तरुणीवर्णनम्

अदम्भा हि रम्भा विलक्षा च लक्ष्मीर्घृताची ह्रिया चीरसञ्छादितास्या। अहो जायते मन्दवर्णाप्यपर्णा समाकर्ण्य तस्या गुणस्यैकदेशम् ॥ १ ॥ अपाङ्गतरले दृशौ तरलवक्रवर्णा गिरो विलासभरमन्थरा गतिरतीव कान्तं मुखम्। इति स्फुरितमङ्गके मृगदृशां स्वतो लीलया तदत्र न महोदयः कृतपदोऽपि संलक्ष्यते ॥२॥ अमन्दानन्दनिष्यन्दमपास्तान्यक्रियाक्रमम्। जगज्जन्मोत्सवे तस्याः पीतामृतमिवाभवत् ॥ ३ ॥ अमलमृणालकाण्डकमनीयकपोलरुचेस्तरलसलीलनीलनलिनप्रतिफुल्लदृशः। विकसदशोकशोणकरकान्तिभृतः सुतनो-

---

सब शत्रुओंको हरा दिया तब उसने इन्दुमती को युद्ध-भूमि दिखाते हुए कहा—'हे इन्दुमती! यहाँ राजा लोग इस प्रकार सोए पड़े हैं कि बालक भी उनके शस्त्र छीन लावें, देखो, इसी बलपर ये तुम्हें मेरे हाथोंसे छीनने चले थे' ॥ ४ ॥ **माधुर्य** : श्रीजानकीजीके कपोलपर हाथीके बच्चेके दाँतकी चमक चुरानेवाली सुन्दर मुस्कराहट थी और कपोलोंपर सुन्दर पुलक विराजमान थी, उसे बार-बार देखते हुए और राक्षसोंकी सेनाका कोलाहल सुनते हुए रामचन्द्रजी अपने जटाजूटकी गाँठ कसते जा रहे थे ॥ ५ ॥ **गम्भीरता** : जो अपने राज्याभिषेककी बात सुनकर प्रसन्न नहीं हुए और वनवासकी बात सुनकर दुखी नहीं हुए ऐसे श्रीरामचन्द्रजीका मुखकमल सदा हमारा मङ्गल करे ॥ ६ ॥ **स्थिरता** : उस समय अप्सराओंका सुन्दर गीत सुनकर भी महादेवजी समाधि लगाकर बैठ गए क्योंकि जो आत्मेश्वर होते हैं उनकी समाधि किसी प्रकारके विघ्न नहीं तोड़ पाते ॥ ७ ॥ **तेज** : कहो तो, वे तेजस्वी कौन हैं जिनके उँगली दिखाने-मात्रसे लोग कुम्हड़-बतिया जैसे सूख जाते हैं ॥ ८ ॥ **ललित** : सुन्दर, स्वाभाविक, सुकुमार, कोमल और मनोहर काम-चेष्टाओंके द्वारा जिस प्रियने मुझे ताप दिया है, हे सखी! यह न समझना कि वह ताप मुझे ही प्राप्त हुआ है, उसे मुझसे भी बढ़कर हुआ होगा ॥ ९ ॥ **उदारता** : राजा रघु तो धर्म-युद्ध करते थे इसीलिये उन्होंने महेन्द्र पर्वतके राजाको बन्दी तो बना लिया पर जब उसने इनकी अधीनता स्वीकार कर ली तब उसे छोड़ भी दिया। इस प्रकार उन्होंने महेन्द्रके राजाकी राज्यश्री तो ले ली पर राज्य उन्हींको लौटा दिया ॥१०॥ **कृपा** : हम आपके सम्मुख हैं, ये हमारी पत्नियाँ हैं, यह हमारे कुलकी प्राण-कन्या है, अब आप कहिए कि हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं क्योंकि अन्य सब बाह्य वस्तुओंमें हमारी कोई श्रद्धा नहीं है ॥ ११ ॥

नवेलीका वर्णन

उसके थोड़े-से गुणकी चर्चामात्र सुनकर रम्भाका गर्व गल गया, लक्ष्मी लज्जित हो गईं, घृताचीने लाजसे अपने मुँहपर वस्त्र ढक लिया और पार्वतीजी भी फक पड़ गईं ॥ १ ॥ तिरछी चितवनवाली चञ्चल आँखें, तीव्र गतिसे कठोर वचन बोलनेवाली वाणी, हाव-भावसे भरी हुई मन्द-मन्द चाल, अत्यन्त सुन्दर मुख, ये सब गुण अपने आप ही मृगके नेत्रके समान आँखोंवाली स्त्रियोंके अङ्गोंमें प्रकट हो गए किन्तु छाती पर जो उभार आने लगा है वह आता हुआ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है ॥ २ ॥ अत्यन्त आनन्दमें निमग्न होकर और सब काम छोड़कर यह संसार स्त्रीके जन्मोत्सवपर इस प्रकार आनन्दित हुआ मानो उसे अमृत पीनेको मिल गया हो अर्थात् स्त्रीके उत्पन्न होनेके समय संसारको अमृत पीनेका-सा आनन्द मिला ॥३ ॥ स्वच्छ कमलकी नालके समान सुन्दर जिसके गाल हैं, चञ्चल और

मंदलुलितानि हन्त ललितानि हरन्ति मनः ॥ ४ ॥ अमुष्या लावण्यं मृदुलमृदुलान्यवयवान्मनोलौल्यं धातुः करकठिनतां मे विमृशति। पदं चित्ते धत्ते मतिरिति पुरा पङ्कजभुवा ध्रुवं कल्याणीयं कलितसुकृतैरेव रचिता ॥ ५ ॥ अमृतं तदधरविम्बे वचनेष्वमृतं विलोकनेऽप्यमृतम्। अमृतभृतौ कुचकुम्भौ सत्यं सा सृष्टिरपरैव ॥ ६ ॥ अलिकुलमञ्जलकेशी परिमलवहुला रसावहा तन्वी । किसलयपेशलपाणिः कोकिलकलभाषिणी प्रियतमा मे ॥ ७ ॥ अस्याश्चेद्गतिसौकुमार्यमधुना हंसस्य गर्वैरलं संलापो यदि धार्यतां परभृतैर्वाचंयमत्वव्रतम्। अङ्गानामकठोरता यदि दृपत्प्रायैव सा मालती कान्तिश्चेत्कमला किमत्र वहुना कापायमालम्वताम् ॥ ८ ॥ अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः। वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥ ९ ॥ अतन्द्रचन्द्राभरणा समुद्दीपितमन्मथा। तारकातरला श्यामा सानन्दं न करोति कम् ॥ १० ॥ अभ्यासः कर्मणां सम्यगुत्पादयति कौशलम्। विधिना तावदभ्यस्तं यावत्सृष्टा मृगेक्षणा ॥ ११ ॥ आयाति श्रियमञ्जसा नयनयोरम्भोरुहप्रेयसी सन्नाहः स्तनयोरयं कलयते सम्भोगयोग्यां दशाम्। वैदग्ध्येन सहासिकां वितनुते वाचामियं प्रक्रिया मुग्धायाः पुनरैन्दवीं न सहते मुख्यामभिख्यां मुखम् ॥ १२ ॥ आस्यप्रोज्झितपार्वणेन्दुयशसं नेत्रावधूतोत्पलश्रीगर्वां दशनच्छदव्यवहिताशोकप्रवालद्युतिम्। एतां दृष्टिसुधाप्रपां त्रिजगतः शिल्पी विधाय स्वयं मन्ये हर्षवशादजायत निजस्तोत्रप्रचण्डः कविः ॥ १३ ॥ इयं व्याधायते वाला भ्रूरस्याः कार्मुकायते। कटाक्षाश्च शरायन्ते मनो मे हरिणायते ॥१४॥ उत्तुङ्गस्तनभरतान्ततान्तमध्यं विशिल-

---

लीलासे भरे हुए नीले कमलके समान खिली हुई जिसकी आँखें हैं और फूले हुए अशोकके पत्तोंके समान जिसके हाथोंकी लाल कान्ति है, उस सुन्दरी नायिकाकी मदसे भरी हुई सुन्दर क्रीड़ाएँ हाय! हमारा मन चुराए लिए जा रही हैं ॥ ४॥ इसकी सुन्दरता, अत्यन्त कोमल अङ्ग, और मनकी चञ्चलता के साथ ब्रह्माके हाथकी कठोरताका जब हम स्मरण करते हैं तब यही बात जँचती है कि ब्रह्माजीने यह कल्याणमयी नायिका निश्चय ही अपने सञ्चित पुण्योंसे ही गढ़ी होगी ॥५॥ उसका निचला ओठ, वोली, आँखें और घड़ेके समान उठे हुए स्तन सभी अमृतसे भरे हैं। सचमुच यह ब्रह्माजीकी कोई निराली ही रचना है ॥६॥ भौंरोंके समूहके समान सुन्दर काले वालोंवाली, सुगन्धसे भरी हुई, रसीली, पत्तोंके समान चिकने हाथोंवाली और कोयलके समान मधुर वोलनेवाली यह दुबली-पतली नायिका मुझे बड़ी प्यारी लगती है ॥ ७ ॥ इसकी सुकुमार गतिने हंसोंकी चाल व्यर्थ कर दी है, इसकी सुन्दर वोली सुनकर कोयलोंको भी अपना मुँह सी लेना चाहिए, इसके अङ्गोंकी कोमलताके आगे मालतीकी लता पत्थर-सी लगती है, अधिक क्या कहें, इसकी कान्तिके आगे लक्ष्मीको तो भगवा रँगाकर संन्यासिनी बन जाना चाहिए ॥ ८ ॥ इसे (उर्वशीको) बनानेके लिये या तो चाँदनी देनेवाले चन्द्रमा ही स्वयं ब्रह्मा बने होंगे या शृङ्गाररसके देवता स्वयं कामदेवने इसे वनाया होगा या फिर वसन्त ऋतुने ही इसका निर्माण किया होगा, नहीं तो बताइए भला, वेद पढ़-पढ़कर पथराए हुए और भोग-विलाससे दूर रहनेवाले वे बूढ़े मुनि ब्रह्माजी ऐसा सुन्दर रूप कैसे बना सकते थे ॥ ९ ॥ पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान चमकीले आभूषणोंसे सजी हुई, चञ्चल चितवनवाली और कामको उकसानेवाली यह सोलह वर्षकी कुमारी किसे आनन्द नहीं देती ॥ १० ॥ अभ्यास करते-करते ही मनुष्य कुशल होता है। अतः जव ब्रह्माने स्त्रीकी रचना की तो समझ लेना चाहिए कि उससे पहलेतक वे अभ्यास ही कर रहे थे ॥ ११ ॥ कमलके समान प्यारी लगनेवाली वह भोली-भाली नायिका नेत्रोंकी शोभा बढ़ाती है, अपने बड़े-बड़े स्तनोंसे सम्भोगके योग्य होनेकी दशा बताती है, चतुराईसे वोलनेकी कला दिखाकर साथमें बैठनेकी योग्यता सिद्ध करती है और उसका यह मुख तो चन्द्रमाकी मुख्य शोभाको भी लजाए जा रहा है ॥१२॥ पूर्णिमाके चन्द्रका यश उसके मुखने हरण कर लिया है, कमल-दलकी शोभा उसके नेत्रोंने कम कर दी है और उसके ओठोंने अशोकके पत्तोंकी शोभा फीकी कर दी है, इस प्रकार नेत्रोंके लिये अमृतकी बावड़ीके समान उस नायिकाको वनाकर ब्रह्मा इतने हर्षसे विह्वल हो गए हैं कि वे दिन-रात बैठे अपनी प्रशंसाके ही गीत गाया करते हैं ॥१३॥ यह वाला हमारे मनरूपी हरिणके लिये ऐसा वहेलिया वनी जा रही है कि इसकी भौंहें धनुष बन रही हैं और इसकी तिरछी चितवनें बाण बनी जा रही हैं ॥ १४ ॥ अपने उठे हुए स्तनोंके भारसे जिसकी कमर लचक गई हो, जिसके गूँथे हुए घने वालोंमें

प्यद्घनकचवान्तवान्तसूनम्। वक्त्राब्जभ्रमदलिभीतभीतनेत्रं मुग्धाक्षी मम धुरि मन्दमन्दमेति॥१५॥ उदयदुदयदीक्षणाय पत्युश्चपलदृशस्त्रपया निरुध्यमानम्। मन इव कृपणस्य दानकाले कति न ततान गतागतानि चक्षुः ॥ १६ ॥ उदासीनालीनामपि वचसि लीनातनुलसत्त्रपाधीना दीनालपनपदवीनायकधृता। कवीनामासीना हृदि कुमुदिनीनाथवदना नवीना मीनाक्षी व्यथयति मुनीनामपि मनः ॥ १७ ॥ एकान्तसुन्दरविधानजडः क वेधाः सर्वाङ्गकान्तिचतुरं क च रूपमस्याः। मन्ये महेश्वरभयान्मकरध्वजेन प्राणार्थिना युवतिरूपमिदं गृहीतम् ॥ १८ ॥ एताः स्खलद्वलयसंहतिमेखलोत्थझङ्कारनूपुररवाहृतराजहंसाः। कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो विश्वस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः ॥ १९ ॥ एषा भविष्यति विनिद्रसरोरुहाक्षी कामस्य कापि दयिता तनुजानुजा वा। यः पश्यति क्षणमिमां कथमन्यथासौ कामस्तमस्तकरुणस्तरुणं हिनस्ति ॥ २० ॥ कर्पूरेण स्थलविरचना कुङ्कुमेनालवालं माध्वीकानि प्रतिदिनपयः पञ्चबाणः कृषाणः। तत्रोत्पन्ना यदि किल भवेत्काञ्चनी कापि वल्ली सा चेदस्याः किमपि लभते सुभ्रुवः सौकुमार्यम् ॥२१॥ किं कौमुदी शशिकलाः सकला विचूर्ण्य संयोज्य चामृतरसेन पुनः प्रयत्नात्। कामस्य घोरहरहुंकृतिदग्धमूर्तेः सञ्जीवनौषधिरियं विहिता विधात्रा ॥ २२ ॥ किमिन्दुः किं पद्मं किमु मुकुरबिम्बं किमु मुखं किमब्जे किं मीनौ किमु मदनबाणौ किमु दृशौ। खगौ वा गुच्छौ वा कनककलशौ वा किमु कुचौ तडिद्वा तारा वा कनकलतिका वा किमबला ॥ २३ ॥ कुङ्कुमपङ्केनाङ्कितदेहा गौरपयोधरकम्पितहारा। नूपुरहंसरणत्पदपद्मा कं न वशीकुरुते भुवि रामा ॥ २४ ॥ कुचाभ्यां भास्वन्ती विजितलकुचाभ्यां युवमनो हरन्ती विब्वोकैः सरसि

फूल खोंसे हुए हों, जो अपने मुख-कमलपर मँडराते हुए भौंरोंको सकपकाए हुए नेत्रोंसे देख रही हो, वह भोले-भाले नेत्रोंवाली धीरे-धीरे मेरे पास आ रही है ॥ १५ ॥ उस चञ्चल नेत्रवाली नायिकाके नेत्र अपने पतिका दर्शन करनेके लिये उसी प्रकार कई बार खिले और फिर लाजसे झुक गए, जैसे किसी कञ्जूसका मन दान देते समय बहुत आगा-पीछा करता है ॥ १६ ॥ किसी बातमें चित्त न लगनेपर भी जो सखियोंके कहनेमें चलती है, नायककी बातमें बात मिलाते समय लज्जाके मारे सिकुड़ जाती है, कवियोंके हृदयमें समाई रहती है, चन्द्रमाके समान मुखवाली है और मछलीके समान नेत्रवाली है, वह नई-नवेली एक बार मुनियोंका मन भी झकझोर देती है ॥ १७ ॥ कहाँ तो अङ्गोंको सुन्दर बनानेकी कलासे अनभिज्ञ ब्रह्माजी, और कहाँ यह सब अङ्गोंकी कान्तिसे सजा हुआ इसका रूप! इससे मैं तो यह समझता हूँ कि शङ्करजीके क्रोधसे अपने प्राण बचानेके लिये कामदेवने ही युवतीका रूप धारण कर लिया है ॥१८॥ अपने ढीले कङ्कनोंको सँभालती हुई, अपनी करधनीके घुँघरू बजाती हुई, अपने बिछुओंकी मधुर खनखनाहटसे राजहंसोंको पास बुलानेवाली और विश्वासमें भरी हुई भोली-भाली हरिणीके नैनोंके समान चितवनवाली ये तरुणी स्त्रियाँ किसका मन नहीं हर लेतीं ॥ १९ ॥ खिले हुए कमलके समान आँखोंवाली यह नायिका निश्चय रूपसे या तो कामदेवकी पत्नी है या कन्या है या बहन है, नहीं तो उसकी ओर तनिक-सा देखनेवाले उस युवकको कामदेव इतनी निर्दयताके साथ क्यों मार डालता ॥ २० ॥ यदि कपूरकी धरती हो, कुङ्कुमकी क्यारी हो, प्रतिदिन दाखकी मदिरासे सींचीं जाती हो और कामदेव ही किसान हो, तब उसमेंसे यदि कोई सोनेकी लता उत्पन्न हो तो वह कहीं इस सुन्दर भौंहोंवाली नायिकाकी कोमलता-तक कुछ-कुछ पहुँच पा सकती है ॥२१॥ क्या ब्रह्माजीने चाँदनी और चन्द्रमाकी कलाओंका चूर्ण बनाकर उसे बड़े जतनसे अमृतके रसमें भिगोकर भगवान् शङ्करकी भयानक हुङ्कारसे जले हुए शरीरवाले कामदेवको जीवित करनेके लिये ही तो यह नायिकारूपी संजीवनी ओषधि नहीं बनाई है ॥ २२ ॥ जब कोई व्यक्ति इस नायिकाका मुख देख लेता है तो उसे भ्रम होने लगता है कि यह चन्द्र है या कमल है, या दर्पण है या मुख! इसकी आँखोंको देखकर भ्रम होता है कि ये कमल हैं या मछलियाँ हैं या कामदेवके बाण हैं या नेत्र हैं! उसके स्तनोंको देखकर भ्रम होता है कि ये चकवे हैं या फूलोंके गुच्छे हैं या सोनेके घड़े हैं या स्तन हैं और उस पूरी नायिकाके शरीरको देखकर यह भ्रम होता है कि यह बिजली है या तारा है या सोनेकी लता है या नारी है ॥ २३ ॥ जिनके शरीरपर कुङ्कुम पुता हुआ है, जिनके गोरे स्तनोंपर हार काँप रहे हैं और जिनके चरण-कमलके पास बिछुओंकी रुनझुनमें हंसकी बोली गूँज रही है ऐसी रमणियाँ किसे वशमें नहीं कर लेतीं ॥२४॥ जिसने अपने बड़हरको जीतनेवाले सुन्दर स्तनोंसे युवकोंका मन

विहरन्ती मधुरगीः। तरुण्या लावण्यं किमपि विदधा-नार्भकविधौ नवीना मीनाक्षी व्यथयति मुनीनामपि मनः ॥ २५ ॥ क्वचित्सभ्रूभङ्गैः क्वचिदपि च लज्जापरिणतैः क्वचिद्भीतित्रस्तैः क्वचिदपि च लीलाविलसितैः। नवोढानामेभिर्वदनकमलैर्नेत्रचलितैः स्फुरल्लीलालीना-प्रकरपरिपूर्णा इव दशः ॥ २६ ॥ घुणाक्षरन्यायतया विधात्रा विनिर्मितेयं मृगशावकाक्षी। जाने पुनः कौशलमेतदीयमेतादृशीं यद्यपरां विधत्ते ॥ २७ ॥ चन्द्रो जडः कदलिकाण्डमकाण्डशीतमिन्दीवराणि च विमुद्रितविभ्रमाणि। येनाक्रियन्त सुतनोः स कथं विधाता किं चन्द्रिकां क्वचिदशीतरुचिः प्रसूते ॥ २८ ॥ चित्ते निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगाद्रूपोच्चयेन विधिना विहिता कृशाङ्गी। स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥ २९ ॥ तनुस्पर्शादस्या दरमुकुलिते हन्त नयने उदञ्चद्रोमाञ्चं व्रजति जडतामङ्गमखिलम्। कपोलौ घर्माद्रौं ध्रुवमुपरताशेषविषयं मनः सान्द्रानन्दं स्पृशति झटिति ब्रह्म परमम् ॥ ३० ॥ दग्धो विधिर्विधत्ते न सर्वगुणसुन्दरं जनं कमपि। इत्यपवादभयादिव मुग्धाक्षी निर्मिता विधिना ॥ ३१ ॥ दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विषश्चतुर्भिरपि साधुसाध्विति मुखैः समं व्याहृतम्। शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद्ध्रुवं वेधसो विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम् ॥३२॥ न देवकन्यका नापि गन्धर्वकुलसम्भवा। तथाप्येषा तपोभङ्गं विधातुं वेधसोऽप्यलम् ॥ ३३ ॥ निर्माणकौशलं धातुश्चन्द्रिका लोकचक्षुषाम्। क्रीडागृहमनङ्गस्य सेयमिन्दीवरेक्षणा ॥ ३४ ॥ निर्माल्यं नयनश्रियः कुवलयं वक्त्रस्य दासश्शशी भ्रूयुग्मस्य सनाभि–मन्मथधनुर्ज्योत्स्ना स्मितस्याञ्चलः। सङ्गीतस्य च मत्तकोकिलरुतान्युच्छिष्टमेणीदृशस्सर्वाङ्गीणमहो विधेः परिणतं विज्ञानचित्रं

लुभा लिया है, जिसकी बोली अत्यन्त मधुर है, जो अनेक हाव-भावके साथ तालावोंमें विहार करती है वह मछलीके समान नेत्रवाली नई नवेली मुनियोंका मन भी झकझोर डालती है ॥ २५ ॥ कभी भौंहें चढ़ाकर, कभी लाजसे झेंपकर, कभी डरसे घबराकर, कभी हाव-भावसे खेल करके इन नवेली नारियोंके मुख-कमलकी चञ्चल चितवन आँखोंको अनेक प्रकारकी सुन्दर लीलाओंसे भरे डालती हैं ॥ २६ ॥ ब्रह्माने केवल अटकलसे ही इस मृगके समान आँखोंवाली नारीको बना डाला है, क्योंकि उसमें कोई कौशल है यह तो हम तब जानें जब वह ऐसी ही कोई दूसरी बना दे ॥२७॥ चन्द्रमा जड़ है, यह चेतनतासे भरी है, केला अत्यन्त ठण्ढा होता है पर इसे छूनेसे गरमी आती है, कमल कभी-कभी मुँदे रहते हैं पर इसका शरीर सदा खिला रहता है, तब उन वस्तुओंसे ब्रह्माजी इस सुन्दर शरीरवालीकी आकृति कैसे बना सकते हैं? कहीं गरम किरणोंवाले सूर्यसे चाँदनी उत्पन्न हुआ करती है ॥ २८ ॥ ब्रह्माकी शक्ति और उसकी सुन्दर देह दोनोंका विचार करके मेरी समझमें तो यही आता है कि सुन्दरियोंके बनानेकी यह कोई नई निराली कला है क्योंकि ब्रह्माजीने अपने मनमें पहले इसके रूपका ठीक ध्यान करके और नये-नये अच्छे गुणवाले पदार्थोंकी रचनाका अभ्यास करके तब कहीं इस दुबले-पतले अङ्गवाली नायिकाका शरीर बनाया होगा ॥ २९ ॥ जब इस नायिकाके शरीरका स्पर्श करते हैं तब आँखें बन्द हो जाती हैं, रोंगटे उठ खड़े होते हैं, सब अङ्गोंको काठ मार जाता है, मुँहपर पसीना छूटने लगता है और मन संसारके सब विषयोंसे हटकर अत्यन्त घने आनन्दमें मस्त होकर परमानन्दका अनुभव करने लगता है ॥ ३० ॥ ब्रह्माजीने इस भोली-भाली आँखोंवाली नायिकाकी इसलिये रचना कर दी कि कहीं कोई उन्हें यह कलङ्क न लगाये कि इस मुए ब्रह्माने सब गुणोंसे भरा हुआ कोई व्यक्ति बनाया ही नहीं ॥३१॥ जब ब्रह्माजीने इस त्रिलोक-सुन्दरी नायिकाकी रचना की होगी उस समय वे निश्चय ही कमलकी पङ्खड़ियोंकी कान्ति जीतनेवाले अपने नेत्र आश्चर्यसे फाड़कर चारों मुँहोंसे एक साथ 'वाह, वाह' कहकर चिल्लाए होंगे और अपने चारों सिर हिला-हिलाकर प्रसन्नतासे झूम उठे होंगे ॥ ३२ ॥ यद्यपि यह नायिका न तो देवलोककी कन्या है, न गन्धर्वोंके कुलमें ही उत्पन्न हुई है, फिर भी इतनी रसीली है कि ब्रह्माजीकी सारी तपस्या एक क्षणमें बिगाड़ सकती है ॥३३॥ यह कमलके समान नेत्रवाली नायिका ब्रह्माजीके विज्ञानकी सारी चतुराई है, संसारके नेत्रोंको ठण्डक देनेवाली चाँदनी है और कामदेवका क्रीड़ा-भवन है ॥३४॥ ब्रह्माने उसके नेत्रकी शोभाके निर्माल्यके रूपमें कमल बनाया, चन्द्रमाको इस नायिकाके मुखका दास बनाया, उसकी दोनों भौंहोंसे कामदेवका धनुष बनाया, लेशमात्र मुस्कराहटसे चाँदनी बनाई, सङ्गीतसे ही मतवाले कोयलके स्वर बनाए और बचे-खुचेसे हरिणीकी आँखें बना दीं, इस प्रकार ब्रह्माका जितना विचित्र विज्ञान था वह

चिरात् ॥ ३५ ॥ निर्मित्सुः सुदतीमजो विरचिते वक्त्रे शशिभ्रान्तितः कोशीभूतनिजाम्बुजासनमधिष्ठातुं न शक्तो विधिः । मध्यं विस्मृतवान्कुचौ च कठिनौ पीनौ नितम्बौ कचान्वक्रान्निर्मितवान्मतिः स्फुरति हि स्वस्थे नृणां चेतसि ॥ ३६ ॥ निलीना वेश्मान्तः कथमपि सखीनामभिहितैः कृताधीना हीनाकृतिरपि मतीनामविषया । कवीनामज्ञत्वं ज्ञपयति विपीना तनुतया नवीना मीनाक्षी व्यथयति मुनीनामपि मनः ॥ ३७ ॥ निर्मुक्तशैशवदशाशिशिरा नवीनसम्प्राप्तयौवनवसन्तमनोरमश्रीः उन्मीलितस्तननवस्तवका निकाममेणीदृशस्तनुलता तनुते मुदं नः ॥ ३८ ॥ नीलोत्पलोल्लसितखञ्जनमञ्जुनेत्रा सम्पूर्णशारदसुधाकरकान्तवक्त्रा । बाला जगत्त्रितयमोहनदिव्यमूर्त्तिर्मन्ये विभाति जगति स्मरवीरकीर्त्तिः ॥ ३९ ॥ नेदं मुखं मृगवियुक्तशशाङ्कबिम्बं नेमौ स्तनावमृतपूरितहेमकुम्भौ । नैवालकावलिरियं मदनास्त्रशाला नैवेदमक्षियुगलं निगडं हि यूनाम् ॥ ४० ॥ प्रेङ्खणप्रेक्षणालापान्कुर्वत्यः सस्मितत्रपम् । न वीणायाः प्रवीणायाः खञ्जनं स्मररञ्जनम् ॥४१॥ भजन्नासीन्निद्रापरिचयमुपेन्द्रः खलु तदा यदा नाभीपङ्केरुहवसतिनाऽसर्जि विधिना । इयं यद्यायाता क्षणमपि भवेल्लोचनपथं कथं तस्य स्वान्ते निवसति तदद्यापि कमला ॥ ४२ ॥ मधुरवचनैः सभ्रूभङ्गैः कृताङ्गुलितर्जनैरलसवलितैरङ्गन्यासैर्महोत्सवबन्धुभिः । असकृदसकृत्स्फारस्फारैरपाङ्गविलोकितैस्त्रिभुवनजये सा पञ्चेषोः करोति सहायताम् ॥ ४३ ॥ मनोऽपि शङ्कमानाभिर्बालाभिरुपजीव्यते । अपडक्षीणपाड्गुण्यमन्त्री मकरकेतनः ॥ ४४ ॥ मन्दमन्दगमना करिणी किं वा विशालनयना हरिणी किम् । पूर्णचन्द्रवदना रजनी किं

बड़ी देरमें सर्वाङ्गीण होकर इस नायिकाके रूपमें रक्खा जा सका ॥ ३५ ॥ बुद्धिमान् लोगोंके मनमें यह बात समझमें आती है कि जब ब्रह्माने सुन्दर दाँतोंवाली नारियोंका निर्माण करनेकी इच्छासे इस नायिकाका मुँह बना दिया तब उनका आसन अर्थात् कमल उस मुखको चन्द्रमा समझकर मुँदने लगा और ब्रह्माजीका उसमें बैठना भी कठिन हो गया इसलिये वे इस बन्धनमें कसे जानेके कारण इतने घबरा गए कि उसके शरीरमें कमर बनाना भूल गए, स्तन कठोर कर दिए, नितम्ब मोटे-मोटे बना दिए और बाल टेढ़े-मेढ़े (घुँघराले) बना दिए ॥ ३६ ॥ यद्यपि सखियोंने उसे समझा-बुझाकर भीतर घरमें बैठा दिया और बड़ी कठिनाईसे वह बुद्धिकी पहुँचसे बाहर दुबली-पतली नायिका किसी-किसी प्रकार स्थिर भी किया फिर भी वह इतनी दुबली है कि उसने सब कवियोंको मूर्ख बना डाला क्योंकि कोई भी उसकी दुर्बलताका ठीक वर्णन नहीं कर पा रहा है । वही मछलीके समान नेत्रोंवाली नई-नवेली मुनियोंका भी मन मथे डाल रही है ॥ ३७ ॥ जिसमें बचपनरूपी शिशिर बीत गया, मनको रिझानेवाली नये यौवनके वसन्तकी शोभा चढ़ आई, स्तनरूपी नये फूलोंके गुच्छे खिल उठे, वह हरिणीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिका रूपी लता हमारा मन मस्त किए डाल रही है ॥ ३८ ॥ नीले कमलके समान बड़े-बड़े, कजरारे और फुदकते हुए खञ्जन पक्षीके समान चञ्चल नेत्रोंवाली, शरद् ऋतुकी पूर्णिमाके समान सुन्दर मुखवाली और तीनों लोकोंको मोह लेनेके योग्य सुन्दर देहवाली यह बाला ऐसी प्रतीत होती है मानो वीर कामदेवकी कीर्ति ही संसारमें शोभा पा रही हो ॥३९॥ यह इस सुन्दरी नायिकाका मुँह नहीं है, यह तो बिना कालिमावाला चन्द्रमा है, ये उसके स्तन नहीं हैं, ये तो अमृतसे भरे हुए सोनेके कलश हैं, यह उसके बालोंकी लट नहीं है, यह तो कामदेवके अस्त्र बनानेकी प्रयोगशाला है और जिन्हें तुम आँखें समझते हो, ये आँखें नहीं हैं, ये तो युवकोंको बाँधनेवाली बेड़ियाँ हैं ॥ ४० ॥ झेंप और मुसकानके साथ मुड़-मुड़कर देखने और बोलनेवाली स्त्रियोंके वचनोंके सामने अच्छीसे अच्छी वीणाकी गूँज भी इस योग्य नहीं होती कि वह कामको उत्तेजित करे ॥ ४१ ॥ जिस समय भगवान् विष्णुके नाभि-कमलपर बैठकर ब्रह्माने इस नायिकाकी रचना की होगी उस समय भगवान् विष्णु निश्चित रूपसे गहरी नींद लेते रहे होंगे क्योंकि यदि यह कहीं क्षणभरके लिये भी विष्णुके आँखोंके सामने आ जाती तो क्या आज लक्ष्मी उनके पास रह पातीं अर्थात् लक्ष्मीको छोड़कर वे इसे ही पत्नी बना लेते और लक्ष्मी सौतियाडाहसे उनके पाससे चली जातीं ॥ ४२ ॥ अपनी मधुर वाणीसे, कटीली भौंहोंसे, उँगली उठा-उठाकर डाटनेसे, आनन्दसे भरे हुए अलसाए अङ्गोंकी चटक-मटकसे और बार-बार अपने बड़े-बड़े नेत्रोंकी चितवनसे यह नायिका ऐसी जान पड़ती है मानो त्रिभुवनपर विजय प्राप्त करनेवाले कामदेवकी सहायता कर रही हो ॥ ४३ ॥ शङ्का करनेवाली बालाएँ अपने मनको किसी-किसी प्रकार पाल रही हैं क्योंकि उनका पाँच बाणोंवाला समर्थ और छः गुणोंसे युक्त

पश्य गच्छति सखे तरुणी किम् ॥ ४५ ॥ मीनवती नयनाभ्यां चरणाभ्यामपि सुफुल्लकमलवती । शैवालिनी च केशैः सुरसेयं सुन्दरी सरसी ॥ ४६ ॥ लावण्यपुण्यपरमाणुदलं तदन्यदन्यस्स चापि निपुणः खलु कोऽपि वेधाः । येनाद्भुता कृतिरियं विहिता विशिष्टकार्येषु कारणविशेषगुणोऽनुमेयः ॥४७॥ लावण्यामृतदीर्घिका कुलगृहं सौन्दर्यसौभाग्ययोस्त्रैलोक्याकररत्नकन्दलिरियं जीव्यात्सहस्रं समाः । रूपालोकनकौतुकेन बहुना शिल्पश्रमेणादरान्मन्ये यां विधिना विधाय विहितं सृष्टेर्ध्वजारोपणम् ॥ ४८ ॥ वक्त्रं चन्द्रविकासि पङ्कजपरीहासक्षमे लोचने वर्णः स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुः कचानां चयः । वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मण्डनम् ॥ ४९ ॥ समीचीना चीनांशुकपरिवृताङ्गी प्रविलसत्कुचापीना हीना जघनघनभागेऽब्जवदना । न दीना दीनान्तःकलितमदना सेयमधुना नवीना मीनाक्षी व्यथयति मुनीनामपि मनः ॥ ५० ॥ सर्गव्यापारखिन्नस्य वहोः कालाद्विधेरपि । आसीदिमां विनिर्माय श्लाघ्यः शिल्पपरिश्रमः ॥ ५१ ॥ सौन्दर्यस्य तरङ्गिणी तरुणिमोत्कर्षस्य हर्षोद्गमः कान्तेः कार्मणकर्म नर्मरहसामुल्लासनावासभूः । विद्या वक्रगिरां विधेरनवधिप्रावीण्यसाक्षात्क्रिया बाणाः पञ्चशिलीमुखस्य ललनाचूडामणिः सा प्रिया ॥ ५२ ॥ स्तनकलशस्खलदम्बरसंवरणव्यग्रपाणिकमलायाः । निपतन्ति भाग्यभाजामुपरि कटाक्षाः सरोजाक्ष्याः ॥ ५३ ॥ स्फुरन्नानारत्नारुणितवसना वृत्तमसृणस्तनापीना मत्ता तरलजघना हंसगमना । स्मराधीनासीना कविहृदि जिताशेषललना नवीना मीनाक्षी व्यथयति मुनीनामपि मनः ॥ ५४ ॥

वयःसन्धिवर्णनम्

अचल ः चलदिव चक्षुः प्रकृतमपीदं समुद्यदिव

मन्त्री उनकी सहायता करता रहता है ॥४४॥ देखो मित्र ! यह सामने धीरे-धीरे चलनेवाली क्या कोई हथिनी है या बड़े-बड़े नेत्रोंवाली कोई हरिणी है या आगे-आगे पूर्णिमाका चन्द्र किए हुए रात्रि है या कोई नवेली हो चली आ रही है ॥४५॥ यह बाला रसोंसे भरी हुई एक बावड़ी-सी जान पड़ती है क्योंकि इसकी आँखें मछलीके समान हैं, इसके चरण खिले हुए कमलके समान हैं और इसके लम्बे-लम्बे बाल सेवारके समान हैं॥४६॥ सुन्दरताके पुण्यका वह परमाणु-समूह भी कोई निराला ही है और उन सुन्दरताके परमाणुओंसे इस नायिकाकी रचना करनेवाला चतुर ब्रह्मा भी कोई निराला ही है क्योंकि विशेष कार्यका कारण भी कोई विशेष गुणवाला ही समझना चाहिए ॥४७॥ सुन्दरता रूपी अमृतकी बावड़ी, सुन्दरता और सौभाग्य दोनोंका उत्पत्ति-स्थान तथा तीनों लोकों रूपी खानसे उत्पन्न होनेवाली यह रत्नकी डलीरूपी नायिका सहस्रों वर्ष जिए क्योंकि रूप देखनेके लोभी ब्रह्माजीने बड़े परिश्रम, आदर और कलाके साथ इसे बनाकर सृष्टिनिर्माणके विजयका झण्डा गाड़ दिया है॥४८॥ चन्द्रमाको खिलानेवाला मुख, कमलको लजानेवाले नेत्र, स्वर्णको जीत लेनेवाला रङ्ग, भौंरोंकी पाँतोंको हरानेवाली घुँघराली लटें, हाथीके मस्तककी सुन्दरताको परास्त कर देनेवाले कठोर स्तन, बड़े-बड़े नितम्ब और मन हरनेवाले कोमल रसीले बैन, ये सब तो नवेलियोंके स्वाभाविक शृङ्गार हैं ॥ ४९ ॥ रेशमी वस्त्र पहनकर सुन्दर लगनेवाली, मोटे-मोटे स्तनोंसे खिल उठनेवाली, पतली कमरवाली, कमलके समान मुखवाली, सदा प्रसन्न रहनेवाली, कामरससे भरे हुए मनवाली तथा मछलीके समान आँखोंवाली नईनवेली मुनियोंका मन भी झकझोरे डाल रही है ॥ ५० ॥ बहुत दिनोंतक रचना करते-करते थके हुए ब्रह्माकी कारीगरीका परिश्रम इस नायिकाको बनानेके पश्चात् प्रशंसनीय हो गया ॥ ५१ ॥ वह मेरी प्रियतमा सुन्दरताकी नदी, यौवनकी श्रेष्ठताके आनन्दका केन्द्र, कान्ति बनानेकी कला, गोपनीय रहस्योंकी उत्पत्तिका घर, कठोर बोलीकी विद्या, ब्रह्माकी अपरिमित चतुराईका साक्षात् रूप, पाँच बाणोंवाले कामदेवका बाण और सब स्त्रियोंमें शिरोमणि है ॥ ५२ ॥ कलशरूपी स्तनोंसे गिरते हुए आँचलको सँभालनेमें लगे हुए करकमलोंवाली कमलनयनी युवतीकी तिरछी चितवनें भाग्यवानोंपर ही पड़ती हैं ॥ ५३ ॥ अनेक चमकते हुए रत्नोंसे लाल कान्तिवाले वस्त्रोंसे सजी हुई, गोल, चिकने और मोटे स्तनोंवाली, चञ्चल जघनवाली, ठुमुक-ठुमुककर चलनेवाली, सदा काममें मतवाली, कवियोंके हृदयमें सदा बसनेवाली, सब नायिकाओंको जीत चुकनेवाली और मछलीके समान आँखोंवाली नई-नवेली मुनियोंका भी मन झकझोरे डालती है ॥ ५४ ॥

बचपन और यौवनके मिलनकी अवस्थाका वर्णन

इस टेढ़ी भौंहोंवाली नायिकाकी आँखें चल नहीं रही हैं फिर

वक्षः। अत्तदिव तदपि शरीरं सम्प्रति वामभ्रुवो जयति ॥ १ ॥ अत्युन्नतस्तनमुरो नयने सुदीर्घे वक्रे भ्रुवावतितरां वचनं ततोऽपि। मध्योऽधिकं तनुरनूनगुरुर्नितम्बो मन्दा गतिः किमपि चाद्भुतलोचनायाः ॥ २ ॥ अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू। कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥ ३ ॥ अनाकूतैरेव प्रियसहचरीणां शिशुतया वचोभिः पाञ्चालीमिथुनमधुना सङ्गमयितुम्। उपादत्ते नो वा विरमति न वा केवलमियं कपोलौ कल्याणी पुलकमुकुलैर्दन्तुरयति ॥ ४ ॥ अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहैरनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्। अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥ ५ ॥ अनायासकृशं मध्यमशङ्कतरले दृशौ। अभूषणमनोहारि वपुर्वयसि सुभ्रुवः ॥ ६ ॥ अन्तरङ्गमनङ्गस्य शृङ्गारकुलदैवतम्। अङ्गीकरोति तन्वङ्गी सा विलासमयं वयः ॥७॥ अन्येयं रूपसम्पत्तिरन्या वैदग्ध्यधोरणी। नैषा नलिनपत्राक्षी सृष्टिः साधारणी विधेः ॥८॥ अपक्रान्ते बाल्ये तरुणिमनि चागन्तुमनसि प्रयाते मुग्धत्वे चतुरिमणि चाश्लेषरसिके। न केनापि स्पृष्टं यदिह वयसा मर्म परमं तदेतत्पश्चेपोर्जयति वपुरिन्दीवरदृशः ॥ ९ ॥ अयमङ्कुरभाव एव तावत्कुचयोः कर्षति लोकलोचनानि। इतरेतरपीडनीमवस्थां गतयोः श्रीरनयोः कथं भवित्री ॥ १० ॥ असम्भृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य। कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साधु वयः प्रपेदे ॥ ११ ॥ आकण्ठार्पितकञ्चुकार्पितमुरो हस्ताङ्गुलीमुद्रणामात्रासूत्रितहास्यमास्यमलसाः पाञ्चालिकाकेलयः। तिर्यग्लोचनवलितानि वचसां छेकोक्तिसंक्रान्तयस्तस्यास्सीदति शैशवे प्रतिकलं कोऽप्येष केलिक्रमः ॥ १२ ॥ आलापान्भ्रूविलासो विर-

---

भी चलती-सी जान पड़ती हैं, छाती भी जैसी थी वैसी ही है पर कुछ उठती-सी जान पड़ती है और शरीर भी है तो वैसा ही किन्तु कुछ नया-नया-सा लग रहा है। इन सब परिवर्त्तनोंसे यह नायिका संसारको जीते ले रही है ॥ १ ॥ उस अनोखी आँखोंवालीकी छातीपर कुछ ऊँचे-ऊँचे उठे हुए स्तन, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, टेढ़ी-टेढ़ी भौंहें, अत्यन्त टेढ़े वचन, पतली कमर, बड़े-बड़े नितम्ब और मन्द-मन्द चाल यह सब कुछ नये ढङ्गका दिखाई पड़ रहा है ॥ २ ॥ कोमल पत्तोंके समान उसके लाल-लाल ओठ हैं, कोमल नई डालियोंके समान उसकी दोनों भुजाएँ हैं और उसके अङ्ग-अङ्गमें फूलके समान लुभावना यौवन भिदा हुआ है ॥ ३ ॥ बचपनके कारण गुड़िया खेलती हुई उसकी सखियाँ हँसी - हँसीमें जब उससे गुड्डे - गुड़ियाका व्याह रचानेको कहती हैं तब उसकी ऐसी दशा हो जाती है कि वह न तो उन्हें उठाती है न छोड़ती ही है वरन् बात सुनकर ऐसी झेंप जाती है कि उसके गालोंपर रोमाञ्च हो आता है ॥४॥ उसका रूप बिना सूँघे हुए फूल, नखोंसे अछूते पत्ते, बिना बिंधा हुआ रत्न, बिना चखा हुआ नया मधु और बिना भोगे हुए पुण्योंके फलके समान है। ऐसे पवित्र रूपको भोगनेके लिये ब्रह्माने न जाने किसे चुन रक्खा है ॥ ५ ॥ परिश्रम न करनेपर भी उसकी कमर पतली हो गई है, बिना किसी शङ्काके ही उसकी आँखें चञ्चल होने लगी हैं और बिना आभूषणके ही इस सुन्दर भौंहोंवाली नायिकाका शरीर इस समय मनोहर हो गया है ॥ ६ ॥ यह दुबले-पतले अङ्गोंवाली नायिका उस रसीली अवस्थाको पहुँच रही है जिसका साथी कामदेव है और जिसका कुल-देवता शृङ्गार रस है ॥७॥ इस नये ढङ्गके रूप लावण्यसे और नये ढङ्गकी चतुराई-भरी चालसे जान पड़ता है कि कमलकी पंखुड़ियोंके समान आँखोंवाली यह नायिका ब्रह्माकी कोई अनोखी रचना है ॥ ८ ॥ जब बचपन बीत गया और तरुणाईने आनेका विचार किया, भोलापन चला गया और चतुराईने उसे गले लगाया, उस बालापन और यौवनके सन्धिकी अवस्थाके समय कामदेवका वह मर्म कोई नहीं समझ सका जिसके कारण उस कमलके समान नेत्रवाली नायिकाका शरीर संसारको जीतने लगा ॥ ९ ॥ जब उस नायिकाके उभड़ते हुए स्तनके अँकुए ही संसारके नेत्रोंको बरबस खींचे ले रहे हैं तब उस समय इनकी क्या शोभा होगी जब ये बड़े होकर एक दूसरेसे सटने लगेंगे ॥ १० ॥ बालापनके पश्चात् उस नायिकाकी अङ्ग-रूपी लतामें बिना मदिराके ही मादकता लानेवाले और कामदेवके पाँचों फूलोंके बाणोंके अतिरिक्त नये बाणके रूपमें अपने आप आनेवाला सौन्दर्य बनकर नया यौवन आ पहुँचा है ॥ ११ ॥ गलेतक बन्द चोलीसे ढँके हुए स्तनोंवाली, ओठोंपर उँगली रखकर धीरे-धीरे मुस्करानेवाली और तिरछी आँखें करके बातचीत करनेवाली उस नायिकामें बचपनमें ही यह निराला खेल आरम्भ हो गया है ॥ १२ ॥ हरिणके बच्चेकी आँखोंके समान आँखोंवाली नायिकाके यौवनकी शोभा ऐसी जान पड़ती

लयति लसद्वाहुविक्षिप्ति यातं नीविग्रन्थि प्रथिम्ना प्रतनयति मनाङ्मध्यनिम्नो नितम्बः। उत्पुष्यत्पार्श्वमूर्च्छत्कुचशिखरमुरो नूनमन्तः स्मरेण स्पृष्टा कोदण्डकोट्या हरिणशिशुदृशो दृश्यते यौवनश्रीः ॥ १३ ॥ आवृणोति यदि सा मृगीदृशी स्वाञ्चलेन कुचकाञ्चनाचलम्। भूय एव वहिरेति गौरवादुन्नतो न सहते तिरस्क्रियाम्॥१४॥ इदं परमसुन्दरं तनुपुरं कुरङ्गीदृशां निवार्य खलु शैशवं स्वयमनेन नीतं वलात्। तदागमनशङ्कया मकरकेतुना किं कृतं पयोधरधराधरौ त्रिवलिवाहिनीदुस्तरौ ॥ १५ ॥ इमे तारुण्यश्रीनवपरिमलाः प्रौढसुरतप्रतापप्रारम्भाः स्मरविजयदानप्रतिभुवः। चिरं चेतश्चौरा अभिनवविकारैकरुचयो विलासव्यापाराः किमपि विजयन्ते मृगदृशः ॥ १६ ॥ उत्तालालकभञ्जनानि कवरीपाशेषु शिक्षारसो दन्तानां परिकर्म नीविनहनं भ्रूलास्ययोग्याग्रहः। तिर्यग्लोचनचेष्टितानि वचसां छेकोक्तिसंक्रान्तयः स्त्रीणां श्लाघति शैशवे प्रतिकलं कोऽप्येष केलिक्रमः ॥१७॥ उदञ्चद्वक्षोजद्वयतदभरक्षोभितकटि स्फुरद्दृग्भ्यां मन्दीकृतविलसदिन्दीवरयुगम्। समुद्यद्भ्रूभङ्गं प्रविहितधनुर्भङ्गमनिशं वयस्तरपञ्चादयाः कथमिव मनो न व्यथयतु ॥ १८ ॥ उदयति तरुणिमतरणौ शैशवशशिनि प्रशान्तिमायाते। कुचचक्रवाकयुगलं तरुणितटिन्यां मिथो मिलति ॥ १९ ॥ उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्। वभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन ॥ २० ॥ एतस्यां रतिवल्लभक्षितिपतेः क्रीडासरस्यां शनैः संशोषं नयतीव शैशवजलं तारुण्यतिग्मद्युतिः। अन्तःस्था च यथा यथा विकसति प्रायः कुचोच्चस्थली स्थौल्यं हन्त तथा तथा वितनुते दृक्पीनमीनावली ॥ २१ ॥ कलितगरिमा श्रोणिर्मध्यं विवृद्धवलित्रयं हृदयमुदयल्लज्जं मज्जच्चिरन्तनचापलम्। मुकुलित-

---

है मानो निश्चय ही उसके हृदयको कामदेवने अपने धनुषकी कोरसे छू दिया है क्योंकि वातचीत करते-करते उसकी तिरछी चितवन वाधा देती रहती है, वार-वार उसके हाथ चलते रहते हैं, कमरके नाड़ेकी गाँठ वह कसकर वाँधती जाती है, उसके नितम्बका विचला भाग भी कुछ गहरा हो गया है, उसके हृदयपर दोनों ओर स्तन उठ आए हैं और उनकी घुण्डियाँ काली पड़ गई हैं ॥ १३ ॥ जब-जब वह हरिणके समान आँखोंवाली नायिका अपने आँचलसे स्तनरूपी मेरु पर्वतको ढक लेती है तब-तब वे फिर बाहर आ ही जाते हैं क्योंकि जिनका जन्म गौरव (उच्चता) के साथ होता है वे तिरस्कार (अपमान या परदा) नहीं सह सकते ॥१४॥ हरिणके समान सुनयनी नायिकाओंके अत्यन्त सुन्दर शरीररूपी नगरोंसे वचपनको बलपूर्वक हटाकर उसपर कामदेवने अपना अधिकार जमा लिया है और इस भयसे कि कहीं वचपन पुनः लौट न आवे उसने आड़के लिये दो स्तन रूपी पर्वत और त्रिवली (पेटपर पड़ी हुई तीन रेखाएँ) रूपी अजेय सेना खड़ी कर रक्खी है ॥ १५ ॥ हरिणकी आँखोंके समान नेत्रोंवाली नायिकाके ये विलास-भरे व्यापार विजय पा रहे हैं जो कामदेवकी विजयमें सहायता देनेवाले तथा यौवनकी शोभा वढ़ानेवाले नवीन गन्ध हैं, उत्तम कामक्रीड़ारूपी प्रतापको आरम्भ करनेवाले हैं, चिरकालतक चित्तको हरण करनेवाले हैं और जिन्हें नये विकार उत्पन्न करनेमें ही सदा आनन्द आया करता है ॥ १६ ॥ वालाओंके वचपन वीतनेकी इस वेलामें यह कोई बड़ा वखेड़ा खड़ा हो गया है क्योंकि देखो, उसकी भौंहें वाँकी हो चली हैं, वाल सँवारनेकी कलामें उसे रुचि हो चली है, दाँतोंकी रँगावट और स्वच्छतापर ध्यान जाने लगा है, वह वार-वार अपनी कमर वाँधने लगी है, भौंह नचा-नचाकर आग्रह करने लगी है, तिरछी चितवन चलाने लगी है और ऐसी बोली बोलने लगी है जिसे चतुर लोग ही समझ सकते हों ॥ १७ ॥ उभरते हुए दोनों स्तनोंके भारसे उसकी कमर टूटी जा रही है, उसके दोनों चञ्चल नेत्र देखकर सुन्दर कमल भी मुरझाया जा रहा है और उसकी चलती हुई भौंहें निरन्तर धनुष वनी जा रही हैं, तब वताइए, उस कमलनयनीकी यह अवस्था युवकोंका हृदय क्यों न वेधती चले ॥ १८ ॥ यौवनरूपी सूर्यके उदय और वचपनरूपी चन्द्रमाके अस्त होनेकी वेलामें दोनों स्तन रूपी चकवा-चकवी इस युवतीरूपी नदीके तटपर परस्पर गले मिल रहे हैं॥१९॥ तूलिकासे रँगे हुए चित्रके समान अथवा सूर्यकी किरणोंसे खिलाए हुए कमलके समान उसकी नवयौवनसे विकसित देह सब प्रकारसे भली लग रही है॥ २० ॥ यह नायिका कामदेवरूपी राजाकी जलक्रीड़ाकी उस वावड़ीके समान है जिसमें जब यौवनरूपी तीव्र किरणोंवाला सूर्य धीरे-धीरे वचपनरूपी जल सोखने लगा तब उसके वीचसे स्तनरूपी स्थली निकलने लगी। पर सबसे बड़े आश्चर्यकी वात तो यह है कि नेत्ररूपी मोटी-मोटी मछलियाँ और भी मोटी होने लग गई हैं॥२१॥ उसके हृदयके नीचे नाभिके पास तीन रेखाएँ

कुचं वक्षश्चक्षुर्मनाग्भृतवक्रिमक्रमपरिगलद्बाल्यं तस्या वपुस्तनुते श्रियम् ॥ २२ ॥ केलीकौतुकमादराच्छ्रवणयोरालीभिराश्राव्यते बालाभिस्तु पुरः पुरेव रजसि क्रीडार्थमाहूयते । चेतो याति न वा ततस्तदुभयोरेणीदृशः साम्प्रतं मध्ये चुम्बकयोरयःशकलवन्निष्पक्षपातं मनः ॥ २३ ॥ क्षणं सरलवीक्षणं क्षणमपाङ्गसंवीक्षणं क्षणं रजसि खेलनं क्षणमतीव भूपादरः । क्षणं द्रुततरा गतिः क्षणमतीव मन्दा गतिः क्षणक्षणविलक्षणं जयति चेष्टितं सुभ्रुवः ॥ २४ ॥ क्षोभं धत्ते यदतिबहलः स्निग्धलावण्यपूरः प्रत्यङ्गं यत्तटमनुसरन्त्यूर्मयो विभ्रमाणाम् । उन्मग्नं यत्स्फुरति च मनाक्कुम्भयोर्द्वन्द्वमेतत्तन्मन्येऽस्याः स्मरगजयुवा गाहते हृत्तडागम् ॥ २५ ॥ गण्डे मण्डनमात्मनैव कुरुते वैदग्ध्यगर्वादसौ त्यक्त्वा हेमविभूषणानि तनुते तालीदलेष्वाग्रहम् । मन्दा कन्दुकखेलनाय भजते शारीषु शिक्षारसं तन्व्या चित्रमकाण्ड एव लटभाभावे निबद्धो भरः ॥२६॥ चाञ्चल्यं चरणौ विहाय नयनप्रान्तं प्रतिष्ठासते। वस्तुं वाञ्छति वाचि काचिदमृतस्पर्धाकरी माधुरी । कान्तिः काचन वक्षसो विजयते तन्व्या दुकूलाञ्चलं तन्मन्ये दिवसैः कियद्भिरतनुर्जेता जगन्मण्डलम् ॥ २७ ॥ तत्तस्याः कमनीयकान्तिविजितत्रैलोक्यनारीवपुः शृङ्गारस्य निकेतनं समभवत्संसारसारं वयः । यस्मिन्विस्मृतपक्ष्मपालिचलनाः कामालसा दृष्टयो नो यूनां पुनरुत्पतन्ति पतिताः पाशे शकुन्ता इव ॥२८॥ तदात्वप्रोन्मीलन्म्रदिमरमणीयाः कठिनतां विचित्य प्रत्यङ्गादिव तरुणभावेन घटितौ । स्तनौ सम्बिभ्राणा क्षणविनयवैयात्यमसृणस्मरोन्मेषाः केषामुपरि न रसानां युवतयः ॥ २६ ॥ दरोत्तानं चक्षुः कलितविरलापाङ्गचपलं

पड़ती जा रही हैं, स्तनके उदय होनेसे हृदय लज्जित हो रहा है (धीरे-धीरे हृदयपर स्तन निकल आए हैं), दृष्टि तिरछी चितवन चलाने लगी है अतः निश्चय ही उस कामिनीके शरीरसे बचपन चला गया और यौवन अपनी छटा दिखाने लगा है ॥ २२ ॥ बचपन और यौवनके मिलापके समय हरिणीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिकाका चित्त उस समय दो चुम्बकोंके बीचमें पड़े हुए लोहेके टुकड़ेके समान दोनों ओर खिंचकर रुक जाता है जब एक ओर उसकी सखियाँ उसके कानोंमें कामक्रीड़ाकी नई-नई बातें सुनाती हैं और दूसरी ओर छोटी-छोटी कन्याएँ उसे धूलमें खेलनेके लिये बुलाती हैं ॥२३॥ उस सुन्दर भौंहोंवालीकी क्षण-क्षणपर होनेवाली अनोखी चेष्टाएँ संसारको जीत रही हैं। वह क्षणभर तो सीधी चितवनसे देखती है, दूसरे ही क्षण तिरछी चितवन चलाने लगती है, क्षणभर धूलमें खेलती है, दूसरे ही क्षण शरीरपर आभूषण सजाने लगती है तथा क्षणभर हड़बड़ाकर झटपट चलती है और दूसरे ही क्षण धीरे-धीरे पैर रखने लगती है ॥ २४ ॥ इस नवेलीके अङ्गमें जो कोमल सुन्दरताका प्रवाह लहरें ले रहा है, विलासकी जो लहरियाँ अङ्गके छोरतक आ-जा रही हैं और यह जो उसके हृदयपर उठा हुआ घड़ोंका जोड़ा दिखाई पड़ रहा है वह सब ऐसा लगता है मानो इसके हृदयरूपी सरोवरमें कामदेवरूपी वह तरुण हाथी डुबकी लगा रहा हो जिसके मस्तकके उठे हुए दोनों कोर ऊपर दिखाई दे रहे हैं ॥ २५ ॥ यह नायिका चित्रकार बननेका घमण्ड करके अपने-आप अपने गाल चीतने लगी है, सोनेके आभूषण छोड़कर ताड़के पत्तोंके आभूषण बनाने लगी है, गेंद खेलना बन्द करके मैनाको सिखानेमें अधिक रस लेने लगी है अतः उस नायिकामें कुछ ऐसी विचित्र बात होने लगी है कि वह दिन-रात अपनेको आकर्षक बनानेके फेरमें पड़ी रहती है ॥ २६ ॥ उस नवेलीके स्तनपर ढका हुआ पल्लू कुछ विचित्र छटा उत्पन्न करता हुआ ऐसा लग रहा है मानो थोड़े ही दिनोंमें कामदेव इस संसारपर उसका झण्डा फहरानेवाला है क्योंकि उसके शरीरमें उसके पैरोंकी चञ्चलता नेत्रोंमें पहुँचना चाहती है और अमृतसे होड़ करनेवाली मिठास उसकी वाणीमें बसना चाहती है ॥ २७ ॥ उसकी वह प्यार करने-योग्य सुन्दरता, तीनों लोकोंकी नारियोंको जीतनेवाली सुन्दर देह और संसारका सार बनी हुई बचपन और यौवनके मिलापकी अवस्था वास्तवमें शृङ्गार रसका ऐसा घेरा है जिसमें कामसे अलसाई हुई युवकोंकी आँखें फन्देमें पड़े हुए पक्षियोंकी भाँति पङ्ख हिलाना भूल गई हों ॥ २८ ॥ बचपन और यौवनकी सन्धिके समय अपनी कोमलताके कारण सुन्दर लगनेवाली तथा क्षण-क्षणपर अपने चुलबुलेपनसे कोमल कामदेवको उभाड़नेवाली युवतियाँ सब अङ्गोंकी कठोरता अपने बड़े-बड़े दोनों स्तनोंमें भरकर कितनी रसीली नहीं हो जातीं ? ॥ २९ ॥ भयसे खुली हुई सी बड़ी-बड़ी आँखें, सुन्दर सजी हुई तिरछी चितवन, भविष्यमें बढ़े होकर उभरनेवाले दोनों स्तनोंके भारसे अलसाया हुआ उसका हृदय और उसके नितम्ब उस गोरे शरीरपर

भविष्यद्विस्तारिस्तनयुगलगर्भालसमुरः । नितम्बं सङ्क्रान्ताः कतिपयकला गौरवपुषो वपुर्मुञ्चद्वाल्यं किमपि कमनीयं मृगदृशः ॥ ३० ॥ दृशोः सीमावादः श्रवणयुगलेन प्रतिकलं स्तनाभ्यां संरुद्धे हृदि मनसिजस्तिष्ठति बलात् । नितम्बः साक्रन्दं क्षिपति रशनादाम परतः प्रवेशस्तन्वङ्ग्या वपुषि तरुणिम्नो विजयते ॥३१॥ दृश्यं दृशां सहस्रैर्मनसामयुतैर्विभावनीयश्च । सुकृतशतकोटिभोग्यं किमपि वयः सुभ्रुवो जयति ॥ ३२ ॥ दृष्टिः शैशवमण्डना प्रतिकलं लावण्यमभ्यस्यते पूर्वाकारमुरस्तथापि कुचयोः शोभां नवामीहते । सम्प्राप्ता गुरुतां तथाप्युपचिताभोगा नितम्बस्थली तन्व्याः स्वीकृतमन्मथं विजयते तन्नेत्रपेयं वयः ॥३३॥ दोलायां जघनस्थलेन चलता लोलेक्षणा लज्जते साशङ्कं तनुकण्टकक्षतभिया क्रीडावने क्रीडति । धत्ते दिक्षु निरीक्षणं स्मितमुखी पारावतानां रुतैः सज्जं मौग्ध्यविसर्जनाय सुतनोः श्रृङ्गारमित्रं वयः ॥ ३४ ॥ न दन्तुरमुरःस्थलं वचसि नाश्रिता चातुरी विकारि न विलोकितं भ्रुवि न वक्रिमोपक्रमः । तथापि हरिणीदृशो वपुषि कापि कान्तिच्छटा पटावृतमहामणिद्युतिरिवात्र संलक्ष्यते ॥ ३५ ॥ न शीलं दृग्भङ्गी कलयति कुरङ्गीनयनयोः कुचश्रीः कर्कन्धूफलमपि न बन्धूकृतवती । सुधायाः सध्रीची न च वचनवीचीपरिचिता तथापि श्रीरस्या युवजननमस्या विजयते ॥ ३६ ॥ निशितशरधियार्पयत्यनङ्गो दृशि सुदृशः स्वबलं वयस्यराले । दिशि निपतति यत्र सा च तत्र व्यतिकरमेत्य समुन्मिषन्त्यवस्थाः ॥ ३७ ॥ न्यञ्चति वयसि प्रथमे समुदञ्चति तरुणिमनि सुदृशः । दधति स्म मधुरिमाणं वाचो गतयश्च विभ्रमाश्च भृशम् ॥ ३८ ॥ परिहरति यथा यथा वयोऽस्याः स्फुरदुरुकन्दलशालिबालभावम् । द्रढयति धनुषस्तथा तथा ज्यां स्पृशति शरानपि सज्जयन्मनोभूः ॥ ३९ ॥

कुछ ऐसे अनोखे ढङ्गसे बढ़ चले हैं कि उस मृगनयनीके सुन्दर शरीरसे बचपन सरकता चला जा रहा है ॥३०॥ नवेलीकी देहमें आनेवाले उस यौवनकी विजय हो जिसके कारण नेत्रों और कानोंमें सीमाका झगड़ा खड़ा हो गया है, स्तनोंसे सुरक्षित हृदयमें भी कामदेवने बलपूर्वक प्रवेश कर लिया है और नितम्ब भी चिल्लाती हुई करधनीको दूर फेंके डाल रहा है ॥३१॥ इस सुन्दर भौंहवाली नवेलीकी यह बचपन और यौवनके मिलनकी अवस्था सबको जीत रही है जिसे सहस्रों आँखोंवाला ही भलीभाँति देख सकता है, जिसका दस सहस्र मनवाला ही आनन्द ले सकता है और जिसने सौ करोड़ पुण्य किये हों वही इसे भोग सकता है ॥ ३२ ॥ उस पतली नायिकाकी कामदेवसे विभूषित वह अवस्था संसारको जीत रही है जो आँखभर देखने-योग्य है क्योंकि अपनी आँखोंपर बचपनकी झलक होते हुए भी वह सौन्दर्यका अभ्यास करने लगी है, हृदय यद्यपि पहले ही जैसा है फिर भी उसमें स्तनोंकी कुछ निराली शोभा भर आई है और यद्यपि उसके नितम्ब बड़े नहीं हुए हैं फिर भी उन्होंने अपने फैलावका पूरा चक्र बाँध लिया है ॥३३॥ झूला झूलते समय जब उस चञ्चल नेत्रोंवाली नवेलीके बड़े-बड़े नितम्ब हिलने लगते हैं तब वह लजा उठती है, पैरोंमें काँटे गड़ जानेकी आशङ्कासे वह इधर-उधर न खेलकर केवल क्रीड़ावनमें ही खेलती है और कबूतरका शब्द सुनते ही मुसकानके साथ चारों ओर देखने लगती है, अतः जान पड़ता है कि इस सुन्दर देहवाली नायिकाका भोलापन दूर करनेके लिये श्रृङ्गारका मित्र यौवन पैर बढ़ाए चला आ रहा है ॥ ३४ ॥ अभी उस नवेलीके हृदयपर न तो कुछ उभार ही आया है, न उसकी वाणीमें ही कोई चतुराई आ पाई है, न अभी उसकी चितवन ही किसीको घायल करने योग्य हुई है, न उसकी भौंहें ही बाँकी हुई हैं फिर भी हरिणोंके नेत्रोंके समान आँखोंवाली उस नायिकाके शरीरकी शोभाकी दमक ऐसी मनोहर जान पड़ती है मानो किसी वस्त्रसे ढके हुए मणिसे कान्ति फूटी पड़ रही हो ॥ ३५ ॥ यद्यपि इसके नेत्रोंने हरिणियोंके नेत्रोंकी चितवन नहीं पाई, स्तनोंका उभार अभी बेर जितना भी नहीं हुआ और इसके वचन भी अभी अमृतके समान मनोहर नहीं हुए, फिर भी इसकी जिस अनोखी शोभाकी युवकोंमें चर्चा है उसकी चारों ओर विजय हो रही है ॥ ३६ ॥ यौवनकी अवस्थामें पहुँची हुई सुन्दर आँखोंवाली नवेलीके नेत्रोंको तीखा बाण समझकर कामदेव प्रोत्साहन देता चलता है क्योंकि जिस-जिस ओर उसकी दृष्टि पड़ती है उस-उस दिशामें रहनेवाले लोगोंतक पहुँचकर वह दृष्टि उनकी दसों दशाएँ (अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण) कर डालती है ॥३७॥ बचपनके बीतने और यौवनके आगमनके समय इस सुन्दर आँखवालीकी बोली, चाल और हावभावमें बड़ी मिठास आ गई है ॥ ३८ ॥ इस नवेलीकी अवस्था ज्यों-ज्यों बचपन छोड़ रही है त्यों-त्यों कामदेव अपने धनुषकी डोरी

पाञ्चाली मिथुनेषु नातिरसिका लोला विभूषाविधौ सोत्कण्ठा कलगीतिषु प्रियतमालापेषु लज्जालसा। स्मारंस्मारमहर्निशं प्रियसखीसम्भोगवार्तां पुनस्सन्दिग्धा मदनेन तत्र विदुषा वाला चिरं लीयते ॥ ४० ॥ प्रगल्भानामन्तः प्रविशति शृणोति प्रियकथां स्वयं तत्तच्चेष्टाशतमभिनयैर्वञ्चयति च। स्पृहामन्तः कान्ते वहति न समभ्येति निकटं यथैवेयं वाला हरति हि तथा चित्तमधिकम् ॥४१॥ प्रायो दास्यति नो पयोधरतटी गन्तुं पुरस्तादिति ध्यानेनैव चकास्ति साचिगमने शिक्षारसश्चक्षुषोः। अन्तःस्थानमिव प्रदातुमधुना कस्यापि पुण्यात्मनो निर्गन्तुं वहिरुन्नतं स्तनतटं विस्तारि सन्नह्यते ॥ ४२ ॥ प्रेमाशङ्कि च भङ्गि च प्रतिवचोऽप्युक्तं च गुप्तं तथा यत्नाद्याचितमाननं प्रति समाधाने च हाने च धीः। इत्यन्यो मधुरस्स कोऽपि शिशुतातारुण्ययोरन्तरे वर्त्तिष्णुर्मृगचक्षुषो विजयते द्वैविध्यमुग्धो रसः ॥ ४३ ॥ वाल्ये गेहपतौ निमीलति वयःसन्धिं विधाय स्मरश्चौरश्चारुतरं विवेश निभृतं वालाशरीरालयम्। चाञ्चल्यं चरणे पृथुत्वमुदरे निर्लज्जतां चेतसि क्षामत्वं हृदये दृशोः सरलतां सर्वस्वमस्याहरत् ॥ ४४ ॥ भ्रुवौ काचिल्लीला परिणतिरपूर्वा नयनयोः स्तनाभोगो व्यक्तस्तरुणिमसमारम्भसमये। इदानीं वालायाः किममृतमयः किं विषमयः किमानन्दः साक्षाद्ध्वनितमधुरः पञ्चमरवः ॥ ४५ ॥ भ्रूपल्लवो धनुरपाङ्गतरङ्गितानि वाणा गुणाः श्रवणपालिरिति स्मरेण। तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवतायामस्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि ॥ ४६ ॥ मध्यस्य प्रथिमानमेति जघनं वक्षोजयोर्मन्दता दूरं यात्युदरं च रोमलतिकां नेत्रार्जवं धावति। कन्दर्पं परिवीक्ष्य नूतनमनोराज्याभिषिक्तं

कसता जा रहा है और अपने वाणोंको ठीक करता हुआ इसे स्पर्श कर रहा है ॥३९॥ वह नवेली अब गुड्डा-गुड़िया खेलनेमें रस न लेकर अपनी सजावट करनेमें लगी रहती है, सुन्दर गीतोंमें आजकल उसे बड़ी रुचि हो गई है, प्रियतमके सम्बन्धमें बातचीत चलानेपर वह लजाने और अलसाने लगती है और रात-दिन अपनी प्यारी सखीके सम्भोगकी बातें स्मरण किया करती है। अतः ऐसा जान पड़ता है कि परम विद्वान् कामदेवने जो उसे पाठ पढ़ाया है, वह अब उसीमें मग्न रहती है ॥४०॥ वह नवेली चतुरोंके बीच घुसकर प्यारी बातें सुनती है, उन वातोंके अनुसार सैकड़ों हावभावका अभिनय करके उन्हें ठगती भी है तथा उसके पति जब उसे पास बैठाना चाहते हैं तब पासमें नहीं बैठती, फिर भी वह इस समय जैसी है वैसी ही चित्त हरती है ॥ ४१ ॥ ऐसा नहीं है कि वह नवेली किसीको अपने स्तनोंकी कोर ही छूने देती हो कि कोई उसी लोभसे उसके पास जा पहुँचे। सच वात यह है उसकी आँखोंने ही कुछ ऐसा रस सीख लिया है (आँखें ऐसी रसीली हो गई हैं) कि जो उनका ध्यानमात्र कर ले उसे ही साथ लगनेको उकसा देती हैं। इतना होने पर भी वह बाला जब आजतक किसीको नहीं अपना सकी है तो जान पड़ता है कि किसी पुण्यात्माको भीतर हृदयमें स्थान न देनेके लिये ही ये ऊँचे-ऊँचे बड़े-बड़े स्तन आड़ बनकर खड़े हो गए हैं ॥ ४२ ॥ बचपन और यौवनके बीचमें विचरनेवाली इन हरिणकी-सी आँखोंवाली बालाओंका दुरङ्गी चालसे भरा हुआ मनोहर रस सदा जीतता रहता है जिसमें प्रेमकी आशङ्का भी भरी रहती हुई है और शङ्काका विनाश भी, वह कभी उत्तर भी देती है कभी बातको गुप्त भी रखती है, बड़े यत्नसे यदि उसका मुख चुम्बनके लिये मिल भी जाता है तो उसमें कभी सफलता मिलती है और कभी असफलता अर्थात् बचपन और यौवनके सम्मिलनके समय रसिकोंको संयोग और वियोग दोनोंका एक साथ अनुभव मिलता रहता है ॥४३॥ बचपन-रूपी गृहस्वामीके सोए रहनेपर कामदेवरूपी चोर, बचपन और यौवनकी मिलन-रूपी सेंध लगाकर उस नवेलीके सुन्दर शरीररूपी घरमें चुपचाप घुस गया और वहाँसे पैरोंकी चञ्चलता, कमरकी मोटाई, मनकी निर्लज्जता, हृदयकी दुर्बलता तथा आँखोंकी सरलता, सब कुछ चुरा ले गया ॥ ४४ ॥ बचपन और यौवनके इस मिलनके समय उसकी भौंहोंमें कुछ नया बाँकापन, आँखोंमें कुछ अपूर्व परिवर्त्तन तथा स्तनोंमें कुछ विचित्र विस्तार हो चला है और उसकी जो मधुर कोकिल-वाणी है उसे अमृतमय कहें, विषमय कहें या आनन्दमय कहें कुछ समझमें नहीं आता क्योंकि वह बोली मारे भी डाल रही है, जिलाए भी डाल रही है और तन्मय भी किए डाल रही है ॥४५॥ वह नायिका ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेवके विजयकी चलने-फिरनेवाली देवी हो जिसमें कामदेवने भौंहरूपी पल्लवोंका धनुष, नेत्रोंकी चितवनके बाण और कानोंकी सीमाकी डोरी बनाकर संसारको जीतनेवाले अपने अस्त्र स्थापित कर दिए हों ॥ ४६ ॥ सुन्दर भौंहोंवाली नवेलीके नये मनोराज्यपर कामदेवका अभिषेक

क्षणादङ्गानीव परस्परं विदधते निर्लुण्ठनं सुभ्रुवः ॥४७॥ मन्दं मन्दं श्रवणपुटकोपान्तगन्ता दृगन्तः किञ्चित्किञ्चिद्विरमति मनो धूलिकेलीरसेभ्यः। आविर्भावः स्तनमुकुलयोः कापि कान्तिः समन्तादद्य श्वो वा कुसुमधनुषो यौवराज्याभिषेकः ॥ ४८ ॥ मात्रा नर्तनपण्डितभ्रु वदनं किञ्चित्प्रगल्भे दृशौ स्तोकोद्भेदनिवेशितस्तनमुरो मध्यं दरिद्राति च। अस्या यज्जघनं घनं च कलया प्रत्यङ्गमेणीदृशः सत्यश्चारमिव स्मरैकसुहृदा तद्यौवनेनार्पितम् ॥ ४९ ॥ मुखं विकासितस्मितं वशितवक्रिमप्रेक्षितं समुच्छलितविभ्रमा गतिरपास्तसंस्था मतिः। उरो मुकुलितस्तनं जघनमंसबन्धोद्धुरं बतेन्दुवदनातनौ तरुणिमोद्गमो मोदते ॥५०॥ मृदुलवलिललितमध्यं पृथुलकुचं चारु विपुलभूजघनम्। पुन्नागस्पृहणीयं स्फुरति वनं यौवनञ्च नारीणाम् ॥ ५१ ॥ यथा यथा विशत्यस्या हृदये हृदयेश्वरः। तथा तथा वहिर्यातौ मन्ये सङ्कोचतः कुचौ ॥ ५२ ॥ यथा यथास्याः कुचयोः समुन्नतिस्तथा तथा लोचनमेति वक्रताम्। अहो सहन्ते वत नो परोदयं निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः ॥५३॥ यदवधि विलासभवनं यौवनमुदियाय चन्द्रवदनायाः। दहनं विनैव तदवधि यूनां हृदयानि दह्यन्ते ॥ ५४ ॥ रेखा काचन कज्जलस्य नयनाम्भोजे मिथः कौशलादालीभिः सरलीकृतापि कुटिलीभावं समालम्बते। लक्ष्या वक्षसि पाणिपद्मविषमस्पर्शोदयादुन्नतिर्जानीमो वयमेणशावनयने वाल्यं न पाल्यं तव ॥५५॥ लब्ध्वा मण्डलमुन्नतं कुचतटं स्फीता जघन्यश्रियस्ताः कान्ता वलिभिश्च मध्यमभुवो भ्रूभ्यां धृतो वक्रिमा। पञ्चेषुर्विजिगीषते त्रिजगतीं तद्वाल्यतारुण्ययोर्द्वैराज्ये समुपस्थिते मृगदृशः किं केन नारभ्यते ॥ ५६ ॥ लावण्यामृतनिर्झ-

---

हुआ देखकर उसके अङ्ग एक दूसरेके गुणोंकी इस प्रकार लूट-पाट करने लगे हैं कि कमरकी मोटाई नितम्बोंने, स्तनोंका छोटापन कमरने और नेत्रोंका सीधापन रोमावलीने ले लिया अर्थात् स्तन मोटे तथा नेत्र चञ्चल और कुटिल हो गए ॥ ४७ ॥ उस नवेलीकी आँखें धीरे-धीरे कानके पासतक फैल आई हैं, उसका मन भी धूलमें खेलनेके आनन्दसे कुछ-कुछ हट चला है, उसके हृदयपर भी स्तनरूपी कली प्रकट होने लगी है और उसके शरीरपर चारों ओर सुन्दर कान्ति बढ़ रही है। इससे जान पड़ता है कि बस आजकलमें ही इसके शरीररूपी राज्यपर फूलोंके धनुषवाला कामदेव युवराज बनाया जानेवाला है ॥ ४८ ॥ इस नवेलीके मुखपरकी भौंहें उचित ढङ्गसे नाचनेमें चतुर हो चली हैं, आँखें ढीठ होती जा रही हैं, छातीपर स्तनोंका उभार झलका आ रहा है, कमर पतली होती जा रही है और जघन (पेड़ू) कड़ा हो रहा है। इस प्रकार इस हरिणीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिकाके प्रत्येक अङ्गको कामदेवके अकेले मित्र यौवनने ही ठीक-ठीक सजा दिया है ॥ ४९ ॥ चन्द्रमाके समान मुखवाली इस नवेलीके शरीरमें यौवनके आ जानेसे खिली हुई मुसकानवाला मुख, तिरछी चितवन, हावभाव-भरी हुई चाल, चञ्चल बुद्धि, उभरे हुए स्तनोंवाला हृदय तथा कड़ा और उभरा हुआ जघनस्थल बड़ा सुहावना लग रहा है ॥५०॥ एक ओर कोमल लवलीकी लता, बड़े-बड़े बड़हलके फल, लम्बी-चौड़ी सुन्दर भूमि तथा नागकेसरके वृक्ष इस समय वनको सुन्दर और आकर्षक बना रहे हैं, दूसरी ओर लवली लताके समान पतली कमर, बड़हलके समान मोटे स्तन, विस्तृत भूमिके समान बड़े-बड़े नितम्ब तथा नागकेसरके पौधोंके समान सुन्दर त्रिवलियाँ स्त्रियोंके यौवनको आकर्षक रूपसे सुशोभित कर रही हैं ॥ ५१ ॥ इस नवेलीके दोनों स्तनोंको बढ़ते देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसका प्राण-प्यारा ज्यों-ज्यों इसके हृदयमें प्रवेश कर रहा है त्यों-त्यों ये सङ्कोचके मारे बाहर निकले आ रहे हैं ॥५२॥ इस नवेलीके स्तन ज्यों-ज्यों बढ़ते जा रहे हैं त्यों-त्यों नेत्रोंकी चितवन टेढ़ी होती जा रही है। सचमुच जिन दुष्टोंका मन खोटा होता है वे स्वभावसे ही दूसरेकी उन्नति नहीं सह सकते ॥ ५३ ॥ जबसे इस चन्द्रमाके समान मुखवाली नवेलीमें यह आनन्द देनेवाला यौवन उभरने लगा है तबसे युवकोंके हृदय बिना आगके ही जलने लग गए हैं ॥ ५४ ॥ हे मृगके छौनेके नेत्रोंके समान चञ्चल नेत्रोंवाली! हम समझ गए कि तुम अब बचपनकी रक्षा नहीं कर सकतीं क्योंकि तुम्हारी सखियोंने तुम्हारे नेत्रोंमें जो एकान्तमें काजलकी सीधी रेखाएँ बना दी थीं वे टेढ़ी हो चली हैं और हाथ-रूपी कमलके स्पर्शसे दुखनेवाली छातीका उभार भी अब स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा है ॥५५॥ जब वालापन और जवानीका दुराज आ जाता है और कामदेव तीनों लोकोंको जीतनेके लिये कमर कस लेता है तब हरिणके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिकाका कौनसा अङ्ग क्या उत्पात नहीं करता? देखो, स्तन तो अपना घेरा बढ़ाकर ऊँचे हो जाते हैं, नितम्ब चौड़े हो जाते हैं, उदरपर वलियाँ पड़ जाती हैं और भौंहोंमें भी बाँकापन आ जाता है ॥ ५६ ॥ उस सुन्दर

रेण सुदृशः सिक्ताखिलाङ्गस्थली जातस्तत्र नवीनयौवनकलालीलालतामण्डपः। तस्मिन्वेषविशेषशीतलतरच्छायासु सुप्तोत्थितः कन्दर्पस्त्रिजगज्जयोद्यमपरोऽप्यद्यापि निद्रालसः ॥५७॥ लावण्यामृतमाहितं वरतनोरङ्गे स्थितं यत्पुरा तत्तारुण्यघनोदयेन बहुधा सम्बद्धितं पद्मभूः। वीक्ष्य स्पन्दनशङ्कितः कुचयुगव्याजान्नितम्बस्थलाच्चक्रे सेतुयुगं न चेदिह कुतस्तादृग्रसस्थास्नुता ॥ ५८ ॥ लास्याभ्यासमिषेण चित्रमनया गात्रार्पणं शिक्षितं लीलापञ्चमडोलनेन दलिता कण्ठस्य कुण्ठा गतिः। किं व्यावर्णनया समस्तलटभालङ्कारतामेष्यति स्वल्पेनैव परिश्रमेण रमणी देवस्य रामागुरोः ॥ ५६ ॥ वक्षस्यावरणादरस्तनयुगोद्भेदं विनाप्यङ्गुलीमुद्रासूचितहास्यमास्यमधिकं नो पुत्रिकादौ रसः। तिर्यग्लोचनवीक्षितानि वचसां छेकोक्तिसंक्रान्तयस्तस्यास्सीदति शैशवे समभवत्कोऽप्येष नव्यः क्रमः ॥ ६० ॥ श्रोणीबन्धस्त्यजति तनुतां सेव्यते मध्यभागः पद्भ्यां मुक्तास्तरलगतयः संश्रिता लोचनाभ्याम्। धत्ते वक्षः कुचसचिवतामद्वितीयं तु वक्त्रं तद्गात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन ॥ ६१ ॥ सन्नद्धोऽयं नवतरुणिमा काममास्कन्दुकामो नैनां मुञ्चत्यहह सहसा कौतुकी बालभावः। तद्द्वैराजं वरतरतनुस्वर्णभूमौ प्रवृत्तं प्रायस्त्वस्मादनुदिनमयं क्षीयते मध्यदेशः ॥ ६२ ॥ सभ्रूभङ्गं करकिसलयावर्त्तनैरालपन्ती सा पश्यन्ती ललितललितं लोचनस्याञ्चलेन। विन्यस्यन्ती चरणकमले लीलया स्वैरयातैर्निःसङ्गीतं प्रथमवयसा नर्त्तिता पङ्कजाक्षी ॥ ६३ ॥ समं विलासोऽङ्कुरितः स्तनाभ्यां त्रपा विलासेन सहावतीर्णा। अवर्त्ततान्यस्त्रपयैव साकं कान्तः प्रकारो वचसां कृशाङ्ग्याः ॥ ६४ ॥ सम्भिन्नयोरमुष्या वयसोः पयसोरिवाङ्गेषु। अनयो रसद्विभेदं मानसजन्मा परं वेद ॥६५॥ स्तनतटमिदमुत्तुङ्गं निम्नो मध्यः समुन्नतजघनम्। विषमे मृगशावाक्ष्या वपुषि नवे क इव न स्खलति ॥ ६६ ॥ स्थिरत्वमचिरद्युतौ तमसि

आँखोंवाली नवेलीके सुन्दरतारूपी अमृतके झरनेसे सींचे हुए अङ्गरूपी खेतमेंसे सुन्दर वेश-रचनाकी अत्यन्त शीतल छायावाला तथा नये यौवनकी कलारूपी लतावाला जो मण्डप निकल आया है उसमेंसे तीनों लोकोंके जीतनेके फेरमें पड़ा रहनेवाला कामदेव सोकर उठा हुआ अभीतक भी अँगड़ाई ले रहा है ॥ ५७ ॥ ब्रह्माजीने उस नवेलीकी सुन्दर देहमें तरुणाई रूपी मेघोंके आनेसे बढ़े हुए सौन्दर्यरूपी अमृतको जब आता देखा तब इस डरसे कि वह कहीं बह न जाय, उन्होंने दोनों स्तनों और नितम्बोंके दो बाँध बना दिए, नहीं तो इस प्रकारका रस यहाँ ठहर कैसे पाता ॥ ५८ ॥ कोमल नृत्य सीखनेके बहाने इस नवेलीने कुछ अनोखा हाव-भाव सीख लिया है और खिलवाड़में पञ्चम स्वर साधकर उसने अपने गलेका बेसुरापन भी दूर कर दिया। हम और उसका क्या वर्णन करें, वह तो थोड़े ही परिश्रमसे बनाव-सिंगारमें अप्सराओंके भी कान काटने लगेगी॥ ५६ ॥ बचपन समाप्त होनेके समय उसमें ये नई बातें होने लगी हैं कि दोनों स्तनोंके बिना उभरे ही वह छाती ढकती चलती है, अपने मुँहपर उँगली रख-रखकर मुसकराती है, गुड़ियोंसे खेलनेमें रस नहीं लेती, तिरछी चितवनसे देखती है और बात-चीत भी बड़ी चतुराईके साथ करने लगी है ॥६०॥ यौवनने उस नवेलीके अङ्गोंमें गुणोंकी कुछ ऐसी अनोखी अदला-बदली कर दी है कि नितम्बका पतलापन कमरमें चला गया, पैरोंकी चञ्चलता नेत्रोंमें चली गई, हृदयने स्तनोंको अपना मन्त्री बना लिया और मुख अद्वितीय (अकेला या अनुपम) हो गया ॥ ६१ ॥ इस नवेलीके शरीरमें एक ओर तो कामदेवको परास्त करनेके लिये नया यौवन कमर कसे खड़ा है, दूसरी ओर कौतुकी बचपन इसे छोड़नेका नाम नहीं लेता, इसलिये उस नवेलीके सुन्दर शरीररूपी स्वर्णराज्यपर दो-दो राजाओंका आक्रमण हो रहा है जिसकी चिन्तासे उसकी कमर छीजती चली जा रही है ॥ ६२ ॥ देखो, उस कमलके समान नेत्रवाली नवेलीको यह तरुणाई बिना गीतके ही नचा रही है क्योंकि वह हाथ नचा-नचाकर और भौंहें मटका-मटकाकर बातें करती है, अपनी आँखोंकी सुन्दर लुभावनी चितवनके साथ देखती है और मनमाने ढङ्गसे बड़े हाव-भावके साथ धरतीपर पैर धरती चलती है ॥६३॥ इस पतले शरीरवाली नवेलीमें स्तनोंके साथ-साथ क्रीड़ाएँ उभरीं, क्रीड़ाओंके साथ लज्जा आ गई और लज्जाके ही साथ सुन्दर बोलनेका ढङ्ग भी आ गया ॥६४॥ जैसे मानस (मानसरोवर)में उत्पन्न होनेवाला हंस ही दूध और जलका भेद करना जानता है वैसे ही मानस (मन) में जन्म लेनेवाला कामदेव ही इस नवेलीके अङ्गोंमें खिलती हुई अवस्थाओंके रसोंका भेद जान सकता है ॥ ६५ ॥ ऊँचे-ऊँचे स्तन, पतली तथा लचकीली कमर और ऊँचे बड़े-बड़े नितम्बोंसे नीची-ऊँची इस हरिणके नेत्रोंके समान

कोऽपि वन्धग्रहो विधौ किमपि सौरभं मधुनि कापि वर्णात्मता। शिरीषनवदामनि स्फुरति कोऽपि शैलोदयो वयोऽभिनववेधसस्तदिह मन्महे कौशलम् ॥ ६७ ॥ स्मितं किञ्चिद्वक्त्रे सरलतरलो दृष्टिविभवः परिस्पन्दो वाचामभिनवविलासोक्तिसरसः। गतीनामारम्भः किसलयिततलीलापरिकरः स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिह नहि रम्यं मृगदृशः ॥ ६८ ॥

युवतीवर्णनम्

अधारि पद्मेषु तदंघ्रिणा घृणा क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे। तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारितां न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः ॥१॥ अमुष्य दोर्भ्यामरिदुर्गलुण्ठने ध्रुवं गृहीतार्गलदीर्घपीनता। उरःश्रिया तत्र च गोपुरस्फुरत्कपाटदुर्धर्षतिरःप्रसारिता ॥२॥ ऊरुद्वन्द्वमनिन्दितं प्रथयता श्रोण्यौ समातन्वता रोमालीं सृजता समागमयता नाभिं गभीरश्रिया। मध्यं क्षामयता स्तनौ घनयता कान्त्या मुखं लिम्पता तन्वङ्ग्या नवयौवनेन किमपि प्रत्यङ्गमुन्मीलितम् ॥३॥ किमस्य रोम्णां कपटेन कोटिभिर्विधिर्न लेखाभिरजीगणद्गुणान्। न रोमकूपौघमिषाज्जगत्कृता कृताश्च किं दूषणशून्यविन्दवः ॥ ४ ॥ गतं कर्णाभ्यर्णं प्रसरति तथाऽप्यक्षियुगलं कुचौ कुम्भारम्भौ तदपि चिबुकोत्तम्भनरुची। नितम्बप्राग्भारो गुरुरपि गुरुत्वं मृगयते कथञ्चिन्नो तृप्तिस्तरुणिमनि मन्ये मृगदृशः ॥ ५ ॥ तरत्तारश्चक्षुः क्षपयति मुनीनामपि दृशः कुचद्वन्द्वाक्रान्तं हृदयमहृदः काम्न कुरुते। गतिर्मन्दीभूता हरति गमनं मन्मथवतामहो तुल्यं तन्व्यास्तरुणिमनि सर्वं विजयते॥६॥ तरन्तीवाङ्गानि स्खलदमललावण्यजलधौ प्रथिम्नः प्रागल्भ्यं स्तनजघनमुन्मुद्रयति च। दृशोर्ली-

---

आँखोंवाली नवेलीकी देह देखकर कौन नहीं विचलित हो जाता ॥ ६६ ॥ इस नवेलीकी इस अवस्थाका निर्माण करनेमें किसी निराले ब्रह्माने कोई विचित्र ही कौशल किया है क्योंकि उसने बिजली स्थिर कर दी, अन्धकार बाँध दिया, चन्द्रमामें सुगन्ध भर दी, मधुमें सुन्दर स्वरूप भर दिया और शिरीषके फूलोंकी नई मालामें विचित्र उठते हुए पर्वत बना दिए अर्थात् उस नायिकाकी देह स्थिर बिजलीके समान प्रकाशमान, उसके बँधे हुए घने केश अन्धकारके समान काले, उसका मुख सुगन्धसे युक्त, उसकी आकृति मधुर और उसके हृदयमें उठते हुए स्तन अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं ॥ ६७ ॥ इस मृगके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नवेलीका क्या सुन्दर नहीं लगता ? अर्थात् उसके मुखकी मन्द मुसकान; सीधी और चञ्चल चितवन, नई विलास भरी उक्तियोंसे सरस वाणी, हाव-भाव-पूर्ण चलनेका ढङ्ग और कोमल पत्तोंके समान चिकना स्पर्श आदि सभी कुछ अच्छा लगता है ॥ ६८ ॥

युवतीका वर्णन

जब उस युवतीके चरणोंतकने लाल कमलको नीचा दिखाना प्रारम्भ कर दिया तब भला वेचारी कोंपलोंमें उसके हाथकी ललाईकी झलकतक भी कहाँ मिल सकती है ? और तो और, शरद्की पूनोकी रातका स्वामी चन्द्रमा भी उसके सामने ऐसा फीका जान पड़ने लगा है कि उसके मुखका दास बनने तकका भी वह अधिकारी नहीं रह पाया ॥ १ ॥ इस नवेलीके हाथोंने शत्रुओंका दुर्ग लूटकर उसके फाटककी अर्गला (अगरी, व्योंड़े) की गोलाई और लम्बाई तथा छाती ने उस फाटककी कठोरता तथा ऊँचाई अवश्य ले ली है उसकी बाहें गोल-गोल लम्बी और छाती कठोर तथा ऊँची हो गई है ॥ २ ॥ नई जवानीने उस नवेलीके अंग-अंगको कुछ अनोखे ढंगसे ऐसा खिला दिया है कि उसकी दोनों जाँघें अत्यन्त शोभाके साथ मोटी हो गई हैं, नितम्ब फैल गए हैं, छातीके नीचे रोम-पंक्ति फूट आई है, नाभि गहरी हो चली है, कमर पतली हो गई है, स्तन मोटे हो गए हैं और मुँहपर चमक आ गई है ॥ ३ ॥ ब्रह्माने इस नवेलीके शरीरपर जो रोम बनाए हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों इसके गुणोंकी गिनती करनेके लिये ही उसने कपटसे उपाय रचा है और उनके साथ शून्यके समान रोमके छिद्र यही बतानेके लिये बनाए हैं कि इसमें एक भी दोष नहीं है अर्थात् यह दोषशून्य है ॥४॥ हरिणकी आँखों जैसे नेत्रोंवाली युवतीको ज़वानीमें किसी प्रकार भी सन्तोष नहीं होता क्योंकि यद्यपि उसकी दोनों आँखें कानके पासतक जा पहुँची हैं फिर भी बढ़ती ही जा रही हैं, उसके स्तन घड़ों जितने बड़े होनेपर भी ठोढ़ीतक उठनेके लिये मचल रहे हैं और उसके नितम्ब भी यद्यपि पहलेसे ही बड़े और भारी हैं फिर भी और बड़े होना चाहते हैं ॥ ५ ॥ उठती हुई जवानीमें उस नवेलीके सब अङ्ग सबको समान रूपसे जीतते चले जा रहे हैं क्योंकि उसकी चञ्चल आँखें मुनियोंकी आँखोंको भी विचलित किए डालती हैं, उसके दोनों स्तन किन हृदयवालोंको बिना हृदयका नहीं कर रहे हैं और उसकी मतवाली चाल न जाने

लारम्भास्स्फुटमपवदन्ते सरलतामहो सारङ्गाद्द्या-स्तरुणिमनि गाढः परिकरः ॥ ७ ॥ न का निशि स्वप्नगतं ददर्श तं जगाद गोत्रस्खलिते च का न तम्। तदात्मताध्यातधवा रते च का चकार वा न स्वमनोभवोद्भवम् ॥ ८ ॥ निमीलनभ्रंशजुषा दृशा भृशं निपीय तं यस्त्रिदशीभिरर्जितः। अमूस्तमभ्यासभरं विवृण्वते निमेषनिःस्वैरधुनापि लोचनैः ॥ ९ ॥ पर्याप्तस्तनभारपीडितमुरस्तेनैव मध्यो हत पुंसां चित्रवधं धृतेर्विदधते काश्चिद्दृशोर्वृत्तयः। किं भूयः कथितेन पद्मलदृशः पूर्णे तथा यौवने कन्दर्पः परिपूर्णविश्वविजयः किं दर्पतो नाचरेत् ॥ १० ॥ विलोकयन्तीभिरजस्रभावनाबलादमुं तत्र निमीलनेष्वपि। अलम्भि मर्त्याभिरमुष्य दर्शने न विघ्नलेशोऽपि निमेषनिर्मितः ॥ ११ ॥ शारीद्यूतकलाकुतूहलि मनश्छेकोक्तिशिक्षारतिः हृद्यं दर्पणपाणिना स्वकबरीबन्धेन चाचार्यकम्। प्रौढस्त्रीचरितानुवृत्तिषु रसो बाल्ये च लज्जा मनाक्स्तोकारोहिणि यौवने मृगदृशः कोऽप्येष केलिक्रमः ॥ १२ ॥ सरोरुहं तस्य दृशैव तर्जितं जिताः स्मितेनैव विधोरपि श्रियः। कुतः परं भव्यमहो महीयसी तदाननस्योपमितौ दरिद्रता ॥ १३ ॥ स्मितपरिवृता वृत्तिर्वाचामपाङ्गतरङ्गितं नयनचरितं पादन्यासो नितम्बभरालसः। हहह सुतनोर्लीलासूत्रैः कृतं पदमङ्गके वहतु मदनः शोभामात्रं धनुर्ननु सम्प्रति ॥ १४ ॥ स्वकेलिलेशस्मितनिन्दितेन्दुनो निजांशदृक्तर्जितपद्मसम्पदः। अतद्द्वयीजित्वरसुन्दरान्तरे न तन्मुखस्य प्रतिमा चराचरे ॥१५॥ स्ववालभारस्य तदुत्तमाङ्गजैः समं चमर्यैव तुलाभिलाषतः। अनागसे शंसति बालचापलं पुनः पुनः पुच्छविलोलनच्छलात् ॥ १६ ॥

कितने कामियोंकी चाल बन्द कर रही है ॥ ६ ॥ आह! उठती जवानीमें हरिणके आँखोंकी-सी आँखवाली नवेलीके साथ बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो जाती है क्योंकि उसके अङ्ग स्वच्छ सौन्दर्यके समुद्रमें तैरते हुए-से जान पड़ते हैं, स्तनों और नितम्बोंका भारीपन उसकी चञ्चलताको रोंके डालता है और नेत्रोंमें जो नई चञ्चलता आ रही है वह स्वच्छ रूपसे उनकी सरलता दूर कर रही है ॥ ७ ॥ इस अवस्थामें किसने अपने मनकी चाहसे रातको स्वप्नमें अपने प्रियको नहीं देखा, अचानक भूलसे उसका नाम नहीं लिया और अपने मनमें ही अपने सोचे हुए प्रियके साथ रमण नहीं किया ॥ ८ ॥ अपलक नेत्रोंसे भली प्रकार देखनेका जो अभ्यास देवलोककी अप्सराओंने किया है वही अभ्यास यह नवेली आज अपने अपलक नेत्रोंसे देखकर प्रकट कर रही है ॥ ९ ॥ अब और क्या कहा जाय, उस कटीली आँखोंवालीके शरीरपर नई जवानी चढ़ आनेपर मानो कामदेवने अपना विश्वविजय पूर्ण कर लिया अतः अब वह अपने घमंडमें क्या-क्या नहीं कर सकता! देखो, एक ओर तो स्तनोंके अत्यन्त भारसे हृदय पीड़ित है और उसी भारसे उसकी कमर पतली हुई जा रही है और उसकी चितवन ऐसी अनोखी चल रही है कि विचित्र प्रकारसे वह लोगोंके धैर्यकी हत्या करती चली जा रही है ॥ १० ॥ आँखें मुँद जानेपर भी अपनी दृढ़ भावनाके बलसे मनुष्य-लोककी स्त्रियोंने उस युवकको निरन्तर देखते-देखते अपनी पलकें ऐसी सिद्ध कर लीं कि उन्हें पलक गिर जानेपर भी उसके दर्शनमें तनिक-सी भी बाधा नहीं हुई ॥११॥ पासा और जुआ खेलनेकी कलामें मन लगानेवाली, बात बनानेकी कला सीखनेमें रुचि दिखानेवाली, स्वयं हाथसे दर्पण लेकर अपना जूड़ा बाँधनेमें चतुर, बचपनके कारण कुछ लज्जा करनेवाली पर प्रौढ़ स्त्रियोंके समान आचरण करनेमें रस लेनेवाली रसीली नवेलियोंका उस समय ऐसा ही खेल होता है जब वे कुछ-कुछ जवानीकी सीढ़ीपर चढ़ने लगती हैं ॥ १२ ॥ कमलको उसकी आँखोंने हरा दिया और चन्द्रमाकी सारी कान्ति उसकी मुसकानने जीत ली, इसीलिये उसके मुखकी उपमा देनेमें इतनी बड़ी दरिद्रता दिखाई पड़ने लगी है ॥ १३ ॥ मुसकानसे धुली हुई उसकी बातें, लहराती हुई चितवन तथा नितम्बोंके भारके कारण मन्द गति देखकर जान पड़ता है कि उस कोमलाङ्गीके अङ्गोंमें कुछ नये हाव-भावके सूत्रोंने प्रवेश कर लिया है। अब इसके सामने कामदेव अपने धनुषको शोभामात्रके लिये भले ही धारण किए रहे किन्तु वह इनके सामने कुछ नहीं है ॥१४॥ जब उसने अपनी खिलवाड़की तनिकसी मुसकानसे चन्द्रमाको लजा दिया और अपनी चितवनकी एक झपकसे कमलकी शोभा फीकी कर दी तब चन्द्रमा और कमलको जीतनेवाली तीसरी कोई वस्तु रह ही नहीं गई; इसीलिये उस नवेलीके मुखकी उपमा चर और अचर कहीं भी नहीं मिल सकी ॥ १५ ॥ चँवरी गौएँ बार-बार अपनी पूँछें हिला-हिला कर मानो यह सिद्ध कर रही हैं कि हम निरपराध हैं और यह हमारे बालोंका लड़कपन है कि वे उस नवेलीके सिरपर शोभा पानेवाले बालोंकी बराबरी चाहते हैं ॥१६॥

नखशिखवर्णनम्

केशपाशः—अस्याः कचानां शिखिनश्च किन्तु विधिं कलापौ विमतेरगाताम्। तेनायमेभिः किमपूजि पुष्पैरभर्त्सि दत्त्वा स किमर्धचन्द्रम् ॥ १ ॥ अस्या मनोहराकारकवरीभारनिर्जिताः। लज्जयेव वने वासं चक्रुश्चमरबर्हिणः ॥ २ ॥ अस्या यदास्येन पुरस्तिरश्च तिरस्कृतं शीतरुचान्धकारम्। स्फुटस्फुरद्भङ्गिकचच्छलेन तदेव पश्चादिदमस्ति बद्धम् ॥ ३ ॥ अस्याः सपत्नैकविधोः कचौघः स्थाने मुखस्योपरि वासमाप। पक्षस्थतावद्बहुचन्द्रकोऽपि कलापिनां येन जितः कलापः ॥ ४ ॥ आभाति शोभातिशयं प्रपञ्चादेणीदृशोऽस्या रमणीयशोभा। वेणी लसत्कुन्तलधोरणीनां श्रेणीव किं चास हरिन्मणीनाम् ॥ ५ ॥ इयं मुखाम्भोरुहसन्निधाने विलम्बिधम्मिल्लततिच्छलेन। समागतां सादरमेव बाला द्विरेफमालामुत वा दधाति ॥ ६ ॥ उन्मीलद्वदनेन्दुकान्तिविसरैर्दूरे समुत्सारितं भग्नं पीनकुचस्थलस्य च रुचा हस्तप्रभाभिर्हतम्। एतस्याः कलविङ्ककण्ठकदलीकल्पं मिलत्कौतुकादप्राप्ताङ्गसुखं रुषेव सहसा केशेषु लग्नं तमः ॥ ७ ॥ एणीदृशः पाणिपुटे निरुद्धा वेणी विरेजे शयनोत्थितायाः। सरोजकोशादिव निष्पतन्ती श्रेणी घनीभूय मधुव्रतानाम् ॥ ८ ॥ एतां नवाम्बुधरकान्तिमुदीक्ष्य वेणीमेणीदृशो यदि वदन्ति वदन्तु नाम। ब्रूमो वयं मुखसुधांशुसुधाभिलाषादभ्यागतां भुजगिनीं मणिमुद्वहन्तीम् ॥ ९ ॥ एणीदृशो विजयते वेणी पृष्ठावलम्बिनी। कशेव पञ्चबाणस्य युवतर्जनहेतवे ॥ १० ॥ केशान्सुमनसां सेव्यान्वामा बध्नन्ति निर्दयम्। स्थाने तथाविधानां वा प्रमदानां समीहितम् ॥ ११ ॥ कौटिल्याच्छन्नमाहात्म्यस्तदीयोऽलकसञ्चयः। कृष्णद्युतिः पुरस्तिष्ठन्नादधे कं समाकुलम् ॥ १२ ॥ चलत्कामिमनोमीनमादातुं चित्तजन्मनः। गलयष्टिरि-

---

नखशिख-वर्णन

केश : मोरोंने इसके बालोंके निर्माणके समय ब्रह्माजीका क्या बिगाड़ा था कि उन्होंने इन बालोंको तो फूलोंसे पूजा और मोरोंकी पूँछको अर्धचन्द्र देकर उनका अनादर किया ॥ १ ॥ चँवरी गौएँ और मोर जो वनमें रहते हैं उसका कारण यही है कि इसके मनोहर जूड़ेसे पराजित होकर उन्होंने वनवास ग्रहण कर लिया है ॥ २ ॥ इसके सिरके पीछे जो चमकते हुए चोटीके रूपमें बाल बँधे हुए हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो इसके चन्द्रमारूपी मुखके सामनेसे और अगल-बगलसे जो अँधेरा हटा वही पीछे बाँध दिया गया है ॥ ३ ॥ उस नवेलीके चन्द्रमाके समान मुखके पास उचित स्थानपर स्थापित यह जूड़ा सचमुच बड़ा सुन्दर लगता है क्योंकि इसने बहुत-से चन्द्रिकावाले मोरोंके समूहोंको अपनी शोभासे जीत लिया है ॥ ४ ॥ इस हरिणके समान आँखोंवाली नायिकाकी सुन्दरता और विलासोंसे भरी हुई उसकी शोभा उस सुन्दर गुथी हुई बालोंकी चोटीके कारण और भी अधिक बढ़ गई है जो नीलमकी पंक्तिके समान सुन्दर लग रही है ॥ ५ ॥ इस नवेलीके मुखकमलपर लहराते हुए बाल ऐसे जान पड़ते हैं मानो भौंरोंको पातें हों, आदरपूर्वक चली आई हों ॥ ६ ॥ उसके बाल इतने काले हैं कि वे ऐसे लगते हैं मानो जब अँधेरा इस नवेलीके पास आया तो पहले निकलते हुए चन्द्रमाके समान मुखकी चमकने उसे दूर कर दिया, मोटे स्तनोंकी कान्तिने उसे तोड़ दिया और हाथोंकी दमकने उसे चूर-चूर कर दिया तब वह बड़े क्रोधसे गौरैयाके गलेके समान उसके सुन्दर अङ्गोंको न छू सकनेके कारण उछलकर उसके बालों पर ही चढ़ बैठा ॥ ७ ॥ वह हरिणीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नवेली जब शैयासे उठी तो उसके हाथोंमें उलझी हुई चोटी ऐसी शोभा पा रही थी मानो कमलोंके कोशोंसे भौंरोंके झुण्डके झुण्ड पाँत बाँधकर निकले चले आ रहे हों ॥ ८ ॥ हरिणीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नवेलीकी नये बादलोंके समान सुन्दर चोटीको यदि कुछ लोग 'चोटी' कहते हैं तो भले कहें, पर हम तो यही कहेंगे कि मुखरूपी चन्द्रमाका अमृत पीनेकी इच्छासे कोई मणिधर सर्पिणी वहाँ आ पहुँची है ॥ ९ ॥ हरिणीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली उस नवेलीकी पीठपर लटकती हुई चोटी ऐसी लगती है मानो युवकोंको धमकानेके लिये कामदेवका कोड़ा हो ॥ १० ॥ सुन्दर मनवाले लोगों (फूलों) से जो सेवा कराते हैं उन बालोंको स्त्रियाँ जो कसकर बाँधती हैं वह ठीक ही है। ऐसे दुष्टोंको इस प्रकार बाँधना ही ठीक है (क्योंकि वे अच्छे मनवालोंसे अपनी सेवा कराते हैं) ॥ ११ ॥ सामने लहराते हुए उसके बाल सचमुच बड़े कुटिल (घुँघराले; दुष्ट) हैं क्योंकि उनकी काली चमक किसे व्याकुल नहीं कर देती ॥ १२ ॥ इस नवेलीकी जो चोटी मोतियोंकी लड़ियोंसे चमक रही है वह ऐसी जान पड़ती है मानो चञ्चल कामियोंके मनरूपी मछलियोंको फँसानेके लिये कामदेवकी वंसी हो ॥ १३ ॥

वाभाति वालावेणी गुणोज्ज्वला ॥ १३ ॥ चिकुरप्रकरा जयन्ति ते विदुषी मूर्धनि यान्बिभर्ति सा । पशुनाप्यपुरस्कृतेन तत्तुलनामिच्छति चामरेण कः ॥ १४ ॥ तमस्तोम भृशं सोममण्डलोपरि राजसे । धूमपानेन किं नाम धाम गम्यमतः परम् ॥ १५ ॥ तस्याः कचभरव्याजात्तनयस्नेहलालितः । आरूढः पार्वतीबुद्ध्या गुहबर्हीव मूर्धनि ॥ १६ ॥ धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरवनं घनस्निग्धं श्लक्ष्णं चिकुरनिकुरम्बं तव शिवे । यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सुमनसो वसन्त्यस्मिन्मन्ये वलमथनवाटीविटपिनाम् ॥ १७ ॥ न जीमूतच्छेदः स हि गगनचारी न च तमो न तस्येन्दोर्मैत्री न च मधुकरास्ते हि मुखराः । न पिच्छं तत्केकिन्युचितमसितोऽयं न च मणिर्मृदुत्वादाज्ञातं घनचिकुरपाशो मृगदृशः ॥ १८ ॥ वाला वालान्वशीकृत्य निवध्नातीति नाद्भुतम् । किन्तु तैः सह हा हन्त पथिकानपि दर्शकान् ॥ १९ ॥ भाति विन्यस्तकह्लारं सुकेश्याः केशसञ्चयम् । शोणिताद्रैः शरैः पूर्णं तूणीरमिव मान्मथम् ॥ २० ॥ मलिना अपि संयमनात्कुटिला अपि सुमनसां समागमतः । वाला अपि मुक्तानामनुषङ्गान्निर्जरत्वमुपयान्ति ॥ २१ ॥ यं यं त्वं प्रमदे मनागपि दृशोर्लक्ष्यं विधत्सेऽध्वगं छिन्नप्राण इव क्षणात्स सकलो व्यापद्यते हा क्षणात् । तज्जन्यं वृजिनं समुचितमिदं मन्ये न केशोच्चयं न ध्वान्तं न हि तस्य सम्भवति संयोगो मुखेन्दौ स्थिते ॥ २२ ॥ लसन्मौक्तिकश्रेणिगङ्गातरङ्गा स्वयं नन्दिनी भास्वतो नीलवर्णा । ससीमन्तसिन्दूरसारस्वताभा त्रिवेणीयमेणीदृशो मौलिवेणी ॥ २३ ॥ विकचकचकलापः किञ्चिदाकुञ्चितोऽयं कुचकलशनिवेशी शोभते श्यामलाक्ष्याः । मधुरसपरितोपात्किञ्चिदुत्फुल्लकोशे

इस विदुषीने अपने मस्तकपर जो वालोंके गुच्छे धारण किए हैं वे संसारको जीत रहे हैं क्योंकि जब चँवरी गौ, पशु होकर भी इन वालोंसे हारकर अपने वाल आगे न रखकर पीछे पूँछपर रख छोड़ती है तब भला इन वालोंसे और दूसरा कौन तुलना करना चाहेगा ॥१४॥ वालोंको सम्बोधित करके कवि कहता है कि हे अन्धकार समूह! तुम तो यों ही चन्द्रमण्डल (मुख) के ऊपर अत्यन्त शोभा पा रहे हो तिसपर यह अगरका धुआँ पीकर तुम और किस ऊँचे पदपर चढ़ जाना चाहते हो ॥ १५ ॥ उस नायिकासे मस्तकपर वाल ऐसे लग रहे हैं मानों पुत्र-स्नेहसे पला हुआ कार्त्तिकेयका मोर उसे पार्वती समझकर उसके मस्तकपर जा वैठा हो ॥ १६ ॥ सबका कल्याण करनेवाली हे भवानी! वादलके समान काला और खिले हुए नीले कमलके समान सुन्दर आपका वह केश-पाश हमारे चित्तका अन्धकार दूर करे जिसकी स्वाभाविक सुगन्ध लेनेके लिये देवता लोग फूल वनकर नन्दनवनके वृक्षोंपर फूलते हैं क्योंकि नन्दनवनके कल्पवृक्षोंके फूलोंसे ही भवानीके जूड़ेका शृङ्गार होता है ॥१७॥ उस नायिकाके जूड़ेको देखकर कवि कल्पना करता है कि यह वादल नहीं हो सकता क्योंकि वह आकाशमें चलता है, यह अन्धकार भी नहीं है क्योंकि उसकी चन्द्रमाके साथ मित्रता नहीं होती और यह चन्द्रमा (मुख) के पास है, यह भौंरोंका समूह भी नहीं है क्योंकि वे तो गूँजते रहते हैं, यह पूँछ भी नहीं है क्योंकि वह तो मोरोंके होती है और यह मणि भी नहीं है क्योंकि काला है किन्तु इसकी कोमलता देखकर समझमें आ जाता है कि यह हरिणके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिकाके घने वालोंका जूड़ा ही है ॥१८॥ यदि वह नायिका अपने वाल समेटकर कसकर वाँधती है तो वाँधे, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है किन्तु दुःख तो यह है कि वह उन वालोंके साथ दर्शक पथिकोंको भी कसकर वाँध लेती है॥१९॥ उस सुन्दर केशवाली के वाल लाल कमलोंसे गुथे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो वह रक्तसे भींगे हुए बाणोंसे भरा हुआ कामदेवका तरकस हो ॥ २० ॥ जैसे इन्द्रियोंको वशमें रखकर मलिन स्वभाववाले, देवताओंका संसर्ग करके दुष्ट स्वभाववाले और जीवन्मुक्तोंके साथ रहनेसे वच्चे भी देवता वन जाते हैं वैसे ही ये काले-काले वाल भी माँग काढ़नेसे, पुष्पोंसे गूँथेनेसे और मोतियोंसे गुँथे जानेके कारण जराशून्य (कभी न गिरनेवाले) हो रहे हैं ॥२१॥ हे कामिनी! जो पथिक क्षण भरके लिये भी तुम्हें देख लेता है वह तत्काल मृतक होकर गिर तो पड़ता है किन्तु तत्काल जी भी उठता है पर उसका कारण तुम्हारे वाल नहीं है वरन् वालोंके साथ लगा हुआ तुम्हारा मुखरूपी चन्द्रमा है जिसके अमृतसे वह मर नहीं पाता ॥ २२ ॥ उस हरिणीके समान नेत्रोंवाली नायिकाके सिरकी चोटी त्रिवेणीके समान लगती है क्योंकि उसमें गुँथी हुई मोतियोंकी लड़ी तो गंगाजीकी तरंग है, काले वाल ही यमुनाकी धारा हैं और माँगमें सिन्दूरकी रेखा ही सरस्वती लहरा रही है ॥२३॥ इस कजरारे नयनोंवाली नायिकाके स्तन-रूपी कलशोंपर जो कुछ खुलकर लट वनकर लटदार वाल फैले हैं वे ऐसे शोभा दे

कमल इव निलीनाः पेटकाः षट्पदानाम् ॥२४॥ विधिः किमस्या नितराममान्तमङ्गेषु शृङ्गाररसं सुकेश्याः। स्निग्धोल्लसत्कुन्तलकैतवेन निधाय मूर्ध्नि स्तवकीचकार ॥ २५ ॥ वेणीश्यामा भुजङ्गीयं नितम्बान्मस्तकं गता। वक्त्रचन्द्रसुधां लेढुं सान्द्रसिन्दूरजिह्वया ॥ २६ ॥ श्यामा मिलिन्दमाला बालाया वदनपद्ममकरन्दम्। आस्वादितुमिव मिलिता ललिता वेणीमिषादेषा ॥२७॥ स्तनाभोगे पतन्भाति कपोलात्कुटिलोऽलकः। शशाङ्कबिम्बतो मेरौ लम्बमान इवोरगः ॥ २८ ॥ स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्तसायंतनमल्लिकेषु। कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे बलमङ्गनानाम् ॥२९॥ स्वर्भानुराकलयितुं स समुद्यतोऽभूद्राकां विनाननसुधांशुमहो यदस्याः। मन्ये तदस्य न च तिष्ठति पूर्णिमायां भावो हि किन्तु परिपूर्णकले सुधांशौ ॥ ३० ॥ हृतं यद्यपि नीलाब्जं हृतामदमपी गजात्। अलकानां तथाप्यस्याः प्रापुः कान्तिं न षट्पदाः ॥ ३१ ॥

ललाटः—आस्वादितोन्मुक्तमिवार्धबिम्बं तमोमुखाच्छन्त सुधाकरस्य। सीमन्तसीमान्तमुदाररूपमिदं ललाटं ननु पङ्कजाक्ष्याः ॥ १ ॥ केशान्धकारादथ दृश्यभालस्थलार्धचन्द्रा स्फुटमष्टमीयम्। एनां यदासाद्य जगज्जयाय मनोभुवा सिद्धिरसाधि साधु ॥ २ ॥

भ्रुवौ—असितात्मा समुन्नद्धः समाविष्कृतचापलः। भुजङ्गकुटिलस्तस्या भ्रूविक्षेपः खलायते ॥ १ ॥ कामकार्मुकतया कथयन्ति भ्रूलतां मम पुनर्मतमन्यत्। लोचनाम्बुरुहयोरुपरिस्थं भृङ्गशावकततिद्वयमेतत् ॥ २ ॥ किञ्चित्सविभ्रमोदञ्चिभ्रूलता भाति भामिनी। बालक्रीडाप्रतिद्वन्द्वि तर्जयन्तीव यौवनम् ॥ ३ ॥ जडस्येन्दोर्लक्ष्मीं गतमपि मदान्धस्य करिणः किशोरस्य

रहे हैं मानो मकरन्द पीकर तृप्त हुए भौंरे खिले हुए कमलके कोपपर बैठे ऊँघ रहे हों ॥ २४ ॥ इस नवेलीके सिरके सुन्दर चमकीले बाल देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो इस सुन्दर केशवाली नायिकाके अंगोंमें जो शृंगाररस इसके शरीरमें न समा सकनेके कारण उफन पड़ा उसे इकट्ठा करके ब्रह्माने इसके सिरपर बालोंके गुच्छेके रूपमें स्थापित कर दिया हो ॥ २५ ॥ माँगके सिन्दूरसे सुशोभित उसकी लम्बी चोटी ऐसी जान पड़ती है मानो कोई काली नागिन उस नायिकाके मुख रूपी चन्द्रमाका अमृत लाल जीभसे चाटनेके लिये नितम्बसे माथेतक चढ़ी हुई हो ॥ २६ ॥ इस बालाकी सुन्दर चोटी ऐसी प्रतीत होती है मानो इसके मुख-कमलका रस पीनेके लिये काले भौंरोंकी पाँत आकर जुट गई हो ॥ २७ ॥ उस नायिकाके गालोंसे होकर स्तनोंतक लटकी हुई घुँघराली कुटिल अलकें ऐसी जान पड़ती हैं मानो चन्द्रमण्डलसे मेरु पर्वततक कोई नागिन लटकी हुई हो ॥२८॥ वसन्तके बीत जानेपर भी कामदेवको नवेलियोंके उन केशोंका सहारा मिल ही रहा है जो स्नानसे भीग जानेके पश्चात् धूपकी गन्धके लिये खोल दिए जाते हैं और सायंकाल मल्लिकाके फूलोंसे गूँथ दिए जाते हैं ॥ २९ ॥ इसके मुखरूपी चन्द्रमाको ग्रसनेके लिये यह जो पूर्णिमाके बिना भी केशरूपी राहु दिखाई देता है यह बड़े आश्चर्यकी बात है। इससे हम समझते हैं कि राहु पूर्णिमाकी प्रतीक्षा नहीं करता, वह तो जहाँ भी पूर्ण चन्द्रमा देखता है वहीं ग्रसनेके लिये आ डटता है ॥३०॥ यद्यपि भौंरोंने नीले कमल और हाथीके मदकी कालिमाको हरा दिया है फिर भी उस कामिनीके अलकोंकी चमक भौंरोंमें नहीं ही आ पाई ॥ ३१ ॥

माथा : उस कमलकी-सी आँखवाली नवेलीका माँगतक फैला हुआ माथा ऐसा जान पड़ता है मानो अन्धकारके मुखसे निगले जाते हुए चन्द्रमाका आधा बिम्ब छुड़ाकर बचा लिया गया हो ॥१॥ उस नायिकाके सिरके बाल अन्धकारके समान हैं और उसका माथा अष्टमीके आधे चन्द्रमाके समान। इनके साथ यह नवेली ऐसी प्रतीत हो रही है मानो इस अष्टमीका आधार लेकर ही कामदेवने विश्व-विजयकी कामना सिद्ध की हो क्योंकि अष्टमीको मन्त्र साधे जाते हैं ॥ २ ॥

भौंहें : इस नवेलीकी ये काली, बड़ी-बड़ी, चञ्चल और साँपके समान लहरानेवाली, भौंहें मनके काले, अभिमानी, ढीठ (चपल) और खोटे दुष्टोंका सा आचरण कर रही हैं ॥१॥ कुछ लोग इन भौंहोंको कामदेवका धनुष बताते हैं किन्तु मेरा तो मत यह है कि ये भौंहें नहीं वरन् नेत्ररूपी दो कमलोंपर बैठे हुए भौंरोंके बच्चोंकी दो पाँतें हैं ॥२॥ बड़े हाव-भावसे अपनी भौंहें टेढ़ी किए हुए वह कामिनी ऐसी प्रतीत होती है मानो बालक्रीडासे होड़ लेनेवाले यौवनको डाट रही हो ॥३॥ इस साँवली युवतीमें अवश्य ही कोई विचित्र बात है क्योंकि सीधे-सादे चन्द्रमा, मतवाले हाथीके बच्चे तथा हिरनोंके नेत्रोंकी शोभा तो इसने ले ही ली साथ ही देखते-देखते कामदेवके सामने ही इसने अपनी चञ्चल भौंहें चलाकर उस बेचारेका धनुष भी छीन

छायां हरतु हरिणस्येक्षणगताम्। इदं तु श्यामाङ्ग्याः किमपि ललितं यन्मदनतः समक्षं भ्रूक्षेपैर्धनुरपि विदग्धादपहृतम् ॥ ४॥ तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव कान्तिर्भ्रुवोरायतलेखयोर्या। तां वीक्ष्य लीलाचतुरामनङ्गः स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ॥ ५॥ भ्रूरेखायुगलं भाति तस्याश्चटुलचक्षुषः। पत्रद्वयीव हरिता नासावंशविनिर्गता ॥ ६॥ भ्रूभ्यां प्रियाया भवता मनोभूचापेन चापे घनसारभावः। निर्जा यदस्लोपदशामपेत्य सम्प्रत्यनेनाधिकवीर्यतार्जि ॥ ७॥ स्मरकल्पद्रुमो बाले तव भाले द्विपत्रकः। पत्रयोरनयोश्छाया भ्रुवोर्व्याजादुदञ्चति ॥ ८॥ स्मारं धनुर्यद्विधुनोज्झितास्या यास्येन भूतेन च लक्ष्मलेखा। एतद्भ्रुवौ जन्म तदाप युग्मं लीलाचलत्वोचितबालभावम् ॥ ९॥

नेत्रे—अतिपूजिततारेयं दृष्टिः श्रुतिलङ्घनक्षमा सुतनुः। जिनसिद्धान्तस्थितिरिव सवासना कं न मोहयति ॥ १॥ अनङ्गमङ्गलभुवस्तदपाङ्गस्य भङ्गयः। जनयन्ति मुहुर्यूनामन्तः सन्तापसन्ततिम् ॥ २॥ अमुष्य मुषिता लक्ष्मीश्चक्षुषेति न नूतनम्। न वेद्मि कथयत्यस्याः कर्णे लग्नं किमुत्पलम् ॥ ३॥ अर्जुनः कृष्णसंयुक्तः कर्णं यत्रानुधावति। तन्नेत्रं तु कुरुक्षेत्रमिति मुग्धे मृशामहे ॥ ४॥ आघूर्णितं पक्ष्मलमक्षिपक्षं प्रान्तद्युति श्वैत्यजितामृतांशु। अस्या इवास्याश्चलदिन्द्रनीलगोलामलश्यामलतारतारम् ॥ ५॥ आयामिनोस्तदक्ष्णोरञ्जनरेखाविधिं वितन्वन्त्याः। पाणिः प्रसाधिकायाः प्रापदपाङ्गं चिरेण विश्रम्य ॥ ६॥ आसां व्रतमतीवाक्ष्णोर्यत्पुरः परिसर्पणम्। सह यातं मनस्तत्र त्यक्त्वा भूयो निवर्त्तनम् ॥ ७॥ इन्दीवरं लोचनयोस्तुलायै निर्माय यत्नेन विधिः कदाचित्। अतुल्यतां वीक्ष्य ततो रजांसि निक्षिप्य चिक्षेप स पङ्कमध्ये ॥ ८॥ इषुत्रयेणैव जगत्त्रयस्य विनिर्जयात्पुष्पमयाशुगेन।

लिया अर्थात् इसकी भौंहें कामदेवके धनुषके समान हैं ॥४॥ उस नये-नये खेल करनेवाली नायिकाकी काजलकी सलाईसे बनाई हुई लम्बी-लम्बी सुन्दर भौंहें देखकर कामदेवने भी अपने धनुषकी सुन्दरताका गर्व करना छोड़ दिया ॥ ५ ॥ उस चंचल नेत्रवाली नवेलीकी भौंहें ऐसी जान पड़ती हैं मानों उसकी नाकरूपी बाँसकी डालीसे निकली हुई दो पत्तियाँ हों ॥६॥ कामदेवके धनुषसे इस प्यारीकी भौंहोंमें अधिक कठोरता आ गई है क्योंकि इस भौंहोंके धनुषने जब देखा कि कामदेवका धनुष तो जल गया था पर मैं जल नहीं पाया तब उसमें और भी अधिक गुरुता भर आई ॥ ७ ॥ हे बाले! तुम्हारे माथेपर दो पत्तोंवाला जो कामदेव रूपी कल्पद्रुम उग आया है उसीकी छाया यह भौंहोंके रूपमें दिखाई पड़ रही है ॥८॥ अपने मुखकी शोभासे चन्द्रमाको हरानेवाली नायिकाके मुखपर यह कामदेवका धनुष ही इसकी भौंहोंके रूपमें उत्पन्न हुआ है जिसमेंसे अभी लड़कपनकी चञ्चलता गई नहीं है ॥ ९ ॥

आँखें : इस सुन्दरीकी आँखें जैन सिद्धान्तके अनुसार तारादेवीको अत्यन्त पूजनेवाली (अत्यन्त रसीली पुतलियोंवाली) वेदोंकी मर्यादा लाँघनेवाली (कानको पार करके आगे बढ़नेका दम भरनेवाली) और वासना या इच्छासे ही संसारका मोहित होना माननेवाली (चाहसे भरी हुई) आँखें किसे नहीं मोहित करतीं ॥ १ ॥ उस नवेलीकी जो भौंहें कामदेवकी मंगलमयी वेदी बनी हुई हैं उनके बाँकेपनने युवकोंके हृदयमें निरन्तर सन्तापकी धारा बहा दी ॥२॥ कमलकी शोभा आँखोंने चुरा ली है यह कोई नई बात नहीं है। मैं देख रहा हूँ कि इस नवेलीके कानोंसे लगा हुआ कमल कानोंसे यही बात कह रहा है ॥ ३ ॥ हे भोली! तेरे जिन नेत्रोंमें कृष्ण (काली पुतली) को साथ लेकर अर्जुन (श्वेत कोए) आगे बढ़कर कर्ण (कान) तक दौड़ने लगे हैं उन्हें मैं कुरुक्षेत्र ही मानता हूँ (अर्थात् जब आँखें बड़ी-बड़ी होकर कानतक फैलने लगी हैं तब महाभारत ही मचा हुआ समझना चाहिए) ॥४॥ इस नवेलीकी आँखोंकी जिन कोरोंने चन्द्रमाकी श्वेतता भी जीत ली है वे चंचल इन्द्रनीलमणिके समान गोल और सुन्दर चमकीले तारोंसे सुशोभित नेत्ररूपी कमलोंकी पलकें चक्कर खाती-सी जान पड़ रही हैं ॥ ५ ॥ उस नवेलीकी आँखें इतनी बड़ी-बड़ी हैं कि जब उनमें आँजन लगाया जाता है तब इस कोनेसे उस कोनेतक आँजन देनेमें हाथको बहुत सुस्ता-सुस्ताकर चलाना पड़ता है ॥ ६ ॥ इसकी आँखोंने वेगसे चलनेका ऐसा व्रत ले रक्खा है कि उसके साथ चलनेवाला मन बीचसे ही थककर लौट आता है ॥ ७ ॥ ब्रह्माजीने नेत्रोंकी उपमाके लिये एक बार बड़े प्रयत्नसे कमलका निर्माण किया, किन्तु जब देखा कि यह किसी प्रकार भी नेत्रोंकी समानता नहीं कर सकता तब पहले तो उसपर धूल (पराग) फेंकी और फिर उसे कीचड़में डाल दिया ॥ ८ ॥ कामदेवने अपने फूलोंसे बने हुए और वेगसे चलनेवाले तीन बाणोंसे तो तीनों

शेषा द्विबाणी सफलीकृतेयं प्रियादृगम्भोजपदेऽभिषिच्य ॥ ९ ॥ ऋणीकृता किं हरिणीभिरासीदस्याः सकाशान्नयनद्वयश्रीः । भूयोगुणेयं सकला बलाद्यत्ताभ्योऽनयालभ्यत बिभ्यतीभ्यः ॥ १० ॥ एकमेवाक्षि वामाक्षि रञ्जयाञ्जनलेखया । जायतामैन्दवे बिम्बे खञ्जनाम्बुजसङ्गमः ॥ ११ ॥ कर्णोत्पलेनापि मुखं सनाथं लभेत नेत्रद्युतिनिर्जितेन । यद्येतदीयेन ततः कृतार्था स्वचक्षुषी किं कुरुते कुरङ्गी ॥ १२ ॥ कामिनीनयनकज्जलपङ्कादुत्थितो मदनमत्तवराहः । कामिमानसवनान्तरचारी मूलमुत्खनति मानलतायाः ॥१३॥ केदारभाजा शिशिरप्रवेशात्पुण्याय मन्ये मृतमुत्पलिन्या । जाता यतस्तत्कुसुमेक्षणेयं यतश्च तत्कोरकदृक्चकोरः ॥ १४ ॥ चकोरनेत्रैणदृगुत्पलानां निमेषयन्त्रेण किमेष कष्टः । सारः सुधोद्गारमयः प्रयत्नैर्विधातुमेतन्नयने विधातुः ॥१५॥ तस्याः श्रवणमार्गेण चलिते यदि लोचने । कुतः प्रकामधवले धत्तः कृष्णानुरक्तताम् ॥ १६ ॥ त्वचः समुत्तार्य दलानि रीत्या मोचात्वचः पञ्चपपाटलानाम् । सारैर्गृहीतैर्विधिरुत्पलौघादस्याभूदीक्षणरूपशिल्पी ॥ १७ ॥ दृशौ किमस्याश्चपलस्वभावे न दूरमाक्रम्य मिथो मिलेताम् । न चेत्कृतः स्यादनयोः प्रयाणे विघ्नः श्रवःकूपनिपातभीत्या ॥१८॥ नतभ्रुवो लोचनखञ्जरीटौ विहारमानङ्गमिहारभेते । कथं न सानन्दहृदो युवानस्तारुण्यमन्तर्निधिमुन्नयन्तु ॥ १९ ॥ नयनच्छलेन सुतनोर्वदनजिते शशिनि कुलपतौ क्रोधात् । नासानालनिबद्धं स्फुटितमिवेन्दीवरं द्वेधा ॥ २० ॥ नलिनं मलिनं विवृण्वती पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे । अपि खञ्जनमञ्जनाञ्चिते विदधाते रुचिगर्वदुर्विधम् ॥ २१ ॥ निःसीमशोभासौभाग्यं नताङ्ग्या नयनद्वयम् । अन्योन्यालोकनानन्दविरहादिव चञ्चलम् ॥ २२ ॥ नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रुवो मकरध्वजः । यतस्तन्नेत्रसञ्चारसूचि-

---

लोक जीत लिए और शेष जो दो बाण बचे, जान पड़ता है उन्हींको उसने प्रियतमाके नेत्रकमलके स्थानपर रखकर उन्हें भी सफल कर दिया ॥९॥ यों तो इस नवेलीकी आँखोंकी लुनाईसे हरिणियोंकी आँखें पहले ही ऋणी हो गई थीं किन्तु उनकी आँखोंको डरते देखकर इसकी आँखोंने उनकी बची-खुची शोभा भी बलपूर्वक छीन ली ॥१०॥ हे बाँके नैनोंवाली! तुम अपनी केवल एक ही आँखमें आँजन लगाओ जिससे कि एक चन्द्रबिम्बपर खञ्जन और कमल दोनों साथ साथ दिखाई पड़ने लगें ॥११॥ जब इस नवेलीने आँखोंकी कान्तिसे हारे हुए उन कमलोंको ही अपने कानपर रखकर अपने मुखकी सजावट करके उन्हें कृतार्थ कर दिया तब हरिणी अपनी आँखें लेकर क्या करेंगी क्योंकि वे तो इतनी सजावटके भी काम नहीं आ सकतीं ॥१२॥ कामिनीके नेत्रोंमें लगे हुए काजलरूपी कीचड़से निकला हुआ कामदेवरूपी मतवाला शूकर कामियोंके मनरूपी वनमें चलता हुआ उनकी मानरूपी लताकी जड़ खोदे डाल रहा है ॥१३॥ यह बड़ा अच्छा हुआ कि क्यारियोंमें रहनेवाली कमलिनी शिशिर ऋतुके आते ही जल गई क्योंकि अब पुनः वह फूलोंकी-सी आँखोंके रूपमें जन्म लेकर इतनी रसीली बन गई है कि उसकी सुन्दरता देखनेके लिये उसकी आँखोंके कोर ही चकोर बन गए हैं ॥ १४ ॥ ब्रह्माजीने चकोर, हरिणीके नेत्र तथा लाल कमलके अमृत-तुल्य रसोंको पलकके यन्त्रसे खींचकर बड़े परिश्रमसे इसके नेत्र बनाए हैं ॥ १५ ॥ उसके उजले-उजले नेत्र यदि कानोंकी ओर चले हैं तो वे काले और (वेद मार्ग) लाल क्यों हो उठे हैं (कृष्णके अनुरागी या वैष्णव क्यों हो गए हैं) ॥ १६ ॥ ब्रह्माजीने कमलकी पङ्खड़ियाँ लेकर उनपरसे पाँच-छः परतें छीलकर उनके भीतरकी कोमल गुद्दी भली भाँति निचोड़कर उस रससे ही इसकी आँखें बनाई हैं ॥ १७ ॥ इस नवेलीकी चञ्चल आँखें सिरका चक्कर लगाकर आपसमें अवश्य मिल जातीं यदि इनके मार्गमें कानरूपी कुएँ खोदकर इन्हें डरा न दिया गया होता ॥१८॥ नीची भौंहोंवाली उस नायिकाके नेत्ररूपी खञ्जन उसे जब कामदेवकी क्रीड़ास्थली बना ही रहे हैं तब भला आनन्द-भरे हृदयवाले युवक अपने भीतरकी तरुणाई रूपी निधिको क्यों न उकसावें ॥ १९ ॥ उस नवेलीकी आँखोंको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो जब उस सुन्दरीके मुखने चन्द्रमाको जीत लिया तब चन्द्रमारूपी कुलपतिके क्रोधसे नाकरूपी नालमें बँधा हुआ नीला कमल दो भागोंमें फट गया हो ॥ २० ॥ जब उस नवेलीकी आँखें आँजनकी सलाई बिना छुए ही कमलको मलिन बनाए रहती हैं तब यदि उनमें आँजन लग जाय तो तब पूछना ही क्या है! तब तो बेचारे खञ्जन भी अपनी सुन्दरताका अभिमान व्यर्थ समझने लगेंगे ॥ २१ ॥ उस कोमलाङ्गीके असीम शोभासे भरे हुए दोनों नेत्र मानो इसलिये चञ्चल हो रहे हैं कि वे एक दूसरेको देख नहीं पा रहे हैं ॥ २२ ॥ निश्चय है कि कामदेव उस सुन्दर भौंहोंवालीकी आज्ञाका अवश्य पालन करता है क्योंकि वे आँखें जिधर

तेषु प्रवर्तते ॥ २३ ॥ नेत्रयोरनयोश्चन्द्रमुख्याः सुन्दररङ्गयोः। का स्तुतिः क्रियते लोकैः कुरङ्गाद्दणोः पराजये ॥ २४ ॥ प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या। तया गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः ॥ २५ ॥ भास्वत्कुण्डलमाणिक्यप्रभाप्रतिहतेरिव। नताङ्ग्याः श्रवणोत्सङ्गमारूढा नयनद्वयी ॥२६॥ मुखविधुपरिवृत्तोत्तानताटङ्कपाशावधिचकितचकोरीकान्तिचौरं तदक्षि। त्रिभुवनयुवचेतोवन्धसङ्केतहेतोः सहचरमिव कर्तुं पाशमाशङ्क्य याति ॥ २७ ॥ मुखारविन्दोपरिभागसंस्थं नेत्रद्वयं खञ्जनमामनन्ति। प्रफुल्लवक्राम्बुजपार्श्ववर्ति दलद्वयं भृङ्गयुतं मतं मे ॥ २८ ॥ मृगसम्बन्धिनी दृष्टिरसौ यदि न सुभ्रुवः। धावति श्रवणोत्तंसलीलादूर्वाङ्कुरे कुतः ॥ २९ ॥ यदि स्यान्मण्डले सक्तमिन्दोरिन्दीवरद्वयम्। तदोपमीयते तस्या वदनं चारुलोचनम् ॥ ३० ॥ रामाविलोलनयने किमु मीनबालौ नीलोत्पले किमथवा किमु खञ्जरीटौ। किं वा जगत्त्रयजयाय कृतिर्न जाने कन्दर्पभूपरचिता नवकार्मणस्य ॥३१॥ लोचने हरिणगर्वमोचने मा विदूषय नताङ्गि कज्जलैः। सायकः सपदि जीवहारकः किं पुनर्हि गरलेन लेपितः ॥ ३२ ॥ श्रमयति शरीरमधिकं भ्रमयति चेतः करोति सन्तापम्। मोहं मुहुश्च कुरुते विषविषमं वीक्षणं तस्याः ॥ ३३ ॥ श्रुतिलङ्घनमीहमानयोर्मलिनाभ्यन्तरयोरधीरयोः। स्मृतितापकरत्वमेतयोरुचितं लोचनयोर्मृगीदृशः ॥ ३४ ॥ श्रूयतां कौतुकं सोऽपि स्मरः शृङ्गारिणां गुरुः। अमुष्याशिशिष्यतामेति श्रवणोन्मुखयोर्दृशोः ॥३५॥ सेयं मृदुः कौसुमचापयष्टिः स्मरस्य मुष्टिग्रहणार्हमध्या। तनोति नः श्रीमदपाङ्गमुक्तां मोहाय या दृष्टिशरौघवृष्टिम् ॥ ३६ ॥ स्वदृशो-

---

घूम जाती हैं उधर ही कामदेव भी घूम जाता है ॥ २३ ॥ नवेली चन्द्रमुखीके इन रसीले नयनोंने जिन हरिणीके नेत्रोंको पराजित कर दिया है उनकी प्रशंसा क्या की जाय ॥ २४ ॥ बड़ी-बड़ी आँखोंवाली नायिकाकी आँधीसे हिलते हुए नीले कमलोंके समान चञ्चल चितवनको देखकर यही ज्ञात नहीं होता था कि यह कला हरिणियोंने इनसे सीखी है या हरिणियोंसे इन्होंने सीखी है ॥ २५ ॥ उस नवेलीके कानतक फैले हुए दोनों नेत्रोंको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो कानोंमें चमकते हुए कुण्डलमें जड़ी हुई मणियोंकी कान्तिसे चिढ़कर दोनों नेत्रोंने कानोंपर धावा बोल दिया हो ॥ २६ ॥ उसके मुखचन्द्रसे चिपके हुए और सीधे लटके हुए कुण्डलको देखती हुई उसकी आँखें चकोरीकी शोभा भी हरण करती हैं। उनकी (कानोंकी) ओर बढ़ती हुई ये आँखें ऐसी जान पड़ती हैं मानो त्रिभुवनके युवकोंके चित्तको बाँधनेका आधार बनानेके लिये ये आँखें उन कुण्डलोंको पाश समझकर उन्हें साथी बनानेके लिये आगे बढ़ी जा रही हों ॥ २७ ॥ कवि लोग मुखरूपी कमलपर स्थित दोनों आँखोंको खञ्जन कहते हैं किन्तु मेरा मत तो यह है कि ये तो खिले हुए मुख-कमलके दोनों ओरकी दो पंखुड़ियाँ हैं जिनपर भौंरे बैठे हुए हैं ॥२८॥ यदि उस सुन्दर भौंहोंवाली नवेलीकी आँखें मृगकी आँखें नहीं हैं तो कानपर लटके हुए बनावटी दूबके अङ्कुरोंकी ओर क्यों दौड़ती हैं ॥२९॥ सुन्दर नेत्रोंसे सजे हुए उसके मुखकी उपमा चन्द्रमासे तभी दी जा सकती है जब उसके मण्डलमें दोनों ओर दो कमल टँक जायँ ॥ ३० ॥ यह समझमें नहीं आता कि ये रमणीकी आँखें हैं या छोटी-छोटी मछलियाँ हैं या नील कमल हैं या तीनों लोकोंको जीतनेके लिये कामदेवने कोई नया अस्त्र ही रच डाला है ॥ ३१ ॥ हे कोमलाङ्गी ! हरिणियोंका अभिमान चूर करनेवाले अपने इन नेत्रोंको काजलसे क्यों काला किए डाल रही हो क्योंकि जो बाण यों ही सबके प्राण हर लेता हो उसपर विषका लेप करनेकी आवश्यकता क्या है ॥३२॥ उसकी विषैली चितवन शरीरको चूर कर डालती है, बुद्धि चकरा देती है, दिन-रात तपाए रखती है और उसपर भी वह बार-बार मूर्छित किए रहती है ॥ ३३ ॥ हरिणियोंके समान आँखोंवाली इन नवेलियोंकी आँखें कान (श्रुति अर्थात् वेदमार्ग)को भी लाँघ जाना चाहती हैं, भीतरसे मलिन हैं, अधिक चञ्चल हैं और स्मरण करनेपर वैसे ही कष्ट देती हैं जैसे कोई वेदका उलङ्घन करनेवाला, मलिन हृदयवाला, चञ्चल बुद्धिवाला तथा स्मृतियोंकी व्यवस्थाको नष्ट करनेवाला व्यक्ति सबको कष्ट देता है ॥ ३४ ॥ एक नया कौतुक तो सुनिए ! जब इस नवेलीकी आँखें कानोंकी ओर चल पड़ती हैं तब शृङ्गारियोंका गुरु कामदेव भी उनका शिष्य बनकर उनके पीछे-पीछे चल पड़ता है ॥ ३५ ॥ कामदेवकी पुष्पधनुहींके समान मुट्ठीभरकी कमरवाली यह कोमलाङ्गी अपनी सुन्दर आँखोंकी कोरोंकी चितवनसे कटाक्षके बाणोंकी वर्षा करके हम सब लोगोंको मूर्छित किए डाल रही है ॥ ३६ ॥ वनमें जो मृग अपने खुरोंसे अपने नेत्र खुजला रहे हैं वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो नायिकाकी

जनयन्ति सान्त्वतां खुरकण्डूयनकैतवान्मृगाः। जितयोरुदयत्प्रमीलयोस्तदखर्वेक्षणशोभया भयात् ॥ ३७ ॥

नासा—केचित्तिलस्य कुसुमं शुकचञ्चुमन्ये नासां वदन्ति कथयाम्यहमन्यदेव। संरक्षितो निजशरासनसन्निधाने कामेन केतकदलैकमयो निषङ्गः ॥१॥ दन्तालिदाडिमीवीजभक्षणोत्कण्ठचेतसः। मन्ये मारशुकस्येयं नासा चञ्चूर्विराजते ॥ २ ॥ नासादसीया तिलपुष्पतूणं जगत्त्रयन्यस्तशरत्रयस्य। श्वासानिलामोदभरानुमेयां दधद्द्विवाणीं कुसुमायुधस्य ॥ ३ ॥ पुराणबाणत्यागाय नूतनास्त्रकुतूहलात्। तन्नासा भाति कामेन तूणीवाधोमुखीकृता ॥ ४ ॥

कर्णौ—अस्या यदष्टादश संविभज्य विद्याः श्रुती दध्रतुरर्धमर्धम्। कर्णान्तरुत्कीर्णगभीररेखः किं तस्य सङ्ख्यैव न वा शशाङ्कः ॥ १ ॥ आत्मैव तातस्य चतुर्भुजस्य जातश्चतुर्दोर्रुचितः स्मरोऽपि। तच्चापयोः कर्णलते भ्रुवोर्ज्ये वंशत्वगंशौ चिपिटे किमस्याः ॥ २ ॥ इहाविशय्येन पथातिवक्रः शस्त्रौघनिष्पन्दरसप्रवाहः। सोऽस्याः श्रवःपत्रयुगे प्रणालीरेखेव धावत्यभिकर्णकूपम् ॥ ३ ॥ कमनीयतानिवासः कर्णस्तस्या विचित्रमणिभूपः। सविधप्रसूतरत्नं शङ्खनिधिं दूरतरमकरोत् ॥ ४ ॥ तालीदलं काञ्चनकर्णपाशौ प्रसारयन्ती सुतनुः कराभ्याम्। रराज कर्णान्तनिषण्णदृष्टिः शाणे दधानेव कटाक्षबाणान् ॥ ५ ॥ मन्येऽमुना कर्णलतामयेन पाशद्वयेन च्छिदुरेतरेण। एकाकिपाशं वरुणं विजिग्येऽनङ्गीकृतायासतती रतीशः ॥ ६ ॥ वियोगवाष्पाञ्चितनेत्रपद्मच्छद्मान्वितोत्सर्गपयःप्रसूनौ। कर्णौ किमस्या रतितत्पतिभ्यां निवेद्यपूपौ विधिशिल्पमीदृक् ॥ ७ ॥

कपोलौ—आवध्नन्परिवेपमण्डलमलं वक्त्रेन्दुबिम्बा-

सीधी सी चितवनकी शोभासे हारे हुए अपने दुखी नेत्रोंको ढाढ़स बँधा रहे हों ॥ ३७ ॥

नाक : कुछ लोग इस नवेलीकी नाकको तिलका फूल कहते हैं, कुछ इसे सुग्गेकी ठोर कहते हैं पर मेरा मत तो यह है कि कामदेवने अपने धनुप (भौंहों) के पास यह केवड़ेके फूलका तरकस बनाकर रख छोड़ा है ॥ १ ॥ नवेलीकी यह नाक ऐसी शोभा पा रही है मानो दाँतोंकी पंक्तिरूपी अनारदानोंको चुगनेके लिये कामके पालतू सुग्गेकी चोंच हो ॥ २ ॥ कामदेवने अपने पाँच बाणों (कमल, अकोका फूल, आमकी बौर, नवमल्लिका तथा नीलकमल) मेंसे केवल तीनको लेकर तीनों लोक जीत लिए हैं, अब (दमयन्तीके) श्वास-वायुकी अति सुन्दर सुगन्धको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो इसकी नासिका कामदेवके शेप दो बाणोंको रखनेके लिये तिलके फूलका तरकस बन रही हो ॥ ३ ॥ उस नवेलीकी नाक ऐसी प्रतीत होती है मानो नये बाण रखनेकी चाहसे कामदेवने पुराने बाणोंको उलटकर गिरानेके लिये अपने तूणीरका मुँह उलट दिया हो ॥ ४ ॥

कान : नवेलीके इन दोनों कानोंका आकार जो नौ (९) के अङ्कके समान दिखाई पड़ता है उससे यह जान पड़ता है मानो इसने अट्ठारहों विद्याओंको आधा-आधा बाँटकर जो दोनों कानोंमें प्रतिष्ठित कर दिया है उन्हींकी सूचना ये नौके अङ्कके रूपवाले कान दे रहे हैं ॥ १ ॥ इस नायिकाके दोनों चिपटे हुए कान ऐसे जान पड़ते हैं मानो इसके भौंहरूपी दो धनुषोंके लिये बाँसकी छिनौतीकी दो प्रत्यञ्चाएँ हों क्योंकि जिस कामदेवके लिये ये दो धनुष बने हैं वह यदि चार हाथवाला हो तो आश्चर्य ही क्या है क्योंकि वह चार भुजावाले (कृष्ण) का ही तो पुत्र (प्रद्युम्न) है ॥२॥ इस युवतीके कान देखकर यह भ्रम होता है कि कहीं ये ब्रह्माने अपनी अद्भुत कलासे वियोगिनीके नेत्रकमलोंसे बहे हुए आँसूरूपी दूधसे रति और कामदेवको अर्पण करनेके लिये नैवेद्यके निमित्त पुए तो नहीं बनाकर रख छोड़े हैं ॥ ३ ॥ उस नायिकाके सौन्दर्यधाम तथा अनेक प्रकारकी मणियोंसे अलंकृत कानने अपने पासमें स्थित शङ्ख (गला) नामकी उस निधि (शङ्ख) को लज्जित कर दिया जो निरन्तर रत्न उत्पन्न करता रहता है ॥ ४ ॥ कानोंतक फैली हुई आँखोंवाली सुन्दरी जब अपने सोनेके समान चमकते हुए कानोंमें अपने हाथोंसे सोनेके कुण्डल पहनती है तब ऐसी शोभित होती है मानो अपने कटाक्षरूपी बाणोंपर शान चढ़ा रही हो ॥ ५ ॥ इस नवेलीके कानों देखकर हमें ऐसा समझमें आता है कि इसके दोनों कानरूपी कभी न फटनेवाले दो जाल लेकर कामदेवने विना परिश्रमके ही एक पाशवाले वरुणको जीत लिया है ॥ ६ ॥ इस नवेलीके कानमें बनी हुई टेढ़ी-मेढ़ी नालिकाओंको देखकर यह जान पड़ता है कि जिन मार्गोंसे अत्यन्त टेढ़े-मेढ़े कटाक्षरूपी शस्त्रोंकी रसीली धारा इन कानोंकी ओर बहती है, वे ही मार्ग आगे पहुँचकर चक्कर खाते हुए कानरूपी कुओंमें समा रहे हैं ॥ ७ ॥

गाल : उस नवेलीके मुखरूपी चन्द्रमाके बाहरकी ओर जो

द्वहिः । कुर्वत्पङ्कजजृम्भमाणकलिकाकर्णावतंसक्रियाम् । तन्वङ्ग्याः परिनृत्यतीव हसतीवोत्सर्पतीवोल्वणं लावण्यं ललतीव काञ्चनशिलाकान्ते कपोलस्थले ॥ १ ॥ कपोलपालीं तव तन्वि मन्ये लावण्यधन्ये दिशमुत्तराख्याम् । विभाति यस्यां ललितालकायां मनोहरा वैश्रवणस्य लक्ष्मीः ॥ २ ॥ स्वर्णच्छवीनामसितेक्षणानां कर्णान्ततो गण्डलतातलानि । भृङ्गाः सहेलं यदि नापतिष्यन्कोऽवेदयिष्यन्नवचम्पकानि ॥ ३ ॥

अधरः—अधरं खलु बिम्बनामकं फलमाभ्यामिति भव्यमन्वयम् । लभतेऽधरबिम्ब इत्यदः पदमस्या रदनच्छदे वदत् ॥ १ ॥ अधरममृतं कः सन्देहो मधून्यपि नान्यथा मधुरमधिकं द्राक्षायाश्च प्रसन्नरसं फलम् । सकृदपि पुनर्मध्यस्थः संरसान्तरविज्जनो वदतु यदिहान्यत्स्वादु स्यात्प्रियादशनच्छदात् ॥ २ ॥ अधरोऽयमधीराक्ष्या बन्धुजीवप्रभाहरः । अन्यजीवप्रभां हन्त हरतीति किमद्भुतम् ॥ ३ ॥ अधरोऽसौ कुरङ्गाक्ष्याः शोभते नासिकातले । सुवर्णनलिकामध्यान्माणिक्यमिव विच्युतम् ॥ ४ ॥ अभिलपन्ति तवाधरमाधुरीं तदिह किं हरिणाक्षि मुधा बुधाः । सुरसुधामधरीकुरुते यतस्त्वदधरोऽधरतामगमत्ततः॥५॥ अपि मृगाक्षि तवाधरपल्लवे दयितदन्तपदं न भवत्यदः भुवनमोहनमन्त्रपदाङ्कितं किमुत यन्त्रमिदं स्मरयन्त्रिणः ॥६॥ अल्पेनापि सुरक्तेन साधनेन प्रयोजनम् । ओष्ठद्वयसहायेन कान्तास्येन जगज्जितम् ॥ ७ ॥ अस्या मुखेन्दावधरः सुधाभूर्बिम्बस्य युक्तः प्रतिबिम्ब एषः । तस्याथवा श्रीर्द्रुमभाजि देशे सम्भाव्यमानास्य तु विद्रुमेऽसौ ॥ ८ ॥ जानेऽतिरागादिदमेव बिम्बं बिम्बस्य च व्यक्तमितोऽधरत्वम् । द्वयोर्विशेषावगमाक्षमाणां नाम्नि भ्रमो-

---

कमलकी खिलती हुई कलीके कर्णभूषणका बढ़ता हुआ सौन्दर्य गोल मण्डल बना रहा है वह सोनेकी पटियाके समान उसके सुन्दर गालोंपर नाचता, हँसता, फैलता और उछलता-सा जान पड़ता रहा है ॥ १ ॥ हे सुन्दरी कोमलाङ्गी ! मैं तुम्हारे गालोंको वह उत्तर दिशा समझता हूँ जिसमें सुन्दर अलकापुरी और कुबेरकी सुन्दर सम्पत्ति है अथवा जिसमें सुन्दर लटें लटकी हुई हैं और कानोंकी शोभा दीप्त है ॥ २ ॥ स्वर्णके समान कान्तिवाली और काले नेत्रोंवाली युवतियोंके गाल ऐसे सुनहरे रङ्गके हैं कि कानसे गालोंतक लटके हुए नई चम्पाके फूलोंपर यदि अचानक भौंरे न आ टूटते तो यह जानना ही कठिन था कि उनपर चम्पाके फूल भी लटके हैं ॥ ३ ॥

ओठ : बिम्बा (लाल कुँदरू) नामका फल इसके ओठोंसे घटकर है इसलिये दाँत ढकनेवाले इसके ओठका अधर-बिम्ब (बिम्बको नीचा दिखानेवाला) नाम सचमुच सार्थक हो रहा है ॥१॥ इसमें सन्देह नहीं कि अमृत अमृत ही है, मधु भी मधु ही है और अंगूरका सुन्दर फल भी मीठे रससे भरा होता है किन्तु अनेक रसोंके जाननेवाले लोगोंसे मैं पूछता हूँ कि क्या प्रियाके अधरोंके बढ़कर संसारमें कोई दूसरी मधुर वस्तु है ॥२॥ इस चंचल नेत्रवाली नायिकाका अधर जब बन्धुजीव (जपाकुसुम, कुटुम्बिजन) की कान्ति नष्ट कर देता है तब यदि वह दूसरे जीवोंकी कान्ति हरण करे तो क्या आश्चर्य है ॥ ३ ॥ उस हरिणके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिकाका निचला ओठ नाकके नीचे ऐसा सुन्दर प्रतीत हो रहा है मानो सोनेकी नलीसे बहकर गिरा हुआ कोई लाल मणि हो ॥ ४ ॥ हे हरिणके नेत्रोंके समान आँखोंवाली ! क्या कारण है कि बुद्धिमान् लोग तुम्हारे अधर (ओठ और तुच्छ वस्तु) की मिठासको व्यर्थ ही अच्छा समझते हैं ? मैं तो समझता हूँ कि तुम्हारे ओठने देवताओंके अमृतको भी जो अधर (नीची वस्तु) बना दिया है इसीलिये वह अधर कहा जाने लगा, इसलिये नहीं कि वह तुच्छ है ॥ ५ ॥ हे मृगके नेत्रोंके समान आँखोंवाली ! तुम्हारे ओठ-रूपी पत्तेपर यह चिह्न तुम्हारे पतिके दाँतोंका नहीं है वरन् यह तो कामरूपी तान्त्रिकका वह यन्त्र है जिसपर उसने जगत्को वशमें करनेवाले मन्त्र अंकित कर रक्खे हैं ॥६॥ यदि अपने प्रेमी सहायक सच्चे हों और संख्यामें कम भी हों तब भी कार्यकी सिद्धि हो जाती है क्योंकि थोड़ेसे (केवल दो) तथा अत्यन्त रक्त (लाल तथा प्रेमपूर्ण) दोनों ओठोंकी सहायतासे इस नायिकाके मुखने संसारको जीत लिया है ॥७॥ इस नायिकाके मुखचन्द्रमें ओठ ऐसे बिम्बाफलके समान लगता है जो अमृतकी भूमिमें उत्पन्न हुआ हो। पर ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि बिम्बाकी शोभा तो वृक्षवाले स्थानमें देखी जाती है किन्तु ओठकी शोभा तो विद्रुम (वृक्ष-रहित स्थान या मूँगे) में ही दिखाई देती है ॥ ८ ॥ इसके ओठकी ललाई देखकर मैं समझता हूँ कि यह ओठ ही वास्तवमें बिम्ब (कुँदरू) है और जिसे लोग बिम्बाफल कहते हैं वह इससे बहुत ही घटकर है। वास्तवमें दोनोंका भेद न समझनेके कारण ही लोगोंको इनके नामसे भ्रम होगया है इसीलिये लोग उलट-

ऽभूदनयोर्जनानाम् ॥ ९ ॥ तवैष विद्रुमच्छाया मरुमार्ग इवाधरः । करोति कस्य नो मुग्धे पिपासाकुलितं मनः ॥ १० ॥ त्वं पीयूष दिवोऽपि भूषणमसि द्राक्षे परीक्षेत को माधुर्यं तव विश्वतोऽपि विदितं माध्वीक माध्वीकता । एतत्किं तु मनागरुन्तुदमिव ब्रूमो न चेत्कुप्यसि यः कान्ताधरपल्लवे मधुरिमा नान्यत्र कुत्रापि सः ॥ ११ ॥ द्विजसङ्गतिमासाद्य सर्वो रागाद्विमुच्यते । रक्तस्तथापि तन्वङ्ग्या बिम्बोष्ठः केन हेतुना ॥ १२ ॥ प्रियामुखीभूय सुखी सुधांशुर्वसत्यसौ राहुभयव्ययेन । इमां दधाराधरबिम्बलीलां तस्यैव बालं करचक्रवालम् ॥ १३ ॥ बन्धूकबन्धूभवदेतदस्या मुखेन्दुनानेन सहोज्झिहानम् । रागश्रिया शैशवयौवनीयां स्वमाह सन्ध्यामधरोष्ठलेखा ॥ १४ ॥ मुखारविन्ददत्तश्रीः सुतनोररुणोऽधरः । कुरुते हारमाणिक्यप्रदीपान्पाण्डुरत्विषः ॥ १५ ॥ सन्ततोदयसन्ध्येव वदनेन्दोरनिन्दिता । तदोष्ठमुद्रा लावण्यसमुद्रस्येव विद्रुमः ॥१६॥ सर्वस्यैव हि रत्नस्य व्रणेऽर्घः परिहीयते । दयिताधररत्नं तु व्रणितं यात्यनर्घताम् ॥१७॥

दन्ताः— चन्द्राधिकैतन्मुखचन्द्रिकाणां दरायतं तत्किरणाद्भनानाम् । पुरःपरिस्रस्तपृपद्द्वितीयं रदावलिद्वन्द्वति विन्दुवृन्दम् ॥ १ ॥ द्विधा विधाय शीतांशुं कपोलौ कृतवान्विधिः । तन्व्यास्तद्रसनिष्यन्दबिन्दवो रदनावलिः ॥ २ ॥ भाति दन्तच्छदेनास्यास्स्वच्छा दशनमल्लिका । सरस्वत्यक्षमालेव पूजापद्मदलाञ्चिता ॥ ३ ॥ यावद्यावत्कुवलयदृशा मृज्यते दन्तपालिस्तावत्तावद्द्विगुणमधरच्छायया शोणशोचिः । काचित्त्वस्याः परिमलकलाहूतमात्रालिकान्त्या वक्त्राश्वासे प्रसरति मुहुः श्यामिकाप्याविरासीत् ॥ ४ ॥

कर बिम्बोष्ठको अधर-बिम्ब तथा अधर-बिम्ब (तुच्छ बिम्ब) कुँदरूको बिम्बा कहने लगे ॥ ९ ॥ हे सुन्दरी ! मूँगेकी-सी कान्तिवाला तुम्हारा अधर मारवाड़के रेतीले और उष्ण मार्गके समान किसके मनको प्याससे व्याकुल नहीं कर देता ॥ १० ॥ हे अमृत ! तुम सचमुच स्वर्गके भूषण हो । हे अंगूर ! भला तुम्हारी मिठासतक क्या कोई पहुँच सकता है ! हे मदिरा ! तुम्हारी मधुरता तो सब जानते ही हैं किन्तु यदि बुरा न मानो तो मैं तुम्हारा जी दुखानेवाली यह बात कह दूँ कि प्रियाके ओठमें जो मिठास है वह संसारमें अन्यत्र कहीं नहीं है ॥ ११ ॥ द्विज (ब्राह्मण) की सङ्गति पाकर सभी लोग रागों (सांसारिक विषयों) से हीन हो जाते हैं फिर भी क्या कारण है कि इस कोमलाङ्गीका अधर, द्विज (दाँत) का संग पाकर भी बिम्बाके समान (रागयुक्त, लाल) बना हुआ है ॥१२॥ वह चन्द्रमा अब इस नायिकाका मुख बनकर राहुसे निर्भय होकर सुख-पूर्वक निवास कर रहा है जिसकी कोमल किरणोंने इसके ओठोंका रूप धारण कर रक्खा है ॥ १३ ॥ मुख-रूपी चन्द्रमाके साथ निकलनेवाली इस नायिकाके नीचे ओठकी रेखा बन्धूक (जपाकुसुम) के समान यह सूचना दे रही है कि यह इस नायिकाके बचपन और यौवनकी सन्ध्या (बीचकी अवस्था) है ॥ १४ ॥ इस सुन्दर शरीरवाली नायिकाका लाल अधर-रूपी सूर्य जहाँ मुखकमलको खिला रहा है वहीं हारमें जड़े हुए लाल मणिरूपी दीपकोंको निस्तेज भी बना रहा है ॥ १५ ॥ उसके मुखरूपी चन्द्रमासे ऐसा प्रतीत होता है मानो सदा निर्दोष सन्ध्या ही उदय होती रहती है और उसके ओठोंकी मुद्रा ऐसी प्रतीत होती है मानो वह सौन्दर्य-सिन्धुका मूँगा हो ॥ १६ ॥ जब किसी रत्नमें खोट या दोष आ जाता है तब उसका मूल्य कम हो जाता है पर इस नायिकाका अधर रूपी रत्न दाँतके चिह्न रूपी घात लगनेपर और भी अधिक मूल्यवान् (सुन्दर) हो गया है ॥ १७ ॥

दाँत : चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर इसके मुखकी चाँदनीकी किरणोंसे जो बूँदें गिरीं उनमेंसे पहले गिरी हुई बूँदें तो नीचेकी दाँतोंकी पंक्ति हैं और पीछे गिरी हुई बूँदें ऊपरकी पंक्ति हैं ॥ १ ॥ ब्रह्माने चन्द्रमाके दो टुकड़े करके जब इस नायिकाके गाल बनाए तब उन्हीं टुकड़ोंसे जो रसकी बूँदें टपकीं वे ही दाँतकी पंक्तियाँ बन गईं ॥ २ ॥ इस कामिनीके ओठोंसे भी अधिक स्वच्छ इसके दाँत ऐसे प्रतीत होते हैं मानो पद्मदलोंसे सरस्वतीकी अक्षमालाकी पूजा की जाती हो ॥३॥ वह कमलनयनी नायिका ज्यों-ज्यों अपने दाँत माँजकर उजले करती जा रही है है त्यों-त्यों ओठोंकी ललाईसे वे और भी अधिक लाल दिखाई देते जा रहे हैं, और फिर जब उसके मुखकी सुगन्धयुक्त साँसके कारण मुँहपर भौंरे मँड़राने लगते हैं तब उनकी चमकसे दाँतोंपर कालापन भी झलक पड़ता है ॥ ४ ॥ इस नायिकाके दाँतोंके राजा आगेके चार दाँत हैं जो मञ्जनसे ऐसे उजले कर दिए गए हैं कि उनपरसे खैर-सुपारीके चिह्न मिट गए हैं और वे मोतीके समान हो गए हैं । (ये दाँत चित्तकी चञ्चलता, अनुराग तथा द्वेष न होनेसे विकार-शून्य हैं इसलिये

राजौ द्विजानामिह राजदन्ताः सम्बिभ्रति श्रोत्रियविभ्रमं यत्। उद्वेगरागादिमृजावदाताश्चत्वार एते तदवैमि मुक्ताः ॥ ५ ॥

चिबुक—विलोकितास्या मुखमुन्नमय्य किं वेधसेयं सुषमासमाप्तौ। धृत्युद्भवा यच्चिबुके चकास्ति निम्ने मनागङ्गुलियन्त्रणेव ॥ १ ॥

मुखम्—अज्ञातेन्दुपराभवं परिलसद्व्यालोलनेत्राञ्जनं भ्रान्तभ्रूलतमैणनाभितिलकं श्रीखण्डपत्रालकम्। बन्धूकाधरसुन्दरं सुरमुनिव्यामोहि वाक्यामृतं त्रैलोक्याद्भुतपङ्कजं वरतनोरास्यं न कस्य प्रियम् ॥ १ ॥ अनाकाशे चन्द्रः सरसिजदलद्वन्द्वसहितो गृहीतः पश्चार्धे कुटिलकुटिलैः सोऽपि तिमिरैः। सुधां मुञ्चत्युच्चैरशनिमथ सम्मोहजननी किमुत्पातालीयं वदत जगतः कर्तुरुदिता ॥ २ ॥ अनुच्छिष्टो देवैरपरिदलितो राहुदशनैः कलङ्केनास्पृष्टो न खलु परिभूतो दिनकृता। कुहूभिर्नो लुप्तो न च युवतिवक्त्रेण विजितः कलानाथः कोऽयं कनकलतिकायामुदयते ॥ ३ ॥ अनेन रम्भोरु तवाननेन पीयूषभानोस्तुलया धृतस्य। ऊनस्य नूनं परिपूरणाय ताराः स्फुरन्ति प्रतिमानखण्डाः ॥ ४ ॥ अपि सुभगं तव वदनं पश्यति सुभगे यदा यदा चन्द्रः। ग्लपयति हन्त पिधत्ते सपदि मुखं स्वं पयोदान्तः ॥५॥ अबले सलिले व्यवस्यता ते मुखभावो गमितो न पङ्कजेन। कथमादिमवर्णतान्त्यजस्य द्विजराजेन कृतोरुनिग्रहस्य ॥ ६ ॥ अमृतनिधानं रुचिरं सन्तापनिवर्त्तने सदा निरतम्। चन्द्रमुखं तव सुन्दरि सुस्मितभासा विकासते परितः ॥ ७ ॥ अम्बुजमम्बुनि मग्नं त्रासादाकाशमाश्रितश्चन्द्रः। सम्प्रति कः परिपन्थी यं प्रति कोपारुणं वदनम् ॥ ८ ॥ अयं ज्योत्स्नाजानिस्तव वदन-

---

वेदपाठीका रूप धारण कर रहे हैं और इसीलिये हम इन्हें मुक्त (मोती या जीवन-मुक्त) समझ रहे हैं ॥ ५ ॥

ठोड़ी : इस नायिककी ठोड़ीमें पड़े हुए गड्ढेको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्माने इसकी रचना करके जब इसके सौन्दर्यकी पूर्णता परखनेके लिये ठोड़ीमें उँगली लगाकर उसे ऊपर उठाकर देखा होगा कि वह सुन्दर बनी है या नहीं तब ब्रह्माजीकी उँगली लगनेसे ही यह बन गया है ॥ १ ॥

मुख : तीनों लोकोंको आश्चर्यमें डाल देनेवाला इस नायिकाका वह कमल-मुख किसे प्यारा नहीं लगता जिसने आजतक चन्द्रमासे हारना नहीं जाना, जिसके चञ्चल नेत्र आँजनसे रसीले हो गए हैं, जिसकी भौंहें निरन्तर चलती रहती हैं, जिसके माथेपर कस्तूरीका तिलक लगा है, जिसके बालोंमें चन्दनके पत्ते खुँसे हुए हैं, जिसके ओठ दुपहरियाके फूलके समान सुन्दर लाल हैं और जिसके मुखमें देवता और मुनियोंको लुभानेवाला वाणी-रूपी अमृत भरा हुआ है ॥१॥ नायिकाका मुख दिखाकर कवि कहता है—'यह देखो, पृथ्वीपर कैसा चन्द्रमा निकला है, जिसमें दो नीले कमल (नेत्र) उगे हैं, जिसे पीछेसे लहराता हुआ अन्धकार (घुँघराले बाल) पकड़े हुए है, जो ऊपरसे निरन्तर अमृत (मुसकान) और बिजली (कटाक्ष) बरसा रहा है, बताइए तो, यह त्रस्त कर देनेवाली उपद्रवोंकी जड़ संसारमें किसे मिटानेपर तुली हुई है' ॥ २ ॥ नायिकाका मुख दिखाकर कवि कहता है—'उस सोनेकी लता (नायिका) में यह कैसा चन्द्रमा (मुख) उग आया है, जिसकी कलाएँ देवता पी नहीं पाए, जिसे राहुने अपने दाँतोंसे चबाया नहीं, जिसे कलंकने स्पर्श नहीं किया, जिसे सूर्य भी अपनी ज्योतिसे मन्द नहीं कर पाया, जो अमावास्याके दिन भी अस्त नहीं हुआ और जिसे संसारकी स्त्रियोंके मुख भी कभी हरा नहीं पाए' ॥ ३ ॥ हे केलेके खम्भेके समान जाँघोंवाली! इन तारोंको देखकर यह निश्चय हो गया कि जब तुम्हारे मुखके समान तौलनेके लिये चन्द्रमा लाया गया तब तुलापर चढ़े हुए उस चन्द्रमाकी कमी पूरी करनेके लिये ये तारोंके बहुतसे प्रकाशके टुकड़े बट्टे बनानेको इकट्ठे कर लिए गए ॥ ४ ॥ हे सुन्दरी! जब-जब चन्द्रमा तुम्हारा सुन्दर मुख देखता है तब-तब लजाकर वह झटसे बादलोंमें अपना मुँह छिपा लेता है ॥ ५ ॥ हे अबले! जलमें रहनेवाला पंकज (कमल) तुम्हारे मुखकी बराबरी नहीं कर पा सकता क्योंकि द्विजराज (चन्द्रमा या ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ) ने जिसे संकुचित रहनेका दण्ड दिया है और जिसका अन्तिम अक्षर 'ज' है (जो अन्त्यज अर्थात् चाण्डाल या पङ्कज) है वह आदिम वर्ण (जिसका पहला अक्षर 'म' अर्थात् मुख या ब्राह्मण) कैसे हो सकता है ॥ ६ ॥ हे सुन्दरी! तुम्हारा मुख सचमुच चन्द्रमुख है क्योंकि यह अमृतका सुन्दर भण्डार है, सदा दूसरोंका ताप हरण करनेमें लगा रहता है और चारों ओर मुसकानकी चमक बिखेरता रहता है ॥ ७ ॥ हे प्यारी! अब तो तुम्हारा कोई विरोधी भी नहीं रहा, फिर भी तुम्हारा मुँह क्रोधसे क्यों लाल है? एक कमल था, वह तुम्हारे डरसे पानीमें डूबा पड़ा है और

दूनोऽम्बरगुहां प्रविष्टस्तत्रापि प्रसृतमिदमेनं दृढतमः। इति त्रासोद्रेकक्रमगलितसत्त्वः क्षयगदी विधिर्दग्धो दीनं व्यथयति निदानं हि मृदुता ॥ ९ ॥ अयि दयिते तव वदनं सुधानिधानं द्वितीयमभ्युदितम्। तदसहृदयमवलोक्य त्रस्येदिति निश्चितं स्थाने ॥ १० ॥ अयि सुन्दरि तव वदनं नित्यं पूर्णं सुधानिधिर्मत्वा। हन्त पतत्युपरिष्टान्मध्येऽम्बुधि नित्यमेवासौ ॥ ११ ॥ अलकतमःपरिपीतं सुस्मितसुषमापुरस्कृतं मधुरम्। को न सुधानिधिसहजं सुमुखि मुखं हन्त सम्मनुताम् ॥१२॥ असावन्तश्चञ्चद्विकचनवलीलाब्जयुगलस्तलस्फूर्जत्कम्बुर्विलसदलिसङ्घात उपरि। विना दोषासङ्गं सततपरिपूर्णाखिलकलः कुतः प्राप्तश्चन्द्रो विगलितकलङ्कः सुमुखि ते ॥ १३ ॥ अस्यामपूर्व इव कोऽपि कलङ्करिक्तश्चन्द्रोऽपरः किमुत तन्मकरध्वजेन। रोमावलीगुणमिलत्कुचमन्दरेण निर्मथ्य नाभिजलधिं ध्रुवमुद्धृतः स्यात् ॥ १४ ॥ अस्या मुखश्रीप्रतिबिम्बमेव जलाच्च तातान्मुकुराच्च मित्रात्। अभ्यर्थ्य धत्तः खलु पद्मचन्द्रौ विभूषणं याचितकं कदाचित् ॥ १५ ॥ अस्या मुखस्यास्तु न पूर्णिमास्यं पूर्णस्य जित्वा महिमा हिमांशुम्। भ्रूलक्ष्मखण्डं दधदर्धमिन्दुर्भालस्तृतीयः खलु यस्य भागः ॥ १६ ॥ अस्या मुखेनैव विजित्य नित्यस्पर्धी मिलत्कुङ्कुमरोपभासा। प्रसह्य चन्द्रः खलु नह्यमानः स्यादेव तिष्ठन्परिवेषपाशः ॥ १७ ॥ आननं मृगशावाक्ष्या वीक्ष्य लोलालकावृतम्। भ्रमद्भ्रमरसङ्कीर्णं स्मरामि सरसीरुहम् ॥ १८ ॥ आरब्धे दयितामुखप्रतिसमे निर्मातुमस्मिन्नपि व्यक्तं जन्मसमानमेव मिलितामंशुच्छटां वर्षति। आत्मद्रोहिणि रोहिणीपरिवृढे पर्यङ्कपङ्केरुहः सङ्कोचादथ दुःस्थितस्य न विधे-

---

दूसरा चन्द्रमा था, वह आकाशमें छिप गया है ॥८॥ यह निगोड़ा ब्रह्मा न जाने इस बेचारे चन्द्रमाको क्यों कष्ट दिए जा रहा है? एक तो वह तुम्हारे मुखसे डरकर आकाशकी गुफामें चाँदनी उत्पन्न करता है पर वहाँतक भी ब्रह्माने इस मुखकी चकाचौंधभरी चमक पहुँचा दी है। इसी चिन्तामें घुलघुलकर वह निरन्तर क्रमसे अपनी कलाएँ खोकर इतना क्षीण हो गया है कि अन्तमें कुछ भी नहीं रह जाता ॥९॥ हे प्रिये! तुम्हारा जो मुख अब दूसरा चन्द्र बनकर निकल आया है वह यदि आकाशमें स्थित उस कलङ्की चन्द्रमाको देखकर इस आशङ्कासे डरे तो ठीक है कि कहीं इस समान कहलानेवाले चन्द्रमाके कलङ्कके कारण मुझे भी लोग कलङ्की न कहने-समझने लगें ॥१०॥ हे सुन्दरी! यह चन्द्रमा नित्य तुम्हारे मुखचन्द्रको पूर्ण ही पाता है इसीलिये वह नित्य उससे हारकर प्रतिदिन ऊपरसे समुद्रमें डूब मरनेके लिये कूद पड़ता है ॥ ११ ॥ हे सुन्दर मुखवाली! कौन ऐसा व्यक्ति है जो तुम्हारे इस मुखको स्वाभाविक चन्द्रमा न समझ ले, जो बालरूपी अँधेरा पी रहा है और जिसमेंसे सुन्दर मुस्कानरूपी मधुर चाँदनी बाहर बिखरी पड़ रही है (चन्द्रमामें भीतर कालापन होता है किन्तु बाहर प्रकाश होता है) ॥ १२ ॥ हे सुन्दर मुखवाली! तुमने ऐसा चन्द्रमा (मुख) कहाँ पाया जिसके भीतर खिले हुए तथा नई-नई चटक-मटकसे भरे हुए दो कमल (नेत्र) फड़क रहे हैं, जिसके नीचे शङ्ख (कण्ठ) शोभा दे रहा है, जिसके ऊपर भौंरोंका समूह (केश) मँड़रा रहा है, जिसमें दोषा (दोषके समूह, रात) के विना ही सदा, पूरी कलाओंसे भरा रहता है और जिसमें कलङ्क (उदासी या कालेपन) का नाम नहीं है ॥ १३ ॥ इस नायिकाका मुख कोई दूसरा ही विना कलङ्कवाला अनोखा चन्द्रमा है जिसे कामदेवने नाभिरूपी समुद्रमें स्तनरूपी मन्दर पर्वतको मथानी बनाकर रोमावलीरूपी रस्सीसे मथकर उत्पन्न किया हो ॥ १४ ॥ कमल और चन्द्रमाकी थोड़ी-बहुत सुन्दरता ऐसी लगती है मानो उस नायिकाने जल और दर्पणमें जो अपनी छाया देखी है वही छाया कमलने अपने पिता जलसे और चन्द्रमाने अपने मित्र दर्पणसे माँगकर उसीसे अपनेको सजा लिया हो ॥ १५ ॥ जब इसके मुखका तीसरा भाग (माथा) ही भौंहरूपी कलङ्कसे युक्त आधे चन्द्रमाके बराबर है तब इसका पूर्ण मुख तो डेढ़ चन्द्रमाके समान हुआ। इसलिये यदि नायिकाके इस डेढ़ चन्द्रमाके समान मुखने उस एक चन्द्रमाको हरा भी दिया तो कौन बड़ा काम किया है ॥ १६ ॥ चन्द्रमाके चारों ओर जो मण्डल (परिवेष) दिखाई पड़ता है वह मण्डल नहीं है, वह तो फन्दा है, जिससे उस नायिकाके मुखने सदा बराबरीकी होड़ करनेवाले चन्द्रमाको जीतकर बल-पूर्वक बाँध लिया है और उस नायिकाके माथेपर जो केशर लगा है वही मानो उसके क्रोधकी ललाई है ॥ १७ ॥ हरिणके छौनेके समान आँखोंवाली इस नायिकाके लहराते हुए बालोंसे घिरे मुखको देखकर उड़ते हुए भौंरोंसे घिरा हुआ कमल स्मरण हो आता है ॥ १८ ॥ ब्रह्माने उस रोहिणीके पति चन्द्रमाको नायिकाके मुखके समान नहीं वरन् अपना शत्रु बनाकर उत्पन्न किया क्योंकि

स्वच्छीलमुन्मीलितम् ॥ १९ ॥ आसार्य सलिलभरे सवितारमुपास्य सादरं तपसा । अधुनाब्जेन मनाक्तव मानिनि तुलना मुखस्याप्ता ॥२०॥ इयं सुनयना दासीकृततामरसश्रिया । आननेनाकलङ्केन जयतीन्दुं कलङ्किनम् ॥ २१ ॥ उत्थितो निशि कलानिधिर्भवेदेतदीयमुखतुल्यतातये । प्रापितो मलिनभावमेतया लज्जया नभसि यात्यदृश्यताम् ॥ २२ ॥ उपरि स्थितः सुधानिधिरत्र पुनस्ते स्थितं मुखं सुभगे । उभयोरनयोर्भूयः स्पृहणीयं दर्शनं कस्य ॥ २३ ॥ कपोलपत्त्रान्मकरात्सकेतुर्भ्रूभ्यां जिगीषुर्धनुषा जगन्ति । इहावलम्ब्यास्ति रतिं मनोभूः रज्यद्वयस्यो मधुनाधरेण ॥ २४ ॥ कलङ्कहीनः क्षयदोषशून्यः सदा निवृत्तस्तमसो भयाच्च । यदा भविष्यद्द्विजनायकोऽपि तदापि मन्ये न तवाननाभम् ॥२५॥ कस्ते शशाङ्क मोहः सुधाकरोऽहं न कोऽपि मद्भिन्नः । किं ननु पश्यसि निजभाजयि वनिताया मुखं मूढ ॥ २६ ॥ कस्यामोदं कमलं वदनमिदं ते प्रिये न सन्तनुयात् । अवलम्ब्य मित्रमेकं विकसति न यदन्यथा जातु ॥२७॥ कान्तामुखस्वादपराङ्मुखा यत्पान्थाः शशाङ्कस्य करैर्विमृष्टाः । सुदुःसहं तापमिमे प्रयान्ति मन्ये ततो नैव सुधेतरत्र ॥ २८ ॥ कोपः स्फीततरः स्थितानि परितः पत्त्राणि दुर्गं जलं मैत्रं मण्डलमुज्ज्वलं चिरमधो नीतास्तथा कण्टकाः । इत्याकृष्टशिलीमुखेन रचनां कृत्वा तदत्यद्भुतं यत्पद्मेन जिगीषुणापि न जितं मुग्धे त्वदीयं मुखम् ॥ २९ ॥ चन्द्रं कलङ्करहितं शफरद्वयं च निस्तोयमन्यतमसञ्च सुगन्धि तन्व्याः । वक्त्रच्छलेन भुवि सृष्टवतो विधातुर्वर्ण्येत केन करकौशलम-

---

उत्पन्न होते ही उसने जो अपनी किरणें मिलाकर फैलाई, तो उसे देखते ही ब्रह्माजीका आसन कमल मुँदने लगा और ब्रह्माजी उसीके भीतर कस गए। इससे क्या ब्रह्माकी बुद्धिमानीका परिचय नहीं मिलता ॥ १९ ॥ हे रूठनेसे लाल मुख कर लेनेवाली! देखो, सायंकालतक गहरे जलमें जब अत्यन्त लगनके साथ लाल कमलने सूर्यकी उपासना की तब कहीं वह तुम्हारे इस क्रोधसे लाल मुखकी कुछ-कुछ समानता कर पाया है ॥२०॥ इस सुन्दर नेत्रोंवाली नायिकाने कमलकी कान्ति हरनेवाले अपने कलङ्क-रहित मुखसे इस कलङ्क-सहित चन्द्रमापर विजय प्राप्त कर ली है ॥ २१ ॥ कलाओंसे भरा हुआ चन्द्रमा इस नायिकाकी समानता पानेके लिये ही रातमें निकलता है, पर ज्यों ही वह इस नायिकाके सामने आता है त्यों ही लजाकर, उदास होकर झट आकाशमें मुँह छिपा लेता है ॥ २२ ॥ हे सुन्दरी! ऊपर आकाशमें निकला हुआ चन्द्रमा और यहाँ पृथ्वीपर चमकता हुआ तुम्हारा मुख इन दोनोंमेंसे अधिक चाहने योग्य दर्शन किसका है? (तुम्हारे मुखका ही) ॥ २३ ॥ इस नायिकाको देखकर यह निश्चय विश्वास हो जाता है कि कामदेव इसके शरीरमें अवश्य निवास करता है क्योंकि इसके गालोंपर चीता हुआ मगर ही कामका झण्डा है, इसके भौंहरूपी धनुषसे ही वह संसारको जीतना चाहता है, इसमें जो रति (प्रियका प्रेम) है वही मानो इसके साथ रहनेवाली रति (कामकी पत्नी) है और इसका मुस्कानसे भरा हुआ अधर ही मानो कामका मित्र वसन्त है ॥ २४ ॥ यदि कोई ऐसा चन्द्रमा बना भी दिया जाय जिसमें कलङ्क न हो, जो क्षीण न हुआ करे और जिसे कभी राहुका डर न हो, तब भी मैं समझता हूँ कि वह तुम्हारे मुखकी शोभा नहीं प्राप्त कर सकता ॥ २५ ॥ हे चन्द्रमा! यह तुझे कैसा भ्रम हो गया है कि मैं चन्द्रमा हूँ और मुझसे बढ़कर कोई नहीं है? अरे मूर्ख! क्या तूने अपनी शोभाको जीतनेवाला इस नायिकाका मुँह नहीं देखा ॥ २६ ॥ हे प्यारी! तुम्हारा यह मुखकमल किसे आनन्द नहीं देता जो अपने एकमात्र मित्र (पति या सूर्य) के सामने आनेपर ही खिलता है, अन्यथा नहीं ॥ २७ ॥ अपनी पत्नियोंके अधरामृतके स्वादसे वञ्चित पथिक लोग जब चन्द्रमाकी किरणोंसे छू जानेपर अत्यन्त जले जा रहे हैं, तब यह निश्चय है कि चन्द्रमाकी किरणोंमें अमृत नहीं, विष भरा हुआ है ॥ २८ ॥ हे भोली-भाली नायिका! कमलने तुम्हारा मुख जीतनेके लिये कोप (कमलगट्टा, धन) एकत्र किया, चारों ओर पत्र (वाहन, पङ्खड़ी) सजाए, जलको उसने दुर्ग (पहुँचसे बाहर, गढ़) बनाया, मित्र (सूर्य, मित्र) उसके साथी रहे, कंटकों (शत्रुओं, काँटों) को उसने पहले ही नीचे (पदाक्रान्त) कर रक्खा है, इतना सब प्रबन्ध करके वह स्वयं शिलीमुख (भौंरे, बाण) खींचकर जीतना चाह रहा है पर आश्चर्य तो है कि इतनी अत्यन्त विशाल तैयारी कर लेनेपर भी वह तुम्हारे मुखको जीत नहीं पा रहा है ॥ २९ ॥ जिस ब्रह्माने यह बिना कलङ्कका चन्द्रमा (नायिकाका मुख) बनाया है उसकी विचित्र कारीगरीका कौन वर्णन कर सकता है क्योंकि उस चन्द्रमामें बिना जलके ही दो मछलियाँ (आँखें) बनी हुई हैं और उसके ऊपर सुगन्धित

द्भुतं तत् ॥ ३० ॥ चलद्भृङ्गमिवाम्भोजमधीरनयनं मुखम् । तदीयं यदि दृश्येत कामः क्रुद्धोऽस्तु किं ततः ॥ ३१ ॥ चातुर्यस्यैकचिह्नं फलममलगिरां मूलमुत्ताप-शान्तेः पद्मायाः सद्मसाद्म स्थलमपि च रुचां कोशभूतं फलानाम् । शृङ्गारस्यातिमानं शरदमृतकरस्पर्धि सौभाग्यसिन्धोरास्यं तस्याः सहास्यं मनसि न मृदुले कस्य लास्यं तनोति ॥ ३२ ॥ जगन्नत्रानन्दं वदनमतुलं पक्ष्मलदृशः कथङ्कारं पङ्केरुहमनुविधातुं प्रभवति । अयं चेदाकाङ्क्षी सह मदनकोदण्डलतया वराको राकेन्दुः कुवलययुगं किं न वहति ॥ ३३ ॥ जनानन्दश्चन्द्रो भवति न कथं नाम सुकृती प्रयातोऽवस्थाभिस्तिसृभिरपि यः कोटिमियतीम् । भ्रुवोर्लीलां बालः श्रियमलिकपट्टस्य तरुणो मुखेन्दोस्सर्वस्वं हरति हरिणाक्ष्याः परिणतः ॥ ३४ ॥ जितेन्दुपद्मलावण्यं कः कान्तावदनं जयेत् । मुक्त्वा तदेव सुरतश्रमजिह्मितलोचनम् ॥३५॥ तव वदनेन तिरस्कृतमम्बुरुहं तपति पाथसो मध्ये । अभ्रान्तर्विधुमण्डलमिदमपि धावति विलीनं सत् ॥ ३६ ॥ तस्या मुखस्यातिमनोहरस्य कर्तुं न शक्तः सदृशं प्रियायाः । अद्यापि शीतद्युतिरात्मबिम्बं निर्माय निर्माय पुनर्भिनत्ति ॥ ३७ ॥ तस्या वदनचन्द्रस्य कान्तिरन्यैव जायते । कलङ्कतुलनां धत्ते यत्र नासाग्रमौक्तिकम् ॥ ३८ ॥ तानि प्राञ्चि दिनानि यत्र रजनी सेहे तमिस्रापदं सा सृष्टिर्विरराम यत्र भवति ज्योत्स्नामयी नातपः। अद्यान्यः समयस्तथाहि तिथयोऽप्यस्या मुखस्योदये हस्ताहस्तिकया हरन्ति परितो राकावराकीयशः ॥ ३९ ॥ त्वरितं पिधेहि वदनं बहिरथवा मैव मोदंदे यासीः । प्रस्फुरदमृतनिधानं पातुं समयः सदैवास्ते ॥ ४० ॥ दिवारजन्यो रविसोमभीते चन्द्राम्बुजे

घना अन्धकार (जूड़ा) स्थापित किया हुआ है ॥ ३० ॥ यदि चञ्चल भौंरोंसे युक्त कमलके समान चञ्चल नेत्रोंवाली उस नायिकाका मुख दिखाई पड़ जानेपर कामदेव भी हमपर बिगड़ बैठा हो तो हमें उसकी कोई चिन्ता नहीं ॥ ३१ ॥ उस नवेलीका हँसता हुआ मुख चतुराईका सूचक है, स्तोत्र-पाठ आदि निर्मल वाणीका फल है, बढ़े हुए तापको दूर करनेकी जड़ी है, लक्ष्मीके निवासका भवन है, शोभाका धाम है, सुन्दर फलोंका भंडार है, शृङ्गारको उकसानेवाला है, शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी समानता करनेवाला है और सौभाग्यका समुद्र है, वह किसके कोमल चित्तमें नहीं नाचता ॥ ३२ ॥ सुन्दर बरौनियोंसे युक्त आँखोंवाली इस नायिकाका जो अद्वितीय मुखकमल सारे संसारकी आँखोंको आनन्द देता है इसकी समानता यह बेचारा पूनोका चन्द्रमा कैसे कर सकता है ! यदि उसे इस मुखकी बराबरी करनेका इतना चाव ही है तो कामदेवके धनुषमें दो नीले कमल जोड़कर क्यों नहीं अपने मुँह टाँक लेता क्योंकि तभी वह उसके मुखकी समानता कर पा सकता है ॥ ३३ ॥ बेचारा चन्द्रमा संसारके सभी प्राणियोंको सुख देता रहता है फिर भी उसके माथे यश नहीं है । यद्यपि वह भी बाल, तरुण और पूर्ण तीनों अवस्थाओंमें होकर बढ़ता है फिर भी इस मृगनयनीका मुखरूपी चन्द्रमा भौंहोंकी लीलाका बालपन, माँग काढ़नेकी जवानी और पूर्ण चन्द्रमाकी प्रौढ़ावस्था लेकर उसकी कान्ति हर ही लेता है ॥ ३४ ॥ उस सुन्दरीके जिस मुखने चन्द्रमा और कमलकी सुन्दरता हर ली है उसे, सम्भोगकी थकावटसे उनींदे नेत्रवाले उसीके मुखको छोड़कर, और कौन जीत सकता है ॥ ३५ ॥ तुम्हारे मुखसे हारा हुआ कमल तो जलके भीतर घुसकर तपस्या कर रहा है और चन्द्रमण्डल बेचारा भागकर बादलोंके बीचमें अपना मुँह छिपा रहा है ॥ ३६ ॥ चन्द्रमाने उस प्यारीके अत्यन्त सुन्दर मुखके समान अपनेको बनानेका बहुत प्रयत्न किया पर बना न पाया, तभीसे आजतक वह उसी उधेड़-बुनमें अपना स्वरूप बार-बार बनाया और बिगाड़ा करता है ॥ ३७ ॥ उसके मुखचन्द्रकी कुछ निराली ही छटा है जिसमें कि वहाँ बेसरका मोती कलङ्क जैसा जान पड़ने लगा है ॥ ३८ ॥ वे दिन गए, जब कि बेचारी रात्रिको अँधेरेकी लात सहनी पड़ती थी, वह युग भी चला गया जब चन्द्रमाकी चाँदनी धुँधली हुआ करती थी, अब तो वह युग आ गया है कि इस नायिकाका मुख-चन्द्र निकलते ही सब तिथियाँ पूर्णिमाका यश लूटनेके लिये धक्का-मुक्की करने लगी हैं ॥ ३९ ॥ हे प्रिये ! तुम तो झटपट अपना मुँह ढक लो या बाहर निकलनेका विचार ही छोड़ दो क्योंकि सामने उमड़ता हुआ अमृत पीनेके लिये प्यासकी आवश्यकता नहीं पड़ती अर्थात् तुम मुँह ढक लो, कहीं कोई तुम्हारे ओठोंका अमृत न पी ले ॥ ४० ॥ दिनमें सूर्यके तेजसे डरकर चन्द्रमा और रातमें चन्द्रमासे डरकर कमल अपनी अपनी शोभा इसी नायिकाके मुखमें धरोहर रख छोड़ते हैं इसीलिये इस नवेलीका मुख रात-दिन शोभासे भरा रहता है ॥ ४१ ॥ उस मूर्ख तुच्छ

निक्षिपतः स्वलक्ष्मीम्। अस्या यदास्ये न तदा तयोः श्रीरेकश्रियेदं तु कदा न कान्तम् ॥ ४१ ॥ धिक्तस्य मन्दमनसः कुकवेः कवित्वं यः स्त्रीमुखं च शशिनं च समं करोति। भ्रूभङ्गविभ्रमकटाक्षनिरीक्षितानि कोपप्रसादहसितानि कुतः शशाङ्के ॥४२॥ नताङ्गि त्वद्वक्त्रश्रियमसहमानः कृशतनुर्जटारण्ये स्थित्वा गलदमलगङ्गे गुरुगुरोः। त्रियामामार्गेशः शृणु निजकलङ्कं शमयितुं समुद्यत्सङ्कल्पः परिचरति मन्ये तप इति ॥ ४३ ॥ न दिवा सुधानिधानं विकसति नक्तं न हन्त वा कमलम्। एकं पुनस्त्वदीयं सुभगे वदनं दिवानिशं विकसत् ॥ ४४ ॥ ननु नीलाञ्चलसंवृतमाननमाभाति हरिणनयनायाः। प्रतिबिम्बित इव यमुनागभीरनीरान्तरेणाङ्कः ॥ ४५ ॥ न ह्रसति वर्धते न च मलिनं न च दृश्यते मनाक्क्वापि। वदनमिदं तव सुभगे स्फुरति न कस्य प्रमोदाय ॥ ४६ ॥ पिबन्ति कान्तावदनं मुदा ये त एव धन्याः अनुमातुमिष्टाः। अन्ये तु केचित्पथिका भ्रमन्ति केचिद्विवस्त्रा जटिलाश्च केचित् ॥४७॥ पुंसान्दर्शय सुन्दरि मुखेन्दुमीषत्त्रपामपाकृत्य। जायाजित इति रूढा जनश्रुतिर्मे यशो भवतु ॥ ४८ ॥ प्रविश झटिति गेहं मा बहिस्तिष्ठ कान्ते ग्रहणसमयवेला वर्त्तते शीतरश्मेः। तव मुखमकलङ्कं वीक्ष्य नूनं स राहुर्ग्रसति तव मुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विहाय ॥ ४९ ॥ विभ्राणो मृगसख्यमेव किमपि प्रौढं तपस्त्यताराराध्नोतु निरन्तरं दिविषदः पीयूषसत्त्रेण च। देहार्धेन पुनः करोतु यदि वा भूतेश्वरस्यार्चनं तद्वक्त्रेण समस्तथापि भविता शङ्के न शीतद्युतिः ॥ ५० ॥ भाति विलास्युपरिष्टाद्विमाद्यर्धादिष्टमस्य लोकस्य। वदनमिदं रमणीयं सुभगं तमसो भयान्मुक्तम् ॥ ५१ ॥ मध्येऽम्बु तपति कमलं निपतति मध्येऽब्धि चन्द्रमा नित्यम्। सुभगे तव मुखमेकं जयति विकाशं दधन्नितराम्

कविकी कविताको धिक्कार है जो अपनी कवितामें स्त्रीके मुखकी उपमा चन्द्रमासे देता है। भला बताइए तो, भौंहोंका बाँकापन, हाव-भाव भरी चेष्टाएँ, तिरछी चितवन, क्रोध, प्रसन्नता और हँसी आदि चन्द्रमामें कहाँ मिल पाती हैं ॥४२॥ हे कोमलाङ्गी! महादेवजीके मस्तकपर स्थित द्वितीयाके चन्द्रमाको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जब चन्द्रमा तुम्हारे मुखकी शोभा नहीं प्राप्त कर सका तब वह खीझकर महादेवजीकी जटाके वनमें अपना शरीर सुखा-सुखाकर वहीं तपस्या कर रहा है और अपना कलङ्क धोनेके लिये महादेवजीके सिरसे बहती हुई स्वच्छ गङ्गाजीमें कूदनेका सङ्कल्प किए बैठा है ॥ ४३ ॥ अमृतका भण्डार चन्द्रमा तो दिनमें नहीं निकलता और कमल रातको नहीं खिलता किन्तु हे सुन्दरी! तुम्हारा मुख अवश्य ऐसा है जो रात-दिन सदा खिला रहता है ॥ ४४ ॥ उस हरिणोंके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिकाका मुख नीले आँचलसे ढका हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो यमुनाके गहरे जलमें चन्द्रमाकी परछाईं झिलमिला रही हो ॥ ४५ ॥ हे सुन्दरी! तुम्हारा मुख न कभी छोटा होता है, न बढ़ता है और न कहींसे भी मलिन दिखाई पड़ता है, तब भला बताओ, इसकी कान्तिसे किसे नहीं आनन्द मिलता है ॥ ४६ ॥ हम तो उन्हीं लोगोंको धन्य समझते हैं जो प्रसन्न होकर अपनी कान्ताका अधरामृत पीते हैं, इसके अतिरिक्त जितने लोग हैं वे या तो यात्री होकर या नङ्गे या जटा बाँधकर घूमते हैं ॥ ४७ ॥ हे सुन्दरी! सङ्कोच छोड़कर तनिक उन लोगोंको अपना मुखचन्द्र तो दिखा दो जिससे मेरा यह अपयश बदलकर यश बन जाय कि यह अपनी स्त्रीके वशमें रहता है अर्थात् लोग यह समझ लें कि ऐसी सुन्दरी स्त्रीके वशमें रहना ठीक ही है ॥ ४८ ॥ ग्रहणके समय एक रसिक अपनी सुन्दरी प्रेयसीसे कहता है—'हे प्यारी! तुम झटपट घरमें घुस जाओ, बाहर न बैठो, क्योंकि अब चन्द्रमाके ग्रहणका समय हो ही रहा है, कहीं ऐसा न हो कि राहु उस पूर्ण चन्द्रमाको छोड़कर तुम्हारे इस कलङ्करहित मुखचन्द्रमाको ही निगल जाय' ॥ ४९ ॥ मृगके साथ मित्रता करके अत्यन्त उग्र तपस्या करनेसे देवता लोग अमृतके लिये चन्द्रमाकी भले ही निरन्तर आराधना करें और वह चन्द्रमा अपने आधे शरीरसे भले ही शिवजीकी पूजा भी करता रहे किन्तु फिर भी वह उस नायिकाके मुखकी समानता कभी नहीं कर सकता ॥ ५० ॥ ऊपर आकाशमें इस संसारका प्रिय चन्द्रमा भले ही शोभा दे किन्तु इस नायिकाका मुख जो अन्धकार और भय दोनोंसे मुक्त है यह उससे कहीं अधिक सुन्दर प्रतीत हो रहा है ॥ ५१ ॥ कमल तो जलमें सदा तपस्या करता है और चन्द्रमा नित्य जाकर समुद्रमें डूबता है किन्तु हे सुन्दरी! तुम्हारा मुख ही अकेला ऐसा है जो निरन्तर प्रकाश धारण करता हुआ सबको जीतता रहता है। ॥ ५२ ॥ हे सुन्दरी! कामदेवके समान प्रतिरूपी मित्र (सूर्य) पाकर जब तुम्हारा मुख प्रसन्नतासे खिल उठता है तब

॥ ५२ ॥ मानससम्भवदयितं मित्रमुपेत्य प्रहृष्यदास्यरुचि। सरसिजविकाससहजं सुमुखि तवेदं मुखं भुवने॥५३॥ मुखं ते दृष्ट्वेदं ललिततममिन्दुर्मृगपदप्रहारं हस्ताभ्यामुरसि तनुते मे मतिरिति। न चेद्वक्षः श्यामं वहति किमसौ स्मेरवदने मनस्वी को नाम प्रतुदति न दूनो निजतनुम् ॥ ५४ ॥ मुखं वहति बन्धूकबन्धुरेणाधरेण सा। पूर्णेन्दुमिव सौन्दर्यादङ्कलालितकौस्तुभम् ॥ ५५ ॥ मुखेन तन्व्या ननु तोल्यमानं सुधांशुबिम्बं विधिना कदाचित्। आकाशमापन्नमदस्तदैव स्थिरं तथैवेदमिहेति चित्रम् ॥ ५६ ॥ मुग्धे स्मायं स्मायं हन्त किमेतान्निहंसि दैवहतान्। हननं सुकृतं सुकृती सुकृतिनि नहि कोऽपि निर्वक्ति ॥ ५७ ॥ मृगमदतिलकितनिटिलं केशच्छद्यापि सर्वदाऽधरितम्। नित्यं विकसनशीलं विकसत्येवाननं सुभगे ॥५८॥ मैवं तमस्तवकमूर्ध्वमपाकृथास्त्वमेणं त्यजास्य विमले नयने गृहाण। लोलालकं तरलवीक्षितमायताक्षयास्साक्षान्मुखं यदि भवाननुकर्त्तुकामः ॥ ५९ ॥ यः ससर्ज कमलं रमागृहं विश्वलोचनमहोत्सवं विधिः। एष तादृगसृजन्मृगीदृशो मीनकेतननिकेतनं मुखम् ॥ ६० ॥ यदमरशतैः सिन्धोरन्तः कथञ्चिदुपार्जितं सकलमपि तद्धात्रा कान्तामुखे विनिवेशितम्। सुरकुसुमनसः श्वासामोदे शशी च कपोलयोरमृतमधरे तिर्यग्भूते विषञ्च विलोचने ॥६१॥ यन्मञ्जुसिञ्जितमितो रसनामणीनां यच्चञ्चसौरभवलादलयो वदन्ति। यद्गीतयः स्खलदलङ्कृतयश्च लीला दोलाविलासतरलस्तदयं मुखेन्दुः ॥ ६२ ॥ राकायामकलङ्कञ्चेदमृतांशोर्भवेद्वपुः। तस्या मुखं तदा साम्यपराभवमवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ लावण्यमधुभिः पूर्णमास्यमस्या विकस्वरम्। लोकलोचनरोलम्बकदम्बैः कैर्न पीयते ॥ ६४ ॥ लोके कलङ्कमपहातुमयं शशाङ्को जातो यतस्तव मुखं तरलायताक्षि। तत्रापि

तुम्हारे उस मुखकी शोभा भवनमें सहज ही खिलनेवाले कमलकी-सी होने लगती है ॥ ५३ ॥ हे मुसकानसे भरे मुखवाली! मैं तो समझता हूँ कि चन्द्रमामें यह कालिमा नहीं है वरन् ऐसा जान पड़ता है कि वह तुम्हारा सुन्दरतम मुख देखकर स्वयं अपने हाथोंसे अपनी छातीपर हरिणकी लातें सह रहा है, क्योंकि ऐसा कौन मनस्वी है जो दुखी होकर अपनी छाती नहीं पीट लेता ॥ ५४ ॥ उस नायिकाके मुखपर जो दुपहरियाके फूलके समान लाल-लाल अधर हैं उसके साथ वह मुख ऐसा जान पड़ता है मानो पूर्ण चन्द्रमाने अपना सौन्दर्य बढ़ानेके लिये अपनी छातीपर कौस्तुभ मणि बाँध ली हो ॥ ५५ ॥ एक बार जब ब्रह्माजी उस सुन्दरीके मुखसे चन्द्रमाके बिम्बको तौलने लगे तो वह चन्द्रमाका बिम्ब ऊपर आकाशमें उठ गया और सुन्दरीका मुख भारी होनेसे नीचे पृथ्वी आ गया। उसीसे चन्द्रमा आजतक आकाशमें ही लटका रह गया है। यह सचमुच बड़े आश्चर्यकी घटना है ॥ ५६ ॥ हे भोली-भाली! तुम बार-बार मुस्करा-मुस्कराकर उन दैवसे मारे हुआको फिर क्यों मारे डालती हो? हे सुन्दर मर्मवाली! शुभ कामोंमें किसीने हत्याको भला नहीं कहा है ॥ ५७ ॥ हे सुन्दरी! तुम्हारे बालोंकी छटाने कस्तूरीका तिलक लगे हुए माथेको सदा नीचे ही रक्खा है फिर भी तुम्हारा सदा खिलता रहनेवाला मुख निरन्तर खिलता ही जा रहा है ॥ ५८ ॥ हे चन्द्रमा! यदि तुम इस मृगनयनीके चञ्चल अलकों (केशों), बड़े-बड़े नेत्रों और सहज सुन्दर चितवनवाले मुखकी समानता करना ही चाहते हो तो अपने ऊपर कालिमा धारण करने मात्रसे काम नहीं चलेगा। इसके लिये तुम अपने मृगको हटाकर केवल उसके दोनों सुन्दर नैन भर रख लो ॥ ५९ ॥ जिस ब्रह्माने संसारकी आँखोंको आनन्द देनेवाला वह कमल बनाया जिसमें लक्ष्मी निवास करती है, उसी ब्रह्माने हरिणीके समान नेत्रोंवाली नायिकाका यह मुख भी बना दिया जिसमें मछलीके झण्डेवाला कामदेव आकर निवास करता है ॥६०॥ सैकड़ों देवताओंने मिलकर समुद्रके भीतरसे जो भी कुछ बड़ी कठिनाईसे प्राप्त किया वे सभी वस्तुएँ ब्रह्माजीने स्त्रीके मुखमें लाकर सञ्चित कर दीं। देखिए, उसने उसकी साँसकी सुगन्धमें लता कल्पके फूल, दोनों गालोंमें चन्द्रमा, ओठमें अमृत और बाँकी चितवनमें विष लाकर रख दिया है ॥ ६१ ॥ यह जो इधर कहीं करधनीके मणियोंका-सा मनोहर शब्द सुनाई पड़ रहा है, साँसकी सुगन्धसे खिंचकर भौंरे गूँज रहे हैं, गीत-सा सुनाई पड़ रहा है और गहने खिसके जा रहे हैं, इन सब लीलाओंसे ऐसा जान पड़ता है कि किसी नायिकाका मुखरूपी चन्द्रमा उसके हाव-भावके झूलेपर झूल रहा है ॥ ६२ ॥ यदि कभी किसी पूर्णिमाकी रातमें चन्द्रमा कलङ्क-रहित हो जाय तब कहीं यह मुख चन्द्रमाके समान हो सकेगा और इस नायिकाके मुखकी पराजय हो सकेगी ॥ ६३ ॥ इस नवेलीके जिस मुखरूपी कमलमें सुन्दरतारूपी पुष्परस भरा हुआ है

कल्पयसि तन्वि कलङ्कलेखां नार्यः समाश्रितजनं हि कलङ्कयन्ति ॥ ६५ ॥ वक्त्रं जेष्यामि चन्द्रः प्रतिदिवसमसौ कान्तिमभ्येति गुर्वी नेत्रच्छायां हरिष्याम्यहमिति विकसत्युत्पलं दीर्घिकायाम्। कुर्वाणे ते तथापि श्रियमधिकतरां वीक्ष्य लोलेक्षणाया वैलक्ष्यात्क्षीण एको विघटितमपरं मत्सरे नास्ति भद्रम् ॥ ६६ ॥ वदनमिवैकं कमलं कमलमिवेदं सुचारु वा वदनम्। मुदमाधातुं मधुपां छर्ममिति सम्भाव्यते कविभिः ॥ ६७ ॥ वदनसुधानिधिरयि सखि सुस्मितकलया सुधारसाक्षुतया। कस्य निषिच्यानङ्गं साङ्गं कर्तुं समुल्लसति ॥ ६८ ॥ वदनसुधानिधिरेष प्रमदे न पुनस्त्वया तथा विदितः। तदिति सुधानिधिमपरं वीक्ष्य कृतार्था मुधा मनसि ॥ ६९ ॥ वलितभ्रु मुकुलिताक्षं वीटीरसरञ्जिताधरं तन्व्याः। सीत्काराञ्चितमधुरं वदनं रुचिरं सुधासदनम् ॥ ७० ॥ विकसतु कमलं राजतु सुधानिधिर्वा मुदा किमेतेन। मम तु परं तव वदनं रुचये रुचिरं सुवर्णायाः ॥ ७१ ॥ विकसत्कमलं समुदितमिन्दुं पीयूषसागरं वापि। सुमुखि यदैव विलोके तदा तदैव प्रमोदेऽहम् ॥ ७२ ॥ विचरसि यतो यतस्त्वं मधुपा अनुयान्ति तत्र हन्त त्वाम्। केनापि रहसि दृष्टं हन्त तवेदं प्रिये वदनम् ॥ ७३ ॥ विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद्भ्रुवम्। धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः ॥ ७४ ॥ विधोर्विधिर्विम्बशतानि लोपं लोपं कुहूरात्रिषु मासि मासि। अभङ्गुरश्रीकममुं किमस्या मुखेन्दुमस्थापयदेकशेषम् ॥ ७५ ॥ विना सायं कोऽयं समुदयति सौरभ्यसुभगः

उसे किनके नेत्ररूपी भौंरे नहीं पी रहे हैं अर्थात् सभी लोग उसके सुन्दर मुखकी ओर टकटकी लगाए देख रहे हैं ॥ ६४ ॥ हे चञ्चल तथा बड़े-बड़े नेत्रोंवाली नवेली! चन्द्रमाने संसारमें कलङ्क-रहित कहलानेके लिये तो तुम्हारे मुखका रूप धारण किया है और तुम उसपर भी कलङ्क (काली हँसी बिन्दी) लगाए डाल रही हो। ठीक ही है, स्त्रियोंका जो सङ्ग करता है उसे स्त्रियाँ क्या कलङ्कित किए बिना मानती हैं ॥६५॥ चन्द्रमा प्रतिदिन अपनी कान्ति यह समझकर बढ़ाता है कि मैं बढ़ते-बढ़ते एक दिन उस कामिनीके मुखको जीत लूँगा। तलैयामें कमल भी यही सोचकर फैलता जा रहा है कि मैं इसके नेत्रोंकी शोभा हर लूँगा। किन्तु जब इन दोनोंने ही उस चञ्चल चितवनवालीके मुखमें अपनेसे अधिक विलक्षण शोभा देखी तो इसी सोचमें बेचारा चन्द्रमा तो दुबला होने लगा और कमल छितराकर बिखर गया। तात्पर्य यह कि ईर्ष्या करनेसे किसीका भी कल्याण नहीं होता ॥ ६६ ॥ 'कमल ही उसके मुखके समान है और उसका सुन्दर मुख ही कमलके समान है।' यह कल्पना कवियोंने इसीलिये की है कि ये दोनों ही भौंरों (नेत्रों) को प्रसन्न होकर (खिलकर हँसकर अपनी ओर खींच लेते हैं ॥६७॥ हे सखी! अमृतके रससे भरी हुई मुस्कानकी सुन्दरतासे यह तुम्हारा मुखचन्द्र आज किस अनङ्ग (कामदेव अथवा बिना अङ्गवाले) को सींचकर अङ्ग-सहित करनेके लिये उतावला हो रहा है ॥ ६८ ॥ हे नवेली! जिसे तू दूसरा चन्द्रमा समझे बैठी है और जिसे देख-देखकर तू मनमें फूली नहीं समा रही है वह दूसरा चन्द्रमा नहीं है, वह तो तेरा चन्द्रमुख ही है ॥६९॥ नवेलीका यह मुख कोई निराला ही सुन्दर चन्द्रमा है जिसमें टेढ़ी भौंहें हैं, हँसती हुई आँखें हैं, पानके बीड़ेसे रँगे हुए ओठ हैं तथा जिसमेंसे सी-सीकी मधुर वाणी निकल रही है ॥ ७० ॥ भले ही कमल खिलें और चन्द्रमा भी चाँदनी फैलावे, किन्तु मुझे उनकी शोभासे क्या लेना देना! मैं तो तुझ सोने जैसी सुन्दरीके सुन्दर मुखकी शोभापर ही लट्टू हूँ ॥ ७१ ॥ हे सुन्दर मुखवाली! खिलते हुए कमल और उदय होते हुए अमृतसे भरे चन्द्रमाको मैं जब-जब देखता हूँ तब-तब खिल उठता हूँ अर्थात् उन्हें देखकर तुम्हारा मुख स्मरण हो आता है ॥ ७२ ॥ हे प्यारी! जहाँ-जहाँ तुम जाती हो वहाँ-वहाँ भौंरे भी तुम्हारे साथ लगे चले जाते हैं। जान पड़ता है किसीने गुपचुप तुम्हारा मुँह देख लिया है इसलिये उसकी कुदीठ बचानेके लिये ये भौंरे डिठौना बने साथ लगे रहते हैं ॥ ७३ ॥ ब्रह्माने जब इस नायिकाका यह निराला मुखचन्द्र बनाया जो कभी अस्त नहीं होता तब उसे बड़ा पछतावा हुआ क्योंकि उसके बनते ही वह कमल सदा मुँदा रहने लगा जिसपर वे बैठे थे ॥ ७४ ॥ इस नवेलीके मुखको देखकर यह प्रश्न उठता है कि क्या ब्रह्माने प्रत्येक मासकी अमावास्याकी रातमें चन्द्रमाके सैकड़ों मण्डल तोड़-तोड़कर ही तो इस स्थिर शोभावाले नवेलीके मुखचन्द्रकी रचना नहीं की है ॥७५॥ उस नायिकाके मुखचन्द्रको देखकर कविको भ्रम हो गया है और वह कहता है कि सायंकाल हुए बिना ही पृथ्वीपर यह कौनसा चन्द्रमा निकल रहा है जो सुगन्धसे भरा हुआ है, चारों ओर चाँदनीकी

किरज्ज्योत्स्नाधारामधिधरणि तारापरिवृढः। धनुर्धत्ते स्मारं तिरयति विहारं न तमसां निरातङ्कः पङ्केरुहयुगलमङ्के नटयति ॥ ७६ ॥ विलसन्त्याननं तस्या नासाग्रस्थितमौक्तिकम्। आलक्षितबुधाश्लेषं राकेन्दोरिव मण्डलम्॥ ७७ ॥ विलसत्स्पृहणीयरुचिर्मित्रप्रेम्णा विमुक्तचन्द्रमनाः। जीवनदिव्यविभूतिः पद्मिनी मानसमुपेतासि ॥७८॥ व्यधत्त धाता मुखपद्ममस्याः सम्राजमम्भोजकुलेऽखिलेऽपि। सरोजराजौ सृजतोऽदसीयां नेत्राभिधेयावत एव सेवाम् ॥ ७९ ॥ शरत्कालसमुल्लासिपूर्णिमाशर्वरीप्रियम्। करोति ते मुखं तन्वि चपेटापातनातिथिम् ॥८०॥ शारदराकाचन्द्रो मुखमनुकर्तुं क्षमेत चेत्प्रमदे। पुनरपि दर्पः कथमिव न परत्रास्यांशतोऽप्याभा ॥ ८१ ॥ साधु चन्द्रमसि पुष्करैः कृतं मीलितं यदभिरामताधिके। उद्यता जयिनि कामिनीमुखे तेन साहसमनुष्ठितं पुनः ॥ ८२ ॥ सुधाकरश्चन्द्र इति प्रवृद्धा वदन्तु कामं यमराजदृष्टाः। धन्यास्तु कान्तावदनं यतोऽस्य पानात्प्रमोदो ननु तस्य जातु ॥ ८३ ॥ सुधाबद्धग्रासैरुपवनचकोरैरनुसृतां किरज्ज्योत्स्नामच्छां नवलवलिपाकप्रणयिनीम्। उपप्राकाराग्रं प्रहिणु नयने तर्कय मनागनाकाशे कोऽयं गलितहरिणः शीतकिरणः ॥ ८४ ॥ सुधाब्धिश्चन्द्रः स्याद्यदि कथमयं तत्स्वयमपि प्रयाति क्षीणत्वं कथममृततां वा व्रजति नो। ततो मन्ये कान्तावदनमिदमेकं ननु परं यदीयं सम्पद्य स्मितमपि कृतार्थाः सहृदयाः ॥ ८५ ॥ सुभगे तव मुखमिन्दुर्मानसजातं वत प्रफुल्लयति। क्रीडनमेतत्तस्यैतस्य पुनः सङ्गतो मृत्युः ॥८६॥ सुभगे तव मुखमेकं पश्यन्सुकृती कृतार्थतां मनुते। भ्रमति स एव सुतप्तः क्वचिदपि विन्दन्न चान्यदा शर्म

धारा फैला रहा है, कामदेवका धनुष (भौंहें) लिए हुए है, अन्धकार (केश) के फैलावको भी नहीं रोक रहा है, किसी (राहु)से डरता भी नहीं है और अपनी गोदमें दो नीले कमलों (आँखों को उछालता जा रहा है ॥७६॥ नाकमें लटके हुए बेसरके साथ उस नवेलीका मुख ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानो पूर्णिमाके चन्द्रमण्डलमें बुध आ गया हो ॥ ७७ ॥ सुन्दर मुखवाली कामिनीको सम्बोधित करके कवि कहता है—'हे कमलिनी (कमलके समान मुखवाली) ! तुम्हारी शोभा मित्र (सूर्य, प्रिय) के प्रेमसे अत्यन्त आकर्षक हो जाती है, तुम चन्द्रमा (चन्द्रके समान अस्थिर चित्तवाले लोगों) से मुक्त हो और जीवन (जल) की दिव्य विभूति हो, इसीलिये तुम मानस (मन और सरोवर) में समाई हुई हो ॥ ७८ ॥ ब्रह्माने इस नवेलीके मुखकमलको सभी कमलोंका सम्राट् बना दिया है इसीलिये कमलोंके नेत्र नामके दो राजा निरन्तर इसकी सेवा किया करते हैं अर्थात् मुखकमलपर दो नेत्र-कमल मानो उसकी सेवाके लिये नियुक्त हैं ॥ ७९ ॥ हे कोमलाङ्गी ! तुम्हारा सुन्दर मुख तो शरद्में उगे हुए पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी चपेटे डाल रहा है ॥८०॥ शरद्की पूर्णिमाका चन्द्रमा तुम्हारे मुखकी समता कर तो सकता था पर हे नवेली ! उसमें तुम्हारी आभाका एक अंश भर भी तो नहीं है, तब क्या वह बार-बार अभिमान करता है ॥ ८१ ॥ अत्यन्त सुन्दरतासे भरे चन्द्रमाके सामने कमल सकुचा गए, यह उन्होंने शिष्टताका काम किया किन्तु उस कामिनीके जिस मुखने चन्द्रमाको हरा दिया है उसके सामने भी चन्द्रमा निकलता है यह सचमुच बड़े साहसकी बात है ॥८२॥ जो लोग बूढ़े यमराजकी दृष्टिमें आ गए हों वे भले ही चन्द्रमाको अमृतका भण्डार कहें किन्तु वास्तवमें नवेलीका मुख ही धन्य है जिसके अधर-पानसे आनन्द मिलता है, चन्द्रमासे तो कुछ भी हाथ नहीं लगता ॥ ८३ ॥ पासकी चहारदीवारीपर आँख जमाकर देखिए तो सही कि पृथ्वीपर यह बिना कलङ्कका कौनसा चन्द्रमा निकला हुआ है जो पकी हुई हरफा रेवड़ीके समान ऐसी उजली चाँदनी फैला रहा है जिसकी ओर अमृत पीनेके लोभी इस उपवनके चकोर उड़े चले जा रहे हैं ॥ ८४ ॥ यदि कहें कि चन्द्रमा अमृतका समुद्र है तो यह हो नहीं सकता क्योंकि यदि उसमें अमृत होता तो जब वह क्षीण होता चलता है उस समय वह अपनेको अमर न बना लेता। इससे तो हम यही परिणाम निकालते हैं कि वास्तवमें सुन्दरीका मुख ही सुधाका समुद्र है जिसकी एक मुस्कराहट भी सहृदयोंको या रसिकोंको कृतार्थ कर देती है ॥ ८५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख चन्द्रमा तो है किन्तु यह मनसे उत्पन्न कामदेवको खिलाता जा रहा है क्योंकि यह उसीका खिलौना है। इसके साथ जिसका मेल हुआ कि वह मृत्युका आखेट बना ॥ ८६ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे इस एक मुखको देखकर बड़े-बड़े पुण्यवान् भी अपनेको कृतार्थ समझ लेते हैं किन्तु जो लोग दूसरोंसे आनन्द प्राप्त करनेके फेरमें पड़े रहते हैं वे पीड़ासे व्याकुल होकर घूमते ही रह जाते हैं उनके कुछ हाथ नहीं लगता ॥८७॥ जब देवता लोग चन्द्रमाका अमृत पीने

॥ ८७ ॥ सुमनोनिपीयमानो याति सुधांशुः शनैः शनैर्ह्रासम् । सुमुखि मुखं ते भूयो मधुरिमसम्भारसम्भृतं सततम् ॥ ८८ ॥ सुमुखि मनोजो मदनः सुधानिर्वापि विश्रुतः परितः । इति तव वदनसुधानिधिरर्हति मदनात्मना भवितुम् ॥ ८९ ॥ सुमुखि मुखं ते रुचिरं स्वमिव न केनापि तुल्यमन्येन । इति यत्पश्यन्ह्रसति प्रवर्धमानोऽपि हन्त शशी ॥ ९० ॥ सुमुखि मुखं ते शशिना तुलितं न च तेन तद्वरं मन्ये । रत्नस्य गुञ्जया स्यान्नास्य तया तोलनं दृष्टम् ॥ ९१ ॥ सुविरलमौक्तिकतारे धवलांशुकचन्द्रिकाचमत्कारे । वदनपरिपूर्णचन्द्रे सुन्दरि राकास्ति नात्र सन्देहः ॥ ९२ ॥ सुषमाविषये परीक्षणे निखिलं पद्ममभाजि तन्मुखात् । अधुनापि न भङ्गलक्षणं सलिलोन्मज्जनमुज्झति स्फुटम् ॥ ९३ ॥ स्मयते यथा यथेदं सुमुखि मुखं ते तथा तथा हन्त । सहृदयहृदये मदनो निदधाति शरान्बलान्निशितान् ॥९४॥ स्मितज्योत्स्नागङ्गा तपनतनया श्यामलरुचिः सरस्वत्योष्ठाभारुणकिरणसौन्दर्यजयिनी । इमास्तिस्त्रस्तीर्थाधिप इव मुखे सुभ्रु मिलितास्तवेदं सेवन्को न लभत इहानन्दलहरीम् ॥ ९५ ॥ स्मितसदृशानि सुमानि त्वन्मुखसुधया सुषिच्यमाणानि । प्राणप्रिये मनोभव आदाय जगन्ति संहरति ॥ ९६ ॥

कण्ठः—अदृष्टपूर्वः कण्ठोऽयं कान्ताया भुवनत्रये । यस्माद्वीणानिनादस्य समुद्भूतिर्विभाव्यते ॥ १ ॥ अयं त्रयाणां ग्रामाणां विधानं मधुरध्वनिः । रेखात्रयमितीवास्याः सूत्रितं कण्ठकन्दले ॥२॥ असावुद्वेललावण्यरत्नाकरसमुद्भवः । जगद्विजयमाङ्गल्यशङ्खः कुसुमधन्वनः ॥३॥ अहं लोकैर्नितम्बिन्याः कण्ठेन सदृशो मतः । इति स्वं कृतिनं मत्वा प्रणदञ्शङ्ख उच्यते ॥४॥ कण्ठस्य

लगते हैं तब वह धीरे-धीरे क्षीण होता चलता है किन्तु हे सुन्दर मुखवाली ! तुम्हारा मुख तो निरन्तर माधुर्यके भण्डारसे भरा रहता है ॥ ८८ ॥ हे सुन्दरी ! चारों ओर सुना जा रहा है कि मनसे उत्पन्न कामदेवने अमृत समाप्त कर दिया है इसीलिये मानो मदनका आत्मा उसके प्रायश्चित्तके लिये तुम्हारे मुखरूपी अमृत-भण्डारके रूपमें अपनेको प्रकट करना चाहता है ॥८९॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख तुम्हारे मुखके ही समान है, उसकी उपमा किसी दूसरेसे नहीं दी जा सकती क्योंकि पूर्णिमाका चन्द्रमा तो यही देख-देखकर घुलता जा रहा है ॥ ९० ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! यदि चन्द्रमासे तुम्हारे मुखकी तुलना की जाय तो वह तुम्हारे मुखसे श्रेष्ठ थोड़े ही हो सकता है क्योंकि यद्यपि रत्नोंको गुञ्जा (घुँघची या रत्ती) से तौला तो जाता है पर वे रत्नके समान हो नहीं जातीं ॥९१॥ हे सुन्दरी ! इसमें सन्देह नहीं कि तुम पूर्णिमाकी रात हो क्योंकि तुम्हारे शरीरपर बँधी हुई मोतियोंकी मालाएँ ही स्वच्छ तारे हैं, तुम्हारा उज्वल वस्त्र ही चाँदनीका प्रकाश है और तुम्हारा मुख ही पूर्ण चन्द्रमा है ॥ ९२ ॥ जब सुन्दरताकी परीक्षा होने लगी तब सारे कमल उस परीक्षामें नायिकाके मुखसे हार गए। ये कमल अब भी उस हारका लक्षण दिखाते हुए जलपर उतराना नहीं छोड़ रहे हैं क्योंकि जब जलमें डूबनेकी होड़ लगती है तब उसमें जो पहले बाहर निकल आता है वह हार जाता है। अतः जलके ऊपर निकले हुए कमल मानो अपनी हार मान रहे हैं ॥ ९३ । हे सुन्दर मुखवाली ! जब-जब तुम्हारा यह मुख मुस्करा देता है तब-तब रसिकोंके हृदयमें कामदेव बलपूर्वक अपने पैने बाण बेधता चलता है ॥ ९४ ॥ हे सुन्दर भौंहोंवाली नवेली ! तुम्हारा मुख इस समय प्रयागके समान वह पवित्र तीर्थराज हो गया है जिसमें तुम्हारी मुसकानरूपी चाँदनी ही गङ्गा है, तुम्हारे (बालोंकी) साँवली चमक ही यमुना है और सूर्यकी किरणोंकी चमकको हरानेवाली तुम्हारे ओठकी कान्ति ही सरस्वती है, अतः इस मुखकी सेवा करनेवाला ऐसा कौन है जो निरन्तर आनन्द न प्राप्त करता हो ॥ ९५ ॥ हे प्राणप्यारी ! तुम्हारे मुखके अमृतसे भली प्रकार सींचे हुए मुसकानरूपी फूल लेकर ही कामदेव आज सम्पूर्ण संसारको मारे डाल रहा है ॥ ९६ ॥

गला : इस नवेलीका कण्ठ तीनों लोकोंमें कुछ ऐसा अद्भुत है जिसमें निरन्तर वीणाकी गूँज निकलती ही रहती है ॥ १ ॥ इसका मधुर गला तीनों ग्रामों (सप्तकों) का मानो निवासस्थल है इसीलिये तो इसके गलेमें तीन तारोंके समान तीन रेखाएँ बनी हुई हैं ॥ २ ॥ इसका यह कण्ठ ऐसा जान पड़ता है मानो फूलोंका धनुष धारण करनेवाले कामदेवका वह शङ्ख हो जो अत्यन्त बढ़ी हुई सुन्दरताके समुद्रसे उत्पन्न हुआ हो और जो संसारको जीतनेके लिये मङ्गल-सूचक शब्द करता हो ॥ ३ ॥ शङ्ख इसीलिये बहुत ऊँचे स्वरसे चिल्लाता है कि वह अपनेको इस बातसे पुण्यवान् मानता है कि लोग मुझे उस कामिनीके कण्ठके समान मानते हैं ॥ ४ ॥ स्तनोंकी ऊँचाईके कारण कुछ झुके हुए गलेमें जब गोल मोतियोंकी

तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य। अन्योन्यशोभाजननाद्बभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः ॥ ५ ॥ कण्ठस्य विदधे कान्ति मुक्ताभरणता यथा। नास्याः स्वभावरम्यस्य मुक्ताभरणता तथा ॥ ६ ॥ कवित्वगानप्रियवादसत्यान्यस्या विधाता न्यधिताधिकण्ठम्। रेखात्रयन्यासमिषादमीषां वासाय सोऽयं विबभाज सीमाः ॥ ७ ॥ मनोजेन निजः कम्बुर्विजित्य भुवनत्रयम्। मन्ये कण्ठं नितम्बिन्याः समर्पित इति प्रिये ॥ ८ ॥ मुक्तोत्करः सङ्कटशुक्तिमध्याद्विनिर्गतः सारसलोचनायाः। जानीमहेऽस्याः कमनीयकम्बुग्रीवाधिवासाद्गुणवत्त्वमाप ॥ ९ ॥ श्रोत्रपीयूषगण्डूषैः काकलीकलगीतिभिः। कण्ठः कुण्ठितचातुर्यो विपञ्चीपञ्चमध्वनेः ॥ १० ॥

बाहू— अजीयतावर्तशुभंयु नाभ्या दोर्भ्यां मृणालं किमु कोमलाभ्याम्। निःसूत्रमास्ते घनपङ्कमृत्सु मूर्त्तासुनाकीर्त्तिषु तन्निमग्नम् ॥ १ ॥ दयिताबाहुपाशस्य कुतोऽयमपरो विधिः। जीवयत्यर्पितः कण्ठे मारयत्यपवर्जितः ॥ २ ॥ बाहू तस्याः कुचाभोगनिरुद्धान्योन्यदर्शनौ। मन्त्रितं कथमेताभ्यां मृणालीकीर्तिलुण्ठनम् ॥ ३ ॥ बाहू प्रियाया जयतां मृणालं द्वन्द्वे जयो नाम न विस्मयोऽस्मिन्। उच्चैस्तु तच्चित्रममुष्य भग्नस्यालोक्यते निर्व्यथनं यदन्तः ॥ ४ ॥ शब्दवद्भिरलङ्कारैरुपेतमतिकोमलम्। सुवृत्तं काव्यवद्रेजे तद्बाहुलतिकाद्वयम् ॥ ५ ॥ सरले अपि दोर्लेखे चित्रञ्चञ्चलचक्षुषः। अमुग्धाभ्यो मृणालीभ्यः कथमाजहतुः श्रियम् ॥ ६ ॥

करौ—अस्याः करस्पर्शनगर्धनर्द्धिर्बालत्वमापत्खलु पल्लवो यः। भूयोऽपि नामाधरसाम्यगर्वं कुर्वन्कथं वास्तु न स प्रवालः ॥ १ ॥ अस्यैव सर्गाय भवत्करस्य सरोजसृष्टिर्मम हस्तलेखः। इत्याह धाता हरिणेक्ष-

माला पहनाई जाती है तब वे दोनों एक दूसरेकी शोभा बढ़ाते हैं इसलिये दोनों एक दूसरेके भूषण भी थे और एक दूसरेसे भूषित या सज्जित भी थे ॥ ५ ॥ इसका गला स्वभावसे ही इतना सुन्दर है कि वह बिना भूषणके जितना मनोहर लगता है उतना मोतियोंकी माला पहनकर नहीं ॥ ६ ॥ ब्रह्माने इस नवेलीके गलेमें जब कविता, संगीत, मधुर वाणी तथा सत्य इन चारोंको स्थापित कर दिया तब मानो इन चारोंके अलग-अलग करनेके लिये ही उसने तीन रेखाओंके बहानेसे सीमाएँ बना दी हों ॥७॥ इस कामिनीके कण्ठको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेवने तीनों लोक जीतकर अपना शङ्ख इसके कण्ठको सौंप दिया हो ॥ ८ ॥ मोतियोंका ढेर जब कठोर सीपियोंसे निकलकर इस कमलनयनी नवेलीके गलेमें पहुँचा तभी मानो वह गुणी (गुणवाला, डोरेके सहित) हो पाया ॥ ९ ॥ कानोंको अमृतकी धाराके समान मधुर लगनेवाले कोमल पतले स्वरसे इसका गला जब अलाप लेता है तो उसके आगे वीणाके पञ्चम स्वरकी मधुरता भी नीरस जान पड़ने लगती है ॥ १० ॥

भुजाएँ : इस गहरी तथा घुमावदार सुन्दर नाभिवाली नवेलीकी कोमल बाँहोंने क्या सचमुच कमलकी नालको जीत लिया है कि वह लाजके मारे घने कीचड़की मिट्टीरूपी अकीर्त्तिमें असहाय होकर जा डूबा है ॥ १ ॥ इस नवेलीकी ये दोनों भुजाएँ कुछ ऐसे विचित्र प्रकारका जाल बन गई हैं कि जब वे किसीके गलेमें पड़ती हैं तो उसे जिला देती हैं और गलेसे हट जाती हैं तो उसके प्राण ले लेती हैं ॥ २ ॥ नवेलीके बड़े-बड़े ऊँचे स्तनोंके फैलावसे जो बाँहें आपसमें मिल-जुल-तक नहीं पातीं उन्होंने कमलकी नालका यश लूटनेके लिये मिलकर षडयन्त्र कैसे कर लिया ॥ ३ ॥ उस प्यारीकी दोनों बाँहोंने कमलनालको जीत लिया हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं क्योंकि युद्धमें एक न एककी तो जीत होती ही है पर सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि उस बेचारे हारे हुए कमलनालके हृदयमें निर्व्यथन (दुःखका अभाव, छेद) हो गया है ॥४॥ इस नवेलीकी दोनों कोमल बाँहें काव्यके समान सुन्दर हैं क्योंकि जैसे काव्यमें शब्दालङ्कार भरे होते हैं, वैसे [illegible] पनवकी बाँहें भी शब्द करते हुए या बजते हुए गहनोंसे सजी हुई हैं, जैसे काव्यमें कोमल वर्ण होते हैं वैसे ही इसकी बाहें भी कोमल वर्णवाली हैं, तथा जैसे काव्यमें सुन्दर वृत्त (छन्द) होते हैं वैसे ही इसकी बाँहें भी सुन्दर गोल हैं ॥ ५ ॥ इस चञ्चल नेत्रोंवाली नवेलीकी सीधी सुन्दर लम्बी बाँहें उस अमुग्ध (अचतुर, असुन्दर) कमलनालकी शोभा कैसे जीत पाईं, यही बड़ा आश्चर्य है ॥६॥

हाथ : कोंपलोंका यही बड़ा लड़कपन था कि वे इस नवेलीके हाथोंकी बराबरी करने चली थीं। और फिर जब वे ओठकी बराबरीका दम भरेंगी तब भला उन्हें कौन प्रवाल (मूर्ख, कोंपल) नहीं कहेगा ॥ १ ॥ उस हरिणके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिकाके हाथमें बनी हुई कमलकी रेखा

णायां किं हस्तलेखीकृतया तया स्याम् ॥ २ ॥ कुसुमायुधकोदण्डे हस्तौ विस्तीर्णचक्षुषः । अशोकपल्लवास्त्राणां प्रतिहस्तत्वमागतौ ॥ ३ ॥ नाहं धार्यमधीराक्षि मुखेन्दोः सम्मुखं त्वया । इतीव लीलापद्मेन करेऽस्याः कान्तिरर्पिता ॥ ४ ॥ मुग्धे प्रतारयसि किं कुसुमानि हर्तुमेतान्यशोकविटपस्य कुतूहलेन । अस्यैव तन्वि नवपल्लवडम्बरेषु त्वं हारयिष्यसि ननु स्वयमेव पाणी ॥ ५ ॥ स्पृष्टस्त्वयैव दयिते स्मरपूजाव्यापृतेन हस्तेन । उद्भिन्नापरमृदुतरकिसलय इव लक्ष्यतेऽशोकः ॥ ६ ॥

हस्तरेखा—आयूरेखां चकारास्याः करे द्राघीयसीं विधिः । शौण्डीर्यगर्वनिर्वाहप्रत्याशां च मनोभुवः ॥१॥ ध्वजाकारा रथाभासा गजाभा पविभास्वरा । पाणिरेखेति कन्दर्पसर्वस्वं निश्चितं स्थितम् ॥ २ ॥

अङ्गुल्यः—रज्यन्नखस्याङ्गुलिपञ्चकस्य मिषादसौ हैङ्गुलपद्मतूणे । हैमैकपुङ्खास्ति विशुद्धपर्वा प्रियाकरे पञ्चशरी स्मरस्य ॥ १ ॥ सुदीर्घा रागशालिन्यो बहुपर्वमनोहराः । तस्या विरेजुरङ्गुल्यः कामिनां सङ्कथा इव ॥ २ ॥

स्तनौ—अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम् । मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम् ॥ १ ॥ अपि तद्वपुषि प्रसर्पतोर्गमितः कान्तिझरैरगाधताम् । स्मरयौवनयोः खलु द्वयोः प्लवकुम्भौ भवतः कुचावुभौ ॥ २ ॥ अल्पं निर्मितमाकाशमनालोच्यैव वेधसा । इदमेवंविधं भावि भवत्याः स्तनमण्डलम् ॥ ३ ॥ अविवेकि कुचद्वन्द्वं हन्तु नाम जगत्त्रयम् । श्रुतिप्रणयिनोरक्ष्णोरयुक्तं जनमारणम् ॥ ४ ॥ अस्त्यप्रतिसमाधेयं स्तनद्वन्द्वस्य दूषणम् । स्फुटतां कञ्चुकानां यन्नायात्यावरणीयताम्

मानो यही सिद्ध करती है कि ब्रह्माने यह सूचना देनेके लिये हाथमें यह रेखा बना दी है कि मैंने तुम्हारा हाथ बनानेसे पहले कमलोंकी रचना करके इन हाथोंका निर्माण किया था ॥ २ ॥ उस बड़ी-बड़ी आँखोंवाली नायिकाके हाथ ऐसे जान पड़ते हैं मानो कामदेवके धनुषपर अशोकके पत्ते बाणोंके प्रतिनिधि बनाकर चढ़ा लिए गए हों ॥ ३ ॥ उस नवेलीने अपने हाथमें खेलके लिये जो कमल ले रक्खा है वह ऐसा लगता है मानो कमलने यह कहकर अपनी सुन्दरता उस नवेलीके हाथमें रख दी हो कि 'हे चञ्चल नेत्रवाली ! कृपाकर मुझे अपने मुखरूपी चन्द्रमाके सामने न कर देना, मैं तुम्हारी शरण हूँ' ॥ ४ ॥ हे भोली ! अशोककी शाखाके फूल तोड़नेकी उमङ्गमें तुम क्यों धोखा खड़ा कर रही हो ? क्योंकि हे कोमलाङ्गी ! अशोकके इन नये पत्तोंमें तुम्हारे हाथ भी नहीं पहचान पड़ेंगे ॥ ५ ॥ वसन्तके दिन कामदेवकी पूजाके समय तुमने जब अशोकको हाथ लगाया तब ऐसा जान पड़ा मानो इसमेंसे अत्यन्त कोमल कुछ नये ही पत्ते निकल आए हों ॥ ६ ॥

हाथकी रेखा : ब्रह्माने इस नवेलीके हाथमें आयुकी लम्बी रेखा क्या बना दी कि कामदेवको यह आशा हो चली कि मेरी वीरताके अभिमानकी अब सुरक्षा हो जायगी ॥ १ ॥ इस नवेलीके हाथकी रेखाओंमें ध्वजा, रथ, हाथी, वज्र आदि देखकर ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्माने कामदेवकी चढ़ाईकी सब सामग्री लाकर इसमें इकट्ठी कर डाली है ॥ २ ॥

उँगलियाँ : इस प्रियाका हाथ ऐसा जान पड़ता है मानो कमलको ईंगुरसे रँगकर ऐसा तूणीर बना लिया गया हो जिसमें लाल-लाल नखोंवाली पाँच उँगलियोंके रूपमें कामदेवके सुनहरे पङ्खवाले और पैनी नोंकवाले पाँच बाण हों ॥ १ ॥ उस नवेलीकी उँगलियाँ कामियोंकी बातचीतके समान लम्बी, प्रेमकी बातोंसे भरी तथा अनेक प्रसङ्गोंसे युक्त हैं अर्थात् वे लम्बी हैं, लाल हैं और अनेक सुन्दर पोरोंवाली हैं ॥ २ ॥

स्तन : उस कमलनयनी नवेलीके परस्पर रगड़ खानेवाले तथा काली घुण्डीवाले उन दोनों गोरे-गोरे स्तनोंके बीच कमलकी नालके पतले सूतोंके लिये भी स्थान नहीं बचा ॥१॥ यद्यपि उस नवेलीके शरीरकी शोभाके जलकी गहराई अथाह है किन्तु ये दोनों स्तन ऐसे प्रतीत होते हैं मानो काम और यौवन दोनोंके तैरनेकी सुविधाके लिये दो घड़े तैर रहे हों ॥२॥ हे नवेली ! ब्रह्माको यह ज्ञात नहीं था कि तुम्हारे स्तन फैलते-फैलते इतने बड़े हो जायँगे नहीं तो वे आकाश-मण्डलको कुछ और फैला देते ॥ ३ ॥ हे नवेली ! तुम्हारे ये दोनों अविवेकी स्तन तीनों लोकोंकी हत्या भले ही कर डालें पर तुम्हारी ये श्रुतिप्रणयी (वेदका अभ्यास करनेवाली, कानतक फैली हुई) आँखें भी हत्या करना प्रारम्भ करें यह ठीक नहीं ॥ ४ ॥ इन दोनों स्तनोंका दोष (किसीसे स्पर्श) कैसे रुक सकता है क्योंकि चोलीका बन्धन टूट जानेपर ये ढके ही नहीं रहते अतः जो दोष रोके नहीं जाते उनका कोई उपाय ही नहीं है ॥ ५ ॥

॥५॥ आभ्यां कुचाभ्यामिभकुम्भयोः श्रीरादीयतेऽसावनयोः क ताभ्याम्। भयेन गोपायितमौक्तिकौ तौ प्रव्यक्तमुक्ताभरणाविमौ यत् ॥ ६ ॥ उच्छ्वसन्मण्डलप्रान्तरेखमाबद्धकुड्मलम्। अपर्याप्तमुरो वृद्धेः शंसत्यस्याः स्तनद्वयम् ॥७॥ उद्भिन्नं किमिदं मनोभवनृपक्रीडारविन्दद्वयं सूते तत्कथमेकतः किल लसद्रोमावलीनालतः। चक्रद्वन्द्वमिदं क्षमं तदपि न स्थातुं मुखेन्दोः पुरो लावण्याम्बुनि मग्नयौवनगजस्यावैमि कुम्भद्वयम् ॥८॥ उद्भेदं प्रतिपद्य पक्वबदरीभावं समेत्य क्रमात्पुन्नागाकृतिमाप्य पूगपदवीमारुह्य विल्वश्रियम्। लब्ध्वा तालफलोपमां च ललितामासाद्य भूयोऽधुना चञ्चत्काञ्चनकुम्भजृम्भणमिभावस्याः स्तनौ बिभ्रतः ॥ ९ ॥ एतत्कुचस्पर्धितया घटस्य ख्यातस्य शास्त्रेषु निदर्शनत्वम्। तस्माच्च शिल्पान्मणिकादिकारी प्रसिद्धनामाजनि कुम्भकारः ॥ १० ॥ कनकक्रमुकायितं पुरस्तादथ पङ्केरुहकोरकायमाणम्। क्रमशः कलशायमानमास्ते सुदृशो वक्षसि कस्य भागधेयम् ॥ ११ ॥ करतलयुगपरिणद्धे कुचकलशे कुङ्कुमारुणे तस्याः। सिन्दूरिते करिपतेः कुम्भे नक्षत्रमालेव ॥ १२ ॥ कराग्रजाग्रच्छतकोटिरर्थी ययोरिमौ तौ तुलयेत्कुचौ चेत्। सर्वं तदा श्रीफलमुन्मदिष्णु जातं वटीमप्यधुना न लुब्धम् ॥ १३ ॥ कलशे निजहेतुदण्डजः किमु चक्रभ्रमिकारिता गुणः। स तदुच्चकुचौ भवन्प्रभाकरचक्रभ्रमिमातनोति यत् ॥ १४ ॥ काठिन्यमङ्गैरखिलैर्निरस्तं कुचौ युवत्याः शरणं जगाम। अधः पतिष्याव इतीव भीत्या न शक्नुतस्तावपि हातुमेतत् ॥ १५ ॥ कामिन्याः कुचयोः

इस नवेलीके स्तनोंने हाथीके माथेकी शोभा तो ले ली है पर हाथीका माथा इनकी शोभा नहीं ले पा रहा है इसलिये हाथीके मस्तकने लजाकर अपना मोती भीतर छिपा रक्खा है और इन स्तनोंने अपने मोतीके गहने बाहर खोलकर लटका रक्खे हैं ॥ ६ ॥ इस नवेलीके जिन स्तनोंके घेरेके चारों ओर रेखाएँ (अङ्कुर) निकल आई हैं और जिनमें घुण्डीरूपी कलियाँ लग गई हैं वे मानो यह कह रहे हैं कि हमारे फैलनेके लिये उस नवेलीकी छाती पर्याप्त नहीं है ॥ ७ ॥ इस नवेलीके स्तन क्या कामदेवरूपी राजाके खेलनेके लिये खिले हुए कमल हैं? नहीं, ऐसा नहीं है क्योंकि ये तो शोभासे भरी रोमावली रूपी डण्ठलसे हटकर निकले हुए हैं। तो क्या ये चकवा-चकवी हैं? नहीं, ऐसा भी नहीं है क्योंकि चकवा-चकवी होते तो मुखरूपी चन्द्रमाके सामने तनिक भी न ठहर पाते। तब तो यही जान पड़ता है कि ये सौन्दर्यके जलमें डूबे हुए यौवनरूपी हाथीके दो कुम्भ (मस्तक) ही हैं ॥ ८ ॥ इस नवेलीके जो स्तन पहले तनिकसे उभरकर पके बेरके समान हुए, फिर धीरे-धीरे नागकेशरकी कलीके समान फूलकर सुपारीके समान बड़े हो गए, फिर पके हुए बेलकी शोभा पाकर ताड़के फलके बराबर हो गए, वे स्तन इस समय चमकते हुए सोनेके घड़के समान बड़े-बड़े हो गए हैं ॥९॥ इस नवेलीके स्तनोंकी बराबरी करनेके कारण ही घड़ा इतना प्रसिद्ध हो गया कि शास्त्रोंमें उसका उदाहरण दिया जाने लगा तथा गगरी आदि पात्र बनानेवाले भी 'कुम्हार'के नामसे प्रसिद्ध हो गए ॥ १० ॥ हे सुन्दर आँखोंवाली! ये स्तन किस सौभाग्यशालीके भागमें पड़नेवाले हैं जो तुम्हारी छातीपर पहले सुपारीके समान फिर कमलकी कलीके समान और अब धीरे-धीरे घड़ेके समान बढ़ते जा रहे हैं ॥ ११ ॥ अपने दोनों स्तनोंपर हाथ रखकर खड़ी हुई नवेलीको देखकर कवि कहता है कि 'केशरसे रँगे हुए लाल स्तनोंपर उस नवेलीके दोनों हाथ और चमकीले नख ऐसे जान पड़ते हैं मानो हाथीके सिन्दूरसे रँगे हुए मस्तकपर तारोंकी माला टँगी हुई हो' ॥१२॥ हाथमें पहना हुआ चमकीला हीरा भी जिससे (कठोरताकी) भीख माँग रहा है उन स्तनोंकी बराबरी करनेके लिये यदि बेलके फल मचलें तो उन्हें लोग पागल कहेंगे और कोई कौड़ीके मोल भी न पूछेगा ॥ १३ ॥ जब कुम्हार घड़ा बनाता है तब वह डण्डेसे चाक घुमाता है अतः घड़ेका कारण हुआ वह डण्डा, जिसमें कुम्हारका चाक घुमानेकी शक्ति है। नवेलीके स्तनोंको देखकर कवि प्रश्न करता है कि 'क्या यह घुमानेकी शक्ति डण्डेसे घड़ेमें भी आ गई है क्योंकि आज वही घड़ा इस नवेलीके ऊँचे-ऊँचे स्तन बनकर अपनी सुन्दरताकी अधिकताके कारण देखनेवालोंको चक्करमें डाल रहा है (या चकवा-चकवीका भ्रम उत्पन्न कर रहा है) ॥ १४ ॥ उस नवेलीके सब अङ्गोंने जब कठोरता छोड़ दी तब वह कठोरता उस नायिकाके स्तनोंकी शरणमें पहुँची और मानो स्तन उसे छोड़नेमें इस डरसे समर्थ नहीं हो रहे हैं कि कहीं इसे छोड़ने (शरणागतका परित्याग करने) के कारण मैं भी नीचे न लटक जाऊँ (नीच न कहलाऊँ) ॥१५॥ इस नवेलीके स्तनोंकी जो शोभा मोटाईसे बढ़ गई है वह अब मेरु पर्वतकी चोटियोंको जीतनेकी तैयारी कर

कान्तिः पीनत्वेन पुरस्कृता । सुवर्णाचलशृङ्गाभां विनिर्जेतुं समुद्यता ॥ १६ ॥ किं नर्मदाया मम सेयमस्या दृश्याभितो बाहुलतामृणाली । कुचौ किमुत्तस्थतुरन्तरीपे स्मरोष्मशुष्यत्तरवाल्यवारः ॥ १७ ॥ कुचद्वये चकोराक्षी चिम्बुकप्रान्तचुम्बिनि । ममोक्तिषु न शक्नोति स्थातुं लज्जानतानना ॥ १८ ॥ कुचावस्याः कामद्विपकलभकुम्भाविति परे वदन्त्यन्ये वक्षःसरसि कमले काञ्चनघटौ । ममायं सिद्धान्तः स्फुरति मदनेन त्रिजगतीं विनिर्जित्य न्युब्जीकृतमिव निजं दुन्दुभियुगम् ॥ १९ ॥ कुम्भौ सदम्भौ करिणां कलशौ मन्दकौशलौ । चक्रवाकौ वराकौ च तदीयकुचयोः पुरः ॥ २० ॥ चञ्चत्काञ्चनशैलावस्या वक्षोरुहौ तन्व्याः । नो चेत्तावधिरूढा कथमनिमिषतां भजेत मे दृष्टिः ॥ २१ ॥ जम्बीरं वा कमलमुकुलं हेमगुच्छं यथेच्छं माङ्गल्यं वा कलयतु जनो भूपतेर्मन्मथस्य । एतद्द्वन्द्वं कलयति मतिर्मामकीना नवीना केनाप्यस्या हृदि विनिहितं मन्मथानन्दकन्दम् ॥ २२ ॥ जम्बीरश्रियमतिलङ्घ्य लीलयैव व्यानम्रीकृतकमनीयहेमकुम्भौ । नीलाम्भोरुहनयनेऽधुना कुचौ ते स्पर्धेते किल कनकाचलेन सार्धम् ॥ २३ ॥ तत्कुचौ चरतः किञ्चिन्नूनं मनसिजव्रतम् । नित्योन्मुखौ यदासाते मौलीरत्नस्य भास्वतः ॥ २४ ॥ तन्वङ्ग्याः स्तनयुग्मेन मुखं न प्रकटीकृतम् । हाराय गुणिने स्थानं न दत्तमिति लज्जया ॥ २५ ॥ तवोपकण्ठस्थिततारहारस्फुरत्प्रभाशैवलिनीजलेषु । लीनो मनोजद्विप एव तस्य व्यक्तौ नु गण्डौ किमुरोजपिण्डौ ॥ २६ ॥ तस्यास्तुङ्गस्तनच्छाया चकास्ति त्रिवलीतटे । लीना तिमिरलेखेव वदनेन्दोरगोचरे ॥ २७ ॥ तस्याः स्मितप्रणयिपूर्णमुखेन्दुबिम्बान्निर्गच्छदच्छदश-

---

रही है ॥१६॥ मुझे आनन्द देनेवाली इस प्यारीके दोनों ओर लटकनेवाली बाँहें क्या कमलकी नाल हैं और इसके ये दोनों स्तन ही क्या दो द्वीप हैं जो कामदेवकी तपनसे बालपनरूपी जलके सूख जानेपर ऊपर उठ आए हैं ॥ १७ ॥ चकोरके समान चञ्चल नेत्रोंवाली उस नायिकाकी सखियाँ जब उससे छेड़-छाड़ करती हैं तब वह लाजसे अपना मुँह नीचा करके दोनों स्तनोंकी ऊँचाईके कारण उनसे अपनी ठोड़ी टकरा जानेसे वहाँ नहीं ठहर पा रही है ॥ १८ ॥ किसीका कहना है कि इसके स्तन ऐसे लगते हैं मानो कामदेव-रूपी हथियौटे (हाथीके बच्चे)के मस्तक हों, कोई इन्हें छातीरूपी तालके कमल बताते हैं तथा कोई इन्हें सोनेका घड़ा कहते हैं; पर मेरा तो मत यह है कि ये कामदेवके दो नगाड़े हैं जिन्हें उसने तीनों लोक जीत लेनेपर औंधा करके रख दिया है ॥ १९ ॥ उस नवेलीके स्तनोंके सामने हाथीके मस्तक ढोंग जान पड़ते हैं, घड़ेकी रचना निरर्थक जान पड़ती है और चकवे-चकवीपर भी बड़ी दया आने लगती है ॥ २० ॥ सुमेरु पर्वतपर उन देवताओंका वास है जिनकी पलकें कभी नहीं गिरतीं, इस बातको ध्यानमें रखकर उसके स्तनोंको देखकर कवि कहता है—'इस कोमलाङ्गीकी छातीपर चमकते हुए सोनेके पहाड़ (सुमेरु) के समान स्तनोंपर यदि हमारी दृष्टि न चढ़ती तो निमेष (पलकोंके गिरने) से शून्य न होती [अर्थात् हमारी दृष्टि निरन्तर उस नवेलीके बड़े-बड़े स्तनोंपर ही गड़ी रहती है]॥ २१ ॥ लोग भले ही इसके दोनों स्तनोंको पअनी-अपनी भावनाके अनुसार, जँभीरी नीबू, कमलकी कली, सोनेका गुच्छा या कामदेवरूपी राजाकी मङ्गल वस्तुएँ समझें पर मेरी निराली बुद्धिमें तो ये ऐसे जान पड़ते हैं कि किसीने इसकी छातीपर कामदेवका रसभरा कन्द रख दिया है ॥ २२ ॥ हे नीले कमलके समान आँखोंवाली नवेली ! तुम्हारे स्तनोंने पहले तो बिना परिश्रमके ही जँभीरी नीबूकी शोभा फीकी कर दी फिर उसने सुन्दर सोनेके घड़ेको नीचा दिखाया और अब वे सोनेके पहाड़ (सुमेरु) की बराबरी करनेपर मचले हैं ॥ २३ ॥ उसके स्तन निश्चय ही कोई कामदेवका व्रत कर रहे हैं इसीलिये तो वे उस नवेलीके मस्तकपर सुशोभित रत्नरूपी सूर्यकी ओर अपने मुख ऊँचा किए हुए डटे हैं ॥ २४ ॥ इस कोमलाङ्गीके दोनों स्तन मानो इस लाजसे अपना मुँह नहीं खोलते (अर्थात् ढके रहते हैं) कि हमने गुणी (गुणवान्, डोरेवाले) हारको अपने ऊपर नहीं ठहरने दिया ॥ २५ ॥ हे नवेली ! तुम्हारे दोनों स्तन ऐसे जान पड़ते हैं मानो तुम्हारे गलेमें पड़े हुए चमकीले हारकी चमकरूपी बावड़ीके जलमें डुबकी लगानेवाले कामदेवरूपी हाथीके मस्तक हों ॥ २६ ॥ उस नवेलीके पेटकी रेखाओंपर जो उसके ऊँचे-ऊँचे स्तनोंकी परछाईं पड़ रही है वह ऐसी जान पड़ती है मानो मुखरूपी चन्द्रमाके डरसे भागकर अन्धकारकी राशि छिपी बैठी हो ॥ २७ ॥ उस नवेलीके मन्द मुस्कानसे भरे मुखचन्द्रके बिम्बसे निकलते हुए उजले दाँतोंकी चमकका अमृत रखनेके लिये मानो ब्रह्माने लोभसे इन दोनों स्तनोंके रूपमें सोनेके घड़े सजाकर रख दिए हों ॥ २८ ॥ इस नवेलीके

नांशुसुधां निधातुम्। पीनस्तनद्वयमिषात्तपनीयकुम्भौ लोभादधः प्रगुणिताविव पद्मजेन ॥ २८॥ तालं प्रभु स्यादनुकर्तुमेतावुत्थानसुस्थौ पतितं न तावत्। परं च नाश्रित्य तरुं महान्तं कुचौ कृशाङ्ग्याः स्वत एव तुङ्गौ ॥ २९ ॥ दिवानिशं वारिणि कण्ठदघ्ने दिवाकराराधनमाचरन्ती। वक्षोजताप्त्यै किमु पक्ष्मलाक्ष्यास्तपश्चरत्यम्बुजपङ्क्तिरेषा ॥ ३०॥ धृतघनरुचिरद्युतिना विलसद्धारेण मण्डलाग्रेण। दलयति कं नामिमुखं बाला कुचमण्डलाग्रेण ॥ ३१ ॥ नयननीरज किं भवता कृतं मुखशशी यदयं रिपुराश्रितः। इति वचो वितरीतुमिवोन्मुखं वरतनोः स्तनचक्रयुगं बभौ ॥३२॥ नायं शशी तत्प्रतिरूपमन्यद्यस्मान्न विश्लेषयति द्वयं नौ। इति स्म तर्कादिव पश्यतस्तौ तस्या मुखेन्दुं कुचचक्रवाकौ॥ ३३ ॥ निःशङ्कसङ्कोचितपङ्कजोऽयमस्यामुदीतो मुखमिन्दुबिम्बः। चित्रं तथापि स्तनकोकयुग्मं न स्तोकमप्यश्चति विप्रयोगम् ॥ ३४ ॥ निखिलैर्निरस्तमङ्गैरङ्गीकृत्यापि भावपरिमर्दम्। शरणागतमिव रक्षति काठिन्यं कुचयुगं तन्व्याः ॥ ३५ ॥ पङ्कोद्भवत्वपरिवादभयान्मृगाक्ष्या जातं सरोजयुगलं कुचवेषधारि। शक्यं न धातृविहितं परिहर्तुमस्य भूयोऽपि येन घनचन्दनपङ्कयोगः ॥ ३६ ॥ पटविघटितमपि कुचतटमकपटमनसः कुरङ्गनयनायाः। मणिभवमयूखपटलीपटलीनतया न सम्यगालोचि ॥ ३७ ॥ पयोधरघनीभावस्तावदम्बरमध्यगः। आश्लेषोपगमस्तत्र यावन्नैव प्रवर्तते ॥३८॥ पीनोन्नतत्वे न परत्र दृष्टे अस्मादृशे इत्यभिमानयोगः। कान्ताकुचौ नो भवतोः सुयुक्तो सुदुर्लभौ दन्तिघटौ न यस्मात् ॥ ३९ ॥ पुष्पेषोरभिषेकहेमकलशौ हारप्रभावाहिनीचक्राह्वौ मदनोन्मदद्विपपतेः कुम्भौ रतेः कन्दुकौ। कन्दौ बाहुमृणालिकायुगलयोर्लीलालतासत्फले नव्यौ रत्नसमुद्रकौ वहति सा लावण्यपूर्णौ स्तनौ

इन दोनों उठे हुए तथा सुन्दर स्तनोंकी समता ताड़का फल तभीतक कर सकता है जबतक वह नीचे नहीं गिरता क्योंकि वह ऊँचे पेड़के सहारे रहकर ऊँचा रहता है किन्तु इस कोमलाङ्गीके स्तन तो बिना किसीके आधारके ही ऊँचे बने हुए हैं ॥ २९ ॥ रातदिन गलेतक पानीमें खड़े रहकर सूर्यकी उपासना करनेवाली यह कमलोंकी पंक्ति क्या उस सुन्दर बरौनियोंकी आँखोंवाली नायिकाके स्तन बननेके लिये तपस्या कर रही है ॥ ३० ॥ घनी सुन्दर कान्ति धारण किए हुए तथा हारसे शोभित इन स्तनोंके नुकीले घेरेके द्वारा यह युवती किसका मन नहीं हरती ॥ ३१ ॥ जान पड़ता है नेत्रोंसे यही कहनेके लिये इस सुन्दरी नायिकाके चकवेके समान दोनों स्तन ऊपर मुँह उठाए हुए बड़े सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं कि 'हे नेत्ररूपी कमल! तुमने यह क्या किया कि अपने शत्रु मुख-कमलका आश्रय ले लिया!' ॥ ३२ ॥ 'इस नवेलीका मुख वास्तव में चन्द्रमा नहीं है, यह तो उसका दूसरा प्रतिरूप है तभी तो यह हम दोनोंमें वियोग नहीं कराता!' यही तर्क करते हुए ही मानो स्तनरूपी चकवा-चकवी उस कामिनीके मुखचन्द्रकी ओर देख रहे हैं ॥ ३३ ॥ यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस नवेलीमें कमलोंको सङ्कुचित करनेवाले चन्द्रमाके निर्भय होकर उदय हो जानेपर भी दोनों स्तनरूपी चकवी-चकवा अभीतक एक दूसरेसे अलग नहीं हो रहे हैं ॥३४॥ इस नवेलीके स्तन यह जानते हैं हम आगे मसले जानेवाले हैं फिर भी वे शरीरके अन्य अङ्गोंसे निकाल बाहर की हुई कठोरताको शरणागतके समान पाले जा रहे हैं ॥ ३५ ॥ इस नवेलीकी छातीपर बैठे हुए दोनों स्तन ऐसे प्रतीत होते हैं मानो दो कमलोंने इसलिये स्तनका रूप धारण किया हो कि अब हमें कोई यह दोष न लगावे कि हम कीचड़से उत्पन्न हुए हैं। पर इतना होनेपर भी ब्रह्माका बनाया हुआ दोष ये दूर नहीं कर सके क्योंकि इनपर घने चन्दनका चोवा (कीचड़) फिर भी पोता ही जाता है ॥ ३६ ॥ निश्छल मनवाली और हरिणकी आँखोंके समान नेत्रोंवाली नायिकाके स्तन यद्यपि कपड़ेसे ढके नहीं थे फिर भी उनके चारों ओर लटकी हुई चमकीली मणियोंकी किरणोंका ही ऐसा वस्त्र उनपर छा गया कि वे भली-भाँति देखे नहीं जा सके ॥ ३७ ॥ जैसे आकाशमें तभीतक अधिक बादल रहते हैं जबतक आश्लेषा नक्षत्रका योग नहीं आ जाता, इसी प्रकार स्तनकी कठोरता भी तभीतक वस्त्रोंमें छिपी रहती है जबतक आश्लेष (आलिङ्गन) नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे नवेलीके स्तनो! तुम्हारा यह अभिमान मुझे तनिक नहीं जँचता कि 'हमारे समान ऊँचे और मोटे संसारमें कोई हैं ही नहीं' क्योंकि हाथियोंके मस्तक अभी संसारसे उठ नहीं गए हैं ॥ ३९ ॥ उस नायिकाके सौन्दर्यसे भरे हुए दोनों स्तन ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो कामदेवके स्नानके लिये सोनेके दो घड़े रख दिए गए हों। हारसे घिरे हुए वे ऐसे लगते हैं मानो किसी नदीके

॥ ४० ॥ प्रतिपक्षो यदि वक्षोरुहपरिणाहः कुरङ्गनयनायाः। आकाशवासतपसः श्रीफल विफलस्तवायासः ॥४१॥ प्रायश्चित्तं न गृह्णीतस्तन्वङ्ग्याः पतितौ स्तनौ। अत एव तयोः स्पर्शे लोकोऽयं शिथिलादरः ॥ ४२ ॥ बदरामलकाम्रदाडिमानामपहृत्य श्रियमुन्नतौ क्रमेण। अधुना हरणे कुचौ यतेते दयिते ते करिशावकुम्भलक्ष्म्याः ॥ ४३ ॥ भाति निर्विवरे तस्याश्चित्रं कुचयुगान्तरे। क्रीडाकुण्डलितोच्चण्डकोदण्डः कुसुमायुधः ॥ ४४ ॥ मध्यं तनूकृत्य यदीदमीयं वेधा न दध्यात्कमनीयमंशम्। केन स्तनौ सम्प्रति यौवनेऽस्याः सृजेदनन्यप्रतिमाङ्गयष्टेः ॥ ४५ ॥ मध्येन तनुमध्या मे मध्यं जितवतीत्ययम्। इभकुम्भौ भिनत्त्यस्याः कुचकुम्भनिभौ हरिः ॥ ४६ ॥ मध्योऽयं बलिसद्म दृष्टिरधिकं पृथ्वी सुपर्वालयो बाहुस्तत्कमलेक्षणा त्रिजगतीमेकैव संरक्षति। इत्येवं स्तनयोर्मिषेण कनकक्षोणीभृता संधृतौ यस्यामात्मकिशोरकौ पविभयव्यग्रेण जम्भद्विषः ॥४७॥ मुखेन्दुचन्द्रिकापूरप्लाव्यमानौ पुनः पुनः। शीतभीताविवान्योऽन्यं तस्याः पीडयतः स्तनौ ॥४८॥ मृद्वङ्गि कठिनौ तन्वि पीनौ सुमुखि दुर्मुखौ। अत एव वहिर्यातौ हृदयात्ते पयोधरौ ॥ ४९ ॥ यन्न माति तदङ्गेषु लावण्यमतिसम्भृतम्। पिण्डीकृतमुरोदेशे तत्पयोधरतां गतम् ॥ ५० ॥ यूनां मोहमहाफलप्रसविनीं नाभ्यालवालोत्थितां सेक्तुं रोमलतां मुखामृतनिधेर्लावण्यनामामृतम्। नेष्यन्सारणिकां विभज्य कृतवान्कूटद्वयं पार्श्वयोः पञ्चेषुस्तदिदं पयोधरयुगं लोकाः समाचक्षते ॥ ५१ ॥ रत्यात्तप्रियलाञ्छने कठिनतावासे रसालिङ्गिते प्रह्लादैकरसे क्रमादुपचिते भूभृद्गुरुत्वापहे। कोकस्पर्धिनि भोगभाजि जनितानङ्गे खलीनो-

---

बीचमें दो चकवे हों या कामरूपी मतवाले हाथीके मस्तक हों या कामदेवकी स्त्रीकी गेंद हों या बाँहरूपी कमलनालके कन्द हों या क्रीड़ा-लताके सुन्दर फल हों या रत्नकी दो निराली पिटारियाँ हों ॥४०॥ हे बेलके फल ! यदि इस मृगनयनीके स्तनोंके फैलावकी ही तुम्हें जलन हो तो भैया, उससे बदला चुकानेके लिये तुम्हारा आकाशमें लटककर तपस्या करना व्यर्थ है ॥४१॥ उस कोमलाङ्गीके पतित (नीच और लटके हुए) स्तन प्रायश्चित नहीं करते (पाप दूर करनेका उपाय नहीं करते या प्रायः मन नहीं हरते) इसीलिये पतित होनेके कारण लोग उन्हें नहीं छूना चाहते ॥ ४२ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारे ये दोनों स्तन धीरे-धीरे वेर, आँवला, आम और अनारकी शोभा लूटकर इतने मोटे हुए हैं। अब तो ये हाथीके बच्चेके मस्तककी शोभा छीननेके लिये मचले जा रहे हैं ॥ ४३ ॥ परस्पर सटे हुए उसके दोनों स्तनोंका घेरा ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानो खेल ही खेलमें अपने विशाल धनुषको खींचकर गोल करके साक्षात् कामदेव उसमें बैठा हो ॥४४॥ यदि ब्रह्मा इसकी कमर छाँटकर उसका सुन्दर भाग अपने पास न रख छोड़ता तो इस अनुपम अङ्गोंवाली नायिकाके यौवनके समय इसके स्तन किस वस्तुसे बनाता ॥ ४५ ॥ 'इस पतली कमरवाली नवेलीने अपनी पतली कमरसे मेरी कमरको हरा दिया' यह समझकर नायिकापर कोई वश न चलनेसे सिंह उस नायिकाके घड़े जैसे बड़े स्तनोंके समान हाथीके मस्तकको ही फाड़ डालता है ॥ ४६ ॥ यह कमलनयनी नवेली अकेली ही त्रैलोक्यकी रक्षा कर रही है क्योंकि इसका मध्यभाग (उदर) बलि (राजा बलि, पेटकी रेखाओं) का स्थान (पाताल) है, आँख ही अत्यन्त गम्भीर भूलोक है, बाँह ही उँगलियों (देवताओं) का आधार अर्थात् स्वर्ग है। इसीलिये इन्द्रके वज्रसे घबराकर सुमेरु पर्वतने इन स्तनोंके रूपमें मानो अपने दो बच्चे रक्षाके लिये इस नवेलीके पास रख छोड़े है ॥ ४७ ॥ इस नवेलीके दोनों स्तन एक दूसरेसे मानो इसलिये चिपके हुए हैं कि बार-बार मुखरूपी चन्द्रमाकी चाँदनीकी धारामें डुबकी खानेसे कहीं अधिक शीत न लग जाय ॥ ४८ ॥ हे नवेली ! ये तुम्हारे स्तन इसलिये हृदयसे बाहर निकल आए हैं कि इनके स्वभावसे तुम्हारा स्वभाव नहीं मिलता क्योंकि तुम कोमल अङ्गवाली हो, ये कठोर हैं; तुम पतली हो, ये मोटे हैं; तुम्हारा मुँह गोरा है और इनका काला है ॥ ४९ ॥ जब सुन्दरता इतनी अधिक इकट्ठी हो गई कि इसके शरीरमें न समा सकी तब वही गोल पिण्डी बनकर छातीपर स्तन बन गई है ॥५०॥ नाभिरूपी थालेसे उठकर युवकोंके मोहरूपी विशाल फलको उत्पन्न करनेवाली रोमावली रूपी लताको सींचनेके लिये कामदेवने मुखरूपी चन्द्रमासे सुन्दरता-रूपी अमृतको क्यारीतक ले जानेके लिये उस नालीके दोनों ओर ऊँची मेड़ बना दी है, उसी ऊँची मेड़को लोग पयोधर (जल धारण करनेवाला, स्तन) कह रहे हैं ॥ ५१ ॥ हे नवेली ! सम्भोगके समय पतिके नख तथा अङ्गरागके चिह्न धारण करनेवाले तुम्हारे स्तनमें विष्णुके दशों अवतार दिखाई पड़ते हैं। ये मानो रतिके परम-

न्मुखे भाति श्रीरमणावतारदशकं बाले भवत्याः स्तने ॥ ५२ ॥ शङ्के तच्चित्तमक्लेशसाध्यं कुसुमधन्वनः । काठिन्यं बहिरेवास्याः स्तनाभ्यां येन धारितम् ॥५३॥ शुकीचञ्चूत्खातच्छवि फलयुगं यौवनतरोरयःशङ्कुत्तुण्णं मदनकरिणः कुम्भयुगलम् । समुद्रं भोगायामृतकलशयुग्मं सुकृतिनः कुचद्वन्द्वं तन्व्या नवनखपदाङ्कं विजयते ॥ ५४ ॥ सतां समालोकयतां विवेकान्हवींषि हुत्वा स्मरबाणवह्नौ । धत्ते स्तनः श्यामशिरोमिषेण तनूदरि त्र्यायुषभस्मविन्दुम् ॥ ५५ ॥ सा धारयत्यधीराक्षी दुर्वहं स्तनमण्डलम् । गर्वपर्वतमारूढश्चित्रं कुसुमकार्मुकः ॥५६॥ सा स्तनाञ्जलिवन्धेन मन्मथं प्रथमागतम् । करोतीवोन्मुखं बाला बान्धवं यौवनश्रियः ॥ ५७ ॥ स्तनराजौ तथान्योऽन्यं मण्डलाक्रमणोद्यतौ । कर्त्तुं यथैतयोस्सन्धिर्विधात्राऽपि न शक्यते ॥ ५८ ॥ स्वकीयं हृदयं भित्त्वा निर्गतो यौ पयोधरौ । हृदयस्यान्यदीयस्य भेदने का कृपा तयोः ॥५९॥ स्वयम्भूः शम्भुरम्भोजलोचने त्वत्पयोधरः । नखेन कस्य धन्यस्य चन्द्रचूडो भविष्यति ॥ ६० ॥

नाभिः—उरोजवच्चक्रमनोज्ञरूपा केशावलीव भ्रमराजिता वा । सङ्गीतवत्सत्पुटभेदहृद्या विद्येत नाभीसरसी मृगाद्याः ॥ १ ॥ कुचकुम्भौ समालम्ब्य तरन्ती कान्तिनिम्नगाम् । भ्रमादितस्ततो दृष्ट्वा दृष्टिर्नाभौ निमज्जति ॥२॥ नायं हारस्य मध्ये तरलमरकतो नाभिदेशे कृशाङ्ग्याः नैषाऽप्यत्र त्रियामारमणशुचिरुचिः

प्रिय पति कामके वाहन मत्स्य हैं, ये कठोरताके आधार होनेसे (कच्छप) हैं, इनके अनुरागसे आलिङ्गन होता है अथवा ये पृथ्वीसे आलिङ्गित (वराह) हैं, ये अत्यन्त आनन्दप्रद हैं अथवा इसमें प्रह्लादका अत्यन्त अनुराग है अर्थात् ये नृसिंह हैं, ये क्रमसे बढ़े हुए हैं अर्थात् वामन हैं, ये पहाड़की विशालताको नीचा दिखानेवाले तथा राजाओंका गौरव मिटानेवाले परशुराम हैं, ये चक्रवाक पक्षीके समान गोल हैं अथवा सीताके वियोगमें चक्रवाकको शाप देनेवाले राम हैं, ये सुख भोगनेवाले अथवा फणोंवाले शेष हैं, ये देखनेवालोंके मनमें कामविकार उत्पन्न करते हैं अथवा शरीरके विरोधी मौनव्रत तपस्या आदि स्वीकार करनेवाले बुद्ध हैं तथा इनपर इन्द्रियोंके वशीभूत होनेवाले लोग आसक्त रहते हैं अथवा ये घोड़ेकी रास पकड़े हुए कल्कि हैं ॥५२॥ मैं समझता हूँ कि कामदेव उस नवेलीके मनको सरलतासे वशमें कर सकता है क्योंकि उसके चित्तकी कठोरता कामदेवने इसके स्तनोंके रूपमें बाहर ही रोक दी है ॥ ५३ ॥ नखके नये चिह्नसे युक्त ये दोनों स्तन ऐसे जान पड़ते हैं मानो यौवनरूपी वृक्षके ऐसे दो फल हों जिनपर सुग्गेकी ठोरकी खरोंच शोभा दे रही हो या लोहेके अङ्कुशसे छिदे हुए कामदेव रूपी हाथीके दो मस्तक हों या पुण्यात्माओंके लिये भोगके सागररूपी दो अमृतके घड़े हों ॥ ५४ ॥ हे पतली कमरवाली ! तुम्हें देखनेवाले सज्जनोंके विचाररूपी हविको कामदेवके बाणरूपी अग्निमें हवन करके तुम्हारे ये स्तन काले मस्तक (घुण्डी) के रूपमें मानो त्र्यायुष भस्म (यज्ञके अन्तमें लगाए जानेवाली भस्म) की बिन्दी धारण कर रहे हैं ॥५५॥ यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि उस चञ्चल नेत्रवाली नायिकाको भारी बोझीले विशाल स्तन धारण किए देखकर ही कामदेव अहङ्कार-रूपी पर्वतपर चढ़ गया ॥ ५६ ॥ वह भोली नवेली अपने यौवनकी शोभाके पहले-पहल आए हुए सम्बन्धी कामदेवको मानो स्तनरूपी अञ्जलि बाँधकर अपनी ओर आकृष्ट कर रही हो ॥ ५७ ॥ ये दोनों स्तन-रूपी राजा परस्पर एक दूसरेके मण्डल (घेरे) पर इस प्रकार आक्रमण करनेके लिये तैयार हो गए हैं कि ब्रह्मा भी अब इनमें सन्धि नहीं करा सकता (अर्थात् ये दोनों स्तन इतने बड़े हो गये हैं कि इनके बीचकी सीमाका भी पता नहीं चलता) ॥ ५८ ॥ जो स्तन स्वयं अपना हृदय फोड़कर बाहर निकल आ सकते हैं उन्हें दूसरेका हृदय फोड़नेमें क्या सङ्कोच है ॥ ५९ ॥ हे कमलनयनी ! तुम्हारे स्तन स्वयम्भू (अपने आप उत्पन्न होनेवाला ब्रह्मा) और स्वभू (स्वयं उत्पन्न होनेवाला विष्णु) तो हैं पर यह नहीं ज्ञात होता कि किस पुण्यात्माके नख लगनेपर यह मस्तकपर बालचन्द्रको धारण करनेवाले शङ्कर बन पावेंगे ॥ ६० ॥

नाभि : इस मृगनयनी नायिकाकी नाभि ऐसी झील है जिसमें स्तनरूपी चकवे शोभित हैं, घुँघराले केशरूपी भौंरे हैं और उसके गीत ही तटपर शब्द करनेवाली पानीकी लहरियाँ हैं ॥ १ ॥ उसकी नाभिको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि दर्शककी दृष्टि स्तनरूपी घड़ेके सहारे सुन्दरता-रूपी नदीमें तैरती हुई, चक्कर खाती हुई, इधर-उधर देखती हुई नाभि-रूपी भँवरमें डूबी जा रही हो ॥ २ ॥ उस कोमलाङ्गीकी नाभिपर न तो यह मरकतका हार है न चन्द्रमाकी पवित्र कान्तिके समान मोतियोंकी माला है वरन् ऐसा जान पड़ता है मानो

पद्धतिर्मौक्तिकानाम्। नाभीलावण्यवाप्यामयमसमशरस्त्र्यक्षकोपाग्निदग्धो मग्नस्तस्यापि झम्पापतनसमुदिता शीकरश्रेणिरेषा ॥ ३ ॥ मन्ये समाप्तलावण्यसारे सर्गे मृगीदृशः। अपूरयित्वेव गतो नाभिरन्ध्रं चतुर्मुखः ॥ ४ ॥ स्तनौ तुङ्गौ समारूढे चापन्यस्तभरे स्मरे। कोदण्डाटनिमुद्रेव जाता नाभी नतभ्रुवः ॥ ५ ॥

मध्यदेशः—अंशुकेन जघनं तिरोदधे कञ्चुकेन च कुचौ मृगीदृशाम्। पीयमानमनिशं प्रियेक्षणैः क्षामतामिव जगाम मध्यमम् ॥ १ ॥ अस्मिन्प्रकृतिमनोज्ञे लग्ना प्रायेण मान्मथी दृष्टिः। सुन्दरि यतो भवत्याः प्रतिक्षणं क्षीयते मध्यः ॥ २ ॥ आक्रान्ते शैशवेऽस्मिन्नभिनववयसा शासनान्मीनकेतोर्बालाया नेत्रयुग्मं श्रुतियुगमविशद्भ्रूयुगेनापि सार्धम्। वक्षोजद्वन्द्वमुच्चैर्बहिरिह निरगाच्छ्रोणिबिम्बेन साकं मध्यः सङ्कृष्य बद्धस्त्रिवलिभिरभितः कार्श्यमङ्गीकरोति ॥ ३ ॥ काञ्चीगुणैर्विरचिता जघनेषु लक्ष्मीर्लब्धा स्थितिः स्तनतटेषु च रत्नहारैः। नो भूषिता वयमितीव नितम्बिनीनां कार्श्यं निरर्गलमधारयत मध्यभागः ॥ ४ ॥ तुङ्गाभोगे स्तनगिरियुगे प्रौढबिम्बे नितम्बे सीमादेशं हरति नृपतौ यौवने जृम्भमाणे। मध्यो भीरुः क्वचिदपि ययौ पद्मपत्रेक्षणायाः शून्यं मध्यस्थलमिति ततः किंवदन्तीं वदन्ति ॥ ५ ॥ देहं हेमद्युतिपरिहताम्भोजदृष्टिं च दृष्टिं राशीभूतभ्रमरपटलीचारुवेशं च केशम्। दृष्ट्वा सद्यो विपुलहृदयानन्दमूढेन धात्रा सारङ्गाक्ष्याः किमु रचयितुं विस्मृतो मध्यदेशः ॥ ६ ॥ बद्धा ह्रियोमा त्रिवलीगुणेन गृह्णाति रोमावलिनेत्रवल्लीम्। इतीव चिन्ताकुलभङ्गुरोऽयं मध्यो मृगाक्ष्याः कृशतामुपैति ॥ ७ ॥ मध्यं तव सरोजाक्षि पयोधरभरार्दितम्। अस्ति नास्तीति सन्देहः कस्य चित्ते न भासते ॥ ८ ॥ युक्तं मध्ये कृशा तन्वी कार्मुकीकरणाय यत्। अत्रैव कुसुमास्त्रेण पीड्यते

शङ्करजीके क्रोधसे विषम बाणवाले कामदेवके जलनेपर नाभिरूपी सुन्दरताकी बावड़ीमें उसके कूदनेपर उड़ी हुई बूँदोंकी पंक्ति हो ॥३॥ इस नवेली मृगनयनी नायिकाकी गहरी नाभिको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो इसे बनाते-बनाते सुन्दरताका सब सार समाप्त हो जानेके कारण ब्रह्माने नाभिका छिद्र बिना भरे ही छोड़ दिया ॥ ४ ॥ उस झुकी हुई भौंहोंवाली नवेलीकी नाभिका गड्ढा ऐसा जान पड़ता है मानो जब कामदेव अपने धनुषका सहारा लेकर उसके ऊँचे स्तनोंपर उछलकर चढ़ा तो उसकी कोरका बल पड़नेसे गड्ढा बन गया ॥ ५ ॥

कमर : उस नवेलीकी नाभिके पास कमरपर ही प्रियकी दृष्टि पड़ती है और वह अपने नेत्रोंसे कमरको ही पीता रहता है इसलिये वही भाग पतला पड़ गया है और जाँघें तथा दोनों स्तन इसलिये मोटे रह गए कि कपड़ेसे ढके रहनेके कारण उनपर प्रियकी दृष्टि नहीं पड़ पाई ॥१॥ हे सुन्दरी ! जान पड़ता है कि स्वभावसे ही सुन्दर तुम्हारी कमरपर कामदेवकी डीठ लग गई होगी इसीलिये वह निरन्तर पतली होती जा रही है ॥ २ ॥ कामदेवकी आज्ञासे जब यौवनने उस नवेलीके बचपनपर आक्रमण किया तब उसके दोनों नेत्र अपनी भौंहोंके साथ दोनों कानोंमें जा घुसे, दोनों बड़े-बड़े स्तन और नितम्ब बाहर निकल आए और त्रिवली (पेटपर पड़ी हुई तीन रेखाओं) से जकड़ा हुआ मध्यभाग क्षीण हो गया ॥ ३ ॥ बड़े-बड़े नितम्बोंवाली नवेलियोंकी कमर इसी जलनसे इतनी दुबली हो गई है कि 'नितम्बोंपर तो करधनी लटकी हुई है और स्तनोंपर रत्नके हार हैं पर हमारी सजावटके लिये कुछ भी नहीं है' ॥ ४ ॥ ऐसा कहा जाता है कि यौवन रूपी उत्साही राजाने अत्यन्त बड़े-बड़े स्तनरूपी दोनों पहाड़ों तथा फैले हुए दोनों बड़े-बड़े नितम्बोंकी सीमाको जब अपना लिया तब उस कमलकी पङ्खुड़ीकी-सी आँखवाली नायिकाकी कमर डरकर कहीं भाग खड़ी हुई, इसीलिये उसका मध्यभाग सूना पड़ गया ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी उस मृगनयनी नायिकाको बनाते समय उसका सुनहली कान्तिवाला शरीर, नीले कमलोंको हरा देनेवाली दृष्टि और भौंरोंकी भीड़के समान सुन्दर चमकीले बाल देखकर ही कहीं आनन्दमें इतने मस्त तो नहीं हो गए कि उस मस्तीमें उसकी कमर बनाना ही भूल गए हों ॥ ६ ॥ उस नायिकाकी पतली कमर देखनेसे जान पड़ता है मानो वह इस चिन्तासे सूख-सूखकर दुबली हुई जा रही हो कि 'जो कामदेव मुझे त्रिवली रूपी रस्सीसे बाँध चुका है वही अब मुझे दुबारा बाँधनेके लिये रोमकी पंक्ति रूपी रस्सी सँभाल रहा है' ॥७॥ हे कमलनयनी ! स्तनोंके भारसे दबी हुई तुम्हारी पतली कमर देखकर किसके मनमें यह सन्देह नहीं होता कि तुम्हारे कमर है भी या नहीं ॥ ८ ॥ इस नवेलीकी कमर पतली होनी ही चाहिए थी क्योंकि फूलोंके अस्त्र धारण करनेवाले कामदेवने इस कमरको ही तो अपना धनुष बनानेके लिये अपनी दृढ़ मुट्ठीसे दबा दिया है ॥९॥ हमारी समझमें तो यही आता है कि इस मृगनयनीकी

श्लिष्टमुष्टिना ॥ ६ ॥ वयःप्रकर्षादुपचीयमानस्तनद्वय-स्योद्वहनश्रमेण। अत्यन्तकार्श्यं वनजायताक्ष्या मध्यो जगामेति ममैष तर्कः ॥ १० ॥ सुवृत्तमावेकत उन्नतौ स्तनौ गुरुर्नितम्बोऽप्ययमन्यतः स्थितः। कथं भजे कान्तमितीव चिन्तया ततान तन्मध्यमतीव तानवम् ॥ ११ ॥ स्तनौ भारार्पणव्यग्रौ काञ्ची कलकलोन्मुखी। कस्यां दिशि न मध्यस्य तस्याः कार्श्यं सहेतुकम् ॥१२॥ स्फुटमसदवलग्नं तन्वि निश्चिन्वते ते तदनुपलभमाना-स्तर्कयन्तोऽपि लोकाः। कुचगिरिवरयुग्मं यद्विनाधा-रमास्ते तदिह मकरकेतोरिन्द्रजालं प्रतीमः ॥ १३ ॥ स्मरमानसिकसमस्याः स्यात्स्तनिमा निरवधिर्मध्यः। श्रीरेव पूरयति यां न गिरां देवी न चापि गुरुरस्याः ॥ १४ ॥

रोमावली—अतिबहुतरलज्जाशृङ्खलाबद्धपादो मद-ननृपतिवाहो यौवनोन्मत्तहस्ती। प्रकटितकुचकुम्भो लोमराजीकरेण पिबति सरसि नाभीमण्डलाख्ये पयांसि ॥ १ ॥ अमुष्मिँल्लावण्यामृतसरसि नूनं मृग-दृशः स्मरः शर्वप्लुष्टः पृथुजघनभागे निपतितः। यद-ङ्गाङ्गाराणां प्रशमपिशुना नाभिकुहरे शिखा धूमस्येयं परिणमति रोमावलिमिषात् ॥ २ ॥ आनीलचूचुकशि-लीमुखमुन्नतैकरोमावलीविपुलनालमिदं प्रियायाः। उत्तुङ्गसङ्गतपयोधरपद्मयुग्मं नाभेरधः कथयतीव महा-निधानम् ॥ ३ ॥ इयं सृष्टा चञ्चत्कनकलतिका पङ्कज-भुवा निषिक्ता लावण्यामृतरसभरेणानुदिवसम्। अकस्माद्रोमालीमधुपपटलीह स्फुरति यत्ततः शङ्के पुष्पोद्गमसमयमायातमधुना ॥ ४ ॥ उत्तुङ्गस्तनपर्वता-दवतरद्गङ्गेव हारावली रोमाली नवनीलनीरजरुचिः सेयं कलिन्दात्मजा। जातं तीर्थमिदं सुपुण्यजनकं यत्रानयोः सङ्गमश्चन्द्रो मज्जति लाञ्छनापहृतये नूनं नखाङ्कच्छलात् ॥ ५ ॥ उत्तुङ्गस्तनभार एष तरले नेत्रे

कमर इसके भारी शरीर तथा जवानीके कारण बढ़े हुए दोनों स्तनोंका बोझ ढोते-ढोते इतनी पतली हो गई है ॥ १० ॥ उस नवेलीकी कमर मानो इसी सोचमें दुबली हुई जा रही है कि 'एक ओर तो दोनों उच्च कोटिके (श्रेष्ठ, ऊँचे-ऊँचे) सहृदय (मित्र, हृदयके ऊपर) स्तन खड़े हैं, दूसरी ओर यह गुरु (बड़े लोग, भारी) नितम्ब स्थित है, अब मैं अपने प्यारेसे कैसे मिलूँ ?' ॥ ११ ॥ जब एक ओरसे स्तन उसे अपने बोझसे चाँप रहे हैं और दूसरी ओरसे करधन दिनरात चिल्ल-पों मचाती रहती है तब बेचारी कमर क्यों नहीं दुबली होगी ॥ १२ ॥ हे दुर्बल शरीरवाली ! तुम्हारी कमर न देखकर लोग बहुत सोच-विचार करके यही निश्चय करते हैं कि तुम्हारे कमर ही नहीं है, फिर भी ये स्तन रूपी दो पहाड़ जो विना सहारेके टिके हुए हैं इन्हें कामदेवका इन्द्रजाल ही समझना चाहिए ॥ १३ ॥ इस नायिकाके दुर्बल शरीर और उसकी पतली कमर वास्तवमें कामदेवकी मनसे बनाई हुई समस्या है जिसकी पूर्त्ति लक्ष्मी (श्री तथा सुन्दरता) ही कर सकती है, सरस्वती या उसके गुरु (आचार्य बृहस्पति) नहीं पूरा कर सकते ॥ १४ ॥

रोमावली : उस नायिकाकी नाभिपर उठी हुई रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो महाराज कामदेवकी सवारीका यौवन-रूपी मतवाला हाथी इस रोमावलीरूपी सूँड़से नाभिमण्डलरूपी तालावमें जल पी रहा है जिसके पैर लज्जारूपी साँकलसे बँधे हुए हैं और जिसका मस्तक स्तनोंके रूपमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है ॥ १ ॥ इस नवेली मृगनयनीकी नाभिपर निकली हुई रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो इस विशाल जघन (पेड़ू) के सुन्दरता-रूपी अमृतके तालाबमें शिवजीके क्रोधसे जलकर कूदे हुए कामदेवके शरीरसे उठते हुए धुएँकी लहरें हों ॥ २ ॥ उस प्यारीके उठे हुए स्तनोंकी घुण्डियोंतक चढ़ी हुई रोमावली कमलके नालके समान जान पड़ती है, जिसके ऊपर उठे हुए स्तनरूपी कमल यह सूचना देते हैं कि नाभिके नीचे कोई गहरी निधि छिपी हुई है ॥ ३ ॥ ब्रह्माने यह सुन्दर नायिका वास्तवमें सोनेकी लता बनाई है जिसे वह प्रतिदिन सौन्दर्यके अमृतरससे सींचता रहता है; पर इसपर जो अचानक यह रोमावली-रूपी भौंरोंकी पाँत दिखाई पड़ रही है वह ऐसी जान पड़ती है मानो अब इसके फूलने (युवती होने) का समय आ गया हो ॥ ४ ॥ नवेलीके ऊँचे स्तन-रूपी पर्वतोंपर हारकी लड़ें पर्वतसे उतरती हुई गङ्गाके समान जान पड़ती हैं और नये नीले कमलके समान सुन्दर रोमावली ही यमुनाके समान है और जहाँ इन दोनोंका सङ्गम होता है वहीं सुन्दर पुण्य-देनेवाला तीर्थ है जिसपर बने हुए नखके चिह्न ऐसे जान पड़ते हैं मानो अपना कलङ्क धोनेके लिये चन्द्रमा उस त्रिवेणी डुबकी लगा रहा हो ॥५॥ इस नवेलीके बड़े-बड़े स्तन, मनोहर आँखें, चञ्चल भौंहें तथा पत्तेके समान हिलते हुए अधर यदि प्रेमियोंको मारे डालते हों तो ठीक है पर जिसे कामदेवने सौभाग्यके अक्षरोंकी पंक्ति-सा बनाकर लिख दिया है

चले भ्रूलते रागान्धेषु तदोष्ठपल्लवमिदं कुर्वन्तु नाम व्यथाम्। सौभाग्याक्षरपङ्क्तिरेव लिखिता पुष्पायुधेन स्वयं मध्यस्थापि करोति तापमधिकं रोमावली केन सा ॥ ६ ॥ उन्मूलितालानविलाभनाभिश्छिन्नस्खलच्छृङ्खलरोमदामा। मत्तस्य सेयं मदनद्विपस्य प्रस्वापवप्रोच्चकुचास्तु वास्तु॥७॥ कुचदुर्गराजधान्योर्मध्येमार्गे मृगीदृशो मदनः। किमकृत नाभीवापीमपि रोमाली तमालवनरेखाम् ॥ ८ ॥ गभीरनाभीह्रदपार्श्ववर्त्तिनी विराजते लोमतती मृगीदृशः। मुखारविन्दस्य रसाभिलाषिणी द्विरेफपङ्क्तिश्चलितेव नीरवा ॥ ९ ॥ गम्भीरनाभिह्रदसन्निवेशे रराज तन्वी नवरोमराजिः। मुखेन्दुभीतस्तनचक्रवाकद्वन्द्वोज्झिता शैवलमञ्जरीव ॥ १० ॥ गौरीव पत्या सुभगा कदाचित्कर्त्रीयमप्यर्धतनूसमस्याम्। इतीव मध्ये निदधे विधाता रोमावलीमेचकसूत्रमस्याः ॥ ११ ॥ जाने रात्रिषु तन्मध्ये ददाति शनकैः पदम्। गम्भीरनाभिकुहरप्रवेशाशङ्कया स्मरः ॥ १२ ॥ तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्रं रराज तन्वी नवरोमराजिः। नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणेरिवार्चिः ॥ १३ ॥ दत्तं मया पदमिदं नवयौवनाय त्वं सत्वरं क्वचन शैशव साधयेति। कामस्य हस्तलिखिताक्षरमालिकेव रोमावली विजयते जलजेक्षणायाः ॥ १४ ॥ नाभिरन्ध्रं प्रविष्टास्याः श्यामला रोमवल्लरी। त्रस्ता तिमिरलेखेव मेखलामणिकान्तितः ॥ १५ ॥ नाभिसङ्गेन गौराङ्ग्याः शोभते रोममञ्जरी। कन्दर्पहेमकटकाल्लाक्षाधारेव निर्गता ॥ १६ ॥ नाभीविलान्तरविनिर्गतपन्नगीयं सम्प्रस्थिता नयनखञ्जनभञ्जनाय। नासामुदीक्ष्य गरुडभ्रममुद्वहन्ती गुप्तेव पीनकुचपर्वतयोरधस्तात् ॥ १७ ॥ नाभीवलयसम्बद्धा रोमाली भाति सुभ्रुवः। सहिता निगडेनेव शृङ्खला स्मरदन्तिनः ॥ १८ ॥ निर्णेतव्यो मनसिजकलातन्त्रसिद्धान्तसारो जेतव्या च

वह मध्यस्थ (बीचमें रहनेवाली, बीच-बिचाव करनेवाली) रोमावली क्यों इतनी प्राणकी गाहक हो रही है ॥ ६ ॥ इस नवेलीकी नाभि ऐसी जान पड़ती है मानो यहाँसे कामदेव रूपी हाथीको बाँधनेका खम्भा उखाड़ दिया गया है जिससे गड्ढा पड़ गया और यह उसके पेटपर बनी हुई रोमावली ही उस हाथीकी टूटी हुई साँकलके समान है जिसे तोड़कर कामदेव-रूपी हाथी ऊँचे टीलेके समान स्तनोंपर विश्राम करने चढ़ गया है ॥ ७ ॥ हरिणीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नवेलीके स्तन-रूपी दुर्ग और योनि-रूपी राजधानीके बीच कामदेवने रोमावली-रूपी तमालवनसे सजाकर यह नाभि-रूपी बावड़ी तो नहीं बना दी है ॥ ८ ॥ इस मृगनयनी नवेलीके शरीरपर रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो नाभि-रूपी गहरे तालाबके पास रहनेवाली मौन भौंरोंकी पाँत, मुख-रूपी कमलकी गन्ध लेनेकी इच्छासे ऊपर उड़ी चली जा रहा हो ॥ ९ ॥ गहरे नाभि-रूपी तालाबसे उठी हुई पतलीसी नई रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो मुख-रूपी चन्द्रमाके डरसे भागते हुए स्तन-रूपी चकवा-चकवाके जोड़ेके साथ सेवारकी लताएँ उलझी हुई हों ॥ १० ॥ सौभाग्यवती नवेलीके उदरपर यह बालोंकी रेखा ऐसी जान पड़ती है मानो ब्रह्माने इसके शरीरके बीचमें यह समझकर काले सूतसे सीमा बाँध दी हो कि कहीं यह सौभाग्यवती, नवेली पार्वतीके समान अपने पतिके आधे शरीरमें मिल न जाय ॥ ११ ॥ इस नवेलीके शरीरपर रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो नाभि रूपी गहरे गड्ढेमें गिर पड़नेके डरसे रातके समय इस नायिकामें प्रवेश करनेके लिये कामदेव धीरे-धीरे डग रख रहा हो ॥ १२ ॥ उस नवेलीकी गहरी नाभिके गड्ढेमें घुसती हुई नई रोमावलीकी रेखा ऐसी जान पड़ती है मानो करधनके बीचमें जड़े हुए नीलमके प्रकाशकी रेखा धोतीकी गाँठको लाँघकर ऊपरको उठी जा रही हो ॥ १३ ॥ इस कमलनयनी नवेलीकी रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेवने अपने हाथसे यह अक्षर-पंक्ति लिख दी हो कि 'हे बचपन! मैंने यह नायिका रूपी स्थान नये यौवनके लिये सुरक्षित कर लिया है इसलिये तुम शीघ्र कहीं चले जाओ ॥ १४ ॥ उस नवेलीकी गहरी नाभिमें घुसी हुई काली रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो कमरमें बँधी हुई करधनके मणिकी चमकसे डरी हुई अँधेरेका पाँत हो ॥ १५ ॥ उस गोरी नवेलीकी गोल नाभिसे उठी हुई रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेवके सोनेके कड़ेसे लाखकी धारा पिघलकर बही चली आ रही हो ॥ १६ ॥ इस नवेलीकी रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो नेत्र रूपी खञ्जनको निगलनेके लिये चली हुई नाभि-रूपी बिलसे निकली हुई साँपिन, नाकको गरुड समझकर डरके मारे विशाल स्तन-रूपी पर्वतोंके नीचे जा छिपी हो ॥ १७ ॥ उस सुन्दर भौंहोंवाली नायिकाकी गोल नाभिसे मिली हुई रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेव-रूपी हाथीकी लोहेकी साँकलमें बेड़ी बँधी हुई हो ॥ १८ ॥

त्रिदशसुदृशामङ्गलावरयलक्ष्मीः। रोमश्रेणीलिखनसुभगं पत्त्रमादर्शयन्ती पत्रालम्बं जगति कुरुते सुभ्रुवो यौवनश्रीः ॥ १९ ॥ पयोधरस्तावदयं समुन्नतो रसस्य वृष्टिः सविधे भविष्यति। अतः समुद्गच्छति नाभिरन्ध्रतो विसारि रोमालिपिपीलिकावलिः ॥ २० ॥ भाति रोमावली तस्याः पयोधरभरोन्नतौ। जाता रत्नशलाकेव श्रोणिवैदूर्यभूमितः ॥ २१ ॥ यूनां धैर्यतृणाङ्कुरं कवलयन्व्रीडाम्बुपूरं पिबञ्शृङ्गारो हरिणस्तव स्तनगिरेः सीमानमारोहति। नाभेः काचन तस्य निःसृतवती कस्तूरिकामालिका रोमश्रेणिमहोत्सवं वितनुते कल्याणि जानीमहे ॥ २२ ॥ रचयति युवनेत्रक्षेत्रपीयूषवृष्टिं नवजलधररेखा रोमराजिच्छलेन। यदुदयति कलापिप्रक्रियेयं तदुच्चैः स्तनघनसमयोऽस्यामाविरस्तीति विद्मः ॥ २३ ॥ रोमावलिभ्रूकुसुमैः स्वमौर्वीचापेषुभिर्मध्यललाटमूर्ध्नि। व्यस्तैरपि स्थाणुभिरेतदीयैर्जैत्रः स चित्रं रतिजानिवीरः ॥ २४ ॥ रोमावलीरज्जुमुरोजकुम्भौ गम्भीरमासाद्य च नाभिकूपम्। मदृष्टितृष्णा विरमेद्यदि स्यान्नैषां वतैषा सिचयेन गुप्तिः ॥ २५ ॥ रोमावली विलासिन्याः प्रविष्टा नाभिमण्डलम्। कियद्गाम्भीर्यमत्रेति तात्पर्यमिव बिभ्रती ॥ २६ ॥ लिखन्त्याः कामसाम्राज्यशासनं यौवनश्रियः। गलितेव मषीधारा रोमाली नाभिगोलकात् ॥ २७ ॥ वयसी शिशुतातदुत्तरे सुदृशि स्वामिविधिं विधित्सुनी। विधिनापि न रोमरेखया कृतसीम्नि प्रविभज्य रज्यतः ॥ २८ ॥ समुदितकुचकुम्भमङ्गनाया हृदयमनङ्गमतङ्गजोऽधिशेते। तदखिलपदबन्धनाय रोमावलिरिह शृङ्खलिका विलोक्यते यत् ॥ २९ ॥ सौन्दर्यस्य मनोभवेन गणनारेखा किमेषा कृता लावण्यस्य विलो-

सुन्दर भौंहोंवाली नवेलीकी रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो उसके यौवनकी कान्ति, रोमावली-रूपी लेखसे सजे हुए पत्रको दिखला-दिखलाकर इस अभिमानके साथ संसारको चुनौती दे रही हो कि मैं कामके कलाशास्त्रका वास्तविक तत्त्व परख सकती हूँ और देवियोंके शरीरकी सुन्दरता जीत सकती हूँ ॥ १९ ॥ उस नवेलीके शरीरपर उठी हुई रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो उठे हुए (उमड़े हुए) पयोधर (स्तन और बादल) तत्काल रस (आनन्द और जल) की वर्षा करेंगे इसीलिये नाभि-रूपी बिलसे चींटियोंकी पाँत अन्यत्र उठ चली हो ॥ २० ॥ उस नायिकाके शरीरपर रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो स्तनोंका बोझ सँभालनेके लिये उदर-रूपी भूमिपर वैदूर्यमणिका पतला-सा खम्भा खड़ा कर दिया गया हो ॥ २१ ॥ हे मङ्गलमयी नवेली! तुम्हारे शरीरपर रोमावली ऐसी सुन्दर जँच रही है मानो युवकोंके धैर्य-रूपी घासके अङ्कुर चर जानेवाला तथा लज्जा-रूपी जल पी जानेवाला शृङ्गार-रस-रूपी मृग तुम्हारे स्तन-रूपी पर्वतपर चढ़ते हुए अपनी नाभिसे कस्तूरी बरसाता जा रहा हो ॥ २२ ॥ युवकोंके नेत्र-रूपी खेतोंमें अमृतकी वर्षा करनेवाले बादलकी पतली-सी रेखा ही इस नवेलीकी रोमावली बनकर निकल आई है इसीलिये इस नवेलीमें मयूरोंकी क्रिया (बोली) सुनाई पड़ने लगी है जिससे जान पड़ता है कि पयोधर (स्तन, बादल) उमड़ आए हैं (बढ़ चले हैं) ॥ २३ ॥ यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि इस नायिकाकी रोमावली-रूपी डोरी तो पेटपर है, भौंह-रूपी धनुष माथेपर है और फूल-रूपी बाण मस्तकपर है, फिर भी वीर कामदेव सबको जीतता ही चला जा रहा है ॥ २४ ॥ रोमावलीकी रेखा-रूपी रस्सी, स्तन-रूपी घड़े और गहरी नाभि रूपी कुआँ यदि वस्त्रसे ढके न होते और तलवार (भौंहों) से इनकी रखवाली न की गई होती तो निश्चय ही इन वस्तुओंको पाकर हमारी आँखोंकी प्यास बुझ जाती ॥ २५ ॥ इस नवेलीकी गहरी नाभिमें घुसती हुई-सी रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो वह नाभिकी गहराई नापनेके लिये भीतर घुसी जा रही हो ॥ २६ ॥ इस नवेलीकी रोमावली ऐसी जान पड़ रही हो मानो कामदेवके साम्राज्यके नियम लिखते समय यौवनकी शोभाके नाभि-रूपी मसीपात्रसे स्याहीकी धारा बह चली हो ॥ २७ ॥ उस नवेलीके शरीरपर रोमावली ऐसी शोभा पा रही है मानो उस सुनयनीपर अपना-अपना अधिकार जमानेकी इच्छा रखनेवाले बचपन और यौवनको अलग-अलग रखनेके लिये ब्रह्माने सीमा बना दी हो जिससे वे निर्विवाद शोभा पाते रहें ॥ २८ ॥ उस नवेलीके शरीरपर रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो इसके हृदयमें सोते हुए कामदेव-रूपी जिस हाथीके दो स्तन-रूपी माथे दिखाई पड़ रहे हैं उसके पैर बाँधनेके लिये साँकल गढ़ दी गई हो ॥ २९ ॥ इस नवेलीके उदरपर रोमावली देखकर यह प्रश्न होता है कि कामदेवने सुन्दरताकी सीमा नापनेके लिये यह कोई रेखा बनाई है या तीनों लोकोंकी सुन्दरता देखनेके लिये यह लम्बा

किंतु त्रिजगतामेषा किमुन्नीविका। आनन्दद्रुमकन्दली नयनयोः किंवा समुज्जृम्भते सुन्दर्याः किमु वा स्वभावसुभगा रोमालिरुन्मीलति ॥ ३० ॥ स्वर्णावदातद्युतिकायकाण्डे सम्पूर्णपीयूषमयूखमुख्यः। एणीदृशः पृष्ठविलम्बिवेणीबिम्बः पुरो राजति रोमराजी ॥ ३१ ॥ हरक्रोधज्वालावलिभिरवलीढेन वपुषा गभीरे ते नाभीसरसि कृतझम्पो मनसिजः। समुत्तस्थौ तस्मादचलतनये धूमलतिका जनस्तां जानीते तव जननि रोमावलिरिति ॥ ३२ ॥

वलित्रयम्—अनन्यसाधारणकान्तिकान्ततनोरमुष्याः किमु मध्यदेशः। जगत्त्रयीजन्मभृतां निषण्णा चित्तावलीयं त्रिवलीमिषेण ॥ १ ॥ एकमेव वलिं बद्ध्वा जगाम हरिरुन्नतिम्। तन्व्यास्त्रिवलिबन्धेऽपि सैव मध्यस्य नम्रता ॥ २ ॥ तत्त्रिविष्टपमाख्यातं तन्वङ्ग्या यद्वलित्रयम्। येनानिमिषदृष्टित्वं नृणामप्युपजायते ॥ ३ ॥ तदीयत्रिवलीमार्गसोपानारोहणश्रमः। अनङ्गत्वादनङ्गस्य जातो रत्येकगोचरः ॥ ४ ॥ तनुत्वरमणीयस्य मध्यस्य च भुजस्य च। अभवन्नितरामस्या वलयः कान्तिवृद्धये ॥ ५ ॥ दरिद्रमुदरं दृष्ट्वा चक्रे लावण्यपूर्णयोः। पन्थानं स्तनयोस्तस्यास्त्रिवलीविषमं विधिः ॥ ६ ॥ परिहृत्य दुरारोहं तस्याः स्तनतटं कृता। कन्दर्परथसञ्चारमार्गालीव वलित्रयी ॥ ७ ॥ मत्वा चापं शशिमुखि निजं मुष्टिना पुष्पधन्वा तन्वीमेनां तव तनुलतां मध्यदेशे बभार। यस्मादत्र त्रिभुवनवशीकारमुद्रानुकारास्तिस्रो भान्ति त्रिवलिकपटादङ्गुलीसन्धिरेखाः ॥ ८ ॥ मध्यत्रिवलीत्रिपथे पीवरकुचचत्वरे च चपलदृशाम्। छलयति मदनपिशाचः पुरुषं हि मनागपि स्खलितम् ॥ ९ ॥ मध्यात्समानीय सुसारभागं वक्षोजमुत्पादयिता विधाता। अतिप्रयत्नात्त्रिवलीमिषेण सोपानवर्त्मत्रितयं चकार ॥ १० ॥ मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारु बभार बाला। आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्

गला है या आँखोंकी तृप्तिके लिये आनन्द-रूपी वृक्षमें अङ्कुर आ रहा है या यह इस सुन्दरीकी स्वभावतः सुन्दर रोमावली है ॥ ३० ॥ इस नवेली चन्द्रमुखीके पेटपर उठी हुई रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो इसके सोनेकी भाँति स्वच्छ कान्तिवाले शरीरमेंसे पीठपर लटकी हुई चोटीका ही प्रतिबिम्ब रोमावलीके रूपमें सामने दिखाई पड़ रहा हो ॥ ३१ ॥ हे पार्वतीजी ! जब महादेवजीकी क्रोधाग्निकी लपटोंसे ग्रसा हुआ कामदेव आपके नाभि-रूपी कुएँमें कूद पड़ा तब धुएँकी जो लहरें ऊपरको उठीं उसीको लोग रोमावली कहने लगे ॥ ३२ ॥

तीन सिकुड़नें : उस नवेलीके पेटपर जो तीन सिकुड़नें पड़ी हैं वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो इस अनोखी सुन्दरीके उदरपर इन तीन रेखाओंके रूपमें तीनों लोकोंके लोगोंका मन-समूह ला रक्खा हो ॥ १ ॥ भगवान् विष्णुने एक वलि (राजा वलि) को बाँधकर अपनेको बड़ा किया अर्थात् विराट्-रूप बनाया पर इस नवेलीकी कमर तीन वलि (सिकुड़न) बाँधकर भी झुकी (लचकीली) ही रह गई ॥२॥ उस कामिनीके उदरपर तीन रेखाएँ ही तो सचमुच स्वर्ग हैं जिनकी ओर मनुष्य एकटक होकर देखते रह जाते हैं ॥ ३ ॥ उस नवेलीके पेटपर तीन रेखाएँ देखकर कामदेवकी पत्नी (रति) ने यह समझा कि मेरे शरीर-रहित पति (कामदेव) ने ऊपर चढ़नेके लिये ये सीढ़ियाँ बना ली होंगी ॥ ४ ॥ पतली होनेके कारण सुन्दर लगनेवाली कमरकी शोभा वलयः (पेटपर पड़ी हुई रेखाओं) से और हाथोंकी शोभा वलयः (कङ्गनों) से बढ़ती ही है ॥५॥ ब्रह्माने देखा कि उस नायिकाका उदर अत्यन्त दरिद्र (पतला) है इसलिये सुन्दरतासे भरे हुए स्तनोंसे लेकर उदरतक उसने तीन रेखाओंका मार्ग बना दिया कि इनसे होकर सुन्दरता-रूपी धन कमरमें भी चला आवे ॥ ६ ॥ इस नवेलीके उदरपर बनी हुई तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो इसके स्तन-रूपी दुर्गम पर्वतके शिखरसे उतरते हुए कामदेवके रथके लिये लीकें बना दी गई हों ॥ ७ ॥ हे चन्द्रमुखी ! फूलोंका धनुष रखनेवाले कामदेवने अवश्य ही तुम्हारे दुर्बल शरीरको अपना धनुष समझकर मुट्ठीसे पकड़ा होगा उसीसे उँगलियोंके बीचकी तीन रेखाओंसे तीन सिकुड़नें पड़ गई होंगी जो ऐसी जान पड़ती हैं मानो तीनों लोकोंको वशमें कर लेंगी ॥ ८ ॥ इन चञ्चल नेत्रोंवाली स्त्रियोंके पेटकी तीन रेखा-रूपी तिराहेपर तथा मोटे स्तन-रूपी चौराहेपर जो लोग तनिक भी भटके कि कामदेव-रूपी पिशाचने उन्हें चक्करमें डाला ॥ ९ ॥ ब्रह्माने इस नायिकाकी कमरसे सार निकालकर स्तन तो बना दिए किन्तु उसके पश्चात् जब कुछ भी सामग्री नहीं बची तब बड़ी कठिनाईसे उसने तीन रेखाओंके रूपमें तीन सीढ़ियाँ बना दीं ॥१०॥ वेदीके समान बीचसे छिछली उस नायिकाके पेटपर

॥११॥ राजति त्रिवली तस्याः स्तनभारोन्नतिक्रमात्। उपर्युपरि जातेव हारमुद्रापरम्परा ॥ १२ ॥ स्तनभाराय मध्येन त्रिवलिव्याजतः कृता। तस्याः शङ्कितभङ्गेन भ्रूभङ्गानामिवावलिः ॥ १३ ॥

पृष्ठभागः—अस्याः खलु ग्रन्थिनिबद्धकेशमल्लीकदम्बप्रतिबिम्बवेशात्। स्मरप्रशस्ती रजताक्षरेयं पृष्ठस्थलीहाटकपट्टिकायाम् ॥ १ ॥

नितम्ब—अपर्याप्तभुजायामः सखेदोऽस्याः सखीजनः। श्रोण्यां कथञ्चित्कुरुते रशनादामबन्धनम् ॥१॥ अमृतमधुरैः काञ्चीनादैः कृताभयडिण्डिमे त्रिवलिलहरीलावण्याम्भःकणोत्करकर्बुरे। विषमनयनज्वालाजालावलीढपराक्रमो लुठति मदनस्तन्वङ्गीनां नितम्बशिलातले ॥ २ ॥ चक्रेण विश्वं युधि मत्स्यकेतुः पितुर्जितं वीक्ष्य सुदर्शनेन। जगज्जिगीषत्यमुना नितम्बद्वयेन किं दुर्लभदर्शनेन ॥ ३ ॥ तन्नितम्बस्य निन्दन्ति वृद्धिं परिजनाङ्गनाः। काञ्चीनवनवग्रन्थिग्रथनेन कदर्थिताः ॥ ४ ॥ नितम्बगौरवेणासौ गौराङ्गी खिद्यते दृढम्। हारयत्यपरिस्पन्दा कन्दुकक्रीडितेषु यत् ॥५॥ नितम्बबिम्बं बिम्बोष्ठी चन्द्रकान्तशिलाघनम्। धत्ते कन्दर्पदोःस्तम्भप्रशस्तिफलकोपमम् ॥ ६ ॥ पृथुवर्तुलतन्नितम्बकृन्मिहिरस्यन्दनशिल्पशिक्षया। विधिरेकचक्रचारिणं किमु निर्भर्त्सति मान्मथं रथम् ॥ ७ ॥ रोमावलीदण्डनितम्बचक्रे गुणञ्च लावण्यजलञ्च बाला। तारुण्यमूर्त्तेः कुचकुम्भकर्तुर्बिभर्ति शङ्के सहकारिचक्रम् ॥ ८ ॥ विस्तारिणा मुहुस्तस्याः श्रोणीबिम्बेन पीडिता। त्रुटिता त्रुटितास्मीति पूत्करोतीव मेखला ॥ ९ ॥ स कथं न स्पृहणीयो विषयरतैस्तन्नितम्बवि-

---

पड़ी हुई तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो कामदेवको ऊपर चढ़ानेके लिये यौवनने सीढ़ियाँ बना दी हों ॥ ११ ॥ इस नायिकाके शरीरपर तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो उसके स्तनोंके बढ़ते जानेपर ज्यों-ज्यों हार ऊपर उठता गया त्यों-त्यों उस हारकी रगड़के चिह्न इन रेखाओंके रूपमें बने रह गए ॥ १२ ॥ उस नवेलीके शरीरपर तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो उसके उदरने स्तनका बोझ भाँपकर अपने दब जानेके सन्देहसे स्तनोंपर क्रोध किया हो जिससे ये तीन रेखाएँ ऐसी बन गईं मानो उदरकी टेढ़ी भौंहें हों ॥ १३ ॥

पीठ : इस नवेलीके जूड़ेमें गुँथे हुए बेलेके फूलोंका प्रतिबिम्ब पीठपर पड़ता हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो पीठ-रूपी सोनेकी पटियापर चाँदीके अक्षरोंमें कामदेवकी प्रशंसाके लेख लिख दिए गए हों ॥ १ ॥

नितम्ब : उस नवेलीके नितम्ब इतने बड़े बड़े हैं कि उसकी सखियोंके दोनों हाथोंके घेरेमें नहीं आते इसलिये वे बेचारी बड़ी कठिनाईसे उसके नितम्बोंपर तगड़ीकी लड़ें बाँध पाती हैं ॥१॥ तगड़ीमेंसे गूँजनेवाले अमृतके समान मधुर शब्दसे अपनी निर्भयताका डङ्का पीटनेवाला, त्रिवली-रूपी लहरोंवाली नदीके सौन्दर्य-रूपी जलकणसे चित-कबरा बना हुआ तथा शंकरजीके नेत्रोंकी ज्वालासे जल जानेपर भी अपना प्रताप दिखानेवाला यह कामदेव कामिनियोंके नितम्ब-रूपी चट्टानपर लेट रहा है ॥२॥ जैसे कामदेव (प्रद्युम्न) के पिता (कृष्ण) ने युद्धमें सुदर्शन चक्रसे सारे विश्वको जीत लिया, वैसे ही क्या कामदेव भी इन दोनों दुर्लभदर्शन (देखनेको न मिलनेवाले) नितम्बोंसे संसारको जीतना चाहता है ॥ ३ ॥ इस नवेलीकी दासियाँ उसके नितम्बोंके बड़े होनेकी इसलिये निन्दा कर रही हैं कि उसकी तगड़ी बड़ी करनेके लिये बार-बार गूँथते-गूँथते वे तंग आ गई हैं ॥ ४ ॥ वह गोरी नायिका अपने नितम्बोंके भारीपनसे बहुत दुखी हो गई है क्योंकि उनके बोझसे न चल पानेके कारण वह गेंदके खेलमें बार-बार हार जाती है ॥ ५ ॥ पके हुए बिम्बाके समान ओठोंवाली ऐ नवेली ! चन्द्रकान्त मणिकी पटियाके समान कड़ा तुम्हारा यह नितम्ब ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेवके बाहुरूपी खम्भेपर उसकी प्रशंसासे अङ्कित पत्थरकी पटिया हो ॥ ६ ॥ ब्रह्माने सूर्यके लिये एक पहिएका रथ बनाया था तो उसने क्या फिर इस कामिनीके विशाल नितम्ब बनाकर अपनी पुरानी कारीगरीके अनुसार कामदेवके लिये भी एक ही पहिएका रथ बनानेका संकल्प किया है ? ॥७॥ मैं समझता हूँ कि जब इस नवेलीमें रोमावली रूपी डण्डा, नितम्बरूपी चाक और उदारता आदिका गुण (डोरी) तथा सुन्दरता-रूपी जल है ही तो निश्चय ही स्तन रूपी घड़ा बनानेवाले यौवन-रूपी कुम्हारके लिये इसके पास सभी सामग्री उपस्थित है ॥८॥ इस नवेलीके प्रतिदिन फैलनेवाले नितम्बपर कसी हुई यह तगड़ी प्रतिदिन फैलती हुई ऐसी प्रतीत होती है मानो वह कराह-कराहकर कह रही हो—'हाय मैं टूटी ! मैं टूटी !!' ॥९॥ जब विषयोंसे विमुख तथा अति शान्त ब्रह्माने नितम्बोंमें बड़ापन और भारीपन डालकर इनका आदर किया है

न्यासः। शान्तात्मनापि विहितं विश्वसृजा गौरवं यत्र ॥ १० ॥

जघनम्—अनङ्गरङ्गपीठोऽस्याः शृङ्गाररसवर्णविष्टरः। लावण्यसारसङ्घातः सा घना जघनस्थली ॥ १ ॥ तदीयजघनाभोगगरिमा विस्मयास्पदम्। दूरपातीपृषत्कोऽभूयेनानङ्गस्य साङ्गना ॥ २ ॥ तस्याः पद्मपलाशाक्ष्यास्तन्व्यास्तज्जघनं घनम्। दृष्टं सखीभिर्याभिस्ताः पुम्भावं मनसा ययुः ॥३॥ मुक्तेरपि प्रियतमाजघनोपभोगः श्रेयान्न मृग्यमिह वस्तुनि नः प्रमाणम्। यत्पश्यतायतदृशो रशनाकलापे मुक्ता अपि स्वयमहो पुनरेव बद्धाः ॥ ४ ॥ वपुरनुपमं नाभेरूर्ध्वं विधाय मृगीदृशां ललितललितैरङ्गन्यासैः पुरा रभसादिव। तदनु सहसा खिन्नेनेव प्रजापतिना भृशं पृथुलपृथुला स्थूलस्थूला कृता जघनस्थली ॥ ५ ॥

मदनमन्दिरम्—अङ्गेन केनापि विजेतुमस्या गवेष्यते किं चलपत्रपत्रम्। न चेद्विशेषादितरच्छदेभ्यस्तस्यास्तु कम्पस्तु कुतो भयेन ॥ १ ॥ जघनान्तराले विवरे विशाले ह्यधोमुखी तिष्ठति काऽपि वन्या। झुण्टालिझाटान्तमुखे पतन्तं दन्तैर्विना भक्षति चर्मदण्डम् ॥२॥

जघनोरुहा—गौरमुग्धवनितावराङ्के रेजुरुत्थिततनूरुहाङ्कुराः। तर्पणाय मदनस्य वेधसा स्वर्णशुक्तिनिहितास्तिला इव ॥ १ ॥

ऊरू—अस्यां मुनीनामपि मोदमूहे भृगुर्महान्यत्कुचशैलशीली। नानारदाह्लादि मुखं श्रितोरुर्व्यासो महाभारतसर्गयोग्यः ॥ १ ॥ ऊरुः कुरङ्गकदृशश्चञ्चलचेलाञ्चलो भाति। सपताकः कनकमयो विजयस्तम्भः स्मरस्येव ॥ २ ॥ ऊरुप्रकाण्डद्वितयेन तस्याः करः पराजीयत वारणीयः। युक्तं ह्रिया कुण्डलनच्छलेन गोपायति स्वं मुखपुष्करं सः ॥ ३ ॥ कदली कदली

तब विषयोंके प्रेमी लोग उन नितम्बोंसे क्यों न स्नेह करें ॥१०॥

पेड़ू : इस नायिकाका कठोर पेड़ू वास्तवमें कामदेवके नाटकका रङ्गमञ्च है, शृङ्गार रसका पलँग है तथा सुन्दरताका तत्त्व है ॥ १ ॥ उस नवेलीके पेड़ूकी चौड़ाईकी ऐसी आश्चर्यजनक महत्ता है कि उसके कारण यह नायिका कामदेवका दूरवेधी बाण बन गई है ॥ २ ॥ कमलकी पंखुड़ियोंके समान बड़ी-बड़ी आँखोंवाली उस पतली नायिकाके कठोर पेड़ूको जिन सखियोंने देखा वे मनमें तरसने लगीं कि 'हाय! हम पुरुष क्यों नहीं हुईं' कि इनका उपभोग हमें भी प्राप्त हो जाता' ॥ ३ ॥ 'इस प्रियतमाका जघन-भाग मुक्तिसे भी कहीं श्रेष्ठ है' इस सम्बन्धमें हमें प्रमाण नहीं ढूँढ़ना पड़ेगा क्योंकि इसकी यह विचित्र बात हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि मुक्त लोग (मोती) भी इस बड़ी-बड़ी आँखोंवालीकी तगड़ीमें स्वयं आकर बँध गए हैं ॥ ४ ॥ ब्रह्माने हरिणीके समान नेत्रोंवाली नायिकाओंका शरीर नाभिसे ऊपर तो अद्वितीय ढंगसे बनाकर उसमें अत्यन्त सुन्दर अंग सजा दिए किन्तु नाभिसे नीचे चौड़ी-चौड़ी तथा मोटी-मोटी जाँघें देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्माने थक जानेके कारण बेगार टाली हो ॥ ५ ॥

योनि : इस नवेलीका क्या कोई अंग (योनि) पीपलके पत्तेको जीतनेके लिये मचल उठा है? यदि यह बात न होती तो दूसरे पत्तोंकी अपेक्षा एकमात्र पीपलके पत्ते ही किसके डरसे निरन्तर काँपते रहते ॥ १ ॥ पेड़ूके बीचमें एक बड़ी गुफामें जो कोई अनोखी नीचे मुँह लिए बैठी है वह झाड़ियोंके जङ्गलके मुँहपर आ पड़नेवाले चामके डण्डेको विना दाँतके ही खा डालती है ॥ २ ॥

योनिके बाल : इस गोरी नवेलीकी योनिपर निकलते हुए बालके अंकुर ऐसे सुन्दर जान पड़ते हैं मानो ब्रह्माने कामदेवका तर्पण करनेके लिये सोनेकी सीपी (योनि) में काले तिल ला रक्खे हों ॥ १ ॥

टाँगें : ऐसा जान पड़ता है कि इस नवेलीकी टाँगें देखकर बड़े-बड़े मुनियोंको भी भ्रम हो गया होगा क्योंकि श्रेष्ठ भृगुमुनि (अत्यन्त ढालूपन) इसके स्तनरूपी पहाड़पर रहते हैं, इसका मुख नारद मुनिको (अनेक दाँतोंके कारण) आनन्द देता है और महाभारतकी रचना करनेवाले व्यासमुनि इसका सहारा लेते हैं (जाँघें अत्यन्त सुन्दर कामक्रीड़ाके लिये विस्तृत हैं) ॥ १ ॥ टाँगोंपर उड़ते हुए साड़ीके पल्ले हरिणीकी आँखोंके समान नेत्रोंवाली नवेलीके शरीरपर ऐसी शोभा दे रहे हैं मानो कामदेवकी विजयके सुनहरे खम्भोंपर पताका फहरा रही हो ॥ २ ॥ इस नवेलीके टाँग-रूपी खम्भेसे हाथीकी सूँड़ हारकर लजा गई है इसलिये वह अपनी सूँड़के आगेका भाग बार-बार मोड़कर छिपाता जाता है, यह ठीक ही है ॥३॥ केला केला ही है अर्थात् जड़ मात्र रह गया है, करभ (कानी उँगलीकी ओरका हथेलीका भाग) भी करभ ही है अर्थात् बहुत छोटा है और हाथीकी सूँड़ भी हाथीकी सूँड़ ही है

करभः करभः करिराजकरः करिराजकरः। भुवनत्रितयेऽपि विभर्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः ॥ ४ ॥ तरुमूरुयुगेण सुन्दरी किमु रम्भां परिणाहिना परम्। तरुणीमपि जिष्णुरेव तां धनदापत्यतपःफलस्तनीम् ॥ ५ ॥ नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कदलीविशेषाः। लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानवाह्याः ॥ ६ ॥ पश्यन्हतो मन्मथवाणपातैः शक्तो विधातुं न निमील्य चक्षुः। ऊरू विधात्रा हि कथं कृतौ तौ विन्यासवत्याः सुमतेर्वितर्कः ॥ ७ ॥ मन्ये तदूरू सम्भाव्य हस्तसर्वस्वहारिणौ। वहन्त्यस्पृश्यताहेतोर्मातङ्गत्वं मतङ्गजाः ॥ ८ ॥ रम्भापि किं चिह्नयति प्रकाण्डं न चात्मनः स्वेन न चैतदूरू। स्वस्यैव येनोपरि सा ददाना पत्राणि जागर्त्यनयोर्भ्रमेण ॥ ९ ॥ लम्भिताः कदलीस्तम्भास्तदूरुभ्यां पराभवम्। अत्यन्तमृदुभिर्लब्धो जडैः क जयडिण्डिमः ॥ १० ॥ विधाय मूर्धानमधश्चरं चेन्मुञ्चेत्तपोभिः स्वमसारभावम्। जाड्यञ्च नाश्चेत्कदली वलीयस्तदा यदि स्यादिदसूरुचारुः ॥ ११ ॥

जंघे—क्रमोद्गता पीवरताधिजङ्घं वृक्षाधिरूढं विदुषी किमस्याः। अपि भ्रमीभङ्गिभिरावृताङ्गं वासो लतावेष्टितकप्रवीणम् ॥ १ ॥ जङ्घे तदीये सन्तापं यज्जनस्यानुरागिणः। जनयाञ्चक्रतुस्तीव्रं तत्र हेतुर्विलोमता ॥ २ ॥ प्रसृते प्रसृते तस्याः मुग्धानामिति का कथा। तरुणानामपि प्रज्ञां प्रवध्नीत इमे यतः ॥ ३ ॥ लीलागतिस्तत्र निसर्गसिद्धा मत्तो न दन्ती मुषितो न हंसः। इतीव जङ्घायुगलं यदीयश्चक्रे तुलाकोट्यधिरोहणानि ॥ ४ ॥ वृत्तानुपूर्वे च न चातिदीर्घे जङ्घे शुभे सृष्टवतस्तदीये। शेषाङ्गनिर्माणविधौ विधातुर्लावण्य उत्पाद्य

अर्थात् खुरदरी है। तात्पर्य यह कि इस मृगनयनी नवेलीकी दोनों टाँगोंकी बराबरी संसारमें कोई नहीं कर सकता ॥४॥ उस नवेलीने अपनी दोनों मोटी-मोटी टाँगोंसे केवल रम्भा (केले) को ही नहीं वरन् कुबेरके पुत्र नलकूबरकी तपस्या ही जिस रम्भाके स्तन बनकर फले हैं उस अप्सराको भी जीत लिया है ॥ ५ ॥ हाथीकी सूँड़ बहुत रूखी होती है और केलेके खम्भे अत्यन्त शीतल होते हैं इसलिये संसारमें बहुत सुन्दर होते हुए भी वे इस नवेलीकी टाँगके बाहरी रूपकी ही बराबरी कर पाए, गुणोंकी नहीं ॥ ६ ॥ इस नवेलीकी जो सखी उसके शरीरपर चित्रकारी कर रही है उस बुद्धिमान् स्त्रीके मनमें यह शंका हुई कि जब इस नवेलीका ऊपरी भाग बनाकर ब्रह्मा कामके वाणोंसे पीड़ित होकर आँखें मूँद बैठे और आगे कुछ न बना पाए तब ये नवेलीकी टाँगें बन कैसे गईं ॥ ७ ॥ हाथियोंने जब देखा कि इस नवेलीकी टाँगें हमारे सूँड़की सुन्दरता हर ले जायँगी तब वे लाजके मारे यह सोचकर मातङ्ग (चाण्डाल) बन गए कि कि हम अछूत होकर समाजके बाहर ही रहने लग जायँ ॥ ८ ॥ रम्भा (केले) का पेड़ भी क्या इस नवेलीकी टाँग और अपने खम्भेको एक ही समझ बैठा है क्योंकि दोनोंके ऊपर पत्र (पत्ते तथा चित्रकारी) जो दिखाई दे रहे हैं उससे उसे भ्रम हो गया है कि इन दोनोंमें हमारा खम्भा कौन सा है ॥ ९ ॥ यदि उस नवेलीकी टाँगोंसे केलेके खम्भे हार खा गए तो आश्चर्य क्या है क्योंकि अत्यन्त कोमल और जड़ (शीतल और मूर्ख) लोकोंको विजयका यश मिलता ही कहाँ है ॥ १० ॥ यदि केला अपना सिर नीचा करके अर्थात् उलटा होकर तपस्या करके अपनी निःसारता तथा अत्यन्त जड़ता (मूर्खता और शीतलता) छोड़ दे तब कहीं वह इसकी टाँगोंके समान हो पा सकता है ॥ ११ ॥

जाँघें : इस नवेलीकी जाँघोंमें क्रमसे ऊपरको जो मोटाई बढ़ रही है वह क्या वृक्षाधिरूढ (उठते हुए पतिके गलेमें हाथ डालकर उसकी गोदमें चढ़ना) जानती है और इसके चारों ओर लिपटनेवाला वस्त्र क्या लतावेष्टितक (बैठे हुए पतिको सोती हुई स्त्री द्वारा लपेटा जाना) सीख चुका है ॥ १ ॥ इस नवेलीकी जाँघोंने रसिकोंके मनमें जो भयंकर जलन उपजा दी है उसका कारण है इसकी विलोमता (उल्टी चाल, बाल न होना) ॥ २ ॥ इस नायिकाकी जिन जाँघोंने फैलते-फैलते बड़े-बड़े जवानोंकी बुद्धितक बाँध दी है वे यदि भोले-भाले लोगोंको फँसा लेती हों तो कौन बड़ी बात है ॥ ३ ॥ 'इस नवेलीकी यही चाल ही है, इसे न तो मतवाला हाथी समझो, न यह समझो कि इसने हंसकी गति चुराई है', यही कारण है कि इसकी जाँघें तुलाके समान बना दी गई है कि जिसे समानता करनी हो वह आकर अपनेको तौल ले ॥ ४ ॥ ब्रह्माने जब इस नवेलीके गोलढलवाँ और ठीक मोटाईवाली जाँघें बना दीं तब वे इतनी सुन्दर बन गईं कि अन्य अंगोंको उसी अनुपातमें सुन्दर बनानेके लिये उन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ा ॥ ५ ॥ सोनेकी घुँघरूदार तगड़ीके साथ उसकी दोनों जाँघें ऐसी सुन्दर जान

श्वास यत्नः ॥ ५ ॥ हेममञ्जीरमालाभ्यां भाति जङ्घालताद्वयम्। लावण्यशाखिनः स्थानं कुङ्कुमेनेव वेष्टितम् ॥ ६ ॥

गुल्फौ—अरुन्धतीकामपुरन्ध्रिलक्ष्मीजम्भद्विपद्दारनवाम्बिकानाम्। चतुर्दशीयं तदिहोचितैव गुल्फद्वयाप्ता यदद्दश्यसिद्धिः ॥ १ ॥

चरणौ—अत्यपूर्वस्य रागस्य पूर्वपक्षाय पल्लवाः। पद्मानि पादयुग्मस्य प्रत्युदाहरणानि च ॥ १ ॥ अननुरणन्मणिमेखलमविरलसिञ्जानमञ्जुमञ्जीरम्। परिसरणमरुणचरणे रणरणकमकारणं कुरुते ॥ २ ॥ अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ। आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम् ॥ ३ ॥ अमूल्यस्य मम स्वर्णतुलाकोटिद्वयं कियत्। इति कोपादिवाताम्रं पादयुग्मं मृगीदृशः ॥४॥ अस्याः पदौ चारुतया महान्तावपेक्ष्य सौक्ष्म्याल्लवभावभाजः। जाता प्रवालस्य महीरुहाणां जानीमहे पल्लवशब्दलब्धिः ॥ ५ ॥ चरणकमलं तदीयं लाक्षाबालातपेन संवलितम्। अध्यास्त भृङ्गमालावलिभिर्मणिखचितनूपुरव्याजात् ॥ ६ ॥ जगद्वधूमूर्धसु रूपदर्पाद्यदेतयाधायि पदारविन्दम्। तत्सान्द्रसिन्दूरपरागरागैर्द्वयं प्रवालप्रबलारुणं तत् ॥ ७ ॥ जाग्रतः कमलाल्लक्ष्मीं यज्जग्राह तदद्भुतम्। पादद्वन्द्वस्य मत्तेभगतिस्तेये तु का स्तुतिः ॥ ८ ॥ दशकैरववान्धवान्दधानौ जडसंसर्गविमुक्तिसावधानौ। चरणौ नलिनेन तोलयन्तः कथमस्याः कवयो न यान्ति लज्जाम् ॥ ९ ॥ दृश्यन्ते मानसोत्तंसा राजहंसाः क्वचिद्यदि। गतौ चरणयोस्तस्याः प्रच्यते यावदन्तरम् ॥ १० ॥ नितम्बपीड्यमानेन पादयुग्मेन सुभ्रुवः। कृता भ्रुकुटिभङ्गीव नीलनूपुरमालया ॥ ११ ॥ प्रियासखीभूतवतो मुदेदं व्यधाद्विधिः साधुदृशत्वमिन्दोः। एतत्पदच्छद्मसरागपद्मसौभाग्यभाग्यं कथमन्यथा स्यात्

पड़ रही हैं मानो सुन्दरतारूपी वृक्षकी जड़में चारों ओर केसरकी बाड़ लगा दी गई हो ॥ ६ ॥

घुट्टी : अबतक तो अरुन्धती, रति, लक्ष्मी, इन्द्राणी और नव दुर्गा इन तेरह देवियोंके ही अचानक अन्तर्धान (आँखसे ओझल) होनेकी बात सुनी जाती थी पर यह घुट्टी चौदहवीं देवी आ गई जो दिखाई नहीं पड़ रही है। ठीक भी है क्योंकि चतुर्दशीमें जप करने वालेको सिद्धि भी मिल जाती है ॥ १ ॥

पैर : इस नवेलीके पैरोंकी अनोखी ललाईकी बराबरीके लिये पत्तोंका रङ्ग ही उदाहरणमें दिया जाता है किन्तु वास्तवमें उनकी समता यदि कोई कर सकता है तो बस कमल ही कर सकता है ॥१॥ हे लाल-लाल पैरोंवाली! तुम्हारी जिस चालके साथ मणिकी तगड़ी और सुन्दर पायल निरन्तर बजते जा रहे हैं वह बिना कारण ही मनमें हड़बड़ी उपजाए दे रही है ॥ २ ॥ चलते समय जब इस नवेलीके पैर धरतीपर पड़ते हैं तब इसके उठे हुए अँगूठेके नखकी चमकसे भूमिपर बिखरी हुई ललाईसे स्थलकमलकी शोभा भी फीकी दिखाई पड़ने लगती है ॥ ३ ॥ इस नवेलीके पैर मानो इस क्रोधसे लाल हो गए हैं कि मुझ अमूल्यकी तुलनाके लिये दोनों प्रकारका स्वर्ण क्यों लाया जाता है, वे मेरे आगे हैं क्या ? ॥ ४ ॥ इस नवेलीके सुन्दरतामें बहुत बड़े-चढ़े पैरोंके आगे पेड़ोंके नये पत्ते बहुत लव (नीचे) हैं इसीलिये हम समझते हैं कि पद (पैर) से लव (हीन) होनेके कारण ही वे 'पल्लव' कहे जाने लगे हैं ॥ ५ ॥ महावरसे रँगे हुए और मणिसे जड़े बिछुए पहने हुए उस नवेलीके पैर ऐसे कमलोंके समान जान पड़ते हैं जिनपर प्रातःकालकी धूप पड़ रही हो और भौंरे घिरे हुए हों ॥ ६ ॥ इस नवेलीके पैरकी ललाई नई कोंपलोंसे भी अधिक देखकर जान पड़ता है मानो इसने अपनी सुन्दरताके अभिमानसे संसारकी सभी स्त्रियोंके सिरपर जो अपना चरणकमल रख दिया उससे स्त्रियोंकी माँगपर लगे हुए घने सिन्दूरकी ललाई इनमें लिपट गई हो ॥ ७ ॥ इस नवेलीने यदि मतवाले हाथीकी चाल छीन ली तो कौन बड़ी बात है। पर आश्चर्य तो यह है कि इसके दोनों पैरोंने खिले हुए तथा सावधान कमलकी भी सारी शोभा छीन ली ॥ ८ ॥ दस उँगली-रूपी कुमुद-बन्धुओंको साथमें रखनेवाले तथा जड़ (मूर्ख) से दूर रहनेवाले इसके पैरोंकी उपमा जिन कवियोंने कमलसे दी है उन्हें लज्जा क्यों नहीं आती, क्योंकि कमल तो अकेला ही निकलता है और जड़ (पानी) से ही सम्पर्क भी रखता है ॥ ९ ॥ यदि कहीं मानसरोवरकी शोभा बढ़ानेवाले राजहंस मिल जाते तो उनसे पूछा जाता कि तुम्हारी और इस नवेलीकी चरणोंकी चालमें क्या अन्तर है (पर वे तो लाजके मारे सामने ही नहीं आते) ॥ १० ॥ नितम्बोंके भारसे बोझिल और सुन्दर भौंहोंवाली नवेलीके दोनों पैर नीलमके बिछुओंके साथ ऐसे जान पड़ते हैं मानो वे पैर भी भौंहें टेढ़ी किए बैठे हों ॥११॥ ब्रह्माने इस प्यारीका मुँह चन्द्रमासे बनाकर

॥ १२ ॥ यानेन तन्व्या जितदन्तिनाथौ पदाब्जराजौ परिशुद्धपार्ष्णी। जाने न शुश्रूषयितुं स्वमिच्छू नतेन मूर्ध्ना कतरस्य राज्ञः ॥ १३ ॥ स्तनभारोऽत्र वक्त्रेन्दुचन्द्रिकावरणं मम। इति तत्पादयोर्लग्ना वेद्मि प्राङ्गणपद्मिनी ॥ १४ ॥

पादाङ्गुल्यः—एष्यन्ति यावद्गणनाद्दिगन्तान्नृपाः स्मरार्त्ताः शरणे प्रवेष्टुम्। इमे पदाब्जे विधिनापि सृष्टास्तावत्य एवाङ्गुलयोऽत्र रेखाः ॥ १ ॥

नखाः—तत्पादनखरत्नानां यदलक्तकमार्जनम्। इदं श्रीखण्डलेपेन पाण्डुरीकरणं विधोः ॥ १ ॥ तद्वक्त्रं नेत्रपद्मं प्रकटितमसकृत्स्पर्धितं यन्मयैतज्जातं तस्मात्कृशत्वं ग्रहणमपि ततो जायमानः कलङ्कः। तत्सर्वं क्षम्यतां मे पुनरपि न करोम्येवमुक्त्वा तु तस्या गाढं लग्नः शशाङ्कश्चरणनखमणिच्छद्मना पादयुग्मम् ॥ २ ॥ तस्याः पादनखश्रेणिः शोभते किल सुभ्रुवः। रत्नावलीव लावण्यरत्नाकरसमुद्गता ॥ ३ ॥ प्रसीद मैवं परिभूदखण्डं नाराधिपं ते वदनामृतांशुः। इतीन्दुमुख्याः पतितेव पादे ताराततिर्दीप्तनखच्छलेन ॥ ४ ॥

समग्रस्त्रीस्वरूपवर्णनम्

अकृशं नितम्बभागे क्षामं मध्ये समुन्नतं कुचयोः। अत्यायतं नयनयोर्मम जीवितमेतदायाति ॥ १ ॥ अङ्गं भूषणनिकरो भूषयतीत्येष लौकिको वादः। अङ्गानि भूषणानां कामपि सुषमामजीजनंस्तस्याः ॥ २ ॥ अधरे मधुरा सरस्वती हृदि गङ्गा तदधः कलिन्दजा। शिरसि प्रतिभाति चारुवेणी कथमेणीनयना न तीर्थराजः ॥ ३ ॥ अलीकरूपो यदि मध्यभागः पयोधराकारभृतश्च केशाः। उत्सङ्गशोभापि सरोरुहाक्ष्याः करस्य शोभां कलयेन्न कस्मात् ॥ ४ ॥ अव्याजसुन्दरीं तां

चन्द्रमाका बड़ा कल्याण किया नहीं तो उसे लाल कमलों (चरणों) का सहवास प्राप्त कहाँसे होता ॥ १२ ॥ इस नायिकाके चरणरूपी राजा कमल, अपने यान (चढ़ाई, चाल) से गजराजोंको जीतते हुए तथा अपनी शुद्ध (निष्कपट, सुन्दर) पार्ष्णि (पीछेकी सेना, एड़ो) लेकर न जाने किस राजाके झुके हुए मस्तकसे अपनी सेवा कराना चाह रहे हैं ॥ १३ ॥ इस नवेलीके दोनों पैर ऐसे जान पड़ते हैं मानो दो स्थल-कमलिनियों उसके पैरोंमें यह सोचकर आ छिपी हों कि इसके मुखरूपी चन्द्रमाकी चाँदनी इसके बड़े-बड़े स्तनोंसे रुकनेके कारण हमतक नहीं पहुँच पावेगी ॥ १४ ॥

पैरकी उँगलियाँ : इस नवेलीके पैरोंमें ब्रह्माने दस उँगलियोंकी रेखा मानो इसलिये बना दी हैं कि दसों दिशाओंके अनेक कामपीड़ित राजा इन चरणोंकी शरण लेंगे ॥ १ ॥

नख : उस नवेलीके पैरोंके नखरूपी रत्नोंपर लगा हुआ महावर ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमाको लाल चन्दनसे रँग दिया गया हो ॥ १ ॥ इस नवेलीके पैरोंके नख ऐसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमा यह कहता हुआ उसके पैरोंसे लिपट गया है कि नेत्ररूपी कमलसे युक्त आपके मुखचन्द्रसे मैंने बार-बार बराबरी करनेके फेरमें मैं दुबला भी हो गया हूँ (नख पतले हैं), मुझपर राहु भी आक्रमण करने लगा (नख बढ़नेके कारण उसमें कालिमा आ गई और ग्रहणरूपी कलङ्क भी आ गया) अतः अब आप मेरा अपराध क्षमाकर दीजिए अब मैं फिर ऐसा कभी नहीं करूँगा ॥ २ ॥ उस सुन्दर भौंहोंवाली नवेलीके पैरोंके नख ऐसे सुन्दर जान पड़ रहे हैं मानो सुन्दरताके समुद्रसे निकली हुई रत्नोंकी पाँत हो ॥ ३ ॥ तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमासे हारकर चन्द्रमा अपने साथ तारोंको लेकर जो तुम्हारे पैरोंसे लिपटा है वे ही नखोंके रूपमें दिखाई पड़ रहे हैं, अब तो तुम प्रसन्न हो जाओ ॥ ४ ॥

स्त्रीके पूरे स्वरूपका वर्णन

यह मोटे नितम्बोंवाली, पतली कमरवाली, ऊँचे उठे हुए स्तनोंवाली और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली मेरी प्राणप्रिया ही आ रही है ॥ १ ॥ यह सब कहनेकी बात है कि आभूषणोंसे उसके अङ्गोंकी शोभा बढ़ती है। सच्ची बात तो यह है कि उसके अङ्गोंसे ही आभूषणोंमें चमक आती है ॥ २ ॥ जब इस मृगनयनीके अधरमें मधुर सरस्वती है, हृदयमें गङ्गा है, उसके नीचेकी रोमावली यमुना है और सिरपर सुन्दर वेणी शोभा दे रही है तब उसे तीर्थराज त्रिवेणी कहनेमें क्या सङ्कोच है ॥ ३ ॥ एक नायिका अपनी कमरपर हाथ रक्खे खड़ी है और उसके सिरके बाल स्तनोंतक लटके हुए हैं। साथ ही उसकी कमर इतनी पतली है कि दिखाई नहीं देती इसीपर कवि कहता है—'यद्यपि इसकी कमर शून्य-रूप है तब भी कोई चिन्ताकी बात नहीं क्योंकि इसके स्तनोंकी गोलाईका भार बालोंने सँभाल लिया है और जब बालोंने इतना काम कर ही लिया है तब इस कमल-नयनीके हाथ नितम्बोंकी शोभा क्यों न बढ़ावें ॥ ४ ॥ उस स्वाभाविक सुन्दरीको अपने

विज्ञानेनाद्भुतेन योजयता। उपकल्पितो विधात्रा वाणः कामस्य विषदिग्धः ॥ ५ ॥ अस्याश्चेदलकावली कृतमलिश्रेणीभिरेणीदृशः सौन्दर्यं यदि चक्षुषोस्तरलयोः किं मन्मथस्यायुधैः। का प्रीतिः कनकारविन्दमुकुले पीनौ स्तनौ चेदतो मन्ये काचिदियं मनोभवकृता माया जगन्मोहिनी ॥ ६ ॥ आलपति पिकवधूरिव पश्यति हरिणीव चलति हंसीव। स्फुरति तडिल्लतिकेव स्वदते तुहिनांशुलेखेव ॥ ७ ॥ आलोक्य चिकुरनिकरं सततं सुमनोऽधिवासयोग्यं ते। कामो निजं निषङ्गं परिवृत्य परामृशति साशङ्कः ॥ ८ ॥ इदं वक्त्रं साक्षाद्विरहितकलङ्कः शशधरः सुधाधाराधारश्चिरपरिणतं विम्बमधरः। इमे नेत्रे रात्रिन्दिवमधिकशोभे कुवलये तनुर्लावण्यानां जलधिरवगाहे सुखतरः ॥ ९ ॥ इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमदलं श्यामेव हेमप्रभा। कार्कश्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतं सुन्दर्याः पुरतश्च हन्त शिखिनां वर्हाः सगर्हा इव ॥ १० ॥ ऊरुद्वयं मृगदृशः कदलेश्च काण्डौ मध्यश्च वेदिरतुलौ स्तनयुग्ममस्याः। लावण्यवारिपरिपूरितशातकुम्भकुम्भौ मनोजनृपतेरभिषेचनाय ॥ ११ ॥ ऊर्ध्वं नीरदवृन्दमैन्दवमिदं विम्बं त्वधो निर्मितं व्योम्नः पल्वलचित्रितस्य निहितौ शैलावुपर्युन्नतौ। किञ्चाधः पुलिनोच्चयस्य कदलीकाण्डाववारोपितौ तन्मन्ये चतुरस्य पुष्पधनुषः सर्गोऽयमन्यादृशः ॥ १२ ॥ एतस्याः स्तनपद्मकोरकयुगं यस्याननेन्दोः सितज्योत्स्नाभिर्न भजत्यदो मृगदृशः शङ्के विकासं पुनः। तस्मिँल्लोचनपङ्कजं विकसितं भ्रूभृङ्गसंसेवितं स्वान्ते संशयमातनोति सुतरामेतन्ममैवासकृत् ॥ १३ ॥ कमलशरधिरम्भासैकतानुक्रमाढ्यं कनककलशभाराक्रान्तसौदामिनीकम्। किसलयितमृणालं हारगर्भप्रवालं कुवलयितशशाङ्कं कौशलं

अद्भुत कौशलसे बनाकर ब्रह्माने मानो कामदेवका बाण विषमें बुझाकर धर दिया हो ॥ ५ ॥ इस कमलनयनीके केशोंके सम्मुख भौंरोंके समूहको कौन पूछता है, इसकी चञ्चल चितवनके सौन्दर्यके आगे कामदेवके बाणोंकी गिनती ही क्या है, इसके मोटे मोटे स्तनोंके सामने सोनेके कमलकी कलियोंसे कोई क्या प्रेम करेगा! अतः इसे देखकर तो मुझे ऐसा जान पड़ने लगा है कि यह संसारको मोहित करनेवाली कामदेवकी रची हुई कोई माया है ॥ ६ ॥ वह नवेली कोयलके समान बोलती है, हरिणीके समान देखती है, हंसीके समान पग धरती है, बिजलीके समान चमकती है और चन्द्रमाकी रेखाके समान रसीली लगती है ॥ ७ ॥ उसके बालोंमें फूल और सुन्दर मन बसे देखकर और अपने तूणीरमें यही गुण न पाकर घबराहटके मारे कामदेव अपने तूणीरको उलटकर ढूँढ़ने लगा कि कहींसे कोई ऐसा बाण निकल आवे जो इसके केशोंसे भी अधिक प्रभावशाली हो ॥ ८ ॥ इस नवेलीका मुख प्रत्यक्ष कलङ्क-रहित चन्द्रमा है, इसके ओठ अमृतकी धारासे भरे हुए पके बिम्बाके समान हैं, इसके नेत्र दिनरात अत्यन्त शोभा देनेवाले नीले कमल हैं और इसका शरीर भी लावण्य (सुन्दरता, नमकीनपन) का समुद्र है जिसमें स्नान करनेसे अत्यन्त सुख मिलता है ॥ ९ ॥ उस सुन्दरीके मुखके सामने चन्द्रमा काला लगता है, उसकी आँखोंके आगे हरिणियोंकी चितवन रूखी जान पड़ती है, उसके ओठोंके सामने मूँगेकी लालिमा फीकी दिखाई पड़ती है, उसके गोरे शरीरके आगे सोना भी साँवला दिखाई देता है, उसकी मधुर वाणीके सम्मुख कोयलकी कूक कानको कड़वी लगती है और उसके केशके सामने मोरोंके पङ्ख अत्यन्त तुच्छ जान पड़ते हैं। इस प्रकार उस सुन्दरीके आगे अङ्गोंके सब उपमान भोंड़े जान पड़ते हैं ॥ १० ॥ उस मृगनयनीके दोनों पैर केलेके खम्भे हैं, उसकी कमर ही यज्ञकी वेदी है, तथा उसके अद्वितीय स्तन ही राजा कामदेवके अभिषेकके लिये सौन्दर्यरूपी जलसे भरे हुए सोनेके दो घड़े हैं ॥ ११ ॥ यह क्या है जिसके ऊपर बादलोंका समूह (केश) है, फिर उसके नीचे आकाशकी तलैया (हृदय) पर दो ऊँचे-ऊँचे पर्वत रक्खे हुए हैं, इस द्वीप (नितम्ब) के नीचे दो केलेके खम्भे (टाँगें) लगे हुए हैं इसे देखकर मैं तो समझता हूँ कि यह चतुर कामदेवकी कोई निराली ही रचना है ॥ १२ ॥ इस मृगनयनीकी स्तनरूपी कमलकी कलियाँ उसके मुखरूपी चन्द्रमाकी चाँदनी पड़नेपर भी खिल नहीं रही हैं, उलटे उसके मुखरूपी चन्द्रमामें भौंहरूपी भौंरोंसे घिरे हुए नेत्ररूपी कमल खिले हुए हैं। यह सब उलट-पलट देखकर मेरे मनमें बार-बार न जाने क्यों बड़ा सन्देह होता जा रहा है ॥ १३ ॥ यह ब्रह्माका कुछ विचित्र कौशल है कि उसने क्रमसे कमल (चरण), तूणीर (पिण्डली), केलेका खम्भा (जाँघें), नदीका उठा हुआ तट (नितम्ब), सोनेके कलशों (स्तनों) के बोझसे दबी हुई बिजली (नायिकाकी

सा विधातुः ॥ १४ ॥ करे वेणीमेणीसदृशनयनास्नानविरतौ दधाना हर्म्याग्रे हरनयनतेजोहुतमपि । इयं मुग्धा दुग्धाम्बुधिवहलकल्लोलसदृशा दृशा वारंवारं मनसिजतरुं पल्लवयति ॥ १५ ॥ कर्णाक्षिदन्तच्छदबाहुपाणिपदादिनः स्वाखिलतुल्यहेतुः । उद्वेगभागद्वयताभिमानादिहैव वेधा व्यधित द्वितीयम् ॥ १६ ॥ कर्णारुन्तुदमेव कोकिलरुतं तस्याः श्रुते भाषिते चन्द्रे लोकरुचिस्तदाननरुचेः प्रागेव सन्दर्शनात् । चक्षुर्मीलनमेव तन्नयनयोरग्रे मृगीणां वरं हैमी वल्ल्यपि तावदेव ललिता यावन्न सा लक्ष्यते ॥ १७ ॥ कर्णोत्सङ्गविसर्पिणी नयनयोः कान्तिर्वतंसोत्पलं लाक्षासम्भ्रमनिर्व्यपेक्षमधरं लावण्यमेवाश्रुति । हारोऽस्याः स्मितचन्द्रिकैव कुचयोरङ्गप्रभाकञ्चुकी तन्व्याः केवलमङ्गभारमधुना मन्ये परं भूषणम् ॥ १८ ॥ कलयति कुवलयमालाललितं कुटिलः कटाक्षविक्षेपः । अधरः किसलयलीलामाननमस्याः कलानिधिविलासम् ॥ १९ ॥ कार्त्स्न्येन निर्वर्णयितुं च रूपमिच्छन्ति तत्पूर्वसमागतानाम् । न तु प्रियेष्वायतलोचनानां समग्रपातीनि विलोचनानि ॥ २० ॥ किं तारुण्यतरोरियं रसभरोद्भिन्ना नवा वल्लरी वेलाप्रोच्छलितस्य किं लहरिका लावण्यवाराम्निधेः । उद्गाढोत्कलिकावतां स्वसमयोपन्यासविश्रम्भिणः किं साक्षादुपदेशयष्टिरथवा देवस्य शृङ्गारिणः ॥ २१ ॥ गतिर्वेणी च नागेन वपुरूरू च रम्भया । पाणी प्रवालैरोष्ठौ च यस्यास्तुल्यत्वमाययुः ॥ २२ ॥ गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता । पादाभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥ २३ ॥ चक्षुर्मेचकमम्बुजं

छाती), पत्तोंवाले कमल (उँगलियोंसे युक्त भुजाएँ), हारको भीतर बन्द किए हुए मूँगा (लाल ओठोंके बीच दाँतोंकी पंक्ति) और कमल धारण किए हुए चन्द्रमा (आँखोंके साथ मुख) बना दिया ॥ १४ ॥ इस भोली-भाली मृगनयनीने स्नान करके छतपर पहुँचकर जब अपने हाथसे अपनी चोटी पकड़ी और क्षीर-सागरकी विशाल लहरके समान अपनी चितवन चलाई तब शङ्करजीके नेत्रकी अग्निसे भस्म हुए कामदेवरूपी वृक्षमें नये अँकुए फूटने लगे ॥ १५ ॥ ब्रह्माने इस (दमयन्ती) के शरीरमें पहले एक-एक कान, आँख, ओठ, बाँह, हाथ और पैर बनाए । वे इतने सुन्दर बने कि उन्होंने अपने समान दिखाई पड़नेवाली सब वस्तुओंको अपनी शोभासे हरा दिया । इससे ब्रह्माजीको इतना अभिमान हुआ कि वे उसी प्रकारके सुन्दर अङ्ग बनानेके फेरमें पड़कर ऐसी सुध-बुध भूले कि उन्होंने वैसे ही एक-एक अङ्ग बनाए तो सही किन्तु झोंकमें वे अङ्ग उसीके शरीरमें लगा दिए अर्थात् उसके कान, आँख, ओठ, बाँह, हाथ और पैर उसके ही कान, आँख, ओंठ, बाँह, हाथ और पैरके समान हैं, कहीं उनकी समानता नहीं हो सकती ॥ १६ ॥ उस नवेलीकी बोली एक बार सुन लेनेपर कोयलकी कूक कान फोड़ने लगती है और चन्द्रमा भी लोगोंको तभीतक अच्छा लगता है जबतक लोग उसके मुखकी शोभा नहीं देख लेते । उसकी आँखें इतनी रसीली हैं कि उनके आगे हरिणियोंको अपनी आँखें मूँद लेनी चाहिएँ और सोनेकी लता भी तभीतक भली जान पड़ती है जबतक यह नवेली आँखोंके आगे नहीं आ जाती ॥ १७ ॥ इस नवेलीकी कानोंतक फैली हुई आँखोंकी झलक ही कानको शोभित करनेवाला कमल है, उसके ओठ स्वभावसे ही इतने सुन्दर लाल हैं कि उन्हें लाखसे रँगनेकी आवश्यकता ही नहीं है, इसकी मुस्कराहटकी फैली हुई चमक ही इसके स्तनोंका हार है, इसके शरीरकी दमक ही इसकी चोली है इसलिये मैं तो यह मानता हूँ कि इसके जो अन्य आभूषण हैं वे सब शरीरपर बोझ ही हैं ॥ १८ ॥ उस नवेलीकी तिरछी चितवन नीले कमलके समान मनोहर है, उसके ओठ नई कोंपलोंके समान लाल और पतले हैं और उसका मुख चन्द्रमाके समान आनन्द दे रहा है ॥ १९ ॥ अपने पतिके साथ पहले-पहल समागमके समय स्त्रियाँ अपने पतिके सब अङ्गोंकी सुन्दरता भली भाँति देखना तो चाहती हैं किन्तु उन बड़ी-बड़ी आँखोंवाली नायिकाओंकी दृष्टि संकोचके मारे अपने पतियोंपर पूरी पड़ भी तो नहीं पाती ॥ २० ॥ नवेलीके शरीरको देखकर कवि कल्पना कर रहा है कि यह नवेली यौवनरूपी वृक्षकी रसभरी मञ्जरी है या कगारतक लहराते हुए सौन्दर्य-सागरकी लहर है या अपने नियमोंको पूरा पालन करानेवाले कामदेवकी वह छड़ी है जिससे वह रसिकोंको शिक्षा देता रहता है ॥ २१ ॥ इस नवेलीके बाल और चोटी तो सर्प जैसे, शरीर और जाँघें केलेके खम्भे जैसी और इसकी हथेलियाँ और ओठ मूँगेके समान हो चले हैं ॥ २२ ॥ अपने स्तनोंके बोझसे (गुरु) भारी और मुखरूपी चन्द्रमाके कारण दमकती हुई अपने पोखराजके समान चरणोंसे वह नवेली रत्नमयी-सी जान पड़ती है ॥ २३ ॥ इस नवेलीकी आँखोंकी शोभा नीले कमलको हराए डाल रही है, चन्द्रमा इसके मुखका मित्र है, कामदेवका

विजयते वक्त्रस्य मित्रं शशी भ्रूसूत्रस्य सनाभि मन्मथ धनुर्लावण्यपण्यं वपुः। लेखा कापि रदच्छदे च सुतनोर्गात्रे च तत्कामिनीमेनां वर्णयिता स्मरो यदि भवेद्वैदग्ध्यमभ्यस्यति ॥ २४ ॥ जानीमो वदनं सरोरुहदृशो निर्माय पश्यन्मुहुर्हृष्यन्कामकठोरपावकशिखासन्तापितः पद्मभूः। रम्भामूरुतटीं स्तनं रसघटीं पीयूषवीचीं वचो बाहू बालबिसं करं किसलयं नाभीं सरो निर्ममे ॥ २५ ॥ जानीमो वयमासनस्य कमले तस्या मुखेन्दोस्त्विषा सङ्कोचं समुपागते स भगवान्दुःस्थः सरोजासनः। भुग्नं भ्रूलतिकायुगं विहितवान्वक्रे दृशौ सृष्टवान्मध्यं विस्मृतवान्कचाँश्च कुटिलान्वामभ्रुवः सृष्टवान् ॥ २६ ॥ जिघ्रत्याननमिन्दुकान्तिरधरं बिम्बप्रभा चुम्बति स्प्रष्टुं वाञ्छति चारुपद्ममुकुलच्छायाविशेषः स्तनौ। लक्ष्मीः कोकनदस्य खेलति करावालम्ब्य किञ्चादरादेतस्याः सुदृशः करोति पदयोस्सेवां प्रवालद्युतिः ॥ २७ ॥ तदा तदङ्गस्य बिभर्ति सम्भ्रमं विलेपनामोदमुचः स्फुरद्रुचः। दरस्फुरत्काञ्चनकेतकीदलात्सुवर्णमभ्यस्यति सौरभं यदि ॥ २८ ॥ तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशिकथा तच्चेत्स्मितं का सुधा तच्चक्षुर्यदि हारितं कुवलयैस्ताश्चेद्गिरो धिङ्मधु। धिक्कन्दर्पधनुर्भ्रुवौ यदि च ते किं वा बहु ब्रूमहे यत्सत्यं पुनरुक्तवस्तुविरसः सर्गक्रमो वेधसः ॥ २९ ॥ तद्वक्त्रस्य कलङ्क एव तुलना पीयूषधाम्नापि यत्कन्दर्पस्य धनुर्निदर्शनमिदं निन्दास्पदं तद्भ्रुवोः। सा तल्लोचनयोस्त्रपा कुवलयैस्साधर्म्यचिन्तापि या तस्यास्तत्प्रतिबिम्बमेव नियतं मात्रा विसंवादिनी ॥३०॥ तन्वी शरत्त्रिपथगापुलिने कपोलौ लोले दृशौ रुचिरचञ्चलखञ्जरीटौ। तद्बन्धनाय सुचिरार्पितसुभ्रुचापचाण्डालपाशयुगलाविव शून्य-

---

धनुष इसकी भौंहोंके समान है, इसका शरीर सुन्दरताकी दूकान है और इस सुन्दरीके ओठ और शरीरमें अनोखी रेखाएँ हैं इसलिये इसका वर्णन केवल कामदेव ही तब कर सकता है जब वह कहीं जाकर वर्णन करनेकी चतुराई सीख ले ॥ २४ ॥ ब्रह्माने उस नायिकाके शरीरमें जो इतनी सुन्दर जाँघें, स्तन, मधुरवाणी, बाँहें, हाथ और नाभि बनाई हैं उसका कारण यह है कि जब उसने इस कमल-नयनी नायिकाका मुख बनाया और चारों ओर देखकर उसे अपनी सबसे सुन्दर कृति समझी उसी समय वे हर्षसे फूल उठे और सहसा कामरूपी अग्निकी विशाल लपटोंसे जलने लगे। उस पापको दूर करनेके विचारसे उन्होंने इसकी जाँघोंके रूपमें केलेका खम्भा, स्तनोंके रूपमें जलके घड़े, वाणीके रूपमें अमृतकी लहर, बाँहोंके रूपमें नये पत्ते और नाभिके रूपमें तालाब बना दिए जिनसे ठंढक पाकर कामका ताप दूर किया जा सके ॥ २५ ॥ इस नायिकाके शरीरमें जो टेढ़ी भौंहें, तिरछी चितवन, कमरका अभाव और टेढ़े (घुँघराले बाल) दिखाई पड़ते हैं उसका कारण यह है कि जब ब्रह्माने इस सुन्दर भौंहोंवाली नायिकाका मुखरूपी चन्द्रमा बनाया तब उसकी चाँदनीसे ब्रह्माके बैठनेका आसन (कमल) सिकुड़ गया और ब्रह्मा उसी सिकुड़े हुए आसनमें बैठनेसे कस गए। उसी कष्टके कारण उन्होंने भौंहोंको टेढ़ा, आँखोंको बाँका और केशोंको घुँघराला बना दिया और कमर तो बनाना ही भूल गए ॥२६॥ यह नवेली इतनी सुन्दरी है कि चन्द्रमाकी चाँदनी इससे अधिक प्रकाश लेनेके लिये इसका मुँह सूँघ रही है, बिम्बाकी ललाई और भी अधिक लाल होनेके लिये इसके ओठ चूम रही है, सुन्दर कमलकी कलियोंकी शोभा अपनी बनावट आकर्षक करनेके लिये इसके स्तन छूना चाहती है, लाल कमलोंकी शोभा बड़े आदरसे इसका हाथ पकड़कर खेल रही है और मूँगेकी दमक और भी अधिक लालिमा पानेके लिये इस सुनयनीके चरणोंकी सेवा कर रही है ॥२७॥ उस नवेलीके सुगन्ध फैलानेवाले और दमकते हुए अङ्गोंकी शोभाकी तुलना तभी हो सकती है जब खिले हुए और दमकते हुए सोनेकी पङ्खड़ियोंसे सुन्दर रंग और गन्ध फटकर निकलने लगे ॥ २८ ॥ जब उस नवेलीका मुख है ही तब चन्द्रमाकी बात चलानी ही नहीं चाहिए। जब उसकी मुस्कराहट है ही, तब अमृतका क्या मूल्य है। जब उसकी आँखें हैं ही तो कमलको हारा ही समझना चाहिए। जब उसकी वाणीमें इतना मिठास है तो धिक्कार है मधुको। जब इसकी भौंहें हैं ही तब कामदेवका धनुष व्यर्थ है। हम और अधिक क्या कहें, सच्ची बात तो यह है कि उस नायिकाके अङ्ग बनानेके पश्चात् ब्रह्माने जितनी भी सृष्टि रची है वह सब अनुकरणकी वस्तु होनेके कारण नीरस हो गई है ॥ २९ ॥ अमृत धारण करनेवाला चन्द्रमा उस नवेलीके मुखकी समानता कर सकता था किन्तु वह कलंकी है, कामदेवका धनुष भी कुछ आदर पाता किन्तु उसे तो भौंहोंने ही नीचा दिखा दिया है। यदि उसके नेत्रोंकी झेंपकी तुलना कमलोंके साथ करें भी तो वे कुछ-कुछ झूठे प्रतिबिम्ब-जैसे प्रतीत होते हैं ॥ ३० ॥ उस दुबली-पतली नायिकाके शरद्की

कर्णौ ॥ ३१ ॥ तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी मध्ये क्षामा चकितहरिणी-प्रेक्षणा निम्ननाभिः। श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥ ३२ ॥ तमःस्तोमः पूर्वं तदनु सकलः शीतकिरणस्ततः कोकद्वन्द्वं तदनु च न किञ्चित्पुनरभून्। अधस्तस्यावर्तस्तदनु कदलीकाण्डयुगलं ततोऽवाञ्चौ पद्मौ शिव शिव! विधेः शिल्परचना ॥ ३३ ॥ तरुणिमनि कलयति कलामनुमदनधनुर्भ्रुवोः पठत्यग्रे। अधिवसति सकलललनामौलिमियं चकितहरिणचलनयना ॥ ३४ ॥ दन्तप्रभापुष्पचिता पाणिपल्लवशोभिनी। केशपाशालिवृन्देन सुवेषा हरिणेक्षणा ॥३५॥ दायादत्वं मनसिजधनुर्भ्रूविलासस्य धत्ते योगक्षेमौ वहति नयनद्वन्द्वमिन्दीवराणाम्। तद्गात्राणां पुनरिह जगज्जैत्रलावण्यभाजामाभात्यग्रे मलवदखिलं म्लानवर्णं सुवर्णम् ॥ ३६ ॥ दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति वदनं बाहू नतावंसयोः सङ्क्षिप्तं निविडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव। मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावुदग्राङ्गुली छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसः सृष्टं तथास्या वपुः ॥ ३७ ॥ दृष्टिः कापि सुरा सुधा स्मितमिदं वक्त्रं कलानां निधिर्वक्षः कुम्भि झषौ दृशौ विजयते धन्वन्तरिः सत्कृपा। कान्तिः श्रीस्त्रिवलीतरङ्गलहरी नाभी गतावर्ततामेतस्यामचिरेण भाविकलने लावण्यवारान्निधौ ॥ ३८ ॥ नयनयुगासेचनकं मानसवृत्त्यापि दुष्प्रापम्। रूपमिदं मदिराक्ष्या मदयति हृदयं दुनोत्यपि च ॥ ३९ ॥ नीलाब्जानां नयनयुगलद्राघिमा दत्तपत्रः कुम्भावैभौ कुचपरिकरः पूर्वपक्षीच-

---

आकाश-गंगाके समान कपोल-रूपी तटपर जो चञ्चल आँखोंके रूपमें दो सुन्दर चपल खञ्जन हैं, उन्हें बाँधनेके लिये ही मानो बहुत देरसे सुन्दर भौंहके धनुष रूपी व्याधने दो जालोंके समान सूने कान फैला दिए हैं ॥ ३१ ॥ मेघको देखकर यक्ष उसे अपने विरहिणी पत्नीका परिचय देता है कि 'अलकामें जो दुबली-पतली, नन्हें-नन्हें दाँतोंवाली, पके हुए बिम्बाके समान लाल-लाल ओंठोंवाली, पतली कमरवाली, डरी हुई हरिणीके समान आँखोंवाली, गहरी नाभिवाली, नितम्बोंके बोझसे धीरे चलनेवाली और स्तनोंके भारसे कुछ आगेको झुकी हुई युवती तुम्हें दिखाई दे उसे संसारकी सब युवतियोंमें ब्रह्माकी सर्वश्रेष्ठ कृति समझना' ॥ ३२ ॥ शिव शिव! ब्रह्माने यह क्या ऊटपटाँग रचना की है कि ऊपर अँधेरेका समूह (केश) बनाया उसके नीचे पूरा चन्द्रमा (मुख) बना दिया, उसके नीचे चकवेका जोड़ा (स्तन) बैठा दिया, उसके नीचे रिक्त स्थान (कमर) छोड़ दिया, उसके नीचे भँवर (नाभि) बना दी, उसके नीचे दो केलेके खम्भे (पैर) खड़े कर दिए और नीचे दो कमल (चरण) लगा दिए हैं ॥३३॥ चकित हरिणीके समान चञ्चल नेत्रोंवाली यह नवेली आज जो संसारकी समस्त नवेलियोंकी सिरमौर हो रही है उसका कारण यह है कि उसने तो अपने युवापनमें कलाएँ सीखीं किन्तु उसकी भौंहोंने कामदेवके धनुषके साथ-साथ पहलेसे अध्ययन कर लिया है ॥ ३४ ॥ दाँतोंकी चमक-रूपी फूलोंसे सजी हुई, हाथ-रूपी पत्तोंसे सुशोभित और जूड़े-रूपी भौंरोंके समूहसे घिरी हुई मृगनयनी इस समय अत्यन्त सुन्दर लताके समान प्रतीत हो रही है ॥३५॥ कामदेवका धनुष उस नवेलीके भौंहोंकी शोभासे अपना नाता जोड़ रहा है, उसके दोनों नेत्र कमलोंकी देखभाल कर रहे हैं और सम्पूर्ण सौन्दर्यवालोंको जीतनेवाले उसके अङ्गोंके आगे संसारका समस्त स्वर्ण मैला और खोटा प्रतीत हो रहा है ॥ ३६ ॥ इस नवेलीके अङ्गोंको देखकर ऐसा जान पड़ता है कि संसारको नचानेवाले ब्रह्माके मनमें जैसा-जैसा भाव आता गया वैसे-वैसे इसका शरीर भी बनता चला गया, जिससे आँखें बड़ी-बड़ी हो गईं, मुख शरद्‌के चन्द्रमा-सा सुन्दर हो गया, कन्धोंसे बाँहें झुक गईं, कसी हुई छातीपर कठोर ऊँचे स्तन निकल आए, छाती दोनों ओर खिंच गई, कमर मुट्ठी भरकी रह गई, जघन नितम्बोंके बीचमें आ गया और उसके पैर ऊँची-ऊँची उँगलियाँवाले हो गए ॥ ३७ ॥ इस सुन्दरताकी खान नवेलीको देखकर ऐसा जान पड़ता है कि इस सुन्दरताके समुद्रका शीघ्र ही मन्थन होनेवाला है क्योंकि इसकी दृष्टि ही मदिरा (मतवाला बना देनेवाली) है, इसकी मुसकान ही अमृत है, इसका मुख ही चन्द्रमा है, इसके दोनों स्तन ही ऐरावत हाथी हैं, इसकी आँखें ही मछलियाँ हैं, इसकी कृपा ही धन्वन्तरि है, इसके शरीरकी शोभा ही लक्ष्मी है, इसके पेटपर बनी हुई तीन सिकुड़नें ही लहरें हैं और नाभि ही पानीकी भँवर है ॥ ३८ ॥ इस मदभरे नयनोंवाली नवेलीका जो सौन्दर्य हमारी आँखोंको शीतल कर रहा है और जिसके सुन्दरताकी कोई मनसे भी थाह नहीं पा सकता उसका सौन्दर्य हृदयको जिलाए भी जा रहा है और जलाए भी जा रहा है ॥ ३९ ॥ उसकी आँखें

कार । भ्रूविश्रान्तिर्मदनधनुषो विभ्रमानन्ववादीद्वक्त्रज्योत्स्ना शशधररुचं दूषयामास तस्याः ॥ ४० ॥ नेत्रोपान्तवतंसिते श्रुतिपुटे नीलोत्पलं निष्फलं हासश्रीपरिकर्मिते स्तनतटे हारोऽन्यहारः कथम् । पिण्डालक्तकपातनं चरणयोः पीडाफलं ताम्रयोर्वामाक्ष्या वपुषि स्वभावसुरभौ व्यर्थानुलेपव्यथा ॥ ४१ ॥ पद्भ्यामुच्छिद्रामधरयति शोणाम्बुजरुचिं कराभ्यामादत्ते नवकिसलयानामरुणताम् । प्रवालस्य च्छायां दशनवसनाग्रेण पिबति स्मितज्योत्स्नापूरैरुपहसति कान्तिं हिमरुचेः ॥ ४२ ॥ पदे वाक्ये प्रमाणे च परां काष्ठामुपागता । अतो विद्वज्जनस्यापि स्पृहणीया मृगेक्षणा ॥ ४३ ॥ पानायाधरतोऽमृतं वसतयेऽप्यस्या स्तनक्ष्माधरोऽधस्तात्सज्जघनान्तकन्दरधरः सख्याय चक्षुर्मृगः । जप्यो मन्त्रवरो मनोहरकथा ध्यानाय वक्त्राम्बुजश्चेत्थं देहतपःस्थले सति कथं सन्तो वनान्तं गताः ॥ ४४ ॥ प्रत्यङ्गमस्यामभिकेन रक्षां कर्तुं मघोनेव निजास्त्रमस्ति । वज्रञ्च भूषामणिमूर्तिधारि नियोजितं तद्युतिकार्मुकञ्च ॥ ४५ ॥ फलायते कुचद्वन्द्वमियं हेमलतायते । अङ्गानि कुसुमायन्ते मनो मे भ्रमरायते ॥ ४६ ॥ बन्धूकबन्धुरधरः सितकेतकाभं चक्षुर्मधूककलिकामधुरः कपोलः । दन्तावली विजितदाडिमबीजराजिरास्यं पुनर्विकचपङ्कजदत्तदास्यम् ॥ ४७ ॥ बाहू द्वौ च मृणालमास्यकमलं लावण्यलीलाजलं श्रोणीतीर्थशिला च नेत्रशफरीधम्मिल्लशैवालकम् । कान्तायाः स्तनचक्रवाकयुगलं कन्दर्पबाणानलैर्दग्धानामवगाहनाय विधिना रम्यं सरो निर्मितम् ॥ ४८ ॥ भ्रूयुग्ममुच्चैर्धनुरुज्झितज्यं बाणाः कटाक्षाः कुटिला नितान्तम् । तथापि यूनां हृदयं भिनत्ति कोऽयं विलासो युवतीजनस्य

नीले कमलको और उसके स्तन हाथीके मस्तकको निरन्तर चुनौती दे रहे हैं, उसकी भौंहें कामदेवके धनुषको तुच्छ कर रही हैं और उसके मुखकी शोभा चन्द्रमाकी चाँदनीको फीकी किए डाल रही है ॥ ४० ॥ तिरछी चितवनवाली जिस नवेलीके कान उसके नेत्रोंकी कोरसे ही पर्याप्त सुशोभित हैं उन्हें नीले कमलसे सजाना और जिसके स्तन उसकी हँसीकी चमकसे ही सजे हुए हैं उनपर हार पहनाना व्यर्थ है। इसी प्रकार उसके जो चरण स्वभावसे ही लाल हैं उनमें महावरका बोझ बाँधनेसे उसे कष्ट ही होगा और उसके जिस शरीरसे स्वाभाविक सुगन्ध निकलती है उसपर चन्दन आदि लगाना निरर्थक ही है ॥ ४१ ॥ वह नवेली अपने पैरोंकी ललाईसे खिले हुए लाल कमलोंकी शोभाको नीचा दिखा रही है, उसके हाथोंकी लालिमासे नई कोपलोंकी ललाई फीकी जान पड़ रही है, उसके लाल-लाल ओठोंसे मूँगेकी लालिमा मन्द पड़ रही है और उसकी मुसकानकी चाँदनी चन्द्रमाकी चाँदनीकी हँसी उड़ा रही है ॥ ४२ ॥ वह नायिका पद (पैरोंकी चाल), वाक्य (बोली) और प्रमाण (ऊँचाई) में अत्यन्त बढ़ गई है इसलिये पद, वाक्य और प्रमाणका पाण्डित्य प्राप्त करनेवाले विद्वान् भी उस मृगनयनीको इतना चाहते हैं ॥ ४३ ॥ मेरी समझमें नहीं आता कि इस नवेलीकी देहरूपी तपोभूमिमें जब साधु-सन्तोंको पीनेके लिये अधरामृत, ऊँचाईपर रहनेके लिये स्तनरूपी पर्वत, भीतर बन्द होकर रहनेके लिये जघनरूपी गुफा, मित्रताके लिये नेत्ररूपी मृग, जप करनेके लिये उसकी मनोहर चर्चाके मन्त्र और ध्यान करनेके लिये उसका सुन्दर मुख कमल ही है तब वे लोग वनमें क्या करने जाते हैं ॥ ४४ ॥ इस नायिकाने अपने प्रत्येक अङ्गपर जो हीरेके आभूषण पहने हैं उन्हें देखकर प्रतीत होता है कि इस नवेलीके प्रत्येक अङ्गकी रक्षा करनेके लिये इन्द्रने इन हीरोंके रूपमें अपना वज्र स्थापित कर दिया है और उन हीरोंकी जो गोल-गोल चमक है वही मानो इन्द्रका धनुष है जो उसके अङ्गोंकी रक्षा करनेमें वज्रका साथ दे रहा है ॥ ४५ ॥ यह नवेली सोनेकी लता बनती जा रही है, इसके अङ्ग अङ्ग फूलसे खिले जा रहे हैं, इसके दोनों स्तन फलके समान बढ़ते जा रहे और मेरा मन ही इसपर भौंरा बना जा रहा है ॥ ४६ ॥ इस नवेलीका नीचेका ओठ जपाकुसुमके समान लाल है, आँखें स्वच्छ केवड़ेके फूलके समान खिली हुई हैं, गाल महुवेकी कलीके समान गोल हैं, दाँतोंकी पंक्ति अनारके बीजोंको नीचा दिखा रही है और इसका हँसता हुआ मुख खिले हुए कमलको लजा रहा है ॥ ४७ ॥ इस नवेलीको सुन्दर तालाब समझना चाहिए जिसे ब्रह्माने कामके बाणोंकी अग्निसे जले हुए लोगोंको डुबकी लगानेके लिये बना दिया है और जिसमें दोनों बाँहें ही कमलकी नाल हैं, मुख ही कमल है, सुन्दरता ही जल है, नितम्ब ही चट्टान है, आँखें ही मछलियाँ हैं, केशपाश ही सेवार है और स्तन ही चकवा-चकवी हैं ॥ ४८ ॥ स्त्रियोंको न जाने कैसी निराली कला आती है कि वे अपनी भौंहोंके बिना डोरीवाले धनुषसे चितवनके टेढ़े ही बाण चलाकर

॥ ४९ ॥ भ्रूश्चित्ररेखा च तिलोत्तमास्या नासा च रम्भा च यदूरुसृष्टिः। दृष्ट्वा ततः पूरयतीयमेकानेकाप्सरःप्रेक्षणकौतुकानि ॥ ५० ॥ भृङ्गालीमुदरे क्षिपन्ति शतशः पद्मानि शस्त्रीमिव प्रत्यागच्छति लङ्घनार्थम अङ्कव्योमाङ्गणं चन्द्रमाः। वक्त्रेणापहृते कुरङ्गसुदृशस्त्रैलोक्यरूपोच्चये प्रत्यावर्तनवाञ्छयेव कति न क्लेशं समातन्वते ॥ ५१ ॥ मधुरः सुधावदधरः पल्लवतुल्योऽतिपेलवः पाणिः। चकितमृगलोचनाभ्यां सदृशी चपले च लोचने तस्याः ॥ ५२ ॥ मध्यं विष्णुपदं कुचौ शिवपदं वक्त्रं विधातुः पदं धम्मिल्लः सुमनःपदं प्रविलसत्काञ्ची नितम्बस्थली। वाणी चेन्मधुराधरोऽरुणधरः श्रीरङ्गभूमिर्वपुस्तस्याः किं कथयामि पुण्यचरितं मान्या सदा निर्जरैः ॥ ५३ ॥ मुक्ता विद्रुममन्तरा मधुरसः पुष्पं परं धूर्वहं प्रालेयद्युतिमण्डले खलु तयोरेकासिका नार्णवे। तच्चोदश्चति शङ्खमूर्ध्नि न पुनः पूर्वाचलाभ्यन्तरे तानीमानि विकल्पयन्ति त इमे येषां न सा दृक्पथे ॥ ५४ ॥ मुखं यदि किमिन्दुना यदि चलाञ्चले लोचने किमुत्पलकदम्बकैर्यदि तरङ्गभङ्गी भ्रुवौ। किमात्मभवधन्वना यदि सुसंयताः कुन्तलाः किमम्बुरुहडम्बरैर्यदि तनूरियं किं श्रिया ॥ ५५ ॥ मुखेन चन्द्रकान्तेव महानीलैः शिरोरुहैः। पादाभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥ ५६ ॥ यतो यतोऽङ्गादपयाति कञ्चुकं ततस्ततः स्वर्णमरीचिवीचयः। यतो यतोऽस्या निपतन्ति दृष्टयस्ततस्ततः श्यामसरोजवृष्टयः ॥ ५७ ॥ यत्तीर्थाम्बु मुखाम्बुजासवरसो नेत्रे नवेन्दीवरे दन्तश्रेणिरखण्डिताक्षतचयो दूर्वा च रोमावली। उत्तुङ्गं च

युवकोंके हृदय बेध डालती हैं ॥ ४९ ॥ इस नवेलीको देख लेनेपर अनेक अप्सराओंके दर्शनकी सब उमङ्ग ठण्ढी पड़ जाती है क्योंकि इसकी भौंह ही चित्ररेखा नामकी अप्सरा (सुन्दर रेखावाली) है, इसकी नाक ही तिलोत्तमा (तिलके फूलसे भी सुन्दर, तिलोत्तमा अप्सरा) है और इसकी जाँघें ही रम्भा (केला, अप्सरा) हैं ॥ ५० ॥ उस मृगनयनीके जिस मुखने संसारकी सम्पूर्ण सुन्दरता खींच ली है उसे लौटा लेनेके लिये कौन-कौन व्याकुल नहीं हो रहे हैं ? देखो, उस नायिकाके मुखपर सुन्दर काले नेत्र देखकर कमलोंको भी यह चाव उठा कि मैं भी वैसा ही सुन्दर बन जाऊँ और इसीलिये वे छुरीके समान कष्ट देनेवाले भौंरोंके समूहको अपने पेटमें बसा रहे हैं। उधर चन्द्रमा भी उसके मुखकी चमक पानेके लिये बार-बार आकाश-रूपी आँगनमें आ-जा रहा है ॥ ५१ ॥ इस नवेलीका नीचेका ओठ अमृतके समान मधुर है, उसके हाथ पत्तेके समान अत्यन्त कोमल हैं और उसके नेत्र चकित हरिणके नेत्रोंके समान चञ्चल हैं ॥ ५२ ॥ इस नवेलीकी कमर विष्णुपद (शून्य) है, इसके स्तन शिवपद (कैलासके समान उठे हुए) हैं, इसका मुख ब्रह्माका स्थान (कमलके समान खिला हुआ और सुन्दर) है, इसका जूड़ा देवताओं (फूलों) का स्थान है, इसके नितम्बमें काञ्ची (करधनी, काञ्ची नगरी) है, इसकी मधुर वाणी ही सरस्वती है, इसके अधर अरुण (सूर्यकी लालिमा) धारण किए हुए हैं तथा इसकी देह श्री-रङ्गभूमि (लक्ष्मीका नृत्यस्थल, शोभासे पूर्ण) है। इसलिये जिसका आदर देवतातक करते हों उसके पवित्र आचरणको भी क्या बतानेकी आवश्यकता है ॥ ५३ ॥ जिन लोगोंने उस नवेलीको भर आँख नहीं देखा है वे उसे दूरसे देखकर ऐसा ही तर्क करते हैं कि मोती (दाँत) और मूँगेमें (ओठोंके बीचमें ही वास्तविक मकरन्द) अधरामृत रहता है, फूल तो केवल मकरन्दका भार ढोते हैं। ये मोती और मूँगे भी चन्द्रमण्डल (मुख) में साथ-साथ रहते हैं समुद्रमें नहीं और वह चन्द्रमण्डल भी शङ्ख (गले) के ऊपर है, उदयाचलपर नहीं ॥ ५४ ॥ जब इस नवेलीका मुख है ही तब चन्द्रमाका क्या प्रयोजन है, इसकी चञ्चल आँखोंके आगे नीलकमलका क्या मूल्य है, इसकी तिरछी भौंहोंके होते हुए कामके धनुषकी क्या आवश्यकता है, इसके सुन्दर बँधे हुए जूड़ेके आगे मेघ भी व्यर्थ हैं और जब इस नवेलीका यह सुन्दर शरीर है ही तब लक्ष्मीकी कोई आवश्यकता नहीं ॥ ५५ ॥ चन्द्रमाके समान चमकीले (चन्द्रकान्त मणिके समान) मुखसे, अत्यन्त नीले (महानीलमणिके समान) काले बालोंसे और पद्मराग (पोखराज) के समान पैरोंसे वह ऐसी जान पड़ती है मानो रत्न-जड़ी हो ॥ ५६ ॥ इस गोरी नवेलीके जिस-जिस अङ्ग परसे साड़ी हटती है वहाँ-वहाँसे सुनहरी किरणोंकी लहरें निकलने लगती हैं और जिधर-जिधर वह देखती है उधर-उधर नीले कमलोंकी वर्षा होने लगती है ॥ ५७ ॥ जान पड़ता है कि इस नवेलीने अपने शरीरके अङ्गोंमें ही कामदेवकी पूजाके लिये सब सामग्री जुटा ली है क्योंकि इसके मुखरूपी कमलका रस ही गंगाजल है, इसके नेत्र ही नये नीले कमलके फूल हैं, इसके दाँतोंकी पंक्ति ही खड़े चावल (अक्षत) हैं, इसकी रोमावली

कुचद्वयं फलयुगं पात्रं कराम्भोरुहं तन्मन्ये मदनार्चनाहितमतिः स्वाङ्गोपहारैरियम् ॥ ५८ ॥ यशः पदाङ्गुष्ठमुखौ मुखञ्च विभर्त्ति पूर्णेन्दुचतुष्टयं या । कलाचतुःषष्टिरुपैति वासं तस्यां कथं सुभ्रुवि नाम नास्याम् ॥ ५९ ॥ येनोत्पलानि च शशी च मृणालिकाश्च रम्भालताश्च कमलानि च निर्मितानि । नूनं स एव मृगशावदृशोऽपि वेधाः सृष्टिक्रमो यदयमेकतया चकास्ति ॥ ६० ॥ राजीव जीवसि मुधा न सुधाकर त्वमस्यास्समः पदनखस्य कुतो मुखस्य । अग्रे दृशोर्मृगदृशः कतमः कुरङ्गस्तत्खञ्जन त्वमपि किं जनरञ्जनाय ॥ ६१ ॥ वक्त्रं निर्मलमुन्नता कुचतटी मध्यप्रदेशः कृशः श्रोणीमण्डलमङ्गनाकुलगुरोर्देवस्य सिंहासनम् । कृत्वा चारुदृशश्चतुष्टयमिदं तुष्टाव मन्ये विधिर्हर्षाद्गद्गदगद्यपद्यरचनागर्भैश्चतुर्भिर्मुखैः ॥ ६२ ॥ वक्त्रे गुरुत्वं यदि ते छन्दःशास्त्रविदो विदुः । कठिने कुचयुग्मेऽस्याः वदतां किन्नु हीयते ॥ ६३ ॥ वहत्यस्या दृष्टिर्विकचनवनीलोत्पलतुलामखण्डस्याभिख्यां वदनमिदमिन्दोः कलयति । कुचौ किञ्चिन्मीलत्कमलतुलनां कन्दलयतस्तमःशोभां चित्रं चिकुरनिकुरम्बं हि कुरुते ॥ ६४ ॥ वापी कापि स्फुरति गगने तत्परं सूक्ष्मपद्या सोपानालीमधिगतवती काञ्चनीमैन्द्रनीली । अग्रे शैलौ सुकृतिसुगमौ चन्दनच्छन्नदेशौ तत्रत्यानां सुलभममृतं सन्निधानात्सुधांशोः ॥ ६५ ॥ विकसन्नेत्रनीलाब्जे तथा तन्व्याः स्तनद्वयी । तव दत्तां सदा मोदं लसत्तरलहारिणी ॥ ६६ ॥ विनैवाम्भोवाहं वहलरुचिदीप्ताम्बरतलात्तडिल्लेखा हेमद्युतिविततिरम्या विलसति । विनैव स्वर्गङ्गां नभसि रभसव्यग्रशफरीपरीवर्त्तैस्सार्धं स्फुरति विकचेन्दीवरवनम् ॥ ६७ ॥ वेणीवन्धमहीनं कृष्णं

ही दूबके अँकुवे हैं, इसके दोनों बड़े-बड़े स्तन ही फल हैं और इसके कर-कमल ही पंचपात्र हैं ॥ ५८ ॥ जब इस नवेलीमें एक तो उसके यशका चन्द्रमा, पैरके अँगूठोंके नखोंके दो चन्द्रमा और मुखरूपी एक चन्द्रमा मिलकर चार-चार चन्द्रमा हैं तब इस सुन्दर भौंहोंवाली नायिकामें सोलह कलावाले चन्द्रमासे चौगुनी अर्थात् चौसठ कलाएँ क्यों न निवास करें ॥ ५९ ॥ जिस ब्रह्माने नीला कमल, चन्द्रमा, कमलनाल, केला तथा कमल बनाया उसीने यह हरिणके बच्चेकी आँखोंके समान नेत्रोंवाली नायिका भी बनाई है क्योंकि इन सभीके बनानेका ढङ्ग एक-सा ही है अर्थात् ये सभी कोमल और मनोहर हैं ॥ ६० ॥ हे कमल ! इस नायिकाके रहते तुम व्यर्थ जी रहे हो । हे चन्द्रमा ! तुम जब इस नवेलीके पैरके नखकी भी बराबरी नहीं कर सकते तब मुखकी बराबरीकी तो बात ही क्या है! इस मृगनयनीकी आँखोंके सामने हरिणकी क्या बिसात है! हे खंजन ! तुम भी क्यों व्यर्थ लोगोंको प्रसन्न करनेका प्रयत्न कर रहे हो क्योंकि तुम्हारा भी उसके नेत्रोंके सामने कोई महत्त्व नहीं है॥ ६१ ॥ जब ब्रह्माने उस नवेलीके शरीरमें सुन्दर मुख, ऊँचे स्तन, पतली कमर और स्त्रियोंके कुलगुरु कामदेवका सिंहासन नितम्ब बना लिया तब वे हर्षसे फूले नहीं समाए और अपने चारों मुखोंसे गद्य और पद्यमें स्वयं अपनी प्रशंसा करने लगे ॥ ६२ ॥ छन्द-शास्त्रके पंडित लोग यदि तुम्हारे वक्त्र (मुख) तथा वक्त्र (शब्द) में गुरुता (महत्त्व और गुरु-मात्रा) मानते हैं तब इस नायिकाके दोनों कठोर स्तनोंमें लोग गुरुता (विशालता) बताते हों तो उनका अपराध ही क्या है । क्योंकि जब वक्त्र शब्दमें संयुक्ताक्षर 'क्त्र' के पहले आनेवाला 'व' अक्षर गुरु हो सकता है तब जो स्तन एक साथ दो हैं वे गुरु (दीर्घ) क्यों न कहलावें ॥ ६३ ॥ इसकी चितवन खिले हुए नीले कमलके समान जान पड़ रही है, इसका मुख पूरे चन्द्रमाके समान शोभा दे रहा है इसके स्तन मुँदे हुए कमलके समान दिखाई पड़ रहे हैं और इसके केश अन्धकारकी विचित्र शोभा फैलाते हैं ॥ ६४ ॥ एक सुन्दरीको देखकर कवि कल्पना करता है कि आकाश (सूक्ष्म तथा अलक्षित कमर) में एक बावड़ी (-नाभि) है, उसके ऊपर सोनेकी सीढ़ियों (उदरकी त्रिवली) से सजी हुई इन्द्रनील-मणिकी बनी सकरी बटिया (रोमावली) है । उसके ऊपर स्वभावसे ही सुन्दर पर्वत (स्तन) हैं जो चन्द्रमा (मुख) के समीपतक पहुँचे हुए हैं । अतः जो वहाँ पहुँच जाता है उसे अमृत (अधररस) अनायास मिल ही जाता है ॥ ६५ ॥ उस नवेलीके चमकते हुए चञ्चल तथा मनोहर नेत्र-रूपी दो नीले कमल तथा हिलते हुए हारसे सुशोभित उसके दोनों स्तन तुम्हें सदा आनन्द दें ॥ ६६ ॥ एक नवेलीकी सुन्दरता और उसकी आँखोंका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि 'बिना बादलके ही सुन्दर स्वच्छ अम्बरतल (आकाश, वस्त्रके नीचे) से सोनेके समान दमकती हुई बिजली (शरीरकी गोराई) चमक रही है और आकाश-गंगाके बिना ही आकाश (ऊपर मुख) में सहसा डरी हुई मछलियों (आँखके कोयों)

नेत्रान्तमचलरूपं तम् । कुचमस्याः स्वीकुर्वन्पुरुषो लीलां वहत्यहो शम्भोः ॥ ६८ ॥ वेणी विडम्बयति मत्तमधुव्रतालीमङ्गीकरोति गुणमैन्दवमास्यमस्याः । बाहू मृणाललतिकाश्रियमाश्रयेते पुङ्खानुपुङ्ख्यति कामशरान्कटाक्षः ॥ ६९ ॥ वेणीवेल्लनमङ्गणं किमु वलन्नेणीदृशो मध्यमं संव्यानं किमिदं विवृत्तिविषमाद्वासः स्तनात्स्रंसते। नृत्यन्तीव किमन्तिके वलितयोः स्निग्धा दृशोः कान्तयः साकूतस्मितगर्भितं किमु मुखं वक्तुं सखीं वाञ्छति ॥ ७० ॥ व्याकोशकोकनदशोककरः करोऽयं खेलच्चकोरमदचोरमिदञ्च चक्षुः । उद्भिन्नविद्रुमरहस्यहरोऽधरोऽयं तत्स्यादरण्यमपि वश्यमवश्यमस्याः ॥ ७१ ॥ संन्यस्तभूषापि नवेव नित्यं विनापि हारं हसतीव कान्त्या । मदं विनापि स्खलतीव भावैर्वाचं विना व्याहरतीव दृष्टा ॥ ७२ ॥ सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन । सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥ ७३ ॥ सा कान्ता यदि का सुवर्णलतिका पादौ यदाऽस्याः पुनः किं पद्मं कुचमण्डलं यदि पुनः कल्पद्रुमीयं फलम् । पाणी चेत्किमु तर्हि विद्रुमदलं वाणी यदा का सुधा तस्याश्चेन्ननु सङ्गमः किमु पुनः स्वर्गेऽधिकं स्यात्सुखम् ॥ ७४ ॥ सा दुग्धमुग्धमधुरच्छविरङ्गयष्टिस्ते लोचने तरुणकेतकपत्रदीर्घे । कम्बोर्विडम्बनकरश्च स एव कण्ठः सैवेयमिन्दुवदना मदनायुधं वा ॥ ७५ ॥ सा दृष्टा यैर्न वा दृष्टा मुषितास्सममेव ते । हृदयं हृतमेकेषामन्येषाञ्चक्षुषोः फलम् ॥ ७६ ॥ सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा ।

के फड़कनेके साथ खिला हुआ नीलकमल (आँखोंकी पलकें) का वन दिखाई पड़ रहा है' ॥ ६७ ॥ जो पुरुष उस नवेलीके चोटी-रूपी सर्पको, उसके काले नेत्रोंके कोर-रूपी कृष्ण (विष्णु) को और उसके स्तन-रूपी पर्वतको धारण कर लेता है वह साक्षात् शिवजीके समान बन जाता है क्योंकि शिवजी शरीरपर सर्प धारण करते हैं. हृदयमें विष्णुका ध्यान करते हैं और कैलास पर्वतपर निवास करते हैं ॥ ६८ ॥ इस नवेलीकी चोटी देखकर मतवाले भौंरोंका भ्रम हो जाता है, इसके मुखने चन्द्रमाके सब गुण हथिया लिए हैं, इसकी बाँहें कमलनालके समान हैं और इसकी चितवन कामदेवके बाणोंका काम करने लगी है ॥ ६९ ॥ अपनी सखीसे बात करनेके लिये जाती हुई नवेलीको देखकर कवि कहता है कि 'उस मृगनयनीकी लहराती हुई चोटी क्या कमर-रूपी आँगनकी ओर बढ़ी जा रही है ? इसके शरीरको ढकनेवाला वस्त्र क्या इसके स्तनोंसे नीचे सरका जा रहा है ? क्या इसके आँखोंकी सुन्दर शोभा इसकी चञ्चल चितवनके पास नाच रही है ? और क्या इसका भेद और मुस्कान-भरा मुख सखीसे कुछ बोलनेके लिये उतावला हो रहा है' ॥ ७० ॥ इस नवेलीने निश्चय ही सारे जंगलको अपने वशमें कर लिया है इसीसे तो इसके हाथोंने खिले हुए कमलको चिन्तामें डाल दिया है, इसके नेत्रोंने खेलते हुए चकोरका अभिमान चूर किया है और इसके ये अधर पके हुए मूँगेकी शोभाको भी नीचा दिखा रहे हैं ॥ ७१ ॥ वह नवेली बिना भूषणोंके भी सदा नई सी लगती है, बिना हार पहने भी वह अपनी सुन्दरतासे ही हँसती-सी जान पड़ती है, मदका सेवन न करनेपर भी वह डगमग पैर रखती चलती है और बिना बोले ही देखनेपर ऐसी जान पड़ती है मानो वह बातचीत कर रही हो ॥ ७२ ॥ ब्रह्माने एक ही स्थानपर सब सौन्दर्य देखनेकी इच्छासे अत्यन्त परिश्रम करके उस नवेलीका निर्माण किया है और इसीलिये उसके शरीरमें यथास्थान उपमाके सब पदार्थ इकट्ठे करके स्थापित कर दिए हैं ॥ ७३ ॥ उस प्रियतमाकी देहके सामने सोनेकी लताका क्या मूल्य है, उसके पैरोंके आगे कमलका क्या महत्त्व है, उसके स्तनोंके सम्मुख कल्पवृक्षके फल किस कामके हैं, उसके कोमल हाथोंके सामने मूँगेके बने हुए पत्तोंका क्या आदर हो सकता है और उसकी मधुर बोलीके सामने अमृत लेकर क्या होगा ? ऐसी अनुपम सुन्दरीका यदि कहीं संभोग मिल जाय तब क्या स्वर्गमें उससे बढ़कर सुख देनेवाली कोई वस्तु मिल सकेगी ॥ ७४ ॥ इस नवेलीकी देहरूपी लतामें दूधके समान स्वच्छ और मधुर शोभा है, इसके नेत्र केतकीके खिले हुए फूलकी पंखुड़ियोंके समान बड़े-बड़े हैं और इसका गला शङ्खके समान सुन्दर है । इसे देखकर यह सन्देह होता है कि यह वही चन्द्रमुखी है या कामदेवका कोई नया अस्त्र है ॥ ७५ ॥ उस नवेलीको जिन्होंने देखा है वे भी ठगे गए और जिन्होंने नहीं देखा वे भी, क्योंकि जिसने देखा उसका तो मन हरण कर लिया गया और जिसने नहीं देखा उसकी आँखोंका जन्म लेना व्यर्थ हो गया ॥ ७६ ॥ उस नवेलीको देखकर ऐसा लगता है कि या तो वह सुन्दरतापर राज्य करनेवाली उसकी स्वामिनी है या सुन्दरताके सब तत्त्वोंका एकमात्र भण्डार है । देखो मित्र ! मुझे तो ऐसा

तस्यास्सखे नियतमिन्दुसुधामृणालज्योत्स्नादि कारणमभून्मदनश्च वेधाः ॥ ७७ ॥ सौरभ्यं मृगलाञ्छने यदि भवेदिन्दीवरे वक्रता माधुर्यं यदि विद्रुमे तरलता कन्दर्पचापे यदि । रम्भायां यदि विप्रतीपगमनं प्राप्तोपमानं तदा तद्वक्त्रं तदुदीक्षणं तदधरस्तद्भ्रूस्तदूरूयुगम् ॥ ७८ ॥ सौरभमम्भोरुहवन्मुखस्य कुम्भाविव स्तनौ पीनौ । हृदयं मदयति वदनं तव शरदिन्दुर्यथा बाले ॥ ७९ ॥ स्निग्धस्मेरविलोलमुग्धमधुरा यन्नेत्रयोर्विभ्रमा यद्यामृष्टविलासपत्त्रलतिका घर्मोद्गमाद्गण्डयोः । यच्च प्रौढकदम्बकुड्मलसखी काप्यङ्गके विक्रिया तत्तस्यां किमपि स्फुटं रतिपतेः कोदण्डविस्फूर्जितम् ॥ ८० ॥ स्निग्धेन्द्रोपलसुन्दरः कचभरो वक्त्रं सगोत्रं विधोर्वक्षोजौ मणिकुम्भडम्बरमुषौ मध्योऽस्ति वा नास्ति वा । श्रोणीमण्डलमूरुदुर्वहमहो शोणाब्जतुल्ये पदे मन्ये मञ्जुगिरो मरालमहिलाध्येयो गतेर्विभ्रमः ॥ ८१ ॥

नायिकाप्रशंसा

अञ्जनमिषतः स्त्रीणां दृशोर्विषं शश्वदावसति । कथमन्यथा तदीपत्पातेऽपि हता युवानः स्युः ॥ १ ॥ अभविष्यँस्तपःसिद्धाः स्रष्टारो वहवः परे । नास्रक्ष्यन्त कुरङ्गाक्ष्यो यदि नाम मनोहराः ॥ २ ॥ अस्पृष्टे राहुभीत्याऽहनि निशि च समे कल्मषच्छाययोने हासत्रासाद्विदूरे समुपचितविभावैभवे हृद्यगन्धे । पाथोदाच्छादहीने धरणितलगतादुर्लभे सर्वलोकाह्लादं चाप्यादधाने सुमुखि तव मुखौपम्यलेशः सुधांशौ ॥ ३ ॥ कान्ते त्वन्नेत्रकान्तं पुरु कमलवनं त्वन्मुखस्योपमेयश्चन्द्रः प्रत्यक्षसिद्धः पिककुलमपि च त्वत्स्वरस्यानुकारि । रम्भाकाण्डस्त्वदूरुच्छविरपि सुलभः कम्बवश्च त्वदीयकण्ठाकाराः शिखण्डास्तव कचसदृशास्त-

---

जान पड़ता है कि चन्द्रमा, अमृत, कमलकी डंडी और चाँदनी आदि सामग्रियाँ लेकर स्वयं कामदेवने ही ब्रह्मा बनकर उसकी रचना की है ॥ ७७ ॥ यदि चन्द्रमामें सुगन्ध बस जाय, कमलोंमें बाँकापन आ जाय, मूँगेमें मिठास भर जाय, कामदेवका धनुष दयालु हो जाय और केला उलटा हो जाय तब कहीं ये सब उसके मुख, चितवन, निचले ओठ, भौंह और जाँघोंकी समानता प्राप्त कर सकेंगे ॥ ७८ ॥ हे प्यारी! तुम्हारे मुखकी सुगन्ध कमलकी गन्धके समान है, तुम्हारे स्तन घड़ेके समान बड़े-बड़े हैं और तुम्हारा मुख शरदके पूर्ण चन्द्रमाके समान हृदयको आनन्दसे मस्त कर देता है ॥ ७९ ॥ उस नवेलीके नेत्रोंकी चितवन प्रेमसे भरी, चञ्चल और मधुर मुस्कानसे पूर्ण है, गालोंपर पसीनेकी बूँदें आ निकलनेसे उनपर बनी हुई सुन्दर चित्रकारी धुँधली पड़ती जा रही है और उसके अङ्गोंमें पके हुए कदम्बके फूलके समान विकार (रोमाञ्च) आने लगा है । अतः जान पड़ता है कि कामदेवके धनुषकी टङ्कार उसके शरीरमें गूँज चुकी है ॥ ८० ॥ उस नवेलीके बाल इन्द्रनील-मणिके समान चमकीले और नीले हैं, उसका मुँह चन्द्रमाके समान चमकीला है, उसके स्तन मणियोंसे बने हुए घड़ोंकी शोभाको भी फीकी कर रहे हैं, उसकी कमर इतनी पतली है कि कहना कठिन हो रहा है कि वह है भी या नहीं, उसके नितम्ब इतने भारी हो चले हैं कि जाँघें उन्हें सँभाल नहीं पातीं । उसके पैर कमलके समान लाल हैं और उस मिठबोलीकी चाल तो ऐसी है कि हंसिनियाँ भी वैसी मनोहर चाल सीखनेके लिये उसका मुँह जोहा करती हैं ॥ ८१ ॥

नायिकाकी प्रशंसा

स्त्रियोंके नेत्रोंमें जिसे आप काजल समझते हैं वह वास्तवमें विष है इसलिये यदि उस विष (दृष्टि) के तनिकसे छू जानेमात्रसे ही युवक मरने लगते हों तो आश्चर्य क्या है ॥ १ ॥ यदि संसारमें मनोहर मृगनयनी बालाएँ न रची गई होतीं तो आज सिद्ध लोग तपस्या करके दूसरे ब्रह्मा बन जाते अर्थात् केवल तपस्या करनेके ही कारण ब्रह्माजी ब्रह्मा नहीं बने हैं वरन् वे इसलिये ब्रह्मा बने हैं कि उन्होंने सुन्दरी नारियोंकी सृष्टि भी की है । साथ ही इन मृगनयनी बालाओंके कारण सिद्धोंकी तपस्या नहीं पूरी हो पाती और वे ब्रह्मा नहीं बन पाते ॥ २ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! यदि कोई ऐसा निराला चन्द्रमा उत्पन्न हो जाय जिसे राहुका डर छू भी न गया हो, जो दिन-रात एक-सा बना रहे, जिसमें तनिक भी कलङ्ककी छाया न हो, जिसकी कोई हँसी न उड़ा सके, जिसमें सदा पूरा प्रकाश भरा रहे, जिसमें अत्यन्त मधुर गन्ध बसी हुई हो, जिसे बादल कभी ढक न सकें, जो धरतीपर सरलतासे प्राप्त हो सके और जो समान रूपसे विश्वके सभी प्राणियोंको सुख पहुँचा सके तब कहीं जाकर वह तुम्हारे मुखकी कुछ-कुछ समानता प्राप्त कर सकता है ॥ ३ ॥ हे प्यारी ! अत्यन्त श्रेष्ठ कमल तुम्हारे सुन्दर नेत्रोंके समान हैं, चन्द्रमा प्रत्यक्ष ही तुम्हारे मुखके समान है, कोयलकी कूक तुम्हारे स्वरके समान है, केलेके खम्भे तुम्हारी जाँघों जैसे चिकने

त्कथं तेऽसमत्वम् ॥ ४ ॥ दृशः सञ्चारमात्रेण हरन्ति सुदृशो मनः। यदि स्याज्जातु संश्लेषो जीवितेच्छा पुनः कुतः ॥ ५ ॥ नान्यः स्यान्मादृशः कश्चिद्विधाता तपसोर्जितः। इत्येव विहिताः कान्ता मुनीनामपि मोहदाः ॥ ६ ॥ नाभिर्वापी त्रिवलिः सोपानं रोमराजिरिन्द्रमणिः। ललिताङ्ग्या उच्चकुचौ मदनशिखरबन्धमन्दिराभासौ ॥ ७ ॥ मनः सूक्ष्मं न तद्वेद्धुं शक्यं शिक्षापि कीदृशी। अथापि सुदृशो धन्या दृग्मात्रा हरन्ति याः ॥ ८ ॥ मनसिजविहरणविपिनं युवजनमनसो वशीकरं शस्त्रम्। अमृतकलासर्वस्वं कुरङ्गशावकविलोलाक्षी ॥ ९ ॥ यष्टिर्नो काञ्चनी सा नहि सुरभिभृता नापि कस्तूरिका सा नो कान्ता नाब्जिनी सा न जड (ल) विरहिता नाप्युमा सा हि भीमा। नो पद्मा सा न पद्मासनमनधिगता नापि गायत्र्यसौ यत्सा नो वेदानिदानं जनयति नितरां मोहमेषेति केयम् ॥ १० ॥ लतायाः सौवर्ण्या जयति जलदीयोपरि घटा ततोऽधोऽर्धश्चन्द्रः स्फुरति तदधश्चाम्बुजयुगम्। स्वभूयात्राभेरी विलसति पुनर्विद्रुमदलं ततः कम्बुर्वीणाध्वनिभरगभीरो बत महान् ॥ ११ ॥ वक्षोजातौ कोकौ वदनं राकाशरत्सुधासिन्धुः। तनुरेवं स्वर्णलता तन्व्या हसितं स्मरास्त्रसम्भारः ॥ १२ ॥ वशिनो वयमित्यास्था तावदेव तपस्विनाम्। यावन्न तरुणीनेत्रपद्मयोर्लक्ष्यतां गताः ॥ १३ ॥ वामां मृषैव सुमुखीति वदन्ति बालाः किं तत्र तत्त्वमिति न प्रतिभासते नः। किं त्वीदृशीं स्मृतवतामपि मार्गगानां संवर्धते सपदि चेतसि कोऽपि दाहः ॥ १४ ॥ वामाः सुदृशः कथमिव

और गोल हैं, शङ्ख तुम्हारे गलेके समान सुन्दर है और मोर तुम्हारे केश के समान हैं, तब बताओ तुम्हारी समानता कहाँ नहीं है ॥ ४ ॥ जो सुनयनी बालाएँ अपनी चितवन चलाकर ही मन हर लेती हैं उनका यदि कहीं आलिङ्गन प्राप्त हो जाय तब तो इतनी तृप्ति हो जाय कि जीनेतककी इच्छा न रह जाय ॥ ५ ॥ ब्रह्माने मुनियोंतकका मन मोहित कर डालनेवाली तरुणियोंकी रचना मानो इस अभिमानसे की कि कोई तपस्या करके भी मुझ जैसा रचयिता नहीं बन सकता ॥ ६ ॥ मनोहर बालाके सब अङ्ग अत्यन्त सुन्दर हैं। इसकी नाभि मानो बावड़ी है, जिसके ऊपर बनी हुई तीन सलवटें ही सीढ़ियाँ हैं, रोमावली ही इन्द्रनीलमणिसे जड़ी हुई बटिया है और उसके ऊँचे-ऊँचे स्तन मानो कामदेवके निवासके लिये ऊँचे शिखरवाले मन्दिर हैं ॥ ७ ॥ मन इतना सूक्ष्म है कि किसी प्रकारकी शिक्षा पाकर भी कोई उसे वेध नहीं सकता (जान नहीं सकता) किन्तु धन्य हैं वे सुनयनी नारियाँ जो केवल देखने-मात्रसे उस मनको हर लेती हैं ॥ ८ ॥ कवि सोचता है कि मृगके छौनेके नेत्रोंके समान चञ्चल नेत्रोंवाली यह बाला कामदेवके विहारका उपवन है या युवकोंका मन फँसानेवाला कोई यन्त्र है या सम्पूर्ण कलाओंसे भरा हुआ अमृत है ॥ ९ ॥ एक नवेलीको देखकर कवि सोचता है कि 'यह सोनेकी छड़ी भी नहीं है, न यह सुगन्ध-भरी कस्तूरी ही है, न यह प्रियङ्गु-लता ही है, न यह कमलिनी ही है क्योंकि वह जल-रहित नहीं होती, न यह पार्वती है क्योंकि वे तो बहुत भयङ्कर (काली) हैं, यह लक्ष्मी भी नहीं है क्योंकि पद्मासनपर नहीं बैठी है, यह गायत्री भी नहीं है क्योंकि उसका ठिकाना वेदोंने भी नहीं बताया है, तब यह कौन है जो हमें अपनी ओर आकृष्ट किए डाल रही है !' ॥ १० ॥ उस सोनेकी लता (नवेली) की जय हो जिसके ऊपर (सिरपर) मेघकी घटाएँ (केश) उमड़ रहीं हैं, नीचे आधा चन्द्रमा (माथा) चमक रहा है, उससे नीचे दो कमल (नेत्र खिले हुए हैं, उससे नीचे कामदेवकी विजय-यात्रामें बजनेवाली भेरी (नाक) विराजमान है, उससे नीचे मूँगेकी पंखुड़ियाँ हैं और उससे भी नीचे वीणाके समान मधुर वाणीवाला शङ्ख (गला) शोभा दे रहा है ॥ ११ ॥ उस पतली कामिनीकी देह ऐसी सोनेकी लता है जिसपर उठे हुए स्तन ऐसे लगते हैं मानो चकवेका जोड़ा बैठा हो, मुख ऐसा लगता है मानो उस लतापर खिला हुआ शरद् ऋतुका अमृतमय पूर्ण चन्द्र हो और जिसके खिलते (हँसते) ही ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेवने अपने अस्त्र-शस्त्र सँभाल लिए हों ॥ १२ ॥ तपस्वियोंको तभीतक अपनी इन्द्रियाँ अपने वशमें समझनी चाहिएँ जबतक वे किसी युवतीके कमलनयनोंके आखेट नहीं बन जाते ॥ १३ ॥ वे लोग मूर्ख हैं जो झूठे ही नारीको 'सुमुखी' कहते हैं। हमें तो आजतक यही समझमें नहीं आया कि उनमें सुमुखी होनेके लक्षण क्या हैं। उलटे हमने तो यह देखा है कि विदेशमें गए हुए पथिक जहाँ अपनी नारीको स्मरण करते हैं वहाँ तुरन्त उनके हृदयमें एक विचित्र दाह उत्पन्न होकर बढ़ने लगता है ॥ १४ ॥ केवल मूर्ख लोग ही इन नवेलियोंको सुनयनी कहते हैं क्योंकि वे उलटे चालवाली नवेलियाँ कैसे सुनयनी कही जा सकती हैं,

तथापि मूढा वदन्ति हन्त तथा। यद्दर्शनमुपयाताः सकला विकला महान्तोऽपि ॥ १५ ॥ शृङ्गाररससरसाशाला भव्याभरणा नितम्बविस्तारा। रतिरिव परिस्फुरन्ती हरति न बाला मनः कस्य ॥ १६ ॥ सौन्दर्यसारमपहृत्य यतस्ततोऽपि निर्माति पद्मनयनां द्रुहिणः कथञ्चित्। ज्योत्स्नाकरादिषु यदम्बररोचिरास्ते तत्सम्भवो हि तत एव न चान्यथा स्यात् ॥ १७ ॥ हेतिरिव होलिकायां विद्युदिव द्योतमानकान्तिचया। शारदपार्वणचन्द्रं विदार्य निष्कासितेव सुतनुः ॥ १८ ॥

नायिकाभेदाः

स्वीयामुग्धा—कुलबालिकायाः प्रेक्षध्वं यौवनलावण्यविभ्रमविलासाः। प्रवसन्तीव प्रवसिते आगच्छन्तीव प्रिये गृहमागते ॥ १ ॥ *स्वीयामध्या*—हसितमविचारमुग्धं भ्रमितं विरहितविलाससुच्छायम्। भणितं स्वभावसरलं धन्यानां गृहे कलत्राणाम् ॥ २ ॥ *स्वीया-प्रगल्भा*—लज्जापर्याप्तप्रसाधनानि परतृप्तिनिष्पिपासानि। अविनयदुर्मेधांसि धन्यानां गृहे कलत्राणि ॥ ३ ॥ *वयोमुग्धा*—विस्तारी स्तनभार एष गमितो न स्वोचितामुन्नतिं रेखोद्भासिकृतं वलित्रयमिदं न स्पष्टनिम्नोन्नतम्। मध्येऽस्या ऋजुरायतार्धकपिशा रोमावली निर्मिता रम्यं यौवनशैशवव्यतिकरोन्मिश्रं वयो वर्त्तते ॥४॥ *काममुग्धा*—दृष्टिः सालसतां बिभर्त्ति न शिशुक्रीडासु बद्धादरा श्रोत्रे प्रेषयति प्रवर्त्तितसखीसम्भोगवार्त्तास्वपि। पुंसामङ्कमपेतशङ्कमधुना नारोहति प्राग्यथा बाला नूतनयौवनव्यतिकरावष्टभ्यमाना शनैः ॥ ५ ॥ *रतवामा*—व्याहृता प्रतिवचो न सन्दधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका। सेवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ॥ ६ ॥ दृष्टा दृष्टिमधो ददाति कुरुते

जिनकी दृष्टि पड़ते ही बड़ेसे बड़े लोग भी व्याकुल हो जाते हैं ॥ १५ ॥ यह सुन्दर आभूषणोंसे सजी, बड़े-बड़े नितम्बोंवाली तथा रतिकी भाँति चमकनेवाली बाला किसका मन नहीं हर लेती जो शृङ्गार रसके मदिरालयके समान मदिर है ॥१६॥ ब्रह्मा इधर-उधरसे सौन्दर्यका तत्त्व चुराकर तब कहीं किसी कमलनयनीको बनाता है। ये जो आकाशमें चमकनेवाले चन्द्रमा आदि हैं वे सब भी तो उसी कमलनयनीसे उत्पन्न हुए हैं और वहींसे बने हैं, नहीं तो ये किसी दूसरे प्रकारके होते अर्थात् इतने न चमकते ॥ १७ ॥ यह सुन्दर देहवाली नवेली ऐसी जान पड़ती है मानो जलती हुई होलीकी चिनगारी हो या चमकती हुई कान्तिसे भरी बिजली हो या शरद् ऋतुकी पूर्णिमामें उदय हुए चन्द्रमाका पेट फाड़कर उससे निकाली गई हो ॥ १८ ॥

नायिकाओंके भेद

मुग्धा स्वीया : इस कुलीन युवतीके यौवनकी सुन्दरता, चमक-दमक और हाव-भाव तो देखो कि जब उसका प्राणप्यारा घर रहता है तब तो वे इस युवतीमें रहते हैं और जब प्रियतम बाहर चलने लगता है तो वे उसके साथ ही चल देते हैं ॥ १ ॥ **स्वीया मध्या :** वे लोग धन्य हैं जिनके घरोंमें उनकी स्त्रियाँ सदा अनायास ही भोली हँसी हँसती रहती हैं, विलासकी सामग्रियोंसे रहित होकर भी वे प्रसन्न घूमती हैं और सदा स्वभावसे ही सरल तथा निश्छल वाणी बोलती हैं ॥ २ ॥ **स्वीया प्रगल्भा :** वे लोग धन्य हैं जिनके घरकी स्त्रियाँ केवल उतना ही शृङ्गार करती हैं जितना लज्जा ढकनेके लिये पर्याप्त हो, वे इतनी तृप्त रहती हैं कि उन्हें किसी वस्तुकी चाह नहीं रहती और जो कभी मनमें भी उद्दण्ड नहीं होतीं ॥ ३ ॥ **वयोमुग्धा :** इस नवेलीकी यह किशोर और युवावस्थाके मिलनकी सुन्दर स्थिति चल रही है जिसमें स्तनोंके फैलावका घेरा तो बँध गया है पर वे अपनी पूरी ऊँचाईतक नहीं पहुँच पाए हैं, पेटपर त्रिवलीकी रेखाएँ तो पड़ चुकी हैं, किन्तु वे भली-भाँति ऊँची-नीची नहीं हो पाई हैं तथा बीचमें सीधी और लम्बी रोमावली तो बन गई है पर वह अभीतक आधी भूरी ही है ॥ ४ ॥ **काममुग्धा :** नये यौवनकी चहल-पहलसे भरी हुई उस नवेलीकी दृष्टिमें क्रमसे धीरे-धीरे आलस्य आने लगा है, छोटे-छोटे बच्चोंके साथ खेलना उसे भा नहीं रहा है, सखियोंकी सम्भोग-सम्बन्धी बातोंमें वह कान लगाए रहती और जैसे पहले वह किसी भी पुरुषके गोदमें निःशङ्क होकर चढ़ जाती थी वैसे अब नहीं चढ़ती ॥ ५ ॥ **रतवामा :** यद्यपि शिवजीके कुछ पूछनेपर पार्वतीजी उत्तर नहीं देती थीं और उठकर जानेको तैयार हो जाती थीं पर उस समय उनके ढीले वस्त्र खिसकने लगते थे। इसी प्रकार यद्यपि वे शैयापर करवट बदलकर सोती थीं फिर भी उनकी इच्छा यही होती थी कि शिवजीके साथ रति करें ॥ ६ ॥ कोई अपनी प्रेयसीका वर्णन करते हुए कहता है—'मेरी प्रेयसी मिलते ही अपनी आँखें नीची कर लेती है, बार-बार बातें छेड़नेपर भी एक शब्द नहीं बोलती, पलँगपर साथ

नालापमाभाषिता शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति वलादालिङ्गिता वेपते । निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते जाता वामतयैव सम्प्रति मम प्रीत्यै नवोढा प्रिया ॥ ७ ॥ *मृदुः कोपे*—प्रथमजनिते वाला मन्यौ विकारमजानती कितवचरिते नासज्याङ्के विनम्रभुजैव सा । चिवुकमलिकं चोन्नम्योच्चैरकृत्रिमविभ्रमा नयनसलिलस्यन्दिन्योष्ठे रुदत्यपि चुम्बिता ॥ ८ ॥ सा पत्युः प्रथमापराधसमये सख्योपदेशं विना नो जानाति सविभ्रमाङ्गवलनावक्रोक्तिसंसूचनम् । स्वच्छैरच्छकपोलमूलगलितैः पर्यस्तनेत्रोत्पला वाला केवलमेव रोदिति लुठल्लोलालकैरश्रुभिः ॥ ९ ॥ *अन्येऽपि मुग्धाव्यवहाराः*—न मध्ये संस्कारं कुसुममपि वाला विषहते न निश्वासैः सुभ्रूर्जनयति तरङ्गव्यतिकरम् । नवोढा पश्यन्ती लिखितमिव भर्त्तुः प्रतिमुखं प्ररोहद्रोमाञ्चा न पिवति न पात्रञ्चलयति ॥१०॥ *समधिकलज्जावती*—दत्ते सालसमन्थरं भुवि पदं निर्याति नान्तःपुरान्नोद्दामं हसति क्षणात्कलयते ह्रीयन्त्रणां कामपि । किञ्चिद्भावगभीरवक्रिमलवस्पृष्टं मनाग्भाषते सभ्रूभङ्गमुदीक्षते प्रियकथामुल्लापयन्तीं सखीम् ॥ ११ ॥ *मध्याविचित्रसुरता प्ररूढस्मरा च*—कान्ते तथा कथमपि प्रथितं मृगादृशा चातुर्यमुद्धतमनोभवया रतेषु । तत्कूजितान्यनुवदद्भिरनेकवारं शिष्यायितं गृहकपोतशतैर्यथास्याः ॥ १२ ॥ *यौवनवती (प्ररूढयौवना)*—नेत्रे खञ्जनगञ्जने सरसिजप्रत्यर्थि पाणिद्वयं वक्षोजौ करिकुम्भविभ्रमकरीमत्युन्नतिं गच्छतः । कान्तिः काञ्चनचम्पकप्रतिनिधिर्वाणी सुधास्पन्दिनी

बैठती भी है तो मुँह फेर लेती है, यदि मैं बलपूर्वक गले भी लगाता हूँ तो काँप जाती है और उसकी सखियाँ जब उसे अकेली छोड़कर भवनसे बाहर जाने लगती हैं तो वह भी उनके साथ चलनेके लिये उठ जाती है। इस प्रकार मेरी नई विवाहिता प्रिया जो यह सब उलटा आचरण करती है उससे भी मुझे बड़ा सुख मिलता है' ॥ ७ ॥ **मधुर कोपवाली :** किसी नवेलीका पति पहली बार जब किसी दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके लौटा उस समय उस नवेलीको यह तो ज्ञात था नहीं कि अपने पतिपर क्रोध आनेपर क्या-क्या करना चाहिए अतः वह अपनी भुजाएँ तो ढीली किए रही किन्तु पतिकी गोदमें नहीं बैठी और आँसू बहाकर रोने लगी। उस समय उसके पतिने अपनी उस रोती हुई स्वाभाविक व्यवहार करनेवाली प्रियतमाकी ठोड़ी उठाकर उसका ओठ चूमकर उसे मना लिया ॥ ८ ॥ जब उस नई नवेलीका पति दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके लौटा उस समय उसे यह तो ज्ञात था नहीं कि ऐसे पतिके आनेपर मुँह फेर लेना चाहिए और जली-कटी बातें सुनानी चाहिएँ क्योंकि किसी सखीने ये बातें उसे सिखाई ही नहीं थीं। किन्तु वह अपने सुन्दर गालोंपर गिरते हुए और घुँघराले बालोंसे उलझे हुए मोतियोंके समान स्वच्छ आँसू बहाकर व्याकुल होकर केवल रोती रही ॥ ९ ॥ **मुग्धाके अन्य व्यवहार :** वह नई ब्याही हुई सुन्दर भौंहोंवाली नवेली अपने प्रियतमपर रीझकर इतनी मस्त हो गई है कि वह अपने और प्रियतमके हृदयोंके बीचमें बाधा देनेवाली फूलोंकी मालातक भी अपने गलेमें नहीं पहनती और वह इसलिये लम्बी साँसें नहीं लेती कि उससे वस्त्र उड़कर प्रियके दर्शनमें बाधा न पहुँचा दे। अतः वह चित्रमें बनी हुई-सी स्थिर होकर एकटक प्रियका मुँह देख रही है, उसे रोमाञ्च हो आया है जिससे वह अपने प्रियके दिए हुए आसवके प्यालेको न तो पीती ही है न हटाती ही है ॥ १० ॥ **अधिक लज्जावाली :** जिस नायिकाके मनमें पहली बार कामका विकार उत्पन्न हुआ है और जो बहुत लजीली है वह धीरेसे अपने डगमग पैर धरतीपर रखती चलती है, रनिवाससे बाहर नहीं निकलती, खिलखिलाकर हँसती नहीं, थोड़ी - थोड़ी देरमें विचित्र प्रकारसे झेंपकर ठक् रह जाती है, बहुत धीरेसे गम्भीर भावोंवाले कुछ चमत्कार-भरे थोड़े वचन बोलती है और जब उसकी सखी उससे प्रियतमकी कथा कहने लगती है तब उसकी ओर आँखें तरेरने लगती है ॥ ११ ॥ **मध्या विचित्रसुरता तथा प्ररूढस्मरा :** अत्यन्त कामोत्तेजित मृगनयनीने ऐसा चमत्कार दिखाया कि उसने रतिके समय जो अनेक बार मुँहसे ध्वनियाँ निकालीं उन्हें सुनकर ऐसा जान पड़ता था मानो उसके घरके कबूतरोंने अपनी 'गुटरगूँ' उसी प्रकार सीखी हो जैसे वेदपाठियोंके शिष्य गुरुका उच्चारण सुनकर उसका अनुकरण करते हैं ॥ १२ ॥ **यौवनवती या प्ररूढयौवना :** उस सुन्दरीके नयन खञ्जनकी चञ्चलताको परास्त कर रहे हैं, दोनों हाथ कमलोंको चुनौती देते हैं, दोनों स्तन हाथीके मस्तकके समान अत्यन्त उन्नत हैं, शरीरकी चमक स्वर्ण और चम्पाके फूलके समान है, मधुर वाणी अमृतकी लहर उठानेवाली है और उसकी चितवनकी छटा खिले

स्मेरेन्दीवरदामसोदरवपुस्तस्याः कटाक्षच्छटा ॥ १३ ॥ *कामवती*—स्मरनवनदीपूरेणोढाः पुनर्गुरुसेतुभिर्यदपि विधृतास्तिष्ठन्त्याराद्पूर्णमनोरथाः । तदपि लिखितप्रख्यैरङ्गैः परस्परमुन्मुखा नयननलिनीनालाकृष्टं पिबन्ति रसं प्रियाः ॥ १४ ॥ *मध्यासम्भोग*—तावदेव रतिसमये महिलानां विभ्रमा विराजन्ते । यावन्न कुवलयदलस्वच्छभानि मुकुलयन्ति नयनानि ॥ १५ ॥ *मध्यामानसवृत्त*—न खलु वयममुष्य दानयोग्याः पिबति च पाति च यासकौ रहस्त्वाम् । व्रज विटपममुं ददस्व तस्यै भवतु यतः सदृशोश्चिराय योगः ॥ १६ ॥ *मध्याऽधीरा*—तदवितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति प्रियजनपरिभुक्तं यद्दुकूलं दधानः । मदधिवसतिमागाः कामिनां मण्डनश्रीर्व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन ॥ १७ ॥ *मध्याधीराधीरा*-बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान्सर्वेऽपराधा मयि । तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥ १८ ॥ *अधीरा*—यातु यातु किमनेन तिष्ठता मुञ्च मुञ्च सखि मादरं कृथाः । खण्डिताधरकलङ्कितं प्रियं शक्नुमो न नयनैर्निरीक्षितुम् ॥१९॥ सार्धं मनोरथशतैस्तव धूर्त्त कान्ता सैव स्थिता मनसि कृत्रिमहावरम्या । अस्माकमस्ति नहि कश्चि-

---

हुए नीले कमलोंकी मालाके समान सुशोभित है ॥ १३ ॥ **कामवती :** कामके आवेगकी नई नदीकी बाढ़से मतवाली नवेलियाँ यद्यपि दूर होनेसे और घरके बड़े लोग-रूपी पुलोंके कारण अपना मनोरथ पूर्ण नहीं कर पातीं फिर भी ये प्यारी नारियाँ अपने प्यारेके सम्मुख होकर नेत्र-रूपी कमलिनीकी नालसे खींचकर अपने चित्रित अङ्गोंसे प्रियका रस पी रही हैं ॥ १४ ॥ **मध्या-सम्भोग :** रतिके समय इन नवेलियोंके हाव-भाव तभीतक भले जान पड़ते हैं जबतक कमलके समान स्वच्छ कान्तिवाले इनके नेत्र मुँद नहीं जाते ॥१५॥ **मध्याके मनकी रुचि :** कोई नायक किसी दूसरी स्त्रीके साथ रमण करके वहाँसे कुछ सुन्दर पत्ते बटोरकर ले आया है और अपनी रूठी हुई प्रेयसीको पत्ते देकर मनाना चाहता है, इसपर वह उसे फटकारती हुई दुहरे अर्थके साथ कहती है कि 'आप जो पत्ते लाए हैं उन्हें ले जाकर उसी वृक्षको सौंप आइए जो इनके सहारे पानी खींचता है और उनकी रक्षा करता है। हम इन्हें लेने योग्य नहीं है। ये वृक्षके साथ रहेंगे तो उसके साथ उनका ठीक मेल भी होगा।' दूसरे अर्थमें वह कहती है कि 'ये पत्ते हमारे किस कामके हैं ?. जाइए, इन्हें ले जाकर उस विटप (तुम्हारे जैसे विटों अर्थात् धूर्त्तोंको पालनेवाली) को जाकर दे आइए, जो अकेलेमें तुम्हारे जैसोंको छिपाकर रखती है और तुम्हारे ओठोंका रस लेती है। इन्हें ले जाकर उसीको दीजिए जिससे जैसेको तैसा देकर तुम्हारी अच्छी जोड़ी बैठ जाय' ॥ १६ ॥ **मध्या अधीरा :** दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके लौटे हुए और उसकी धाती लपेटे हुए अपने प्रियसे नायिका कहती है—'आपने मुझे ठीक ही कहा था कि तुम मेरी प्रिया हो इसीलिये तो मेरी प्यारी (शत्रु या सौत) के पहने हुए वस्त्र लपेटकर उसे मुझे दिखानेके लिये यहाँ ले आए हो क्योंकि कामियोंका शृङ्गार तो प्यारीके देखनेपर ही सफल होता है'॥१७॥ **धीर और अधीर मध्या :** दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके लौटा हुआ नायक अपनी प्रेयसीसे पूछ रहा है और वह उत्तर दे रही है— **नायक :** बाले ! **नायिका :** हाँ, नाथ ! **नायक :** हे रूठनेवाली ! यह रूठना छोड़ो। **नायिका :** रूठूँगी भी तो आपका क्या बिगाड़ लूँगी ? **नायक :** तुम्हारे रूठनेसे मेरा जी कसमसाने लगता है। **नायिका :** जी हाँ, आपका कुछ दोष थोड़े ही है, सब अपराध मेरा ही है। **नायक :** तब यह रूँधे गलेसे सुबक - सुबककर आँसू क्यों बहा रही हो ? **नायिका :** मेरा कौन है जिसके आगे आँसू बहाऊँगी ? **नायक :** क्यों, अभी मेरे ही सामने रो रही हो। **नायिका :** पर मैं आपकी होती कौन हूँ ? **नायक :** क्यों, तुम मेरी प्यारी हो न ? **नायिका :** अब प्यारी नहीं रह गई यही तो रोना हो गया है ॥ १८ ॥ **अधीरा :** किसी दूसरी स्त्रीसे भोग करके आए हुए प्रियको नायिकाकी जो सखी बहला-फुसला रही है, उसपर खीझकर नायिका कहती है—'अजी जाने भी दो, इनके यहाँ बैठने रहनेसे क्या होगा ? छोड़ दो, इन्हें बहुत सिरपर न चढ़ाओ। इनके निचले ओठपर यह घाव नहीं देखती हो, ऐसा भी कहीं प्रिय होता है ? ऐसोंकी ओर तो मैं आँख उठाकर भी नहीं देखना चाहती' ॥ १९ ॥ दूसरी स्त्रीके साथ सम्भोग करके लौटा हुआ एक नायक अपनी प्रेयसीको मनानेके लिये उसके पैरोंपर गिर रहा है, इसपर वह कहती है—'जाइए, यह पैरोंपर गिरनेका नाटक किसी औरको दिखाइएगा। बस रहने दीजिए धूर्त्तराज ! आपके जिस हृदयमें सैकड़ों प्रकारकी कामक्रीड़ाके मनोरथोंके साथ बनावटी हाव-भाव दिखानेवाली

दिहावकाशस्तस्मात्कृतं चरणपातविडम्बनाभिः ॥२०॥ *व्रीडानुपाहतामध्याव्यवहारा*—स्वेदाम्भःकणिकाञ्चितेऽपि वदने जातेऽपि रोमोद्गमे विश्रम्भेऽपि गुरौ पयोधरभरोत्कम्पेऽपि वृद्धिं गते। दुर्वारस्मरनिर्भरेऽपि हृदये नैवाभियुक्तः प्रियस्तन्वङ्ग्या हठकेशकर्षणघनाश्लेषामृते लुब्धया ॥ २१ ॥ *प्रगल्भागाढयौवना*—अत्युन्नतस्तनमुरो नयने च दीर्घे वक्रे भ्रुवावतितरां वचनं ततोऽपि। मध्योऽधिकं तनुरतीव गुरुर्नितम्बो मन्दा गतिः किमपि चाद्भुतयौवनायाः ॥ २२ ॥ *स्मरान्धा*—धन्यासि या कथयसि प्रियसङ्गमेऽपि विश्रब्धचाटुकशतानि रतान्तरेषु। नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि ॥ २३ ॥ *भावप्रगल्भा*—न जाने सम्मुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये। सर्वाण्यङ्गानि किं यान्ति नेत्रतामुत कर्णताम् ॥ २४ ॥ *रतप्रगल्भा*—कान्ते तल्पमुपागते विगलिता नीवी स्वयं बन्धनाद्वासः प्रश्लथमेखलागुणधृतं किञ्चिन्नितम्बे स्थितम्। एतावत्सखि वेद्मि केवलमहं तस्याङ्गसङ्गे पुनः कोऽसौ कास्मि रतं नु किं कथमिति स्वल्पापि मे न स्मृतिः ॥ २५ ॥ क्वचित्ताम्बूलाक्तः क्वचिदगरुपङ्काङ्कमलिनः क्वचिच्चूर्णोद्गारी क्वचिदपि च सालक्तकपदः। वलीभङ्गाभोगैरलकपतितैः शीर्णकुसुमैः स्त्रियाः सर्वावस्थं कथयति रतं प्रच्छदपटः ॥ २६ ॥ *स्वल्पपीडा*—दर्पणेषु परिभोगदर्शिनीर्नर्मपूर्वमनुपृष्ठसंस्थितः। छायया स्मितमनोज्ञया

कोई दूसरी धूर्त स्त्री बसी हुई है, उसमें हमारी जैसियोंके लिये कहाँ स्थान होगा' ॥ २० ॥ **लज्जासे युक्त मध्याके व्यवहार :** यद्यपि उस दुबली-पतली नायिकाके मुखपर पसीनेकी बूँदें झलक आई हैं, रोएँ फरफरा उठे हैं, वह अत्यन्त प्रेम और विश्वास भी दिखला रही है, उसके बड़े-बड़े स्तन भी वेगसे काँपने लगे हैं, उसके हृदयमें कामका वेग भी प्रबल हो गया है और वह बलपूर्वक बाल खींचकर और कसकर छातीसे लगानेका रस लेनेके लिये भी व्याकुल है, फिर भी दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके आया हुआ उसका प्रिय लज्जाके मारे उससे खुलकर प्रेमलीला नहीं कर पा रहा है ॥ २१ ॥ **प्रगल्भा : गाढ़यौवना :** उस नवेलीकी छातीपर उठे हुए स्तन बड़े-बड़े हैं, उसकी आँखें अत्यन्त रसीली और बड़ी-बड़ी हैं, उसकी भौंहें कामदेवके धनुषके समान टेढ़ी हैं, उसके बोलनेका ढङ्ग और उसकी बातें उन भौंहोंसे भी अधिक टेढ़ी हैं, उसकी कमर अत्यन्त पतली है, उसके नितम्ब अत्यन्त भारी-भारी हैं और उसकी चाल राजहंसके समान मनको मोहित करनेवाली अत्यन्त धीमी है। सचमुच उस अनोखे यौवनवालीका सब कुछ निराला ही है ॥ २२ ॥ **कामान्धा :** एक सखी किसी नायिकाको बता रही है कि अपने प्रियके साथ सम्भोग करते समय मैं इस प्रकारके हाव-भाव और मीठी-मीठी बातें किया करती हूँ। इसे सुनकर वह नायिका कहती है—'हे सखी! तू सचमुच धन्य है कि अपने प्रियके साथ सम्भोग करते समय इतने धीरजके साथ सैकड़ों नये-नये हाव-भाव और प्रेमकी बातें किया करती है। मेरी तो यह दशा हो जाती है कि जैसे ही प्रियतम मेरी कमरकी गाँठमें हाथ लगाता है वैसे ही सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं सब सुधबुध भूल जाती हूँ' ॥ २३ ॥ **भाव-प्रगल्भा :** एक नायिका अपने प्रियसे मिलनेके समयकी दशा बता रही है कि 'जब प्रियतम मेरे पास आकर मुझसे प्यार भरी बातें करने लगते हैं तब मुझे यही नहीं समझ पड़ता कि मेरे सारे अङ्ग नेत्र बन गए हैं या कान बन गए हैं अर्थात् मैं एकटक होकर उन्हें देखती रहती हूँ और उनकी बातोंमें अपनी सब सुध-बुध खोकर मग्न हो जाती हूँ' ॥ २४ ॥ **रतप्रगल्भा :** अपनी सखीसे अपने सम्भोगका वर्णन करती हुई नायिका कहती है—'हे सखी! जैसे ही मेरा प्रियतम पलँगपर आता है वैसे ही मेरी धोतीकी गाँठ अपने-आप ढीली पड़ जाती है और पैरोंके नीचेतक पहने हुए वस्त्र अपने आप मेरी करधनीकी डोरीमें फँसकर नितम्बके ऊपर ही रह जाते हैं, बस इतना तो मैं जानती हूँ, इसके पश्चात् जब मेरा प्रियतम मेरे अङ्ग छूने लगता है तब तो मुझे यह भी सुध नहीं रह जाती कि यह कौन है, मैं कौन हूँ और यह सब क्या हो रहा है ॥ २५ ॥ नायक-नायिकाने जो कई आसनोंसे सम्भोग किया है उसके चिह्नोंसे सजी हुई चादरका वर्णन कोई सखी करती है कि 'पलँगपर बिछे हुए इस बिछावनपर कामिनीने अपने प्रियके साथ अनेक आसनोंके साथ अनेक प्रकारकी काम-क्रीड़ाएँ की हैं क्योंकि यह बिछावन कहीं तो पानसे रँगा है, कहीं अगरके लेपसे काला पड़ गया है, कहीं गालों और बालोंपर लगा हुआ चूर्ण बिखरा पड़ा है, कहीं पैरके महावरकी छाप बनी है, कहीं उसके पेटकी त्रिवलीकी छाप है और कहीं उसके बालोंसे खिसके हुए फूल पड़े हुए हैं' ॥ २६ ॥ **झेंपनेवाली :** जब कभी

वधूह्रींनिमीलितमुखीश्चकार सः ॥२७॥ *आक्रान्तनायका*—स्वामिन्भङ्गुरयालकं सतिलकं भालं विलासिन्कुरु प्राणेश त्रुटितं पयोधरतटे हारं पुनर्योजय। इत्युक्त्वा सुरतावसानसमये सम्पूर्णचन्द्रानना स्पृष्टा तेन तथैव जातपुलका प्राप्ता पुनर्मोहनम्॥२८॥ *अस्या कोपचेष्टाः*—अङ्गुलीकिसलयाग्रतर्जनं भ्रूविभङ्गकुटिलञ्च वीक्षितम्। मेखलाभिरसकृच्च बन्धनं वञ्चयन्प्रणयिनीरवाप सः ॥ २९ ॥ *सावहित्था दारा*—एकत्रासनसंस्थितिः परिहृता प्रत्युद्गमाद्दूरतस्ताम्बूलाहरणच्छलेन रभसाश्लेषोऽपि संविघ्नितः। आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं व्यापारयन्त्यान्तिके कान्तं प्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृतार्थीकृतः ॥ ३० ॥ *रतावुदासीना*—आयस्ता कलहं पुरेव कुरुते न स्रंसने वाससो भग्नभ्रूगतिखण्ड्यमानमधरं धत्ते न केशग्रहे। अङ्गान्यर्पयति स्वयं भवति नो वामा हठालिङ्गने तन्व्या शिक्षित एष सम्प्रति कुतः कोपप्रकारोऽपरः ॥ ३१ ॥ *अधीरप्रगल्भा*—कोपात्कोमललोलबाहुलतिकापाशेन बद्ध्वा दृढं नीत्वा केलिनिकेतनं दयितया सायं सखीनां पुरः। भूयोऽप्येवमिति स्खलत्कलगिरा संसूच्य दुश्चेष्टितं धन्यो हन्यत एष निह्नुतिपरः प्रेयान्रुदन्त्या हसन् ॥ ३२ ॥ *धीराधीरप्रगल्भा*—कोपो यत्र भ्रुकुटिरचना निग्रहो यत्र मौनं यत्रान्योन्यस्मितमनुनयो दृष्टिपातः प्रसादः। तस्य प्रेम्णस्तदिदमधुना

नायककी प्रेमिकाएँ दर्पणके आगे खड़ी होकर आपसमें दाँत काटने या चूँटने आदिके सम्भोग-चिह्न देखने लगती थीं तब वह नायक उनके पीछे चुपकेसे आकर खड़ा हो जाता और मुस्करा देता था। अतः जब उसका प्रतिबिम्ब भी दर्पणमें उन नवेलियोंको दिखाई दे जाता तो वे झेंपकर लजा जाती थीं ॥ २७ ॥ **आक्रान्तनायका** : सम्भोग कर चुकनेके पश्चात् चन्द्रमुखी नायिका अपने प्रियसे कहती है 'हे विलासी स्वामी! मेरे बाल तो ठीक कर दीजिए, मेरे माथेपर तिलक तो लगा दीजिए और स्तनोंपर टूटे हुए इस हारको पुनः बाँध तो दीजिए।' यह सुनकर ज्यों ही नायकने यह सब करनेके लिये उसका स्पर्श किया त्यों ही उस नायिकाके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वह फिर अपने प्रियपर लट्टू हो गई ॥ २८ ॥ **इसकी कोप-चेष्टाएँ** : जब कभी वह नायक उन कामिनियोंको धोखा या चकमा दे जाता था तब वे बिगड़कर अपनी लाल-लाल उँगलियाँ चमकाकर उसे धमकाती थीं, उसपर भौंहें तरेरती थीं और अपनी करधनीसे उसे बाँध रखती थीं ॥ २९ ॥ **सावहित्था दारा** : किसी नायिकाका प्रिय जब दूसरी स्त्रीके साथ सम्भोग करके लौटा तो उसने बड़े कौशलसे उसके प्रति अपना क्रोध प्रकट किया। जैसे ही उसने अपने प्रियतमको आते देखा वैसे ही वह तत्काल उठ खड़ी हुई और आगे बढ़कर स्वागत करनेके बहानेसे उसने प्रियतमकी यह इच्छा नहीं पूरी होने दी कि वह नायिकाके पास आकर उसके साथ एक ही आसनपर बैठ जाता, जब वह नायक गले लगानेके लिये आगे बढ़ा तो उससे पहले ही पान ले आनेके बहाने उसने गले लगानेमें भी बाधा डाल दी और जब प्रियतमने कुछ बात चलाई तो उसकी बातका उत्तर न देनेके लिये उसने यह उपाय रचा कि वहाँ पासमें खड़े दास-दासियोंको अनेक आज्ञाएँ देने लगी कि मेरे प्रियके लिये यह करो, वह करो इत्यादि। इस प्रकार उसने अपने प्रियको बाहरी आदर भी दिखला दिया जिससे सेवकगण यह न समझें कि स्वामिनी रूठी हुई हैं और साथ-साथ अपना क्रोध भी जता दिया ॥ ३० ॥ **रतिमें उदासीन** : जब इस कोमल अङ्गोंवाली नायिकाका प्रिय उसके वस्त्र खोलने लगता है तब यह तनिक भी विरोध नहीं करती, जब वह बाल छूता है तो भौंहें नहीं तरेरती, न ओठ दबाकर सी-सी करती है, वरन् अपने आप अपने सब अङ्ग ढीले कर देती है और जब वह बलपूर्वक गले लगाना चाहता है तब भी कुछ आगा-पीछा नहीं करती। न जाने रूठनेका यह नया ढङ्ग इसने कहाँसे सीख लिया है ॥ ३१ ॥ **अधीर प्रगल्भा** : धन्य है वह पुरुष, जिसे सायङ्काल उसके लौटनेपर उसकी प्रियतमा (दूसरी स्त्रीके साथ उसके सम्भोग करनेका समाचार पाकर) खीझसे रोती हुई अपनी कोमल और चञ्चल भुजा-रूपी लताओंमें कसकर, सखियोंके सामने ही उसका सब कुकर्म सुना-सुनाकर, लटपटाती हुई सुन्दर वाणीसे 'फिर ऐसा करोगे?' कहकर डाटती हुई क्रीड़ाभवनमें ले जाकर उसकी कुटम्मस करती है और वह भी हँसता हुआ झूठी बातें बना-बनाकर अपना अपराध छिपाए जाता है ॥ ३२ ॥ **धीराधीरा प्रगल्भा** : दूसरी स्त्रीके साथ सम्भोग करके आए हुए अपने प्रियसे नायिका कहती है—'जहाँ हम लोगोंमें इतना गाढ़ा प्रेम था कि यदि हममेंसे कोई रूठ भी जाता था तो अधिकसे अधिक भौंहें-भर टेढ़ी कर लेते थे, मनचाही बात न हुई तो चुप हो रहते थे, रूठनेपर मुस्करा भर देनेसे मान जाते थे और जहाँ एक दूसरेको देखते थे वहाँ खिल उठते थे। वह

वैशसं पश्य जातं त्वं पादान्ते लुठसि न च मे मन्युमोक्षः खलायाः ॥ ३३ ॥ *ज्येष्ठाकनिष्ठे*—दृष्ट्वैकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरादेकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छलः। ईषद्वक्रितकन्धरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसामन्तर्हासलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां चुम्बति ॥ ३४ ॥ *नायकान्तरसम्बन्धिनी*—दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यन्यस्मिन्गृहे दास्यति प्रायेणास्य शिशोः पिता न विरसः कौपीरपः पास्यति। एकाकिन्यपि यामि तद्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं नीरन्ध्रास्तनुमालिखन्तु जरठच्छेदानलग्रन्थयः ॥३५॥ *कन्या*—मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च। रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये ॥ ३६ ॥ *परकाया*—स्वामी निःश्वसितेऽप्यसूयति मनोजिघ्रः सपत्नीजनः श्वश्रूरिङ्गितदैवतं नयनयोरीहालिहो यातरः। तद्दूरादयमञ्जलिः किमधुना दृग्भङ्गिभावेन ते वैदग्धीमधुरप्रबन्धरसिक व्यर्थोऽयमत्र श्रमः ॥ ४७ ॥

अष्टनायिकाः

अभिसारिका—अम्भोजाद्याः पुरनवलताधाम्नि सङ्केतभाजश्चेतोनाथे चिरयति भृशं मोहनिद्रां गतायाः। स्वच्छं नाभीह्रदवलयितं कान्तरत्नांशुजालं तोयभ्रान्त्या पिबति हरिणी विस्मयश्च प्रयाति ॥ १ ॥ उरसि निहितस्तारो हारः कृता जघने घने कलकलवती काञ्ची पादौ रणन्मणिनूपुरौ। प्रियमभिसरस्येवं मुग्धे त्वमाहतडिण्डिमा यदि किमधिकत्रासोत्कम्पं दिशः समुदीक्षसे ॥ २ ॥ जनो दुर्लक्ष्योऽयं कुलममलिनं वर्त्म

गाढ़ा प्रेम अब यहाँतक बिगड़ गया है कि तुम मेरे पैरोंपर लोट रहे हो और मुझ दुष्टाका क्रोध ही नहीं ठण्ढा हो पा रहा है ॥ ३३ ॥ **बड़ी और छोटी प्रेयसी एक साथ :** किसी धूर्त नायककी छोटी और बड़ी प्रेमिकाएँ साथ-साथ एक पलँगपर बैठी हुई थीं। उसने उनके साथ प्रेमभरी छेड़-छाड़ करनेके लिये पीछेसे आकर खेलके बहाने एककी तो आँखें मूँद लीं (जिससे उसे विश्वास हो गया कि मेरा प्रिय मुझे ही चाहता है) और थोड़ा सिर घुमाकर प्रेमसे पुलकित और मुस्कराती हुई दूसरी प्रेयसीका मुँह चूम लिया ॥३४॥ **दूसरे नायकसे प्रेम करनेवाली स्त्री :** एक नायिका किसी दूसरे पुरुषसे आबनूसके वृक्षोंसे छाए हुए सोतेपर मिलनेका वचन दे आई है। वहाँ जानेका कुछ दूसरा ही कारण अपनी पड़ोसिनको समझाती हुई वह कहती है कि 'हे पड़ोसिन ! मेरा घर देखती रहना क्योंकि लल्लाके बाबू (मेरे पति) यहाँके कुँएका बेस्वाद पानी नहीं पीते इसलिये शीघ्रताके मारे मुझे अकेले ही उस आबनूसके वृक्षोंसे छाए हुए पानीके सोतेपर जाना पड़ रहा है, भले ही वहाँ पुराने नरकटोंके सूखे हुए काँटे शरीरको छेद क्यों न डालें (अर्थात् वहाँ जो नखोंके चिह्न होंगे उन्हें छिपानेकी उसने पहलेसे ही भूमिका बाँध ली) ॥ ३५ ॥ **कन्या :** वह कन्या कभी तो अपनी सखियोंके साथ गङ्गाजीके बलुवे तटपर वेदियाँ बनाती थी, कभी गेंद खेलती थी कभी गुड़ियाँ बनाकर सजाती थी। इसी प्रकारके खेल-कूदमें उसका पूरा बचपन बीतने लगा ॥ ३६ ॥ **परकीया :** किसी नायिकाका दूसरा प्रेमी उसके पास आया है, उससे वह कहती है कि 'मेरे पति तो मेरे साँस लेनेपर ही खीझ उठते हैं, सौतें दिनरात मेरा मन टटोलती रहती हैं, सास बात-बातमें उँगली उठाया करती है और देवरानी-जेठानी भी हर घड़ी मेरी आँखें भाँपती रहती हैं। इसलिये हे चतुर रसिक ! अब आपकी इन भावभरी चितवनोंकी यहाँ दाल नहीं गलेगी, अब आप ये व्यर्थकी मीठी-मीठी चाटुकारी-भरी बातें कृपया यहाँ न चलाइए और दूरसे ही मेरा प्रणाम स्वीकार करके यहाँसे नौ-दो-ग्यारह होइए' ॥ ४७ ॥

आठ नायिकाएँ

अभिसारिका : वह नायिका पहलेसे निश्चय किए हुए नगरके नये लता-मण्डपमें पहुँच गई किन्तु जब बहुत देर हो जानेपर भी उसके प्रियतम नहीं आए तब वह कमलनयनी निराश होकर मूर्च्छित हो गई। उस समय उसकी गहरी नाभिपर उसके हाथके कङ्कनमें जड़े हुए रत्नोंकी चमकसे ऐसा प्रकाश हुआ मानो किसी जलाशयमें जल भरा हो। इसी भ्रमसे एक हरिणी वहाँ पहुँचकर जल पीनेके लिये मुँह बढ़ाती और आश्चर्य करती जाती थी कि मेरी प्यास क्यों नहीं बुझ रही है ! ॥ १ ॥ हे नायिका ! तुमने अपनी छातीपर यह खनखनानेवाला लम्बा हार डाल रक्खा है, अपने बड़े-बड़े नितम्बोंपर घुँघरूदार करधनी बाँध रक्खी है तथा पैरोंमें रुनझुन करनेवाले पायल पहन रक्खे हैं। इसलिये जब तुम इस प्रकार डङ्का बजाकर अपने प्रियतमसे अभिसार करने निकली हो तब अत्यन्त डरसे काँपती हुई चारों ओर देख क्या रही हो ? ॥ २ ॥ एक नायिका अपने प्रियसे सुरतके लिये पहलेसे निश्चय

विषमं पतिश्छिद्रान्वेषी प्रणयिवचनं दुःपरिहरम्। अतः काचित्तन्वी रतिविहितसङ्केतगतये गृहाद्द्वारंवारं निरगमदथ प्राविशदथ ॥३॥ पल्लीनामधिपस्य पङ्कजदृशां पर्वोत्सवामन्त्रणे जाते सद्मजना मिथः कृतमहोत्साहं पुरः प्रस्थिताः। सव्याजं स्थितयोर्विहस्य गतयोः शुद्धान्तमत्रान्तरे यूनोः स्विन्नकपोलयोर्विजयते कोऽप्येष कण्ठग्रहः ॥ ४ ॥ भ्रातः कङ्कण किं कदाप्यसि घनाश्लेषेषु विश्लेषितं दूरे किङ्किणि किं कृताप्यसि रतारम्भे रणत्कारिणि। किम्मञ्जीर वहिः कुतोऽप्यसि रहस्तल्पाधिरोहे मया सङ्केताध्वनि वद्धवैरमिव यन्मौखर्यमालम्वसे ॥ ५ ॥

कृष्णाभिसारिका—इह जगति रतीशप्रक्रियाकौशलिन्यः कति-कति न निशीथे सुभ्रुवः सञ्चरन्ति। मम तु विधिहताया जायमानस्मितायाः सहचरि परिपन्थी हन्त दन्तांशुरेव ॥ १ ॥ उत्क्षिप्तं करकङ्कणद्वयमिदं वद्धा दृढा मेखला यत्नेन प्रतिपादिता मुखरयोर्मञ्जीरयोर्मूकता। आरब्धे रभसान्मया प्रियसखि क्रीडाभिसारोत्सवे चाण्डालस्तिमिरावगुण्ठनपटक्षेपं विधत्ते विधुः ॥ २ ॥ उद्दामाम्बुदवर्धितान्धतमसि प्रभ्रष्टदिङ्मण्डले काले यामिकजाग्रदुग्रसुभटव्याकीर्णकोलाहले। कर्णस्यासुहृदार्णवाम्बुवडवावह्नेर्यदन्तःपुरादायातासि तदम्बुजाक्षि कृतकं मन्ये भयं योषिताम् ॥ ३ ॥ एषा फुल्लकदम्बनीपसुरभौ काले घनोद्भासिते कान्तस्यालयमागता समदना हृष्टा जलार्द्रालका। विद्युद्वारिदगर्जितैः सचकिता त्वद्दर्शनाकाङ्क्षिणी पादौ नूपुरलग्नकर्दमधरौ प्रक्षालयन्ती स्थिता ॥ ४ ॥ किमुत्तीर्णः पन्थाः कुपित-

---

किए हुए स्थानपर जानेके लिये घरसे बाहर पैर रखती है और फिर भीतर आ जाती है क्योंकि उसका दुविधामें पड़ा हुआ मन सोच रहा है कि 'उसके पास जाना भी अवश्य चाहिए क्योंकि ऐसा प्रेमी मिलता बड़ी कठिनाईसे है, उधर मेरा कुल भी पवित्र है, मार्ग भी बीहड़ है और मेरे पति भी बहुत मीन-मेख निकालनेवाले हैं, साथ ही अपने प्रेमीकी वात भी नहीं टाली जाती' ॥ ३ ॥ किसी गाँवके मुखियाके घरकी स्त्रियाँ कोई उत्सव मना रही थीं, जिसके निमन्त्रणपर घरके सभी लोग बड़ी धूमधामके साथ गाँवके बाहर चले गए थे किन्तु वे तरुण और तरुणी, दोनों किसी बहानेसे रुक गए और घरके भीतर पसीनेसे तर-बतर गालवाले वे दोनों विचित्र रूपसे एक दूसरेके गले लगने लगे ॥ ४ ॥ अपने प्रियसे मिलनेके लिये जाती हुई नवेली अपने बजते हुए गहनोंसे कहती है—'हे भाई कङ्गन! अपने प्रियसे कसकर आलिङ्गन करते समय क्या कभी मैंने तुम्हें उतार दिया था? हे घुँघरू! सुरतके प्रारम्भमें जब तुम बजती थीं तब क्या तुम्हें मैंने अपने शरीरसे कभी अलग किया था और हे पायल! अपने प्यारके पलङ्गपर चढ़ते समय क्या मैंने कभी तुम्हें दूर निकाल फेंका था कि जिसमें आज तुम सब सङ्केतके मार्गमें शत्रु वनकर बराबर चिल्लाते जा रहे हो' ॥ ५ ॥

कृष्णाभिसारिका : एक नायिका अपनी सखीसे अपनी कठिनाई बताती हुई कहती है कि 'इस संसारमें न जाने कितनी कामक्रीड़ामें चतुर स्त्रियाँ रातको अपने प्रेमियोंसे मिलनेके लिये घूमती रहती हैं पर मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि (मैं काली रातमें काले कपड़े पहनकर भी चलती हूँ तो) मेरी हँसीसे खिले हुए मेरे दाँतोंकी चमक ही मेरा शत्रु वन जाती है (अर्थात् मुझे पहचनवा देती है)' ॥ १ ॥ एक नायिका अपनी सखीसे कहती है कि 'हे प्यारी सखी! अपने प्यारेसे मिलनेके लिये मैंने इतने उपाय किए कि अपने हाथके दोनों कड़े ऊपर कसकर खिसका लिए, करधनी कसकर बाँध ली, अपने बजते हुए पायलोंको बड़े कौशलसे चुपकर रक्खा पर इस चाण्डाल चन्द्रमाको तो देखो कि ज्यों ही मैं झटपट अपने प्रियके पास जानेको तैयार हुई त्योंही इस निगोड़ेने अँधेरेका परदा खींचकर चारों ओर चाँदनी फैला दी' ॥ २ ॥ मिलनेके स्थानपर पहुँची हुई अपनी प्यारीसे नायक कहता है कि 'इस समय उमड़े हुए बादलोंके कारण इतना घनघोर अँधेरा हो गया है कि दिशाएँतक नहीं सूझ पड़ रहीं, जिस समय तुम चली हो उस समय चारों ओर जागते हुए बलवान् पहरेदार गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे थे, ऐसे समय भी हे कमलनयनी! जब तुम शत्रु-रूपी समुद्रके जलको तपानेवाले बड़वानलके समान प्रतापी कर्णके रनिवाससे निकलकर चली आई हो तो मैं समझता हूँ कि स्त्रियोंका सारा डर दिखावटी होता है' ॥३॥ खिले हुए कदम्बोंकी सुगन्ध फैल रही है तथा बदली भी घिर आई है, ऐसे समय अपने प्रियतमसे मिलनेकी साध लेकर यह जो बिजली और बादलोंकी गड़गड़ाहटसे घबराई हुई, भींगे बालोंवाली, कामातुर तथा प्रसन्न-चित्तवाली युवती आई है, वह खड़ी-खड़ी कीचड़से सने हुए पायलोंवाले अपने पैर धो रही है ॥ ४ ॥ अपने प्रियसे मिलनेके लिये ज्योंही उस नायिकाने घरकी देहलीसे बाहर पैर

भुजगीभोगविषमो विसोढा भूयस्यः किमिति कुलपालीकटुगिरः। इति स्मारं स्मारं दरदलितशीतद्युतिरुचौ सरोजाक्षी शोणं दिशि नयनकोणं विकिरति॥ ५॥ छिद्रान्वेषणतत्परः प्रियसखि प्रायेण लोकोऽधुना रात्रिश्चापि घनान्धकारबहला गन्तुं न ते युज्यते। मा मैवं सखि वल्लभः प्रियतमस्तस्योत्सुका दर्शने युक्तायुक्तविचारणा यदि भवेत्स्नेहाय दत्तं जलम्॥ ६॥ दूती विद्युदुपागता सहचरी रात्रिः सहस्थायिनी दैवज्ञो दिशति स्वनेन जलदः प्रस्थानवेलां शुभाम्। वाचं माङ्गलिकीं तनोति तिमिरस्तोमोऽपि झिल्लीरवैर्जातोऽयं दायतामिसारसमयो मुग्धे विमुञ्च त्रपाम्॥७॥ प्रत्यावृत्य यदि व्रजामि भवनं वाचां भवेत्प्रच्यवो निर्गच्छामि निकुञ्जमेव यदि वा को वेद किं स्यादितः। तिष्ठामो यदि वा क्वचिद्वनतटे किञ्जातमेतावता मध्ये वर्त्म कलानिधेः समुदयो जातः किमातन्यताम्॥ ८॥ प्राणेशेन विना वृथैव वयसस्सौभाग्यलाभोऽप्ययं किं त्वासक्तिरमुष्य नास्ति तदिति प्रेम्णा विधेया मया। इत्यालोच्य विहाय भीतिमभितः प्रौढा सरोजेक्षणा प्रेयांसं समुदेतुमुद्यतवती भव्ये निशीथे क्षणात्॥ ९॥ भीतासि नैव भुजगात्पथि मद्भुजस्य सङ्गे पुनः किमपि कम्पमुरीकरोपि। अम्भोधरध्वनिभिरक्षुभितासि तन्वि मद्वाचि साचिवदनासि किमाचरामि॥ १०॥ मार्गे पङ्कचिते घनान्धतमसे निःशब्दसञ्चारया गन्तव्या च मया प्रियस्य वसतिर्मुग्धेति कृत्वा मतिम्। आजानूद्धृतनूपुरा करतलेनाच्छाद्य नेत्रे भृशं कृच्छ्रेणात्तपदस्थितिः स्वभवने पन्थानमभ्यस्यति॥ ११॥

शुक्लाभिसारिका—छित्त्रैः केलिसरोरुहं त्रिचतुरैर्धम्मिल्लमल्लीस्रजं कण्ठान्मौक्तिकमालिकाञ्च तदनु

रक्खा त्योंही पूर्व दिशामें चन्द्रमा निकल आया। उसकी ओर लाल-लाल आँखें निकालकर नायिका बड़बड़ाते हुए कहती है कि 'बताइए, एक तो क्रोधसे भरी हुई नागिनके समान भयङ्कर मार्ग (पगडण्डी) भी पार करें उसपर घरकी मालकिनकी खरी-खोटी दस बातें भी सहनी पड़ें तो लाभ क्या होगा?' (क्योंकि यह निगोड़ा चन्द्रमा तो निकलकर मेरे सब किए-धरेपर पानी फेर ही चुका है)॥ ५॥ अपने प्रियके पास रातको जानेवाली सखीसे उसकी सखी कह रही है कि 'हे सखी! एक तो आजकल यों ही लोग बहुत प्रकारकी बातें करने लगे हैं उसपर रात भी बहुत घनी अँधेरी है इसलिये तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं है।' इसपर वह उत्तर देती है—'ऐसी बातें न कहो, सखी! मेरा प्रियतम मुझे बड़ा प्यारा है। उसके दर्शनके लिये मैं मरी जा रही हूँ। ऐसे समय यदि मैं भले-बुरेका विचार करने लगूँगी तो समझो कि प्रेमको ही तिलाञ्जलि दे दी गई'॥ ६॥ हे सुन्दरी! देखो, आकाशमें चमकनेवाली बिजली तुम्हारे प्रियका सन्देश लानेवाली दूती बनकर आ गई है, यह काली रात भी तुम्हारी सखीके समान तुम्हें सहायता ही देगी, ये गरजनेवाले बादल भी ज्योतिषी बनकर चिल्ला-चिल्लाकर तुम्हारे प्रस्थानका सुन्दर मुहूर्त्त बता रहे हैं और यह अँधेरा भी झींगुरोंकी झङ्कारसे मङ्गल-पाठ कर रहा है, इसलिये अब लज्जा छोड़कर प्रियके पास जानेके लिये शीघ्र ही प्रस्थान करो। इससे बढ़कर सुन्दर अवसर अब कब मिलेगा॥ ७॥ अपने प्रियसे मिलनेके लिये जानेका विचार करनेवाली एक नायिका कुछ दूर जाकर सखीसे सम्मति लेती है—'क्यों सखी! यदि मैं अब लौटकर घर जाती हूँ तो मेरी बात जाती है, यदि उस झाड़ीमें जाती हूँ तो कौन जाने यहाँ क्या हो? और यदि यहीं वनके किनारे ही जाकर ठहर जाऊँ तो इससे लाभ क्या होगा? देख तो, मार्गमें ही चन्द्रमा निकल आया और सब किया-धरा मिट्टी हो गया! बता अब क्या करूँ?'॥ ८॥ 'उस प्राणप्यारेके बिना यह मेरा यौवन ही व्यर्थ है! किन्तु जिसे मैंने बड़े प्रेमसे साधा है उसका साथ मुझे मिल नहीं रहा है,' यह सोचकर वह प्रौढ़ा कमलनयनी सब भय छोड़कर सुन्दर आधी रातके समय अपने प्रियसे मिलनेको तैयार हो गई॥ ९॥ हे दुबले शरीरवाली! तुम मार्गमें तो साँपसे भी नहीं घबराई और यहाँ मेरी बाँह छू जानेसे ही इतनी काँपी जा रही हो! कहाँ तो तुम बादलके गर्जनसे भी नहीं घबराई और कहाँ अब मेरी बातें सुनकर भी मुँह फेर रही हो, बताओ मैं तुम्हें कैसे प्रसन्न करूँ॥ १०॥ किसी नायिकाने यह सोचा कि कीचड़से भरे हुए अत्यन्त अँधेरे मार्गमें बिना शब्द किए चुपचाप प्रियके घर मुझे जाना है इसीलिये वह अपने घरमें ही घुटनोंतक पायल खींचकर तथा हथेलियोंसे अपनी आँखें ढककर धीरे-धीरे बहुत तौल-तौलकर पैर रखती हुई उसी प्रकार चलनेका अभ्यास कर रही है॥ ११॥

शुक्लाभिसारिका: अपने प्रियसे मिलनेके लिये चलती हुई नायिका अपने शरीरपरसे सब बोझिल वस्तुएँ उतार रही है जिससे वह शीघ्रसे शीघ्र अपने प्रियसे जाकर मिल सके।

त्यक्त्वा पदैः पञ्चभिः। अन्तः कान्तवियोगकातरतया दूराभिसारातुरा तन्वङ्गी निरुपायमध्वनि परं श्रोणीभरं निन्दति ॥ १ ॥ लोलच्चोलचमत्कृति प्रविलसत्काञ्चीलताभङ्कृति न्यञ्चत्कञ्चुकबन्धबन्धुरचलद्वक्षोजकुम्भोन्नति। स्फूर्जद्दीधिति विस्फुरद्गति चलच्चामीकरालङ्कृति क्रीडाकुञ्जगृहं प्रयाति कृतिनः कस्यापि वाराङ्गना ॥ २ ॥ शीतांशावुदिते च कूजति पिके मन्दं समीरे सति स्वात्मानं परिलिप्य चन्दनरसैराच्छाद्य वासः सितम्। निःशब्दामलहीरकाभृतिभृता दन्तप्रभां सर्वतो वपन्ती शनकैः प्रयाति दयितावासं कुरङ्गेक्षणा ॥ ३ ॥ सितं वसनमर्पितं वपुषि नीलचोलभ्रमान्मया मृगमदाशया मलयजद्रवः सेवितः। करेण परिबोधितः स्वजनशङ्कया दुर्जनः परं परमपुण्यतः सखि न लङ्घिता देहली ॥ ४ ॥

स्वाधीनभर्तृका—अस्माकं सखि वाससी न रुचिरे ग्रैवेयकं नोज्ज्वलं नो वक्रा गतिरुद्धतं न हसितं नैवास्ति कश्चिन्मदः। किं त्वन्येऽपि जना वदन्ति सुभगोऽप्यस्याः पतिर्नान्यतो दृष्टिं निक्षिपतीति विश्वमियता मन्यामहे दुःखितम् ॥ १ ॥ एतर्त्किं प्रणयिन्यपि प्रणयिनी यन्मानिनी जायते मन्ये मानविधौ भविष्यति सुखं किञ्चिद्विशिष्टं रसात्। वाञ्छा तस्य सुखस्य मेऽपि हृदये जागर्त्ति नित्यं परं स्वप्नेऽप्येष न मेऽपराध्यति पतिः कुप्यामि तस्मै कथम् ॥ २ ॥ मध्ये न कृशिमा स्तने न गरिमा देहे न वा कान्तिमा श्रोणौ न प्रथिमा गतौ न गरिमा नेत्रे न वा वक्रिमा। लास्ये न द्रढिमा न वाचि पटिमा हास्ये न वा स्फीतिमा प्राणेशस्य तथापि मज्जति मनो मय्येव किं कारणम् ॥३॥ मा गर्वमुद्वह कपोलतले चकास्ति कान्तस्वहस्तलि-

---

अतः दो-तीन पग चलकर उसने अपने हाथका क्रीड़ाकमल फेंक दिया, तीन-चार डग बढ़कर बालोंमें गुँथी हुई बेलेकी माला उतार फेंकी, पाँचवाँ डग भरते ही गलेसे मोतीकी माला भी निकाल दी, अपने मनमें पतिके वियोगका दुःख होनेसे और मार्ग लम्बा होनेसे वह इतनी थक चली थी। इतनी सब वस्तुएँ उतार फेंकनेपर भी जब उसकी चाल नहीं बढ़ी तब वह हारकर सारा दोष अपने भारी नितम्बोंको देने लगी ॥ १ ॥ अपना-चमकदार पल्लू लहराती हुई, अपनी चमकीली करधनको बराबर रुनझुन करती हुई, अपनी चोलीमें कसे हुए घड़ेके समान बड़े-बड़े सुन्दर स्तनोंकी शोभाके साथ हिलाती हुई तथा अपनी चटकीली चालके कारण अपने स्वर्णके गहने झुलाती हुई वह वेश्या किसी भाग्यशालीके सङ्केतपर क्रीड़ाके कुञ्जमें पैर बढ़ाए चली जा रही है ॥ २ ॥ जिस समय चन्द्रमा निकल आए हैं, कोयलकी कूक सुनाई दे रही है और मन्द-मन्द पवन चल रहा है, उस समय अपने शरीरपर चन्दनका चोवा लेपकर और श्वेत वस्त्र पहनकर स्वच्छ हीरेके ठोस आभूषणोंसे सुसज्जित यह मृगनयनी चारों ओर अपने दाँतोंकी चमक फैलाती हुई धीरे-धीरे अपने प्रियके भवनकी ओर चली जा रही है ॥३॥ एक नायिका अपनी सखीसे कहती है कि 'हे सखी! नीली चोलीके भ्रममें मैंने उजले वस्त्र पहन लिए, कस्तूरीके धोखेमें श्वेत चन्दन लगा लिया, अपने हितैषीके भ्रममें अपने विरोधीको हिलाकर जगा दिया, पर हे सखी! बड़े भाग्यकी बात तो यह रही कि मैं अपने घरकी देहली लाँघकर निकल नहीं आई' ॥ ४ ॥

स्वाधीनपतिका : हे सखी! न तो मेरे वस्त्रोंका जोड़ा ही सुन्दर है, न मेरे गलेका हार ही बहुत अच्छा है, न चाल ही बहुत चटक-मटक-भरी है, न हँसी ही बहुत खिलखिलाहटसे भरी है और न तो मुझमें कोई मतवालापन ही है, फिर भी लोग कहते यही हैं कि इसका सुन्दर पति किसी भी दूसरी स्त्रीकी ओर आँख नहीं उठाता। जान पड़ता है संसारका यही सबसे बड़ा दुःख है ॥१॥ हे सखी! क्या बात है कि स्त्रियाँ अपने प्रेमीसे रह-रहकर भी रूठ जाया करती हैं। मैं समझती हूँ कि रूठनेमें प्रेमसे भी अधिक बढ़कर कुछ आनन्द होता होगा इसीलिये यह सुख पानेकी इच्छा मेरे मनमें भी नित्य उठा करती है। पर मेरे पति स्वप्नमें भी कोई ऐसा काम नहीं करते कि मुझे रूठना पड़े, तो बताओ मैं रूठनेका अवसर कैसे निकालूँ ॥ २ ॥ हे सखी! न तो मेरी कमर ही पतली है, न मेरे स्तन ही बहुत बड़े-बड़े हैं, न मेरे शरीरमें ही कोई चमक है, न मेरे नितम्ब ही बहुत मोटे हैं, न मेरी चाल ही कोई अलबेली है, न मेरी आँखोंमें ही बाँकापन है, न मुझे नाचनेका ही अभ्यास है, न बोलनेका ही ढङ्ग आता है और न मेरी हँसी ही लहरदार होती है फिर भी प्राणनाथका मन जो मुझमें ही डूबा रहता है उसका कारण क्या है ॥ ३ ॥ हे सखी! तुम यह अभिमान न करो कि तुम्हारे प्रियने अपने हाथसे तुम्हारे गालोंपर बेल-बूटे बना दिए हैं। और भी स्त्रियोंके पति ऐसा कर सकते हैं किन्तु उनके पतिके हाथ शरीरमें लगते ही

खिता मम मञ्जरीति। अन्यापि किं न सखि भाजनमीदृशानां वैरी न चेद्भवति वेपथुरन्तरायः ॥ ४ ॥ यदपि रतिमहोत्सवे नकारो यदपि करेण च नीविधारणानि। प्रियसखि पतिरेष पार्श्वदेशं तदपि न मुञ्चति तत्किमाचरामि ॥ ५ ॥ वक्त्रस्याधरपल्लवस्य वचसो हास्यस्य लास्यस्य वा धन्यानामरविन्दसुन्दरदृशां कान्तस्तनोति स्तुतिम्। स्वप्नेनापि न गच्छति श्रुतिपथं चेतःपथं दृक्पथं काप्यन्या दयितस्य मे सखि कथं तस्यास्तु भेदग्रहः ॥ ६ ॥ वपुषि तव तनोति रत्नभूषां प्रभुरिति धन्यतमासि किं ब्रवीमि। सखि तनुनयनान्तरालभीरुः कलयति मे न विभूषणानि कान्तः ॥ ७ ॥ श्वश्रूः पश्यति नैव पश्यति यदि भ्रूभङ्गवक्रेक्षणा मर्मच्छेदपटु प्रतिक्षणमसौ ब्रूते ननान्दा वचः। अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरितं स्मृत्वा मनो वेपते कान्तः स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदागः सखि ॥ ८ ॥ सन्त्येव प्रतिमन्दिरं युवतयो यासां सुधासागरस्रोतःस्यूतसरोजसुन्दरचमत्कारा दृशोर्विभ्रमाः। चित्रं किन्तु विचित्रमन्मथकलावैशद्यहेतोः पुनर्वित्तं चित्तहरं प्रयच्छति युवा मय्येव किं कारणम् ॥ ९ ॥ स्वीयाः सन्ति गृहे गृहे मृगदृशो यासां विलासक्वणत्काञ्चीकुण्डलहेमकङ्कणझणत्कारो न विश्राम्यति। को हेतुः सखि कानने पुरपथे सौधे सखीसन्निधौ भ्राम्यन्ती मम वल्लभस्य परितो दृष्टिर्न मां मुञ्चति ॥ १० ॥

वासकसज्जा—कृतं वपुषि भूषणं चिकुरधोरणी धूपिता कृता शयनसन्निधौ क्रमुकवीटिकासम्भृतिः। अकारि हरिणीदृशा भवनमेत्य देहत्विषा स्फुरत्कनककेतकीकुसुमकान्तिभिर्दुर्दिनम् ॥ १ ॥ चोलं नीलनिचोलकर्षणविधौ चूडामणिं चुम्बने याचिष्ये कुचयोः करार्पणविधौ काञ्चीं पुनः काञ्चनीम्। इत्थं चन्दनचर्चितैर्मृगमदैरङ्गानि संस्कुर्वती तत्किं यन्न मनोरथं

जो कँपकँपी उठती है वह तत्काल शत्रु बनकर बाधा डाल देती है अर्थात् मेरा पति भी मेरे गालपर ऐसे ही बेल-बूटे बना सकता है वह जैसे ही हाथ लगाता है वैसे ही सारा शरीर कम्प (सात्विक भाव) से काँप उठता है और बेल-बूटे धरे रह जाते हैं ॥ ४ ॥ हे प्यारी सखी! यद्यपि सम्भोगके समय मैं अपने प्रियको 'ना-ना' भी करती रहती हूँ और हाथसे कमरपरकी धोतीकी गाँठ भी पकड़े रहती हूँ फिर भी वह वह मेरे पाससे हटनेका नाम नहीं लेता, बताओ मैं क्या करूँ ॥ ५ ॥ सखि! मैं सुना करती हूँ कि दूसरे-दूसरे लोग सदा कमलके समान सुन्दर आँखोंवाली स्त्रियोंके मुख, ओठ, बोलचाल, हँसी और नाचकी प्रशंसाके पुल बाँधते अघाते नहीं। परन्तु मेरे पतिके कानोंमें किसी दूसरी स्त्रीका स्वर, मनमें किसी दूसरी स्त्रीका रूप और आँखोंके सामने किसी दूसरी स्त्रीका सौन्दर्य स्वप्नमें भी नहीं आया, तब उन्हें दूसरी स्त्रियोंके गुणोंका ज्ञान ही क्या हो सकता है॥ ६॥ हे सखि! तुम अत्यन्त धन्य हो, मैं क्या तुम्हारी प्रशंसा करूँ कि तुम्हारा स्वामी तुम्हारा शरीर रत्नोंसे सजाता है; किन्तु मेरा स्वामी तो इस डरसे मुझे गहने नहीं पहनाता कि कहीं वे उनकी आँखोंके और मेरी देहके बीच बाधा बनकर न खड़े हो जायँ ॥ ७ ॥ हे सखी! सास तो मुझे फूटी आँखों नहीं देखना चाहती, यदि कभी देखती भी है तो भौंहें तरेरकर ही देखती है, ननद भी दिन-रात जी चलनी करनेवाली बातें बोलती रहती है। घरकी और भी स्त्रियाँ मुझे कैसे-कैसे सताती हैं उसे स्मरण करके ही मन काँप उठता है। अपराध मेरा इतना है कि मेरे पति मुझे सदा प्रेमभरी आँखोंसे देखते हैं ॥ ८ ॥ घर-घरमें ऐसी नवेलियाँ हैं जिनकी आँखोंकी चितवनें अमृत-सागरके प्रवाहमें खिले हुए कमलके समान मनोहर हैं किन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि अनेक प्रकारकी कामकलाके विस्तारके लिये मनको ललचानेवाला धन लाकर मेरा तरुण पति सब मुझे ही दे देता है (किसी दूसरीको नहीं)। बताओ, क्या कारण है ॥ ९ ॥ हे सखी! घर-घरमें ऐसी अनेक कुलीन मृगनयनी स्त्रियाँ हैं जिनकी बजती हुई करधनी, खनखनाते हुए कानके कुण्डल और झनझनाते हुए सोनेके कङ्गनोंकी झनकार कभी बन्द नहीं होती, पर न जाने क्या कारण है कि मेरे पतिकी दृष्टि, वनमें, नगरकी गलियोंमें, घरमें और सखियोंके पास चारों ओर चक्कर लगाती हुई भी सदा मेरे ही पीछे पड़ी रहती है ॥ १० ॥

वासकसज्जा : उस कमलनयनी नायिकाने अपने घरमें घुसकर शरीरपर गहने सजाए, बालोंमें धूपकी गन्ध भरी, पलङ्गके पास पानके बीड़े सजाकर रक्खे और फिर चमकते हुए सुनहरे केवड़ेके फूलोंका पराग ऐसा पिखेरा कि मेघ घिरते-से जान पड़ने लगे ॥ १ ॥ जिस समय वेश्याएँ श्रृङ्गार-भवनमें अपने शरीरपर चन्दनमें कस्तूरी मिलाकर लेप करती हैं उस समय वे मनमें कौन-कौनसी आकांक्षाएँ नहीं करतीं। वे सोचती

वितनुते वारेषु वाराङ्गना ॥ २ ॥ दृष्ट्वा दर्पणमण्डले निजवपुर्भूषां मनोहारिणीं दीप्तार्चिःकपिशश्च मोहनगृहं त्रस्यत्कुरङ्गीदृशा । एवं नौ सुरतं भविष्यति चिराद्द्येति सानन्दया कामं कान्तदिदृक्षया च ललिता द्वारेऽर्पिता दृष्टयः ॥ ३ ॥ निजपाणिपल्लवतटस्खलनादभिनासिकाविवरमुत्पतितैः । अपरा परीक्ष्य शनकैर्मुमुदे मुखवासमास्यकमलश्वसनैः ॥ ४ ॥ नेदं समीरितमकारि कला न चेयमित्याकुलाः कथमपि प्रथमार्धमह्नः । एवं विधेयमथ वाच्यमिदं मयेति शेषं प्रियाः सुकृतिनामतिवाहयन्ति ॥५॥ विदूरे केयूरे कुरु करयुगे रत्नवलयैरलं गुर्वी ग्रीवाभरणलतिकेयं किमनया । नवामेकामेकावलिमयि मयि त्वं विरचयेर्न नेपथ्यं पथ्यं बहुतरमनङ्गोत्सवविधौ ॥ ६ ॥ शिल्पं दर्शयितुं करोति कुतुकात्कह्लारहारस्रजं चित्रप्रेक्षणकैतवेन किमपि द्वारं समुद्वीक्षते । गृह्णात्याभरणं नवं सहचरीभूषाजिगीषामिषादित्थं पङ्कजदृशः प्रतीत्य चरितं स्मेराननोऽभूत्स्मरः ॥ ७ ॥ श्वश्रूं स्वापयति च्छलेन च तिरोधत्ते प्रदीपाङ्कुरं धत्ते सौधकपोतपोतनिनदैः साङ्केतिकं चेष्टितम् । शश्वत्पार्श्वविवर्तिताङ्गलतिकं लोलत्कपोलद्युति क्वापि-क्वापि कराम्बुजं प्रियधिया तल्पान्तिके न्यस्यति ॥ ८ ॥ हारं गुम्फति तारकान्तिरुचिरं मथ्नाति काञ्चीलतां दीपं न्यस्यति किन्तु तत्र बहुलं स्नेहं न धत्ते पुनः । आलीनामिति वासकस्य रजनौ कामानुरूपां क्रियां साचिस्मेरमुखी नवोढसुमुखी दूरात्समुद्वीक्षते ॥ ९ ॥

उत्का—अम्भोरुहाक्षि शम्भोश्चरणावाराधितौ केन । यस्मै विवलितवदना मदनाकूतं विभावयसि ॥ १ ॥ आनेतुं न गता किमु प्रियसखी भीतो भुजङ्गात्किमु

हैं कि जब वह मेरी नीली चोली खींचेगा तब मैं चोली मागूँगी, चुम्बनके समय चूड़ामणिका प्रश्न रक्खूँगी और स्तनोंपर हाथ रखते समय सोनेकी करधनी रखवा लूँगी ॥२॥ उस डरी हुई हरिणीके समान नेत्रोंवाली नवेली नायिकाने दर्पणमें अपने शरीरकी सुन्दर सजावट देखकर तथा जलते हुए दिएकी लौमें भूरे रङ्गके दिखाई देनेवाले क्रीड़ाभवनको देखकर यह सोचा कि आज बहुत दिनोंपर हम लोगोंकी कामक्रीड़ा जमकर होगी और फिर उस आनन्दमें अपने प्रियको देखनेकी इच्छासे उसने अपनी रसीली आँखें द्वारकी ओर घुमा लीं ॥ ३ ॥ एक स्त्री अपने मुँहके सामने हथेली करके अपने मुख-कमलकी साँस नाककी ओर उठाकर अपने मुखकी सुगन्धकी परीक्षा करती हुई मन ही मन उसका आनन्द ले रही है ॥ ४ ॥ भाग्यवान् लोगोंकी स्त्रियाँ आधा दिन तो इस चिन्तामें बिता देती हैं कि प्रियसे मिलनेके समय मैंने ये बातें नहीं कहीं और इस कलाका प्रयोग नहीं किया और शेष आधा दिन इस उधेड़-बुनमें बिताती हैं कि प्रियके मिलनेपर अब यह-यह करूँगी और यह-यह कहूँगी ॥ ५ ॥ वह नवेली अपनी दासीसे कह रही है—'दोनों भुजबन्द उतार दे, ये रत्नके कड़े भी दोनों हाथोंमें पहनानेकी आवश्यकता नहीं है और इस भारी गलेके हारसे भी कोई लाभ नहीं है। तू बस इतना कर कि मेरे लिये एक एकलड़ा हार बना दे क्योंकि रतिक्रीड़ाके समय बहुत सी सजावट बाधा ही पहुँचाती है ॥ ६ ॥ वह नवेली अपने प्रियको अपनी कला दिखानेके लिये बड़े प्रेमसे कमलकी माला बना रही है, प्रकाशमें चित्र देखनेके बहाने द्वारकी ओर देख रही है तथा अपनी सखियोंके आभूषणोंको नीचा दिखानेके लिये गहने पहन रही है। उस कमलनयनीकी इस प्रकारकी चालें देखकर कामदेव फूलकर कुप्पा हो चला है ॥ ७ ॥ वह नायिका अनेक बहाने करके अपनी सासको सुला रही है, दीएकी लौ मन्दी कर रही है, कबूतरके बच्चोंके समान शब्द करके अपने प्रियको संकेत कर रही है और करवटें ले-लेकर अपने गाल चमकाती हुई बिछौनेपर पतिको टटोलनेके विचारसे इधर-उधर हाथ फैला रही है ॥ ८ ॥ वह सुन्दर नई दुलहिन अपने पतिकी प्रतीक्षामें बैठी हार गूँथ रही है, अपनी चमकती हुई सुन्दर करधनी घुमाती जा रही है, दिया उठाकर रख तो रही है किन्तु उसमें बहुत तेल नहीं डालती। उसकी सखियोंने सुहागरातके लिये वहाँ जो कामक्रीड़ाके अनुरूप सजावट कर दी है उसे मुस्कराहटके साथ मुँह घुमा-घुमाकर दूरसे देख रही है ॥ ९ ॥

उदास नायिका : हे कमलके समान आँखोंवाली! ऐसा कौन तुम्हारा प्रिय है जिसके लिये तुम मुँह मोड़-मोड़कर प्रेमकी आकांक्षा कर रही हो और जो शिवजीके चरणोंकी सेवा कर रहा है (अर्थात् ऐसा कौन व्यक्ति है जो कामदेवको जला डालनेवाले शिवकी आराधना करता हुआ तुम्हारे मनमें उत्पन्न कामकी अवहेलना कर रहा है) ॥ १ ॥ एक नई ब्याही हुई नायिकाने अपनी एक सखीको प्रियके पास भेजा, किन्तु देरतक उसके न लौटनेपर वह सोच रही है—'क्या मेरी प्यारी सखी उसे

क्रुद्धो वा प्रतिषेधवाचि किमसौ प्राणेश्वरो वर्त्तते। इत्थं कर्णसुवर्णकेतकरजःपातोपघातच्छलादक्ष्णोः कापि नवोढनीरजमुखी वाष्पोदकं मुञ्चति ॥ २ ॥ किं रुद्धः प्रियया कयाचिदथवा सख्या ममोद्वेजितः किं वा कारणगौरवं किमपि यन्नाद्यागतो वल्लभः। इत्यालोच्य मृगीदृशा करतले विन्यस्य वक्त्राम्बुजं दीर्घं निःश्वसितं चिरञ्च रुदितं क्षिप्ताश्च पुष्पस्रजः ॥ ३ ॥ भ्रूभङ्गे रुचितेऽपि दृष्टिरधिकं सोत्कण्ठमुद्वीक्षते रुद्धायामपि वाचि सस्मितमिदं दग्धाननञ्जायते। कार्कश्यं गमितेऽपि चेतसि तनू रोमाञ्चमालम्बते दृष्टे निर्वहणं भविष्यति कथं मानस्य तस्मिञ्जने ॥ ४ ॥ यन्नाद्यापि समागतः पतिरिति प्रायः प्रपेदे परामित्थं चेतसि चिन्तयन्त्यपि सखी न व्रीडया पृच्छति। दीर्घं निःश्वसितं दधाति चकितं न प्रेक्षते केवलं किञ्चित्पक्वपलाण्डुपाण्डुररुचिं धत्ते कपोलस्थलीम् ॥ ५ ॥ सखि स विजितो वीणावाद्यैः कयाप्यपरस्त्रिया पणितमभवत्ताभ्यां तत्र क्षपाललितं ध्रुवम्। कथमितरथा शेफालीषु स्खलत्कुसुमास्वपि प्रसरति नभोमध्येऽपीन्दौ प्रियेण विलम्ब्यते ॥६॥ स्नानं वारिदवारिभिर्विरचितो वासो घने कानने शीतैश्चन्दनविन्दुभिर्मनसिजो देवस्समाराधितः। नीता जागरणव्रतेन रजनी व्रीडा कृता दक्षिणा तप्तं किं न तपस्तथापि स कथं नायाति नेत्रातिथिः ॥ ७ ॥

खण्डिता—अनलङ्कृतोऽपि सुन्दर हरसि मनो मे यतः प्रसभम्। किं पुनरलङ्कृतस्त्वं सम्प्रति नखरक्षतैस्तस्याः ॥ १ ॥ उरस्तव पयोधराङ्कितमिदं कुतो मे क्षमा ततो मयि विधीयतां वसु पुरा यदङ्गीकृतम्। इति प्रचलचेतसः प्रियतमस्य वारस्त्रिया क्वणत्कन-

---

लिवाने ही नहीं गई या वही साँपके डरके मारे नहीं आया, या हमसे ही कोई उलटी बात मुँहसे निकल गई जिससे वह रूठ गया है।' इस प्रकारकी उधेड़-बुनमें पड़ी हुई वह नायिका अपने कानपर धरे हुए सुनहले केवड़ेका पराग आँखमें पड़ जानेका बहाना लेकर झर-झर आँसू बहा रही है ॥ २ ॥ अपने प्रियके न आनेपर वह नवेली सोचती है कि—'क्या उनकी किसी दूसरी प्रेमिकाने उन्हें रोक लिया है या मेरी ही किसी सखीने उन्हें भड़का दिया है या कोई ऐसा बड़ा काम ही आ पड़ा कि मेरे प्रिय आज नहीं आ पाए।' मनमें यह सब सोच-विचार करते हुए उस मृगनयनीने अपनी हथेलीपर अपना मुख-कमल रखकर लम्बी साँस खींची, देरतक आँसू बहाए और अपने प्यारेको पहनानेके लिये जो माला गूँथी थी उसे भी तोड़ फेंका ॥ ३ ॥ सखीके पूछनेपर वह नायिका कहती है कि 'उसके आनेपर मैं अपनी भौंहें बहुत चढ़ाती हूँ फिर भी मेरी आँखें उसे बड़ी उत्सुकताके साथ देखती रह जाती हैं; मैं चुप रहनेका प्रयत्न करती हूँ पर यह जला मुँह झटसे मुस्करा देता है तथा मैं अपने मनको बड़ा कड़ा कर लेती हूँ किन्तु शरीरमें रोंगटे उठ खड़े होते हैं। ऐसी दशामें हे सखी! बताओ तो उस प्रियको देखकर मैं उससे कैसे रूठी रह सकती हूँ' ॥ ४ ॥ उस नवेलीके मनमें बड़ी उथल-पुथल हो रही है कि जब अभीतक भी मेरे प्रिय नहीं आए तो जान पड़ता है कि किसी दूसरी प्रेमिकाके फेरमें पड़ गए हैं। इस लाजके मारे न तो वह अपनी किसी दूसरी सखीसे उनका ठिकाना पूछ रही है, न लम्बी साँस ही ले रही है, न तो सकपकाकर इधर-उधर झाँक ही रही है, फिर भी चिन्तासे ऐसी घुल गई है कि उसके गाल पके हुए प्याजके समान पीले पड़ गए हैं ॥५॥ हे सखी! मेरे प्रियतम जो अभीतक नहीं आए हैं उसका कारण यही होगा कि वे या तो किसी दूसरी स्त्रीके वीणा बजानेपर मोहित हो गए होंगे या जुएमें रातभरकी क्रीड़ाको ही दाव लगाकर हार गए होंगे इसीलिये अबतक नहीं आए, नहीं तो आकाशमें चन्द्रमा निकल आनेपर और शेफाली (निर्गुण्डी) के फूल झड़नेके समय वे कहीं भी कैसे रुक सकते हैं ॥ ६ ॥ एक नवेली सोच रही है कि मैंने बादलके जलसे स्नान किया, घने जङ्गलमें निवास किया, शीतल चन्दनकी बूँदोंसे कामदेवकी पूजा की, रातें जाग-जागकर बिताईं और दक्षिणामें अपनी लज्जातक दे दी, इसपर अब कौन-सी तपस्या शेष रह गई कि मेरे नेत्रोंको आनन्द देनेवाला मेरा प्यारा अबतक नहीं आया ॥ ७ ॥

खण्डिता नायिका : हे सुन्दर! तुम तो बिना किसी साज-शृङ्गारके ही मेरा मन हर लेते हो, फिर उस (दूसरी नायिका) के नखोंके चिह्नोंसे शृङ्गार कर लेनेपर तो कहना ही क्या है ॥ १ ॥ एक वेश्या अपने किसी यारसे कहती है कि 'तुम्हारी छातीपर किसी स्त्रीके स्तनोंका यह चिह्न देखकर मैं कैसे क्षमा कर सकती हूँ? इसलिये मुझे तुमने जो पहले धन देनेका वचन दिया था वह पहले इधर बढ़ाओ!' यह सुनकर नायकका चित्त डाँवाँडोल हो गया और उसके हाथसे झनझनाते हुए सोनेके कंगन उस वेश्याने निकाल लिए ॥ २ ॥ अपनी दूतीके

ककङ्कणं करतलात्समाकृष्यते ॥ २ ॥ कान्तं निरीक्ष्य वलयाङ्कितकण्ठदेशं मुक्तास्तया परभिया परुषा न वाचः। दूतीमुखे मृगदृशा स्खलदम्बुपूरा दूरात्परं निदधिरे नयनान्तपाताः ॥ ३ ॥ कान्तं वीक्ष्य विपक्ष-पक्ष्मलदृशः पादाम्बुजालक्तकैरालिप्ताननमानतीकृत-मुखी चित्रार्पितेवाभवत्। रूक्षं नोक्तवती न वा कृत-वती निःश्वासकोष्णौ दृशौ प्रातर्मङ्गलमङ्गना करतला-दादर्शमादर्शयत् ॥ ४ ॥ जातस्ते निशि जागरो मम पुनर्नेत्राम्बुजे शोणिमा निःपीतं भवता मधु प्रचिततं व्याघूर्णितं मे मनः। भ्राम्यद्भृङ्गघने निकुञ्जभवने लब्धं त्वया श्रीफलं पञ्चेषुः पुनरेष मां बहुतरैः क्रूरैः शरैः कृन्तति ॥ ५ ॥ नवनखपदमङ्गं गोपयस्यंशुकेन स्थग-यसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम्। प्रतिदिशमपर-स्त्रीसङ्गशंसी विसर्पन्नवपरिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम् ॥ ६ ॥ प्रातः प्रातरुपागतेन जनिता निर्नि-द्रिता चक्षुषोर्मन्दाया मम गौरवं व्यपहृतं प्रोत्पादितं लाघवम्। किं तद्यन्न कृतं त्वया रमण भीर्मुक्ता मया गम्यतां दुःखं तिष्ठसि यच्च पथ्यमधुना कर्त्तास्मि तच्छ्रोष्यसि ॥ ७ ॥ भवतु विदितं व्यर्थालापैरलं प्रिय गम्यतां तनुरपि न ते दोषोऽस्माकं विधिस्तु परा-ङ्मुखः। तव यदि तथा रूढं प्रेम प्रपन्नमिमां दशां प्रकृतितरले का नः पीडा गते हतजीविते ॥ ८ ॥ वक्षः किमु कलशाङ्कितमिति किमपि प्रष्टुमिच्छन्त्याः नयनं नवोढसुदृशः प्राणेशः पाणिना पिदधे ॥ ९ ॥ वक्षोजचिह्नितमुरो दयितस्य वीक्ष्य दीर्घं न निःश्वसति जल्पति नैव किञ्चित्। प्रातर्जलेन वदनं परिमार्ज-यन्ती बाला विलोचनजलानि तिरोदधाति ॥ १० ॥ शङ्किताय कृतबाष्पनिपातामीर्ष्यया विमुखितां दयि-

---

साथ नायकको आया देखकर नवेलीने उसके गलेपर उस दूतीके हाथके कङ्गनकी छाप देखकर दूसरोंके सङ्कोचके मारे मुँहसे तो कोई कड़ी बात नहीं निकाली पर वह आँखोंसे आँसू बरसाती हुई एकटक दूतीकी ओर देखने लगी ॥३॥ प्रातःकाल जब उस नवेलीका प्रिय घर लौटा तो उसके मुखपर टेढ़ी भौंहों-वाली सौतके पैरके महावरकी छाप देखकर नायिका अपना सिर झुकाकर ऐसी चित्रलिखी सी रह गई कि न तो उसने उसे खरी-खोटी ही सुनाई और न अपनी गरम साँसोंसे अपनी आँखें ही झुलसाईं वरन् अपने हाथका दर्पण उठाकर उसके मुँहके सामने कर दिया ॥ ४ ॥ किसी दूसरी स्त्रीके घरसे लौटे हुए प्रियको देखकर कुढ़ती हुई वह नायिका कहती है कि 'रातमें जागे तो तुम हो पर आँखें हमारी लाल हो रही हैं, मदिरा तुमने पी है पर सिर हमारा चकरा रहा है तथा उड़ते हुए भौंरोंसे भरे हुए घने कुञ्जमें श्रीफल (बेल, स्तन) तो तुमने पाया किन्तु कामदेव अत्यन्त निर्दयताके साथ अपने पैने बाणोंसे बेधे हमें डाल रहा है ॥ ५ ॥ दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके प्रातः लौटे हुए अपने प्रियसे नायिका कहती है कि 'उस सौतके नखोंसे बने हुए चिह्नोंसे छपी हुई अपनी देह तो तुम वस्त्रोंसे लपेट लोगे और उसके दाँतके घाववाले ओठोंको हाथसे दबा लोगे पर यह तो बताओ कि उसे आलिङ्गन करनेसे जो तुम्हारे शरीरपर पराग छा गया है उसकी फैलती हुई गन्ध भला कैसे रोक पाओगे' ॥६॥ प्रातः लौटे हुए प्रियसे नवेली कहती है कि 'हे प्रियतम ! सवेरे-सवेरे आकर आपने मेरी आँखोंसे नींद भगा दी (बेचैन कर दिया), मुझ अभागिनका भारीपन हटाकर मुझे हल्का कर दिया (मेरा सारा गौरव नष्ट करके मुझे सबके सामने लज्जित कर दिया), आपने मेरे लिये इतना सब कर दिया है इसलिये मेरा भी सब भय जाता रहा (अब मैं आपसे नहीं बोलूँगी), जाइए, आपको भी यहाँ खड़े रहनेमें दुःख होता होगा। अब मैं अपनी भलाईके लिये जो कुछ करूँगी (आत्महत्या कर लूँगी) उसे आप औरोंसे सुन ही लेंगे' ॥ ७ ॥ दूसरी स्त्रीका सम्भोग करके जब उस नवेलीका प्रिय घर लौटा तो अनेक प्रकारकी बातें बनाने लगा, उसपर वह कहती है—'अच्छा-अच्छा, मैं सब समझ गई, व्यर्थ बातें बना रहे हैं ? आप जाइए, आपका इसमें क्या दोष है, मेरा भाग्य ही मुझसे रूठ गया है। जब आपके इतने सच्चे प्रेमकी यह दशा हो गई है और स्थिर प्रेम भी जाता रहा तब यह स्वभावसे ही चञ्चल तथा तुच्छ जीवन भी जाता रहे तो कौन बड़ी चिन्ता है' ॥ ८ ॥ किसी दूसरी स्त्रीका सम्भोग करके लौटे हुए पतिको देखकर ज्यों ही नई ब्याही नवेलीने यह पूछना चाहा कि 'आपकी छातीपर क्या घड़ेकी साँट पड़ गई है ?' त्यों ही उसके पतिने दोनों हाथोंसे उसकी आँखें ढक लीं ॥ ९ ॥ अपने पतिकी छातीपर किसी दूसरी स्त्रीके स्तनोंकी छाप देखकर न तो उस नवेलीने लम्बी साँस ही ली और न मुँहसे ही कुछ कहा, वरन् प्रातःकाल पानीसे मुँह धोनेके बहाने वह अपने आँसू छिपानेमें लग गई ॥ १० ॥ दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके लौटा हुआ उस नवेलीका पति

ताय। मानिनीमभिमुखाहितचित्तां शंसति स्म घनरोमविभेदः ॥ ११ ॥ सत्यमेव गदितं त्वया विभो जीव एक इति यत्पुरावयोः। अन्यदारनिहिता नखव्रणास्तावके वपुषि पीडयन्ति माम् ॥ १२ ॥ सव्यलीकमवधीरितखिन्नं प्रस्थितं सपदि कोपपदेन। योषितः सुहृदिव स्म रुणद्धि प्राणनाथमभिवाष्पनिपातः ॥१३॥ सुभग कुरबकस्त्वं किं ममालिङ्गनोत्कः किमु मुखमदिरेच्छुः केसरी नो हृदिस्थः। त्वयि नियतमशोके युज्यते पादघातः प्रियमिति परिहासात् पेशलं काचिदूचे ॥ १४ ॥

कलहान्तरिता—अनुनयति पतिं न लज्जमाना कथयति नापि सखीजनाय किञ्चित्। प्रसरति मलयानिले नवोढा वहति परन्तु चिराय शून्यमन्तः ॥ १ ॥ आनन्द क्वचिदश्च मुञ्च हृदयं चातुर्य धैर्यं त्वया स्थेयं क्वेति विचार्यतां रसिकते निर्याहि पर्याकुला। रक्ताम्भोजपरीतषट्पदनदत्पक्ष्मोपमानक्षमक्षुभ्यत्पक्ष्मचलाचलेक्षणयुगं पश्यामि तस्या मुखम् ॥ २ ॥ आशङ्क्य प्रणतिं पटान्तपिहितौ पादौ करोत्यादराद्व्याजेनागतमावृणोति हसितं न स्पष्टमुद्वीक्षते। मय्यालापवति प्रतीपवचनं सख्या सहाभाषते तन्व्यास्तिष्ठतु निर्भरप्रणयिता मानोऽपि रम्योदयः ॥ ३ ॥ एकस्मिञ्शयने विपक्षरमणीनामग्रहे मुग्धया सद्यः कोपपरिग्रहग्लपितया चाटूनि कुर्वन्नपि। आवेगादवधीरितः प्रियतमस्तूष्णीं स्थितस्तत्क्षणं मा भूत्सुप्त इवेत्यमन्दवलित-

---

यद्यपि डरा खड़ा था परन्तु उस नवेलीसे प्रेम भी करना चाहता था। उधर नायिका आँखोंसे आँसू भी बहा रही थी और उसकी करनीपर खीझकर मुँह भी फेरे बैठी थी, पर इतना रूठनेपर भी उसके शरीरपर उठ खड़े हुए रोंगटे यह भी प्रकट कर रहे थे कि वह नायकके आनेसे प्रसन्न अवश्य है ॥ ११ ॥ कोई नवेली अपने अपराधी पतिसे खीझकर कहती है कि 'हे सर्वज्ञ पतिदेव ! आपने जो पहले कहा था कि हम दोनोंका जी एक ही है वह आज सचमुच सत्य निकला क्योंकि आपके शरीरपर नखोंसे घाव तो किया किसी दूसरी स्त्रीने पर उसकी टीस हो रही है मुझे' ॥ १२ ॥ उस नवेलीका पति अपराध तो करके आया ही था, अतः जब उसकी प्रियाने उसका अपमान कर दिया तो वह उदास होकर झटपट बनावटी क्रोध करके वहाँसे ज्योंही चलनेको पैर बढ़ाने लगा त्योंही उस नवेलीकी आँखोंसे निकलते हुए आँसुओंने मित्र बनकर उसे रोक दिया ॥१३॥ 'हे सुन्दर प्रिय ! तुम स्वयं कुरवक (लाल फूल, अप्रिय बोलनेवाले) हो तब फिर मुझे गले लगानेके लिये क्यों व्याकुल हो ? जब तुम्हारे हृदयमें केशरी (नखका चिह्न और केशर की गन्ध) है ही तब मेरे मुखकी मदिरा लेकर क्या करोगे ? तुम्हारे जैसे अशोक (निश्चिन्त, अशोकका वृक्ष के लिये तो लात ही ठीक होती है' । इस प्रकार श्लेषकी हँसीसे किसी नवेलीने ये चतुराई-भरी चोटें कीं ॥ १४ ॥

कलहान्तरिता : वह नई ब्याही नवेली न तो लाजके मारे अपने पतिको ही मनाती है न अपनी सखियोंसे ही कुछ कहती है पर इतना अवश्य है कि जब दक्षिणका सुगन्धित और शीतल वायु चलने लगता है तब बहुत देरतक उसका मन कुछ खोया खोया-सा हो जाता है ॥ १ ॥ एक नायक अपनी रूठी हुई नायिकाको मनानेके लिये चलता हुआ कहता है—'हे आनन्द ! तुम थोड़ी देर कहीं सरक जाओ। हे चतुरते ! तुम भी हमारा हृदय छोड़ो। हे धैर्य ! तुम भी सोच लो कि तुम्हें कहाँ जाकर बसना है और हे रसिकते ! तुम भी तबतक धीरेसे कहीं छिप बैठो जबतक मैं काली-काली चञ्चल पलकोंवाले अपनी प्यारीके नेत्रोंसे युक्त उसका क्रोधमें लाल मुख देख लूँ, जो ऐसा जान पड़ता है मानो लाल कमलपर पङ्ख फैलाकर गुञ्जार करते हुए भौंरे मँडरा रहे हो।' ॥ २ ॥ एक नायक अपनी रूठी हुई प्यारीका वर्णन करता है—'ज्योंही मैं पहुँचा त्योंही उसने अपने पैर वस्त्रसे ढँक लिए कि कहीं मैं उसके पैर न छू लूँ, मुखपर आई हुई हँसी किसी बहानेसे छिपा ली, मेरी ओर भर आँख देखातक नहीं और मेरी बातें सुनी-अनसुनी करके अपनी सखियोंसे बातचीत आरम्भ कर दी। उसका इस प्रकारका क्रोध करना मुझे उसके प्रेम करनेसे भी अधिक सुन्दर जान पड़ता है' ॥ ३ ॥ पति-पत्नी दोनों एक बिछानेपर लेटे हुए थे, इतनेमें नायकने भूलसे उसकी सौतका नाम ले लिया। इतना सुनना था कि वह नायिका तुरन्त आग-बबूला हो गई और इतनी आपेसे बाहर हो गई कि यद्यपि उसका पति बहुत बहलाता-फुसलाता रहा फिर भी उसने उसे अत्यन्त करारी फटकार सुनाई। वह भी चुप मारकर आँखें मूँदकर पड़ रहा। किन्तु नायिकाने शीघ्र ही अपना सिर घुमाकर इस विचारसे उसकी ओर देखा कि कहीं वह सो तो नहीं गया ॥ ४ ॥ डरे हुए हरिणके समान चञ्चल नेत्रोंवाली

ग्रीवं पुनर्वीक्षितः ॥ ४ ॥ चकितहरिणलोललोचनायाः क्रुधि तरुणारुणतारहारकान्ति । सरसिजमिदमाननञ्च तस्याः सममिति चेतसि सम्मदं विधत्ते ॥ ५ ॥ चरणपतनप्रत्याख्यानात्प्रसादपराङ्मुखे निभृतकितवाचारेत्युक्त्वा रुषा परुषीकृते । व्रजति रमणे निश्वस्योच्चैः स्तनस्थितहस्तया नयनसलिलच्छन्ना दृष्टिः सखीषु निवेशिता ॥ ६ ॥ चलश्चेतः पुंसां सहजसरला पङ्कजदृशो भवत्येव क्रोधः क्वचिदपि कदाचित्तरुणयोः । दहेदङ्गं भृङ्गी विधुरपि विदध्यात्परिभवं स्मरो मां मथ्नीयादिति किमपि नाज्ञासिषमहम् ॥ ७ ॥ ततश्चाभिज्ञाय स्फुरदरुणगण्डस्थलरुचा मनस्विन्या रोषप्रणयरभसाद्गद्गदगिरा । अहो चित्रं चित्रं स्फुटमिति निगद्याश्रुकलुषं रुषा ब्रह्मास्त्रं मे शिरसि निहितो वामचरणः ॥ ८ ॥ तत्तद्वदत्यपि यथावसरं हसत्यप्यालिङ्गनेऽपि न निषेधति चुम्बनेऽपि । किन्तु प्रसादनभयादपि निह्नुतेन कोपेन कोऽपि विहितोऽद्य रसावतारः ॥ ९ ॥ तल्पोपान्तमुपेयुषि प्रियतमे वक्रीकृतग्रीवया काकुव्याकुलवाचि साचिहसितस्फूर्जत्कपोलश्रिया । हस्तन्यस्तकरे पुनर्मृगदृशा लाक्षारसक्षालितप्रोष्ठीपृष्ठमयूखमांसलरुचो विस्फारिता दृष्टयः ॥ १० ॥ तारल्यं मुखमेलने न च वचो वैदग्ध्यमन्यादृशं न भ्रूभङ्गपरिग्रहो न च रहःप्रश्नेऽपि मौनस्थितिः । एवं सम्प्रति तर्क्यते तु सुदृशः कोपस्तु मद्वस्तुनि स्वाधीनेऽपि पुरेव पङ्कजदृशो यन्न प्रभुत्वग्रहः ॥ ११ ॥ दूरादुत्सुकमागते विचलितं सम्भाषिणि स्फारितं संश्लिष्यत्यरुणं गृहीतवसने कोपाञ्चितभ्रूलतम् । मानिन्याश्चरणानतिव्यतिकरे वाष्पाम्बुपूर्णेक्षणं चक्षुर्जातमहो प्रपञ्चचतुरं जाता-

---

उस नायिकाका जो मुख चमकते हुए स्वच्छ लाल मणियोंके हारसे सुशोभित था वह क्रोधके समय वैसे ही मनको प्रसन्न कर रहा था जैसे कमल ॥ ५ ॥ जब रूठी हुई नायिकाने नायकको जी-भर फटकारा तो उसने भी ठान लिया कि मैं भी नहीं मनाऊँगा। इसपर नायिकाने अत्यन्त क्रोधसे उसे 'छिपकर धोखेका व्यवहार करनेवाले!' कहकर और भी रुष्ट कर दिया। अतः जब वह खीझकर जाने लगा तो नायिकाने अपनी छातीपर हाथ रखकर लम्बी साँस भरकर अपनी आँसुओंसे भरी आँखें सखियोंकी ओर घुमा लीं (कि तुम्हीं मना लो) ॥६॥ कोई नायिका अपनी सखीसे कहती है कि 'पुरुषोंका चित्त बड़ा चञ्चल होता है और स्त्रियाँ स्वभावसे ही बड़ी सरल होती हैं इसलिये कभी-कभी नायक-नायिकामें खटपट भी हो ही जाती है। पर यह मैं नहीं जानती थी कि प्रियसे अनबन हो जानेपर भौंरी भी मेरा जी जलावेगी, चन्द्रमा भी मुझे दुःख देगा और कामदेव भी मुझे मथ डालेगा' ॥७॥ फड़कते हुए लाल-लाल सुन्दर गालोंवाली मनस्विनी प्रियाने मेरा सब करतूत जानकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक, गद्गद कण्ठसे, आँखोंसे आँसू गिराते हुए पहले तो इतना ही कहा कि 'वाह! क्या नये-नये बहाने निकाले हैं!' और फिर मेरे सिरपर ब्रह्मास्त्रके समान अपनी बाईं लात जमा दी॥ ८ ॥ उस नायिकाने एक निराले ही ढङ्गका संयोग-शृङ्गार रस उत्पन्न कर डाला है जिसमें वह रूठनेपर बातचीत भी करती है, बीच बीचमें हँसती भी जाती है, आलिङ्गन तथा चुम्बन करते समय विरोध भी नहीं करती और इस डरसे कि 'कहीं मेरा प्रिय मुझे मनाने न लगे' वह अपना क्रोध भी छिपाए रहती है ॥ ९ ॥ ज्योंही नायक पलङ्गपर आया त्योंही नायिकाने अपना मुँह फेर लिया। जब वह घबराकर (मनानेके लिये) कुछ अण्टसण्ट बातें करने लगा तो नायिकाके गालोंपर कुटिल हँसी छा गई। पर ज्योंही नायकने नायिकाके हाथपर हाथ रक्खा त्योंही वह महावरके रसमें रँगी हुई मछलीकी पीठके समान चमकती हुई अपनी लाल-लाल आँखें फाड़कर उसकी ओर देखने लगी ॥ १० ॥ मुँहसे मुँह मिलानेमें भी वह वैसे ही चुलबुली है, उसकी बालचालके ढङ्गमें भी कोई नयापन नहीं आया है, उसकी भौंहें भी चढ़ी हुई नहीं हैं और कोई भेदकी बात पूछनेपर वह बतानेमें भी नहीं चूकती। इन सब बातोंसे तो उसके क्रोधका कोई परिचय नहीं मिलता, पर हाँ, अपनी सब वस्तुएँ जो मैंने उसे दे रक्खी हैं उन्हें वह पराया समझने लगी है, यही उसके क्रोधकी एकमात्र पहचान दिखाई पड़ रही है ॥११॥ ज्योंही उस नवलाके पतिने उसका अनादर किया त्यों ही उसकी आँखें अनेक रङ्ग दिखाने लगीं। पहले तो वे आँखें उसे दूरसे ही देखनेको मचलीं, जब पति सामने पास आ गया तो उसके शरीरपर अटपट चिह्न देखकर वे दूसरी ओर घूम गईं, जब उसने बातचीत चलाई तो वे चौड़ी होकर फैल गईं (उसने क्रोधसे आँख फाड़कर देखा), ज्यों ही उसने गले लगानेको बढ़ा त्यों ही वे लाल हो उठीं, जब वह उसके वस्त्रपर हाथ लगाने लगा तो उन नेत्रोंकी भौंहें टेढ़ी हो चलीं और जब वह नायक उसके पैरपर गिर पड़ा तब वे आँसूसे भर

गसि प्रेयसि ॥ १२ ॥ द्वारि चक्षुरधिपाणि कपोलौ जीवितं त्वयि कुतः कलहोऽस्याः । कामिनामिति वचः पुनरुक्तं प्रीतये नवनवत्वमियाय ॥ १३ ॥ न तिर्यगवलोकितं भवति चक्षुरालोहितं वचोऽपि परुषाक्षरं न च पदेषु सङ्गच्छते । हिमार्त्त इव वेपते सकल एव बिम्बाधरः प्रकामविनते भ्रुवौ युगपदेव भेदं गते ॥ १४ ॥ न वरीभरीति कवरीभरे स्रजो न चरीकरीति मृगनाभिचित्रकम् । विजरीहरीति न पुरेव मत्पुरो विवरीवरीति न च विप्रियं प्रिया ॥ १५ ॥ न ब्रूते परुषां गिरं वितनुते न भ्रूयुगं भङ्गुरं नोत्तंसं क्षिपति क्षितौ श्रवणतः सा मे स्फुटेऽप्यागसि । कान्ता गर्भगृहे गवाक्षविवरव्यापारिताक्ष्या बहिः सख्या वक्त्रमभिप्रयच्छति परं पर्यश्रुणी लोचने ॥ १६ ॥ निःश्वासा वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं नक्तन्दिवं रुद्यते । अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयाँस्तथोपेक्षितः 'सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः ॥ १७ ॥ नो चाटुश्रवणं कृतं न च दृशा हारोऽन्तिके वीक्षितः कान्तस्य प्रियहेतवो निजसखीवाचोऽपि दूरीकृताः । पादान्ते विनिपत्य तत्क्षणमसौ गच्छन्मया मूढया पाणिभ्यामवरुध्य हन्त सहसा कण्ठे कथं नार्पितः ॥ १८ ॥ पयःपीठं दत्ते त्वरितमभिधत्ते न च वचः समाज्ञामाधत्ते शिरसि न विधत्ते च मिलनम् । इति स्वान्ते गोपायितनिबिडकोपा प्रतिपदं कृशोदर्याश्चर्या प्रियमहह पर्याकुलयति ॥ १९ ॥ पुरस्तन्व्या गोत्रस्खलनचकितोऽहं नतमुखः प्रवृत्तो वैलक्ष्यात्किमपि लिखितुं दैवहतकः । स्फुटो रेखान्यासः कथमपि स तादृक्प-

---

उठीं ॥ १२ ॥ जब किसी नायिकाकी दूती नायकसे आकर कहती है—'वह नवेली तुम्हें देखनेके लिये द्वारपर आँख लगाए रहती है, हथेलीपर गाल रक्खे रहती है, तथा तुम्हारे भरोसे जीवन धारण किए हुए है (तब भला बताओ वह क्यों झगड़ा करेगी ?)' तब दूतीके मुखसे बार-बार ऐसी बातें सुनकर कामियोंके मनमें कुछ नई-नई-सी प्रसन्नता लहरें लेने लगती है ॥ १३ ॥ एक रूठी हुई नायिकाका वर्णन करते हुए कवि कहता है—'उस रूठी हुई नायिकाने टेढ़ी चितवनसे देखा भी नहीं, पर उसकी आँखें लाल हो उठीं, उसकी बातें थीं बड़ी कड़ी पर उनमें कोई मेल नहीं था, उसका सारा ओठ ऐसा काँप रहा था मानो शीत खा गया हो और उसकी झुकी हुई भौहें एकाएक आपसमें सट गई थीं' ॥ १४ ॥ अपनी रूठी हुई नायिकाका वर्णन करते हुए नायक कहता है—'उस रूठी हुई प्रेयसीने मालासे अपने बाल नहीं सजाए, कस्तूरीसे अपना शरीर नहीं चीता, न पहलेके समान मेरे सामने कोई चटक-मटक ही दिखलाई और न मुझे कोई उलटी-सीधी बातें ही सुनाईं' ॥ १५ ॥ एक नायक अपनी रूठी हुई नायिकाका वर्णन करता है—'मेरे अपराधका भण्डाफोड़ हो जानेपर भी उसने न तो मुझे कुछ नीच-ऊँच कहा, न अपनी भौहें चढ़ाईं और न अपने कानके आभूषण निकालकर धरतीपर पटके, किन्तु इतना अवश्य किया कि खिड़कीसे बाहर देखती हुई अपनी आँसुओंसे भरी आँखें सखीकी ओर फेर दीं (जिसका अर्थ यह था कि सारे झगड़ेकी जड़ तुम्हीं हो)' ॥ १६ ॥ हे सखी! मेरी तपी हुई साँसें मेरी देह जलाए डाल रही हैं, मेरा हृदय उखड़ा-उखड़ा-सा हो रहा है, मेरी आँखोंमें नींद नहीं समाती, प्रियतमका सुख मुझे दिखाई नहीं देता, रातदिन मुझे रुलाई ही आती रहती है और सब अङ्ग सूखते जा रहे हैं, तब बताओ मुझमें कौनसी ऐसी बात रह गई जिसके बलपर मैं अपने प्रियतमसे रूठने चली हूँ ? हाय री मेरी मूर्खता ! प्रियतमने मेरे पैरों पड़कर मुझे इतना मनाया पर देखो तो सही कि मैंने उनकी एक भी न सुनी और उन्हें ठुकरा दिया ॥ १७ ॥ एक नायिका अपने दुःखका वर्णन करती हुई कहती है—'मेरा प्रिय मेरे सामने इतना गिड़गिड़ाया पर मैंने उनकी सब बातें सुनी-अनसुनी कर दीं, उन्होंने जो हार दिया था उसे फूटी आँखों नहीं देखा, प्रियतमका भला चाहनेवाली अपनी सखीकी बातोंपर भी कान नहीं दिया, हाय रे! मैं कितनी बड़ी मूर्ख हूँ ! जब मेरे प्रिय मेरे चरणोंपर गिरकर चले जा रहे थे, उस समय मैंने उन्हें पकड़ कर सहसा छातीसे क्यों नहीं लगा लिया' ॥ १८ ॥ जब दूसरी स्त्रीसे रति करके उस पतली कमरवालीके पति आए तो उसने उन्हें पानी-पीढ़ा तो दिया पर मुँहसे एक भी बात न हीं कही। सिर झुकाकर उनकी आज्ञा तो मानी पर गले लगनेकी बात स्वीकार नहीं की । इस प्रकार जो नायिका अपने मनका बढ़ा हुआ क्रोध दबाकर इस प्रकार सत्कार करती जा रही है वही इस समय उसके पतिको व्याकुल किए डाल रहा है ॥ १९ ॥ नायक कह रहा है कि 'नायिकाके आगे मैंने

रिणतो गता येन व्यक्तिं पुनरचयवैः सैव तरुणी ॥ २० ॥ प्रयच्छतोच्चैः कुसुमानि मानिनी विपक्षगोत्रं दयितेन लम्भिता । न किञ्चिदूचे चरणेन केवलं लिलेख वाष्पाकुललोचना भुवम् ॥ २१ ॥ भ्रूभेदो रचितश्चिरं नयनयोरभ्यस्तमामीलनं रोद्धुं शिक्षितमादरेण हसितं मौनेऽभियोगः कृतः । धैर्यं कर्तुमपि स्थिरीकृतमिदं चेतः कथञ्चिन्मया बद्धो मानपरिग्रहे परिकरः सिद्धिस्तु दैवे स्थिता ॥ २२ ॥ मय्यायाते सपदि नयनादुत्थितं चाटु वाक्यं बद्धा पाणी बहु निगदितं क्षालितं पादपद्मम् । दत्त्वा वीटीं सविनयमथोद्वीजितं तालवृन्तैर्ब्रूते कोपं कुवलयदृशो भूयसी भक्तिरेव ॥ २३ ॥ मानम्लानमना मनागपि नतं नालोकते वल्लभं निर्याते दयिते निरन्तरमियं बाला परं तप्यते । आनीते रमणे बलात्परिजनैर्मौनं समालम्ब्यते धत्ते कण्ठगतानसून्प्रियतमे निर्गन्तुकामे पुनः ॥ २४ ॥ विरमति कथनं विना न खेदः सति कथने समुपैति कापि लज्जा । इति कलहमधोमुखी सखिभ्यो लपितुमनालपितुं समाचकाङ्क्ष ॥ २५ ॥ शोणं वीक्ष्य मुखं विचुम्बितुमहं यातः समीपं ततः पादेन प्रहृतं तया सपदि तं धृत्वा सहासे मयि । किञ्चित्तत्र विधातुमक्षमतया वाष्पं त्यजन्त्याः सखे व्यातश्चेतसि कौतुकं वितनुते कोपोऽपि वामभ्रुवः ॥ २६ ॥ स्फुटतु हृदयं कामः कामं करोतु तनुं तनुं न सखि चटुलप्रेम्णा कार्यं पुनर्दयितेन मे । इति सरभसं मानोद्रेकादुदीर्य वचस्तया रमणपदवी सारङ्गाक्ष्या ससम्भ्रममीक्षिता ॥ २७ ॥

विप्रलब्धा—अन्यत्र व्रजतीति का खलु कथा नाप्यस्य तादृक्सुहृद्यो मां नेच्छति नागतश्च हहहा

ज्योंही उसकी सौतका नाम लिया त्यों ही मैं घबरा गया और फिर लाजसे सिर झुकाकर मैं अभागा धरती कुरेदने लगा । उन धरतीपर बनी हुई रेखाओंने कुछ ऐसा गड़बड़-घोटाला कर दिया कि (उन रेखाओंके द्वारा भी अनजाने उसकी सौतका नाम लिख गया अतः उसे देखकर) उस तरुणीने भी अपने क्रोध-भरे अङ्ग फड़का-फड़काकर अपने मनका क्रोध प्रकट कर दिया ॥ २० ॥ नायकने प्रेमके कारण नायिकाको फूल देते समय भूलसे उसकी सौतका नाम ले लिया, इसपर रुठकर वह नायिका मुँहसे तो कुछ नहीं बोली पर आँखोंमें आँसू भरकर धरती कुरेदने लगी ॥ २१ ॥ एक नायिका कहती है—'मैंने बहुत देरतक अपनी भौंहें टेढ़ी किए रक्खीं, आँखें मूँदे रहनेका भी अभ्यास किया, हँसी रोक रखना भी सीखा, चुप रहनेका भी अभ्यास किया और धीरज बाँधनेका भी निश्चय किया, इस प्रकार ज्यों-त्यों करके मैंने रुठनेके लिये कमर तो कसी है पर देखें क्या होता है, क्योंकि सफलता तो ईश्वरके हाथ है' ॥ २२ ॥ नायक कहता है—'मेरे आनेपर वह रूठी हुई नायिका अपने आसनसे उठ गई, हाथ जोड़कर उसने बड़ी मीठी-मीठी बातें भी कीं, पैर धोए, बड़े आदरके साथ पानका बीड़ा दिया और पङ्खा डुलाया । इस प्रकारकी बड़ी भक्ति दिखाकर ही उस कमलनयनीने अपना क्रोध स्पष्ट कर दिया' ॥२३॥ रूठ जानेके कारण उस नवेलीका मन ऐसा उदास हो गया है कि उसका पति सामने झुककर उसे मना भी रहा है फिर भी वह उधर देखतीतक नहीं, सदा दुःखभरी साँसें लिया करती है, यदि सखियाँ बलपूर्वक उसके पतिको पास ले भी जाती हैं तो वह बाततक नहीं करती, फिर भी अपने पतिसे उसका प्यार इतना है कि जब उसके पति बाहर जानेको तैयार होते हैं तो उसके प्राण बाहर निकलनेके लिये गलेतक आ पहुँचते हैं ॥ २४ ॥ एक नायिका दुविधामें पड़ी हुई है और नीचा मुँह किए सोचती है कि बिना कहे दुःख दूर नहीं होता और कहनेमें लज्जा आती है, इसलिये वह अपने झगड़ेका समाचार सखियोंसे कहना भी चाहती है और छिपाना भी ॥२५॥ नायक कहता है कि 'ज्योंही मैं उसका क्रोधसे लाल मुख चूमनेके लिये उसकी ओर बढ़ा त्यों ही उसने मुझपर लात चला दी, बस मैं झट उसके पैर पकड़कर हँसने लगा । इसपर भी जब उसका कुछ बस न चला तो वह झर-झर आँसू बहाने लगी । हे मित्र ! उस टेढ़ी भौंहोंवाली अपनी प्यारीके उस क्रोधका जब-जब मैं स्मरण करता हूँ तब-तब मुझे एक अपूर्व आनन्द मिलता है' ॥ २६ ॥ यद्यपि उस मृगनयनी नायिकाने क्रोधकी झोंकमें बड़े उत्साहसे यह कह डाला कि 'भले ही हृदय फट जाय और भले ही कामदेव मेरे शरीरको घुला-घुलाकर दुबला कर दे पर इस क्षणिक प्रेम करनेवाले पतिसे मैं कोई सम्बन्ध नहीं रक्खूँगी', फिर भी वह घबरा-घबराकर अपने पतिके आनेका मार्ग देखती ही रही ॥ २७ ॥

ठगी हुई : किसी नायिकाको शयन-गृहमें पड़े-पड़े नींद नहीं आ रही है । वह करवटें बदल-बदलकर मनमें

कोऽयं विधेः प्रक्रमः । इत्यल्पेतरकल्पनाकवलितस्वान्ता निशान्तान्तरे बाला वृत्तविवर्त्तनव्यतिकरा नाप्नोति निद्रां निशि ॥ १ ॥ आलीभिः शपथैरनेककपटैः कुञ्जोदरं नीतया शून्यं तच्च निरीक्ष्य विक्षुभितया न प्रस्थितं न स्थितम् । न्यस्ताः किन्तु नवोढनीरजदृशा कुञ्जोपकण्ठे रुषा तादृग्भृङ्गकदम्बडम्बरचमत्कारस्पृशो दृष्टयः ॥ २ ॥ उत्तिष्ठ दूति यामो यामो यातस्तथापि नायातः । यातः परमपि जीवेज्जीवितनाथो भवेत्तस्याः ॥ ३ ॥ कपटवचनभाजा केनचिद्वारयोषा सकलरसिकगोष्ठीवञ्चिका वञ्चितासौ । इति विहसति रिङ्गद्भृङ्गवल्गितचलुविकचकुसुमकान्तिच्छद्मना केलिकुञ्जः ॥ ४ ॥ तत्किं कामपि कामिनीमभिसृतः किं वा कलाकेलिभिर्बद्धो बन्धुभिरन्धकारिणि वनोपान्ते किमु भ्राम्यति । कान्तः क्लान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः सङ्केतीकृतमञ्जुवञ्जुललताकुञ्जेऽपि यन्नागतः ॥ ५ ॥ दत्त्वा धैर्यभुजङ्गमूर्ध्नि चरणावुल्लङ्घ्य लज्जानदीमङ्गीकृत्य घनान्धकारपटलं तन्व्या न दृष्टः प्रियः । सन्तापाकुलया तया च परितः पाथोधरे गर्जति क्रोधाक्रान्तकृतान्तमत्तमहिषभ्रान्त्या दृशौ योजिते ॥ ६ ॥ नायातो यदि निर्दयः सखि शठस्त्वं दूति किं दूयसे स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् । पश्याद्य प्रियसङ्गमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणैरुत्कण्ठार्त्तिभरादिव स्फुटदिदञ्चेतः स्वयं यास्यति ॥ ७ ॥ निःस्नेह निष्करुण निस्त्रप निर्निमित्तं मद्वञ्चक त्वमपि सम्प्रति वञ्चितः स्याः । इत्यक्षराणि लिखितानि समीक्ष्य कश्चित्सङ्केतकेतकदले नितरामताम्यत् ॥ ८ ॥ शून्यं कुञ्जगृहं निरीक्ष्य कुटिलं विज्ञाय चेतोभुवं दूती नापि

इस प्रकार अनेक तर्क-वितर्क कर रही है कि मेरे पति कहीं दूसरे स्थानपर चले जायँगे इसकी तो आशङ्का ही नहीं है क्योंकि उनका कोई ऐसा प्रियजन भी नहीं है जो मेरा बुरा चाहता हो, फिर भी हाय ! वे आए क्यों नहीं ? मेरे भाग्यने यह क्या पलटा खाया है' ॥ १ ॥ उस नई ब्याही हुई नवेलीकी सखियाँ बहुत सौगन्ध दिलाकर और बहुत-सी कपट-भरी बातें करके नायिकाको उस कुञ्जतक पहुँचा तो आई पर जब उसने वह कुञ्ज सूना देखा तो इतनी दुखी हुई कि न वहाँसे हट ही सकी न वहाँ रुक ही सकी वरन् मँडराते हुए भौंरोंके समान अपनी सुन्दर चितवनसे अत्यन्त क्रोधपूर्वक कुञ्जकी ओर घूरने लगी ॥ २ ॥ हे दूती ! चलो चलें, एक पहर बीत गया फिर भी अभीतक वे आए नहीं । अब तो वे उसीके प्राणनाथ होंगे जो इतनी बाट जोहकर भी जीती रह जाय ॥ ३ ॥ झूठा विश्वास दिलानेवाले किसी नायकने सभी रसिकोंका सामान लूटनेवाली किसी वेश्याको चकमा दे दिया और सङ्केत किए हुए कुञ्जतक नहीं पहुँचा इसलिये वह झाड़ी, जिसमें भौंरे उड़ रहे थे और फूल खिले हुए थे, ऐसी जान पड़ती थी मानो वह अपनी भौंरो-रूपी आँखें चलाकर खिले हुए फूलोंके बहाने उस वेश्याकी हँसी उड़ा रही हो ॥ ४ ॥ जब उस नायिकाका प्यारा उस कुञ्जतक नहीं पहुँचा तब वह सोचती है कि 'मेरा प्रिय क्या किसी दूसरी कामिनीके पास रम गया या मेरी सखियोंने ही तो उसे खेलनेके लिये नहीं रोक लिया या इस अँधेरे वनमें मार्ग न मिलनेसे कहीं वह भटक तो नहीं रहा है अथवा जान पड़ता है कि प्रियतम इतने थक गए हैं कि उनमें चलनेकी शक्ति नहीं रह गई, इसीलिये तो पहलेसे निश्चय किए हुए इस सुन्दर बेंतके कुञ्जतक अभीतक नहीं आ पाए' ॥५॥ उस नायिकाने धैर्य-रूपी साँपके मस्तकपर पैर रक्खा, लज्जा-रूपी नदी पार की, घने अँधेरेकी भी तनिक चिन्ता नहीं की पर कुञ्जमें आकर जब उसने वहाँ अपने प्रियको नहीं पाया तब कामके तापसे तपी हुई उसको गरजता हुआ बादल ऐसा डरावना जान पड़ा मानो यमराजका मतवाला भैंसा ही क्रोधसे हँकड़ रहा हो ॥६॥ हे दूती ! यदि वह मेरा निर्दय और धूर्त प्रिय अभीतक नहीं आया तो तुम्हारा मुँह क्यों सूखा जा रहा है । उसकी बहुत सी प्यारियाँ हैं, वह मनमाने ढङ्गसे कहीं रम रहा होगा । इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? देखो, आज प्रियके गुणोंसे उसकी ओर खिंचा हुआ और उत्सुकता तथा पीड़ाकी अधिकतासे दबकर फूटा हुआ मेरा मन उससे मिलने स्वयं जायगा ॥ ७ ॥ जब निश्चित किए हुए स्थानपर वह नायक देरसे पहुँचा तब वहाँ केवड़ेके पत्तेपर यह बात लिखी हुई देखकर वह बहुत दुखी हुआ कि 'हे प्रेमशून्य, निर्दयी, निर्लज्ज और मुझे व्यर्थ धोखा देनेवाले ! तुम भी कभी यों ही धोखा खाओगे' ॥८॥ उस नायिकाने जब मिलनेके स्थान (कुञ्ज) को सूना पाया और कामदेवकी कुटिल करतूत समझ ली तब आनेवाली दूतीसे न तो उसने कुछ कहा न कुछ पूछा ही वरन् उस समय उस कमलनयनीने इस प्रकार शंकरकी स्तुति प्रारम्भ कर दी कि 'हे शम्भो, ! हे शङ्कर, ! हे चन्द्रशेखर, ! हे हर, ! हे

निवेदिता सहचरी पृष्टापि नो वानया। शम्भो शङ्कर चन्द्रशेखर हर श्रीकण्ठ शूलिञ्शिव त्रायस्वेति परन्तु पङ्कजदृशा भर्गस्य चक्रे स्तुतिः ॥ ९ ॥ सङ्केतकेलिगृहमेत्य निरीक्ष्य शून्यमेणीदृशो निभृतनिःश्वसिताधरायाः। अर्धाक्षरं वचनमर्धविकासि नेत्रं ताम्बूलमर्धकवलीकृतमेव तस्थौ ॥ १० ॥ सास्रे मा कुरु लोचने विगलति न्यस्तं शलाकाञ्जनं तीव्रं निःश्वसितं निवर्त्तय नवास्ताम्यन्ति कण्ठस्रजः। तल्पे मा लुठ कोमलाङ्गि तनुतां हन्ताङ्गरागोऽश्नुते नातीतो दयितोपयानसमयो मा स्मान्यथा मन्यथाः ॥ ११ ॥

प्रोषितभर्तृका—अर्पयति प्रतिदिवसं प्रियस्य पथि लोचने वाला। निक्षिपति कमलमालाः कोमलमिव कर्त्तुमध्वानम् ॥ १ ॥ आकस्मिकस्मितमुखीषु सखीषु विज्ञा विज्ञास्वपि प्रणयनिह्नवमाचरन्ती। तत्रैव रङ्कुनयना नयनारविन्दमस्पन्दमाहितवती दयिते गतेऽपि ॥ २ ॥ आदृष्टिप्रसरात्प्रियस्य पदवीमुद्वीक्ष्य निर्विण्णया विश्रान्तेषु पथिष्वहःपरिणतौ ध्वान्ते समुत्सर्पति। दत्त्वैकं सशुचा गृहं प्रतिपदं पान्थस्त्रियास्मिन्क्षणे मा भूदागत इत्यमन्दवलितग्रीवं पुनर्वीक्षितम् ॥ ३ ॥ कान्ते कत्यपि वासराणि गमय त्वं मीलयित्वा दृशौ सत्यं नाम निमीलयामि नयने यावन्न शून्या दृशः। आयाता वयमागमिष्यसि सुहृद्वर्गस्य भाग्योदयैः सन्देशं वद कस्तवाभिलषितस्तीर्थेषु तोयाञ्जलिः ॥ ४ ॥ तान्जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्। गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु वालां जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम् ॥ ५ ॥ भ्रातः प्राणगण प्रयाणसमये प्राणाधिनाथस्य मे कुर्याः स्थैर्यमपि क्षणं करुणया कण्ठस्थलेऽपि स्थितः। यावल्लोचननीरनिर्मितनदीवन्याभिरन्यादृशं पन्थानं परिकल्प-

---

श्रीकण्ठ,! हे शूलिन्,! हे शिव,! मेरी रक्षा करो' ॥ ९ ॥ जब पहलेसे निश्चित किए हुए क्रीड़ाकुञ्जमें उस नायिकाने अपने प्रियको नहीं देखा तो उसकी साँस ओठोंपर आ गई, बातें आधी रह गईं, आँखें अधखुली रह गईं और मुँहमें पान भी आधा चबाया हुआ रह गया ॥ १० ॥ हे कोमलाङ्गी! आँखोंमें आँसू न भरो क्योंकि सलाईसे लगाया हुआ आँजन छूट रहा है, लम्बी-लम्बी साँसें लेना बन्द करो क्योंकि गलेकी नई माला मुरझाई जा रही है, बिछौनेपर करवटें न बदलो क्योंकि शरीरमें लगा हुआ केशर आदिका रङ्ग छूटता जा रहा है। अभी तुम्हारे प्रियके आनेका समय बीता नहीं है, अभीसे तुम उलटा न समझ बैठो ॥ ११ ॥

प्रोषित-पतिका (परदेश गए हुए पतिकी स्त्री) : उस नवेलीका प्रतिदिन अपने पतिके मार्गकी ओर एकटक देखना ऐसा जान पड़ता है मानो वह अपने पतिके मार्गको कोमल बनानेके लिये कमलकी माला बिछा रही हो ॥ १ ॥ हरिणकी आँखोंके समान नेत्रोंवाली चतुर नायिकाने मुस्कराती रहनेवाली अपनी चपट सखियोंसे भी अपने प्रेमकी बात नहीं कही और पतिके चले जानेपर भी केवल उसके मार्गकी ओर टकटकी बाँधकर देखती रही ॥ २ ॥ जहाँतक मार्गमें दृष्टि जाती थी वहाँतक दिनभर अपने प्रियका मार्ग देखती-देखती वह परदेसीकी नवेली पत्नी थक गई और सन्ध्या समय जब अँधेरा फैलने लगा और मार्ग चलना भी बन्द हो गया तब ज्योंही उसने एक पैर अपने घरके भीतर रक्खा त्योंही उसने पुनः अपना सिर घुमाकर फिर बाहरकी ओर दृष्टि डाली कि कहीं वे आ तो नहीं रहे हैं ॥ ३ ॥ विदेश जाते समय पति-पत्नीमें बातें हो रही हैं : पति—हे प्रिये! तुम वियोगके कुछ दिन आँखें मूँदकर बिता लेना। पत्नी—हाँ नाथ! जबतक आँखें न फूट जायँगी तबतक आँखें मूँदे ही रहूँगी। पति—प्रिये! मुझे बस आया ही समझो! पत्नी—आइएगा अपने प्यारोंके भाग्यसे, मेरा क्या है? पति—यदि कुछ कहना चाहती हो तो कहो। पत्नी—यही कहना चाहती हूँ कि जिन तीर्थोंमें जाइएगा वहाँ मेरे नामसे अञ्जलियोंमें भरकर पानी दे दीजिएगा ॥ ४ ॥ बादलको अपनी पत्नीका परिचय देते हुए यक्ष कह रहा है—'अपने साथीसे बिछुड़ी हुई चकवीके समान अकेली रहनेवाली और कम बोलनेवाली उस सुन्दरीको देखकर तुम समझ जाओगे कि वह मेरा दूसरा प्राण ही है। विरहके कठोर दिन बड़ी उतावलीसे बिताते-बिताते उसका रूप भी बदल गया होगा, उसे देखकर तुम्हें यह भ्रम हो जायगा कि यह कोई बाला है या पालेसे मारी हुई कमलिनी है ॥५॥ हे भाई प्राणो! जब मेरे प्राणनाथ जाने लगें उस समय तुम निकल भागनेके लिये हड़बड़ी न मचा देना वरन् दया करके मेरे कण्ठतक आकर थोड़ा रुक जाना क्योंकि तबतक तो मेरे आँसुओंसे नदीमें ऐसी बाढ़ आ जायगी कि उनका मार्ग जलमग्न हो जायगा और वे न जा सकेंगे। इस प्रकार तुम्हारे और मेरे दोनोंके

यामि भविता येनावयोर्वाञ्छितम् ॥ ६ ॥ माला बाला-म्बुजदलमयी मौक्तिकी हारयष्टिः काञ्ची याते प्रभवति हरौ सुभ्रुवः प्रस्थितैव। अन्यद्ब्रूमः किमपि धमनी वर्त्तते वा न वेति ज्ञातुं बाहोरहह वलयं पाणिमूलं प्रयाति ॥ ७ ॥ विरहविदितमन्तः प्रेम विज्ञाय कान्तः पुनरपि वसु तस्मादेत्य मे दास्यतीति। मरिचनियमदक्षोर्न्यस्य बाष्पोदविन्दून्विसृजति पुरयोषिद्द्वारदेशोपविष्टा ॥ ८ ॥ श्वश्रूः पद्मदलं ददाति तदपि भ्रूसंज्ञया गृह्यते सद्यो मर्मरशङ्कया न च तया संस्पृश्यते पाणिना। यातुर्वाचि सुहृद्गणस्य वचसि प्रत्युत्तरं दीयते श्वासः किन्तु न मुच्यते हुतवहक्रूरः कुरङ्गीदृशा ॥९॥ समर्प्य हृदि दारुणां मदनवेदनां भूयसीमनेन तव वर्त्मना प्रचलितः स मे वल्लभः। न वामदिशि शब्दितं किमिति बालया वायस त्वया मदनसारिके किमिति वा कृतं न क्षुतम् ॥ १० ॥

स्त्री चेष्टाः

कटाक्षः—अस्याः कररुहखण्डितकाण्डपटप्रकटनिर्गता दृष्टिः। पटविगलितनिःकलुषा स्वदते पीयूषधारेव ॥ १ ॥ क्वचित्कृष्णार्जुनगुणा क्वचित्कर्णान्तगामिनी। अपाङ्गश्रीस्तवाभाति सुभ्रूर्भारतगीरिव ॥ २ ॥ दिनान्ते स्नान्तीनां कनककलशाकारकुचयोरुपर्यस्यन्तीनां कमलकलिकाकोमलकरौ। समुद्यत्कालिन्दीतरलतरकल्लोलकुटिलः कटाक्षः कान्तानां कमिह कमितारं न कुरुते ॥ ३ ॥ नयनाञ्चलचञ्चरीकपूरो वलतेऽयं यत एव पक्ष्मलाक्ष्याः। तत एव भवन्ति नीलपक्षप्रकराणां ननु वृष्टयो नवीनाः ॥ ४ ॥ पिपासुरिव चञ्चलं विकटकर्णकूपाज्जलं ततः प्रतिचलन्मुहुः श्रवणपाशभीतोऽभितः। तनोति तरलाकृतिस्तरललोचने सन्ततं गतागतकुतूहलं मुहुरपाङ्गरङ्कुस्तव ॥ ५ ॥ प्रणालीदीर्घस्य प्रतिपदमपाङ्गस्य

मनकी हो जायगी अर्थात् न तुम मुझसे बिछुड़ोगे न मैं प्रियतमसे ॥ ६ ॥ अपने स्वामी कृष्णके चले जानेपर सुन्दर भौंहोंवाली गोपीकी कमलकी कलियोंकी माला, मोतीका हार और करधनी सब चल दीं। और अधिक क्या कहें, उसके हाथका कङ्गन भी यह जाननेके लिये हथेलीके पास पहुँच गया कि इसकी नाड़ी चल रही है या नहीं ॥ ७ ॥ 'मेरा प्रिय यही समझता होगा कि विरहके समय मेरे मनमें उसके लिये बड़ा प्रेम रहता है और इसलिये वह लौटकर मुझे फिर बहुतसा धन देगा', इसी आशासे कोई वेश्या आँखोंमें मिर्चका चूर्ण लगाकर अपनी देहलीपर बैठी आँसू टपका रही है (बनावटी प्रेम दिखा रही है) ॥ ८ ॥ बिछोहके समय उस मृगनयनी नवेलीको जब उसकी सास कमल लाकर देती है तब वह भौंहोंके सङ्केतसे स्वीकार तो कर लेती है किन्तु उसे इसलिये हाथ नहीं लगाती कि कहीं मेरे शरीरके तापसे वह झुलस न जाय। उसकी देवरानी-जेठानी और सखियाँ जो कुछ कहती हैं उसका उत्तर तो देती है किन्तु वह आगके समान तपती हुई लम्बी साँस नहीं लेती ॥ ९ ॥ बिछोहमें व्याकुल नायिका कौवे और मैनासे कहती है कि 'हमारे प्रिय हमारे हृदयमें अत्यन्त भयानक कामपीड़ा छोड़कर तुम्हारे पाससे ही तो गए हैं। उस समय हे कौवे! तूने बाईं ओर पहुँचकर काँव-काँव क्यों नहीं किया? और हे कामकी साथिन मैना! उस समय तूने भी छींक क्यों नहीं दिया' ॥ १० ॥

स्त्रियोंकी चेष्टाएँ

तिरछी चितवन : अपनी उँगलियोंसे हटाए हुए घूँघटकी ओटसे अस्पष्ट निकलती हुई उस नायिकाकी मधुर चितवनको लोग ऐसे चावसे देखते हैं मानो वस्त्रमें छानकर निर्मल की हुई अमृतकी धारा पी रहे हों ॥१॥ हे सुन्दर भौंहोंवाली! तुम्हारी चितवनकी शोभा कहीं तो कृष्ण (काली) और अर्जुन (उजली) के गुणोंसे भरी और कहीं कर्णकी मृत्यु (कानके कोनेतक पहुँचने) के समाचारसे भरी महाभारतकी कथा जैसी है अर्थात् तुम्हारी काली, उजली और कानके कोनेतक फैली हुई चितवन हत्याकाण्ड मचाए हुए है ॥२॥ यमुनाकी उछलती हुई अत्यन्त चञ्चल लहरोंके समान लहरानेवाली उन स्त्रियोंकी चितवन किसे व्याकुल नहीं कर देती जो सन्ध्याके समय स्नान करती हुई अपने सोनेके घड़ोंके समान स्तनोंपर कमलकी कलियोंके समान सुन्दर तथा कोमल हाथ धरे हैं ॥ ३ ॥ जिस-जिस ओर इस सुन्दर बरौनियोंसे सजी हुई आँखोंवाली नायिकाकी चितवन-रूपी भौंरोंकी पाँत चलती है उसी ओर मानो कृष्णपक्षके समूहोंकी नई वर्षा होने लगती है ॥ ४ ॥ हे चञ्चल आँखों वाली! तुम्हारा कटाक्ष-रूपी मृग बड़े-बड़े कान-रूपी कुँवेसे जल पीनेके लिये पहले तो बहुत मचला, पर चारों ओरसे घिरे हुए कान-रूपी जालको देखकर डरकर लौट पड़ा। अब वह घबराया हुआ लोभ और भयके बीचमें पड़ा निरन्तर आगा-पीछा कर रहा है ॥ ५ ॥ हे मित्र! कमलके समान आँखोंवाली

सुहृदः कटाक्षव्याक्षेपाः शिशुशफरफालप्रतिभुवः। सुवानाः सर्वस्वं कुसुमधनुषोऽस्मान्प्रति सखे नवं नेत्राद्वैतं कुवलयदृशः सन्दिद्यति ॥ ६ ॥ भवनभुवि सृजन्तस्तारहारावतारान्दिशि दिशि विकिरन्तः केतकानां कुटुम्बम्। वियति च रचयन्तश्चन्द्रिकां दुग्धमुग्धां प्रतिनयननिपाताः सुभ्रुवो विभ्रमन्ति ॥ ७ ॥ यत्र यत्र वलते शनैः शनैः सुभ्रुवो नयनकोणविभ्रमः। तत्र तत्र शतपत्रतोरणी तोरणीभवति पुष्पधन्वनः ॥ ८ ॥ यान्ती गुरुजनैः सार्धं स्मयमानमुखाम्बुजा। तिर्यग्ग्रीवं यदद्राक्षीत्तन्निष्पन्नाकरोज्जगत् ॥ ९ ॥ यासां कटाक्षविशिखैः स्मरचौरेण ताडिताः। हतचैतन्यसर्वस्वा मोहन्ते मुग्धकामुकाः ॥ १० ॥ रे रे घरट्ट मा रोदीः कं कं न भ्रामयन्त्यमूः। कटाक्षवीक्षणादेव कराकृष्टस्य का कथा ॥ ११ ॥ वसन्तनीलोत्पलषट्पदानां गीतामृतं श्रोतुमिवोच्चरन्तौ। नतभ्रुवो लोचनकृष्णसारौ कर्णान्तिकं सन्ततमाश्रयेते ॥ १२ ॥ विशालाक्षीकटाक्षस्य साक्षी त्र्यक्षो महेश्वरः। नाद्यापि प्रकृतिं याति येन विद्धो दिगम्बरः ॥ १३ ॥ शिलासम्पर्घर्षोतोज्ज्वलधवलधारापरिसरानिमानन्तः श्यामानिव विषमबाणस्य विशिखान्। दृढप्रज्ञावर्मार्यपि हृदयमर्माणि रुजतः कटाक्षानेतस्या मुनिरपि न सोढुं प्रभवति ॥ १४ ॥ सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव। भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथजुषो नीलपक्ष्माण एते यावल्लीलावतीनां हृदि न धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति ॥ १५ ॥ हत्वा लोचनविशिखैर्गत्वा कतिचित्पदानि पद्माक्षी। जीवति युवा न वा किं भूयो भूयो विलोकयति ॥१६॥

अश्रूणि—अश्रुच्छलेन सुदृशो हुतपावकधूमकलुषाक्ष्याः। अप्राप्य मानमङ्गे विगलति लावण्यवारिपूर इव ॥ १ ॥

नायिकाकी उस चितवनकी मार हम लोगोंमें प्रतिक्षण एक नये ढङ्गका अद्वैत (आँखोंकी टकटकी) उत्पन्न कर रहे हैं जो नालीके समान लम्बे नेत्रकी कोरसे निकल रहे हैं, मछलीके बच्चोंके समान उछल रहे हैं और हमारे मनमें काम-विकार उभाड़ रहे हैं ॥ ६ ॥ उस सुन्दर भौंहोंवाली नवेलीकी प्रत्येक चितवन घरमें चमकीले हारोंकी लड़ियाँ-सी बिछाती हुई, चारों ओर केवड़ेके फूलसी बिखेरती हुई और आकाशमें दूधसी मनोहर चाँदनी छिड़काती हुई दिखाई दे रही है ॥ ७ ॥ वह सुन्दर भौंहोंवाली नवेली जिस-जिस ओर अपनी चितवन चलाती है उधर-उधर मानो कामदेवके स्वागतके लिये कमलोंकी वन्दनवार लटक जाती है ॥८॥ अपने माता-पिताके साथ जाते समय मुस्कराहटसे भरे मुख कमलवाली उस नवेलीने जो तिरछे घूम करके चितवन चलाई उसीसे सारा संसार अभीतक छटपटा रहा है ॥ ९ ॥ कामदेव-रूपी चोरने इन स्त्रियोंके चितवन-रूपी बाणोंसे भोले-भाले कामियोंको मारकर उनका हृदयरूपी सर्वस्व लूट लिया है इसीसे वे पागल हो गए हैं ॥१०॥ चूँ-चूँ करके घूमते हुए रहटको सम्बोधन करके कवि कहता है—'हे रहट! तू रो मत! देख, ये स्त्रियाँ अपनी चितवन चलाकर किसे चक्करमें नहीं डालतीं फिर ये जिसे अपने हाथसे घुमा रही हों (रहट चला रही हों) उसकी तो बात ही क्या है ॥ ११ ॥ इस झुकी हुई भौंहोंवाली नायिकाके नेत्र-रूपी मृग सदा कानोंकी ओर ऐसे दौड़े जा रहे हैं मानो, उसके कानोंपर लटके हुए भौंरोंका अमृत-गान सुननेके लिये बढ़े जा रहे हों ॥१२॥ इन बड़ी-बड़ी आँखोंवाली स्त्रियोंकी चितवनके साक्षी वो तीन आँखोंवाले भगवान् शंकर ही हैं जो उनकी चोटके मारे वस्त्र उतारकर नंगे नाच रहे हैं और अभीतक भी सँभल नहीं पाए हैं ॥१३॥ पत्थरपर भली-भाँति घिसनेसे चमकनेवाले, तीखी धारवाले और भीतरसे काले-काले जो इस नवेलीके कटाक्षरूपी कामके बाण हैं वे (तपस्वियोंके) स्थिर बुद्धिरूपी कवचसे सुरक्षित हृदयोंके मर्मको भी फाड़ डालते हैं अर्थात् उन्हें मुनि भी नहीं सह सकते ॥१४॥ मनुष्य तभीतक अच्छे मार्गपर चलता है, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है और लजीला तथा विनयी रहता है जबतक भौंह-रूपी धनुषसे तानकर छोड़े हुए कानोंकी ओर निकलते हुए और धैर्यको उखाड़नेवाले. लीलाभरी ललनाओंके चितवनरूपी काली नोकवाले बाण उनका हृदय नहीं बेध देते ॥१५॥ वह कमल-सी आँखोंवाली नायिका अपने चितवन-रूपी बाणोंसे किसीको अधमरा करके कुछ ही डग आगे चलकर बार बार सिर घुमाकर देख रही है कि वह युवक अभी जी रहा है या ठंढा हो गया ॥ १६ ॥

आँसू: हवनके धुएँसे लाल-लाल होकर भर आनेवाली नायिकाकी आँखें ऐसी जान पड़ती हैं मानो उसके सौन्दर्यके जलका प्रवाह जो उसके शरीरमें नहीं समा पाया वही आँसू बनकर बाहर निकला पड़ रहा हो ॥ १ ॥

निद्रा—आमीलन्नवनीलनीरजतुलामालम्बते लोचनं शैथिल्यं नवमल्लिकासहचरैरङ्गैरपि स्वीकृतम्। आलापादधरः स्फुरत्कलयति प्रेङ्खत्प्रवालोपमामानन्दप्रभवाश्च बाष्पकणिका मुक्ताश्रियं बिभ्रति ॥ १ ॥ उत्तानामुपधाय बाहुलतिकामेकामपाङ्गश्रितामन्यामप्यलसां निधाय विपुलाभोगे नितम्बस्थले। नीवीं किञ्चिदवश्लथां विदधती निश्वासलोलालका तल्पोत्पीडनतिर्यगुन्नतकुचं निद्राति शातोदरी ॥ २ ॥ निद्रार्धमीलितदृशो मदमन्थराणि नाप्यर्थवन्ति न च यानि निरर्थकानि। अद्यापि मे मृगदृशो मधुराणि तस्यास्तान्यक्षराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति ॥ ३ ॥ सार्थकानर्थकपदं ब्रुवती मन्थराक्षरम्। निद्रार्धमीलिताक्षी सा लिखितेवास्ति मे हृदि ॥ ४ ॥

स्मितम्—अद्वितीयं निजं लोके विलोक्य वहतो मुदम्। प्रमदावदनस्यायं दर्पोद्रेको न तु स्मितम् ॥ १ ॥ कामबाणप्रहारेण मूर्च्छितानि पदे पदे। जीवन्ति युवचेतांसि युवतीनां स्मितामृतैः ॥२॥ तावदेव मनोजस्य शरैस्तिग्मै रुजार्जिता। न यावन्निपतेयुस्ते कान्ते स्मितसुधांशवः ॥ ३ ॥ धवलीकरोति हरितां मलिनीकुरुते मनः सपत्नीनाम्। अस्या हास्यविकासो मम तु मनो रक्तमाचरति ॥४॥ निरीक्ष्य पण्ढाय पतिं प्रयच्छन्कृपाप्रशंसायुतसिद्धपारदम्। बभूव वैद्यस्य प्रियानपत्या रहस्यपूर्णस्मितवक्त्रयुक्ता ॥ ५ ॥ पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्। ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य ॥ ६ ॥ मधुरः कुसुमविकासो विशदः पीयूषदीधितेरुदयः। वरवर्णिनीस्मितं तु क्षमं न निर्वक्तुमीदृगिति ॥ ७ ॥ मां जितं ननु सम्भाव्य स्मयते सुभगामुखम्। इति सम्भावयन्नन्तश्चन्द्रोऽब्देषु प्रधावति ॥ ८ ॥ यदि प्रसादीकुरुत सुधांशोरेषा सहस्रांशमपि स्मितस्य। तत्को-

---

नींद : उस नवेलीके झँपे हुए नेत्र कुछ-कुछ मुँदते हुए नये नीले कमलके समान दिखाई पड़ते हैं, बिछौनेपर बिखरे हुए बेलेके फूलोंके साथ-साथ शरीरके अङ्ग भी नींदसे ढीले पड़ गए हैं, नींदमें बोलते समय फड़कता हुआ उसका नीचेका ओठ भी हिलते हुए मूँगेके समान जान पड़ता है और नींदमें आनन्दके कारण निकली हुई आँसुओंकी बूँदें भी मोती-सी झलक रही हैं ॥ १ ॥ वह पतली कमरवाली नवेली इस प्रकार नींद ले रही है कि नींदमें एक करवट होनेसे उसकी आँखके पास ही एक बाँह मुड़कर तो उसका तकिया बन गई है, दूसरी ढीली बाँह चौड़े नितम्बपर फैली है, उसकी साड़ीका नाड़ा ढीला हो गया है, उसकी साँसोंसे उसके बाल हिल रहे हैं तथा करवट लेकर बिछौनेपर सोनेके कारण उसके स्तन तिरछे तथा ऊँचे हो रहे हैं ॥ २ ॥ मेरी प्यारी मद पी लेनेके कारण उनींदी अवस्थामें जो कुछ अण्डबण्ड कुछ अर्थभरे और कुछ बे-सिर-पैरके अक्षर बड़बड़ा रही थी वे आज भी मेरे कानोंमें गूँज रहे हैं ॥ ३ ॥ नींदमें अण्ट-सण्ट बराती हुई वह उनींदे नयनोंवाली नवेली मेरे मनमें चित्रके समान बनकर बस गई है ॥ ४ ॥

मुस्कान : इस नवेलीके मुखपर जो अलौकिक प्रसन्नता नाच रही है उसे आप मुस्कान न समझिए, यह तो उसके यौवनकी मस्तीका उठान है ॥१॥ युवकोंके जो हृदय पग-पगपर कामके बाणोंकी मारसे व्याकुल हुए रहते हैं वे तरुणी नारियोंके मुस्कानरूपी अमृतसे अच्छे होते रहते हैं ॥ २ ॥ कामदेवके बाण तभीतक अपना पराक्रम नहीं दिखा पाते जबतक प्यारेपर प्रियतमाकी मुस्कानकी किरणें नहीं पड़तीं ॥३॥ इस नवेलीकी हँसीकी चाँदनी चारों दिशाओंको तो चमका रही है किन्तु सौतोंका मन मैला कर रही है और हमारे मनको भी रक्त (रङ्गीन, प्रेमपूर्ण) बनाए डाल रही है ॥ ४ ॥ किसी वैद्यने किसी नपुंसक रोगीसे अत्यन्त धन लेकर उसे आभारी करके बड़ी सराहनाके साथ पारा दिया उस समय वैद्यकी निःसन्तान पत्नी बड़ी भेद-भरी मुस्कानसे अपने पतिका मुँह देखने लगी (कि यदि पारेमें यह गुण है तो आप ही क्यों नहीं सेवन करके बच्चे उत्पन्न कर लेते, आप भी तो ऐसे ही नपुंसक हैं।) ॥ ५ ॥ इस नवेलीके लाल-लाल ओठोंपर झलकती हुई उजली मुस्कानकी बराबरी तभी कुछ-कुछ हो सकती है जब नई लाल कोंपलोंपर उजले फूल लगा दिए जायँ या चमकीले लाल मूँगेपर मोती टाँक दिए जायँ ॥६॥ वसन्तमें फूलोंका खिलना और अमृतमयी किरणोंवाले चन्द्रमाका निकलना दोनों बड़े सुखदायक होते हैं किन्तु श्रेष्ठ चिह्नोंसे सजी हुई नवेलीकी मुसकान तो कुछ ऐसी अनोखी होती है कि उसका कुछ कहकर वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ७ ॥ नवेलीकी मुसकान देखकर यह चन्द्रमा मानो यही समझकर बादलोंमें छिपनेके लिये दौड़ा जा रहा है कि 'यह सुन्दरी मुझे हारा हुआ समझकर ही मुसका रही है' ॥८॥ यह नवेली यदि

मुदीनां कुरुते तमेव निमित्य देवः सफलं स्वजन्म ॥ ९ ॥ सुधासिन्धोर्मुखस्येयं फेनलेखा बहिर्गता। प्रवदन्त्ययथाप्रज्ञास्तव स्मितपरम्पराम् ॥ १० ॥

हसितम्—अकस्मादेव तन्वङ्गी जहास यदियं पुनः। नूनं प्रसूनबाणोऽस्यां स्वाराज्यमधितिष्ठति ॥ १ ॥ स्मयमानमायताक्ष्याः किञ्चिदभिव्यक्तदशनशोभि मुखम्। असमग्रलक्ष्यकेसरमुच्छ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम् ॥ २ ॥

वाणी—अमृतद्रवमाधुरीधुरीणां गिरमाकर्ण्य कुरङ्गलोचनायाः। मुहुरभ्यसनं कषायकण्ठी कलकण्ठी कुरुते कुहूरुतेन ॥ १ ॥ कण्ठे वसन्ती चतुरा यदस्याः सरस्वती वादयते विपञ्चीम्। तदेव वाग्भूय मुखे मृगाक्ष्याः श्रोतुः श्रुतौ याति सुधारसत्वम् ॥ २ ॥ पद्माङ्कसद्मानमवेक्ष्य लक्ष्मीमेकस्य विष्णोः श्रयणात्सपत्नीम्। आस्येन्दुमस्या भजते जिताब्जं सरस्वती तद्विजिगीषया किम् ॥ ३ ॥ प्रसूनबाणाद्वयवादिनी सा कापि द्विजेनोपनिषत्पिकेन। अस्याः किमास्यद्विजराजतो वा नाधीयते भैक्षभुजा तरुभ्यः ॥ ४ ॥ शिरीषकोषादपि कोमलाया वेधा विधायाङ्गमशेषमस्याः। प्राप्तप्रकर्षः सुकुमारसर्गे समापयद्वाचि मृदुत्वमुद्राम् ॥ ५ ॥ सरस्वती दीव्यति विश्वधात्रा समं सरोजे वदने त्वदीये। तत्काकलीदिव्यरसा गभीराः श्रमानुरोधादिव निस्सरन्ति ॥ ६ ॥ स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव प्रजल्पितायामभिजातवाचि। अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना ॥ ७ ॥

जृम्भा—आस्येन्दोः परिवेषवद्रतिपतेश्चाम्पेयकोदण्डवद्धम्मिल्लाम्बुमुचः तडिद्यतिवदासज्जा क्षिपन्ती भुजा। विश्लिष्यद्वलि लक्ष्यनाभि विगलन्नीव्युन्नमन्म-

---

कृपा करके अपनी मुसकानका सहस्रवाँ भाग भी चन्द्रमाको दे देती तो वह उसे अपनी चाँदनीमें घोलकर अपना जन्म सफल कर लेता ॥ ९ ॥ तुम्हारे इस अमृतके समुद्रके समान मुखसे जो फेन बहकर बाहर आ रहा है उसे ठीक-ठीक न समझ सकनेवाले लोग तुम्हारी मुसकान कह बैठते हैं ॥ १० ॥

हँसी : इस पतली कमरवाली नवेलीको अचानक खिलखिलाकर हँसते देखकर जान पड़ता है कि अब निश्चय ही इसपर कामदेव अपना अधिकार जमानेवाला है ॥ १ ॥ उस बड़ी-बड़ी आँखोंवाली नायिकाका मुस्कराता हुआ और कुछ-कुछ झलकनेवाले दाँतोंसे सुहावना लगनेवाला मुख उस कमलके समान दिखाई दे रहा है जो थोड़ा-सा खिला हुआ हो और जिसके केसर भी थोड़े-थोड़े दिखाई पड़ते हों ॥ २ ॥

वाणी : हरिणीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली उस नायिकाकी जो वाणी अमृतके रसकी मिठाससे भी बढ़-चढ़कर है उसे सुनकर बार-बार 'कू-कू' करनेवाली यह मिठबोली कोयल ऐसी जान पड़ती है मानो उस नवेलीके समान बोलनेका अभ्यास कर रही हो ॥ १ ॥ इस मृगनयनी नवेलाके गलेमें बैठी हुई सरस्वतीजी जो वीणा बजा रही हैं उसकी तानें ही इसके मुखकी वाणी बनकर सुननेवालोंके कानोंमें अमृतके रसकी बूँदें बनकर टपकती हैं ॥२॥ अकेले विष्णुकी छातीके बलपर कमलके बीच बैठी हुई अपनी सौत लक्ष्मीको देखकर ही क्या सरस्वतीने उसे जीतनेके लिये कमलकी शोभा जीत लेनेवाले इसके मुखचन्द्रमें आकर डेरा डाल दिया है ॥३॥ इस नवेलीकी वाणी सुनकर ऐसा क्यों नहीं जान पड़ता है कि पेड़ोंसे भिक्षा माँगकर अपना पेट पालनेवाला द्विज (पक्षी, ब्राह्मण) पिक (कोयल) इसके मुखरूपी द्विजराज (चन्द्रमा, श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी) से कामदेव और संसारकी आपसमें एकता बतानेवाला उपनिषद् सीख रहा है ॥ ४ ॥ जिस ब्रह्माने कोमल वस्तुएँ बनानेमें बहुत नाम कमा रक्खा है उसने शिरीषके फूलके भीतरी भागसे भी कोमल इसके सब अंग बनाकर, बची हुई कोमलतासे इसकी वाणी बनाई ॥ ५ ॥ तुम्हारे मुखसे निकली हुई मधुर वाणी ऐसी जान पड़ती है मानो तुम्हारे मुँहके भीतर ब्रह्माके साथ काम-क्रीड़ा करते समय सरस्वतीके मधुर कण्ठसे जो आनन्दकी झोंकमें दैवी स्वर निकलता है वही तुम्हारे मुँहसे वाणी बनकर बाहर निकल रहा हो ॥ ६ ॥ जब उस नवेलीकी वाणी कुछ-कुछ खुली तो ऐसा लगा मानो उसके स्वरसे अमृत चू रहा हो। उसके सामने कोयलकी कूक ऐसी रूखी जान पड़ती थी मानो कोई बेसुरी वीणा छेड़ी जा रही हो ॥ ७ ॥

जँभाई : घड़ेके समान स्तनोंवाली उस नवेलीने जिस समय जँभाई लेकर अँगड़ाईके लिये अपने दोनों हाथ मिलाकर बाँहें ऊपर उठाईं उस समय वे गोल की हुई बाँहें ऐसी जान पड़ती थीं मानो मुखरूपी चन्द्रमाका मण्डल हो, चम्पेके फूलोंसे बना कामदेवका धनुष हो या सिरके जूड़े-रूपी बादलोंपर बिजलीका घेरा हो। इस प्रकार अँगड़ाई लेते समय उसके पेटपरकी सिकुड़नें मिट गईं, नाभि दिखाई

ध्यमं किञ्चित्किञ्चिदुदञ्चदञ्चलमहो कुम्भस्तनी जृम्भते ॥ १ ॥ चक्रीकृतभुजलतिकं वक्रीकृतवक्त्रमुन्नमद्ग्रीवम्। नो हरति कस्य हृदयं हरिणदृशो जृम्भणारम्भः ॥ २ ॥

गमनम्—गुरुतरकलनूपुरानुनादं सललितनर्तितवामपादपद्मा। इतरदनतिलोलमादधाना पदमथ मन्मथमन्थरं जगाम ॥ १ ॥ दूरयन्त्या जनं सर्वं निरागसमवज्ञया। मातङ्गानां गतिर्यादृक्तादृगासीदसंशयम् ॥ २ ॥ मारयन्त्या जनं सर्वं निरागसमिवाज्ञया। मातङ्गानां गतिर्यादृक्तादृगासीदसंशयम् ॥ ३ ॥ सलीलमयमायाति कामिनी गजगामिनी। उन्नतं हि नखज्योतिः पुष्पैर्भुवमिवार्चती ॥ ४ ॥ सा राजहंसैरिव सन्नताङ्गी गतेषु लीलाञ्चितविक्रमेषु। व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धैरादित्सुभिर्नूपुरसिञ्जितानि ॥ ५ ॥

उद्दीपनविभावाः

प्रभातवर्णनम्—अधिरजनिमुखे यः सान्द्रलाक्षानुरागैर्व्यतिकरित इवोच्चैः पाटलत्वं दधानः। उषसि स खलु दीपः पाननिर्धूतरागः स्फुरदधर इवायं धूसरत्वं बिभर्ति ॥ १ ॥ अनुनयमगृहीत्वा व्याजसुप्ता पराची रुतमथ कृकवाकोस्तारमाकर्ण्य कल्ये। कथमपि परिवृत्ता निद्रयान्धा किल स्त्री मुकुलितनयनैवाश्लिष्यति प्राणनाथम् ॥ २ ॥ अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वतीयं दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा। इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनेन दुःखानि नूनमतिमात्रदुरुद्वहानि ॥३॥ अन्यत्र यापितनिशं परिलोहिताङ्गमन्याङ्गनागतमिवागतमुष्णरश्मिम्। प्रातर्निरीक्ष्य कुपितेव हि पद्मिनीयमुत्फुल्लहल्लकलुलोहितलोचनाभूत् ॥४॥ अपयान्तीनामधुना सङ्केतनिकेतनान्मृगाक्षीणाम्। वासस एव न केव-

---

देने लगी, नाड़ा खुल गया, कमर सीधी हो गई और छातीपरका आँचल कुछ-कुछ उछलने और उठने लगा ॥ १ ॥ जँभाई लेते समय जब उस मृगनयनी नवेलीके दोनों हाथ ऊपर उठकर गोल हो जाते हैं, मुँह टेढ़ा हो जाता है और गला सीधा होकर उठ जाता है तब वह किसका मन नहीं हर लेती ॥ २ ॥

चाल : कोई नवेली अपने पतिके बाईं ओर उसके शरीरसे सटकर चलती हुई अपनी पैजनी झनझनाती है, बायाँ पैर बहुत सँभाल-सँभालकर रखती चलती है और इस प्रकार कामके बोझसे बहुत धीरे-धीरे चल रही है ॥१॥ इस नवेलीकी मतवाली और बिना अपराधके ही सब मनुष्योंको दूर हटानेवाली मदमाती चाल मतवाले हाथियोंकी चालसे मिलती-जुलती है क्योंकि हाथी भी ऐसे ही झूमते हुए और सूँड़ फटकारते चलते हैं मानो वे संसारमें किसीको कुछ नहीं समझते ॥ २ ॥ वह नायिका अपनी आज्ञासे सबको बिना अपराधके ही मारे डाल रही है इससे निश्चित है कि इसकी गति (चाल, व्यवहार) मातंग, (हाथी, चाण्डाल) जैसी ही है ॥ ३ ॥ हाथीके समान चालवाली यह नायिका जब चटक-मटकके साथ चलती है और धरतीपर इसके पैरकी नखोंकी चमक पड़ती है तब ऐसा जान पड़ता है मानो उस चमकरूपी पुष्पोंसे धरतीकी पूजा करती चल रही हो ॥ ४ ॥ यौवनके भारसे झुकी हुई वह नवेली जब बड़ी चटक-मटकके साथ चलती है तब ऐसा जान पड़ता है मानो उसके पायलोंसे निकलनेवाली 'रुनझुन' ध्वनि सीखनेके लिये ललचाए हुए राजहंसोंने अपनी हाव-भरी चाल उसे पहले ही बदलेमें सिखा डाली हो ॥ ५ ॥

उद्दीपन विभाव

प्रातःकालका वर्णन : जो दीपक रातको महावरके रङ्गके समान लाल-लाल प्रकाश दे रहा था उसकी लौ प्रातःकाल होनेपर वैसी ही मन्द पड़ गई है जैसे चुम्बन लेनेके पश्चात् निचले ओठका रङ्ग फीका पड़ जाता है ॥ १ ॥ रातमें जो प्रियतमा अपने प्रियतमके बहुत मनानेपर भी नींदका बहाना करके मुँह फेरकर सो गई थी उसने प्रातःकाल जब मुर्गेकी बाँग सुनी तो वह प्रियतमसे वियोग होनेके भयसे घबराकर गहरी नींदका बहाना करती हुई करवट बदलकर आँखें बिना खोले ही अपने प्राणनाथका आलिङ्गन करने लगी ॥२॥ इस कुमुदनीकी जो शोभा वह पहले आँखोंको सुख दे रही थी, चन्द्रमाके छिप जानेपर जाती रही क्योंकि प्रियतमका बिछोह स्त्रियाँ किसी प्रकार भी सहन नहीं कर पातीं ॥३॥ तालमें खिले हुए लाल कमलके पौधे और लाल कमलोंको देखकर ऐसा जान पड़ता है कि प्रातःकाल खिले हुए लाल सूर्यको देखकर कमलिनियों (कमलके पौधों) ने अपनी-अपनी कमलरूपी आँखें इसलिये लाल कर ली हों कि सूर्य रातभर किसी दूसरी नायिकाके साथ रहा है और उस सौतके शरीरमें पुते हुए केसरके रंगसे अपनेको रङ्गकर प्रातःकाल चला आ रहा है ॥ ४ ॥ प्रातःकाल अपने क्रीड़ा-भवनोंसे निकलकर

लमभवन्मनसोऽपि परिवर्त्तः ॥ ५ ॥ अभूत्प्राची पिङ्गा रसपतिरिव प्राश्य कनकं गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि। क्षणात्क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा न दीपा राजन्ते द्रविणरहितानामिव गुणाः ॥ ६ ॥ अयमुदयमहीभृन्मूर्ध्नि पाणिं गृहीत्वा दिवसपतिरहौषीदिन्दुपादान्हवींषि । अरुणकिरणवह्नौ कन्यका पौरुहूती हरिदपि किमकार्षीत्तारकाजालहोमम् ॥ ७ ॥ अयं मृदुमृणालिनीवनविलासवैहासिकस्त्विषां वितपते पतिः सपदि दृश्यमाना निजाः। स्तनौ पुलकयन्ति चोत्पलदृशां प्रियोरःस्थले विपर्ययितवृत्तयो घुसृणपङ्कपत्राङ्कुराः ॥ ८ ॥ अरुणजलदराजीमुग्धहस्ताग्रपादा बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी। अनुपतति विरावैः पत्त्रिणां व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ॥ ९ ॥ अविरतमविरामा रागिणां सर्वरात्रं नवनिधुवनलीलाः कौतुकेनाभिवीक्ष्य। इदमुदवसितानामस्फुटालोकसम्पन्नयनमिव सनिद्रं घूर्णते दैपमर्चिः ॥१०॥ आद्ये जग्मुषि ताम्रचूडरचिते श्रोत्रं प्रबुद्धा जवात् किञ्चिद्वासवदिङ्मुखं प्रविकसद्दृष्ट्वा गवाक्षाध्वना। सन्त्रासेन समीरिता प्रियतमप्रेम्णा च रुद्धा शनैरुत्थानोपनिवेशनानि कुरुते तल्पे मुहुः पांसुला ॥ ११ ॥ आपाटलैः प्रथममङ्कुरितैर्मयूखैरह्नां पतिः प्रथमशैलविहारिणीनाम्। सोऽयं करोति सुरपुङ्गवसुन्दरीणां कर्णेषु कल्पतरुपल्लवभङ्गलक्ष्मीम् ॥ १२ ॥ आलोकैरतिपाटलैरचरमां विस्तारयद्भिर्दिशं नक्षत्रद्युतिमाक्षिपद्भिरचिरादाशङ्क्य सूर्योदयम्। पुञ्जीभूय भयादिवान्धतमसं मन्ये द्विरेफच्छलान्नीलन्नालसरोरुहोदरकुटीकोणान्तरे लीयते ॥ १३ ॥ आश्लेषशेषा रतिरङ्गनानामामोदशेषा कुचकुङ्कुमश्रीः। तूणीरशेषः कुसुमायुधोऽपि प्रभातशेषा रजनी बभूव ॥ १४ ॥ आसीस्त्वं निशिराजरक्तहृदयेतीर्ष्यालुना

आली हुई मृगनयनी नवेलियोंके केवल वस्त्र ही नहीं बदल जाते वरन् उनका मन भी बदल जाता है और भोगविलाससे मन हट जाता है ॥ ५ ॥ प्रातःकाल पूर्व दिशा वैसी ही पीली पड़ गई है जैसे पारेसे मिला हुआ सोना, चन्द्रमा वैसा ही फीका पड़ गया जैसे मूर्खोंकी सभामें पण्डित तथा तारे वैसे ही मन्द हो गए जैसे दरिद्रके गुण ॥६॥ प्रातःकालका दृश्य ऐसा जान पड़ता है मानो उदयाचलके शिखरपर पूर्व दिशारूपी कन्याके साथ विवाह करता हुआ सूर्य, लाल किरणरूपी आगमें चन्द्रमाकी किरणरूपी हविकी आहुति दे रहा हो। क्या पूर्व दिशारूपी कन्या भी सूर्यके साथ साथ उसी अग्निमें तारेरूपी धानकी खीलें होम करती जा रही है? ॥ ७ ॥ प्रातःकाल कोमल कमलिनियोंके वनमें क्रीड़ा करनेका व्यसनी सूर्य चमकने लगा है और कमलके समान आँखोंवाली स्त्रियाँ जब अपनी छातीपर केसरसे बने हुए बेलबूटोंकी छाप अपने पतियोंके छातीपर लगी देखती हैं तो उनके स्तनोंपर रोमाञ्च हो उठता है ॥ ८ ॥ लाल कमल ही जिसके सुन्दर हाथ-पैर हैं, भौंरोंका झुण्ड ही काजल है, खिले हुए नीले कमल ही नेत्र हैं, पक्षियोंके कलरवके रूपमें जो अपनी माँको पुकार रही है वह प्रातःकालकी ललाईरूपी तत्काल उत्पन्न हुई बच्ची अपनी माता रात्रिके पीछे-पीछे दौड़ी चली जा रही है ॥ ९ ॥ प्रातःकाल इस धुँधले दीपकको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो घरकी आँख बनकर जो यह सारी रात बड़े चावसे कामियोंकी निरन्तर होनेवाली काम-क्रीड़ाएँ देखता हुआ सारी रात जागता रहा इसलिये प्रातःकाल ऊपकी आनेसे उसकी देखनेकी शक्ति भी मन्द पड़ गई हो और उसकी आँखें झँपी जा रही हों ॥ १० ॥ तड़के-तड़के मुर्गेकी बाँग सुनकर झट नींद खुल जानेपर वह नवेली झरोखेसे दिन निकला देखकर अपने प्रियतमसे बिछोह होनेके डरके मारे खटियापर करवट बदल ही रही थी कि इतनेमें पूर्व दिशामें लाल लाल सूर्य दिखाई पड़ गया ॥ ११ ॥ पहले-पहल फूट निकलनेवाली सूर्यकी लाल-लाल किरणें ऐसी शोभा दे रही हैं मानो उदयाचलपर टहलनेवाली देवियोंके कानोंपर कल्पवृक्षकी कोंपलें टँगी हुई हों ॥ १२ ॥ प्रातःकाल सूर्यकी लाल-लाल किरणोंसे पूर्व दिशा फैल सी गई और तारोंकी चमक धुँधली पड़ गई। इस प्रकार सूर्य निकलनेके समय कुछ-कुछ खिले हुए नीले कमलके भीतर बैठे हुए भौंरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो सूर्यके डरसे सारा अँधेरा इकट्ठा होकर उस नील कमलरूपी कुटीके कोनेमें छिपा जा रहा हो ॥ १३ ॥ अब स्त्रियोंकी सब क्रीड़ाएँ समाप्त हो गईं, केवल (अपने प्यारेको) गले लगाना-भर बच रहा है, स्तनपर पुता हुआ केसर छूट गया है और उसकी सुगन्ध-मात्र बच रही है तथा कामदेवके सारे बाण छूट चुके हैं और छूँछा तूणीर मात्र शेष रह गया है। अतः जान पड़ता है कि रात भी बीत चली है और अब उसका अन्तिम पहर (उषःकाल) मात्र शेष रह गया है ॥ १४ ॥ प्रातःकाल निकला हुआ सूर्य

वज्रिणा प्रातः शङ्कितयेव दिव्यपदवीं गत्वात्मनः शुद्धये। और्वोत्तापितवार्धितापकतलादादाय मुक्तो वहिः प्राच्याऽसौ दिवि तप्तमाषक इव प्रद्योतनो द्योतते ॥ १५ ॥ इतः पौरस्त्यायां ककुभि विवृणोति क्रमदलत्तमिस्रामर्माणं किरणकलिकामम्बरमणिः। इतो निष्क्रामन्ती नवरतिगुरोः प्रोञ्छति वधूः स्वकस्तूरीपत्राङ्कुरमकरिकामुद्रितमुरः ॥ १६ ॥ इतः शुभ्रा चन्द्रद्युतिभिरिह रक्तारुणकरैस्तमिस्रैरप्यन्तःस्खलितगतिभिर्मेचकरुचिः। प्रभातश्रीरेषा विलसति पुरस्था सुकृतिनां मिमङ्क्षूणां जह्नुयमणिविधिजासङ्गम इव ॥ १७ ॥ इतः शोचिः प्राच्यां दिशि दिशति भानोररुणतामितो भृङ्गः कूजन्नभिकमलिनीं प्रोच्चलति च। इतो निर्यान्त्युच्चैर्विहितसुरतक्लान्तिशिथिलस्खलत्पादन्यासक्वणरणितमञ्जीरमबलाः ॥ १८ ॥ उत्थायोन्नतवासयष्टिशिखरे विस्तारिताकुञ्चितं बिभ्रत्पादमुदस्तकेसरसटः किञ्चिद्विनिद्रेक्षणः। दूरादञ्चितकन्धरः शमवशाद्याधूय पक्षद्वयं मानम्लानिकरः कुरङ्गकदृशां कोकूयते कुक्कुटः ॥ १९ ॥ उत्फालं हेलयैव द्रुतमभिपततः पूर्वपृथ्वीधराग्रादुच्चैरंचिश्चपेटाहतिभिरिव हरेर्ध्वान्तदन्ती विदीर्णः। रक्ताः कुम्भैर्विमुक्ता इव सकलदृशां विस्मयं सन्दधानाः सन्ध्याशोणत्विषस्ताः सपदि निपतितास्तारकास्ताः समस्ताः ॥ २० ॥ उन्मीलन्ति निशानिशाचरवधूत्मोच्चाटनामान्त्रिकाः सायं सालससुप्तपङ्कजवनप्रोद्बोधवैतालिकाः। फुल्लत्पङ्कजकोशगर्भकुहरप्रोद्भूतभृङ्गावलीझङ्कारप्रणवोपदेशगुरवस्तीव्रद्युतेरंशवः॥ २१ ॥ एकद्विप्रभृतिक्रमेण गणनामेषामिवास्तं यतां कुर्वाणा समकोचयद्दशशतान्यम्भोजसंवतिकाः। भूयोऽपि क्रमशः प्रसारयति ताः सम्प्रत्यमूनुद्यता सङ्ख्यातुं सकुतूहलेव नलिनी भानोः सहस्रं करान् ॥ २२ ॥ एतच्चकेय

ऐसा दिखाई पड़ता है मानो जब इन्द्रने अपनी प्रियतमा पूर्व दिशापर यह सन्देह किया कि 'तुम चन्द्रमासे प्रेम करने लगी हो', तब वह तपस्या करके यह कलङ्क छुड़ानेके लिये पाताल लोकको चली गई और अपने पवित्र हो जानेका प्रमाण देनेके लिये बड़वानलसे तपे हुए समुद्रतलसे जो दहकता हुआ सोनेका गोला हाथमें लेकर आई है वही यह सूर्यके रूपमें चमक रहा है ॥ १५ ॥ इधर तो पूर्व दिशामें सूर्य क्रमशः अँधेरेका हृदय फाड़ देनेवाली अपनी किरणोंकी कलियाँ फैला रहा है और उधर अपने क्रीड़ाभवनसे निकलती हुई नायिका अपने शरीरसे छूटकर अपने साथ नित्य-नई रात करनेवाले प्रेमीकी छातीपर लगी हुई कस्तूरीके बेल-बूटोंकी छाप पोंछती जा रही है ॥ १६ ॥ प्रातःकालकी छटा ऐसी निराली है कि कहीं तो डूबते हुए चन्द्रमाकी चाँदनीका धुँधलापन छाया हुआ है, कहीं सूर्यकी किरणोंकी ललाई छाई हुई है और कहीं-कहीं रुके हुए अन्धकारसे कालापन भी दिखाई दे रहा है। इसलिये प्रभातकी छटा स्नान करनेवाले पुण्यात्माओंके लिये गङ्गा, यमुना और सरस्वतीके सङ्गमके समान पवित्र हो गई है ॥ १७ ॥ पूर्वमें एक ओर तो सूर्यकी ललाईकी चमक शोभा दे रही है, दूसरी ओर गुनगुनाता हुआ भौंरा कमलिनीकी ओर बढ़ा जा रहा है और इधर अत्यन्त वेगसे रति करनेके परिश्रमसे थकी हुई नारियाँ डगमग पैरोंसे चलनेके कारण रुक-रुककर, बिछुए बजाती हुई अपने क्रीड़ा-भवनोंसे निकल रही हैं ॥ १८ ॥ तड़के-तड़के उठकर, ऊँचे अड्डेपर चढ़कर, एक-एक पैर उठाकर सिकोड़ता-फैलता हुआ, अपने गलेपरके रोएँ उठाकर कुछ उनींदी आँखोंसे देखता हुआ तथा अपने कन्धे उचकाकर, अपने दोनों पङ्ख भरपूर फुलाकर शान्तिके साथ उन्हें फड़फड़ाता हुआ, यह हरिणकी-सी आँखोंवाली कामिनियोंका मान भङ्ग करनेवाला मुर्गा 'कुकड़ूँ ऽकूँऽऽ'की टेर सुना रहा है ॥ १९ ॥ पर्वतोंके पूर्वी ढालपर लाली फैलाता हुआ, अपनी किरणोंके उजालेसे अँधेरेरूपी ऐरावत हाथीके दाँत उखाड़ता हुआ, लाल-लाल चमकता हुआ और रात्रि तथा दिनके मिलनकी ललाई धारण करनेवाला सूर्य ज्यों ही उदय हुआ त्यों ही सबको चकित करते हुए तारागण ऐसे झड़ गए मानो घड़ोंसे रज गिर गए हों ॥ २० ॥ तड़के-तड़के चारों ओर फैलनेवाली सूर्यकी किरणें ऐसी जान पड़ती हैं मानो रातरूपी राक्षसीको भगानेके लिये मन्त्रका जप करनेवाले तान्त्रिक हों, या आलस्यसे सोए हुए कमलोंको जगानेवाले वैतालिक (चारण) हों अथवा खिले हुए कमलोंके बीचसे निकलते हुए भौंरोंकी गूँजरूपी प्रणव (ओम्) का उपदेश करनेवाली आचार्या हों ॥ २१ ॥ प्रातःकाल क्रमसे अपनी पङ्खुड़ियाँ खोलती हुई कमलिनी ऐसी जान पड़ती है मानो सन्ध्या समय सूर्यके साथ सिमटनेवाली किरणोंकी जो गिनती कमलिनीने अपनी पङ्खुड़ियोंको क्रमसे सिकोड़-सिकोड़कर की थी, वही अब निकलती हुई किरणोंको बड़े प्रेमसे एक-एक करके

चक्रवाकसुदृशामाश्वासनादायिनः प्रौढध्वान्तपयोधिमग्नजगतीदत्तावलम्बोत्सवाः । दीप्तांशोर्विकसन्ति दिङ्मृगदृशां काश्मीरपङ्कोदकव्यात्युक्षीचतुराः सरोरुहवनश्रीकेलिकाराः कराः ॥ २३ ॥ एते केतकधूलिधूसररुचः शीतद्युतेरंशवः प्राप्ताः सम्प्रति पश्चिमस्य जलधेस्तीरं जराजर्जराः । अप्येते विकसत्सरोरुहयनीदृक्पातसम्भाविताः प्राचीरागमुदीरयन्ति तरणेस्तारुण्यभाजः कराः ॥ २४ ॥ का कावला निधुवनश्रमपीडिताङ्गी निद्रां गता दयितबाहुलतानुबद्धा । सा सा तु यातु भवनं मिहिरोद्गमोऽयं सङ्केतवाक्यमिति काकचया वदन्ति ॥ २५ ॥ किञ्चिद्विश्लथकेशवान्तकुसुमाः क्रीडाविलोलांशुका लुप्तालुप्तशरीरचन्दनतया लोकैकनेत्रोत्सवाः । सम्भोगश्रमविह्वलैरवयवैः सङ्केतशालान्तरान्निद्राशेषकषायितार्धनयना निर्यान्ति वाराङ्गनाः ॥ २६ ॥ कुक्कुटे कुर्वति क्वाणमाननं श्लिष्टयोस्तयोः । दिवाकरकराक्रान्तं शशिकान्तमिवाबभौ ॥ २७ ॥ कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाँश्चक्रवाकः । उदयमहिमरोचिर्याति शीतांशुरस्तं हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः ॥ २८ ॥ कुर्वन्नाभुग्नपृष्ठो मुखनिकटकटीस्कन्धरोमा तिरश्चीं लोलेनाहन्यमानस्तुहिनकणमुचा चञ्चता केशरेण । निद्राकण्डूकषायं कषति निबिडितश्रोत्रशुक्तिस्तुरङ्गस्त्वङ्गत्पक्ष्माग्रलग्नप्रतनुबुसकणं कोणमक्ष्णः खुरेण ॥ २९ ॥ कृतधवलिमभेदैः कुङ्कुमेनेव किञ्चिन्मलयरुहरजोभिर्भूषयन्पश्चिमाशाम् । हिमरुचिररुणिम्ना राजते रज्यमानैर्जरठकमलकन्दच्छेदगौरैर्मयूखैः ॥ ३० ॥ कोकानुन्नीवयन्तः पथि पथि कुलटामानसं कम्पयन्तः प्रस्थातारं प्रभाते प्रियतममबला गाढमालिङ्गयन्तः । उत्थातुं चाङ्गभङ्गीः कुलकमलदृशां कारयन्तो निशान्ते कूङ्काराः कुक्कु-

---

गिनते हुए क्रमशः एक-एक पङ्खड़ी खोल रही हो ॥ २२ ॥ यह देखो, चकवेकी सुनयनी नवेलियों (चकवियों) को ढाढ़स बँधानेवाली, घने अन्धकाररूपी समुद्रमें डूबे हुए संसारको सहारा देनेवाली, दिशारूपी नायिकापर केशरके पानीका छींटा डालनेवाली तथा कमल-वनकी शोभारूपी नायिकाके साथ क्रीड़ा करनेमें रस लेनेवाली सूर्यकी किरणें चमकने लगीं ॥ २३ ॥ एक ओर तो केवड़ेके फूलके परागके समान धुँधली चन्द्रमाकी किरणें पुरानी पड़ जानेके कारण चूर-चूर होकर पश्चिम-सागरके किनारे जा पड़ी हैं और दूसरी ओर सूर्यकी वे चमकती हुई नई-नई किरणें पूर्व दिशाको लाल बनाए दे रही हैं जिनका आदर खिली हुई कमलिनियाँ अपनी चितवन-द्वारा किया करती हैं ॥ २४ ॥ प्रातःकाल कौवे जो काँव-काँव कर रहे हैं वे मानो रँगीली नवेलियोंको चेतावनी दे रहे हैं कि 'सम्भोगसे थककर पतिकी बाहोंमें लिपटी हुई कौन स्त्री अबतक सो रही है ? अब दिन निकल आया है, अतः उसे अपने घर चले जाना चाहिए' ॥ २५ ॥ देखो, जिनके खुले हुए जूड़ोंसे फूल सरक-सरककर गिर रहे हैं, जिनके वस्त्र रति-क्रीडासे मैले हो गए हैं, जिनके शरीरपर कहीं-कहीं लगे रह गए चन्दनके चकत्ते देखकर लोग आनन्द ले रहे हैं, जिनके अङ्ग सम्भोगकी थकावटसे ढीले पड़ गए हैं और जिनकी आँखें नींद पूरी न होनेसे लाल-लाल और झँपी-सी लग रही हैं वे वेश्याएँ अपने-अपने प्रेमियोंसे मिलनेके क्रीडा-गृहोंसे तड़के-तड़के निकली चली जा रही हैं ॥ २६ ॥ ज्यों ही प्रातःकाल मुर्गेकी बाँग सुनाई पड़ी त्यों ही नायक और नायिकाके आपसमें सटे हुए मुँह ऐसे फीके पड़ गए जैसे सूर्यकी किरणोंके आगे चन्द्रकान्त मणिकी चमक धुँधली पड़ जाती है ॥२७॥ प्रातःकाल कुमुदका वन मुरझा गया, कमल खिल गए, उल्लू उदास हो गया, चकवा फूल उठा, सूर्य निकल आए और चन्द्रमा अस्त होने लगा। सचमुच भाग्यहीनोंके कर्मोंका फल बड़े विचित्र ढङ्गका होता है ॥ २८ ॥ प्रातःकाल अपने शरीरपर पड़ती हुई अस्त होते हुए चन्द्रमाकी तिरछी किरणोंसे चौंककर घोड़ा अपनी पीठ तानकर तथा कन्धा मोड़कर, अपनी कमरके पास हिलते हुए अयालोंवाला गला बार-बार घुमा रहा है और अपने कान चिपटाकर खुरसे अपनी कडुआई हुई उनींदी आँखके कोने खुजला-खुजलाकर बरौनियोंमें लगे हुए भूसे (या लीद) के नन्हें-नन्हें कण छुड़ा रहा है ॥ २९ ॥ प्रातःकाल रँगी हुई-सी किरणोंवाला, कमलकी पुरानी जड़के टुकड़ोंके समान उजला और लाल-लाल-सा वह चन्द्रमा ऐसा शोभित हो रहा है मानो केसरके पीले रङ्गसे चन्दनका पीला करके उसके चूर्णसे पश्चिम दिशाका शृङ्गार कर रहा हो ॥ ३० ॥ रात बीतनेके समय मुर्गेकी कुकड़ूँ-कूँ, मधुके समान मधुर, गम्भीर और ऐसी ऊँची सुनाई पड़ रही है कि उसे सुनकर चकवे उतावलेपनके साथ सिर उठा रहे हैं, व्यभिचारिणी स्त्रियोंके हृदय काँप रहे हैं, स्त्रियाँ घरसे जाते हुए नायकोंको गले

टानां मधुमधुरसमारम्भगम्भीरधीराः ॥ ३१ ॥ चन्द्रकान्तगलदम्बुनाधुना हा चकोरनयने समाश्रिते। कोकलोकहृदयानलः पुनः सूर्यकान्तमणिमाश्रयत्यहो ॥ ३२ ॥ चिरतररतखेदप्राप्तनिद्रासुखानां चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः। अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणामशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः ॥ ३३ ॥ जाताः पक्वपलाण्डुपाण्डुमधुरच्छायाकिरस्तारकाः प्राचीमङ्कुरयन्ति किञ्चन रुचो राजीवजीवातवः। लूतातन्तुवितानवर्तुलमितो बिम्बं दधच्चुम्बति प्रातः प्रोषितरोचिरम्बरतलादस्ताचलं चन्द्रमाः ॥ ३४ ॥ जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टैर्हस्तैर्भानोर्नृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः। स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलग्याङ्गरागा मुञ्चन्त्येते विकचनलिनीगर्भशय्यां द्विरेफाः ॥ ३५ ॥ ततोऽरुणपरिस्पन्दमन्दीकृतवपुः शशी। दध्रे कामपरिक्षामकामिनीगण्डपाण्डुताम् ॥ ३६ ॥ तमोभिः पीयन्ते गतवयसि पीयूषवपुषि ज्वलिष्यन्मार्तण्डोपलपटलधूमैरिव दिशः। सरोजानां कर्षन्नलिमयमयस्कान्तमणिवत्त्वणादन्तःशल्यं तपति पतिरद्यापि न रुचाम् ॥ ३७ ॥ तरुणीं दिवाकरमयूखमञ्जरीमरुणामशोकशिखरावलम्बिनीम्। कमनीयपुष्पमनसा समाश्रितां मधुपो विडम्बयति मञ्जुभाषिणीम् ॥ ३८ ॥ दिङ्मण्डलीमुकुटमण्डनपद्मरागरत्नाङ्कुरे किरणमालिनि गर्भितेऽपि। सौख्यप्रसुप्तिकमधुव्रतचक्रवालवाचालपङ्कजवनीसरसाः सरस्यः ॥ ३९ ॥ दिशि दिशि मृगयन्तः वल्गुना घासमेते मुहुरपगतनिद्राः सप्तयो ह्रेषितेन। अयमपि च सरोषैः कामिभिः श्रूयमाणो नदति मधुरतारं ताम्रचूडो विहङ्गः ॥ ४० ॥ द्रुततरकरदक्षाः क्षिप्तवैशाखशैले दधति दधनि धीरामारवान्वारिणीव। शशिनमिव सुरौघाः सारमुद्धर्तुमेते कलशिमुदधिगुर्वीं बल्लवा लोडयन्ति ॥ ४१ ॥ द्रुमाः पाण्डुप्राया धृतनिविडगर्भाः स्त्रिय इव प्रफु-

---

लगा रही हैं और कुल-वधुएँ बिछौनेसे उठनेके लिये अँगड़ाइयाँ ले रही हैं ॥ ३१ ॥ प्रातःकाल चन्द्रकान्तमणिसे निकला हुआ सारा जल तो चकोरकी आँखोंमें पहुँच गया और चकवा-चकवीके हृदयकी आग सूर्यकान्त मणिमें समा गई ॥ ३२ ॥ सुखसे जी-भर सोकर भी जो नवेलियाँ कुछ पहले ही उठ गई हैं वे बहुत देरतक रति करनेसे थक जानेके कारण गहरी नींदका सुख लेते हुए अपने प्रियतमोंको अपनी भुजाओंमें कसकर निश्चेष्ट होकर आलिङ्गनका सुख ले रही हैं, उन्हें छोड़तीं नहीं ॥ ३३ ॥ प्रातःकालके तारोंमेंसे पके हुए प्याजकी-सी पीली पीली सुन्दर चमक निकल रही है, कमलोंको जिलानेवाले सूर्यकी किरणें पूर्व दिशाको सुहावनी बना रही हैं तथा मकड़ीके जालके समान गोल-गोल चन्द्रमा धुँधला होकर अस्ताचलकी ओर बढ़ा चला जा रहा है ॥ ३४ ॥ प्रातःकाल ज्योंही कमलकी पंखुड़ियाँ खुलने लगीं त्योंही उसी मार्गसे सूर्यकी वे किरणें हाथ बनकर उन कमलोंमें जा घुसीं जिनके छूते ही वहाँ सोए हुए सब भौंरे, राजाओंके समान जाग उठे और अब कमलके परागसे अङ्गराग लगे हुएसे शरीरवाले वे भौंरे अपनी भौंरियोंके साथ कमलिनीके खिले हुए फूलरूपी बिछौनेको छोड़ रहे हैं ॥ ३५ ॥ सूर्यके निकलते ही चन्द्रमा धुँधला पड़कर कामकी पीड़ासे दुबली नायिकाके गालके समान पीला दिखाई पड़ने लगा है ॥ ३६ ॥ यद्यपि चन्द्रमाके अस्त हो जानेपर सब दिशाओंपर छाया हुआ अँधेरा जले हुए सूर्यकान्त मणिका धुआँ-सा जान पड़ने लगा है फिर भी कमलोंके भीतर बाणके समान चुभे हुए भौंरोंको चुम्बकके समान बाहर खींच लेनेवाला सूर्य अभीतक भी निकला नहीं है ॥ ३७ ॥ एक मिठबोली नायिका अशोकके पत्तोंपर पड़कर चमकती हुई प्रातःकालकी लाल लाल किरणोंको फूल समझकर ज्योंही उन्हें तोड़नेकी इच्छासे बढ़ी त्योंही भौंरे उसके पीछे पड़ गए ॥ ३८ ॥ जिस सूर्यकी किरणें दिशाओंके मुकुटोंपर जड़े हुए पोखराजकी किरणोंके समान चमकती हैं, वह अभी निकला भी न था कि सभी तालाब उन खिले हुए कमलोंसे सज गए जिनपर सुखसे सोकर जगे हुए भौंरे मस्तीसे गुनगुना रहे थे ॥ ३९ ॥ प्रातःकाल एक ओर तो जगे हुए सभी घोड़े बार-बार हिनहिनाकर और ढूँढ़-ढूँढ़कर घास चरते हुए बड़े भले लग रहे हैं इधर मुर्गोंने भी ऊँचे स्वरसे 'कुकुड़ूँ ऽकूँऽऽऽ' करना प्रारम्भ कर दिया है जिसे सुनकर कामी लोग क्रोधसे जल उठे हैं॥ ४० ॥ जैसे चन्द्रमाको निकालनेके लिये देवताओंने मन्दर पर्वतको मथानी बनाकर समुद्र मथा था वैसे ही प्रातःकाल वेगसे हाथ चलानेवाले ग्वाले मक्खन निकालनेके लिये मटकेमें मथानी डालकर दही मथ रहे हैं और उसमेंसे 'घरंवों-घरंवों' की मधुर गम्भीर गूँज निकल रही है ॥ ४१ ॥ प्रातःकाल पेड़ वैसे ही पीले दिखाई पड़ रहे हैं जैसे गर्भ पूरा होनेपर स्त्रियाँ पीली पड़ जाती हैं; कुन्द ऐसे

ल्लास्ते कन्दा नृपतिकृतमाना इव जनाः । पिको मन्दं मन्दं हृदि मदननामानि जपति प्रभोरग्रे पूर्वापरिचितसभाकः कविरिव ॥ ४२ ॥ द्वित्रैर्व्योम्नि पुराणमौक्तिकमणिच्छायैः स्थितं तारकैर्ज्योत्स्नापानभरालसेन वपुषा मत्ताश्चकोराङ्गना । यातोऽस्ताचलचूलमुद्वसमधुच्छत्रच्छविश्चन्द्रमा प्राची बालबिडाललोचनरुचां जाता च पात्रं ककुप् ॥ ४३ ॥ नक्तं निरङ्कुशतया कुशसूचिभेद्यो यः सर्वतस्त्रिभुवनेऽपि ममौ कथञ्चित् । माति स्म सोऽपि दृशि घूकविहङ्गमस्य भानोर्भयाज्झटिति सङ्कुचितोऽन्धकारः ॥ ४४ ॥ नभसि विरलतारा मौक्तिकानीव भान्ति स्फुटतरमयमस्तक्ष्माधरं चुम्बतीन्दुः । रविरुदयधरित्रीधारिमूर्धानमेतुं हृदयमनु नितान्तोल्लासमङ्गीकरोति ॥ ४५ ॥ नभोवनं नक्तमसौ विगाह्य नक्षत्रसेनासहितः शशाङ्कः । कराग्रलग्नान्कतिचित्प्रहृत्य पान्थान्प्रभाते प्रपलायतेऽद्य ॥ ४६ ॥ निर्यान्त्या रतिवेश्मनः परिणतप्रायां विलोक्य क्षपां गाढालिङ्गनचुम्बनानि बहुशः कृत्वाप्यसन्तुष्टया । एकं भूमितले निधाय चरणं तल्पे प्रकल्प्यापरं तन्वङ्ग्या परिवर्तिताङ्गलतया प्रेयाँश्चिरं चुम्बितः ॥ ४७ ॥ निपीय बहु वारुणीं जलनिधौ स्खलन्तं क्षणादमुं विगलितांशुकं द्विजपतिं विलोक्य ध्रुवम् । इयं प्रियतमा हरेर्दिगरुणोदयस्य च्छलात्कुसुम्भवसनाञ्चलैः स्वमुखमावृणोति ह्रिया ॥ ४८ ॥ पत्यौ पात्रे कलानां व्रजति विधिवशादस्तमिन्दौ क्रमेण क्रन्दन्ती पत्रिनादैर्विगलिततिमिरस्तोमधम्मिल्लभारा । प्रभ्रश्यत्स्थूलमुक्ताफलनिकरपरिस्पर्धितारात्रुबिन्दुः प्रोन्मीलत्पूर्वसन्ध्याहुतभुजि रजनी पश्य देहं जुहोति ॥ ४९ ॥ पद्मिन्याः सकलां विधाय विकलां ताराधिपः सम्पदं तत्प्रेयस्युदयोन्मुखे सति रवावुद्विग्नतामाश्रितः । ताराः स्वस्य करैर्विकृष्य सहसा गच्छन्नि-

---

फूल आए हैं जैसे राजासे सम्मान पाए हुए मनुष्य फूल उठते हैं और कोकिल भी वैसे ही धीरे-धीरे कूककर कामदेवका नाम जप रहा है, जैसे कोई अनजान कवि पहले-पहल सभामें आकर स्वामीके सम्मुख झेंपके साथ धीरे-धीरे कविता-पाठ करता है ॥ ४२ ॥ प्रातःकाल आकाशमें पुराने मोतीके समान धुँधली चमकवाले दो-तीन तारे रह गए हैं, भरपेट चाँदनी पी लेनेसे मतवाली चकोरियोंका शरीर अलसा गया है, चन्द्रमा भी मधु निकल जानेपर पीले पड़े हुए मधुके छत्तेके समान पीला-सा होकर अस्ताचलकी ओर जा रहा है और पूर्व दिशाकी शोभा बिलौटने (बिल्लीके बच्चे) की आँखोंके समान लाल-लाल दिखाई पड़ रही है ॥ ४३ ॥ सुईसे भी न बेधा जा सकनेवाला जो घना अँधेरा रातमें निडर होकर फैलता हुआ तीनों लोकोंमें नहीं समा रहा था वही अँधेरा, सूर्यके उदय होनेपर सिकुड़कर उल्लूके नेत्रमें जा पैठा है ॥४४॥ प्रातःकाल आकाशमें कहीं-कहीं टिमटिमाते हुए एकाध तारे मोतीके समान चमक रहे हैं, यह चन्द्रमा प्रत्यक्ष ही अस्ताचलको चूमने जा रहा है और सूर्य भी उदयाचलके शिखरपर चढ़नेके लिये मनमें फूला नहीं समा रहा है ॥ ४५ ॥ रातको चन्द्रमा अपनी तारोंकी सेना लेकर आकाश-रूपी वनको रौंदता-कुचलता, हाथ आए हुए कुछ पथिकों (राहियों अथवा वियोगियों) को मारकर प्रातःकाल भागा चला जा रहा है ॥ ४६ ॥ नायिकाने जब देखा कि रात बीत गई है और दिन निकल आया तब वह क्रीड़ागृहसे निकलते-निकलते भी बार-बार अपने प्रियको छातीसे लगाने तथा चूमने लगी । फिर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ और वह अपना एक पैर धरतीपर और दूसरा पलँगपर रखकर अपनी देह घुमाकर अपने प्रियको चूमती ही रह गई ॥ ४७ ॥ बहुत मदिरा पीनेके (मदके) कारण, समुद्रमें गिरते हुए डगमग चलते हुए नङ्गे, (बिना किरणोंवाले) चन्द्रमा (ब्राह्मण) को देखकर मानो इन्द्रकी प्यारी पूर्व दिशा लजाकर गुलाबी साड़ीके आँचलसे अपना मुँह ढक रही हो ॥ ४८ ॥ देखो, प्रातःकालकी ललाई ऐसी जान पड़ती है मानो रात्रिरूपी नायिका अपने कलावान् प्रियतम चन्द्रमाके दुर्भाग्यवश धीरे-धीरे समाप्त होनेपर अपने घने अन्धकाररूपी बाल बिखेरकर, बड़े-बड़े मोतियोंके समान चमकनेवाले ताररूपी आँसू गिराती हुई और चिड़ियोंकी चहचहाहटके स्वरोंमें बिलखती हुई, पूर्व दिशारूपी कुण्डमें जलती हुई प्रातःकालकी लालिमा-रूपी अग्निमें अपनेको झोंककर सती होनेकी तैयारी कर रही हो ॥ ४९ ॥ चन्द्रमाने रातके समय कमलिनीकी सारी शोभा नष्ट कर डाली । अतः जब कमलिनीके पति सूर्यको चन्द्रमाने उदित होते देखा तो उसके हाथ-पाँव फूल गए और वह अपनी किरणों (हाथों) से अपनी तारिका-रूपी स्त्रियोंको पकड़कर वेगसे अस्ताचलकी ओर खींच ले चला । उस समय सूर्यके कर (किरण तथा हाथ) में जो दो-चार तारिकाएँ

तोऽस्ताचलं लग्नाः काश्चन ताः प्रभाकरकरे पश्यन्परिम्लायति ॥ ५० ॥ परिशिथिलितकर्णग्रीवमामीलिताक्षः क्षणमयमनुभूय स्वप्नमूर्ध्वज्ञुरेव । रिरसयिषति भूयः शष्पमग्रे विकीर्णं पटुतरचपलौष्ठं प्रस्फुरत्प्रोथमश्वः ॥ ५१ ॥ पीत्वा भृशं कमलकुड्मलशक्तिकोषादोषातनीं तिमिरवृष्टिमथ स्फुटन्तः । निर्यन्मधुव्रतकदम्बमिषाद्वमन्ति बिभ्रन्ति कारणगुणानिव मौक्तिकानि ॥ ५२ ॥ प्रत्यग्रज्वलितैः पतङ्गमणिभिर्नीराजिता भानवः सावित्राः कुरुविन्दकन्दलरुचः प्राचीमलङ्कुर्वते । प्रौढध्वान्तकरालितस्य वपुषश्छायाछलेन क्षणात्प्रक्षालितनिर्मलं जगदहो निर्मोकमुन्मुञ्चति ॥ ५३ ॥ प्रत्यासन्नसुरेन्द्रसिन्धुरशिरःसिन्दूरसान्द्रारुणा यत्तेजस्त्रसरेणवो वियदितः प्राचीनमाचिन्वते । शङ्के सम्प्रति यावदभ्युदयते तत्तकुटङ्कोन्मृजारज्यद्विम्बरजश्छटावलयितो देवस्त्विषामीश्वरः ॥ ५४ ॥ प्रयातवति यामिनीरमणचन्द्रिकापाथसि प्रशान्तमिव भासते सरसकर्दमाभं नभः । प्रवेष्टुमिह शङ्कितैरिव रवेस्तुरङ्गैर्धृतः क्षणं त्यजति नोदयाचलविटङ्कवीथीं रथः ॥ ५५ ॥ प्रहरकमपनीय स्वं निदिद्रासतोच्चै प्रतिपदमुपहूतः केनचिज्जागृहीति । मुहुरविशदवर्णां निद्रया शून्यशून्यां ददुदपि गिरमन्तर्बुध्यते नो मनुष्यः ॥५६॥ प्राचीं वासकसज्जिकामुपगते भानौ दिशां वल्लभे पश्यैता रुचयः पतङ्गदृषदामाग्नेयनाडिन्धमाः । लोकस्य क्षणदानिरङ्कुशरसौ सम्भोगनिद्रागमौ कोकद्वन्द्वकुमुद्वतीविपिनयोर्निक्षेपमातन्वते ॥ ५७ ॥ प्राची दिगम्बरमणौ दयिते विभाते प्रान्तेऽम्बरं स्पृशति वासकसज्जिकेयम् । धीरा जगाद रमणस्य न भूषणानि रोषारुणा त्यजति तारकभूषणानि ॥ ५८ ॥ प्राचीविभ्रमक-

पड़ गईं उन्हें देख-देखकर चन्द्रमा जो दुखी हो रहा है उसीसे उदास जग रहा है ॥ ५० ॥ प्रातःकाल अपने कान और ग्रीवाको ढीला करके, आँखें मूँदकर तथा घुटना मोड़े हुए थोड़ी नींद लेकर यह घोड़ा अपने चञ्चल ओठों और फड़कते हुए थुथनेसे सामने डाली हुई घास खा रहा है ॥ ५१ ॥ प्रातःकाल खिले हुए कमलोंसे निकलते हुए भौंरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कमलकी कलीरूपी सीपीमें रातको अन्धकार-रूपी जल पड़ जानेसे उसमेंसे काले-काले मोती निकल रहे हों ॥ ५२ ॥ सूर्योदय होते ही सूर्यकान्त मणिसे निकली हुई चमकसे सूर्यकी जिन किरणोंकी आरती-सी होती जान पड़ती है उन पोखराजके समान चमकती हुई किरणोंसे पूर्व दिशा चमक उठी है, संसारकी सभी वस्तुएँ बिना धोए ही निर्मल हो गई हैं और अब सूर्यके निकलनेपर उन वस्तुओंकी जो परछाईं पड़ रही है वह ऐसी जान पड़ती है मानो सूर्योदयसे पहले जो अन्धकार उन्हें घेरे हुए था वही परछाईंके बहाने अब छूट रहा हो ॥ ५३ ॥ सूर्यके जो किरणरूपी कण पूर्वमें अपने पास रहनेवाले इन्द्रके हाथी ऐरावतके माथेका सिन्दूर लग जानेसे अधिक लाल हो गए हैं, वे आकाशमें फैले हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो आकाशकी मरम्मत कर रहे हों। इसे देखकर मुझे तो यह शंका होती है कि कहीं किरणोंपर विश्वकर्माकी छेनी चलानेसे ही तो उससे छिटककर ये चमकते हुए छोटे-छोटे कण चारों ओर नहीं बिखर गए हैं ॥ ५४ ॥ प्रातःकाल आकाश ऐसा जान पड़ रहा है मानो रात्रिरूपी नायिकाके स्वामी चन्द्रमाका चाँदनीरूपी सारा जल बह जानेपर अब उसमें केवल कीचड़ रह गया हो इसीलिये सूर्यके घोड़े उसमें घुसनेसे हिचकिचा रहे हों और इसीसे सूर्यका रथ उदयाचलमें ही एक क्षणको रुक गया हो ॥ ५५ ॥ प्रातःकाल कोई पहरेदार अपने पहरेकी बारी बिताकर सोना चाहता है और अपने स्थानपर काम करनेवाले दूसरे व्यक्तिको चिल्ला-चिल्लाकर जगा रहा है—'जागो-जागो!' किन्तु वह दूसरा व्यक्ति गहरी नींदमें बर्राता हुआ 'अरे जागता हूँ, उठता हूँ' तो कहता है पर जागता नहीं ॥ ५६ ॥ देखो, दिशाओंका प्रियतम सूर्य जब बिछौना बिछाकर प्रतीक्षा करनेवाली प्यारी (पूर्व दिशा) की ओर पहुँचा तो उसका प्रकाश पाते ही सूर्यकान्त मणियोंमें ऐसी ज्वालाएँ फूट उठीं जो रातमें चारों ओर उद्दण्डतासे फैले हुए भोग तथा नींदको अब चकवा-चकवी तथा कुमुदवनके पास धरोहर-सा रख रही हैं अर्थात् चकवा-चकवी तो आपसमें मिलकर आनन्द मना रहे हैं और कुमुद सङ्कुचित होकर सो रहे हैं ॥ ५७ ॥ पूर्व दिशारूपी नायिका बिछौना सजाकर सारी रात प्रतीक्षा करती रही, किन्तु जब उसका पति सूर्य प्रातःकाल आकर अम्बर (आकाश या वस्त्र) छूने लगा तो उसकी छेड़-छाड़से पूर्व दिशाने गम्भीर होकर उससे बातेंतक नहीं कीं, वरन् क्रोधसे लाल होकर अपने तारेरूपी गहने इधर-उधर उतार फेंके ॥ ५८ ॥ ज्यों ही आकाशमें उठती हुई सूर्यकी दो-तीन किरणें पूर्व दिशाके कानपर रक्खी हुई कमलकी पखुड़ियोंके

र्णिकाकमलिनीसम्वर्तिकाः सम्प्रति द्वे तिस्रो रमणीयमम्वरमणेर्यामुच्चरन्ते रुचः। सूक्ष्मोच्छ्वासमपीदमुत्सुकतया सम्भूय कोपाद्वहिर्निष्कामद्भ्रमरौघसम्भ्रमभरादम्भोजमुज्जृम्भते ॥ ५९ ॥ प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः पुष्पैः समं निपतिता रजनी प्रबुद्धैः। अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रमन्धसंसूचितानि कमलालयः पतन्ति ॥ ६० ॥ प्रालेयांशुरितश्चकोरविपदामार्द्रप्ररोहैर्जरत्काश्मी चिदनादनाकुलतया दौर्भाग्यमभ्यस्यति। भासां भर्तुरितश्च कोकसुकृतैरुद्ग्रीविकां विभ्रति द्वित्राः कुङ्कुमकेसरैकसुहृदो मन्दं मयूखाङ्कुराः ॥ ६१ ॥ प्रियवसतेरपयान्त्यो मिथः कराम्वितकराम्वुजन्मानः। करजपदव्रणविरलस्तनपुलकममूः किमपि विवदन्ते ॥ ६२ ॥ भिन्दानो मानिनीनां पतिषु रुषमयं हर्म्यपारावतेभ्यो वाचालत्वं ददानः कवितृषु कविताप्रानिभं सन्दधानः। प्रातस्त्यस्तूर्यनादः स्थगयति गगनं मांसलः पांशुतल्पादस्वल्पादुत्थितानां नरवरकरिणां शृङ्खलासिञ्जितेन ॥ ६३ ॥ मालिन्यं परिदृश्यते हिमरुचौ मन्दश्रियस्तारकाः शीताः केचन सञ्चरन्ति कमलामोदस्पृशो मारुताः। आसीदन्ति च चक्रवाकमिथुनान्यन्योन्यमुत्कण्ठया पादैस्ताडितकैरवा मधुलिहो गच्छन्ति पद्माटवीम् ॥ ६४ ॥ यः सैन्ये स्मरपार्थिवस्य विरहिप्रत्यर्थिनामग्रणीर्ज्योत्स्नानिर्भरमुज्झति स्म जगतां यस्तापनिर्वारणम्। सोऽयं तारकनायकः किमपरं शृङ्गाररसञ्जीवनं जातः पृष्ठपरागपाण्डुरजरत्कूष्माण्डपिण्डाकृतिः ॥ ६५ ॥ यद्गुप्तं गदितं रतिप्रणयतो रात्रौ विलोलभ्रुवा तत्संस्मारयति प्रिये स्मरमयं प्रातः प्रतिच्छन्दकैः। लोलाव्या स्मितधौतगण्डफलके पत्रावलीतूलकाव्यापारैर्विनिवारणात्तरभ-

समान दिखाई दीं त्योंही हड़बड़ीसे एक साथ जो कमलोंके भीतरसे भौरोंकी भीड़ निकली उन्हें देखकर ही मानो धीरे-धीरे साँस लेकर कमल जँभाई ले रहा हो ॥ ५९ ॥ जिन फूलोंका भीतरी भाग रातकी ओससे मिले हुए रससे भरा हुआ है, उनके खिलनेके साथ-साथ रात बीत गई और इस समय सूर्यकी किरणोंसे जिन कमलोंकी खिली हुई कलियोंसे सुगन्ध निकल रही है उनपर भौंरे मँडराने लगे हैं ॥ ६० ॥ प्रातःकाल एक ओर तो शीतल किरणोंवाला चन्द्रमा अपनी भीगी-सी किरणोंके द्वारा आँसू बहाता हुआ और पके हुए केशरका-सा पीला मुँह बनाकर दुर्भाग्यवश विपत्तिमें पड़े हुए चकोरोंके प्रति समवेदना प्रकट कर रहा है और दूसरी ओर केशर और कुङ्कुमके एक-मात्र साथी परम तेजस्वी सूर्यकी किरणें धीरे-धीरे सिर उठाकर चकवा चकवियोंकी प्रसन्नतासे खिली जा रही हैं ॥६१॥ अपने-अपने पतिके साथ क्रीड़ा करके अपने घरोंसे बाहर निकली हुई जो स्त्रियाँ एक दूसरेका हाथ पकड़े हुए हैं और नखके चिह्नोंके कारण जिनके स्तनोंपर कहीं-कहीं रोमाञ्च दिखाई पड़ रहा है, वे न जाने किस बातपर तड़के-तड़के आपसमें लड़-झगड़ रही हैं ॥ ६२ ॥ हे नरश्रेष्ठ! अपने पतियोंसे रूठी हुई स्त्रियोंका रोष भगाती हुई, बड़ी-बड़ी अटारियोंपर बैठे हुए कबूतरोंके गलोंमें मधुर गुटरगूँ भरती हुई, कवियोंमें कविता बनानेका हुलास भरती हुई और लम्बे-चौड़े धूलरूपी बिछौनेसे उठे हुए हाथियोंके साँकलकी झनझनाहटसे और भी अधिक बढ़ती हुई प्रातःकाल बजते हुए बाजोंकी मङ्गल ध्वनि आकाशमें गूँज रही है ॥ ६३ ॥ इस समय चन्द्रमा पीला दिखाई दे रहा है, तारे धुँधले पड़ गए हैं, कमलकी सुगन्ध लेकर शीतल वायु धीरे-धीरे बह रहा है, चकवेके जोड़े बड़े प्रेमसे आपसमें मिल रहे हैं और भौंरे कुमुदोंको पैरसे ठेलते हुए कमल-वनकी ओर उड़े चले जा रहे हैं ॥ ६४ ॥ जो चन्द्रमा, महाराज कामदेवकी सेनामें विरहियोंसे वैर करनेवाले सैनिकोंका नेता था, जो संसारका ताप दूर करनेके लिये अपनी चाँदनीकी धारा बरसाता रहता था और जो शृङ्गाररसको जिलानेकी सञ्जीवनी जड़ी था, वही चन्द्रमा प्रातःकाल पीली धूलसे लिपटे पके हुए कोंहड़ेके समान पीला-पीला दिखाई दे रहा है ॥ ६५ ॥ एक चञ्चल नेत्रोंवाली नवेली जब प्रातःकाल दर्पणके सामने बैठी अपने मुस्कुराहटसे चमकते हुए गालोंपर तूलिकासे चित्रकारी करने लगी, उसी समय उसका पति उसीके शब्दोंमें वे कामभरी बातें दुहरा-दुहराकर स्मरण कराने लगा जो उसने रातमें रतिके चावमें भरकर भौंहें नचा-नचाकर पतिसे गुपचुप कही थीं। उस समय पतिका नटखटपन रोकनेके लिये वह नवेली अपने कपोलोंपर ऐसे अक्षर लिखने लगी जिनका अर्थ होता था 'नहीं' और उसीके साथ उसी 'नहीं' के अर्थ में अपनी आँखें भी नचाती जा रही थी। इस प्रकार मुँहसे बिना कुछ कहे ही उसने अपने पतिको रातकी काममयी बातें कहनेसे रोक दिया ॥ ६६ ॥ प्रातःकाल एक ओर तो औषधियोंका स्वामी चन्द्रमा अस्ताचलकी ओर बढ़ा जा

राकारा विकीर्णा दृशः ॥ ६६ ॥ यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनामाविष्कृतारुणपुरःसर एकतोऽर्कः। तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ॥ ६७ ॥ ये कुरटीकृतवल्लभप्रणतयः शस्त्रैरनङ्गस्य ये न प्राप्ताश्च निशीथिनीपतिकरैः शैथिल्यवीथीमपि। ते निःशङ्कविटङ्कतालुतुमुलप्रोतप्रुतप्रावितैश्छिन्नाः कुक्कुटकूजितैर्मृगदृशां मानग्रहग्रन्थयः ॥ ६८ ॥ रतिरभसविलासाभ्यासतान्तं न यावन्नयनयुगममीलत्तावदेवाहतोऽसौ। रजनिविरतिशंसी कामिनीनां भविष्यद्विरहविहितनिद्राभङ्गमुच्चैर्मृदङ्गः ॥ ६९॥ लुठत्यपरवारिधौ कमठनिर्विशेषः शशी प्ररूढमुदयाचले चुलुकमात्रमुष्णं महः। क्षणं गगनवेदिकामिदमनङ्कुशं गाहते कलिन्दगिरिकन्यकातटतमालनीलं तमः ॥ ७० ॥ लुलितनयनताराः क्षामवक्त्रेन्दुबिम्बा रजनय इव निद्राक्लान्तनीलोत्पलाक्ष्यः। तिमिरमिव दधानाः स्रंसिनः केशपाशानवनिपतिगृहेभ्यो यान्त्यमूर्वारवध्वः ॥ ७१ ॥ विकसितसङ्कुचितपुनर्विकस्वरेष्वम्बुजेषु दुर्लक्ष्याः। कलिकाः कथयति नूतनविकासिनीर्मधुलिहामर्घः ॥ ७२ ॥ विगततिमिरपङ्कं पश्यति व्योम यावद्युवतिविरहखिन्नः पक्षती यावदेव। रथचरणसमाह्वस्तावदौत्सुक्यनुन्ना सरिदपरतटान्तादागता चक्रवाकी ॥ ७३ ॥ विपुलतरनितम्बाभोगरुद्धे रमण्याः शयितुमनधिगच्छञ्जीवितेशोऽवकाशम्। रतिपरिचयनश्यन्नैद्रतन्द्रः कथञ्चिद्गमयति शयनीये शर्वरीं किं करोतु ॥ ७४ ॥ विरलविरलीभूतास्तारा: कलौ सुजना इव व्यपसरति च ध्वान्तं चित्तात्सतामिव दुर्जनः। मन इव मुनेः सर्वत्रापि प्रसन्नमभून्नभो विगलति निशा क्षिप्रं लक्ष्मीरनुद्यमिनामिव ॥ ७५ ॥

रहा है, दूसरी ओर अपने सारथी अरुणके साथ सूर्य सामने चढ़ा चला आ रहा है। जब ये दोनों इतने तेजस्वी भी एक साथ उत्थान और पतनके चक्करमें पड़े हैं तब सारे संसारको सुख-दुःखके चक्करमें पड़ा रहना तो अनिवार्य ही है ॥ ६७ ॥ नायिकाके क्रोधकी जो गाँठें नायकके लाख अनुनय-विनय करने और हाथ-पैर जोड़नेसे भी न खुल पाईं और कामके बाण-रूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे भी जो ढीली न पड़ सकीं, वे तालूमें धक्का देकर झटकेसे ऊँचे स्वरमें निकली हुई मुर्गेकी कुकड़ूँ-कूँ सुनते ही अचानक सहज ही खुल गईं ॥ ६८ ॥ निरन्तर देरतक सम्भोग करनेके कारण अलसाई हुई स्त्रियोंकी आँखें अभी लग भी न पाई थीं कि रात बीतनेकी सूचना देनेवाला वह मृदङ्ग वेगसे बज उठा, जिसे सुनकर उन कामिनियोंको आती हुई नींद भी थोड़ी देरके पश्चात् आनेवाले विरहका चिन्तामें उचट गई ॥६९॥ प्रातःकाल पश्चिमके समुद्रमें डूबता हुआ चन्द्रमा तो ऐसा जान पड़ता है मानो समुद्रके उस पार कोई मटमैला कछुआ लोट रहा हो, उदयाचलकी चोटीपर उदय होता हुआ सूर्य ऐसा जान पड़ता है मानो उस चोटीपर अञ्जली भर उजालेका अङ्कुर निकल रहा हो और यमुना-तटके तमाल वृक्षोंके समान काला-काला अँधेरा मानो निडर होकर आकाश-रूपी वेदीपर एक क्षणके लिये मँडरा रहा हो ॥ ७० ॥ प्रातःकाल धुँधले तारोंके समान उदास पुतलियोंवाली आँखें लिए हुए, चन्द्रमाके समान मलिन मुखवाली, नीले कमलके समान अधमुँदी आँखोंवाली और पीठपर अन्धकारके समान बिखरे हुए बालोंवाली वेश्याएँ रात बीतनेके साथ ही राजाओंके घरसे निकली चली जा रही हैं॥ ७१ ॥ जो कमल दिनमें खिलकर रातमें मुँद गए थे और अब फिर खिल रहे हैं उनकी पहचान और उसी समय खिली हुई तथा कमलोंके बीच न दिखाई देनेवाली कलियोंकी पहचान, निकलकर उड़नेवाले भौंरोंसे ही हो रही है अर्थात् जो कमल रातमें मुँद गए थे उन्हींमेंसे भौंरे निकल रहे हैं ॥ ७२ ॥ अन्धकाररूपी कीचड़से छूटे हुए आकाशको देखकर विरहसे दुखी चकवा, अपनी चकवाके पास उड़ चलनेके विचारसे अपने पङ्ख खोल ही रहा था कि उसी समय उत्सुकतासे भरी हुई चकवी, नदीके दूसरे किनारेसे उड़कर उसके पास आ ही तो पहुँची ॥ ७३ ॥ नायिकाके चौड़े नितम्बोंसे सारा बिछौना इतना घिर गया था कि नायकको सोनेके लिये स्थान ही नहीं मिल पाया इसलिये उसने अपनी नींद और आलस्य दूर भगानेके लिये सारी रात सम्भोगमें ही काट दी, और चारा ही क्या था ॥ ७४ ॥ प्रातःकाल तारे उसी प्रकार कहीं-कहीं रह गए हैं जैसे कलियुगमें सज्जन कहीं-कहीं मिलते हैं। अन्धकारके लिये वैसे ही कहीं स्थान नहीं रह गया जैसे सज्जनके मनमें दुर्जनको स्थान नहीं मिलता, सारा आकाश भी वैसा ही स्वच्छ दिखाई देने लगा जैसे मुनियोंके मन निर्मल होते हैं और रात भी वैसे ही शीघ्रताके साथ चल दी जैसे उद्योगहीन व्यक्तिके पाससे लक्ष्मी चल देती है ॥ ७५ ॥ अभी सूर्य सामने आए भी न थे कि सूर्यके सारथी अरुणने ही सारा अन्धकार मिटा

व्रजति विषयमदृणामंशुमाली न यावत्तिमिरमखिल-मस्तं तावदेवारुणेन। परपरिभविवि तेजस्तन्वतामाशु कर्तुं प्रभवति हि विपक्षोच्छेदमग्रेसरोऽपि ॥ ७६ ॥ व्रजत्यपरवारिधिं रजतपिण्डपाण्डुः शशी न भान्ति जलबुद्बुद्द्युतिसपक्षिकास्तारकाः। कुरण्टकचिपाण्डुरं दधति धाम दीपाङ्कुराश्चकोरनयनारुणा भवति दिक्च सौत्रामणी ॥ ७७ ॥ शिथिलयति सरागो यावदर्को नलिन्याः कमलमुकुलनीवीग्रन्थिमुद्रां करेण। प्रविकस-दलिमाला गुञ्जितैर्मञ्जुशब्दा जनयति मुदमुच्चैः कामिनां कामिनीव॥ ७८ ॥ शिशिरकिरणकान्तं वासरान्तेऽभिसार्य श्वसनसुरभिगन्धिः साम्प्रतं सत्वरेव। व्रजति रजनिरेषा तन्मयूखाङ्गरागैः परिमिलितमनिन्द्यैरम्व-रान्तं वहन्ती ॥ ७९ ॥ सद्यः सङ्घटमानकोकमिथुन-व्याजेन पीनस्तनद्वन्द्वव्यञ्जितयौवनोज्ज्वलरुचो निर्माय दिक्कन्यकाः। दुर्दैवाक्षरमालिकामिव झटित्या-कृष्य भृङ्गावलीं लक्ष्मीमम्बुजिनीजनस्य तनुते देव-स्त्विषामीश्वरः ॥ ८० ॥ सन्निगृह्य चिकुरं तमोमयं यामिनी तदनु केलिविच्युतम्। कुर्वती श्रवसि चन्द्र-मण्डलं कुण्डलं गगनकेलिमुज्झति ॥ ८१ ॥ सौरभ्ये चलिते रसे विगलिते चाप्तालिवर्गे गते म्लानातीव कुमुद्वतीयमधुना मूर्च्छां परामृच्छति। तामुद्वीक्ष्य तथाविधां कमलिनी जाता प्रहासोन्मुखी हन्तो-द्वीक्ष्य विपन्नवैरिवनितां का वा न सन्तुष्यति ॥८२॥ स्तोकारक्तनखव्रणा स्तनतटी कापि स्खलच्चन्दनं वक्षः कर्बुरिताञ्जने च नयने विश्रान्तरागोऽधरः। आयासोदयमन्थरश्च गमनं प्रातः प्रभङ्गालसं जीया-दङ्गमनङ्गसङ्गरपरिच्छेदे कुरङ्गीदृशः ॥ ८३ ॥ स्तो-कोन्निद्रनिदाघदीधितिमहस्तन्द्रालुचन्द्रातपास्तायन्ते ककुभो रथाङ्गगृहिणीगार्हस्थ्यगर्हाभिदः। अद्यापि स्वकुलायशाखिशिरसि स्थित्वा रुवन्तो मुहुस्तूष्णीं

दिया। ठीक ही है! जिनका तेज-मात्र ही शत्रुओंको दवा देता है उनके आगे-आगे चलनेवाले सेवक भी उनके शत्रुओंका शीघ्र ही नाश कर डाल सकते हैं ॥ ७६ ॥ प्रातःकाल चाँदीके गोलेके समान उजला चन्द्रमा पश्चिमके समुद्रकी ओर जा रहा है, छोटे-छोटे पानीके बुलबुलोंके समान चमकनेवाले तारे अब नहीं टिमटिमा रहे हैं, दीपककी लौ कटसरैयाके फूलके समान उजली दिखाई दे रही है और पूर्व दिशा भी चकोरके नेत्रोंके समान लाल-लाल दिखाई दे रही है ॥ ७७ ॥ प्रातःकाल जबतक ललाई (अनुराग) से भरा सूर्य (नायक) इधर अपनी किरण (हाथ) से कमलिनीरूपी नायिकाओंके कलीरूपी नाड़ेको ढीला करे-करे तवतक उधर गुनगुनाती हुई भौंरोंकी पाँत भी कामिनी नायिकाके समान अपनी गुञ्जारसे कामी पुरुषोंको प्रसन्न करने लगी ॥ ७८ ॥ सन्ध्या समय चन्द्रमारूपी पतिके पास पहुँचकर विहार करके सुगन्धित साँसवाली जिस रात्रिरूपी नायिकाका अम्बर (आकाश, वस्त्र), चन्द्रमाके किरणरूपी उत्तम केशरके लेपसे रँग-सा गया है वह अब प्रातःकाल होते ही शीघ्रताके साथ निकली चली जा रही है ॥७९॥ सूर्योदय होनेपर आपसमें मिलते हुए चकवी-चकवे-रूपी स्तनोंसे दिशारूपी कन्याओंमें युवावस्थाकी सुन्दरता भरते हुए सूर्यदेव, कमलिनियोंमेंसे दुर्भाग्यके अक्षरोंके समान काली भौंरोंकी पाँतें निकालकर उन्हें तुरन्त श्री (शोभा) प्रदान कर रहे हैं ॥ ८० ॥ प्रातःकाल ऐसा जान पड़ता है मानो रातको आकाशमें रति-क्रीड़ाके समय खुले हुए अन्धकार-रूपी केश समेटकर और कानोंमें चन्द्रमण्डलरूपी कुण्डल पहनकर अब रात्रिरूपी नायिकाने कहीं छुट्टी ली है ॥ ८१ ॥ प्रातःकाल सुगन्ध निकल जानेपर, रस चू जानेपर और प्रेमी भौंरोंके हट जानेपर जो कुमुदिनी अत्यन्त दुखी और मूर्च्छित हो रही है उसे देखकर ही मानो खिली हुई कमलिनी हँस रही है। भला शत्रुकी स्त्रीको विपत्तिमें पड़ी देखकर कौन स्त्री प्रसन्न नहीं होगी ॥ ८२ ॥ रातमें कसकर सम्भोग करनेके कारण नींद पूरी न हो पानेसे जो मृगनयनी नवेलियाँ प्रातःकाल रह-रहकर आलसके मारे अँगड़ाई ले रही हैं, उनके जिन स्तनोंपर नखोंके लाल-लाल चिह्न चमक रहे हैं, उनकी जिन छातियोंपर लगा हुआ चन्दनका लेप तथा जिन नेत्रोंका आँजन कहीं लगा है कहीं पुछ गया है, उनके जो नीचेके ओठ फीके पड़ गए हैं और अधिक थक जानेके कारण उनके जो पैर डगमगा रहे हैं उन सब सुन्दर अङ्गोंकी जय हो ॥ ८३ ॥ प्रातःकाल दिशाएँ फैल सी गई हैं और उनमें कुछ-कुछ निकले हुए सूर्यके प्रकाशसे चन्द्रमाका प्रकाश धुँधला पड़ गया है तथा उन्होंने (दिशाओंने) रातमें अपने प्रियसे दूर गई हुई चकवीकी दशापर चिन्ता करना छोड़ दिया है। अब भी कौवे पेड़ोंपर बने हुए अपने घोंसलोंपर शान्तिके साथ डटे हुए बार-बार काँव-काँव करके फिर चुप होकर

प्रत्यभिजानते वलिभुजो भीताः स्वयूथ्यस्वरान् ॥८४॥

प्रभातवायुवर्णनम्—अद्योत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचलप्रालेयप्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिलः। किञ्च स्निग्धरसालमौलिमुकुलान्यालोक्य हर्षोदयादुन्मीलन्ति कुहूः कुहूरिति कलोत्तालाः पिकानां गिरः ॥ १ ॥ अनन्यक्षुण्णश्रीर्मलयवनजन्मायमनिलो निपीय स्वेदाम्बु स्मरमकरसम्भुक्तविभवम्। विदर्भाणां भूरि प्रियतमपरीरम्भरभसप्रसङ्गादङ्गानि द्विगुणपुलकाक्षिं तनुते ॥ २ ॥ अपहाय शनैः पटीरवाटीरिह लाटीजनमानलुण्ठनाय। समुदेति मनोजराजधाटोपरिपाटीपटुरेष गन्धवाहः ॥ ३ ॥ अमी तटसमीपनिर्झरतरङ्गरिङ्खत्पयोजडीकृतपटीरभूरुहकुटीरसञ्चारिणः। मनो विधुरयन्ति मे मलयमेखलामेदुरादुरासदवनप्रियप्रियतमारुता मारुताः ॥ ४ ॥ अरविन्दवृन्दमकरन्दतुन्दिलो मरुदेति मन्दमिह मन्दराचलात्। सुरतान्ततान्तसुदतीमतल्लिकाकवरीपरीमलभरीपरीवृतः ॥५॥ आदाय वकुलगन्धानन्धीकुर्वन्पदे पदे भ्रमरान्। अयमेति मन्दमन्दं कावेरीवारिपावनः पवनः ॥ ६ ॥ उत्सार्य कुन्तलमपास्य दुकूलकूलमुन्नाम्य वाहुलतिकामलसास्तरुण्यः। स्वेदाम्बुसिक्ततनवः स्पृहयन्ति यस्मै तस्मै नमः सुकृतिने मलयानिलाय ॥ ७ ॥ उन्मिक्तः कुसुमासवैः कुमुदिनीं राजप्रियां पुष्पिणीमालिङ्गन्निशि निर्भयं परिचयं कुर्वन्पुनः पल्लवैः। यावत्पङ्कजसौरभस्वमखिलं गृह्णँल्लघु प्रस्थितस्तावत्कल्य उपस्थिते मरुदयं विष्वग्भयाद्धावति ॥ ८ ॥ उषसि मलयवासी जालमार्गप्रविष्टो विकचकमलरेणुं व्याकिरन्मोहचूर्णम्। सपदि शमितदीपा वायुचोरो वधूनां हरति सुरतखेदस्वेदमुक्ताफलानि ॥ ९ ॥ एते पाटीरवाटीनवविटपनटीलास्यशिक्षातिदक्षा दालाखेलत्पुरन्ध्रीश्रमजलकणिकाजालपातिप्रतानाः।

डरते हुए साथियोंकी बोली पहचान रहे हैं (उड़नेका साहस नहीं करते) ॥ ८४ ॥

प्रातःकालके पवनका वर्णन : मलयाचलका पवन उत्तरकी ओर आता हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो वह इस डरसे कैलास पर्वतके हिमसे मिलनेकी चाहसे इधरको आ रहा हो कि कहीं मलय पर्वतके साँप हमें पी न जायँ और उसके झोंकेमें हरे-भरे आमपर नया बौर देखकर कोयल भी ऊँचे स्वरसे प्रसन्नताके मारे कूक उठा हो ॥ १ ॥ सुन्दरतामें निराले और मलय-वनमें उत्पन्न हुए वायुने आकर गालके पसीनेकी वे बूँदें पी डालीं जिन्हें कामका वाहन मगर (कानका मकराकृति कुण्डल) पहले ही चट कर चुका था। अब वही पवन पतिको कसकर छातीसे लगाई हुई विदर्भ देशकी स्त्रियोंके अङ्गोंमें दुगुनी फुर-फुरी भर रहा है ॥ २ ॥ महाराज कामदेवके नियमोंको पालन करानेमें चतुर यह सुगन्धित वायु चन्दनकी वाटिका छोड़कर विलासिनी नायिकाओंका मान दूर करनेके लिये धीरे-धीरे चला आ रहा है ॥ ३ ॥ मलय-पर्वतके बीचकी भूमिमें रह-रहकर पुष्ट होनेवाले तथा जङ्गली पुरुषोंकी थकी हुई नारियोंसे बुलाए हुए वे पवन हमारा मन झकझोर रहे हैं जो पास बहते हुए झरनोंके लहराते हुए जलकी फुहारसे ठंढे किए हुए चन्दनके वृक्षकी कुटीमें घूम रहे हैं ॥४॥ कमलोंके रससे लदा हुआ और सम्भोगसे थकी हुई रसीली नवेलियोंके बालोंकी तीव्र गन्धसे गमकता हुआ वायु मन्दराचलसे इधरको चला आ रहा है ॥ ५ ॥ मौलसिरी की सुगन्धसे लदा हुआ तथा डग-डगपर भौंरोंकी आँखोंमें पराग झोंककर उन्हें अन्धा करता हुआ यह कावेरी नदीके जलमें डुबकी लगाने वाला वायु धीरे-धीरे चला आ रहा है ॥ ६ ॥ पसीनेकी बूँदोंसे लथपथ और आलस्यमें भरी हुई नवेलियाँ अपने बाल ऊपर उठाकर, वस्त्र समेटकर और बाहें उचकाकर जिस मलयाचलके पवनका स्वागत करती हैं उस भाग्यशाली पवनको नमस्कार है ॥ ७ ॥ फूलोंके रस-रूपी मदिरासे मतवाला होकर यह वायु चन्द्रमा-रूपी राजाकी फूली हुई (रजस्वला) पत्नी कुमुदिनीका जो आलिङ्गन कर रहा था और रातमें निर्भय होकर पल्लवों (नये पत्तों तथा स्त्रीके प्रेमीजनों) के साथ बराबर अठखेलियाँ कर रहा था वही जब कमलोंकी सुगन्ध रूपी सारी सम्पत्ति लेकर वेगसे चम्पत होने लगा, उसी समय प्रभात हो जानेसे अब यह भयसे चारों ओर भागता फिर रहा है ॥ ८ ॥ यह मलयका पवन-रूपी चोर तड़के-तड़के खिड़कीकी राह घुसकर, खिले हुए कमलकी धूलका मोहन (बेसुध करनेवाला) चूर्ण डालकर, झटपट दीपक बुझाकर, स्त्रियोंकी सम्भोगकी थकावटसे निकले हुए पसीनेके बूँद-रूपी मोती चुराए लिए जा रहा है ॥ ९ ॥ इस समय बहनेवाले जिस पवनके पीछे-पीछे सुगन्धसे ललचाए हुए भौंरे उड़ रहे हैं, जो कामकी अग्नि भड़कानेके लिये मन्त्रके समान है और जो सदा वियोगिनी स्त्रियोंको सताया करता है वही पवन चन्दनके उपवनके नये-

सौरभ्यादापतद्भिर्मधुकरपटलैः पृष्ठतोऽनुप्रयाताः कामाग्नेः स्फारधाय्याः पथिककुलवधूवद्धवैराः समीराः ॥१०॥ एष क्रीडान्तताम्यत्कुसुमपुरवधूवक्त्रसौरभ्यबन्धुर्मुग्धं निद्राजडानां रसितमनुसरो द्राघयन्सारसानाम्। आवात्यङ्गानुकूलश्चलितविचकिलश्रेणिगन्धानुधावद्रोलम्बोद्घुष्यमाणस्मरजयविरुदाडम्बरो मातरिश्वा ॥११॥ कावेरीवारिवेल्लल्लहरिपरिकरक्रीडनक्लान्तशान्तस्फीतश्रीखण्डखण्डभ्रमणभरभवद्भूरिसौरभ्यगर्भाः। चोलस्त्रीचीनचेलाञ्चलकलनकलाकान्तकान्ताकुचान्ता वान्ति प्रेमाग्निकीलाकलितवरवधूवद्धवैराः समीराः ॥ १२ ॥ कुप्यल्लङ्केशबाहुप्रकरनियमिताशेषलेखाम्बुजाक्षीशापक्षीणाः चरन्तः क्षणपरिकलिताः केकिनां कामिनीभिः। कार्णाटीनामकाण्डे मृगमदमसृणं केशपाशं स्पृशन्तः पम्पासम्पातसम्पा मलयजमरुतो जातकम्पाः पतन्ति ॥ १३ ॥ कुसुमपरिमलेनामोदितालिर्लतानां वलितकिसलयानां लास्यलीलोपदेष्टा। लुलितकमलवृन्दः शीकरासारवोढा मृदुमलयसमीरो वाति वैमानिकोऽयम् ॥ १४ ॥ कृत्वा कार्णाटकान्ताकुचकनकगिरिप्रान्तसञ्चारलीलां झम्पामासाद्य पम्पापयसि वनभुवि क्षिप्तमल्लीरजस्काः। आकर्षन्तः पुरस्तान्निगडमिव कलध्वानपुष्पंधयालीं धावन्त्येते मदान्धा मदननरपतेः सिन्धुरा गन्धवाहाः ॥ १५ ॥ चञ्चत्कर्पूरचौरा मलयगिरिगुरुग्रावहावादवाप्ता मन्दानन्दैर्मिलिन्दैरहमहमिकया नुद्रवद्दीर्घपान्थाः। कावेरीवारिसेका विरलतरतरत्तीरवानीरसिक्ता मुक्तार्द्राः स्वेदनिद्रालव इव पवनास्ताञ्चन्यां विशन्ति ॥ १६ ॥ चूतश्रेणीपरिमलमुषश्चञ्चरीकानुयाता भूयो भूयः कुवलयकुटीकोटरे लीयमानाः। मन्दं मन्दं सुरतविरतौ वान्ति सीमन्तिनीनां गण्डाभोगश्रमजललवग्राहिणो गन्धवाहाः ॥ १७ ॥ चोलाङ्गना-

---

नये छोटे-छोटे पौधोंको नर्तकी बनाकर नचा रहा है और झूला झूलती हुई स्त्रियोंके शरीरपर झलकते हुए पसीनेके बूँद-रूपी जालमें सूतके समान दिखाई पड़ता है ॥१०॥ सम्भोगसे अत्यन्त थकी हुई कुसुमपुर (पटने) की स्त्रियोंके मुखकी सुगन्धमें बसा हुआ, सरोवरके तटपर नींदमें अलसाए हुए सारसोंकी धीमी कूकको बढ़ाकर फैलानेवाला तथा हिलते हुए अशोककी सुगन्धके पीछे दौड़नेवाले भौंरोंकी गुञ्जारमें भरी हुई कामदेवकी प्रशंसाको चारों ओर फैलानेवाला यह वायु शरीरमें लगकर बड़ा सुहावना जान पड़ रहा है ॥ ११ ॥ वे पवन इस समय चलने लगे हैं जो कावेरी नदीकी लहरोंके साथ खेल-खेलकर थककर मन्द हो गए हैं, हरे-भरे चन्दनोंके जङ्गलमें घूमनेसे बड़ी तीव्र सुगन्धमें बस गए हैं, चोलदेशकी स्त्रियोंकी रेशमी चोली हटाकर उनके स्तनोंपर विहार कर रहे हैं और विरहाग्निकी लपटोंसे घिरी हुई नायिकाओंसे सदा टण्टा ठाने रहते हैं ॥ १२ ॥ इस समय वे वायु बड़े झकोरेके साथ बह रहे हैं जो क्रोधी रावणके हाथों बन्दी किए हुए देवताओंकी सभी देवियोंके शापसे दुबले हो गए हैं, मोरनीके द्वारा पी लिए जानेसे जिनकी चाल धीमी पड़ गई है, जो कर्नाट देशकी स्त्रियोंके कस्तूरीमें बसे हुए केशोंको समयसे पहले ही छूते जा रहे हैं और जो पम्पा सरोवरके जलमें डुबकी लगानेसे काँप रहे हैं ॥ १३ ॥ प्रातःकाल यह मलय पर्वतका मन्द वायु जलकी फुहारें ढोए चला आ रहा है, लताओंके फूलोंकी सुगन्धसे भौंरोंको प्रसन्न कर रहा है, हिलते हुए नये पत्तोंको नचाना सिखा रहा है तथा कमलोंको झुला रहा है ॥ १४ ॥ कामदेव रूपी राजाके मतवाले हाथीके समान ये इधर-उधर डोलनेवाले पवन कर्नाटक देशकी स्त्रियोंके स्तन-रूपी पर्वतपर घूमते रहते हैं, पम्पा सरोवरमें कूद-कूदकर डुबकी लगाते रहते हैं, वन-भूमिपर बेलेके फूलका पराग बिखेरते रहते हैं और मधुर गुञ्जार करनेवाले भौंरोंको इस प्रकार अपनी ओर लुभा रहे हैं मानो बेड़ीमें बाँधकर खींच रहे हों ॥ १५ ॥ इस समय तालके वनमें वे पवन घुसे जा रहे हैं जिन्होंने फैले हुए कपूर चुरा लिए हैं, जो मलय-पर्वतकी विशाल चट्टानोंसे लम्बी यात्रा करके आए हैं, जिनके पीछे मस्त भौंरे होड़ लगा-लगाकर दौड़ रहे हैं, कावेरी नदीके जलसे सींची हुई घनी बेतकी झाड़ियोंमेंसे होकर आते हुए जो तर हो गए हैं और जिनकी धीमी-धीमी चालसे जान पड़ता है मानो वे नींदमें झूम रहे हों ॥ १६ ॥ प्रातःकालके वे पवन धीरे-धीरे बह रहे हैं जिन्होंने मानो आमके बौरकी सुगन्ध चुरा ली हो इसलिये भौंरे उनका पीछा कर रहे हों और बार-बार कमल-रूपी कुटियामें छिपे रहे हों, फिर भागकर स्त्रियोंके रतिके पश्चात् उनके गालोंपर छाई हुई पसीनेकी बूँदें सुखा रहे हों (कि वे इन भौंरे-रूपी राजसेवकोंसे हमें बचा लें) ॥ १७ ॥ देखो, चोल देशकी स्त्रियोंके स्तनोंपरकी चोलीमें घुसनेवाला, केरल देशकी नवेलियोंके छितराए हुए बालोंको लहरानेवाला, लाट देशकी

कुचनिचोललतानुलीनो द्राक्केरलीविरलकुन्तलकम्पलोलः । लाटीललाटतटशोषणमानसोऽयं फुल्लारविन्दघनबन्धुरुपैति वायुः ॥ १८ ॥ झञ्झानिलोऽपि सुरतान्तनितान्ततान्तकान्ताकुचान्तघनघर्ममपाकरोति । भूयोऽभिलापजननी पुनरन्यथैव स्वेदापनोदनकला मलयानिलस्य ॥ १६ ॥ दरफुल्लकमलकाननसौरभसम्भारमन्थरः पवनः । दयितोरसि शयितामपि दयितां सन्तापयाञ्चक्र ॥ २० ॥ दरविगलितमल्लीवल्लिचञ्चत्परागप्रकटितपटवासैर्वासयन्काननानि । इह हि दहति चेतः केतकीगन्धबन्धुः प्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाहः ॥ २१ ॥ धुन्वानाश्चन्दनालीं वकुलमुकुलजां धूलिमुद्धूलयन्तश्चुम्बन्तश्चूतयष्टीः परिमलबहलाँश्चम्पकान्कम्पयन्तः । आरादारामसामातटघटितघटीयन्त्रनिर्मुक्तवारां धारामाधारयन्तः श्रमशमपटवो वान्त्यमी गन्धवाहाः ॥ २२ ॥ नारीणां मृगनाभिकुङ्कुमरसप्रक्षालनश्यामलान्सम्भोगश्रमशीकरान्परिहरन्नाकम्पयन्कुन्तलान् । पुष्पामोदमनोरमान्विगलितानम्भोजगन्धं वहन्प्रातस्त्यः पवनो वहत्ययमलं स्वान्तप्रमोदप्रदः ॥ २३ ॥ पुरातनपरीमलप्रकरमेदुरा मारुता न वान्ति मुकुलीभवत्कुमुदगर्भलीना इव । चरन्ति नवसौरभाः पुनरमी समीराङ्कुराः सजृम्भणसरोजिनीसरसिजास्यमुक्ता इव ॥ २४ ॥ प्रातः सीमन्तिनीनां निधुवनलुलितान्स्रंसयन्केशपाशानुन्मीलत्पङ्कजान्त:परिमलसुरभिः स्फारयन्काममलीलाः । स्वच्छावश्यायविन्दून्दिशि दिशि विकिरन्स्थूलमुक्ताफलाभान्धूलीभिः केतकीनां धवलितभुवनो वाति मन्दं नभस्वान् ॥ २५ ॥ भिक्षितकमलकुटुम्बाः शिक्षितगजगामिनीगतयः । लङ्घितहिमगिरिपादाः प्रातरमी मातरिश्वानः ॥२६॥ भृङ्गालीकण्ठमालाः स्फुटितकमलिनीधूलिभिर्धूसराङ्गाश्चञ्चन्तश्चन्द्रकल्पालघुतरलहरीशीकरासारलालाः । अङ्कादङ्कं व्रजन्तो विकसितविलसत्केतकीमालतीनां मोदन्ते मन्दमन्दं मलयगिरि-

---

कामिनियोंके माथेका पसीना सुखानेवाला और खिले हुए कमलोंसे मेल-जोल बढ़ानेवाला यह पवन बढ़ा चला आ रहा है ॥ १८ ॥ सम्भोगसे अत्यन्त थकी हुई स्त्रियोंपर छाए हुए पसीनेको तो आँधीका वायु भी सुखा देता है किन्तु सम्भोगकी इच्छाको जगानेवाला मलयानिल जिस कलासे पसीना सुखाता है वह कला कुछ और ही है ॥ १६ ॥ कुछ-कुछ खिले हुए कमलवनकी सुगन्धके बोझसे धीरे-धीरे डग भरनेवाला पवन उन नायिकाओंको भी सम्भोगके लिये उकसा रहा है जो अपने पतिकी छातीसे लिपटी हुई सो रही हैं ॥ २० ॥ खिले हुए बेलेकी लतासे पराग उड़ाकर सारे जङ्गलको गमकाता हुआ, केवड़ेकी गन्धमें बसा हुआ और प्रभावशाली कामदेवके प्राणके समान यह वायु हमारा जी जलाए डाल रहा है ॥ २१ ॥ प्रातःकाल चन्दनके जङ्गलको हिला देनेवाले, मौलसिरीके कलियोंका पराग उड़ा देनेवाले, आमके पेड़ोंको गलेसे लगानेवाले, सुगन्धसे भरी हुई चम्पेकी लताको कँपा देनेवाले, पासके उपवनमें लगे हुए रहटसे निकलती हुई जलधारासे मिलकर चलनेवाले ये शीतल पवन थकावट दूर करते हुए बह रहे हैं ॥ २२ ॥ देखो, प्रातःकालका यह कैसा सुन्दर वायु बह रहा है जो सम्भोगकी थकावटसे उत्पन्न हुए तथा शरीरमें लगे हुए केशर और कस्तूरीके रससे मिलकर काले पड़े हुए पसीनेको पोंछता जा रहा है, जो नवेलियोंके फूलोंकी सुगन्धसे मन हरनेवाले और बिखरे हुए बालोंको लहरा रहा है और जो कमलकी सुगन्धमें बसा हुआ हमारा मन प्रसन्न कर रहा है ॥ २३ ॥ पहलेकी सुगन्धसे भरे हुए वायुके अब न चलनेसे जान पड़ता है कि वे कुमुदोंके भीतर घुस गए हैं और इस समय फिर नई सुगन्धवाली कमलनालपर खिले हुए कमलोंसे निकलकर वे नया गन्ध लेकर बहने लगे हैं ॥ २४ ॥ सम्भोगके समय स्त्रियोंके जो जूड़े खुल गए थे उन्हें और भी लहराता हुआ, खिले हुए कमलोंकी गन्धमें बसकर कामलीलाको उकसाता हुआ, मोतीके बड़े-बड़े दानेके समान स्वच्छ ओसकी बूँदें इधर-उधर छितराता हुआ और केवड़ेका पराग फैलाकर संसारका उजलासा बनाता हुआ वायु प्रातःकाल धीरे-धीरे बह रहा है ॥ २५ ॥ हिमालयकी पहाड़ियोंसे शीतलता लेकर, हाथीके समान झूमकर चलनेवाली नायिकाओंसे धीमी चाल सीखकर और कमलोंसे सुगन्धकी भिक्षा लेकर यह शीतल, मन्द, सुगन्ध बयार चल रही है ॥ २६ ॥ खिले हुए कमलोंके पराग-रूपी धूलमें लिपटे हुए भौंरोंकी पाँतें ही जिसके कण्ठहार हैं, चन्द्रमाके समान चमकनेवाली लहरोंकी बूँदें ही जिनकी लार हैं, जो खिलकर सुन्दर लगनेवाली मालती तथा केतकीकी एक गोदसे दूसरे गोदपर कूद रहे हैं वे मलय-पर्वतकी कन्दराओंमें जन्म लेनेवाले वायु-रूपी बच्चे धीरे-धीरे सरकते हुए अठखेलियाँ कर रहे हैं ॥ २७ ॥ वसन्तके महीनेमें प्रातःकालका वह वायु

दरीगर्भतो वानपोताः ॥ २७ ॥ रामाणां रमणीयवक्त्रशशिनः स्वेदोदविन्दुप्लुतो व्यालोलालकमञ्जरीः प्रचलयन्धुन्वन्नितम्बाम्बरम् । प्रातर्वाति मधौ प्रकामविकसद्राजीवराजीरजःपुञ्जामोदमनोहरो रतिरसग्लानिं हरन्मारुतः ॥ २८ ॥ लतां पुष्पवतीं स्पृष्ट्वा स्नातो विमलवारिणा । पुनः सम्पर्कशङ्कीव मन्दं चरति मारुतः ॥ २९ ॥ लताकुञ्जे गुञ्जन्मदवदलिपुञ्जञ्चपलयन्समालिङ्गन्नङ्गं द्रुततरमनङ्गं प्रबलयन् । मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्रजोवृन्दं विन्दन्किरति मकरन्दं दिशि दिशि ॥ ३० ॥ लवङ्गलतिकाभङ्गदयालुर्दक्षिणानिलः । कथमुन्मूलयत्येष मानिनीमानपर्वतान् ॥ ३१ ॥ लीलादोलातिखेलारसरभसलसद्बालचेलाञ्चलानाञ्चोलीनामापिबन्तो मृगमदसुरभिस्वेदबिन्दूनमन्दान् । लोलन्तः केरलीनां कुचकलशलसत्कुङ्कुमालेपनेषु श्लिष्यन्तो मालवीनां मलयजमधुराः कञ्चुकीर्वान्ति वाताः ॥ ३२ ॥ वारंवारं धुतकुसुमितारण्यरेवातटे वा सेवापुण्यं परिणतमिदं तावकं तर्कयामि । यत्त्वां मत्वान्तिकमुपगतं कामवामाभिरामा रामाः स्वैरं कुचकलशतो वस्त्रमुत्सारयन्ति ॥ ३३ ॥ वासो विधूय स्तनयोरमुष्याः कपोलकीर्णां कबरीमुदस्य । अवारितः प्रोञ्छति वारिधारां मुखे मृगाक्ष्याः सुकृती समीरः ॥ ३४ ॥ विकचकमलगन्धैरन्धयन्भृङ्गमालाः सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वातः । प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामारमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः ॥३५॥ विलुलितकमलौघः कीर्णवल्लीवितानः प्रतिवनमवधूताशेषशाखिप्रसूनः । क्वचिदयमनवस्थः स्थास्नुतामेति वायुर्वनकुसुमविमर्दोद्गन्धिवेश्मान्तरेषु ॥ ३६ ॥ वृथा धूलीधाराः परिकिरसि वात्याः प्रथयसे नवावेगः कोऽयं पवन तव हा नन्वसमये । रतान्तश्रान्ताभिः स्तिमितनयनान्ताभिरनिशं स्मृतो यत्कान्ता-

चल रहा है जिसमें स्त्रियोंके मुखचन्द्रपर झलके हुए पसीनेकी बूँदें भरी हैं, जो उनके लहराते हुए बालोंको लहरा रहा है, जो नितम्बोंपर पड़ी हुई साड़ीको बार-बार हटा रहा है, जो पूर्ण खिले हुए कमलोंके परागकी सुगन्धमें बसकर मन हर रहा है और जो सम्भोगकी थकावट दूर कर रहा है ॥ २८ ॥ प्रातःकाल बहता हुआ शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु ऐसा जान पड़ता है मानो खिले हुए फूलोंवाली (रजस्वला) लताका स्पर्श करके अपवित्र हो जानेसे वह निर्मल जलसे स्नान करके शुद्ध हुआ हो और अब इस डरसे धीरे-धीरे बच बचकर चल रहा हो कि कहीं उससे फिर न छू जाय ॥ २९ ॥ फूलके परागमें बसकर चारों ओर फूलकी गन्ध बिखेरता हुआ, मतवाले भौंरोंसे गूँजती हुई लताकी झाड़ियोंको हिलाता हुआ, शरीरमें लगकर कामको उकसाता हुआ और खिले हुए कमलोंको झुलाता हुआ यह पवन मन्द-मन्द बहता चला आ रहा है ॥ ३० ॥ दक्षिणका जो पवन लवङ्ग-लताके टूट जानेके डरसे उसपर दया करके धीरे-धीरे चल रहा है वह रूठी हुई नवेलियोंके क्रोध-रूपी पहाड़ोंको न जाने कैसे उखाड़ फेंकता है ॥ ३१ ॥ नई साड़ियोंके आँचल उड़ा-उड़ाकर झूलनेवाली चोल देशकी स्त्रियोंकी कस्तूरीसे सुगन्धित पसीनेकी बूँदें पीनेवाले, केरल देशकी स्त्रियोंके स्तनोंपर पोते हुए केशरके लेपपर टहलनेवाले तथा मालव देशकी नवेलियोंकी चन्दनके रसमें बसी हुई चोलियोंसे रगड़ खानेवाले वायु इस समय बह रहे हैं ॥ ३२ ॥ हे पवन ! तुम्हें पास आया देखकर कामदेवसे मतवाली सुन्दर स्त्रियाँ जो अपने स्तनोंपरसे सहसा वस्त्र हटा लेती है, इसे देखकर मैं अनुमान करता हूँ कि तुमने नर्मदा नदीके तटके वनोंके फूल हिलाकर जो नर्मदाकी सेवा करके पुण्य सञ्चय किया है यह उसीका फल है ॥ ३३ ॥ इस पुण्यशाली वायुको तो देखो कि इसने पहले तो मृगनयनीके स्तनोंपरसे वस्त्र हटाए, फिर गालोंपर लहराते हुए बाल ऊपर उठाए और अब बिना कोई रोक-टोकके उसके मुखपर बहता हुआ पसीना पोंछ रहा है ॥ ३४ ॥ खिले हुए कमलोंकी गन्धसे भौंरोंको मतवाला कर देनेवाला और फूलोंके रसकी गन्धमें बसा हुआ वह वायु बह रहा है जो नई कामान्ध नवेलियोंके सम्भोगकी थकावटसे निकले हुए पसीनेको चतुरतासे पोंछ रहा है ॥ ३५ ॥ कमलोंको झुला देनेवाला, लताओंको झुका देनेवाला और वनके प्रत्येक वृक्षके फूलोंको कँपा देनेवाला जो वायु कहीं टिक नहीं पाता वही जङ्गली फूलोंकी तीव्र गन्धसे भरे हुए घरोंके भीतर रुककर चल रहा है ॥ ३६ ॥ हे पवन ! इस समय तो तुम इतनी असमयकी झोंक लेकर व्यर्थकी धूल-धक्कड़ उड़ाते हुए आँधी बनकर छा रहे हो ? पर जब सम्भोगके अन्तमें थकी और अलसाई आँखोंवाली नवेलियाँ तुम्हारे लिये तरसती रहती हैं उस समय तो तुम कहीं ढूँढ़े नहीं मिलते ॥ ३७ ॥ जागकर अलसाई हुई स्त्रियोंसे जो पुनः पुरुषोंके समान आचरण करनेका नाटक

भिर्न सुलभतरः क्वापि च भवान् ॥ ३७ ॥ वैभातिको मरुदनुक्रमवर्धमानपद्माटवीपरिमलप्रसरानुमेयः। आयाति सोऽयमलसोत्थितसारसाक्षीप्रभातनृत्यपुनरुद्यमसूत्रधारः ॥ ३८ ॥ सललितमलकानां वल्लरी नर्तयन्तो मधुसुरभिमुखाब्जोच्छ्वासगन्धानुबन्धाः। नवतरुणभाजां योषितां स्वेदबिन्दून्सतृष इव पिबन्तो वान्ति मन्दं समीराः ॥ ३९ ॥ सुरतभरखिन्नपन्नगविलासिनोपानकेलिजर्जरितः। पुनरपि विरहिश्वासैर्मलयमरुन्मांसलीक्रियते ॥ ४० ॥ स्तनपरिसरभागे दूरमावर्तमाना स्फुटतनिमनि मध्ये किञ्चिदेव स्खलन्तः। वपुरलघुनितम्बाभोगरुद्धा वधूनां निधुवनरसखेदच्छेदिनः प्राह्णवाताः ॥ ४१ ॥

सूर्योदयवर्णनम्—अतुहिनरुचिनासौ केवलं नोदयाद्रिः क्षणमुपरिगतेन क्ष्माभृतः सर्व एव। नवकरनिकरेण स्पष्टबन्धूकसूनस्तबकरचितमेते शेखरं बिभ्रतीव ॥ १ ॥ अयमुदयति मुद्राभञ्जनः पद्मिनीनामुदयगिरिवनालीबालमन्दारपुष्पम्। विरहविधुरकोकद्वन्द्वबन्धुर्विभिन्दन्कुपितकपिकपोलक्रोडताम्रस्तमांसि ॥ २ ॥ आगत्य सम्प्रति वियोगविसंस्थुलाङ्गीमम्भोजिनीं क्वचिदपि क्षपितत्रियामः। एतां प्रसादयति पश्य शनैः प्रभाते तन्वङ्गि पादपतनेन सहस्ररश्मिः ॥ ३ ॥ आयान्त्या दिवसश्रियः पदतलस्पर्शानुभावादिव व्योमाशोकतरोर्नवीनकलिकागुच्छः समुज्जृम्भते। आतन्वन्नवतंसविभ्रममसावाशाकुरङ्गीदृशामुन्मीलत्तरुणप्रभाकरकरस्तोमः समुद्भासते ॥ ४ ॥ उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्। वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥ ५ ॥ उदयमयते दिङ्मालिन्यं निराकुरुतेतरां नयति निधनं निद्रामुद्रां प्रवर्त्तयति क्रियाः। रचयतितरां स्वैराचारप्रवर्त्तनकर्त्तनं बत बत लसत्तेजःपुञ्जो विभाति विभाकरः ॥ ६ ॥ उदयशिखरिशृङ्गप्राङ्गणेष्वेव रिङ्गन्सकमलमुखहासं

करानेकी योजना करनेवाला यह प्रातःकालका वायु सूत्रधार बनकर आ पहुँचा है जिसकी चालका अनुमान बारी-बारीसे खिलते हुए कमलोंकी फैलती हुई सुगन्धसे किया जा सकता है ॥ ३८ ॥ प्रातःकालके समय बड़े प्रेमसे स्त्रियोंके बालोंको लहरानेवाला, मदिराकी गन्धसे गमकते हुए स्त्रियोंके मुख-कमलसे निकली हुई साँसकी गन्धमें बसा हुआ और नये सम्भोगमें जुटी हुई स्त्रियोंके पसीनेकी बूँदोंको प्यासेके समान पी जानेवाला पवन इस समय धीरे-धीरे बह रहा है ॥ ३९ ॥ सम्भोगके परिश्रमसे थकी हुई साँपिनने जो दक्षिणका वायु पी लिया उससे वह पवन बूढ़ा पड़ गया था पर इस समय वह विरहियोंकी लम्बी साँसोंसे फिर पुष्ट हो गया है ॥ ४० ॥ इस समय स्त्रियोंके स्तनोंपर चक्कर लगानेवाले, नवेलियोंकी पतली कमरमें कुछ रुक-रुककर चलनेवाले, विशाल नितम्बोंके विस्तारके कारण रुके हुए और सम्भोगकी थकावट दूर करनेवाले ये प्रातःकालके पवन बह रहे हैं ॥ ४१ ॥

सूर्योदयका वर्णन : प्रातःकालके सूर्यकी नई किरणोंका जो समूह अभी ऊपर उठ आया है उसने पाला न छानेके कारण अपनी निर्मल चमकसे केवल उदयाचलको ही नहीं वरन् सारे पहाड़को ही चमका दिया है और अब वे किरणें खिले हुए फूलोंके गुच्छोंके समान इस पहाड़की चोटीपर सजने लगी हैं ॥ १ ॥ यह देखो, क्रोधित बन्दरके गालोंके समान लाल, उदयाचलपर नन्हेंसे मन्दार पुष्पके समान खिलनेवाला, कमलिनियोंकी आँखें खोलनेवाला और विरहसे व्याकुल चकवेके जोड़ेका हितैषी यह सूर्य, अन्धकारको चीरता हुआ उदय हो रहा है ॥ २ ॥ हे पतली कमरवाली प्रिये ! देखो, यह सहस्रों किरणोंवाला सूर्य, रातके पिछले तीन पहर न जाने कहाँ बिताकर अब प्रातःकाल अपने वियोगमें व्याकुल कमलिनीके पास धीरे-धीरे आकर उसके पैरोंपर गिरकर उसे मना रहा है ॥ ३ ॥ प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्यकी किरणें (हाथ) ऐसी शोभित होती हैं मानो प्रातःकाल चली आती हुई दिनकी शोभारूपी नायिकाके तलवेसे छू जानेके कारण आकाशरूपी अशोक वृक्षमें जो नई-नई कलियोंके गुच्छे निकल आए हैं उनसे वे दिशारूपी मृगनयनी नवेलियोंके कर्णफूल सजा रही हों ॥ ४ ॥ प्रातःकाल पहाड़के एक ओर अस्त होते हुए चन्द्रमा और दूसरी ओर अपनी किरणें ऊपरकी ओर फैलाकर उदय होते हुए सूर्यके कारण पहाड़ ऐसा लग रहा है मानो किसी मतवाले गजराजकी पीठके दोनों ओर दो घण्टे लटक रहे हों ॥ ५ ॥ देखो तो, प्रातःकाल यह अत्यन्त तेजस्वी सूर्य कैसा अच्छा लग रहा है, जिसने उदय होते ही दिशाओंका अँधेरा मिटा डाला, निद्रा नष्ट कर दी, संसारके सब काम-काज पुनः प्रारम्भ कर दिए तथा बेखटके होनेवाले चोरी, व्यभिचार आदि सब बुरे काम समाप्त कर दिए

वीक्षितः पद्मिनीभिः। विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः ॥ ७ ॥ उन्निद्रकोकनदरेणुपिशङ्गिताङ्गा गायन्ति मञ्जु मधुपा गृहदीर्घिकासु। एतच्चकास्ति च रवेर्नवबन्धुजीवपुष्पच्छदाभमुदयाचलचुम्बि बिम्बम् ॥ ८ ॥ एतत्तर्कय चक्रवाकहृदयाश्वासाय तारागणग्रासाय स्फुरदिन्दुमण्डलपरीहासाय भासां निधिः। दिक्कान्ताकुचकुम्भकुङ्कुमरसन्यासाय पङ्केरुहोल्लासाय स्फुटवैरकैरववनत्रासाय विद्योतते ॥ ९ ॥ करनखरविदीर्णध्वान्तकुम्भीन्द्रकुम्भात्तुहिनकणमिषेण क्षिप्तमुक्ताप्ररोहः। अयमुदयधरित्रीधारिमूर्धाधिरूढो नयनपथमुपेतो भानुमत्केसरीन्द्रः ॥ १० ॥ कीलालैः कुङ्कुमानां सकलमपि जगज्जालमेतन्निषिक्तं मुक्ताश्चोन्मत्तभृङ्गा विघटितकमलक्रोडकारागृहेभ्यः। उत्सृष्टं गासहस्रं किमुत कलकलः श्रूयते च द्विजानां भाग्यैर्वृन्दारकाणां हरिद्धयहरिता सूयते पुत्ररत्नम् ॥ ११ ॥ क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतमह्नाय लोकम्। भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाणः क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः ॥ १२ ॥ घटमानकोककुचमामृशन्करैर्विकसत्पयोजनयनावलोकितः। परिचुम्बतीदमरुणप्रभाधरं रविरद्य वारवनितामुखं मुहुः ॥१३॥ ततः कोकवधूबन्धुर्बन्धूककुसुमप्रभः। उदयाद्रिशिरोरत्नमुद्ययौ तेजसां निधिः ॥ १४ ॥ नवकनकपिशङ्गं वासराणां विधातुः ककुभि कुलिशपाणेर्भाति भासां वितानम्। जनितभुवनदाहारम्भमम्भांसि दग्ध्वा ज्वलितमिव महाब्धेरूर्ध्वमौर्वानलार्चिः ॥ १५ ॥ निजांशुकावृतां प्राचीं चुम्बत्यर्केऽतिरागिणीम्। लज्जयेव ययौ क्वापि श्यामा मीलितलोचना ॥ १६ ॥ निसर्ग-

---

॥ ६ ॥ प्रातःकाल उदयाचलकी चोटीके आँगनमें रेंगता हुआ, अपने किरणरूपी कोमल हाथ फैलाता हुआ तथा पक्षियोंके कलरवके स्वरमें बोलता हुआ वह सूर्यरूपी बालक लटपटाकर आकाशकी गोदमें गिर रहा है जिसे कमलिनियाँ और कमल हँस-हँसकर देख रहे हैं ॥ ७ ॥ प्रातःकाल खिले हुए कमलोंके परागसे रँगी देहवाले ये भौंरे, घरकी बावड़ियोंमें मधुर गुञ्जार कर रहे हैं तथा जपाकुसुम की पंखुड़ियोंके समान लाल-लाल सूर्यमण्डल उदयाचलकी ओर बढ़ता हुआ शोभा पा रहा है ॥ ८ ॥ यह देखो, प्रातःकाल ये परम तेजस्वी सूर्यदेव चकवा-चकवीको ढाढ़स देनेके लिये, तारोंको निगल जानेके लिये, टिमटिमाते हुए चन्द्रमण्डलकी हँसी उड़ानेके लिये, अपनी प्यारी दिशाओंके घड़ोंके समान स्तनोंको कुङ्कुमके लेपसे सजानेके लिये, कमलोंको विकसित करनेके लिये तथा प्रत्यक्ष ही वैर करनेवाले कोईंके समूहोंको सतानेके लिये उदय होते हुए चमक रहे हैं ॥ ९ ॥ प्रातःकाल अपने तीक्ष्ण नखों (किरणों) से घने अँधेरेरूपी मतवाले गजराजका मस्तक फाड़कर उसमेंसे ओसकी बूँदके मोती बिखेरकर ये सूर्यरूपी सिंहराज, उदयाचलके शिखरपर चढ़ते दिखाई दे रहे हैं ॥१०॥ कोई प्रातःकालकी शोभाका वर्णन करता है—'देवताओंके भाग्यसे पूर्व दिशाने पुत्ररत्नको जन्म दिया, उस उत्साहमें मानो यह सारा संसार कुङ्कुमके जलसे सींचा गया है, कमलके कोशरूपी कारागारसे मतवाले भौंरेरूपी बन्दी छोड़ दिए गए हैं, सहस्रों गौएँ दान की गई हैं (सूर्यकी सहस्रों किरणें फैल रही हैं) और इसी प्रसन्नतामें मानो ब्राह्मण (पक्षी) जहाँ-तहाँ हो-हल्ला मचा रहे हैं' ॥ ११ ॥ प्रातःकाल सब लोगोंकी प्रार्थना सुनकर उनकी विपत्ति दूर करनेके उद्देश्यसे सारे संसारका निरीक्षण करनेके लिये महाराज सूर्यदेव उदयाचलके शिखररूपी सिंहासनसे उठकर धरतीपर पैर रखकर एक क्षण ठहर गए हैं ॥ १२ ॥ इस समय (प्रातःकाल) सूर्य, लाल-लाल मुँहवाली उस वेश्या (दिन-रूपी नायिका) के आपसमें सटे हुए चकवा-चकवीरूपी स्तनोंपर हाथ (किरण) फेरता फैलाता) हुआ बार-बार उसका मुँह चूम रहा है जो खिले हुए कमल-नेत्रोंसे उसे ताक रही है ॥१३॥ तदनन्तर (रात बीतनेपर) चकवीके हितैषी, जपाकुसुमके समान लाल तथा उदयाचलके शिखररूपी मुकुटमें जड़े रत्नके समान परम तेजस्वी सूर्य उदय हुए ॥ १४ ॥ प्रातःकाल पूर्व-समुद्रके ऊपर, दिनोंकी रचना करनेवाले सूर्यकी जो नये सोनेके रङ्गकी घनी चमक फैल रही है उसे देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो बड़वानलकी लपटें सारे जलको सुखाकर अब सारे संसारको जलानेकी इच्छासे आगे बढ़ी आ रही हों ॥ १५ ॥ प्रातःकाल जब सूर्य अत्यन्त अनुरागसे भरी (लाल रङ्गवाली) पूर्व दिशाको अपनी किरणों (वस्त्र) से ढाँककर उसका मुँह चूमने लगा तब मानो लजाकर ही रात्रि अपनी आँखें मूँदकर धीरेसे वहाँसे खिसक गई ॥ १६ ॥ प्रातःकाल दिनके स्वामी सूर्यके उदय होते ही स्वाभाविक सुगन्ध फैलाती हुई तथा भौंरोंकी गुञ्जारके स्वरमें गीत गाती हुई कमलिनी मुस्कराने लगी ॥ १७ ॥ जान पड़ता है रातको

सौरभोक्क्रान्तभृङ्गसङ्गीतशालिनी। उदिते वासराधीशे स्मेराजनि सरोजिनी ॥ १७ ॥ पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्नेः। यदयमिदमिदानीमङ्गमुद्यन्दधाति ज्वलितखदिरकाष्ठाङ्गारगौरं विवस्वान् ॥ १८ ॥ पुरुहूतदिगङ्गना प्रसूता रविमुद्दामसुतं चिरादुपेतम्। अलिनो नलिनोदराद्विमुक्ताः प्रियबाहुद्वयबन्धनान्नवोढाः ॥ १९ ॥ भूयो निपीय लवणाम्बुधिमाप्रभातं पुञ्जीभवन्नुदयते तपनच्छलेन। और्वाग्निरम्बरपयोनिधिमद्य पातुं लीनोडुबुद्बुदकदम्बमिति प्रतीमः ॥ २० ॥ मञ्जिष्ठारुणदीधितिर्मधुकरैर्माङ्गल्यगीतिस्ततः कोकाह्लादपटुः सरोरुहवनं प्रीत्या समुज्जृम्भयन्। लोकालोककरः करैश्च तमसां स्तोमं समुत्सारयन्नारोहन्त्युदयाचलं रविरयं बन्धूकगुच्छच्छविः ॥ २१ ॥ मीलत्कैरवलोचनां प्रविगलत्ताराच्छहारावलीं ग्लायच्चन्द्रमुखीं विशृङ्खलतमःकेशीं सशेषाम्बराम्। प्रातः सत्वरमित्वरीमिव बलादुद्गाढरागैः करैराकर्षन्निव यामिनीमनुपतत्यम्भोजिनीवल्लभः ॥ २२ ॥ यावन्नीरनिधेः प्रभातसमयः प्रोद्धृत्य लोकत्रयीमाणिक्यं रविबिम्बमम्बरवणिग्वीथीपथे न्यस्यति। तावत्कर्तुमिवास्य मूल्यमुचितं पद्माकरेण स्वयं लक्ष्मीर्लब्धविकासपङ्कजकरन्यस्ता पुरः स्थाप्यते ॥ २३ ॥ विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः कलश इव गरीयान्दिग्भिराकृष्यमाणः। कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभिर्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ॥ २४ ॥

सूर्यास्तमनवर्णनम् — अंशुपाणिभिरतीव पिपासुः पद्मजं मधु भृशं रसयित्वा। क्षीवतामिव गतः क्षितिमेष्यँल्लोहितं वपुरुवाह पतङ्गः ॥ १ ॥ अग्रसानुषु नितान्तपिशङ्गैर्भूरुहान्मृदुकरैरवलम्ब्य। अस्तशैलगहनं नु विवस्वानाविवेश जलधिं नु महीं नु ॥ २ ॥ अथ सान्द्रसान्ध्यकिरणारुणितं हरिहेतिहूतिमिथुनं पततां। पृथगुत्पपात

समुद्रमें समाए हुए सूर्यको बड़वानलकी ज्वालाएँ उसे जलाती रही हैं, इसीसे इस समय (प्रातःकाल) उस समुद्रसे निकलता हुआ वह सूर्य जली हुई खैरकी लकड़ीके अङ्गारोंके समान दहक रहा है ॥ १८ ॥ प्रातःकाल पूर्व दिशारूपी नायिकाने बड़ी लम्बी प्रतीक्षाके पश्चात् यह सूर्यरूपी तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया है, इसी प्रसन्नतामें मानो कमलके कोशोंसे भौंरे और प्रियतमकी दोनों भुजाओंके बन्धनसे नवेलियाँ मुक्त कर दी गई हैं ॥ १९ ॥ हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि रात भर खारे समुद्रको पीकर अब तारारूपी बुलबुलोंवाले आकाश-सागरको पीनेके लिये यह बड़वानल अपना सारा तेज बटोरकर प्रातःकाल सूर्यका रूप धारण करके उदय हो रहा है ॥ २० ॥ जपाकुसुमके समान कान्तिवाला, मँजीठके रङ्गके समान लाल किरणोंवाला तथा चकवे-चकवीको सुख देनेवाला यह सूर्य कमलवनको प्रेमपूर्वक खिलाता हुआ तथा अपनी किरणोंसे सारे घने अँधेरेको हटाता हुआ उदयाचलपर चढ़ता जा रहा है जिसके स्वागतके लिये भौंरे माङ्गलिक गीत गाते जा रहे हैं ॥ २१ ॥ [यह प्रातःकालका दृश्य ऐसा जान पड़ता है मानो] कमलिनियोंका स्वामी सूर्य, घने प्रेमके कारण बलपूर्वक अपनी लाल-लाल किरणों (हाथों) से उस रातको पकड़नेके लिये उसके पीछे दौड़ा आ रहा है जिसके तारेरूपी मोतियोंका स्वच्छ हार टूट-टूटकर गिर रहा है, चन्द्रमुख मलिन हो रहा है, काले-काले अँधेरेरूपी बाल बिखरे जा रहे हैं, आकाशरूपी वस्त्र खुलकर गिरा जा रहा है और जो अपनी कुमुदिनीरूपी आँखें मूँदकर वेगसे भागी चली जा रही है ॥ २२ ॥ जैसे ही प्रातःकाल-रूपी बनिया समुद्रमेंसे तीनों लोकोंके मानिक सूर्यको निकालकर बाजारमें लाकर रखता है वैसे ही तालाब भी मानो उसका ठीक मोल करनेके लिये अपने खिले हुए कमलरूपी हाथोंपर रक्खी हुई लक्ष्मी (द्रव्य, शोभा) सामने ला रखता है ॥ २३ ॥ ऐसा जान पड़ता है मानो फुदकते हुए पक्षियोंके कलरवके स्वरोंमें हँसती-बोलती कोलाहल करती हुई दिशारूपी नवेलियाँ, किरणरूपी लम्बी-लम्बी रस्सियोंसे समुद्रके भीतरसे सूर्यरूपी भरा हुआ घड़ा खींच रही हों ॥ २४ ॥

सूर्यास्तका वर्णन : सन्ध्या समयका लाल सूर्य ऐसा दिखाई पड़ रहा है मानो अधिक प्यास लगनेपर उसने अपने किरणरूपी हाथसे कमलका मधु (रस, मदिरा) भरपेट पी लिया हो और उससे पागल होकर धरतीपर गिरा पड़ रहा हो ॥ १ ॥ अस्त होते हुए सूर्यको देखकर कवि सोचता है कि 'अपने अत्यन्त पतले और कोमल करों (हाथों, किरणों) से पहाड़की चोटीके पेड़ोंको थामकर सूर्य अस्ताचलके जङ्गलोंमें घुस गया या समुद्रमें कूद गया या पृथ्वीमें समा गया है' ॥ २ ॥ साँझ होते ही जो चकवा-चकवीका जोड़ा अलग हो रहा था

विरहार्तिदलद्धृदयस्नुतासृगनुलिप्तमिव ॥ ३ ॥ अध्वानं नैकचक्रः प्रभवति भुवनभ्रान्तिदीर्घं विलङ्घ्य प्रातः प्राप्तुं रथो मे पुनरिति मनसि न्यस्तचिन्तातिभारः। सन्ध्याकृष्टावशिष्टस्वकरपरिकरैः स्पष्टहेमारपङ्क्ति व्याकृष्यावस्थितोऽस्तक्षितिभृति नयतीवैष दिक्चक्रमर्कः ॥ ४ ॥ अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरःसरः। अहो दैवगतिश्चित्रा तथापि न समागमः ॥ ५ ॥ अनुरागवन्तमपि लोचनयोर्दधतं वपुः सुखमतापकरम्। निरकासयद्रविमपेतवसुं वियदालयादपरदिग्गणिका ॥ ६ ॥ अनुलेपनानि कुसुमान्यबलाः कृतमन्यवः पतिषु दीपशिखाः। समयेन तेन परिसुप्तमनोभवबोधनं समवबोधित ॥ ७ ॥ अपराह्णशीतलतरेण शनैरनिलेन लोलितलताङ्गुलये। निलयाय शाखिन इवाह्वयते ददुराकुलाः खगकुलानि गिरः ॥ ८ ॥ अभितापसम्पदमथोष्णरुचिर्निजतेजसामसहमान इव। पयसि प्रपित्सुरपराम्बुनिधेरधिरोढुमस्तगिरिमभ्यपतत् ॥ ९ ॥ अभितिग्मरश्मि चिरमा विरमादवधानखिन्नमनिमेषतया। विगलन्मधुव्रतकुलाश्रुजलं न्यमिमीलदब्जनयनं नलिनी ॥ १० ॥ अभिभूय सतामवस्थितिं जडजेषु प्रतिपाद्य च श्रियम्। जगतीपरितापकृत्कथं जलधौ नावपतेदसौ रविः ॥ ११ ॥ अयमपि खरयोपित्कर्णकापायमीषद्विसृमरतिमिरोर्णाजर्जरोपान्तमर्चिः। मदकलकलविङ्कीवाकुनान्दीकरेभ्यः क्षितिरुहशिखरेभ्यो भानुमानुच्चिनोति ॥१२॥ अयमपि पुरुहूतप्रेयसीमूर्ध्नि पूर्णः कलश इव सुधांशुः साधुरुल्लालसीति। मदनविजययात्राकालविज्ञापनाय स्फुरति जलधिमध्ये ताम्रपात्रीव भानुः ॥ १३ ॥ अयमसौ गगनाङ्गणदीपकस्तरलकालभुजङ्गशिखामणिः।

वह उस समयकी घनी किरणोंके लाल रङ्गसे रँगा हुआ ऐसा जान पड़ता था मानो वियोगकी वेदनासे उनका हृदय फट गया हो और उससे निकले हुए रक्तसे वे सन गए हों ॥ ३ ॥ सन्ध्या समय अस्त होते हुए सूर्य ऐसे लग रहे हैं मानो वे इस चिन्तामें डूब गए हों कि 'यह हमारा एक पहिएवाला रथ इस संसारका अत्यन्त लम्बा मार्ग पार करके प्रातःकाल यहाँ नहीं पहुँच सकता।' इसीलिये मानो वे दिशाओंके मण्डलरूपी उस पहिएको खींचकर अस्ताचलकी ओर ले जा रहे हैं जिसमें सन्ध्या समय कुछ-कुछ बची हुई किरणें ही सुनहरे आरेके समान दिखाई दे रही हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि अनुराग (प्रेम या ललाई) से भरी हुई सन्ध्या दिनके पीछे-पीछे लगी दौड़ती रहती है और दिन भी सन्ध्याके ठीक आगे ही आगे चलता रहता है, पर दैवकी विचित्र लीला तो देखो कि वे दोनों कभी आपसमें मिल नहीं पाते ॥ ५ ॥ जैसे अत्यधिक चाहनेवाले, नेत्रोंको शीतलता देनेवाले तथा शरीरको सुख देनेवाले अपने सुन्दर नायकको भी उसके पास धन न रहनेपर वेश्या घरसे निकाल देती है उसी प्रकार पश्चिम दिशाने भी लाल रङ्गवाले, आँखोंको कष्ट न देने वाले तथा सुखदायक रूपवाले सूर्यमें जब किरणें न बच रहीं तो उसे आकाशरूपी घरसे निकाल दिया ॥ ६ ॥ सन्ध्या समय जब बहुत देरतक सोया हुआ कामदेव जाग उठा तब चन्दन-केशर आदिके लेप और फूल आदि इकट्ठे किए जाने लगे, पतिपर रूठी हुई नवेलियाँ प्रसन्न हो गईं और दीपक भी जल उठे ॥ ७ ॥ सन्ध्या समय पक्षियोंकी चहचहाहट ऐसी जान पड़ती है मानो जब वनके वृक्ष, शीतल वायुसे धीरे-धीरे हिलाई हुई अपनी डाली-रूपी उँगलियोंको हिला-हिलाकर पक्षियोंको बसेरेके लिये बुलाने लगे तो पक्षी भी उत्सुक होकर अपने कलरवसे उन्हें उत्तर दे रहे हों कि हम आ रहे हैं ॥८॥ छिपता हुआ सूर्य ऐसा जान पड़ता है मानो अपने ही तेजकी भयङ्कर गरमी न सह सकनेके कारण वह पश्चिमके समुद्रमें कूदनेके लिये अस्ताचलकी चोटीपर चढ़ गया हो ॥९॥ सन्ध्या समय मुँदते हुए कमलोंसे निकलते हुए भौंरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो दिन भर सूर्यके अस्त होनेतक कमलके पौधेने सूर्यके सामने एकटक देखनेसे अलसाए हुए अपने कमलरूपी नेत्र मूँदे तो उसमेंसे भौंरेरूपी आँसू निकल पड़े हों ॥ १० ॥ सज्जनोंकी रहन-सहनमें बाधा पहुँचानेवाला (संसारमें फैला हुआ अँधेरा दूर करनेवाला), नीचोंको सुख देनेवाला (कमलोंको खिला देनेवाला) और संसारको तपानेवाला (प्रकाश देनेवाला) यह सूर्य भला समुद्रमें क्यों नहीं डूबेगा ? अर्थात् ऐसा कुकर्म करनेवालेको तो डूब ही मरना चाहिए (विश्राम लेना ही चाहिए) ॥ ११ ॥ जो वृक्ष गौरैयाकी चहचहाहटसे सूर्यकी प्रशंसा कर रहे हैं उनकी चोटियोंपरसे सूर्य, गधीके कानोंके समान मटमैली और फैलते हुए अन्धकारसे धुँधली पड़ी हुई अपनी किरणें समेट रहा है ॥ १२ ॥ सन्ध्या समय पूर्व दिशाके माथेपर धरे हुए चाँदीके घड़ेके समान चमकता हुआ चन्द्रमा कामदेवकी विजययात्राके समयकी सूचना दे रहा है और समुद्रके बीचमें डूबता हुआ सूर्य ताँबेके

त्रणविडम्बितवाडवविग्रहः पतति वारिनिधौ विधुरो रविः ॥ १४ ॥ अविभाव्यतारकमदृष्टहिमद्युतिबिम्बमस्तमितभानु नभः । अवसन्नतापमतमिस्रमभादपदोषतैव विगुणस्य गुणः ॥ १५ ॥ अस्तं गतवति सवितरि भर्तरि मधुपं निवेश्य कोशान्ते । कमलिन्योऽपि रमन्ते किमत्र चित्रं मृगाक्षीणाम् ॥ १६ ॥ अस्ताचलम्बिरविबिम्बतयोदयाद्रिचूडोन्मिषत्सकलचन्द्रतया च सायम् । सन्ध्याप्रनृत्तहरहस्तगृहीतकाँस्यतालद्वयेव समलक्ष्यत नाकलक्ष्मीः ॥ १७ ॥ अस्तोदयाचलावलम्बिरवीन्दुबिम्बव्याजात्त्वणं श्रवणयोर्निहितारविन्दा । ताराच्छलेन कुसुमानि समुत्क्षिपन्ती सन्ध्येयमागतवती प्रमदेव काचित् ॥ १८ ॥ आकुलश्चलपतत्रिकुलानामारवैरनुदितोषसरागः । आययावहरिदश्वपाण्डुस्तुल्यतां दिनमुखेन दिनान्तः ॥ १९ ॥ आपृच्छास्व व्यथयति मनो दुर्बला वासरश्रीरेह्यालिङ्ग क्षपय रजनीमेकिका चक्रवाकि । नान्यासक्तो न खलु कुपितो नानुरागच्युतो वा दैवाधीनस्तदिह भवतीमस्वतन्त्रस्त्यजामि ॥ २० ॥ आवासोत्सुकपक्षिणः कलरुतं क्रामन्ति वृक्षालयान्कान्ताभावियोगभीरुरधिकं क्रन्दत्ययं कातरः । चक्राह्वो मधुपाः सरोजगहनं धावन्त्युलूको मुदं धत्ते चारुणतां गतो रविरसावस्ताचलं चुम्बति ॥ २१ ॥ आविशद्भिरुटजाङ्गणं मृगैर्मूलसेकसरसैश्च वृक्षकैः । आश्रमाः प्रविशदग्न्यधेनवो बिभ्रति श्रियमुदीरिताग्नयः ॥ २२ ॥ आस्थतः स्थगितवारिदपङ्क्त्या सन्ध्यया गगनपश्चिमभागः । सोर्मिविद्रुमवितानविभासा रञ्जितस्य जलधेः श्रियमूहे ॥ २३ ॥ उच्चैस्तटादम्बरशैलमालेश्च्युतो रविर्गैरिकगण्डशैलः । तस्यैव पातेन विचूर्णितास्य

घड़ेके समान लाल लाल चमक रहा है ॥ १३ ॥ देखो, यह आकाश-रूपी आँगनका दीपक, अस्थिर कालरूपी साँपके मस्तकका मणि तथा समुद्रकी बड़वाग्निके समान ज्वलन्त सूर्य आज निराधार होकर समुद्रमें डूब रहा है ॥१४॥ सन्ध्या समय अभी आकाशमें तारे नहीं निकले थे, चन्द्रमा भी नहीं उगे थे, सूर्य भी अस्त हो रहे थे और न तो धूप थी, न अँधेरा था, फिर भी आकाश बड़ा भला जान पड़ता था क्योंकि जिनमें गुण नहीं है उनमें दोषोंका न रहना ही गुण हो जाता है ॥ १५ ॥ जब अपने पति सूर्यके अस्त हो जाने पर कमलिनियाँ अपने कोशोंमें भौंरोंको घुसाकर क्रीड़ा कर रही हैं तब यदि हरिणके समान आँखोंवाली नायिकाएँ भी वैसा ही करें तो क्या आश्चर्य है ॥ १६ ॥ सन्ध्या समय जब एक ओर अस्ताचलपर सूर्य अस्त हो रहे थे और दूसरी ओर उदयाचलपर चन्द्रमा उदय हो रहा था, उस समय नीला आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो सन्ध्या समय नृत्य करते हुए शङ्करजीने दोनों हाथोंमें दो काँसेकी झाँझें ले रक्खी हों ॥ १७ ॥ उदयाचल और अस्ताचलपर अलग अलग लटके हुए चन्द्रमा और सूर्यका कनफूल पहनकर तारे-रूपी फूल उछालती चलती हुई सन्ध्या-रूपी नायिका आ पहुँची है ॥ १८ ॥ सन्ध्याका समय भी प्रातःकालके समान लगने लगा था क्योंकि दिन-छिपे भी उड़ते हुए पक्षी चहचहा रहे थे, ललाई मिट गई थी और सूर्यके न रहनेपर भी उजलापन बना हुआ था ॥ १९ ॥ सन्ध्या होते देखकर चकवीसे चकवा कहता है—'हे चकवी ! मैं पूछता हूँ कि तू जी क्यों छोटा किए जा रही है। अभी साँझ होनेवाली है अतः आकर मेरे गले लग जा और किसी प्रकार यह रात अकेली काट ले। (दुखी न होना क्योंकि) न तो मैं किसी दूसरी चकवीसे प्यार करता हूँ, न तुझसे रुष्ट हूँ, न तेरे लिये मेरे मनमें प्रेम ही कम है, पर क्या करूँ, मेरे हाथमें कुछ नहीं है। इसलिये न चाहते हुए भी तुझे अकेली छोड़ रहा हूँ ॥ २० ॥ लाल-लाल सूर्य जिस समय-अस्ताचलको छू रहे हैं उस समय चहचहाते हुए पक्षी बसेरेके लिये पेड़के घोसलोंकी ओर उड़े चले जा रहे हैं, चकवीसे अलग होनेके डरसे दुखी होकर चकवा ऊँचे स्वरसे चिल्ला रहा है, भौंरे कमलोंपर मँडरा रहे हैं और उल्लू मन ही मन प्रसन्न हो रहा है ॥ २१ ॥ मुनियोंकी कुटियोंके आँगनमें हरिण चले आ रहे हैं, सींचे जानेके कारण पेड़ हरे-भरे दिखाई पड़ रहे हैं, सुन्दर गौएँ जङ्गलसे आश्रमकी ओर लौट रही हैं और अग्निहोत्रके लिये आग जगाई जा रही है। इस प्रकार सन्ध्या समय आश्रम बड़ा ही मनोहर लग रहा है ॥ २२ ॥ सन्ध्याकी ललाईसे जब बादलोंकी रेखाएँ ढक गईं उस समय पश्चिम दिशाका आकाश उस समुद्रके समान सुन्दर दिखाई देने लगा जिसकी पतली-पतली लहरोंपर मूँगेकी लाल-लाल छाया पड़ रही हो ॥ २३ ॥ साँझकी ललाई ऐसी जान पड़ रही है मानो आकाश-रूपी पर्वतकी ऊँची चोटीसे गेरूकी चट्टानके समान लाल सूर्यके गिरकर चूर-चूर हो

सन्ध्यारजोराजिरिवोज्जिहीते ॥२४॥ उत्तरन्ति विनिकीर्य पल्वलं गाढपङ्कमतिवाहितातपाः। दंष्ट्रिणो वनवराहयूथपा दष्टभङ्गुरबिसाङ्कुरा इव ॥ २५ ॥ उदयगिरितटस्थः पद्मिनीर्बोधयित्वा मृदुतरकिरणाग्रैस्ताः स्वयं चोपभुज्य। मलिनमधुपसङ्गात्तासु सञ्जातकोपः कृतरुधिरविरोचिर्भानुरस्तं प्रयातः ॥ २६ ॥ उदयाद्रेरुड्डीनो दिनं भ्रमित्वा पतङ्गोऽयम्। अद्य प्रदोषसमये वडवाज्वलने जुहोति देहं स्वम् ॥ २७ ॥ उद्गाढप्रणये रुचां परि ढे विस्रंसमानेऽम्बरश्रीचूडामणिभूमिकामधिगते चक्षुःपथं मुञ्चति। मीलत्तामरसप्रविष्टमधुपव्याजेन हालाहलग्रन्थीनम्बुजिनी विधाय कवलान्मूर्च्छामिवागच्छति ॥ २८ ॥ उपसन्ध्यमास्त तनु सानुमतः शिखरेषु तत्क्षणमशीतरुचः। करजालमस्तसमयेऽपि सतामुचितं खलूच्चतरमेत्य पदम् ॥ २६ ॥ एष वृक्षशिखरे कृतास्पदो जातरूपरसगौरमण्डलः। हीयमानमहरत्ययातपं पीवरोरु पिबतीव बर्हिणः ॥ ३० ॥ करिष्यति कलानाथः कुतुकी करमम्बरे। इति निर्वापयामास रविदीपं निशाङ्गना ॥ ३१ ॥ कान्तदूत्य इव कुङ्कुमताम्राः सायमण्डनमभि त्वरयन्त्यः। सादरं ददृशिरे वनिताभिः सौधजालपतिता रविभासः ॥ ३२ ॥ कृतोपकारं प्रियबन्धुमर्कं मा द्राक्ष्म हीनांशुमधः पतन्तम्। इतीव मत्वा नलिनीवधूभिर्निमीलितान्यम्बुरुहेक्षणानि ॥३३॥ कृत्वा प्रबुद्धकमलामखिलां त्रिलोकीमम्भोनिधेर्विशति गर्भमसाविदानीम्। अन्तःप्रसुप्तहरिनाभिसरोजबोधकौतूहलीव भगवानरविन्दबन्धुः ॥ ३४ ॥ कोऽत्र भूमिवलये जनान्मुधा तापयन्सुचिरमेति सम्पदम्। वेदयन्निति दिनेन भानुमानाससाद चरमाचलं ततः

जानेसे उसीकी उड़ी हुई धूलसे चारों ओर ललाई छा रही हो ॥ २४ ॥ धूपका समय बिताकर सन्ध्याको जङ्गली सूअर कीचड़से भरे पोखरोंमें लोट-लोटकर बाहर निकल रहे हैं और उनके छोटे-छोटे दाँत ऐसे जान पड़ते हैं मानो कमलनालको तोड़-तोड़कर खानेसे उसके टुकड़े उनके मुखमें लगे हुए हों ॥ २५ ॥ उदयाचलपर पहुँचकर सूर्यने अपने कोमल किरण-रूपी हाथोंसे कमलिनियोंको जगाकर उनके साथ विहार किया पर जब उसने देखा कि इनका मधुपों (भौंरों या मदिरा पीने-वालों) से संसर्ग हो गया है तो क्रोधसे लाल होकर वह उनसे दूर होकर जा छिपा ॥ २६ ॥ यह पतङ्ग (सूर्य, फतिङ्गा) उदयाचलसे उठकर दिनभर उड़ता रहा और अब सन्ध्या समय (व्रतकी समाप्ति होनेपर सूर्य और अग्निकी ओर प्रेम होनेके कारण फतिङ्गा) वड़वाग्निमें अपनी देह हवन किए दे रहा है ॥ २७ ॥ सन्ध्या समय कमलमें घुसते हुए भौंरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो आकाशके चूड़ामणि तथा अत्यधिक प्रेम करनेवाले अति तेजस्वी प्रियतम सूर्यके आँखोंसे ओझल होते देखकर कमलिनी, (उसका वियोग न सह सकनेके कारण) मानो भौंरोंके रूपमें विषकी गोलियाँ बना-बनाकर निगलती हुई मूर्च्छित होती चली जा रही हों ॥ २८ ॥ सूर्यकी किरणें प्रातःकाल भी पर्वतकी चोटियोंपर थीं और सन्ध्याकाल भी अस्त होते समय अस्ताचलकी चोटियोंपर ही जाकर ठहरीं। यह ठीक ही है क्योंकि बड़े लोगोंको तो सदा ऊँचा स्थान मिला ही करता है ॥ २६ ॥ हे मोटी जाँघोंवाली! यह पेड़की चोटीपर बैठा हुआ और सूर्यकी किरणोंकी चमकसे सुनहरा-सा दिखाई पड़नेवाला मोर ऐसा जान पड़ता है मानो धीरे-धीरे मुरझाती हुई सन्ध्याकी धूप पिए डाल रहा हो ॥ ३० ॥ रात्रिरूपी नायिकाने जब देखा कि कलानाथ (चन्द्रमा या कामकी कलाएँ जाननेवाला) अब अम्बर (आकाश या वस्त्र) में अपना कर (किरण या हाथ) लगाने ही वाला है तो उसने झट सूर्य-रूपी दीपक बुझा दिया ॥ ३१ ॥ सुन्दरी नवेलियोंने अपनी अटारियोंके झरोखोंपर पड़ी हुई सूर्यकी किरणोंको ऐसे आदरपूर्वक देखा मानो वे सन्ध्या समयकी सजावटके लिये उतावली करनेवाली उनके पतिकी भेजी हुई दूतियाँ हों जिन्होंने शरीरमें केशरका लेप पोत रक्खा हो ॥ ३२ ॥ सायङ्काल कमलकी लतारूपी नायिकाने अपने कमलरूपी नेत्र मानो इसलिये मूँद लिए कि मैं अपनी भलाई करनेवाले अपने प्यारे बन्धु सूर्यको किरणोंसे रहित होकर नीचे गिरते न देख पाऊँ ॥ ३३ ॥ सन्ध्या समय समुद्रमें पैठते हुए सूर्य ऐसे जान पड़ते हैं मानो सारे जगत्‌के कमलोंको खिलाकर इस समय वे समुद्रके भीतर सोए हुए विष्णुकी नाभिपर निकले हुए कमलको खिलानेके लिये चले जा रहे हों ॥ ३४ ॥ अस्ताचलकी ओर जाता हुआ सूर्य मानो यही उपदेश देता है कि संसारमें लोगोंको बिना बातके तपानेवाला कोई व्यक्ति बहुत दिनोंतक सुखी नहीं रह सकता ॥३५॥ अपने पतिसे सम्भोग करनेकी उमड़ी हुई चाहसे भरी हुई नायिका, सामने खिड़कीमेंसे अस्ताचल और सूर्यके

॥ ३५ ॥ गतया पुरः प्रतिगवाक्षमुखं दधती रतेन भृशमुत्सुकताम् । मुहुरन्तरालभुवमस्तगिरेः सवितुश्च योषिदमिमीत दृशा ॥ ३६ ॥ गतवति दिननाथे पश्चिमक्ष्माधरान्तं शिशिरकरमयूखैर्निर्भरं दह्यमाना । परिहृतमिलितालिः पान्थकान्तेव दीना सपदि कमलिनीयं हास्यहीना बभूव ॥ ३७ ॥ गतवत्यराजत जपाकुसुमस्तबकद्युतौ दिनकरेऽवनतिम् । वहलानुरागकुरुविन्ददलप्रतिबद्धमध्यमिव दिग्वलयम् ॥३८॥ गाढं प्रौढाङ्गनाभिः सुरतरतमनःसम्मदोत्सारिताक्षं मुग्धाभिः स्रस्तनेत्रं रतिसमरभयं चिन्तयन्तीभिरेवम् । पान्थानामङ्गनाभिः ससलिलनयनं शून्यचित्ताभिरुच्चैः कष्टं दृष्टोऽस्तशैलं भृशमभजदयं मण्डलश्चण्डरश्मेः ॥ ३९ ॥ जगदिव बहुलातपाभितप्तं जनयितुमद्य जलाभिषेकशीतम् । परिधृतरविशातकुम्भकुम्भा प्रचलति पश्चिमवारिधिं दिनश्रीः ॥ ४० ॥ जम्भारेः प्रियया कयापि ककुभा पूर्वाचलप्रान्ततः श्रीमान्प्रौढपतङ्गको वियति यः प्रातः समुड्डायितः । आः सोऽयं च्युतरश्मिबन्धलुलितः पारेनभो न्यक्पतन् सम्प्रत्युत्तपितोऽस्तपर्वतदरीदीर्घद्रुशाखान्तरे ॥ ४१ ॥ तद्रोदोऽन्तरसन्ततान्धतमसं निर्भिद्य तिग्मांशुभिः सञ्छेत्तुं बलिसद्मगं कृतमतिर्भानुर्जगाहेऽम्बुधिम् । अन्यत्सम्प्रति सन्निपत्य वृणुते लोके तमोमण्डलं किञ्चैतस्य नयत्यहो परिभवं पाथोजिनीं वल्लभाम् ॥ ४२ ॥ तापनैरिव तेजोभिर्दग्धनिर्वाणमेचकाः । दिशो जाताः प्रतीची तु समुदाचरति क्रमात् ॥ ४३ ॥ दिनभर्तुरस्तमयतः स्यन्दनतुरगेषु घनतमोमहिषः । घातावसरमिवेच्छन्पृष्ठे निभृतं परिभ्रमति ॥ ४४ ॥ दिनावसाने तरणेरकस्मान्निमज्जनाद्विश्वविलोचनानि । अस्य प्रसादादुडुपस्य नूनं तमोमयद्वीपवतीं तरन्ति ॥ ४५ ॥ दिवसोऽनुमित्रमगमद्विलयं किमिहास्यते बत भयावलया । रुचिभर्तुरस्य विरहाधिगमादिति सन्ध्ययापि सपदि व्यगामि ॥ ४६ ॥ दूरलग्नपरिमेयरश्मिना

बीचका अन्तर नाप रही है अर्थात् यह बाट जोह रही है कि सूर्य डूबनेमें कितनी देर है ॥ ३६ ॥ सूर्यके अस्ताचलकी ओर चले जानेके पश्चात् चन्द्रमाकी किरणोंसे जलाई हुई और अपनी सखी भौंरियोंसे बिछुड़ी हुई कमलकी लता, दुखी वियोगिनीके समान मुरझा गई और उसका हँसना बन्द हो गया ॥ ३७ ॥ जिस समय लाल-लाल सूर्य अस्ताचलपर जपाकुसुमके गुच्छेके समान लटक रहे थे उस समय वे ऐसे लगते थे मानो दिशाओंकी मालामें अत्यन्त चमकीला लाल मणिका सुमेरु लटक रहा हो ॥ ३८ ॥ आह ! सन्ध्या समय वे सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहे हैं जिन्हें नवेलियाँ पतिके समागमकी आशासे प्रसन्न होकर आँखें उठाकर देख रही थीं, नई ब्याही बहुएँ पहले-पहल पति-समागमके भयसे चिन्तित होकर अधखुली आँखोंसे देख रही थीं और जिन्हें परदेस गए हुए लोगोंकी स्त्रियाँ आँसू भरकर व्याकुल होकर देख रही थीं ॥ ३९ ॥ सन्ध्या समय अस्त होता हुआ सूर्य ऐसा लगता है मानो दिनकी शोभा-रूपी स्त्री अत्यन्त गर्मीसे तपे हुए संसारको नहलाकर ठंढा करनेके लिये सूर्यरूपी सोनेका घड़ा हाथमें लेकर समुद्रकी ओर उसे भरने चली जा रही हो ॥ ४० ॥ यह सुन्दर बलवान् सूर्य जो पूर्वाचलके पास इन्द्रकी प्रियतमा पूर्वदिशासे प्रेम करके आकाशमें उड़ा था, हाय ! वही सन्ध्या समय अपने किरणरूपी बन्धुओंसे विहीन होकर आकाशके उस पार अस्ताचलकी गुफाओंके बड़े-बड़े वृक्षोंकी शाखाओंमें गिरा जा रहा है ॥ ४१ ॥ सन्ध्या समय सूर्यास्त देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो आकाशमें भरे हुए घने अंधकारको अपनी तीखी किरणोंसे फाड़कर अब पातालका अन्धकार भी भगानेके लिये सूर्य तो समुद्रमें कूद रहा हो और उसके चले जानेसे संसारमें एक दूसरा अन्धकार सूर्यकी प्यारी कमलिनीका अनादर कर रहा हो ॥ ४२ ॥ सन्ध्या समय सारी दिशाएँ तो सूर्यके तेजसे जलकर और बुझकर काली पड़ गईं पर पश्चिम दिशा इस समय सूर्यका समागम पाकर ठीक व्यवहार कर रही है अर्थात् लाल होकर प्रसन्नता दिखा रही है ॥ ४३ ॥ सन्ध्या समय बढ़ता हुआ अँधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो दिनके स्वामी सूर्यके अस्त होनेपर घना अन्धकाररूपी भैंसा उनके रथके घोड़ोंपर वार करनेकी घात ढूँढ़ता हुआ पीछे-पीछे चुपचाप चला जा रहा हो ॥ ४४ ॥ सन्ध्या समय अचानक तरणि (नाव या सूर्य) के डूब जानेसे संसारभरके नेत्र अब इस उडुप (चन्द्रमा या लकड़ियाँ जोड़कर बनाई हुई डोंगी) के सहारे ही अन्धकारकी नदी पार कर रहे हैं ॥ ४५ ॥ सूर्यके विरहमें सन्ध्या भी यहीं सोचकर झट-पट चल दी कि जब मित्र (सूर्य) के पीछे-पीछे दिन भी चला गया तो मैं अबला (स्त्री या पत्नी) होकर भला कैसे ठहर सकती हूँ ॥ ४६ ॥ सन्ध्या समय लाल वर्णका सूर्य और

वारुणी दिगरुणेन भानुना। भाति केसरवतेव मण्डिता बन्धुजीवतिलकेन कन्यका ॥ ४७ ॥ दोषाकरं द्विजपतिप्रतिमं सयत्नं निर्लज्जवत्स्वपदमात्मवशं विधातुम्। आलोक्य धामनिधिरेप शुचेव दूनो लोकान्तरे क्षपयितुं समयं प्रयाति ॥ ४८ ॥ द्रागैन्द्रीमनुचुम्ब्य सस्मितमुखीमामोदिनीं पद्मिनीं कृत्वासौ परिरम्भसम्भ्रमपरिश्रान्ताञ्च वारस्त्रियम्। संरक्तो हिमभानुरद्य चरमां श्लिष्यत्यहो रागिणीं काश्मीरोपलसत्पयोधरभरां कान्तां दिशं वारुणीम् ॥ ४९ ॥ द्रुतशातकुम्भनिभमंशुमतो वपुरर्धमग्नवपुषः पर्यासि। रुरुचे विरञ्चिनखभिन्नबृहज्जगदण्डकैकतरखण्डमिव ॥ ५० ॥ द्वावप्येतावभिनवजपापुष्पभासौ निवासौ तिष्ठत्येतद्द्वयमपि वियन्मण्डलस्योपसन्ध्यम्। अस्तं को यात्युदयति च कः को रविः कः शशाङ्कः का च प्राची तदिह न वयं का प्रतीचीति विद्मः ॥ ५१ ॥ नवकुङ्कुमारुणपयोधरया स्वकरावसक्तरुचिराम्बरया। अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा भृशमन्वरज्यदतुषारकरः ॥ ५२ ॥ निर्यद्वासरजीवपिण्डकरणिं विभ्रत्कवोष्णैः करैर्मञ्जिष्ठं रविबिम्बमम्बरतलादस्ताचलं चुम्बति। किञ्च स्तोकतमःकलापकलनाश्यामायमानं मनाग्धूमश्यामपुराणचित्ररचनारूपञ्जगज्जायते ॥५३॥ निलयः श्रियः सततमेतदिति प्रथितं यदेव जलजन्मतया। दिवसात्ययात्तदपि मुक्तमहो चपलाजनं प्रति न चोद्यमदः ॥ ५४ ॥ निलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्च पङ्कजैः। विकसन्त्या च मालत्या गतोऽस्तं ज्ञायते रविः ॥ ५५ ॥ नो रविर्न च तमो न तमीशो न द्युतिर्ग्रहगणो न च सन्ध्या। यादृशी प्रथमतः किल सृष्टेस्तादृगेव भुवनं श्रियमूहे ॥ ५६ ॥ पचेलिमं दाडिममर्क-

---

उसकी पीली-पीली किरणें पश्चिम दिशामें ऐसी जान पड़ती थीं मानो किसी कन्याने केशर लगे हुए दुपहरियाके फूलकी बिन्दी लगा रक्खी हो ॥ ४७ ॥ सन्ध्या समय निकलते हुए चन्द्रमा और डूबते हुए सूर्यको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो श्रेष्ठ द्विज (ब्राह्मण, चन्द्रमा) का रूप धारण करनेवाले इस दोषाकर (दोषोंके भण्डार, रात्रि करनेवाले चन्द्रमा) को अपने (सूर्यके) स्थान (आकाश) पर इस निर्लज्जताके साथ स्वामित्व करते देखकर ही तेजके भण्डार सूर्यको इतना दुःख हुआ कि वे दूसरे लोकमें अपने दिन काटनेके लिये चले जा रहे हों ॥ ४८ ॥ सूर्यने पहले तो चमकीली और हँसती हुई पूर्व दिशारूपी नायिकाका मुँह चूमा, फिर सुगन्ध और हँसीसे भरी हुई कमलिनीरूपी वेश्याको कसकर छातीसे लगाकर थका दिया और इस समय केसरके लेपसे रँगे हुए स्तनोंवाली (लाल बादलवाली या प्रेम-भरी) अपनी प्यारी पश्चिम दिशाको बड़े प्रेमसे छातीसे लगा रहा है ॥४९॥ समुद्रके जलमें आधे डूबे हुए सूर्यका सोनेके समान दमकीला गोला ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्माने अपने नखसे सोनेके ब्रह्माण्डका एक बड़ा-सा टुकड़ा उखाड़कर ला धरा हो ॥ ५० ॥ सन्ध्या समय अस्त होते हुए सूर्य और उदय होते हुए चन्द्रमा दोनों ही जपाकुसुमके समान लाल-लाल दिखाई पड़ते हुए उदयाचल और अस्ताचलपर एक रूपमें विराजमान हैं इसलिये न तो यही जान पड़ता है कि कौन अस्त हो रहा है, कौन उदय हो रहा है न यही पहचानमें आता है कि कौन सूर्य है, कौन चन्द्रमा है और न यही समझमें आता है कि कौन-सी पूर्व दिशा है और कौन-सी पश्चिम ॥ ५१ ॥ केशरके लेपसे रँगे हुए स्तनोंवाली (केशरके समान लाल-लाल बादलोंवाली) तथा अपने हाथोंसे अपनी सुन्दर साड़ी सँभाले रखनेवाली (अपनी ओर सूर्यकी किरणें फैलानेसे सुन्दर लगनेवाली) वरुणकी दिशा (पश्चिम) से मिलकर सूर्य अत्यन्त अनुरक्त (प्रेमपूर्ण, लाल) हो रहे हैं ॥ ५२ ॥ दिनकी समाप्तिपर अपनी कुछ-कुछ गरम किरणोंसे उसके साथ समवेदना दिखलानेवाला सूर्य-मंडल अब आकाशसे हटकर अस्ताचलकी ओर चला जा रहा है और कुछ-कुछ अँधेरा छा जानेसे धुँधला दिखाई देनेवाला संसार ऐसा जान पड़ता है मानो धुआँ लगनेसे कोई चित्र काला पड़ गया हो ॥ ५३ ॥ जो कमल सब ओर इसलिये प्रसिद्ध था कि यह लक्ष्मीका निवासस्थान है वहाँसे भी सन्ध्या समय श्री (लक्ष्मी, शोभा) उठकर चल दीं, किन्तु चञ्चल स्त्रियोंका काम ही यही होता है अतः उनके विषयमें कुछ कहना ही व्यर्थ है ॥ ५४ ॥ इस समय चिड़ियाँ अपने-अपने घोसलोंकी ओर जा रही हैं, कमल मुरझा रहे हैं और मालतीके फूल खिल रहे हैं। अतः जान पड़ता है कि अब सूर्य अस्त हो गए हैं ॥ ५५ ॥ सन्ध्या समय संसारकी वही दशा दिखाई पड़ने लगी जो सृष्टिसे पहले थी अर्थात् न सूर्य था न अन्धेरा, न चन्द्रमा था न चाँदनी, न तारे थे न साँझ ॥ ५६ ॥ दिन छिपनेपर जान पड़ता है कि कालने सूर्य-मण्डलरूपी पका हुआ अनार तोड़कर, उसका

बिम्बमुत्तार्य सन्ध्या त्वगिवोज्झिताऽस्य । तारावलि-बीजभुजाऽदसीयं कालेन निष्ठ्यूतमिवास्ति यूथम् ॥ ५७ ॥ पतति रविरपूर्ववारिराशौ हृदि पथिकस्य यथात्मभूर्हुताशः । प्रसरति चरमां तमःप्ररोहः प्रतिपदमद्य यथा मनोविमोहः ॥ ५८ ॥ परां रागाकुले प्राप्य जाते कमलिनीपतौ । शोकादिव तमोग्रस्ता पूर्वैषा प्रतिभासते ॥ ५९ ॥ परिपतति पयोनिधौ पतङ्गः सरसिरुहामुदरेषु मत्तभृङ्गः । उपवनतरुकोटरे विहङ्गस्तरुणिजनेषु शनैः शनैरनङ्गः ॥ ६० ॥ पश्य पश्चिमदिगन्तलम्बिना निर्मितं कथमिदं विवस्वता । दीर्घया प्रतिमया सरोम्भसां तापनीयमिव सेतुबन्धनम् ॥ ६१ ॥ पादा यस्य सहस्रं सोऽपि न तिष्ठति समागते यस्मिन् । हन्त प्रदोषसमयो दोषाकरसम्पदे सोऽद्धा ॥६२॥ पाश्चात्याम्बुधिदृष्टपूर्वबडवासन्दर्शनोत्कण्ठया धावद्रथ्यतुरङ्गनिष्ठुरखुरक्षुण्णेऽस्तशैलस्थले । तस्मादुच्चलितेन धातुरजसा लिप्तानुरक्ताङ्गको मन्दांशुः प्रियदर्शनः खलु सहस्रांशुर्दरीदृश्यते ॥ ६३ ॥ पुराणरश्मिजालेषु स्रस्तेष्वस्तावलम्बनम् । बिम्बमम्बुरुहां नेतुरम्बरादवलम्बते ॥ ६४ ॥ पूर्वभागतिमिरप्रवृत्तिभिर्व्यक्तपङ्कमिव जातमेकतः । खं हृतातपजलं विवस्वता भाति किञ्चिदिव शेषवत्सरः ॥ ६५ ॥ पूर्वां चरणक्रमनिरस्तसमस्तरागां हित्वा निजान्तिकमुपेत्य रवौ सरागे । आलोकतः पुनरमुष्य धृतप्रसादा जाता चिरेण चरमा परमानुरक्ता ॥ ६६ ॥ पूर्वाहं विहितोदयाऽहमसकृत्तन्मां विहायाधुना यस्यामस्तमुपैति तां कथमसौ रागी जघन्यामगात् । इत्येवं श्लथितांशुके दिनपतौ याते दिशं पश्चिमामीर्ष्यारोषविषादिनीव तमसा प्राची ककुब्लक्ष्यते ॥ ६७ ॥ पृथु गगनकबन्धस्कन्धचक्रं किमेतत्किमु रुधिरकपालं कालकापालिकस्य । कललभरितमन्तः किं नु तार्क्ष्याण्डखण्डं

सन्ध्यारूपी छिलका फेंक दिया और दानोंका रस चूसकर तारे-रूपी बीज इधर-उधर थूककर छितरा दिए हैं ॥ ५७ ॥ जैसे ही सूर्य पश्चिम समुद्रमें डूबा वैसे ही विरहीके हृदयमें कामाग्नि जाग उठी और पश्चिम दिशामें अँधेरा फैलनेके साथ-साथ कामियोंके मनमें भी घबराहट वेगसे बढ़ चली ॥ ५८ ॥ जब पूर्व दिशाने देखा कि पश्चिम दिशाके पास पहुँचकर सूर्य अधिक अनुरागयुक्त (प्रेमपूर्ण, लाल) हो गया है तब वह शोकके मारे तमोगुण (शोक, अँधेरे) से भरकर उदास हो गई है ॥ ५९ ॥ सन्ध्या समय सूर्य समुद्रमें डूब रहा है, मतवाले भौंरे कमलोंके भीतर घुसे जा रहे हैं, उपवनके पेड़ोंके घोंसलोंमें चिड़िएँ बसेरा ले रही हैं और नवेलियोंके हृदयमें कामदेव धीरे-धीरे अपने पैर बढ़ा रहा है ॥ ६० ॥ देखो, पश्चिमकी ओर लटकते हुए सूर्यकी लम्बी परछाईं सरोवरके जलपर पड़ी हुई ऐसी जान पड़ रही है मानो सोनेका पुल बना दिया गया हो ॥ ६१ ॥ एक सहस्र पैरोंवाला सामर्थ्यवान् (सूर्य) भी जिसके आनेपर ठहर नहीं पाता वह प्रदोष-समय (भयंकर दोषोंका समय, सन्ध्याकाल) निश्चय ही दोषाकर (पापोंके ढेर, चन्द्रमा) की वृद्धि करना चाहता है ॥ ६२ ॥ सन्ध्या समय सूर्यके लाल-लाल होकर सुन्दर दिखाई पड़नेका कारण यह है कि सूर्यके रथके घोड़ोंने जब पहले-पहल समुद्रमें वड़वानलकी लपटें (घोड़ी) देखीं तो उन्हें देखनेकी उमंगमें वे ऐसे सरपट दौड़े कि उनकी करारी टापोंसे अस्ताचल पिस गया और उनसे जो गेरू आदि धातुओंकी धूल उड़ी उससे सूर्यका शरीर रँग उठा और किरणें धुंधली पड़ गईं ॥ ६३ ॥ अपनी सब किरणें झड़ जानेके कारण सूर्य निराधार हो गया है इसीलिये सन्ध्या समय उसका मण्डल आकाशसे नीचेकी ओर लटका जा रहा है ॥ ६४ ॥ सन्ध्या समय जब पूर्व दिशामें कुछ-कुछ अँधेरा छाने लगा और धूप मन्दी पड़ने लगी उस समय आकाश उस सूखे तालाबके समान दिखाई देने लगा जिसमें कीचड़-भर बची रह गई हो ॥ ६५ ॥ समयके फेरसे जिस पूर्व दिशारूपी नायिकाका सारा राग (प्रेम, ललाई) दूर हो गया है उसे छोड़कर जब सूर्य अनुराग-सहित (लाल होकर) पश्चिम दिशाके पास पहुँचे तो पश्चिम दिशा भी प्रसन्न होकर उनपर अत्यन्त अनुरक्त (लाल) हो उठी ॥ ६६ ॥ सन्ध्या समय बिना किरणोंवाले सूर्यको पश्चिम दिशामें अस्त होते देखकर मानो इसी चिन्तामें घुलकर पूर्व दिशा उदास (अँधेरेसे भरी) दिखाई पड़ रही है कि—मैं ही पूर्व दिशा (प्रथम पत्नी) हूँ, मैंने ही सूर्यका उदय (उन्नति) किया है फिर भी यह सूर्य कैसा कामान्ध (लाल) है कि बार-बार मुझे छोड़कर उसी नीच पश्चिम (दूसरी) दिशा (नायिका) के पास जाता रहता है जहाँ उसे अस्त हो जाना पड़ता है !' ॥ ६७ ॥ सन्ध्या समय सूर्य-मंडलको देखकर यह विचार

प्रजनयति वितर्कं सान्ध्यमर्कस्य बिम्बम् ॥ ६८ ॥ प्रदोषसमयो कस्य कृते न स्याद्भयावहः। यस्मिन्प्राप्ते व्रजत्यस्तं तेजसां निधिरप्यहो ॥ ६९ ॥ प्राचीमालम्बमाने घनतिमिरचये बान्धवे बन्धकीनां सम्प्राप्ते च प्रतीचीं शशिकरनिकरे वैरिणि स्वैरिणीनाम्। अर्धश्यामोपलार्धस्फटिकमिव दिशामन्तरालं विधत्ते कालिन्दीजह्नुकन्यामिलदमलजलस्यन्दसन्दोहमैत्रीम् ॥ ७० ॥ प्राञ्जलावपि जने नतमूर्ध्नि प्रेम तत्प्रवणचेतसि हित्वा। सन्ध्ययानुविदधे विरमन्त्या चापलेन सुजनेतरमैत्री ॥ ७१ ॥ बद्धकोशमपि तिष्ठति क्षणं सावशेषविवरं कुशेशयम्। षट्पदाय वसतिं ग्रहीष्यते प्रीतिपूर्वमिव दातुमन्तरम् ॥ ७२ ॥ भानुबिम्बमिदमस्तगामि च प्रोद्यतं कुमुदबन्धुमण्डलम्। दृश्यते रतिपतेः प्रवासिनां क्रोधरक्तमिव लोचनद्वयम् ॥ ७३ ॥ मध्यमोपलनिभे लसदंशावेकतश्च्युतिमुपेयुषि भानौ। द्यौरुवाह परिवृत्तिविलोलां हारयष्टिमिव वासरलक्ष्मीम् ॥ ७४ ॥ मन्त्रसंस्कारसम्पन्नास्तन्वदौदन्वतीरपः। एतत्त्रयीमयं ज्योतिरादित्याख्यं निमज्जति ॥ ७५ ॥ महद्भिरोघैस्तमसामभिद्रुतो भयेऽप्यसम्मूढमतिर्भ्रमन्स्थितौ। प्रदीपवेषेण गृहे गृहे स्थितो विखण्ड्य देहं बहुधेव भास्करः ॥ ७६ ॥ मुक्तमूललघुरुज्झितपूर्वः पश्चिमे नभसि सम्भृतसान्द्रः। सामि मज्जति रवौ न विरेजे खिन्नजिह्म इव रश्मिसमूहः ॥ ७७ ॥ मुग्धस्य केलिविजितस्मरचापयष्टेरातन्वती रुचिमतीव सुधाकरस्य। रागोद्धुरा स्फुटमुदञ्चिततारकश्रीः सन्ध्याविरस्ति ननु कापि पतिंवरेव ॥ ७८ ॥ यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया। प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः सूर्योऽस्तमस्तक-

---

होता है कि यह आकाशरूपी धड़का सिर है या कालरूपी अघोड़ीके हाथकी रक्तभरी खोपड़ी है या भीतर मांससे भरा हुआ वह अंडा है जिसमेंसे गरुड़ उत्पन्न हुए थे ॥ ६८ ॥ वह प्रदोष (सन्ध्या, अत्यन्त दोषों) का समय किसके लिये भयानक नहीं होता जिसके आ पड़नेपर बड़े-बड़े तेजस्वी (सूर्य, तेजस्वियोंकी निधि) भी अस्त (समाप्त) हो जाते हैं ॥ ६९ ॥ जिस समय व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी पीठ ठोंकनेवाला अँधेरा पूर्व दिशामें फैल रहा था और उजले वस्त्र पहनकर अपने प्रेमियोंसे मिलने जानेवाली नवेलियों (शुक्लाभिसारिकाओं) के शत्रु (चन्द्रमा) की किरणें पश्चिम दिशामें फैल रही थीं उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो वह आधा नीलमसे और आधा संगमर्मरसे जड़ा हुआ हो अथवा गंगा और यमुनाका संगम बन रहा हो ॥ ७० ॥ अपने सामने हाथ जोड़कर खड़े हुए और ध्यान लगाए हुए (सन्ध्या करते हुए) लोगोंका निरादर करती हुई चञ्चल सन्ध्या चल दी और उस समय उसने दुर्जनोंसे अपनी मित्रता जोड़ ली ॥ ७१ ॥ सायङ्काल मुँदे हुए कमलका थोड़ा-सा खुला हुआ मुँह ऐसा जान पड़ता है मानो वह बसेरा चाहनेवाले भौरोंको अत्यन्त प्रसन्नताके साथ स्थान देनेके लिये प्रस्तुत हो ॥ ७२ ॥ सायङ्काल अस्त होते हुए सूर्य और उदय होते हुए चन्द्रमा दोनों लाल-लाल ऐसे जान पड़ते हैं मानो कामदेवपर क्रोध किए हुए वियोगियोंके दो लाल-लाल नेत्र हों ॥ ७३ ॥ लालमणिके सुमेरुके दानेके समान एक ओर लटके हुए लाल सूर्यकी किरणें सायङ्काल जब ऊपर उठ रही थीं उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उसमें हारकी लरियाँ उलटकर हिल रही हों ॥ ७४ ॥ सायङ्काल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदका साक्षात् रूप जो सूर्य नामका प्रकाश है वह समुद्रके जलको मन्त्रोंसे पवित्र करता हुआ समुद्रमें डूब रहा है ॥ ७५ ॥ सायङ्काल जब अँधेरेका बड़ा भारी आक्रमण हुआ तब सूर्य उस आपत्तिके समयमें भी बिना धीरज खोए अपने शरीरके अनेक टुकड़े करके घर-घरमें दीपकका वेश धारण करके भूमण्डलपर ही चक्कर लगाते रहे ॥ ७६ ॥ जब सायङ्काल सूर्य आधे डूब गए उस समय सूर्यकी जो किरणें जड़ कट जानेसे छूटकर आकाशमें छा गई थीं वे इतनी दुखी और उदास जान पड़ती थीं कि उनमें पहलेकी-सी चमक नहीं रह गई थी ॥ ७७ ॥ कामदेवके खिंचे हुए धनुषसे भी अधिक सुन्दर और मनोहर चन्द्रमारूपी नायकसे रुचि (प्रेम, शोभा) रखनेवाली सन्ध्या उस स्वयम्वर-भूमिमें आई हुई नायिकाके समान जान पड़ती है जिसमें राग (प्रेम, ललाई) भरा है और जिसके तारे (पुतलियाँ, टिमटिमा रहे हैं (चञ्चल हैं) ॥ ७८ ॥ सायङ्काल अस्ताचलपर जाते हुए सूर्य ऐसे जान पड़ते हैं मानो वे अपनी लाल किरणें फला-फैलाकर कमलकी लताको यह कहकर ढाढ़स दे रहे हों कि 'हे कमलके नेत्रवाली! अब मैं चल रहा हूँ क्योंकि मेरे जानेका समय आ गया है, प्रातःकाल मैं ही तुम्हें सोतेसे जगाऊँगा (चिन्ता न करना)'

निविष्टकरः करोति ॥ ७९ ॥ रवेरस्तं तेजः प्रमुदयति खद्योतपटली मरालाली मूका कलकलपरोलूकपटली । इदं कष्टं दृष्ट्वा चिरमसहमाना कमलिनी भ्रमद्भृङ्गव्याजात्कवलयति हालाहलमिव ॥ ८० ॥ लोभपरयेव परया पतङ्गमुल्लुठितं विलोक्य सखे । चन्द्रमिषात्पुनरन्यं पूर्वा प्रोड्डाययत्येषा ॥ ८१ ॥ रुचिधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः । ज्वलनं त्विषः कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः ॥८२॥ विरलातपच्छविरनुष्णवपुः परितो विपाण्डु दधदभ्रशिरः । अभवद्गतः परिणतिं शिथिलः परिमन्दसूर्यनयनो दिवसः ॥ ८३ ॥ विलोक्य सङ्गमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः । कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या नहि नार्यो विनेर्ष्यया ॥८४॥ विश्लेषाकुलचक्रवाकमिथुनैरुत्पत्नमाक्रन्दितं कारुण्यादिव मीलितासु नलिनीष्वस्तङ्च मित्रे गते । शोकेनेव दिगङ्गनाभिरभितः श्यामायमानैर्मुखैर्निःश्वासानिलधूमवर्त्तय इवोद्गीर्णास्तमोराजयः ॥ ८५ ॥ विहिताञ्जलिर्जनतया दधती विकसत्कुसुम्भकुसुमारुणताम् । चिरमुज्झितापि तनुरौज्झदसौ न पितृप्रसूः प्रकृतिमात्मभुवः ॥ ८६ ॥ व्योम्नस्तापिच्छगुच्छावलिभिरिव तमोवल्लरीभिर्वियन्ते पर्यन्ताः प्रान्तवृत्या पयसि वसुमती नूतने मज्जतीव । वाक्यासंवेगविष्वग्विततवलयितस्फीतधूम्याप्रकाशं प्रारम्भेऽपि त्रियामा तरुणयति निजं नीलिमानं वनेषु ॥ ८७ ॥ शुचिरिति परितः प्रसिद्धिभाजि प्रकटिततेजसि दुर्जये कृशानौ । निजवसुनिकुरम्बमस्तवेलाव्यतिकरवान्निदधे सरोजबन्धुः ॥ ८८ ॥ सन्ध्याताण्डवचण्डदण्डपरशुप्रारब्धभीमभ्रमीवेगस्रस्तकपर्दवासुकिफणामाणिक्यशङ्कावहम् । मग्नं पाथसि पश्चिमस्य जलधेर्मार्तण्डबिम्बं ततो ध्वान्तैर्भूतगणैर-

---

॥ ७९ ॥ कमलिनीमें घुसते हुए भौंरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो सन्ध्या समय जब सूर्यका प्रकाश जाता रहा, जुगनू चमकने लगे, हंसोंका झुण्ड चुप हो गया और उल्लू घू-घू करने लगे तब यह सब उलटफेर देखकर कमलिनीसे न रहा गया और वह अपने ऊपर बैठे हुए भौंरोंके रूपमें विषकी गोलियाँ घूँटने लग रही हो ॥ ८० ॥ हे मित्र ! ज्यों ही पूर्व (पूर्व दिशा, पहली) ने देखा कि लोभके कारण सूर्य किसी दूसरी नायिकाके साथ करवट बदल रहा है त्यों ही वह भी चन्द्रमारूपी दूसरे नायकके साथ भाग निकली ॥ ८१ ॥ सूर्यको नित्य प्रातः जो उनकी ज्योति मिल जाती है इसपर कवि कहता है कि जब सूर्यरूपी पति दूसरे लोकमें चला जाता है तब उनकी अत्यन्त पवित्र ज्योतिरूपी स्त्री आगमें (सन्ध्याकी ललाईमें) प्रवेश कर जाती है, नहीं तो दूसरे जन्ममें (प्रातःकाल) उसे वही पति कैसे मिल पाता ॥ ८२ ॥ सन्ध्या समय दिन बूढ़ा-सा दिखाई देने लगा, दिनकी धूप कम हो गई (बूढ़ेके शरीरपर झुर्रियाँ पड़ गईं), गर्मी शान्त हो गई (शरीर ठण्डा पड़ गया), चारों ओर आकाश उजला हो गया (सिरके बाल पक गए), अन्तिम दशामें पहुँचकर दिन मन्दा पड़ गया (बुढ़ापेमें शरीर ढीला पड़ गया) और सूर्य अस्त होने लगा (आँखोंकी ज्योति जाती रही) ॥ ८३ ॥ स्त्रियोंके मनसे कभी डाह नहीं दूर हो सकता क्योंकि देखो! सायङ्काल ज्यों ही पूर्व दिशाने देखा कि सूर्यके साथ पश्चिम दिशाका राग (ललाई, प्रेम) हो गया त्यों ही उसका मुँह काला पड़ गया ॥ ८४ ॥ सन्ध्या समय बिछोहके डरसे घबराए हुए चकवा-चकवी अपने पङ्ख फड़फड़ाकर चिल्ला रहे हैं, मानो उनकी यह विपत्ति न देख सकनेके कारण ही कमलिनीने करुणासे अपनी कमलरूपी आँखें मूँद ली हैं और जब सूर्य अस्त हो गए तब दिशारूपी नायिकाओंका मुख मानो शोकसे काला पड़ गया और उन्होंने अपनी साँसों-द्वारा धुआँ उगल-उगलकर चारों ओर अँधेरा फैला दिया ॥ ८५ ॥ खिले हुए केसरके फूलके समान लाल वर्णकी उस ब्रह्माके अंशरूपी सन्ध्याको सभी लोग प्रणाम कर रहे हैं जिसने बहुत पहले ब्रह्मासे छोड़े जानेपर भी अपना स्वभाव नहीं बदला है क्योंकि अभीतक इसमें बचपनकी ललाई है अतः यह ब्रह्माके समान ही पूज्य है ॥ ८६ ॥ सारा आकाश तमालके गुच्छोंके समान काले अँधेरेसे ऐसा भर गया मानो पृथ्वी गँदले पानीमें डूब गई हो और सन्ध्यासे ही रात्रि अपने उस अँधेरेको जङ्गलोंमें बड़े वेगसे फैला रही है जो ऐसा जान पड़ता है मानो वायुके वेगसे चारों ओर फैल रहा हो और घिर-घिरकर उड़ रहा हो ॥ ८७ ॥ जैसे अन्तिम समय कोई अपनी सम्पत्ति किसी सज्जनको दे डालता है उसी प्रकार जब अस्त होनेका अवसर आया तब सूर्यने भी पवित्रतामें यश पाए हुए, चारों ओर प्रभावशाली तथा किसीसे भी न दब सकनेवाले अग्निको अपनी किरणरूपी धन-सम्पत्ति सौंप दी ॥ ८८ ॥ सन्ध्या समय डूबते हुए सूर्य और बढ़ते हुए अँधेरेको देखकर ऐसा लगता है मानो जब शङ्करजीने सन्ध्या समय ताण्डव नृत्य करते हुए अपने विशाल डण्डेवाले

गाहि भुवनं मन्ये तदन्वेषिभिः॥ ८९ ॥ सन्ध्यावध्यस्रशोणं तनुदहनचिताङ्गारमन्दार्कबिम्बं तारानारास्थिकीर्णं विशदनरकरङ्कायमाणोज्ज्वलेन्दु । हृष्यन्नक्तञ्चरौघं घनतिमिरमहाधूमधूम्रानुकारं जातं लीलाश्मशानं जगदखिलमहो कालकापालिकस्य ॥ ९० ॥ सान्ध्यमस्तमितशेषमातपं रक्तलेखमपरा विभर्ति दिक् । सम्परायवसुधा सशोणितं मण्डलाग्रमिव तिर्यगुत्थितम् ॥९१॥ सान्ध्यरागरुधिरारुणमाराग्निःपपात रविमण्डलमब्धौ । क्रूरकालकरवालविलूनं वासरस्य सहसैव शिरो नु ॥ ९२ ॥ सैरन्ध्रीकरकृष्टकङ्कणसरद्धीरध्वनिः सञ्चरद्दूतीसूत्रितसन्धिविग्रहविधिः सोल्लासलीलाधरः । वारस्त्रीजनसज्जमानशयनः सन्नद्धपुष्पायुधः श्रीखण्डद्रवधौतसौधशिखरो रम्यः क्षणो वर्तते ॥ ९३ ॥ स्थानमाह्निकमपास्य दन्तिनः सल्लकीविटपभङ्गवासितम् । आविभातचरणाय गृह्णते वारि वारिरुहवद्धषट्पदम् ॥ ९४ ॥ स्पृष्टोल्लसत्किरणकेसरसूर्यविम्बविस्तीर्णकर्णिकमथो दिवसारविन्दम् । श्लिष्टाष्टदिग्दलकलापमुषावतारवद्धान्धकारमधुपावलि सञ्चुकोच ॥ ९५ ॥

रजनिवर्णनम्—उन्मुक्ताभिर्दिवसमधुना सर्वतस्ताभिरेव स्वच्छायाभिर्निचुलितमिव प्रेक्ष्यते विश्वमेतत् । पर्यन्तेषु ज्वलति जलधौ रत्नसानौ च मध्ये चित्राङ्गीयं रमयति तमःस्तोमनीला धरित्री ॥ १ ॥ जगत्तापकरे लीने शयानास्वब्जिनीषु च । निशा कुवलयामोदं विधातुमियमुद्यता ॥ २ ॥ ज्योत्स्ना भस्मच्छुरणधवला बिभ्रती तारकास्थीन्यन्तर्धानव्यसनरसिका रात्रिकापालिकीयम् । द्वीपाद्द्वीपं भ्रमति दधती चन्द्रमुद्राकपाले न्यस्तं सिद्धाञ्जनपरिमलं लाञ्छनस्य च्छलेन

फरसेको वेगसे घुमाया तब उसके वेगसे वासुकि नागके फणका जो मणि गिरकर पश्चिम समुद्रके जलमें डूब गया उसी सूर्यरूपी मणिको अन्धकार-रूपी भूतगण संसार-भरमें घूम-घूमकर ढूँढ़ रहे हों ॥ ८९ ॥ सूर्यास्तके समय सारा संसार कालरूपी अघोड़ीकी साधनाका वह श्मशान बन गया जहाँ साँझकी ललाई ही रुधिर थी, सूर्य ही चिताके अङ्गारे थे, तारे ही हड्डियोंके टुकड़े थे, चन्द्रमा ही मनुष्यकी उजली खोपड़ी था, प्रसन्न होकर रातमें चलनेवाले (राक्षस, चोर आदि ही भूत-पिशाच थे और घना अँधेरा ही धुआँ था ॥ ९० ॥ पश्चिम दिशामें कुछ-कुछ बची हुई और तिरछी होकर उठी हुई लाल-लाल धूप ऐसी दिखाई पड़ रही है मानो युद्ध-भूमिमें रुधिरसे तर कोई तलवार तिरछी पड़ी हो ॥ ९१ ॥ सन्ध्याकी ललाईरूपी रुधिरसे रँगा हुआ और समुद्रमें डूबता हुआ सूर्यमण्डल ऐसा जान पड़ता है मानो निष्ठुर यमराजकी तलवारने दिनका सिर काट गिराया हो ॥ ९२ ॥ क्या ही सुन्दर समय है कि एक ओर नायिकाको सजानेवाली रँगीली स्त्रियोंने जो नायिकाके हाथसे कड़े खींचकर निकाले हैं उनकी मधुर झन-झन सुनाई पड़ रही है, उधर दूतियाँ पति-पत्नीमें मेल-मिलाप और लड़ाई-झगड़ेका डौल बैठा रही हैं, कहीं अनेक नर-नारी प्रसन्नतासे आनन्द-क्रीड़ा कर रहे हैं, वेश्याएँ अपने बिछौने सजा रही हैं, कामदेव अपनी कमर कस रहा है और कहीं चन्दनके पानीसे अटारियोंकी छतें धोई जा रही हैं ॥ ९३ ॥ यह ठीक ही है कि हाथी अपना दिनभरका खेल-कूद करके सलईकी टूटी हुई डालियोंसे महकते हुए स्थान छोड़कर प्रातःकालतकके लिये वह जल पी रहे हैं जिसके कमलोंपर भौंरे गूँज रहे हैं ॥ ९४ ॥ सन्ध्या समय वह दिनरूपी कमल मुँदने लगा जिसमें सूर्यमण्डल ही उसका गट्टा (बीजकोष) है, सूर्यकी किरणें ही जिसमें पराग (केसर) हैं, प्रकाश न रहनेसे परस्पर मिली हुई आठों दिशाएँ ही जिसकी पंखुड़ियाँ हैं और घिरा हुआ अन्धकार ही जिसमें भौंरोंका समूह है ॥ ९५ ॥

रातका वर्णन : संसारने दिनभर जो अपनी परछाहीं छोड़ी थी, उसी परछाहींसे रातको वह चारों ओर घिरा हुआ ऐसा दिखाई पड़ रहा है मानो पृथ्वीके आस-पास समुद्रमें वड़वानलकी लपटें चमक रही हों, और बीचमें पहाड़ोंपर रत्नोंकी चोटियाँ जगमगा रही हों किन्तु पृथ्वी स्वयं अन्धकारसे ढककर काली हो गई हो । इस प्रकार यह विचित्र प्रकारके रङ्गोंवाली रात बड़ी सुहावनी लग रही है ॥ १ ॥ सूर्यके छिप जानेपर (संसारको ताप देनेवालोंके समाप्त हो जानेपर) और कमलिनियोंके सो जानेपर यह रात्रि प्यारे कुमुदके साथ आनन्द करनेकी तैयारी कर रही है (कुमुदमें गन्ध भरनेकी तैयारी कर रही है) ॥ २ ॥ यह रात्रिरूपी अघोरपंथी स्त्री चाँदनीरूपी भस्म पोतकर उजली बनी हुई है, तारेरूपी हड्डीके टुकड़ोंकी माला पहने हुई है, सभी वस्तुओंको अँधेरेमें छिपाए हुए है (अन्तर्धान हो जाती है), कलङ्करूपी सिद्ध काजलवाली चन्द्रमारूपी खोपड़ी लिए हुए है और इसी रूपमें एक द्वीपसे दूसरे द्वीप (एक स्थानसे दूसरे स्थान) पर चक्कर लगा रही है ॥ ३ ॥ अत्यन्त

॥ ३ ॥ निविडतमतमस्तोमस्तिमिततमिस्राविमिश्रवेलायाम् । अम्बरवाटीकुसुमाकारास्तारास्तारा विभान्ति सस्फाराः ॥ ४ ॥ नृपतिपुरुषशङ्कितप्रचारं परगृहदूषणनिश्चितैकवीरम् । घनतिमिरनिरुद्धसर्वभावा रजनिरियं जननीव संवृणोति ॥ ५ ॥ रात्रिर्भवित्री बहुदुःखदात्री दीर्घा ननु प्रोषितभर्तृकाणाम् । इतीव निश्चित्य मनस्यशेषाऽप्येषा त्रियामा विहिता विधात्रा ॥ ६ ॥ व्योमपात्रमपि चैकपाणिना विस्फुटोडुकुसुमानि बिभ्रती । अन्यपाणिकलितेन्दुदर्पणा कामिनीव रजनीयमागता ॥ ७ ॥ शशाङ्के सन्नद्धे भरत इव सन्ध्यायवनिका तिरोभूत्वा पुष्पाञ्जलिमिव विकीर्योडुनिकरम् । कलं गायन्तीभिः कुमुदवनभृङ्गीभिरधुना नभो रङ्गं प्राप्ता विहरति निशालासिकवधूः ॥ ८ ॥

मध्यरात्रक्रीडावर्णनम्—रतिकृति गते मायानिद्रां प्रवर्तितचुम्बना पुलकपयसा तत्त्वं मत्वा मुखादहृतानना । कृतकशयनो निग्राह्योऽसोत्युदीर्य कलं वधूर्व्रणितमधरं कृत्वा दन्तैरपूरयत स्पृहाम् ॥ १ ॥ वदनशशिनः स्पर्शे शीतादिवागतवेपथुस्तनयुगलके भ्रान्त्वा तुङ्गे निविष्ट इव भ्रमात् । ज्वलितमदनाङ्गारे तन्व्यास्ततो जघनस्थले सपुलकजलः पत्युः पाणिर्विलीन इवाभवत् ॥ २ ॥ शमितनिखिलदीपे सुप्तनिद्रालुलोके रतपरवशचित्ता मध्यरात्रे विबुद्धाः । प्रथमसुरतखिन्नां मुग्धिकां बोधयन्तो बहुदृढपरिरम्भैः कामुकाः खेदयन्ति ॥ ३ ॥

तमोवर्णनम्—अमुष्मिन्नुद्यानद्रुमकुहरनीरन्ध्रभरिते तमःखण्डे पिण्डीकृतबहलकालायसघने । यतामद्यास्माकं कथमपि पुरोन्यस्तचरणं निमेषेऽप्युन्मेषे नहि नहि विशेषो नयनयोः ॥ १ ॥ अम्बरविपिनमिदानीं

घने अन्धकारके समूहसे भरी हुई अँधेरी रातमें आकाशकी फुलवारीके फूलके समान टिमटिमाते हुए तारे ऐसे जान पड़ते हैं मानो आँखें फाड़-फाड़कर अँधेरेमें देख रहे हों ॥ ४ ॥ रातके जिस घने अन्धकारके कारण कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है, उस समय रात्रि ऐसे व्यक्तियोंकी माता बनकर उनकी रक्षा कर रही है जिनके बाहर निकलनेपर राजाके पहरेदार उनपर सन्देह करते हैं और जो अपने दुराचारोंसे दूसरोंका घर बिगाड़नेमें प्रसिद्ध हैं ॥ ५ ॥ ब्रह्माने यही सोचकर यह रात त्रियामा (तीन ही पहरकी) बनाई है कि यदि कहीं और बड़ी कर दी गई तो परदेशमें गए हुए लोगोंकी पत्नियोंको बहुत कष्ट देने लगेगी ॥ ६ ॥ चाँदनी रात ऐसी कामिनी नायिकाके समान प्रतीत हो रही है जो एक हाथमें उगे हुए तारेरूपी खिले हुए फूलोंसे भरी आकाशरूपी पिटारी लिए हुए है और दूसरे हाथमें चन्द्रमारूपी शीशा लिए हुए है ॥ ७ ॥ जब रातके समय चन्द्रमा नाट्याचार्यके समान अपनी कला दिखानेके लिये उपस्थित हुआ उस समय सन्ध्यारूपी परदेके पीछेसे ही रात्रिरूपी नटीने फूलके समान तारे अञ्जलिमें भरकर बिखेर दिए और फिर कुमुदके वनमें गुनगुनाती हुई भौंरीरूपी सखियोंके साथ आकाशरूपी रङ्गमञ्चपर नाट्य करने लगी ॥ ८ ॥

आधी रातको क्रीड़ाओंका वर्णन : आधी रातके समय जब अत्यधिक चाहनेवाले प्रियतम बनावटी नींद करके सो गए, तब उसकी प्रियतमा बार-बार उनका मुँह चूमने लगी जिससे उसके शरीरमें रोमाञ्च और पसीना हो आया और वह नवेली समझ गई कि ये निश्चय ही झूठ-मूठ नींदका बहाना कर रहे हैं; इसलिये उसने प्रियतमके मुँहसे सटा हुआ अपना मुँह अलग न करके यह कहते हुए 'कि आप बनावटी नींदमें सोए हुए हैं। आपको तो पास भी नहीं आने देना चाहिए !' अपने दाँतोंसे प्रियतमके ओठ काटकर ही अपनी इच्छा पूरी कर ली ॥ १ ॥ किसी नवेलीके पतिने जब अपनी प्रियतमाके मुँहपर हाथ फेरा तो उसकी ठंढकसे कम्प हो आया और हाथ पसीज उठा। उस समय ऐसा जान पड़ा मानो मुखचन्द्रकी ठण्ढकके कारण ही वह हाथ काँपने लगा हो, फिर वहाँसे हाथ हटाकर स्तनोंपर हाथ फेरते हुए जो उसने स्तनोंके अग्र भागपर हाथ रोक लिए तो ऐसा जान पड़ा मानो उसका हाथ ऊँचा-सा स्थान देखकर विश्राम कर रहा हो, तथा फिर वहाँसे हटाकर कामाग्निसे दहकते हुए अङ्गारके समान जघनस्थलपर आकर जो उसका हाथ रुक गया तो ऐसा जान पड़ा मानो उसका जलमय हाथ उस कामाग्निके अङ्गारको छूकर वहीं छनछनाकर सूख गया हो ॥ २ ॥ आधी रातको जब दीपक बुझ गए और सब लोग गहरी नींदमें सो गए उस समय रतिके फेरमें जागते हुए कामी पुरुष पहले एक बार रति करनेसे थककर सोई हुई अपनी नवेली प्रियाओंको जगा-जगाकर, कस-कसकर छातीसे लगा-लगाकर उन्हें तङ्ग कर रहे हैं ॥ ३ ॥

अन्धकारका वर्णन : अमराइयोंके पेड़ोंके बीचके स्थानमें ठसाठस भरे हुए और गलाकर ठोस बनाए हुए इस काले-काले लोहेके समान घने अँधेरेमें हम सँभालकर पैर

तिमिरवराहोऽवगाहते जलधेः। रोमसु यदस्य लग्नास्तारकजलविन्दवो भान्ति ॥ २ ॥ अवधार्य कार्यगुरुतामभवन्न भयाय सान्द्रतमसन्तमसम्। सुतनोः स्तनौ च दयितोपगमे तनुरोमराजिपथवेपथवे ॥ ३ ॥ अविज्ञातविशेषस्य सर्वतेजोपहारिणः। स्वामिनो निर्विवेकस्य तमसश्च किमन्तरम् ॥ ४ ॥ आपूरितमिदं श्यामतमसन्तमसैरलम्। ब्रह्माण्डमण्डलं भाति सकज्जलकरण्डवत् ॥ ५ ॥ आभाति धूसरतरं तिमिरं पुरस्तादन्त:स्फुरद्विरलतारकभारमेतत्। दग्धुं वियोगिविपिनं सितरश्मिवह्नेर्धूमो ज्वलिष्यत इवानुगतस्फुलिङ्गः ॥ ६ ॥ आह्निकोत्तापदग्धानां त्रयाणां जगतां वत। तपनार्चिषि शान्ते तद्भस्मेदं तिमिरं तु न ॥ ७ ॥ इदं नभसि भीषणभ्रमदुलूककोलाहलैर्निशाचरविलासिनीनिवहदत्तनेत्रोत्सवम्। परिस्फुरति निर्भरप्रचुरपङ्कमग्नोल्लसद्वराहकुलमांसलप्रवलवन्धमन्धं तमः ॥ ८ ॥ उत्खातच्छिन्नसन्ध्यारुणकमलवनो व्योमकासारमध्यं मन्ये मत्तो निशीथाह्वयवनमहिषो मङ्क्ष्वविज्ञन्निमिमज्जुः। तत्कालोद्भिद्यमानः सह तनुपृथुभिस्तारकाबुद्बुदौघैस्तस्मादेवोज्जिहीते कलुषितभुवनं भीषणो ध्वान्तपङ्कः ॥ ९ ॥ उद्दामदिग्द्विरदचञ्चलकर्णपूरगण्डस्थलोच्चलदलिस्तवकाकृतीनि। मीलन्नभांसि मृगनाभिसमानभांसि दिक्कन्दरेषु विलसन्तितमां तमांसि ॥ १० ॥ एकतामिव गतस्य विवेकः कस्यचिन्न महतोऽप्युपलेभे। भास्वता निदधिरे भुवनानामात्मनीव पतितेन विशेषाः ॥ ११ ॥ एतद्व्योमवनीवराहवलयं विश्वैकवीरस्मरस्कन्धावारमदान्धसिन्धुरकुलं श्यामावधूकैशिकम्। चक्षुष्याञ्जनवस्तु घूकसदसां विश्लिष्टचक्राह्वयस्तोमान्तर्गतधूमकेतनमहाधूम्या तमस्तार्यते ॥ १२ ॥ औषसातपभयादपलीनं वासरच्छविविरामपटीयः। सन्निपत्य शनकैरिव निम्नादन्धकारमुदवाप समानि ॥ १३ ॥ काकोलं कलकण्ठिका कुवलयं कादम्बिनी कर्दमः

तो ज्यों-त्यों रख लेते हैं किन्तु आँख खोलने और मूँदनेमें कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ रहा है ॥१॥ अन्धकाररूपी वह सूअर अब समुद्रसे निकलकर आकाशरूपी जङ्गलको हिलोड़ रहा है जिसके तारे ही मानो बालोंमें उलझी हुई जलकी बूँदें हों ॥ २ ॥ उस नवेलीने अपने पतिके साथ समागम करनेको इतना बड़ा काम समझा कि अत्यन्त घने अन्धकारसे भी उसे डर न लगा और वह ऐसी हड़बड़ीमें चली कि उसके विशाल स्तन भी उसकी पतली कमरको चलनेमें बाधा नहीं दे सके ॥ ३ ॥ जैसे विवेकहीन स्वामी अच्छे-बुरेकी परख न करके सभीको अपनी धौंसमें दबाए रखता है वैसे ही अँधेरेमें भी किसी वस्तुका भेद नहीं दिखाई देता और प्रकाश नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥ अत्यन्त घने काले अँधेरेसे भरा हुआ यह ब्रह्माण्ड ऐसा जान पड़ता है मानो काजलसे भरा हुआ बड़ा-सा कण्डाल हो ॥ ५ ॥ छिटफुट तारोंके साथ यह सामने बढ़ता हुआ घना अँधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो वियोगीरूपी वनको जलानेके लिये चन्द्रमारूपी अग्निकी चिनगारियोंके सहित धुआँ उठ रहा हो ॥ ६ ॥ यह अँधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो दिनके तापसे जलाए हुए तीनों लोकोंके आगकी लपटों (सूर्य) के बुझ जानेपर उनकी भस्म बच रही हो ॥ ७ ॥ इस समय आकाशमें उड़ते हुए भयावने उल्लू घू-घू कर रहे हैं, राक्षसियोंकी आँखें ठण्डी हो रही हैं और गाढ़े कीचड़में लोटकर निकले हुए मोटे-से सूअरके समान काला घना अँधेरा चारों ओर फैल रहा है ॥ ८ ॥ ऐसा जान पड़ता है मानो यह अर्धरात्रिरूपी मतवाला जङ्गली भैंसा सन्ध्यारूपी लाल कमलके वनको उजाड़-पजाड़कर उसका पानी घँघोलनेके लिये आकाशरूपी तालावमें घुस गया हो जिसके पानी हिलोड़नेसे उठे हुए बुलबुले ही तारे हों और संसारको काला कर देनेवाला भयानक अँधेरा ही उससे उठी हुई कीचड़ हो ॥ ९ ॥ रातका अँधेरा उन कस्तूरीके रङ्गके भौंरोंके समान हो गया है जो मतवाले दिग्गजोंके माथोंपर बैठकर उनके फटफटाते हुए कानोंसे उड़कर सारे आकाशमें भरकर फैल गए हों ॥ १० ॥ अँधेरेमें छोटी-बड़ी सब वस्तुएँ जो एक-सी हो गई हैं (सब धान बाइस पसेरी हो गए हैं) इससे जान पड़ता है कि यहाँसे जाते समय संसारका सारा विवेक सूर्य अपने साथ लिए चला गया हो ॥ ११ ॥ चारों ओर छाया हुआ घना अँधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो आकाशरूपी जङ्गलके सूअर आ जुटे हों, संसारके अद्वितीय वीर कामदेवकी सेनाके मतवाले हाथी खड़े हों, युवती स्त्रियोंके केश बिखरे हुए हों, उल्लुओंकी आँखें खोलनेवाला आँजन रक्खा हो या एक दूसरेसे अलग हुए चकवी-चकवेके हृदयकी आगका धुआँ हो ॥ १२ ॥ जो अन्धकार पहले प्रातःकालकी धूपके डरसे भाग गया था वही इस समय दिनके प्रकाशको निर्मूल

कंसारिः कवरी कृपाणलतिका कस्तूरिका कज्जलम्। कालिन्दी कषपट्टिका करिघटा कामारिकण्ठस्थली यस्यैते करदा भवन्ति सखि तद्वन्दे विनिद्रं तमः ॥ १४ ॥ काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणामाबद्धरेखमभितो मणिमञ्जरीभिः। एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्रं तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति ॥ १५ ॥ किं भूमौ परितः स्फुरन्ति करिणः कस्तूरिकाया रसैः सिक्ताः किं निखिला दिशः किमखिलं व्याप्तं मषीभिर्नभः। किं व्याप्तं भुवनं समस्तमपि च श्रीकण्ठकण्ठत्विषा कालिन्दीजलकान्तिभाजि निबिडे जातेऽन्धकारेऽधुना ॥ १६ ॥ किमलम्बताम्बरविलग्नमधः किमवर्धतोर्ध्वमवनीतलतः। विससार तिर्यगथ दिग्भ्य इति प्रचुरीभवन्न निरधारि तमः ॥ १७ ॥ घटितमिवाञ्जनपुञ्जैः पूरितमिव मृगमदक्षोदैः। ततमिव तमालतरुभिर्वृतमिव नीलांशुकैर्भुवनम् ॥ १८ ॥ चरमगिरिनिकुञ्जमुष्णभानौ भगवति गच्छति विप्रयोगखिन्ना। मुकुलितनयनाम्बुजा धरित्री वपुषि बभार तमांसि शैवलानि ॥ १९ ॥ चिन्वचोरचिकीर्षितानि घटयद्वेतालगोष्ठीसुखं तन्वानं शवसाधनोद्धतरसं निर्व्याजवीरात्मताम्। कुर्वत्कामकृशानुतप्तमनसां गुप्ताङ्गनासङ्गमं दृप्यत्कोकिलकालकण्ठमलिनं ध्वान्तं समुज्जृम्भते ॥ २० ॥ चूडारत्नैः स्फुरद्भिर्विषधरविवराण्युज्ज्वलान्युज्ज्वलानि प्रेद्यन्ते चक्रवाकीमनसि निविशते सूर्यकान्तात्कृशानुः। किं चामी शल्ययन्तस्तिमिरमुभयतो निर्भराहस्तमिस्रासङ्घट्टोत्पिष्टसन्ध्याकणनिकरपरिस्पर्धिनो भान्ति दीपाः ॥ २१ ॥ तनुलग्ना इव ककुभः क्ष्मावलयं चरणचारपात्रमिव। वियदपि चालिकदघ्नं मुष्टिग्राह्यं तमः कुरुते ॥ २२ ॥ ददृशेऽपि भास्कररुचाह्नि न यः स तमी तमोभिरभिगम्य तताम्। द्युतिमग्रहीद्ग्रहगणो लघवः प्रकटीभवन्ति मलिनाश्रयतः ॥ २३ ॥ नाकाशं न दिशो

करनेका बीड़ा उठाकर धीरे-धीरे नीचेसे ऊपरको उठ रहा है। ॥ १३ ॥ हे सखी! जिस प्रबल अन्धकारको काकोल (विष), कोयल, नीलकमल, जलभरे मेघ, कीचड़, कृष्ण भगवान्, काले केश, तलवार, कस्तूरी, काजल, यमुना, कसौटीका पत्थर, हाथियोंका झुण्ड और शङ्करजीका गला आदि कर (लगान) दे रहे हैं (घटकर हैं) उस घने अँधेरेको प्रणाम है॥१४॥ जब घने अँधेरेमें स्त्रियाँ अपने शरीरपर केशरका लेप लगाकर अपने पतियोंके पास जा रही थीं उस समय अँधेरेमें उनके गहनोंके चमकते हुए मणि ऐसे जान पड़ते थे मानो तमालके पत्तोंके समान काले अन्धकाररूपी कसौटीपर सोनेकी लीक बनी हो ॥ १५ ॥ यमुनाके जलके समान काले अँधेरेके बढ़ जानेसे यह संदेह हो रहा है कि ये पृथ्वीपर चारों ओर हाथी टहल रहे हैं या सारी दिशाएँ कस्तूरीके पानीसे रँग दी गई हैं, या आकाशमें कालिख ही कालिख भरी हुई है या सारा संसार ही शंकरजीके गलेकी काली चमकसे भर गया है ॥ १६ ॥ चारों ओर फैलते हुए घने अँधेरेके सम्बन्धमें कोई भी यह निश्चित रूपसे नहीं कह पाया कि यह आकाशसे उतरकर नीचे लटका है या धरतीसे उठकर ऊपर छाया हुआ है या चारों दिशाओंसे निकलकर आड़ा होकर फैला है ॥ १७ ॥ चारों ओर अन्धकारसे भरा हुआ संसार इस समय काजलसे सना हुआ-सा ऐसा जान पड़ता है मानो चारों ओर कस्तूरीका बुरादा फैला दिया गया हो या चारों ओर तमालके पेड़ोंसे घिरा हुआ हो या नीले रंगकी चादरसे ढक दिया गया हो ॥ १८ ॥ जब सूर्य भगवान् अस्ताचलकी झाड़ियोंमें जा छिपे तब उनके विरहमें दुखी होकर धरतीने अपनी आँखें मूँद लीं और अपने ऊपर अँधेरेके रूपमें लहराती हुई सेवार फैला ली ॥ १९ ॥ चोरोंको चोरीके लिये उकसानेवाला, भूत-प्रेतोंकी सभा जुटानेवाला, साहसी साधकोंको प्रेत-सिद्धिके लिये उत्साहित करनेवाला, कामाग्निसे व्याकुल पुरुषोंको व्यभिचारिणी स्त्रियोंसे मिलानेवाला और मत्त कोयलके गलेके समान काला-काला अँधेरा चारों ओर फैलता जा रहा है ॥ २० ॥ साँपोंकी चमकती हुई मणियोंके कारण साँपके बिल कहीं उजले और कहीं काले दिखाई दे रहे हैं, ज्वालाएँ सूर्यकान्त मणिको छोड़कर चकवीके मनमें घुस रही हैं और अँधेरेको फाड़कर चमकनेवाले दीपक ऐसे जान पड़ते हैं मानो रात्रिकी चपेटसे पिसी हुई सन्ध्याके नन्हें-नन्हें टुकड़े चमक रहे हों ॥ २१ ॥ इस समय अँधेरा इतना गाढ़ा हो गया है कि वह मुट्ठीसे पकड़ा जा सकता है, सारी दिशाएँ मानो शरीरसे लिपटी हुई हों, भूमण्डल पैरोंके नीचे आ गया हो (पैर आगे बढ़ता ही नहीं), सिर मानो आकाश छू रहा हो (सिरके ऊपर कुछ दिखाई ही नहीं देता) ॥ २२ ॥ जो तारे सूर्यके प्रकाशसे दबकर दिनमें दिखाई नहीं पड़ रहे थे वे अँधेरेसे भरी हुई रात पाकर चमक उठे, क्योंकि ओछे लोग तो नीचोंका सहारा पाकर ही प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥

न भूधरकुलं नाम्भोधयो न क्षितिर्न द्यौर्नाम्बुधरा न तीव्रकिरणो नेन्दुर्न तारागणः। एतैः षट्पदकायकान्तिपटलीपाण्डित्यवैतण्डिकैः कल्लोलैस्तमसामसाम्प्रतमयं विश्वव्ययः कल्प्यते ॥२४॥ नीताः क्वाप्यभिसारिका इव दिशोऽप्युद्दामरागोदया येनोत्प्लावितमन्मथेन तदिदं निःशङ्कमुज्जृम्भते। सम्भोगान्तशयालुशैलतनयादोःपाशनिर्भर्त्सितोन्मीलन्नीलिमनीलकन्धरगलस्पर्धावलितं तमः ॥ २५ ॥ नोर्ध्वमीक्षणगतिर्न चाप्यधो नाभितो न पुरतो न पृष्ठतः। लोक एष तिमिरौघवेष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि ॥ २६ ॥ पतिते पतङ्गमृगराजि निजप्रतिबिम्बरोपित इवाम्बुनिधौ। अथ नागयूथमलिनानि जगत्परितस्तमांसि परितस्तरिरे ॥ २७ ॥ पिदधति तिमिरे समस्तलोकं प्रलयमहाब्धिनिभे भृतोच्चनीचे। व्यरुचदुडुगणो वलक्षरोचिर्बहुविधफेनसमूहतुल्यरूपः ॥ २८ ॥ पुरः पूर्वामेव स्थगयति ततोऽन्यामपि दिशं क्रमात्क्रामन्नद्रिद्रुमपुरविभागाँस्तिरयति। उपेतः पीनत्वं तदनु भुवनस्येक्षणपथं तमःसङ्घातोऽयं हरति हरकण्ठद्युतिहरः ॥ २९ ॥ भवति हरिरगूढः कौस्तुभीयैर्मयूखैः पतिमपि च पशूनां शेखरेन्दुर्व्यनक्ति। इति मनसि न कश्चिन्निश्चयो यत्तदन्यज्जगदिह तमसैव ग्रस्तमव्यक्तमास्ते ॥ ३० ॥ यच्चेदम्बुधिमामनन्ति कवयस्तद्बिन्दुतां बिभ्रते वैकुण्ठान्तककालकायजलदश्रीकण्ठकण्ठादयः। घूकालोकमुलूकदृष्टितिमिरप्रध्वंसिसिद्धाञ्जनं तद्गण्डूषितभूदिगन्तरमिदं नैशं तमो जृम्भते ॥ ३१ ॥ योगिनामपि हतो बत योगः कल्मषेण हततेजसि येन। क्वापि भास्वति गते त्रपयेव सर्वतो जयति तस्य विलासः ॥ ३२ ॥ रञ्जिता नु विविधास्तरुशैला नामितं नु गगनं स्थगितं नु। पूरिता नु विषमेषु धरित्री संहृता नु ककुभस्तिमिरेण ॥ ३३ ॥ रात्रिरागमलिनानि विकासं पङ्कजानि रहयन्ति विहाय। स्पष्टतारकमियाय नभःश्रीर्वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः ॥ ३४ ॥ लिम्पतीव तमोऽङ्गानि

यह ठीक नहीं हो रहा है कि भौंरोंकी काली चमकको भी नीचा दिखानेवाली ये अँधेरेकी लहरें संसारको मिटाए डाल रही हैं क्योंकि इस समय न तो आकाश ही दिखाई पड़ रहा है, न दिशाएँ समझमें आ रही हैं, न पहाड़ सुझाई पड़ रहा है न समुद्र पहचानमें आ रहे हैं और न पृथ्वी, स्वर्ग, बादल, सूर्य और चन्द्रमाका ही कोई ठौर-ठिकाना मिल रहा है ॥ २४ ॥ कामदेवके वेगमें भरकर अत्यन्त प्रेमभरी (लाल लाल) दिशाओंरूपी अभिसारिकाओंको न जाने कहाँ ले जानेवाला तथा सम्भोग करके सोना चाहती हुई पार्वतीकी भुजाओंके बन्धनसे छूटकर करवट बदलते हुए नीलकण्ठ (शिवजी) के गलेसे होड़ करनेके मदमें चूर यह अँधेरा निडर होकर चारों ओर छा रहा है ॥ २५ ॥ घने अँधेरेसे घिरा हुआ संसार ऐसा जान पड़ता है मानो वह ऐसे गर्भमें लिपटा हो जिसमें ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ, आगे, पीछे, कहीं भी कुछ न दिखाई पड़ता हो ॥२६॥ अँधेरा ऐसा लगता है मानो सूर्यरूपी सिंह जब समुद्रमें पड़ी हुई अपनी परछाईंको दूसरा सिंह समझकर उसपर झपटनेके लिये क्रोधमें भरकर समुद्रमें कूद पड़ा तब हाथियोंके झुण्डके समान काला अँधेरा निश्चिन्त होकर चारों ओर फैल गया ॥ २७ ॥ ऊँचे-नीचे सभी स्थानोंमें भरा हुआ जो प्रलयके समुद्रके समान अँधेरा सारे संसारपर छाया हुआ है उसमें चमकते हुए तारे फेनके समान उजले दिखाई पड़ रहे हैं ॥ २८ ॥ शङ्करजीके गलेकी काली चमकको लजानेवाले इस अँधेरेने पहले तो पूर्व दिशाको ढका, फिर बारी-बारीसे शेष दिशाओंमें फैला और फिर पहाड़, वृक्ष और नगरोंपर छापा मारकर अन्तमें घना होकर लोगोंकी आँखोंके आगे मार्ग रोककर खड़ा हो गया ॥ २९ ॥ अँधेरेमें डूबे हुए संसारको देखकर यही नहीं निश्चय हो रहा है कि यह विष्णुमय है या शिवमय है क्योंकि यदि विष्णुरूप होता तब तो कौस्तुभ मणिकी चमकसे स्पष्ट हो जाता और यदि शिवरूप होता तो मस्तकपर धरे चन्द्रमाकी चाँदनीसे स्पष्ट हो जाता किन्तु यह तो अँधेरेसे भरा कोई निराला ही अस्पष्ट संसार है ॥ ३० ॥ उल्लूके नेत्रोंका अँधेरा दूर करने के लिये सिद्ध अञ्जन बने हुए, आकाशसे पृथ्वीतकको अपने मुँहमें कुल्लेके समान भर लेनेवाले तथा प्रकाशको मिटा डालनेवाले अँधेरेको यदि कवि लोग सागरके समान मानते हैं तो साँवले शरीरवाले विष्णु, यमराज, बादल और शिवजीका गला ये सब बूँदोंके समान जान पड़ते हैं ॥ ३१ ॥ कल्मष (पाप, अन्धकार) तो योगियोंका योग भी छुड़ा देता है इसीलिये उस कल्मषसे हारकर और तेजहीन होकर जब सूर्य लाजके मारे कहीं चला गया तब अँधेरा खुलकर चारों ओर फैल रहा है ॥ ३२ ॥ अँधेरेमें सभी वृक्ष और पहाड़ ऐसे जान पड़ते हैं मानो अँधेरेने उन्हें स्याहीसे रँग दिया हो, आकाशको झुका दिया हो, धरतीका ऊँचा-नीचा स्थान पाटकर बराबर कर दिया हो और सब दिशाओंको समेटकर इकट्ठा कर दिया हो ॥ ३३ ॥ जो शोभा रातके अँधेरेसे धुँधली पड़ गई थी वह मुँदे हुए कमलोंको छोड़कर चमकते हुए तारोंसे भरे आकाशमें

वर्षतीवाञ्जनं नभः। असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥ ३५ ॥ विवस्वतानायिपतेव मिश्राः स्वगोसहस्रेण समं जनानाम्। गावोऽपि नेत्रापरनामधेयास्तेनेदमान्ध्यं खलु नान्धकारैः ॥ ३६ ॥ विश्वं चाक्षुषमस्तमस्ति हि तमःकैवल्यमौपाधिकप्राच्यादिव्यवहारवीजविरहाद्दिङ्मात्रमेव स्थितम्। गृह्यन्ते भयहेतवः पटुभिरप्यत्तान्तरैर्भाति च ध्वान्तेनातिघनेन वस्तु वचसा ज्ञातः स्वरेणामुकः ॥ ३७ ॥ व्यसनिन इव विद्या क्षीयते पङ्कजश्रीर्गुणिन इव विदेशे दैन्यमायान्ति भृङ्गाः। कुनृपतिरिव लोकं पीडयत्यन्धकारो धनमिव कृपणस्य व्यर्थतामेति चक्षुः ॥ ३८ ॥ व्यसरन्नु भूधरगुहान्तरतः पटलं वहिर्वहलपङ्करुचि। दिवसावसानपटुनस्तमसो वहिरेत्य चाधिकमभक्त गुहाः ॥ ३९ ॥ व्योम्नि प्राङ्गणसीम्नि सान्ध्यकिरणं विस्तार्य चेलाञ्चलं ध्वान्तैः कार्मणपांसुभिश्च जगतां द्राङ्मोहयित्वा दृशौ। ताराशौक्तिकमौक्तिकानि विहगश्रेणीरवच्छद्मना जिह्निङ्कृत्य च मायिकः स्मरनटो वक्त्राद्वहिर्वर्षति ॥ ४० ॥ शुद्धमाविलमवस्थितं चलं वक्रमार्जवगुणान्वितं च यत्। सर्वमेव तमसा समीकृतं धिङ्महत्त्वमसतां हतान्तरम् ॥ ४१ ॥ सद्यः सान्द्रमषीविलुप्तककुभः स्निग्धेन्द्रनीलद्रवव्यामीलन्नभसो निरन्तरमिलन्नीलीरसश्च्योतिनः। एते कोकिलकायकालिमहृतो लुम्पन्ति वृत्तिं दृशोरुन्निद्राञ्जनपुञ्जमेचकरुचो भीमास्तमःप्रक्रमाः ॥ ४२ ॥ सर्वं कुवलयं सूर्यो दग्धवान् स्वकरेण यत्। तेनेदं सर्वतश्छन्नं तिमिरं नान्यदीक्ष्यते ॥ ४३ ॥ सर्वे ध्वान्तमिदं वदन्तु बहुधा सिद्धान्त एवं तु नः स्वाधारेषु करेषु पुष्करमणेः स्रस्तेषु नूनं शनैः। अस्तालम्वतयाम्वरेण पतता ग्रस्ते समस्ते जगत्युन्मीलत्करकन्दलैरपि विधोस्तत्तावदुत्तार्यते ॥ ४४ ॥ स्थगिताम्वरक्षितितले परितस्तिमिरे जनस्य दृशम-

---

जा पहुँची क्योंकि सभी लोग बाधा-रहित स्थानमें ही निवास करना चाहते हैं ॥ ३४ ॥ इस समय अँधेरा अङ्गोंमें लिपटा आ रहा है, आकाशसे मानो आँजन वरस रहा है और जैसे दुष्टकी सेवा निरर्थक होती है वैसे ही दृष्टि भी निरर्थक होती जा रही है ॥ ३५ ॥ अँधेरेको देखकर कवि कहता है कि 'अँधेरा-वँधेरा कहीं कुछ नहीं है वरन् सूर्यने जव जाते समय अपनी सहस्रों किरणरूपी गौएँ साथ ले जानेके लिये हाँकीं तव उन्हींके साथ-साथ वे संसारकी आँखरूपी गौएँ भी हाँक ले गए जिससे संसार अन्धा हो गया और उसे कुछ भी नहीं दिखाई देता' ॥३६॥ चारों ओर अँधेरेका साम्राज्य फैल जानेसे आँखोंकी शक्ति जाती रही, पूर्व-पश्चिमकी पहचान मिट जानेसे दिशाएँ केवल नामको दिशाएँ रह गई हैं, भयानक वस्तुओंका ज्ञान भी आँखसे न होकर दूसरी इन्द्रियोंसे हो रहा है, यहाँतक कि वस्तुओंका ज्ञान वतलानेसे होता है और व्यक्तियोंकी पहचान उनका स्वर सुनकर होता है ॥३७॥ इस समय कमलोंकी शोभा असावधान व्यक्तिकी विद्याके समान छीज रही है, विदेशमें गए हुए गुणियोंके समान भौंरोंका कहीं आदर नहीं हो रहा है, दुष्ट राजाके समान यह अँधेरा सभीको कष्ट दे रहा है और कञ्जूसके धनके समान आँखें व्यर्थ हो रही हैं ॥ ३८ ॥ गहरे कीचड़के समान काले और दिनको समाप्त करनेवाले अँधेरेको देखकर यही नहीं समझमें आता कि यह पहाड़की गुफाओंसे निकलकर वाहर फैल रहा है या वाहरसे आकर गुफाओंमें भर रहा है ॥३९॥ यह अँधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो इन्द्रजाल करनेवाले कामदेवरूपी वाजीगरने आकाशरूपी आँगनमें सन्ध्याकी किरणोंका वस्त्र फैलाकर उसपर अँधेरेका वशीकरण चूर्ण छिड़ककर लोगोंकी आँखोंपर जादू कर दिया और फिर चिड़ियोंकी चहचहाहटके स्वरोंमें झनझनाकर तारेरूपी मोती मुँहसे निकाल रहा हो ॥४०॥ इस अँधेरेने उजले और मैले, चर और अचर, टेढ़े और सीधे सव पदार्थोंको एक-सा कर दिया है। इस प्रकार विवेक नष्ट करनेवाले नीचोंके प्रभावको धिक्कार है ॥ ४१ ॥ काजलके समान चमकते हुए भयानक काले अन्धकारकी वाढ़से आँखोंकी ज्योति नष्ट हो गई है, दिशाओंमें स्याही-सी पुत गई है और आकाशमें जो नीलमका चिकना रस-सा पुत गया है, उसमेंसे जो निरन्तर नीला रस चू रहा है वही मानो यह अँधेरा है जिससे कोयलका कालापन भी हार खा गया है ॥ ४२ ॥ यह और कुछ नहीं है, वरन् सूर्यने अपनी किरणोंसे जो कुमुदोंको जला दिया था उसीकी कालिख चारों ओर काला-काला अँधेरा बनकर फैली हुई है ॥ ४३ ॥ लोग यदि इसे अन्धकार कहते हों तो भले ही कहें पर हम तो समझते हैं कि आकाशको थामे रखनेवाले सूर्यके कर (हाथ, किरणें) जव एक-एक करके ढह पड़े तो टेक न रहनेसे अम्बर (वस्त्र, आकाश) भी गिर गया और उससे सारा संसार ढक गया, उसी ढके हुए संसारको मानो चन्द्रमाके उठते हुए कर (हाथ, किरणें) उघाड़ रहे हैं ॥ ४४ ॥ आकाश तथा पृथ्वीको चारों ओरसे ढकनेवाले अँधेरेने जव लोगोंकी आँखें अन्धी कर दीं उस

न्धयति । दधिरे रसाञ्जनमपूर्वमतः प्रियवेश्मवर्त्म सुदृशो दृदृशुः ॥ ४५ ॥

नक्षत्रोदयवर्णनम्— आकाशभ्रमखिन्नभास्करहयप्रोद्गान्तफेनच्छटाविच्छिन्नस्तवका इवाम्बरतलश्रीहारमुक्ता इव । सन्ध्यानृत्यनटोन्नतोज्ज्वलजटाजूटज्वलज्जाह्नवीधाराप्रोच्छलदच्छबिन्दव इव स्फूर्जन्ति तारा अमी ॥ १ ॥ उद्गता मथनक्षोभात्फेनराजिः पयोदधेः । तारकावलिरित्यज्ञैरियं सखि निवेद्यते ॥ २ ॥ उद्धर्तुं किल शैलकेलिरभसस्रस्तानि पाथोनिधेरन्तर्भूषणमौक्तिकानि दिविजस्त्रीभिः समुत्कण्ठया । गाढं तत्र निमज्जितेन रविणा बद्ध्वा दृढं रश्मिभिः प्रोत्क्षिप्तानि निपत्य तानि गगने तारापदेशं दधुः ॥ ३ ॥ घनतरतिमिरघुणोत्करजग्धानामिव पतन्ति काष्ठानाम् । छिद्रैरमीभिरुडुभिः किरणव्याजेन चूर्णानि ॥ ४ ॥ सिन्धोः सुधांशुशकलं परिगृह्य सन्ध्याक्षेमङ्करी निपतिताम्बरभूरुहाग्रे । चञ्चूपुटेन चपलेन तया विकीर्णास्तारामिषेण पतिता इव पक्षखण्डाः ॥ ५ ॥

चन्द्रोदयवर्णनम्—अङ्गुलीभिरिव केशसञ्चयं सन्नियम्य तिमिरं मरीचिभिः । कुड्मलीकृतसरोजलोचनञ्चुम्बतीव रजनीमुखं शशी ॥१॥ अथ पथिकवधूदहनः शनकैरुदभून्निशाकरालोकः । कुमुदप्रबोधदूतो व्यसनगुरुश्चक्रवाकीणाम् ॥ २ ॥ अथ मन्मथवाहिनीपरागः किमपि ज्योतिरुदस्फुरत्पुरस्तात् । तिमिरस्य जरा चकोरकूरं कुलटाकेलिवनीदवानलार्च्चिः ॥ ३ ॥ अथ लक्ष्मणानुगतकान्तवपुर्जलधिं विलङ्घ्य शशिदाशरथिः। परिवारितः परित ऋक्षगणैस्तिमिरौघराक्षसकुलं विभिदे ॥४॥ अद्यापि स्तनशैलदुर्गविषमे किं मानिनीनां हृदि स्थातुं वाञ्छति मान एष झगिति क्रोधादिवालोहितः । उद्यन्दूरतरप्रसारितकरः कर्षत्यसौ तत्क्षणात्फुल्लत्कैरवकोशनिःसरदलिश्रेणीकृपाणं शशी ॥ ५ ॥

समय उस अँधेरेने नवेलियोंकी आँखोंमें ऐसा अनोखा आँजन-सा लगा दिया जिससे उन्होंने उस अँधेरेमें भी अपने प्रेमियोंके घरका मार्ग भली-भाँति पा लिया ॥ ४५ ॥

तारोंके उदय होनेका वर्णन : ये तारे ऐसे चमक रहे हैं मानो आकाशमें चक्कर लगा-लगाकर थके हुए सूर्यके घोड़ोंके मुखोंसे निकले हुए फेनकी फुहारें हों, आकाश-लक्ष्मीके हारके छिटके हुए मोती हों अथवा सायङ्काल ताण्डव नृत्य करते हुए शिवजीके उजले-उजले ऊँचे जटाजूटपर उछलती हुई गङ्गाकी बूँदें हों ॥ १ ॥ समुद्र मथनेसे जो ढेर-सा फेन उठा उसे ही मूर्ख लोग तारोंका झुण्ड कहते हैं ॥ २ ॥ अत्यन्त चाहसे देवताओंकी प्रियाओंके साथ पर्वतोंमें विहार करते समय जो उनके आभूषणोंके मोती झकझोरनेमें टूट गए थे वे जब समुद्रमें गिर गए तो उन्हें निकालनेके लिये सूर्यने तहतक गोता लगाकर अपनी किरणरूपी रस्सीसे उन्हें बाँधकर जो बाहर उछाला वे ही आकाशमें पहुँचकर तारे कहलाने लगे ॥ ३ ॥ अत्यन्त घने होकर फैले हुए अन्धकाररूपी घुनोंने खरोद-खरोदकर जो काठके चूरे फेंके हैं वे ही इन ताराररूपी छेदोंसे किरण बनकर निकल रहे हैं ॥ ४ ॥ सन्ध्यारूपी चीलने सागरमेंसे चन्द्रमाकी कलारूपी पत्तीको पकड़कर आकाशरूपी वृक्षकी चोटीपर बैठकर जो अपनी चञ्चल चोंचसे उसे झकझोरा, उससे जो उसके पङ्ख टूटकर छितरा गए, वे ही तारोंके रूपमें चमक रहे हैं ॥ ५ ॥

चन्द्रमाके उदय होनेका वर्णन : *निकलता हुआ* चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो वह, सकुचे हुए कमलरूपी आँखोंवाली रात्रिरूपी नायिकाके अन्धकाररूपी केश-समूहको अपनी किरण रूपी उँगलियोंसे समेटकर उसका मुँह चूम रहा हो ॥ १ ॥ लो, अब विदेश गए हुए लोगोंकी स्त्रियोंका जी जलानेवाला, कुमुदिनियोंको जगानेके लिये दूतका काम करनेवाला और चकवेको सन्ताप देनेवाला चन्द्रमा धीरे-धीरे निकल आया ॥ २ ॥ पूर्व दिशामें कामदेवकी विजयसेनाके चलनेसे उड़ी हुई धूलके समान यह उदय होता हुआ चन्द्रमा अँधेरेके लिये बुढ़ापा बनकर, चकोरका भोजन बनकर और व्यभिचारिणी स्त्रियोंके आनन्दवनके लिये आगकी लपट बनकर एक विचित्र ज्योतिके रूपमें फूट पड़ा है ॥ ३ ॥ लक्ष्मण (कलंक) से युक्त और ऋक्ष (तारे, भालू) के समूहसे घिरे हुए रामचन्द्र (सुन्दर चन्द्रमा) ने समुद्र पार करके (समुद्रसे निकलकर) अन्धकार रूपी राक्षस-समूहको नष्ट कर दिया ॥ ४ ॥ उदय होता हुआ चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो वह इस बातपर क्रोधसे लाल हो गया हो कि 'मुझे धिक्कार है कि मेरे उदय होनेपर भी स्तनरूपी पर्वतोंके दुर्गम किलेके समान युवतियोंके हृदयोंमें उनका रूठना बना रहना चाहता है !' इसलिये नवेलियोंका मानभंग करनेके लिये दूरतक अपने किरणरूपी हाथ फैलानेवाला यह चन्द्रमा

अन्तिकान्तिकगतेन्दुविसृष्टे जिह्मतां जहति दीधितिजाले। निःसृतस्तिमिरभारनिरोधादुच्छ्वसन्निव रराज दिगन्तः ॥ ६ ॥ अन्धकारगरलं यतो जगन्मोहकारि भृशमत्ति नित्यशः। उज्ज्वलं जठरमोषधीपतेरञ्जनाभमभवत्ततः प्रिये ॥ ७ ॥ अमलात्मसु प्रतिफलन्नमितस्तरुणीकपोलफलकेषु मुहुः। विससार सान्द्रतरमिन्दुरुचामधिकावभासितदिशां निकरः ॥ ८ ॥ अमुष्मिन्पञ्चेषोस्त्रिभुवनजिगीषोस्सहचरे मुखं रात्रेरत्रेस्तनुभुवि रहश्चुम्बति सति। ज्वलन्तीर्ष्यारोषोदयमयतयेवोषधिलताः पतद्भृङ्गीभङ्ग्या दधति कुमुदिन्यः कलुषताम् ॥९॥ अमृतद्रवैर्विदधदब्जदृशामपमार्गमोषधिपतिः स्म करैः। परितो विसर्पि परितापि भृशं वपुषोऽवतारयति मानविषम् ॥ १० ॥ अयं नेत्रादत्रेरजनि रजनीवल्लभ इति भ्रमः कोऽयं प्रज्ञापरिचयपराधीनमनसाम्। सुधानामाधारः स खलु रतिबिम्बाधरसुधारसासेकस्निग्धादजनि नयनात्पुष्पधनुषः ॥ ११ ॥ अयमुदयति चन्द्रश्चन्द्रिकाधौतविश्वः परिणतविमलिम्नि व्योम्नि कर्पूरगौरः। ऋजुरजतशलाकास्पर्धिभिर्यस्य पादैर्जगदमलमृणालीपञ्जरस्थं विभाति ॥ १२ ॥ अयमुदयति चन्द्रो वारिधेरम्बुगर्भादमृतकणकरालैरंशुभिर्दीप्यमानः। भुजगशयनवक्षोहर्म्यदेशे ललन्त्या वदनमिव यदृच्छोत्तानितं विश्वमातुः ॥ १३ ॥ अविभावितेषुविषयः प्रथमं मदनोऽपि नूनमभवत्तमसा। उदिते दिशः प्रकटयत्यमुना यदधर्मधाम्नि धनुराचकृषे ॥ १४ ॥ आकाशवापीसितपुण्डरीकं शाणोपलं मन्मथसायकानाम्। पश्योदितं शारदमम्बुजाक्षि सन्ध्याङ्गनाकन्दुकमिन्दुबिम्बम् ॥ १५ ॥ आदायामृतपूर्णमर्कचषकं शोणारविन्दप्रभे पाणाविन्द्र-

---

उसी क्षण खिले हुए कुमुदकी कलीरूपी म्यानसे निकलते हुए भौंरोंकी पाँतरूपी तलवार खींच रहा है ॥ ५ ॥ ज्यों-ज्यों पास चन्द्रमा आता जा रहा था त्यों-त्यों उसकी किरणें अपना तिरछापन छोड़कर सीधी होती जा रही थीं और ऐसा जान पड़ रहा था मानो घने अँधेरेके घेरेसे मुक्त होकर दिशाएँ सन्तोषकी लम्बी साँस ले रही हों ॥ ६ ॥ हे प्यारी! यह चन्द्रमा प्रतिदिन संसारको मूर्च्छित कर देनेवाला (अन्धकारमें डालनेवाला) अँधेरारूपी विष खाता रहता है इसीलिये इस औषधियोंके पति चन्द्रमाका चमकदार पेट काजलके समान काला हो गया है ॥ ७ ॥ नवेलियोंके अत्यन्त सुन्दर और चिकने गालोंपर प्रतिबिम्बित होकर नीचेको फैलकर सब दिशाओंको और भी अधिक चमकाता हुआ यह चन्द्रमाका प्रकाश धीरे-धीरे घना होकर चारों ओर फैल गया ॥ ८ ॥ तीनों लोकोंको जीतनेकी इच्छावाले कामदेवके साथ चलनेवाला यह अत्रि ऋषिका पुत्र चन्द्रमा जो एकान्तमें रात्रिरूपी नायिकाका मुख चूम रहा है, इसीसे क्रोधित होकर डाहके मारे मानो औषधियाँ (जड़ी-बूटियाँ) तो चमक उठी हैं और कुमुदिनियोंका मुख भी उनके ऊपर बैठती हुई भौंरोंकी पाँतके रूपमें काला पड़ गया है ॥९॥ चन्द्रमाने अमृतके घोलके समान अपनी शीतल किरणोंसे कमलके समान नेत्रवाली रूठी हुई नायिकाओंके सारे शरीरमें फैला हुआ और जलानेवाला मानरूपी विष दूर करके उन्हें ठीक मार्गपर ला दिया ॥ १० ॥ बुद्धिके चक्करमें पड़े हुए लोगोंका यह बड़ा भारी भ्रम है कि रात्रिरूपी नायिकाका प्रेमी यह चन्द्रमा महर्षि अत्रिके नेत्रोंसे उत्पन्न हुआ है। सच पूछिए तो अमृतसे भरा हुआ यह चन्द्रमा रतिके बिम्बाफल जैसे ओठोंके अमृतरससे खिंचकर मतवाले बने हुए कामदेवके चिकने नेत्रोंसे उत्पन्न हुआ है ॥११॥ कपूरके समान उजला चन्द्रमा संसारको अपनी चाँदनीसे धोता हुआ निर्मल आकाशमें चढ़ आया है और रुपहली, लम्बी तथा सीधी सलाइयोंसे होड़ करनेवाली उसकी किरणोंकी गोदमें सोया हुआ संसार ऐसा जान पड़ता है मानो स्वच्छ कमलनालके पिंजड़ेमें वह रक्खा हो ॥ १२ ॥ समुद्रके जलके भीतरसे निकलता हुआ और अपनी अमृतसे भरी किरणोंसे चमकता हुआ चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो भगवान् विष्णुके वक्षस्थलरूपी शयनागारमें लेटी हुई जगदम्बा लक्ष्मी अपने-आप अपना मुँह ऊपर उचका रही हों ॥ १३ ॥ चन्द्रमाका उदय होनेसे पहले कामदेवको अँधेरेमें अपने बाणका लक्ष्य नहीं दिखाई पड़ रहा था किन्तु जब ठण्ढी किरणोंवाला चन्द्रमा उदय हो आया और चारों ओर चाँदनी फैल गई तब कामदेवने भी अपना बाण निकालकर लक्ष्य साध लिया ॥१४॥ हे कमलनयनी! देख तो यह शरद्‌के चन्द्रमाका बिम्ब ऐसा जान पड़ता है मानो आकाशरूपी सरोवरमें श्वेत कमल खिला हो या कामदेवके बाणोंको पैना करनेके लिये सानका पत्थर हो अथवा सायंकालरूपी नायिकाके खेलनेकी गेंद हो ॥ १५ ॥ इन्द्राणीने अपने लाल कमलके समान सुन्दर हाथोंमें अमृतसे भरे हुए जिस सूर्यरूपी प्यालेमें

वधूर्विलोक्य च पुनस्तस्मिन्नभःश्यामिकाम्। चिक्षेपोपरि कोपतः परिजनेऽसंशोध्य दत्ता सुधेत्येनं तं शशिनं प्रशंसति जनस्तत्पाणिमुक्तार्जुनम् ॥ १६ ॥ आननानि हरिणीनयनानामद्भुतानि च समीक्ष्य जगत्याम्। लज्जयैव घनमण्डललीनो मन्दमन्दमहहेन्दुरुदेति ॥ १७ ॥ आनन्दं कुमुदादीनामिन्दुः कन्दलयन्नयम्। लङ्घयत्यम्बराभोगं हनूमानिव सागरम् ॥१८॥ आनीलां करपल्लवैरपनयन्नच्छां तमःकञ्चुकीमाशां सम्प्रति वासवीमनुसरन्नक्षीणरागः शशी। अस्याश्च स्तनसङ्गिनीमिव वहन्नङ्गेन कस्तूरिकामालिङ्गत्ययमादरेण रजनीमर्धोन्मिषत्तारकाम् ॥ १९ ॥ इदमाभाति गगने भिन्दानं सन्ततं तमः। अमन्दनयनानन्दकरं मण्डलमैन्दवम् ॥ २० ॥ इन्दुरिन्दुरिति किं दुराशया बिन्दुरेष पयसो विलोक्यते। नन्विदं विजयते मृगीदृशः श्यामकोमलकपोलमाननम् ॥ २१ ॥ उज्जृम्भते कुमुदिनीसुकृतं मृगाङ्को विष्वग्विकीर्णपरिपाटलरश्मिदण्डः। उत्सूतविद्रुमकुलो जलधेस्तरङ्गादुत्क्षिप्यमाण इव कश्चन राजकम्बुः ॥२२॥ उज्झती शुचमिवाशु तमिस्रामन्तिकं व्रजति तारकराजे। दिक्प्रसादगुणमण्डनमूहे रश्मिहासविशदं मुखमैन्द्री ॥ २३ ॥ उदमज्जि कैटभजितः शयनादपनिद्रपाण्डुरसरोजरुचा। प्रथमप्रबुद्धनदराजसुतावदनेन्दुनेव तुहिनद्युतिना ॥ २४ ॥ उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ्निशानाथम्। परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ॥२५॥ उदयति कलमन्द्रैः कण्ठतालैरलीनां कुमुदमुकुलकेषु व्यञ्जयन्नङ्गहारान्। मदमुखरचकोरीतोयकर्मान्तिकोऽयं तुहिनरुचिरधामा दक्षिणं लोकचक्षुः ॥२६॥ उद्गतेन्दुमविभिन्नतमिस्रां पश्यति स्म रजनीमवितृप्तः। व्यंशुकस्फुटमुखीमतिजिह्मां व्रीडया नववधूमिव लोकः ॥ २७ ॥ उद्गर्भहूणतरुणीरमणोपमर्द-

---

आकाशकी कालिमाका प्रतिबिम्ब देखकर उसे अपने सेवकोंपर यह कहते हुए दे मारा कि 'तुम लोग बिना धोए और बिना भली प्रकार देखे ही मुझे अमृत दे देते हो!' वह फेंका हुआ प्याला ही यह सुन्दर चन्द्रमा है जिसकी लोग इतनी प्रशंसा करते हैं ॥ १६ ॥ देखो, संसारमें मृगनयनी नायिकाओंके सुन्दर मुख देखकर जो चन्द्रमा लजाकर बादलमें छिप गया था वही अब धीरे-धीरे फिर निकल रहा है ॥१७॥ जैसे हनुमान्‌जीने कुमुद आदि बन्दरोंको आनन्द देते हुए सागर पार कर लिया था वैसे ही कुमुद आदिको आनन्द देता हुआ चन्द्रमा भी इस लम्बे-चौड़े आकाशको पार कर रहा है ॥ १८ ॥ उदय होता हुआ चन्द्रमा ऐसा लगता है मानो अपने पत्तोंके-से रङ्गवाली लाल-लाल किरणोंके हाथोंसे पूर्व दिशारूपी नायिकाकी अन्धकार-रूपी सुन्दर नीली चोलीको हटाता हुआ और उसके स्तनपर लगी हुई कस्तूरीको (स्पर्शके कारण) अपने अङ्गोंपर धारण करता हुआ पूर्ण अनुरागसे भरकर अधखिली तारिका (तारा, पुतली) वाली रात्रिरूपी नायिकाको गले लगा रहा हो ॥ १९ ॥ देखो, आकाशमें चारों ओर फैले हुए अँधेरेको दूर करनेवाले और आँखोंको अत्यन्त सुहावने लगनेवाले चन्द्रमाका बिम्ब चमकने लगा है ॥ २० ॥ यह आप लोग भूलसे चन्द्रमा-चन्द्रमा किसे कहते जा रहे हैं? यह तो जलकी वह बूँद है जो अपनी शोभासे मृगनयनी नायिकाके साँवले और कोमल गालवाले मुखको हरा रही है ॥ २१ ॥ अपने चारों ओर फैली हुई सुन्दर किरणोंकी छड़ियोंवाला और मूँगेके वंश (समुद्र) में उत्पन्न चन्द्रमा उदय होता हुआ ऐसा सुहावना जान पड़ता है मानो समुद्रकी तरङ्गोंसे बाहर फेंका हुआ सुन्दर शंख हो या कुमुदिनीका पुण्य हो ॥ २२ ॥ तारोंके स्वामी चन्द्रमाके पास आते ही पूर्व दिशाने अन्धकाररूपी शोक छोड़ दिया, दिशाएँ स्वच्छ होकर खिल उठीं और किरणोंके प्रकाशके रूपमें हँसने लगीं ॥ २३ ॥ खिले हुए श्वेत कमलके समान उजला चन्द्रमा विष्णुके शयनस्थान समुद्रसे ऐसे निकला जैसे पहले-पहल समुद्रसे लक्ष्मीका मुखचन्द्र निकला था ॥ २४ ॥ पूर्व दिशामें निकलते हुए चन्द्रमाका पीलापन ऐसा जान पड़ता है मानो पूर्व दिशा सूचित कर रही हो कि मेरे हृदयमें निवास करनेवाला प्रियतम चन्द्रमा अभी उदयाचलमें छिपा है ॥ २५ ॥ मदसे चहचहाती हुई चकोरीके रुदनको समाप्त करनेवाला और शीतल तथा रुचिकर किरणोंवाला यह संसारके दाहिने नेत्रके समान चन्द्रमा उदय हो रहा है जो भीतर गूँजनेवाले भौंरोंके अस्पष्ट, मधुर और गम्भीर शब्दोंके साथ हिलती-मटकती हुई कुमुदकी कलियोंको नचाए डाल रहा है ॥२६॥ जिस प्रकार घूँघट सरक जानेसे मुँह मोड़कर लजानेवाली नई बहूको लोग घूर-घूरकर देखते हैं उसी प्रकार कुछ-अँधेरेसे भरी हुई और पूर्वमें निकले हुए चन्द्रमावाली रातको लोग अतृप्त होकर आँख गड़ाकर देखते हैं ॥२७॥ पतिके हाथसे मसले हुए गर्भवती हूण

भुग्नोन्नतस्तननिवेशनिभं हिमांशोः। बिम्बं कठोरविसकाण्डकडारमेतद्रम्भापदं प्रथममग्रकरैर्व्यनक्ति ॥ २८ ॥ उन्नतावनतभागवत्तया चन्द्रिका सतिमिरा गिरेरियम्। भक्तिभिर्बहुविधाभिरर्पिता भाति भूतिरिव मत्तदन्तिनः ॥ २९ ॥ उन्नतेषु शशिनः प्रभा स्थिता निम्नसंश्रयपरं निशातमः। नूनमात्मसदृशी प्रकल्पिता वेधसैव गुणदोषयोर्गतिः ॥ ३० ॥ उपगूढवेलमलघूर्मिभुजैः सरितामचुक्षुभदधीशमपि। रजनीकरः किमिव चित्रमहो यदुरागिणां गणमनङ्गलघुम् ॥ ३१ ॥ उपजीवति स्म सततं दधतः परिमुग्धतां वणिगिवोडुपतेः। घनवीथिवीथिमवतीर्णवतो निधिरम्भसामुपचयाय कलाः ॥ ३२ ॥ उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम्। यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया पुरोऽपि रागाद्गलितं न लक्षितम् ॥३३॥ एकिकेव निजवृन्दमध्यगाऽप्युच्चुकूज सभयं सितच्छदी। दन्तमूलमसकृच्च संशयादाममर्श करिणः करेणुका ॥३४॥ एतत्कोककुटुम्बिनीजनमनः शल्यञ्चकोराङ्गनाचञ्चूकोटिकपाटयोर्घटितयोरुद्धाटिनी कुञ्चिका। दग्धस्यापि नवाङ्कुरः स्मरतरोरार्द्रागसां प्रेयसीमानोद्दामगजाङ्कुशो विजयते मुग्धं सुधांशोर्वपुः ॥ ३५ ॥ एतदुच्छ्वसितपीतमैन्दवं सोढुमक्षममिव प्रभारसम्। मुक्तषट्पदविरावमञ्जसा भिद्यते कुमुदमा निबन्धनात् ॥ ३६ ॥ एतद्विभाति चरमाचलचूडचुम्बिडिण्डीरपिण्डरुचिशीतमरीचिबिम्बम्। उज्ज्वालितस्य रजनी मदनानलस्य धूमं दधत्प्रकटलाञ्छनकैतवेन ॥ ३७ ॥ एतस्य कलामेकाममृतमयूखस्य पार्वतीरमणः। वर्णावलिमिव वहति प्रतिमासं घट्टयमानस्य ॥ ३८ ॥ एष स्वर्गतरङ्गिणीजलमिलद्दिग्दन्तिदन्तद्युतिभ्रंश्यद्राजतकुम्भविभ्रमधरः शीतांशुरभ्युद्यतः। हंसीयत्यमलाम्बुजीयति लसड्डिण्डीरपिण्डीयति स्फारस्फाटिककुण्डली-

---

युवतीके तिरछे तथा बड़े-बड़े स्तनोंके समान दिखाई देनेवाला यह चन्द्रमाका बिम्ब अपनी पहली किरणोंसे कठोर कमलनालके तन्तुके पोरको चमकाकर रम्भा (अप्सरा, केला) बनाए दे रहा है ॥ २८ ॥ पहाड़पर फैली हुई यह चाँदनी उसके ऊँचे-नीचे भागमें पड़नेसे कहीं-कहीं अँधेरी होकर ऐसी जान पड़ रही है मानो मतवाले हाथियोंकी पीठपर बेतुके ढङ्गसे धूल लगी हुई हो ॥ २९ ॥ ऊँची-ऊँची वस्तुओंपर चन्द्रमाकी किरणें फैली हुई हैं और नीची-नीची वस्तुओंपर रातका अँधेरा भरा हुआ है। सचमुच ब्रह्माने गुण और दोषोंका स्थान ठीक उनके अनुरूप ही बना दिया है ॥ ३० ॥ जिस समुद्रने अपनी बड़ी-बड़ी लहररूपी बाहोंसे अपना तट थाम रक्खा था उसे भी जब चन्द्रमाने विचलित कर दिया तब यदि उसने कामदेवके हाथों छोटे किए हुए प्रेमियोंको विचलित कर दिया हो तो आश्चर्य ही क्या है ॥ ३१ ॥ जैसे अत्यन्त भोले-भाले लोगोंको ठगकर बनिया निरन्तर मोटा होता जाता है वैसे ही आकाश-मार्गमें उतरे हुए चन्द्रमाकी कलाएँ लूट-लूटकर समुद्र भी बहुत फूलता जा रहा है ॥३२॥ लाल-लाल आभावाला (प्रेमसे भरा हुआ), चञ्चल तारोंवाला (चञ्चल आँखोंकी पुतलीवाला) रात्रिरूपी नायिकाका मुख जब चन्द्रमाने स्पर्श किया तब वह प्रेममें इतनी मतवाली हो गई कि सामने खुलकर गिरते हुए अपने अन्धकाररूपी वस्त्रको भी नहीं सँभाल पाई ॥३३॥ चन्द्रमाको निकलते देखकर अपने झुण्डमें बैठी हुई भी वह हंसिनी अकेली डरके मारे चिल्ला उठी (कि यह मेरा प्यारा हंस ही तो उड़कर आकाशमें नहीं चला गया) और हथिनी भी अत्यन्त संशयसे प्यारे हाथीका दाँत बार-बार टटोलने लगी (कि मेरे प्यारे हाथीका दाँत ही तो टूटकर ऊपर नहीं चला गया है) ॥ ३४ ॥ चकवेके परिवारके मनमें बिंधते हुए काँटेके समान, चकोरीके चोंचरूपी बन्द द्वारको खोलनेकी कुञ्जीके समान, जले हुए कामदेवरूपी वृक्षमें निकले हुए नये अङ्कुरके समान और नया अपराध करनेवाले प्रेमीकी प्रेमिकाके मानरूपी बिगड़ैल हाथीके लिये अङ्कुशके समान यह दूजका चाँद अत्यन्त सुन्दर होकर चमक रहा है ॥ ३५ ॥ खिलते हुए कुमुदोंमेंसे निकलनेवाले भौंरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कुमुदोंने जो चन्द्रमाका कान्तिरूपी रस पिया था उसे न पचा सकनेके कारण वे भौंरोंके गुञ्जाररूपी शब्दके साथ उलटी करके बाहर निकल रहे हों ॥ ३६ ॥ अस्ताचलके शिखरको चूमनेवाले फेनके पिंड-से चमकते हुए चन्द्रमामें कलंक ऐसा दिखाई पड़ता है मानो रात्रिको जलानेके लिये इसने जलते हुए कामदेवरूपी अग्निका धुआँ धारण कर रक्खा हो ॥ ३७ ॥ प्रत्येक मासमें निरन्तर घटते हुए इस अमृतमयी किरणवाले चन्द्रमाकी केवल एक कलाको शिवजी इस प्रकार धारण किए रहते हैं मानो वह उनकी कीर्त्तिकी रेखा हो ॥३८॥ देखो, यह निकला हुआ चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो आकाश-गङ्गाके जलमें खेल करनेवाले दिग्गजोंके दाँतोंके

यति दिशामानन्दकन्दीयति ॥ ३६ ॥ ॐकारो मदनद्विजस्य गगनक्रोडैकदंष्ट्राङ्कुरस्तारामौक्तिकशुक्तिरन्धतमसस्तम्बेरमस्याङ्कुशः । शृङ्गारार्गलकुञ्चिका विरहिणीमर्मच्छिदा कर्तरी सन्ध्यावारवधूनखक्षतिरियं चान्द्री कला राजते ॥ ४० ॥ ओजसापि खलु नूनमनूनं नासहायमपयाति जयश्रीः । यद्विभुः शशिमयूखसखः सन्नाददे विजयि चापमनङ्गः ॥ ४१ ॥ ककुभां मुखानि सहसोज्ज्वलयन्दधदाकुलत्वमधिकं रतये । अदिदीपदिन्दुरपरो दहनः कुसुमेषुमत्रिनयनप्रभवः ॥ ४२ ॥ कपाले मार्जारः पय इति कराँल्लेढि शशिनस्तरुच्छिद्रप्रोतान्बिसमिति करी सङ्कलयति । रतान्ते तल्पस्थान्हरति वनिताप्यंशुकमिति प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥ ४३ ॥ कमितुरभिसृत्वरीणां गौराङ्गीणामिहेन्दुधवलासु । उड्डयमानानामिव रजनिपु परमीक्ष्यते छाया ॥ ४४ ॥ करमुदयमहीधरस्तनाग्रे गलिततमःपटलांशुके निवेश्य । विकसितकुमुदेक्षणं विचुम्बत्ययममरेशदिशो मुखं सुधांशुः ॥ ४५ ॥ कलया तुषारकिरणस्य पुरः परिमन्दभिन्नतिमिरौघजटम् । क्षणमभ्यपद्यत जनैर्न मृषा गगनं गणाधिपतिमूर्तिरिति ॥ ४६ ॥ कलानिधिरयं रवेः समुपलभ्य रूपं स्वयं दिनान्तसमयेऽस्पृशत्सपदि पद्मिनीं रागवान् । धवान्यकरसङ्गमान्मुकुलितेति पूर्वाकृतिं समीक्ष्य जहसुः प्रिया ध्रुवमभूदतः पाण्डुरः ॥ ४७ ॥ कलितमम्बरमाकलयन्करैर्मृदितपङ्कजकोशपयोधरः । विकसदुत्पलनेत्रविलोकितः सखि निशां सरसीकुरुते विधुः ॥ ४८ ॥ कल्लोलक्षिप्तपङ्कत्रिपुरहरशिरःस्वःस्रवन्तीमृणालं कर्पूरक्षोदजालं कुसुमशरवधूसीधुभृङ्गारनालम् । एतद्दुग्धाब्धिवन्धोर्गगनकमलिनीपत्रपानीय-

समान चमकते और गिरते हुए चाँदीके घड़ेका भ्रम उत्पन्न करता हो, हंस हो, स्वच्छ कमल हो, सुन्दर स्फटिकका साँप हो और दिशाओंके आनन्दका फल हो ॥ ३६ ॥ चन्द्रमाकी यह कला कामदेवरूपी ब्राह्मणके जयके ओंकारके समान, आकाशरूपी वराहके दाँतके समान, तारेरूपी मोतियोंकी सीपीके समान, घने अन्धकाररूपी हाथीके अङ्कुशके समान, शृङ्गाररूपी फाटककी कुञ्जीके समान, विरहिनियोंके हृदयको काटनेवाली कैंचीके समान और सायङ्कालरूपी वेश्याके हृदयपर लगे हुए नखक्षतके समान चमकती है ॥ ४० ॥ यदि शक्तिशाली कामदेवने चन्द्रमाके किरणरूपी मित्रोंको साथ लेकर अपना विजयी धनुष उठाया है तो ठीक ही है क्योंकि विजयश्री जिस शक्तिशाली व्यक्तिको यश देना चाहती है उसके लिये सहायक भी ला जुटाती है ॥ ४१ ॥ महर्षि अत्रिके नयनोंसे उत्पन्न चन्द्रमाने दूसरी अग्निके समान दिशाओंके मुखोंको अचानक चमकाते हुए और सारे संसारको रतिके लिये व्याकुल करते हुए सबके हृदयमें कामदेव जगा दिया है ॥ ४२ ॥ अपनी चमकसे मतवाला चन्द्रमा सारे संसारको इस प्रकार धोखेमें डाले दे रहा है कि खोपड़ीपर पड़ी हुई चन्द्रमाकी किरणोंको दूध समझकर बिल्ली चाटनेका प्रयत्न कर रही है, वृक्षके पत्तोंसे छन-छनकर आनेवाली किरणोंको कमलकी डण्ठल समझकर उन्हें खानेके लिये हाथी झपट रहे हैं और बिछौनेपर पड़ी हुई किरणोंको वस्त्र समझकर स्त्रियाँ रतिके अन्तमें बार-बार उठा रही हैं ॥ ४३ ॥ चन्द्रमाके प्रकाशसे उजली रातोंमें अपने-अपने प्रियतमसे मिलनेके लिये आतुर होकर चली जाती हुई गोरी-गोरी नवेलियोंकी छाया ऐसी प्रतीत होती है मानो वे उड़ी चली जा रही हों ॥ ४४ ॥ अन्धकाररूपी वस्त्रसे रहित तथा खिले हुए कुमुदरूपी नेत्रोंवाली पूर्व दिशारूपी नायिकाके उदयाचलरूपी स्तनोंपर हाथ रखकर चन्द्रमा उसका मुख चूमने लगा है ॥ ४५ ॥ ठण्ढी किरणोंवाले चन्द्रमाकी कलासे धीरे-धीरे दूर हटते हुए अन्धकार रूपी जटावाले आकाशको जब लोगोंने देखा तो थोड़ी देरके लिये वे लोग उसे सचमुच गणेशजीकी मूर्ति समझ बैठे ॥ ४६ ॥ सूर्यास्तके समय इस चन्द्रमाने सूर्यसे अपना रूप पाकर अत्यन्त अनुरागसे कमलिनीका स्पर्श किया किन्तु दूसरे पुरुषके हाथका स्पर्श होते ही कमलिनी मुँद गई और चन्द्रमा लजाकर फिर अपने रूपको प्राप्त हो गया अर्थात् श्वेत पड़ गया। इसपर उसकी प्यारी कुमुदिनियाँ हँस पड़ीं, अतः चन्द्रमा लजाकर पीला पड़ गया ॥ ४७ ॥ हे सखी ! देखो, यह चन्द्रमा अपने करों (किरणों, हाथों) से रात्रिरूपी नायिकाके सुन्दर वस्त्र (आकाश) हटाता हुआ (छूता हुआ), कमलके कोषरूपी स्तनोंको मसलता हुआ और उसके खिले हुए कुमुदरूपी नेत्रोंसे देखा जाता हुआ रात्रिरूपी नायिकाको अत्यन्त रसीली बना रहा है ॥ ४८ ॥ शङ्करजीके सिरपर बहती हुई गङ्गाजीमें क्रीड़ासे फेंके हुए और कीचड़से लिपटे हुए कमलके नालके समान, कपूरके चूर्णके समान, कामदेवकी पत्नीके प्यालेके हत्थेके समान, और आकाशकी कमलिनीके पत्तेपर पड़ी हुई जलके बूँदके समान यह संसारको सुशोभित करनेवाला क्षीरसागरका प्यारा

बिन्दोरन्तस्तोषं न केषां किसलयति जगन्मण्डनं खण्डमिन्दोः ॥ ४६ ॥ कुमुदेष्वधिकं भान्ति पतिताश्चन्द्ररश्मयः । अतिप्रकृष्टशीलेषु कुलेष्विव समृद्धयः ॥५०॥ कैलासायितमद्रिभिर्विटपिभिः श्वेतातपत्रायितं मृत्पङ्केन दधीयितं जलनिधौ दुग्धायितं वारिभिः । मुक्ताहारलतायितं व्रततिभिः शङ्खायितं श्रीफलैः श्वेतद्वीपजनायितं जनपदैर्जाते शशाङ्कोदये ॥ ५१ ॥ कोकानाकुलयँश्चकोरतरुणीवैकल्यमुन्मूलयन्नम्भोजानि निमीलयन्कुमुदिनीरुन्मीलयन्सर्वतः । पान्थानाकुलतां नयन्कुलवधूचेतः समुल्लासयन्नस्तं याति दिवापतिः समुदयं यात्येष दोषापतिः ॥ ५२ ॥ क्रमादेकद्वित्रिप्रभृतिपरिपाट्या प्रकटयन्कलाः स्वैरं स्वैरं नवनलिनकन्दाङ्कुररुचः । पुरन्ध्रीणां प्रेयोविरहदहनोद्दीपितदृशां कटाक्षेभ्यो बिभ्यन्निभृत इव चन्द्रोऽभ्युदयति ॥ ५३ ॥ क्वैतन्मार्तण्डबिम्बं सरसि सरसिजश्रेणिहास्यं क्व यातं क्वैते याता रथाङ्गाः सपदि गतह्रियः क्व प्रविष्टा मरालाः । सन्ध्यारागारुणाङ्गः कुपित इव पतिः प्रोद्यतोऽयं हिमांशुर्मन्ये हर्षादिवेयं हसति कुमुदिनी जाग्रतीवालिनादैः ॥ ५४ ॥ क्षीराब्धेर्लहरीषु फेनधवलाश्चन्द्रोपलेषु स्रवत्पाथःसीकरिणो विकासिकुमुदक्रोडे रजःपिञ्जराः । उन्मीलन्ति चकोरचञ्चुगहने छिन्नप्ररूढाश्चमत्कुर्वन्तः प्रियविप्रयुक्तरमणीगात्रे सुधांशोः कराः ॥ ५५ ॥ ख्याता वयं समधुपा मधुकोशवत्यश्चन्द्रः प्रसारितकरो द्विजराज एषः । अस्मत्समागमकृतोऽस्य पुनर्द्वितीयो मा भूत्कलङ्क इति सङ्कुचिता नलिन्यः ॥ ५६ ॥ गगनविपिनसिंहः कामभूपातपत्रं निखिलदिगबलानां कन्दुकं क्रीडनाय । मणिरिव रतिभर्तुः कार्मणः पार्वणोऽयं जयति कुमुदबन्धुर्बन्धुरश्चन्द्रबिम्बः ॥ ५७ ॥ चन्द्रपादजनितप्रवृत्तिभिश्चन्द्रकान्तजलबिन्दुभिर्गिरिः । मेखलातरुषु

चन्द्रमा किसके मनमें मस्ती नहीं भर रहा है ॥ ४९ ॥ जैसे शुद्ध आचरणवाले परिवारमें सम्पत्ति बढ़ती है वैसे ही कुमुदिनियोंपर पड़ी हुई चन्द्रमाकी किरणें भी बहुत अधिक चमक रही हैं ॥५०॥ चन्द्रमाके उदय होनेपर पहाड़ तो कैलासके समान, वृक्ष भी श्वेत छतरीके समान, कीचड़ भी दहीके समान, समुद्रका जल भी दूधके समान, लताएँ भी मोतीके हारकी लड़ियोंके समान, बेलके फल भी शङ्खके समान और नर-नारी भी श्वेत द्वीप (योरोप) के लोगोंके समान जान पड़ते हैं ॥५१॥ एक ओर तो चकवे-चकवियोंको व्याकुल करता हुआ, कमलोंको मूँदता हुआ और पथिकोंको अधीर करता हुआ सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहा है और दूसरी ओर चकोरियोंको प्रसन्न करता हुआ, कुमुदोंको खिलाता हुआ और अच्छे कुलोंकी नई बहुओंके मनमें हुलास बढ़ाता हुआ यह चन्द्रमा उदय हो रहा है ॥ ५२ ॥ नये कमलका जड़ोंके अँकुएके समान कान्तिवाली अपनी एक-एक किरण बारी-बारीसे फैलाता हुआ चन्द्रमा ऐसा लगता है मानो सदाचारिणी नवेलियोंके प्रियतमकी वियोगाग्निसे दहकते हुए नेत्रोंकी तिरछी चितवनसे डरता हुआ धीरे-धीरे चुपचाप उदय हो रहा है ॥ ५३ ॥ सायङ्काल होते ही सूर्यका बिम्ब कहाँ चला गया ? तालाबोंके कमलोंकी सुन्दर हँसी कहाँ छिप गई ? अचानक चकवे कहाँ उड़ गए और लाज छोड़कर सब हंस भी कहाँ छिप गए ? मैं समझता हूँ कि सन्ध्याकी लालीसे लाल अङ्गोंवाले चन्द्रमाको क्रोधसे लाल होकर उदय होते देखकर ये सब तो भाग गए हैं और अपने पतिके आगमनसे प्रसन्न होकर भौंरोंकी गुञ्जारसे जागती हुई-सी कुमुदिनियाँ हँसने लगी हैं' ॥५४॥ क्षीरसागरकी लहरोंपर उठे हुए फेनको चमकाती हुई, चन्द्रकान्त मणियोंसे जलकी बूँदें बहाती हुई, खिली हुई कुमुदिनियोंकी गोदका पराग पीला करती हुई और चकोरकी चोंचके वनमें कटकर फिर उगी हुई-सी ये चन्द्रमाकी किरणें अपने प्यारोंसे बिछुड़ी हुई युवतियोंके अङ्गोंपर अठखेलियाँ करती चारों ओर फैल रही हैं ॥ ५५ ॥ चन्द्रमाके उदय होनेपर मुरझाई हुई कमलिनियाँ मानो इस डरसे सङ्कुचित हो गई हैं कि 'हम लोगोंसे समागम करनेपर कहीं इस बेचारे चन्द्रमाको एक दूसरा कलङ्क न लग जाय क्योंकि यह चन्द्रमा द्विजराज (ब्राह्मणोंका राजा) है और हम सब मधुप (शराबी, भौंरे) रूपी विटों (धूर्तों, भँडुओं) तथा मधुकोष (मदिरापात्र, मधुके भण्डार) से युक्त हैं ॥ ५६ ॥ आकाशरूपी वनके सिंहके समान, कामदेवरूपी राजाके छत्रके समान, सम्पूर्ण दिशारूपी नायिकाओंके खेलकी गेंदके समान, कामदेवके मणिके समान और कुमुदके हितैषीके समान यह सुन्दर भाग्यशाली पूर्णिमाका चन्द्रमा चमक रहा है ॥५७॥ अपनी तलहटीके वृक्षोंपर सोए हुए मोरोंपर चन्द्रमाकी किरणोंसे चन्द्रकान्तमणिमें निकली हुई जलकी बूँदें बरसा-बरसाकर पहाड़ उन्हें अचानक जगाए दे रहा है ॥५८॥ अपनी किरण-रूपी जटाएँ फैलाए, हाथमें कलंकरूपी रुद्राक्षकी माला

निद्रितानमूंल्बोधयत्यसमये शिखण्डिनः ॥५८॥ जटाभाभिर्भाभिः करधृतकलङ्काक्षवलयो वियोगिव्यापत्तेरिव कलितवैराग्यविशदः। परिप्रेङ्खत्तारापरिकरकपालाङ्किततले शशी भस्मापाण्डुः पितृवन इव व्योम्नि चरति ॥ ५९ ॥ जाते यौवनपीनधाम्नि शशिनि भ्राम्यन्तमारादपि भ्रान्त्या श्वेतपतत्त्रिणं सहचरं कोकाङ्गना मुञ्चति। कुर्वन्नस्तमितोपलम्भविधुरो हंसः प्रियान्वेषणं हर्षोत्सङ्गितमानसः पुनरिमामालोक्य सञ्जायते ॥ ६० ॥ ज्योत्स्नाचयः पयःपूरस्तारकाः कैरवाणि च। राजति व्योमकासारराजहंसः सुधाकरः ॥ ६१ ॥ ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना। नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता ॥ ६२ ॥ तथा पौरस्त्यायां दिशि कुमुदकेदारकलिकाकवाटघ्नीमिन्दुः किरणलहरीमुल्लसयति। समन्तादुन्मीलद्बहलजलबिन्दुस्तवकिनो यथा पुञ्जायन्ते प्रतिगुडकमेणाङ्कमणयः ॥६३॥ ताराक्षतान्प्रतिकिरन्कलकण्ठनादान्मन्त्राक्षराणि निगदन्कुसुमेषुरेषः। लाभाय वासरमणेर्मुषितस्य सायं सञ्चारयत्यमृतदीधितिकाँस्यपात्रम् ॥ ६४ ॥ तैः सर्वज्ञीभवदभिसृतानेत्रसिद्धाञ्जनैर्वा नीरन्ध्रैर्वा त्रिभुवनदृशामन्धपट्टैस्तमोभिः। व्याप्तं पृथ्वीवलयमखिलं क्षालयन्नुच्छलद्भिर्ज्योत्स्नाजालैरयमुदयते शर्वरीसार्वभौमः ॥ ६५ ॥ त्रिनयनचूडारत्नं मित्रं सिन्धोः कुमुद्वतीदयितः। अयमुदयति घुसृणारुणरमणीवदनोपमश्चन्द्रः ॥ ६६ ॥ त्रिनयनजटावल्लीपुष्पं निशावदनस्मितं ग्रहकिसलयं सन्ध्यानारीनितम्बनखक्षतिः। तिमिरभिदुरं व्योम्नः शृङ्गं मनोभवकार्मुकं प्रतिपदि नवस्येन्दोर्बिम्बं सुखोदयमस्तु नः ॥ ६७ ॥ दर्पोद्रेकः कुसुमधनुषो जीवितं कैरवाणां जीवञ्जीवप्रणयगरिमा भाग्यराशिर्निशायाः। शृङ्गारश्रीललितहसितं पानपात्रं सुराणां पौरस्त्याद्रेर्जयति शिखरं किं तमः स्थातुमीष्टे ॥ ६८ ॥

लिए, वियोगी लोगोंकी विपत्ति देखकर वैराग्य धारण किए और भस्म धारण करनेसे अत्यन्त उजला दिखाई देता हुआ चन्द्रमा चमकते हुए तारोंके समूह रूपी कपालोंसे भरे हुए आकाशरूपी श्मशानमें घूम रहा है ॥ ५९ ॥ रात्रिमें जब चन्द्रमामें यौवन आ गया अर्थात् उसमें पूरा प्रकाश आ गया तो उसकी उजली चमकसे चकवेको प्रातःकाल होनेका भ्रम हो गया अतः यद्यपि वह अपनी प्रिया (चकवी) के आस-पास चक्कर लगाता रहा किन्तु चकवीने उसे छोड़ ही दिया। इसी प्रकार हंस भी अत्यन्त प्रसन्नतासे अपनी प्रिया (हंसिनी) को ढूँढ़ रहा था, जब उसने चकवीको देखा तो उसे भी स्मरण हो आया कि अभी यह चन्द्रमा अस्त नहीं हुआ, मुझे भ्रम हो गया है ॥ ६० ॥ किरणोंके समूहरूपी जलसे भरे हुए तथा तारेरूपी कुमुदोंसे खिले हुए आकाशरूपी सरोवरमें यह चन्द्रमा राजहंसके समान शोभा पा रहा है ॥ ६१ ॥ इसी बीच विरहिणीके गालके समान पीले, कुमुदिनीके स्वामी और आँखोंको सुख देनेवाले चन्द्रमाने पूर्व दिशाको सुशोभित कर दिया ॥ ६२ ॥ ज्यों-ज्यों चन्द्रमा पूर्व दिशामें कुमुदकी क्यारियोंके मुँह खोलनेवाली किरणोंकी लहरें बढ़ा रहे हैं त्यों-त्यों प्रत्येक गुड़ियाके सिरपर टँकी हुई चन्द्रकान्तमणियोंके ऊपर बूँदोंके गुच्छे सज रहे हैं ॥ ६३ ॥ इस चन्द्रमाको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो चोरी गए हुए दिनके मणि (सूर्य) का चोर पकड़नेके लिये कामदेवने तारेरूपी अक्षत छिड़ककर, कोयलकी कूकके मंत्र पढ़कर, अमृतरूपी किरणोंसे भरा हुआ यह काँसेका कटोरा चला दिया हो ॥ ६४ ॥ उदय होते हुए चन्द्रमाको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो अपने ही प्रकाशसे सब कुछ देखनेवाला यह रात्रिका राजा चन्द्रमा, आँखोंमें सिद्धाञ्जन लगाकर सब कुछ जान लेनेवालेके समान सर्वज्ञ होकर, इस त्रिभुवनकी आँखोंको अन्धा करनेवाली पट्टीके समान फैले हुए घने अँधेरेसे भरे हुए पृथ्वीरूपी कङ्गनको अपनी चमकती हुई किरणोंसे धोता हुआ निकल रहा हो ॥ ६५ ॥ शङ्करजीके जटाजूटका रत्न, समुद्रका मित्र और कुमुदिनियोंका स्वामी चन्द्रमा किसी सुन्दरी नायिकाके मुखके समान लाल-लाल-सा उदय हो रहा है ॥ ६६ ॥ शङ्करजीकी जटारूपी लताके फूलके समान, सदा मुस्कराती रहनेवाली रात्रि-रूपी नायिकाके मुखकी मुस्कानके समान, नक्षत्रोंकी कलीके समान, सन्ध्यारूपी युवतीके नितम्बपर बने हुए नखचिह्नके समान, अँधेरा नष्ट करनेवाले आकाशके शिखरके समान तथा कामदेवके धनुषके समान इस प्रतिपदा तिथिमें उदय होनेवाले चन्द्रमाका बिम्ब हमारे लिये सुखदाई हो ॥ ६७ ॥ जब आकाशमें कामदेवका छलकता हुआ अभिमान, कुमुदोंका प्राण, संसारके प्राणियोंके प्रेमका महत्त्व, रात्रिका भाग्य, शृङ्गारकी लक्ष्मीका सुन्दर हास्य और देवताओंके अमृत पीनेका पात्र यह चन्द्रमा उदयाचलके शिखरपर आ उपस्थित हुआ है तब भी क्या कहीं अन्धकार ठहर सकता है ? ॥ ६८ ॥ यह कुमुदिनीका प्रेमी चन्द्रमा इस समय निकला हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो

दिग्बालाकरकन्दुकः स्मरवधूसीमन्तमुक्तामणिः कामक्षोणिपतेर्विहारवलभीनिर्व्यूहपारावतः। हट्टव्योम्नि विकीर्णतारकमणिः श्यामा वणिक्सुभ्रुवः स्फारः स्फाटिकसम्पुटः कुमुदिनीकान्तोऽयमुन्मीलति ॥६९॥ दिग्यन्त्रितस्तिमिरचूर्णविशेषपूर्णादुद्गत्वरोडुमयरञ्जकविस्फुलिङ्गात्। कालेन पूर्वगिरिदुर्गजुषा प्रयुक्तो वृत्तोपलो विधुमिषात्पथिकान्हिनस्ति ॥ ७० ॥ दिवसभृशोष्णरुचिपादहतां रुदतीमिवानवरतालिरुतैः। मुहुरामृशन् मृगधरोऽग्रकरैरुदशिश्वसत्कुमुदिनीवनिताम् ॥ ७१ ॥ दीपयन्नथ नभः किरणौघैः कुङ्कुमारुणपयोधरगौरः। हेमकुम्भ इव पूर्वपयोधेरुन्ममज्ज शनकैस्तुहिनांशुः ॥ ७२ ॥ दूरमंशुप्रभाजालं प्रसारयति चन्द्रमाः। रात्रौ नववयाः कामो मनोरथमिवाधनः ॥ ७३ ॥ द्यां निरुन्धदतिनीलघनाभं ध्वान्तमुद्यतकरेण पुरस्तात्। क्षिप्यमाणमसितेतरभासा शम्भुनेव करिचर्म चकासे ॥ ७४ ॥ ध्वान्तौघे शितिकण्ठकण्ठमहसि प्राप्ते प्रतीचीमुखं प्राचीमञ्चति किञ्च दुग्धलहरीमुग्धे विधोर्धामनि। एतत्कोकचकोरशोकरभसम्लानप्रसन्नोल्लसद्दृक्पातोर्मिकदम्बचुम्बितमिव त्रैलोक्यमाभासते ॥ ७५ ॥ न प्रसादमुचितं गमिता द्यौर्नोद्धृतं तिमिरमद्रिवनेभ्यः। दिङ्मुखेषु न च धाम विकीर्णं भूषितैव रजनी हिमभासा ॥ ७६ ॥ नभोलताकुञ्जमुपागतायाः प्रमोदपर्याकुलतारकायाः। निशाङ्गनायाः स्फुरता करेण शशी तमःकञ्चुकमुन्मुमोच ॥ ७७ ॥ नयनानन्ददायीन्दोर्बिम्बमेतत्प्रसीदति। अधुना विनिरुद्धाशं प्रविशीर्णमिदं तमः ॥ ७८ ॥ नवकुङ्कुमचर्चिका रजन्या गगनाशोकतरोः प्रवालपङ्क्तिः। मणिकुन्तलता स्मरस्य मन्ये शशिनः प्राथमिकी मयूखलेखा ॥ ७९ ॥ नवचन्द्रि-

---

दिशारूपी बालिकाके हाथकी गेंद हो, कामदेवकी पत्नीके केशोंका मुक्तामणि हो, कामदेवरूपी राजाके विहार-भवनके गोलेमें बैठा हुआ शान्त कबूतर हो, आकाशरूपी हाटमें फैलाए हुए तारोंका मणि हो, रात्रिरूपी वैश्य-पत्नीकी टेढ़ी भौंहोंकी मधुर चितवन तथा स्फटिक मणिसे बनी डिब्बिया हो ॥ ६९ ॥ पूर्वके पर्वतरूपी दुर्गमें रहनेवाले कालने अँधेरेरूपी बारूदसे चलाकर तारेरूपी चमकीली चिनगारियोंके साथ जो यह दिशारूपी तोपसे पत्थरका गोला चलाया है वही चन्द्रमा बनकर पथिकोंको मारे डाल रहा है ॥ ७० ॥ चन्द्रमाने अपनी कुमुदिनीरूपी उस नायिकाको सहलाते और समझाते हुए बड़ा धीरज बँधाया जो दिन-भर सूर्यकी बहुत तपी हुई किरणोंकी लातें खाकर भौंरोंके गुञ्जनके स्वरोंमें रो रही थी ॥७१॥ कुंकुमसे रँगे हुए गोरे-गोरे स्तनोंके समान सुन्दर चन्द्रमा अपनी किरणोंसे आकाशको भली-भाँति चमकाता हुआ पूर्व समुद्रमेंसे सोनेके घड़ेके समान धीरे-धीरे निकल आया ॥ ७२ ॥ रात होते ही चन्द्रमा उसी प्रकार अपनी किरणें दूर-दूरतक फैलाने लगा जैसे कोई चढ़ती हुई जवानीवाला कङ्गाल कामी मनोरथोंके नये-नये पुल बाँधता है ॥ ७३ ॥ उजली किरणोंवाले चन्द्रमाकी चढ़ती हुई किरणोंसे ऊपर उठकर आकाशमें घिरनेवाले अत्यन्त काले-काले बादलोंके समान दिखाई पड़नेवाला अँधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो भगवान् शङ्करने हाथीकी खाल ऊपर ओढ़ ली हो ॥ ७४ ॥ शिवजीके कण्ठके समान नीले अँधेरेने जब पश्चिम दिशाको घेर लिया और दूधकी लहरोंके समान उजली चन्द्रमाकी किरणें पूर्व दिशामें छा गईं, उस समय यह त्रिलोक ऐसा जान पड़ा मानो एक ओर अचानक चकवेकी शोकसे मुरझाई आँखोंकी पलकरूपी लहरें उसे (त्रिलोकको) चूमने लगी हों और दूसरी ओर प्रसन्नतासे खिली हुई चकोरकी आँखोंकी पलकरूपी लहरें चूमने लगी हों ॥ ७५ ॥ अभी आकाश पूरा स्वच्छ भी नहीं हो पाया था, पहाड़ी जङ्गलोंसे अभी पूरा-पूरा अँधेरा भी नहीं छँट पाया था और दिशाओंके मुखपर अभी किरणें भी ठीक-ठीक नहीं पहुँच पाई थीं कि चन्द्रमाकी शीतल कान्तिमात्रसे ही रात खिल उठी ॥ ७६ ॥ चन्द्रमाकी खिलती हुई किरणें ऐसी जान पड़ती हैं मानो चन्द्रमाने अपने किरणरूपी हाथ फैलाकर, आकाशरूपी लतामण्डपमें तारिकारूपी सखियोंके साथ अठखेलियाँ करती हुई रात्रिरूपी नायिकाकी अन्धकाररूपी चोली उघाड़ दी हो ॥७७॥ आँखोंको सुख देनेवाले चन्द्रमाका यह बिम्ब अब खिल उठा है और दिशाओं (आशाओं) को नष्ट करनेवाला अँधेरा छँट चला है ॥ ७८ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंकी पहली-पहली रेखाएँ ऐसी जान पड रही हैं मानो रात्रिरूपी नायिकाकी छातीपर नये कुंकुमकी बूँदें हों या आकाशरूपी अशोक वृक्षके पत्तोंकी वन्दनवार हो या कामदेवके मणिसे बने हुए भालोंकी पाँत हों ॥ ७९ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंको देखकर लोगोंने समझा कि नई चाँदनीके फूलों (तारों) से सजी हुई अन्धकाररूपी केशोंवाली, इन्द्रकी प्यारी पूर्व दिशारूपी नायिकाके मुखपर यह मलय चन्दनका लेप लगा हुआ है

काकुसुमकीर्णतमःकवरीभृतो मलयजार्द्रमिव। ददृशे ललाटतटहारि हरेर्हरितो मुखे तुहिनरश्मिदलम् ॥८०॥ नाशयन्तो घनध्वान्तं तापयन्तो वियोगिनः। पतन्ति शशिनः पादा भासयन्तः क्षमातलम् ॥ ८१ ॥ नीलनीरजनिभे हिमगौरं शैलरुद्धवपुषः सितरश्मेः। खे रराज निपतत्करजालं वारिधेः पयसि गाङ्गमिवाम्भः ॥८२॥ पद्मिन्या दयितेऽनुधावति रुषा स्वं पद्मिनीद्रोहिणं भ्रान्त्वा भीतमना दिगन्तमखिलं चन्द्रो जगाहेऽम्बुधिम्। गाढे तत्र च तत्र विह्वलममुं कर्षन्ति ताराः पतिं सोऽयं तच्छ्रमवारिकुङ्कुमरसैः सिक्तोऽरुणो दृश्यते ॥ ८३ ॥ पश्य पक्वफलिनीफलत्विषा बिम्बलाञ्छितवियत्सरोम्भसा। विप्रकृष्टविवरं हिमांशुना चक्रवाकमिथुनं विडम्ब्यते ॥ ८४ ॥ पश्योदेति वियोगिनीदिनमणिः शृङ्गाररत्नामणिस्तारामौक्तिकहारनायकमणिश्चण्डीशचूडामणिः। प्रौढानङ्गभुजङ्गमस्तकमणिः कन्दर्पसीमन्तिनीकाञ्चीमध्यमणिश्चकोरपरिषच्चिन्तामणिश्चन्द्रमाः ॥ ८५ ॥ पिनष्टीव तरङ्गाग्रैः समुद्रः फेनचन्दनम्। तदादाय करैरिन्दुर्लिम्पतीव दिगङ्गनाः ॥ ८६ ॥ पीयूषाश्रयणं जगत्त्रयदृशामालानलेखालवो विश्वोन्माथहुताशनस्य ककुभामुद्घाटिनी कुञ्चिका। वीरेषु प्रथमा च पुष्पधनुषो रेखा मृगाक्षीमुखश्रेणां च प्रतिराजबीजमधिकानन्दी नवश्चन्द्रमाः ॥ ८७ ॥ पुण्यश्लोकमणेर्जगत्त्रयपरिक्लेशप्रशान्तेः कृते सद्यस्त्वस्य पयोददामसुषमासम्भारिणः श्रीपतेः। श्लोको मोदयतेऽसकौ कुवलयं या श्यामतास्मिन्पुनः प्रोन्नेतुं स्वतदीयतापरिचयं न त्वन्यथात्वं स्थिता ॥ ८८ ॥ प्रतिकामिनीति ददृशुश्चकिताः स्मरजन्मघर्मपयसोपचिताम्। सुदृशाऽभिभर्तृशशिरश्मिगलज्जलबिन्दुमिन्दुमणिदारुवधूम् ॥ ८९ ॥ प्रथमं कलाभवदथार्धमथो हिमदीधितर्महदभूद्दितः। दधति ध्रुवं क्रमश एव न

॥ ८० ॥ घना अँधेरा मिटाती हुई, वियोगियोंके हृदयमें दाह उपजाती हुई और सारी पृथ्वीको चमकाती हुई चन्द्रमाकी किरणें चारों ओर फैल रही हैं ॥ ८१ ॥ नीलकमलके समान घने नीले आकाशमें पर्वतोंसे भरे शरीरवाले चन्द्रमाकी किरणें समुद्रके जलपर स्वच्छ हिमके समान पड़ती हुई ऐसी जान पड़ती थीं मानो गङ्गाजीके जलकी धाराएँ गिर रही हों ॥ ८२ ॥ रातमें अपने द्वारा कष्ट पाई हुई कमलिनीके प्यारे सूर्यको क्रोधसे आकाशमें दौड़े आते देखकर डरके मारे जिस चन्द्रमाने चारों दिशाओंमें भी कहीं शरण न पाकर समुद्रमें डुबकी लगा ली थी उसी अपने विह्वल पति (चन्द्रमा) को सूर्यास्तके पश्चात् समुद्रके अगाध जलमेंसे तारिकाएँ इधर-उधरसे खींचकर उठा रही हैं और वह उनके पसीनेसे बहे कुङ्कुमके रससे भींगकर लाल-लाल दिखाई पड़ रहा है ॥ ८३ ॥ देखो ! पकी हुई फलिनीके प्रियंगु फलके समान लाल बिम्बवाला यह चन्द्रमा आकाशमें और सरोवरके जलकी परछाहींमें रातके समय अलग होकर दूर-दूर बैठे हुए चकवेके जोड़के समान दिखाई पड़ता है ॥ ८४ ॥ देखो ! यह चन्द्रमा विरहिणीके लिये सूर्य, शृङ्गारके लिये सुन्दर रत्नमणि, तारेरूपी मोतियोंकी मालाका प्रधान चमकीला मणि, शङ्करजीके सिरका मणि, तरुण कामदेवरूपी सर्पके मस्तकका मणि, कामदेवकी पत्नीकी करधनीका मणि और चकोर पक्षीकी सभाके लिये चिन्तामणि बनकर उदय हो रहा है ॥ ८५ ॥ समुद्रपर पड़ती हुई चाँदनी इस समय ऐसी जान पड़ती है मानो समुद्र अपनी तरङ्गरूपी उँगलियोंसे फेनरूपी चन्दन घिस रहा हो और चन्द्रमा अपने किरणरूपी हाथोंसे उठा-उठाकर दिशारूपी नायिकाओंके शरीरपर उसका लेप कर रहा हो ॥ ८६ ॥ संसारकी आँखोंको अमृतके समान सुख देनेवाला, संसारको मथनेवाली कामाग्निके लिये खूँटेका टुकड़ा, दिशाओंको खोलनेकी कुञ्जी, वीरोंकी गिनतीमें कामदेवको पहला बतानेवाली रेखा तथा मृगनयनी नवेलियोंके लिये शत्रुताका बीज यह अत्यन्त आनन्द देनेवाला चन्द्रमा उदय हो रहा है ॥८७॥ चन्द्रमामें जिसे आप कलङ्क समझते हैं वह कलङ्क नहीं वरन् विष्णुकी देहका साँवलापन है क्योंकि तीनों लोकोंका सन्ताप दूर करनेके लिये, मेघोंकी-सी परम सुन्दर कान्तिवाले परम पवित्र विष्णु भगवान् ही तो बहुत बनठनकर चन्द्रमाके रूपमें उदय हुए हैं। यही साँवलापन उनकी पहचान है जिसे देखकर कुमुद-समूह पृथ्वी-मंडल) खिल उठता है ॥ ८८ ॥ अपने पतियोंके साथ बैठी हुई जिन सुन्दर नेत्रवाली युवतियोंकी देहपर कामसे उत्पन्न स्वेदजल (पसीने) की बूँदें निकल रही थीं उनके सामने जब चन्द्रकान्त मणिसे बनी पुतलियोंपर चन्द्रमाकी किरण पड़नेसे जलकी बूँदें छा गई तो उन पुतलियोंको देखकर स्त्रियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये हमारी सौतें कहाँसे निकल आईं ॥८९॥ चन्द्रमा पहले एक कला लेकर उदय हुआ, फिर आधा दिखाई दिया और इसके पश्चात् वह पूरा गोल

तु द्युतिशालिनोऽपि सहसोपचयम् ॥ ६० ॥ प्रथममरुणच्छायस्तावत्ततः कनकप्रभस्तदनु विरहोत्ताम्यत्तन्वीकपोलतलद्युतिः। उदयति ततो ध्वान्तध्वंसक्षमः क्षणदामुखे सरसबिसिनीकन्दच्छेदच्छविर्मृगलाञ्छनः ॥ ६१ ॥ प्रसारणपरैः करैः प्रकटितानुरागोदये सुधाकिरणकामुके त्वरितमम्बरालम्बिनी। तदा विगलितोल्लसत्तिमिरजालनीलांशुका पुरन्दरदिगङ्गना पुलकितेव तारागणैः ॥ ६२ ॥ प्राचीनाचलचुम्बिचन्द्रमणिभिर्निर्व्यूढपाद्यं निजैर्निर्यासैरुडुभिर्निजेन वपुषा दत्तार्घलाजाञ्जलि। अन्तःप्रौढकलङ्कतुच्छमभितः सान्द्रं परिस्तीर्यते बिम्बादङ्कुरभग्ननैशिकतमःसन्दोहमिन्दोर्महः ॥६३॥ प्राचीभागे सरागे धरणिविरहिणीक्लान्तवक्त्रे समुद्रे निद्रालौ नीरजालौ विकसति कुमुदे निर्विकारे चकोरे। आकाशे सावकाशे तमसि शममिते नागलोके सशोके कन्दर्पे मन्ददर्पे वितरति किरणाञ्शर्वरीसार्वभौमः ॥६४॥ प्राणायामोपदेष्टा सरसिरुहमुनेर्यौवनोन्मादलीलागोष्ठीनां पीठमर्दस्त्रिभुवनवनितानेत्रयोः प्रातराशः। कामायुष्टोमयज्वा शमितकुमुदिनीमौनमुद्रानुरागः शृङ्गाराद्वैतवादी प्रभवति भगवानेषु पीयूषभानुः ॥ ६५ ॥ प्रेरितः शशधरेण करौघः संहतान्यपि नुनोद तमांसि। क्षीरसिन्धुरिव मन्दरभिन्नः काननान्यविरलोच्चतरूणि ॥ ६६ ॥ प्लुष्टानां सखि चण्डांशुदुःसहोद्दीप्तदीप्तिभिः। सुधांशुर्जगतां दाहं निराकर्तुमुपस्थितः ॥ ६७ ॥ भवनोदरेषु परिमन्दतया शयितोऽलसः स्फटिकयष्टिरुचः। अवलम्ब्य जालकमुखोपगतानुदतिष्ठदिन्दुकिरणान्मदनः ॥ ६८ ॥ भानावभ्युदिते तथा मयि गते किं स्यान्मम प्रेयसी हा हेत्यस्तमितः शशी रसवशादिन्दीवरिण्याः स्मरन्। सोऽयं सम्प्रति नीलिमाङ्कितितनुस्तस्माद् रीदृश्यते ये वै यत्किल संस्मरन्ति चरमे तद्रूपमेष्यन्ति ते ॥ ६९ ॥ भूयस्तराणि

हो गया। ठीक है, तेजस्वी लोग भी अचानक बहुत बड़े नहीं हो जाते, उनकी भी उन्नति धीरे-धीरे ही होती है ॥ ६० ॥ अन्धकारका नाश करनेवाला और रसभरी कमलिनीकी जड़के टुकड़के समान उजला चन्द्रमा रातके पहले पहरमें कुछ-कुछ लाल, फिर सुनहरा और उसके पश्चात् विरहिणीके गालके समान हलका पीलापन लेकर उदय हो रहा है ॥ ६१ ॥ चन्द्रमारूपी कामीने अपने किरणरूपी हाथ चलाकर ललाईरूपी प्रेम प्रकट करके जब शीघ्रतासे अम्बर (आकाश, वस्त्र) पकड़कर खींचा उस समय इन्द्रकी प्यारी पूर्व दिशारूपी नायिकाके शरीरसे चमकीले अँधेरेरूपी काले वस्त्र खिसक गए और वह ऐसी प्रतीत हुई मानो तारोंके रूपमें उसके रोएँ उठ खड़े हुए हों ॥ ६२ ॥ उदयाचलको चूमनेवाली चन्द्रकान्त मणियाँ (चाँदनी पड़नेसे रिसनेवाले अपने जलसे) जिसे पैर धोनेको जल दे रही हैं, निकलकर चारों ओर छिटके हुए तारे भी धानकी खीलें बनकर जिसे अर्घ्य दे रहे हैं और जिसकी किरणें रातके अँधेरेको पूरा मिटा चुकी हैं वह चन्द्रमाकी चाँदनी उस चन्द्रमण्डलसे निकलकर चारों ओर फैल रही है जिसके भीतरकी कालिमा ऐसी लगती है मानो वह बीचसे खोखला हो ॥ ६३ ॥ जिसके आते ही पूर्व दिशारूपी नायिका रागयुक्त (लाल, प्रेमपूर्ण) हो गई, विरहिणी पृथ्वीके दुःखसे समुद्रके मुखपर झुर्रियाँ (लहरें) पड़ गईं, कमल सो गए, कुमुदिनियाँ खिल गईं, चकोर प्रसन्न हो गए, आकाश स्वच्छ हो गया, अन्धकार नष्ट हो गया, सर्प व्याकुल हो गए और कामदेवका घमंड टूट गया वह रात्रिका स्वामी सम्राट् चन्द्रमा अपनी किरणें चारों ओर फैलाने लगा ॥ ६४ ॥ कमलरूपी मुनिको प्राणायामका उपदेश देनेवाले (मुरझानेवाले) यौवनके मदकी लीलाओंके सहायक, तीनों लोकोंकी युवतियोंके नेत्रोंके कलेवा, कामायुष्टोम (काम उत्पन्न करनेवाला) यज्ञ करनेवाले, शान्त कुमुदिनीकी मौन मुद्राके अनुराग, शृङ्गारके साथ अद्वैत माननेवाले (घुल-मिलकर रहनेवाले) और अमृतमयी किरणोंवाले भगवान् चन्द्रमा उदय हो रहे हैं ॥ ६५ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंने घने अँधेरेको इसी प्रकार मिटा दिया है जैसे मन्दराचलसे मथकर हिलोड़े जाते समय क्षीर-समुद्रने बड़े - बड़े घने वृक्षोंवाले वनोंको उजाड़ दिया था ॥ ६६ ॥ हे सखी ! सूर्यकी असहनीय किरणोंके तापसे जले हुए संसारका दाह दूर करनेके लिये ही यह अमृतभरी किरणोंवाला चन्द्रमा आ पहुँचा है ॥ ६७ ॥ भवनोंके भीतर अँधेरा पाकर वहाँ सोया हुआ और आलस्यसे भरा हुआ कामदेव, खिड़कियोंमेंसे होकर भीतर पड़ती हुई स्फटिककी छड़ियोंके समान चमकती हुई चन्द्रमाकी किरणोंका सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ ॥ ६८ ॥ चन्द्रमा यही स्मरण करता हुआ अस्त हुआ था कि 'सूर्यके उदय होनेपर और मेरे चले जानेपर मेरी प्रेयसी नीली कमलिनीका क्या होगा !' इसीलिये उसका हृदय काला पड़ गया है क्योंकि अन्तिम समय जो जिसे

यदमूनि तमस्विनीषु ज्यौत्स्नीषु च प्रविरलानि ततः प्रतीमः। सन्ध्यानलेन भृशमम्बरमूषिकायामावर्तितैरुडुभिरेव कृतोऽयमिन्दुः ॥ १०० ॥ मनोजराजस्य सितातपत्रं श्रीखण्डचित्रं हरिदङ्गनायाः। विराजति व्योमसरःसरोजं कर्पूरपूरप्रभमिन्दुबिम्बम् ॥ १०१ ॥ मयूखनखरत्रुटत्तिमिरकुम्भिकुम्भस्थलोच्छलत्तरलतारकागणविकीर्णमुक्तागणः। पुरन्दरहरिद्दरीकुहरगर्भसुप्तोत्थितस्तुषारकरकेसरी गगनकाननं गाहते ॥१०२॥ मानिनीजनविलोचनपातानुष्णबाष्पकलुषान्प्रतिगृह्णन्। मन्दमन्दमुदितः प्रययौ खं भीतभीत इव शीतमयूखः ॥ १०३ ॥ मृगराजकरजभङ्गुरकिंशुककुसुमावतंसिकाः सुदृशः। भयसङ्कुचदङ्कमृगं बहलोज्ज्वलमिन्दुमीक्षन्ते ॥ १०४ ॥ मृगाङ्कोऽयं धत्ते गगनजलतः फेनतुलनां सितच्छत्राकारां मदननृपतेर्विश्वजयिनः। त्रियामारामायां मलयजविशेषप्रतिकृतिं जगद्धात्रीदेव्या मणिमुकुटलक्ष्मीञ्च विमलाम् ॥ १०५ ॥ यं प्राक्प्रत्यगवागुदञ्चि ककुभां नामानि सम्बिभ्रतं ज्योत्स्नाजालझलज्झलाभिरभितो लुम्पन्तमन्धं तमः। प्राचीनादचलादितस्त्रिजगतामालोकबीजाद्बहिर्निर्यान्तं हरिणाङ्कमङ्कुरमिव द्रष्टुं जनो जीवति ॥ १०६ ॥ यः कालागरुपत्रभङ्गरचनावासैकसारायते गौराङ्गीकुचकुम्भभूरिसुभगाभोगे सुधाधामनि। विच्छेदानलदीपितोत्कवनिताचेतोऽधिवासोद्भवं सन्तापं विनिनीषुरेष विततैरङ्गैर्नताङ्गि स्मरः ॥ १०७ ॥ यः श्रीखण्डतमालपत्रति दिशः प्राच्या स्मरक्ष्मापतेः पाण्डुच्छत्रति दन्तपत्त्रति वियल्लक्ष्मीकुरङ्गीदृशः। केलिश्वेतसहस्रपत्त्रति रतेः किञ्च क्षपायोपितः क्रीडाराजतसीधुपात्रति शशी सोऽयं जगन्नेत्रति ॥ १०८ ॥ यत्पीयूषमयूखमालिनि तमःस्तोमावलीढायुषां नेत्राणामपमृत्युहारिणि पुरः सूर्योढ एवातिथौ। अम्भोजानि पराञ्चि तन्निजमघं दत्त्वैव

स्मरण करता है, अगले जन्ममें उसे वैसा ही रूप मिल जाता है ॥९९॥ छिटकी हुई चाँदनीवाली रातोंमें जो ये छिट-फुट तारे दिखाई पड़ते हैं इससे हमारी समझमें यही आता है कि सन्ध्यारूपी अग्निने ढेरसे तारोंको आकाशरूपी साँचेमें ढालकर ही यह चन्द्रमा बना डाला है ॥ १०० ॥ कामदेवके उजले छत्रके समान, दिशारूपी नायिकाके स्तनोंपर मलय चन्दनसे बने हुए चित्रके समान, आकाशरूपी सरोवरके कमलके समान और कपूरके ढेरके समान उजला चन्द्र-बिम्ब चमक रहा है ॥१०१॥ इन्द्रकी प्यारी पूर्व दिशारूपी कन्दराके भीतर सोकर उठा हुआ, अपने किरणरूपी नखोंसे अन्धकाररूपी हाथीका मस्तक फाड़कर उससे निकले हुए चञ्चल ताररूपी मोती बिखेरता हुआ यह शीतल किरणोंकी अयालोंवाला चन्द्रमारूपी सिंह आकाशरूपी वनमें विचरण कर रहा है ॥ १०२ ॥ यह ठण्ढी किरणोंवाला चन्द्रमा रूठी हुई नायिकाओंकी आँखोंसे ढले हुए कुछ-कुछ गरम आँसूरूपी पापोंके बोझसे डरे हुएके समान धीरे-धीरे आकाशमें उदय हुआ ॥ १०३ ॥ मृगराज (सिंह) के नखोंके समान दिखाई पड़नेवाले टेसूके फूलोंसे सजी हुई सुनयनी नवेलियाँ उस अत्यन्त उजले चन्द्रमाको देख रही हैं जिसकी गोदमें मृग डरके मारे सिकुड़ा जा रहा है ॥ १०४ ॥ यह चन्द्रमा आकाशरूपी जलके फेनके समान, सारे संसारपर विजय पाए हुए कामदेवरूपी राजाके उजले छत्रके समान, रात्रिरूपी नायिकाकी छातीपर चन्दनके लेपके समान और पृथ्वीरूपी देवीके स्वच्छ मुकुटकी मणिके समान सुन्दर प्रतीत हो रहा है ॥१०५॥ जो चन्द्रमा दिशाओंके पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण नाम धारण करता है, चाँदनी बिखेरता है, किरणोंसे चारों ओर घिरे हुए अँधेरेको नष्ट करता है तथा प्रकाशके बीजरूपी उदयाचलसे निकलते हुए अंकुरके समान लगता है उसे देखनेके लिये ही मानो सारा संसार जी रहा है ॥१०६॥ हे झुके हुए अङ्गोंवाली! काले अगरकी चित्रकारीमें निवास करनेवाला यह कामदेव, गोरी-गोरी नवेलियोंके घड़ों जैसे अत्यन्त सुन्दर स्तनोंके समान तथा अमृतमय प्रकाशवाले चन्द्रमामें भी, अपने हाथ (किरण) फैला-फैलाकर वियोगाग्निसे कष्ट पाती हुई नवेलियोंके जी जलानेवाली आग भरे दे रहा है ॥ १०७ ॥ पूर्व दिशाके मलय चन्दन और तमालके पत्तोंके समान, कामदेवरूपी राजाके पीले छत्रके समान, हिरनके समान आँखोंवाली आकाशकी लक्ष्मीके दन्तपत्र (कर्णफूल) के समान, रतिके हाथोंमें खेलके लिये लिए हुए श्वेत कमलके समान और रात्रिरूपी नायिकाकी क्रीड़ामें चाँदीके मद्यपात्रके समान प्रतीत होनेवाला यह चन्द्रमा आज संसारका नेत्र बन रहा है ॥ १०८ ॥ सूर्यने जो अमृतमयी किरणोंवाला तथा घने अँधेरेके कारण दम घुटकर मरनेवाले नेत्रोंको अकाल मौतसे बचानेवाला अतिथि बुलाया उसके आनेपर इन कमलोंने आँखें मूँदकर जो उसका अनादर किया उसके कारण चन्द्रमाने अपना पाप कमलोंको दे दिया और उनके पुण्य लेकर यह यज्ञोंका स्वामी चन्द्रमा गोरी

तेभ्यस्ततो गौराङ्गीवदनोपमासुकृतमादत्ते पतिर्यज्वनाम् ॥ १०९ ॥ यथा ताराचक्रं चरति परितः शीकरनिभं कलङ्कव्याजेन स्फुरति यदयं धूमनिवहः। तथा मन्ये चण्डीपतिनयनचण्डाग्निवशगश्चकारास्मिन्झम्पां हिमकरतटाके मनसिजः ॥ ११० ॥ यातस्यास्तमनन्तरं दिनकृतो वेषेण रागान्वितः स्वैरं शीतकरः करं कमलिनीमालिङ्गितुं योजयन्। शीतस्पर्शमुपेत्य सम्प्रति तया रुद्धे मुखाम्भोरुहे हासेनेव कुमुद्वतीवनितया वैलक्ष्यपाण्डूकृतः ॥ १११ ॥ युगपद्विकासमुदयाद्गमिते शशिनः शिलीमुखगणोऽलभत। द्रुतमेत्य पुष्पधनुषो धनुषः कुमुदेऽङ्गनामनसि चावसरम् ॥ ११२ ॥ ये पूर्वं यवसूचिसूत्रसुहृदो ये केतकाग्रच्छदच्छायासाम्यभृतो मृणाललतिकालावण्यभाजोऽत्र ये। ये धाराम्बुविडम्बिनः क्षणमथो ये तारहारश्रियस्तेऽमी स्फाटिकदण्डडम्बरजितो जाताः सुधांशोः कराः ॥ ११३ ॥ रक्तभावमपहाय चन्द्रमा जात एव परिशुद्धमण्डलः। विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मलप्रकृतिषु स्थिरोदया ॥ ११४ ॥ रक्तोऽयं क्षणदाप्रियः समुदितो व्योम प्रपद्याभितो विश्वं वीक्ष्य च पद्मिनीमुखरसं लुब्धः प्रपातुं चिरम्। निद्राणां वहुधा करैः परिमृशन्स्वायत्ततामक्षमो नेतुं पाण्डुरतां दधत्कुमुदिनीमाराधयन्सक्षणः ॥ ११५ ॥ रजनीमवाप्य रुचमाप शशी सपदि व्यभूषयदसावपि ताम्। अविलम्बितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमच्चरितम् ॥ ११६ ॥ रुद्धनिर्गमनमादिनक्षयात्पूर्वदृष्टतनुचन्द्रिकास्मितम्। एतदुद्गिरति रात्रिचोदिता दिग्रहस्यमिव चन्द्रमण्डलम् ॥ ११७ ॥ लक्ष्मीक्रीडातडागो रतिधवलगृहं दर्पणो दिग्वधूनां पुष्पं श्यामालतायास्त्रिभुवनजयिनो मन्मथस्यातपत्रम्। पिण्डीभूतं हरस्य स्मितममरसरित्पुण्डरीकं मृगाङ्को ज्योत्स्नापीयूषवापी जयति सितवृषस्तारकागोकुलस्य

नवेलियोंके मुँहकी बराबरी पानेका पुण्य भोग रहा है ॥ १०९ ॥ मेरी समझमें तो यह आता है कि चण्डीपति भगवान् शङ्करके तीसरे नेत्रकी अग्निसे जब कामदेव जल उठा तब वह इस चन्द्रमारूपी तालाबमें कूद पड़ा, उसका धुआँ ही इसमें कलङ्क बन गया है और कामदेवके कूदनेसे उड़ी हुई बूँदें आज भी इसके चारों ओर तारोंके रूपमें छिटकी हुई हैं ॥ ११० ॥ सूर्यके अस्त हो जानेपर उसका रूप धरकर अनुराग-भरे (लाल) चन्द्रमाने बड़ी चाहसे कमलिनीका आलिङ्गन करनेके लिये ज्यों ही हाथ बढ़ाया त्योंही उसके ठण्डे हाथों (किरणों) का स्पर्श पाकर कमलिनीरूपी नायिकाका सुन्दर मुख सङ्कुचित हो गया। यह देखकर चन्द्रमाकी कुमुदिनीरूपी पत्नी हँस पड़ी और उस हँसीके कारण चन्द्रमा लजाकर पीला पड़ गया ॥ १११ ॥ चन्द्रमाके उदय होनेपर कामदेवके धनुषका कुमुद और युवतियोंके मन दोनों एक साथ विकसित हुए और इन दोनोंपर झटपट भौंरे और बाणोंने पहुँचकर अपना स्थान और अपने लक्ष्य साध लिए ॥ ११२ ॥ जो किरणें पहले जौकी नोकके समान, फिर केतकीके नुकीले सिरेके समान, उसके पश्चात् कमलकी नालके समान, तब जलकी धाराके समान और अन्तमें चञ्चल हारके समान वहीं वे ही चन्द्रमाकी किरणें अब स्फटिकके डण्डेकी शोभा जीतनेवाली हो गई हैं ॥ ११३ ॥ अब चन्द्रमा अपनी लाली छोड़कर स्वच्छ हो गया है। सत्य ही है शुद्ध स्वभाववालोंमें जो समयके दोषसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं वे बहुत दिनोंतक नहीं ठहर पाते ॥ ११४ ॥ रातके प्रियतम चन्द्रमाने (प्रेमसे भरकर, लाल होकर), उदय होकर, आकाशमें चारों ओर घूमकर सारे संसारको सोता देखकर कमलिनीके अधरोंका रस देरतक पीनेके लिये ललचाकर अपनी किरणों (हाथों) से उसे अपने वशमें लानेका बड़ा उपाय करनेपर भी सफलता नहीं पाई तब वह उदास (पीला) पड़ गया और तुरन्त ही कुमुदिनीको मनाने लगा ॥ ११५ ॥ रात्रिके कारण चन्द्रमामें चमक आ गई अतः उस चमकीले चन्द्रमाने भी रात्रिरूपी नायिकाको सजा दिया। ठीक भी है, बड़े लोग शीघ्र ही एक दूसरेके उपकारका बदला चुका देते हैं ॥ ११६ ॥ दिन डूबनेतक जो निकल नहीं पा रहा था और पहलेसे ही जिसकी थोड़ी-सी चाँदनीरूपी मुस्कराहट दिखाई दे रही थी ऐसे चन्द्रमण्डलको रात्रिकी प्रेरणा पाकर पूर्व दिशाने ऐसे बाहर निकाला मानो कोई रहस्य खोल रही हो ॥ ११७ ॥ लक्ष्मीकी क्रीड़ाका सरोवर, कामदेवकी पत्नीका स्वच्छ घर, दिशारूपी नायिकाओंका दर्पण, श्यामा नामकी लताका फूल, तीनों लोक जीत लेनेवाले कामदेवका छत्र, शिवजीकी मुसकानका इकट्ठा किया हुआ पिण्ड, देवताओंकी नदीका कमल, किरणरूपी अमृतकी बावड़ी और तारेरूपी गौओंके समूहका उजला साँड़-रूपी चन्द्रमा चारों ओर विजय पा रहा है ॥ ११८ ॥ जिस प्रकार वाराहावतारमें विष्णुने अपने सोनेके टङ्कके समान सुनहरे दाँतोंसे पृथ्वी-मंडलको

॥११८॥ लेखया विमलविद्रुमभासा सन्ततं तिमिरमिन्दुरुदासे। दंष्ट्रया कनकटङ्कपिशङ्ग्या मण्डलं भुव इवादिवराहः ॥ ११९ ॥ लोचनैर्न कुमुदं स्म पीयते चन्द्रिकातपतिरोहितच्छदम्। प्रादुरास परमुत्पिवन्नलिः सौरभं निरवलम्बमम्बुनि ॥ १२० ॥ वसुधान्तनिःसृतमिवाहिपतेः पटलं फणामणिसहस्ररुचाम्। स्फुरदंशुजालमथ शीतरुचः ककुभं समस्कुरुत माघवनीम् ॥ १२१ ॥ विद्यापीठं स्मरस्य त्रिपुरहरजटावल्लिसन्तानवानप्रस्थो मानद्रुमाणामुपशमपरशुः पांसुलावन्दिकारः। नेत्राणां बन्धुरन्धुर्गगनमरुभुवः कोकलोकप्रणादस्वाध्यायाध्यापकोऽयं विलसति कुलटाकालपाशो हिमांशुः ॥ १२२ ॥ विशदप्रभापरिगतं विवभावुदयाचलव्यवहितेन्दुवपुः। मुखमप्रकाशदशनं शनकैः सविलासहासमिव शक्रदिशः ॥ १२३ ॥ वीथीषु वीथीषु विलासिनीनां मुखानी संवीक्ष्य शुचिस्मितानि। जालेषु जालेषु करं प्रसार्य लावण्यभिक्षामटतीव चन्द्रः ॥ १२४ ॥ व्यानशे शशधरेण विमुक्तः केतकीकुसुमकेसरपाण्डुः। चूर्णमुष्टिरिव लम्भितकान्तिर्वासवस्य दिशमंशुसमूहः ॥ १२५ ॥ शङ्करार्धतनुबद्धपार्वतीकुङ्कुमाक्तकुचकोरकाकृतिः। सूच्यते कमलिनीभिरुन्नमत्पद्मकोशकरलीलया शशी ॥ १२६ ॥ शारतां गमितया शशिपादैश्छायया विटपिनां प्रतिपेदे। न्यस्तशुक्लबलिचित्रतलाभिस्तुल्यता वसतिवेश्ममहीभिः ॥ १२७ ॥ शीतांशुस्फटिकालवालवलयप्रागुल्लसत्कौमुदीवल्लीनूतनपल्लवाञ्चितमिव प्राप्य क्षणं ताम्रताम्। चञ्चन्मत्तचकोरचञ्चुघटनाच्छिन्नाग्रकाण्डस्रुतक्षीरस्यन्दनिरन्तराप्लुतमिव श्वेतं वियद्भासते ॥ १२८ ॥ शुचीनां हंसानां हरति मलिनानां मधुलिहां मनो वेश्यादेश्या द्रविणमखिलं या कमलिनी। तमस्येवाद्रव्ये भवति विमुखी तच्छ्रियमसौ कलावानादत्ते प्रथममनुरागप्रकटनैः ॥ १२९ ॥ शेतेऽद्यापि न पद्मिनी कुमुदिनी सान्तःस्मिता वर्तते रागात्किञ्चन किञ्चिदेव गण-

---

ऊपर उठा लिया था उसी प्रकार चन्द्रमाने चमकते हुए मूँगोंकी कान्तिवाली किरणोंसे अँधेरा दूर कर दिया ॥११९॥ यद्यपि पूरी चाँदनी न पड़नेसे मुँदे हुए कुमुदोंका शोभा देखनेमें नहीं आ रही थी किन्तु उनकी गन्ध पीता हुआ भौंरा बिना सहारे ही जलके ऊपर मँडराने लगा ॥१२०॥ शेषनागके सहस्रों फणोंकी मणियोंकी चमक लेकर, पृथ्वीको फोड़कर निकले हुए कान्तिपुञ्जके समान चन्द्रमाकी किरणोंने पूर्व दिशाकी शोभा बढ़ाई ॥१२१॥ कामदेवका विद्यालय, शिवजीकी जटाओंमें वानप्रस्थ आश्रम बितानेवाला, नवेलियोंके मानरूपी वृक्षोंको काटनेका फरसा, व्यभिचारिणी स्त्रियोंका कारागार, नेत्रोंका हितैषी, आकाशरूपी मरुस्थलका मतीरा, चकवे चकवियोंको बोलना सिखानेवाला अध्यापक तथा कुलटा स्त्रियोंका कालपाश चन्द्रमा बड़ी शोभा पा रहा है ॥ १२२ ॥ सुन्दर चमक-दमकके साथ उदयाचलमें छिपे हुए चन्द्रमाका शरीर ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्द्रकी प्यारी पूर्व दिशाका वह हाव-भावसे भरी मुसकानसे सजा हुआ मुख हो जिसमें दाँत न दिखाई देते हों ॥ १२३ ॥ चन्द्रमाकी फैली हुई किरणें (हाथ) ऐसी जान पड़ती हैं मानो वह गली-गलीमें रमणियोंके पवित्र मुसकान-भरे मुख देखकर उनकी खिड़कियोंके आगे अपने हाथ (किरण) फैला-फैलाकर उनसे सौन्दर्यकी भिक्षा माँग रहा हो ॥ १२४ ॥ केवड़ेके फूलके परागके समान पीली तथा दूरतक फैली हुई चन्द्रमाकी किरणें ऐसी जान पड़ती हैं मानो इन्द्रकी प्यारी पूर्व दिशाकी चमकको और अधिक चमकानेके लिये चन्द्रमाने मुट्ठीमें भरकर चूर्ण फेंक दिया हो ॥ १२५ ॥ अर्धनारीश्वर भगवान् शङ्करजीके आधे शरीरमें पार्वतीजीके कुङ्कुम - पुते स्तनके समान कलीके आकारवाले चन्द्रमाकी ओर कमलकी नालें अपने कमलके कोपरूपी हाथ उठा-उठाकर दिखा रही हैं ॥ १२६ ॥ वृक्षोंकी शाखाओंमेंसे छनकर आती हुई चन्द्रमाकी किरणें पृथ्वीपर पड़ी हुई ऐसी जान पड़ती हैं मानो अनेक रङ्गोंसे चीती हुई भवनोंके भीतरकी भूमि हो ॥ १२७ ॥ चन्द्रमारूपी स्फटिकके थाँवलेकी गोलाईमें निकली नई चाँदनीरूपी लताके नये पत्तोंके समान जो यह आकाश थोड़ी देरके लिये ताँबेके रङ्गका (लाल) हो गया है उससे ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमारूपी थाँवलेमें उगी हुई चाँदनीरूपी लताकी कोंपलोंमें चकोरकी चोंच लग जानेसे जो दूध बहा है उसीसे आकाश स्वच्छ दिखाई दे रहा है ॥ १२८ ॥ जो कमलिनी-रूपी वेश्या पवित्र हंसोंका मन और दुष्ट भौंरोंका सारा धन लूटे बैठी थी, वह जब तम (अन्धकार, बुढ़ापे) के कारण विमुखी (मुरझाई हुई, कुरूपा) हो गई और उसे धन भी मिलना बन्द हो गया तब कलावान् (चन्द्रमा, चंट-धूर्त्त) उससे अनुराग (ललाई,प्रेम) दिखा-दिखाकर उसकी सारी बटोरी हुई श्री (शोभा, संपत्ति) लूटे ले रहा है ॥१२९॥ अभी कमलिनियाँ सोई नहीं थीं, कुमुदिनी भी भीतर ही भीतर मुसकरा रही थी कि इसी बीच चन्द्रमाको लाल होकर (प्रेमपूर्वक) धीरे-धीरे अपनी कमलनाल-सी कोमल

यत्येष स्पृशत्यम्बरम्। इत्युद्भिन्नमृणालकोमलकरे शीतद्युतौ तत्क्षणाद्यामिन्या नवयोषितेव शमितो दीप्तस्त्विषामीश्वरः ॥ १३० ॥ श्लिष्यतः प्रियवधूरुपकण्ठं तारकास्ततकरस्य हिमांशोः। उद्धमन्नभिरराज समन्तादङ्गराग इव लोहितरागः ॥ १३१ ॥ संरम्भोद्रिक्तनक्तंसमयदशमुखोच्चण्डदोर्दण्डहेलाकैलासः सप्तलोकीजयमुदितमनोजन्मवादित्रशङ्खः। लोलाक्षीगण्डपालीलवणिमजलधेरुद्गतः फेनपिण्डः पश्य व्योमावकाशं विशति विरहिणां दत्तशङ्कः शशाङ्कः ॥ १३२ ॥ संविधातुमभिषेकमुदासे मन्मथस्य लसदंशुजलौघः। यामिनीवनितया ततचिह्नः सोत्पलो रजतकुम्भ इवेन्दुः ॥१३३॥ सद्यश्चन्दनपङ्कपिच्छिलमिव व्योमाङ्गणं कल्पयन्पश्यैरावतकान्तदन्तमुसलच्छेदोपमेयाकृतिः। उद्गच्छत्ययमच्छमौक्तिकलताप्रालम्बलम्बैः करैर्मुग्धानां स्मरलेखवाचनकलाकेलिप्रदीपः शशी ॥ १३४ ॥ समुन्मीलत्पूर्वाचलशिखरदूर्वावनमृगीपरीरम्भक्रीडारसपुलकितोत्सङ्गहरिणः। पुलिन्दीकन्दर्पक्लममपनयन्नंशुपटलैः पतिर्नक्षत्राणां अहह भगवानभ्युदयते ॥ १३५ ॥ स श्रीकण्ठकिरीटकुट्टिमपरिष्कारप्रदीपाङ्कुरो देवः कैरवबन्धुरन्धतमसप्राग्भारकुक्षिम्भरिः। सँस्कर्ता निजकान्तिमौक्तिकमणिश्रेणीभिरेणीदृशां गीर्वाणाधिपतेः सुधारसवतीपौरोगवः प्रोदगात् ॥ १३६ ॥ सायं नायमुदेति वासरमणिश्चन्द्रो नु चण्डद्युतिर्दावाग्निः कथमम्बरे किमशनिः स्वाच्छान्तरिक्षे कुतः। हन्तेदं निरणायि पान्थरमणीप्राणानिलाशाशया धावद्घोरविभावरीविषधरीभोगस्य भीमो मणिः ॥ १३७ ॥ सुधयेव हरत्येष सन्तापं गृहिणां सदा। तदेव द्विजराजेति प्रथिताऽस्याभिधाऽभियः ॥ १३८ ॥ सुधारश्मिः सद्यस्तिमिरनिकरान्तं विरचयन्नलिन्देभ्यः स्यन्दं शशिमणिसमुत्थं च वितरन्। उदेत्यादौ रक्ताम्बुजसमरुचिः कैरववने प्रमोदं तन्वानो मधुप-

---

किरणें (हाथ) फैलाकर अम्बर (आकाश, वस्त्र) छूते देखकर रात्रिरूपी नायिकाने तत्काल तेजस्वी सूर्यरूपी दीपक बुझा दिया ॥ १३० ॥ चन्द्रमाके निकलनेपर चारों ओर छाई हुई ललाई ऐसी जान पड़ती है मानो अपनी प्यारी तारिकारूपी बहुओंको गले लगानेको जब चन्द्रमाने राग (ललाई, प्रेम) से अपने कर (किरण) फैलाए तो उससे चारों ओर अंगराग (कुङ्कुम) बिखर गया हो ॥ १३१ ॥ देखो, रातके समय विरहीजनोंको त्रास देनेवाला यह चन्द्रमा रावणके प्रचण्ड हाथोंसे खेल-खेलमें अचानक उछाले हुए कैलासके समान, सातों लोकोंकी विजयसे प्रसन्न कामदेवके शंखके समान तथा चंचल आँखोंवाली नायिकाके गालरूपी खारी समुद्रसे निकले हुए फेनके गोलेके समान दिखाई देता हुआ आकाशरूपी विस्तृत क्षेत्रमें प्रवेश कर रहा है ॥ १३२ ॥ कामदेवके राज्याभिषेकके लिये सुन्दर किरणरूपी जलसे भरे हुए, रात्रिरूपी नायिकाके हाथोंसे चीत-चीतकर सजाए हुए और मुँहपर कमल रक्खे हुए चाँदीके घड़ेके समान यह चन्द्रमा बड़ा शोभा दे रहा है ॥ १३३ ॥ देखो, चन्दनके चोवेसे आकाशरूपी आँगनमें फिसलन भरता हुआ, ऐरावत हाथीके सुन्दर दाँतरूपी मूसलके टुकड़ेके समान दिखाई देनेवाला और कामदेवके लेख पढ़नेकी कलाके लिये क्रीडादीपरूपी यह चन्द्रमा स्वच्छ मोतियोंकी लड़ीके समान दिखाई पड़नेवाले अपने घुटनोंपर लम्बे किरणरूपी हाथोंसे सहारा लेकर ऊपर आकाशमें चढ़ रहा है ॥१३४॥ चाँदनीसे खिले हुए उदयाचलकी चोटीके दूबके वनमें खड़ी हुई मृगीका आलिङ्गन करनेके आनन्दसे जिन चन्द्रमाकी गोदमें बैठा हरिन पुलकित हो रहा है वे नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमा अपनी किरणोंसे नवेली भीलनीकी कामक्रीड़ाकी थकावट मिटाते हुए उदय हो रहे हैं ॥ १३५ ॥ शिवजीके मुकुटमें जड़े रत्नको चमकानेवाले दीवेकी लौ, कुमुदोंको खिलानेवाला, अँधेरेकी रीती कोख भरनेवाला, अपनी चमकीली मोती और मणिकी पाँतोंके समान किरणोंसे मृगनयनी नवेलियोंका श्रृङ्गार करनेवाला तथा देवराज इन्द्रके अमृतके रसोईघरका स्वामी चन्द्रमा उदय हो गया ॥ १३६ ॥ किसी पथिककी प्रियाने चन्द्रमाको देखकर अपने मनमें सोचा कि 'सायंकाल सूर्य उदय नहीं होता, चन्द्रमाकी किरणें गरम नहीं होतीं, जंगलकी अग्नि आकाशमें उड़ती नहीं और वज्र भी स्वच्छ आकाशमें नहीं होता' अतः जीवित रहनेकी आशा बनाए रखनेके लिये उसने यही निश्चय किया कि हो न हो, यह दौड़ती हुई रात्रिरूपी नागिनके फणका बड़ा-सा मणि ही होगा ॥१३७॥ यह चन्द्रमा अपने अमृतसे सदा गृहस्थोंका सन्ताप हरता रहता है इसीलिये मानो सब लोग इसे 'द्विजराज' (ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ) कहने लगे। यह ठीक ही है ॥ १३८ ॥ क्षणभरमें अन्धकारके समूहको मिटाता हुआ, चारों ओर चन्द्रकान्त मणिसे रिसती हुई जलकी बूँदें छिड़कता हुआ, कुमुदके

वनितागीतिमधुरम् ॥ १३६ ॥ स्वर्गामामृतपानचारुचषकं किं कामदेवाङ्गनाक्रीडाकन्दुक एष किं सुरनदीडिण्डीरपिण्डः किमु। किं छत्रं स्मरभूपतेः किमु यशः पुञ्जं पुरस्तादिदं चेतःसंशयकारकं समुदितं शीतद्युतेर्मण्डलम् ॥ १४० ॥ स्वैरं कैरवकोरकान्विदलयन्यूनां मनो दोलयन्नम्भोजानि निमीलयन्मृगदृशां मानं समुन्मूलयन्। ज्योत्स्नां कन्दलयन्दिशो धवलयन्नम्भोधिमुद्वेलयन्कोकानाकुलयँस्तमः कवलयन्निन्दुः समुज्जृम्भते॥१४१॥ हंसो यथा राजति पञ्जरस्थः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः। वीरो यथा दर्पितकुञ्जरस्थश्चन्द्रोऽपि वभ्राम तथाम्बरस्थः ॥ १४२ ॥

सकलङ्कचन्द्रवर्णनम्—अङ्कं केऽपि शशङ्किरे जलनिधेः पङ्कं परे मेनिरे सारङ्गं कतिचिच्च सञ्जगदिरे भूच्छायमैच्छन्परे। इन्दोर्यद्दलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दरीदृश्यते तत्सान्द्रं निशि पीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमाचक्ष्महे ॥ १ ॥ अच्छप्रकाशवति चन्द्रमसि प्रियेऽस्मिन्नाह्लादकारिणि सुधावति पूर्णबिम्बे। धाता विचिन्त्य मनसाखिलदृष्टिपातं हर्तुं चकार किमु कज्जलविन्दुयोगम् ॥ २ ॥ अत्रान्तरे च कुलटाकुलवर्त्मपातसञ्जातपातक इव स्फुटलाञ्छनश्रीः। वृन्दावनान्तरमदीपयदंशुजालैर्दिक्सुन्दरीवदनचन्दनविन्दुरिन्दुः ॥ ३ ॥ अयं पुरः पार्वणशर्वरीशः किं दर्पणोऽयं रजनीरमण्याः। यतस्तदीयं प्रतिबिम्बमस्मिन्सँल्लक्ष्यते लाञ्छनकैतवेन ॥ ४ ॥ अवाप्तः प्रागल्भ्यं परिणतरुचः शैलतनये कलङ्को नैवायं विलसति शशाङ्कस्य वपुषि। अमुष्येयं मन्ये विगलदमृतस्यन्दशिशिरे रतिश्रान्ता शेते रजनिरमणी गाढमुरसि ॥ ५ ॥ अस्तं गतवति सवितरि पायसपिण्डं सुधाकरं प्राची। विरचयदम्बरकुशभुवि चरति कलङ्कस्तदन्तरे काकः ॥ ६ ॥ आयताग्रसितरश्मिनिबद्धं लाञ्छनच्छवि-मषीरसदि-

---

वनोंमें भौंरियोंके गीतोंका सुमधुर रस फैलाता हुआ और निकलते समय लाल कमलके समान दिखाई देनेवाला चन्द्रमा अब ऊपर उठता जा रहा है ॥ १३९ ॥ देखनेवालोंके मनमें यह सन्देह उत्पन्न करते हुए चन्द्रमा उदय हुआ कि 'यह आकाशगङ्गाका अमृत पीनेके लिये सुन्दर प्याला है, या कामदेवकी पत्नीकी खेलनेकी गेंद है, या गङ्गाके फेनका गोला है या कामदेवरूपी राजाकी कीर्त्तिका ढेर है' ॥ १४० ॥ मनमाने ढङ्गसे कुमुदकी कलियाँ खिलाता हुआ, युवकोंके मन झुलाता हुआ, कमलोंको मुरझाता हुआ, हरिणके समान नेत्रोंवाली युवतियोंका मान नष्ट करता हुआ, चाँदनी बढ़ाता हुआ, दिशाओंको स्वच्छ करता हुआ, समुद्रको लहराता हुआ और चकवेको व्याकुल करता हुआ यह चन्द्रमा खिला पड़ रहा है (शोभा दे रहा है) ॥ १४१ ॥ जैसे पिंजड़ेमें बन्द हंस, पर्वतकी गुफामें बैठा हुआ सिंह और मतवाले हाथीपर बैठा हुआ वीर शोभा देता है वैसे ही आकाशमें निकला हुआ चन्द्रमा भी शोभाके साथ घूमने लगा है ॥ १४२ ॥

कलङ्कवाले चन्द्रमाका वर्णन : चन्द्रमाके भीतर जो इन्द्रनील-मणिकी कान्तिको भी नीचा दिखानेवाला साँवलापन है उसे देखकर कुछ लोगोंने समझा कि यह चिह्न लग गया है, कुछ लोगोंने मान लिया कि यह समुद्रका कीचड़ है (यह समुद्रका पुत्र है अतः पिताके कीचड़का अंश इसमें भी आ गया है), कुछने कहा कि यह मृग है और कुछने सोचा कि यह धरतीकी छाया है, पर हम तो समझते हैं कि चन्द्रमाने अभी जो घना अँधेरा पी डाला है, वही इसकी कोखमें रक्खा झलक रहा है ॥ १ ॥ उजली चाँदनीवाले, अत्यन्त प्यारे, मन प्रसन्न करनेवाले और अमृतसे भरे-पूरे गोल चन्द्रमामें लोगोंकी कुडीठ बचानेके लिये ही तो ब्रह्माने यह काजलका डिठौना नहीं लगा दिया है? ॥२॥ दिशारूपी सुन्दरियोंके माथेपर लगे हुए चन्दनके टीकेके समान उस गोल चन्द्रमाने अपनी किरणोंकी चाँदनीसे वृन्दावनको नहला दिया, जिसने अपनी छातीपर कुलटाओंके पापसे उत्पन्न काले कलङ्कके समान कालिमा धारण कर रक्खी थी ॥३॥ यह जो सामने पूर्णिमाका चन्द्रमा है वह क्या रात्रिरूपी नायिकाका दर्पण है जिसमें उस नवेलीका प्रतिबिम्ब कलङ्कके रूपमें दिखाई पड़ रहा है ॥ ४ ॥ चन्द्रमाके शरीरमें यह जो साँवलापन ढीठ होकर चमक रहा है उसे कलङ्क न समझो, वरन् यह तो रतिसे थकी हुई रात्रिरूपी नवेली है जो चन्द्रमाकी अमृतके झरनेसे शीतल बनी हुई छातीपर पड़ी गहरी नींद ले रही है ॥ ५ ॥ चन्द्रमामें कलङ्क ऐसा जान पड़ता है मानो सूर्यके अस्त होनेपर उसकी प्यारी पूर्व दिशारूपी नायिकाने चावल और दूधसे बनी खीरके पिण्डके समान दिखाई देनेवाले चन्द्रमाको आकाशरूपी कुशासनपर रख दिया हो और उसके बीचमें यह कलङ्करूपी कौवा उसे बैठा खा रहा हो ॥ ६ ॥ चन्द्रमाके कलङ्कको देखकर कवि कहता है कि 'यह कामदेवका पुत्र ही तो नहीं है जो लम्बी, उजली किरण-

गधम्। चन्द्रकैतवमरुत्पटचक्रं क्रीडयोत्सृजति किं स्मरबालः ॥ ७ ॥ इन्दोरेककलाया रुद्रेणोद्धृत्य मूर्धनि धृतायाः। स्थानमिव तुच्छमेतत्कलङ्करूपेण परिणमति ॥ ८ ॥ कलाधिनाथानयनाय सायं कुमुद्वतीप्रेषित एष भृङ्गः। किमिन्दुनालिङ्ग्य सरागमङ्के कृतः कलङ्कभ्रममातनोति ॥ ९ ॥ काश्मीरेण दिङ्मानमम्बरतलं वामभ्रुवामाननद्वैराज्यं विदधानमिन्दुदृषदां भिन्दानमम्भःसिराः। प्रत्युद्यत्पुरुहूतपत्तनवधूदत्तार्घदूर्वाङ्करग्रीवोत्सङ्गकुरङ्गमैन्दवमिदं विम्वं समुज्जृम्भते ॥ १० ॥ कृष्णवर्णहृदयं सितदीप्तिं दुर्धियः किल कलङ्किनमाहुः। कृष्णवर्णसमुदीरणमात्रादेव यद्गलति दृश्यकलङ्कः ॥ ११ ॥ तरुणतमालकोमलमलीमसमेतदयं कलयति चन्द्रमाः किल कलङ्कमिति ब्रुवते। तदनृतमेव निर्दयविधुन्तुददन्तपदव्रणविवरोपदर्शितमिदं हि विभाति नभः ॥ १२ ॥ दष्टे जगद्वपुषि कालभुजङ्गमेन तत्रान्धकारमिषमाविरभूद्विषं यत्। सञ्जातलक्ष्मणि तदिन्दुमणौ निपात्य ज्योत्स्नामये पयसि तन्निपति स्म धाता ॥ १३ ॥ दोषागमनमाशङ्क्य रविरेष तिरोहितः। कथमिन्दुः समायाति कुतः शङ्का कलङ्किनः ॥ १४ ॥ नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः। नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नासौ कलङ्कः शयितो मुरारिः ॥ १५ ॥ प्रदोषमातङ्गमनङ्गदेवस्तुङ्गं समारुह्य समागतोऽयम्। सिन्दूरिते तस्य सुधांशुकुम्भे किमङ्कुशो लक्ष्मिषेण दत्तः ॥ १६ ॥ मधुव्रतौघः कुपितः स्वकीयमधुमपापद्मनिमीलनेन। विम्वं समाक्रम्य बलात्सुधांशोः कलङ्कमङ्के भुवमातनोति ॥ १७ ॥ मन्थानभूमिधरमूलशिलासहस्रसङ्घट्टनव्रणकिणः स्फुरतीन्दुमध्ये। छाया मृगः शशक इत्यतिपामरोक्तिस्तेषां कथञ्चिदपि तत्र हि न प्रसक्तिः ॥ १८ ॥ मम प्रियां कैरविणीं करेण सन्तापयामास

रूपी डोरमें बँधे हुए तथा काली स्याहीसे चीते हुए पतङ्गको ही चन्द्रमा बनाकर उड़ा रहा है!' ॥ ७ ॥ कलङ्कसहित चन्द्रमाको देखकर ऐसा लगता है कि शङ्करजीने चन्द्रमामेंसे उसकी जो एक कला निकालकर अपने सिरपर धारण कर ली उसीका स्थान रीता हो जानेसे वह काला दिखाई पड़ने लगा ॥ ८ ॥ चन्द्रमाका कलङ्क ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमाकी प्यारी कुमुदिनियोंने चन्द्रमाको बुलानेके लिये जो भौंरा भेजा उसे चन्द्रमाने बड़े प्रेमसे गले लगाकर अपनी गोदीमें धर लिया हो ॥ ९ ॥ केशरसे आकाशको रँगता हुआ, तिरछी चितवनवाली नवेलियोंके मुँहोंपर चमककर अपना दूसरा राज्य स्थापित करता हुआ तथा चन्द्रकान्त मणियोंके भीतरकी जलधाराएँ बहाता हुआ चन्द्रमाका वह बिम्ब खिलता हुआ उदय हो रहा है जिसे अमरावतीकी अप्सराएँ वह अर्घ्य दे रही हैं जिसमें दूबके अङ्कुर देखकर चन्द्रमाकी गोदमें बैठे मृगके मुँहमें पानी आ रहा है और वह मस्त हो रहा है ॥ १० ॥ उजली किरणवाले चन्द्रमाको मूर्ख लोग काला हृदयवाला कहते हैं इसीलिये मानो यह चन्द्रमा कृष्ण पक्षमें अपना कलङ्क बराबर गलाया करता है ॥ ११ ॥ जो लोग सोचते हैं कि चन्द्रमामें यह बड़े-बड़े तमाल-पत्रोंकी हल्की-सी कालिमाके समान दिखाई देनेवाला कलङ्क है उन्हें चन्द्रमा उत्तर देता है कि 'यह बात झूठ है। निष्ठुर राहुने जो अपने पैने दाँत गड़ाए उन्हींके छेदसे यह आरपार आकाश दिखाई दे रहा है' ॥१२॥ यह कलङ्की चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो जब समयरूपी सर्पने संसारको डस लिया तो उससे अँधेरेके रूपमें जो विष प्रकट हुआ उसे ब्रह्माजीने पहले तो चन्द्रमारूपी मणिमें बुझाया किन्तु उसमें चिह्न लगा देखकर चाँदनीरूपी दूधमें वे उसे धोए डाल रहे हों ॥१३॥ दोषा (रात्रि, पाप) के आनेकी सम्भावना जानकर जब सूर्य भी अस्ताचलको चला गया, तब यह चन्द्रमा क्यों निकला चला आ रहा है? हाँ, ठीक है, कलङ्कीको तो इसी समय चाँदी है॥१४॥ कलङ्कसहित चन्द्रमाको देखकर कवि कहता है—'यह आकाशका मण्डल नहीं वरन् समुद्र है, ये तारे नहीं वरन् फेनके छोटे-छोटे टुकड़े हैं, यह चन्द्रमा नहीं वरन् कुण्डली मारे हुए शेषनाग हैं और यह कलङ्क नहीं वरन् शेषनागपर सोए हुए विष्णु हैं' ॥ १५ ॥ यह कामदेव ही तो ऊँचे प्रदोष (रात्रिके प्रारम्भ) रूपी हाथीपर चढ़कर नहीं आ रहा है जिसके सिन्दूर-भरे चन्द्रमारूपी माथेपर यह कलङ्कके रूपमें अङ्कुश दिखाई दे रहा है ॥१६॥ जब भौंरोंके मधुकी पानशाला अर्थात् कमल सिकुड़ गए तब उन्होंने हठपूर्वक चन्द्रमाके बिम्बपर आक्रमण कर दिया। वही भौंरोंका झुण्ड कलङ्क-सा दिखाई पड़ रहा है ॥१७॥ चन्द्रमाकी छातीपर मन्दराचलकी पेंदीके पत्थरोंकी रगड़से घाव हो जानेके कारण जो चिह्न पड़ गए हैं उन्हींको मूर्ख लोग छाया, हरिण और ख़रगोश कहा करते हैं, पर इन वस्तुओंकी पहुँच भला चन्द्रमातक हो ही कैसे सकती है ॥१८॥ चन्द्रमामें कलङ्क ऐसा जान पड़ता है मानो

दिनाधिनाथः। इतीव दुःखैर्विकलः कलावान्पपौ विषं लक्ष्ममिषेण सद्यः ॥ १९ ॥ यत्तं विरहिणं कश्चित्त्रासयामास तेजसा। यक्ष एव विलोमेन सँल्लग्नोऽभूद्विधौ क्षयः ॥ २० ॥ रङ्कावङ्कगते त्रिविष्टपवनीखेलत्कुरङ्गीगणैः साकं क्रीडनकौतुकेन रभसादुत्प्लुत्य याते दिवम्। तच्छायानुगतात्ममूर्तिरधुना धर्तुं तमेनं शशी मन्दं व्यायतरश्मिजालकलितः खाग्रं समारोहति ॥ २१ ॥ रुचिभिरभितष्टङ्कोत्कीर्णैरिव त्रसरेणुभिर्यदुडुभिरपि च्छेदैः स्थूलैरिव भ्रियते नभः। प्रकृतिमलिनो भास्वद्बिम्बोन्मृजाकृतकर्मणस्तदयमपि हि त्वष्टुः कुन्दे भविष्यति चन्द्रमाः ॥ २२ ॥ शम्बरारिरमृतं विषगर्भं चन्द्रबिम्बकपटात्प्रयुनक्ति। यद्बहिः सितमथासितमन्तः प्रोषितान्दहति दर्शनमात्रात् ॥ २३ ॥ शिवभालानलोत्थेन धूमयोगेन कालिमा। विधौ शुक्लतरे किं वा इति मन्मानसाशयः ॥ २४ ॥ समयशबरो व्योमारण्ये सुधाशनमक्षिकासुविहितसुधाविम्बक्षौद्रस्फुरत्पटलं प्रति। कलयति कलङ्काख्यं धूमं निपीड्य पुनश्च तत्किरति मधुरज्योत्स्नाक्षौद्रं महीतलभाजने ॥ २५ ॥

चन्द्रकलावर्णनम्—अकलङ्कचन्द्रकलया कलिता सा भाति वारुणी तरुणी। भालस्थलीव शम्भोः सन्ध्याध्यानोपविष्टस्य ॥ १ ॥ नेदं व्योम यतो न तत्र सुशकं गन्तुं जनैस्तत् किल स्थानं पुण्यकृतामतश्च न विधुर्दोषाकरोऽसौ यतः। किं त्वम्भोऽन्धुरयश्च तस्य सलिलोद्धाराय सिद्धाङ्गनाक्षिप्तो रश्मिभिरुज्ज्वलैरनुगतः कुम्भो महान् राजतः ॥ २ ॥

ज्योत्स्नावर्णनम्—अपि पिबत चकोराः कृत्स्नमुन्नाम्य कण्ठं क्रमकवलनचञ्चच्चञ्चवश्चन्द्रिकाम्भः। विरहविधुरितानां जीवितत्राणहेतोर्भवति हरिणलक्ष्मा येन तेजोदरिद्रः ॥ १ ॥ आलोक्य चन्द्रमसमभ्युदितं समन्तादुद्वल्गदूर्मिविचलत्कलशाम्बुराशेः। विष्वग्विसारिपरमाणुपरम्परैव ज्योत्स्नात्मना जगदिदं धव-

---

उसने इस दुःखसे व्याकुल होकर तत्काल कलङ्क रूपी विष पी लिया हो कि सूर्यने अपने किरणरूपी हाथसे मेरी प्यारी कुमुदिनीको बहुत झकझोर डाला ॥१९॥ चन्द्रमाने अपने तेजसे किसी विरही यक्षको कष्ट दिया होगा वही अब अपना नाम उलटकर (अर्थात् क्षय बनकर) चन्द्रमाको लग गया है ॥ २० ॥ नन्दन वनमें चौकड़ी भरती हुई मृगियोंके साथ खेलनेकी इच्छासे जब चन्द्रमाकी गोदमें बैठा मृग वेगसे छलाँगें भरता चला तो चन्द्रमा उसे पकड़नेके लिये उसीकी छायाके पीछे-पीछे हाथमें अपना किरणरूपी जाल लेकर स्वयं आकाशमें चला आ रहा है ॥ २१ ॥ सूर्यके गोलेको शाणपर चढ़ाकर चमकानेवाले विश्वकर्माने चन्द्रमाके गोलेमें जो टाँकी लगाई, उससे जो बड़े-बड़े टुकड़े टूटकर गिरे वे तारोंके रूपमें तथा जो सूक्ष्म कण गिरे वे किरणोंके रूपमें आकाशमें भर गए हैं अतः जान पड़ता है कि अब यह स्वभावसे मलिन चन्द्रमा भी विश्वकर्माके शाणपर चढ़ाया जानेवाला है ॥ २२ ॥ यह चन्द्रमा नहीं है, यह तो चन्द्रमाके रूपमें विष-भरा अमृत है जिसे कामदेव परदेसियोंको जलानेके लिये काममें ला रहा है। यह बाहरसे उजला और भीतर काला है और इसे देखते ही लोग जल जाते हैं ॥२३॥ मुझे ऐसा लगता है कि 'शङ्करजीके माथेकी आगसे निकला हुआ धुआँ लगनेसे ही तो स्वच्छ चन्द्रमामें यह कालिमा नहीं लग गई ॥ २४ ॥ कलङ्कसहित चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो कालरूपी भीलने आकाशरूपी वनमें अमृत पीनेवाली मधुमक्खियों-द्वारा बनाए हुए अमृत-बिम्ब (चन्द्रमा) रूपी मधुके छत्तेको कलङ्करूपी धुआँ दिखाकर उसमेंसे चाँदनी-रूपी मधु निकालकर पृथ्वीरूपी पात्रमें भरना प्रारम्भ कर दिया हो ॥ २५ ॥

चन्द्रमाकी कला : कलङ्क-रहित चन्द्रमाकी कलासे सजी हुई पश्चिम दिशारूपी युवती ऐसी सुशोभित हो रही है जैसे सन्ध्या समय ध्यानमें बैठे हुए शङ्करजीका ललाट हो ॥ १ ॥ चन्द्रमाको देखकर कवि कहता है 'यह आकाश नहीं है क्योंकि वहाँ तो किसीकी पहुँच ही नहीं है तथा पुण्यात्माओंका स्थान भी नहीं है क्योंकि वहाँ तो दोषोंका भण्डार (रात्रि करनेवाला) चन्द्रमा बैठा हुआ है किन्तु यह जलसे भरा हुआ वह कुआँ है जिसका जल खींचनेके लिये ऊपरसे सिद्धोंकी पत्नियोंने किरणरूपी रस्सियोंमें फाँस कर चाँदीका विशाल घड़ा लटकाया है' ॥ २ ॥

चाँदनी : कुतर-कुतरकर खानेके लिये अपनी चञ्चल ठोर चलानेवाले हे चकोरो! अपना सिर उठाकर चाँदनीरूपी जल भरपेट पी लो क्योंकि विरहसे दुखी लोगोंके जीवनकी रक्षाकी चिन्तामें चन्द्रमा अपनी किरणोंसे रहित हो रहा है (निस्तेज हो रहा है) ॥ १ ॥ चन्द्रमाको उदय हुआ देखकर चारों ओरसे उछलते हुए समुद्रकी लहरोंकी फुहारें ही चारों ओर

लीकरोति ॥ २ ॥ इन्दोरस्य त्रियामायुवतिकुचतटीचन्दनस्थासकस्य व्योमश्रीचामरस्य त्रिपुरहरजटावल्लरीकोरकस्य । कन्दर्पक्षोणिपालस्फटिकमणिगृहस्यैतदाखण्डलाशानासामुक्ताफलस्य स्थगयति जगतीं कोऽपि भासां विलासः ॥ ३ ॥ उन्मीलन्ति मृणालकोमलरुचो राजीवसंवर्तिकासंवर्तव्रतवृत्तयः कतिपये पीयूषभानोः कराः । अप्युत्सैर्धवलीभवत्सु गिरिषु क्षुब्धोऽयमुन्मज्जता विश्वेनेव तमोमयो निधिरपामह्नाय फेनायते ॥ ४ ॥ एतत्तर्कय कैरवक्लमहरे शृङ्गारदीक्षागुरौ दिक्कान्तामुकुरे चकोरसुहृदि प्रौढे तुषारत्विषि । कर्पूरैः किमपूरि किं मलयजैरालेपि किं पारदैरक्षालि स्फटिकोपलैः किमघटि द्यावापृथिव्योर्वपुः ॥ ५ ॥ किं नु ध्वान्तपयोधिरेष कतकक्षोदैरिवेन्दोः करैरत्यच्छोऽयमधश्च पङ्कपटलं छायापदेशादभूत् । किं वा तत्करकर्तरीभिरभितो निस्तक्षणादुज्ज्वलं व्योमैवेदमितस्ततश्च पतिताश्छायाच्छलेन त्वचः ॥ ६ ॥ दलविततिभृतां तले तरूणामिह तिलतण्डुलितं मृगाङ्करोचिः । मदचपलचकोरचञ्चुकोटीकवलनतुच्छमिवान्तरान्तराभूत् ॥७॥ नैवायं भगवानुदञ्चति शशी गव्यूतिमात्रीमपि द्यामद्यापि तमस्तु कैरवकुलश्रीचाटुकाराः कराः । मथ्नन्ति स्थलसीम्नि शैलगहनोत्सङ्गेषु संरुन्धते जीवग्राहमिव क्वचित्क्वचिदपि च्छायासु गृह्णन्ति च ॥ ८ ॥ पौलोमीकुचकुम्भकुङ्कुमरजस्सम्पर्कदूरोद्धताः शीतांशोर्द्युतयः पुरन्दरपुरीसीमामुपस्कुर्वते । एताभिर्लिहतीभिरन्धतमसान्युद्बध्नतीभिर्दिशः क्षोणीमास्तृणतीभिरन्तरतमं व्योमेदमोजायते ॥ ९ ॥ भास्वत् कर्कशशाणचक्रकषणैराकाशकालायसाद्यच्चूर्णं निबिडं निपत्य तम इत्याख्यां जगत्यामगात् ।

चाँदनीके रूपमें उड़कर संसारको उजला बना रही हैं ॥ २ ॥ रातरूपी नवेलीके स्तनोंपर पुते चन्दनपर जमकर बैठे हुए तथा आकाशरूपी लक्ष्मीके चँवरके समान, शङ्करजीकी जटाओंकी लताओंके जूड़ेके समान, कामदेवरूपी राजाके स्फटिक पत्थरसे बने घरके समान और पूर्व दिशारूपी नायिकाके नाकमें मोतीके बेसरके समान दिखाई देनेवाले चन्द्रमाकी किरणोंका फैलाव सारे संसारको बाँधे डाल रहा है ॥३॥ अमृतमयी किरणोंवाले चन्द्रमाकी कमलनालके कोमल तन्तुओंकी-सी कान्तिवाली वे कुछ किरणें चमक रही हैं जिन्होंने कमलकी नई-नई पंखुड़ियोंपर प्रलय ढानेकी ठान ली है । उन किरणोंके पड़ते ही जब पर्वतकी चोटियाँ चमचमाने लगती हैं तो ऐसा जान पड़ता है मानो सारा संसार क्षुब्ध होकर अँधेरेके समुद्रमें डूबकर दिनके लिये छटपटा रहा हो और उसीसे तत्काल उस समुद्रमें फेन उछलने लगा हो ॥ ४ ॥ कुमुदिनियोंकी थकावट दूर करनेवाले, शृङ्गार रसकी शिक्षा देनेवाले, दिशारूपी नायिकाके दर्पण, चकोर पक्षीके मित्र और ठण्ढी किरणोंवाले तरुण चन्द्रमाके सम्बन्धमें यह तो जाकर समझो कि उसने क्या आकाश और पृथ्वीका शरीर कपूरसे भर दिया है या मलय चन्दनसे पोत दिया है या पारेसे धो डाला है या सङ्गमरमरसे सजाकर नया कर दिया है ॥ ५ ॥ आकाशपर छिटकी हुई स्वच्छ चाँदनीको देखकर कवि सोचता है कि 'यह निर्मलीके बीजके चूर्णरूपी चन्द्र-किरणोंसे निथारकर निर्मल किए हुए अन्धकारके समुद्रके नीचे छायाके रूपमें जमा हुआ कीचड़का ढेर है या चन्द्रमाकी किरणरूपी कैंचीसे छिले हुए उजले आकाशके चारों ओर बिखरा हुआ उसका छिला हुआ मैल ही छाया बनकर फैल गया है' ॥६॥ घने पत्तोंवाले वृक्षोंसे छनकर धरतीपर पड़ी हुई छायाके साथ मिलकर चावल और तिल मिले हुए ढेरके समान दिखाई देनेवाली चन्द्रमाकी किरणें ऐसी जान पड़ती हैं मानो मदसे चञ्चल चकोरने अपनी ठोरोंसे किरणें चुन ली हों और बीच-बीचमें स्थान शेष बच गया हो ॥ ७ ॥ भगवान् चन्द्रमा अभी आकाश-मार्गमें दो कोस भी नहीं चल पाए थे कि कुमुदिनियोंके समूहकी शोभाका गुण गानेवाली किरणोंने धरतीकी सीमापर छाया हुआ अन्धकार नष्ट कर दिया, पहाड़की भयावनी गोदमें कहीं-कहीं छिपे हुए अँधेरेको घेर लिया और कहीं-कहीं अन्धकारको इस प्रकार पकड़ लिया जैसे कोई प्राणी किसी दूसरे प्राणीको पकड़ रहा हो ॥८॥ चाँदनीको देखकर हम समझते हैं कि कलशके समान बड़े-बड़े इन्द्राणीके स्तनोंपर कुङ्कुमकी धूलसे मिलकर जो चन्द्रमाकी किरणें गर्वसे फूली नहीं समा रही थीं वे इन्द्रकी नगरी (पूर्व दिशा) की सीमापर चढ़ती हुई, अँधेरेको चाटती हुई, दिशाओंको बाँधती हुई और पृथ्वीको खिलाती हुई आकाशको चमकाए दे रही हैं ॥ ९ ॥ कठोर शाणके चमकते हुए चक्के (चन्द्रमा) की रगड़से आकाशरूपी लोहेका जो बुरादा (चूर) चारों ओर गिरा वह तो अँधेरा कहलाया और जो सिद्ध पारेकी बड़ी-बड़ी चञ्चल बूँदोंके समान चन्द्रमाके सामने पड़कर चाँदीके चूरेके समान स्वच्छ हो गया, उसे ही हम लोग चाँदनी कह रहे हैं ॥ १० ॥ पूरे खिले

यच्चेन्दोश्चलसिद्धपारदमहाबिन्दोः समायोगतो जातं रूप्यरजोमयं वयमिदं ज्योत्स्नां समाचक्ष्महे ॥ १० ॥ मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानधो वल्लवाः कर्णे कैरवशङ्कया कुवलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि । कर्कन्धूफलमुच्चिनोति शवरी मुक्ताफलाकाङ्क्षया सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चन्द्रिका ॥ ११ ॥ यन्त्रद्रावितकेतकोदरदलस्रोतश्श्रियं बिभ्रती येयं मौक्तिकदामगुम्फनविधौ योग्यच्छविः प्रागभूत् । उत्सेच्या कलशोभिरञ्जलिपुटैर्ग्राह्या मृणालाङ्कुरैः पातव्या च शशिन्यमुग्धविभवे सा चन्द्रिका वर्तते॥१२॥ सह कुमुदकदम्बैः काममुल्लासयन्तः सह घनतिमिरौघैर्धैर्यमुत्सारयन्तः । सह सरसिजखण्डैः स्वान्तमामीलयन्तः प्रतिदिशममृतांशोरंशवः सञ्चरन्ति ॥१३॥ सितकिरणकपोलीमालिमालोकयन्ती तिमिरविरहतापव्याकुलां व्योमलक्ष्मीम् । रजनिरमलताराशीकरैः सिक्तमस्याः परिमलयति गात्रं चन्द्रिकाचन्दनेन ॥ १४ ॥

चन्द्रास्तवर्णनम्––अरुणकिरणजालैरन्तरिक्षे गतर्क्षे चलति शिशिरवाते मन्दमन्दं प्रभाते । युवतिजनकदम्बे नाथमुक्तौष्ठबिम्बे चरमगिरिनितम्बे चन्द्रबिम्बं ललम्बे ॥ १ ॥ असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्तं व्रजत्युन्नतकोटिरिन्दुः । जलावगाढस्य वनद्विपस्य तीक्ष्णं विषाणाग्रमिवावशिष्टम् ॥ २ ॥ उदयमुदितदीप्तिर्याति यः सङ्गतौ मे पतति न वरमिन्दुः सोऽपरामेष गत्वा । स्मितरुचिरिव सद्यः साभ्यसूयं प्रभेति स्फुरति विशदमेषा पूर्वकाष्ठाङ्गनायाः ॥ ३ ॥ कलङ्कदाशो गगनाम्बुराशौ प्रसार्य चन्द्रातपतन्तुजालम् । लग्नोडुमीनाँल्लघु सञ्जिघृक्षुश्चन्द्रप्लवस्थश्चरमाब्धिमेति ॥ ४ ॥ चरमगिरिकुरङ्गीशृङ्गकण्डूयनेन स्वपिति सुखमिदानीमन्तरिन्दोः कुरङ्गः । परिणतरविगर्भव्याकुला पौरुहूती दिगपि घनकपोतीहुंकृतैः कुप्यतीव ॥ ५ ॥ जरठ इव मरालो जर्जराग्रैर्मयूखैः स्खलति शिशिरभानुः पश्चिमाम्भोधिपारे । श्लथ-

---

हुए चन्द्रमाकी किरणें किसको धोखेमें नहीं डाल रही हैं क्योंकि एक भोली-भाली नवेली उन्हें दूधकी धार समझकर गौओंके थनोंके नीचे घड़ा ले जाकर रख रही है, दूसरी नवेली उन्हें कुमुदिनी समझकर कानोंपर रखनेके लिये हाथ बढ़ा रही है और एक भीलनी उन किरणोंसे चमक उठनेवाले बेरोंको मोती समझकर बटोरे ले रही है ॥११॥ जो चाँदनी पहले यन्त्रसे दबाकर निचोड़े जाते हुए केवड़ेके फूलके कोशसे झरते हुए रसके समान तथा गूँथी जाती हुई मोतीकी मालाके समान सुन्दर लग रही थी वही अब खिले हुए चन्द्रमामें भरकर कलसियोंमें भर-भर सींचने योग्य, अञ्जलिमें रख लेने योग्य तथा कमलनालसे पीने योग्य हो रही है ॥ १२ ॥ कुमुदके फूलोंको खिलानेके साथ-साथ कामदेवको भी जगाती हुई, अँधेरा नष्ट करनेके साथ वियोगियोंका धीरज भी तोड़ती हुई तथा कमलोंको सङ्कुचित करनेके साथ सब लोगोंके हृदय भी दूसरे विषयोंसे हटाकर कामक्रीड़ामें लगाती हुई चन्द्रमाकी किरणें सब दिशाओंमें फैल रही हैं ॥१३॥ अन्धकाररूपी विरहके तापसे व्याकुल आकाशरूपी लक्ष्मीकी देख-भाल करती हुई रात्रि तारारूपी बूँदोंसे सींचे हुए उसके शरीरपर चन्दनका लेप कर रही है ॥ १४ ॥

चन्द्रके अस्त होनेका वर्णन : जब आनेवाली सूर्यकी किरणोंने तारोंको भगा दिया, प्रातःकालका वायु धीरे-धीरे बहने लगा, प्रेमियोंने अपनी प्यारियोंके ओठ चूमना बन्द कर दिया, उस समय चन्द्रमा भी पश्चिमाचलकी ओर बढ़ चले ॥१॥ अँधेरेको चारों ओर फैलनेका अवसर देकर डूबते हुए चन्द्रमाकी एक कला भर दिखाई पड़ रही है उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो कोई ऐसा जंगली हाथी पानीमें डूब गया हो जिसके पैने दाँतकी कोर भर बाहर बची रह गई हो ॥ २ ॥ पूर्व दिशा रूपी नायिकाके मुखपर आई हुई चमक ऐसी जान पड़ती है मानो वह डाहसे प्रसन्न होकर कह रही हो कि 'जिस चन्द्रमाका प्रकाश मेरे साथ रहनेसे बढ़ता था और उसकी उन्नति होती थी वही चन्द्रमा दूसरी नायिका (पश्चिम दिशा) के सम्पर्कमें जाकर पतित हो रहा है (डूब रहा है)' ॥ ३ ॥ अँधेरे-रूपी मछुवेने आकाश-रूपी समुद्रमें चाँदनी-रूपी जाल बिछाकर तारे-रूपी मछलियाँ फँसाईं और अब उन्हें बटोरनेके लिये चन्द्रमा-रूपी छोटी डोंगीपर चढ़कर पश्चिम-समुद्रकी ओर चला जा रहा है ॥ ४ ॥ पश्चिमाचलपर रहनेवाली हरिणीने अपने सींगसे चन्द्रमाके कलङ्करूपी मृगको जो खुजलाया तो उस आनन्दमें मस्त होकर वह अब भी चन्द्रमाकी गोदमें सुखकी नींद ले रहा है। उसे सोते देखकर कबूतरियोंके गलेके गुटरगूँसे पूर्व दिशा उस सोते हुए मृगको डाँट रही है क्योंकि उसके गर्भसे सूर्य निकलने ही वाले हैं ॥ ५ ॥ चन्द्रमाकी किरणें धुँधली पड़ गई हैं और वह अब बूढ़े हंसके समान पश्चिम-समुद्रके पार जा रहा है।

गरुत इवाभूत्तत्र तत्रान्तरिक्षे विरलविरलभासः किञ्च तारा लुठन्ति ॥६॥ नक्षत्रक्षितिनायकोऽयमधुना रुद्धः प्रभातागमे सप्ताश्वेन बलीयसातिमहसा रोषारुणज्योतिषा। भ्रश्यद्ध्वान्तशिरोरुहां प्रविगलत्ताराालिहारावलीमादाय क्षणदां प्रियां क्षितिधरं पाश्चात्यमारोहति ॥ ७ ॥ नवकुमुदवनश्रीहासकेलिप्रसङ्गादधिकरुचिरशेषामप्युषां जागरित्वा। अयमपरदिशोऽङ्के मुञ्चति स्रस्तहस्तः शिशयिषुरिव पाण्डुम्लानमात्मानमिन्दुः ॥ ८ ॥ प्रकटमलिनलक्ष्मा मृष्टपत्रावलीकैरधिगतरतिशोभैः प्रत्युपःप्रोषितश्रीः। उपहसित इवासौ चन्द्रमाः कामिनीनां परिणतशरकाण्डापाण्डुभिर्गण्डभागैः ॥ ९ ॥ मन्दमग्निमधुर्यमोपला दर्शितश्वयथु चाभवत्तमः। दृष्टयस्तिमिरजं सिषेविरे दोषमोषधिपतेरसन्निधौ ॥ १० ॥ विकसितमुखीं रागासङ्गाद्गलत्तिमिरावृतिं दिनकरकरस्पृष्टामैन्द्रीं निरीक्ष्य दिशं पुरः। जरठलवलीपाण्डुच्छायो भृशं कलुषान्तरः श्रयति हरितं हन्त प्राचेतसीं तुहिनद्युतिः ॥ ११ ॥ वृन्देन तारावलितण्डुलानामङ्केन च श्रीफलपल्लवेन। अभ्यर्च्य जागेश्वरमिन्दुबिम्बं विसर्जयत्येष नभोमुनीन्द्रः ॥ १२ ॥ संश्लिष्टा सानुरागं स्वकरपरिचयप्राप्तभूरिप्रसादा या पूर्वा भुक्तपूर्वा रविकरकलितां तामुदीक्ष्यामृतांशुः। निस्तेजाः पश्चिमाब्धौ प्रविशति हि सतां दुःसहो मानभङ्गः किं वक्तव्यं सितांशोः स तु सकलसतां मण्डलस्यापि नेता ॥ १३ ॥ सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः। इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नङ्गमिन्दुर्वहति कृशमशेषं भ्रष्टशोभं शुचेव ॥ १४ ॥

कोकदशावर्णनम्—अपि तेजोनिधिर्हन्त पतितो

आकाशमें जो छिटफुट तारे टिमटिमा रहे हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो आकाशमें जहाँ-तहाँ उसके पङ्ख बिखरे हुए हों ॥ ६ ॥ जब प्रातःकाल सात घोड़ोंवाले अत्यन्त तेजस्वी और क्रोधसे लाल-लाल चमकवाले सूर्यने नक्षत्रोंके राजा चन्द्रमाको रोक दिया तब वह अपनी उस रात्रिरूपी प्यारीको लेकर परिचमाचलकी ओर जा रहा है जिसके अन्धकार-रूपी केश बिखर गए हैं और तारेरूपी हार टूट-टूटकर गिर पड़े हैं ॥ ७ ॥ खिले हुए कुमुदोंकी शोभारूपी नायिकाके साथ आनन्द करता हुआ यह चन्द्रमा मस्त होकर रातभर जागा है अतः अब सोनेके विचारसे अपने किरणरूपी हाथ ढीले करके अपने उजले तथा धुँधले शरीरको पश्चिम दिशा रूपी नायिकाकी गोदमें डाल रहा है ॥ ८ ॥ प्रातःकाल कामिनियोंके पके हुए सरकण्डेके समान उजले-उजले गाल मानो चन्द्रमाकी खिल्ली उड़ा रहे थे क्योंकि चन्द्रमामें कलंक दिखाई दे रहा था और उनके गालोंपरके सब बेल-बूटे मिट गए थे; चन्द्रमाकी शोभा फीकी पड़ गई थी और उनके गालोंमें सुरतसे चमक आ गई थी ॥ ९ ॥ जैसे वैद्यके न रहनेपर किसीको मन्दाग्नि, किसीको सूजन और किसीकी आँखोंमें धुन्ध आ जाता है इसी प्रकार ओषधियोंके स्वामी चन्द्रमाके न रहनेपर सूर्यकान्त-मणिमें ज्वाला आने लगी, संसारमें अँधेरा फैलने लगा और सबकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया ॥१०॥ जैसे कोई युवक जब देखता है कि कोई दूसरा युवक किसी हँसती हुई और शरीरसे वस्त्र गिराती हुई नायिकाको छू रहा है तब वह हृदयमें कुढ़कर और चिन्तासे पीला पड़कर किसी दूसरी नायिकासे नाता जोड़ लेता है वैसे ही जिसका आगेका भाग ललाईसे खिल गया है, जिससे अँधेरा हट रहा है, ऐसी पूर्व दिशाको सूर्यकी किरणोंसे मिलते देखकर पुरानी हरफारेवड़ीकी जड़के समान उजला तथा कलंक वाला चन्द्रमा दुखी होकर पश्चिम दिशामें जा रहा है ॥ ११ ॥ यह आकाशरूपी श्रेष्ठ मुनि, तारेरूपी अक्षतोंसे तथा कलंक-रूपी बेलके पत्तोंसे चन्द्रमा-रूपी शंकरकी पूजा करके मानो उसका विसर्जन कर रहा है ॥ १२ ॥ जब चन्द्रमाने देखा कि जिस पूर्व दिशाका मैंने अनुराग-पूर्वक (लाल होकर, प्रेमके साथ) आलिङ्गन किया था, अपने कर (किरण, हाथ) से छूकर जिसपर कृपा की थी और जिसका उपभोग किया था उसे सूर्यके कर (किरणें, हाथ) पकड़े हुए हैं तो वह उदास होकर पश्चिम समुद्रमें डूबनेकी तैयारी कर रहा है। ठीक भी है, क्योंकि जब साधारण सज्जन भी अपनी मानि-हानि नहीं सह सकते तब सभी द्विजों (नक्षत्रों, ब्राह्मणों) के राजा चन्द्रमाका तो कहना ही क्या है ॥ १३ ॥ यह प्रेमी चन्द्रमा मानो इसी चिन्ता और शोकमें अपना दुबला और धुँधला शरीर ढो रहा है कि 'हाय ! कुमुदिनीने आँख मूँद ली, रात भी ढल गई और मेरी सारी प्यारी तारिकाएँ भी नौ-दो-ग्यारह हुईं' ॥ १४ ॥

चकवेकी दशाका वर्णन : सन्ध्या समय चकवा-चकवी मानो इसी वैराग्यके कारण ही अलग हो जाते हैं कि जब

यदि जायते। सुरतं किमिवास्माकमिति कोकैर्वियुज्यते ॥ १ ॥ आतपे धृतिमता सह वध्वा यामिनीविरहिणा विहगेन। सेहिरे न किरणा हिमरश्मेर्दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम् ॥ २ ॥ आयाति याति पुनरेव जलं प्रयाति पद्माङ्कुरञ्च विचिनोति धुनोति पक्षम्। उन्मत्तवद्भ्रमति कूजति मुक्तकण्ठः कान्तावियोगविधुरो निशि चक्रवाकः ॥३॥ इच्छतां सह वधूभिरभेदं यामिनीविरहिणां विहगानाम्। आपुरेव मिथुनानि वियोगं लङ्घ्यते न खलु कालनियोगः ॥ ४ ॥ एकेनाक्ष्णा प्रविततरुषा वीक्षते लम्बमानं भानोर्बिम्बं जलविलुलितेनापरेण स्वकान्तम्। अह्नश्छेदे दयितविरहाशङ्किनी चक्रवाकी द्वौ सङ्कीर्णौ रचयति रसौ नर्तकीव प्रगल्भा ॥ ५ ॥ गम्यतामुपगते नयनानां लोहितायति सहस्रमरीचौ। आससाद विरहय्य धरित्रीं चक्रवाकहृदयान्यभितापः ॥ ६ ॥ चक्राह्वो विरही हतोऽपि हृदये बाणेन न त्यक्तवान्प्राणान्प्राणसमासमागमसुखध्यानैकतानश्चिरम्। स्वां छायामवलोक्य वारिणि गलद्रक्तामवेत्य प्रियां भ्रान्तस्तद्व्रणवेदनापरिगतः कष्टं मृतः साम्प्रतम् ॥ ७ ॥ तीरात्तीरमुपैति रौति करुणं चिन्तां समालम्बते किञ्चिद्ध्यायति निश्चलेन मनसा योगीव युक्तेक्षणः। स्वां छायामवलोक्य कूजति पुनः कान्तेति मुग्धः खगो धन्यास्ते भुवि ये निवृत्तमनसो धिग्दुःखितान्कामिनः ॥ ८ ॥ दष्टतामरसकेसरत्यजोः क्रन्दतोर्विपरिवृत्तकण्ठयोः। निघ्नयोः सरसि चक्रवाकयोरल्पमन्तरमनल्पतां गतम् ॥ ९ ॥ भङ्क्त्वा भोक्तुं न भुङ्क्ते कुटिलबिसलताकोटिमिन्दोर्वितर्कात्ताराकारास्तृषार्तः पिबति न पयसां विप्रुषः पत्रसंस्थाः। छायामम्भोरुहाणामलिकुलसबलां वेत्ति सन्ध्यामसन्ध्यां कान्ताविश्लेषभीरुर्दिनमपि रजनीं मन्यते चक्रवाकः ॥ १० ॥ मित्रे क्वापि गते सरोरुहवने

इतने बड़े तेजस्वी सूर्यका पतन हो गया तब हम लोग क्या रति करेंगे ॥ १ ॥ जो चकवा दिनमें अपनी चकवीके साथ रहनेके कारण धूप में भी प्रसन्न था वही रातमें चकवीसे अलग होनेपर चन्द्रमाकी ठंढी किरणें भी न सह सका क्योंकि जब चित्त दुखी रहता है तब कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगती ॥ २ ॥ रातमें चकवीके वियोगसे दुखी होकर चकवा इधर-उधर भटकता हुआ कभी जलके पास पहुँचता है, कभी कमलके अङ्कुर ढूँढ़ता है, कभी पंख फड़फड़ाता है, कभी पागल-सा घूमता है और कभी गला फाड़-फाड़कर चिल्लाता है ॥ ३ ॥ न चाहते हुए भी जो चकवी-चकवेको अलग रहना ही पड़ता है, उसका कारण यह है कि होनहारको कोई मेट नहीं सकता ॥ ४ ॥ सन्ध्या समय अपने प्यारेसे बिछुड़नेके डरसे चकवी क्रोध-भरी एक आँखसे तो डूबते हुए सूर्यको देख रही है और दूसरी ओर आँसू-भरी आँखोंसे अपने प्यारे चकवेको देख रही है। उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो वह अत्यन्त ढीठ नटीके समान रौद्र तथा करुण रसका एक साथ अभिनय कर रही हो ॥ ५ ॥ सन्ध्या-समय जब सूर्य लाल हो गया और उसका तेज मन्द पड़ जानेसे उसपर लोगोंकी आँखें भी ठहरने लगीं उस समय सारा ताप पृथ्वीको छोड़कर चकवेके हृदयमें जा बसा ॥ ६ ॥ कामके बाणोंसे हृदयके बिंध जानेपर भी वियोगी चकवेने अपनी प्यारी चकवीसे मिलनेके सुखका ध्यान करके तो अपने प्राण नहीं छोड़े, पर जलमें पड़ी हुई अपनी परछाईंको रुधिरमें डूबी हुई अपनी चकवी समझकर जब उसके घावकी कल्पना की तो वह दुखी होकर मर गया ॥ ७ ॥ अपनी चकवीसे बिछुड़ा हुआ चकवा नदी-तीरके एक छोरसे दूसरे छोरतक जाता है, दुःखसे रोता है, चिन्ता करता है, सोचता रहता है, सब ओरसे दृष्टि हटाकर स्थिर चित्तसे योगीके समान कुछ ध्यान किया करता है और जलमें पड़ी हुई अपनी परछाईंको चकवी समझकर पागल हो-होकर उसे बुलाता है। कवि कहता है कि 'इन दुखी कामियोंको धिक्कार है! धन्य तो वे ही लोग हैं जिनका मन सब ओरसे हट चुका है ॥ ८ ॥ दुर्भाग्यसे तालाबके आर-पार बैठे हुए चकवी-चकवेके बीचमें यद्यपि अन्तर बहुत कम था पर उतना ही उन्हें बहुत बड़ा जान पड़ता था और वे मुखमें लिए हुए कमलके केशरको गिराकर इतना चिल्ला रहे थे कि चिल्लाते-चिल्लाते उनके गले बैठ गए थे ॥ ९ ॥ अपनी प्यारीके बिछोहसे डरा हुआ चकवा दिनको भी रात समझे बैठा है क्योंकि खानेके लिये तोड़े हुए टेढ़े कमलनालको चन्द्रमा समझकर वह खा नहीं रहा है, प्यासा होनेपर भी कमलके पत्तोंपर पड़ी हुई जलकी बूँदोंको तारे समझकर पी नहीं रहा है और भौंरोंके कालेपनसे मिली हुई कमलोंकी ललाईको बिना सन्ध्याके ही सन्ध्या समझ रहा है ॥ १० ॥ जब सूर्य छिप गए, कमलोंका समूह मुँह ढककर उदास हो गया, भौंरे बेसहारे होकर चिल्लाने लगे उस समय सारस पक्षीको अपनी

वद्धानने ताम्यति क्रन्दत्सु भ्रमरेषु वीक्ष्य दयिताश्लिष्टं पुरः सारसम्। चक्राह्वेन वियोगिना बिसलता नास्वादिता नोज्झिता वक्त्रे केवलमर्गलेव निहिता जीवस्य निर्गच्छतः ॥ ११ ॥ यच्छति प्रतिमुखं दयितायै वाचमन्तिकगतेऽपि शकुन्तौ। नीयते स्म नतिमुज्झितहर्षं पङ्कजं मुखमिवाम्बुरुहिण्या ॥ १२ ॥ वापीतोयं तटरुहवनं पद्मिनीपत्रशय्या चन्द्रालोको विकचकुसुमामोदहृद्यः समीरः। यत्रैतेऽपि प्रियविरहिणो दाहिनश्चक्रनाम्नस्तत्रोपायः क इव भवतु प्राणसन्धारणे यः॥ १३ ॥ सवितैव समाराध्यः कर्म्मसाक्षी प्रबोधकः। न त्वन्तर्मलिनश्चन्द्र इति कोकास्तपस्विनः॥ १४ ॥

षड्ऋतुवर्णनम्

वसन्तवर्णनम् :—अग्रे स्त्रीनखपाटलं कुरवकं श्यामं द्वयोर्भागयोर्बालाशोकमुपोढरागसुभगं भेदोन्मुखं तिष्ठति। ईषद्बद्धरजः कणाग्रकपिशा चूते नवा मञ्जरी मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मधुश्रीरिव ॥१॥ अङ्गानि निद्रालसविभ्रमाणि वाक्यानि किञ्चिन्मदिरालसानि। भ्रूक्षेपजिह्मानि च वीक्षितानि चकार कामः प्रमदाजनानाम् ॥ २ ॥ अनुभवन्नवदोलमृतूत्सवं पटुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया। अनयदासनरज्जुपरिग्रहे भुजलतां जलतामबलाजनः ॥ ३ ॥ अपतुषारतया विशदप्रभैः सुरतसङ्गपरिश्रमनोदिभिः। कुसुमचापमतेजयदंशुभिर्हिमकरो मकरोर्जितकेतनम् ॥ ४ ॥ अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा। अमदयत्सहकारलता मनः सकलिका कलिकामजितामपि ॥ ५ ॥ अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसन्ततया मनः। कुसुमसम्भृतया नवमल्लिका स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी ॥ ६ ॥ अरुणरागनिषेधिभिरंशुकैः श्रवणलब्धपदैश्च यवाङ्कुरैः। परभृताविरुतैश्च विलासिनः स्मरबलैरबलैकरसाः कृताः ॥ ७ ॥ अरुणिताखिलशैलवना मुहुर्विदधती पथिकान्परिता-

---

सारसनीके साथ सामने देखकर विरहिणी चकवेकी यह दशा हुई कि मुखमें रक्खे हुए कमलनालके टुकड़ोंको न तो वह खा ही पाया, न छोड़ ही पाया, मानो उसने बाहर निकलते हुए अपने प्राणोंको रोकनेके लिये गलेमें उसका ब्योंड़ा लगा लिया हो ॥ ११ ॥ जब सामने चिल्लानेवाला चकवा अपने दुःखभरे शब्दोंमें चकवीकी दुःखभरी चिल्लाहटका उत्तर दे रहा था उसे देखकर ही कमलकी नालका कमल-रूपी मुख उदास हो गया और दुःखसे झुक गया ॥ १२ ॥ जब बिछुड़े हुए चकवेके सामने बावड़ीका जल, तटका उपवन, कमलके पत्तेका बिछौना, चन्द्रमाका प्रकाश और खिले हुए कमलकी सुगन्धमें बसा हुआ पवन ये सभी वस्तुएँ दुःख देनेके लिये उपस्थित हैं ही तो उसके जीनेका उपाय ही क्या रह जाता है ॥ १३ ॥ सन्ध्या समय बिछुड़े हुए चकवा-चकवी मानो यही सोचकर तपस्या करने लगे हैं कि लोगोंके अच्छे-बुरे कामोंके साक्षी और सबको ज्ञान देनेवाले (जगानेवाले) सूर्य ही उपासना करने योग्य हैं, यह काले हृदयवाला चन्द्रमा नहीं ॥ १४ ॥

छहों ऋतुओंका वर्णन

वसन्तकी रँगरेलियाँ : सामने तो नवयुवतीके नखोंके समान लाल फूलवाला कटसरैया फूल रहा है, इधर-उधर ये छोटे से सुन्दर, लाल-लाल तथा अभी खिल उठनेवाले अशोकके वृक्ष खड़े हैं और उधर आमके वृक्षमें थोड़ेसे परागकणोंसे मटमैले रङ्गके बौर आ गए हैं अतः मित्र ! इस समय वसन्तकी शोभा ऐसी जान पड़ती है जैसे वह बचपन और जवानीके बीच खड़ी हुई हो ॥ १ ॥ इस वसन्त ऋतुमें स्त्रियाँ कामसे अलसा जाती हैं, मदके कारण उनका चलना-बोलना भी कठिन हो जाता है और टेढ़ी भौंहोंके कारण उनकी चितवन बड़ी कटीली लगने लगती है ॥ २ ॥ जो चतुर स्त्रियाँ वसन्तमें झूला झूल रही थीं उन्होंने अपने पतिके गलेसे लगनेकी इच्छासे झूलेकी रस्सी थामनेवाली अपनी बाँहें ढीली कर दीं ॥ ३ ॥ जाड़ा बीत जानेपर वसन्तमें जिस चन्द्रमाकी किरणोंकी चमक बढ़ गई थी और जो सुरतकी थकावट दूर कर रही थीं उन किरणोंसे चन्द्रमाने प्रतापी कामदेवको और भी अधिक उत्साहित कर दिया ॥ ४ ॥ वसन्तमें दक्षिणके वायुसे नाचते हुए पत्तोंमें बौरी हुई आमकी डालने उन मुनियोंका मन भी मतवाला कर दिया जिन्होंने कलियुगके प्रभाव तथा कामदेवपर विजय पा ली थी ॥ ५ ॥ पेड़ोंपर लिपटी हुई नवमल्लिकाकी मनोहर लताके खिले हुए फूलोंकी मधु (मकरन्द, मदिरा) की गन्ध से गमकती हुई और कोमल पत्ते-रूपी ओठोंपर फैली हुई मुसकानने लोगोंका मन मतवाला कर दिया ॥ ६ ॥ सूर्यकी किरणोंसे भी अधिक लाल वस्त्रोंने, कानपर सजे हुए जौके अङ्कुरों (जरई) और कोयलकी कूकने, कामदेवके सैनिक बनकर

पिनः । विकचकिंशुकसंहतिरुच्चकैरुदवहद्दवहव्यवह-श्रियम् ॥ ८ ॥ अलिभिरञ्जनविन्दुमनोहरैः कुसुमपङ्क्ति-निपातिभिरङ्कितः । न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं न तिलकं तिलकः प्रमदामिव ॥ ९ ॥ अविरलकमलवि-कासः सकलालिमदश्च कोकिलानन्दः । रम्योऽयमेति सम्प्रति लोकोत्कण्ठाकरः कालः ॥ १० ॥ असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि । पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां सम्पर्कमासिञ्जितनूपुरेण ॥ ११ ॥ असौ मरुच्चुम्बितचारुकेसरः प्रसन्नताराधिपमण्ड-लाग्रणीः । वियुक्तरामातुरदृष्टिवीक्षितो वसन्तकालो हनुमानिवागतः॥ १२ ॥ अस्मिन्वसन्ते न नराः सहन्ते वधूवियोगञ्च बलासरोगम् । कुरङ्गनाभिद्रवलेप-भाभिर्भजन्तु दृप्ताः प्रमदाः प्रलिप्ताः ॥ १३ ॥ आकम्पयन्कुसुमिताः सहकारशाखा विस्तारयन्पर-भृतस्य वचांसि दिक्षु । वायुर्विवाति हृदयानि हरन्न-राणां नीहारपातविगमात्सुभगो वसन्ते ॥ १४ ॥ आकम्पितानि हृदयानि मनस्विनीनां वातैः प्रफुल्ल-सहकारकृताधिवासैः । उत्कूजितैः परभृतस्य मदाकु-लस्य श्रोत्रप्रियैर्मधुकरस्य च गीतनादैः ॥ १५ ॥ आज्ञां मन्मथचक्रवर्त्तिनृपतेरादाय निःशङ्कधीर्भ्राम्यद्भृङ्गम-हाजनान्पिकगिरा साकूतमाकारयन् । कुञ्जाटे च्युत-पत्रसंस्तरवति श्रीमान्वसन्ताभिधो व्यापारी सुमनो-मरन्दवसुभिर्वाणिज्यमालम्बते ॥ १६ ॥ आताम्राः किरणा रवेर्नवदलत्वक्पल्लवाः पादपाः वल्ल्यस्तारक-तुल्यकान्तिसुमनस्सौरभ्यसम्भाविताः । वात्यस्मिन्म-धुमत्तषट्पदपदव्याधूतचूतद्रुमप्राग्भारप्रपतत्परागपट-लामोदी मरुद्दाक्षिणः ॥ १७ ॥ आदीप्तवह्निसदृशैर्म-रुतावधूतैः सर्वत्र किंशुकवनैः कुसुमावनम्रैः । सद्यो वसन्तसमयेन समाचितेयं रक्तांशुका नववधूरिव भाति भूमिः ॥ १८ ॥ आमूलतो विद्रुमरागताम्रं सप-

---

कामियोंका चित्त केवल एक नवेलीमें लगा दिया ॥७॥ वसन्तमें सारे पहाड़ और वनको लाल-लाल बना देनेवाली, वियोगियोंको निरन्तर तपानेवाली और खिले हुए टेसुओंसे लदी पलासकी डालियाँ आग जैसी लग रही हैं ॥ ८ ॥ जैसे काला तिलक माथेपर लगकर स्त्रियोंको सुन्दर बना देता है उसी प्रकार आँजनके विन्दुके समान दिखाई देनेवाले भौंरोंसे घिरा हुआ तिलकका वृक्ष भी वनस्थलीको सुन्दर बना रहा है ॥ ९ ॥ संसारको स्त्रियोंसे प्रेम करानेवाला यह सुन्दर वसन्त आ रहा है जिसमें निरन्तर कमल खिल रहे हैं, भौंरे मतवाले हो रहे हैं और कोकिल अत्यन्त प्रसन्न होकर कूक रहा है ॥ १० ॥ वसन्तमें अशोकका वृक्ष नीचेसे ऊपरतक फूल-पत्तियोंसे इतने वेगसे लद चला है कि उसने सुन्दरियोंके बजते हुए पायलोंवाले चरणोंके प्रहारकी भी प्रतीक्षा न की ॥ ११ ॥ जिसमें वायुसे सुन्दर नागकेसर हिल रहे हैं (वायुसे जिसके कन्धेके बाल हिल रहे हैं), स्वच्छ चन्द्रमण्डल जिसके आगे है (तार नामका प्रसन्न वन्दर जिनकी सेनाके आगे-आगे चल रहा है) ऐसा वियोगिनी स्त्रियोंकी दुःखभरी आँखों (वियोगी रामकी दुःखभरी आँखों) से देखा जाता हुआ वसन्त यहाँ हनुमान्के समान आ पहुँचा है ॥ १२ ॥ इस वसन्तमें जो मनुष्य न तो अपनी प्रियतमाओंका वियोग सह सकते, न कफके प्रकोपसे उत्पन्न रोग ही सह सकते, उन्हें तो कस्तूरीके लेपसे सजी हुई मतवाली नवेलियोंका ही सेवन करना चाहिए ॥ १३ ॥ वसन्त ऋतु में पाला तो पड़ता नहीं है, इसलिये आजकल मञ्जरियोंसे लदी आमकी डालियाँ हिलानेवाला और कोयलके सन्देश चारों ओर फैलानेवाला सुन्दर वसन्ती पवन लोगोंका मन हरता हुआ बह रहा है ॥ १४ ॥ बौरे हुए आमके पेड़ोंमें बसे हुए पवनसे, मदमस्त होनेवाले कोकिलकी कूकसे और भौंरोंकी मनभावनी गुञ्जारोंसे मनस्विनी स्त्रियोंके मन भी डिग जाते हैं ॥ १५ ॥ चक्रवर्ती सम्राट् कामदेवकी आज्ञा लेकर यह धनवान् (शोभायुक्त) वसन्त-रूपी व्यापारी निडर होकर मँडराते हुए भौंरों-रूपी महाजनोंसे कोयलकी कूकके रूपमें डौंड़ी पिटवाता हुआ पतझड़से बिछे हुए पत्तोंके बिछौनेवाली कुञ्जोंमें पुष्प और परागरूपी सम्पत्तिका व्यापार कर रहा है ॥ १६ ॥ वसन्त आते ही सूर्यकी किरणें कुछ लाल-लाल हो चली हैं, वृक्षोंमें नये-नये फूल, छाल और पत्ते निकल आए हैं, लताओंपर तारोंके समान चमकीले फूलोंकी सुगन्ध लदी जा रही है, मधु पीकर मतवाले भौंरे आमके वृक्षोंपर बैठकर अपनी टँगड़ियोंसे बौर हिला रहे हैं और दक्षिणका पवन उस वृक्षके पुराने पत्ते गिराता हुआ मंजरियोंका सुगन्धित पराग ढोता हुआ मस्तीसे बह रहा है ॥१७॥ वसन्तके दिनोंमें पवनके झोंकोंसे हिलती हुई जिन पलासके वृक्षोंकी फूली हुई शाखाएँ जलती हुई आगकी लपटोंके समान दिखाई देती हैं, उन पलासके जंगलोंसे ढकी हुई पृथ्वी ऐसी लग रही है मानो लाल साड़ी पहने हुए कोई नई दुलहिन हो ॥ १८ ॥ अशोकके जिन

दलवाः पुष्पचयं दधानाः। कुर्वन्त्यशोका हृदयं सशोकं निरीक्ष्यमाणा नवयौवनानाम् ॥ १६ ॥ आम्री मञ्जुलमञ्जरी वरशरः सत्किंशुकं यद्धनुर्ज्या यस्यालिकुलं कलङ्करहितं छत्रं सितांशुः सितम्। मत्तेभो मलयानिलः परभृता यद्बन्दिनो लोकजित्सोऽयं वो वितरीतरीतु वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः ॥ २० ॥ आम्रे पल्लविते स्थित्वा कोकिला मधुरस्वरम्। चुकूज कामिनां चित्तमाकर्षन्तीव दूतिका ॥ २१ ॥ आयाता मधुरजनी मधुरजनीगीतिहृद्येयम्। अङ्कुरितः स्मरविटपी स्मर विट पीनस्तनीमबलाम् ॥ २२ ॥ आरूढो मलयानिलद्विपवरं युक्तो विलासानुगैः पीतः पुष्पविलोचनैर्नवलतापौराङ्गनानां गणैः। अभ्राम्यद्वनपत्तने मधुमहीपालस्ततः कोकिलालीलालापमिलद्भ्रमद्भ्रमरिकाभाङ्कारभेरीरवैः ॥ २३ ॥ आलम्बिहेमरसनाः स्तनसक्तहाराः कन्दर्पदर्पशिथिलीकृतगात्रयष्ट्यः। मासे मधौ मधुरकोकिलभृङ्गनादैर्नार्यो हरन्ति हृदयं प्रसभं नराणाम् ॥ २४ ॥ आस्वादितं स्वादुमरन्दबिन्दुस्वच्छन्दमिन्दीवरसुन्दरीभिः। माकन्दपुष्पं प्रमदाजनस्य प्रमोदमामोदभरैरकार्षीत् ॥ २५ ॥ इह मधुपवधूनां पीतमल्लीमधूनां विलसति कमनीयः काकलीसम्प्रदायः। इह नटति सलीलं मञ्जरी वञ्जुलस्य प्रतिपदमुपदिष्टा दक्षिणेनानिलेन ॥ २६ ॥ इह हि नववसन्ते मञ्जरीरेणुपुञ्जच्छुरणधवलदेहा बद्धहेलं सरन्ति। तरलमलिसमूहा हारिहुङ्कारिकण्ठा बहलपरिमलालीसुन्दरं सिन्दुवारम् ॥ २७ ॥ ईषत्तुषारैः कृतशीतहर्म्यः सुवासितं चारु शिरश्च चम्पकैः। कुर्वन्ति नार्योऽपि वसन्तकाले स्तनं सहारं कुसुमैर्मनोहरैः ॥ २८ ॥ उच्छ्वासयन्त्यः श्लथबन्धनानि गात्राणि कन्दर्पसमाकुलानि। समीपवर्तिष्वधुना प्रियेषु समुत्सुका एव भवन्ति नार्यः ॥ २९ ॥ उत्फुल्लपङ्कजनिषक्तलसद्द्विरेफः किञ्चिद्विनिद्रकुमुदोत्करसम्भृतश्रीः। आमूलनद्धविविधाद्भुतमाल्यमालश्चित्रं न कस्य तनुते ललितस्तमालः ॥ ३० ॥ उत्सृष्ट-

---

वृक्षोंमें कोंपलें फूट निकली हैं और जिनमें मूँगे-जैसे लाल-लाल फूल नीचेसे ऊपरतक खिल आए हैं, उन्हें देखते ही नवयुवतियोंके हृदयमें शोक होने लगता है ॥ १६ ॥ आमके बौर ही जिसके बाण हैं, टेसू ही धनुष हैं, भौंरोंकी पाँत ही डोरी है, मलयाचलसे आया हुआ पवन ही मतवाला हाथी है, कोयल ही गायक है और शरीर न रहते हुए भी जिसने संसारको जीत लिया है, वह वसन्तके सहित कामदेव सदा आपका कल्याण करे ॥ २० ॥ बौरे हुए आमके पेड़पर बैठी हुई कोयल कामिनियोंके मनको खींचनेवाली दूतीके समान अत्यन्त मधुर शब्दोंमें कूकने लगी है ॥ २१ ॥ स्त्रियोंके सुन्दर गीतोंसे सबका मन हरनेवाली यह वसन्तकी रात आ गई जिससे कामरूपी वृक्षमें अङ्कुर निकल आए हैं, इसलिये हे कामी! तू बड़े-बड़े स्तनोंवाली नायिकाको स्मरण कर ॥२२॥ दक्षिणके वायुरूपी मतवाले हाथीपर चढ़ा हुआ, हाव-भावसे युक्त पुष्परूपी हाथोंवाली नई लताओंके समान नगरकी स्त्रियोंके समूहमें घूमता हुआ और उनसे सप्रेम देखा जाता हुआ वह वसन्त-रूपी राजा वन-रूपी नगरमें भ्रमण कर रहा है जिसके चारों ओर कोयलकी मधुर ध्वनिसे मिले हुए, मँडराते हुए भौंरोंके गुञ्जनरूपी नगाड़ेके शब्द हो रहे थे ॥ २३ ॥ चैतमें जब कोयल कूकने लगता है, भौंरे गूँजने लगते हैं, उस समय कमरमें सोनेकी करधनी बाँधे, स्तनोंपर मोतीके हार लटकाए और कामकी उत्तेजनासे ढीले शरीरवाली स्त्रियाँ बलपूर्वक लोगोंका मन अपनी ओर खींचे लेती हैं ॥ २४ ॥ कमलके समान कोमल स्त्रियोंने जी भरकर स्वादिष्ट फूलके रसोंकी बूँदें पी लीं और आमकी बौरोंने अपनी तीखी सुगन्धसे उन स्त्रियोंको मतवाला कर दिया ॥२५॥ एक ओर वसन्तमें मल्लिकाका रस पीनेवाली भौंरियोंकी मीठी गुञ्जार निरन्तर सुनाई पड़ रही है, दूसरी ओर दक्षिणके वायुरूपी गुरुसे नृत्यकला सीखकर आमकी मञ्जरी बार-बार प्रेमसे झूम-झूमकर नाच रही है ॥ २६ ॥ इस नये-नये वसन्तके समयमें जिनका शरीर मञ्जरीकी धूलसे उजला हो गया है और जिनके गलेसे मनोहर गुञ्जार निकल रही है, वे भौंरे अत्यन्त गन्धसे भरे हुए निर्गुण्डीके पेड़की ओर बड़े प्रेमसे उड़े चले जा रहे हैं ॥ २७ ॥ वसन्तमें घरोंकी छतोंपर ठण्ढी ओस छा गई है, चम्पेके फूलोंसे सबके जूड़े महकने लगे हैं और स्त्रियाँ भी अपने स्तनोंपर मनोहर फूलोंकी मालाएँ पहनने लगी हैं ॥ २८ ॥ कामवासनासे पीड़ित स्त्रियाँ अपने प्रेमियोंके सामने अपने अङ्ग उघाड़ती हुई उन्हें ललचा भी रही हैं और अपनी अधीरता भी दिखा रही हैं ॥ २९ ॥ खिले हुए कमलोंपर बैठे भौंरे गूँज रहे हैं, रातमें कुछ खिले हुए कुमुद शोभासे भर उठे हैं और तमालके वृक्ष तो नीचेसे ऊपरतक रङ्ग-बिरङ्गा मालाओंसे लद गए हैं। वसन्तकी यह शोभा किसे अचरजमें नहीं डाल देती? ॥३०॥ आमके पेड़ोंपर उड़ते हुए भौंरे और

मम्बुजदृशामिव मानरत्नमादाय षट्पदतिलान्मधुवारिपूरान्। पुँस्कोकिलस्य कलकूजितकैतवेन सङ्कल्पवाक्यमथमातनुते रसालः ॥ ३१ ॥ उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं बिभ्रतो भृङ्गालीविरुतैः कलैरविशदव्याहारलीलाभृतः। भ्राम्यन्तो मलयानिलाहतिचलैः शाखासहस्रैर्मुहुर्भान्ति प्राप्य मधुप्रसङ्गमधुना मत्ता इवामी द्रुमाः ॥ ३२ ॥ उपचितावयवा शुचिभिः कणैरलिकदम्बकयोगमुपेयुषी। सदृशकान्तिरलक्ष्यत मञ्जरी तिलकजालकजालकमौक्तिकैः ॥ ३३ ॥ उपययौ तनुतां मधुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः। सदृशमिष्टसमागमनिर्वृतिं वनितयानितया रजनीवधूः ॥ ३४ ॥ उपहितं शिशिरापगमश्रिया मुकुलजालमशोभत किंशुके। प्रणयिनीव नखक्षतमण्डनं प्रमदया मदयापितलज्जया ॥ ३५ ॥ कनककमलकान्तैराननैः पाण्डुगण्डैरुपरिनिहितहारैश्चन्दनार्द्रैः स्तनान्तैः। मद-जनित-विलासैर्दृष्टिपातैर्मुनीन्द्रान्स्तनभरनतनार्यः कामयन्ति प्रशान्तान् ॥ ३६ ॥ कमलिनी मलिनी दयितं विना न सहते सह तेन निषेवितुम्। तमधुना मधुना निहितं हृदि स्मरति सा रतिसारमहर्निशम् ॥ ३७ ॥ कर्णेषु योग्यं नवकर्णिकारं चलेषु नीलेष्वलकेष्वशोकम्। पुष्पञ्च फुल्लं नवमालिकायाः प्रयान्ति कान्तिं प्रमदाजनानाम् ॥ ३८ ॥ कान्तामुखद्युतिजुषामचिरोद्गतानां शोभां परां कुरवकद्रुममञ्जरीणाम्। दृष्ट्वा प्रिये सहृदयस्य भवेन्न कस्य कन्दर्पबाणपतनव्यथितं हि चेतः ॥३९॥ किं किंशुकैः शुकमुखच्छविभिर्न भिन्नं किं कर्णिकारकुसुमैर्न कृतं नु दग्धम्। यत्कोकिलः पुनरयं मधुरैर्वचोभिर्यूनां मनः सुवदनानिहितं निहन्ति ॥ ४० ॥ किंशुककलिकान्तर्गतमिन्दुकलास्पर्धिकेसरं भाति। रक्तनिचोलकपिहितं धनुरिव जतुमुद्रितं वितनोः ॥ ४१ ॥ किंशुकक्षितिरुहां विलसन्तः कुड्मलाः कुटिलतां कलयन्तः। पान्थवारणविदारणताम्राः कामकेसरिनखा इव रेजुः ॥ ४२ ॥ किंशुककुसुमवक्र-

---

कूकते हुए कोकिलको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो वह वृक्ष मकरन्द-रूपी जलके साथ भौंरे-रूपी तिल लेकर स्त्रियोंका क्रोध-रूपी रत्न किसीको दान देनेके लिये कोयलकी मधुर कूकके स्वरोंमें सङ्कल्प पढ़ रहा हो ॥ ३१ ॥ वसंतका संयोग पाकर ये वृक्ष मतवालेसे दिखाई दे रहे हैं क्योंकि मूँगेके समान चमकवाली कोंपलोंसे ये लाल हो चले हैं, सुन्दर भौंरोंकी गुञ्जारसे अटपट बोल रहे हैं और मलयके वायुसे हिलती हुई अनगिनत डालियोंके रूपमें मानो ये सब डगमगाकर चल रहे हैं ॥ ३२ ॥ तिलकके वृक्षकी जिस मञ्जरीपर ओसकी बूँदें झलक आई थीं और भौंरे बैठे हुए थे वह ऐसी जान पड़ती थी मानो मोतीसे गुँथी हुई काली-काली अलकें हों ॥ ३३ ॥ चन्द्रमाके उदय होनेपर जिसका प्रभातरूपी मुख फीका पड़ गया है वह वसंतकी रात्रिरूपी सुन्दरी अपने पतिके मिलनका सुख न पाई हुई नवेलीके समान दुबली पड़ने लगी है ॥ ३४ ॥ वसंतकी शोभारूपी नवेलीने पलासके वृक्षोंमें जो कलियाँ लगाई वे ऐसी सुन्दर जान पड़ती थीं मानो किसी मतवाली स्त्रीने मदके कारण लज्जा छोड़कर अपने प्रियतमके शरीरपर नखोंके सुन्दर चिह्न बना दिए हों ॥ ३५ ॥ स्तनोंके भारसे झुकी हुई नवेलियाँ अपने सोनेके कमलके समान गालोंवाले मुँहसे, गीले चन्दनसे पुते और मोतियोंके हार पड़े हुए स्तनोंसे तथा मतवाली चञ्चल चितवनसे शान्त चित्तवाले तपस्वियोंका भी मन डिगाए दे रही हैं ॥३६॥ वसंतके समय जो भौंरी गूँज रही है वह इस समय अपने मनमें प्यारे भौंरेको ही स्मरण कर रही है क्योंकि वह अपने भौंरेके बिना कमलके पास जाना अच्छा नहीं समझती और चाहती है कि दिन-रात उसीके साथ रमण करती रहे ॥ ३७ ॥ नवेलियोंके कानोंमें लटके हुए सजीले कनैरके फूल बड़े सुहावने दिखाई पड़ रहे हैं और उनकी चञ्चल, काली घुँघराली लटोंमें अशोकके फूल और नई मल्लिकाकी खिली हुई कलियाँ बड़ी सुहावनी लगने लगी हैं ॥ ३८ ॥ हे प्यारी! अभी खिले हुए और स्त्रियोंके मुखके समान सुन्दर लगनेवाले कुरबकके फूलोंकी अनोखी शोभा देखकर किस रसिकका मन कामदेवके बाणसे घायल नहीं हो जाता? ॥ ३९ ॥ अपनी प्रियाओंके मुखड़ोंपर रीझे हुए प्रेमियोंके हृदयको सुग्गेकी ठोरके समान लाल टेसूके फूलोंने ही कुछ कम टूक-टूक कर रक्खा था या कनेरके फूलोंने ही कुछ कम जला रक्खा था कि यह कोयल भी अपनी मीठी कूक सुना-सुनाकर उन्हें और मार डालनेपर उतारू हो रही है ॥ ४० ॥ पलासकी कलीके भीतर दूजके चन्द्रमाके समान टेढ़ा केसर ऐसा सुन्दर दिखाई पड़ रहा है मानो लाल रङ्गके थैलेमें कामदेवका धनुष रखकर उसपर लाखकी मुहर मार दी गई हो ॥ ४१ ॥ वसंतके समय लाल-लाल चमकती हुई टेढ़ी-टेढ़ी पलासकी कलियाँ

नखो मदनप्रह्लादपक्षपातपदः । मानवतीमानदितिजमिच्छति हन्तुं वसन्तनरसिंहः ॥ ४३ ॥ कुन्दैः सविभ्रमवधूहसितावदातैरुद्योतितान्युपवनानि मनोहराणि । चित्तं मुनेरपि हरन्ति निवृत्तरागं प्रागेव रागमलिनानि मनांसि यूनाम् ॥ ४४ ॥ कुपितापि मनःपतिना सह का सहकारविलोकनजातरसा । तरसा रमते स्म न हा रमणी रमणीयतनुः सुतनुः सुरभौ ॥ ४५ ॥ कुबेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य । दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीकनिःश्वासमिवोत्ससर्ज ॥ ४६ ॥ कुसुमकार्मुककार्मुकसंहितद्रुतशिलीमुखखण्डितविग्रहाः । मरणमप्यपराः प्रतिपेदिरे किमु मुहुर्मुहुर्गतभर्तृकाः ॥ ४७ ॥ कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् । इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥ ४८ ॥ कुसुमनगवनान्युपैतुकामा किसलयिनीमवलम्ब्य चूतयष्टिम् । क्वणदलिकुलनूपुरा निरासे नलिनवनेषु पदं वसन्तलक्ष्मीः ॥ ४९ ॥ कुसुममेव न केवलमार्तवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम् । किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः ॥ ५० ॥ कुसुम्भरागारुणितैर्दुकूलैर्नितम्बविम्बानि विलासिनीनाम् । तन्वंशुकैः कुङ्कुमरागगौरैरलङ्क्रियन्ते स्तनमण्डलानि ॥ ५१ ॥ कूजितानि कलयन्वनप्रियो न प्रियो विरहिणामजायत । मन्मथाग्निरपि भस्मना दरं सादरं मुनिमनोऽम्बुजं व्यधात् ॥ ५२ ॥ कोकिलश्चूतशिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः । गदितैर्व्यक्ततामेति कुलीनश्चेष्टितैरिव ॥ ५३ ॥ गर्भग्रन्थिषु वीरुधां सुमनसो मध्येऽङ्कुरं पल्लवा वाञ्छामात्रपरिग्रहः पिकवधूकण्ठोदरे पञ्चमः । किञ्च त्रीणि जगन्ति जिष्णु-दिवसैर्द्वित्रैर्मनोजन्मनो देवस्यापि चिरोज्झितं यदि भवेदभ्यासवश्यं धनुः ॥ ५४ ॥ गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशैः

ऐसी जान पड़ती हैं मानो वियोगी पुरुष-रूपी हाथीको फाड़नेवाले कामदेव-रूपी सिंहके रक्तसे रँगे लाल-लाल नख हों ॥ ४२ ॥ टेसूके फूल-रूपी टेढ़े नखोंवाले तथा कामदेवरूपी प्रह्लादका पक्ष लेनेवाले वसन्तरूपी नृसिंह इस समय रूठी हुई नवेलियोंके मानरूपी दैत्य (हिरण्यकशिपु) को मारनेपर उतारू हो गए हैं ॥ ४३ ॥ कामिनियोंकी मस्ती-भरी हँसीके समान उजले कुन्दके फूलोंसे चमकते हुए मनोहर उपवन जब मोह-मायासे दूर रहनेवाले मुनियोंका भी मन हर लेते हैं तब नवयुवकोंके प्रेमी हृदयकी तो बात ही क्या ! ॥ ४४ ॥ वसन्तके दिनोंमें ऐसी कोई सुन्दरी न दिखाई दी जो रूठी होनेपर भी बौरे हुए आमको देखकर प्रेमसे न भर गई हो और उतावली होकर अपने प्रियतमके साथ क्रीड़ा न करने लगी हो ॥४५॥ वसन्तके आते ही जब सूर्य असमयमें ही दक्षिणायनसे उत्तरायण होने लगे उस समय दक्षिणसे आता हुआ मलयका वायु ऐसा जान पड़ता था मानो अपने पति सूर्यके चले जानेपर दक्षिण दिशा दुखी होकर लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ रही हो ॥ ४६ ॥ कामदेवके धनुषपर चढ़कर छूटे हुए भौंरे-रूपी बाणोंसे जिनका शरीर बिंध गया था ऐसी कुछ वियोगिनी स्त्रियाँ तो चल बसीं, किन्तु जो बची रह गईं वे यदि बार-बार मूर्च्छित हो रही हों तो आश्चर्य क्या है ॥ ४७ ॥ वनके वृक्षोंमें वसन्त क्रमशः ऐसे पैठा कि पहले उनमें फूल निकले, फिर नये पत्ते निकले, फिर भौंरे गूँजने लगे और फिर कोयलकी कूक सुनाई पड़ने लगी ॥ ४८ ॥ नई-नई कोंपलोंवाले आमके पेड़के सहारे वनके अन्य खिले हुए पेड़ोंपर पहुँचनेकी चाहसे वसन्तकी शोभाने जो कमलके वनोंपर अपना पैर रक्खा उस समय गुनगुनाते हुए भौंरे ऐसे जान पड़े मानो उसकी पायल रुन-झुन कर रही हो ॥ ४९ ॥ वसन्त ऋतुमें केवल अशोकके फूले हुए नये-नये फूल ही कामको नहीं जगा रहे थे वरन् सुन्दरियोंने अपने कानोंपर जो आमकी मञ्जरियाँ टाँग ली थीं वे भी कामियोंको मतवाला बनाए डाल रही थीं ॥ ५० ॥ कामिनियोंने अपने गोल-गोल नितम्बोंपर कुसुमके लाल फूलोंसे रँगी रेशमी साड़ी पहन ली है और स्तनोंपर केशरमें रँगी हुई महीन कपड़ेकी चोली बाँध ली है ॥५१॥ वसन्तमें कोयलकी कूक एक तो यों ही वियोगियोंको नहीं भा रही थी, उसपर कामदेवकी आगने झटपट मुनियोंके मनरूपी कमलको भी भली-भाँति जलाकर राख कर डाला ॥ ५२ ॥ आमकी डालीपर बैठा हुआ कोकिल बौरके परागसे ऐसा रँग गया है कि वह केवल अपनी कूकसे ही पहचान पड़ता है । ठीक भी है, किसी व्यक्तिकी कुलीनताका ज्ञान उसके व्यवहारोंसे ही होता है ॥ ५३ ॥ वसन्तमें लताओंपर फूल खिल आए, कोंपलोंसे पत्ते फूट आए, कोयलके गलेमें उसके चाहने-भरसे ही पञ्चम स्वर गूँज उठा । और तो क्या, यदि कामदेव भी आजकल बहुत दिनोंसे छोड़े हुए धनुपको चलानेका अभ्यास कर ले तो दो ही तीन दिनोंमें तीनों

किञ्चित्समुच्छ्वासितपत्रलेखम्। पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि प्रियामुखं किम्पुरुषश्चुचुम्बे ॥ ५५ ॥ गुरूणि वासांसि विहाय तूर्णं तनूनि लाक्षारसरञ्जितानि। सुगन्धिकालागुरुधूपितानि धत्ते जनः काममदालसाङ्गः ॥ ५६ ॥ चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज। मनस्विनीमानविघातदक्षं तदेव जातं वचनं स्मरस्य ॥ ५७ ॥ चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः सन्नद्धं यदपि स्थितं कुरवकं तत्कोरकावस्थया। कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम् ॥ ५८ ॥ छायां जनः समभिवाञ्छति पादपानां नक्तं तथेच्छति पुनः किरणं सुधांशोः। हर्म्यं प्रयाति शयितुं सुखशीतलञ्च कान्ताञ्च गाढमुपगूहति शीतलत्वात् ॥ ५९ ॥ जगौ विवाहावसरे वनस्थलीवसन्तयोः कामहुताशसाक्षिणि। पिकद्विजः प्रीतमना मनोरमं मुहुर्मुहुर्मङ्गलमन्त्रमादरात् ॥ ६० ॥ तनूनि पाण्डूनि मदालसानि मुहुर्मुहुर्जृम्भणतत्पराणि। अङ्गान्यनङ्गः प्रमदाजनस्य करोति लावण्यससम्भ्रमाणि ॥ ६१ ॥ ताम्रप्रवालस्तबकावनम्राश्चूतद्रुमाः पुष्पितचारुशाखाः। कुर्वन्ति कामं पवनावधूताः पर्युत्सुकं मानसमङ्गनानाम् ॥ ६२ ॥ त्यजत मानमलं बत विग्रहैर्न पुनरेति गतं चतुरं वयः। परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधूजनः ॥ ६३ ॥ दत्ते जनोऽसौ खलु विद्यमानमविद्यमानं तु न कोऽपि तावत्। वियोगिनां पुष्पनमन्नशोकः शोकप्रदोऽभूदतिचित्रमेतत् ॥ ६४ ॥ ददौ रसात्पङ्कजरेणुगन्धि गजाय गण्डूषजलं करेणुः। अर्धोपभुक्तेन बिसेन जायां सम्भावयामास रथाङ्गनामा ॥ ६५ ॥ द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः। सुखाः प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः सर्वं

लोक जीत ले ॥ ५४ ॥ वसन्तमें जिस किन्नरीके मुखपर गानेके परिश्रमसे झलकी हुई पसीनेकी बूँदोंने गालकी चित्रकारी मिटा दी थी और जिसके नेत्र फूलोंकी मदिरासे मतवाले होनेके कारण सुन्दर दिखाई दे रहे थे उसे किन्नर चूमने लगा ॥ ५५ ॥ इन दिनों कामदेवके मदमें अलसाई हुई नवेलियाँ अपने मोटे वस्त्र उतारकर महावरसे रँगे हुए और कालागुरुके धुएँसे सुगन्धित किए हुए झीने वस्त्र पहनने लगी हैं ॥ ५६ ॥ जिस कोयलका स्वर आमकी बौरें खानेसे रसीला हो गया था उसकी कूकने रूठी हुई स्त्रियोंका मान इस प्रकार दूर कर दिया मानो अपनी कूकके स्वरमें उसने कामदेवकी आज्ञा ला सुनाई हो ॥५७॥ वसन्तके प्रारम्भमें अभी कुछ ही दिन पहले निकली हुई आमकी बौरोंमें पराग नहीं आ पाया है, हरी-भरी कटसरैयामें अभी कलियाँ ज्योंकी त्यों बँधी हुई हैं तथा ठण्डक बीत जानेपर भी कोयलकी कूक अभी गलेके भीतर ही गूँज रही है, इससे जान पड़ता है कि अभी कामदेवने भी अपना तूणीरसे आधा निकाला हुआ बाण घबराकर रोक लिया है ॥ ५८ ॥ इन दिनों लोग दिनमें तो वृक्षोंकी शीतल छाया चाहते हैं, रातमें चन्द्रमाकी किरणोंका आनन्द लेना चाहते हैं, सोनेके लिये सुहावनी ठण्ढी अटारियों पर पहुँच जाते हैं और थोड़ी-थोड़ी ठण्डक पड़नेके कारण अपनी प्रियतमाओंको कसकर छातीसे लिपटाए रहते हैं ॥ ५९ ॥ वसन्तमें कोयलकी कूक ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेवरूपी अग्निको साक्षी बनाकर जब वनकी भूमि तथा वसन्तका विवाह हो रहा हो उस अवसरपर कोयल-रूपी द्विज (पक्षी, ब्राह्मण) प्रसन्न होकर अत्यन्त आदरसे बार-बार सुन्दर मङ्गल मन्त्र पढ़ रहा हो ॥ ६० ॥ इन दिनों स्त्रियोंमें इतनी कामवासना भर आती है कि उनके अङ्ग दुबले और पीले पड़ जाते हैं, वे मद से अलसाई-सी हो जाती हैं, बार-बार जँभाइयाँ लेती हैं और उनके सारे शरीरमें कुछ अनोखा ही रसीलापन आ जाता है ॥ ६१ ॥ लाल-लाल कोंपलोंके गुच्छोंसे झुके हुए और सुन्दर मञ्जरियोंसे लदी हुई शाखाओंवाले आमके पेड़ जब पवनके झोंकेसे हिलने लगते हैं तब उन्हें देख-देखकर स्त्रियोंके मन उछलने लगते हैं ॥६२॥ जैसे ही कोयलने अपनी कूकमें यह कह सुनाया कि 'क्रोध छोड़ दो, लड़ाई-झगड़ा करना ठीक नहीं है और यह बीती हुई जवानी फिर नहीं लौटती,' वैसे ही स्त्रियाँ कामदेवकी आज्ञा पालन करने लगीं ॥ ६३ ॥ संसारका नियम है कि जो वस्तु जिसके पास होती है वही देता है, जो नहीं होती उसे नहीं देता, किन्तु आश्चर्य तो यह है कि फूलों से लदा हुआ अशोक (जिसके पास शोक नहीं है) भी वियोगियोंको शोक देने लगा ॥ ६४ ॥ हथिनीने वसन्तमें बड़े प्रेमके साथ अपने प्यारे हाथीको अपनी सूँड़से कमलके परागकी गन्धमें बसा हुआ जल दिया और चकवेने आधा खाया हुआ कमलनाल अपनी चकवीको देकर उसपर प्यार दिखाया ॥ ६५ ॥ देखो प्यारी! वसन्तके आते ही सब वृक्ष फूलोंसे लद

प्रिये चारुतरं वसन्ते ॥ ६६ ॥ धुन्वन्त्यमूनि मदमूर्च्छदलिध्वनीनि धूताध्वनीनहृदयानि मधोर्दिनानि। निस्तन्द्रचन्द्रवदनावदनारविन्दसौरभ्यसौहृदसगर्वसमीरणानि ॥ ६७ ॥ ध्वजपटं मदनस्य धनुर्भृतश्छविकरं मुखचूर्णमृतुश्रियः। कुसुमकेसररेणुमणिव्रजाः सपवनोपवनोत्थितमन्वयुः ॥ ६८ ॥ न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं न पङ्कजं तद्यदलीनषट्पदम्। न षट्पदोऽसौ कलगुञ्जितो न यो न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ॥ ६९ ॥ नयगुणोपचितामिव भूपतेः सदुपकारफलां श्रियमर्थिनः। अभिययुः सरसो मधुसम्भृतां कमलिनीमलिनीरपतत्त्रिणः ॥ ७० ॥ नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्। मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥ ७१ ॥ नानामनोज्ञकुसुमद्रुमभूपितान्तान्हृष्टान्यपुष्टनिनदाकुलसानुदेशान्। शैलेयजालपरिणद्धशिलातलान्तान्दृष्ट्वा जनः क्षितिभृतो मुदमेति सर्वः ॥ ७२ ॥ निर्वाणाङ्गारसङ्घैरिव मधुपकुलैः कालिमानं वहद्भिर्भस्त्रावातैरिवोद्यन्मलयगिरिगुहानिर्गतैस्तैर्मरुद्भिः। उद्दीप्योद्दाममन्तर्विरहहुतभुजं निर्मिमीतेऽत्र पौष्पान्बाणानचुण्णधारान्मधुरयमधुना लोहकारः स्मरस्य ॥ ७३ ॥ नेत्रे निमीलयति रोदिति याति शोकं घ्राणं करेण विरुणद्धि विरौति चोच्चैः। कान्तावियोगपरिखेदितचित्तवृत्तिर्दृष्ट्वाऽध्वगः कुसुमितान्सहकारवृक्षान् ॥७४॥ नेत्रेषु लोलो मदिरालसेषु गण्डेषु पाण्डुः कठिनः स्तनेषु। मध्येषु निम्नो जघनेषु पीनः स्त्रीणामनङ्गो बहुधा स्थितोऽद्य ॥ ७५ ॥ पतङ्गपाकसमये पतङ्गपतिविक्रमाः। पतङ्गस्योदये चेलुः पतङ्गा इव वानराः ॥ ७६ ॥ पथि पथि शुकचञ्चूचारुरामाङ्कुराणां दिशि दिशि पवमानो वीरुधां लासकश्च। नरि नरि किरति द्राक्सायकान्पुष्पधन्वा पुरि पुरि विनिवृत्ता मानिनी-

गए हैं, जलमें कमल खिल गए हैं, स्त्रियाँ मतवाली हो चली हैं, वायुमें सुगन्ध आने लगी है, साँझें सुहावनी हो चली हैं और दिन लुभावने हो गए हैं। सचमुच सुन्दर वसन्तमें सब कुछ सुहावना ही लगने लगता है ॥ ६६ ॥ वसन्तके जिन दिनोंमें मतवाले भौंरे गूँज-गूँजकर वियोगियोंका मन दहलाते रहते हैं और जिन दिनों पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली स्त्रियोंके मुखकमनकी सुगन्ध पाकर वायु भी फूले नहीं समाते उन दिनोंमें रसिकोंका हृदय बाँसों उछल रहा है ॥६७॥ वसन्तके दिनोंमें भौंरे उड़-उड़कर फूलोंके केसरके उस परागपर मँडराने लगे जो धनुर्धर कामदेवकी झण्डीका वस्त्र तथा वसन्तकी शोभा-रूपी नवेलीके मुखकी चमक बढ़ानेवाला चूर्ण बनकर वायुसे हिलते हुए उपवनके ऊपर उड़ रहा था ॥६८॥ वसन्तके दिनोंमें ऐसा कहीं जल नहीं था जिसमें सुन्दर कमल न खिले हों, ऐसा कोई कमल नहीं था जिसपर भौंरे न बैठे हों, ऐसा कोई भौंरा नहीं था जो मधुर गुञ्जार न कर रहा हो और ऐसा गूँजना भी नहीं था जिसने मन न हर लिया हो ॥ ६९ ॥ जैसे भिगमंगे लोग अत्यन्त नम्रतासे गुणानुवाद करते हुए राजाके पास उसकी उपकारकी भावनासे भरी हुई संपत्ति माँगनेके लिये जाते हैं वैसे ही भौंरे भी सरोवरमें मधुसे भरी हुई कमलिनीके पास गुनगुनाते हुए जा पहुँचे ॥७०॥ सामने दिखाई देता हुआ वसन्त नई कोंपलोंसे लदे हुए पलासके वनों, खिले हुए और परागसे भरे हुए कमलों और सुगन्धित फूलोंसे लदी हुई कोमल पतली लताओंसे बड़ा भला दिखाई पड़ रहा है ॥ ७१ ॥ जिन पर्वतोंकी चोटियोंके ओर-छोरपर सुन्दर फूलोंके बिरवे खड़े हैं, जिनपर कोयलोंकी कूक और भौंरोंकी गूँज सुनाई दे रही है और जिनपर जहाँ-तहाँ पत्थर फैले हुए हैं, उन पहाड़ोंको देख-देखकर सबको आनन्द मिलता है ॥ ७२ ॥ कामदेवका वसन्तरूपी लोहार काले-काले भौंरे रूपी बुझे हुए अङ्गारोंको मलयाचलकी गुफा-रूपी धौंकनीसे धौंककर प्राणियोंके हृदयकी प्रचण्ड विरहाग्नि जगाकर तीखी धारवाले ये फूलके बाण बनाता जा रहा है ॥ ७३ ॥ अपनी स्त्रियोंसे दूर रहनेके कारण जिनका जी बेचैन हो रहा है वे यात्री जब मञ्जरियोंसे लदे हुए आमके पेड़ देखते हैं तो अपनी आँख बन्द करके रोते हैं, पछताते हैं, अपनी नाक बन्द कर लेते हैं कि कहीं मञ्जरियोंकी भीनी-भीनी महक नाकमें पहुँचकर प्यारीकी याद न दिला दे और फिर फूट-फूटकर रोने लगते है ॥ ७४ ॥ इन दिनों कामदेव भी स्त्रियोंकी मदमाती आँखोंमें चञ्चलता बनकर, उनके गालोंमें पीलापन बनकर, स्तनोंमें कठोरता बनकर, कमरमें गहरापन बनकर और नितम्बोंमें भारीपन बनकर आ डटा है ॥ ७५ ॥ वसन्तके दिनोंमें अन्न पकनेके समय प्रातःकाल सूर्यके उदय होनेपर टिड्डियोंके समान दौड़नेवाले वानरोंका पराक्रम गरुड़के वेगके समान दिखाई पड़ रहा था ॥ ७६ ॥ वसन्तमें मार्ग-मार्गमें सुग्गेकी ठोरके समान सुन्दर अङ्कुर निकल आए, चारों ओर

मानचर्चा ॥ ७७ ॥ परभृतकलगीतैर्ह्लादिभिः सद्वचांसि स्मितदशनमयूखान्कुन्दपुष्पप्रभाभिः । करकिसलयकान्तिं पल्लवैर्विद्रुमाभैरुपहसति वसन्तः कामिनीनामिदानीम् ॥ ७८ ॥ परिचुम्बति संश्लिष्य भ्रमरश्चूतमञ्जरीम् । नवसङ्गमसंहृष्टः कामी प्रणयिनीमिव ॥ ७९ ॥ पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः । लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥ ८० ॥ पुँस्कोकिलश्चूतरसासवेन मत्तः प्रियां चुम्बति रागहृष्टः । कूजद्द्विरेफोऽप्ययमम्बुजस्थः प्रियं प्रियायाः प्रकरोति चाटु ॥ ८१ ॥ पुँस्कोकिलैः कलवचोभिरुपात्तहर्षैः कूजद्भिरुन्मदकलानि वचांसि भृङ्गैः । लज्जान्वितं सविनयं हृदयं क्षणेन पर्याकुलं कुलगृहेऽपि कृतं वधूनाम् ॥ ८२ ॥ पुष्पाणि प्रथमं ततः प्रकटिताः स्वान्तोत्सवाः पल्लवाः पश्चादुन्मदकोकिलालिललनाकोलाहलः कोमलः । इत्थं प्रादुरभूदुपेत्य परितः प्राज्यप्रमोदप्रदः प्रोद्दामद्रुमराजिराजितवनक्षोणीमृतुक्ष्मापतिः ॥ ८३ ॥ प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः । सुरभिगन्धिषु शुश्रुविरे गिरः कुसुमितासु मिता वनराजिषु ॥ ८४ ॥ प्रफुल्लचूताङ्कुरतीक्ष्णसायको द्विरेफमालाविलसद्धनुर्गुणः । मनांसि भेत्तुं सुरतप्रसङ्गिनां वसन्तयोद्धा समुपागतः प्रिये ॥ ८५ ॥ प्रसह्य चम्पको भृङ्गान्निष्कासयति दूरतः । स्वमुन्नतो हि संसर्गं मधुपैः कोऽभिनन्दति ॥ ८६ ॥ प्रसूनकलिकाकुलैः किसलयैः करस्पर्धिभिः स्फुरन्मधुमदभ्रमद्भ्रमरकोकिलाकूजितैः । इति क्रमसमुद्गतैरुपवनावलीमण्डलीममण्डयदिव प्रियामृतुवसुन्धरावल्लभः ॥ ८७ ॥ प्रसूनशृङ्गैर्मकरन्दतोयं सलीलमादाय वसन्तकामी । वनस्थलीवामदृशां मुखानि सिञ्चत्यसौ मन्दमरुत्करेण ॥ ८८ ॥ प्रस्फुरत्प्रचुरबालपल्लवा वीरुधश्च तरलाश्च काशिरे । क्रीडिता

बहनेवाला पवन लताओंको नचाने लगा, प्रत्येक मनुष्यको ताक-ताककर कामदेव बाण छोड़ने लगा और प्रत्येक नगरसे अब स्त्रियोंके रूठनेकी चर्चा जाती रही ॥ ७७ ॥ इस समय जी हुलसानेवाला कोयलका गीत सुना-सुनाकर यह वसन्त सुन्दरियोंकी रसभरी बातोंकी खिल्ली उड़ा रहा है, अपने कुन्दके फूलोंकी चमक दिखाकर नवेलियोंकी मुसकानपर चमक उठनेवाले दाँतोंकी दमककी हँसी उड़ा रहा है और मूँगे जैसी लाल-लाल कोमल पत्तोंकी ललाई दिखाकर उन कामिनियोंकी कोंपलों-जैसी कोमल और लाल हथेलियोंको हरा रहा है ॥ ७८ ॥ जैसे अपनी प्यारीसे पहले-पहल मिलनेपर कामी लोग उसे लिपट-लिपटकर चूमते हैं उसी प्रकार भौंरा भी वसन्तमें आमकी बौरसे लिपट-लिपटकर उसे चूम रहा है ॥ ७९ ॥ फूलोंके गुच्छे ही जिनके बड़े-बड़े स्तन थे और चमकती हुई नई कोंपलें ही जिनके सुन्दर ओठ थे, उन लता-रूपी नवेलियोंने अपनी झुकी हुई शाखा-रूपी भुजाओंसे वृक्षोंको गले लगा लिया ॥ ८० ॥ देखो ! यह नर-कोयल आमकी मञ्जरियोंके रसमें मदमस्त होकर बड़े प्रेमसे प्रसन्न होकर अपनी प्यारीको चूम रहा है और कमलपर बैठकर गुनगुनाता हुआ यह भौंरा भी प्यारीका मनचाहा कर रहा है ॥ ८१ ॥ मगन होकर मीठे स्वरमें कूकनेवाले नर-कोयलोंने और मस्तीसे गूँजते हुए भौंरोंने सती स्त्रियोंके लाज और मर्यादा-भरे हृदयोंको भी थोड़ी देरके लिये अधीर कर दिया है ॥ ८२ ॥ वसन्तमें पहले फूल खिले, फिर मन प्रसन्न करनेवाले पत्ते फूट निकले, तब मतवाले कोयलकी कूक उठी और फिर भौंरोंकी मधुर गुञ्जार चारों ओर छा गई । इस प्रकार आनन्द देनेवाली वसन्त ऋतु हरे-भरे वृक्षोंसे सुशोभित वनभूमिमें पहुँचकर चारों ओरसे फूट पड़ी ॥ ८३ ॥ जैसे भोलीभाली नवेलियाँ कभी-कभी कुछ-कुछ अपने प्रेमकी चर्चा कर दिया करती हैं वैसे ही फूलोंसे लदी हुई सुगन्धित वनकी डालियोंमें कहीं-कहीं पहले-पहल कोयलकी कूक सुनाई देने लगी ॥ ८४ ॥ लो प्यारी ! फूले हुए आमकी मञ्जरियोंके पैने बाण लेकर और अपने धनुषपर भौंरोंकी पाँतोंकी डोरी चढ़ाकर वीर वसन्त संभोग करनेवाले रसिकोंको वेधने आ पहुँचा है ॥ ८५ ॥ वसन्तमें चम्पेने भौंरोंको अपने पाससे खदेड़ दिया । ठीक भी है, कोई भी भला आदमी मधुपों (भौंरों, मद्यपों) से मेल-जोल रखना ठीक नहीं समझता ॥ ८६ ॥ भूतलके प्यारे वसन्त-रूपी छैलेने फूलोंकी कलियोंके साथ निकली हुई और हाथके समान दिखाई देनेवाली लाल-लाल कोंपलोंसे, अधिक मकरन्द पीकर मतवाले भौंरोंसे और कोयलकी मधुर ध्वनिसे वनस्थली-रूपी नवेलीको भली-भाँति सजा दिया ॥ ८७ ॥ यह कामी वसन्त अपनी फूल-रूपी पिचकारीसे फूलोंके रस रूपी जलको प्रेमसे लेकर वन-भूमि-रूपी नवेलियोंके मुखपर मन्द वायु-रूपी हाथोंसे छोड़ रहा है ॥ ८८ ॥ जिन चञ्चल लताओंमें वसन्तमें नई-नई कोपलें फूट आई थीं वे ऐसी दिखाई पड़ रही थीं मानो वसन्तके आनेपर उन्होंने केसरके

इव कुसुम्भवारिभिः काममित्रसमये समागते ॥ ८६ ॥ प्रियङ्गुकालीयककुङ्कुमाक्तं स्तनेषु गौरेषु विलासिनीभिः । आलिप्यते चन्दनमङ्गनाभिर्मदालसाभिर्मृगनाभियुक्तम् ॥ ९० ॥ प्रियसखीसदृशं प्रतिबोधिताः किमपि काम्यगिरा परपुष्टया । प्रियतमाय वपुर्गुरुमत्सरच्छिदुरया दुरयाचितमङ्गनाः ॥ ९१ ॥ वकुलकुलमिलन्मिलिन्दमालामदकलकोकिलकूजितोदयेन । अहह नियमिनोऽपि तत्त्वचिन्ताच्युतमतयो मतयोषितो बभूवुः ॥ ९२ ॥ बाणानङ्कुरयन्ति पुष्पधनुषो वीरस्य चूतद्रुमाः वासन्तीमुकुलानि सम्प्रति मुखैर्भिन्दन्ति भृङ्गाङ्गनाः । गण्डूषं प्रतिपालयन्ति सुदृशां पुष्पोद्गमे केसरस्तासां च स्तनमण्डलैः कुरवका गाढं तदालिङ्गनम् ॥ ९३ ॥ बालेन्दुवक्राण्यविकासभावाद्बभुः पलाशान्यतिलोहितानि । सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥ ९४ ॥ मत्तद्विरेफपरिचुम्बितचारुपुष्पा मन्दानिलाकुलितनम्रमृदुप्रवालाः । कुर्वन्ति कामिमनसां सहसोत्सुकत्वं बालातिमुक्तलतिकाः समवेदयमानाः ॥ ९५ ॥ मधुकरैरपवादकरैरिव स्मृतिभुवः पथिका हरिणा इव । कलतया वचसः परिवादिनीस्वरजिता रजिता वशमाययुः ॥ ९६ ॥ मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्त्तमानः । शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥ ९७ ॥ मधुपराजिपराजितमानिनीजनमनःसुमनःसुरभिश्रियम् । अभृत वारितवारिजविप्लवं स्फुटिततास्रतताम्रवनं जगत् ॥ ९८ ॥ मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया । मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥ ९९ ॥ मधुसुरभि मुखाब्जं लोचने लोध्रताम्रे नवकुरवकपूर्णः केशपाशो मनोज्ञः । गुरुतरकुचयुग्मं श्रोणिबिम्बं तथैव न भवति किमिदानीं योषितां मन्मथाय ॥ १०० ॥ मन्दोऽयं

पानीसे होली खेली हो ॥ ८९ ॥ मदसे अलसाई हुई रसीली स्त्रियाँ प्रियङ्गु, कालीयक और केसरके घोलमें कस्तूरी मिलाकर अपने गोरे-गोरे स्तनोंपर चन्दनका लेप कर रही हैं ॥ ९० ॥ मानिनियोंका गहरा रोष दूर करनेवाले और मनोहर कूक सुनानेवाले कोकिलने जब अपनी कूकमें प्यारी सखीके समान कुछ समझा दिया तो नवेलियोंने अपने प्रेमियोंकी प्रार्थनाके विना ही अपना शरीर उन्हें समर्पित कर दिया ॥ ९१ ॥ जब वसन्तमें मौलसिरीके नीचे बैठे हुए भौंरे गूँज उठे और मतवाला कोकिल कूक उठा उस समय आश्चर्य तो यह हुआ कि इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले मुनियोंकी बुद्धि भी आत्मचिन्तनसे हटकर स्त्री-चिन्तनमें लग गई ॥ ९२ ॥ वसन्त ऋतुमें आमके वृक्षोंने बौरके रूपमें पुष्पके धनुषवाले वीर कामदेवके बाणोंके अङ्कुर निकालना प्रारम्भ कर दिया, भौंरियाँ वासन्तीकी कलियोंको चूम-चूमकर खिलाने लगीं, कटसरैया इस आशामें खड़ी हो गई कि सुनयनी नवेलियाँ मुझपर मदिराके कुल्ले करेंगी और केसर (पुष्पोंका पराग) उनके स्तनोंपर लिपटकर उन्हें छातीसे लगानेको मचल उठा ॥ ९३ ॥ द्वितीयाके चन्द्रमाके समान टेढ़े और अत्यन्त लाल-लाल अधखिले पलासके फूल ऐसे जान पड़ते थे मानो वसन्तने वनस्थलियोंके साथ विहार करके उनपर नखके चिह्न लगा दिए हों ॥ ९४ ॥ जिन छोटी-छोटी अतिमुक्त लताओंके फूलोंको मतवाले भौंरे चूम रहे हैं और जिनके नये कोमल पत्ते मन्द-मन्द पवनमें झूल रहे हैं, उन्हें देख-देखकर कामिनियोंका मन अचानक डाँवाडोल हो जाता है ॥ ९५ ॥ वसन्तमें गूँजते हुए भौंरे मानो पथिकरूपी हरिणोंको मोहक बाजा बजाकर फँसानेवाले कामके दास हैं कि उनकी वीणाकी स्वरसे भी अधिक मधुर गुञ्जारसे हरिणके समान वियोगी उसपर लट्टू होकर कामके फन्देमें आ फँसे ॥ ९६ ॥ वसन्तमें इधर भौंरा तो अपनी प्यारी भौंरीके साथ-साथ एक ही फूलपर बैठकर मकरन्द पीने लगा, उधर हरिण भी अपनी उस प्यारी हरिणीको सींगसे खुजलाने लगा जिसने अपने प्यारे हरिणके स्पर्शके आनन्दसे आँखें मूँद लीं ॥ ९७ ॥ वसन्त आते ही संसारकी रूठी हुई स्त्रियाँ भौंरोंकी गुञ्जार सुनकर रूठना भूलकर खिल उठी हैं, कमलोंका सारा कष्ट (पाला) जाता रहा और चारों ओर आमके वृक्ष लाल-लाल दिखाई देने लगे ॥ ९८ ॥ वसन्तमें खिली हुई माधुरी लताके फूलोंके रसका स्वाद लेनेसे जिस भौंरीकी बुद्धि बढ़ गई है वह मधुर और मतवाली ध्वनिमें गूँजनेवाली भौंरी बार-बार धीरे-धीरे गुनगुनाने लगी ॥ ९९ ॥ आसवसे महकता हुआ स्त्रियोंका कमलके समान मुख, लोध जैसी उनकी लाल-लाल आँखें, नये कुरबकके फूलोंसे सजे हुए उनके सुन्दर जूड़े, बड़े-बड़े गोल-गोल उनके स्तन और वैसे ही बड़े-बड़े गोल-गोल नितम्ब क्या लोगोंके मनमें कामदेवको नहीं जगा रहे हैं ॥ १०० ॥ युवकोंकी पाँचों इन्द्रियोंको एक साथ बाँध लेनेके लिये वसन्तने मन्द-मन्द चलनेवाला मलयका

मलयानिलः किसलयं चूतद्रुमाणां नवं माद्यत्कोकिलकूजितं विचकिलामोदः पुराणं मधु। बाणानित्युपदीकरोति सुरभिः पञ्चैव पञ्चेषवे यूनामिन्द्रियपञ्चकस्य युगपत्सम्मोहसम्पादिनः ॥ १०१ ॥ मलयपवनविद्धः कोकिलालापरम्यः सुरभिमधुनिषेकाल्लब्धगन्धप्रबन्धः। विविधमधुपयूथैर्वेष्ट्यमानः समन्ताद्भवतु तव वसन्तः श्रेष्ठकालः सुखाय ॥ १०२ ॥ मलयानिलमिलनोत्कटमदकलकलकण्ठकलकलापः । मधुरमधुविधुरमधुपो मधुरयमधुना धिनोति धराम् ॥ १०३ ॥ माकन्दच्युतपुष्परेणुपटलीकल्पतालवालोदरे मन्दस्यन्दिमरन्दपूरभरिते वातोत्थपुष्पप्लवैः। खेलन्तो ललितं मधोर्गुणगणान्गायन्ति पुष्पन्धयाः कान्तानामधरे धयन्ति मधुरं सक्तं मधूलोरसम् ॥ १०४ ॥ माकन्देषु न यद्यपि प्रतिदिनं गर्भाङ्कुरग्रन्थयो भिद्यन्ते न च यद्यपि प्रतनुते पुष्पाण्यशोकद्रुमः। धत्ते नान्यभृतस्य यद्यपि कलः कण्ठे पदं पञ्चमो भ्रातः पश्य तथाप्ययं हतमधुश्चेतः करोत्युत्सुकम् ॥ १०५ ॥ मानग्रन्थिकदर्थनाय कथितास्सर्वत्र पुंस्कोकिलाः क्रीडाकर्मणि दाक्षिणात्यमरुतामध्यक्षभावोऽर्पितः। पुष्पास्त्रस्य जगत्त्रयेऽपि विरहिप्रत्यूहहेवाकिनः सन्नद्धोऽयमसाध्यसाधनविधौ साम्राज्यमन्त्री मधुः ॥ १०६ ॥ मालतीविरहाक्रान्ताः पश्य भृङ्गा मुमूर्षवः। आत्मानं प्रक्षिपन्तीव किंशुकप्रभवानले ॥ १०७ ॥ मुहुरनुपतता विधूयमानं विरचितसंहति दक्षिणानिलेन। अलिकुलमलकाकृतिं प्रपेदे नलिनमुखान्तविसर्पिपङ्कजिन्याः ॥ १०८ ॥ मृगाः प्रियालद्रुममञ्जरीणां रजःकणैर्विघ्नितदृष्टिपाताः। मदोद्धताः प्रत्यनिलं विचेरुर्वनस्थलीर्मर्मरपत्रमोक्षाः ॥१०९॥ यत्प्रारम्भविजृम्भितो रतिपतिः शृङ्गारसञ्जीवनीं धत्ते हृद्यविशृङ्खलां त्रिभुवनप्रक्षोभणीं प्रक्रियाम्। उत्सर्पत्सहकारपुष्पमधुरामोदप्रपञ्चाञ्चिते तस्मिन्सन्तु वसन्त एव सुलभस्थानाः कवीनां गिरः ॥ ११० ॥ याचकाय मधवे तरुदानी दत्तवान् किसलयान्यखिलानि। तेन

वायु, आमकी नई कोंपलें, मतवाले कोकिलकी कूक, अशोक वृक्षकी सुगन्ध और अत्यन्त ढेर-सा मकरन्द कामदेवके बाणोंको भेंट कर दिया ॥ १०१ ॥ मलयका वायु बहानेवाला, कोकिलकी कूकसे जी लुभानेवाला, सदा सुगन्धित मधु बरसानेवाला और चारों ओर भौंरोंसे घिरा हुआ वसन्त आपको सुखी और प्रसन्न रक्खे ॥ १०२ ॥ जिस वसन्तमें मलयाचलके वायुसे मतवाले और मधुर ध्वनि करनेवाले कोकिलकी सुन्दर कूक सुनाई दे रही है और जिसमें मीठे फूलोंका रस पीकर भौंरे मतवाले हो चले हैं वह वसन्त पृथ्वीको अत्यन्त आनन्दित कर रहा है ॥ १०३ ॥ जिन आमके वृक्षोंमें धीरे-धीरे फूलोंके रसकी धाराएँ टपक रही हैं, उनसे झड़कर गिरे हुए परागोंसे जो नीचे थावले बन गए हैं उनमें वायुसे हिलनेवाले फूलोंके साथ खेलते हुए भौंरे अत्यन्त मधुर स्वरोंमें वसन्तके गुण भी गाते जा रहे हैं और नवेलियोंके ओठोंमें भरा हुआ मधुर मकरन्द भी पीते जा रहे हैं ॥ १०४ ॥ देखो भाई! यद्यपि अभी आमोंमें नित-नई बौरकी गाँठें भी नहीं फूट पाई हैं, न अशोक वृक्ष ही अभी फूल पाया है, न कोयलके कण्ठमें सुन्दर पञ्चम स्वर ही भर पाया है फिर भी यह निगोड़ा वसन्त मनमें रह-रहकर गुदगुदी उठाए ही दे रहा है ॥ १०५ ॥ सब लोग मानते हैं कि रुठी हुई युवतियोंका मान केवल कोयल ही कूक-कूककर नष्ट करते हैं और बनाव-शृंगारके कामोंका प्रधान मुखिया दक्षिणका पवन ही है। इस प्रकार तीनों लोकोंके वियोगियोंका सारा कष्ट दूर करनेवाले और फूलके बाणवाले कामदेवके सभी अनहोने काम चुटकी-भरमें पूरे कर देनेके लिये यह कामदेवके राज्यका मन्त्री वसन्त आ पहुँचा है ॥ १०६ ॥ देखो टेसूके फूलोंपर मँडराते हुए भौंरे ऐसे लग रहे हैं मानो मालतीके फूलका वियोग न सह सकनेके कारण ये आत्महत्या करनेके लिये टेसूके फूल-रूपी अङ्गारोंमें कूदकर प्राण दे रहे हों ॥ १०७ ॥ जो भौंरे दक्षिणके वायुके साथ बार-बार एक पंक्तिमें झूलते हुए कमलपर उड़ रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो कमलके पौधेपर खिले हुए कमल-रूपी मुखके चारों ओर लहराते हुए बाल हों ॥ १०८ ॥ पियार अर्थात् चिरौंजीके वृक्षकी मंजरियोंकी धूल आँखोंमें पड़ जानेसे ठीक-ठीक देख न सकनेवाले हरिण, वायुके सामने उन वनस्थलियोंमें दौड़ रहे थे जहाँ चरमर करते हुए पत्ते वसन्तकी पतझड़में नीचे बिछ गए थे ॥ १०९ ॥ जिसके आते ही कामदेव अँगड़ाई लेकर शृङ्गार रसको जिलानेवाली तथा तीनों लोकोंको मथ डालनेवाली कोई निराली कला दिखाने लगता है और आमके वृक्षोंमें फूटती हुई बौरोंकी सुगन्ध चारों ओर छा जाती है ऐसे निराले वसन्तकी प्रशंसा करते कवि लोग अघाते नहीं ॥ ११० ॥ भिक्षुक वसन्तको दानी वृक्षने सब पत्ते दे डाले, किन्तु तत्काल उसमें ढेर-सी नई-नई कोंपलें

नूतनदलैः सहितोऽभून्निष्फलं भवति जातु न दत्तम् ॥ १११ ॥ रक्ताशोकविकल्पिताधरमधुर्मत्तद्विरेफस्वनः कुन्दापीडविशुद्धदन्तनिकरः प्रोत्फुल्लपद्मानन: चूतामोदसुगन्धिमन्दपवनः शृङ्गारदीक्षागुरुः कल्पान्तं मदनप्रियो दिशतु वः पुष्पागमो मङ्गलम् ॥ ११२ ॥ रणत्कङ्कणानां झणन्नूपुराणां चलत्कुण्डलानां कणत्किङ्किणीनाम्। वधूनां मुखाम्भोरुहं द्रष्टुकामो रथं मन्थरं चक्रवन्धुश्चकार ॥ ११३ ॥ रतिपतिप्रहितेव कृतक्रुधः प्रियतमेव वधूरनुनायिका। वकुलपुष्परसासवपेशलध्वनिरगान्निरगान्मधुपावलिः ॥ ११४ ॥ रथस्थितानां परिवर्तनाय पुरातनानामिव वाहनानाम्। उत्पत्तिभूमौ तुरगोत्तमानां दिशि प्रतस्थे रविरुत्तरस्याम् ॥ ११५ ॥ रम्यः प्रदोषसमयः स्फुटचन्द्रभासः पुँस्कोकिलस्य विरुतं पवनः सुगन्धिः। मत्तालियूथविरुतं निशि सीधुपानं सर्वं रसायनमिदं कुसुमायुधस्य ॥११६॥ रुचिरकनककान्तीन्मुञ्चतः पुष्पराशीन्मृदुपवनविधूतान्पुष्पिताँश्चूतवृक्षान्। अभिमुखमभिवीक्ष्य क्षामदेहोऽपि मार्गे मदनशरनिघातैर्मोहमेति प्रवासी ॥ ११७ ॥ लग्नद्विरेफाञ्जनभक्तिचित्रं मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्य। रागेण बालारुणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलञ्चकार ॥ ११८ ॥ ललितविभ्रमवन्धविचक्षणं सुरभिगन्धपराजितकेसरम्। पतिषु निर्विविशुर्मधुमङ्गनाः स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम् ॥ ११९ ॥ वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्भ्रमरसम्भ्रमसम्भृतशोभया। चलितया विदधे कलमेखलाकलकलोऽलकलोलदृशान्यया ॥ १२० ॥ वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः। प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥ १२१ ॥ वापीजलानां मणिमेखलानां शशाङ्कभासां प्रमदाजनानाम्। चूतद्रुमाणां कुसुमान्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वसन्तः

फूट आईं। ठीक है, दिया हुआ दान कभी निष्फल नहीं होता ॥ १११ ॥ अमृत-भरे अधरोंके समान लाल अशोकसे, मतवाले भौंरोंकी गूँजसे, दाँतोंकी चमकती हुई पाँतों-जैसे उजले कुन्दके हारोंसे, भली-भाँति खिले हुए कमलके समान मुखोंसे और आमके बौरोंकी सुगन्धमें बसे हुए मन्द-मन्द पवनसे यह शृङ्गारकी शिक्षा देनेवाला और कामका मित्र वसन्त आप लोगोंको सदा प्रसन्न रक्खे ॥ ११२ ॥ बजते हुए कंगनोंवाली, झनझनाते हुए पायलोंवाली, झूलते हुए कुण्डलोंवाली और रुन-झुन करती हुई किङ्किणियोंवाली नई ललनाओंके मुखकमल देखनेकी ललकसे सूर्यने भी अपना रथ धीमा कर दिया अर्थात् वसन्तमें दिन बड़े होने लगे ॥ ११३ ॥ मौलसिरीके फूलोंके रसरूपी मदिरा पीनेसे जिन भौंरोंकी गुनगुनाहट और भी मधुर हो गई थी उनकी पाँतें पेड़ोंसे ऐसे निकल पड़ीं मानो रूठी हुई नवेलियोंको मनानेके लिये कामदेवकी भेजी हुई दूतियाँ हों ॥ ११४ ॥ वसन्तमें उत्तरकी ओर घूमे हुए सूर्यको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो अपने रथमें जुते हुए पुराने घोड़ोंको बदलकर नये घोड़े लेनेके लिये सूर्य उत्तम घोड़े उत्पन्न करनेवाली उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े हैं ॥११५॥ लुभावनी साँझें, छिटकी हुई चाँदनी, कोयलकी कूक, सुगन्धित पवन, मतवाले भौंरोंकी गुञ्जार और रातमें पीनेके लिये आसव, ये सब कामदेवको जगाए रखनेवाले रसायन ही हैं ॥ ११६ ॥ परदेसमें पड़ा हुआ यात्री एक तो यों ही विछोहसे दुवला हुआ रहता है तिसपर जब वह मन्द-मन्द बहनेवाले पवनके झोंकेसे हिलते हुए और सुन्दर सुनहले बौर गिरानेवाले बौरे हुए आमके वृक्ष अपने सामने मार्गमें देखता है तो कामदेवके बाणोंकी चोट खाकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है ॥ ११७ ॥ तिलक वृक्षके फूलोंपर बैठे हुए भौंरों और आमकी लाल कोपलोंको देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वसन्तकी शोभा-रूपी नायिकाने अपने माथेपर आँजनका तिलक लगा लिया हो और उगते हुए सूर्यकी सुन्दर लालीके समान लाल-लाल आमकी कोंपलोंके रूपमें अपने ओठ रँग लिए हों ॥११८॥ वसन्तमें नवेलियाँ अपने पतियोंके साथ वह मदिरा पीने लगीं जो उनमें मनोहर हाव-भाव भरता जा रहा था, अपनी सुन्दर गन्धसे मौलसिरीकी गन्धको भी परास्त कर रहा था और प्रेम बढ़ानेमें किसीसे कम न था ॥ ११९ ॥ जब वसन्तमें उस नवेलीके मुखकी सुगन्धके लोभसे चारों ओर भौंरे मँडराकर उसकी शोभा बढ़ाने लगे उस समय अपनी बिखरी हुई अलकोंमें अपनी चञ्चल आँखें उलझाती हुई वह ऐसे चली कि उसकी कमरमें बँधी हुई करधनी मधुर रुनझुनके साथ बज उठी ॥ १२० ॥ वसन्तमें फूले हुए कनैरके फूल देखनेमें तो बड़े भले लगते थे पर सुगन्ध न होनेसे वे मनको तनिक भी नहीं भा रहे थे। प्रायः देखा गया है कि ब्रह्मा किसी भी वस्तुमें पूरे गुण कभी नहीं भरता ॥ १२१ ॥ वसन्तके आनेसे बावड़ियोंके जल, मणियोंसे जड़ी करधनियाँ, चाँदनी, स्त्रियाँ

॥ १२२ ॥ वारस्त्रीव वनस्थली नवनवां शोभां बभारान्वहं पान्थान्पीडयति स्म तस्कर इव क्रूरैः शरैर्मन्मथः। शृङ्गारः सगुणः क्षमापतिरिव प्रापः प्रतिष्ठां परां रात्रिः स्वीकुरुते स्म मुग्धललनालज्जेव कार्श्यं क्रमात् ॥ १२३ ॥ विकसति सहकारे स्फारसौरभ्यसारे वहति धुतपटीरे मन्दमन्दं समीरे। कलयति कलवाचं कोकिलोऽपि रुष्टः क्षणमपि न मृगाक्ष्या वल्लभो दुर्लभोऽभूत् ॥ १२४ ॥ विकसितकुसुमाधरं हसन्तीं कुरवकराजिवधूं विलोकयन्तम्। ददृशुरिव सुराङ्गना निषण्णं सशरमनङ्गमशोकपल्लवेषु ॥ १२५ ॥ विकसितसहकारभारहारिपरिमलपुञ्जितगुञ्जितद्विरेफः। नवकिसलयचारुचामरश्रीर्हरति मुनेरपि मानसं वसन्तः ॥ १२६ ॥ विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः। मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरवका रवकारणतां ययुः ॥ १२७ ॥ विलासिभिरियोन्मदै रचितरम्यगुञ्जारवैः प्रसूनसुरभीकृतैर्विगलितत्रपा-स्तापसाः। अशोकशिखरस्थितैः सुनयनान्वितैः षट्पदैर्निरन्तरनिषेवितामितमधौ मधौ रेमिरे ॥१२८॥ व्यतीतकल्पे शिशिरैकबाल्ये सङ्कल्पपुष्पोद्गमबन्धुराङ्गी। इयं लवङ्गी युवभृङ्गसङ्गादुच्छूनगुच्छस्तनिकेव भाति ॥ १२९ ॥ व्रणगुरुप्रमदाधरदुःसहं जघननिर्विषयीकृतमेखलम्। न खलु तावदशेषमपोहितुं रविरलं विरलं कृतवान्हिमम् ॥ १३० ॥ शुशुभिरे स्मितचारुतराननाः स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखलाः। विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकलोदकलोलविहङ्गमाः ॥ १३१ ॥ श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः। उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः ॥ १३२ ॥ श्वसन-

और मञ्जरीसे लदी आमोंकी डालें सब और भी सुहावनी लगने लगी हैं ॥ १२२ ॥ वसन्तके दिनोंमें वेश्याके समान वनकी भूमि प्रति दिन नई-नई शोभा पाने लगी, कामदेव भी चोरके समान अपने निर्दय बाणोंसे वियोगियोंपर प्रहार करने लगा, शृङ्गारने गुणवान् राजाके समान बड़ा सम्मान पाया और रात्रि भी भोली-भाली नारीकी लज्जाके समान धीरे-धीरे क्षीण होने लगी ॥ १२३ ॥ फैलती हुई सुगन्धके साथ जब आमका वृक्ष बौर गया, चन्दनके वृक्षोंको हिलानेवाला वायु धीरे-धीरे बहने लगा और कोयल भी जब मधुर स्वरोंमें कूक उठी, उस समय रूठा हुआ नायक भी नायिकाको क्षण-भरके लिये भी दुर्लभ नहीं हुआ अर्थात् तत्काल प्राप्त हो गया ॥ १२४ ॥ खिले हुए फूलोंके ओठोंसे हँसती हुई कटसरैयाकी पंक्तिरूपी नायिकाओंसे निहारा जानेवाला तथा अशोकके पत्तोंमें बाण लेकर बैठा हुआ कामदेव ऐसा सुन्दर जान पड़ता था मानो देवियाँ उसे देख रही हों ॥ १२५ ॥ जिस वसन्तमें बौरी हुई आमकी डालियोंका भार कम करनेवाले (डालियोंसे झड़े हुए) परागमें लोट-पोटकर भौंरे गुनगुना रहे हैं और नई-नई सुन्दर कोंपलें जिसके सिरपर चँवर-सी जान पड़ती हैं वह वसन्त आकर मुनियोंका भी मन हर रहा है ॥ १२६ ॥ कटसरैयाके जो पौधे उपवनकी शोभारूपी नायिकाके शरीरमें वसन्तरूपी छैलेके हाथ रची हुई चित्रकारीके समान दिखाई पड़ते थे उनके फूलोंमें भरे हुए रसपर लट्टू होकर भौंरे गूँजने लगे ॥ १२७ ॥ वसन्तके जिन दिनोंमें विलासियोंके समान मतवाले, मधुर गुञ्जार करनेवाले, फूलोंकी सुगन्धमें लिपटे हुए तथा अपनी भौंरियोंके साथ अशोकके पेड़पर बैठे हुए भौंरे जी भरकर फूलोंका रस पी रहे थे, उस समय तपस्वी भी लज्जा छोड़कर क्रीड़ामें लग गए ॥ १२८ ॥ जिस लवङ्ग लताके खिले हुए फूलके गुच्छे ही उसके स्तन हैं, 'शिशिर ऋतुमें जिसका लड़कपन बीता है तथा जिसमें मनचाहे फूल खिल आए हैं (ऋतुके निकलनेसे जिसके अङ्ग सुन्दर हो गए हैं) वह लवङ्गलता तरुण भौंरेका सङ्ग पाकर और भी सुन्दर दिखाई पड़ने लगी ॥१२९॥ जिस ठण्डकको पतिके दन्तक्षतसे फूले हुए नवेलीके ओठ नहीं सह सकते थे और जिसके कारण कमरपरसे तगड़ी खोल दी गई थी उस ठण्डकको यद्यपि वसन्तके सूर्यने भली भाँति दूर तो नहीं किया था किन्तु कम अवश्य कर दिया ॥ १३० ॥ खिले हुए लाल कमलोंसे भरे हुए और चञ्चल जल-पक्षियोंसे गूँजती हुई घरकी बावड़ियाँ उन स्त्रियोंकी भाँति मनोहर दिखाई पड़ रही हैं जिनके सुन्दर मुखोंपर हँसी छाई हुई है और जिनकी ढीली करधनियाँ बज रही हैं ॥ १३१ ॥ उपवनकी वे लताएँ वसन्तमें सुन्दर दिखाई देने लगी थीं जिनपर भौंरोंकी मधुर गुञ्जार गीत-सी सुनाई पड़ती थी, जिनके कोमल फूल दाँतके समान सुन्दर दिखाई पड़ते थे और वायुके झकोरोंसे हिलती हुई जिनकी कोंपलें अभिनय करती हुई भुजाओंके समान हिल रही थीं ॥ १३२ ॥ वृक्षकी लता-रूपी उस नवेलीके फूल-रूपी मुखको भौंरा चूमने लगा जिसके वायुरूपी साँससे हिलते हुए पत्ते ही ओठ थे, जिसमें मधु

चलितपल्लवाधरोष्ठे नवनिहितेर्ष्यमिवावधूनयन्तो। मधुसुरभिणि षट्पदेन पुष्पे मुख इव शाललतावधूश्चुचुम्बे ॥ १३३ ॥ सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्तिं नवचूतवाणे। निवेशयामास मधुर्द्विरेफान्नामाक्षराणीव मनोभवस्य ॥ १३४ ॥ सन्तु द्रुमाः किसलयोत्तरपुष्पभाराः प्राप्ते वसन्तसमये कथमित्थमेव। न्यासैर्नवद्युतिमतोः पदयोस्त्वदीयं भूः पुष्पिता सुतनु पल्लवितेव भाति ॥ १३५ ॥ सपत्रलेखेषु विलासिनीनां वक्त्रेषु हेमाम्बुरुहोपमेषु। रत्नान्तरे मौक्तिकसङ्गरम्यः स्वेदागमो विस्तरतामुपैति ॥ १३६ ॥ सपदि सखीभिर्निभृतं विरहवतीस्त्रातुमत्र भज्यन्ते। सहकारमञ्जरीणां शिखोद्गमग्रन्थयः प्रथमे ॥ १३७ ॥ समदमधुकराणां कोकिलानाञ्च नादैः कुसुमितसहकारैः कर्णिकारैश्च रम्यः। इषुभिरिव सुतीक्ष्णैर्मानसं माननीनां तुदति कुसुममासो मन्मथोद्दीपनाय ॥ १३८ ॥ समभिसृत्य रसादवलम्बितः प्रमदया कुसुमावचिचीषया। अविनमन्न रराज वृथोच्चकैरनृतया नृतया वनपादपः॥१३९॥ सहकारकुसुमकेसरनिकरभरामोदमूर्च्छितदिगन्ते। मधुरमधुविधुरमधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा ॥ १४० ॥ साम्यं सम्प्रति सेवते विचकिलं पाण्मासिकैर्मौक्तिकैर्वाह्लीकी दशनव्रणारुणतरैः पत्रैरशोकश्चितः। भृङ्गालिङ्गितकोटि किंशुकमिदं किञ्चिद्विवृन्तायते माञ्जिष्ठस्तवकैश्च पाटलितरोरन्यैव काचिल्लिपिः ॥ १४१ ॥ सुभगे कोटिसंख्यत्वमुपेत्य मदनाशुगैः। वसन्ते पञ्चता त्यक्ता पञ्चतासीद्वियोगिनाम् ॥१४२॥ सुवदनावदनासवसम्भृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः। मधुकरैरकरोन्मधुलोलुपैर्बकुलमाकुलमायतपङ्क्तिभिः॥१४३॥ सुहृदस्तरुणीनखक्षतानां प्रतिपक्षाः पथिकाङ्गनाजनानाम्। दहनद्युतिदस्यवः समन्ताद्विपिने किंशुककुड्मला विरेजुः ॥ १४४ ॥ स्तनेषु हाराः सितचन्दनार्द्रा भुजेषु

(मकरन्द, मदिरा) की सुगन्ध थी और जो मानो उसी समय रूठकर अपना शरीर हिला रही थी ॥ १३३ ॥ सुन्दर वसन्तने नई कोंपलोंके पङ्ख लगाकर आमकी उन मञ्जरियोंको बाण बना दिया जिनपर बैठाए हुए भौंरे ऐसे जान पड़ते थे मानो उन बाणोंपर कामदेवके नामके अक्षर लिख दिए गए हों ॥१३४॥ हे सुन्दरी! वसन्त ऋतु आनेपर केवल वृक्ष ही फूल-पत्तोंसे नहीं सजे गए हैं वरन् नई-नई शोभावाले तुम्हारे चरण छू-छूकर यह धरती भी फूल-पत्तोंसे सजी हुई-सी जान पड़ रही है ॥ १३५ ॥ सुनहरे कमलके समान सुहावने और बेलबूटे चीते हुए स्त्रियोंके मुखोंपर फैली हुई पसीनेकी बूँदें ऐसी दिखाई पड़ती हैं मानो अनेक प्रकारके रत्नोंके बीच बहुतसे मोती जड़ दिए गए हों ॥ १३६ ॥ वियोगिनी स्त्रियोंकी रक्षाके लिये इस वसन्तमें उनकी सखियाँ झटपट आमके बौरोंके ऊपरकी पहली फूटी हुई गाँठें धीरे-धीरे तोड़ ले रही हैं ॥ १३७ ॥ कोयल और मदमाते भौंरोंके स्वरोंसे गूँजते हुए तथा बौरे हुए आमके पेड़ोंसे भरा हुआ यह वसन्त मनोहर कनैरके फूलोंवाले अपने पैने बाणोंसे मानिनी स्त्रियोंके मन इसलिये बींध रहा है कि उनमें प्रेम जग जाय ॥ १३८ ॥ फूल तोड़नेकी चाहसे एक नवेलीने बड़े प्रेमसे आगे बढ़कर एक वृक्षको थाम लिया फिर भी वह झुका नहीं इसलिये उसका पुरुषत्व झूठा और व्यर्थ जान पड़ा क्योंकि पुरुष होता तो स्त्रीके सम्मुख अवश्य ही झुक जाता ॥ १३९ ॥ जिस वसन्तमें आमके बौरकी महकसे सारी दिशाएँ गमक उठी थीं और मीठे फूलोंके रसोंसे भौंरे मस्त होकर झूम रहे थे उस समय कौन ऐसा अभागा था जो अपनी प्यारीके लिये मचल न उठा हो ॥ १४० ॥ मदन वृक्षका फूल वसन्तके दिनोंमें छः महीनेके मोतीके समान बड़ा-बड़ा दिखाई पड़ने लगा, अशोकका वृक्ष बलख़की स्त्रियोंके दन्तक्षतके समान लाल-लाल पत्तोंसे भर गया, टेसू पर भौंरोंके बैठ जानेसे उनकी ढँपियाँ ढीली पड़ गईं और लाल-लाल गुच्छोंसे पाटल वृक्षकी शोभा कुछ और विचित्र बन गई ॥ १४१ ॥ हे सुन्दरी! वसन्तमें कामके बाणोंने अपनी पाँचकी संख्या बदलकर करोड़ोंकी संख्या ग्रहण कर ली और उनकी पञ्चता (पाँचकी संख्या, मृत्यु) अब वियोगियोंके पास चली गई ॥१४२॥ मौलीसिरीके वे पेड़ फूल उठे जिन्हें सुन्दरी नायिकाने अपने मुखकी मदिरासे सींचा था, फूलोंके साथ ही उनमें मदिराकी गन्ध भी आ गई और इसीलिये फूलके रसके लोभी भौंरोंने झुण्ड बाँधकर उसे घेर लिया है ॥ १४३ ॥ वे पलासकी लाल-लाल कलियाँ जङ्गलमें चारों ओर फूल उठी हैं जो नवेलियोंके शरीरपर नखचिह्नके समान टेढ़ी और वियोगिनीको जलानेवाली आगसे भी अधिक चमकीली दिखाई दे रही हैं ॥ १४४ ॥ अपने प्रेमीसे सम्भोग करनेको उतावली नारियोंने अपने स्तनोंपर धौले चन्दनसे भीगे हुए मोतीके हार पहन लिए हैं, हाथोंमें भुजबन्ध और कङ्गन डाल लिए हैं

सङ्गं वलयाङ्गदानि। प्रयान्त्यनङ्गातुरमानसानां नितम्बिनीनाञ्जघनेषु काञ्च्यः ॥ १४५ ॥ स्तोत्रं चैत्रगुणोदयस्य विरहिप्राणप्रयाणानकष्टङ्कारः स्मरकार्मुकस्य सुदृशां शृङ्गारशिक्षागुरुः। दोलाकेलिकलासु मङ्गलपदं वन्दी वनान्तश्रियां नादोऽयं कलकण्ठकण्ठकुहरप्रेङ्खोलितः श्रूयते ॥ १४६ ॥ स्थलकमलतरूणां कामिनीलोचनेषु क्षिपति मुकुलमुष्ट्या धूलिजालं विशालम्। तदनु हरति हन्त स्वान्तसर्वस्वमासामयमनयविदग्धो धूर्तवन्मीनकेतुः ॥ १४७ ॥ स्थाने स्थाने मलयमरुतः पूरयन्त्यङ्कपालीं पुष्पालीषु स्मरगजरजःस्नानयोग्याः परागाः। जातं चूते मधु मधुकरप्रेयसीजानुदघ्नं निर्विघ्नत्वं सपदि भवते रागराज्याभिषेकः ॥ १४८ ॥ स्फुटमिवोज्ज्वलकाञ्चनकान्तिभिर्युतमशोकमशोभत चम्पकैः। विरहिणां हृदयस्य भिदाभृतः कपिशितं पिशितं मदनाग्निना ॥ १४९ ॥ स्मरहुताशनमुर्मुरचूर्णतां दधुरिवाम्रवणस्य रजःकणाः। निपतिताः परितः पथिकव्रजानुपरि ते परितेपुरतो भृशम् ॥ १५० ॥ हिमव्यपायाद्विशदाधराणामापाण्डुरीभूतमुखच्छवीनाम्। स्वेदोद्गमः किम्पुरुषाङ्गनानां चक्रे पदं पत्रविशेषकेषु ॥ १५१ ॥ हुतहुताशनदीप्ति वनश्रियः प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यत्। युवतयः कुसुमं दधराहितं तदलके दलकेलरपेशलम् ॥ १५२ ॥

मदनपूजा—कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम्। आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ॥ १ ॥

कुसुमावचयः—अताडयत्पल्लवपाणिनैकं पुष्पोच्चये राजवधूरशोकम्। तच्छेदहेतोरलिपङ्क्तिभङ्ग्या विक्रान्तिता बाललता स्मरेण ॥ १ ॥ अनुभवत युवत्यो भाग्यवत्यो नितान्तं कुसुमवलयवेलासङ्गखेलासुखानि। मम तु मधुकराणां वाटपाटच्चराणां सपदि पतति धाटी पुष्पवाटीनिवेशे ॥ २ ॥ अन्यत्र यूयं कुसुमावचायं कुरुध्वमत्रास्मि करोमि सख्यः। नाहं हि दूरं भ्रमितुं समर्था प्रसीदतायं रचितोऽञ्जलिर्वः ॥ ३ ॥ असङ्गृह्य-पुष्पोऽपि मनोभवस्य पञ्चैव बाणार्थमयं ददाति। एवं

और अपने नितम्बोंपर करधनी बाँध ली है ॥ १४५ ॥ वसन्तमें वनकी शोभाकी प्रशंसा करनेवाले कोयलके गलेसे निकली हुई कूक ऐसी जान पड़ती है मानो चैत्रके सुन्दर गुणोंका स्तोत्र हो, विरहियोंके प्राण लेनेवाले कामके धनुषकी टङ्कार हो, स्त्रियोंको शृङ्गार सिखानेका पाठ हो और झूला झूलनेकी कलाका मङ्गल-गान हो ॥ १४६ ॥ लुटेरे कामदेवने पहले स्थल-कमल तथा वृक्षोंकी कलीरूपी मुट्ठीमें परागरूपी धूल लेकर स्त्रियोंकी आँखोंमें झोंक दिया और तब ठगकी भाँति उनका हृदयरूपी रत्न लूट लिया ॥ १४७ ॥ प्रेमरूपी राजाके राज्याभिषेकमें अब कोई कमी नहीं रह गई क्योंकि कामदेवरूपी हाथीको धूलसे स्नान करानेके लिये फूलोंका पर्याप्त पराग इस समय चारों ओर मलयके वायुकी गोद भर रहा है और आमके बौरमें भौंरीके घुटने-घुटने-भर रस भर गया है ॥ १४८ ॥ सुन्दर सुनहरे चम्पेके फूलोंके साथ अशोकके फूल ऐसे जान पड़ते थे मानो विरहियोंके फटे हुए हृदयका मांस कामकी अग्निसे भुनकर पीला हो गया हो ॥ १४९ ॥ आमके वनमें बौरके पराग ऐसे जान पड़ते थे मानो कामरूपी आगसे जले हुए भूसीके कण हों इसीलिये वे वियोगियोंके ऊपर चारों ओरसे झड़कर उन्हें तपाए जा रहे थे ॥ १५० ॥ जाड़ा बीतनेसे जिनके ओठ चिकने और गाल चमकीले हो गए हैं उन किन्नरियोंके मुखपर बनी हुई चित्रकारीपर वसन्तमें पसीनेकी बूँदें झलक आई हैं ॥ १५१ ॥ हविसे प्रज्वलित अग्निकी चमकसे भरी हुई वनकी शोभा-रूपी नायिकाके सुनहरे गहनोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली कोमल कोंपलें नवेलियोंने अपने जूड़ोंमें खोंस लीं ॥ १५२ ॥

कामदेवकी पूजा : फूलके समान कोमल और पतली कमरवाली नवेली कामदेवकी मूर्तिके पास खड़ी हुई उसके धनुषके समान दिखाई पड़ रही है ॥ १ ॥

फूल चुनना : किसी रानीने फूल तोड़ते समय अपने कोमल हाथसे किसी अशोककी टहनीको झकझोर दिया, इसका बदला लेनेके लिये कामदेवने भौंरोंका झुण्ड भेजकर कोमल लतापर धावा बुलवाकर उसे बड़ा तङ्ग किया अर्थात् अशोकके दुःखसे कामदेवको दुःख हुआ और लताको पीड़ित देखकर रानीको कष्ट हुआ ॥ १ ॥ फूल कहता है 'हे नवेलियो ! तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो, इसलिये वसन्तकी अठखेलियोंका जी-भरकर आनन्द ले लो। मुझे तो यह सुख मिलनेवाला नहीं है क्योंकि ये डाकू भौंरे फूलोंके उपवनमें एकाएक घुसकर मँड़राने लगे हैं' ॥ २ ॥ एक नवेलीने अपने प्रियको उपवनमें बुलाया है, उसकी प्रतीक्षा करती हुई वह अपनी सखियोंसे कहती है—'हे सखियो !

कदर्यत्वमिवावधार्य सर्वस्वमग्राहि मधोर्वधूभिः ॥ ४ ॥ इदमिदमिति भूरुहां प्रसूनैर्मुहुरतिलोभयता पुरः पुरोऽन्या। अनुरहसमनायि नायकेन त्वरयति रन्तुमहो जनं मनोभूः ॥ ५ ॥ उच्चित्य प्रथममवस्थितं मृगाक्षी पुष्पौघं श्रितविटपं ग्रहीतुकामा। आरोढुं पदमदधादशोकयष्टावामूलं पुनरपि तेन पुष्पिता सा ॥ ६ ॥ उपरिजतरुजानि याचमानां कुशलतया परिरम्भलोलुपोऽन्यः। प्रथितपृथुपयोधरां गृहाण स्वयमिति मुग्धवधूमुदास दोर्भ्याम् ॥ ७ ॥ निजनयनप्रतिबिम्बैरम्बुनि बहुशः प्रतारिता कापि। नीलोत्पलेऽपि विमृशति करमर्पयितुं कुसुमलावी ॥ ८ ॥ पाणौ पद्मधिया मधूककुसुमभ्रान्त्या तथा गण्डयोर्नीलेन्दीवरशङ्कया नयनयोर्बन्धूकबुद्ध्याधरे। लीयन्ते कबरीभरे निजकुलव्यामोहजातस्पृहा दुर्वारा मधुपाः कियन्ति तरुणि स्थानानि रक्षिष्यसि ॥ ९ ॥ पूर्वं द्विरेफपरिभूतिभयाद्भवत्या यत्केशपुष्पभरणं हरिणाक्षि मुक्तम्। व्यर्थं तदद्य पुनरप्यलकेषु भृङ्गाः पुञ्जीभवन्निजकुलभ्रमतः पतन्ति ॥ १० ॥ मुखकमलकमुन्नमय्य यूना यदभिनवोढवधूर्बलादचुम्बि। तदपि न किल बालपल्लवाग्रग्रहपरया विविदे विदग्धसख्या ॥११॥ मृदुचरणतलाग्रदुःस्थितत्वादसहतरा कुचकुम्भयोर्भरस्य। उपरि निरवलम्बनं प्रियस्य न्यपतदथोच्चतरोच्चिचीषयान्या ॥ १२ ॥ सललितमवलम्ब्य पाणिनांसे सहचरमुच्छ्रितगुच्छवाञ्छयान्या। सकलकलभकुम्भविभ्रमाभ्यामुरसि रसादवतस्तरे स्तनाभ्याम् ॥ १३ ॥

वसन्तवायवः—अतिमन्दचन्दनमहीधरवातं स्तबकाभिरामलतिकातरुजातम्। अपि तापसानुपवनं मदनार्तान्मदमञ्जुगुञ्जदलिपुञ्जमकार्षीत् ॥ १ ॥ आलिङ्गन्ते

आप लोग कहीं और जाकर फूल चुनें, मैं तो यहीं चुनूँगी क्योंकि मुझसे दूर जाया नहीं जाता, इसलिये हाथ जोड़ती हूँ मुझपर कृपा करो' ॥ ३ ॥ अपने पास अनगिनत फूल होते हुए भी यह निगोड़ा वसन्त बाण बनानेके लिये कामदेवको कुल पाँच ही फूल देता है, उसकी यह क्षुद्रता देखकर ही नवेलियोंने सब फूल उतार लिए हैं ॥ ४ ॥ नायकने अपनी प्यारीको इस प्रकार ललचा-ललचाकर कि 'इसका फूल अच्छा है, उसका फूल अच्छा है' आगे बढ़ाया और एकान्तमें ले गया, सचमुच रस लेनेके लिये कामदेव लोगोंको उतावला बना ही देता है ॥ ५ ॥ उस मृगनयनीने अशोकके नीचेकी टहनियोंमें लगे हुए फूल तोड़कर जैसे ही ऊपरके फूल तोड़नेके लिये डालीपर पैर रक्खा त्यों ही वह अशोकका वृक्ष फिर जड़तक फूलोंसे लद गया ॥ ६ ॥ जब नवेलीने ऊपरके फूल तोड़नेके लिये अपने प्रियसे प्रार्थना की तब उस चतुर नायकने गले लगानेके लोभमें नायिकासे कहा कि 'तुम स्वयं क्यों नहीं तोड़ लेतीं' और यह कहकर उसने अपनी बड़े-बड़े स्तनोंवाली भोली-भाली नायिकाको अपनी बाँहोंमें कसकर ऊपर उठा दिया ॥ ७ ॥ एक नवेली जलमें पड़ी हुई अपनी आँखोंकी परछाईंको बार-बार नीला कमल समझकर उसे तोड़नेके प्रयत्नमें जब बहुत बार धोखा खा चुकी तो वह सचमुच नीले कमलपर भी हाथ लगानेमें सोच-विचार करने लगी कि यह कमल है भी या नहीं ॥ ८ ॥ एक भौंरा किसी नवेलीको तङ्ग कर रहा है, उसपर कवि कहता है कि 'हे नवेली! ये भौंरे कमलके धोखेमें तुम्हारे हाथोंपर, महुवेके फूलके धोखेमें गालोंपर, नीले कमल समझकर आँखोंपर, जपाकुसुमके धोखेमें ओठोंपर और दूसरे भौंरेके धोखेमें उनसे मिलनेकी चाहसे बालोंपर आ-आकर बैठ रहे हैं, ऐसी दशामें तुम कहाँतक इनसे अपनेको बचा पाओगी' ॥ ९ ॥ हे मृगनयनी! तुमने भौंरेके डरसे ही जो अपने बालोंमें फूल नहीं गूँथे वह निरर्थक ही सिद्ध हुआ क्योंकि ये भौंरे तुम्हारे बालोंको ही भौंरोंका झुण्ड समझकर इकट्ठे हो-होकर तुमपर मँडरा रहे हैं ॥ १० ॥ किसी रँगीलेने बलपूर्वक नई दुलहिनका मुखकमल ऊपर उठाकर इस प्रकार चूम लिया कि कोमल पत्ते तोड़नेमें लगी हुई चतुर सखी भी यह बात नहीं भाँप सकी ॥ ११ ॥ ऊपरके फूलोंको तोड़नेके लिये जब वह नवेली अपने बड़े-बड़े स्तनोंके भारीपनके कारण अपने कोमल पैरोंके पञ्जोंपर खड़ी न रह पाई तब कोई सहारा न होनेसे वह पासमें खड़े हुए अपने प्रियके ऊपर ही भहरा पड़ी ॥ १२ ॥ वृक्षके ऊपर खिले हुए फूलोंके गुच्छे तोड़नेके लिये किसी नवेलीने अपने हाथसे नायकके कन्धेका बड़े प्रेमसे सहारा लिया किन्तु हाथीके मस्तकके समान बड़े-बड़े स्तनोंका बोझ न सँभाल पानेसे वह बड़े रसके साथ अपने प्रियतमकी छातीपर ही भहरा पड़ी ॥ १३ ॥

वसन्तके पवन : वसन्तके समय जिन उपवनोंमें मन्द-मन्द मलयका वायु बह रहा था, वृक्ष और लताएँ फूलोंके सुन्दर गुच्छोंसे लद गई थीं और जिनमें मतवाले भौंरे मनोहर

मलयजतरूनास्वजन्ते वनान्तानापृच्छन्ते चिरपरिचितान्मालयान्निर्झरौघान्। अद्य स्थित्वा द्रविडमहिलाभ्यन्तरे श्वः प्रभाते प्रस्थातारो मलयमरुतः कुर्वते सन्निधानम् ॥ २ ॥ उदञ्चत्कावेरीलहरिषु परिष्वङ्गरङ्गे नटन्तः कुहूकण्ठीकण्ठीरवरवलवत्रासितप्रोषितेभाः। अमी चैत्रे मैत्रावरुणितरुणीकेलिकङ्केल्लिमल्लीचलद्वल्लीहल्लीसकसुरभयश्चण्डि चञ्चन्ति वाताः ॥ ३ ॥ उपवनतरुनृत्याध्यापने लब्धवर्णो विरचितजलकेलिः पद्मिनीकामिनीभिः। प्रियसुहृदसमेषोरायायौ योगियोगस्थितिविदलवदक्षो दक्षिणो गन्धवाहः ॥ ४ ॥ कावेरीतीरभूमीरुहभुजगवधूभुक्तमुक्तावशिष्टः कर्णाटीचीनपीनस्तनवसनदशान्दोलनस्पन्दमन्दः। लोलल्लाटीललाटालकललितलतालास्यलीलाविलोलः कष्टं भो दाक्षिणात्यः प्रसरति पवनः पान्थकान्ताकृतान्तः ॥ ५ ॥ कृतप्रकोपाः पवनाशनानां निवासदानादिव पन्नगानाम्। विनिर्ययुश्चन्दनशैलकुञ्जादाशामुदीचीं प्रति गन्धवाहाः ॥ ६ ॥ तन्वानश्शीतलत्वं जलधितटवनोत्तालतालासवानां दोलाव्यालोलचोलीगुरुरमणभरोत्फालहेलासहायः। वायुर्व्रात्येष दन्तव्रणमधरदले लालयन् केरलीनामुन्मीलल्लक्ष्यशिक्षाश्रमकुसुमधनुर्दक्षिणो दाक्षिणात्यः ॥ ७ ॥ पथि पथि लतालोलाक्षीभिः स्रवन्मधुसीकरं कुसुमनिकरं वर्षन्तीभिः सहर्षमिवार्चितः। मधुकरवधूगीतासक्तं कुरङ्गकमास्थितः प्रसरति वने मन्दं मन्दं वसन्तसमीरणः ॥ ८ ॥ पानीयं नारिकेलीफलकुहरकुहूत्कारि कल्लोलयन्तः कावेरीतीरतालद्रुमभरितसुराभाण्डभाङ्कारचण्डाः। एते तन्वन्ति वेलावनललितलतातान्डवं द्राविडस्त्रीकर्पूरापाण्डुगण्डस्थललुठितरया वायवो दाक्षिणात्याः ॥ ९ ॥ प्राप्तः प्राज्यमिव श्रमं जलजिनीसौरभ्यभारं वहन्नुद्दामस्तबकानमन्नवलतालक्ष्मीमिवालोकयन्। स्वीकुर्वन्मदमन्थरानिव

गुञ्जार कर रहे थे वे तपस्वियोंको भी कामसे पीड़ित बनाए डाल रहे थे ॥ १ ॥ मलय पर्वतके वे पवन जो वहाँके चन्दनके वृक्षोंको गले लगाते हैं, हरे-भरे वनोंके छोरोंको छूते चलते हैं, अपने साथी मलय पर्वतके झरनोंसे रमरमी करते चलते हैं और जो आज कुछ देरतक द्रविड़-नवेलियोंके बीच थोड़ी देर ठहरकर प्रातःकाल ही चल पड़े हैं, वे पास आ पहुँचे हैं ॥२॥ हे रूठनेवाली नवेली ! चैत्रके महीनेमें वे पवन चारों ओर बह चले हैं जो उछलती हुई कावेरीकी लहरोंको गले लगा-लगाकर नाच रहे हैं, कोयलकी कूकरूपी सिंह-गर्जनसे जिन्होंने वियोगीरूपी हाथियोंको दहला दिया है, जिनमें उस अशोककी सुगन्ध है जिसके साथ अगस्त्यकी स्त्री लोपामुद्रा क्रीड़ा करती थी और जिनमें हिलती और नाचती हुई चमेलीकी गन्ध बसी हुई है ॥ ३ ॥ वनके वृक्षोंको नाचना सिखानेवाला, कमलिनी-रूपी नायिकाओंके साथ जलक्रीड़ा करनेवाला तथा योगियोंका मन योगसे हटानेवाला यह कामदेवका मित्र दक्षिणका वायु अब आ पहुँचा है ॥ ४ ॥ कावेरी नदीके तीरके वृक्षोंपर लिपटी हुई साँपिनोंके पीनेसे बचा हुआ, कर्णाटकी नवेलियोंके बड़े-बड़े स्तनोंपर ढके हुए रेशमी वस्त्रोंको धीरे-धीरे खिसकाता हुआ, लाट देशकी नवेलियोंके माथेपर लहराते हुए केशरूपी लताओंको झुलाता हुआ और वियोगियोंकी पत्नियोंकी हत्या करता हुआ यह दक्षिणका वायु बढ़ता चला आ रहा है ॥ ५ ॥ चन्दनके वनोंके कुञ्जोंको छोड़कर ये पवन उत्तरकी ओर मानो इसलिये भागे चले जा रहे हैं कि उस वनने वायुभक्षण करनेवाले साँपोंको अपने कुञ्जोंमें आश्रय दिया है ॥ ६ ॥ समुद्रके किनारेके वनोंमें जो बड़े-बड़े ताड़ हैं उनके रसको शीतल करता हुआ, झूला झूलती हुई नवेलियोंकी चोली हिलाकर उनके पति-सङ्गमके उत्साहमें सहायता पहुँचाता हुआ, केरल देशकी तरुणियोंके ओठोंपर लगे दाँतके चिह्नों (घावों) को सहलाता हुआ तथा कामदेवके धनुषको लक्ष्य साधनेकी शिक्षा देता हुआ दक्षिणका पवन बह रहा है ॥ ७ ॥ वसन्तका वह पवन धीरे-धीरे वनमें फैल रहा है जिसकी मार्ग-मार्गमें उन लतारूपी नायिकाओंने प्रसन्नता-पूर्वक पूजा की है जिनमेंसे मकरन्दकी बूँदें टपकानेवाले फूलोंकी वर्षा होती रहती है और जो पवन उन हिरणोंसे मिलता चल रहा है जो ध्यान-पूर्वक भौंरियोंकी गुनगुनाहट सुननेमें मग्न हैं ॥ ८ ॥ नारियलके फलोंके भीतरके जलको उछालते हुए, कावेरीके तीरपर ताड़के पेड़ोंमें लटकी हुई ताड़ीसे भरी लभनियों (ताड़ीके घड़ों) में भाँ-भाँ करते हुए तथा द्रविड़ नवेलियोंके कपूरके समान उजले गालोंपर लगनेसे कम वेगवाले दक्षिणके पवन समुद्र-तटके वनोंकी सुन्दर लताओंको नचा रहे हैं ॥ ९ ॥ कमलिनीकी सुगन्धके बोझसे थका हुआ, बड़े-बड़े गुच्छोंसे झुकी हुई नई लताओंकी शोभा निहारता हुआ तथा नवेलियोंके समान धीरे-धीरे चलता हुआ वसन्तका वायु चन्दनके वनसे धीरे-धीरे चला आ रहा है ॥ १० ॥ सिंहल

गतेर्वामभ्रुवां विभ्रमान्मन्दं मन्दमुपाजगाम पवनः पाटीरवाटीतटात् ॥१०॥ मलयगिरिसमीराः सिंहलद्वीपकान्ता मुखपरिचयलब्धस्फारकर्पूरवासाः। द्रविडयुवतिदोलाकेलिलोलन्नितम्बस्थलशिथिलितवेगास्से - व्यतामाप्नुवन्ति ॥ ११ ॥ मलयशिखरादाकैलासं मनोभवशासनाद्भुवनवलयं जेतुं वाञ्छन्वसन्तसमीरणः। विहितवसतिं कैलासाग्रे भुजङ्गधरं हरं मनसि विमृशन्भीतः शङ्के प्रयाति शनैः शनैः ॥ १२ ॥ ये दोलाकेलिकाराः किमपि मृगदृशां मानतन्तुच्छिदो ये सद्यः शृङ्गारदीक्षाव्यतिकरगुरवो ये च लोकत्रयेऽपि। ते कण्ठे लोठयन्तः परभृतवयसां पञ्चमं रागराजं वान्ति स्वैरं समीराः स्मरविजयमहासाक्षिणो दाक्षिणात्याः ॥१३॥ विलुलितालकसंहतिरामृशन्मृगदृशां श्रमवारि ललाटजम्। तनुतरङ्गततिं सरसां दलत्कुवलयं वलयन्मरुदाववौ ॥१४॥ हेमाम्भोरुहपत्तने परिमलस्तेयी वसन्तानिलस्तत्रत्यैरिव यामिकैर्मधुकरैरारब्धकोलाहलः । निर्यातस्त्वरया व्रजन्निपतितः श्रीखण्डपङ्कद्रवैर्लिप्तो केरलकामिनीकुचतटे खञ्जः शनैर्गच्छति ॥ १५ ॥

वसन्तपथिकाः—अध्वन्यस्य वधूर्वियोगविधुरा भर्तुः स्मरन्ती यदि प्राणानुज्झति कस्य तत्खलु महत्सञ्जायते पातकम्। यावन्नो कृतमध्वगेन हृदये तावत्तरोर्मूर्धनि प्रोद्घुष्टं परपुष्टया तव तवेत्युच्चैर्वचोऽनेकशः। ॥ १ ॥ अध्वन्यैर्मकरन्दशीकरसुरामत्तक्वणत्कोकिले मार्गे मार्गनिरोधिनो परिहृता शङ्केऽशुभाशङ्कया। पान्थस्त्रीवधपातकादुपनतं चण्डालचिह्नं मधोरेषा खिङ्खिणिकेव षट्पदमयी झाङ्कारिणि संहतिः ॥ २ ॥ अमी हेलोन्मेषव्यसनिषु पलाशेषु परितः पिबन्ति स्वच्छन्दं मधु मधुलिहो माद्यति जनः। अयं च प्रत्यग्रं दशति सहकारं परभृतो यदीदं मर्मान्तर्विदलति क एष व्यतिकरः ॥ ३ ॥ अस्थिन्नोदवतीव कुन्दमुकुलैः फुल्लैः पलाशद्रुमैः साङ्गारप्रकरेव धूमकलुषेवोत्पातिभिः षट्पदैः। रक्ताशयुतिभिस्सशेषदहनालातेव

द्वीपकी सुन्दरियोंके मुँहोंसे छू जानेसे जिनमें उत्कट कपूरकी-सी गन्ध बसी है और द्रविड़ देशकी झूलती हुई नवेलियोंके नितम्बोंमें लगनेसे जिनका वेग कम हो गया है ऐसे मलय वनके पवन सेवन करने योग्य हो रहे हैं ॥ ११ ॥ कामदेवकी आज्ञा पाकर मलयाचलकी चोटीसे लेकर कैलास पर्वततकके सारे पृथ्वी-मण्डलको जीतनेकी इच्छासे चले हुए वसन्तके पवनने जब कैलास पर्वतपर रहनेवाले सर्पधारी शङ्करका स्मरण किया तो वह डरके मारे धीमा पड़ गया और इसीलिये मानो अब वह धीरे-धीरे बह रहा है ॥ १२ ॥ दक्षिणके जो वायु झूला झूलनेको उकसा रहे हैं, नवेलियोंके मानरूपी सूत्र तोड़ रहे हैं, तीनों लोकोंको शृङ्गारका उपदेश दे रहे हैं वे संसारपर कामदेवकी विजयके प्रत्यक्षदर्शी वायु कोयलके गलेमें पञ्चम स्वर भरते हुए धीरे-धीरे बह रहे हैं ॥ १३ ॥ नवेलियोंके बालोंको लहराता हुआ, उनके माथेका पसीना पोंछता हुआ, कमलोंको खिलाता हुआ और तालाबोंमें हल्की-हल्की लहरें उठाता हुआ वसन्तका पवन बहने लगा ॥ १४ ॥ वसन्तका पवन खिले हुए कमलरूपी नगरसे जब गन्ध चुराने लगा तो वहाँके रखवाले भौंरोंने हल्ला मचाकर उसे घेर लिया। अतः वह वहाँसे शीघ्रतापूर्वक निकलकर भागा तो सही किन्तु केरल देशकी ललनाओंके उन स्तनोंपर फिसलकर गिर पड़ा जिनमें चन्दनका गीला लेप लगा हुआ था, इसीलिये वह लँगड़ाकर चल रहा है अर्थात् लहराता हुआ धीरे-धीरे चल रहा है ॥१५॥

वसन्तके पथिक : परदेसमें गए हुए अपने पतिके वियोगमें दुखी और उन्हें स्मरण करती हुई नवेलियाँ यदि अपने प्राण छोड़ती हैं तो इसका महापाप किसे लगता है? इस बातपर परदेसमें गया हुआ मनुष्य सोच ही रहा था कि इतनेमें वृक्षकी चोटीपरसे कोयलने बार-बार ऊँचे स्वरसे 'तुम्हें-तुम्हें' कहकर कूक दिया ॥ १ ॥ जिस मार्गमें फूलोंके रसकी मदिरा पीकर मतवाला कोकिल कूक रहा था उसमें सामने दिखाई पड़ते हुए भौंरोंके झुण्डको अशुभ समझकर राही उससे बचकर चला क्योंकि वह भाँयँ-भाँयँ बजनेवाली चाण्डाल वीणा थी जो वियोगियोंकी स्त्रियोंको मारनेका पाप करनेके कारण कामदेवको चाण्डालका चिह्न बनाकर दे दी गई थी ॥ २ ॥ सदा सहज ही खिल उठनेवाले टेसूके फूलोंका रस तो स्वच्छन्द होकर भौंरे पी रहे हैं किन्तु उससे मतवाले हो रहे हैं मनुष्य! इधर आमके नये-नये बौरको चूसता तो कोयल है किन्तु हृदय फटा जा रहा है हमारा ! यह क्या उल्टी बात हो रही है? ॥ ३ ॥ पथिकोंने वनभूमिको चारों ओरसे देखा तो उन्हें वह ऐसी दिखाई दी मानो कुन्दकी कलियोंके रूपमें उसकी हड्डियाँ बिखर रही हों, खिले हुए टेसूके वृक्ष ही उसकी चिताके अङ्गार हों, मँडराते हुए भौंरोंके रूपमें उसपर धुआँ मँडरा रहा हो तथा रक्ताशकी कान्ति ही

पुँस्कोकिलैर्दग्धा प्राणसमाचितेव पथिकैराराद्वनान्तस्थली ॥ ४ ॥ उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुरक्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः । नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षणप्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥ ५ ॥ एतस्मिन्दक्षिणाशानिलचलितलतालीनमत्तालिमालापक्षक्षोभावधूतच्युतवहलरजोहृद्यदिहृद्ये वसन्ते। प्रेमस्वेदार्द्रबाहुश्लथवलयलसत्प्रौढसीमन्तिनीनां मन्दः कण्ठग्रहोऽपि ग्लपयति हृदयं किं पुनर्विप्रयोगः ॥ ६ ॥ वधिरितचतुराशा प्रीतहारीतनादैर्बहलबकुलपुष्पैरन्धपुष्पन्धयाऽसौ । निधुवनविधिमोहान्मूककोका वनश्रीः कथमिव पथिकानां नैव वैकल्यहेतुः ॥ ७ ॥ रे पान्थाः स्वगृहाणि गच्छत सुखं सेवाक्षणो मुच्यतां मानं मानिनि मुञ्च वल्लभजने कोपानुबन्धेन किम् । आयातः कुसुमाकरः क्षपयति प्राणान्वियोगातुरेष्वित्येवं परपुष्टनादपटहो वक्तीव कामाज्ञया ॥ ८ ॥ वक्रेण शिरसि पतता नित्यं रुधिरारुणेन दुर्वारः । मत्तद्विप इव पथिकः किंशुककुसुमाङ्कुशेन भृतः ॥ ९ ॥ वसन्तप्रारम्भे चिरविरहखिन्ना सहचरी यदि प्राणान्मुञ्चेत्तदिह वधभागी भवति कः । वयो वा स्नेहो वा कुसुमविशिखो वेति विमृशँस्तुहीति प्रव्यक्तं पिकनिकरझाङ्कारमशृणोत् ॥ १० ॥ समवलोक्य विलासवनस्थलीं न पथिकैः पथि कैः पतितं भुवि । मलयजद्रुमसौरभमेदुरोदरसमीरसमीरितवल्लरीम् ॥ ११ ॥ सव्याधेः कृशता क्षतस्य रुधिरं दष्टस्य लालास्रुतिः किञ्चिन्नैतदिहास्ति तत्कथमसौ पान्थस्तपस्वी मृतः । आ ज्ञातं मधुलम्पटैर्मधुकरैरारब्धकोलाहले नूनं साहसिकेन चूतमुकुले दृष्टिः समारोपिता ॥१२॥ सा तन्वीति घनस्तनीति विकसन्नीलाब्जनेत्रेति च स्वैरं सञ्चरतीति वक्ति मधुरां वाचं विचित्रामपि । इत्थं विद्रुमपाटलाधरपुटां सीमन्तिनीं

अधजली लकड़ियाँ हों किन्तु केवल नरकोकिलोंकी कूकसे ही वह ऐसी जान पड़ रही थी कि उसमें प्राण बच रहे हों ॥ ४ ॥ जिन दिनोंमें उठती हुई मकरन्दकी गन्धके लोभी भौंरे झूम-झूमकर आमकी बौर हिला रहे थे और उन बौरोंपर फुदकते हुए कोकिलकी मनोहर कूक लोगोंके कानोंमें पड़कर ताप उत्पन्न कर रही थी ऐसे दिनोंको राही लोग अपनी प्रियाके समागमका मन ही मनमें ध्यान करके ही मगन होकर किसी-किसी प्रकार बिता लेते थे ॥५॥ दक्षिण दिशाके वायुसे हिलती हुई लतापर बैठे हुए मतवाले भौंरोंके पंखोंसे गिराए हुए परागकी ढेरके कारण सुन्दर दिखाई देनेवाले और चित्त प्रसन्न करनेवाले वसन्तके समयमें जब उन नवेलियोंके आलिंगनकी शिथिलता भी मन दुखी कर देती है जिनकी बाहोंके कङ्गन प्रेमके पसीनेके कारण ही ढीले पड़ जाते हैं तब उनके वियोगमें मनकी दशाका तो कहना ही क्या है ॥ ६ ॥ वनकी वह शोभा राहियोंको क्यों न व्याकुल करे जिसने मदमाते जङ्गली कबूतरोंकी चिल्लाहटसे सब दिशाएँ बहरी कर दी हैं, मौलसिरीके ढेरसे फूलोंके परागसे जिसने सबको अन्धा बना रक्खा है तथा जिसमें चकवे-चकवी चुप्पी साधकर सम्भोगकी लीलामें मस्त हैं ॥ ७ ॥ कोयलकी कूक ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेवकी आज्ञासे वह अपनी कूकके नगाड़ेसे ललकारकर कह रहा हो कि 'हे परदेसियो ! देखो, यह वियोगियोंके प्राण हरनेवाला वसन्त आ पहुँचा है इसलिये तुम लोग आनन्दसे अपने घर जाओ, दूसरोंकी सेवाका काम छोड़ दो तथा हे रूठनेवालियो ! अपना रूठना छोड़ दो । कहीं अपने प्रियतमसे भी रूठा जाता है ?' ॥ ८ ॥ जैसे मुड़े हुए और रक्तसे लाल अंकुश लगनेपर भी मतवाला हाथी रोके नहीं रुकता वैसे ही रुधिरके समान लाल, टेढ़े और नित्य सिरपर झड़ते हुए पलासके फूलोंसे घिरा हुआ वियोगी भी रोका नहीं जा सका ॥ ९ ॥ वसन्तके प्रारम्भमें ही बहुत दिनोंका बिछोही नायक यह सोच ही रहा था कि 'बहुत दिनोंके वियोगसे दुखी होकर मेरी प्यारी यदि प्राण छोड़ दे तो इसकी हत्याका दोष वियोगकी अवस्थाको लगेगा या कामको या स्नेहको' कि कोयलने कूककर स्पष्ट रूपसे कह दिया 'तुमको, तुमको, तुमको' ॥ १० ॥ क्रीड़ाकी वनभूमिके जिस मार्गमें चन्दनके वृक्षकी सुगन्धसे भरे हुए वायु मञ्जरियाँ हिला रहे हैं उस वनभूमिको देखकर ऐसा कौन राही होगा जो मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर न पड़े ॥ ११ ॥ किसी मरे हुए प्रवासीको देखकर कोई कह रहा है कि 'रोगसे मरनेवाला मनुष्य दुबला दिखाई पड़ता है, घावसे मरा हो तो शरीरमें रुधिर दिखाई देता है और साँप आदिके काटनेपर मरा हो तो मुँहसे झाग निकलता है पर इस प्रवासीमें तो ऐसे कोई चिह्न ही नहीं दिखाई पड़ रहे हैं तब यह बेचारा कैसे मर गया ? अच्छा, अब समझमें आया, इसने साहस करके उन आमकी बौरोंको भर आँखों अवश्य देख लिया होगा, जिनपर मकरन्दके लोभी भौंरे मँडराते हुए गुनगुना रहे हैं' ॥ १२ ॥ परदेसमें

ध्यायतो रोमाञ्चो रुदितं स्मितं प्रलपितं पान्थस्य सञ्जायते ॥ १२ ॥

कोकिलालापः यः श्रोत्रामृतनिर्झरैकवसतिं निर्व्याजमारूढवान् यस्सञ्जीवनमन्त्रितां त्रिणयनप्लुष्टस्य चेतोभुवः। वीणावन्मसृणो ध्वनिश्चतसृणां पात्रं श्रुतीनामभूत्सोऽयं कोकिलकण्ठवेणुविवरव्यापारितः पञ्चमः ॥ १ ॥ यश्चूताङ्कुरकन्दलीकवलनात्कर्णामृतग्रामणीच्छायामात्रपरिग्रहोऽपि जगृहे पञ्चेषु जैत्रेपुताम्। ताम्यत्तालुविटङ्कसङ्कटवटीसञ्चारितः पञ्चमः सोऽयं कोकिलकामिनीगलबिलादामूलमुन्मीलति ॥ २ ॥

सहकारः—किं द्वारि दैवहतिके सहकारकेण सम्वर्धितेन विषवृक्षक एष पापः। यस्मिन्मनागपि विकासविकारभाजि घोरा भवन्ति मदनज्वरसन्निपाताः ॥१॥ नेयञ्चूतलता विराजति धनुर्लेखा स्थितेयं पुरो नासौ गुञ्जति भृङ्गपद्धतिरियं मौर्वी टणत्कारिणी। नैते नूतनपल्लवाः स्मरभटस्यामी स्फुटं पत्रिणः शोणास्तत्क्षणभिन्नपान्थहृदयप्रस्यन्दिभिश्शोणितैः ॥ २ ॥ पुष्पेषोरस्त्रकोशः शुकपठनमठः स्वस्तिवासः पिकानामाम्रः साम्राज्यलक्ष्मीमनुभवतुतमामत्र कान्ते वसन्ते। पाकप्राप्तिप्रकर्षारुणगुणगुरुणा यत्फलानां रसेन श्रीसौभाग्येन जिग्ये मरकतकुतुपक्रोडजाम्बूनदाम्बु ॥ ३ ॥ मदमधुरविलासानल्पभृङ्गाभिरामा ललितमुकुललीलोद्भिन्नदन्ताङ्कुरश्रीः। मलयपवनवेल्लत्पर्णकर्णाग्रभागा लसति बत वसन्ते मञ्जरी कुञ्जरीव ॥ ४ ॥ सृष्टा वयं यदि ततः किमियं मृगाक्षी सेयं वयं यदि ततः किमयं वसन्तः। सोऽप्यस्तु नाम जगतः प्रतिपक्षभूतश्चूतद्रुमः किमिति निर्मित एष धात्रा ॥ ५ ॥

ग्रीष्मवर्णनम्—अङ्गं चन्दनपाण्डु पल्लवमृदुस्ताम्बूलताम्रोऽधरो धारायन्त्रजलाभिषेककलुषे धौताञ्जने लोचने। अन्तः पुष्पसुगन्धिरार्द्रकबरी सर्वाङ्गलग्नाम्बरं

बैठे हुए नायकने अपनी मूँगेके समान लाल ओठोंवाली पत्नीका जब इस प्रकार ध्यान किया कि 'वह दुबली है, बड़े-बड़े स्तनोंवाली है, खिले हुए कमलके समान उसके नेत्र हैं, वह धीरे-धीरे चलती है और बड़ी मीठी तथा प्यारी वाणी बोलती है', तब उसके शरीरमें रोंगटे उठ खड़े हुए, वह रोने लगा, हँसने लगा और प्रलाप करने लगा ॥ १२ ॥

कोयलकी कूक : कानोंमें अमृत-सी स्वरलहरी उपजानेवाले तथा शिवजीके तीसरे नेत्रसे जले हुए कामदेवको जिलानेवाले मन्त्रोंके समान कोयलके कण्ठरूपी वंशीके छेदोंसे गूँजकर निकलता हुआ पञ्चम स्वर वीणाके स्वरके समान मधुर तथा चारों वेदोंके तत्त्वसे भरकर गूँज रहा है ॥ १ ॥ आमका बौर खा लेनेसे जो पञ्चम स्वर कानोंके लिये सुन्दर अमृत हो गया है, जो बिना शरीरके ही कामदेवकी विजय बना जा रहा है, वह कोयलकी कामिनीके गलेके छिद्रसे नीचे नाभितक उमड़कर उसके फड़कते हुए तालुरूपी दड़बेके सँकरे मार्गसे चल पड़ा है ॥ २ ॥

आमका वृक्ष : अरी अभागिन! द्वारपर आमका वृक्ष लगाकर पालनेसे क्या लाभ है क्योंकि यह पापी भी तो विषका ही बिरवा है क्योंकि इसके थोड़ा-सा बौरते ही कामज्वरका पागलपन और भी भयङ्कर होकर बढ़ जाता है ॥ १ ॥ यह सामने आमकी डाल नहीं है, यह तो कामदेवका धनुष है, जिसे तू भौंरोंकी गुन्जार समझ रही है वह उस धनुषकी डोरीकी टङ्कार है और इसमें जिन्हें तू लाल लाल कोंपलें समझे बैठी है वे भी वीर कामदेवके खुले बाण हैं जो परदेसियोंके हृदय फाड़कर उनसे बहे हुए लहूसे लथपथ होकर लाल-लाल दिखाई दे रहे हैं ॥ २ ॥ वसन्तरूपी प्रियतमके आते ही कामदेवके बाणोंका तरकस, तोतेकी पाठशाला, और कोकिलोंका कल्याणकारी अड्डा बना हुआ यह आम राजलक्ष्मी पावे जिसके पके हुए फलोंकी लाल-लाल रसरूपी शोभा (सम्पति) इस समय नीलमकी कुप्पीमें भरे हुए सुनहरे जलकी शोभाको भी जीत रही है ॥३॥ देखो, वसन्तमें मदकी गन्धसे मतवाले भौंरोंके बैठे हुए झुण्डोंसे सुन्दर लगनेवाली, नुकीले बौररूपी दाँतोंवाली तथा मलयाचलके पवनोंसे हिलते हुए पत्तेरूपी कानोंवाली आमकी मञ्जरी हथिनीके समान दिखाई पड़ रही है ॥ ४ ॥ यदि ब्रह्माने हमें लोगोंको बनाया तो ठीक था पर यह मृगनयनी नवेली बनानेकी क्या आवश्यकता थी? यदि हमें और नवेलियोंको बना भी दिया तो यह वसन्त क्यों गढ़ा? चलो वह भी सही पर हम पूछते हैं कि सारे संसारका वैरी बना हुआ यह आमका वृक्ष क्यों ब्रह्माने बना दिया ॥ ५ ॥

गर्मीके दिनोंका वर्णन : गर्मीमें साँझके समय चन्दन लगानेसे उजले-उजले अङ्ग, कोंपलोंके समान कोमल और पानकी लालीसे रँगे हुए लाल ओठ, फुहारेके जलसे स्नान करनेके कारण आँजन धुली हुई लाल-लाल आँखें, फूलकी

रामाणां रमणीयतां विदधति ग्रीष्मापराह्णागमे ॥ १ ॥ अङ्गारैः खचितेव भूर्वियदपि ज्वालाकरालं करैस्तिग्मांशोः किरतीव तीव्रमभितो वायुः कुकूलानलम्। अप्यम्भांसि नखम्पचानि सरितामाशा ज्वलन्तीव च ग्रीष्मेऽस्मिन्नवबह्निदीपितमिवाशेषं जगद्वर्तते ॥ २ ॥ अत्यच्छं सितमंशुकं शुचि मधु स्वामोदमच्छं रजः कार्पूरं विधृतार्द्रचन्दनकुचद्वन्द्वाः कुरङ्गीदृशः। धारावेश्म सपाटलं विचकिलस्रग्दाम चन्द्रत्विषो धातः सृष्टिरियं वृथैव तव न ग्रीष्मोऽभविष्यद्यदि ॥ ३ ॥ अत्युन्नसद्बिसरहस्ययुजा भुजेन वक्त्रेण शारदसुधांशुसरोरुहेण। पीयूषपोषसुभगेन च भाषितेन त्वं चेत्प्रसीदसि मृगाक्षि कुतो निदाघः ॥ ४ ॥ अपि तरुवनान्यूष्मायन्ते तपत्यपि यामिनी दहति सरसीवातोऽप्येप ज्वलन्ति जलान्यपि। इति समधिकं ग्रीष्मे भीष्मे न पुण्यवतां भयं मलयजरसैर्दिग्धं लब्ध्वा वधूस्तनमण्डलम् ॥ ५ ॥ अपि शिशिरतरोपचारयोग्यं द्वितयमिदं युगपन्न सह्यमेव। जरठितरविदीधितिश्च कालो दयितजनेन समं च विप्रयोगः ॥ ६ ॥ असह्यवातोद्धतरेणुमण्डला प्रचण्डसूर्यातपतापिता मही। न शक्यते द्रष्टुमपि प्रवासिभिः प्रियावियोगानलदग्धमानसैः ॥ ७ ॥ अस्मद्रिपूणामनिलाशनानां दत्तो निवासः खलु चन्दनेन। इतीव रोपाद्यजनस्य वायुर्व्यशोषयच्चन्दनमङ्गसंस्थम् ॥ ८ ॥ अस्वाध्यायः पिकानां मदनमखसमारम्भणस्याधिमासो निद्राया जन्मलग्नं किमपि मधुलिहां कोऽपि दुर्भिक्षकालः। विष्टिर्यात्रोत्सुकानां मलयजमरुतां पान्थकान्ताकृतान्तः प्रालेयोन्मूलमूलं समजनि समयः कश्चिदौत्पातिकोऽयम् ॥ ९ ॥ उत्तप्तोऽयमुरङ्गमः शिखितलच्छायां समालम्बते वैरं साहजिकं विहाय च शिखी मूलं तरोर्गच्छति। याचन्ते च जलं निकुञ्जभवने तृष्णातुराः सारिकास्तप्ते वारिणि पङ्क-

---

सुगन्धसे भरी भीगी चोटी और सारे शरीरपर चिपका हुआ झीना वस्त्र स्त्रियोंको सुन्दर बनाए दे रहा है ॥ १ ॥ सारी पृथ्वी मानो जलते हुए अङ्गारोंसे भरी हुई है, आकाश भी सूर्यकी किरणोंसे मिलकर मानो आगकी लपटोंसे भर गया है, गरम-गरम वायु भी मानो चारों ओर भूसीकी आग बिखेर रहे हैं, नदियोंके जलमें भी हाथ डालें तो नख पक उठते हैं और सारी दिशाएँ जल-सी रही हैं, यहाँतक कि इस गर्मीमें सारा संसार धधकती हुई आगसे घिरा जान पड़ता है ॥ २ ॥ हे ब्रह्माजी! यदि गर्मीकी ऋतु न होती तो अत्यन्त स्वच्छ और उजला वस्त्र, बढ़िया ढली हुई मदिरा, सुगन्धित स्वच्छ कपूरका चूरा, अपने स्तनोंपर घिसा हुआ चन्दन लगाए हुए मृगनयनी, फुहारोंका स्नानागार, गुलाबके फूलोंसे मिली हुई मदन वृक्षके फूलोंकी माला और चन्द्रमाकी निर्मल चाँदनी आदि आपकी यह सारी सृष्टि व्यर्थ हो जाती ॥ ३ ॥ हे मृगनयनी! सुन्दर तथा कोमल कमलनालके समान बाँहोंसे, शरद्के चन्द्रमाके समान मुखकमलसे तथा अमृतके समान मधुर और मनोहर बोलीसे यदि तुम मुझपर कृपा कर दो अर्थात् यदि तुम मेरा आलिङ्गन कर लो, अधरामृत पी लेने दो तथा प्यारी बोल बोल दो तो यह ग्रीष्म मेरा क्या बिगाड़ सकता है ॥ ४ ॥ गर्मीके दिनोंमें वनके वृक्षोंमें भी ताप भर जाता है, रात्रि भी तपने लगती है, तालाबोंका वायु भी जलने-सा लगता है और जल भी खौलता-सा रहता है। किन्तु गर्मीके इन भयंकर दिनोंमें भी उन पुण्यात्माओंको तनिक भी भय नहीं होता जिन्हें नई नवेलीके चन्दनसे पुते स्तन प्राप्त हैं ॥ ५ ॥ जिन दो अवस्थाओंमें ठंढी-ठंढी वस्तुओंका उपयोग आवश्यक है वे यदि एक साथ आ पड़ें तो असह्य हो जाती हैं, इनमेंसे एक तो है गरमीका समय, जिसमें सूर्यकी किरणें अत्यन्त प्रचण्ड हो जाती हैं और दूसरा है अपने प्रियतमका बिछोह ॥ ६ ॥ परदेसमें गए हुए जिन प्रेमियोंका हृदय अपनी प्रेमिकाओंके बिछोहकी तपनसे झुलस गया है, वे जब आँधीके झोंकोंसे उठी हुई धूलके बवण्डरोंवाली और कड़ी धूपकी लपटोंसे तपी हुई धरतीकी ओर देखते हैं तो उनसे देखा नहीं जाता ॥ ७ ॥ पङ्खेके वायुने गर्मीके दिनोंमें शरीरमें लगा हुआ चन्दन मानो इस क्रोधसे सुखा डाला कि यह चन्दन हमारे वैरी वायु पीनेवाले साँपोंको रहनेके लिये स्थान देता है ॥ ८ ॥ सर्दीको जड़से उड़ा देनेवाला और उथल-पुथल मचानेवाला यह अनोखा ही समय आ गया है जिसमें कोयलकी कूक बन्द हो गई, जो यज्ञ करनेवालोंके लिये मलमासके समान है, नींदका जन्मलग्न है, भौंरोंके लिये अकाल है, यात्राके लिये चलनेवाले दक्षिण वायुके लिये भद्रा है और विरहिणी स्त्रियोंके लिये साक्षात् यम है ॥ ९ ॥ गर्मीसे सताया हुआ साँप मोरके पंखोंके तले छाया ले रहा है, अपना स्वाभाविक वैर छोड़कर मोर भी पेड़के तले जा बैठा है, प्यासी मैना झाड़ियोंमें बैठकर पानीके लिये छटपटा रही है और तपे हुए जलमें कमलोंको अकेला

जानि मधुपास्त्यक्त्वा श्रयन्ते लताः ॥ १० ॥ उद्धूय धूलीर्धवला रसातलाद्वात्या लगन्ती गगने व्यवर्तत। फूत्कारयन्त्येव भुवोद्धृता भुजा निदाघतापाकुलया तपात्यये ॥ ११ ॥ उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी निर्भिद्योपरिकर्णिकारकुसुमान्याशेरते षट्पदाः। तप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते क्रीडावेश्मनिवेशिपञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते ॥ १२ ॥ एष सूर्यांशुसन्तप्तो मृगः कुतरुमाश्रितः। साधुर्भाग्यपरिक्षीणो नीचं प्राप्येव सीदति ॥ १३ ॥ कथमिव तव सम्मतिर्भवित्री सममृतुभिर्मुनिनावधीरितस्य। इति विरचितमल्लिकाविकासः स्मयत इव स्म मधुं निदाघकालः ॥ १४ ॥ कमलवनचिताम्बुः पाटलामोदरम्यः सुखसलिलनिषेकः सेव्यचन्द्रांशुहारः। व्रजतु तव निदाघः कामिनीभिः समेतो निशि सुललितगीते हर्म्यपृष्ठे सुखेन ॥ १५ ॥ कानि स्थानानि दग्धान्यतिशयगहनाः सन्ति के वा प्रदेशाः किं वा शेषं वनस्य स्थितमिति पवनासङ्गविस्पष्टतेजाः। चण्डज्वालावलीढस्फुटिततनुलताग्रन्थिमुक्ताट्टहासो दावाग्निः शुष्कवृक्षे शिखरिणि गहनेऽधिष्ठितः पश्यतीव ॥ १६ ॥ काश्मर्याः कृतमालमुद्गतदलं कोयष्टिकष्टीकते तीराश्मन्तकशिम्बिचुम्बितमुखा धावन्त्यपः पूर्णिकाः। दात्यूहैस्तिनिशस्य कोटरवति स्कन्धे निलीय स्थितं वीरुन्नीडकपोतकूजितमनुक्रन्दन्त्यधः कुक्कुटाः ॥ १७ ॥ क्वापि क्वापि दिगन्ते कृशधवलः कोऽपि कोऽपि घनलेशः। तिग्मद्युतिदग्धानां ताराणां भस्मवद्भाति ॥ १८ ॥ गजगवयमृगेन्द्रा वह्निसन्तप्तदेहा सुहृद इव समेता द्वन्द्वभावं विहाय। हुतवहपरिखेदादाशु निर्गत्य कक्षाद्विपुलपुलिनदेशां निम्नगां संविशन्ति ॥ १९ ॥ छाया वियोगिवनितेव गता कृशत्वं तप्तं पयः पिशुनमानसवद्बभूव। केनाधुना वत मनागवलोकनीयः क्रुद्धोत्तमर्णमुखमण्डलवत्पतङ्गः॥२०॥ जलार्द्रौः शष्पाणां विसकिसलयैः केलिवलयाः शिरीषैरुत्तंसा

छोड़कर भौंरे भी लताओंमें जा छिपे हैं ॥ १० ॥ पृथ्वीसे उड़कर वायुके सहारे आकाशतक पहुँची हुई धूल ऐसी जान पड़ती है मानो गर्मीके तापकी अधिकतासे पृथ्वी अपने हाथ (उठाकर) हाँफ रही हो ॥ ११ ॥ गर्मीसे तपा हुआ मोर ठण्डे थाँवलेमें जा बैठा है, भौंरे कनैरके फूलमें घुसकर सो रहे हैं, कारण्डव नामका जलपक्षी तपे हुए जलको छोड़कर तीरपर खिली हुई कमलिनीके नीचे छाया ले रहा है और घरमें रक्खे हुए पिंजरेमें बैठा हुआ तोता उदास होकर पानी माँग रहा है ॥ १२ ॥ सूर्यकी किरणोंसे तपा हुआ हरिण बिना डाल-पातवाले पेड़के नीचे खड़ा हुआ उसी प्रकार दुखी हो रहा है जैसे कोई भाग्यहीन सज्जन किसी नीचके पास जाकर दुखी हो रहा हो ॥ १३ ॥ गरमीके दिनोंमें खिले हुए बेलेके फूल ऐसे जान पड़ते हैं मानो ग्रीष्म ऋतु उन फूलोंके बहाने वसन्तकी हँसी उड़ा रहा हो कि तुम्हें तो मुनियोंने अपमानित कर रक्खा है, तुम क्या दूसरी ऋतुओंकी बराबरी करोगे ! ॥ १४ ॥ जिस गर्मीकी ऋतुमें कमलोंसे भरे हुए और खिले हुए गुलाबकी गन्धमें बसे हुए जलमें स्नान करना बहुत सुहाता है और जिन दिनों चन्द्रमाकी चाँदनी और मोतीके हार बहुत सुख देते हैं, वह ऋतु आपकी ऐसी बीते कि रातको आप अपने घरकी छतपर लेटे हों, सुन्दरियाँ आपको घेरे बैठी हों और मनोहर सङ्गीत छिड़ा हुआ हो ॥ १५ ॥ प्रचण्ड वायुके चलनेसे जो जंगलकी आग अत्यन्त तीव्र हो गई है और जो अपनी भयङ्कर ज्वालाओंसे पतली-पतली लताओंकी गाँठें चटका-चटकाकर अट्टहास कर रही है वह सूखे पेड़ोंवाले ऊँचे जङ्गलमें बैठकर मानो यह देख रही है कि इस जङ्गलका कितना भाग जल गया है, कितना घना भाग बच गया है और अभी वनका कितना भाग जलाना शेष है ॥ १६ ॥ टिटिहिरी भी खम्भारीके घने-घने उगे हुए पत्तोंमें घुसी जा रही हैं, नासाछिन्नी चिड़िया जलके तटपर पथरफोड़के बीचमें निकले हुए अङ्कुरपर अपनी चोंच चला रही है, पपीहे भी चीड़की मोटी-मोटी शाखाओंके खोखलोंमें जा छिपे हैं और मुर्गे लताओंके दड़बोंके नीचे बैठकर कबूतरके समान गुटरगूँ कर रहे हैं ॥ १७ ॥ दूर आकाशमें कहीं-कहीं बादलोंके छोटे-छोटे उजले टुकड़े ऐसे चमकते हैं मानो सूर्यसे जलाए हुए तारोंकी राख हों ॥ १८ ॥ आगसे घबराए हुए और झुलसे हुए हाथी, बैल और सिंह, आज मित्र बनकर साथ-साथ इकट्ठे होकर घासके जंगलसे झटपट निकल आए हैं और नदीके चौड़े और बलुए तीरपर आकर विश्राम कर रहे हैं ॥ १९ ॥ वियोगीकी स्त्रीके समान छाया दुबली हो गई है, नीचोंके हृदयके समान पानी तप गया है और ऋण देनेवाले क्रोधी महाजनके मुखके समान सूर्यमण्डल भी इतना तेजस्वी हो गया है कि उससे कोई आँख नहीं मिला सकता ॥ २० ॥ कमलकी नाल और कोंपलोंके साथ

विचकिलमयी हाररचना। शुचावेणाक्षीणां मलयजरसार्द्राश्च तनवो विना तन्त्रं मन्त्रं रतिरमणमृत्युञ्जयविधिः ॥ २१ ॥ ज्वलति पवनवृद्धः पर्वतानां दरीषु स्फुटति पटुनिनादः शुष्कवंशस्थलीषु। प्रसरति तृणमध्ये लब्धवृद्धिः क्षणेन ग्लपयति मृगवर्गं प्रान्तलग्नो दवाग्निः ॥२२॥ ततः प्राविरभूद्ग्रीष्मस्तपन्वसुमतीमिमाम्। सपिण्डः कालकूटस्य सप्तजिह्वस्य सोदरः ॥ २३ ॥ तदात्वस्नातानां दरदलितमल्लीमुकुलिताः स्रजो बिभ्राणानां मलयजरसार्द्रार्द्रवपुषाम्। निदाघाग्निप्लोषग्लपितमभिसार्यं मृगदृशां परिष्वङ्गोऽनङ्गं पुनरपि शनैरङ्कुरयति ॥ २४ ॥ तपनं विभ्रदाकाशो जगत्क्वाथविश्रृङ्खलम्। स्फुरल्ललाटनयनं हरं नाटयति स्फुटम् ॥ २५ ॥ तप्ता मही विरहिणामिव चित्तवृत्तिस्तृष्णाध्वगेषु कृपणेष्विव वृद्धिमेति। सूर्यः करैर्दहति दुर्वचनैः खलो नु छाया सतीव न विमुञ्चति पादमूलम् ॥ २६ ॥ तरुणतरणितेजः पुञ्जसन्तप्तदेहः पतति जरठखड्गः पल्वले पङ्कलेहः। हरिरपि सलिलार्थी शङ्कया तस्य नीरं न पिबति न च याति क्लिश्यति प्राप्य तीरम् ॥ २७ ॥ तापावसन्नशयितं सरणौ तरक्षुमुल्लङ्घ्य धावति मृगे मृगतृष्णिकायै। तत्कोपितो मुखमुदञ्चितमेप घर्मप्लोषात्रसन्नवनमय्य तथैव शेते ॥ २८ ॥ तृषा महत्या हतविक्रमोद्यमः श्वसन्मुहुर्दूरविदारिताननः। न हन्त्यदूरेऽपि गजान्मृगेश्वरो विलोलजिह्वश्चलिताग्रकेसरः ॥ २९ ॥ दुःप्रेक्ष्यमुच्चैर्गगनं निदाघे कोपाकुलस्येव मुखं नृपस्य। हरेः शयानस्य मृणालबुद्ध्या कर्षन्ति पुच्छं करिणः करेण ॥ ३० ॥ देशे देशे जडिमकुरङ्गास्तेजोभल्लैर्दिनकरभिल्ले। धावं धावं प्रहरति राज्ञां धारागेहं शरणमवापुः ॥ ३१ ॥ निजां कायच्छायां श्रयति महिषः कर्दमधिया च्युतं गुञ्जापुञ्जं रुधिरमिति काकः कलयति। समुत्सर्पन्सर्पः

हरी घास मिलाकर पीसे हुए जलसे भीगे कङ्कन, सिरसके फूलोंसे बने हुए चूड़ामणि, मदनके फूलोंसे बने हार और चन्दनके रससे पुता हुआ मृगनयनीका शरीर, ये सभी वस्तुएँ विना तन्त्र-मन्त्रके ही गरमीके दिनोंमें कामदेवको जिलानेके लिये मृत्युञ्जयके जपका काम करने लगीं ॥ २१ ॥ वनके वाड़ेसे उठी हुई और वायुसे और भी भड़की हुई अग्निकी लपट, पहाड़की घाटियोंमें फैलती हुई सभी पशुओंको जलाए डाल रही है, सूखे बाँसोंमें चटचटा रही है और क्षण भरमें आगे बढ़कर घास पकड़ ले रही है ॥ २२ ॥ तदनन्तर कालकूट नामके भयङ्कर विष और अग्निके सगे भाई अत्यन्त भयङ्कर सूर्य पृथ्वीको तपाते हुए उदय हुए ॥ २३ ॥ गरमीके दिनोंमें स्नान करके कुछ-कुछ खिले हुए बेलेकी कलियोंकी माला पहने हुए और चन्दनके रससे भीगे हुए शरीरोंवाली नवेलियोंके आलिङ्गनसे ग्रीष्मरूपी आगमें जले हुए कामदेवमें फिर धीरे-धीरे अङ्कुर निकल रहे हैं ॥ २४ ॥ अपने तापसे सारे संसारका काढ़ा बनाकर बेचैन हुए सूर्यको धारण करता हुआ आकाश ऐसा शोभित हो रहा है मानो प्रत्यक्ष ही मस्तकपर तीसरा नेत्र धारण किए शिवजी हों ॥ २५ ॥ गरमीके दिनोंमें वियोगियोंके हृदयोंके समान धरती तपी जा रही है, कञ्जूसोंके लोभके समान परदेसियोंका प्रेम बढ़ता जा रहा है, सूर्य भी अपनी किरणोंसे उसी प्रकार सबको जला रहा है जैसे नीच लोग अपने खोटे वचनोंसे जलाया करते हैं और छाया भी पतिव्रता स्त्रीके समान पेड़की जड़ नहीं छोड़ रही है ॥ २६ ॥ गर्मीके दिनोंमें सूर्यकी प्रचण्ड गर्मीसे तपे हुए शरीरवाला एक बूढ़ा गैंडा कीचड़ चाटता हुआ तालावमें घुस रहा है, एक घोड़ा भी वहाँ पानी पीनेके लिये पहुँचकर उस गैंडेके भयसे डरा हुआ न तो पानी ही पी रहा है न वहाँसे हट ही रहा है ॥ २७ ॥ मार्गमें ही सोए हुए चीतेको लाँघकर मृग गर्मीसे व्याकुल होकर वालूको भ्रमसे जल समझकर दौड़ा जा रहा था, इससे चीतेको क्रोध तो आया और उसने मुँह भी उठाया किन्तु कड़ी धूपके डरसे उसने फिर अपना मुँह लटका लिया और जहाँका तहाँ सो गया ॥ २८ ॥ देखो! हाथियोंके पास होनेपर भी यह सिंह उन्हें मार नहीं रहा है क्योंकि गर्मी इतनी बढ़ रही है कि तीव्र प्यासके मारे इसका सब साहस ठण्ढा पड़ गया है, अपना पूरा मुँह खोलकर यह बार-बार हाँफ रहा है, अपनी जीभसे अपने ओठ चाटता जा रहा है और हाँफनेसे इसके कन्धेके बाल हिलते जा रहे हैं ॥२९॥ गरमीके दिनोंमें क्रोधी राजाके मुखके समान तपे हुए आकाशकी ओर कोई आँख नहीं उठा सकता और सब जीव इतने निस्तेज हो गए हैं कि सिंहकी पूँछको कमलकी नाल समझकर हाथी उसे अपनी सूँड़से खींच रहा है ॥३०॥ गरमीके दिनोंमें जब सूर्यरूपी भील दौड़-दौड़कर अपने किरणरूपी वाणोंसे चारों ओर प्रहार करने लगा उस समय ठण्ढकरूपी हरिणोंको राजाओंके फुहारोंके घरोंमें घुसनेपर ही शरण मिली ॥ ३१ ॥ गरमीके

सुषिरविवरं तापविवशः सचीत्काराधूतं प्रविशति करं कुञ्जरपतेः ॥ ३२ ॥ नितम्बबिम्बैः सदुकूलमेखलैः स्तनैः सहाराभरणैः सचन्दनैः । शिरोरुहैः स्नानकषायवासितैः स्त्रियो निदाघं शमयन्ति कामिनाम् ॥ ३३ ॥ नितान्तलाक्षारसरागरञ्जितैर्नितम्बिनीनां चरणैः सनूपुरैः । पदे पदे हंसरुतानुकारिभिर्जनस्य चित्तं क्रियते समन्मथम् ॥ ३४ ॥ निदाघिरे दयितोरसि तत्क्षणस्नपनवारितुषारभृतस्तनाः । सरसचन्दनरेणुरनुक्षणं विचकरे च करेण वरोरुभिः ॥ ३५ ॥ निशाः शशाङ्कक्षतनीलराजयः क्वचिद्विचित्रं जलयन्त्रमन्दिरम् । मणिप्रकाराः सरसञ्च चन्दनं शुचौ प्रिये यान्ति जनस्य सेव्यताम् ॥ ३६ ॥ पच्यन्ते स्थलचारिणः क्षितिरजस्यङ्गारभूयङ्गते क्वथ्यन्ते जलजन्तवः प्रतिनदं तापोल्वणैर्वारिभिः । भर्ज्यन्ते खचराः खरातपशिखापुञ्जे तदेभिर्दिनैर्मांसपाकः क्रियते दिनेऽथ नियमाद्वैवस्वताय ध्रुवम् ॥ ३७ ॥ पटुतरदवदाहोच्छुष्कसस्यप्ररोहाः परुषपवनवेगोत्क्षिप्तसंशुष्कपर्णाः । दिनकरपरितापक्षीणतोयाः समन्ताद्विदधति भयमुच्चैर्वीक्ष्यमाणा वनान्ताः ॥ ३८ ॥ पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनां सौधान्यत्यर्थतापाद्वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि । विन्दूत्क्षेपान्पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रं सर्वैरुस्रैः समग्रस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः ॥ ३९ ॥ पयोधराश्चन्दनपङ्कचर्चितास्तुषारगौरार्पितहारशेखराः । नितम्बदेशाश्च सहेममेखलाः प्रकुर्वते कस्य मनो न सोत्सुकम् ॥ ४० ॥ पान्थानां प्रमदा इव प्रतिदिनं दैन्यं ह्रदिन्यो ययुर्दृश्यन्ते स्म दिगम्बरा इव वने पत्रोज्झिताः पादपाः । निःश्वासा इव दुःसहा विरहिणां वाता ववुः सर्वतः पायं पायमिव प्रियाधररसं पाथः पपुः प्राणिनः ॥ ४१ ॥ पाश्चात्यैर्मरुमारुतैस्त्रिजगताम्मुमूलयन्नार्द्रतां दावाग्निर्ज्वलितैरपारगहना-

---

दिनमें भैंसा अपनी परछाईंको ही कीचड़ समझकर उसमें लोटा जा रहा है, पड़ी हुई घुँघचीको कौआ रक्तकी बूँद समझ रहा है, तथा गर्मीसे दुखी साँप हाथीकी सूँड़को ही बिल समझकर उसमें घुस रहा है और हाथी उसे देखकर चिग्घाड़ते हुए सूँड़ फटकार रहा है ॥ ३२ ॥ इन दिनों सब प्रेमिकाएँ अपने गर्मीसे सताए हुए प्रेमियोंकी तपन मिटानेके लिये उन्हें अपने उन नितम्बोंपर लिटाती हैं जिनपर रेशमी वस्त्र और करधनी पड़ी होती है, अपने उन चन्दन पुते हुए ठण्ढे स्तनोंसे लिपटाती हैं जिनपर हार और अन्य गहने पड़े होते हैं और अपने उन जूड़ोंकी गन्ध सुँघाती हैं जो उन्होंने स्नानके समय सुगन्धित फुलेलोंमें बसा लिए थे ॥ ३३ ॥ आजकल स्त्रियोंके उन महावरसे रँगे पैरोंको देखकर लोगोंका जी मचल उठता है जिनमें हंसोंके समान रुनझुन करनेवाले बिछुए बजा करते हैं ॥ ३४ ॥ गर्मीके दिनोंमें स्त्रियोंने तत्काल स्नान करके जलकी बूँदोंसे भरे हुए स्तन अपने पतियोंके वक्षस्थलपर लगा दिए और घिसे हुए चन्दनका चोवा लेकर अपने हाथसे इधर-उधर मल दिया ॥ ३५ ॥ देखो प्यारी ! आजकल तो लोग यह चाहते हैं कि चारों ओर खिले हुए चन्द्रमाकी चाँदनी छिटकी हुई हो, रङ्ग-बिरङ्गे फ़व्वारोंके तले हम लोग बैठे हुए हों, इधर-उधर ढङ्ग-ढङ्गके रत्न बिखरे पड़े हों और सुगन्धित चन्दन चारों ओर छिड़का हुआ हो ॥ ३६ ॥ धरतीकी धूल जब अङ्गारोंके समान धधकने लगती है तो उसमें धरतीपर रहनेवाले सब प्राणी जलने (पकने) लगते हैं, जलाशयोंके खौलते हुए पानीमें जलचरोंका काढ़ा बनने लगता है तथा आगकी लपटोंके समान कड़ी धूपमें आकाशचारी भुनने लगते हैं। यह सब देखकर ऐसा जान पड़ता है कि सूर्यके लिये प्रतिदिन ये नियमसे मांसका भोजन तैयार किया करते हैं ॥ ३७ ॥ आजकल वन तो और भी डरावने लगने लगे हैं क्योंकि वहाँ जङ्गलकी आगकी बड़ी-बड़ी लपटोंसे सब वृक्षोंकी टहनियाँ झुलस गई हैं, अन्धड़में पड़कर सूखे हुए पत्ते ऊपर उड़े जा रहे हैं और सूर्यकी गर्मीसे चारों ओरका जल सूख गया है ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! गर्मीकी दुपहरीमें हंस आँख मूँदकर बावड़ीके कमलोंके पत्तोंकी छायामें जा रहे हैं, बढ़ी हुई गर्मीके मारे कबूतर घरका ऊपरी भाग छोड़कर नीचेके तल्लोंमें आ बैठे हैं, फुहारोंसे निकलती हुई बूँदें पीनेके लिये मोर घूमता-घामता फुहारेके पास जा रहा है और जैसे आप सभी राजगुणोंसे युक्त हैं वैसे ही यह सूर्य भी अपनी पूरी किरणोंसे भरकर चमक रहा है ॥ ३९ ॥ इन दिनों हिमके समान उजले और अनूठे हारसे सजे हुए स्त्रियोंके चन्दन-पुते स्तन देखकर और सुनहरी करधनीसे बँधे हुए नितम्ब देखकर भला किसका मन नहीं ललच उठेगा ॥ ४० ॥ गर्मीके दिनोंमें परदेसियोंकी स्त्रियोंके समान बावड़ी भी दिन-दिन सूखती जा रही हैं, वनके ठूँठ नङ्गेसे दिखाई पड़ते हैं, वियोगियोंकी गरम साँसके समान वायु चारों ओर बह रहे हैं और लोग

न्यप्यानयन्भस्मताम् । वात्याभिस्तृणपत्रधूलिनिकरान्धुन्वन्विहायःस्थले ग्रीष्मः शुष्यदपुच्छपल्वललुठन्मत्स्यः समभ्यागतः ॥ ४२ ॥ प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहक्षतवारिसञ्चयः । दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये ॥ ४३ ॥ प्रतिगतमर्थिजनानां विच्छिन्नाशं समूहमवलोक्य । स्फुटितमपयसस्तापादिव हृदयमलं तडागस्य ॥ ४४ ॥ प्रायश्चरित्वा वसुधामशेषां छायासु विश्रम्य ततस्तरूणाम् । प्रौढिं गते सम्प्रति तिग्मभानौ शैत्यं शनैरन्तरपामयासीत् ॥ ४५॥ बलवदपि चलं मिथोविरोधि प्रभवति नैव विपक्षनिर्जयाय । भुवनपरिभवी न यत्तदानीं तमृतुगणः क्षणमुन्मनीचकार ॥ ४६ ॥ बहुतर इव जातः शाल्मलीनां वनेषु स्फुरति कनकगौरः कोटरेषु द्रुमाणाम् । परिणतदलशाखानुत्पतन् प्रांशुवृक्षान्भ्रमति पवनधूतः सर्वतोऽग्निर्वनान्ते ॥ ४७ ॥ बाले मालेयमुच्चैर्न भवति गगनव्यापिनी नीरदानां किं त्वं पक्ष्मान्तवान्तैर्मलिनयसि मुधा वक्त्रमश्रुप्रवाहैः । एषा प्रोद्वृत्तमत्तद्विपकटकषणक्षुण्णविन्ध्योपलानां दावाग्नेः सम्प्रवृद्धा मलिनयति दिशां मण्डलं धूमलेखा ॥ ४८ ॥ भानोः पादैर्दहनपरुषैर्दह्यमानान्तराणामुत्क्रामन्तः किल विटपिनां प्राणपिण्डा इवामी । गाढोदन्याकुलितमनसो भिन्नचञ्चूपुटान्ताः कोकूयन्ते विहगशिशवः कोटराणां मुखेषु ॥ ४९ ॥ भ्रमन्त्यः परितश्छायाः पततां भ्राम्यतां दिवि । बिभ्यन्ति घर्मतप्तोर्वीस्पर्शजातव्यथा इव ॥ ५० ॥ माकन्दद्रुममञ्जरीषु वसतिस्तत्पल्लवैर्वर्तनं सा नो मञ्जुलता वचःसु मधुना सर्वं सह प्रस्थितम् । एतत्तिष्ठतु दुःश्रवं मृदुहृदां निःस्वामिनस्तत्सखे प्रोन्मीलत्करुणो द्विजोऽयमिति हि त्वं ग्रीष्म मुष्णाहि नः ॥ ५१ ॥ मुखकृतबिसखण्डश्चण्डमार्तण्डतापात्सितजलजतलस्थो राजते राजहंसः । रजतघट

नवेलियोंके अधरके समान बार-बार जल पी रहे हैं ॥ ४१ ॥ वह ग्रीष्म ऋतु आ पहुँची है जो पच्छिमके मरुस्थलसे आती हुई लूसे त्रिभुवनकी नमी सुखा रही है, अग्निकी लपटोंसे बड़े-बड़े जङ्गलोंको जलाकर राख कर रही है, बवण्डर उठाकर घास-पत्तों और धूलको आकाशमें उड़ा रही है और छिछले तालाबोंमें पड़ी मछलियाँ जिसके कारण तड़फड़ा रही हैं ॥ ४२ ॥ हे प्रिये ! लो, यह गरमीका ऐसा समय आ गया जिसमें सूर्य तपने लगा है, चन्द्रमा सुहावना लगने लगा है, पानी देखकर यह इच्छा होने लगी है कि बस सदा इसीमें पड़ा रहा जाय, सन्ध्या बड़ी सुहावनी होने लगी हैं और कामका प्रभाव भी बहुत ढीला पड़ गया है ॥ ४३ ॥ गरमीमें सूखे हुए तालाबोंका फटा हुआ पेटा ऐसा लगता है मानो यह देखकर दुःखसे उसका हृदय फट गया हो कि 'पानीकी आशासे जो प्यासे लोग मेरे पास आए उनकी आशापर पानी फिर गया' ॥ ४४ ॥ हेमन्तमें जिस ठण्ढकने सारी धरतीपर चक्कर लगाया था, जिसने वसन्तमें वृक्षोंकी छायामें विश्राम किया था वही ठण्ढक अब गर्मीके दिनोंमें जब सूर्य बहुत तपने लगा तो धीरे-धीरे पानीमें जा घुसी ॥ ४५ ॥ जिस सेनामें आपसमें फूट होती है वह अत्यन्त शक्तिशाली होते हुए भी शत्रुको नहीं जीत सकती क्योंकि गर्मीके दिनोंमें जो सब ऋतुएँ आपसमें लड़ रही थीं वे ग्रीष्म ऋतुका बालतक न बाँका कर सकीं ॥ ४६ ॥ पवनसे भड़काई हुई और सेमरके वृक्षोंके कुञ्जोंमें फैली हुई आग वृक्षके खोखलोंमें अपना सुनहला पीला प्रकाश चमकाती हुई और उन ऊँचे वृक्षोंपर उछलती हुई वनमें चारों ओर घूम रही है जिनकी डालियोंके पत्ते बहुत गर्मी पड़नेसे पक-पककर झड़ते जा रहे हैं ॥ ४७ ॥ हे भोली-भाली ! जिसे तुम आकाशमें फैला हुई बादलोंकी घटा समझ रही हो वह घटा नहीं है इसलिये अपनी बरौनियोंसे बहते हुए आँसुओंसे तुम व्यर्थ क्यों अपना मुख मलिन कर रही हो, यह तो जङ्गलकी अत्यन्त प्रचण्ड आगके धुएँका अम्बार है जो उन दिशाओंको काला करता जा रहा है जिनमें अत्यन्त मतवाले हाथियोंके सिर खुजलानेसे विन्ध्याचलकी चट्टानें चूर हुई पड़ी हैं ॥ ४८ ॥ गर्मीके दिनोंमें आगके समान तपती हुई सूर्यकी किरणोंसे जिन पेड़ोंका भीतरी भाग भी झुलस गया था उनके मानो प्राण निकल-से रहे हैं और चिड़ियोंके बच्चे अत्यन्त प्याससे घबराकर अपनी चोंचें खोलकर खोखलोंके मुँहपर बैठे चूँ-चूँ कर रहे हैं ॥ ४९ ॥ धरतीपर बैठते तथा फिर उड़ते हुए पक्षियोंकी घूमती हुई छायाएँ देखकर जान पड़ता है मानो घामसे तपी पृथ्वीको छूते ही गर्मीके मारे ही वे पुनः उड़ जाते हों ॥ ५० ॥ कोकिल कह रही है—'आमके वृक्षोंकी मञ्जरियोंपर बसेरा, आमके पत्तोंके साथ उठना-बैठना और हमारी बोलीकी मिठास ये सारी बातें वसन्तके साथ-साथ चली गईं । अस्तु, दयालुओंके लिये असहनीय यह बात जाने दो किन्तु हे मित्र

इवायं विद्रुमावद्धधाराविवरविगलदम्बुः कम्बुकण्ठि प्रतीहि ॥ ५२ ॥ मूलं बालकवीरुधां सुरभयो जातीतरूणां त्वचः सारश्चन्दनशाखिनां किसलयान्याद्रीण्यशोकस्य च। शैरीषी कुसुमोन्नतिः परिणमन्मोचश्च सोऽयं गणो ग्रीष्मेणोष्महरः पुरा किल ददे दग्धाय पञ्चेषवे ॥ ५३ ॥ मृगाः प्रचण्डातपतापिता भृशं तृषा महत्या परिशुष्कतालवः। वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्य भिन्नाञ्जनसन्निभं नभः ॥ ५४ ॥ रजनिचरमयामेष्वादिशन्ती रतेच्छां क्रिमपि कठिनयन्ती नालिकेरीफलाम्भः। अपि परिणमयित्री राजरम्भाफलानां दिनपरिणतिभोग्या वर्तते ग्रीष्मलक्ष्मीः ॥५५॥ रवितुरङ्गतनूरुहतुल्यतां दधति यत्र शिरीषरजो रुचः। उपययौ विदधन्नवमल्लिकाः शुचिरसौ चिरसौरभसम्पदः ॥ ५६ ॥ रविप्रभोद्भिन्नशिरोमणिप्रभो विलोलजिह्वाद्वयलीढमारुतः। विषाग्निसूर्यातपतापितः फणी न हन्ति मण्डूककुलं तृषाकुलः ॥ ५७ ॥ रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः। अवाक्फणो जिह्मगतिः श्वसन्मुहुः फणी मयूरस्य तले निषीदति ॥ ५८ ॥ रवेस्समस्तक्षितिमध्यगं रसं निपीय पीनत्वमतीव बिभ्रतः। भरेण वाजिष्विव मन्दगामिषु क्रमेण दैर्घ्यं दिवसाः प्रपेदिरे ॥ ५९ ॥ रिक्तेषु वारिकथया विपिनोदरेषु मध्याह्नजृम्भितमहातपतापतप्ताः। स्कन्धान्तरोत्थितदवाग्निशिखाच्छलेन जिह्वां प्रसार्य तरवो जलमर्थयन्ते ॥ ६० ॥ रेजे पुष्पैर्ग्रीष्ममासाद्य मल्ली मल्लीं सद्यः संश्रयन्ते स्म भृङ्गाः। भृङ्गैस्तत्रारम्भि हर्षेण गानं गाने लौल्यं लेभिरे योगिनोऽपि ॥ ६१ ॥ वर्षत्यग्निकणानिवोष्णकिरणः काष्ठास्तु दावानलज्वालाजालजटालभूधरमिलद्धूम्यान्धकाराविलाः। वृक्षा जीर्णविशीर्णपर्णपटलाः शुष्यल्लतालिङ्गिता नद्यस्तप्तकरीन्द्रकेलिकलुषा ग्रीष्मे मरुन्नैर्ऋतः ॥ ६२ ॥ वहद्भ-

---

ग्रीष्म ! दया करके मुझे द्विज (पक्षी, ब्राह्मण) समझकर तुम मुझ अशरणको संसारसे विदा कर दो ॥ ५१ ॥ कोई राजहंस चोंचमें कमलनालका टुकड़ा लेकर श्वेत कमलके नीचे बैठा है जिसके ऊपर सूर्यकी प्रचण्ड किरणें पड़ रही हैं। उसे इस दशामें देखकर कोई अपनी प्रेयसीसे कह रहा है कि 'हे शङ्खके समान गलेवाली! ऐसा जान पड़ता है मानो वह कोई चाँदीका घड़ा हो जिसकी मूँगोंसे बनी टोंटीसे जल निकल रहा हो' ॥ ५२ ॥ कोमल लताओंकी जड़, चमेलीके सुगन्धित छिलके, चन्दनका रस, अशोककी नई-नई कोंपलें, सिरसके फूल और पका हुआ केला, ये सब गर्मी दूर करनेवाली वस्तुएँ ग्रीष्मने पहले ही जले हुए कामदेवको दे डाली थीं ॥ ५३ ॥ जलते हुए सूर्यकी किरणोंसे झुलसे हुए जिन जङ्गली पशुओंकी जीभ प्याससे बहुत सूख गई है वे धोखेमें उन जंगलोंकी ओर दौड़े जा रहे हैं जहाँके आँजनके समान नीले आकाशको ही वे पानी समझ बैठे हैं ॥ ५४ ॥ रात्रिके अन्तिम प्रहरमें सम्भोगकी इच्छा जगानेवाली, नारियलका जल सुखानेवाली, केलेके फलोंको पकानेवाली और संध्या समय सुख देनेवाली यह ग्रीष्मकी शोभा फैल रही है ॥ ५५ ॥ वह ग्रीष्म ऋतु आ गई जिसमें सिरसके फूलका पराग सूर्यके हरे घोड़ोंके बालोंके समान दिखाई पड़ता है और जिसमें नवमल्लिकाकी लता गहरी सुगन्धसे भर गई है ॥ ५६ ॥ जिस प्यासे साँपकी मणि सूर्यकी चमकसे और भी चमक उठी है वह अपनी लपलपाती हुई दोनों जीभोंसे पवन पीता जा रहा है और धूपकी लपटों और अपने विषकी झारसे जलनेके कारण मेढकोंको नहीं मार रहा है ॥ ५७ ॥ देखो, धूलसे अत्यधिक तपा हुआ और पैंड़ेकी गरम धूलसे झुलसा हुआ यह सर्प अपना मुँह नीचे छिपाकर बार-बार फुफकारता हुआ मोरकी छायामें कुण्डल मारे बैठा हुआ है पर मोर भी गर्मीके मारे उसे कुछ कह नहीं रहा है ॥ ५८ ॥ सारी पृथ्वीपर फैला हुआ सूर्यका रस (घाम) पी-पीकर दिन क्रमशः मोटे होते जाते हैं और उनका भार बढ़नेके कारण घोड़े क्रमशः धीरे-धीरे चलने लगे हैं ॥ ५९ ॥ जङ्गली तालाबोंमें जब पानीका नाम नहीं रह गया उस समय भरी दुपहरीमें प्रचण्ड धूपसे झुलसे हुए पेड़ मानो अपनी डालियोंकी रगड़से उठी हुई आगकी लपटोंके रूपमें जीभ निकाल-निकालकर पानी माँग रहे हैं ॥ ६० ॥ गर्मीके दिनोंमें बेलेकी लताएँ फूलोंसे खिल उठीं, फूलोंपर भौंरे आ बैठे, बैठकर वे मस्तीमें गुनगुनाने लगे और उनकी गुनगुनाहट सुनकर योगियोंका चित्त भी विचलित होने लगा ॥ ६१ ॥ गर्मीके इन दिनोंमें सूर्यकी धूप इतनी कड़ी है मानो वह अङ्गारे बरसा रहा हो, वनोंमें लगी आगकी लपटोंकी जटा पहने हुए पर्वतपर मँडराते हुए धुएँरूपी अँधेरेसे लकड़ियाँ भर गई हैं, वृक्षोंके सब पत्ते सूख-सूख कर झड़ गए हैं और उनमें सूखी-सूखी लताएँ लिपटी हैं, नदियाँ धूपसे तपे हुए हाथियोंके हिलोड़नेसे गँदली हो गई हैं और नैर्ऋत्य दिशासे राक्षसकी भाँति पवन बह रहा है

हलमारुतप्रसरदग्निखण्डैरिव स्फुरद्द्युमणिमण्डलद्युतिवितानकैस्तापिता। विसारि वपुरात्मनः सपदि वासरश्रीरियं चलन्मरुमरीचिकासिचयपल्लवेनावृणोति ॥ ६३ ॥ विकचनवकुसुम्भस्वच्छसिन्दूरभासा प्रबलपवनवेगोद्भूतवेगेन तूर्णम्। तटविटपलताग्रालिङ्गनव्याकुलेन दिशि दिशि परिदग्धा भूमयः पावकेन ॥ ६४ ॥ विवस्वता तीक्ष्णतरांशुमालिना सपङ्कतोयात्सरसोऽभितापितः। उत्प्लुत्य भेकस्तृषितस्य भोगिनः फणातपत्रस्य तले निषीदति ॥ ६५ ॥ विशन्तीनां स्नातुं जघनपरिवेषैर्मृगदृशां यदम्भः सम्प्राप्तं प्रमदवनवाप्यास्तटभुवम्। गभीरे तन्नाभीकुहरपरिणाहाध्वनि रसत्कुहुङ्कारस्फारं रचयति निनादं नयति च ॥ ६६ ॥ विशुष्ककण्ठोद्गतसीकराम्भसो गभस्तिभिर्भानुमतोऽनुतापिताः। प्रवृद्धतृष्णोपहता जलार्थिनो न दन्तिनः केसरिणोऽपि बिभ्यति ॥ ६७ ॥ विशुष्यत्तोयान्तश्शयितमहिषघ्राणकुहरं प्रतिश्यायक्लिन्नं विशति शफरस्तापविवशः। अनिच्छन्तो घर्मक्वथनपरुषं वारि सरितां लिहन्ति स्वाङ्गानि श्रमजलकणार्द्राणि हरिणाः ॥ ६८ ॥ श्वसिति विहगवर्गः शीर्णपर्णद्रुमस्थः कपिकुलमुपयाति क्लान्तमद्रेर्निकुञ्जम्। भ्रमति गवययूथः सर्वतस्तोयमिच्छञ्शरभकुलमजिह्मं प्रोद्धरत्यम्बु कूपात् ॥ ६९ ॥ सचन्दनाम्बुव्यजनोद्भवानिलैः सहारयष्टिस्तनमण्डलार्पणैः। सवल्लकीकाकलिगीतनिस्वनैर्विबोध्यते सुप्त इवाद्य मन्मथः ॥ ७० ॥ सञ्जातपत्रप्रकरान्वितानि समुद्वहन्ति स्फुटपाटलत्वम्। विकस्वराण्यर्ककराभिमर्शाद्दिनानि पद्मानि च वृद्धिमीयुः ॥ ७१ ॥ सफेनलालावृतवक्त्रसम्पुटं विनिःसृतालोहितजिह्वमुन्मुखम्। तृषाकुलं निःसृतमद्रिगह्वरादवेक्षमाणं महिषीकुलं जलम् ॥ ७२ ॥ सभद्रमुस्तं परिशुष्ककर्दमं सरः खनन्नायतपोत्रमण्डलैः। रवेर्मयूखैरभिता-

---

॥ ६२ ॥ चलते हुए वायुके कारण धधकते हुए अङ्गारेके समान चमकते हुए सूर्यमण्डलकी किरणोंसे तपी हुई यह दिनकी शोभा अपने विशाल शरीरको तपे हुए बालू-रूपी आँचलसे एकाएक ढके ले रही है ॥ ६३ ॥ पूरे खिले हुए नये कुसुम्भीके फूलके समान और स्वच्छ सिन्दूरके समान लाल-लाल चमकनेवाली, आँधीसे और भी धधक उठनेवाली और तीरपर खड़े हुए वृक्षों और लताओंकी फुनगियोंको चूमती जानेवाली जङ्गलकी आगसे जहाँ-तहाँ धरती झुलस गई है ॥ ६४ ॥ गँदले जलवाले पोखरेसे बाहर निकल-निकलकर धूपसे तपे हुए मेंढक, प्यासे साँपोंके फनकी छतरीके नीचे आ-आकर बैठ रहे हैं ॥ ६५ ॥ गर्मीके दिनोंमें पासके उपवनकी बावड़ीमें जब स्त्रियाँ स्नान करनेके लिये घुसीं तब उनके चौड़े-चौड़े जघनके धक्केसे पानी तटकी ओर जाने लगा और फिर बीचमें ही उनकी विशाल तथा गहरी नाभिमें उलटकर वह जल ढब-ढब करता हुआ आगे बढ़ रहा है ॥ ६६ ॥ जो हाथी धूप और प्याससे बेचैन होकर अपने सूखे मुँहसे झाग फेंकते हुए पानीकी खोजमें इधर-उधर घूम रहे हैं वे इस समय सिंहसे भी नहीं डर रहे हैं ॥ ६७ ॥ पानीके लिये तड़फड़ाती हुई शफरी (पोठी) मछली विवश होकर सूखे हुए जलाशयके कीचड़में सोए हुए भैंसेके कफसे भरे नथुनोंमें घुस रही है और हरिण भी कड़ी धूपसे तपे हुए काढ़ेके समान गरम नदियोंका जल न पीकर, दौड़कर थकनेसे बहे हुए पसीनेसे तर अपने अङ्गोंको ही चाटे डाल रहे हैं ॥ ६८ ॥ पत्रहीन वृक्षोंके ठूँठोंपर बैठी हुई सभी चिड़िएँ हाँफ रही हैं, उदास बन्दरोंके झुण्ड पहाड़की गुफाओंमें घुसे जा रहे हैं, पशुओंके झुण्ड चारों ओर पानीके लिये बिललाते घूम रहे हैं और आठ पैरोंवाले शरभोंका झुण्ड एक कुएँसे गटागट पानी पीता जा रहा है ॥ ६९ ॥ आजकल रमणियाँ अपने सोए हुए प्रेमियोंको चन्दनमें बसे हुए ठण्ढे जलसे भीगे हुए पङ्खोंकी ठण्ढी बयार झलकर या मोतियोंके हारोंकी लटकती हुई झालरोंसे सजे हुए अपने गोल-गोल स्तन उनकी छातीपर रखकर या वीणाके साथ अपने मीठे गलेसे गीत गा-गाकर ऐसे जगाती रहती हैं मानो कामदेवको जगा रही हों ॥ ७० ॥ गर्मीके जिन दिनोंमें पेड़ोंपर हरे-भरे पत्ते लद गए थे, गुलाबके फूल खिल गए थे और जो सूर्यकी किरणोंके कारण चमक रहे थे,एक ओर तो वे बड़े दिन होते चले जा रहे थे, उधर दूसरी ओर बहुत-सी पङ्खड़ियोंवाले, लाल रङ्गवाले और सूर्यकी किरणोंसे खिले हुए कमल भी ढेरके ढेर फूल उठे ॥ ७१ ॥ जुगाली करनेसे जिन भैंसोंके मुँहसे झाग निकल रही है और लार बह रही है वे अपना मुँह खोलकर अपनी लाल-लाल जीभें बाहर निकाले हुए प्यासके मारे मुँह उठाए पहाड़की गुफासे निकल-निकलकर जलकी ओर लपकी चली जा रही हैं ॥७२॥ धूपसे एकदम झुलसा हुआ यह जङ्गली सूअरोंका झुण्ड अपने लम्बे-लम्बे थूथनोंसे नागरमोथेसे भरे हुए बिना कीचड़वाले तालाबको खोदता हुआ ऐसा लगता है

पितो भृशं वराहयूथो विशतीव भूतलम् ॥ ७३ ॥ समुद्गतस्वेदशिताङ्गसन्धयो विमुच्य वासांसि गुरूणि साम्प्रतम्। स्तनेषु तन्वंशुकमुन्नतस्तना निवेशयन्ति प्रमदाः सयौवनाः ॥ ७४ ॥ समुद्धृताशेषमृणालजालकं विपन्नमीनं द्रुतभीतसारसम्। परस्परोत्पीडनसंहतैर्गजैः कृतं सरः सान्द्रविमर्दकर्दमम् ॥ ७५ ॥ सविभ्रमैः सस्मितजिह्मवीक्षितैर्विलासवत्यो मनांसि प्रवासिनाम्। अनङ्गसन्दीपनमाशु कुर्वते यथा प्रदोषाः शशिचारुभूषणाः ॥ ७६ ॥ सितेषु हर्म्येषु निशासु योषितां सुखप्रसुप्तानि मुखानि चन्द्रमाः। विलोक्य नूनं भृशमुत्सुकश्चिरं निशाक्षये याति ह्रियेव पाण्डुताम् ॥ ७७ ॥ सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः। प्रच्छायसुलभनिद्राः दिवसाः परिणामरमणीयाः ॥ ७८ ॥ सुवासितं हर्म्यतलं मनोहरं प्रियामुखोच्छ्वासविकम्पितं मधु। सुतन्त्रिगीतं मदनस्य दीपनं शुचौ निशीथेऽनुभवन्ति कामिनः ॥ ७९ ॥ स्कन्धान्सिन्धुरयूथगण्डकषणव्यासक्तदानोदकान्सेवन्ते मधुपा महीरुहशिरः पुष्पाणि हित्वा भृशम्। लीयन्ते वलभीकुलायकुहरे निस्पन्दमेते खगा जिह्वालीढवधूमुखो मृगगणश्छायासु विश्राम्यति ॥ ८० ॥ स्पृशति तिग्मरुचौ ककुभः करैर्दयितयेव विजृम्भिततापया। अतनुमानपरिग्रहया स्थितं रुचिरया चिरयायिदिनश्रिया ॥ ८१ ॥ स्फीतं शीतं गतं क्व क्व शिशिरकिरणः क्वास्ति हेमन्तमासः क्वैते पानीयपूर्णा मलिनजलधराः क्वाद्य विद्युत्प्रमोदः। इत्युच्चैर्जल्पमानैरिव मुखरमुखैर्भिल्लिदूतैरुपेतो वातौघश्चागतोऽसौ प्रकटितविजयस्तम्भचिह्नैर्निदाघः ॥ ८२ ॥ हरन्ति हृदयानि यच्छ्रवणशीतला वेणवो तदर्दति करम्बिता शिशिरवायुना वारुणी। भवन्ति च हिमोपमाः स्तनभवो यदेणीदृशो रुचेरुपरि संस्थितो रतिपतेः प्रसादो गुरुः ॥ ८३ ॥

मानो धरतीमें घुसा जा रहा हो ॥ ७३ ॥ ऊँचे-ऊँचे स्तनोंवाली जिन युवतियोंके अङ्गोंके जोड़-जोड़से गर्मीके मारे पसीना छूटा करता है वे इस गर्मीमें अपने मोटे-मोटे वस्त्र उतारकर पतले-पतले वस्त्र पहनने लगी हैं ॥ ७४ ॥ यह देखो, यहाँपर हाथियोंने इकट्ठे होकर आपसमें लड़-भिड़कर इस तालके सब कमल उखाड़ डाले, मछलियाँ रौंद डालीं और सब सारसोंको डराकर भगा दिया है ॥ ७५ ॥ चन्द्रमाके समान उजले चन्द्रहार आदि आभूषणोंसे सजकर बड़ी प्यारी लगनेवाली सुन्दरियाँ बड़ी चटक-मटक और मुस्कराहटके साथ अपनी चितवन चलाकर परदेसियोंके मनमें झटसे उसी प्रकार काम जगा रही हैं जैसे चमकते हुए चन्द्रमावाली सन्ध्या ॥ ७६ ॥ रातके समय उजले भवनमें सुखसे सोई हुई युवतीका मुख निहारनेको उतावला रहनेवाला चन्द्रमा जब बहुत देरतक उनका मुँह देख चुकता है तो मानो लाजके मारे ही वह रातके पिछले पहरमें उदास हो जाता है ॥ ७७ ॥ गर्मीके दिनोंकी साँझें बड़ी सुहावनी दिखाई देती हैं क्योंकि उस समय जलमें बैठे रहना बड़ा भला लगता है, वनके पवन गुलाबसे मिलकर सुगन्धित हो जाते हैं और छायामें पड़ते ही नींद आ जाती है ॥ ७८ ॥ प्रेमी लोग भी इन दिनों आधी रातके समय ऐसी-ऐसी कामको उभारनेवाली वस्तुओंका आनन्द लेते हैं जैसे सुन्दर सुगन्धित जलसे धुला हुआ भवनका तल, प्यारीके मुँहकी भापसे उफनती हुई मदिरा और सुन्दर वीणाके साथ गाए हुए गीत ॥ ७९ ॥ भौंरे ऊपरके फूलोंको छोड़कर पेड़के उन मोटे तनोंपर जा बैठे हैं जिनपर हाथियोंका सिर रगड़नेसे मदजल लिपट गया है, उधर पक्षी भी घरोंके ऊपर बने हुए घोंसलोंमें चुपचाप जाकर घुस रहे हैं और हरिण भी अपनी जीभसे हरिणीका मुख चाटते हुए छायामें विश्राम कर रहे हैं ॥ ८० ॥ जैसे अपने पतिको किसी अन्य स्त्रीका स्पर्श करते देखकर कोई स्त्री दुखी होती है वैसे ही जब सूर्य भी दिशारूपी नायिकाओंका स्पर्श करने लगा तब दिनकी शोभारूपी उसकी सुन्दर पत्नी मानो प्रबल क्रोधमें आकर अत्यन्त जलने लगी और उसीसे इतनी गर्मी हो गई ॥ ८१ ॥ यह ग्रीष्मका समय अपने उन पवनरूपी भील-दूतोंके साथ आ पहुँचा जो उड़ते हुए तिनकों और धूलके विजयस्तम्भका चिह्न लिए हुए थे और जो हरहराकर मानो ऊँचे स्वरसे ललकार रहे थे कि 'कहाँ गया वह बढ़ा हुआ शीत ? कहाँ गया चन्द्रमा ? कहाँ गए हेमन्तके दिन ? कहाँ गए जलसे भरे हुए काले-काले बादल और कहाँ गई वह बिजलीकी तड़प !' ॥ ८२ ॥ गर्मीके दिनोंमें यदि मन हरनेवाली और कानोंकी भली लगनेवाली वंशीकी तान सुनाई पड़ जाय, शीतल पवनसे मिली हुई मदिरा मिल जाय, मृगनयनीके पालेके समान शीतल स्तन मिल जायँ तो यही कहेंगे कि कामदेवने हमारी इच्छासे कहीं अधिक कृपा कर दी है ॥ ८३ ॥ हवनकी अग्निके समान जलते हुए सूर्यकी किरणोंसे जिन मोरोंके तन और

हुताग्निकल्पैः सवितुर्गभस्तिभिः कलापिनः क्लान्तशरीरचेतसः। न भोगिनं घ्नन्ति समीपवर्तिनं कलापचक्रेषु निवेशिताननम् ॥ ८४ ॥

मध्याह्नवर्णनम्—आदौ मानपरिग्रहेण गुरुणा दूरं समुत्सारितां पश्चात्तापभरेण तामतिकृशां नीतां परं लाघवम्। उत्सङ्गान्तरवर्तिनीमनुगतां सम्पीडिताङ्गीमिमां सर्वाङ्गप्रणयप्रियामिव तरुश्छायां समालम्बते ॥ १ ॥ उद्दामद्युमणिद्युतिव्यतिकरप्रक्रीडदर्कोपलज्वालाजालजटालजाङ्गलतटीनिष्कूजकोयष्टयः। भौमोष्मप्लवमानसूर्यकिरणाः क्रूरप्रकाशा दृशामायुःकर्म समापयन्ति धिगमूर्मध्याह्नशून्या दिशः ॥ २ ॥ किरति मिहिरे विष्वद्रीचः करानतिवामनी स्थलकमठवद्देहच्छाया जनस्य विचेष्टते। गजपतिमुखोद्गीर्णैराप्यैरथ त्रसरेणुभिः शिशिरमधुरामेणाः कच्छस्थलीमधिशेरते ॥ ३ ॥ छाया संश्रयते तलं विटपिनां श्रान्तेव पान्थैः समं मूलं याति सरो जलस्य जडता ग्लानेव मीनैः सह। आचामत्यहिमांशुदीधितिरपस्तप्तेव लोकैः समं निद्रा गर्भगृहं सह प्रविशति क्लान्तेव कान्ताजनैः ॥ ४ ॥ दुःसहसन्तापभयात्सम्प्रति मध्यस्थिते दिवसनाथे। छायामिव वाञ्छन्ती छायापि गता तरुतलानि ॥ ५ ॥ धत्ते पद्मलतादलेप्सुरुपरि स्वं कर्णतालं द्विपः शष्पस्तम्बरसाच्चियच्छति शिखी मध्येशिखण्डं शिरः। मिथ्या लेढि मृणालकोटिरभसाद्दंष्ट्राङ्कुरं शूकरो मध्याह्ने महिषश्च वाञ्छति निजच्छायामहाकर्दमम् ॥ ६ ॥ मध्याह्ने चलतालवृन्तमनिलः सर्वात्मना सेवते वारि स्वेदमिषेण शीतलवधूवक्षोजमालम्बते। निद्रा नेत्रमुपैति पक्ष्मयुगलच्छायाश्रिता दैहिकी पान्थानामथ पादयोर्निपतति छायापि मा यान्त्विति ॥ ७ ॥ मध्याह्ने नूनमापोऽपि तिग्मतापोपशान्तये। दधुः कमलिनीपत्रमानपत्रमिवोपरि ॥ ८ ॥ मध्याह्ने हरितो हुताशनमुचः कामोऽपि वामभ्रुवां पाटीरद्रवचर्चितां स्तनतटीमध्यास्य निद्रायते। एणाः केसरिणोऽपि केसरसटो-

---

मन दोनों सुस्त पड़ गए हैं, वे अपने पास कुण्डल मारकर बैठे हुए साँपोंको भी नहीं मारते वरन् उल्टे धूपसे अपना मुँह बचानेके लिये अपना गला उनकी पूँछकी कुण्डलमें डाले चुपचाप पड़े हुए हैं ॥ ८४ ॥

ग्रीष्मकी दुपहरी : गर्मीके दिनोंमें दोपहरके समय वृक्षके नीचे उससे सटी हुई छाया देखकर ऐसा जान पड़ता है कि वृक्षने मानके कारण जिसे पहले अपनेसे दूर कर दिया था और जिससे वह पछताती हुई दुबली पड़ गई थी उसी छायाने अब मान छोड़ दिया हो और वृक्ष भी अब उस प्राणप्यारीको गोदमें बैठाकर मानो उसे कसकर छातीसे लगा रहा हो ॥ १ ॥ गर्मीमें दोपहरके समय सूनी-सूनी दिशाएँ आँखें चौंधिया रही हैं और प्राण सुखाए डाल रही हैं, प्रचण्ड सूर्यके तापके कारण सूर्यकान्तमणिसे लपटें निकल रही हैं, तपे हुए जङ्गलमें टिटिहिरियाँ गर्मीके मारे चिल्ला रही हैं और सूर्यकी किरणें मानों धरतीकी गर्मीमें तैर-सी रही हैं ॥ २ ॥ गर्मीकी दुपहरीमें चारों ओर सूर्यकी किरणें फैल रही हैं, लोगोंके शरीरकी नन्हीं-सी परछाईं धरतीपर बैठे हुए कछुएके समान हिल रही है और जलके पासकी जो घासें हाथीकी सूँड़से छिड़की हुई पानीकी फुहारोंसे ठण्डी और मीठी हो गई हैं उनपर हरिण नींद ले रहे हैं ॥ ३ ॥ गर्मीकी दुपहरीमें पेड़ोंकी छाया भी मानो थककर यात्रियोंके साथ-साथ पेड़ोंके तले आ बैठी है, तालाबके जलकी ठण्डक भी मानो मछलियोंके साथ-साथ दुखी होकर नीचे गहरे पानीमें चली गई है, सूर्यकी किरणें भी तपे हुए लोगोंके साथ-साथ पानी पी रही हैं और नींद भी आलसमें भरकर स्त्रियोंके साथ मानो घरके भीतर चली जा रही है ॥ ४ ॥ गर्मीकी दुपहरीमें जब सूर्य ठीक सिरपर आ गए हैं उस समय छाया भी मानो असह्य गर्मीके डरसे ही पेड़ों के नीचे आ बैठी है ॥ ५ ॥ दोपहरके समय हाथी अपने कानोंको कमलका पत्ता समझकर छायाके लिये ऊपरको उठाए हुए हैं, मोर अपनी पूँछको ही घास समझकर उसमें अपना सिर धँसाए डाल रहा है, जंगली सुअर अपने दाँतोंको ही कमलकी जड़ समझकर चाटे जा रहा है और भैंसा अपनी परछाईंको ही कीचड़ समझकर उसमें लोटा जा रहा है ॥ ६ ॥ गर्मीकी दुपहरीमें वायुने पूर्ण रूपसे पङ्खेका ही सहारा ले लिया, जलने भी बहते हुए पसीनेके रूपमें स्त्रियोंके ठण्डे स्तनोंका सहारा ले लिया, नींद भी बरौनियोंकी छाया देखकर आँखोंके पास आ पहुँची है और यात्रियोंकी परछाईं भी उन्हें घर से निकलनेको रोकनेके लिये ही मानो उनके पैर पकड़े पड़ी है ॥ ७ ॥ गर्मीकी दुपहरीमें सूर्यकी भयङ्कर गर्मीसे बचनेके लिये ही मानो जलने अपने ऊपर कमलके पत्तेका छाता लगा लिया है ॥ ८ ॥ गर्मीकी दुपहरीमें चारों ओरसे आग बरस रही है, स्त्रियोंके चन्दन पुते हुए स्तनोंपर कामदेव भी नींद ले रहा है, हरिण भी सिंहके अयालकी

पान्तश्रिताः शेरते छायामङ्कगतां न मुञ्चति तरुर्वोढा नवोढामिव ॥ ६ ॥ सर्पत्सारिणि वारिशीतलतले विन्यस्तपुष्पोत्करे नीरन्ध्रे कदलीवने गुरुदलच्छायाहताव त्विषि। कर्पूरागरुपङ्कपिच्छिलघनोत्तुङ्गस्तनालिङ्गिभिः कान्ताकेलिरतैरहो सुकृतिभिर्मध्यन्दिनन्नीयते ॥ १० ॥ सौहित्यस्तिमितैरुदञ्चदलसग्रीवाभिरामं मुहुर्मध्याह्ने स्फुरदर्ककर्कशरुचिप्रान्तस्थलीवर्तिभिः। दत्ताः सिन्धुषु माहिषैः क्रमकृशस्रोतस्सु पङ्कोदरे निद्रामीलितपक्ष्मपद्धतिपरिव्यक्तारुणाः दृष्टयः ॥ ११ ॥ स्वे स्वे कर्मणि सन्नियोज्य सुहृदो भूमीसुरान्मन्त्रिणश्चक्रे निर्भयमारचय्य भगवान्सम्प्राप्तरागोदयः। स्वालोकच्छलकान्दिशीकमधुनोत्खातं विचिन्वन्निव ध्वान्तं क्वापि निलीनमम्बरमणिर्व्योमाग्रमारोहति ॥ १२ ॥

जलक्रीडा—अञ्जलौ जलमधीरलोचना लोचनप्रतिशरीरलाञ्छितम्। आत्तमात्तमपि कान्तमुक्षितुं कातरा शफरशङ्किनी जहौ ॥१॥ अथ स्फुरन्मीनविधूतपङ्कजा विपङ्कतीरस्खलितोर्मिसंहतिः। पयोऽवगाढुं कलहंसनादिनी समाजुहावेव वधूः सुरापगा ॥ २ ॥ अन्यूनं गुणममृतस्य धारयन्ती सम्फुल्लस्फुरितसरोरुहावतंसा। प्रेयोभिः सह सरसी निषेव्यमाणा रक्तत्वं व्यधित वधूदृशां सुरेव ॥ ३ ॥ अमी शिरीषप्रसवावतंसाः प्रभ्रंशिनो वारिविहारिणीनाम्। पारिप्लवाः स्रोतसि निम्नगायाः शैवाललोलाँश्छलयन्ति मीनान् ॥ ४ ॥ अविरलमिदमम्भः स्वेच्छयोच्छालयन्त्या विकचकमलशोभोत्तानहस्तद्वयेन। परिकलित इवार्घः कामबाणातिथिभ्यः सलिलमिव वितीर्णं बाललीलासुखेभ्यः ॥ ५ ॥ असंशयं न्यस्तमुपान्तरक्ततां यदेव रोद्धुं रमणीभिरञ्जनम्। हृतेऽपि तस्मिन्सलिलेन शुक्लतां निरास रागो नयनेषु न श्रियम् ॥ ६ ॥ आरूढः पतित इति स्वसम्भवोऽपि स्वच्छानां परि-

---

ओट लेकर नींद ले रहे हैं और नई ब्याही नवेलीके दूल्हेके समान वृक्ष भी अपनी छाया नहीं छोड़ रहे हैं ॥ ६ ॥ गर्मीके दिनोंमें पुण्यवान् लोग पानी सींचकर ठण्डे किए हुए फूल बिखेरकर, बिना झरोखोंवाले केलेके वनमें बने पत्तोंकी साफ़-सुथरी छायामें, अपनी प्रियतमाओंके कपूर और अगरके लेपसे सजे हुए ऊँचे तथा मोटे स्तनोंका आलिङ्गन करके रतिक्रीड़ाका आनन्द लेते हुए दुपहरी बिताते हैं ॥ १० ॥ दुपहरीके समय चिलचिलाती हुई धूपवाले मैदानोंमें सन्तोपके साथ स्थिर खड़े तथा ऊँघते हुए भैंसे आलससे सिर घुमाकर धीरे-धीरे सूखे हुए सोतोंवाले तालाबोंके कीचड़की ओर बार-बार अपनी अधखुली लाल-लाल आँखें दौड़ा रहे हैं ॥ ११ ॥ भगवान् सूर्यने पहले अपने मित्र कमलोंको खिलाया (विकसित किया) फिर मन्त्र पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको अपने काममें लगाया अर्थात् वे पूजा-पाठमें जुट गए, फिर देशसे अन्धकार भगाया और अब अधिक राग (लालिमा, क्रोध) से युक्त होकर भागे हुए, उखाड़े हुए और इधर-उधर छिपे हुए अँधेरेको ढूँढ़नेके लिये ही मानो वे आकाशके बीचमें रथ लेकर आ पहुँचे हैं ॥ १२ ॥

जलक्रीड़ा : कोई चञ्चल आँखोंवाली नवेली पतिपर उछालनेके लिये बार-बार अपनी अञ्जलिमें पानी उठा रही थी किन्तु उसमें पड़ी हुई अपनी आँखोंकी परछाईंको मछली समझ-समझकर डरकर गिरा देती थी ॥१॥ मछलियोंकी चपेटसे पानीमें कमल हिल रहे थे, उससे उठी हुई लहरें सूखे तीरपर टकरा-टकराकर लौट रही थीं और हंसोंका रुन-झुनका कूजन सुनाई दे रहा था जिसे सुनकर ऐसा जान पड़ता था मानो नदी अपने जलमें प्रवेश करनेके लिये स्त्रियोंको बुला रही हो ॥ २ ॥ जिस तालाबमें स्त्रियाँ अपने पतियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रही थीं उस तालाबने उन स्त्रियोंकी आँखें ऐसी लाल कर दीं मानो वे मदिरा पीकर आई हों क्योंकि मदिरामें अमृतका गुण होता है और खिले हुए कमलोंका सत डाला जाता है इसी प्रकार तालाबमें भी स्वच्छ जल होता है और कमल खिले हुए होते हैं ॥ ३ ॥ जलक्रीड़ा करनेवाली स्त्रियोंके कानोंपर सजे हुए शिरीषके जो फूल नदीकी धारामें गिरकर तैरने लगे उन्हें मछलियाँ सेवारके धोखेमें खींच ले जाना चाहती हैं ॥ ४ ॥ खिले हुए कमलके समान सुन्दर अपने दोनों हाथ फैलाकर बिना रोक-टोकके निरन्तर जल उछालती हुई नायिका ऐसी जान पड़ती है मानो बालक्रीड़ा करनेवाले (चञ्चल) कामदेवके बाणरूपी अतिथिको जलका अर्घ्य दे रही हो ॥ ५ ॥ आँखोंकी लाली रोक रखनेके लिये स्त्रियोंने जो आँजन आँखोंमें लगा लिया था उसके धुल जानेपर भी वह लाली बनी रही, जिससे आँखोंका उजलापन तो जाता रहा पर सुन्दरता न मिट पाई ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके कानोंसे गिरे हुए नीले कमलको लहरोंने तीरकी ओर उछालकर यह सङ्केत किया कि यदि अपना पुत्र भी नीचे गिर पड़े तो सज्जनोंको चाहिए कि उसे

हरणीयतामुपैति । कर्णेभ्यश्च्युतमसितोत्पलं वधूनां वीचीभिस्तटमनु यन्निरासुरापः ॥ ७ ॥ आवर्तशोभा नतनाभिकान्तेर्भङ्ग्यो भ्रुवां द्वन्द्वचराः स्तनानाम् । जातानि रूपावयवोपमानान्यदूरवर्तीनि विलासिनीनाम् ॥ ८ ॥ आसां जलास्फालनतत्पराणां मुक्ताफलस्पर्धिषु शीकरेषु । पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाणः सँल्लक्ष्यते न च्छिदुरोऽपि हारः ॥ ९ ॥ आस्माकी युवतिदृशामसौ तनोति च्छायैव श्रियमनपायिनीं किमेभिः । मत्वैवं स्वगुणपिधानसाभ्यसूयैः पानीयैरिति विदधाविरेऽञ्जनानि ॥१०॥ उदस्य धैर्यं दयितेन सादरं प्रसादितायाः करवारिवारितम् । मुखं निमीलन्नयनं नतभ्रुवः श्रियं सपत्नीवदनादिवाददे ॥ ११ ॥ उद्बन्धकेशश्च्युतपत्रलेखो विश्लेषिमुक्ताफलपत्रवेष्टः । मनोज्ञ एव प्रमदामुखानामम्भोविहाराकुलितोऽपि वेषः ॥ १२ ॥ उन्मृष्टपत्राः कलितालकान्ताः कण्ठेषु लग्ना जघनं स्पृशन्तः । स्तनस्थलेष्वाहतिमादधाना गता वधूनां प्रियतां जलौघाः ॥ १३ ॥ एतस्याः करिकुम्भसन्निभकुचप्राग्भारपृष्ठे लुठद्गुञ्जागर्भगजेन्द्रमौक्तिकसरश्रेणीमनोहारिणी । दूरादेत्य तरङ्ग एष पतितो वेगाद्विलीनः कथं को वान्योऽपि विलीयते न सरसः सीमन्तिनीसङ्गमे ॥ १४ ॥ एताः करोत्पीडितवारिधारा दर्पात्सखीभिर्वदनेषु सिक्ताः । वक्रेतराग्रैरलकैस्तरुण्यश्चूर्णारुणान्वारिलवान्वहन्ति ॥ १५ ॥ एता गुरुश्रोणिपयोधरत्वादात्मानमुद्वोढुमशक्नुवत्यः । गाढाङ्गदैर्बाहुभिरप्सु बालाः क्लेशोत्तरं रागवशात्प्लवन्ते ॥ १६ ॥ करौ धुनाना नवपल्लवाकृती पयस्यगाधे किल जातसम्भ्रमा । सखीषु निर्वाच्यमधार्ष्ट्यदूषितं प्रियाङ्गसंश्लेषमवाप मानिनी ॥ १७ ॥ कस्याश्चिन्मुखमनु धौतपङ्क-

---

अपने पाससे हटा दें ॥ ७ ॥ जलक्रीड़ा करनेवाली स्त्रियोंके अङ्गोंके समान वस्तुएँ वहीं आस-पास दिखाई दे रही थीं क्योंकि जलमें पड़ी हुई भँवर उनकी गहरी नाभिके समान थी, लहरें भौहोंके समान और चकवी-चकवे स्तनोंके समान थे ॥ ८ ॥ जलक्रीड़ा करती हुई स्त्रियाँ जब हाथसे पानी थपथपाने लगीं और मोतीके समान जलकी बूँदें उनके स्तनोंपर उछलने लगीं तो उनके हार टूटकर बिखर गए पर उन पानीकी बूँदोंके धोखेमें हारका टूटना और मोतियोंका बिखरना किसीको दिखाई न पड़ा ॥ ९ ॥ अपनेसे उपजाई हुई निर्मलताको दबानेवाले आँजनसे डाह करके ही मानो जलने जलक्रीड़ा करनेवाली नवेलियोंकी आँखोंमें लगे हुए आँजनको यह समझकर धो डाला कि जब हमारी दी हुई शोभासे ही स्त्रियोंकी आँखोंमें सुन्दरता भरी हुई है तब आँजनकी आवश्यकता ही क्या है ॥ १० ॥ रूठी हुई प्रियतमाको देखकर प्रियतमाका धीरज छूट गया और उसने बड़े आदरके साथ अपने हाथोंसे प्रियतमाके मुखपर पानी उछालकर उसे प्रसन्न कर लिया, उस समय पानीके छींटे पड़नेसे उसकी आँखें मुँदी जा रही थीं अतः बाँकी भौंहोंवाली उस सुन्दरीका मुख सहसा ऐसा सुन्दर जान पड़ा मानो सौतोंके मुखोंकी सारी सुन्दरता उसके ही मुखपर आ छाई हो ॥ ११ ॥ जलक्रीड़ा करते समय स्त्रियोंके जूड़े खुल जानेसे उनमें गुथे हुए फूल-पत्ते नीचे बिखर गए और मोती अलग जा गिरे इस प्रकार उनका वेश तो पहले-सा नहीं रह गया फिर भी उनका मुख ज्योंका त्यों सुन्दर बना रहा ॥ १२ ॥ जलक्रीड़ा करते समय जलके प्रवाह भी स्त्रियोंके प्रिय (पति) बन गए क्योंकि उन्होंने स्त्रियोंके शरीरको रगड़कर उसपर बने हुए बेल-बूटे धो दिए, उनकी लटकती हुई चोटियाँ थाम लीं, उनके गलेसे लिपट गए, उनके जघन-भागको छू दिया और स्तन भी थपथपा दिए ॥ १३ ॥ जलक्रीड़ा करते समय स्त्रियोंकी छातीपर हाथीके मस्तकके समान उठे हुए तथा घुँघचीके रङ्गकी गजमुक्ताओंकी हिलती हुई मालासे सजे हुए बड़े-बड़े स्तनोंपर एक लहर दूरसे आकर उनसे टकरा कर तत्काल बिखर गई । ठीक ही है, कौन ऐसा रसिक है जो सजी-बजी नवेलीका समागम पाकर अपनेको उसपर न्यौछावर न कर दे ॥ १४ ॥ जलक्रीड़ा करते समय नवेलियाँ हाथसे पानी उछाल-उछालकर बड़े गर्वके साथ अपनी जिन सखियोंके मुखपर फेंक रही हैं उनकी भीगी और सीधी लटकी हुई चोटीके बालोंमें लगे हुए लाल-लाल चूर्णसे मिलकर जलकी बूँदें लाल-लाल होकर टपक रही हैं ॥ १५ ॥ जो लड़कियाँ बड़े-बड़े नितम्ब और स्तनोंके कारण चल-फिर भी नहीं सकती थीं वे तैरनेके चावसे अपनी भुजबन्दसे कसी हुई बाँहें बड़ी कठिनाईसे फेंक-फेंककर पानीमें तैर रही हैं ॥ १६ ॥ एक रूठी हुई नवेली गहरे पानीमें घुसकर ऐसे हाथ हिलाने लगी मानो घबरा गई हो और वह झट अपने पतिके शरीरसे ऐसे लिपट गई मानो डूबनेके डरसे उसे पकड़ लिया हो । ऐसी दशामें न तो सखियोंके बीच उसकी हँसी ही उड़ाई गई कि यह रूठने चली थी और न ढिठाईका ही दोष लगा कि यह

लेखं व्यातेने सलिलभरावलम्बिनीभिः। किञ्जल्कव्यतिकरपिञ्जरान्तराभिश्चित्रश्रीरलमलकाग्रवल्लरीभिः ॥ १८ ॥ किं तावत्सरसि सरोजमेतदारादाहोस्विन्मुखमवभासते तरुण्याः। संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय कश्चिद्विब्बोकैर्बकसहवासिनां परोक्षैः ॥ १९ ॥ गतैः सहावैः कलहंसविक्रमं कलत्रभारैः पुलिनं नितम्बिभिः। मुखैः सरोजानि च दीर्घलोचनैस्सुरस्त्रियस्साम्यगुणान्निरासिरे ॥ २० ॥ जलविलुलितवस्त्रव्यक्तनिम्नोन्नताभिः परिगततटभूमिस्नानमात्रोत्थिताभिः। कनकरुचिरकुम्भश्रीमदाभोगतुङ्गस्तनविनिहितहस्तस्वस्तिकाभिर्वधूभिः ॥ २१ ॥ तथा न पूर्वं कृतभूषणादरः प्रियानुरागेण विलासिनीजनः। यथा जलार्द्रो नखमण्डनश्रिया ददाह दृष्टीश्च विपक्षयोषिताम् ॥ २२ ॥ तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलैरपां विगाहादलकैः प्रसारिभिः। ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः ॥ २३ ॥ तीरस्थलीबर्हिभिरुत्कलापैः प्रस्निग्धकेकैरभिनन्द्यमानम्। श्रोत्रेषु सम्मूर्च्छति रक्तमासां गीतानुगं वारिमृदङ्गवाद्यम् ॥ २४ ॥ दन्तानामधरमयावकं पदानि प्रत्यग्रास्तनुमविलेपनां नखाङ्काः। आनिन्युः श्रियमधितोयमङ्गनानां शोभायै विपदि सदाश्रिता भवन्ति ॥ २५ ॥ द्युतिं वहन्तो वनितावतंसका हृताः प्रलोभादिव वेगिभिर्जलैः। उपप्लुतास्तत्क्षणशोचनीयतां च्युताधिकाराः सचिवा इवाययुः ॥ २६ ॥ नारीभिर्गुरुजघनस्थलाहतानामास्यश्रीविजितविकासिवारिजानाम्। लोलत्वादपहरतां तदङ्गरागं सञ्जज्ञे सकलुष आशयो जलानाम् ॥ २७ ॥ निजप्रियमुखभ्रान्त्या हर्षेणाचुम्बदम्बुजम्। दष्टाधरा तु भृङ्गेण सीत्कारमकरोन्मृदु ॥ २८ ॥ निमीलदाकेकर-

---

सबके सामने अपने पतिसे लिपट गई ॥ १७ ॥ जलक्रीड़ाके समय किसी नवेलीके मुखपर चीती हुई चित्रकारी तो धुल गई पर पानीके बोझसे सीधी लटकी हुई और फूलका केशर लगनेसे पीली बनी हुई चोटीसे उसके मुखकी शोभा और भी बढ़ आई ॥१८॥ कमलसे भरे हुए जलाशयमें नहाती हुई नवेलीका मुख देखकर किसीको यह सन्देह हुआ कि यह कमल है या किसी नवेलीका मुख, पर जब उसने देखा कि बगुलेके साथ रहनेवाले कमलमें यह शोभा कहाँ आ सकती है तब उसकी समझमें आया कि यह सचमुच नवेलीका मुख ही है ॥ १९ ॥ नदीमें स्नान करनेवाली नवेलियोंने अपनी चटक-मटक-भरी चालसे हंसोंकी चालको, अपने भारी फैले हुए नितम्बसे नदीके तटको और अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंवाले मुखसे कमलोंको हरा कर दिखा दिया कि तुम हमारी क्या बराबरी करोगे ॥ २० ॥ स्नान करनेके पश्चात् जिन नवेलियोंके जलसे भीगे हुए वस्त्र शरीरमें लिपट जानेसे उनके सब ऊँचे-नीचे भाग स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं वे सोनेके सुन्दर घड़ेके समान अपने सुन्दर तथा ऊँचे स्तनोंको दोनों भुजाओंसे स्वस्तिक बनाकर ढकती हुई तटकी ओर चली आ रही हैं ॥ २१ ॥ पतिके प्रेमके कारण गहनोंसे लदी हुई नवेलियोंको देखकर उनकी सौतोंको उतना दुःख नहीं होता था जितना कि नहानेपर दिखाई देनेवाले नखके चिह्न उनकी आँखोंमें खटकते थे ॥ २२ ॥ जलमें डुबकी लगानेसे स्त्रियोंके बिखरे हुए बालोंसे ढका हुआ उनका मुख ऐसा जान पड़ा मानो भौंरोंसे घिरा हुआ कमल हो ॥ २३ ॥ जलक्रीड़ा करते समय गाती हुई स्त्रियोंकी तानसे ताल मिलाकर बोलता हुआ जलका मृदङ्ग-जैसा शब्द इतना भला जान पड़ता है कि तीरपर बैठकर मधुर बोली बोलनेवाले मोर पङ्ख उठा-उठाकर उसका अभिनन्दन कर रहे हैं ॥२४॥ मद्य पीनेवाली स्त्रियोंके ओठोंकी मदकी लाली तो जल-क्रीड़ासे छूट गई पर दाँतोंके चिह्नोंसे ही वे सुन्दर दिखाई देने लगे। इसी प्रकार शरीरपर पुता हुआ चन्दन तो छूट गया पर नखोंके चिह्नोंसे उनकी शोभा बनी ही रही। ठीक ही है, सज्जनोंके सहारे रहनेवाले लोगोंकी शोभा विपत्तिमें भी बनी रहती है ॥ २५ ॥ जलक्रीड़ाके समय उछलते हुए जलने मानो लोभसे स्त्रियोंके कानपर रक्खे हुए जो फूल खींच लिए वे पानीपर तैरते हुए उस मन्त्रीके समान दयनीय दिखाई देने लगे जो अपने अधिकारसे गिरा दिया गया हो ॥ २६ ॥ जो जल स्त्रियोंके चौड़े जघनसे टकरा रहे थे, जिसमें खिले हुए कमल नवेलियोंके मुखकी शोभासे हार खा रहे थे और जो अपनी चञ्चलतासे स्त्रियोंके शरीरपर लगे हुए केसरके रङ्गमें रँगे जा रहे थे, ऐसे जलों (जड़ों, मूर्खों) का आशय (स्थान, मन) अर्थात् जलाशय, कलुष (चञ्चल, काला) हो गया ॥ २७ ॥ जलक्रीड़ाके समय एक नायिका कमलको अपने प्रियका मुख जानकर जब प्रसन्नतासे चूमने लगी और उसमें बैठे हुए भौंरेने उसका ओठ काट लिया तब वह उसे अपने प्रियका दन्तक्षत समझकर ही धीरे-धीरे सी-सी करने लगी ॥ २८ ॥ जलमें अपने पतिके साथ डुबकी लगा-लगाकर

लोलचक्षुषां प्रियोपकण्ठं कृतगात्रवेपथुः। निमज्जतीनां श्वसितोद्धतस्तनः श्रमो नु तासां मदनो नु पप्रथे ॥ २९ ॥ निम्ननाभिकुहरेषु यदम्भः प्लावितं चलदृशां लहरीभिः। तद्भवैः कुहुरुतैः सुरनार्यः स्मारिताः सुरतकण्ठरुतानाम् ॥ ३० ॥ निरञ्जने साचिविलोकितं दृशावयावकं वेपथुरोष्ठपल्लवम्। नतभ्रुवो मण्डयति स्म विग्रहे बलिक्रिया चातिलकं तदास्पदम् ॥ ३१ ॥ निरीक्ष्य वेणीप्रतिबिम्बमेणीदृशो भुजङ्गभ्रममावहन्त्यः। पतद्दुकूलं धुतबाहुमूलं झम्पाप्रकम्पाकुलिताः प्रचेलुः ॥ ३२ ॥ निर्धौते सति हरिचन्दने जलौघैरापाण्डोर्गतपरभागयाङ्गनायाः। अक्षाय स्तनकलशद्वयाद्गुरेये विच्छेदः सहृदययेव हारयष्ट्यः ॥ ३३ ॥ परिस्फुरन्मीनविघट्टितोरवः सुराङ्गनास्त्रासविलोलदृष्टयः। उपाययुः कम्पितपाणिपल्लवाः सखीजनस्यापि विलोकनीयताम् ॥ ३४ ॥ पर्यच्छे सरसि हृतेऽंशुके पयोभिर्लोलाक्षे सुरतगुरावपत्रपिष्णोः। सुश्रोण्या दलवसनेन धीत्रिहस्तन्यस्तेन द्रुतमकृताब्जिनीसखित्वम् ॥ ३५ ॥ प्रभ्रष्टैः सरभसमम्भसोऽवगाहक्रीडाभिर्विदलितयूथिकापिशङ्गैः। आकल्पैः सरसि हिरण्मयैर्वधूनामौर्वाग्निद्युतिशकलैरिव व्यराजि ॥ ३६ ॥ प्रशान्तघर्माभिभवः शनैर्विवान्विलासिनीभ्यः परिमृष्टपङ्कजः। ददौ भुजालम्बमिवात्तशीकरस्तरङ्गमालान्तरगोचरोऽनिलः ॥३७॥ प्रियेण सङ्ग्रथ्य विपक्षसन्निधावुपाहितां वक्षसि पीवरस्तने। स्रजं न काचिद्विजहौ जलाविलां वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि ॥ ३८ ॥ प्रियेण सिक्ता चरमं विपक्षतश्चुकोप काचिन्न तुतोष सान्त्वनैः। जनस्य रूढप्रणयस्य चेतसः किमप्यमर्षोऽनुनये भृशायते ॥३९॥ प्रियैः सलीलं करवारिवारितः प्रवृद्धनिःश्वास-

---

नहानेवाली और कुछ छिपी हुई तथा चञ्चल आँखोंवाली स्त्रियोंके शरीरको जो कँपा रहा था और बढ़ी हुई साँससे उनके स्तनोंको उछाले दे रहा था वह परिश्रम था या कामदेव, था यह समझमें नहीं आया ॥ २९ ॥ स्नान करते समय चञ्चल नयनोंवाली स्त्रियोंकी गहरी नाभिपर टकरानेवाली लहरोंसे जो शब्द निकला उसे सुनकर देवियोंको सुरतके समय अपने गलेसे निकलनेवाली ध्वनिका स्मरण हो आया ॥ ३० ॥ स्नानके पश्चात् आँजन धुली हुई आँखोंको तिरछी चितवनने, महावर छूटे हुए ओठको कम्पनने और छूटे हुए तिलकवाले ललाटको सिकुड़नने मिलकर उस नवेलीके पूरे शरीरको सुन्दर बना दिया ॥ ३१ ॥ नदीमें स्नान करती हुई मृगनयनी स्त्रियोंने जलमें पड़ी हुई अपनी चोटीकी परछाहींको साँप समझ लिया और इस धोखेमें डरकर बाँहें फेंकती हुई, काँपती हुई, घबराकर कूदती-फाँदती इस वेगसे जलसे बाहर निकल आईं कि उन्होंने खिसककर गिरते हुए अपने वस्त्रोंकी भी चिन्ता नहीं की ॥३२॥ जलके प्रवाहसे रमणीके शरीरपर लगे हुए लाल चन्दनके छूटनेसे उनका स्तन ऐसा उजला हो गया कि उसपर लटके हुए उजले हारकी सारी शोभा जाती रही, इसीलिये मानो वह हार, जान-बूझकर ही तुरन्त टूटकर छितरा गया ॥ ३३ ॥ जलमें उछलती हुई मछलियोंकी ठसक अपनी जाँघोंपर लगनेसे घबराकर जिनकी आँखें चञ्चल हो गई थीं और जिनके हाथ काँप रहे थे, वे नवेलियाँ अपनी सखियोंको भी उस समय बड़ी सुन्दर जँच रही थीं ॥३४॥ निर्मल जलवाली नदीमें जलके बहावसे जब नायिकाके वस्त्र छूटकर गिर गए तब उसे देखनेके लिये उसके नायककी आँखें मचल उठीं। यह देखकर सुन्दर नितम्बवाली नायिका लज्जित हो गई और उस समय कमलने अपने तरङ्गरूपी हाथसे अपने पत्तेरूपी वस्त्र देकर उस नवेलीके साथ अपना सखीपन निभा दिया ॥ ३५ ॥ निर्मल जलमें डुबकी लगाते समय स्त्रियोंके खिली हुई जूहीके समान पीले-पीले सोनेके गहने अचानक खुल-खुलकर जो पानीमें जा पड़े वे उसमें बड़वानलकी लपटोंकी झोंकोंके समान दिखाई दे रहे थे ॥ ३६ ॥ धूपकी तपन कम करनेवाला, कमलोंसे अठखेलियाँ करनेवाला, फुहारोंसे भरा हुआ तथा लहरोंके बीच घुसकर धीरे-धीरे बहता हुआ पवन ऐसा जान पड़ता है मानो जलक्रीड़ा करती हुई स्त्रियोंको हाथका सहारा दे रहा हो ॥ ३७ ॥ अपनी नवेलीकी सौतको देखते ही पतिने एक माला गूँथकर अपनी नवेलीके मोटे-मोटे स्तनोंवाली छातीपर पहना दी, यद्यपि वह माला पानीसे भीगकर फीकी पड़ गई थी फिर भी नायिकाने उसे नहीं उतारा क्योंकि गुण तो प्रेममें रहते हैं, वस्तुमें नहीं ॥३८॥ जलक्रीड़ा करते समय नायकने अपनी नवेलीकी सौतपर पहले जल उछाला और उसके पश्चात् उस नवेलीपर उछाला इससे वह नवेली इतनी रूठ गई कि मनानेसे भी न मानी क्योंकि जब अत्यन्त प्रेमसे भरे हुए किसीके मनमें क्रोध भर आता है तो वह मनानेपर और भी बढ़ जाता है ॥ ३९ ॥ जिन नवेलियोंको उनके पतियोंने बड़े प्रेमसे पानी उछालकर

विकम्पितस्तनः। सविभ्रमाधूतकराग्रपल्लवो यथार्थतामाप विलासिनीजनः ॥ ४० ॥ भयादिवाश्लिष्य झषाहतेऽम्भसि प्रियं मुदानन्दयति स्म मानिनी। अकृत्रिमप्रेमरसाहितैर्मनो हरन्ति रामाः कृतकैरपीहितैः ॥ ४१ ॥ योग्यस्य त्रिनयनलोचनानलार्चिर्निर्दग्धस्मरपृतनाधिराज्यलक्ष्म्याः। कान्तायाः करकलशोद्यतैः पयोभिर्वक्त्रेन्दोरकृत महाभिषेकमेकः ॥ ४२ ॥ ललितमुरसा तरन्ती तरलतरङ्गौघचालितनितम्बा। विपरीतरतासक्ता किमदृश्यत सरसि या सख्या ॥ ४३ ॥ विगाढमात्रे रमणीभिरम्भसि प्रयत्नसम्वाहितपीवरोरुभिः। विभिद्यमाना विससार सारसानुदस्य तीरेषु तरङ्गसंहतिः ॥ ४४ ॥ विधूतकेशाः परिलोलितस्रजः सुराङ्गनानां प्रविलुप्तचन्दनाः। अतिप्रसङ्गाद्विहितागसो मुहुः प्रकम्पमीयुः सभया इवोर्मयः ॥ ४५ ॥ विपक्षचित्तोन्मथना नखव्रणास्तिरोहिता विभ्रममण्डनेन ये। हृतस्य शेषानिव कुङ्कुमस्य तान्विकत्थनीयान्दधुरन्यथा स्त्रियः ॥ ४६ ॥ विपन्नलेखा निरलक्तकाधरा निरञ्जनाक्षीरपि बिभ्रतीः श्रियम्। निरीक्ष्य रामा बुबुधे नभश्चरैरलङ्कृतं तद्वपुषैव मण्डनम् ॥४७॥ विभिन्नपर्यन्तगमीनपङ्क्तयः पुरो विगाढाः सखिभिर्मरुत्वतः। कथञ्चिदापः सुरसुन्दरीजनैः सभीतिभिस्तत्प्रथमं प्रपेदिरे ॥ ४८ ॥ विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः। सखीव काञ्ची पयसा घनीकृता बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम् ॥ ४९ ॥ शिलाघनैर्नाकसदामुरःस्थलैर्बृहन्निवेशैश्च वधूपयोधरैः। तटाभिनीतेन विभिन्नवीचिना रुषेव भेजे कलुषत्वमम्भसा ॥ ५० ॥ शुभाननाः साम्बुरुहेषु भीरवो विलोलहाराश्चलफेनपङ्क्तिषु। नितान्तगौर्यो हृतकुङ्कुमेष्वलं

रोका, जिनकी बढ़ी हुई साँससे उनके स्तन हिल रहे थे, जो अत्यन्त हाव-भावके साथ अपने हाथ कँपा रही थीं उन स्त्रियोंका विलासिनी (अठखेलियोंसे भरी) नाम सच्चा हो गया ॥ ४० ॥ जलमें पहुँचनेपर जैसे ही रूठी हुई नायिकाके शरीरमें कोई मछली छू गई वैसे ही उसने डरका बहाना लेकर झट अपने पतिसे लिपटकर उसे प्रसन्न कर लिया। सच्चे प्रेमसे भरी हुई स्त्रियोंका बनावटी व्यवहार भी बड़ा लुभावना होता है ॥ ४१ ॥ किसी नायकने अपने हाथरूपी कलशसे उठाए हुए जलसे नायिकाके मुखरूपी चन्द्रमाका यह समझकर भलीभाँति अभिषेक किया कि शङ्करके नेत्रोंकी अग्निकी लपटसे जले हुए कामदेवकी सेनाका सेनापति बनने योग्य यही (मुख) है ॥ ४२ ॥ जिस समय वह नवेली पानीमें अत्यन्त मस्तीके साथ छातीके बल तैर रही थी और चञ्चल लहरोंमें उसका नितम्ब हिल रहा था, उसे देखकर उसकी सखीको ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह विपरीत रतिमें लगी हुई हो ॥ ४३ ॥ जब नवेलियाँ अपनी मोटी जाँघें उठा-उठाकर बड़ी कठिनाईसे जलमें घुसीं उस समय जलमें उठी हुई लहरें सारस पक्षियोंको बहाकर तीरकी ओर हटा ले गईं ॥ ४४ ॥ जलक्रीड़ा करते समय काँपती हुई लहरोंको देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो पहले तो उन्होंने नवेलियोंके बाल हिलाए, फिर उनके गलेकी मालाएँ हिला दीं और फिर उनके शरीरपर पुता हुआ चन्दन धो दिया। इस प्रकार बार-बार अपराध करनेसे ही वे डर गई हों ॥ ४५ ॥ केशरकी जालीमें छिपे हुए जिन नख-चिह्नोंको देखकर मन जल उठते थे, वे केशरके धुल जानेपर ऐसे जान पड़ते थे मानो केशरका कुछ अंश नहीं धुल पाया। यद्यपि वे उस समय उतने सुन्दर नहीं थे फिर भी ऐसे लुभावने लग रहे थे कि कहा नहीं जाता ॥ ४६ ॥ जलमें स्नान करनेसे जो नवेलियाँ शरीरपर बनी हुई सारी चित्रकारीके धुल जाने, ओठका महावर छूट जाने और आँखोंका आँजन धुल जानेपर भी पहलेकी-सी ही सुन्दर जान पड़ती थीं उन्हें देखकर देवताओंने सोचा कि इनका तो सारा शरीर ही आभूषणोंका काम कर रहा है ॥ ४७ ॥ इन्द्रकी प्यारी अप्सराएँ जैसे ही जलमें घुसनेको चलीं वैसे ही जलाशयमें उछल-उछलकर भागती हुई सारी मछलियोंको देखकर वे ऐसी डर गईं कि बड़ी कठिनतासे किसी-किसी प्रकार वे जलमें घुस पाईं ॥ ४८ ॥ जलक्रीड़ाके समय जब प्रियतमने हँसकर पानी उछालती हुई नायिकाका हाथ पकड़ लिया तब उसका मन कामके वेगसे मचल उठा, जिससे उसकी साड़ीकी गाँठ खुल तो गई पर पानीमें भीगनेके कारण कड़ी पड़ी हुई करधनीने सखी बनकर उस साड़ीको खिसकनेसे बचा लिया ॥४९॥ चट्टानके समान कठोर देवताओंकी छातीसे तथा स्त्रियोंके विशाल स्तनोंसे टकराकर पानीकी लहरें तीरपर पहुँचकर टूट गईं इसीलिये मानो क्रोधित होकर जल कलुषित (क्षुब्ध, गन्दला) हो गया ॥ ५० ॥ जलकी चञ्चल लहरोंमें क्रीड़ा करती हुई नवेलियाँ उन लहरोंसे किसी प्रकार घटकर नहीं थीं क्योंकि जलकी तरङ्गोंमें जैसे खिले हुए कमल हिल

न लेभिरे ताः परभागमूर्मिषु ॥ ५१ ॥ श्रिया हसद्भिः कमलानि सस्मितैरलङ्कृताम्बुः प्रतिमागतैर्मुखैः । कृतानुकूल्या सुरराजयोषितां प्रसादसाफल्यमवाप जाह्नवी ॥ ५२ ॥ पयसि पुनर्महेभकुम्भश्रीभाजा कुचयुगलेन नीयमाने । विश्लेषं युगमगमद्रथाङ्गनाम्नोरुद्धृत्तः क इव सुखावहः परेषाम् ॥ ५३ ॥ सन्दष्टवस्त्रेष्वबलानितम्बेष्विन्दुप्रकाशान्तरितोडुतुल्याः । अमी जलापूरितसूत्रमार्गा मौनं भजन्ते रशनाकलापाः ॥ ५४ ॥ सौगन्ध्यं दधदपि काममङ्गनानां दूरत्वाद्गतमहमाननोपमानम् । नेदीयो जितमिति लज्जयेव तासामालोले पयसि महोत्पलं ममज्ज ॥ ५५ ॥ स्तनान्तीनां बृहदमलोदविन्दुचित्रौ रेजाते रुचिरदशामुरोजकुम्भौ । हाराणां मणिभिरुपाश्रितौ समन्तादुत्सूत्रैर्गुणवदुपघ्नकाम्ययेव ॥ ५६ ॥ हृतोऽङ्गरागस्तिलकं विमृष्टं लब्धान्तरैरेभिरतीव मत्वा । सुसंहितेनेति तदा जलानामदायि मध्यं न कुचद्वयेन ॥ ५७ ॥ ह्रदाम्भसि व्यस्तवधूकराहते रवं मृदङ्गध्वनिधीरमुज्झति । मुहुः स्तनैस्तालसमं समाददे मनोरमं नृत्यमिव प्रवेपितम् ॥ ५८ ॥

प्रपापालिका—अङ्गुल्यग्रनिरोधतस्तनुतरां धारामियं कुर्वती कर्कर्या नितरां पयोनिपुणिका दातुं प्रपापालिका । विश्लिष्टाङ्गुलिना करेण दशनापीडं शनैः पान्थ हे निस्पन्दोर्ध्वविलोचनस्त्वमपि हा जानासि पातुं पयः ॥ १ ॥ कस्येयं तरुणि प्रपा पथिक नः किं पोयतेऽस्यां पयो धेनूनामथ माहिषं पथिक रे वारः कथं मङ्गलः । सोमो वाथ शनैश्चरोऽमृतमिदं तत्तेऽधरे दृश्यते भो भोः पान्थ विलाससुन्दर सखे यद्रोचते तत्पिब ॥ २ ॥ गन्तुं सत्वरमीहसे यदि पुनर्व्यालोलवेणीलतां द्रष्टुं वा स्वकुटुम्बिनीमनुदिनं

रहे थे वैसे ही इनके डरे हुए सुन्दर मुख भी थे, लहरोंमें उजला फेन लहरा रहा था तो इनकी छातीपर उजले-उजले हार हिल रहे थे और उधर लहरें उजली थीं तो स्वभावसे ही गोरी ये नवेलियाँ केशर धुल जानेसे और भी अधिक गोरी निकल आई थीं ॥ ५१ ॥ यदि गंगाजीने देवराज इन्द्रकी देवियोंको अपना स्वच्छ जल भेंट करके उनपर कृपा की तो उन्होंने भी अपने मुस्कराहटसे भरे तथा अपनी शोभासे कमलोंकी हँसी उड़ानेवाले मुखोंकी परछाईं गङ्गाजीके जलमें डालकर उस जलकी शोभा बढ़ाकर उसका बदला चुका दिया ॥ ५२ ॥ विशाल हाथीके मस्तककी शोभा धारण करनेवाले नवेलियोंके स्तनोंने जब पानीको धँघोलकर चञ्चल कर दिया उस समय पास-पास सटकर बैठे हुए चकवी-चकवे भी अलग-अलग हो गए क्योंकि अहङ्कारियोंसे किसीको सुख नहीं मिलता ॥ ५३ ॥ स्नान करनेसे नवेलियोंके नितम्बोंपर वस्त्र चिपक गए हैं । नितम्बपर पड़ी हुई करधनी के घुँघुरुओंका मुँह पानीसे भर जानेके कारण उनमें रुनझुन नहीं हो रही है, अतः उस समय वे ऐसे दिखाई दे रहे हैं मानो चन्द्रमाकी चाँदनीसे दबे हुए तारे हों ॥ ५४ ॥ चञ्चल जलमें डूबे हुए कमलको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो वह इस लज्जासे डूब गया हो कि जबतक मैं दूर था तबतक अपनी सुगन्धके कारण मैं स्त्रियोंके मुखका उपमान बना हुआ था पर उनके पास आनेपर मैं उनके मुखसे हार गया हूँ, अतः अब क्या अपना मुँह दिखाऊँ ॥ ५५ ॥ स्नान करती हुई सुनयनी नवेलियोंके बड़े-बड़े स्तनोंपर पड़ी हुई पानीकी बड़ी-बड़ी बूँदें ऐसी जान पड़ती थीं मानो डोरा टूट जानेपर भी सुन्दर स्थान पानेके लोभसे हारके मणि चारों ओर लिपटे पड़े हों ॥ ५६ ॥ नवेलीके आपसमें अत्यन्त सटे हुए दोनों स्तनोंने जलको मानो इस क्रोधसे बीचमें आनेका अवसर नहीं दिया कि इसने अवसर पाकर शरीरमें लगी हुई केशरकी लाली पोंछ डाली और तिलक भी धो बहाया ॥ ५७ ॥ जल-क्रीड़ा करनेवाली नवेलियोंके हाथसे थपथपाए जानेपर जलाशयके जलमें मृदङ्गकी-सी धमक उठ रही थी । उस समय हिलते हुए स्तन ऐसे जान पड़ते थे मानो तालके साथ-साथ नाचने लगे हों ॥ ५८ ॥

प्याऊवाली : यह प्याऊवाली नवेली पानी पिलानेमें बड़ी चतुर है इसलिये अपनी उँगलियोंसे गडुएकी टोंटी रोककर पतली धारसे पानी पिला रही है पर हे पथिक ! तुम भी कम चतुर नहीं हो, तुम भी हाथकी उँगलियाँ चौड़ाकर, दाँत दबाकर और एकटक ऊपर देखते हुए धीरे-धीरे पानी पीना जानते हो ॥ १ ॥ यात्री और प्याऊवालीमें बात-चीत हो रही है । यात्री : कहो नवेली ! यह किसका प्याऊ है ? नवेली : मेरा है यात्री । यात्री : यहाँ क्या पिलाया जाता है ? नवेली : पय (पानी, दूध) । यात्री : गायका या भैंसका ? नवेली : अरे यात्री ! वार (जल, सोमवार आदि दिन) । यात्री : मङ्गल, सोम या शनिवार ? नवेली : यह अमृत (जल, अमृत) है । यात्री : वह तो तुम्हारे अधरोंमें है ।

कान्तां समुत्कण्ठसे। तत्तुच्छ्यन्नपि मुग्धमन्थरवलन्नेत्रान्तरुद्धाध्वगामेतां दूरत एव हे परिहर भ्रातः प्रपापालिकाम्॥ ३॥ दूरादेव कृतोऽञ्जलिर्न तु पुनः पानीयपानोचितो रूपालोकनकौतुकात्प्रचलितो मूर्धा न शान्त्या तृषः। रोमाञ्चोऽपि निरन्तरं प्रकटितः प्रीत्या न शैत्यादपामज्जुएणो विधिरध्वगेन विहितो वीक्ष्य प्रपापालिकाम्॥ ४॥ दृशं प्रपापालिकया प्रकाशिते निवेशयन्कुम्भधिया कुचद्वये। विवेद पान्थः कलशात्परिच्युतां न वारिधारां मुखसङ्गिनीमपि॥ ५॥ पिबन्नम्भः प्रपापालीमनुरक्तां विलोकयन्। अगस्त्यं चिन्तयामास चतुरस्सापि सागरान्॥६॥ मध्याह्नं गमय त्यज श्रमजलं स्थित्वा पयः पीयतां मा शून्येति विमुञ्च पान्थ विवशः शीतः प्रपामण्डपः। तामेव स्मर घस्मरस्मरशरत्रस्तां निजप्रेयसीं त्वच्चित्तं तु न रञ्जयन्ति पथिक प्रायः प्रपापालिकाः॥ ७॥ मध्याह्नेऽतिखरे निदाघसमये तापोऽध्वनो वर्तते शीते कुञ्जतटे विचित्रविटपे भोः पान्थ विश्रम्यताम्। एकाकी च भवानहञ्च तरुणी शून्या प्रपा वर्तते लज्जेऽहं युवती स्वयं च चतुरो जानासि कालोचितम्॥ ८॥ यथोर्ध्वाक्षः पिबत्यम्बु पथिको विरलाङ्गुलिः। तथा प्रपापालिकापि धारां वितनुते तनुम्॥ ९॥

ग्रीष्मवायवः—आध्मातोद्धतदाववह्निसुहृदः कीर्णोष्णरेणूत्कराः सन्तप्ताध्वगमुक्तखेदविषमश्वासोष्णसंवादिनः। तृष्णार्त्ताजगरायतास्यकुहरक्षिप्रप्रवेशोत्कटा भ्रूभङ्गैरिव तर्जयन्ति पवना दग्धस्थलीकज्जलैः॥ १॥ कारञ्जीं कुञ्जयन्तो निजजरठरवव्यञ्जितावीरकोशानुत्पाकान्कृष्णलानां पृथुसुपिरगताञ्शिम्बिकान्पाटयन्तः। झिल्लीकाझल्लरीणां बधिरितककुभं झङ्कृतं खे

नवेली : हे क्रीड़ामें कुशल मित्र यात्री! तुम्हें जो अच्छा लगे वही पीना॥ २॥ हे भाई! यदि शीघ्र घर पहुँचना चाहो और अपनी उस प्यारीको प्रतिदिन देखना चाहो जिसकी चोटी वियोगमें खुली पड़ी है तो प्याऊपर बैठी हुई उस नवेलीको दूरसे ही नमस्कार कर लो जिससे तुम सन्तुष्ट भी हो और जिसने अपनी सुन्दर चितवन चलाकर आँखोंके डोरोंमें धीरे-धीरे सब यात्रियोंको बाँध लिया है॥ ३॥ प्याऊवालीको देखकर यात्रीने जो उसे प्रसन्न करनेके लिये दूरसे ही अञ्जलि बाँध ली, वह जल पीनेकी इच्छासे नहीं वरन् उसकी सुन्दरता देखकर; पानी पीकर उसने जो सिर हिलाया, वह प्यासकी शान्तिसे नहीं वरन् आश्चर्यमें पड़कर और उसके शरीरमें जो रोंगटे उठे वे भी पानीकी शीतलतासे नहीं वरन् प्यारसे उठ खड़े हुए॥ ४॥ कोई पौसरेपर पानी पिलानेवाली अपने दोनों स्तन उघाड़कर उन्हींके पास हाथ ले जाकर यात्रीको पानी पिलाने लगी, उन दोनों स्तनोंपर उस यात्रीकी दृष्टि ऐसी गड़ गई कि उसके पाससे ही निकलकर मुँहमें पड़ती हुई जलकी धाराका भी उसे भान न हुआ॥ ५॥ पानी पीते हुए किसी चतुर यात्रीने अपने ऊपर रीझी हुई प्याऊवालीको देखते हुए अगस्त्य मुनिका ध्यान किया कि सब पानी सोख जाओ और उस प्याऊवालीने भी समुद्रोंको स्मरण किया कि यह धारा कभी टूटे ही नहीं॥ ६॥ प्याऊवाली किसी यात्रीसे कहती है—हे यात्री! इस ठण्डे पौसरेमें थोड़ी देर दुपहरी बिताकर, पसीना सुखाकर और थोड़ा ठहरकर पानी पीना, क्योंकि तुम थके हुए हो। मुझे अकेली समझकर यहाँसे डरकर भागो मत, पर हाँ, कामके तीखे बाणोंसे डरी हुई अपनी उस प्यारीको मत भूलना क्योंकि मैं समझती हूँ, कि प्रायः प्याऊवाली स्त्रियाँ तुम्हारा मन नहीं लुभा पा सकतीं॥ ७॥ प्याऊवाली कह रही है—'हे यात्री! गर्मीके दिन हैं, कड़ी दुपहरीका समय है, मार्ग भी तप रहा है इसलिये चलो, हरे-भरे पेड़ोंकी ठण्डी छाँहमें थकावट मिटा लो, क्योंकि तुम भी अकेले हो, मैं भी युवती हूँ, प्याऊ भी सूना है, मुझे भी कुछ कहते हुए लज्जा आ रही है, तुम स्वयं समझदार हो और समझते ही हो कि इस समय क्या करना चाहिए'॥ ८॥ कोई रसिक यात्री ज्यों-ज्यों अपनी उँगलियाँ फैलाकर प्याऊवालीकी ओर ऊपर आँख उठाए हुए धीरे-धीरे पानी पी रहा है त्यों-त्यों रसीली प्याऊवाली भी पानीकी धार पतली करके देरतक उसे पानी पिलाती जा रही है॥ ९॥

गर्मीके पवन : धू-धू करती हुई आगकी लपटोंके समान गरम-गरम धूल बिखेरनेवाली तथा तपे हुए यात्रियोंकी दुःखभरी भयङ्कर गरम साँसके समान जो लू, प्यासे अजगरके खुले हुए मुखमें घुसनेसे और भी अधिक असह्य हो उठी है वह मानो जलकर काली पड़ी हुई धरतीरूपी काजलवाली टेढ़ी भौंहें तरेरकर लोगोंको डाँट रही है॥ १॥ करञ्जकी लताको उखाड़ डालनेवाली, अपने भयङ्कर शब्दसे आवीरकी कलियाँ खिला देनेवाली, खुले हुए विशाल मैदानमें पड़ी हुई घुँघचीकी कलियोंको चटका देनेवाली, अपनी गूँजसे दिशाओंको बहरा कर देनेवाली,

क्षिपन्तः सिञ्जानाश्वत्थपत्रप्रकरझणझणाराविणो वान्ति वाताः ॥२॥ दलितकोमलपाटलकुड्मले निजवधूश्वसितानुविधायिनि। मरुति वाति विलासिभिरुन्मदभ्रमदलौ मदलौल्यमुपाददे ॥ ३ ॥ व्योमव्यालोलमुक्ताफलधवलगलद्बिन्दुसन्दोहगर्भानम्भोदान्भर्त्सयित्वा दिशिदिशि भुवने भीतिमुद्भावयन्तः। एते रक्षोमृगाक्षीगतलुलितमदक्षोभसंरम्भरूक्षा वाताः पातालकुक्षिस्थितमपि सलिलं तत्क्षणाद्भक्षयन्ति ॥४॥

ग्रीष्मपथिकाः—ग्रीष्मोष्मसोपशुष्यत्पयसि बकभयोत्क्रान्तपाठीनभाजि प्रायः पङ्कैकमात्रं गतवति सरसि स्वल्पतोये लुठित्वा। कृत्वा कृत्वा जलार्द्रीकृतमुरसि जरत्कर्पटार्धं प्रपायां तोयं जग्ध्वापि पान्थः पथि वहति हहा हेति कुर्वन्पिपासुः ॥ १ ॥ भ्राम्यच्चीत्कारचक्रभ्रमभरितघटीयन्त्रचक्रप्रमुक्तस्रोतःपूर्णप्रणालीपथसरणिशिरासारि सीत्कारि वारि। कौपं पान्थाः प्रकामं शितमणिमुसलाकारविस्फारधारं विक्षिप्तक्षुण्णमुक्ताकणनिकरनिभासारपातं पिबन्ति ॥ २ ॥ वाताकीर्णविशीर्णवीरणतृणश्रेणीझणत्कारिणि ग्रीष्मे सोष्मणि चण्डसूर्यकिरणप्रक्वाथ्यमानाम्भसि। चित्तारोपितकामिनीमुखशशिज्योत्स्नाहतक्लान्तयो मध्याह्नेऽपि सुखं प्रयान्ति पथिकाः स्वं देशमुत्कण्ठिताः ॥ ३ ॥ सर्वाशारुधि दग्धवीरुधि सदा सारङ्गबद्धक्रुधि क्षामक्ष्मारुहि मन्दमुन्मधुलिहि स्वच्छन्दकुन्दद्रुहि। शुष्यत्स्रोतसि तप्तभूमिरजसि ज्वालायमानार्णसि ग्रीष्मे मासि ततार्कतेजसि कथं पान्थ व्रजञ्जीवसि ॥ ४ ॥

वर्षावर्णनम्—अतिशयितकदम्बोऽयं मोदकदम्बानिलो वहति। वियदम्बुदमेदुरितं मे दुरितं पश्य नागतो दयितः ॥ १ ॥ अत्यन्तकामाकुलसर्वरामा लोकस्य लक्ष्म्याघृतपूरभक्ष्या। एषा सखि श्रावणजा विमिश्रा हर्षैर्विमिश्रा भुवमक्षितोया ॥ २ ॥ अथ

झींगुररूपी डमरूकी झंकारको आकाशमें फैला देनेवाली और पीपलके खड़खड़ाते हुए सूखे पत्तोंमें झन-झन करके चलनेवाली लू वेगसे बह रही है॥२॥ गुलाबकी कोमल कलियाँ खिला देनेवाले तथा अपनी नारियोंकी साँसके समान सुगन्धित और मन्द-मन्द चलनेवाले जिस वायुकी ओर मतवाले भौंरे दौड़े जा रहे हैं उसके बहते ही विलासी पुरुष मस्त हो गए ॥ ३ ॥ चञ्चल मोतियोंके समान उजली जलकी बूँदें धारण किए हुए जो बादल आकाशमें छाए हुए थे उन्हें फटकारती हुई, संसारके कोने-कोनेको डराती हुई तथा गर्मीसे जिनका प्रबल मद शान्त हो गया है ऐसी राक्षसियोंके क्रोधसे मिलकर रूखी बनी हुई लू इस समय पातालके जलको भी तत्काल सुखाए डाल रही है ॥ ४ ॥

गर्मीके यात्री : जिस थोड़े जलवाले तालाबमें गर्मीकी जलनसे पानी सूख गया है, जिसमें बगुलेके भयसे मछलियाँ इधर-उधर भाग रही हैं और जिसमें केवल कीचड़-भर रह गया है, उसमें जाकर पहले तो यात्री लोटकर नहाया, फिर अपने फटे-पुराने वस्त्रका आधा भाग भिगोकर उसने अपनी छातीपर रक्खा तथा प्याऊपर जाकर पानी पिया फिर भी उसकी प्यास नहीं गई और अब भी वह प्यासके मारे हाय-हाय कर रहा है ॥१॥ घूम-घूमकर चीं-चीं करते हुए और चक्केके समान चलते हुए रहटके भरे हुए घड़ेसे निकला हुआ जो कुएँका पानी नालियोंमें भरकर हरहराता हुआ उजले मणिके मूसलके समान लम्बी धारामें बहता हुआ, पीसकर बिखेरे हुए मोतीके चूरके समान उजला दिखाई पड़ता है उस जलको यात्री भरपेट पी रहे हैं ॥ २ ॥ वायुके झोंकेसे बिखरे हुए खसमेंसे बहकर झन-झन करता हुआ पानी भी जब प्रचण्ड सूर्यकी किरणोंसे उबला-सा जा रहा है उस तपी हुई गर्मीकी दुपहरीमें भी मनमें बसी हुई नवेलीके मुखरूपी चन्द्रमाकी चाँदनीसे जिनकी थकावट दूर हो रही है वे उत्कण्ठित यात्री सुखसे अपने घर लौट रहे हैं ॥ ३ ॥ हे पथिक ! गर्मीके इन दिनोंमें यात्रा करते हुए तुम कैसे जी रहे हो जब कि चारों ओर फैले हुए और खिले हुए कुन्दके फूलोंसे वैर करनेवाले सूर्यके प्रचण्ड तापसे सारी दिशाएँ उजड़-सी रही हैं, लम्बी-लम्बी लताएँ जल गई हैं, हरिण क्रोधसे खीझ रहे हैं, पेड़-पौधे झुलस रहे हैं, भौंरोंकी प्रसन्नता नष्ट हो रही है, झरने सूख रहे हैं, धरतीकी धूल तप रही है और पानी तो इतना गरम है मानो खौल रहा हो ॥ ४ ॥

बरसातका वर्णन : हे सखी ! देखो कदम्बको खिलानेवाला और मस्त कर देनेवाला बरसातका पवन बहने लगा और आकाशमें बादल भी घिर घिरकर आने लगे पर मेरा दुर्भाग्य तो देखो कि अभीतक भी मेरे प्रियतम नहीं लौट रहे हैं ॥१॥ श्रावणकी धूप-छाँह मिली वर्षा निश्चित रूपसे अनोखी होती है जिसमें सब स्त्रियाँ कामसे व्याकुल हो जाती हैं और सब लोग अपनी-अपनी गृहलक्ष्मियोंके हाथसे बनाए घेवर खा-खाकर मस्त

नभसि निरीक्ष्य व्याप्तदिक्चक्रवालं सजलजलदजालं प्राप्तहर्षप्रकर्षः। विहितविपुलबर्हाडम्बरो नीलकण्ठो मदमृदुकलकण्ठो नाट्यमङ्गीचकार ॥ ३ ॥ अथ मनसिजदिग्जयाभिशंसी जलधरदुन्दुभिराततान शब्दम्। तदनु तदनुजीविभिः कदम्बैः कवचितमुन्मदषट्पदच्छलेन ॥ ४ ॥ अनुययौ विविधोपलकुण्डलद्युतिवितानकसंवलितांशुकम्। धृतधनुर्वलयस्य पयोमुचः शबलिमा बलिमानमुषो वपुः ॥ ५ ॥ अन्योन्यवारिघटितौ घनवारिपाताङ्गीतौ भृशं मृगवधूर्मृगयूथपश्च। वित्तस्तया घटनया कृतसौख्यमोहौ नैवाम्बुवाहजलशीकरपातपीडाम् ॥ ६ ॥ अभिनवयवसश्रीशालिनि क्ष्मातलेऽस्मिन्नतिशयपरभागं भेजिरे जिष्णुगोपाः। कुवलयशयनीये मुग्धमुग्धेक्षणाया मणय इव विमुक्ताः कामकेलिप्रसङ्गात् ॥ ७ ॥ अभिभवति मनः कदम्बवायौ मदमधुरे च शिखण्डिनां निनादे। जन इव न धृतेश्चचाल जिष्णुर्न हि महतां सुकरः समाधिभङ्गः ॥ ८ ॥ अभीक्ष्णमुच्चैर्ध्वनता पयोमुचा घनान्धकारीकृतशर्वरीष्वपि। तडित्प्रभादर्शितमार्गभूमयः प्रयान्ति रागादभिसारिकाः स्त्रियः ॥ ९ ॥ अम्भोदस्तनितं निशम्य करिणां बृंहेति रंहोयुतस्सद्यस्त्यक्तमहीध्रकन्दरगृहः कौतूहली निर्गतः। एतस्मिन्क्षण एव चण्डमशनेराकर्ण्य शब्दं क्रुधा तं प्रत्युत्पतति स्वगर्जितजितं धीरो मृगाणां पतिः ॥ १० ॥ अर्धेन जलदश्याममर्धेनातपपिङ्गलम्। अर्धनारीश्वराकारं न को मन्येत वासरम् ॥ ११ ॥ अस्थिरमनेकरागं गुणरहितं नित्यदुष्प्रापम्। प्रावृषि सुरेन्द्रचापं विभाव्यते युवतिचित्तमिव ॥१२॥ आकर्ण्य स्मरयौवराज्यपटहं जीमूतधीरध्वनिं नृत्यत्केकिकुटुम्बकस्य दधतं मन्दां मृदङ्गक्रियाम्। उन्मीलन्नवनीलकन्दलदलव्याजेन रोमाञ्चिता हर्षेणेव समुत्थिता वसुमती दध्रे शिलीन्ध्रध्वजान् ॥ १३ ॥ आकाशे

रहते हैं ॥२॥ सावनके महीनेमें चारों ओर आकाशमें घिरे हुए जलसे भरे हुए बादलोंकी घटा देखकर यह मोर अत्यन्त हर्षसे अपने पङ्ख फैलाकर कोमल मतवाली कूक कूकता हुआ नाचने लगा है ॥ ३ ॥ कामदेवके दिग्विजयकी घोषणा करनेवाले मेघरूपी नगाड़ेने जैसे ही गर्जना की वैसे ही उस शब्दके अनुसार चलनेवाले कदम्बरूपी सैनिकोंने मँड़राते हुए भौंरोंके कवच पहन लिए ॥ ४ ॥ इन्द्र-धनुपसे सजे हुए रङ्ग-बिरङ्गे बादलने राजा बलिका अहङ्कार चूर-चूर करनेवाले भगवान् विष्णुके उस शरीरकी शोभा पा ली है जिनके पीताम्बरपर रङ्ग-बिरङ्गे रत्नोंसे जड़े कुण्डलकी आभा चमक रही है ॥ ५ ॥ मूसलाधार वर्षासे डरे हुए बड़े मृग और मृगी दोनों एक छोटी-सी गुफामें अत्यन्त सटकर खड़े हुए थे और इस डरानेवाली घटनासे जिन्हें सुख और मोह प्राप्त हो गया था उन्हें फिर बादलोंकी जलवर्षासे तनिक भी खेद नहीं हुआ ॥६॥ नई-नई घासकी हरियालीसे सुहावनी लगनेवाली धरतीपर बीरबहूटियाँ ऐसी सुन्दर जान पड़ती हैं मानो कमलके पत्तोंके बिछौनेपर कामक्रीड़ाके समय किसी अत्यन्त सुन्दर नेत्रोंवाली नवेलीके बिखरे हुए लाल मणि हों ॥ ७ ॥ कदम्बके फूलोंकी गन्धमें बसा हुआ वायु जिस समय मन हरे ले रहा था और मदसे मस्त भौंरोंकी गुनगुनाहट चारों ओर मस्ती भर रही थी उस समय अर्जुनका धैर्य साधारण मनुष्योंके समान डिगा नहीं क्योंकि महापुरुषोंकी समाधि तोड़ना कोई हँसी-ठट्ठा नहीं है ॥ ८ ॥ देखो, गरजते हुए बादलोंसे घिरी हुई इस रातकी घनी अँधियारीमें भी अपने प्यारेके पास प्रेमसे लुक-छिपकर जानेवाली कामिनियाँ बिजलीकी चमकके सहारे ही आगेका मार्ग टटोलती चली जा रही हैं ॥ ९ ॥ मेघोंकी गड़गड़ाहट सुनकर उसे हाथियोंकी चिग्घाड़ समझकर मृगोंका स्वामी खिलाड़ी सिंह, वेगसे पर्वतकी गुफा छोड़कर निकला और फिर अपनी गर्जनासे भी बढ़कर कड़कनेवाली बिजलीकी तड़प सुनकर वह धीर सिंह क्रोधसे ऊपर उछल रहा है ॥ १० ॥ एक साथ ही काले-काले बादल और भूरे रङ्गकी धूप छाई रहनेसे ये वर्षाके दिन किसे अर्धनारीश्वरके समान नहीं जान पड़ते ॥ ११ ॥ थोड़ी देर रहनेवाला (अस्थिर), रङ्ग-बिरङ्गा (बहुतोंसे प्रेम रखनेवाला), बिना डोरीवाला (गुणकी परख न करनेवाला) और सदा न दिखाई देनेवाला (दुर्लभ) इन्द्रधनुष बरसातके दिनोंमें नवेलीके मनके समान जान पड़ता था ॥ १२ ॥ वर्षाके दिनोंमें बादलकी जो गड़गड़ाहट कामदेवके राज्याभिषेकके समयका नगाड़ा और नाचते हुए भौंरोंके लिये मृदङ्गकी गम्भीर ध्वनि बनी हुई थी, उसे सुनकर यह धरती खिले हुए नये हरे कन्दलीके पत्तोंके रूपमें रोमाञ्चित होकर हर्षसे फूलकर कुकुरमुत्तोंके रूपमें ध्वजा धारण किए हुए थी ॥ १३ ॥ देखो! आकाशमें ये काली-काली बादलकी घटाएँ नहीं उमड़ रही हैं, ये तो बारूदसे भरी पिटारियाँ हैं; उनके ऊपर ये इन्द्र-

पश्य नेमा निविडघनघटाः सम्भृताग्नेयचूर्णा मञ्जूषा भान्ति तासामुपरि सुरधनुः कैतवात्केतवोऽमी। विद्युन्नो नालयन्त्रश्रुतिमुखनिपतद्दीप्तवर्त्तिप्रकाशः सैन्यं मारस्य मन्ये स्फुरति विमथितुं मानिनीमानदुर्गम् ॥ १४ ॥ आच्छन्ने क्षितितेजसी मनसिजव्यापारमेयं मनः स्वात्मा च द्वयमेतदस्ति दशमं द्रव्यं परेषां तमः। कालाकाशदिशां निरस्तमधुना नामापि वर्षागमे द्रव्यं वारि गुणश्च वारिदरवः कर्मापि वारिक्रिया ॥ १५ ॥ आयाताः सखि वर्षा वर्षादपि यासु वासरो दीर्घः। दिशि दिशि नीरतरङ्गो नीरत-रङ्गो ममापि हृदयेशः ॥ १६ ॥ आसारेण न हर्म्यतः प्रियतमैर्यातुं बहिः शक्यते शीतोत्कम्पनिमित्तमायतदृशा गाढं समालिङ्ग्यते। जालैः शीकरशीतलैश्च मरुतो रत्यन्तखेदच्छिदो धन्यानां बत दुर्दिनं सुदिनतां याति प्रियासङ्गमे ॥ १७ ॥ आस्वाद्य निर्विशेषं विरहिवधूनां मृदूनि मांसानि। करकामिषेण मन्ये निष्ठीवति नीरदोऽस्थीनि ॥ १८ ॥ उत्कण्ठयति मेघानां माला वर्गं कलापिनाम्। यूनाञ्चोत्कण्ठयत्यद्य मानसं मकरध्वजः ॥ १९ ॥ उत्फुल्लार्जुनसर्जवासितवहत्पौरस्त्यझञ्झानिलप्रेङ्खोलत्स्खलितेन्द्रनीलशकलस्निग्धाम्बुदश्रेणयः। धारासिक्तवसुन्धरासुरभयः प्राप्तास्त एवाधुना घर्माम्भोविगमागमव्यतिकरश्रीवाहिनो वासराः ॥ २० ॥ उद्योगः क्षयमेति हन्त सहसा जाड्यं समुज्जृम्भते मित्रस्यापि च दर्शनं भवति नो किं वान्यदाचक्ष्महे। यल्लोकस्पृहणीयतां गतमभूत्तज्जीवनं व्यर्थतां प्राप्तं येन दुनोति तन्मम मनो दुर्दैववद्दुर्दिनम् ॥ २१ ॥ उन्निद्रकन्दलदलान्तरलभ्यमानगुञ्जन्मदान्धमधुपे घनमेघकाले। स्वप्नेऽपि यः प्रवसति प्रविहाय कान्तां तस्मै विषाणरहिताय नमो वृषाय ॥ २२ ॥ उपैति घनमण्डली नदति नीलकण्ठावली तडिल्लसति सर्वतो वहति केतकीमारुतः।

धनुष नहीं वरन् पताकाएँ चमक रही हैं और यह बिजली नहीं है, यह तो बन्दूकके छेदमें लगाई जानेवाली जलती हुई बत्तीका प्रकाश है, इस प्रकार मैं तो समझता हूँ कि यह कामदेवकी सेना है जो रूठी हुई नवेलियोंके मानरूपी दुर्गको ध्वस्त कर डालनेके लिये मचल रही है ॥ १४ ॥ बरसात आ जानेपर धरती और सूर्य दोनों ढक गए, मन और आत्मामें कामका विकार समा गया, आकाश, समय और दिशाओंकी कोई पहचान न बच रही, केवल दसवाँ द्रव्य (अन्धकार-मात्र) तो दिखाई दे रहा है और शेष द्रव्योंमें जल, गुणोंमें मेघका शब्द और कर्मोंमें जलकी वृष्टि कुल इतने ही बच रहे हैं ॥ १५ ॥ हे सखी! बरसात आ गई, जिसमें एक-एक दिन भी एक-एक वर्षसे बड़े लगने लगे हैं, चारों ओर जलकी लहरें ही लहरें दिखाई दे रही हैं किन्तु मेरे प्राणनाथ तो सब रागरङ्ग छोड़कर न जाने कहाँ बैठे हैं ॥ १६ ॥ घनी बरसातके कारण छैले अपने घरोंके बाहर नहीं निकल रहे हैं, ठण्ढकसे काँपती हुई उनकी नवेलियाँ कसकर उनसे लिपटी पड़ी हैं और जलकी बूँदोंसे ठण्ढाई हुई खिड़कियोंसे होकर आता हुआ पवन उनके सम्भोगकी थकावट हर रहा है। सच है, प्रियतमाओंके साथ रहनेवाले भाग्यवानोंके लिये दुर्दिन (बरसातके दिन) भी सुदिन हो जाते हैं ॥ १७ ॥ बादलोंसे झड़ते हुए ओले ऐसे जान पड़ते हैं मानो बिना दाँतवाले बादलोंने जो पहले वियोगिनी स्त्रियोंका हड्डी-सहित मांस खा लिया था उसमेंसे मांस खाकर इन ओलोंके रूपमें हड्डीके टुकड़े थूक-थूककर फेंक रहे हों ॥ १८ ॥ एक ओर घिरी हुई बदली तो मोरोंको ऊपर सिर उठानेका आदेश दे रही है दूसरी ओर कामदेव भी तरुणोंका मन नवेलियोंको पानेके लिये लालायित कर रहा है ॥ १९ ॥ लो, बरसातके वे दिन आ पहुँचे जिनमें खिले हुए अर्जुन और रालकी सुगन्धमें बसे हुए पुरवैयाके सहारे उड़ते हुए और इन्द्रनीलमणिके टुकड़ोंके समान चिकने काले बादल इधर-उधर घूम रहे हैं, जिनमें पहली बरसातसे सींची हुई धरतीकी सोंधी-सोंधी गन्ध आ रही है और जिनमें पसीना निकलने और सूखनेसे कुछ और ही शोभा बढ़ जाती है ॥ २० ॥ ये दुर्भाग्यके समान बरसातके दिन (दुर्दिन) हमारे मनको दुखी किए डाल रहे हैं क्योंकि इनमें सब उद्योग (व्यवसाय) निष्फल हो जाते हैं, एकाएक ठण्ढक (मूर्खता) बढ़ जाती है, मित्र (सूर्य, मित्र) के भी दर्शन नहीं होते, और अधिक क्या कहें जिस जीवन (प्राण, जल) को सारा संसार चाहता है वह भी व्यर्थ (निरर्थक, मैला) हो जाता है ॥ २१ ॥ बरसातके जिन दिनोंमें खिले हुए कन्दलीके पत्तोंके बीच बैठकर मतवाले भौंरे गुनगुनाते हैं, उन दिनों जो स्वप्नमें भी अपनी प्यारीको छोड़कर परदेश जानेकी बात सोचता है उस बिना सींगवाले बैल (मूर्ख) को दूरसे नमस्कार है ॥ २२ ॥ लो! बादल घिर आए हैं, मोर बोलने लगे हैं, बिजली कौंध रही है, चारों ओर केवड़ेमें बसा हुआ वायु

इतोऽपि यदि नागतः प्रियतमो नु मन्येऽधुना दधाति मकरध्वजस्त्रुटितशिञ्जिनीकं धनुः ॥ २३ ॥ कदम्बसर्जार्जुनकेतकीवनं विकम्पयँस्तत्कुसुमाधिवासितः। ससीकराम्भोधरसङ्गशीतलः समीरणः कं न करोति सोत्सुकम् ॥ २४ ॥ का तारैर्मम गर्जितैरुपरता धाराम्बुभिः का हता का मोहं गमिता वियोगविधुरा का वा कदम्बानिलैः। नीता का च विलोलतां मदकलैः केकारवैर्बर्हिणामित्थं पान्थगृहेषु पश्यति घनो विद्युत्प्रदीपैरिव ॥ २५ ॥ काप्यङ्घ्री रङ्गयन्त्या ऽरुणयति रमणी भूषणैर्भाति काचिद्धावयत्यन्या पराऽपि प्रलसति लहरीलक्ष्मवासो वसाना। यत्रान्या स्नेहपूरान्वितरति च मुदं याति दोलाभिरन्या सा श्रृङ्गारद्वितीया रचयति न मनः कस्य श्रृङ्गारमग्नम् ॥ २६ ॥ कामेन कामं प्रहिता जवेन प्रावृट् चचाल त्रिजगद्विजेतुम्। किं चन्द्रबिम्बं दधि भक्षयन्ती सन्धारयन्ती हरितः शुभाय ॥ २७ ॥ कालागुरुप्रचुरचन्दनचर्चिताङ्ग्यः पुष्पावतंससुरभीकृतकेशपाशाः। श्रुत्वा ध्वनिं जलमुचां त्वरितं प्रदोषे शय्यागृहं गुरुगृहात्प्रविशन्ति नार्यः ॥ २८ ॥ काले नीलवलाहके सतडिति प्रीतिप्रदे वर्हिणामाश्चर्यं कथयामि वः श्रृणुत भो यद्वृत्तमस्मद्गृहे। सौभाग्यव्ययशङ्कयैकशयने कान्ताप्रियाभ्यामहो मानिभ्यां बत रात्रिमेव सकलां चीर्णं प्रवासिव्रतम् ॥ २९ ॥ किञ्चिन्मुद्रितपांसवः शिखिकुलैरुत्कण्ठमालोकिता जीर्णावासरुदद्दरिद्रगृहिणीश्वासानिलैर्जर्जराः। एते ते निपतन्ति नूतनघनात्प्रावृड्भरारम्भिणो विच्छायीकृतविप्रयुक्तवनितावक्त्रेन्दवो बिन्दवः ॥ ३० ॥ कुवलयदलनीलैरुन्नतैस्तोयनम्रैर्मृदुपवनविधूतैर्मन्दमन्दं चलद्भिः। अपहृतमिव चेतस्तोयदैः सेन्द्रचापैः पथिकजनवधूनां तद्वियोगाकुलानाम् ॥ ३१ ॥ क्षपां क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बु सरितां प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य

बहने लगा है, ऐसे समयमें भी यदि प्रियतम न आए तो मैं समझ लूँगी कि कामदेवके धनुषकी डोरी टूट गई है ॥ २३ ॥ कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और केतकीसे भरे हुए जङ्गलको कँपाता हुआ, उन वृक्षोंके फूलोंकी सुगन्धमें बसा हुआ और चन्द्रमाकी किरणों तथा बादलोंको छूकर ठण्डा होकर बहनेवाला वायु किसे मस्त नहीं कर देता ॥ २४ ॥ वर्षा-ऋतुमें बिजलीरूपी दीपक लेकर बादल मानो परदेसियोंके घरोंमें यह देखता-फिरता है कि मेरी घोर गर्जनासे कौन ठण्डी पड़ गई, कौन पानीकी धाराओंसे मर गई, कौन वियोगिनी कदम्बके पवनके झोंकोंसे मूर्च्छित हो गई तथा मदमाते मोरोंकी कूकसे कौन नवेली चञ्चल हो उठी ! ॥ २५ ॥ यह श्रावण शुक्ल द्वितीया (श्रृङ्गार-दोयज) किस पुरुषके मनको श्रृङ्गार रसमें मग्न नहीं कर देती जिसमें कोई नवेली तो मेंहदीसे अपने पाँव रँग रही है, कोई गहने पहनकर चमक रही है, कोई लहरिया धारीवाले वस्त्र पहनकर इठला रही है, कोई अपने स्नेहियोंको आनन्द दे रही है और कोई झूला झूल रही है ॥ २६ ॥ कामदेवके द्वारा भेजी हुई वर्षा जब तीनों लोकोंको जीतनेके लिये बड़े वेगसे चलने लगी उस समय उसने शुभ शकुन समझकर दिशाओंकी हरियालीको दूबका अङ्कुर बनाकर हाथमें ले लिया और चन्द्रमारूपी दही पी लिया ॥ २७ ॥ जिन कामिनियोंके अङ्गोंपर अगर मिला हुआ चन्दन पुता हुआ है और जिनके बाल फूलोंके गुच्छोंसे महक रहे हैं, वे बादलोंकी गड़गड़ाहट सुनकर झट अपने घरके बड़े-बूढ़ोंके पाससे उठकर सही-साँझ ही अपने शयन-घरमें घुस जाती हैं ॥ २८ ॥ हे भाई ! आप लोग सुनिए ! वर्षाके जिन दिनोंमें काले बादलोंकी घटा उठती है, बिजली चमकती है, और मोर हर्षसे नाचते हैं उन दिनों हमारे घरमें एक ऐसी बड़ी अचरज-भरी घटना हुई कि मानहानिके डरसे एक ही बिछौनेपर बैठे हुए एक दूसरेसे रूठे नायक-नायिकाने सारी रात परदेसीके नियमका पालन किया ॥ २९ ॥ नये-नये बादलोंसे ऐसी बूँदें बरस रही हैं जिन्होंने धूल दबा दी है, जिन्हें मोर बड़े चावसे देख रहे हैं, जो टूटी छानीके तले रोती हुई किसी दरिद्र स्त्रीकी साँसोंसे टूट-टूटकर बिखर रही हैं, जो बरसात प्रारम्भ कर रही हैं और जिन्होंने वियोगिनी नारियोंके मुखचन्द्र मुरझा दिए हैं ॥ ३० ॥ कमलके पत्तोंके समान काले पानीके बोझसे झुक जानेके कारण बहुत थोड़ी ऊँचाईपर छाए हुए और धीमे-धीमे पवनके सहारे धीरे-धीरे चलनेवाले जिन बादलोंमें इन्द्रधनुष निकल आया है, उन्होंने परदेशमें गए हुए लोगोंकी उन दुलहिनोंकी सब सुध-बुध हर ली है जो अपने प्यारोंके बिछोहमें व्याकुल हुई बैठी हैं ॥ ३१ ॥ बरसातके दिनोंमें बादलोंमें चमकती हुई बिजली ऐसी जान पड़ती है मानो बादल अपने बिजलीरूपी दीपकके प्रकाशमें सूर्यको ढूँढते हुए चारों ओर यह कह-कहकर ललकारते हुए घूम रहे हों कि 'वह सूर्य कहाँ जा छिपा है जिसने रातें छोटी कर दीं,

सकलम् । क्व सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति तदन्वेषणपरास्तडिद्दीपालोका दिशि दिशि चरन्तीव जलदाः ॥३२॥ गजकदम्बकमेचकमुच्चकैर्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे। अभिससार न वल्लभमङ्गना न चकमे च कमेकरसं रहः ॥ ३३ ॥ गम्भीरोद्गर्जितेन त्रिभुवनविवरं व्याप्य भूकम्पदेन प्राचीमाक्रम्य विश्वं परिपिबति पयोमेदुरे कालमेघे । दृष्टा धाराकदम्बस्तवकधवलिताः प्रोषितैरुन्मयूरा मूर्च्छाश्यामायमाना यममहिषकुलाकृष्यमाणा इवाशाः ॥ ३४ ॥ गर्जति वारिदपटले वर्षति नयनारविन्दमबलायाः । भुजवल्लिमूलसेके विरहलता पल्लवं सूते ॥ ३५ ॥ गोकर्णं गाहमानाः पृथुतरपृषतग्राहिणः शम्बरौघानाकर्षन्तो दिगन्तानपि च विदधतः कन्दलीसुप्रचारान् । एते धावन्ति वार्धश्रवसमुरुधनुर्धारयन्तः समन्तादावृण्वन्तोऽभ्रवीथिं वनमिव शबरभ्रान्तिभाजोऽम्बुवाहाः ॥ ३६ ॥ घनतरघनवृन्दच्छादिते व्योम्नि लोके सवितुरथ हिमांशोः सङ्कथैव व्यरंसीत् । रजनिदिवसभेदं मन्दवाताः शशंसुः कुमुदकमलगन्धानाहरन्तः क्रमेण ॥ ३७ ॥ घनतरघनवृन्दच्छादिते व्योम्नि लोके सवितुरथ हिमांशोः सङ्कथैव व्यरंसीत् । विरहमनुभवन्ती सङ्गमञ्चापि भर्त्रा रजनिदिवसभेदं चक्रवाकी शशंस ॥ ३८ ॥ घनसमयमहीभृत्पत्तनस्याम्बरस्य त्रिभुवनपतिचापं गोपुरत्वं प्रपेदे। अपि विरसवचोभिः प्राप्तपङ्काभिषेकाः कुकवय इव भेकाः खेदयन्ति स्म लोकान् ॥ ३९ ॥ घनोद्यमे गाढतमेऽन्धकारे न कोऽपि निर्णेतुमहः शशाक । स्पृशन्मुहुः किन्तु करेण नाभीसरोजमाभीरकुलाधिनाथः ॥ ४० ॥ चञ्चद्विद्युद्वलया विरचितघनकृत्तिपात्रजलसेका। प्रावृड्रजकी परितः प्रक्षालनमम्बरस्य विदधाति ॥४१॥ चन्द्रबिम्बरविबिम्बतारकामण्डलानि घनमेघडम्बरैः । भक्षितानि जलदोदरेषु तद्रोदनध्वनिरिवैष गर्जितम् ॥ ४२ ॥ चलद्बलाकादशनाभिरामः परिस्रवद्वारिमदाम्बुधारः। आहन्यमानस्तडिदङ्कुशेन स्मरस्य दध्वान घनद्विपेन्द्रः

जो बल-पूर्वक नदियोंका जल उठा ले गया और जिसने सारी धरतीको तपाकर सब पेड़ भी सुखा दिए' ॥ ३२ ॥ सावनके महीनेमें हाथीके झुण्डके समान काले-काले बादल आकाशमें घिरे देखकर ऐसी कौन नवेली है जो अपने पतिके पास स्वयं न चली गई हो और प्रेमके साथ एकान्तमें उससे रम न गई हो ॥ ३३ ॥ जिस समय पानी-भरे काले-काले बादल धरतीको कँपा देनेवाली गर्जना करते हुए, पूर्व दिशापर झपटकर त्रैलोक्यमें घुसकर मानो सारे विश्वको पिए जा रहे थे उस समय पानीकी गिरती हुई धाराओंसे उजली-उजली और मोरोंसे सजी हुई दिशाओंको परदेसियोंने इस रूपमें देखा मानो यमराजके भैंसे उन दिशाओंको घसीटे लिए जा रहे हों और वे मूर्च्छित हो-होकर काली पड़ रही हों ॥ ३४ ॥ बादल अभी गरजे ही थे कि नायिकाके नेत्र-कमल बरसने लगे, बाहुरूपी लताकी जड़ (कन्धा) सींची जाने लगी और विरहरूपी लतामें पत्ते निकल आए ॥ ३५ ॥ गोकर्ण-क्षेत्रको घेरे हुए, बड़ी-बड़ी बूँदोंसे भरे हुए, सब ओर जलकी बाढ़ लानेवाले, चारों ओर कन्दलीकी हरियाली फैलानेवाले, इन्द्रधनुषकी छाप धारण किए हुए और चारों ओरसे आकाशको घेरकर फैले हुए बादल वनमें दौड़ते हुए भीलोंके समान दिखाई पड़ रहे हैं ॥ ३६ ॥ बरसातके दिनोंमें जब आकाशमें घने बादलोंकी घटा छा गई और सूर्य-चन्द्रमाकी चरचा ही जाती रही, उस समय वायुमें बारी-बारीसे कुमुद और कमलकी सुगन्धि सूँघकर ही लोग दिन और रातकी पहचान कर पाते थे ॥ ३७ ॥ जब काले-काले घने बादलोंसे आकाश घिर गया और सूर्य तथा चन्द्रमा दोनोंका कोई ठिकाना न रहा, उस समय चकवे-चकवीके मिलने और अलग होनेको देखकर ही रात और दिनकी पहचान होती थी ॥ ३८ ॥ बरसातरूपी राजाके आकाशरूपी नगरमें इन्द्रधनुष ही उसका बड़ा-सा फाटक जान पड़ता है और कीचड़में टर्र-टर्र करते हुए मेंढक मूर्ख कविके कविता-पाठके समान लोगोंके कान फोड़े डाल रहे हैं ॥ ३९ ॥ घटाएँ घिर आनेपर जब चारों ओर घना अँधेरा छा जानेके कारण दिन-रातकी पहचान असम्भव हो गई तब गोपोंके स्वामी भगवान् विष्णु अपनी नाभिपर उगे हुए कमलको ही टटोलकर जान लेते थे कि दिन है या रात ॥ ४० ॥ चमकती हुई बिजलीका कङ्गन पहने हुए यह बरसातरूपी धोबिन बड़े-बड़े बादलरूपी चमड़ेके खोल (मशक) से जल डाल-डालकर चारों ओरसे अम्बर (आकाश, वस्त्र) को धोए डाल रही है ॥ ४१ ॥ बरसातके दिनोंमें घिरे हुए बादलोंने जो चन्द्रमा, सूर्य और तारोंको हड़प कर लिया, वही उनके रोनेकी ध्वनि मानो इस गर्जनके रूपमें सुनाई दे रही है ॥ ४२ ॥ यह बादल नहीं गरज रहा है वरन् कामदेवका हाथी चिग्घाड़ मार रहा है, जिसमें

॥ ४३ ॥ जलदपङ्क्तिरनर्तयदुन्मदं कलविलापि कलापि-
कदम्बकम् । कृतसमार्जनमर्दलमण्डलध्वनिजया
निजया स्वनसम्पदा ॥ ४४ ॥ जलधरस्य तटे तडितो
वपुर्ग्रहगणग्रसनानि वितन्वतः । उदरमाशु विभिद्य
विनिर्गतास्तरविकरा इव काञ्चनरोचिषः ॥ ४५ ॥ जलभ-
रनमितानामाश्रयोऽस्माकमुच्चैरयमिति जलसेकैस्तोय-
दास्तोयनम्राः । अतिशयपरुषाभिर्ग्रीष्मवह्नेः शिखाभिः
समुपजनिततापं ह्लादयन्तीव विन्ध्यम् ॥ ४६ ॥ जीमूत-
मालाग्रथितैकजाला विद्युद्विशालाः स्मरमत्तबालाः ।
हंसप्रघर्षाः कृतलोकहर्षाः सन्तापघर्षाः सखि भान्ति
वर्षाः ॥ ४७ ॥ तडिदुल्कामुखा मेघाश्चर्वितानां वियो-
गिनाम् । उद्वमन्त्यस्थिखण्डानि करकाश्मच्छलादमी
॥ ४८ ॥ तडिल्लताशक्रधनुर्विभूषिताः पयोधरास्तोय-
भरावलम्बिनः । स्त्रियश्च काञ्चीमणिकुण्डलोज्ज्वला
हरन्ति चेतो युगपत्प्रवासिनाम् ॥ ४९ ॥ तृणोत्करैरु-
द्गतकोमलाङ्कुरैश्चितानि नीलैर्हरिणीमुखक्षतैः । वनानि
वैन्ध्यानि हरन्ति मानसं विभूषितान्युद्गतपल्लवैर्द्रुमैः
॥ ५० ॥ तृषाकुलैश्चातकपक्षिणां कुलैः प्रयाचितास्तोय-
भरावलम्बिनः । प्रयान्ति मन्दं बहुधारवर्षिणो बला-
हकाः श्रोत्रमनोहरस्वनाः ॥५१॥ दधति वरकुचाग्रैरु-
न्नतैर्हारयष्टिं प्रतनुसितदुकूलान्यायतैः श्रोणिबिम्बैः ।
नवजलकणसेकादुद्गतां रोमराजीं ललितवलिविभङ्गैर्म-
ध्यदेशैश्च नार्यः ॥ ५२ ॥ दलितमौक्तिकचूर्णविपाण्डवः
स्फुरितनिर्झरशीकरचारवः । कुटजपुष्पपरागकणाः
स्फुटं विदधिरे दधिरेणुविडम्बनाम् ॥५३॥ दिङ्ना-
रीकबरीभरभ्रमकराः प्रावृड्वधूटीनटीनीलीरक्तपटाः
प्रसूनधनुषः कार्ष्णायसाः कङ्कटाः । व्योमोत्तालतमाल-
मांसलदलश्यामायमाना घनाः प्रोन्मीलन्ति सतैलकज्ज-

उड़ते हुए बगुले ही उस हाथीके सुन्दर दाँत हैं, बरसता हुआ जल ही मदकी धारा है और बिजली ही उसपर बार-बार चलाया जाता हुआ अङ्कुश है ॥ ४३ ॥ बादलोंकी जिस घटाने भलीभाँति मिले हुए मृदङ्गकी ध्वनि जीत ली है, उसने अपने गर्जनसे सुन्दर बोलनेवाले मतवाले मोरोंको नचा दिया है ॥ ४४ ॥ बादलोंके किनारे-किनारे चमककर तारा-नक्षत्र आदिको निगलती हुई-सी बिजलियाँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो सुनहली कान्तिवाले सूर्यकी किरणें ही बादलोंका पेट फाड़कर निकल आई हों ॥ ४५ ॥ गर्मीकी आगकी अति भयङ्कर लपटोंसे झुलसे हुए विन्ध्याचलकी तपनको पानीके बोझसे झुके हुए बादल अपने ठण्डे जलकी फुहारोंसे मानो यही समझकर बुझा रहे हैं कि जब हम पानीके बोझसे लदे आते हैं उस समय यही ऊँचा होकर हमें सहारा देता है ॥ ४६ ॥ हे सखी! अब वर्षा ऋतुके वे सुन्दर दिन आ गए जिनमें बादलोंकी घटाओंसे भरा आकाश जाल-सा लग रहा है, उनमें रह-रहकर बिजलियाँ चमकने लगी हैं, नवेलियाँ कामकी मस्तीसे मतवाली हो रही हैं, हंस भाग गए हैं, संसार प्रसन्न हो उठा है और गर्मीका सारा ताप मिट गया है ॥ ४७ ॥ बिजली और उल्कासे भरे बादल ऐसे जान पड़ते हैं मानो उन्होंने जिन वियोगियोंको चबा डाला है उन्हींकी हड्डियोंको ओलोंके रूपमें उगल रहे हों ॥ ४८ ॥ एक ओर तो इन्द्रधनुष और बिजलीके चमकते हुए पतले डोरोंसे सजी हुई तथा पानीके भारसे झुकी हुई काली-काली घटाएँ और दूसरी ओर करधनी तथा रत्न-जड़े कुण्डलोंसे सजी हुई स्त्रियाँ, दोनों ही परदेसमें बैठे हुए लोगोंका मन एक साथ हरे ले रही हैं ॥ ४९ ॥ हरिणियोंके मुँहसे कुतरी हुई हरी-हरी घासों और नई-नई कोंपलोंवाले वृक्षोंसे छाए हुए विन्ध्याचलके जङ्गल बरसातमें किसका मन नहीं लुभा लेते ॥५०॥ देखो, पानीके बोझसे नीचे झुके हुए, धुँआँधार पानी बरसानेवाले वे बादल कानोंको भली लगनेवाली गड़गड़ाहट करते हुए धीरे-धीरे घिरे चले आ रहे हैं जिनसे पपीहे 'पीउ-पीउ' करके पानी माँग रहे हैं ॥ ५१ ॥ बरसातके दिनोंमें जब नवेलियाँ अपने बड़े-बड़े गोल-गोल उठे हुए सुन्दर स्तनोंपर मोतियोंकी मालाएँ और अपने भारी-भारी गोल-गोल नितम्बोंपर महीन उजली रेशमी साड़ियाँ पहन लेती हैं, उस समय उनके पेटपर दिखाई पड़नेवाली सुन्दर तिहरी सिकुड़नोंपर जब वर्षाकी नई फुहार पड़ती है तो वहाँ के नन्हें-नन्हें रोएँ उठ खड़े होते हैं ॥ ५२ ॥ पिसे हुए मोतीके चूरेके समान उजले तथा फुदकती हुई मछलियोंसे उछाले हुए जलकी बूँदोंके समान सुन्दर नन्हें-नन्हें कुरैयाके फूलोंके पराग ऐसे दिखाई देते थे मानो दहीके छींटे पड़े हों ॥ ५३ ॥ तेल मिले हुए काजल और स्याहीके कीचड़के ढेरकी-सी कान्तिवाले बरसातके वे बादल, जो दिशारूपी नायिकाओंके भारी जूड़ेके समान दिखाई पड़ते हैं ऐसे जान पड़ते हैं मानो, वर्षारूपी नाचती हुई बहूके नीले-नीले वस्त्र हों, कामदेवके काले लोहेसे बने

लमषोजम्वालजालत्विषः ॥५४॥ दिग्भस्त्रामुखमुच्यमानपवनप्रेङ्खोलनावर्त्तितज्ज्वालाजालजटालवैद्युतशिखि - प्रद्योतमानात्मभिः । नीरन्ध्रं रसगर्भितैरकलुषव्योमार्कचन्द्रान्मुहुः कालोऽयं धमतीव तोयदमहामूषासहस्रैर्दिवि ॥ ५५ ॥ द्विरददन्तवलक्षमलक्ष्यत स्फुरितभृङ्गमृगच्छविकेतकम् । घनघनौघविघट्टनया दिवः कृशशिखं शशिखण्डमिव च्युतम् ॥ ५६ ॥ दिशां हाराकाराः शमितशमभाराः शमवतामसूचीसञ्चाराः कृतमदविकाराश्च शिखिनाम् । हृताध्वव्यापारास्तुहिनकणसारा विरहिणीमनःकीर्णाङ्गाराः किरति जलधारा जलधरः ॥५७॥ द्रुतसमीरचलैः क्षणलक्षितव्यवहिता विटपैरिव मञ्जरी । नवतमालनिभस्य नभस्तरोरचिररोचिररोचत वारिदैः ॥ ५८ ॥ दृष्ट्वाडम्बरमम्बरे घनकृतं सौदामिनीनर्तकीनृत्यारम्भमृदङ्गमङ्गलरवं श्रुत्वा च तद्गर्जितम् । पुष्प्यत्पुष्पभरानताङ्गणतरुस्कन्धावसद्वायसक्वाणाकर्णनसोत्सवप्रियतमं पान्था ययुर्मन्दिरम् ॥ ५९ ॥ देवे कुर्वति दुर्दिनव्यतिकरं नास्त्येव तन्मन्दिरं यत्राहारगवेषणाय बहुशो नासीद्गता वायसी । किन्तु प्राप न किञ्चन क्वचिदपि प्रस्वापहेतोस्तथाऽप्युद्भिन्नार्भकचञ्चुषु भ्रमयति स्वं रिक्तचञ्चूपुटम् ॥ ६० ॥ देवे वर्षत्यशनपवनव्यापृता वह्निहेतोर्गेहाद्गेहं फलकनिचितैः सेतुभिः पङ्कभीताः । नीध्रप्रान्तानविरलजलान्पाणिभिस्ताडयित्वा शूर्पच्छत्रस्थगितशिरसो योषितः सञ्चरन्ति ॥ ६१ ॥ धृतबिसवलयावलिर्वहन्ती कुमुदवनैकदुकूलमात्तबाणा। शरदमलतले सरोजपाणौ घनसमयेन वधूरिवाललम्बे ॥ ६२ ॥ नन्दयति कस्य न मनश्चपलैर्वनधूलिधूसरच्छायैः । आक्रम्य पुत्रकैरिव मलिनीकृतमम्बरं जलदैः ॥ ६३ ॥ नवकदम्बरजोरुणिताम्बरैर-

---

कवच हों अथवा आकाशके बड़े ऊँचे तमाल वृक्षोंके मोटे-मोटे काले पत्ते हों ॥५४॥ वर्षाकालके आकाशको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो कालने स्वच्छ आकाश, सूर्य और चन्द्रमाको रस (जल, घी) से लबालब भरी हुई सहस्रों बादलरूपी बड़ी-बड़ी उन कढ़ाइयोंमें डालकर स्वच्छ करनेके लिये आगको धौंकना प्रारम्भ किया हो जो दिशारूपी धौंकनीके पवनके वेगसे निकलती हुई बिजलीरूपी चिनगारियोंसे घिरकर धधक रही हैं ॥५५॥ हाथीके दाँतके समान उजले केवड़ेपर भौंरोंका मँडराना देखकर ऐसा लगता था मानो बादलोंके धक्केसे चन्द्रमाका कोई टुकड़ा टूटकर अपने कलंकके साथ-साथ आकाशसे गिर पड़ा हो ॥ ५६ ॥ बादलोंसे ऐसी जलकी धारा बरस रही है जो दिशाओंकी हार-सी लगती है, जिसने तपस्वियोंकी शान्ति भङ्ग कर डाली है, जिसमें सुईतक नहीं घुस पा सकती, जिसने मोरोंको मतवाला बना दिया है, लोगोंका आना-जाना बन्द कर दिया है, जिसमेंसे नन्हीं-नन्हीं ठण्ढी फुहारें छूट रही हैं और जो वियोगिनी नारियोंके मनपर अङ्गारे बरसा रही है ॥ ५७ ॥ बादलोंमें लुकती-चमकती हुई बिजली हरे-भरे तमालके समान नीले आकाशरूपी वृक्षमें ऐसी शोभा पा रही थी मानो आँधीसे हिलती हुई डालियोंमें कभी दिखाई देती और कभी छिपती हुई मंजरी हो ॥ ५८ ॥ पथिकने ज्योंही आकाशमें घिरे हुए बादलोंको देखकर उसमें बिजली-रूपी नर्तकीके नाचके प्रारम्भमें बजनेवाले मृदङ्गकी मङ्गलध्वनिके समान उसका गर्जन सुना त्योंही आँगनमें खिले हुए फूलोंके भारसे झुके हुए पेड़पर बैठे हुए कौएकी काँव-काँवसे गूँजते हुए अपने उस प्यारे घरमें जा पहुँचा जहाँ उसकी पत्नी उसे बुलानेके लिये कौओंको बलि दे रही थी ॥ ५९ ॥ बादलोंसे घिरे हुए बरसातके दिनोंमें ऐसा एक भी घर न बचा जहाँ कौवी चुग्गा ढूँढ़ने न पहुँची हो किन्तु उसे कहींपर भी इतना-तक न मिल पाया जिसे खाकर वह नींदभर सो रहे, फिर भी जब उसके बच्चे ऊपर उठा-उठाकर अपनी चोंच फैलाते हैं तो वह अपनी रीती चोंच ही उनकी चोंचोंमें डालकर उन्हें फुसलाती रहती है ॥६०॥ पानी बरसते समय स्त्रियाँ रसोईके लिये इतनी उतावली थीं कि छप्परकी ओरीसे गिरते हुए जलको हाथसे बचाती हुई, सिरपर सूप रखकर कीचड़के डरसे काठके पटरेपरसे चलती हुई आग लेनेके लिये एक घरसे दूसरे घर जा रही थीं ॥ ६१ ॥ शरद्रूपी जो नायिका कमलनालका कङ्गन और कुमुदकी साड़ी पहने हुए थी, उस नीली कटसरैयाके फूलके रूपमें बाण खोंसी हुई दुलहिनका कमलरूपी हाथ वर्षा-रूपी छैलेने पकड़कर उसके साथ विवाह कर लिया ॥ ६२ ॥ जैसे धूल सने हुए बच्चोंसे मैले किए हुए वस्त्र देखकर सबका जी खिल उठता है वैसे ही धूलके समान मटमैले काले बादलोंसे घिरे हुए आकाशको देखकर किसका मन हर्षसे नहीं नाच उठता ॥ ६३ ॥ कदम्बके नये-नये फूलोंके परागसे आकाशको लाल कर देनेवाले तथा कुकरमुत्तेकी गन्धसे भरे हुए वनके वायुने कामियोंके मनमें स्त्रियोंके प्रति नया-नया प्रेम उपजा दिया ॥ ६४ ॥ वर्षाके नये-नये जलकी फुहारोंसे ठण्ढा बना हुआ

धिपुरन्ध्रि शिलीन्ध्रसुगन्धिभिः । मनसि रागवतामनुरागिता नवनवा वनवायुभिरादधे ॥ ६४ ॥ नवजलकणसङ्गाच्छीततामादधानः कुसुमभरनतानां लासकः पादपानाम् । जनितरुचिरगन्धः केतकीनां रजोभिः परिहरति नभस्वान्प्रोषितानां मनांसि ॥६५॥ नवपयःकणकोमलमालतीकुसुमसन्ततिसन्ततसङ्गिभिः । प्रचलितोडुनिभैः परिपाण्डिमा शुभरजोभरजोऽलिभिराददे ॥६६॥ निजरजः पटवासमिवाकिरद् धृतपटोपमवारिमुचां दिशाम् । प्रियवियुक्तवधूजनचेतसामनवनी नवनीपवनावलिः ॥ ६७ ॥ नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः क्वचित्प्रभिन्नाञ्जनराशिसन्निभैः । क्वचित्सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितं व्योमघनैः समन्ततः ॥ ६८ ॥ निद्रितस्य वत शम्बरद्विषो जागराय किमु वारिवाहकः । ऊर्जितं दधदतीव गर्जितं सम्भ्रमन्नभसि सम्भ्रमाययौ ॥ ६९ ॥ निपातयन्त्यः परितस्तटद्रुमान्प्रवृद्धवेगैः सलिलैरनिर्मलैः । स्त्रियः सुदुष्टा इव जातविभ्रमाः प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम् ॥ ७० ॥ निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः । धारानिपातैः सह किं नु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्त्ततरं ररास ॥ ७१ ॥ नृपतेरहो महोभिः प्रायः पीतानि नाकनीराणि । नो चेत्प्रजल्प जलदाः प्रागिव वर्षासु किं नु वर्षन्ति ॥ ७२ ॥ नेमाः सीमन्तिन्यः सौदामिन्यः पयोदमालायाः । निर्गत्य सौधलग्ना विलसन्ति महे नभस्तृतीयायाः ॥ ७३ ॥ नैतद्वारिदगर्जितं रतिपतिप्रस्थानढक्कारवो नैते वारिधराः स्रवन्मदजलास्तत्सिन्धुराः प्रोद्धुराः । नैषा विद्युदियं विभाति रुचिरा तच्चन्द्रहासप्रभा मन्ये मानिनि मानदुर्गमधुना जेतुं किमायात्यसौ ॥ ७४ ॥ पञ्चेषोर्जयघोषणा गुणनिधिस्त्रैलोक्यचित्तातिथिस्तूर्यं ताण्डवसम्विधासु शिखिनां हंसप्रवासानकः । सूतिस्वस्त्ययनं विदूरवसुधारत्नाङ्कुराणामयं गम्भीरस्तनितध्वनिर्जलमुचां रोदोगृहं गाहते ॥ ७५ ॥ पटलमम्बुमुचां पथिकाङ्गना सपदि

पवन फूलोंके बोझसे झुके हुए पेड़ोंको नचा रहा है, केतकीके फूलोंका पराग लेकर चारों ओर मन-भावनी सुगन्ध फैला रहा है और परदेस गए हुए प्रेमियोंके मन चुराए ले रहा है ॥ ६५ ॥ नये-नये जलकी बूँदें पड़नेसे जो मालतीके फूल खिल गए हैं, उनपर बैठे हुए भौंरे परागसे उजले होकर उड़ते हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो तारोंके झुण्ड उड़े चले जा रहे हों ॥६६॥ वियोगिनी नवेलियोंका मन झकझोर देनेवाले फूले हुए कदम्बके वृक्षोंने बादलरूपी साड़ी पहनी हुई दिशाओंपर पटवास (कपड़ोंको सुगन्धित करनेवाले चूर्ण) के समान अपना पराग छिड़क दिया ॥ ६७ ॥ कहीं तो अत्यन्त नीले कमलकी पङ्खुड़ी जैसे नीले, कहीं गर्भिणीके स्तनोंके समान पीले और कहीं घुटे हुए आँजनकी पिण्डीके समान काले-काले बादल आकाशमें इधर-उधर फैल रहे हैं ॥ ६८ ॥ गड़गड़ाहट मचाता और आकाशमें चक्कर लगाता हुआ बादल क्या सोए हुए कामदेवको जगानेके लिये एकाएक आ धमका है ॥ ६९ ॥ जैसे कुलटा स्त्रियाँ प्रेममें अन्धी होकर विना सोचे-विचारे अपनेको खो बैठती हैं वैसे ही ये नदियाँ भी अपने मटमैले पानीकी बाढ़से जहाँ-तहाँ तीरके वृक्षोंको ढहाती हुई वेगसे समुद्रकी ओर दौड़ी चली जा रही हैं ॥ ७० ॥ बादलका गर्जन ऐसा जान पड़ता है मानो बादलने अपनी बिजलीरूपी आँखोंसे रातको अभिसारिकाओंका मुख देखकर और समझकर कि जलधाराके साथ-साथ चन्द्रमा ही धरतीपर गिर गया है, अत्यन्त दुःखके साथ चिल्ला-चिल्लाकर रोना प्रारम्भ कर दिया हो ॥७१॥ हमारे महाराजके तेजसे ही आकाशका जल सूख गया है, नहीं तो तुम्हीं बताओ, आजकल बरसातमें पहले जैसा पानी क्यों नहीं बरसता ॥ ७२ ॥ जिन्हें तुम बादलोंकी बिजली समझ रहे हो वे वास्तवमें वे सुहागिन नवेलियाँ हैं जो श्रावण शुक्ल तृतीया (सिंगार-तीज) के उत्सवमें निकल-निकलकर अपनी-अपनी छतोंपर खड़ी रँगरेलियाँ कर रही हैं ॥ ७३ ॥ यह बादलोंकी गड़गड़ाहट नहीं है वरन् कामदेवकी या नितम्बापेकी ढम-ढम है, ये बादल भी नहीं हैं वरन् मद बर उस समय हाथी हैं और यह बिजली भी नहीं है वरन् सु सिकुडारोंकी चमक है अतः हे रूठनेवाली ! कहीं तुम्हारे मानरूपी दुर्गको जीतनेके लिये कामदेवने चढ़ाई तो नहीं कर दी है ॥ ७४ ॥ आकाश-पातालको कँपाए डालनेवाले बादलोंकी प्रचण्ड गड़गड़ाहट ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेवके जीतकी डुग्गी हो, सद्‌गुणोंसे भरा होनेके कारण तीनों लोकोंमें रहनेवाले प्राणियोंके चित्तका अतिथि हो, मोरोंका ताण्डव-नृत्य प्रारम्भ करानेवाली तुरही हो, हंसोंको भगानेका नगाड़ा हो तथा पृथ्वीपर वैदूर्य मणि जैसे हरे-हरे अङ्कुररूपी रत्नोंके जन्म समयका स्वस्ति-वाचन हो ॥ ७५ ॥ अपनी सखियोंकी डबडबाई हुई आँखें देखनेसे घबराकर जब

जीवितसंशयमेष्यती। सनयनाम्बुसखीजनसम्भ्रमाद्विधुरबन्धुरबन्धुरमैक्षत ॥७६॥ पतत्यविरतं वारि नृत्यन्ति च कलापिनः। अद्य कान्तः कृतान्तो वा दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ ७७ ॥ पयोधरैर्भीमगभीरनिस्वनैस्तडिद्भिरुद्वेजितचेतसो भृशम्। कृतापराधानपि योषितः प्रियान्परिष्वजन्ते शयने निरन्तरम् ॥ ७८ ॥ परिसुरपतिसूनुधाम सद्यः समुपदधन्मुकुलानि मालतीनाम्। विरलमपजहार बद्धबिन्दुः सरजसतामवनेरपां निपातः ॥ ७९ ॥ पापं केऽपि जगुर्निदानमनिलं प्राहुः परे नैर्ऋतं नक्षत्रं कतिचिज्जजल्पुरितरे दुर्दैवमूचुर्नृणाम्। यत्तु प्रावृषि वैपरीत्यमधुना लोके समुज्जृम्भते तत्सुप्ते जगदीश्वरे जलमुचामन्याय उन्नीयते ॥ ८० ॥ प्रणयकोपभृतोऽपि पराङ्मुखाः सपदि वारिधरारवभीरवः। प्रणयिनः परिरब्धुमथाङ्गना ववलिरे वलिरेचितमध्यमाः ॥ ८१ ॥ प्रतिदिशमभिगच्छताभिमृष्टः ककुभविकाससुगन्धिनानिलेन। नव इव विबभौ स चित्तजन्मा गतधृतिराकुलितश्च जीवलोकः ॥ ८२ ॥ प्रभिन्नवैदूर्यनिभैस्तृणाङ्कुरैः समाचिता प्रोत्थितकन्दलीदलैः। विभाति शुक्लेतररत्नभूषिता वराङ्गनेव क्षितिरिन्द्रगोपकैः ॥ ८३ ॥ प्रौढमौक्तिकरुचः पयोमुचां विन्दवः कुटजपुष्पवन्धवः। विद्युतां नभसि नाट्यमण्डले कुर्वते स्म कुसुमाञ्जलिश्रियम् ॥ ८४ ॥ बहुगुणरमणीयः कामिनीचित्तहारी तरुविटपलतानां बान्धवो निर्विकारः। जलदसमय एष प्राणिनां प्राणभूतो दिशतु तव हितानि प्रायशो वाञ्छितानि ॥ ८५ ॥ मन्दं मुद्रितपांसवः परिपतज्झङ्कारिझञ्झामरुद्वेगध्वस्तकुटीरकाग्रनिपतच्छिद्रेषु लब्धान्तराः। कर्मव्यग्रकुटुम्बिनीकुचभरस्वेदच्छिदः प्रावृषः प्रारम्भे मदयन्ति कन्दलदलोल्लासाः पयोबिन्दवः॥८६॥ मलिनहुतभुग्धूमश्यामैर्दिशो मलिना घनैरविरलतृणश्यामा भूमिर्नवोद्गतकन्दलैः। सुरतसुभगो नूनं कालः स एष समागतो मरणशरणा यस्मिन्नेते भवन्ति वियोगिनः

उसने दुखी होकर बादलोंकी ओर देखा तो उस वियोगिनीका जीवन तत्काल सङ्कटमें पड़ गया ॥७६॥ ऐसे बरसातके दिनोंमें जब धुआँधार पानी बरस रहा है और मोर नाच रहे हैं तब या तो पति ही मेरा दुःख हरेंगे या यमराज ही ॥ ७७ ॥ बादलोंकी भयङ्कर गड़गड़ाहट और बिजलीकी तड़पनसे चौंकी हुई स्त्रियाँ सोते समय अपने अपराधी पतियोंसे भी लिपट ही जाती हैं ॥ ७८ ॥ मालतीकी बेलमें कलियाँ खिलाते हुए और आकाशमें चारों ओरसे बूँदें बरसाते हुए पानीने धरतीपर उड़ती हुई सारी धूल झटपट दबा डाली है ॥ ७९ ॥ बरसातके दिनोंमें आँधी, पानी, बवण्डर आदि जो दिखाई पड़ते हैं उसका दोष पवनको, राक्षस नैर्ऋतको, नक्षत्रको तथा मनुष्योंके दुर्भाग्यको लोग देते हैं किन्तु सच तो यह है कि जगदीश्वर भगवान् विष्णुके सोए रहनेके कारण ही बादल यह सब उत्पात करनेपर उतारू होते हैं ॥ ८० ॥ स्त्रियाँ अपने प्रियतमोंसे रूठकर क्रोधमें भरी, मुख फेरे बैठी थीं कि इतनेमें अचानक बादलकी गड़गड़ाहट सुनकर वे ऐसी डर गईं कि उन्होंने जो अपनी कमर घुमाई उससे उनके पेटकी सिकुड़न मिट गई और वे अपने प्रियतमोंसे लिपट जानेके लिये मचल उठीं ॥ ८१ ॥ चारों ओर पहाड़ी चमेलीके फूलोंको छू-छूकर जो सुगन्धित वायु बह रहा था उसका स्पर्श पाकर कामदेव कुछ ऐसा नया-सा हो गया कि संसारके सभी प्राणी सहसा घबरा उठे ॥ ८२ ॥ छितराई हुई वैदूर्य मणिके समान हरी घासके कोमल अँकुओंसे भरी हुई, ऊपर निकले हुए कन्दलीके पत्तोंसे रँगी हुई और बीरबहूटियोंसे छाई हुई धरती उस नवेली जैसी दिखाई दे रही है जो उजले रत्नके अतिरिक्त अन्य सभी रङ्गोंके रत्नोंवाले आभूषणोंसे सजी हुई हो ॥८३॥ बड़े-बड़े मोतियोंके दानों तथा कुटजके फूलोंके समान दिखाई देनेवाली चमकीली बादलोंकी बूँदें ऐसी जान पड़ती थीं मानो आकाश-रूपी रङ्गमञ्चपर बिजली-रूपी नटियोंने पुष्पाञ्जलियाँ छोड़ी हों ॥८४॥ अपने अनेक सुन्दर गुणोंके कारण सुहावनी लगनेवाली, स्त्रियोंका जी चुरानेवाली, पेड़ोंकी टहनियों और बेलोंकी सच्ची सखी तथा सभी जीवोंका प्राण बनी हुई यह वर्षाऋतु आपके मनकी सब साधें पूरी करे ॥८५॥ बरसातके प्रारम्भमें उड़नेवाली धूल बैठाती हुई, हरहराते हुए बरसाती पवनके वेगसे टूटी हुई मड़ैयाके छेदोंसे टपकती हुई, सम्भोगमें मग्न स्त्रियोंके स्तनोंका पसीना सुखाती हुई और कन्दलीके पत्तोंको खिलाती हुई जलकी बूँदें बरस रही हैं ॥८६॥ धुँधुआती हुई आगके धुएँके समान काले-काले बादलोंसे सारी दिशाएँ घिर गई हैं, घनी घासकी हरियालीसे धरती हरी हो उठी है और उसमें नये-नये अङ्कुर निकल रहे हैं अतः सम्भोगके लिये निश्चित ही यह ऋतु बड़ी सुहावनी है। ऐसे समय भी जो अपनी प्यारीसे बिछुड़े रहते हैं उनके लिये

॥ ८७ ॥ महीमण्डलीमण्डपीभूतपाथोधरारब्धहर्षासु वर्षासु सद्यः। कदम्बे प्रसूनं प्रसूने मरन्दो मरन्दे मिलिन्दो मिलिन्दे मदोऽभूत् ॥ ८८ ॥ मालाः कदम्बनवकेसरकेतकीभिरायोजिताः शिरसि बिभ्रति योषितोऽद्य। कर्णान्तरेषु ककुभद्रुममञ्जरीभिरिच्छानुकूलरचितानवतंसकाँश्च ॥ ८९ ॥ मुकुलितमतिशय्य बन्धुजीवं धृतजलबिन्दुषु शाद्वलस्थलीषु। अविरलवपुषः सुरेन्द्रगोपा विकचपलाशचयश्रियं समीयुः ॥९०॥ मुदित इव कदम्बैर्जातपुष्पैः समन्तात्पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव। हसितमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनां नवसलिलनिषेकच्छिन्नतापो वनान्तः ॥९१॥ मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः। मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ॥ ९२ ॥ मेघाटोपैः स्तनितसुभगं वीक्ष्य खं हस्तिदन्तैः कृत्वा भित्तीनुपरिसदनं चामरैश्छादयित्वा। कर्पूरैस्ता मृगमदरसैर्भूमिमालिप्य शेते सैंहे चर्मण्युरसि दयिताबाहुरूढः पुलिन्दः ॥ ९३ ॥ या कामिनी सा यदि मानिनी स्यात्स्मरस्य राज्ञो ह्यपराधिनी स्यात्। इतीव दण्डैः किमु ताड्यतेऽसौ कादम्बिनी कामनृपस्य ढक्का ॥ ९४ ॥ यो गात्रापरमध्यमं निविशते मेघाम्बुधाराभयात्त्रातुं पोतमचञ्चलैव करिणी तं वत्सला भ्राम्यति। तत्कुम्भस्थलपातिनं परिहरन्नासारमम्भोजिनीपत्रच्छत्रमुदस्य गर्जति मुहुः कुप्यन् घनेभ्यो गजः ॥ ९५ ॥ रटतु जलधरः पतन्तु धाराः स्फुरतु तडिन्मरुतोऽपि वान्तु शीताः। इयमुरसि महौषधीव कान्ता निखिलभयप्रतिघातिनी स्थिता मे ॥ ९६ ॥ वज्रेण त्रिजगत्पतेर्बलरिपोरच्छिन्नपक्षाः पुरा ये भीता निममज्जुरब्धिजठरे ताँल्लूनपक्षान्गिरीन्। आश्वास्य व्रणदुःखजां शमयितुं तेषामुदग्रव्यथामुत्तस्थुर्जलदच्छलेन जलधेरूर्ध्वेऽम्भसः पर्वताः ॥ ९७ ॥ वनद्विपानां नववारिदस्वनैर्मदान्वितानां ध्वनतां मुहु-

---

मरना छोड़कर और रह क्या जाता है ॥ ८७ ॥ जिस वर्षामें धरतीके चँदोवे बने हुए बादल मस्तीसे झूमते दिखाई देते हैं, उसके कारण कदम्बके वृक्षमें फूल, फूलोंमें रस, रसपर भौंरा और भौंरेमें मस्ती झट आ समाई है ॥ ८८ ॥ इन दिनों नई केशर, केतकी और कदम्बके नये फूलोंकी मालाएँ गूँथकर स्त्रियाँ अपने जूड़े सँवारती हैं और ककुभके फूलोंके मनचाहे ढङ्गसे बनाए हुए कर्णफूल अपने कानोंमें पहनती हैं ॥ ८९ ॥ दुपहरियाके फूलकी कलियोंसे भी अधिक लाल तथा जलकी बूँदोंसे छाई हुई हरी घासवाली धरतीपर घनी बिछी हुई-सी बीर-बहूटियाँ ऐसी दिखाई पड़ रही थीं मानो पलासके फूल खिले हुए हों ॥ ९० ॥ वनमें चारों ओर खिले हुए कदम्बके फूल ऐसे लग रहे हैं मानो वर्षाके नये जलसे गर्मी दूर हो जानेके कारण जङ्गल मगन हो उठा हो, पवनसे झूमती हुई शाखाएँ ऐसी लगती हैं मानो पूरा जङ्गल हाथ मटका-मटकाकर नाच रहा हो और केतकीकी उजली कलियाँ ऐसी लगती हैं मानो सारा जङ्गल खिल-खिलाकर हँस रहा हो ॥९१॥ काले बादलोंके काले मृगचर्म धारण किए हुए, पानीकी धाररूपी जनेऊ पहने हुए तथा गुफाओंमें भरे पवनसे प्राणायाम करते-से ये पर्वत ब्रह्मचारियोंके समान दिखाई दे रहे हैं ॥ ९२ ॥ घिरे हुए बादलोंकी गड़गड़ाहटसे सुहावने दिखाई पड़नेवाले आकाशको देखते ही कोई जङ्गली भील हाथी-दाँतोंकी थूनी गाड़कर, ऊपर चँवरसे छाकर, कपूर और कस्तूरीसे धरती लीपकर और सिंहकी खाल बिछाकर अपनी नवेलीकी बाँह अपनी छातीपर रखकर बड़ी मस्तीसे नींद ले रहा है ॥९३॥ ये गरजते हुए बादल क्या बिजलीरूपी डण्डेसे महाराज कामदेवका नगाड़ा बजा-बजाकर यही घोषणा कर रहे हैं कि इन दिनों जो कामिनी रूठती है वह राजा कामदेवका बड़ा अपराध करती है इसलिये ऐसे समय किसीको नहीं रूठना चाहिए ॥ ९४ ॥ मूसलाधार वर्षासे बचनेके लिये हाथीका बच्चा हथिनीकी देहमें घुसा जा रहा है और हथिनी भी स्थिर होकर प्यारसे उसे ढुबकाए ले रही है, फिर भी उसके मस्तकपर पड़ती हुई जलधाराको रोकनेका प्रयत्न करता हुआ हाथी उसे छाता ओढ़ानेके लिये कमलिनीका पत्ता तोड़ता है और उन बादलोंपर क्रोध करके बार-बार चिग्घाड़ता है ॥ ९५ ॥ भले ही बादल गरजें, मूसलाधार पानी बरसे, बिजली तड़पे और ठण्ढा वायु भी चले, पर जबतक सब प्रकारका भय दूर करनेवाली सुन्दर औषधिके समान मेरी प्यारी मेरी छातीसे लगी हुई है तबतक मुझे किसीकी चिन्ता नहीं है ॥ ९६ ॥ त्रिभुवनके स्वामी इन्द्रके वज्रसे जिनके पङ्ख नहीं कट पाए थे और जो इन्द्रके डरसे समुद्रमें जा छिपे थे वे पर्वत, बाहर पड़े हुए पङ्खकटे पर्वतोंको ढाढ़स बँधानेके लिये और उनके घावकी कसक मिटानेके लिये ही मानो समुद्रके जलसे बादलोंके रूपमें निकल-निकलकर उठे आ रहे हैं ॥ ९७ ॥ नये-नये बादलोंके गरजनेसे जब जङ्गली हाथी मस्त हो जाते हैं और उनके माथेसे बहते हुए मदपर भौंरे

मुहुः। कपोलदेशा विमलोत्पलप्रभाः सभृङ्गयूथैर्मदवारिभिश्चिताः ॥ ९८ ॥ वर्षासु जाता नवयौवनश्रीराशावधूः प्रौढपयोधराभूत्। पुष्पोद्गमोऽजायत मालतीनां बभूवुरस्पृश्यतमास्तटिन्यः ॥ ९९ ॥ बलाहकाश्चाशनिशब्दमर्दलाः सुरेन्द्रचापं दधतस्तडिद्गुणम्। सुतीक्ष्णधारापतनोग्रसायकैस्तुदन्ति चेतः प्रसभं प्रवासिनाम् ॥ १०० ॥ वसन्तविश्लेषमपारयन्त्या भुवो निदाघस्मरतापशान्त्यै। आशावयस्याभिरुदाह्रियन्ते पयोदनीलोत्पलपल्लवानि ॥ १०१ ॥ वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्रयन्ति। नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गाः ॥ १०२ ॥ विगतरागगुणोऽपि जनो न कश्चलति वाति पयोदनभस्वति। अभिहितेऽलिभिरेवमिवोच्चकैरननृते ननृते नवपल्लवैः ॥ १०३ ॥ विद्युत्पङ्कजषण्डपङ्कपटली व्योमस्थलीशाद्वलः केदारः कलमाङ्कुरप्रतिभुवां धारातलानामयम्। शैवालावलिरद्रिमूर्ध्नि सरितां सूर्येन्दुकारागृहं कन्दर्पोत्सववैजयन्ति भवतु प्रीत्यै तवाम्भोधरः ॥ १०४ ॥ विपत्रपुष्पां नलिनीं समुत्सुका विहाय भृङ्गाः श्रुतिहारिनिस्वनाः। पतन्ति मूढाः शिखिनां प्रनृत्यतां कलापचक्रेषु नवोत्पलाशया ॥ १०५ ॥ विपाण्डुरं कीटरजस्तृणान्वितं भुजङ्गवद्वक्रगतिप्रसर्पितम्। ससाध्वसैर्भेककुलैर्निरीक्षितं प्रयाति निम्नाभिमुखं नवोदकम् ॥ १०६ ॥ विलोचनेन्दीवरवारिबिन्दुभिर्निषिक्तबिम्बाधरचारुपल्लवाः। निरस्तमाल्याभरणानुलेपनाः स्थिता निराशाः प्रमदाः प्रवासिनाम् ॥ १०७ ॥ विलोलनेत्रोत्पलशोभिताननैर्मृगैः समन्तादुपजातसाध्वसैः। समाचिता सैकतिनी वनस्थली समुत्सुकत्वं प्रकरोति चेतसः ॥ १०८ ॥ व्यथितमपि भृशं मनो हरन्ती परिणतजम्बुफलोपभोगहृष्टा। परभृतयुवतिः स्वनं वितेने नवनवयोजितकण्ठरागरम्यम्

आकर लिपट जाते हैं उस समय उन हाथियोंके माथे सुन्दर स्वच्छ नीले कमलों जैसे दिखाई देने लगते हैं ॥ ९८ ॥ वर्षामें विशाल पयोधरों (बादलों, स्तनों) वाली दिशारूपी नायिकामें नई जवानी आ गई, मालतीकी बेलमें पुष्प (फूल, ऋतुधर्म) दिखाई देने लगा और नदियाँ अस्पृश्या (गँदली, रजस्वला) हो गईं ॥ ९९ ॥ मृदङ्गके समान गड़गड़ाते हुए और बिजलीकी डोरीवाला इन्द्रधनुष चढ़ाए हुए ये बादल अपनी पैने बाण बरसा-बरसाकर परदेशमें पहुँचे हुए लोगोंका मन कसमसा रहे हैं ॥ १०० ॥ वसन्तरूपी नायकका बिछोह न सह सकनेके कारण धरती गर्मीरूपी कामसे तप गई थी इसीलिये उसकी तपन बुझानेके लिये दिशारूपी सखियाँ मानो उसे बादलरूपी नीलकमलके पत्ते दे रही हैं ॥ १०१ ॥ बरसातमें नदियाँ मस्तीसे बहती हैं, बादल बरसते हैं, मतवाले हाथी चिग्घाड़ते हैं, जङ्गल हरे-भरे हो जाते हैं, अपने प्यारोंसे बिछुड़ी हुई नवेलियाँ रोती-कलपती हैं, मोर नाचते हैं और बन्दर चुप मारकर गुफाओंमें जा बैठते हैं ॥ १०२ ॥ जब भौंरे ऊँचे स्वरसे गुनगुनाकर यह घोषणा करने लगे कि 'बरसाती पवन चलनेपर किस विरक्त मनुष्यका मन नहीं डिग जाता !' तब नये पत्ते भी झूम-झूमकर नाच उठे ॥१०३॥ हे कामदेवके उत्सवकी पताका (सर्वाङ्ग-सुन्दरी)! बिजलीरूपी कमलको उत्पन्न करनेवाले कीचड़का ढेर, आकाशरूपी क्यारीकी हरियाली, धानसे लहलहाते हुए धरतीके खेतका जोड़ीदार, पहाड़की चोटीपर बहनेवाली नदियोंपर छाई हुई सेवार और चन्द्र-सूर्यको बन्दी रखनेवाला कारागार बना हुआ यह बरसातका बादल तुम्हारे मनमें मस्ती भरे ॥ १०४ ॥ कानोंको सुहानेवाली मीठी तानें भरकर गूँजते हुए भौंरे उस कमलको छोड़कर चले जा रहे हैं जिसके पत्ते और फूल झड़ गए हैं और इस हड़बड़ीमें भूलसे वे नाचते हुए मोरोंके खुले पङ्खोंको नये कमल समझकर उन्हींपर टूटे पड़ रहे हैं ॥ १०५ ॥ छोटे-छोटे कीड़े, धूलके कण और घास बहाता हुआ मटमैला बरसाती पानी जो टेढ़ा-मेढ़ा घूमता हुआ ढालसे बहा जा रहा है उसे साँप समझकर बेचारे मेंढक डरे जा रहे हैं ॥ ॥ १०६ ॥ परदेशमें गए हुए लोगोंकी स्त्रियाँ अपने बिम्बाके फल-जैसे लाल और नई कोंपलों जैसे कोमल ओठोंपर अपने कमल-जैसे नेत्रोंसे आँसू बरसाती हुई माला, आभूषण, तेल, फुलेल, उबटन आदि सब कुछ छोड़कर गालोंपर हाथ धरे बैठी हैं ॥ १०७ ॥ कमलके समान सुहावनी चञ्चल आँखोंसे सजे सुन्दर मुखवाला तथा डरे हुए हरिणोंसे भरा हुआ रेतीला जङ्गल मनको बरबस खींचे ले रहा है ॥ १०८ ॥ पके हुए जामुनके फल खाकर मस्त कोकिल अपने गलेमें नया राग भर-भरकर गूँजता हुआ वियोगियोंके दुखी मनको भी अपनी ओर खींचे ले रहा है ॥ १०९ ॥ वर्षा ऋतुमें इन्द्र-नीलमणिके टुकड़ोंकी-सी कान्तिवाले तथा बिजली चमकाते हुए बड़े-बड़े घने मेघोंसे और

॥ १०९ ॥ व्याप्तं भिन्नेन्द्रनीलद्युतिभिरिव घनैर्मेघजालै-र्विशालैरुद्यद्विद्युद्विलासैः सुरधनुरनुगैर्व्योम वेल्लद्बलाकैः। उर्वी गुर्वी शिलीन्द्रार्जुनकुटजतृणैर्भाति सस्यैः प्रशस्यैः कादम्बामोदवाही जलधरसमये वारुणो वाति वातः ॥ ११० ॥ शमयति जलधरधारा चातकयूनां तृषं चिरोपनताम्। क्षपयति च वधूलोचनजलधारा कामिनां प्रवासरुचिम् ॥ १११ ॥ शमिततापमपोढमहीरजः प्रथमबिन्दुभिरम्बुमुचोऽम्भसाम्। प्रविरलैरचलाङ्गनमङ्गनाजनसुगन्न सुगन्धि न चक्रिरे ॥११२॥ शिरसि बकुलमालां मालतीभिः समेतां विकसितनवपुष्पैर्यूथिकाकुड्मलैश्च। विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां रचयति जलदौघः कान्तवत्काल एषः ॥११३॥ शिरोरुहैः श्रोणितटावलम्बिभिः कृतावतंसैः कुसुमैः सुगन्धिभिः। स्तनैः सहारैर्वदनैः ससीधुभिः स्त्रियो रतिं सञ्जनयन्ति कामिनाम् ॥ ११४ ॥ शीतलादिव सन्त्रस्तं प्रावृषेण्यान्नभस्वतः। नभो बभार नीरन्ध्रं जीमूतकुलकम्बलम् ॥ ११५ ॥ सजलजलधरं नभो विरेजे विवृतिमियाय रुचिस्तडिल्लतानाम्। व्यवहितरतिविग्रहैर्वितेने जलगुरुभिः स्तनितैर्दिगन्तरेषु ॥ ११६ ॥ सदा मनोज्ञं स्वनदुत्सवोत्सुकं विकीर्णविस्तीर्णकलापशोभितम्। ससम्भ्रमालिङ्गनचुम्बनाकुलं प्रवृत्तनृत्यं कुलमद्य बर्हिणाम् ॥ ११७ ॥ सद्मन्येव निरन्तरं निवसतिर्मित्राद्यनालोकनं पन्थाः पङ्कसमाकुलः कलुषतां वारां सदा दुर्दिनम्। एवं यद्यपि दूषणानि तदपि स्वर्भूजनोल्लासकृत्सस्योत्पत्तिनिमित्ततैकगुणतः प्रावृट् प्रपेदे यशः ॥ ११८ ॥ समदशिखिरुतानि हंसनादैः कुमुदवनानि कदम्बपुष्पवृष्ट्या। श्रियमतिशयिनीं समेत्य जग्मुर्गुणमहतां महते गुणाय योगः ॥ ११९ ॥ सरजसमपहाय केतकीनां प्रसवमुपान्तिकनीपरेणुकीर्णम्। प्रियमधुरसनानि षट्पदाली मलिनयति स्म विनीलबन्धनानि ॥ १२० ॥ सरसाशया सतडिद्गुणगौरा परिवेष्टिताम्बरोत्कर्षा। उद्धतपयोधरश्रीर्मुग्धवधूरिव

आकाश-गङ्गाके आसपास मँडराते हुए बगुलोंसे आकाश भर गया है, शिलीन्द्र, अर्जुन, कुटज और उत्तम धानोंके सुन्दर अङ्कुरोंसे धरतीका कलेवर फूल उठा है तथा हंसोंको आनन्दित करनेवाला पश्चिमका पवन बहने लगा है ॥ ११० ॥ बादलोंसे निकली हुई जलकी धारा पपीहोंकी बहुत दिनोंकी प्यास बुझा रही है और नवेलियोंकी आँखोंसे निकली हुई जलकी धारा कामियोंकी यात्राका हुलास ठण्ढा कर रही है ॥ १११ ॥ बादलोंकी कहीं-कहीं पड़ती हुई पहली बूँदोंने तपन बुझा दी है, उड़ती हुई धूल दबा दी है और पहाड़ी धरतीको सोंधी करके उसे नवेलियोंके चलनेके लिये सुगम बना दिया है ॥ ११२ ॥ जैसे कोई प्रेमी अपनी प्यारीके लिये ढङ्ग-ढङ्गके फूलोंके आभूषण बनाता है वैसे ही वर्षाकाल भी मानो अपनी प्रेमिकाके लिये जूहीकी नई-नई कलियों तथा मालती और मौलसिरीके फूलोंकी माला गूँथ रहा है और खिले हुए नये कदम्बके फूलोंके कर्णफूल बना रहा है ॥११३॥ आजकल स्त्रियाँ अपने भारी-भारी नितम्बोंपर चोटियाँ लटकाकर, अपने कानोंमें सुगन्धित फूलोंके कनफूल पहनकर, अपनी छातियोंपर मालाएँ डालकर और मदिरा पीकर अपने प्रेमियोंके मनमें प्रेम उकसा रही हैं ॥ ११४ ॥ वर्षाके ठण्ढे पवनसे डरकर ही मानो इस आकाशने यह घना बादलरूपी मोटा कम्बल ओढ़ लिया है ॥ ११५ ॥ आकाशमें जलसे भरे बादल छा गए, चारों ओर बिजलीका प्रकाश फैलने लगा और रतिके समय स्त्रियोंका रूठना रोकनेवाले तथा जलसे भरे हुए गम्भीर बादलोंकी गर्जन चारों ओर सुनाई पड़ने लगी ॥११६॥ देखो, सदा मीठी बोली बोलनेवाले, गरजते हुए बादलोंकी शोभापर रीझकर मगन हो उठनेवाले और अपने पङ्ख खोलकर फैलानेसे सुहावने लगनेवाले ये मोरोंके झुण्ड झटपट अपनी प्यारी मोरनियोंको गले लगाते और चूमते हुए नाच उठे हैं ॥ ११७ ॥ यद्यपि बरसातमें यह दोष है कि सबको सदा घरमें ही बँधे रहना पड़ता है, मित्र (सूर्य, मित्र) दिखाई नहीं पड़ते, मार्गोंमें कीचड़ भरा रहता है, पानी गँदला हो जाता है और सदा दुर्दिन (आँधी-पानी, बुरा दिन) छाया रहता है फिर भी वर्षाका यश इसी गुणके कारण फैला हुआ है कि वह देवताओं तथा मनुष्योंको प्रसन्न करनेवाली खेतीको लहलहा देता है ॥ ११८ ॥ मतवाले मोरोंकी कूजनसे, हंसोंकी रुनझुनसे और कुमुदके वनमें कदम्बके फूलोंकी वर्षासे एक निराली ही शोभा आ गई है क्योंकि गुणवानोंका सम्बन्ध सदा सुन्दर ही होता है ॥ ११९ ॥ परागसे भरे हुए केवड़ेके फूलपर पासके कदम्बका पराग ही झड़ रहा था इसलिये भौंरे उसे छोड़कर प्रिय और मधुर रसवाले तथा नीली ढेंपीवाले असनाके फूलोंपर जा बैठे ॥ १२० ॥ अपने भीतर पानी भरी हुई (रसीले भावोंवाली), बिजली चमकनेसे उजली

विभाति घनवेला ॥१२१॥ सर्वत्रोद्गतकन्दला वसुमती वृद्धिर्जलानां परा जातं निष्कमलं जगत्सु मलिनैर्लब्धा घनैरुन्नतिः। सर्पन्ति प्रतिमन्दिरं द्विरसनाः संत्यक्तमार्गो जनो वर्षाणां च कलेश्च सम्प्रति जयत्येकैव राज्यस्थितिः ॥ १२२ ॥ ससीकराम्भोधरमत्तकुञ्जरस्तडित्पताकोऽशनिशब्दमर्दलः। समागतो राजवदुद्धतद्युतिर्घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये ॥ १२३ ॥ सितोत्पलाभाम्बुदचुम्बितोपलाः समाचिताः प्रस्रवणैः समन्ततः। प्रवृत्तनृत्यैः शिखिभिः समाकुलाः समुत्सुकत्वं जनयन्ति भूधराः ॥ १२४ ॥ स्कन्धं तरोर्घनदलस्थगितोर्ध्वभागमध्यास्य गाढकलितशिशुवल्लभाभ्याम्। अम्भो यतः पतति मूर्ध्नि निजे कपिस्तत्पत्रं विलोकयति हुङ्कृतिपूर्वलौल्यः ॥ १२५ ॥ स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा। जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमयासमयाज्जगतीधरम् ॥ १२६ ॥ स्फुरद्भीमाभोगस्तरुणमहिषस्कन्धमलिनो ललद्विद्युज्जिह्वः कृतकटकटध्वाननिनदः। दिशन्नुद्यच्चापभ्रुकुटिघटनाभिः प्रतिभयं घनर्तुः प्रारम्भे ग्रसितुमिव विश्वं व्यवसितः ॥ १२७ ॥ स्फुरन्तः पिङ्गलाभासो धरण्यामिन्द्रगोपकाः। सरक्तवान्तपान्थस्त्रीजीवा इव चकाशिरे ॥ १२८ ॥

दोलाकेलिः—उन्नम्य दूरं मुहुरानमन्त्यः कान्ताः श्लथीभूतनितम्बविम्बाः। दोलाविलासेन जितश्रमत्वात्प्रकर्षमापुः पुरुषायितेषु ॥ १ ॥ प्रत्यासन्नमुखी कराम्बुजयुगप्रेङ्खोलितां प्रेङ्खिकामारुह्येयमुदस्तहारलतिकाव्यावृत्ततुङ्गस्तनी। दृष्टादृष्टमुखी गतागतवशादालोलमानांशुका तन्वङ्गी गगने करोति पुरतः शातह्रदं विभ्रमम् ॥ २ ॥ प्रसार्य पादौ विहितस्थितीनां

दिखाई पड़ती हुई (विजलीरूपी डोरेसे गोरी लगनेवाली), आकाशकी ऊँचाईको ढकती हुई (मूल्यवान् वस्त्रोंसे घिरी हुई) तथा उमड़ते हुए बादलोंवाली (उठे हुए स्तनोंवाली) यह काली घटा नई दुलहिन-सी दिखाई देती है ॥ १२१ ॥ वर्षाके दिनोंमें बरसात और कलियुग दोनोंका राज्य एक-सा जान पड़ता है क्योंकि धरतीपर चारों ओर कन्दल (निरर्थक लोग) उत्पन्न हो गए हैं, जल (पानी, मूर्खों) की बाढ़ है, सारा संसार निष्कमल (कमलसे रहित, निर्धन) हो गया है, मूर्खों (काले बादलों, अत्यन्त नीचों) की उन्नति हो गई, घर-घर द्विजिह्व (साँप, चुगलखोर) घूम रहे हैं और लोगोंने मार्ग, (धर्मका मार्ग, चलनेका मार्ग) छोड़ दिया ॥१२२॥ देखो प्यारी! जलकी फुहारोंसे भरे हुए बादलोंके मतवाले हाथीपर चढ़ा हुआ, चमकती हुई विजलियोंकी झण्डियाँ फहराता हुआ और बादलोंकी गरजके नगाड़े बजाता हुआ यह कामिनियोंका प्यारा पावस, राजाओंका-सा ठाट-बाट बनाकर आ पहुँचा ॥ १२३ ॥ धौले कमलके समान उजले बादल जिन पहाड़ी चट्टानोंको चूमते चलते हैं और जिनपर मोर नाच रहे हैं उनपरसे बहनेवाले सैकड़ों झरनोंको देखकर प्रेमियोंके मनमें हलचल-सी मच जाती है ॥ १२४ ॥ ढेर-से नये पत्तोंसे जिसका ऊपरी भाग ढका हुआ था ऐसे वृक्षके तनेपर कोई वन्दर अपनी पत्नी और बच्चे सहित बैठा था, पानी बरसनेपर जब पत्तेसे होकर उसके सिरपर भी पानी पड़ने लगा तो वह खों-खों करके पहले उस पत्तेकी ओर ही क्रोधित होकर देखने लगा अर्थात् उसे पानीपर नहीं, पत्तेपर ही क्रोध आया ॥ १२५ ॥ बार-बार चमकती हुई बिजली ही जिसकी आँखें हैं और बादल ही जिसके ऊँचे-ऊँचे स्तन हैं ऐसी वर्षा अवसरकी प्रतीक्षा न करके ही अपने पति पर्वतके पास आ पहुँची है ॥ १२६ ॥ भयङ्करताओंसे भरा हुआ यह वर्षाकाल जो मतवाले भैंसोंके कन्धोंके कालेपनसे बड़ा मलिन दिखाई पड़ रहा है, लपलपाती हुई बिजली ही जिसकी जीभ हैं और बादलोंकी गड़गड़ाहटके स्वरमें ही जो दहाड़ रहा है वह मानो अपने प्रारम्भ कालमें ही संसारको निगल जानेको तैयार है ॥१२७॥ धरतीपर रेंगती हुई लाल-लाल बीरवहूटियाँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो वियोगियोंकी नवेलियोंके वमन किए गए रुधिरसे लिपटे हुए उनके प्राण हों ॥ १२८ ॥

झूला : झूलेकी पेंगोंपर ऊँचे उठने और नीचे आनेसे जिनके नितम्ब ढीले पड़ गए हैं और जिन्होंने झूला झूलनेकी थकावट सह ली है वे नवेलियाँ इतनी सशक्त हो गईं कि सुरतमें पुरुषके समान व्यवहार कर सकती थीं ॥ १ ॥ अपने दोनों करकमलोंसे झूलेकी डोरियाँ पकड़कर वह झूलेपर मुस्कराती हुई बैठी है, झूलेकी पेंगोंके कारण उसके ऊँचे-ऊँचे स्तनोंपर हार उछल रहे हैं, झोंकेके कारण कभी तो उसका मुख दिखाई पड़ जाता है कभी नहीं और उसकी साड़ी भी हिल-हिलकर चमक रही है। इस प्रकार झूलती हुई वह नवेली सामने आकाशमें बिजली-सी चमक रही है ॥ २ ॥ झूला झूलते समय पैर पसारकर बैठी हुई और साड़ियोंके पल्ले

दोलासु लोलांशुकपल्लवानाम्। मनोरथानामपि यन्न गम्यं तद्द्रष्टुमापुः सुदृशां युवानः ॥ ३ ॥ सौन्दर्यमिन्दीवरलोचनानां दोलासु लोलासु यदुल्ललास। यदि प्रसादाल्लभते कवित्वं जानाति तद्वर्णयितुं मनोभूः ॥४॥

वर्षावायवः—आमोदेन कदम्बकन्दलभुवा लिम्पन्नशेषं नभः प्रीतिस्फीतमयूरवृन्दनटनप्रस्तावनापण्डितः। अम्भोदप्रथमोदबिन्दुरचनानिर्मृष्टघर्मश्रमैर्वायुर्वाति भयङ्करः प्रवसतां मेघङ्कराडम्बरः ॥ १ ॥ एते केतकसूचिसौरभजुषः पौरप्रगल्भाङ्गनाव्यालोलालकवल्लरीविलुलनव्याजोपभुक्ताननाः। किञ्चोन्निद्रकदम्बकुड्मलकुटीधूलीलुठत्षट्पदव्यूहव्याहृतिहारिणो विरहिणः कर्षन्ति वर्षानिलाः ॥ २ ॥ एते ते दुरतिक्रमक्रममिलद्घर्मोर्मिमर्मच्छिदः कादम्बेन रजोभरेण ककुभो रुन्धन्ति झञ्झानिलाः। गाढारम्भनिगूढनीरदघटासङ्घट्टनीलीभवद्व्योमक्रोडकटाहपातुकपयोवेणीकणग्राहिणः ॥ ३ ॥ धाराधौतं धुनानाः शशधरधवलं केसरं केतकीनां कैलासे किन्नरीणां चलदलकलतालास्यलीलां दधानाः। आमूलं मानिनीनां मनसि विनिहितं मानमुन्मूलयन्तो वान्त्येते वारिवाहव्यतिकरशिशिराः प्रावृषेण्याः समीराः ॥ ४ ॥ प्रवसतः सुतरामुदकम्पयद्विदलकन्दलकम्पनलालितः। नमयति स्म वनानि मनस्विनीजनमनोनमनो घनमारुतः ॥ ५ ॥

वर्षापथिकाः—उपरि घनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोऽपि नर्तितमयूराः। क्षितिरपि कन्दलधवला दृष्टिं पथिकः क्व पातयतु ॥ १ ॥ उपरि पयोधरमाला दूरे दयिता किमेतदापतितम्। हिमवति दिव्यौषधयः कोपाविष्टः फणी शिरसि ॥ २ ॥ किं गतेन यदि सा न जीवति प्राणिति प्रियतमा तथापि किम्। इत्युदीक्ष्य नवमेघमालिकां न प्रयाति पथिकः स्वमन्दिरम् ॥ ३ ॥ ग्रामेऽस्मिन्पथिकाय पान्थ वसतिर्नैवाधुना दीयते

हिलाती हुई नवेलियोंकी वह सुन्दरता नवयुवकोंने देखी जहाँ मन भी नहीं पहुँच सकता था ॥ ३ ॥ झूलते हुए हिंडोलेपर कमलनयनी नवेलियोंकी जो सुन्दरता उमड़ रही थी उसका वर्णन कामदेव भी तभी कर सकता है जब वह प्रसन्न मनसे कविता करने बैठ जाय ॥ ४ ॥

पुरवैया : बादलोंको उभाड़नेवाला तथा परदेसियोंको भयभीत करनेवाला वह पवन वह रहा है जिसने कदम्ब और कन्दलीकी मनोहर गन्धसे सारे आकाशको भर दिया है, जो प्रेमसे मतवाले मोरोंका नाचनेके लिये उकसानेमें बड़ा चतुर है और जिसने बादलोंकी पहली बूँदोंसे ही धीरे-धीरे तपन मिटा दी है ॥ १ ॥ विरहियोंका मन हरते हुए ये वे बरसाती पवन वह रहे हैं जो केवड़ेकी सुगन्धसे भरे हैं, जो गाँवोंकी इठलाती हुई नवेलियोंके चञ्चल वाल विखेरनेके बहाने उनके मुखका चुम्बन कर रहे हैं और जो खिले हुए कदम्बके भीतरके परागमें लोट-पोटकर गानेवाले भौंरोंकी गुञ्जार चुराचुराकर भागे जा रहे हैं ॥२॥ बरसातकी जो चौवाई बहता हुआ पसीना सुखा रहा थी, चारों ओर घिरे हुए बादलोंसे अँधियाले आकाशरूपी कड़ाहेसे बरसती हुई जलधाराकी बूँदोंसे भरे हुए थे, वे कदम्बके फूलका पराग लेकर सब दिशाओंको भर रहे थे ॥ ३ ॥ जो बरसाती पवन जलधारासे धुलकर, चन्द्रमाके समान उजले केवड़ेके फूलके केसर हिलाकर, कैलास पर्वतकी किन्नरियोंको झूमती हुई लताओंके समान नचाकर, रूठी हुई नवेलियोंके मनमें जमे हुए क्रोधको जड़से उखाड़कर तथा बादलोंसे मिलकर ठण्ढे हो गए थे वे हर-हराकर बह रहे हैं ॥ ४ ॥ खिली हुई कन्दलीको कँपानेवाले और रूठी हुई नवेलियोंका मन ढीला करनेवाले बरसाती पवनने परदेसियोंको नीचेसे ऊपरतक कँपा दिया और सारे वनको झुका दिया ॥ ५ ॥

बरसातके पथिक : ऊपर घने बादल हैं, आसपास चारों ओर पहाड़ हैं जिनपर मोर नाच रहे हैं और चारों ओरकी धरती उगे हुए कन्दलसे उजली हुई पड़ी है, ऐसी दशामें बेचारा प्रवासी दृष्टि डाले भी तो किसपर डाले ॥ १ ॥ हाय राम ! यह कैसी विपदा आ पड़ी कि ऊपर बादल मँडरा रहे हैं और प्यारी दूर बैठी है ! यह तो ऐसा ही हुआ कि औषधियाँ हिमालयमें हों और फुफकारता हुआ साँप सिरपर आ चढ़ा हो ॥ २ ॥ आकाशमें उमड़े हुए नये-नये बादलोंको देखकर बेचारा परदेसी यही सोचता हुआ अपने घर नहीं लौट रहा है कि बरसातमें यदि उस प्रियाने अपने प्राण दे दिए तो घर जानेसे लाभ क्या ? और इतना बड़ा बिछोह होनेपर यदि वह जी रही है तब भी जाना व्यर्थ है (क्योंकि उसका प्रेम कम हो गया होगा ॥३॥ हे परदेसी ! बरसातके दिनोंमें हम लोग इस गाँवमें किसी परदेसीको नहीं टिकने देते क्योंकि कल रात पासके उपवनमें पड़े हुए एक दुष्ट युवक परदेसीने बादलकी गरज सुनकर अपनी प्यारीका स्मरण कर करके गाते हुए ऐसा

रात्रावत्र विहारमण्डपतले पान्थः प्रसुप्तो युवा। तेनोद्गीय खलेन गर्जति घने स्मृत्वा प्रियां तत्कृतं येनाद्यापि करङ्कदण्डपतनाशङ्की जनस्तिष्ठति ॥ ४ ॥ धीरं वारिधरस्य वारि किरतः श्रुत्वा निशीथे ध्वनिं दीर्घोच्छ्वासमुदश्रुणा विरहिणीं बालां चिरं ध्यायता। अध्वन्येन विमुक्तकण्ठकरुणं रात्रौ तथा क्रन्दितं ग्रामीणैः पुनरध्वगस्य वसतिर्ग्रामे निषिद्धा यथा ॥ ५ ॥ निशीथे लीनानां झटिति तडितां वीक्ष्य विषयं घनानामाभोगं रसिकपथिकेनोन्मुखदृशा। न गीतं सोत्कण्ठं न च रुदितमुत्कण्ठतरलं न मुक्ता निःश्वासाः स्फुरदनुमतं किं तु हृदयम् ॥ ६ ॥ नृत्यच्चन्द्रकिणि क्वणन्मधुलिहि श्यामायमानक्षितौ धीरध्वानपयोमुचि प्रविलसत्सौदामिनीदामनि। धाराम्भःकणवाहिशीतमरुति प्राणान्पयोदागमे हा हा हास्यति मुग्धिका नववधूरित्यध्वगः क्रन्दति ॥ ७ ॥ बर्हीं रौति बका रटन्ति तडितो भ्राम्यन्त्यतिव्याकुला विक्रोशन्ति घना घना च विलपत्युच्चैर्बलाकावलिः। आत्मानं मरुतः क्षिपन्ति सलिलासारः पतत्यग्रतो मुक्त्वा प्रावृषि साहसैकरसिके याति प्रियामध्वगे ॥ ८ ॥ भद्रात्र ग्रामके त्वं वससि परिचयस्तेऽस्ति जानासि वार्त्तामस्मिन्नध्वन्यजाया जलधररसितोत्का न काचिद्विपन्ना। इत्थं पान्थः प्रवासावधिदिनविगमापायशङ्की प्रियायाः पृच्छन्वृत्तान्तमारात्स्थितनिजभवनोऽप्याकुलो न प्रयाति ॥ ९ ॥ भ्रातः पान्थ कुतो भवान्नगरतो वार्त्ता नवा वर्त्तते, बाढं ब्रूहि युवा पयोदसमये त्यक्त्वा प्रियां जीवति। सत्यं जीवति जीवतीति कथिता वार्त्ता मयापि श्रुता, विस्तीर्णा पृथिवी जनोऽपि विविधः किं किं न सम्भाव्यते ॥ १० ॥ भ्रातः पान्थ प्रसीद प्रतिविरम समुत्सृज्य बालामकाण्डे, गन्तुं बाष्पाम्बुपूरप्लुतनयनमुखीं प्रेयसीं ते न युक्तम्। वृत्तं ग्रामेऽतिकष्टं

उपद्रव कर दिया कि आज भी यह डर बना हुआ है कि कहीं लोगोंके हाथोंसे बरतन-भाँडे न छूट पड़ें अर्थात् उसके विछोह-भरे गानेको सुनकर लोग मूर्च्छित हो-होकर गिर न पड़ें ॥४॥ लगातार बरसते हुए बादलकी गरज सुनकर आधीरातमें अपनी वियोगिनी स्त्रीका स्मरण करके सुबक-सुबककर रोते हुए परदेसीने गला फाड़-फाड़कर ऐसी चिल्लाहट मचाई कि तभीसे गाँववालोंने इस गाँवमें परदेसियोंको टिकाना बन्द कर दिया॥५॥ जब बरसातकी आधी रातको रसिक परदेसीने बादलोंमें कौंधती हुई बिजली देखकर ऊपर आँखें उठाईं उस समय न तो उसने प्रेमका राग अलापा, न गला फाड़-फाड़कर रोया, न उसने लम्ब-लम्बी साँस ही ली, वरन् चुपचाप अपना हृदय टटोलने लगा कि हृदयकी धड़कन तो बन्द नहीं हो गई ॥ ६ ॥ जब बरसातके समय मोर नाचने लगे, भौंरे गूँजने लगे, धरती हरी हो गई, बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी और पानीकी फुहारोंसे लदा शीतल पवन बहने लगा, उस समय बेचारा प्रवासी यही सोच-सोचकर रोने लगा कि 'हाय-हाय! मेरी भोली-भाली नई बहू इन उमड़ते हुए बादलोंको देखकर अब जीती नहीं बचेगी' ॥ ७ ॥ वर्षा ऋतुमें ज्यों ही एक मनुष्य बड़ा साहस करके अपनी प्यारीको छोड़कर चला त्यों ही मार्गमें मोरनी रोने लगी, सारस कुरकुराने लगे, बिजली व्याकुल होकर लपलपाने लगी, बादल चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे, बगलोंकी पाँत बिलखने लगी, पवन हरहराकर बहने लगे और तत्काल मूसलाधार पानी बरसने लगा ॥ ८ ॥ परदेससे लौटनेके लिये परदेसीने अपनी पत्नीको जो अवधि दी थी उसके बीत जानेपर जब वह गाँवमें लौटा तो घर पास होते हुए भी वह इस घबराहटके मारे घर नहीं जा रहा है कि कहीं मेरी स्त्री अवधि बीत जानेके कारण चल न बसी हो। इसलिये वह दूसरे व्यक्तिसे पूछ रहा है—'हे सज्जन! आप तो इस गाँवमें रहते हैं, इसलिये आप सभीको जानते भी होंगे और यहाँका कुशल-समाचार भी आपसे छिपा न होगा। अतः, यह बतलाइए कि इस गाँवमें बादलकी गरजसे घबराकर किसी प्रवासीकी नवेलीने प्राण तो नहीं दे डाले हैं?' ॥ ९ ॥ कोई पुरुष एक परदेसीसे इस प्रकार बातें कर रहा है—पुरुष—क्यों भाई राही! आप कहाँसे चले आ रहे हैं? राही—नगरसे। पुरुष—क्या कोई नया समाचार है? राही—हाँ। पुरुष—कहिए! राही—एक नवयुवक बरसातके दिनोंमें अपनी प्यारीको छोड़कर भी अभी तक जी रहा है! पुरुष—क्या सचमुच जी रहा है? राही—हाँ, उसके जीनेकी जो चर्चा चारों ओर हो रही थी, वही मैं भी सुनकर आ रहा हूँ। पुरुष—हाँ भाई! पृथ्वी इतनी लम्बी-चौड़ी है और उसमें लोग भी बड़े विचित्र-विचित्र प्रकारके रहते हैं, इसलिये यहाँ जो हो जाय सब थोड़ा है ॥ १० ॥ हे परदेस जानेवाले भाई! अब भी मान जाओ और परदेस जानेका विचार छोड़ दो क्योंकि तुम्हारी जिस प्यारीका मुख और आँखें

यदिह गृहपतेः प्रोषितस्य प्रियाया, मुक्ताक्रन्दाँस्तदेतान्सलिलवितरणे निर्गतान्पश्य बन्धून् ॥ ११ ॥ यथा रन्ध्रं व्योम्नश्चलजलदधूमः स्थगयति स्फुलिङ्गानां रूपं दधाति च यथा कीटमणयः। यथा विद्युज्ज्वालोल्लसितपरिपिङ्गाश्च ककुभस्तथा मन्ये लग्नः पथिकतरुखण्डे स्मरदवः ॥ १२ ॥ रसति तरुणीकेशश्यामे पयोभृति निर्भरं स्फुटति चपले वारंवारं क्षणद्युतितेजसि। उपगुरुजनं मन्ये दैन्यात्पराङ्मुखसुप्तया निभृतनिभृतं मन्दोच्छ्वासं तया बत रुद्यते ॥ १३ ॥ रात्रौ वारिभरालसाम्बुदरवोद्विग्नेन जाताश्रुणा पान्थेनात्मवियोगदुःखपिशुनं गीतं तथोत्कण्ठया। आस्तां जीवितहारिणः प्रवसनालापस्य सङ्कीर्तनं मानस्यापि जलाञ्जलिः सरभसं लोकेन दत्तो यथा ॥ १४ ॥ शिखिनि कूजति गर्जति तोयदे स्फुटति जातिलताकुसुमाकरे। अहह पान्थ न जीवति ते प्रिया नभसि मासि न यासि गृहं यदि ॥ १५ ॥ श्रुत्वा बालमृगीविलोलनयना शब्दं घनानां पुरा भीत्या वक्षसि संश्रितापि निबिडं भूयः समालिङ्गति। या वक्त्रादपहृत्य रोपितवती कण्ठे ममैवाननं सा द्रक्ष्यत्यधुना कथं नु विरहे बाला पयोदावलीम् ॥ १६ ॥

वर्षापथिककामिनी—अदृष्टपूर्वमस्माभिर्यदेतद्दृश्यते ऽधुना। विषं विषधरैः पीतं मूर्च्छिताः पथिकाङ्गनाः ॥ १ ॥ अम्भोवाहमुरद्विषो निवसनं ध्वान्ताद्रिदिव्यौषधी कन्दर्पस्य विलासचम्पकधनुर्वर्षालतामञ्जरी। लेखा व्योमकषोपले विरचिता चामीकरस्य स्फुरद्धाम्नः पान्थविलासिनीजनमनःकम्पाय शम्पाभवत् ॥ २ ॥ आकर्णितानि रसितानि यया प्रसर्पत्प्रद्युम्नराजरथनिःस्वनसोदराणि। उच्चै रणच्चरणनूपुरया पुरन्ध्या क्षिप्रं प्रियं कुपितयापि तयाभिसस्रे ॥ ३ ॥ आवासेऽस्मिन् विदग्धाः क्वचिदपि न विभो नापि

आँसुओंसे तर हैं उसे ऐसे समयमें छोड़कर जाना ठीक नहीं है। देखो, अभी गाँवमें एक ऐसी दुर्घटना हो चुकी है कि एक गृहस्थ अपनी पत्नीको छोड़कर चला गया और वह वेचारी बिछोहमें चल बसी, उसीको जलाञ्जलि देनेके लिये लोग रोते-कलपते हुए उसे कन्धेपर उठाए ले जा रहे हैं ॥ ११ ॥ जब चञ्चल बादल-रूपी धुआँ आकाशको ढके हुए हो, चमकते हुए जुगनू आगकी उड़ती हुई चिनगारियोंके समान दिखाई दे रहे हों और सभी दिशाएँ बिजलीकी चमकसे सुन्दर और पीली हो रही हों उस समय जान पड़ता है मानो प्रवासी-रूपी वृक्ष काम-रूपी आगसे जल उठा हो ॥ १२ ॥ जिस समय काले-काले बादल गरज रहे हैं और बार-बार बिजलीकी झपक कौंध रही है ऐसे समयमें मैं समझता हूँ कि वह वेचारी बड़ोंके सामनेसे हटकर चुपचाप लेटी हुई, दुखी होकर लम्बी-लम्बी साँस लेती हुई सिसक-सिसककर रो रही होगी ॥ १३ ॥ रातमें पनियल बादलोंकी गरजसे घबराकर रोते हुए परदेसीने बिछोहके दुःखसे भरा हुआ गाना गाकर ऐसी कलकके साथ अलाप भरी कि उस समय प्राणघाती प्रवासकी चर्चा तो दूर रही, प्रेमी-प्रेमिकाओंने आपसमें रूठनेको भी तिलाञ्जलि दे दी ॥ १४ ॥ हे प्रवासी ! सावनके जिस महीनेमें मोर बोल रहे हैं, बादल गरज रहे हैं और मालतीके फूल खिल रहे हैं उस समय भी यदि तुम घर नहीं लौट रहे हो तो समझ लो कि तुम्हारी प्रिया जीती न बचेगी ॥ १५ ॥ नन्हीं-सी हरिणीके समान चञ्चल नेत्रोंवाली जो बाला पहले बादलकी गरज सुनकर मेरी छातीपर पड़ी हुई भी डरके मारे कसकर लिपट जाती थी और अपना मुख मेरे मुँहपरसे हटाकर डरके मारे मेरे गलेमें डाल देती थी वह इस समय मेरे बिछोहमें भला बादलोंकी घटा कैसे देख पावेगी ! ॥ १६ ॥

वर्षाऋतुके परदेसीकी नवेली : क्या बताऊँ ! इस समय जो विचित्र बात देखनेमें आ रही है वैसी तो मैंने पहले कभी देखी ही नहीं क्योंकि, देखो ! विष (जल) तो पिया है बादलोंने और मूर्च्छित हुई पड़ी है परदेसीकी स्त्री ॥ १ ॥ जो बिजली, बरसातके दिनोंमें बादल-रूपी कृष्णकी पीली कछौटी बनी हुई थी, अन्धकार-रूपी पहाड़की चमकती हुई बूटी थी, चम्पेके फूलसे बनी हुई कामदेवकी धनुहीकी वर्षा-रूपी लताकी मञ्जरी थी तथा आकाश-रूपी कसौटीपर खिंची हुई चमकते हुए सोनेकी रेखा थी, उसने वियोगिनी स्त्रियोंका मन झकझोरकर कँपा डाला ॥ २ ॥ जिस बादलका गर्जन राजा कामदेवके रथके शब्दके समान हो रहा था, उसे सुनकर रूठी हुई नवेली भी अपने पैरके पायल बजाती अपने प्रियतमके पास पहुँचनेके लिये स्वयं चल पड़ी ॥ ३ ॥ कोई बटोही रात रहनेके लिये किसीके घर पहुँचा, वहाँ कोई स्त्री उससे कहने लगी—'हे महाशय ! इस घरमें मैं ही एक वियोगिनी हूँ। इस शय्याके अतिरिक्त कहीं भी नींद लेने योग्य बिछावन नहीं है, सामने जो बिजली चमकती थी वह भी अब लुप्त हो गई और ये बादल

निद्रोपभोगयोग्यत्वं स्रस्तरास्था विलयमुपगता सम्मुखे विद्युदेषा। प्रोचैश्चायं पयोभृत्तदिति यदि रुचिर्नैशवासे तदास्स्वेत्युक्तः पान्थः सुदत्या हतमदनभयस्तत्र मुग्धोऽतिमुग्धः ॥ ४ ॥ एष्यन्त्यवश्यमधुना हृदयाधिनाथा मुग्धा मुधा कुरुत मा विविधं विलापम्। इत्थं शशंसुरिव गर्जितकैतवेन पाथोधराः पथिकपङ्कजलोचनाभ्यः ॥ ५ ॥ नभसि जलदलक्ष्मीं सास्रया वीक्ष्य दृष्ट्या प्रवसति यदि कान्तेत्यर्धमुक्त्वा कथञ्चित्। मम पटमवलम्ब्य प्रोल्लिखन्ती धरित्रीं तदनु कृतवती सा यत्र वाचो निवृत्ताः ॥ ६ ॥ प्रणतिभिरपि पत्युः प्रार्थनाभिश्च सख्याः क्षणमपि न मनस्तो मानिनी मानमौज्झत्। तमसमशरशस्त्रीभूतगानप्रकारः फणिनमिव शिखण्डी किन्न खण्डीचकार ॥ ७ ॥ प्रसरदलकाकीर्णे कर्णे न केकिरुतं श्रुतं श्वसितविजितो वातो घ्रातो न वा कुटजोत्कटः। न च परिचितासावासम्पत्प्लुताश्रुणि लोचने तदपि किमपि प्रावृट्श्यामा धुनोति वियोगिनीः ॥ ८ ॥ मेघैर्व्योम नवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्वृता निम्नगाः। एकां घातयितुं वियोगविधुरां दीनां वराकीं स्त्रियं प्रावृट्काल हताश वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम् ॥ ९ ॥ वाता वान्तु कदम्बरेणुशबला नृत्यन्तु सर्पद्विषः सोत्साहा नववारिगर्भगुरवो मुञ्चन्तु नादं घनाः। मग्नां कान्तवियोगशोकजलधौ मां वीक्ष्य दीनाननां विद्युत्किं स्फुरसि त्वमप्यकरुणे स्त्रीत्वे समाने सति ॥ १० ॥ विरमत घना किं वो वृष्ट्या मुधैव विसृष्टया, व्रजत ककुभं काममन्यां मनोरुचिरामतः। न तदिह वनं नासौ मार्गो न तच्च धरातलं विरहगलितैस्तन्व्या यन्न प्लुतं नयनाम्बुभिः ॥ ११ ॥ शिशिरसीकरवाहिनि मारुते चरति शीतभयादिव सत्वरः। मनसिजः प्रविवेश वियोगिनीहृदयमाहितशोकहुताशनम् ॥ १२ ॥ श्रुत्वा तन्व्या निशीथे नवघनरसितं विश्लथाङ्गं पतित्वा शय्यायां भूमिपृष्ठे

भी घुमड़ रहे हैं, अतः यदि रात काटनी हो तो ठहर जाओ' यह सुनते ही उसका सारा कामदेवका डर छूट गया और वह प्रसन्न होकर वहीं रह गया ॥ ४ ॥ बादल अपने गर्जनसे मानो प्रवासियोंकी कमलनयनी नवेलियोंको यह ढाढ़स बँधा रहे हैं कि 'हे भोली-भाली नवेलियो ! ऐसे बरसातके समय तुम्हारे प्राणप्यारे अवश्य आवेंगे, तुम व्यर्थ रोना-कलपना न करो' ॥ ५ ॥ परदेस जानेवाला कोई व्यक्ति कह रहा है कि 'मेरी प्रियाने अपनी आँसू-भरी आँखोंसे आकाशमें बादलकी शोभा देखकर मुझसे किसी-किसी प्रकार यह आधी-सी बात कही कि 'हे प्यारे ! यदि आप चले जायँगे...' और फिर मेरा वस्त्र पकड़कर पैरोंसे धरती कुरेदने लगी। इस प्रकार उसने कुछ ऐसा किया कि मुझसे कुछ कहते ही नहीं बन पड़ा ॥ ६ ॥ रूठी हुई नवेलीका जो क्रोध पतिके बार-बार हाथ जोड़ने और सखियोंके समझाने-बुझानेपर भी क्षण भरके लिये दूर नहीं हुआ, उसी क्रोधको, कामदेवकी तलवारके समान जी कचोटनेवाले किसी विछोहीके गीतने, इस प्रकार टुकड़े-टुकड़े कर दिए जैसे साँपको मोर टुकड़े-टुकड़े कर देता है ॥ ७ ॥ यद्यपि लटके हुए बालोंसे ढके हुए कानोंमें मोरकी कूक भी नहीं पड़ी, उसकी लम्बी-लम्बी साँसोंसे कुरैयाके फूलकी तीखी गन्ध भी हार मानकर उसकी नाकतक नहीं पहुँची और उसकी आँसूभरी आँखोंके सामने परिचित सुन्दर वस्तुएँ भी नहीं आईं फिर भी बादलोंसे अँधियाली वर्षा ऋतु वियोगिनियोंको सताए ही डाल रही है ॥८॥ हे नीच वर्षाकाल ! बिछोहसे दुबली और दुखी बेचारी एक नवेलीका प्राण लेनेके लिये यह तुमने क्या व्यर्थका पसारा फैलाया है कि बादलोंसे आकाश भर दिया, नये जलसे धरती भर दी, बिजलीकी लताओंसे दिशाएँ पूर दीं, जल-धाराओंसे सारा आकाश छा दिया, कुरैयासे जङ्गल भर दिए और बाढ़से नदियाँ भर दीं ॥ ९ ॥ प्रियतमके वियोगरूपी दुःखसागरमें डूबी हुई मुझ दीन वियोगिनीको देखकर कदम्बके परागसे लदे ये पवन बहना चाहें तो भले ही बहें, मोर भी बड़े चावके साथ नाचना चाहें तो भले ही नाचें और जलसे भरे हुए गम्भीर बादल गरजना चाहें तो भले ही गरजें पर अरी निठुर बिजली ! तू तो स्त्री है, तू क्यों चमके जा रही है ! मैं भी तो तेरी ही जैसी स्त्री हूँ ॥ १० ॥ हे बादलो ! अपना बरसना बन्द कर दो, तुम्हारी व्यर्थकी वर्षासे यहाँ कोई लाभ नहीं है। तुम जहाँ चाहो, किसी दूसरी दिशामें चले जाओ क्योंकि यहाँ ऐसा कोई वन, मार्ग या धरतीका खण्ड नहीं बचा है जो विरहिणी नवेलियोंके आँसुओंसे भर न गया हो ॥ ११ ॥ जिस समय ठण्डे जलकी फुहारें लिए हुए शीतल पवन बहने लगा उस समय उसकी शीतलताके डरसे शोकरूपी आगकी सुलगती हुई भट्ठीवाले वियोगिनीके हृदयमें कामदेव मानो अत्यन्त शीघ्रताके साथ प्रवेश कर गया

करतलधृतया दुःखितालीजनेन। सोत्कण्ठं मुक्तकण्ठं कठिनकुचतटाघातशीर्णाश्रुबिन्दु स्मृत्वा स्मृत्वा प्रियस्य स्खलितमृदुवचो रुद्यते पान्थवध्वा ॥ १३ ॥ सखि हे पश्य रसमयं जलधरसमयं समुन्नद्धम्। विलसति कापि वलाका कापि बलाका मुदं धत्ते ॥ १४ ॥

खद्योतः—प्राचीमहीधरशिलाविनिवेशितस्य धाराधरस्फुरदयोघनताडितस्य। तप्तायसस्य तपनस्य कणा विकीर्णाः खद्योतपोतसुषमां स्फुटमावहन्ति ॥१॥

हंसः—तटमुपगतं पद्मे पद्मे निवेशितमाननं प्रतिपुटकिनीपत्रच्छायां मुहुर्मुहुरासितम्। मुहुरुपगतैरस्रैः कोष्णीकृता जलवीचयो जलदमलिनां हंसेनाशां विलोक्य पिपासता ॥ १ ॥ हन्तेयं परितः प्रसारिततमःपुञ्जा पयोदावली गर्जन्ती पुरतः पिशाचदयिताकाराऽऽगता दृश्यते। तस्मान्नात्र सुखाय हन्त वसतिः स्यादित्यतिव्याकुलो हंसो याति विहाय सर्वकरणोद्योगं निजं मानसम् ॥ २ ॥

शरद्वर्णनम्—अतिश्लथालम्बिपयोधरेयं शुभ्रीभवत्काशविकासिकेशा। अतीतलावण्यजलप्रवाहा प्रावृट् जरां प्राप शरच्छलेन ॥ १ ॥ अथ प्रसन्नेन्दुमुखी सिताम्बरा समाययावुत्पलपत्रलोचना। सपङ्कजा श्रीरिव गां निषेवितुं सहंसबालव्यजना शरद्वधूः ॥ २ ॥ अथोपगूढे शरदा शशाङ्के प्रावृड्ययौ शान्ततडित्कटाक्षा। कासां न सौभाग्यगुणोऽङ्गनानां नष्टः परिभ्रष्टपयोधराणाम् ॥ ३ ॥ अनुवनं वनराजिवधूमुखे बहलरागजवाधरचारुणी। विकचबाणदलावलयोऽधिकं रुरुचिरे रुचिरेक्षणविभ्रमाः ॥ ४ ॥ अपाकृत्याशेषाण्यपि च घनजालानि परितस्तमोधूमस्तोमोद्भवमलिनिमानं च तदनु। शरच्चन्द्रः शिल्पी रतिपतिमुदेऽसौ निजकरैः सुधासन्दोहार्द्रैर्भुवनभवनं पाण्डुरयति ॥ ५ ॥ अपामुद्वृत्तानां निजमुपदिशन्त्या स्थितिपदं ददत्या

॥ १२ ॥ आधी रातके समय बादलकी गरज सुनकर वियोगिनी नायिकाके हाथ-पैर फूल गए और वह घबराहटके मारे धरतीपर बिछे बिछावनपर गिर पड़ी, उस समय उसकी सखियोंने दुखी होकर उसे हाथका सहारा देकर सँभाल लिया और तब वह अपने कठोर स्तनोंपर आँसूकी बूँदें गिराती हुई प्रियतमकी पुरानी प्रेम-भरी बातोंका स्मरण कर-करके धाड़ मार-मारकर रोने लगी ॥ १३ ॥ हे सखी ! रस (जल, शृंगार) से भरी हुई इस वर्षाको तो देखो, जिसमें कोई बगुली तो अठखेलियाँ कर रही है और कोई बगुली हर्षसे नाच रही है ॥१४॥

जुगुनू : उदयाचलकी चट्टानपर बादल-रूपी लोहेके घनसे जो यह तपे हुए लोहेके समान लाल सूर्य पीटा गया उसीकी उड़ी हुई चिनगारियाँ जुगुनू बनकर चमक रही हैं ॥ १ ॥

हंस : प्यासे हंसने देखा कि सब दिशाएँ बादलोंसे छाई हुई हैं, अतः उसने जलाशयके तीरपर जाकर वहाँ प्रत्येक कमलपर अपनी चोंच लगाई, बार-बार एक-एक कमलिनीकी छाँहमें बैठा और जब वहाँ भी उसे चैन न मिली तो उसने बार-बार बहते हुए आँसुओंसे वह सारा जलका प्रवाह गरम कर दिया ॥ १ ॥ 'आह ! घोर अन्धकार फैलाती हुई यह मेघोंकी घटा पिशाचिनीकी भाँति गड़गड़ाती हुई चली आ रही है अतः अब यहाँ रहनेमें सुख नहीं है !' यही सोचकर मानो हंस अपना सारा पुरुषार्थ छोड़कर व्याकुल होकर अपने मानसरोवरको उड़ गया ॥ २ ॥

शरद्का वर्णन : ढीले होकर लटके हुए बादलरूपी स्तनोंवाली, उजले होकर खिलते हुए काँसरूपी केशोंवाली तथा जलप्रवाहरूपी सौन्दर्यसे रहित यह वर्षा अब शरद् ऋतुके आगमनके रूपमें वृद्ध हो रही है ॥ १ ॥ कमलके साथ होनेसे लक्ष्मी-सी जान पड़नेवाली, निर्मल चन्द्रमारूपी मुखवाली, निर्मल आकाश-रूपी वस्त्रोंवाली तथा कमलकी पङ्खड़ियों-सी आँखोंवाली शरद्रूपी नवेली अपने हंसरूपी चँवरोंके साथ पृथ्वीपर बसनेके लिये आ पहुँची है ॥२॥ शरद्रूपी नायिकाने जब चन्द्रमाको गले लगाया तब वर्षारूपी नायिकाकी बिजली-रूपी चितवन ठण्ढी पड़ गई क्योंकि गिरे हुए पयोधर (स्तन, बादल) वाली किन स्त्रियोंकी शोभा नष्ट नहीं हो जाती ॥ ३ ॥ वनमें गहरे लाल रङ्गके जपाकुसुम ही जिसके सुन्दर ओठ थे, उस वाटिका रूपी नायिकाके मुखमें खिले हुए कठसरैयाके फूलोंमें गूँजते हुए भौंरे ही सुन्दर आँखोंके समान मन लुभा रहे थे ॥४॥ शरद्के चन्द्रमारूपी चतुर कारीगरने कामदेवको प्रसन्न करनेके लिये पहले तो चारों ओर छाए हुए बादलरूपी जाल हटाए, फिर अँधेरे-रूपी धुएँका कालापन मिटाया और फिर अपने सुधा (अमृत, चूनेकी धारा) से भीगे करों (किरणों, हाथों) से त्रिभुवन-रूपी घरको उजला कर दिया है ॥ ५ ॥ शरद् ऋतुने उछलकर बहते हुए जलको स्थिर होकर बहना सिखाया, धानके पौधोंमें बालें आ जानेपर उन्हें झुके रहना सिखाया तथा मोरोंका मदरूपी विष हर लिया। इस

शालीनामवनतिमुदारे सति फले । मयूराणामुग्रं विषमिव हरन्त्या मदमहो कृतः कृत्स्नस्यायं विनय इव लोकस्य शरदा ॥ ६ ॥ अपीतक्षीवकादम्बमसंसृष्टामलाम्बरम् । अप्रसादितसूक्ष्माम्बु जगदासीन्मनोरमम् ॥ ७ ॥ अमी पृथुस्तम्बभृतः पिशङ्गतां गता विपाकेन फलस्य शालयः । विकासि वप्राम्भसि गन्धसूचितं नमन्ति निघ्रातुमिवास्यतोत्पलम् ॥८॥ अमी समुद्धूतसरोजरेणुना हृता हृतासारकरणेन वायुना । उपागमे दुश्चरिता इवापदां गतिं न निश्चेतुमलं शिलीमुखाः ॥ ९ ॥ अर्धं सुप्तो निशायाः सरभससुरतायाससन्नश्लथाङ्गः प्रोद्भूतासह्यतृष्णो मधुमदविरतौ हर्म्यपृष्ठे प्रबुद्धः । सम्भोगक्लान्तकान्ताशिथिलभुजलतावर्जितं कर्करीतो ज्योत्स्नाभिन्नाच्छधारं न पिबति सलिलं शारदं मन्दपुण्यः ॥१०॥ असावनास्थापरयावधीरितः सरोरुहिण्या शिरसा नमन्नपि । उपैति शुष्यन्कलभः सहाम्भसा मनोभुवा तप्त इवाभिपाण्डुताम् ॥ ११ ॥ असितनयनलक्ष्मीं लक्षयित्वोत्पलेषु क्वणितकनककाञ्चीं मत्तहंसस्वनेषु । अधररुचिरशोभां बन्धुजीवे प्रियाणां पथिकजन इदानीं रोदिति भ्रान्तचित्तः ॥ १२ ॥ अहो बाणस्य सन्धानं शरदि स्मरभूपतेः । अपि सोऽयं त्विषामीशः कन्याराशिमुपागतः ॥ १३ ॥ आकम्पयन्फलभरानतशालिजालान्यानर्तयँस्तरुवरान्कुसुमावनम्रान् । उत्फुल्लपङ्कजवनां नलिनीं विधुन्वन्यूनां मनश्चलयति प्रसभं नभस्वान् ॥ १४ ॥ आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः प्राप्तः शरत्समय एष विशुद्धकान्तः । उत्खाय गाढतमसं घनकालमुग्रं रामो दशास्यमिव सम्भृतबन्धुजीवः ॥ १५ ॥ इतश्चन्द्रस्सान्द्रः स्मरमयवयस्सन्धिमधुरः स्फुरन्मुग्धाकेलिस्मितमिव मयूखैः सुखयति । चकोराणाञ्चक्रं कुमुदसमुदायोऽपि च शरन्निशारम्भेऽमुष्मिन् समसमयमन्तर्विकसति ॥१६॥

प्रकार उसने सारे संसारको मानो नम्रताका पाठ पढ़ा दिया है ॥ ६ ॥ शरद्के आते ही हंस बिना मदिराके ही मतवाले हो गए, आकाश भी बिना धोए ही निर्मल हो गया और पानी भी बिना छाने ही स्वच्छ हो गया ॥ ७ ॥ मोटे-मोटे डण्ठलोंवाले तथा पककर पीले पड़े हुए ये धान, क्यारियोंके जलमें खिले हुए सुगन्ध-भरे नीले कमलको सूँघनेके लिये ही मानो झुके जा रहे हैं ॥ ८ ॥ कमलके परागमें बसे हुए और ओसकी बूँदोंसे भरे हुए वायुकी ओर खिंचे हुए भौंरे इस प्रकार अपने मार्गका निर्णय नहीं कर पा रहे हैं जैसे विपत्ति पड़नेपर दुश्चरित्र व्यक्तिका कहीं ठौर-ठिकाना नहीं लगता ॥ ९ ॥ सम्भोगकी अत्यन्त थकावटसे ढीले शरीरवाला वह मनुष्य अत्यन्त अभागा है जो आधी राततक नींद लेनेके पश्चात् मदिराका मद उतर जानेपर छतपर प्यासके मारे जागकर सम्भोगसे थकी हुई नायिकाके कोमल-कोमल हाथोंसे गडुएसे उभला हुआ और चाँदनीकी धारसे मिला हुआ शरद् ऋतुका जल पीनेको नहीं पाता ॥ १० ॥ झुकी हुई धानकी बालोंके प्रणाम करनेपर भी जब गुमान-भरी कमलिनीने उसकी ओरसे आँखें फेर लीं तो वे धानकी बालें जलके साथ-साथ सूख-सूखकर कामसे तपे हुए व्यक्तिके समान पीली पड़ गई हैं ॥ ११ ॥ परदेसमें गए हुए लोग जब नीले कमलोंमें अपनी प्यारीकी काली-काली आँखोंकी झलक पाते हैं, मतवाले हंसोंके कूजनमें अपनी प्यारियोंकी सुनहली करधनीकी रुनझुनकी झनक पाते हैं और दुपहरियाके फूलोंमें उनके निचले ओठोंकी रसभरी चमक पाते हैं तब तो वे बेचारे अपनी सब सुध-बुध भूलकर डाढ़ मारकर रोने लगते हैं ॥१२॥ शरद् ऋतुमें महाराज कामदेव और कठसरैयाके फूलरूपी बाणोंका कैसा अच्छा मेल है कि उस बाणके लगते ही तेजस्वी सूर्य भी कन्या राशि (कन्याओंका झुण्ड, कन्या राशि) में जा पहुँचते हैं ॥ १३ ॥ दानोंसे भरी हुई बालियोंके भारसे झुके हुए धानके पौधोंको कँपाता हुआ, फूलोंसे लदे हुए सुन्दर वृक्षोंको नचाता हुआ और कमलोंसे भरे हुए तालोंकी कमलिनियोंको हिलाता हुआ शीतल वायु बलपूर्वक युवकोंका मन झकझोरे डाल रहा है ॥ १४ ॥ चमकती हुई तलवार धारण करनेसे अत्यन्त सुन्दर लगनेवाले और अपने बन्धुओंके जीवनकी रक्षा करनेवाले रामने जैसे अत्यन्त अभिमानी रावणका नाश किया था उसी प्रकार निर्मल चन्द्रमाके प्रकाशसे युक्त तथा अत्यन्त सुन्दर दुपहरियाके फूलको खिलानेवाला यह शरत्काल, अन्धकारसे भरे हुए भयङ्कर वर्षाकालका नाश करके आ पहुँचा ॥ १५ ॥ शरद् ऋतुकी रात्रि प्रारम्भ होते ही बचपन और यौवनके बीचकी कामभरी अवस्थाके समान तथा इठलाकर क्रीड़ा करती हुई नवेलीकी मुस्कानके समान मनोहर चन्द्रमा जैसे ही अपनी किरणोंसे सुख देने लगा वैसे ही चकोर और कुमुदोंके समूह भीतर-ही-भीतर खिल उठे ॥ १६ ॥ धान पककर सुहावने दिखाई देने लगे हैं, नदियोंका पानी उतर गया है और अब

उपैति सस्यं परिणामरम्यतां नदीरनौद्धत्यमपङ्कतां महीम्। नवैर्गुणैः सम्प्रति संस्तवस्थिरं तिरोहितं प्रेम घनागमश्रियः ॥ १७ ॥ एकेन चुलुकेनाब्धिर्निपीतः कुम्भजेन यत्। तस्योदयेऽन्तःकालुष्यं त्यजन्त्यापो भयादिव ॥ १८ ॥ ऐन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण शरद्धानार्द्रनखक्षताभम्। प्रसादयन्ती सकलङ्कमिन्दुं तापं रवेरभ्यधिकञ्चकार ॥१९॥ कदा नु कन्यागमनप्रवादं प्रक्षालयेयञ्जगति प्ररूढम्। इतीव भास्वान्परिवृद्धतापस्तुलां विशुद्ध्यर्थमिवारुरोह ॥ २० ॥ कनकभङ्गपिशङ्गदलैर्दधे सरजसारुणकेसरचारुभिः। प्रियविमानितमानवतीरुषां निरसनै रसनैरवृथार्थता ॥ २१ ॥ करकमलमनोज्ञाः कान्तसंसक्तहस्ता वदनविजितचन्द्राः काश्चिदन्यास्तरुण्यः। रचितकुसुमगन्धि प्रायशो यान्ति वेश्म प्रबलमदनहेतोस्त्यक्तसङ्गीतरागाः ॥ २२ ॥ कह्लारपद्मकुमुदानि मुहुर्विधुन्वँस्तत्सङ्गमादधिकशीतलतामुपेतः। उत्कण्ठयत्यतितरां पवनः प्रभाते पत्रान्तलग्नतुहिनाम्बुविधूयमानः ॥ २३ ॥ कारण्डवाननविघट्टितवीचिमालाः कादम्बसारसकुलाकुलतीरदेशाः। कुर्वन्ति हंसविरुतैः परितो जनस्य प्रीतिं सरोरुहरजोरुणितास्तटिन्यः ॥ २४ ॥ काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या। आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या ॥ २५ ॥ काशाः क्षीरनिकाशा दधिसरवर्णानि सप्तपर्णानि। नवनीतनिभश्चन्द्रः शरदि च तक्रप्रभा ज्योत्स्ना ॥ २६ ॥ काशैर्मही शिशिरदीधितिना रजन्यो हंसैर्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि। सप्तच्छदैः कुसुमभारनतैर्वनान्ताः शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभिः ॥ २७ ॥ कृतमदं निगदन्त इवाकुलीकृतजगत्त्रयमूर्जमतङ्गजम्। ववुरयुक्छदगुच्छसुगन्धयः सततगास्ततगानगिरोऽलिभिः ॥ २८ ॥ कृतावधानं जितव-

---

शरद्के नये गुण देखकर लोगोंका मन भी वर्षाकी शोभासे उचट गया है ॥ १७ ॥ शरद्में अगस्त्यके उदय होते ही जलने मानो इसी डरसे अपने भीतरकी मलिनता छोड़ दी कि इस अगस्त्यने एक ही चुल्लूसे सारा समुद्र सोख लिया था ॥ १८ ॥ जैसे किसी नवेलीके स्तनोंपर किसी दूसरेके हाथसे लगे हुए नखक्षतको देखकर व्यभिचारी तो प्रसन्न होता है किन्तु उसका पति दुखी होता है, उसी प्रकार उजले पयोधर (बादल, स्तन) पर तत्काल लगे हुए नखक्षतके समान दिखाई देनेवाले इन्द्रधनुषकी छाप लिए हुए शरद्ने कलङ्की चन्द्रमाको प्रसन्न (स्वच्छ) कर दिया और सूर्यका ताप बढ़ा दिया अर्थात् शरद्में चन्द्रमा निर्मल हो गए और सूर्यकी किरणोंमें तीव्रता आ गई ॥ १९ ॥ 'कन्या (कन्या, कन्याराशि) से संयोग करनेका जो मेरा अपवाद संसारमें फैला है, इसे मैं कब मिटा डालूँ !' इसी चिन्ता में तपता हुआ सूर्य मानो अपनी शुद्धिके लिये तुला (तुला राशि, तराजू) पर चढ़ गया ॥ २० ॥ सोनेके टुकड़ेके समान पीली पंखुड़ियोंवाले तथा परागसे भरे हुए लाल केसरवाले असनाके वृक्ष, प्रियतमोंसे ठुकराई जानेके कारण रूठी हुई स्त्रियोंका क्रोध दूर करते हुए अपना नाम सार्थक कर रहे थे ॥ २१ ॥ चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर मुखवाली नवेलियाँ शरद् ऋतुमें अपना सब गाना-बजाना छोड़कर अत्यन्त कामातुर होकर अपने प्रेमियोंके हाथोंमें अपने कमल जैसे हाथ डालकर फूलोंकी सेजवाले घरोंमें पैठी चली जा रही हैं ॥ २२ ॥ प्रातःकाल पत्तोंपर पड़ी हुई ओसकी बूँदें टपकाता हुआ, श्वेत और लाल कमलों तथा कुमुदोंको बार-बार हिला-हिलाकर उनसे छू जानेके कारण अधिक शीतल होकर धीमे-धीमे बहता हुआ पवन अत्यधिक मस्त बना देता है ॥ २३ ॥ जिन नदियोंका जल कमलके परागसे लाल हो गया है, जिनपर हंस कूज रहे हैं, जिनकी लहरें जल-पक्षियोंकी चोंचोंसे टकरा रही हैं और जिनके तीरपर कदम्ब और सारस पक्षियोंके झुण्ड घूम रहे हैं वे नदियाँ शरद् ऋतुमें बड़ी सुहावनी लगती हैं ॥२४॥ फूले हुए काँसके कपड़े पहने, मस्त हंसोंकी बोलीके सुहावने पायल बाँधे, पके हुए धानसे अधिक मनोहर शरीरवाली और खिले हुए कमल के समान सुन्दर मुखवाली शरद् ऋतु अब नई ब्याही हुई रूपवती दुलहिनके समान आ पहुँची ॥२५॥ शरद् ऋतुमें काँसके फूल तो दूधके समान, छितवनके फूल दहीकी मलाईके समान, चन्द्रमा मक्खनके समान और चाँदनी मट्ठेके समान दिखाई देने लगी ॥ २६ ॥ काँसकी झाड़ियोंने धरतीको, चन्द्रमाने रातोंको, हंसोंने नदियोंके जलको, कमलोंने तालाबोंको, फूलोंके बोझसे झुके हुए छतिवनके बिरवोंने जङ्गलको और मालतीके फूलोंने फुलवारियोंको उजला कर डाला है ॥ २७ ॥ शरद्के जिस पवनमें छितवनके फूलके गुच्छोंकी सुगन्ध भरी थी और जो भौंरोंके स्वरोंमें गीत गाता चल रहा था वह मानो त्रिभुवनको व्याकुल कर देनेवाले

हिरणध्वनौ सुरक्तगोपीजनगीतनिःस्वने । इदं जिघत्सामपहाय भूयसीं न सस्यमभ्येति मृगीकदम्बकम् ॥२९॥ केदार एव कलमाः परिणामनम्राः प्राचीनमामलकमृध्यति बालनीलम् । उर्वारुकं स्फुटति निर्गतगर्भगन्धमम्लीभवन्ति च जरत्त्रपुसीफलानि ॥ ३० ॥ केशान्नितान्तघननीलविकुञ्चिताग्रानापूरयन्ति वनिता नवमालतीभिः । कर्णेषु च प्रवरकाञ्चनकुण्डलेषु नीलोत्पलानि विविधानि निवेशयन्ति ॥ ३१ ॥ क्वापि क्वापि तिरोहितं भुवि भयादम्भोमुचामागतेर्ज्योत्स्नासञ्चयमिन्दुना गतघनास्कन्दाय तस्मै पुनः । पृथ्वी सर्वमदीदृशत्ततमिव प्रक्षीयमाणाम्भसा सिन्धूनां पुलिनच्छलेन कुमुदप्रस्ताररूपेण च ॥ ३२ ॥ क्षुण्णमौक्तिकपरागपाण्डुरः शोभते स्म दिवि चन्द्रिकाभरः । मेघबन्धनविमुक्तमीक्षितुं क्षीरनीरधिरिवेन्दुमागतः ॥ ३३ ॥ गोधूमसर्पिर्यवमुद्गधान्यं रक्तस्रुती रेचनमस्ति मान्यम् । हंसोदकं तिक्तकषायमिश्रं वनान्तकाले लघु दुग्धमिश्रम् ॥ ३४ ॥ चञ्चत्कादम्बपक्षप्रचलितकुमुदस्तोमसौरभ्यलुभ्यद्भ्राम्यद्भृङ्गप्रसङ्गप्रकटितयुगपत्कौमुदीध्वान्तपूरे । कासारे क्षालिताङ्गः शुचिसिचयहिमोशीरकर्पूरमुक्तामालाशाली प्रदोषे शरदि शशिकरानाश्रयत्सौधपृष्ठे ॥ ३५ ॥ चञ्चन्मनोज्ञशफरीरसनाकलापाः पर्यन्तसंस्थितसिताण्डजपङ्क्तिहाराः । नद्यो विशालपुलिनान्तनितम्बबिम्बा मन्दं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्य ॥३६॥ चन्द्रायते शुक्लरुचापि हंसो हंसायते चारुगतेन कान्ता । कान्तायते स्पर्शसुखेन वारि वारीयते स्वच्छतया विहायः ॥ ३७ ॥ चेतः कर्षन्ति सप्तच्छदकुसुमरसासारसौरभ्यलुभ्यद्भृङ्गीसङ्गीतभङ्गिश्रुतिसुभगदिशो वासराः शारदीनाः ।

मतवाले कार्तिकरूपी हाथीके आनेकी सूचना दे रहा था ॥ २८ ॥ बड़े मीठे गलेवाली गोपियोंके जिस गीतकी ध्वनियोंने मोरकी मधुर कूजको भी हरा दिया है उन्हें ध्यान देकर सुनता हुआ यह हरिणियोंका झुण्ड खेती चरनेकी प्रबल इच्छाको रोककर खेतोंकी ओर न जाकर गीतोंमें कान लगाए खड़ा है ॥ २९ ॥ साठी धानकी बालें खेतोंमें ही पककर झुक गई हैं। खेतकी बाड़ोंमें आँवलेके छोटे-छोटे नीले-नीले पौधे शोभा पा रहे हैं, कचरी अपने भीतरसे गन्ध फेंकता हुआ फट रहा है और खीरेके फल पककर खट्टे हो रहे हैं ॥ ३० ॥ शरद्में स्त्रियाँ अपनी घनी घुँघराली काली लटोंमें नये मालतीके फूल गूँथ रही हैं और अपने जिन कानोंमें वे सोनेके बढ़िया कुण्डल पहना करती थीं उनमें अनेक प्रकारके नीले कमल लटका रही हैं ॥ ३१ ॥ बादलोंके आ जानेसे डरके मारे पृथ्वीपर कहीं-कहीं चाँदनीका जो ढेर छिप गया था उसे ही मेघोंका डर बीत जानेपर चन्द्रमाने मानो सूखे हुए जल, समुद्रका तट और खिले हुए कुमुदोंके फैलावके बहाने (उस चाँदनीको) सारी विस्तृत पृथ्वीके दर्शन करा दिए ॥ ३२ ॥ शरद् ऋतुमें पिसे हुए मोतियोंके चूर्णके समान उजली चाँदनीवाला चन्द्रमा आकाशमें ऐसा सुन्दर दिखाई दे रहा था मानो मेघोंके बन्धनसे छूटे हुए अपने पुत्र चन्द्रमाको देखनेके लिये क्षीरसागर (दूधका समुद्र) आ पहुँचा हो ॥ ३३ ॥ शरद् ऋतुमें गेहूँ, घी, जौ, मूँग आदि अन्न और रक्तस्रुति तो उत्तम रेचक (शुद्ध शौच लानेवाले) माने गए हैं तथा ठंढा जल, कड़ुआ, कसैला, मीठा रस तथा थोड़ा दूध हितकारी माना गया है ॥ ३४ ॥ जिस तालावमें उड़ते हुए हंसोंके पङ्खोंसे हिलते हुए कुमुदोंपर सुगन्धके लोभसे आकर जुटे हुए भौंरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो एक साथ चाँदनी और अँधेरा फैल रहा हो उस तालावमें स्नान करके पवित्र वस्त्र और पालेके समान उजले शीतल खस, कपूर और मोतियोंकी माला पहने कोई पुरुष शरद् ऋतुकी रातके प्रथम पहरमें छतपर जाकर चाँदनीका आनन्द लेने लगा ॥ ३५ ॥ उछलती हुई सुन्दर मछलियाँ ही जिनकी करधनी हैं, तीरपर बैठी हुई उजली चिड़ियोंकी पातें ही जिनकी मालाएँ हैं और ऊँचे-ऊँचे रेतीले टीले ही जिनके बड़े-बड़े गोल नितम्ब हैं, वे नदियाँ, शरद् ऋतुमें उसी प्रकार धीरे-धीरे बह रही हैं जैसे बड़े-बड़े नितम्बोंवाली मदमाती नवेली कामिनियाँ कर धनी और माला पहने हुए धीरे-धीरे चली जा रही हों ॥३६॥ शरद्में अपने उजलेपनसे हंस भी चन्द्रमासा दिखाई पड़ता है, नवेली भी अपनी सुन्दर चालसे हंसकी बराबरी कर रही है, छूनेमें ठण्ढा लगनेवाला जल स्त्रीके समान शीतल लग रहा है और स्वच्छ हो जानेके कारण आकाश भी जलके समान ही हो गया है ॥३७॥ शरद् ऋतुमें छितवनके फूलकी रसधाराओंके सुगन्धकी लोभी भौंरियोंकी गानेकी ध्वनिसे सब दिशाएँ गूँज रही हैं और तरुण सूर्य भी खिले हुए कमलके मुखवाली, तथा उड़ते हुए भौंरोंकी चोटीवाली कमलिनीके साथ अठखेलियाँ करने लगा है ॥ ३८ ॥ सूर्यने अपनी किरणोंसे संसारमें फैले

किञ्च व्याकोशपङ्केरुहमधुरमुखीं सञ्चरच्चञ्चरीकश्रेणीवेणीसनाथां रमयति तरुणः पद्मिनीमंशुमाली ॥३८॥ जगति नैशमशीतकरः करैर्वियति वारिदवृन्दमयं तमः। जलजराजिषु नैद्रमदिद्रवन्न महतामहताः क्व च नारयः ॥ ३९ ॥ जगत्प्रसूतिर्जगदेकपावनी व्रजोपकण्ठं तनयैरुपेयुषी। द्युतिं समग्रां समितिर्गवामसावुपैति मन्त्रैरिव संहिताहुतिः ॥ ४० ॥ जीमूतेषु महत्सु लोकमपरं यातेषु तद्बान्धवाः केचिद्वारिमुचः कृशाः प्रबलतस्तन्नाशशोकादिव। मौनस्था इव शान्तगर्जिततया भस्मानुलिप्ता इव श्वेताः प्राप्य तपोमयीमिव दशामाशान्तभाजोऽभवन् ॥ ४१ ॥ तनुरुहाणि पुरोविजितध्वनेर्धवलपक्षविहङ्गमकूजितैः। जगलुरक्षमयेव शिखण्डिनः परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः ॥ ४२ ॥ तारागणप्रवरभूषणमुद्वहन्ती मेघावरोधपरिमुक्तशशाङ्कवक्त्रा। ज्योत्स्नादुकूलममलं रजनी दधाना वृद्धिं प्रयात्यनुदिनं प्रमदेव बाला ॥ ४३ ॥ तीक्ष्णं रविस्तपति नीच इवाचिराढ्यः शृङ्गं रुरुस्त्यजति मित्रमिवाकृतज्ञः। तोयं प्रसीदति मुनेरिव चित्तवृत्तिः कामं दरिद्र इव शोषमुपैति पङ्कः ॥ ४४ ॥ ददतमन्तरिताहिमदीधितिं खगकुलाय कुलायनिलायिताम्। जलदकालमबोधकृतं दिशामपरथाप रथावयवायुधः ॥४५॥ दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः। नवसङ्गमसव्रीडा जघनानीव योषितः ॥ ४६ ॥ दिवसकरमयूखैर्बोध्यमानं प्रभाते वरयुवतिमुखाभं पङ्कजं जृम्भतेऽद्य। कुमुदमपि गतेऽस्तं लीयते चन्द्रबिम्बे हसितमिव वधूनां प्रोषितेषु प्रियेषु ॥ ४७ ॥ दूरं तोयधरान्धकारकरिणां यूथेषु नष्टेष्वितो निष्क्रामन्नुदयाद्रिकन्दरभुवः कृत्वैकमङ्के मृगम्। तद्रक्तोदक्षतजैरिवारुणकरप्रासप्रकृष्टोदयः पश्यायं शरदिन्दुरद्य कुरुते शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ४८ ॥ द्वयमिदमत्यन्तसमं नीचे प्रभविष्णुता शरच्चेयम्। क्षेत्रेभ्यः प्राप्य फलं खलेषु निक्षिप्यते यस्याम् ॥ ४९ ॥ धन्याः शरदि सेवन्ते प्रोल्लस-

हुए रात्रिके अन्धकार, आकाशमें छाए हुए बादलरूपी अन्धकार और कमलोंमें बसे हुए नींदके अन्धकारको भगा दिया। प्रतापी लोगोंके शत्रु भला कहाँ नहीं मार खाते हैं ॥ ३९ ॥ शरद् ऋतुमें संसारकी माता, संसारको पवित्र करनेवाली और अपने बछड़ोंके साथ गोठमें पहुँची हुई यह गायोंकी टोली ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ रही हैं मानो मन्त्रोंके साथ दी हुई आहुतियाँ हों ॥ ४० ॥ शरद् ऋतुमें आकाशमें छिटफुट दिखाई देनेवाले बादल ऐसे जान पड़ते हैं मानो उनके जो वर्षाऋतुके बड़े-बड़े बादल भाई दूसरे लोकोंको चले गए हैं उनके वियोगके दुःखमें ये दुबले पड़ गए हों, अपनी गड़गड़ाहट बन्द करके मौन हो गए हों, वैराग्यके कारण भस्म पोतकर उजले हो गए हों तथा इस प्रकार तपस्वी जैसा वेष बनाकर धरतीके छोरपर जा बसे हों ॥ ४१ ॥ शरद्में मोरोंके पङ्ख मानो इस जलनसे गिर गए कि उजले पङ्खवाले हंसोंकी कूजनसे हमारी बोली हार गई है। सचमुच शत्रुसे किया हुआ अपमान बड़ा असह्य होता है ॥ ४२ ॥ तारोंके सुहावने गहने पहने हुए और चाँदनीकी उजली साड़ी लपेटे हुए अलबेली नवेलीके समान शरद्के दिनोंमें बादल हटे हुए चन्द्रमाके मुँहवाली रात, दिन-दिन बढ़ती चली जा रही है ॥ ४३ ॥ शरद् ऋतुमें नीच नये धनीके समान सूर्य अत्यन्त तपने लगे हैं, जैसे उपकार न माननेवाला मनुष्य अपने मित्रको छोड़ देता है वैसे ही रुरु मृग भी अपनी सींगें गिरा रहा है, मुनियोंके मनके समान जल निर्मल हो रहा है और दरिद्रके समान कीचड़ अत्यन्त सूखता जा रहा है ॥ ४४ ॥ जिस वर्षाने सूर्यको छिपा दिया था, चिड़ियोंको घोंसलोंमें ही बन्द रहनेका आदेश दे दिया था और जिसमें दिशाओंका ज्ञान नहीं हो पा रहा था उस वर्षाको चक्रधारी कृष्णने शरद्के रूपमें पाया ॥ ४५ ॥ शरद्के दिनोंमें नदियाँ अपने दोनों तटोंको इस प्रकार धीरे-धीरे छोड़ती हैं जैसे अपने पतिके नये-नये समागमसे लजाती हुई स्त्रियाँ अपना जघन धीरे-धीरे खोलती हैं ॥ ४६ ॥ शरद्में प्रातःकाल जब सूर्य अपने करों (किरणों) से कमलको जगाता है तब वह कमल सुन्दरी युवतीके मुखके समान खिल उठता है और जैसे प्रियके परदेस चले जानेपर स्त्रियोंकी मुस्कराहट जाती रहती है वैसे ही चन्द्रमाके छिप जानेपर कोईं सकुचा जाती है ॥ ४७ ॥ देखो, पनियल बादलोंके अन्धकाररूपी हाथियोंके समूहोंके दूर भाग चुकनेपर, अपनी गोदमें एक मृग लेकर उस मृगके रक्तसे लथपथ करों (किरणों) को फैलाए हुए अत्यधिक शोभित होता हुआ यह शरद् ऋतुका चन्द्रमा ठीक सिंह जैसा आचरण करता हुआ उदयाचलकी गुफासे निकल रहा है ॥ ४८ ॥ नीचोंकी प्रभुता और शरद् ऋतु दोनों एक-सी दिखाई देती हैं, क्योंकि दोनोंमें ही क्षेत्र (सत्पात्र, खेत) से

च्चिन्नशालिकान् । प्रासादाँस्त्रीसखाः पौराः केदाराँश्च कृपीवलाः ॥ ५० ॥ नद्यो वहन्ति कुटिलक्रमयुक्तिशुक्ति-रेखाङ्कवालपुलिनोदरसुप्तकूर्माः । एतास्तरङ्गितनुतोय-पलायमानमीनानुसारिवकदत्तकरालफालाः ॥ ५१ ॥ नमिताः फलभारेण न मिताः शालमञ्जरीः । केदारेषु हि पश्यन्तः के दारेषु विनिःस्पृहाः ॥ ५२ ॥ नष्टं धनु-र्वलभिदो जलदोदरेषु सौदामिनी स्फुरति नाद्य वियत्-पताका । धुन्वन्ति पक्षपवनैर्न नभो बलाकाः पश्यन्ति नोन्नतमुखा गगनं मयूराः ॥ ५३ ॥ नारीनयननिराकृतमम्बुजमम्भसि निमज्जति त्रपया । मधुलुब्धाः पुनर-लयः करुणं क्रन्दन्ति गुञ्जितव्याजात् ॥ ५४ ॥ नीलनी-रदनिचोलकोज्झिते व्योमदर्पणतले शरद्वधूः । चन्द्रमा-ननमिव व्यलोकयत्तत्क्षणोन्मिषितकैरवेक्षणा ॥ ५५ ॥ नृत्यप्रयोगरहिताञ्छिखिनो विहाय हंसानुपैति मदनो मधुरप्रगीतान् । मुक्त्वा कदम्बकुटजार्जुनसर्जनीपान्स-प्तच्छदानुपगता कुसुमोद्गमश्रीः ॥ ५६ ॥ नेत्रोत्सवो हृदयहारिमरीचिमालः प्रह्लादकः शिशिरसीकरवारि-वर्षी । पत्युर्वियोगविपदिग्धशरक्षतानां चन्द्रो दहत्यति-तरां तनुमङ्गनानाम् ॥ ५७ ॥ पतन्ति नास्मिन्विशदाः पतत्त्रिणो धृतेन्द्रचापा न पयोदपङ्क्तयः । तथापि पुष्णाति नभः श्रियं परां न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम् ॥ ५८ ॥ पयोदकेशेषु विकृष्य रोषान्निष्कास्य सा कोकनदायताक्षी । वर्षावधूं स्वां श्रियमुन्नयन्ती प्रौढा सपत्नीव शरच्चकाशे ॥ ५९ ॥ पाथोदजालजटिलं मलिनं शरदङ्गना । अम्बरं धावयामास चन्द्रिकाचय-वारिभिः ॥ ६० ॥ पूर्वं वारिधरप्रसङ्गसमयेनापूरितैः कुक्षिभिर्या गर्भिण्य इवातिभारगुरवो निस्सेव्यतामा-गताः । एतास्सम्प्रति ता विभान्त्यकलुषाः क्षामाभि-रामाङ्गिकाः कूजत्सारसपोतपीतपयसो नद्यः प्रसूता इव ॥ ६१ ॥ भिन्नाञ्जनप्रचयकान्ति नभो मनोज्ञं बन्धू-

---

फल (धन, अनाज) लेकर खल (नीच, खलिहान) में रक्खा जाता है ॥ ४९ ॥ वे पुरवासी धन्य हैं जो शरद्‌में रङ्ग-विरङ्गे चित्रोंसे सजाई हुई अटारियोंमें अपनी नवेलियोंके साथ आनन्द लेते हैं और वे किसान धन्य हैं जो अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर लहलहाते हुए धानोंवाली क्यारियोंका आनन्द लेते हैं ॥ ५० ॥ शरद्‌ऋतुमें वे नदियाँ टेढ़ी-मेढ़ी वह रही हैं जिनके सीपीसे चमकते हुए तटोंमें कछुए सो रहे हैं तथा जिनके लहराते हुए थोड़ेसे जलमें भागती हुई मछलियोंको पकड़नेके लिये बगुले भयङ्कर झपट्टा मार रहे हैं ॥ ५१ ॥ क्यारियोंमें अनाजके बोझसे झुकी हुई अनगिनत धानकी बालियोंको देखकर कौन ऐसे लोग हैं जो नवेलियोंका रस लेनेकी इच्छा न करने लगते हों ॥ ५२ ॥ शरद्‌के बादलोंमें न तो इन्द्रधनुष रह गए हैं, न बगुले ही अपने पङ्ख हिला-हिलाकर आकाशको पङ्खा झल रहे हैं और न मोरोंके झुण्ड ही अपनी चोंचें उठा-उठाकर आकाशकी ओर निहार रहे हैं ॥ ५३ ॥ नवेलीके नेत्रोंसे अपमानित होकर लाजके कारण कमल पानीमें डूब मरा है और परागके लोभी भौंरे उसके बिछोहमें अपनी गुञ्जारके स्वरमें बिलख-बिलखकर रो रहे हैं ॥ ५४ ॥ नीला बादलरूपी परदा हटते ही आकाशरूपी दर्पणमें खिले हुए कुमुदरूपी नेत्रोंवाली शरद्-रूपी बहू अपना चन्द्रमुख देखने लगी ॥ ५५ ॥ शरद्‌के कारण जिन मोरोंने नाचना बन्द कर दिया है उन्हें छोड़कर अब कामदेव बड़ी मीठी बोलीमें रुन-झुन करनेवाले हंसोंके पास पहुँच गया है और फूलोंकी सुन्दरता भी कदम्ब, कुटज, अर्जुन, सर्ज और अशोकके वृक्षोंको छोड़कर छतिवनके बिरवों-पर जा बसी है ॥ ५६ ॥ सबकी आँखोंको सुहानेवाले जिस चन्द्रमाकी किरणें बरबस अपनी ओर मन खींच लेती हैं वही सुहावना और ठण्ढी किरणें बरसानेवाला चन्द्रमा शरद्‌के दिनोंमें उन नवेलियोंके अङ्ग भूने डाल रहा है जो अपने पतियोंके बिछोहके विष-बुझे बाणोंसे घायल होकर अपने घरोंमें पड़ी कलप रही हैं ॥ ५७ ॥ शरद्‌के आकाशमें यद्यपि उजले हंस नहीं उड़ रहे हैं और बादलोंमें इन्द्रधनुष भी नहीं निकला है फिर भी आकाशकी शोभा देखते ही बनती है क्योंकि जो वस्तुएँ स्वभावसे ही सुन्दर होती हैं उनमें बनावटी सुन्दरता लानेकी आवश्यकता नहीं होती ॥ ५८ ॥ कमल ही जिसके बड़े-बड़े नेत्र थे उस नई-नई ब्याहकर आई हुई शरद् ऋतु-रूपी सौतने क्रोधपूर्वक वर्षारूपी नवेलीके बादलरूपी बाल पकड़कर उसे बाहर निकाल दिया और अपना अधिकार जमाकर प्रसन्न दिखाई देने लगी ॥ ५९ ॥ शरद्‌रूपी नवेलीने बादलोंकी मैलसे भरे हुए आकाशको चाँदनीके जलसे धो दिया है ॥ ६० ॥ पहले बादलोंके संयोगसे जिनकी कोखें भर गई थीं और जो गर्भिणीकी भाँति अधिक भारवाली हो जानेसे उपभोग करने-योग्य नहीं रह गई थीं वे ही नदियाँ अब स्वच्छ, दुबली-पतली और सुन्दर शरीरवाली हो गई हैं तथा उनमें सारसके बच्चे जो कूज-कूजकर पानी पी रहे हैं

कपुष्परजसाऽरुणिता च भूमिः। वप्राश्च पक्वकलमावृतभूमिभागाः प्रोत्कण्ठयन्ति न मनो भुवि कस्य यूनः ॥६२॥ मधुभाविताशयानां सत्यपमानेऽपि नैव निर्वेदः। जीवनरुचि पश्याब्जं न्यक्कृतमपि नागरीनयनैः ॥६३॥ मधुमधुरिमभङ्गीं भेजिरे हंसनादास्तुहिनपटललीलां लेभिरे वारिवाहाः। क्षितिरभवदपङ्का किञ्च रोलम्बबालावलिकलितनलिन्यः शैवलिन्यस्तदासन् ॥ ६४ ॥ मन्दानिलाकुलितचारुतराग्रशाखः पुष्पोद्गमप्रचयकोमलपल्लवाग्रः। मत्तद्विरेफपरिपीतमधुप्रसेकश्चित्तं विदारयति कस्य न कोविदारः॥ ६५ ॥ मयूखैरेकद्वैः कलभदशनच्छेदविशदैर्लिखद्भिर्मेघान्ते तिमिरमुरसा प्रेर्यमधुना। हरिन्माहेन्द्रीयं नवनिकषनिर्यूहरजतस्फुरद्वर्तीवर्णैः कथयति निशाभर्तुरुदयम् ॥ ६६ ॥ मुखसरोजरुचं मदपाटलामनुचकार चकोरदृशां यतः। धृतनवातपमुत्सुकतामतो न कमलं कमलम्भयदम्भसि ॥ ६७ ॥ मुखैरसौ विद्रुमभङ्गलोहितैः शिखाः पिशङ्गीः कलमस्य बिभ्रती। शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला धनुःश्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति ॥ ६८ ॥ यशसो वर्धमानस्य जयतामिव भूभुजाम्। अवकाशाय वैपुल्यं प्रापुर्वीतघना दिशः ॥ ६९ ॥ रम्यं हर्म्यतलं नवाः सुनयना गुञ्जद्द्विरेफा लताः प्रोन्मीलन्नवमालतीसुरभयो वाताः सचन्द्राः क्षपाः। यद्येतानि जयन्ति हन्त परितः शस्त्राण्यमोघानि मे तद्भोः कीदृगसौ विवेकविभवः कीदृक्प्रबोधोदयः ॥ ७० ॥ राजीवमिव राजीवं जलं जलमिवाजनि। चन्द्रश्चन्द्र इवातन्द्रः शरत्समुदयोद्यमे ॥ ७१ ॥ वधूनयननिर्जितं मधुपकैतवान्नीरजं शिवाक्षवलयं दधन्मुखरितं तदुद्गुञ्जितैः। विधाय तपसि स्थितिं वननिवासि पीतातपञ्जयाय जपति ध्रुवं कमपि मन्दमन्दं मनुम् ॥ ७२ ॥ विकचकमलवक्त्रा फुल्लनीलोत्पलाक्षी विकसितनवकाशश्वेतवासो वसाना।

उससे ऐसा जान पड़ता है मानो अब उन्होंने बच्चे जन दिए हों ॥ ६१ ॥ घुटे हुए आँजनकी पिण्डीके समान नीला सुन्दर आकाश, दुपहरियाके फूलोंसे सजी हुई लाल-लाल धरती और पके हुए सुन्दर खेत इस संसारमें किस युवकका मन डाँवाडोल नहीं कर देते ॥६२॥ जो मधु (मदिरा) पीकर मस्त पड़े रहते हैं उन्हें अपमान होनेपर भी दुःख नहीं होता। इस कमलको ही देखो, नवेलीके नयनोंसे अपमानित होकर भी यह प्रसन्नतापूर्वक जिए जा रहा है ॥ ६३ ॥ शरद् ऋतुके कारण हंसोंकी कूजमें बड़ी मिठास आ गई, बादल भी जमे हुए हिमके समान उजले दिखाई देने लगे, धरतीपर कीचड़ नहीं रह गया और नदियोंकी कमलिनियोंपर भौंरोंके झुण्ड मँडराने लगे ॥ ६४ ॥ जिस कोविदारके वृक्षकी टहनियोंकी नन्हीं-नन्हीं फुनगियोंको धीमा-धीमा पवन झुलाए डाल रहा है, जिसपर ढेरके-ढेर फूल खिले हुए हैं, जिसकी पत्तियाँ बड़ी कोमल हैं और जिसमेंसे बहते हुए मधुकी धारको मस्त भौंरे धीरे-धीरे चूस रहे हैं वह शरद् ऋतुमें किसका हृदय टुकड़े-टुकड़े नहीं कर देता ॥६५॥ नई कसौटीपर उछली हुई चाँदीकी चमकीली रेखाके समान रङ्गवाली, हाथीके बच्चेके दाँतके टुकड़ोंके समान उजली तथा बादलोंके बीच-बीच भरे हुए घने अँधेरेपर कुछ खिलती हुई-सी एक-दो किरणोंसे इस समय इन्द्रकी दिशा (पूर्व) रातके स्वामी चन्द्रमाका उदय होना सूचित कर रही है ॥६६॥ जलमें खिला हुआ और नई धूपसे चमककर चकोरके समान आँखोंवाली स्त्रियोंके मदसे लाल मुख-कमलकी-सी कान्तिवाला कमल शरद्में किसके हृदयमें हलचल नहीं मचा देता ॥ ६७ ॥ मूँगेके टुकड़ेके समान लाल ठोरोंमें धानकी भूरी-भूरी बालें लिए हुए सिरसके फूलके समान कोमल सुग्गोंकी पाँतें आकाशमें इन्द्रधनुष-सी शोभा दे रही हैं ॥ ६८ ॥ दिशाएँ मानो इसीलिये बादलोंको हटाकर विस्तृत हो गईं कि दिग्विजय करनेवाले महाराजोंके बढ़ते हुए यशको फैलनेके लिये स्थान मिल सके ॥ ६९ ॥ कामदेव कहता है कि 'सुन्दर अटारियोंवाली छतें, नई नवेलियाँ, गूँजते हुए भौंरोंसे भरी बेलें, मालतीकी सुगन्धसे भरा हुआ पवन और चाँदनी रात आदि सदा ठीक चोट पहुँचानेवाले ये हमारे शस्त्र जब चारों ओर फैले ही हुए हैं तो हमारे सामने किसीका डींग मारना और ज्ञान छाँटना दोनों व्यर्थ ही हैं' ॥ ७० ॥ शरद् ऋतुके आते ही कमल यथार्थमें कमलके समान, जल जलके समान और चन्द्रमा चन्द्रमाके समान सुन्दर हो गया ॥ ७१ ॥ नवेलियोंके नेत्रोंसे हारा हुआ कमल भौंरोंकी पाँतोंके रूपमें रुद्राक्षकी माला धारण करके उनकी गुञ्जारके स्वरमें कुछ पाठ करता हुआ, वन (पानी, वन) में स्थित होकर, धूप पीता हुआ तथा धीरे-धीरे कोई विजयमन्त्र जपता हुआ निश्चय ही उन्हें जीतनेके लिये तपस्या कर रहा है ॥७२॥ भगवान् करें, यह खिले हुए उजले कमलके मुखवाली, फूले हुए नीले कमलकी आँखोंवाली, सुन्दर कोईके शरीरवाली और फूले हुए काँसकी साड़ी

कुमुदरुचिरकान्तिः कामिनीवोन्मदेयं प्रतिदिशतु शरद्वश्चेतसः प्रीतिमग्र्याम् ॥ ७३ ॥ विगतसस्यजिघत्समघट्टयत्कलमगोपवधूर्न मृगव्रजम् । श्रुततदीरितकोमलगीतकध्वनिमिषेऽनिमिषेक्षणमग्रतः ॥ ७४ ॥ विद्युद्वह्निशिखावलीविलसितं निर्वाप्य सर्वात्मना भित्वा कज्जलकालिकाप्रणयिनीमम्भोदमूषामपि । उन्मीलन्नवचन्द्रमण्डलमिषात्सङ्क्रान्तरागोज्ज्वलश्रीभाजं रसपिण्डमेष सहसा वर्षात्ययः कर्षति ॥ ७५ ॥ विधुवदनावदनजितं प्रबोधितमपि प्रसह्य मित्रेण । विचिनोति कवलनार्थं पद्ममलिच्छद्मतो गरलम् ॥ ७६ ॥ विपाण्डुभिर्म्लानतया पयोधरैश्च्युताचिराभा गुणहेमदामभिः । इयं कदम्बानिलभर्तुरत्यये न दिग्वधूनां कृशता न राजते ॥ ७७ ॥ विहाय वाञ्छामुदिते मदात्ययादरक्तकण्ठस्य रुते शिखण्डिनः । श्रुतिः श्रयत्युन्मदहंसनिःस्वनं गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः ॥ ७८ ॥ विहारभूमेरभिघोषमुत्सुकाः शरीरजेभ्यश्च्युतयूथपङ्क्तयः । असक्तमूधांसि पयः क्षरन्त्यमूरुपायनानीव नयन्ति धेनवः ॥ ७९ ॥ वृद्धाङ्गनेव विजहौ सरिदुद्धतत्वं वेदान्तिनामिव मनः शुचि नीरमासीत् । चन्द्रे प्रभा युवतिवक्त्र इवाद्भुताभूद्विद्वत्कवित्वमिव केकिरुतं न रेजे ॥ ८० ॥ व्योम क्वचिद्रजतशङ्खमृणालगौरैस्त्यक्ताम्बुभिर्लघुतया शतशः प्रयातैः । संलक्ष्यते पवनवेगचलैः पयोदै राजेव चामरशतैरुपवीज्यमानः ॥ ८१ ॥ व्योम्नि विश्रान्तजीमूते तारकाः प्रचकाशिरे । प्रणिधानहतध्वान्ते चेतसीव चितिप्रभा ॥ ८२ ॥ शरदि कुमुदसङ्गाद्वायवो वान्ति शीता विगतजलदवृन्दा दिग्विभागा मनोज्ञाः । विगतकलुषमम्भः श्यानपङ्का धरित्री विमलकिरणचन्द्रं व्योम ताराविचित्रम् ॥ ८३ ॥ शरसामर्थ्यं शरदि स्मरवीरयोर्जितं पश्य । अप्याजगाम सोऽयं कन्यां भोक्तुं त्विषां नाथः ॥ ८४ ॥

पहननेवाली कामिनी बनकर जो मस्त शरद् ऋतु आई है वह आप लोगोंके मनमें नई-नई उमङ्गें भरे ॥ ७३ ॥ अगहनके महीनेमें धानकी रखवाली करनेवाली नवेलीके गलेसे उठी हुई मद भरे गीतकी तान सुनकर उसकी ओर कान लगाकर एकटक देखते हुए जो हरिण खेती चरनेकी इच्छा रोके खड़े थे उन्हें उस नवेली ग्वालिनको हाँकनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी ॥ ७४ ॥ वर्षाका अन्तिम समय बिजली-रूपी अग्निकी चमकती हुई लपटोंको बुझाकर तथा काजलकी कालिमावाली बादलों-रूपी घरियाकी सजावटको भली-भाँति फोड़कर अब उदय होते हुए नये चन्द्रमण्डलके रूपमें अत्यन्त प्रेम और उजली शोभासे भरे रसके घड़ेको सहसा खींचने लगा है ॥ ७५ ॥ चन्द्रमुखीके मुँहने जब कमलको जीत लिया तो उसके मित्र (सूर्य) ने उसे यद्यपि बहुत समझाया-बुझाया फिर भी वह मरनेके लिये भौंरोंके रूपमें विष बटोर ही रहा है ॥ ७६ ॥ कदम्बकी गन्धसे भरे हुए अपने वायुरूपी पतिके चले जानेपर दिशारूपी नायिकाओंके पयोधर (बादल, स्तन) उनकी दुर्बलताके कारण उजले पड़ गए हैं और उनकी बिजलीरूपी तगड़ी भी खिसककर गिर पड़ी है, फिर भी उनकी दुर्बलता आँखोंको भली लगती ही है ॥ ७७ ॥ मद न रहनेके कारण जिन मोरोंके गलेकी मिठास चली गई थी उनकी बोली सुननेकी इच्छा छोड़कर अब लोगोंके कान मतवाले हंसोंके शब्दोंका सहारा लेने लगे क्योंकि सच पूछिए तो प्यारोंके गुण प्यारे होते हैं, उनकी कोरी प्रशंसा नहीं ॥ ७८ ॥ चरकर घरकी ओर जानेकी उतावलीमें जो गौएँ अपने झुण्डकी उपेक्षा करके भागी चली जा रही हैं वे अपने निरन्तर बहानेवाले दूधसे भरे थन अपने बछड़ोंके लिये मानो वनसे उपहारके रूपमें ले जा रही हैं ॥ ७९ ॥ शरद्में बूढ़ी स्त्रियोंके समान नदियोंका उछलना बन्द हो गया है, वेदान्तियोंके मनके समान जल स्वच्छ हो गया है, तरुणीके मुखके समान चन्द्रमामें एक अनोखी चमक आ गई है और किसी विद्वान्‌की कठोर कविताके समान मोरकी बोली अब सुहाती नहीं ॥ ८० ॥ चाँदी, शङ्ख और कमलके समान उजले जो सहस्रों बादल पानी बरसाकर हल्के हो जानेसे पवनके सहारे इधर-उधर झूल रहे हैं उनसे भरा हुआ शरद्‌का आकाश कहीं-कहीं ऐसा लगने लगा है मानो किसी राजापर सैकड़ों चँवर एक साथ डुलाए जा रहे हों ॥ ८१ ॥ बादलोंके समाप्त हो चुकनेपर आकाशमें तारे उसी प्रकार चमकने लगे जैसे प्राणायामके द्वारा पापरूपी अँधेरा नष्ट होते ही चित्तमें ज्ञानका प्रकाश चमकने लगता है ॥ ८२ ॥ शरद्में कमलोंको छूता हुआ शीतल पवन बह रहा है, बादलोंके उड़ जानेसे चारों ओर सब दिशाएँ सुहावनी दिखाई पड़ रही हैं, पानीका गँदलापन दूर हो चला है, धरतीपर सारा कीचड़ सूख गया है और आकाशमें स्वच्छ किरणोंवाला चन्द्रमा और तारे छिटक आए हैं ॥ ८३ ॥ शरद् ऋतुमें कामदेवके वीरोंके बाणोंका सामर्थ्य तो देखो कि

शुभ्राभ्रं व्योम सोमः स्फुरदमलकलः पिङ्गलस्तिग्मरोचिर्मेघव्यूहव्यपायाल्लसदसिसदृशः सावकाशा इवाशाः। कासाराः स्वच्छनीराः कमलवनमिलद्भृङ्गबद्धान्धकाराः मेघान्ते वान्ति सप्तच्छदकुसुमरजोवाहिनो गन्धवाहाः ॥ ८५ ॥ शेफालिकाकुसुमगन्धमनोहराणि स्वस्थस्थिताण्डजकुलप्रतिनादितानि। पर्यन्तसंस्थितमृगीनयनोत्पलानि प्रोत्कण्ठयन्त्युपवनानि मनांसि पुंसाम् ॥ ८६ ॥ शोणैः परिवृतः पद्मैर्हंसो हव्यवहैरिव। चरन्निव तपो भाति लब्धुं वरवधूगतिम् ॥ ८७ ॥ श्यामा लताः कुसुमभारनतप्रवालाः स्त्रीणां हरन्ति धृतभूषणबाहुकान्तिम्। दन्तावभासविशदस्मितचन्द्रकान्तिं कङ्केलिपुष्परुचिरा नवमालती च ॥ ८८ ॥ सम्रं पान्थैः कान्तैर्घनसमयसङ्केतघटितैश्चिरोत्कण्ठापीनः पुनिकरतनिर्व्यूढमनसाम्। करैः पीयूषार्द्रैश्शरदि शरदण्डद्युतिहरैर्मृगाक्षीणां क्षीणां तनुमुपचरत्योषधिपतिः ॥ ८९ ॥ समय एव करोति बलाबलं प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्। शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयूरमणीयताम् ॥ ९० ॥ समुल्लसत्पङ्कजलोचनेन विनोदयन्ती तरुणानशेषान्। शुद्धाम्बरा गुप्तपयोधरश्रीः शरन्नवोढेव समाजगाम ॥ ९१ ॥ सम्पन्नशालिनिचयावृतभूतलानि स्वस्थस्थितप्रचुरगोकुलशोभितानि। हंसैः ससारसकुलैः प्रतिनादितानि सीमान्तराणि जनयन्ति नृणां प्रमोदम् ॥ ९२ ॥ स विकचोत्पलचक्षुषमैक्षत क्षितिभृतोऽङ्कगतां दयितामिव। शरदमच्छगलद्वसनोपमाक्षमघनामघनाशनकीर्तनः ॥ ९३ ॥ सुरतरसविलासाः सत्सखीभिः समेता असमशरविनोदं सूचयन्ति प्रकामम्। अनुपममुखरागा रात्रिमध्ये विनोदं शरदि तरुणकान्ताः सूचयन्ति प्रमोदान् ॥ ९४॥ सोन्मादहंसमिथुनैरुपशोभितानि स्वच्छप्रफुल्लकमलोत्पलभूषितानि। मन्दप्रभातपवनोद्गतवीचिमालान्युत्क-

---

परम तेजस्वी सूर्य भी कन्या (कन्याराशि) का उपभोग करने आ पहुँचे हैं ॥ ८४ ॥ शरद् ऋतुमें आकाशमें उजले-उजले बादल चमक रहे हैं, चन्द्रमाकी कला उजली होकर चमक रही है, सूर्य भूरा-भूरा दिखाई दे रहा है, बादलोंकी घटाएँ हट जानेसे उघड़ी हुई निर्मल दिशाएँ तलवारों-सी चमक रही हैं, तालाबोंका जल स्वच्छ हो गया है, कमलके वनोंमें मँडराते हुए भौंरोंसे अँधेरा-सा छा गया है और छतिवनके फूलोंका पराग लेकर सुगन्धित पवन बहने लगे हैं ॥ ८५ ॥ जिन उपवनोंमें शेफालिकाके फूलोंकी मनभावनी सुगन्ध फैली हुई है, जिनमें निश्चिन्त बैठी हुई चिड़ियोंकी चहचहाहट चारों ओर गूँज रही है और जिनमें कमल जैसी आँखोंवाली हरिणियाँ जहाँ-तहाँ बैठी पगुरा रही हैं, उन्हें देख-देखकर लोगोंके मन हाथसे निकले पड़ रहे हैं ॥ ८६ ॥ अङ्गारोंके समान लाल-लाल कमलोंसे घिरा हंस ऐसा जान पड़ता है मानो वह श्रेष्ठ नवेलीकी गति पानेके लिये तपस्या कर रहा हो (पञ्चाग्नि ताप रहा हो) ॥८७॥ फूलोंके बोझसे झुकी हुई हरी लताओंकी टहनियोंकी सुन्दरताने स्त्रियोंकी गहनोंसे सजी हुई बाँहोंकी सुन्दरता छीन ली है और दाँतोंकी चमकसे खिल उठनेवाली नवेलियोंकी मुस्कराहटकी चमकको अशोक तथा नई मालतीके सुन्दर फूलोंने लजा दिया है ॥ ८८ ॥ शरद् ऋतुमें ओषधियोंके स्वामी चन्द्रमाको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो वह सरकण्डेकी कान्तिको नीचा दिखानेवाली तथा अमृतसे भरी अपनी सुन्दर किरणोंसे शीघ्र आनेकी शपथ खाकर परदेश गए हुए बटोहियोंके साथ-साथ उन मृगनयनी नवेलियोंकी देहकी भी चिकित्सा कर रहा हो जो अपने पतियोंसे मिलनेकी ललकसे बार-बार हड़बड़ा रही हैं ॥८९॥ शरद्में हंसके मधुर शब्द और मोरोंकी रूखी ध्वनि मानो लोगोंको यह समझा रही थीं कि समय ही लोगोंको बलवान् और दुर्बल बनाया करता है ॥९०॥ नई ब्याही हुई नवेलीके समान वह शरद् ऋतु आ गई जो अपने खिले हुए कमल-रूपी नेत्रसे सभी युवकोंका मन हरण कर रही थी, जो निर्मल आकाशका वस्त्र पहने हुए थी और जो अपने पयोधर (बादल, स्तन) की शोभा छिपाए हुए थी ॥ ९१ ॥ शरद्में वे स्थान लोगोंको बड़े अच्छे लगते हैं जहाँ खेतोंमें भरपूर धानके पौधे लहलहा रहे हों, घासके मैदानोंमें बहुत-सी गौएँ चर रही हों और जहाँ सारसों तथा हंसोंके जोड़े मीठी बोली बोल रहे हों ॥ ९२ ॥ जिनका नाम लेनेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं उन कृष्ण भगवान्ने शरद्को ऐसा पाया मानो खिले हुए कमलकी आँखोंवाली और सरकते हुए उजले बादलरूपी वस्त्रोंवाली कोई नवेली पर्वतरूपी पतिकी गोदीमें बैठी हो ॥ ९३ ॥ शरद्में सम्भोगका रस लेनेवाली और अनूठे प्रकारसे अपने मुँह चीतनेवाली नवेलियाँ जब अपनी सखियोंके साथ बैठती हैं तो आपसमें एक दूसरीको सब बातें बता डालती हैं कि रातमें कैसे-कैसे आनन्द लूटा गया ॥ ९४ ॥ जिन तालाबोंके तीरपर मस्त हंसोंके जोड़े घूम रहे हैं, जिनमें

रठयन्ति सहसा हृदयं सरांसि ॥ ६५ ॥ स्त्रीणां विहाय वदनेषु शशाङ्कलक्ष्मीं काम्यं च हंसवचनं मणिनूपुरेषु । बन्धूककान्तिमधरेषु मनोहरेषु क्वापि प्रयाति सुभगा शरदागमश्रीः ॥ ६६ ॥ स्त्रीमुखकमलेन बलाद्विलुलितकमलं सखे कमलम् । अश्रूणि मुञ्चति रयादमन्दमकरन्दकैतवतः ॥ ६७ ॥ स्फुटं स्फुटपलाशवत्सुभगभासिचञ्चूपुटे विपाककपिशीकृताः कलममञ्जरीर्बिभ्रती । बभौ दिवि शुकावलिः कुवलयच्छविर्जङ्गमा स्वभावहृदयङ्गमा विबुधचापलक्ष्मीरिव ॥ ६८ ॥ स्फुटकुमुदचितानां राजहंसाश्रितानां मरकतमणिभासा वारिणा भूषितानाम् । श्रियमतिशयरूपां व्योम तोयाशयानां वहति विगतमेघं चन्द्रतारावकीर्णम् ॥ ६६ ॥ हंसश्चन्द्र इवाभाति जलं व्योमतलं यथा । विमलाः कुमुदानीव तारकाः शरदागमे ॥ १०० ॥ हंसैर्जिता सुललिता गतिरङ्गनानामम्भोरुहैर्विकसितैर्मुखचन्द्रकान्तिः । नीलोत्पलैर्मदकलानि विलोचनानि भ्रूविभ्रमाश्च रुचिरास्तनुभिस्तरङ्गैः ॥ १०१ ॥ हारैः सचन्दनरसैः स्तनमण्डलानि श्रोणीतटं सुविपुलं रसनाकलापैः । पादाम्बुजानि कलनूपुरशेखरैश्च नार्यः प्रहृष्टमनसोऽद्य विभूषयन्ति ॥ १०२ ॥

अलिकेलिः—करौ धुनाना नवपल्लवाकृती वृथा कृथा मानिनि मा परिश्रमम् । उपेयुषी कल्पलताभिशङ्कया कथं न्वितस्त्रस्यति षट्पदावलिः ॥१॥ चेलाञ्चलेन चलहारलताप्रकाण्डैर्वेणीगुणेन च चलद्वलयीकृतेन । हेलाहितभ्रमरकभ्रममण्डलीभिश्छत्रत्रयं रचयतीव चिरन्नतभ्रूः ॥ २ ॥ परिभ्रमन्त्या भ्रमरीविनोदे नितम्बबिम्बाद्विगलद्दुकूलम् । विलोक्य कस्याश्चन कोमलाङ्ग्याः पुम्भावमन्याः सुदृशो ववाञ्छुः ॥ ३ ॥ भ्रमात्प्रकीर्णं भ्रम-

स्वच्छ खिले हुए उजले और नीले कमल शोभा दे रहे हैं और जिनमें प्रातःकालके धीमे-धीमे पवनसे लहरें उठ रही हैं वे तालाब अचानक हृदयको मस्त बनाए डाल रहे हैं ॥ ६५ ॥ शरद्की मनोहर शोभा कहीं तो चन्द्रमाकी चमकको छोड़कर स्त्रियोंके मुखपर जा पहुँची, कहीं हंसोंकी मीठी बोली छोड़कर उनकी रत्न-जड़ी पायलोंमें चली गई और कहीं दुपहरियाके फूलोंकी लाली छोड़कर उनके निचले ओठोंमें जा पहुँची ॥६६॥ हे मित्र ! सुन्दरीके मुख-कमलसे बलपूर्वक भली-भाँति जीता हुआ कमल वेगसे ढेर-सा पराग गिरानेके बहाने मानो आँसू बहा रहा है ॥ ६७ ॥ खिले हुए टेसूके फूलके समान अपनी अत्यन्त लाल ठोरोंमें पकी हुई पीली-पीली धानकी बालियाँ लिए हुए जो नीले कमलकी कान्तिवाली सुग्गोंकी पाँतें उड़ रही थीं वे स्वभावसे ही सुन्दर इन्द्रधनुषके समान दिखाई दे रही थीं ॥ ६८ ॥ खिले हुए चन्द्रमा और छिटके हुए तारोंसे भरा हुआ शरद्का आकाश उन तालाबोंके समान दिखाई पड़ रहा है जिनमें नीलमके समान चमकता हुआ जल भरा हो, जिनमें एक-एक राजहंस तैर रहा हो और जिनमें यहाँ-वहाँ बहुतसे कुमुद खिले हों ॥ ६६ ॥ शरद्के आनेपर आकाशके समान स्वच्छ जलमें तैरता हुआ हंस तो चन्द्रमाके समान और उसमें खिले हुए उजले कुमुद तारोंके समान मनोहर दिखाई देने लगे ॥१००॥ शरद्में हंसोंने सुन्दरी नवेलियोंकी मनभावनी चाल, कमलिनियोंने उनके चन्द्रमुखकी चमक, नीले कमलोंने उनकी मदभरी आँखें और छोटी लहरियोंने उनकी भौंहोंकी सुन्दर चटक-मटकको हरा दिया है ॥ १०१ ॥ शरद्में स्त्रियाँ बड़ी उमङ्गसे अपने स्तनोंपर मोतियोंके हार डालती और चन्दन पोतती हैं, अपने बड़े-बड़े नितम्बोंपर तगड़ियाँ बाँधती हैं और अपने कमल जैसे कोमल सुन्दर पैरोंमें छम-छम बजनेवाले पायल पहनती हैं ॥ १०२ ॥

भौंरोंकी अठखेलियाँ : अरी रूठनेवाली ! इन मँडराते हुए भौंरोंको हटानेके लिये तुम अपने नये पत्तोंके समान कोमल हाथ हिला-झुलाकर व्यर्थ क्यों परिश्रम कर रही हो ? क्योंकि जब ये भौंरे तुम्हें कल्पलता समझे बैठे हैं तब तुमसे डरेंगे क्यों ॥ १ ॥ सुगन्धके कारण नायिकापर जो भौंरोंके झुण्ड मँडराने लगे, उन्हें उड़ानेके लिये उसने जो अपना आँचल उठाया उस समय उसकी चोटी भी उछलकर गोल हो गई और उसके गलेमें झूलती हुई हारोंकी लड़ियाँ भी ऊपर उठकर ऐसी जान पड़ने लगीं मानो उसके ऊपर तीन छतरियाँ लग गई हों—एक तो भौंरोंकी, दूसरी चोटीकी और तीसरी हारकी लड़ियोंकी ॥ २ ॥ भौंरियोंसे घिरकर घबराई हुई और इधर-उधर भागती हुई किसी कोमल अङ्गवाली नवेलीके नितम्बसे सरकते हुए वस्त्रको देखकर दूसरी नवेलियोंके मनमें भी यह ललक उठी कि हाय ! इस समय मैं पुरुष न हुई, नहीं तो इसका उपभोग करके कृतार्थ हो जाती ॥ ३ ॥ जिस समय अपने ऊपर उड़ती हुई भौंरियोंसे घबराकर वह नवेली अपनी चञ्चल आँखें चलाकर अपने आँचलसे उन्हें उड़ा रही थी उस समय

रीषु किञ्चिच्चेलाञ्चले चञ्चललोचनायाः। कुचौ कदाचिज्जघनं युवानो विलोक्य साफल्यमवापुरक्ष्णोः ॥४॥ मुक्ते काञ्चनकुण्डले निपतिते माणिक्यभूषामणौ कीर्णे केलिसरोरुहे विगलिते मुक्ताकलापे सति। निःश्वस्याम्बुजलोचनाभ्रमरिकानृत्यावसाने पुनः प्राणेशच्युतिशङ्कयेव हृदये हस्तारविन्दं ददौ ॥ ५ ॥ यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते ततस्ततः प्रेरितलोललोचना। विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते भयादकामापि हि दृष्टिविभ्रमम् ॥ ६ ॥

शरदनिलाः—कुर्वाणाः कैरवाणां मधुकणहरणं कूजितं रञ्जयन्तो हंसालीकण्ठनालीष्वविकलकलमामोदमैत्रीपवित्राः। शेफालीफुल्लपालीपरिमलमिलनाच्चुम्बिताश्चञ्चरीकैः कल्हाराह्लादकाराः कुवलयसुहृदश्शारदा वान्ति वाताः ॥ १ ॥ गतो यो वर्षासु क्रकचनिशितां केतकवनीमिदानीं खञ्जत्वं दधदिव समालम्ब्य निभृतम्। करान्पीयूषांशोः किमपि पवनः शारदनिशामुखेऽमुष्मिन् सप्तच्छदमृदुलमार्गे विलसति ॥ २ ॥ रतिश्रमं दूरतरं नयन्तः प्रामोदसम्भारमुदाहरन्तः। सीत्कारशिक्षां परिवर्धयन्तः प्रवान्ति नद्याः पवनाः समन्तात् ॥ ३ ॥ वान्ति कह्लारसुभगाः सप्तच्छदसुगन्धयः। वाता नवरतम्लानवधूगमनमन्थराः ॥ ४ ॥ वान्ति रात्रौ रतिक्लान्तकामिनीसुहृदोऽनिलाः। ललनालोलधम्मिल्लमल्लिकामोदवासिताः ॥ ५ ॥ हसिंतकमलगन्धाकर्षिणो वासरेषु स्फुटितकुमुदगर्भामोदवन्तः क्षपासु। जगदभिरमयन्तः शारदा वान्ति सद्यस्त्रुटितयुवतिमानग्रन्थयो गन्धवाहाः ॥६॥

शरत्पान्थः—इह निचुलनिकुञ्जे वंशसम्भारभाजि स्वपिषि यदि मुहूर्तं पश्यति क्षेत्रमेतत्। इति पथिकमकस्मान्मार्ग एवोपविष्टं वदति तरुणकान्तं गोपिका साङ्गभङ्गम् ॥ १ ॥ पङ्कानुषङ्गं पथि विस्मरन्तः कथावशेषे च पयोदवृन्दे। मार्गेषु चन्द्रातपपिच्छिलेषु पदे पदे चस्खलुरध्वनीनाः ॥ २ ॥

तरुणोंने कभी उसके स्तन और कभी उसका जघन देखकर अपनी-अपनी आँखें सफल कर लीं ॥ ४ ॥ भौंरोंसे घिर जानेसे घबराई हुई नवेलीका सोनेका कुण्डल जब कानसे निकल गया, गहनोंके मणि बिखर गए और खेलका कमल भी नीचे जा पड़ा उस समय भौंरोंके हट जानेपर जब उसने अपना यह अटपटा वेष देखा तो उसे यह धोखा हो गया कि मैं अपने पतिसे बिछुड़ी हुई हूँ और यह सोचकर उसने लम्बी साँस खींचकर 'हाय!' करके अपनी छातीपर हाथ रख लिया ॥ ५ ॥ भौंरोंसे घिरी हुई नवेली अपनी भौंहें चलाती हुई अपनी चञ्चल आँखें डरके मारे उधर-उधर घुमा रही है जिधर-जिधर भौंरा जाता है। उस समय वह ऐसी जान पड़ी मानो कामदेवकी प्रेरणाके बिना ही केवल भयके कारण वह चितवन चलानेका ढङ्ग सीख रही हो ॥ ६ ॥

शरद्के पवन : कुमुदोंसे पराग उड़ाता हुआ, हंसोंके गलेमें कूजन भरता हुआ, धानकी सुन्दर बालियोंकी सुगन्ध लेकर पवित्र होता हुआ, लालकमलोंको खिलाता हुआ और कुमुदोंका मित्र वह शरद् ऋतुका पवन बह रहा है जिसमें निर्गुण्डीके फूलोंकी गन्ध भरी रहनेके कारण भौंरे उसे बार-बार चूम रहे हैं ॥ १ ॥ वर्षा ऋतुमें आरेके समान पैने केवड़ेके वनमें जानेसे जो पवन मानो लँगड़ा हो गया था वह अब शरद् ऋतुकी रात प्रारम्भ होते ही अमृतमयी किरणोंवाले चन्द्रमाकी किरणोंका सहारा लेकर चुपचाप छतिवनके कोमल मार्गमें टहल रहा है ॥ २ ॥ रतिकी थकावट दूर करते हुए, घनी सुगन्ध फैलाते हुए तथा सी-सी करना सिखाते हुए पवन नदीके आस-पास बह रहे हैं ॥ ३ ॥ कमल और छितवनकी सुगन्धसे भरे तथा नये सम्भोगसे थकी हुई नवेलीके समान धीरे-धीरे चलनेवाले शरद्के वायु मन्द-मन्द बह रहे हैं ॥ ४ ॥ नवेलीके लहराते हुए बालोंमें गुथे हुए बेलेके फूलकी गन्धमें बसे हुए तथा सम्भोगसे थकी हुई नवेलीको सुख देनेवाले पवन शरद्की रातमें धीरे-धीरे बह रहे हैं ॥ ५ ॥ दिनमें खिले हुए कमलोंकी गन्ध खींचनेवाले तथा रातमें खिले हुए कुमुदोंके भीतरकी सुगन्ध लेनेवाले वे शरद् ऋतुके पवन संसारको प्रसन्न करते हुए बह रहे हैं जिन्होंने तत्काल रूठी हुई नवेलियोंका मान छुड़ा दिया है ॥६॥

शरद्के राही : अँगड़ाई लेती हुई कोई ग्वालिन मार्गमें बैठे हुए किसी जवान छैलेसे बिना पूछे ही कह रही है कि 'बँसवारेसे घिरी हुई इस बेनकी कुञ्जमें हे राही! यदि तुम चलकर लेट लोगे तो तुम्हें इस स्थानका पूरा आनन्द मिल जायगा' ॥ १ ॥ बादल न रहनेपर भी यात्री यह भूल गए थे कि अब मार्गमें कीचड़ नहीं है इसलिये चाँदनीसे चमकते हुए मार्गमें वे डग-डगपर फिसल-फिसलकर गिर रहे हैं ॥ २ ॥

कलमखण्डिनी – गीतं पान्थमनोहरं वत शरत्काले वितन्वत्यलं सोत्कण्ठस्तनभारवन्धुरगलत्रुट्यद्यतिव्याहृतिः । शालिं ग्रामवधूर्ननूत्तुसमपि व्यालोकयन्ती दृशा सद्यः कोकनदच्छदच्छविजुषा नोत्कण्डनं मुञ्चति ॥ १ ॥ विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोःकन्दलीपरस्परपरिस्खलद्वलयनिस्वनोद्बन्धुराः । लसन्ति कलहुङ्कृतिप्रसभकम्पितोरस्थलत्रुटद्गमकसङ्कुलाः कलमखण्डिनीगीतयः ॥ २ ॥

हेमन्तवर्णनम् – अद्य शीतं वरीवर्ति सरीसर्ति समीरणः । अपत्नीको मरीमर्ति नरीनर्ति कुचोष्मवान् ॥१॥ अन्या प्रकामसुरतश्रमखिन्नदेहा रात्रिप्रजागरविपाटलनेत्रपद्मा । स्रस्तांसदेशलुलिताकुलकेशपाशा निद्रां प्रयाति मृदुसूर्यकराभितप्ता ॥ २ ॥ अन्या प्रियेण परिभुक्तमवेक्ष्य गात्रं हर्षान्विता विरचिताधरचारुशोभा । कूर्पासकं परिदधाति नखक्षताङ्गी व्यालम्बिनीलललितालककुञ्चिताक्षी ॥ ३ ॥ अन्याश्चिरं सुरतकेलिपरिश्रमेण खेदं गताः प्रशिथिलीकृतगात्रयष्ट्यः । संहृष्यमाणपुलकोरुपयोधरान्ता अभ्यञ्जनं विदधति प्रमदाः सुशोभाः ॥ ४ ॥ अन्ये हि दुःखमृतवः प्रथयन्त्यहोभिः सूर्यांशुलुप्ततिमिरैरभिसारिकाणाम् । हेमन्त एष हिमरुद्धसहस्रधामा कामं करोति दिवसेष्वपि शर्म तासाम् ॥ ५ ॥ अपि दिनमणिरेष क्लेशितः शीतसङ्घैरथ निशि निजभार्यां गाढमालिङ्ग्य दोर्भ्याम् । स्वपिति पुनरुदेतुं सालसाङ्गस्तु तस्मात्किमु न भवतु दीर्घा हैमनी यामिनीयम् ॥ ६ ॥ अभवच्चन्द्रतोष्माणः शीतव्याप्ते जगत्त्रये । स्तनोत्सङ्गा मृगाक्षीणां स्थानं मन्मथतेजसः ॥ ७ ॥ अम्बरमेष रमण्यै यामिन्यै वासरः प्रेयान् । अधिकं ददौ निजाङ्गादथ सङ्कुचितः स्वयं तस्थौ ॥ ८ ॥ अलं हिमानीपरिदीर्णगात्रः समापितः फाल्गुनसङ्गमेन । अत्यन्तमाकाङ्क्षितकृष्णवर्त्मा

लौनिहारिन (धान काटनेवाली) : देखो तो, चाहसे भरी हुई जिस गाँवकी नवेलीके स्तनोंके भारसे ऊँचे-नीचे गलेकी सुन्दरता देखकर मुनियोंका भी जप-तप (ध्यान) टूट जाता है वह शरद् ऋतुमें जी खोलकर बटोहियोंका मन हरनेवाले गीत गा रही है तथा लाल कमलकी पंखुड़ीकी कान्तिके समान कान्तिवाले नेत्रसे भूसी छूटे हुए धानको चमकाती जा रही है किन्तु धान काटना बन्द नहीं करती ॥ १ ॥ धान काटनेवालीके वे सुन्दर गीत बड़े भले लग रहे हैं जो चिकने तथा चमकीले मूसलको हाव-भावके साथ चलानेसे चञ्चल वाहुरूपी कोमल लताके आपसमें हिलनेसे बजते हुए कङ्कणोंकी ध्वनिसे अधिक सुन्दर लग रहे हैं तथा वह जो हुँकारी भर रही है उससे छातीके काँप उठनेसे टूटी हुई गमकसे मिले हुए हैं ॥ २ ॥

हेमन्तका वर्णन : आज बड़ा ही कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा है और सनसनाता हुआ ठण्ढा पवन चल रहा है। ऐसे समय जिसके पास स्त्री नहीं है वह तो ठिठुरकर मरा जा रहा है और जिसे नवेलीके स्तनोंकी गर्मी मिल रही है वह मस्तीसे नाच रहा है ॥ १ ॥ जो नवेली अत्यन्त सम्भोगसे थक जानेके कारण अलसाई हुई है, जिसकी कमल जैसी आँखें रात भरके जागरणसे लाल हो रही हैं, कन्धे ढीले पड़ गए हैं और बाल इधर-उधर विखर गए हैं वह प्रातःकालके सूर्यकी कोमल किरणोंमें धूप खाती हुई सो रही है ॥ २ ॥ प्रियतमके नखोंके घावोंसे भरे हुए अङ्गोंवाली और लटकती हुई सुन्दर अलकोंसे ढकी हुई आँखोंवाली एक नवेली, प्यारेसे उपभोग किए हुए अपने शरीरको देख-देखकर बड़ी मगन होती हुई अपने अधरोंको फिर पहलेकी भाँति सुन्दर बनाकर चोली पहन रही है ॥ ३ ॥ बहुत देरतक सम्भोग करते-करते जो युवतियाँ थक गई हैं, जिनके कोमल लचकीले शरीर ढीले पड़ गए हैं और जिनकी जाँघों और स्तनोंपर रोमाञ्च हो आया है वे धूपमें बैठी अपने शरीरपर तेल मलवा रही हैं ॥ ४ ॥ जिन दिनोंमें सूर्यकी किरणोंसे अँधेरा नष्ट हो जाता है उन दिनोंके द्वारा अन्य ऋतुएँ तो अभिसारिकाओंका कष्ट ही बढ़ाती हैं किन्तु हेमन्त ऋतु ही ऐसी है जो अपने पालेसे सूर्यको ढँककर दिनके समय भी उन्हें पूरा सुख पहुँचाती है ॥ ५ ॥ हेमन्तमें सूर्यको भी इतनी ठण्ढक लगी कि रातमें अपनी दोनों बाँहोंमें अपनी पत्नीको लिपटाकर वे ऐसे सोए कि उन्हें उठनेमें आलस करते-करते इतनी देर हो गई। तब भला हेमन्तकी रातें इतनी बड़ी क्यों न हों ? ॥ ६ ॥ जब तीनों लोकोंमें ठण्ढक भर जाती है उस समय मृगनयनियोंके कामदेवके तेजसे भरे हुए स्तनोंमें एक विचित्र ही प्रकारकी गर्मी भर जाती है ॥ ७ ॥ हेमन्तमें दिनरूपी नायकने रात्रिरूपी नायिकाको अपने शरीरका अधिक अम्बर (आकाश, वस्त्र) दे डाला इसीलिये वह स्वयं ठण्ढकसे ठिठुरा जा रहा है ॥ ८ ॥ माघका महीना महात्मा भीष्मके ही समान है क्योंकि जैसे वे बड़े ही गर्वीले और प्रतिष्ठावाले थे,

भीष्मो महात्माजनि माघतुल्यः ॥ ९ ॥ अविरलफलिनीवनप्रसूनः कुसुमितकुन्दसुगन्धिगन्धवाहः । गुणमसमयजं चिराय लेभे विरलतुषारकणस्तुषारकालः ॥ १० ॥ अव्युत्पन्नस्वभावानां नारीणामिव साम्प्रतम् । सीत्काराचार्यकं कर्तुमयं प्राप्तो हिमागमः ॥ ११ ॥ अहो कथमसीमेदं हिमनाम विजृम्भते । चरत्येव सहस्रांशौ धवलं तिमिरान्तरम् ॥ १२ ॥ आसत्यलोकादाभूमेः स्वैरचाराकृतश्रमाः । तेनुरिन्दुकराः स्वेदं द्रुतनीहारभूमिकम् ॥ १३ ॥ इदमयुक्तमहो महदेव यद्वरतनोः स्मरयत्यनिलोऽन्यदा । स्मृतसयौवनसोष्मपयोधरान्सतुहिनस्तु हिनस्तु वियोगिनः ॥ १४ ॥ कन्याप्रसूतस्य धनुःप्रसङ्गादङ्गाधिकासादितविक्रमस्य । धनञ्जयाधीनपराक्रमस्य हिमस्य कर्णस्य च को विशेषः ॥ १५ ॥ कम्पन्ते कपयो भृशं कृतजडं गोजालकं म्लायति श्वा चुल्लीकुहरोदरं क्षणमपि प्राप्तोऽपि नैवोज्झति । शीतार्तिव्यसनातुरः पुनरयं दीनो जनः कूर्मवत्स्वान्यङ्गानि शरीर एव हि निजे निह्नोतुमाकाङ्क्षति ॥ १६ ॥ काचिद्विभूषयति दर्पणसक्तहस्ता बालातपेषु वनिता वदनारविन्दम् । दन्तच्छदं प्रियतमेन निपीतसारं दन्ताग्रभिन्नमवकृष्य निरीक्षते च ॥ १७ ॥ काञ्चीगुणैः काञ्चनरत्नचित्रैर्नो भूषयन्ति प्रमदा नितम्बान् । न नूपुरैर्हंसरुतं भजद्भिः पादाम्बुजान्यम्बुजकान्तिभाञ्जि ॥ १८ ॥ कामिनो हन्त हेमन्तनिशि शीतज्वरातुराः । जीवन्ति हरिणाक्षीणां वक्षोजाश्लेषरक्षिताः ॥ १९ ॥ गजपतिद्वयसीरपि हैमनस्तुहिनयन्सरितः पृषताम्पतिः । सलिलसन्ततिमध्वगयोषितामतनुतातनुतापकृतं दशाम् ॥ २० ॥ गात्राणि कालीयकचर्चितानि सपत्रलेखानि मुखाम्बुजानि । शिरांसि कालागुरुधूपितानि कुर्वन्ति

अर्जुनके साथ युद्ध करनेसे उनका शरीर बाणोंसे छिद गया था और वे सदा भगवान्‌की बाट जोहते रहते थे वैसे ही माघका महीना भी अपनी ठण्डकसे लोगोंकी देह फाड़ डाल रहा है, फागुन आनेपर वह समाप्त हो जाता है और इस महीनेमें आग तापनेकी बड़ी आवश्यकता पड़ जाती है ॥ ९ ॥ जिन दिनों पर्वतपर अर्जुन तपस्या कर रहे थे उन दिनों बहुत दिनोंतक बिना समयके ही जाड़ेके लक्षण दिखाई देने लगे क्योंकि प्रियङ्गु लता घने फूलोंसे ढक गई, वायु भी खिले हुए कुन्दके फूलोंकी सुगन्धसे भरकर चलने लगे और कहीं-कहीं ओसकी बूँदें भी दिखाई देने लगीं ॥ १० ॥ जिन स्त्रियोंका स्वभाव कोई समझ नहीं पा सकता, उन्हें 'सी-सी' करना सिखानेके लिये ही मानो यह हेमन्त ऋतु आ पहुँची है ॥ ११ ॥ ओहो !! यह पाला कैसा निःसीम होकर फैल रहा है ! जान पड़ता है सहस्रों किरणोंवाले सूर्यको कोई उजला अँधेरा घेरे हुए हो ॥ १२ ॥ इन चन्द्रमाकी किरणोंने व्यर्थ परिश्रम करके सत्य लोकसे लेकर धरतीतक यह अपना सब पाला बिखेर रक्खा है ॥ १३ ॥ यह बहुत ही भद्दी बात है कि दूसरे समयमें भी पवन सुन्दरी नवेलियोंकी सुधि दिलाने लगता है ! हाँ, जिन्होंने अपनी प्यारीके जवानीसे गरम स्तनोंका स्मरण किया है उन वियोगियोंको हेमन्त मार डाले तो अनुचित नहीं है ॥ १४ ॥ जाड़ा और राजा कर्ण दोनों एकसे हैं। कर्ण तो कुआँरी कुन्तीसे उत्पन्न हुए थे और जाड़ा कन्या राशि (आश्विनके महीने) से उत्पन्न हुआ है। कर्णने धनुर्विद्याकी श्रेष्ठ शिक्षा पाकर अङ्ग देशपर अधिकार जमाया और जाड़ेने धनु राशिपर सूर्यके आनेसे अपना प्रभाव बढ़ाया। कर्णके पराक्रमको अर्जुनने दबाया और जाड़ेकी तीव्रताको अग्निने ॥ १५ ॥ जाड़ेके दिनोंमें बन्दर अत्यधिक काँप रहे हैं। गौएँ ठिठुरकर मलिन पड़ गई हैं। कुत्ता चूल्हेका भीतरी भाग पाकर कछुएकी भाँति उसे एक क्षणको भी नहीं छोड़ता और ठण्डकसे कष्ट पाता हुआ निर्धन मनुष्य सारे अङ्ग अपनी देहमें ही डाल लेना चाहता है ॥ १६ ॥ देखो, एक नवेली अपने हाथमें दर्पण लिए हुए प्रातःकालकी धूपमें बैठी अपने कमल जैसे मुँहका शृङ्गार कर रही है और उसके जिन ओठोंका रस पीकर उसके प्यारेने उनपर अपने दाँतोंके घाव बना दिए हैं उन ओठोंको खींच-खींचकर देख रही है ॥ १७ ॥ हेमन्तमें नवेलियाँ न तो अपने नितम्बोंपर रत्नोंसे जड़ी हुई सोनेकी तगड़ियाँ पहनती हैं न अपने कमल जैसे सुन्दर पैरोंमें हंसके समान ध्वनि करनेवाले पायल ही डालती हैं ॥ १८ ॥ हेमन्तकी रातमें जाड़ेरूपी ज्वरसे पीड़ित कामी लोग मृगनयनी नवेलियोंके गरम स्तनोंसे लिपटकर सुरक्षित हुए जीते रहते हैं ॥ १९ ॥ हेमन्तके पवनने हाथी-डुबाव पानीवाली गहरी नदियोंको भी ठण्डा कर दिया और जलको ऐसा कर दिया जिससे वियोगिनियोंकी आँखें अत्यन्त तपने लगीं ॥ २० ॥ हेमन्तमें अपने पतिसे सम्भोग करनेकी तैयारीमें नवेलियाँ अपने शरीरपर चन्दन मल रही हैं, अपने कमल जैसे मुखपर अनेक प्रकारके बेल-बूटे चीत रही हैं और

नार्यः सुरतोत्सवाय ॥ २१ ॥ गीरन्ति ननु कल्पान्ते जलानान्निधयो जगत्। कल्पमध्ये गिरत्येष कथमन्यो महार्णवः ॥ २२ ॥ चक्रे चण्डरुचा समं रणमसौ हेमन्तपृथ्वीपतिर्ये ये तत्र जिता दिवाकरकरास्ते तेऽमुना तत्क्षणात्। कान्तानां कुचभूधरे निदधिरे मन्येऽहमेवं तदा नो चेन्मन्दकरः कथं दिनकरस्तप्तश्च तन्वीस्तनः ॥ २३ ॥ जडात्माऽपि स्वकालोत्थः क्लिश्नाति वलिनोऽप्यरीन्। आक्रामति सहस्रांशुं हिमो हेमन्तजृम्भितः ॥ २४ ॥ जरीजृम्भत्प्रौढद्युमणिकरसन्दोहसदृशस्फुरद्दीप्तिव्रातप्रगुणतरतारुण्यसुभगाम्। हसन्तीं हेमन्ते परिजनयुतां वा सुवदनां हसन्तीं सेवन्ते परिणतमहाभाग्यनिचयाः ॥ २५ ॥ दन्तच्छदैः सव्रणदन्तचिह्नैः स्तनैश्च पाण्यग्रकृताभिलेखैः। संसूच्यते निर्दयमङ्गनानां रतोपभोगो नवयौवनानाम् ॥ २६ ॥ दुराशेव दरिद्रस्य,तृष्णेव कृपणस्य च। अहो न विरमत्येषा हन्त हेमन्तयामिनी ॥ २७ ॥ द्वित्रिमुचुकुन्दमुकुलत्रिचतुरकुसुमक्रमेण लवलीषु। पञ्चषफलिनीकलिको जयति हिमर्तुर्नवावतरः ॥ २८ ॥ न प्रस्तावस्तपनमहसान्नानलस्यावकाशो नैव क्षेमं किमपि च घनैः कम्बलैः कञ्चुकैर्वा। नैवान्योन्यं प्रभवति जनो वीक्षितुं वीतसीमा हैमः पूरो हरति भुवनव्यक्तिमाः किन्तु कुर्मः ॥ २९ ॥ न बाहुयुग्मेषु विलासिनीनां प्रयान्ति सङ्गं वलयाङ्गदानि। नितम्बबिम्बेषु नवं दुकूलं तन्वंशुकं पीनपयोधरेषु ॥ ३० ॥ नवप्रवालोद्गमसस्यरम्यः प्रफुल्ललोध्रः परिपक्वशालिः। विलीनपद्मः प्रपतत्तुषारो हेमन्तकालः समुपागतोऽयम् ॥ ३१ ॥ निर्माल्यदाम परिभुक्तमनोज्ञगन्धं मूर्ध्नोऽपनीय घननीलशिरोरुहान्ताः। पीनोन्नतस्तनभरानतगात्रयष्ट्यः कुर्वन्ति केशरचनामपरास्तरुण्यः ॥ ३२ ॥ पाकं व्रजन्ती हिमजात-

---

काले अगरकी धूप देकर अपने बाल सुगन्धित कर रही हैं ॥ २१ ॥ कल्पान्त (महाप्रलय) के समय संसारको समुद्र निगलने लगते हैं किन्तु कल्पके बीचमें यह निराला समुद्र (पाला) संसारको निगलने कहाँसे आ पहुँचा ॥ २२ ॥ राजा हेमन्तने सूर्यके साथ युद्ध करते समय उस युद्धमें हारी हुई सूर्यकी किरणोंको स्त्रियोंके स्तनरूपी पर्वतमें वन्दी कर दिया। यदि यह बात न होती तो हेमन्तमें सूर्यकी किरणें इतनी मन्द क्यों पड़तीं और नायिकाके स्तन इतने गरम क्यों होते ॥ २३ ॥ मूर्ख प्राणी भी समय पाकर अपने शत्रुओंको कष्ट देता ही है। हेमन्त ऋतुको पाकर पाला भी सूर्यको ढकने लगा ॥ २४ ॥ उगते हुए सूर्यकी किरणोंके समान चमकती हुई कान्तिसे जिसकी तरुणाई दमक रही है और जो अपनी सखियोंके साथ घुल-मिलकर खिल-खिला रही है ऐसी सुन्दर मुखवाली नवेलीका उपभोग हेमन्तमें कोई भाग्यशाली ही पाते हैं ॥ २५ ॥ नवेलियोंके ओठोंपर बने हुए दाँतके घाव और उनके स्तनोंपर बने हुए नखोंके चिह्न यह सूचना दे रहे हैं कि इनके प्यारे इनका जी-जानसे उपभोग कर रहे हैं ॥ २६ ॥ ओह ! यह हेमन्तकी रात दरिद्रकी निष्फल आशा और कञ्जूसके लोभके समान बीत नहीं पा रही है, बढ़ती ही जा रही है ॥ २७ ॥ मुचुकुन्दमें दो-तीन कलियाँ लग रही हैं, हरफारेवड़ीकी लतामें क्रमशः तीन-चार फूल निकल रहे हैं और फलिनीमें भी पाँच-सात कलियाँ लग रही हैं। इस प्रकार नया अवतार लेकर आनेवाली हेमन्त ऋतुकी जय हो ॥ २८ ॥ ऐसी कड़ाकेकी ठण्डक पड़ रही है कि उसे दूर करनेमें न तो सूर्यकी गर्मीका बस चलता, न आगका ही सामर्थ्य है और न मोटे कम्बल या बण्डी-मिरजई आदि पहननेसे ही प्राण बचते। यह असीम कुहरा भी ऐसा घना छाया है कि मनुष्य एक दूसरेको देख भी नहीं पा सकते और यही नहीं जान पड़ता कि संसार है भी या नहीं। ओह ! अब क्या किया जाय ॥ २९ ॥ हेमन्तमें ये कामिनियाँ न तो अपनी दोनों भुजाओंपर कङ्गन और भुजबन्द ही बाँधती हैं, न अपने गोल-गोल नितम्बोंपर नये रेशमी वस्त्र ही लपेटती हैं और न अपने मोटे-मोटे स्तनोंपर महीन चोलियाँ ही कसती हैं ॥ ३० ॥ देखो, पाला गिराती हुई यह हेमन्त ऋतु आ पहुँची है जिसमें गेहूँ, जौ आदिके नये-नये अङ्कुरोंसे चारों ओरकी धरती हरी-भरी हो गई है, लोधके पेड़ फूल उठे हैं, धान पक चला है और कमल मुरझा चले हैं ॥ ३१ ॥ लम्बे, काले और घने केशोंवाली जिन नवेलियोंके शरीर उनके मोटे और उठे हुए स्तनोंके कारण झुक गए हैं, वे जिन मालाओंकी मधुर सुगन्धका आनन्द रातमें ले चुकी हैं, उन मुरझाई हुई मालाओंको सिरसे उतारकर फिरसे अपने बाल सँवार रही हैं ॥ ३२ ॥ हे प्यारी ! पालेसे भरे ठण्ढे पवनसे हिलती हुई यह पकी हुई प्रियङ्गुकी लता वैसी ही पीली पड़ गई है जैसे अपने

शीतैराधूयमाना सततं मरुद्भिः । प्रिये प्रियङ्गुः प्रियविप्रयुक्ता विपाण्डुतां याति विलासिनीव ॥ ३३ ॥ पीनस्तनोरःस्थलभागशोभामासाद्य तत्पीडनजातखेदः । तृणाग्रलग्नैस्तुहिनैः पतद्भिराक्रन्दतीवोषसि शीतकालः ॥ ३४ ॥ पुष्पासवामोदसुगन्धिवक्त्रो निःश्वासवातैः सुरभीकृताङ्गः । परस्पराङ्गव्यतिषङ्गशायी शेते जनः कामरसानुविद्धः ॥ ३५ ॥ प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितानि सोन्मादकादम्बविभूषितानि । प्रसन्नतोयानि सुशीतलानि सरांसि चेतांसि हरन्ति पुंसाम् ॥ ३६ ॥ प्रभूतशालिप्रसवैश्चितानि मृगाङ्गनायूथविभूषितानि । मनोहरक्रौञ्चनिनादितानि सीमान्तराण्युत्सुकयन्ति चेतः ॥ ३७ ॥ प्रांशुः प्रालेयपूरः प्रसरति गगने प्रावृताशार्कचन्द्रस्तोयाधाराः सबाष्पास्तुहिनघनघटालीनमीनद्विजौघाः । दृप्तास्सप्तीभकोलच्छगलबलिभुजः कुन्दपुन्नागलोध्राः प्रोत्फुल्लाः शीतकाले हिमकणगणभृद्वात्युदीच्यस्समीरः ॥ ३८ ॥ प्रालेयशैलशिखरानिलसम्प्रयोगः प्रोत्फुल्लकुन्दमकरन्दहृतालिवृन्दः । कालोऽयमातपतिकुङ्कुमपङ्कपिङ्गप्रोत्तुङ्गरम्यरमणीकुचसङ्गयोग्यः ॥ ३९ ॥ प्रियतमेन यया सरुषा स्थितं न सहसा सहसा परिरभ्य तम् । श्लथयितुं क्षणमक्षमताङ्गना न सहसा सहसा कृतवेपथुः ॥ ४० ॥ प्रोद्यत्प्रौढारविन्दद्युतिभृति विदलत्कुन्दमाद्यद्द्विरेफे काले प्रालेयवातप्रबलविकसितोद्याममन्दारदाम्नि । येषां नो कण्ठलग्ना क्षणमपि तुहिनक्षोददक्षा मृगाक्षी तेषामायामियामा यमसदनसमा यामिनी याति नूनम् ॥ ४१ ॥ बहुगुणरमणीयो योषितां चित्तहारी परिणतबहुशालिव्याकुलग्रामसीमा । विनिपतिततुषारः क्रौञ्चनादोपगीतः प्रदिशतु हिमयुक्तस्त्वेष कालः सुखं वः ॥ ४२ ॥ भृशमदूयत याऽधरपल्लवक्षतिरनावरणा हिममारुतैः । दशनरश्मिपटेन च सीत्कृतैर्निवसितेन सितेन सुनिर्ववौ ॥ ४३ ॥ भ्रमति हिमानीसैन्ये विमुक्तदैन्ये जिगीषया जगतः ।

पतिसे बिछुड़ी हुई युवती पीली पड़ जाती है ॥ ३३ ॥ प्रातःकाल घासपर फैली हुई ओसकी बूँदें देखकर ऐसा लगता है मानो युवतियोंकी छातियोंपर मोटे-मोटे स्तन देखकर सुख पानेवाला हेमन्त प्रेमियोंके हाथों उन स्तनोंको मले जाते देखकर दुःखसे आँसू बहा रहा हो ॥ ३४ ॥ हेमन्तमें फूलोंके आसवकी भीनी और मीठी सुगन्धवाले मुँहसे मुँह सटाकर और साँसोंसे सुगन्धित अङ्गोंसे अङ्ग मिलाकर सब स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे लिपटकर हेमन्तमें सम्भोग करते हुए सोते हैं ॥३५॥ जिन तालाबोंमें खिले हुए नीले कमल भरे हुए हैं, मस्त कलहंस इधर-उधर तैर रहे हैं और ठण्ढा निर्मल जल भरा हुआ है उन्हें देखकर लोगोंका जी खिला पड़ता है ॥ ३६ ॥ गाँवके बाहर जिन खेतोंमें भरपूर धान लहरा रहा है, हरिणियोंके झुण्डके झुण्ड चौकड़ियाँ भर रहे हैं उन्हें देख-देखकर मन हाथसे निकला जाता है ॥३७॥ जाड़ेके दिनोंमें आकाशमें इतना अधिक पाला फैल रहा है कि दिशाएँ और सूर्य-चन्द्र भी लुप्त हो गए हैं, जलाशयोंसे भाफ उठ रही है, कुहरेकी घनी घटामें मछलियाँ और पक्षी घुसे पड़े हैं, घोड़े, हाथी, सूअर, बकरे तथा कौए मतवाले हो रहे हैं, कुन्द, जायफल और लोधमें फूल खिल रहे हैं और पालेके कणोंसे भरा उत्तरी पवन सनसनाता बह रहा है ॥ ३८ ॥ हेमन्तकी वह ऋतु आ गई जिसमें हिमालयकी चोटीसे आनेवाला पवन बहाता है, खिले कुन्दके फूलका रस भौंरोंको अपनी ओर खींचता है और जिसमें छैले लोग धूपमें सुन्दरी नवेलीके केसरसे रँगे हुए मोटे तथा सुन्दर स्तनोंसे लिपटे पड़े रहते हैं ॥ ३९ ॥ जो नवेली रूठकर अपने पतिके साथ नहीं रहना चाहती थी उसने भी अगहनके महीनेमें जाड़ेसे काँपकर हँसते हुए तुरन्त ही अपने पतिको बाँहोंमें ऐसा कसकर लपेट लिया कि फिर बाँह ढीली करनेका नामतक नहीं लिया ॥ ४० ॥ जिस हेमन्त ऋतुमें खिले हुए कमलोंकी शोभा बढ़ जाती है, खिले हुए कुन्दपर मतवाले भौंरे मँडराने लगते हैं और शीतल पवनसे पारिजातके फूल खिल उठते हैं उस समय सारी ठण्ढक दूर करनेवाली मृगनयनी क्षणभर भी जिसके गले नहीं लगी उसके लिये हेमन्तकी लम्बी-चौड़ी रात साक्षात् यमपुरी ही समझिए ॥ ४१ ॥ भगवान् करे, अपने अनेक गुणोंसे मन लुभानेवाली यह हेमन्त ऋतु आपको सुख दे जो स्त्रियोंका चित्त चुराती है, जिसमें गाँवोंके आस-पास पके हुए धानोंके खेत लहलहाते हैं, पाला पड़ता है और सारस कूजते हैं ॥ ४२ ॥ अपने ओठपर प्रियतमके दाँतोंसे बने हुए घावोंपर ठण्ढा पवन लगनेसे बहुत पीड़ा होनेपर नवेलीने जब सी-सी किया उस समय उसके उजले दाँतोंके किरणरूपी वस्त्रसे ही उस घावकी मानो ऐसी मरहम-पट्टी हो गई कि उसकी सारी पीड़ा जाती रही ॥४३॥ जब पालेकी सेना सारे संसारको जीतनेकी

भयविह्वलमौष्ण्यमिदं तरुणीस्तनदुर्गमाश्रयति ॥ ४४ ॥ मद्वैरिणः कठोरांशोरियं प्रणयभूरिति। रोषादिव तुषारेण पर्यभूयत पद्मिनी ॥ ४५ ॥ मनोहरैश्चन्दनरागगौरैस्तुषारकुन्देन्दुनिभैश्च हारैः। विलासिनीनां स्तनशालिनीनां नालङ्क्रियन्ते स्तनमण्डलानि ॥ ४६ ॥ मार्गं समीक्ष्यातिनिरस्तनीरं प्रवासखिन्नं पतिमुद्वहन्त्यः। अवेक्ष्यमाणा हरिणेक्षणादयः प्रबोधयन्तीव मनोरथानि ॥ ४७ ॥ यो धातुमश्नाति सकृद्धिमर्तौ तन्नैव शीतं व्यथते कदाऽपि। गृह्णन्ति याः प्रत्यहमेव धातुं स्त्रीणां कुतः स्याद्बत शीतबाधा ॥ ४८ ॥ रतिश्रमक्षामविपाण्डुवक्त्राः सम्प्राप्तहर्षाभ्युदयास्तरुण्यः। हसन्ति नोच्चैर्दशनाग्रभिन्नान्प्रपीड्यमानानधरानवेक्ष्य ॥ ४९ ॥ लघुनि तृणकुटीरे क्षेत्रकोणे यवानां नवकलमपलालस्रस्तरे सोपधाने। परिहरति सुषुप्तं हालिकद्वन्द्वमारात्कुचकलशमहोष्मावद्धरेखस्तुषारः ॥ ५० ॥ लज्जा प्रौढमृगीदृशामिव नवस्त्रीणां रतेच्छा इव स्वैरिण्या नियमा इव स्मितरुचः कुल्याङ्गनानामिव। दम्पत्योः कलहा इव प्रणयिता वाराङ्गनानामिव प्रादुर्भूय तिरोभवन्ति सहसा हैमन्तिका वासराः ॥ ५१ ॥ विकसति सूर्ये विकसति मुकुलति चास्तं गते तस्मिन्। शिशिरे निःस्वकुटुम्बः पङ्कजलीलां समुद्वहति ॥ ५२ ॥ व्रणभृता सुतनोः कलसीत्कृतस्फुरितदन्तमरीचिमयं दधे। स्फुटमिवावरणं हिममारुतैर्मृदुतया द्रुतयाधरलेखया ॥ ५३ ॥ शरत्कालातपक्लान्तकान्तावक्त्रेन्दुवल्लभः। आजगामाथ हेमन्तः सामन्तस्मरभूभुजः ॥ ५४ ॥ शीतांशोरिव नूतनस्य रुचयो विद्या इवामेधसां विप्रातिक्रमिणां विभूतय इव क्षीवस्य बोधा इव। भावैः सम्वलिता इव प्रियतमे दृग्भङ्गयः सुभ्रुवां प्रादुर्भूय तिरोभवन्ति सहसा हैमन्तिका वासराः ॥ ५५ ॥ शुकहरितयवानां सीम्नि नीहारभासः सपदि विगत-

---

इच्छासे संसारपर छा गई तो गरमी भी भयसे घबराकर युवतीके स्तनरूपी दुर्गमें जा छिपी ॥ ४४ ॥ पालेने मानो इसी क्रोधसे कमलवनको नष्ट कर डाला कि 'यह मेरे शत्रु सूर्यकी प्रेमस्थली है' ॥४५॥ हेमन्तके दिनोंमें अलबेली नवेलियाँ अपने बड़े-बड़े गोल-गोल स्तनोंपर हिम, कोईं और चन्द्रमाके समान उजले और कुङ्कुमके रङ्गमें रँगे हुए हार नहीं पहनतीं ॥ ४६ ॥ जिन मृगनयनी स्त्रियोंके पति परदेस चले गए हैं वे सूखे हुए मार्ग देखकर परदेसमें पड़े हुए अपने दुखी पतियोंके आनेकी बाट जोहती हुई यह सोचती हैं कि 'जब हमारे पति आवेंगे तब हम यों मिलेंगी, यों बातें करेंगी और यों रूठेंगी' ॥ ४७ ॥ ठंडके दिनोंमें जो एक बार भी रसायन खा लेता है उसे ठण्ढक तक नहीं सताती, फिर जो प्रतिदिन नवेलियोंका धातु ग्रहण किया करता है उसे ठण्ढक क्या कष्ट दे सकेगी ? ॥ ४८ ॥ सम्भोगकी थकावटसे पीले और मुरझाए हुए मुखोंवाली नवेलियाँ हँसीकी बातपर भी यह समझकर मुँह खोलकर नहीं हँसतीं कि कहीं प्यारेके पैने दाँतोंसे काटे हुए ओठ दुखने न लगें ॥ ४९ ॥ हेमन्तके दिनोंमें जौके खेतके कोनेमें डाली हुई फूसकी छोटीसी मड़ैयामें धानके पुआलके बिछौने और तकिएपर अपनी नवेलीके साथ सोते हुए हलवाहेकी सारी ठण्ढक उस नवेलीके स्तनकी गर्मीसे दूर हटकर एक रेखाके रूपमें तो दिखाई दे रही है पर उसके पास नहीं आती ॥५०॥ तरुणी नायिकाकी लज्जाके समान, नई नवेलीकी सम्भोगकी इच्छाके समान, व्यभिचारिणीके नियमोंके समान, कुलाङ्गनाओंकी हँसीके समान, पति-पत्नीके झगड़ेके समान और वेश्याओंके प्रेमके समान हेमन्तके दिनोंको निकलते और छिपते देर कुछ नहीं लगती ॥ ५१ ॥ हेमन्तके पालेमें दरिद्र परिवारकी दशा कमलके समान हो जाती है, दोनों ही सूर्यके निकलनेपर खिल उठते हैं और सूर्यके अस्त होनेपर सिकुड़ जाते (ठिठुरने लगते) हैं ॥ ५२ ॥ जब उस नवेलीने अपने कोमल ओठोंपर बने हुए प्यारेके दाँतोंके घावमें हेमन्तके ठण्ढे पवनसे पीड़ा होनेके कारण सी-सी करनेके लिये मुँह खोला तो उसके दाँतोंकी चमकने उसके ओठको गरमाहट देकर उसे कुछ शान्ति दी ॥ ५३ ॥ शरद् ऋतुकी कड़ी धूपसे प्रियाके मुरझाए हुए मुखचन्द्रका प्यारा तथा महाराज कामदेवका सामन्त हेमन्त काल आ पहुँचा है ॥ ५४ ॥ हेमन्तके दिन उसी प्रकार अत्यन्त शीघ्रतासे निकलते और बीतते जाते हैं जैसे दूजके चन्द्रमाका प्रकाश, मूर्खकी विद्या, ब्राह्मणोंका अपमान करनेवालोंकी सम्पत्ति, पागलका ज्ञान और पतिपर पड़ती हुई नायिकाओंकी भावभरी तिरछी चितवन ॥ ५५ ॥ रात बीतनेपर तोतेके रङ्गके समान हरे-हरे जौके खेतोंमें सोकर

निद्राः क्रौञ्चकान्ताः क्षपान्ते। विदधति कमनीयक्वाणमुद्यत्ककारं सरलितगलनालं जर्जरस्फाररेफम् ॥ ५६ ॥ समक्षमपि सूर्यस्य पर्यभूयत पद्मिनी। तेजस्विनोऽपि कुर्वन्ति किं कालवशमागताः ॥ ५७ ॥ हसन्तीं वा हसन्तीं वा हसन्तीं वामलोचनाम्। हेमन्ते ये न सेवन्ते ते नूनं दैववञ्चिताः ॥ ५८ ॥ हिमऋतावपि ताः स्म भृशस्विदो युवतयः सुतरामुपकारिणि। प्रकटयत्यनुरागमकृत्रिमं स्मरमयं रमयन्ति विलासिनः ॥ ५९ ॥ हिमधवलदन्तकेशी मन्दद्युतितारका बृहत्तिमिरा। द्विगुणीभूता रजनी वृद्धेव शनैः शनैर्याति ॥ ६० ॥ हेमन्तकालेऽत्र वियोगिकाले शीतस्य रुक् पश्य न तस्य यस्य। अङ्के हसन्ती दयिता हसन्ती पार्श्वे हसन्ती वसनानि सन्ति ॥ ६१ ॥ हेमन्तहिमनिस्पन्दमवलोक्य मनोभवम्। प्रहर्तुं सुभ्रुवां चेतो रविर्देवो धनुर्दधौ ॥ ६२ ॥ हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना माञ्जिष्ठवासोभृतः काश्मीरद्रवलिप्तचारुवपुषः खिन्ना विचित्रै रतैः। वृत्तोरुस्तनकामिनीजनकृताश्लेषा गृहाभ्यन्तरे ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा धन्याः सुखं शेरते ॥ ६३ ॥ हेमन्ते बहुदोषाढ्ये द्वौ गुणौ सर्वसम्मतौ। अयत्नशीतलं वारि सुरतं स्वेदवर्जितम् ॥ ६४ ॥ हे हेमन्त स्मरिष्यामि त्वय्यतीते गुणद्वयम्। अयत्नशीतलं वारि निशाश्च सुरतक्षमाः ॥ ६५ ॥

कन्दुकक्रीडा— अमन्दमणिनूपुरक्वणनचारुचारिक्रमं झणज्झणितमेखलास्खलिततारहारच्छटम्। इदं तरलकङ्कणावलिविशेषवाचालितं मनो हरति सुभ्रुवः किमपि कन्दुकक्रीडनम् ॥ १ ॥ अस्याः स्वेदाम्बुबिन्दुच्युततिलकतया व्यक्तवक्त्रेन्दुकान्तेर्वारंवारेण वेगप्रहणनगणनाकेलिवाचालितायाः। तत्पातोत्थानतालक्र-

---

उठी हुई क्रौञ्ची ओसकी भाँति चमककर अपना गला सीधा करके घरघराती हुई कैं-कैं शब्द कर रही है ॥ ५६ ॥ हेमन्त ऋतुमें सूर्यके सामने ही कमलिनीकी यह दुर्दशा हो गई। ठीक है, बड़े-बड़े कालके वश हो चुकनेपर तेजस्वीके किए भी क्या हो सकता है ॥ ५७ ॥ जिन्होंने हेमन्तमें हर्षसे हँसती हुई तिरछी चितवनवाली नवेली, अँगीठी तथा रूईसे भरी वण्डीके उपभोगका आनन्द नहीं उठाया वह निश्चय ही भाग्यहीन है ॥ ५८ ॥ इस अत्यन्त उपकारी और बिना परिश्रम ही सम्भोगकी रुचि उत्पन्न करनेवाले हेमन्तके आते ही नवेलियोंकी देह पसीनेसे भर गई और वे अपने-अपने विलासी साजनोंको सम्भोगसे सुख पहुँचाने लगीं ॥ ५९ ॥ हेमन्तकी दुगुनी बढ़ी हुई रात उस मोटी बुढ़ियाके समान धीरे-धीरे जा रही है जिसके लिये पाला ही उजले दाँत और बाल हों, जिसकी तारोंरूपी पुतलियोंका प्रकाश मन्द हो गया हो और जिसके नेत्रमें अँधेरा-रूपी रतौंधी बढ़ गई हो ॥ ६० ॥ देखो, वियोगियोंके लिये कालरूप इस हेमन्त-ऋतुमें उन्हींको जाड़ा नहीं सताता जिनकी गोदमें हँसती हुई नवेली हो, पासमें सिगड़ी हो और रूई-भरे वस्त्र हों ॥ ६१ ॥ हेमन्त-ऋतुमें कामदेवको जाड़ेसे ठिठुरते हुए देखकर भगवान् सूर्यने ही नवेलियोंके मनपर प्रहार करनेके लिये स्वयं धनुष उठा लिया (धनु-राशिपर चले गए) ॥ ६२ ॥ वे लोग धन्य हैं जो हेमन्तमें दही, दूध और घी खाते हैं, लाल वस्त्र पहनते हैं, शरीरपर केसरका लेप लगाते हैं, अनेक प्रकारसे रति कर-करके थके रहते हैं, अपनी देहसे लिपटी हुई बड़े-बड़े स्तनोंवाली नवेलियोंको गले लगाए रहते हैं और अपने-अपने भवनोंके भीतर मुँहमें पानके बीड़े जमाए सुखसे सोते हैं ॥ ६३ ॥ अनेक दोषोंसे भरे हुए इस हेमन्तमें दो गुण ऐसे हैं जिनका लोहा सब लोग मानते हैं, एक तो बिना प्रयत्नके ठण्ढा पानी और दूसरे बिना पसीनेका सम्भोग ॥ ६४ ॥ हे हेमन्त ! तुम्हारे बीत जानेपर तुम्हारी दो बातें सदा स्मरण आती रहेंगी, एक तो स्वभावसे ही ठण्ढा जल और दूसरी सम्भोगके योग्य रातें ॥ ६५ ॥

गेंदका खेल : हेमन्तके दिनोंमें नवेलीका वह गेंदका विचित्र खेल मन मोह रहा है जिसमें मणिकी पायलोंकी रुनझुनके साथ वह अपने सुन्दर पैर चला रही है, उसकी तगड़ी झनझना रही है, उजले हारकी चमक चारों ओर फैल रही है और हिलते हुए कङ्कन खनखना रहे हैं ॥ १ ॥ हेमन्तमें नृत्यका आनन्द देनेवाला वह नवेलीका गेंद खेलना क्षण-क्षणपर हमारा मन खींचे ले रहा है जिसके कारण पसीनेकी बूँदोंसे मिटे हुए तिलकवाला उसका मुख चन्द्रमाके समान स्पष्ट चमकने लगा है, जो वेगसे गेंदका गद्दा गिनते हुए हल्ला मचा रही है और जो गेंद गिरते तथा उठते समय

मनमितदृशस्ताण्डवोत्तालतालीलालित्याङ्गोभिताः स्म प्रतिकलममुना कन्दुकक्रीडितेन ॥ २ ॥ चञ्चच्चेलाञ्चलानि प्रतिसरणिचलव्यस्तवेणीनि बाहोर्विक्षेपाद्दक्षिणस्य प्रचलितवलयस्फारकोलाहलानि। श्वासत्रुट्यद्वचांसि द्रुतमितरकरोत्क्षेपलोलालकानि स्रस्तस्रञ्जि प्रमोदं दधति मृगदृशां कन्दुकक्रीडितानि ॥ ३ ॥ पयोधराकारधरो हि कन्दुकः करेण रोषादिव ताड्यते मुहुः। इतीव नेत्राकृतिभीतमुत्पलं तस्याः प्रसादाय पपात पादयोः ॥ ४ ॥ भ्रमच्चरणपल्लवक्वणदमन्दमञ्जीरकं परिस्खलदुरोरुहस्तबककम्पमानांशुकम्। रणत्कनकमेखलं करसरोरुहाभ्यां पुरः पतन्तमपराददे कुसुमकन्दुकं सुन्दरी ॥ ५ ॥ वक्त्रश्रीजितलज्जितेन्दुमलिनं कृत्वा करे कन्दुकं व्रीडाकौतुकमिश्रभावमनया तिर्यग्वहन्त्याननम्। भृङ्गाग्रग्रहकृष्णकेतकदलस्पर्धावतीनां दृशां दीर्घापाङ्गतरङ्गणैकसुहृदां कोऽप्येष पात्रीकृतः ॥ ६ ॥ वनिताकरतामरसाभिहतः पतितः पतितः पुनरुत्पतसि। विदितं खलु कन्दुक ते हृदयं वनिताधरसङ्गमलुब्धमिव ॥ ७ ॥ व्यावल्गत्कुचभारमाकुलकचं व्यालोलहारावलि प्रेङ्खत्कुण्डलशोभिगण्डयुगलं प्रस्वेदिवक्त्राम्बुजम्। शश्वद्दत्तकरप्रहारमधिकश्वासं रसादेतया यस्मात्कन्दुक सादरं सुभगया संसेव्यसे तत्कृती ॥ ८ ॥ सानन्दकन्दुकविहारविधौ वधूनां दोलायमानमणिकङ्कणनिक्वणेन। उड्डायितेषु युवचित्तविहङ्गमेषु श्येना इव स्मृतिभुवो विशिखा विलग्नाः ॥ ९ ॥ स्मरशरधिनिकाशं कर्णपाशं कृताङ्गी स्वविगलिततालीपत्रताटङ्कमेकम्। वहति हृदयचोरं कुङ्कुमन्यासगौरं वलयितमिव नालं लोचनेन्दीवरस्य ॥ १० ॥

हेमन्तवायवः— अन्तर्गृहं नयति वर्धितरोमहर्षं स्पर्शेन सीत्करणगर्भमुखीः करोति। किञ्चाधरव्रणवतीः कुरुते पुरन्ध्रीः किं वल्लभः किमुत हैमन एष

उसीके साथ-साथ अपनी आँखें नीचे-ऊपर चला रही है ॥२॥ उस मृगनयनीका वह गेंद खेलना सबका जी लुभा रहा है जिसमें उसके अञ्चल उड़े जा रहे हैं, डग-डगपर लहराते हुए बाल बिखरे पड़ रहे हैं, बार-बार दाहिनी बाँह उठानेसे हिलते हुए कङ्गन खनखना रहे हैं, साँस बढ़ जानेसे बोलना रुक गया है, बाएँ हाथसे अपने लटकते हुए बाल ऊपर उठा रही है और जिसमें सिरमें गूँथी हुई मालाएँ गिर-गिर पड़ रही हैं ॥ ३ ॥ स्तनोंकी समानता करनेवाली गेंदको यह नवेली क्रोधसे बार-बार पीट रही है इसीलिये मानो नेत्रकी स्पर्धा करनेके कारण डरा हुआ नीलकमल उसे प्रसन्न करनेके लिये उसके कानसे खिसककर उसके पैरोंपर जा पड़ा ॥ ४ ॥ जिस समय उस नवेलीने अपने सामने आती हुई फूलकी गेंद अपने हाथरूपी कमलोंसे पकड़ ली उस समय उसके चलते हुए पैरोंमें पायल बज उठे, हिलते हुए स्तनोंका वस्त्र उड़ चला और सोनेकी तगड़ी भी झनझना उठी ॥ ५ ॥ जिस समय उस नवेलीने उसके मुखकी कान्तिसे हारकर लज्जित चन्द्रमाके समान मलिन गेंद अपने हाथमें ली उस समय खेलनेके चावसे उसका मुख कुछ तिरछा हो गया और वह अपने उन कजरारे नयनोंकी चितवनसे बड़े प्रेमसे गेंदको देखने लगी जो ऐसे जान पड़ते थे मानो केवड़ेके पत्तोंपर भौंरे बैठे हों ॥६॥ हे गेंद! हम ताड़ गए कि नायिकाके हाथरूपी कमलसे चोट खाकर तुम बार-बार गिर-गिरकर भी फिर-फिर इसलिये उछल रहे हो कि तुम उसके ओठ चूमना चाहते हो ॥ ७ ॥ हे गेंद! तुम सचमुच बड़े भाग्यशाली हो कि यह सौभाग्यवती नवेली अत्यन्त प्रेम और आदरके साथ तुम्हारी टहल करनेमें इतनी व्यस्त हो रही है कि उनके स्तन हिल रहे हैं, बाल बिखरे जा रहे हैं, हार झूल रहे हैं, कानके दोनों कुण्डलोंके हिलनेसे दोनों गाल सुन्दर लगने लगे हैं, मुखकमलपर पसीना झलक आया है, निरन्तर हाथ चलाती जा रही है और उसका साँस फूला जा रहा है ॥ ८ ॥ जिस समय नवेलियाँ मस्त होकर गेंद खेल रही थीं उस समय उनके मणि-जड़े कङ्गनोंकी खनखनाहटसे तरुणोंके मनरूपी पक्षी जो उड़े तो उनपर बाज़के समान कामदेवके बाण आ टूटे ॥ ९ ॥ वह दुबली-पतली नवेली अपने कानमें गेंद खेलते समय ऐसा एक कनपासा पहने हुए है जिसकी पत्तियाँ गिर गई हैं और जो कामदेवके तरकसके समान लग रहा है। उसे देखकर लोगोंका मन मुग्ध हो जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि केसरके रङ्गसे रँगा हुआ गोल-गोल आँख-रूपी नीले कमलका नाल हो ॥ १० ॥

हेमन्तके पवन : हेमन्त ऋतुका यह वायु नवेलियोंके साथ ठीक उनके पतियोंके समान व्यवहार करता है क्योंकि वह उनकी देहमें रोमाञ्च उत्पन्न करता हुआ घरके भीतर ले जाता है, जैसे ही वह उन्हें छूता है तो वे सी-सी कर उठती हैं और उनके ओठोंमें लगकर यह उनमें घाव भी

वातः ॥ १ ॥ आग्नेयीमेति शीतादिव दिशमरुणो वासरास्सङ्कुचन्तीवासंस्पर्शेऽपि तोयाद्दहति तनुशिखी शीतपीडां प्रमार्ष्टि । तल्पेऽनल्पप्रकोपप्रविदलितदृढालिङ्गनग्रन्थिबन्धे लब्ध्वा सन्धानरन्ध्रं निविडयति जडो दम्पती मातरिश्वा ॥ २ ॥ गौरीविभ्रमधूपधूमपटलश्यामायमानोदराः कण्ठक्षोदभयान्न ये कवलिताः श्रीकण्ठकण्ठोरगैः । स्फारोन्मीलितशारदागृहबृहद्द्वाराग्रघण्टारवास्ते श्लाघामलभन्त सन्ततममी कैलासशैलानिलाः ॥ ३ ॥ दधत्यधरचुम्बनं नयनपङ्कजं मुद्रयत्यमन्दपुलकं मनागमलमङ्गमालिङ्गते। विचालयति चालकं चपललोचनानां हठात्तनोत्यविनयं मरुत्प्रिय इवैष हैमन्तिकः ॥ ४ ॥ धृततुषारकणस्य नभस्वतस्तरुलताङ्गुलितर्जनविभ्रमाः। पृथुनिरन्तरमिष्टभुजान्तरं वनितयानितया न विषेहिरे ॥ ५ ॥ निचयिनि लवलीलताविकासे जनयति लोध्रसमीरणे च हर्षम् । विकृतिमुपययौ न पाण्डुसूनुश्चलति नयान्न जिगीषतां हि चेतः ॥ ६ ॥ नीत्वोच्चैर्विक्षिपन्तः कृततुहिनकणासारसङ्गान्परागान्कौन्दानानन्दितालीनतितरसुरभीन्भूरिशो दिङ्मुखेषु । एते ते कुङ्कुमाक्तस्तनकलशभरास्फालनादुच्छलन्तः पीत्वा सीत्कारिवक्त्रं शिशुहरिणदृशां हैमना वान्ति वाताः ॥ ७ ॥ हूणीसीमन्तमुद्रां सपदि तरलयन्कीरकान्ताकुचान्तः स्वच्छन्दस्तस्तव (?) स्त्री चलचपलतया लोलयन्हारवल्लीम् । प्रालेयावासपृथ्वीधरशिखरचलच्चारुवारिप्रवाहप्रक्षोभप्रातिभश्रीः प्रसरति परितो हैमनो गन्धवाहः ॥ ८ ॥

हेमन्तपथिकः— अन्योन्याहतिदन्तनादमुखरं वक्रं मुखं कुर्वता नेत्रे साश्रुकणे निमील्य पुलकव्यासङ्गि कण्डूयता । हाहाहेति सुनिष्ठुरं विवदता बाहू प्रसार्य क्षणं पुण्याग्निः पथिकेन पीयत इव ज्वालाहतश्मश्रुणा

कर देता है ॥ १ ॥ शीतके दिनोंमें ऐसा जान पड़ता है मानो ठण्डकके मारे ही सूर्य, अग्निकी दिशा (पूर्व और दक्षिणके बीचकी आग्नेय दिशा) को चला जाता है (दक्षिणायन हो जाता है), दिन भी मानो शीतके कारण ही सिकुड़ते जाते (छोटे हो जाते) हैं, जलका स्पर्श न होनेपर भी आग शीतसे ठिठुरती हुई औरोंकी ठण्डक दूर कर देती है तथा जिस पलँगपर पति-पत्नी क्रोधके कारण रूठकर एक दूसरेसे अलग पड़े हुए हैं उसके छेदसे घुसकर पालेसे ठिठुरा हुआ (मूर्ख) पवन उन्हें वेगपूर्वक एक दूसरेसे लिपटा देता है ॥२॥ सरस्वतीजीके घरके द्वारपर टँगे हुए बड़े भारी घण्टेकी टनटनाहटसे भरे हुए उन कैलास पर्वतके ठण्डे पवनोंकी इस समय प्रशंसा हो रही है जो पार्वतीजीके बालोंको सुगन्धित करनेवाले घने धुएँसे काले-काले हो रहे हैं तथा महादेवजीके गलेमें पड़े साँपोंने जिन्हें इस डरसे नहीं पिया कि कहीं (ठण्डकके मारे) गला न फट जाय ॥ ३ ॥ यह हेमन्तका पवन हठी छैलेके समान चञ्चल नेत्रोंवाली नवेलियोंके साथ बड़ा बलात्कार कर रहा है क्योंकि यह हठ करके उनके ओठ चूमता है, उनके कमलनयन मूँदता है, उनके रोमाञ्चित निर्मल अङ्गोंका धीरेसे आलिङ्गन करता है और उनके बाल लहरा देता है ॥ ४ ॥ ओसकी बूँदोंसे लदा हुआ पवन पेड़ों और लताओंकी नन्हीं-नन्हीं टहनियोंको ऐसे झुला रहा था मानो उँगली उठा-उठाकर फटकार रहा हो । उन फटकारोंको केवल वे ही स्त्रियाँ न सह पाईं जो अपने साजनोंकी मोटी-मोटी भुजाओंमें कसी लिपटी नहीं पड़ी थीं ॥ ५ ॥ हरफारेवड़ीकी लताको खिलानेवाला और खिले हुए लोधमें बसा हुआ मन्द-मन्द पवन जब हेमन्तमें लोगोंको प्रसन्न कर रहा था उस समय अर्जुनका मन तनिक भी डिगा नहीं क्योंकि जो लोग विजय चाहते हैं उनका मन अपने निश्चयसे नहीं डिग पाता ॥ ६ ॥ ओसके कणोंसे लदे हुए, अत्यन्त सुगन्धित तथा भौंरोंको मस्त कर देनेवाले कुन्दके फूलके परागको ऊपर उठाकर हेमन्तके पवन चारों ओर बिखेर रहे हैं, केसरसे लिपे हुए स्तनोंपर टकरा-टकराकर उछल रहे हैं और मृगनयनी नवेलियोंके सी-सी करते हुए ओठोंको चूम-चूमकर बह रहे हैं ॥ ७ ॥ हेमन्तके जिस पवनकी शोभा हिमालयकी चोटियोंपर बहते हुए जलकी धारा छू लेनेसे बहुत बढ़ गई है वह पवन हूण देशकी नवेलियोंकी माँगकी सजावट बिगाड़ता हुआ, कीर देशकी नवेलियोंके स्तनोंपर स्वच्छन्द घूमता हुआ तथा तस्तव देशकी सुन्दरियोंके हारोंको झुलाता हुआ चारों ओर फैल रहा है ॥ ८ ॥

हेमन्तके यात्री : जाड़ेके कारण जिसके दाँत बज रहे हैं तथा जो अपनी आँसू-भरी आँखें मूँदकर अपने उठे हुए रोंगटेवाले शरीरको खुजला रहा है, वह परदेसी जब ऊँचे स्वरसे 'हाय-हाय !' कहता हुआ बाँहें फैलाकर जलती हुई आगके आगे मुँह बढ़ाकर ऐसे आग तापने लगा मानो आगको पिए डाल रहा हो, उस समय आगकी लपटोंसे उसकी दाढ़ीके बाल जले

॥ १ ॥ आहूतोऽपि सहायैरेमीत्युक्त्वा विमुक्तनिद्रोऽपि। गन्तुमना अपि पथिकः सङ्कोचं नैव शिथिलयति ॥ २ ॥ हे पान्थ प्रियविप्रयोगहुतभुग्ज्वालानभिज्ञोऽसि किं किंवा नास्ति तव प्रिया गतघृणः किंवा विहीनो धिया। येनास्मिन्नवकुङ्कुमारुणरुचिव्यासङ्गघर्मोचिते कुन्दानन्दितमत्तषट्पदकुले काले गृहान्निर्गतः ॥ ३ ॥ हेमन्ते पथिकजनाः प्रियावियुक्ता लोकानां गृहबहिरङ्गणे शयानाः। कन्दर्पाकुलमनसां निशासु तेषां शीतं किं लगति जगत्प्रकम्पकारि ॥ ४ ॥ हेमन्ते हिमकरबिम्बचारुमुख्या रामाया मृदुभुजपञ्जरे शयानाः। ये कालं परमसुखं नयन्ति तेषां शीतं किं लगति जगत्प्रकम्पकारि ॥ ५ ॥ शीतार्तिप्रसरस्तथाकुलपदन्यासैः समुत्कम्पिभिः पान्थैर्निर्दयतुच्छगोधननदद्धापारवैः सूचिताः । प्राप्यन्ते हिमपीडितानि निभृतप्रोद्घाटधूमा घनस्तोकालकुटीरकाः कथमपि प्राप्ता गिरिग्रामकाः ॥ ६ ॥

शिशिरवर्णनम्—अंशुकमिव शीतभयात्संस्त्यानत्वच्छलेन हिमधवलम्। अम्भोभिरपि गृहीतं पश्यत शिशिरस्य माहात्म्यम् ॥ १ ॥ अगुरुसुरभिधूपामोदितं केशपाशं गलितकुसुममालं कुञ्चिताग्रं वहन्ती। त्यजति गुरुनितम्बा निम्ननाभिः सुमध्या उषसि शयनमन्या कामिनी चारुशोभा ॥ २ ॥ अङ्गारहासिषु विलासगृहोदरेषु तल्पेषु तूलपटकल्पितवेष्टनेषु। उष्णेषु च प्रणयिनीकुचमण्डलेषु शान्तिं जगाम शिशिरस्य तुषारवर्गः ॥ ३ ॥ अधिलवङ्गममी रजसाधिकं मलिनितासुमनोदलतालिनः। स्फुटमिति प्रसवेन पुरो हसत्सपदि कुन्दलता दलतालिनः ॥ ४ ॥ अपगतमदरागा योषिदेका प्रभाते कृतनिबिडकुचाग्रा पत्युरालिङ्गनेन। प्रियतमपरिभुक्तं वीक्षमाणा स्वदेहं व्रजति शयनवासाद्वासमन्यं हसन्ती ॥५॥ अभिषिषेणयिषुं भुव-

---

उठे ॥ १ ॥ किसी हेमन्तके यात्रीको उसके साथियोंने चलनेके लिये पुकारा, उसकी आँख भी खुल गई और उसने उत्तर भी दिया कि 'मैं आ रहा हूँ' किन्तु जाना चाहते हुए भी वह आलसमें लिपटा करवटें बदल रहा है ॥ २ ॥ हे यात्री ! अपनी प्यारीकी वियोगकी आगकी लपटोंसे तुम अभी अनजान हो क्या ? या क्या तुम्हारी कोई प्यारी है ही नहीं ? या हे निर्दयी ! क्या तुम्हें तनिक भी बुद्धि नहीं है ? क्योंकि जिस हेमन्तमें नये केसरके समान लाल-लाल किरणोंवाली धूप निकलती हो और जिसमें कुन्दके फूलोंपर भौंरे प्रसन्न और मस्त होकर मँडरा रहे हों उस समय तुम्हें घरसे निकलनेकी सूझी है ? ॥ ३ ॥ हेमन्तमें अपनी नवेलियोंसे बिछुड़े हुए परदेसी रातको किसीके घरके बाहर आँगनमें सोए हुए थे फिर भी उन्हें संसारको ठिठुरा देनेवाली ठण्ढक इसलिये नहीं लग पाई कि उनके हृदयमें कामाग्निकी ज्वालाएँ धधक रही थीं ॥ ४ ॥ जो लोग हेमन्तकी रातोंमें चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली नवेलीकी कोमल भुजाओंके बन्धनमें लिपटकर सुखसे समय बिताते हैं उनका यह संसारको ठिठुरा देनेवाली ठण्ढक क्या बिगाड़ सकती है ॥५॥ कड़कड़ाते जाड़ेसे ठिठुरते और लड़खड़ाते हुए परदेसियोंको देखकर और दरिद्रोंकी दुबली गायोंका रँभाना सुनकर यह समझा जा सकता है कि ठण्ढक कितनी बढ़ गई है, साथ ही पास-पास बसे हुए जिन पहाड़ी गाँवोंमें धीरे-धीरे धुआँ निकल रहा है उनसे घिरी होनेके कारण कुछ-कुछ दिखाई देनेवाली झोपड़ियाँ भी पालेसे दबी जान पड़ती हैं ॥ ६ ॥

शिशिरका वर्णन : देखो ! जल भी शिशिरके प्रभावके कारण ऐसा ठण्ढा हो चला है कि उसपर उजला-उजला पाला फैल गया है जिससे जमकर वह बिछे हुए बिछौनेके समान दिखाई दे रहा है ॥ १ ॥ भारी नितम्बोंवाली, गहरी नाभिवाली, लचकदार कमरवाली और मनभावनी सुन्दरतावाली एक नवेली अगरके धुएँमें बसी हुई मालाओंसे बिना गुँथी हुई घनी घुँघराली लटोंको थामे प्रातःकाल पलँग छोड़कर उठ रही है ॥ २ ॥ अपनी गर्मीसे अङ्गारोंकी हँसी उड़ानेवाले विलासघरोंके भीतर रुईके गद्दोंसे ढके हुए पलंगों तथा प्राणप्यारीके गरम-गरम स्तनोंतक पहुँचकर शिशिर ऋतुका प्रभाव ही लुप्त हो जाता है ॥३॥ जैसे किसी पुरुषके वस्त्रोंमें किसी रजस्वलाका रक्त लगा देखकर दूसरी स्त्री उसकी हँसी उड़ाती हैं उसी प्रकार लौंगकी लताके परागसे लिपटे हुए और लौंगके फूलपर ही बैठे हुए भौंरोंको देखकर कुन्द-लता मानो अपने खिले हुए फूलोंसे उसकी हँसी उड़ा रही है ॥४॥ देखो, प्रातःकाल होनेपर जो नवेली प्रियतमसे उपभोग किए हुए अपने शरीरको देखती हुई अपने शयन-घरसे दूसरे घरको जा रही है उसके मुखपरसे मदकी लाली जाती रही है और पतिकी छातीसे लगे रहनेके कारण उसके स्तनोंकी घुंडियाँ भी कड़ी पड़ गई हैं ॥ ५ ॥ चलती हुई सेनाकी धूलके समान मटमैला लोधका

नानि यः स्मरमिवाख्यत लोध्ररजश्चयः। क्षुभितसैन्यपरागविपाण्डुरद्युतिरयं तिरयन्नुदभूद्दिशः ॥ ६ ॥ आचुम्ब्य बिम्बाधरमङ्गवल्लीमालिङ्ग्य संस्पृश्य कपोलपालिम्। श्रीखण्डमादाय करेण कान्तः सन्त्रासयामास सरोरुहाक्षीम् ॥ ७ ॥ उपचितेषु परेष्वसमर्थतां व्रजति कालवशाद्बलवानपि। तपसि मन्दगभस्तिरभीषुमान्नहि महाहिमहानिकरोऽभवत् ॥ ८ ॥ एते समुल्लसद्धासो राजन्ते कुन्दकोरकाः। शीतभीता लताकुन्दमाश्रिता इव तारकाः ॥ ९ ॥ कतिपयसहकारपुष्परम्यस्तनुतुहिनोऽल्पविनिद्रसिन्दुवारः। सुरभिमुखहिमागमान्तशंसी समुपययौ शिशिरः स्मरैकबन्धुः ॥ १० ॥ कनककमलकान्तैश्चारुताम्राधरोष्ठैः श्रवणतटनिषक्तैः पाटलोपान्तनेत्रैः उषसि वदनबिम्बैरंससंसक्तकेशैः श्रिय इव गृहमध्ये संस्थिता योषितोऽद्य ॥ ११ ॥ कारणोत्पन्नकोपोऽपि साम्प्रतं प्रमदाजनः। निशि शीतापदेशेन गाढमालिङ्गति प्रियम् ॥१२॥ कृतापराधान्बहुशोऽभितर्जितान्सवेपथून्साध्वसलुप्तचेतसः। निरीक्ष्य भर्तॄन्सुरताभिलाषिणः स्त्रियोऽपराधान्समदा विसस्मरुः ॥१३॥ गृहीतताम्बूलविलेपनस्रजः पुष्पासवामोदितवक्त्रपङ्कजाः। प्रकामकालागुरुधूपवासितं विशन्ति शय्यागृहमुत्सुकाः स्त्रियः ॥ १४ ॥ चुल्लीसीमनि गोरसार्द्रमशनं भुक्त्वा परीत्याऽर्भकैरभ्याशे स्वकृपीक्षुयन्त्रनिनदं हर्षात्समाकर्णयन्। शेते संहतगोगणोष्मणि गृहे स्रस्ताम्बरां गेहिनीमालिङ्ग्याग‍णयन्निशासु तुहिनं प्रोड्डामरः पामरः ॥१५॥ तपनस्तपति स्म मन्दमन्दं ज्वलनोऽपि ज्वलति स्म किञ्चिदेव। शरणं शिशिरेऽथ किञ्च यूनां युवतीनां स्तनयुग्ममात्रमासीत् ॥ १६ ॥ तुषारसङ्घातनिपातशीतलाः शशाङ्कभाभिः शिशिरीकृताः पुनः। विपाण्डुतारागणचारुभूषणा जनस्य सेव्या न भवन्ति रात्रयः

पराग शिशिरमें चारों ओर दिशाओंको ढकता और फैलता हुआ मानो इस बातकी सूचना दे रहा है कि राजा कामदेव अब संसारपर चढ़ाई करने ही वाले हैं ॥ ६ ॥ शिशिरमें एक छैलेने अपनी नवेलीके लाल-लाल ओठ चूमे, उसे छातीसे लगाया, उसके गाल मसले और अब अपने हाथसे घिसा हुआ चन्दन लेकर उस कमलनयनीको धमका रहा है कि 'यह तुम्हारे शरीरमें पोतने ही वाला हूँ' ॥७॥ जब शत्रु प्रबल हो जाता है तब उस विपत्तिके समय बलवान् भी अपना कष्ट दूर करनेमें असमर्थ हो जाता है। देखो, माघ मासमें तेजस्वी सूर्यकी किरणें इतनी फीकी पड़ गईं कि वह प्रबल हिमको दूर नहीं कर पा रहा है ॥ ८ ॥ कुन्दकी चमकती हुई कलियाँ वृक्षोंपर ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ रही हैं मानो ठण्ढकसे डरकर तारोंने कुन्दके बिरवेपर बसेरा डाल दिया हो ॥ ९ ॥ कुछ खिले हुए आमके बौरोंसे सुन्दर लगनेवाली, थोड़ी ठण्ढकवाली और कुछ खिले हुए सिन्दुवारोंवाली शिशिर ऋतु सुगन्धसे लदी हुई हेमन्त ऋतुका अन्त सूचित करती तथा कामको उत्तेजित करती हुई आ पहुँची है ॥ १० ॥ इन दिनों प्रातःकाल स्त्रियोंके सुन्दर लाल-लाल ओठोंवाले, लाल कोरोंसे सजी हुई बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, कन्धेपर फैले हुए बालोंवाले और सुनहले कमलके समान चमकनेवाले गोल-गोल मुखोंको देखकर ऐसा लगता है मानो घर-घरमें लक्ष्मी आ बसी हों ॥ ११ ॥ जो स्त्रियाँ किसी कारण अपने प्यारोंसे रूठ गई थीं वे भी शिशिरकी रातमें ठण्ढकका बहाना लेकर अपने पतियोंसे लिपटी जा रही हैं ॥ १२ ॥ मदमाती नवेलियोंने अपने जिन पतियोंको अपराध करनेपर डाँटा-फटकारा था, वे जब काँपते हुए और डरसे घबराए हुए शिशिर ऋतुमें उनके पास आते हैं तो उन्हें देखते ही वे नवेलियाँ उनका सब अपराध भूलकर उनसे सम्भोग करने लग जाती हैं ॥ १३ ॥ फूलोंका आसव पीनेसे जिनका मुखकमल सुगन्धित हो गया है वे स्त्रियाँ पान चबाकर, फुलेल लगाकर और मालाएँ पहनकर, काले अगरके धुएँसे महकनेवाले अपने शयन-घरोंमें बड़े चावसे चली जा रही हैं ॥ १४ ॥ अपने बाल-बच्चोंके साथ चूल्हेके पास बैठकर, दूधमें रोटी सानकर, खा-पीकर अपने खेतकी ईखके कोल्हूकी चर्र-मर्र सुनता हुआ पास ही बँधी हुई गायोंकी गर्मीसे गरम मड़ैयामें जाड़ेकी चिन्ता न करता हुआ कोई ग्रामीण रातमें अपनी नङ्गी स्त्रीसे लिपटा हुआ मस्त होकर सो रहा है ॥ १५ ॥ शिशिरमें सूर्य धीरे-धीरे तप रहे हैं और आग भी धीमी ही जल रही है इसलिये इस कड़ाकेकी शीतमें तरुणोंकी रक्षाके लिये नवेलियोंके दोनों स्तन ही केवल रह गए हैं ॥ १६ ॥ इन दिनों घने पालेसे कड़कड़ाते जाड़ोंवाली, चन्द्रमाकी किरणोंसे और भी ठण्ढी बनी हुई और पीले-पीले धुँधले तारोंवाली रातोंमें कोई भी भला आदमी बाहर नहीं निकलता ॥ १७ ॥ शिशिर ऋतुमें सोनेवाले

॥ १७ ॥ द्वारं गृहस्य पिहितं शयनस्य पार्श्वे वह्निर्ज्वलत्युपरि तूलपटो गरीयान्। अङ्गानुकूलमनुरागवशं कलत्रमित्थं करोति किमसौ स्वपतस्तुषारः ॥ १८ ॥ नखपदचितभागान्वीक्षमाणाः स्तनान्तानधरकिसलयाग्रं दन्तभिन्नं स्पृशन्त्यः। अभिमतरतवेषं नन्दयन्त्यस्तरुण्यः सवितुरुदयकाले भूषयन्त्याननानि ॥ १९ ॥ न चन्दनं चन्द्रमरीचिशीतलं न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुनिर्मलम्। न वायवः सान्द्रतुषारशीतला जनस्य चित्तं रमयन्ति साम्प्रतम् ॥ २० ॥ निरुद्धवातायनमन्दिरोदरं हुताशनो भानुमतो गभस्तयः। गुरूणि वासांस्यवलाः सयौवनाः प्रयान्ति कालेऽत्र जनस्य सेव्यताम् ॥ २१ ॥ पयोधरैः कुङ्कुमरागपिञ्जरैः सुखोपसेव्यैर्नवयौवनोष्मभिः। विलासिनीभिः परिपीडितोरसः स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिनः ॥ २२ ॥ परमप्रमदा प्रमदा भ्रमरी भ्रमरीतिकोविदा विपिने। पवनो विभाति जवनो मदनः शिशिरे वियोगिनां कदनः ॥२३॥ पीनोत्तुङ्गपयोधराः परिलसत्सम्पूर्णचन्द्राननाः कान्ता नैव गृहे गृहे न च दृढं जात्यं न काश्मीरजम्। ताम्बूलं न च तूलिका न च पटी तैलं न गन्धाविलं सद्यो गोघृतपाचिता न वटकाः शीतं कथं गम्यते ॥ २४ ॥ पृथुजघनभरार्ताः किञ्चिदानम्रमध्याः स्तनभरपरिखेदान्मन्दमन्दं व्रजन्त्यः। सुरतसमयवेषं नैशमाशु प्रहाय दधति दिवसयोग्यं वेषमन्यास्तरुण्यः ॥ २५ ॥ प्रकामकामैर्युवभिः सुनिर्दयं निशासु दीर्घास्वभिरामिताश्चिरम्। भ्रमन्ति मन्दं श्रमखेदितोरवः क्षपावसाने नवयौवनाः स्त्रियः ॥ २६ ॥ प्रचुरगुडविकारः स्वादुशालीक्षुरम्यः प्रबलसुरतकेलिर्जातकन्दर्पदर्पः। प्रियजनरहितानां चित्तसन्तापहेतुः शिशिरसमय एष श्रेयसे वोऽस्तु नित्यम् ॥ २७ ॥ प्ररूढशालीक्षुचयावृतक्षितिं क्वचित्स्थितक्रौञ्चनिनादराजितम्। प्रकामकामं प्रमदाजनप्रियं वरोरु कालं शिशिराह्वयं शृणु ॥ २८ ॥ प्रावारैरङ्गारैर्गर्भगृहैः स्तनतटैश्च दयि-

---

लोगोंके लिये इतनी वस्तुएँ इकट्ठी हो जाती हैं—घरका द्वार बन्द हो जाता है, बिछौनेके पास अँगीठी जलाई जाने लगती है, पलँगपर भारी रजाई पड़ी रहती है और प्रेम-भरी नवेली भी अपने मनके अनुकूल हो जाती है ॥ १८ ॥ प्रियतमके नखोंके घावोंसे भरे अपने स्तन देखती हुई, प्रियतमके दाँतोंसे कटे हुए कोंपलोंके समान अपने कोमल ओठ छूती हुई और इस प्रकार अपने मनचाहे सम्भोगके वेशपर खिलखिलाती हुई नवेलियाँ प्रातःकाल अपने मुँह सजा रही हैं ॥ १९ ॥ इन दिनों न किसीको चन्द्रमाकी किरणोंसे ठण्ढाया हुआ चन्दन ही सुहाता है, न शरद्‌के चन्द्रमाके समान निर्मल छतें ही अच्छी लगती हैं और न घनी ओससे ठण्ढा बना हुआ वायु ही मनको भाता है ॥ २० ॥ आजकल लोग अपने घरोंके भीतर खिड़कियाँ बन्द करके, तपनी तापकर, धूप खाकर, मोटे-मोटे वस्त्र पहनकर और युवती नवेलियोंसे लिपटकर दिन बिताते हैं ॥ २१ ॥ इन दिनों प्रेमी लोग केसरसे रँगे लाल स्तनोंवाली और सुखसे लूटी जानेवाली जवानीकी गरमीसे भरी हुई कामिनियोंको कसकर छातीसे लिपटाए हुए जाड़ा भगाकर सोते हैं ॥ २२ ॥ शिशिर ऋतुमें नवेलियाँ उन्मत्त हो जाती हैं, भौंरियाँ भी वनमें भली-भाँति मँडराना सीख जाती हैं, पवन वेगसे बहने लगता है और कामदेव भी वियोगियोंके प्राण हरे लेता है ॥ २३ ॥ यदि घर-घर बड़े-बड़े उठे हुए स्तनोंवाली तथा चमकते हुए पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली नवेलियाँ न हों, चमेलीकी मोटी माला, केसर, पान, रजाई (सौड़) और सुगन्धित तेल तथा गौके घीमें पकाए हुए बड़े न हों तो शिशिरका जाड़ा विताए न बीते ॥ २४ ॥ नवेलियाँ प्रातःकाल मोटी-मोटी जाँघें कष्टसे सँभाले हुए तथा स्तनोंका भार अधिक होनेसे धीरे-धीरे कुछ कमर झुकाए हुए चल रही हैं। कुछ दूसरी नवयुवतियाँ रातके रति-समयका वेश उतार-उतार दिनके योग्य वेश धारण कर रही हैं ॥ २५ ॥ जिन नवयुवतियोंने युवकोंके साथ शिशिरकी लम्बी रातोंमें बहुत देरतक जी भरकर और कसकर सम्भोगका आनन्द लूटा है, वे नवेलियाँ रातकी थकावटसे दुखती हुई जाँघोंके कारण प्रातःकाल बड़े धीरे-धीरे चल रही हैं ॥ २६ ॥ जिस शिशिर ऋतुमें बहुतायतसे मिठाइयाँ मिलती हैं, चारों ओर स्वादिष्ट चावल और ईखकी भरमार होती है लोग धुआँधार सम्भोग करते हैं, कामदेव भी पूरे वेगसे बढ़ चलता है और प्यारोंके विना अकेले दिन काटनेवाले लोग मन मसोसकर रह जाते हैं, वह शिशिर ऋतु सदा आप लोगोंका भला करे ॥२७॥ हे सुन्दर जाँघोंवाली! सुनो! जिस ऋतुमें धान और ईखके खेत लहलहा उठते हैं, कभी-कभी सारसकी बोली भी गूँज जाती है और कामका वेग भी बहुत बढ़ जाता है, वह नवेलियोंकी प्यारी शिशिर ऋतु आ पहुँची है ॥ २८ ॥ जिन

तानाम् । सन्तर्जितमाढ्यानां निपतति शीतं दरिद्रेषु ॥ २९ ॥ मनोज्ञकूर्पासकपीडितस्तनाः सरागकौशेयकभूषितोरवः । निवेशितान्तःकुसुमैः शिरोरुहैर्विभूषयन्तीव हिमागमं स्त्रियः ॥ ३० ॥ मानिन्या ननु मानः शीतभयाद् दूरगो भवेच्छिशिरे । नेदं हन्त सुचित्रं किं तूष्णांशूष्णताऽप्येवम् ॥ ३१ ॥ वह्नेः शक्तिर्जलमिव गता दर्शनाद्दाहवृत्तेर्नित्योद्गन्धे नवमरुबके वर्तते पुष्पकार्यम् शीतत्रासं दधदिव रविर्याति सिन्धोः कृशानुः शीतैर्भीता इव च दिवसाः साम्प्रतं सङ्कुचन्ति ॥ ३२ ॥ विरतसुकृतपाका चान्दनी हन्त चर्चा भवति वरतनूनां दूर एव स्तनेभ्यः । उपनतफलपुण्यस्तेषु लब्धप्रतिष्ठो मदयति युवलोकं कुङ्कुमालेप एव ॥ ३३ ॥ शिशिरमासमपास्य गुणोऽस्य नः क इव शीतहरस्य कुचोष्मणः । इति धियास्तरुषः परिरेभिरे घनमतो नमतोऽनुमतान्प्रियाः ॥ ३४ ॥ सुगन्धिनिःश्वासविकम्पितोत्पलं मनोहरं कामरतिप्रबोधकम् । निशासु हृष्टा सह कामिभिः स्त्रियः पिबन्ति मद्यं मदनीयमुत्तमम् ॥ ३५ ॥

दृङ्मीलनक्रीडा—न पाणिप्रच्छाद्यं नयनयुगमत्यायतमिदं नितम्बस्यौदार्यात्त्वरितगतियोगोऽप्यसुलभः । अतिस्वल्पौ पाणी स्तनभरनिरोधान्न मिलितौ निमीलक्रीडायां कलुषयसि मुग्धे किमिति नः ॥ १ ॥ नैतस्याः प्रसृतिद्वयेन सरले शक्ये पिधातुं दृशौ सर्वत्रैव विलोक्यते मुखशशिज्योत्स्नावितानैरियम् । इत्थं बालतया सखीभिरसकृद्दृङ्मीलनाकेलिषु व्याषिद्धा रजनीमुखे च नयने स्वे गर्हते कन्यका ॥ २ ॥

शिशिरवायवः—कुसुमयन्फलिनीरलिनीरवैर्मदविकासिभिराहितहुङ्कृतिः । उपवनं निरभर्त्सयत प्रियान्वियुवतीर्युवतीः शिशिरानिलः ॥ १ ॥ केशानाकुलयन्दृशौ मुकुलयन्वासो बलादाक्षिपन्नातन्वन्पुलकोद्गमं प्रकट-

---

लोगोंने गरम वस्त्र, बिना धुएँकी आग, बन्द घर और प्रियतमाओंके स्तनोंसे ठण्ढक भगा दी है उनकी ठण्ढक भागकर दरिद्रोंके घर जा पहुँची है ॥ २९ ॥ सुन्दर चोलियोंसे अपने स्तन कसे हुए, जाँघोंपर रेशमी वस्त्र डाले हुए और बालोंमें फूल गूँथे हुए नवेलियाँ ऐसी लग रही हैं मानो जाड़ेके स्वागतका उत्सव मनानेके लिये वे शृङ्गार कर रही हों ॥ ३० ॥ शिशिर ऋतुमें रूठनेवाली नवेलियोंका रूठना तो जाड़ेसे डरकर छूटता ही जाता है किन्तु यह तो बड़े अनर्थकी बात है कि सूर्यकी गर्मी भी जाड़ेके डरसे सूर्यको छोड़े दे रही है ॥३१॥ शिशिरमें जल भी जलाने-सा लगता है, इससे जान पड़ता है मानो आगकी शक्ति जलमें चली गई, उत्कट गन्धवाली नई गन्धतुलसीके फूलमें ही सब फूल जा समाए हैं, सूर्य भी मानो ठण्ढकके मारे बड़वानलके पास जा रहे हैं और दिन भी मानो ठण्ढकके डरसे सिकुड़कर छोटे हो गए हैं ॥ ३२ ॥ इस शिशिर ऋतुमें जिसके सारे पुण्य नष्ट हो चुके हैं ऐसे चन्दनका नामतक भी कोई स्तनोंपर लगानेके लिये नहीं लेता । अब तो कुंकुमका ही पुण्य भोगनेका समय है अतः उसीका लेप नवेलियोंके स्तनोंपर लगकर युवकोंको मस्त करता रहता है ॥ ३३ ॥ नवेलियोंने शिशिर ऋतुमें अपना सब क्रोध छोड़कर अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए पतियोंको यह समझकर कसकर छातीसे लगा लिया कि शिशिरके बीत जानेपर इन ठण्ढक दूर करनेवाले स्तनोंका फिर उपयोग ही क्या होगा ? ॥ ३४ ॥ इन दिनों नवेलियाँ मस्त कर देनेवाली और कामवासना जगानेवाली वह बढ़िया स्वादिष्ट मद्य बड़े हर्षसे अपने प्रेमियोंके साथ रातको पीती हैं जो, वे जब काँपते कमल उन कामिनियोंकी सुगन्धित साँससे बराबर हिलते रहते हैं ॥ ३५ ॥

आँख-मिचौनीका खेल : हे सखी ! आँख-मिचौनी खेलनेके लिये तुम मुझे क्यों तङ्ग कर रही हो । देखो, न तो मेरी बड़ी-बड़ी आँखें ही कोई अपने हाथोंसे ढक पाती है, न मैं अपने नितम्बोंके भारीपनके कारण वेगसे दौड़ ही सकती हूँ और स्तन भी इतने ऊँचे हो गए हैं कि मैं किसीको पकड़ने भी चलूँ तो हाथ आपसमें मिल नहीं पाते और चोर पकड़नेमें नहीं आ पाता ॥ १ ॥ सखियाँ किसी नवेलीके विषयमें कह रही हैं—'इस नवेलीकी दोनों आँखें दोनों हथेलियोंसे ढको नहीं जा पातीं, इसके मुखरूपी चन्द्रमाका प्रकाश ऐसा छिटकता है कि यह कहीं भी लुके किन्तु दिखाई पड़ जाती है, इसलिये इसे आँख-मिचौनीके खेलमें नहीं लेना चाहिए।' इस प्रकार जिस नवेलीको सखियोंने आँख-मिचौनीके खेलसे हटा दिया है वह सन्ध्या समय बैठी अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंको कोस रही है ॥२॥

शिशिरके पवन : प्रियङ्गु लताके फूल खिलानेवाला शिशिर ऋतुका पवन उन फूलोंपर बैठकर गुञ्जार करती हुई भौंरियोंकी गुञ्जारके स्वरमें 'हू-हू-हू' करता हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो प्रियतमोंसे बिछुड़ी हुई नवेलियोंको डाँटे जा रहा हो ॥ १ ॥ शिशिरका पवन इस समय नवेलियोंके बाल

यन्त्रावेगकम्पं गतेः । वारंवारमुदारसीत्कृतभरैर्दन्तच्छदं पीडयन्प्रायः शैशिर एष सम्प्रति मरुत्कान्तासु कान्तायते ॥ २ ॥ चुम्बन्तो गण्डभित्तीरलकवति मुखे सीत्कृतान्यादधाना वक्षःसूत्कञ्चुकेषु स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः । ऊरूनाकम्पयन्तः पृथुजघनतटात्स्रंसयन्तोंऽशुकानि व्यक्तं कान्ताजनानां विटचरितभृतः शैशिरा वान्ति वाताः ॥ ३ ॥ स्पृष्टाः स्तोकं वितस्तातटतुहिनकणैः पिण्डयन्तः पयोष्णीं चञ्चन्तश्चन्द्रभागालहरिषु यमुनावीचिमैत्रीपवित्राः । धून्वानास्सिद्धसिन्धोरुभयतटगतां देवदारुद्रुमालिं लोकप्रीत्यै बभूवुस्तुहिनगिरितटीकेलिकारास्समीराः ॥ ४ ॥

शिशिरपान्थः—आरात्कारीषवह्नेर्विरचितसुतृणप्रस्तरान्तर्निषण्णैः संशीर्णग्रन्थिकन्थाविवरवशविशच्छीतवाताभिभूतैः । नीताः कृच्छ्रेण पान्थैः श्वभिरिव निविडं जानुसङ्कोचकुब्जैरन्तर्दुर्वारदुःखद्विगुणतरकृतायामयामास्त्रियामाः ॥१॥ पुण्याग्नौ पूर्णवाञ्छः प्रथममगणितप्लोषदोषः प्रदोषे पान्थः सुप्त्वा यथेच्छं तदनु तनुतृणे धामनि ग्रामदेव्याः । उत्कम्पी कर्पटार्धे जरति परिजडे छिद्रिणि च्छिन्ननिद्रे वाते वाति प्रकामं हिमकणिनि क्वणत्कोणतः कोणमेति ॥ २ ॥ पृष्ठारोपितकर्पटस्य विसरद्बाष्पाम्बुसिक्तात्मनः कुब्जीभूततनोर्निविष्टवदनस्याभ्यन्तरे जानुनोः । निस्सङ्गं भुजयुग्मपीडनवशाच्छ्वश्वत्कवोष्णो रसः पान्थस्योद्गतवह्निराशिनिचये याति क्षपा शैशिरी ॥ ३ ॥ सन्विष्टो ग्रामदेव्याः कुटघटितकुटीकुड्यकोणैकदेशे शीते सम्वाति वायौ हिमकणिनि रणद्दन्तपङ्क्तिद्वयाग्रः । पान्थः कन्थां निशीथे परिकुथितजरत्तन्तुसन्तानगुर्वीं ग्रीवापादाग्रजानुग्रहणचटचटत्कर्पटां प्रावृणोति ॥ ४ ॥

संयोग-शृङ्गारः

नायकदर्शनम्—काचिन्निवारितवहिर्गमना जनन्या द्रष्टुं प्रियं भवनजालकमाससाद । तस्याः विलोचनमदृश्यत दाशदत्तयन्त्रोपरुद्धशफरोपमितं क्षणेन ॥ १ ॥

हिलाता हुआ, उनकी आँखें मूँदता हुआ, हठपूर्वक उनके वस्त्र खींचता हुआ, उनके रोंगटे खिलाता हुआ, उनकी चालमें कम्पन उपजाता हुआ तथा बार-बार सी-सी करनेवाले उनके ओठ दबाता हुआ, उनके साथ पतिका-सा व्यवहार कर रहा है ॥ २ ॥ लटकते हुए बालोंसे सजे हुए मुखोंवाली नवेलियोंके गाल चूमते हुए, उनसे सी-सी कराते हुए, उठी हुई चोलीवाले छातीके स्तनोंपर रोंगटे खड़े करते हुए, उनकी जाँघें कँपाते हुए और उनके नितम्बोंसे साड़ी सरकाते हुए ये शिशिरके पवन नवेलियोंके साथ विलासी नायकके-से व्यवहार करते हुए बह रहे हैं ॥ ३ ॥ वितस्ता नदीके तटके पालेके कणोंके स्पर्श-मात्रसे पयोष्णी नदीका जल जमाते हुए, चन्द्रभागा नदीकी लहरें छलकाते हुए, यमुनाकी लहरोंकी मित्रतासे पवित्र हुए, तथा सिद्ध-समुद्रके दोनों तटोंपरके देवदारके वृक्षोंकी पाँतोंको झकझोरते हुए हिमालयकी तलहटीपर अठखेलियाँ करनेवाले पवन संसारको मस्त करते हुए वह रहे हैं ॥ ४ ॥

शिशिरके यात्री : कण्डेकी आगके पास घासके बिछौनेपर बैठे हुए, फटी हुई गुदड़ीके छेदमेंसे घुसते हुए ठण्ढे पवनसे ठिठुरते हुए और अपने घुटने मोड़े हुए यात्रियोंने कुत्तोंके समान बड़ी कठिनाईसे वे लम्बी-लम्बी रातें बिताईं जो दुखदाई वियोगके दुःखसे दूनी जान पड़ रही थीं ॥ १ ॥ शिशिरकी ऋतुमें बाहर गया हुआ यात्री जलनेकी चिन्ता न करके भी साँझको जलती हुई आग तापकर गाँवकी देवीके मन्दिरमें घासके बिछौनेपर जमकर सो तो रहा किन्तु ठण्ढा पवन चलते ही उसकी नींद टूट गई और वह ठिठुरता हुआ अपने पुराने, ठण्ढे, फटे वस्त्रोंमें लिपटकर वायुसे लाए हुए ओसके कणोंसे भीगे हुए कोनेसे हटकर दूसरे कोनेमें जा दुबका ॥ २ ॥ कोई यात्री पीठपर कथरी लादे, फैले हुए कुहरेके जलसे भीगा, कूबड़ निकालकर घुटनोंके बीचमें सिर डाले तथा उदासीन भावसे अपनी दोनों कोखोंमें मुट्ठी दाबकर गरमाता हुआ, जलती आगके पास बैठा-बैठा ही शिशिरकी रात बिताए डाल रहा है ॥ ३ ॥ पेड़ोंसे घिरे हुए किसी ग्रामदेवीके मन्दिरके भीतके एक कोनेमें कोई यात्री शिशिरकी रातमें सो तो गया पर जब ओसकी बूँदोंसे लदा हुआ ठण्ढा पवन चलने लगा तो उसके दाँत बजने लगे। उस समय आधी रातको उसने पुराने डोरोंसे तागी हुई वह भारी गुदड़ी ओढ़ ली जिसका पुराना वस्त्र, सिर, पैरके पञ्जे और घुटनोंमें अड़-अड़कर चरचराकर फटा जा रहा था ॥ ४ ॥

संयोग-शृङ्गार

नायकसे भेंट : जिस नायिकाको उसकी माँने बाहर निकलनेसे रोक दिया था वह जब अपने प्यारेको देखनेके लिये घरकी जालीदार खिड़कीपर आँखें लगाकर खड़ी हुई, उस

किञ्चित्कुञ्चितहारयष्टि सरलभ्रूवल्लि साचिस्मितं प्रान्तभ्रान्तविलोचनद्युति भुजापर्यस्तकर्णोत्पलम् । अङ्गुल्या स्फुरदङ्गुलीयकरुचा कर्णस्य कण्डूयनं कुर्वाणा नृपकन्यका सुकृतिनं सव्याजमालोकते ॥ २ ॥ कृच्छ्रेण कापि गुरुणेव जने निरोधमुल्लङ्घ्य नायकसमीपभुवं प्रतस्थे। हा हन्त शीघ्रगमनप्रतिरोधहेतुस्तस्याः पुनः स्तनभरोऽपि गुरुर्बभूव ॥ ३ ॥ नान्तःप्रवेशमरुणद्विमुखी न चासीदाचष्ट दोषपरुषाणि न चाक्षराणि। सा केवलं सरलपक्ष्मभिरक्षिपातैः कान्तं विलोकितवती जननिर्विशेषम् ॥ ४ ॥ यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षीं सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव। निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः ॥ ५ ॥

नायिकादर्शनम् — अच्छिन्नामृतविन्दुवृष्टिसदृशीं प्रीतिं ददत्या दृशां याताया विगलत्पयोधरभराद्दृष्टव्यतां कामपि। अस्याश्चन्द्रमसस्तनोरिव करस्पर्शास्पदत्वं गता नैते यन्मुकुलीभवन्ति सहसा पद्मास्तदेवाद्भुतम् ॥ १ ॥ अन्यत्तन्मधुरं स्मितं नयनयोः सञ्चारणञ्चेतरत्सञ्चारः पदयोः स मन्दमितरस्तस्याश्च भाषाऽपरा। किं ब्रूयां प्रिय तादृशी क्षितितले नान्येति लोकान्तरेऽप्यन्या नास्ति न वा भविष्यति न वा काचिद्गताभूत् क्वचित् ॥ २ ॥ अमृतममृतं चन्द्रश्चन्द्रस्तथाम्बुजमम्बुजं रतिरपि रतिः कामः कामो मधूनि मधून्यपि। इति न भजते वस्तु प्रायः परस्परसङ्करं तदियमबला धत्ते लक्ष्मीं कुतः सकलात्मिकाम् ॥ ३ ॥ अमृतममृतं चन्द्रं चन्द्रं रतिं च रतिं तथा प्रथितमतयः कामं ब्रूयुर्मधूनि मधून्यपि। यदि न सुभगास्पर्शामोदं विना प्रमुदे ततः सकलमकलं तेषां व्यूहं ब्रवीमि पुनः प्रिये ॥ ४ ॥ अये केयं लीलाधवलगृहवातायनतले तुलाकोटिक्वाणैः कुसुमविशिखं

समय उसके नेत्र ऐसे जान पड़े मानो किसी मछुएके जालमें दो मछलियाँ फँसी पड़ी हों ॥ १ ॥ जिसके गलेमें लटके हुए हारकी लड़ें उलझ गई थीं, भौंहें सीधी थीं, जो तिरछे मुस्करा रही थी, इधर-उधर चितवन चला रही थी और जिसके कानपर धरे हुए कमल बाँहतक लटक आए थे, वह राजकन्या अपनी चमकती हुई अँगूठीवाली उँगलीसे कनपटी खुजलाती हुई किसी भाग्यवान्को देख रही है ॥ २ ॥ कोई नवेली अपने गुरुजनों (घरके बड़े-बूढ़ों) का कहना न मानकर अपने प्यारेके पास जानेके लिये चली तो, पर वहाँ भी गुरुओंने पिण्ड न छोड़ा क्योंकि वहाँ भी शीघ्रतासे चलनेमें रुकावट डालनेवाला स्तनका बोझ ही गुरु (भारी) हो गया ॥ ३ ॥ उस नवेलीने न तो अपने प्यारेको घरके भीतर आनेमें रुकावट डाली, न मुँह ही फेरा, न उसे अपराधी ही बताया वरन् अत्यन्त साधारण ढङ्गसे उसकी ओर ऐसे देखती रही जैसे यों ही अकारण किसीकी ओर देख रही हो ॥ ४ ॥ उस प्रियने अपनी जिस-जिस चञ्चलनयनी प्रियाकी ओर देखा उस-उसका मुख तो लज्जासे नीचे झुक गया और जिस-जिसकी ओर नहीं देखा वे उसी समय डाह करती हुई एक साथ प्रियकी ओर टेढ़ी चितवनसे घूर-घूरकर देखने लगीं ॥ ५ ॥

नायिकासे भेंट : बड़े आश्चर्यकी बात है कि निरन्तर होनेवाली अमृतवर्षाके समान आँखोंको सुख देनेवाली, बदली न होनेसे स्पष्ट प्रतीत होनेवाली, छोटे-छोटे स्तनोंवाली और साक्षात् चन्द्रमाके समान दिखाई देनेवाली उस नवेलीके कर (किरण, हाथ) से छू जानेपर भी कमल (नेत्र) मुँद नहीं रहे हैं ॥१॥ हे प्यारे ! उसकी मधुर मुस्कान, नेत्रोंकी चितवन, पैरोंकी धीमी-धीमी चाल तथा बोली सब निराली ही है। और क्या कहूँ ? न तो वैसी कोई दूसरी सुन्दरी इस धरतीकी पीठपर ही है, न दूसरे लोकोंमें है न आगे कभी होगी और न पहले कभी कहीं हुई ही है ॥ २ ॥ अमृत भी अमृत ही है, चन्द्रमा भी चन्द्रमा ही है, कमल भी कमल ही है, रति भी रति ही है, काम भी काम ही है और मधु भी मधु ही है। ये सब वस्तुएँ कहीं एक साथ मिलती भी नहीं, तब ये सब इस नायिकामें एक साथ कैसे दिखाई पड़ रही हैं ? (अर्थात् इसके अधरोंमें अमृत, मुखमें चन्द्रमा, हाथ-पैरमें कमल, प्रेममें रति, इच्छामें काम और चितवनमें मधु है) ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! बड़े-बड़े बुद्धिमान् लोग अमृतको अमृत, चन्द्रमाको चन्द्रमा, रतिको रति तथा मधु (शहद) को मधु भले ही माना करें किन्तु मुझे तो जबतक उस नवेलीको गले लगाकर सुखी होनेका आनन्द नहीं मिल पाता तबतक मैं इन वस्तुओंके समूहको व्यर्थ ही समझता रहूँगा ॥ ४ ॥ अरे ! अपनी दोनों आँखोंसे श्रुति (कान, वेद) को लाँघनेवाली अर्थात् कानतक फैले हुए नेत्रोंवाली यह कौन है जो अपने सुहावने क्रीडाघरके झरोखेपर पायलकी झनकारसे कामदेवको जगाए दे रही है ? भला अब यह मुस्कराता हुआ कामदेव तीनों लोकोंको क्यों नहीं

जागरयति। अहो नेत्रद्वन्द्वं विकसति विलङ्घ्य श्रुतिमहो कथं न त्रैलोक्यं जयति मदनः स्मेरवदनः ॥ ५ ॥ अर्कच्छायं तिरयति सुधालिप्तविद्युन्मतल्ली चक्रप्रख्यं महति सुषमामण्डले दूरमग्नम्। रक्तादर्शप्रतिफलमिव श्रीसदङ्गं वहन्ती दृष्टा काचित्तरलनयना देवतेव स्मरस्य ॥ ६ ॥ अर्धस्मितेन विनिमन्त्र्य दशार्धबाणमर्धं विधूय वसनाञ्चलमर्धमार्गे। अर्धेन नेत्रविशिखेन निवृत्य सार्धमर्धाधमेव तरुणी तरुणश्चकार ॥ ७ ॥ अस्यां नेत्रपथं मन्ये गतायां लोलचक्षुषि। भवन्ति पञ्चबाणस्य स्वबाणा एव वैरिणः ॥ ८ ॥ अस्या धाम सरोवरे भुजबिसे वक्त्रारविन्दे भ्रमन्नेत्रभ्रूभ्रमरे सुयौवनजले कस्तूरिकापङ्किले। वक्षोजप्रतिकुम्भिकुम्भदलनक्रोधादुपेत्य द्रुतं मग्नश्चित्तमतङ्गजः कथमसावुत्थाय निर्यास्यति ॥ ९ ॥ आधाय कोमलकराम्बुजकेलिनालीमालीसमाजमधिकृत्य समालपन्ती। मन्दस्मितेन मयि साचिविलोकितेन चेतश्चकोरनयना चुलुकीचकार ॥ १० ॥ आनन्दोर्मिव्यतिकरदरस्मेरसंसक्तपक्ष्मप्रेमोद्गारप्रवणमसृणारेचितस्निग्धतारम्। अन्तश्चिन्ताभरपरिचयाकुञ्चितभ्रूलतान्तं चक्षुश्चेतो हरति हरिणीलोचनायास्तदेतत् ॥ ११ ॥ इदमसौ तरलायतलोचना गुरुसमुन्नतपीनपयोधरा। पृथुनितम्बभरालसगामिनी प्रियतमा मम जीवितहारिणी ॥ १२ ॥ इयं भुजगिनीश्रिता लसदनेकपुष्पान्विता द्विरेफततिसेविता प्रमदखञ्जनालंकृता। फलद्वयभरानता विलसिता नवैः पल्लवैर्विलोचनपथं गता भवति कापि हैमी लता ॥ १३ ॥ इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा कुसुम्भारुणं चारु वासो वसाना। समस्तस्य लोकस्य चेतःप्रवृत्तिं गृहीत्वा घटे न्यस्य यातीव भाति ॥ १४ ॥ उत्तुङ्गस्तनशैलदुस्तरमुरो निम्नातिनाभिस्थली भीमं देहवनं स्फुरद्भुजलतं रोमालिजालाकुलम्।

जीत लेगा ? ॥ ५ ॥ अपने विशाल घेरेमें जड़े हुए पहिएके समान कान्तिहीन सूर्यकी चमकको वह अमृतसे भरी हुई बिजली (नवेली) तुच्छ बना रही है जो इस समय लाल शीशेमें पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बके समान शोभासे सम्पन्न अङ्गोंवाली, तथा चञ्चल नेत्रोंवाली कामदेवकी देवी रतिके समान दिखाई दे रही है ॥ ६ ॥ वह युवती अपनी मन्द मुस्कानके साथ-साथ अपनी साड़ीका आधा पल्लू क्या हिला रही है मानो कामदेवको बुला रही है और फिर बीचसे ही घूमकर अपने झँपे हुए नेत्रोंके बाणोंसे उस नवयुवकके दो टुकड़े किए डाल रही है ॥ ७ ॥ यदि कामदेवको भी कहीं इस चञ्चल नयनोंवाली नवेलीकी झलक मिल जाय तो उसके पाँचों बाण स्वयं उसे ही बेध डालें ॥ ८ ॥ इस नायिकाका शरीर क्या है एक तालाब है जिसमें इसकी दोनों बाँहें ही कमलनाल हैं, मुँह ही कमल है, चञ्चल आँखें और भौंहें ही भौंरे हैं, यौवन ही जल है तथा शरीरपर कस्तूरीका लेप ही कीचड़ है अब उसमें स्तन-रूपी हाथीके मस्तकका मर्दन करनेके लिये क्रोधसे रसिकोंका मन-रूपी जो हाथी आ घुसा है वह भला कैसे उठकर निकल सकता है ॥ ९ ॥ चकोरके समान नेत्रोंवाली जो नवेली अपनी सहेलियोंके साथ बैठी बातें करती हुई अपने कोमल करकमल नचा रही थी, उसने अपनी बाँहरूपी नलीसे मन्द मुस्कान-भरी तिरछी चितवन चलाकर मेरा मन पी डाला ॥ १० ॥ इस मृगनयनी नवेलीकी वह चितवन मेरा मन हरे ले रही है जिसमें प्यारेसे मिलनेकी चिन्ताके बोझसे भौंहें सिकुड़ गई हैं, आनन्दके कारण आँसू छलक आनेके डरसे जिसमें उसकी पलकें बरबस खिले रहनेका प्रयत्न कर रही हैं और जिसमें भीतरसे प्रेम ऐसा छलका पड़ रहा है कि रसभरी पुतलियाँ भी नाचने लगी हैं ॥ ११ ॥ यह चञ्चल और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली, बड़े-बड़े ऊँचे और मोटे-मोटे स्तनोंवाली और अपने चौड़े-चौड़े नितम्बोंके बोझसे धीरे-धीरे चलनेवाली प्यारी मेरा प्राण ही खींचे डाल रही है ॥ १२ ॥ यह (नवेली) एक अनोखी सोनेकी लता-जैसी दिखाई दे रही है जिसमें साँपिन (चोटी) भी है, जो खिले हुए अनेक पुष्पों (नेत्र, ओठ आदि) से लदी भी है, जिसपर भौंरोंके झुण्ड (पुतली आदि) भी मँडरा रहे हैं, जिसपर मतवाले खञ्जन (नेत्र) भी बैठे हुए हैं, जिसमें दो फल (स्तन) भी लटके हुए हैं और नये-नये पत्ते (उँगलियाँ) भी झूल रहे हैं ॥१३॥ केसरिया और लाल रङ्गके वस्त्र पहने हुए तथा सिरपर घड़ा रक्खे हुए जो यह सुन्दर स्तनोंवाली नवेली जा रही है, उसे देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो वह सारे संसारके मनकी गति घड़ेमें भरकर लिए चली जा रही हो ॥ १४ ॥ ऊँचे स्तन-रूपी पर्वतोंसे दुर्गम छातीवाली, नाभि-रूपी गहरी खाईवाली, बाँहरूपी लताओंवाली तथा रोमावली-रूपी घासवाली नवेलीके शरीररूपी वनमें बैठा हुआ कामरूपी बहेलिया जब तिरछी चितवनरूपी बाण लगातार छोड़े जा रहा है तब हे मेरे मन-

व्याधः पञ्चशरः किरत्यतितराँस्तीक्ष्णान्कटाक्षाशुगाँस्तन्मे ब्रूहि मनःकुरङ्ग शरणं कं साम्प्रतं यास्यसि ॥ १५ ॥ उपप्राकाराग्रं प्रहिणु नयने तर्कय मनागनाकाशे कोऽयं गलितहरिणश्शीतकिरणः। सुधाबद्धग्रासैरुपवनचकोरैरनुसृतां किरञ्ज्योत्स्नामच्छां नवलवलिपाकप्रणयिनीम् ॥ १६ ॥ उभौ रम्भास्तम्भावुपरि विपरीतौ कमलयोस्तदूर्ध्वं रत्नाश्मस्थलमथ दुरूहं किमपि तत्। ततः कुम्भौ पश्चाद्बिसकिसलये कन्दलमथो तदन्विन्दाविन्दीवरमधुकराः किं पुनरिदम् ॥ १७ ॥ कर्पूरधूलिधवलद्युतिपूरधौतदिङ्मण्डले शिशिररोचिषि तस्य यूनः। लीलाशिरोंशुकनिवेशविशेषक्लृप्तिव्यक्तस्तनोन्नतिरभून्नयनावनौ सा ॥ १८ ॥ काचिद्विहृत्य किल कन्दुककेलिरङ्गाद्धूरेणुभूषिततनुर्निरगान्मृगाक्षी। उत्फुल्लपङ्कजवने सुचिरं विहृत्य किञ्जल्करेणुपरिधूसरितेव लक्ष्मीः ॥ १९ ॥ कृच्छ्रेणोरुयुगं विलङ्घ्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरङ्गविषमे निष्पन्दतामागता। मद्दृष्टिस्तृषितेव सम्प्रति शनैरारुह्य तुङ्गौ स्तनौ साकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने ॥ २० ॥ केयं श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखालग्नैरङ्गैः कनककदलीकन्दलीगर्भगौरैः। हारिद्राम्बुद्रवसहचरं कान्तिपूरं वहद्भिः कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेवाविरस्ति ॥ २१ ॥ कैस्सुरैः केन शैलेन कुतोऽब्धेर्मथनादियम्। अजायत नवा लक्ष्मीरमृतेन्दुकलामयी ॥ २२ ॥ क्षीरसागरकल्लोललोललोचनयानया। असारोऽपि हि संसारः सारवानिव लक्ष्यते ॥ २३ ॥ खेलत्खञ्जननेत्रया परिलसत्स्वर्णारविन्दास्यया पीनोत्तुङ्गनिरन्तरस्तनभरव्यालोलसन्मध्यया। स्फीतस्फीतनितम्बया क्षणमपि व्यालोकितश्चानया किं न स्याद्वशिनां वरः स्मरहरः स्मारैः शरैर्जर्जरः ॥ २४ ॥ गच्छति न तृप्तिमेतत्सुललितमस्याः समापिबद्रूपम्। नयनयुगं मम नूनं सम्प्रति समुपैति सफलताञ्चैवम् ॥ २५ ॥ जानीम-

---

रूपी हरिण! तुम कहाँ बचकर निकल पाओगे? ॥ १५ ॥ ऊपर मुँडेरेपर आँखें उठाकर देखो तो सही कि यह धरतीपर बिना हरिणका कौन-सा चन्द्रमा निकल आया है जो नई पकी हुई हरफारेवड़ीको खिला देनेवाली ऐसी निर्मल चाँदनी फैला रहा है जिसे उपवनमें बैठे हुए चकोर, अमृत समझकर पीते जा रहे हैं ॥ १६ ॥ यह क्या है जिसमें दो कमलों (चरणों) के ऊपर दो केलेके खम्भे (टाँगें) उलटे लगे हुए हैं, उसपर कोई दुर्गम रत्न-जड़े पत्थरोंवाली धरती (करधनी) दिखाई दे रही हैं, उसपर दो घड़े (स्तन) रक्खे हैं, उसके साथ कमलकी ऐसी नालें (भुजाएँ) लगी हैं जिनमें दो नये अङ्कुर (उँगलियाँ) फूटे हुए हैं और उसपर एक चन्द्रमा (मुख) है जिसमें टँके हुए नीले कमलों (नेत्रों) पर भौंरे (पुतलियाँ) बैठे हुए हैं ॥ १७ ॥ जिस समय कपूरकी भाँति उजली चन्द्रमाकी किरणें अपनी चमकसे दिशाओंको चमका रही थीं, उसी समय मेरी आँखोंके सामने वह नवेली आ पड़ी जिसके स्तनोंकी ऊँचाई घूँघट सँभालते समय स्पष्ट दिखाई दे गई थी ॥ १८ ॥ धूलसे भरी देहवाली कोई मृगनयनी, गेंद खेलकर लौटती हुई ऐसी दिखाई दी मानो खिले हुए कमलोंके वनमें बड़ी देरतक विहार करके कमलोंके परागसे धूसरित लक्ष्मी निकली चली आ रही हो ॥ १९ ॥ मेरी प्यासी दृष्टि किसी-किसी प्रकार बड़ी कठिनाईसे उस नवेलीकी दोनों जाँघें पार कर पाई, फिर उसके नितम्बोंपर देरतक घूमकर तीन सलवटोंवाली लहरोंके कारण ऊँचे-नीचे पेटपर जाकर जमी रही, वहाँसे चलकर धीरे-धीरे उसके ऊँचे स्तनोंपर चढ़कर उसके उन नेत्रोंको बार-बार ललचाकर देखने लगी जिनमेंसे थोड़ा-थोड़ा पानी झर रहा था ॥ २० ॥ कामदेवके क्रीड़ागृहकी अटारीपर बनी हुई कोठरीके भीतरके दीपकके समान यह कौन नवेली चमक रही है जिसके सब अङ्ग कसौटीपर खिंची हुई सोनेकी रेखाके समान चमक रहे हैं और सोनेके केलेकी जड़के गुद्देकी भाँति गोरे और हल्दी-घुले पानीके समान सुनहरे लग रहे हैं ॥ २१ ॥ किन देवताओंने किस पर्वतको मथानी बनाकर किस समुद्रको मथा कि जिससे यह अमृतमय चन्द्रमाकी कलाओंसे भरी कोई नई लक्ष्मी (नवेली) उत्पन्न हो गई ॥२२॥ यद्यपि संसारमें सार तो कुछ भी नहीं है फिर भी दूधकी लहरके समान चञ्चल नेत्रोंवाली इस नवेलीने ही इस संसारको सारमय बना दिया है ॥ २३ ॥ खञ्जनके समान चञ्चल नेत्रोंवाली, सोनेके कमलके समान सलोने मुखवाली, मोटे, ऊँचे, आपसमें सटे हुए स्तनोंके भारसे झुकी हुई सुन्दर कमरवाली और भारी नितम्बवाली यह नवेली यदि इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले और कामदेवको भस्म करनेवाले शिवजीकी ओर तनिक-सा भी ताक दे तो क्या वे कामके बाणोंसे विना घायल हुए बच पावेंगे? ॥ २४ ॥ यद्यपि इस नवेलीकी अत्यन्त मनोहर सुन्दरता

हेऽस्याः खलु सारसाद्या विराजतेऽन्तः प्रियवक्त्रचन्द्रः । तत्कान्तिजालैः प्रसृतैस्तदङ्गेष्वापाण्डुता कुड्मलताक्षिपद्मे ॥ २६ ॥ तडिल्लेखा नेयं विलसति परं सौधशिखरे वसन्त्याः कस्याश्चित्कनकरुचिरा गात्रलतिका । अपीदं नोन्मज्जत्कुवलयवनं मीनतरलं परं तस्या एव स्फुरति नयनालोकललितम् ॥ २७ ॥ तापकाठिन्य चलतापरिम्लानीरकल्पयत् । दीपरत्नतडित्पुष्पेष्वस्याः प्रव्यक्तये विधिः ॥ २८ ॥ न त्वरा श्रेयसे पुंसां किमद्य क्रियतां हरिः । इमामजानन्नेष्यन्तीं जग्राह सहसा श्रियम् ॥ २९ ॥ नेयं नागविलासिनी न दिविषत्कान्ताऽपि काचिद्यतो नास्या लीननिमेषता न च शशिश्रीर्यन्न सत्कलमषा । नो वा हेममयी यतोऽपरिसरत्सौरभ्यभाराऽपि नो तन्मन्ये विधिना व्यधायि सुहृदाम्मोदाय काचित्कला ॥३०॥ नेयं विद्युद्भुवमधिगता काञ्चनी नापि वल्ली मन्दं मन्दं प्रचलति यतो नापि वा पन्नगस्य । चूडारत्नस्फुरदुरुशिखा क्वापि धत्ते सरोजं का वा तर्हि प्रकृतिसुभगा तत्सखे न प्रतीमः ॥ ३१ ॥ पातालाद्भुवनावलोकनपरा किं नागकन्योत्थिता मिथ्या तत्खलु दृष्टमेव हि मया तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी । मूर्ता स्यादिह कौमुदी न घटते तस्या दिवा दर्शनं क्वेयं हस्ततलस्थितेन कमलेनालोक्यते श्रीरिव ॥ ३२ ॥ पुरः स्थित्वा किञ्चिद्वलितमुखमालोकय सखे सखेदाः स्थास्यन्ति ध्रुवमिदमदृष्ट्वा तव दृशः । इतश्चञ्चत्काञ्चीरणितमुखरात्सौधशिखरादराकायां कोऽयं कवलयति चान्द्रेण महसा ॥ ३३ ॥ प्रियादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनान्तरैः । प्राप्यते येन निर्वाणं सरागेणापि चेतसा ॥ ३४ ॥ भाषा पीयूषभूषा हृदयमकरुणं कायकान्तिश्च काचित् सम्पत्तिश्चारुतायाः सकलजनमनोहारिणी चैव दृष्टिः । आस्यं शीतांशुरद्धा निभृतविषभराऽपाङ्गसम्पातशैली पादौ रक्तौ नखानां

पाकर भी मेरे दोनों नेत्र अघा तो नहीं रहे हैं फिर भी आँखोंका जन्म तो सफल हो ही रहा है ॥ २५ ॥ जान पड़ता है इस कमल-नयनीके हृदयमें उसके प्रियतमका मुखचन्द्र निवास करता है इसीलिये तो उस चन्द्रमाकी फैली हुई किरणोंसे उसका शरीर पीला-सा पड़ गया है और नेत्ररूपी कमल झँपे जा रहे हैं ॥ २६ ॥ कोठेपर कौंधनेवाली जिस चमकको आप बिजली समझ बैठे हैं वह बिजली नहीं है, वह तो वहाँ बैठी हुई किसी नवेलीका सुन्दर सुनहरा शरीर है और उधर जिसे आप सरोवरकी मछलियोंसे हिलाया हुआ नीला कमल समझ रहे हैं वह उसी नवेलीकी आँखोंकी चञ्चल चितवन है ॥ २७ ॥ ब्रह्माने दीपकमें ताप, रत्नोंमें कठोरता, बिजलीमें चञ्चलता और फूलोंमें कुम्हलानेका दुर्गुण इसीलिये भर दिया कि यह नवेली उन सबसे यशमें आगे बढ़ी रहे ॥ २८ ॥ हड़बड़ी करनेवालेका कभी कोई काम ठीक नहीं होता । देखो, विष्णुने यह नहीं ध्यान दिया कि ऐसी सुन्दर नवेली भी मेरे सामने आ सकती है । बस, हड़बड़ीमें उन्होंने लक्ष्मीको ही ग्रहण कर लिया, पर अब पछताए होत का ! ॥ २९ ॥ यह नवेली न तो कोई नागकन्या ही है न देवी ही है क्योंकि इसके पलक भी गिरते-उठते हैं, यह चन्द्रमाके समान भी नहीं है क्योंकि इसमें कलङ्क नहीं है, यह स्वर्णमयी भी नहीं है क्योंकि चल-फिर रही है और यह सुगन्धकी ढेर भी नहीं है (क्योंकि दिखाई दे रही है) अतः जान पड़ता है कि ब्रह्माने सज्जनोंके मनोरञ्जनके लिये कोई नई कला बना छोड़ी है ॥ ३० ॥ किसी नवेलीको देखकर कवि कहता है कि 'यह धरतीपर है इसलिये बिजली नहीं हो सकती, न यह सोनेकी नागवल्ली ही है क्योंकि यह धीरे-धीरे चल रही है । यह कमल भी नहीं है क्योंकि कमलके ऊपर क्या चूड़ामणिकी ज्योति हुआ करती है। अतः मित्र ! यह समझमें ही नहीं आ रहा है कि यह स्वभावसे सुन्दर है कौन ?' ॥ ३१ ॥ किसी नवेलीको देखकर कवि कह रहा है कि 'यह कहीं नागकन्या तो नहीं है जो भूलोक देखनेकी इच्छासे पातालसे चली आई हो किन्तु यह नागकन्या भी नहीं है क्योंकि मैं उन्हें देख चुका हूँ, वहाँ ऐसी कन्याएँ कहाँसे आईं ? यह देह धारण किए चाँदनी भी नहीं हो सकती क्योंकि चाँदनी दिनमें नहीं दिखाई देती । ओहो ! अब समझमें आया ! यह तो साक्षात् लक्ष्मी है, इसके हाथमें कमल नहीं देखते !' ॥३२॥ हे मित्र ! सामने खड़े होकर सिर घुमाकर तनिक देख तो लो नहीं तो तुम्हारे नेत्र पछतायँगे । देखो, इधर करधनीकी मधुर छमछमसे भरे हुए घरकी छतपर बिना पूर्णिमाके ही कौन चाँदनी फैला रहा है ? ॥ ३३ ॥ यदि देखना ही हो तो अपनी प्रेयसीको ही देखना चाहिए, दूसरी वस्तुएँ देखनेसे क्या लाभ, क्योंकि प्राणप्यारीका दर्शन करनेसे मनमें आसक्ति रहनेपर भी निर्वाण (सुख, मोक्ष) मिल जाता है ॥ ३४ ॥ यह निश्चय ही कोई विचित्र लीला है क्योंकि इसकी बोली अमृतसे भरी है, हृदय बड़ा कठोर है, देहकी कान्ति

जयति कुटिलता तत्किलेयं विचित्रा ॥ ३५ ॥ मदनमपि गुणैर्विशेषयन्ती रतिरिव मूर्तिमती विभाति येयम् । मम हृदयमनङ्गवह्नितप्तं भृशमिव चन्दनशीतलं करोति ॥३६॥ मन्ये पार्वणचन्द्रमध्यशकलेनासूत्रितैषा चिरादङ्गैरद्भुतभङ्गिभिः परिणतव्युत्पत्तिना वेधसा। योषित्सर्गविलक्षणाकृतिरियं यद् दृश्यते भाति च छिद्रद्वारविलोक्यमानगगनेवाद्यापि चान्द्री तनुः ॥ ३७ ॥ यन्निष्पीड्य विरिञ्चेन स्यन्दितैषा मधुस्रुतिः। मन्ये तत्क्षौद्रपटलं त्यक्तं तेनेन्दुमण्डलम् ॥ ३८ ॥ लग्नं पादतले नखेषु विलुठत्संसक्तमूर्वोर्युगे विश्रान्तं जघनस्थले निपतितं नाभीसरोमण्डले । शून्यं मध्यमवेक्ष्य रोमलतिकामालम्बमानं क्रमादारूढं स्तनयोः प्लुतं नयनयोर्लीनं मनः कैशिके ॥ ३९ ॥ लावण्यसिन्धुरपरैव हि केयमत्र यत्रोत्पलानि शशिना सह सम्प्लवन्ते । उन्मज्जति द्विरदकुम्भतटी च यत्र यत्रापरे कमलकाण्डमृणालदण्डाः ॥ ४० ॥ लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः । मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ॥ ४१ ॥ वक्त्रश्रीजितजर्जरेन्दुमलिनं कृत्वा करे कन्दुकं क्रीडाकौतुकमिश्रभावमनया ताम्रं वहन्त्याननम् । भृङ्गाग्रग्रहकृष्णकेतकदलस्पर्धावतीनां दृशां दीर्घापाङ्गतरङ्गितैकसुहृदामेषोऽस्मि पात्रीकृतः ॥ ४२ ॥ वक्रोपान्तं नयनयुगलं सर्वतो निक्षिपन्ती श्रोणीभाराच्छिथिलशिथिलन्यस्तपादारविन्दा। आरादालीकरकिसलये दत्तहस्तावलम्बा काचित्कान्त्या विकसितमहीचक्रमायाति तन्वी ॥ ४३ ॥ श्रोणीभारभरालसा दरगलन्माल्यापवृत्तिच्छलाल्लीलोत्क्षिप्तभुजोपदर्शितकुचोन्मीलन्नखाङ्कावलिः । नीलेन्दीवरदामदीर्घतरया दृष्ट्या धयन्ती मनो दूरान्दोलनलोलकङ्कणझणत्कारोत्तरं सर्पति ॥ ४४ ॥ सखे सायं स्नात्वा कनकरुचिकौसुम्भवसनं वसानायास्तिर्यग्वलितचिकुर-

---

सुन्दरताका भाण्डार है, दृष्टि सब लोगोंके मनको हरे ले रही है, मुख भी चन्द्रमा ही है, विषसे भरी तिरछी छितवन धीरे-धीरे पड़ रही है, पैर लाल हैं तथा नख टेढ़े हैं! इस प्रकार इसकी सारी वस्तुएँ विजयी ही हो रही हैं ॥ ३५ ॥ अपने सुन्दरता आदि गुणोंसे कामको उत्तेजित करनेवाली जो यह साक्षात् रतिके समान नवेली दिखाई दे रही है वह कामाग्निसे जले हुए मेरे हृदयको मानो चन्दनसे शीतल कर रही हो ॥ ३६ ॥ मैं तो समझता हूँ कि नवेलियोंकी सृष्टिमें जो यह अनोखे रूपवाली सुन्दरी दिखाई पड़ रही है, इसे कुशल ब्रह्माने चन्द्रमाके बीचके भागसे बहुत दिनोंमें अङ्ग-प्रत्यङ्ग-सहित बनाया है। इसीलिये आज भी चन्द्रमाके बीचके छेदसे उस पारका आकाश (कलङ्क) स्पष्ट झलक रहा है ॥ ३७ ॥ मैं समझता हूँ कि ब्रह्माने अमृतकी ईख पेरकर, अमृत-रससे तो यह नवेली बना डाली और बची हुई खोई इस चन्द्रमण्डलके रूपमें बाहर फेंक दी ॥ ३८ ॥ किसी नवेलीको देखकर कवि कहता है—'मेरा मन पहले तो उस नवेलीके पैरोंमें जा टिका, फिर उसके पैरके नखोंमें लोटने लगा, फिर दोनों जाँघोंका सहारा लेकर उसके जघनमें पहुँचकर विश्राम करने लगा, आगे चलकर नाभिरूपी तालावमें जा डूबा और कटिको पतला और सूना देखकर रोमावलीका सहारा लेकर धीरेसे स्तनपर चढ़ गया और फिर तो उसके नेत्रोंपर उचककर उसके केशमें जा समाया ॥ ३९ ॥ यह कौन-सा नया सुन्दरताका समुद्र (नवेली) है जिसमें चन्द्रमा (मुख) के साथ कमल (नेत्र) उछल रहे हैं, जिसमें हाथीका मस्तक (स्तन) निकला हुआ है तथा जहाँ और भी अनेक कमलोंके नाल आदि (भुजाएँ आदि) दिखाई दे रहे हैं ॥ ४० ॥ यह कौन लीला-कमल नचाती हुई (कमलोंको हिलाती हुई) वेगसे पक्षपात करती हुई (पङ्ख खोलती हुई), विचित्र चालवाली (चित्रमें बनी) हंसिनीकी भाँति मन (मानसरोवर, मन) में पैठी चली आ रही है ॥४१॥ मुँहकी शोभासे हराए हुए मलिन चन्द्रमाके समान मैली गेंद हाथमें लेकर, खेलनेके चावमें भरी हुई लाल-लाल मुखवाली नवेलीने अपने नेत्रकी कोरोंसे मुझपर बार-बार अपनी वह तिरछी चितवन चलाई जो भौंरोंसे लदी हुई केवड़ेकी पंखुड़ियोंसे होड़ कर रही थी ॥ ४२ ॥ चारों ओर अपने दोनों नेत्र घुमाती हुई, नितम्बके भारसे धीरे-धीरे धरतीपर चरण-कमल रखती हुई, पासमें खड़ी सखीके हाथका सहारा लेती हुई तथा अपनी सुन्दरतासे सारे भूमण्डलको शोभित करती हुई यह कोई दुबली-पतली नवेली इधर चली आ रही है ॥ ४३ ॥ नितम्बके भारसे धीरे-धीरे चलनेवाली, नीलकमलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंसे मनको पी जानेवाली वह नवेली अपने ढीले कङ्गन झनझनाती हुई चली जा रही है जो हटी हुई मालाको सँभालनेके लिये जब हाथ उठाती है तो उसके खुले हुए स्तनोंपर लगे हुए नख-चिह्न स्पष्ट दिखाई दे जाते हैं ॥ ४४ ॥ हे मित्र! आज सायङ्काल भाग्यवश

स्यन्दिसलिलम् । दिशन्त्या दृष्टेयं कुसुमशरकोदण्डलतिकामकस्मादस्माकं मृगशिशुदृशो दर्शनमभूत् ॥४५॥ सरस्यामेतस्यामुदरवलिवीचीविलुलितं यथा लावण्याम्भो जघनपुलिनोल्लङ्घनपरम् । यथा लक्ष्यश्चायं चलनयनमीनव्यतिकरस्तथा मन्ये मग्नः प्रकटकुचकुम्भः स्मरगजः ॥ ४६ ॥ सायञ्चन्द्रकलामृतोदयगिरिस्पर्धां दधानः स्तनस्पर्शोत्तुङ्गतरो नखाङ्करुचिरः शोणाम्बराभ्यन्तरे । अस्याः कं न विलोकनोत्कमकरोत्तीक्ष्णः कटाक्षः क्षणं भृङ्गाकृष्टगरिष्ठकेतकदलभ्रान्तिं वहन्नप्ययम् ॥ ४७ ॥ सेयं ममाङ्गेषु सुधारसच्छटा सुपूरकर्पूरशलाकिका दृशोः । मनोरथश्रीर्मनसः शरीरिणी प्राणेश्वरी लोचनगोचरं गता ॥ ४८ ॥ सेयं सीधुमयी वा सुधामयी वा हलाहलमयी वा । दृग्भ्यां निपीतमात्रा मदयति मोदयति मूर्च्छयति ॥ ४९ ॥ स्कन्धे विन्यस्य सख्या भुजमपरकरस्यार्धचन्द्रेण मध्यं बिभ्राणा धूयमानस्तनतटवसना गन्धवाहेन मन्दम् । पन्थानं दृग्विलासैरिव नलिनदलैः कोमलैरास्तृणन्ती सौधाग्रे कस्य साक्षात्परिणमति तपःसिद्धिरेषा सुवेषा ॥ ५० ॥ स्वैरं सस्मितमीक्षते क्षणमलं व्याजृम्भते वेपते रोमाञ्चं तनुते मुहुः स्तनतटे व्यालम्बते नाम्बरम् । आलिङ्गत्यपरां तनोति चिकुरं प्रत्युत्तरं याचते केयं कामकलाविलासवसतिर्लोलेक्षणा भाविनी ॥ ५१ ॥

परस्परदर्शनम्—आघ्रातं कमलं प्रियेण सुदृशा स्मित्वापनीतं मुखं दत्तं विभ्रमकन्दुके नखपदं सीत्कृत्य गूढौ स्तनौ । दत्ता चम्पकमालिकोरसि भुजानिर्भिन्नरोमाञ्चया मीलल्लोचनया स्थितं प्रणयिनोर्दूरेऽपि पूर्णो

सहसा एक ऐसी मृगनयनीका दर्शन हुआ जो स्नान करके सोनेके समान केसरिया रङ्गकी साड़ी पहन रही थी और जिसके बिखरे हुए केशोंसे जलकी बूँदें टपक रही थीं। उसके केशोंको देखकर ऐसा लग रहा था मानो वह अपने घुँघराले बालोंके रूपमें कामदेवके धनुष झुला रही हो ॥ ४५ ॥ इसके पेटपरकी सिकुड़नरूपी लहरें चञ्चल हो रही हैं, सुन्दरतारूपी जल नितम्बरूपी तटको भी लाँघे जा रहा है तथा चञ्चल नेत्ररूपी मछलियाँ फड़फड़ा-सी रही हैं। अतः जान पड़ता है कि प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले स्तनरूपी मस्तकवाला कामदेवरूपी हाथी इस नवेलीकी देहरूपी तालाबमें घुसा हुआ है ॥ ४६ ॥ पतिके हाथोंसे छू जानेके कारण ऊँचे-ऊँचे तथा नखोंके गोल चिह्नोंसे सुन्दर लगनेवाले इस नवेलीके स्तन ऐसे जान पड़ते हैं मानो सायङ्कालके उस उदयाचलसे होड़ कर रहे हों जिसपर टेढ़ा चन्द्रमा उदय हो रहा हो। लाल वस्त्रोंसे ढका हुआ उसका वह स्तन तथा भौंरोंसे खिंची हुई केवड़ेकी पंखुड़ीका भ्रम उत्पन्न कर देनेवाली तिरछी चितवन किसे अपनी ओर देखनेके लिये बरबस उत्सुक नहीं कर देती ॥४७॥ मेरे अङ्गोंपर बहनेवाली अमृतकी धारा, आँखोंके लिये कपूरकी मोटी सलाई तथा मेरे मनके सफल मनोरथोंकी साक्षात् शोभाके रूपवाली यह प्राणप्यारी मेरी आँखोंके आगे आ पहुँची ॥४८॥ समझमें नहीं आता कि मेरी यह प्राणप्यारी मदिरामयी है या अमृतमयी या विषमयी; क्योंकि जैसे ही मेरे नेत्र इसकी शोभा पीने लगते हैं वैसे ही यह मतवाला बना देती है, जिला देती है तथा मूर्च्छित कर देती है ॥ ४९ ॥ यह मुँडेरेपर सजधजकर खड़ी हुई नवेली किसकी तपस्याका फल है जो एक हाथ अपनी सखीके कन्धेपर धरे है दूसरा हाथ आधे चन्द्रमाके आकारका बनाकर कमरपर रक्खे हुए है, पवन जिसके स्तनपरसे धीरे-धीरे वस्त्र हटा रहा है और जो मार्गकी ओर ऐसी देख रही है मानो कमलिनीकी पंखुड़ियोंके समान अपने कोमल नेत्रोंकी चितवन मार्गपर बिछाए डाल रही हो ॥ ५० ॥ कामदेवकी कलाओंसे भरी, चञ्चल नेत्रवाली तथा कुछ सोचती हुई-सी यह कौन नवेली है जो स्वच्छन्द होकर मुस्कराती हुई चितवन चला रही है, बार-बार जँभाई ले रही है, काँप रही है, जिसके स्तनोंपर बार-बार रोमाञ्च हो रहा है, जो वस्त्र नहीं सँभाल पा रही है, जो दूसरी नवयुवतीको गले लगा रही है, बाल सँवार रही है तथा अपनी बातोंका उत्तर चाह रही है ॥ ५१ ॥

चार आँखें करना : नायकने प्रेमपूर्वक नायिकाको देखकर उसे दिखाते हुए कमल सूँघा। इससे चुम्बनका सङ्केत पाकर उस सुनयनीने मुस्कराकर मुँह मोड़ लिया। नायकने गेंदपर हाथ रखकर नख गड़ाए। इससे नायिकाने स्तनोंपर हाथ लगानेका सङ्केत पाकर सी-सी करके स्तन ढँक लिए। नायकने चम्पेकी माला हृदयसे लगाई तो आलिङ्गनका सङ्केत पाकर नायिकाकी भुजाओंमें रोमाञ्च हो आया और उसने आनन्दसे आँखें मूँद लीं। इस प्रकार एक दूसरेसे दूर रहनेपर भी दोनोंने अपना-अपना प्रेम-रस पूरा कर लिया ॥ १ ॥ मनकी कल्पनाके कारण कई बार स्वप्नमें होनेवाले मूठे

रसः ॥१॥ स्मरतोरभिलाषकल्पितान्बहुशः स्वप्नभुवः-संमागमान्। अपि दृष्टिपथं प्रपन्नयोर्निविशश्वास चिरं मनस्तयोः ॥ २ ॥

देशान्तरोपगतो नायकः—दिदृक्षमाणः क्षणमायताक्ष्या मुखाम्बुजं मञ्जुलमध्वनीनः। मुहूर्तमात्रं सुमुहूर्तकालं सवर्षकालं कलयाञ्चकार ॥ १ ॥ निशम्य केलीभवनोपकण्ठे मञ्जीरमञ्जुध्वनिमध्वनीनः। यथा तथा बद्धकथावशेषं समापयामास समं सुहृद्भिः ॥ २ ॥ मुखं प्रियायाः समुदीक्षमाणः कान्तो दिनस्यान्तमपेक्षमाणः। मुहुर्मुहुर्व्योमनि तिग्मभानौ निवेशयामास विलोचने स्वे ॥ ३ ॥

विरहः—समानकुलशीलयोः सुवयसोः परायत्तयोः परस्परविलोकनाकुलितचेतसोः प्रेयसोः। तनुत्वमनुविन्दतोर्बहुविधां व्यथां विन्दतोरशक्यविनिवेदना विरहवेदना वर्धते ॥ १ ॥

वियोगिन्यवस्थावर्णनम्—अगारेऽस्मिन्कान्ते गिरिशमनिशानाथशकलं भुजङ्गानुत्तुङ्गान्सकलमपि वातायनपथे। निकुञ्जेषु श्येनानधिगृहशिरो राहुवलयं लिखन्त्या नीयन्ते शिव शिव तया हन्त दिवसाः ॥ १ ॥ अङ्गासङ्गिमृणालकाण्डमयते भृङ्गावलीनां रुचं नासामौक्तिकमिन्द्रनीलसरणिं श्वासानिलाद्गाहते। क्षिप्ता सा हिमवालुकापि कुचयोर्धत्ते क्षणं दीपतां तप्तायःपतिताम्बुवत्करतले धाराम्बु सँलीयते ॥ २ ॥ अधिदेहलि हन्त हेमवल्ली शरदिन्दुः सरसीरुहे शयानः। उपखञ्जनचञ्चु मौक्तिकाली फलितं कस्य सुजन्मनस्तपोभिः ॥ ३ ॥ अन्तस्तारं तरलतरलाः स्तोकमुत्पीडभाजः पक्ष्माग्रेषु ग्रथितपृषतः कीर्णधाराः क्रमेण। चित्तातङ्कं निजगरिमतः सम्यगासूत्रयन्तो निर्यान्त्यस्याः कुवलयदृशो वाष्पवारां प्रवाहाः ॥ ४ ॥ अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः। अलमलमालि मृणालै-

---

समागमका स्मरण करके नायक-नायिकाको साक्षात् होनेवाले सच्चे समागमपर भी विश्वास न हो पाया ॥ २ ॥

घर लौटा हुआ परदेसी : अपनी ओर एकटक निहारती हुई बड़े-बड़े नेत्रोंवाली प्रियतमाका सुन्दर मुख-कमल देखकर परदेससे लौटे नायकने वियोगमें बीते हुए एक वरसको भी एक क्षणके समान समझा ॥ १ ॥ जैसे ही परदेससे लौटे नायकने अपने क्रीड़ा-भवनके पास पहुँचकर मँजीरेकी मधुर ध्वनि सुनी वैसे ही उसने अपने मित्रोंसे चलती हुई बात वदलकर झटपट जैसे-तैसे बातें समाप्त कर दीं ॥ २ ॥ परदेससे लौटकर अपनी प्रियतमाका मुँह देखता हुआ नायक यही सोचता है कि 'कब रात हो जाय!' और इसीलिये वह बार-बार आकाशमें सूर्यको देखता है कि अभी कहाँ पहुँचा है ॥ ३ ॥

बिछोह : समान कुलमें पैदा हुए, एक जैसे स्वभाववाले, नई अवस्थावाले, माता-पिताके अधीन रहनेवाले, एक दूसरेको देखनेके लिये छटपटानेवाले तथा दुबले होकर अनेक प्रकारके कष्ट पानेवाले नायक और नायिकाके हृदयमें वियोगके कारण जो खलबली मची हुई है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥

वियोगिनीकी दशाका वर्णन : वह नवेली अपने पतिके वियोगमें अपने सुन्दर घरमें विना चन्द्रकलावाले शिवजीका चित्र वनाती है (जिससे टेढ़े चन्द्रमाको देखकर प्रियतमके नखचिह्नोंका स्मरण न हो जावे), झरोखोंपर साँपके चित्र बनाती है जिससे वायु न आ सके (क्योंकि साँप वायु पी जाते हैं), झाड़ियोंमें बाजका चित्र टाँग देती है (जिससे कोयल न कूकने पावे) तथा छतपर राहुका चित्र बना देती है (जिससे चन्द्रमा यहाँसे डरकर भाग जाय)। सचमुच बड़े दुःखकी बात है कि उस बेचारीको इतने कष्टसे दिन बिताने पड़ रहे हैं ॥ १ ॥ उस वियोगिनीके अङ्गोंसे लगे हुए कमलनालके टुकड़े तापके मारे भौंरोंके समान काले पड़ जाते हैं, तपी हुई साँसके कारण बेसरका मोती नीलम बन-बन जाता है, स्तनोंपर लगाया हुआ कपूरका चूर्ण तत्काल तपने लगता है और हाथोंपर छोड़ी हुई पानीकी धार तपे हुए लोहेपर पड़ी हुई पानीकी बूँदकी भाँति छनछनाकर सूख जाती है ॥ २ ॥ यह देहलीपर क्या कोई सोनेकी लता फैली (नवेली खड़ी) हुई है? या शरद्का चन्द्रमा कमलपर सो रहा है (कोई नवेली हथेलीपर सिर धरे सो रही है)? या खञ्जनकी ठोर (नासिका) के पास मोतीकी माला (दाँतोंकी पाँत) शोभित हो रही है? यह सब किस पुण्यात्माकी तपस्याका फल है? ॥ ३ ॥ उस कमलनयनीके आँसू पहले तो आँखके भीतर ही उजले-उजले झलमलाते हुए दिखाई दिए, फिर कुछ बाहर निकलकर वरौनियोंमें बूँदके रूपमें दिखाई देकर धारा बन गए। इस प्रकार वहते हुए उन बड़े-बड़े आँसुओंको देखकर देखनेवालेके मनमें घवराहट होने लगी ॥ ४ ॥ वह वियोगिनी रात-दिन यही कहती रहती है कि 'कपूरको दूर करो, हार

रिति वदति दिवानिशं बाला ॥ ५ ॥ अपि मरणमुपैति सा मृगाङ्के विलसति कैव कथा रसान्तरस्य । अपि कथमधुना दधातु शान्ति विषमशरज्वरतीव्रदेहदाहः ॥ ६ ॥ अबला नितराम्मुग्धा बाला हन्त ह्रिया जिता । हन्यते द्विजराजाद्यैरशरण्यं ततो जगत् ॥ ७ ॥ अस्तमितविषयसङ्गा मुकुलितनयनोत्पला मुहुः श्वसिता । ध्यायति किमप्यलक्ष्यं बाला योगाभियुक्तेव ॥ ८ ॥ अस्त्रं विमुच्य सकलं प्रथमप्रयोगे भूयोऽपि हन्तुमबलां विहितोद्यमस्य । पुष्पायुधस्य वपुरेव तदीयमेकं लक्ष्यञ्च हन्त शरधिश्च तदा बभूव ॥ ९ ॥ अस्मिन्वर्षमहे न वर्तत इदं यत्कामदेवोत्सवे स्थेयं पुत्रि निरन्नया तदधुना किञ्चिन्मुखे दीयताम् । इत्युक्ते जरतीजनेन कथमप्यध्वन्यवध्वा ततः पर्यस्तेऽहनि कल्पितश्च कवलो धौतश्च धाराश्रुभिः ॥ १० ॥ अस्यास्तनौ विरहताण्डवरङ्गभूमौ स्वेदोदबिन्दुकुसुमाञ्जलिमाविकीर्य । नान्दीं पपाठ पृथुवेपथुवेपमानकाञ्चीलताकलरवैः स्मरसूत्रधारः ॥ ११ ॥ आदातुं सकृदीप्सितेऽपि कुसुमे हस्ताग्रमालोहितं लाक्षारञ्जनवार्तयापि सहसा रक्तं तलं पादयोः । अङ्गानामनुलेपनस्मरणमप्यत्यन्तखेदावहं हन्ताधीरदृशः किमन्यदलकामोदोऽपि भारायते ॥ १२ ॥ आलीचालितपद्मिनीदलचलत्सर्वाङ्गमङ्गीकृतस्वाङ्गालिङ्गनमर्मरीकृतनवाम्भोजालिशय्या चिरात् । चैतन्यं कथमप्युपेत्य शनकैरुन्मील्य नेत्राञ्चलं बाला केवलमेव शून्यहृदया शून्यं जगत्पश्यति ॥१३॥ इतो विद्युद्वल्लीविलसितमितः केतकरजः स्फुरद्गन्धं प्रोद्यज्जलदनिनदस्फूर्जितमितः । इतः केकिक्रीडाकलकलभरः पक्ष्मलदृशां कथं यास्यन्त्येते विरहदिवसाः सम्भ्रमरसाः ॥ १४ ॥ उद्धूयेति तनूलतेति बिसिनीपत्रेण नो वीज्यते स्फोटः स्यादिति नाङ्कं मलयजक्षोदाम्भसा सिच्यते । स्याद-

---

हटाओ, ये सब कमल लेकर मैं क्या करूँगी ? हे सखी ! इन कमलनालोंको भी उधर ही रहने दो' ॥५॥ जिस वियोगिनीकी यह दशा हो गई है कि चन्द्रमाके उदय होते ही प्राण दे डालेगी उसके आगे शृङ्गार, हास्य इत्यादि रसोंकी चर्चा की ही कैसे जा सकती है? इस समय तो यही सोचना है कि कामके बाणोंसे उत्पन्न भयङ्कर ज्वरका सन्ताप शान्त कैसे हो ?॥ ६ ॥ जब भोली-भाली नवेलीको लाजने जीत लिया तो चन्द्रमा आदि भी कहीं भी शरण न पानेवाले संसारके प्राणियोंको मारने लगे ॥७॥ संसारके विषयोंसे मन हटाकर, आँखें अधमुँदी करके, बार-बार साँस खींचकर वह नवेली योगिनीके समान बिना किसी लक्ष्यके ही न जाने किसका ध्यान कर रही है ॥८॥ उस अबलाके प्राण लेनेके लिये कामदेवने सारे अस्त्र-शस्त्र एक ही बार चला दिए । अतः उसे जब उसने फिर दुबारा मारना चाहा तो उस नवेलीकी देह ही कामदेवका लक्ष्य भी बनी और बाण भी बनी ॥ ९ ॥ किसी परदेस गए हुएकी पत्नीको जब बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंने कहा कि 'बेटी ! इस वर्ष कामदेवके उत्सवके समय जो तू अन्न छोड़े बैठी है, यह ठीक नहीं है । कुछ मुँहमें डाल ले', तब किसी-किसी प्रकार दिन बीतते-बीतते वह मुँहतक ग्रास ले तो गई पर वह पूरा ग्रास आँसुओंसे भींग गया ॥ १० ॥ इस वियोगिनीके शरीरमें कामदेवरूपी सूत्रधारने विरह-रूपी नटके अभिनयके लिये रङ्गमञ्च-रूपी नायिकाके देहमें पसीनेकी बिन्दुरूपी फूल बिखेरकर शरीरके काँपनेसे हिलती हुई करधनीके सुन्दर शब्दसे मानो नान्दीपाठ कर डाला ॥११॥ हाय ! वह नवेली प्रियतमके वियोगमें इतनी दुबली हो गई है कि ज्यों ही फूल उतारनेके विचारसे देखती है त्यों ही उसकी उँगलियाँ थकावट होनेके डरसे लाल हो उठती हैं, ज्योंही कोई महावरसे उसके पैर रचनेकी चर्चा चलाता है त्योंही भारके भयसे उसके पैर लाल हो उठते हैं तथा अङ्गोंमें चन्दन आदिका लेप लगाए जानेका स्मरण करते ही वह अत्यन्त दुखी हो जाती है । अधिक क्या कहें, उसके बालोंमें बसी हुई सुगन्ध भी उसे भारी जान पड़ रही है ॥ १२ ॥ उस मूर्च्छित वियोगिनीको ठण्ढक पहुँचानेके लिये सखियाँ जब कमलके पत्ते डुलाती हैं तो उसका शरीर हिलने लगता है और उसके शरीरसे लगकर कमलोंका बिछौना सूख जाता है । वह वियोगिनी किसी प्रकार जगी और उसने आँखें भी खोलीं परन्तु उसका हृदय सूना था इसलिये उसे सारा संसार सूना दिखाई पड़ने लगा ॥ १३ ॥ इधर बिजली चमक रही है, उधर केवड़ेका सुगन्धित पराग उड़ रहा है, बादल गड़गड़ा रहे हैं तथा मोर कूक कूककर नाच रहे हैं, ऐसे घबराहट उत्पन्न करनेवाले समयमें वियोगिनी नवेलियोंके दिन कैसे बीत पावेंगे ॥ १४ ॥ इस वियोगिनीका दुबला-पतला शरीर उड़ न जाय इस डरसे कमलके पत्तोंसे बनाया हुआ पङ्खा नहीं डुलाया जा सकता, पानीकी चोटसे इसके अङ्ग न टूट जायँ इस डरसे चन्दन मिला हुआ जल भी नहीं सींचा जा सकता और इसकी

स्यातिभरात्पराभव इति त्रासान्न वा पल्लवारोपो वक्षसि तत्कथं वरतनोराधिः समाधीयताम् ॥ १५ ॥ एतस्या विरहज्वरः करतलस्पर्शैः परीक्ष्यो न यः स्निग्धेनापि सखीजनेन भयतः प्रस्थम्पचः पाथसाम्। निश्शक्तीकृतचन्दनौषधिविधो तस्मिंस्तडत्कारिणो लाजस्फोटममी स्फुटन्ति मणयो विश्वेऽपि हारस्रजः ॥ १६ ॥ कण्ठे मौक्तिकमालिकाः स्तनतटे कार्पूरमच्छं रजः सान्द्रं चन्दनमङ्कके वलयिताः पाणौ मृणालीलताः। तन्वी नक्तमियं चकास्ति तनुनी चीनांशुके बिभ्रती शीतांशोरधिदेवतेव गलिता व्योमाग्रमारोहतः ॥ १७ ॥ कथमपि कृतप्रत्यावृत्तौ प्रिये स्खलितोत्तरे विरहकृशया कृत्वा व्याजं प्रकल्पितमश्रुतम्। असहनसखीश्रोत्रप्राप्तिप्रमादससम्भ्रमं प्रचलितदृशा शून्ये गेहे समुच्छ्वसितं पुनः ॥१८॥ कपोलफलकावस्याः कष्टं भूत्वा तथाविधौ। अपश्यन्ताविवान्योन्यमीदृक्षां क्षामतां गतौ ॥ १९ ॥ कपोले पाण्डुत्वं किमपि जलधारां नयनयोस्तनौ कार्श्यं दैन्यं वचसि हृदि दावानलशिखाम्। अवज्ञां प्राणेषु प्रकृतिषु विपर्यासमधुना किमन्यद्वैराग्यं सकलविषयेष्वाकलयते ॥ २० ॥ कमले निधाय कमलं कलयन्ती कमलवासिनं कमले। कमलयुगादुद्भूतं कमलं कमलेन वारयति ॥ २१ ॥ कर्पूराम्बुनिषेकभाजि सरसैरम्भोजिनीनां दलैरास्तीर्णेऽपि विवर्तमानवपुषः स्रस्तस्रजि स्रस्तरे। मन्दोन्मेषदृशा किमन्यदभवत्सा काप्यवस्था तदा यस्याश्चन्दनचन्द्रचम्पकदलश्रेण्यादि वह्नीयते ॥ २२ ॥ किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनं हृदयकुसुमशोषी दारुणो दीर्घशोकः। ग्लपयति परिपाण्डुक्षाममस्याः शरीरं शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम् ॥ २३ ॥ कुसुमितलताभिरहता-

---

छातीपर नये-नये कोमल पत्ते भी इस डरसे नहीं रक्खे जा सकते कि उनके भारसे कहीं यह दब न जाय। तब बताइए भला, इस सुन्दरी विरहिणीकी तपन बुझाई कैसे जाय! ॥ १५ ॥ इस विरहिणी नवेलीको प्रियतमके बिछोहका ताप इतना तीव्र है कि प्रेममयी सखियाँ डरके मारे छूकर उसका ताप नहीं परख सकतीं वरन् दूरसे जो पानीका छींटा मारती हैं वह तत्काल सूख जाता है। उसपर चन्दन तथा औषधियोंका भी कोई बस नहीं चलता तथा उसकी देहपर पड़े हुई हार और मालाओंकी मणियाँ तड़-तड़ करके ऐसी चटक रही हैं मानो धानकी खीलें फूट रही हों ॥१६॥ गलेमें मोतियोंकी माला पहने, स्तनोंपर कपूरका चूर्ण मले, शरीरपर चन्दनका गाढ़ा लेप किए, हाथोंमें कमलतन्तुके कङ्गन पहने तथा उजले, पतले रेशमी वस्त्र पहने हुए वह नवेली रातके समय ऐसी जान पड़ती है मानो आकाशपर चढ़ते हुए चन्द्रमाकी अधिष्ठात्री देवी पृथ्वीपर टपक पड़ी हो ॥१७॥ बड़ी कठिनताके पश्चात् प्रियतम परदेससे लौटे भी तो उन्होंने दूसरोंका नाम लेकर प्रियतमाको बुलाया, इस बातसे चिढ़कर विरहसे दुबली-पतली उस नवेलीने न सुननेका बहाना करके अनसुना कर दिया। किन्तु प्रियतमके बुलानेका शब्द सखीके कानमें पड़ ही गया। अतः उससे यह सब न सहा गया और वह घबराकर आँखें तरेरती हुई सूने घरमें जाकर लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगी ॥ १८ ॥ इस नवेलीके गाल अत्यधिक बढ़ तो गए किन्तु एक दूसरेको न देख सकनेके कारण ही मानो वे दोनों दुबले पड़ गए ॥ १९ ॥ उस वियोगिनी नवेलीके गाल पीले पड़ गए हैं, आँखोंसे धाराएँ बहती रहती हैं, शरीर दुबला हो गया है, बोलीमें दीनता आ गई है, हृदयमें दावाग्निकी ज्वालाएँ भर गई हैं, प्राणोंका कोई मोह नहीं रह गया तथा स्वभाव भी बदल गया। अधिक क्या कहें, उसे संसारके सभी विषयोंसे वैराग्य हो गया है ॥ २० ॥ कमलके समान कोमल और लाल हाथपर मुख-कमल रखकर हृदय-कमलमें हृदयेशका ध्यान करती हुई वह वियोगिनी दोनों नेत्र-कमलोंसे बहता हुआ आँसूरूपी जल दूसरे कमल-जैसे हाथसे पोंछ रही है ॥ २१ ॥ कपूरके जलसे सींचे हुए, कमलके गीले पत्तोंसे ढके हुए तथा मालाओंसे भरे हुए बिछौनेपर भी जिसका शरीर छटपटा रहा है तथा जो बड़ी कठिनाईसे आँखें खोल पा रही है उस वियोगिनीकी अब यह दशा हो चली है कि चन्दन, चन्द्रमा, चम्पाके फूलकी पंखुड़ियाँ आदि सभी वस्तुएँ उसके लिये आग बनी जा रही हैं ॥२२॥ हृदय-रूपी फूलको सुखा डालनेवाला भयंकर वियोगका दुःख उस वियोगिनीके डंठलसे तोड़े हुए कोमल किसलयके समान दुबले-पतले पीले शरीरको ऐसे सुखाए डाल रहा है जैसे शरद् ऋतुकी कड़ी धूप केवड़ेकी कोमल पंखुड़ियोंको सुखा डालती है ॥ २३ ॥ उस वियोगिनीकी ऐसी दशा हो गई है कि फूली हुई लताओंका धक्का न लगनेपर भी उसे पीड़ा होती है, भौंरे उसे काटते भी नहीं फिर भी वह घूम जाती है और बावड़ीकी लहरें तनिक-सा छू भर गईं कि वह उनकी ओर घूर-घूरकर

प्यधत्त रुजमलिकुलैरद्यापि। परिवर्तते स्म नलिनी लहरीभिर्लोलिताप्यघूर्णत सा ॥ २४ ॥ केशैः कोमलमालिकामपि चिरं या बिभ्रती खिद्यते या गात्रेषु घनं विलेपनमपि न्यस्तन्न वोढुं क्षमा। दीपस्यापि शिखां न चापि भवने स्वप्नेऽपि या वीक्षितुं तापं सा विरहानलस्य महतः सोढुं कथं शक्यते ॥ २५ ॥ क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा। शोच्या च प्रियदर्शना च मदनग्लानेयमालक्ष्यते पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी ॥ २६ ॥ खण्डिता मा भवन्त्वेताः कदाऽपीत्यनुकम्पया। नदीर्निनीपतीवाब्धिं साऽश्रुपूरैर्निरन्तरैः ॥ २७ ॥ गण्डे पाण्डौ कलयति पुनश्चान्दनान्पत्रभङ्गान्निद्रालाभे स्वयमरुणदृक्पृच्छति त्वां निदानम्। प्रत्यासन्ने मधुरलपिते गृह्यके कीरशावे कण्ठे धत्ते कमलनयना चारु वैदूर्यहारम् ॥ २८ ॥ घनोऽयश्चेदश्चेदुपरि विकिरँश्चन्दनरसानुदाराश्चेहारी सरिदुरसि हारीभवति वा। समन्तात्प्राणाली चिरमुपवनाली मिलति वा तदप्यस्यास्तापः प्रियविरहजः किं विरमति ॥ २९ ॥ चन्द्रो वह्निर्मलयपवनो भोगिफूत्कारपातस्तिग्माश्रान्तर्निपतनमहो मालतिः पुष्पशय्या। कस्तूर्यादेर्मधुरसुरभेश्चन्दनस्य प्रलेपो ज्वाला तन्व्या इति वत कथं जीवनं भो विभाव्यम् ॥ ३० ॥ जीवेन तुलितं प्रेम सखि मूढेन वेधसा। लघुर्जीवो ययौ कण्ठं गुरुप्रेम हृदि स्थितम् ॥ ३१ ॥ तन्वङ्ग्या गुरुसन्निधौ नयनजं यद्वारि संस्तम्भितं तेनान्तर्गलितेन मन्मथशिखो सिक्तो वियोगोद्भवः। मन्ये तस्य निरस्यमानकिरणस्यैषा मुखेनोद्गता श्वासायाससमागतालिसरणिव्याजेन धूमावली ॥ ३२ ॥ तस्याः स्तनान्तरे न्यस्तं चन्दनं तापशोषितम्। मनोभवाग्निदग्धस्य बभौ भस्मेव

देखने लगती है ॥ २४ ॥ सजी हुई कोमल फूलकी माला केशोंमें देरतक रखनेसे जो थक जाती है, जो शरीरमें लगे हुए चन्दन आदिके घने लेपका भार नहीं सह सकती तथा जो घरमें जलते हुए दीवेकी लौ तकको स्वप्नमें भी नहीं देख सकती वह वियोगकी अग्निका भयंकर ताप कैसे सह पावेगी ॥ २५ ॥ पत्तेको सुखानेवाले वायुके छू जानेसे माधवी लताकी जैसी दशा हो जाती है वैसे ही देखनेमें भली लगनेवाली तथा शोचनीय दशावाली इस वियोगिनीकी कामसे पीड़ित होनेके कारण ऐसी दशा हो गई है कि इसके मुँहमें दोनों गाल सूख गए हैं, वक्षःस्थलपर दोनों स्तन पिचक हो गए हैं, कमर लचक गई है, कन्धे झुक गए हैं तथा देहका रंग उजला-सा हो गया है ॥ २६ ॥ वह वियोगिनी अपने सदा बहनेवाले आँसुओंकी सहायतासे नदियोंको समुद्रतक मानो इस दयाके कारण ले जाती है कि मेरी भाँति ये कभी खण्डिता (विरहिणी, सूखी धारावाली) न होने पावें ॥ २७ ॥ वह वियोगिनी अपने विरहके तापसे उजले गालोंपर चंदनसे बेल-बूटे बनाती है, चिन्ताके कारण नींद न आनेसे जो आँखें लाल हो आई हैं उनका कारण तुमसे पूछती है (अपनी विरह-व्यथाको छिपानेके लिये) तथा मधुर बोलनेवाला पालतू सुग्गेका बच्चा जब पास आकर बोलने लगता है तब उसे चुप करानेके लिये वह कमलनयनी अपने गलेमें नीलमका हार पहन लेती है जिससे रात हुई जानकर अँधेरेमें यह तोतेका बच्चा न बोले ॥ २८ ॥ भले ही बादल ऊपरसे चन्दनके रसकी वर्षा करें, शिशिर ऋतुकी ठंढी नदी छातीपर हार बनकर लटक जाय और इस वियोगिनीके प्राण चारों ओरके हरे-भरे वनमें मिल जायँ फिर भी क्या प्रियतमके वियोगसे उत्पन्न इसका ताप शान्त हो पावेगा ? ॥ २९ ॥ इस वियोगिनीका जब चन्द्रमा अग्निके समान, दक्षिणका पवन साँपोंकी फुफकारके समान, मालतीके फूलोंका बिछौना बिछे हुए अंगारोंके समान तथा कस्तूरी आदि मधुर सुगंधित वस्तुएँ और चन्दनका लेप लपटोंके समान उल्टे जान पड़ते हैं तब इसके बचनेकी कैसे आशा की जाय ? ॥ ३० ॥ हे सखी ! मूर्ख ब्रह्माने प्रेमकी बराबरी प्राणोंके साथ की किन्तु प्राण तो लघु (हल्के, क्षुद्र) होते हैं अतः वे गलेतक आ पहुँचे किन्तु प्रेम गुरु (भारी, श्रेष्ठ) है अतः वह हृदयमें ही जमा रहा ॥ ३१ ॥ बड़ोंके सामने खड़ी हुई वियोगिनीके रोके हुए आँसुओंने जब भीतरकी ओर मुड़कर वियोगसे उत्पन्न कामाग्नि बुझा दी तो उसका धुआँ ही मानो मुखकी सुगन्धित साँसके कारण उड़ते हुए भौंरोंके रूपमें दिखाई पड़ रहा है ॥ ३२ ॥ उस वियोगिनीके स्तनोंपर लगा हुआ चन्दनका लेप जो तापके कारण सूख गया है वह ऐसा जान पड़ता है मानो कामाग्निसे जले हुए उस वियोगिनीके चित्तकी राख हो ॥ ३३ ॥ झुकी हुई भौंहोंवाली वियोगिनीके तापको

चेतसः ॥ ३३ ॥ तापापनोददक्षाणि मृणालानि नतभ्रुवः । नाभूवन्दीर्घसूत्रेभ्यो वाञ्छितं प्राप्यते कुतः ॥ ३४ ॥ दरललितहरिद्राग्रन्थिगौरे शरीरे स्फुरति विरहजन्मा कोऽप्ययं पाण्डुभावः । वलति सति हि यस्मिन्सार्धमावर्त्य हेम्ना रजतमिव मृगाक्ष्याः कल्पितान्यङ्गकानि ॥ ३५ ॥ दह्यमानेऽपि हृदये मृगाक्ष्या मन्मथाग्निना । स्नेहस्तथैव यत्तस्थौ तदाश्चर्यमिवाभवत् ॥ ३६ ॥ दुःखं दीर्घतरं वहत्यपि सखीवर्गाय नो भाषते शैवालैः शयनं सृजत्यपि पुनः शेते न वा लज्जया । कण्ठे गद्गदवाचमञ्चति दृशा धत्ते न बाष्पोदकं सन्तापं सहते यदम्बुजमुखी तद्वेद चेतोभवः ॥ ३७ ॥ दुःखानि सन्दिशन्त्यास्तस्याः कण्ठं मुहुर्मुहुर्बाष्पः । स्वल्पावशेषजीवितनिर्वाणभियेव निरुणद्धि ॥ ३८ ॥ न क्रीडासु कुतूहलं वितनुते नालङ्कृतौ सादरा नाहारेऽपि च सस्पृहा न गणयत्यालापलोलां सखीम् । बाला केवलमङ्कैरनुकलशामैर्विविक्तस्थले ध्यायन्ती किल किञ्चिदन्तरधुना निस्पन्दमास्ते सदा ॥ ३९ ॥ न नीतमुपनासिकं परिमलव्ययाशङ्कया न हन्त विनिवेशितं विरहवह्निकुण्डे हृदि । दृशोर्बहिरिति श्रुतो न निहितं प्रियप्रेषितं करे कमलमर्पितं मृगदृशा दृशा पीयते ॥४०॥ नयनोत्पलचलधारां दृष्ट्वा वारान्निधिभ्रान्त्या । वडवानल इव भगवान्वसति तनौ कृशतनोस्तापः ॥ ४१ ॥ नवकिसलयतल्पं कल्पितं तापशान्त्यै करसरसिजसङ्गात्केवलं म्लापयन्त्याः । कुसुमशरकृशानुप्रापिताङ्गारतायाः शिवशिव परितापं को वदेत्कोमलाङ्ग्याः ॥ ४२ ॥ नलिनीदलमाहितं सखीभिः परितापोपशमाय यद्यदङ्गे । अकृतप्रतिकारलज्जयेव परितो म्लानिमुपैति तत्तदस्याः ॥ ४३ ॥ निःश्वासानलविद्धदन्तवसना नेत्राम्बुसिक्तस्तनी हस्तन्यस्तकपोलदीनवदना हारैकभूषावती । विभ्राणांसपदेन तुङ्गजघना

कमलनाल आदि भी शान्त न कर सके। ठीक ही है, दीर्घसूत्रियों (आलसियों, लम्बे-लम्बे सूतवालों) से क्या किसीकी इच्छा पूरी हो पाई है? ॥ ३४ ॥ पिसी हल्दीके रङ्गके समान देहवाली मृगनयनी वियोगिनीके विरह-वेदनासे उजले पड़ते हुए अङ्ग ऐसे जान पड़ते हैं मानो वे सोनेके साथ चाँदी मिलाकर गढ़े गए हों ॥ ३५ ॥ यह बड़े अचरजकी बात है कि यद्यपि उस मृगनयनीका हृदय कामाग्निसे जल रहा था फिर भी उसमें स्नेह (घी-तेल, प्रेम) ज्योंका त्यों बचा रह गया ॥३६॥ वह कमलमुखी वियोगिनी जो घोर कष्ट सहते हुए भी सखियोंसे नहीं कहती, सेवारका बिछौना बिछाकर भी लाजके कारण उसपर लेटती नहीं तथा गला भर आनेपर स्पष्ट बोल न पानेपर भी आँखोंमें आँसू नहीं आने देती, उसका सब सन्ताप केवल कामदेव ही जानता है ॥ ३७ ॥ जब वह नवेली अपना दुःख दूसरोंको बतलाने लगती है उस समय इस डरसे ही मानो आँसू उसका गला रोकने लगते हैं कि उसका बचा हुआ थोड़ा-सा जीवन भी समाप्त न हो जाय ॥ ३८ ॥ वह विरहिणी न तो खेलना चाहती, न चावसे अपना शृङ्गार करती, न भोजनकी इच्छा करती और न बातचीत करनेवाली अपनी सखीको ही कुछ समझती है, वरन् प्रतिक्षण दुबले होते हुए अङ्गोंवाली वह बाला केवल हृदयमें किसीका ध्यान करती हुई सदा एकान्तमें गुमसुम बैठी रहती है ॥ ३९ ॥ उस वियोगिनी मृगनयनीके प्रियतमने उसके पास जो कमलका फूल भेजा है उसे वह नाकसे इसलिये नहीं लगाती कि उसका सारा पराग साँसके वेगसे उड़ जाता, हृदयसे इसलिये नहीं लगाती कि जलती हुई वियोगाग्निके कुण्ड बने हुए हृदयमें कमल झुलस जायगा और कानोंपर इसलिये नहीं रक्खा कि नेत्रोंसे ओझल हो जायगा, अतः वह अपने हाथमें ही लिए हुए प्रेमभरी आँखोंसे उसे पिए जा रही है ॥४०॥ वियोगिनीके कमलनयनोंसे आँसुओंकी धार बहती देखकर बड़े भारी सन्तापने उसकी देहको समुद्र समझकर बड़वानलके समान उस बेचारीके दुबले-पतले शरीरमें ही डेरा जमा लिया है ॥ ४१ ॥ अपना सन्ताप दूर करनेके लिये नई-नई कोंपलोंसे बने हुए बिछौनेको केवल करकमलसे छूकर कुम्हला देनेवाली तथा कामाग्निके अङ्गार-सी जलती हुई कोमलाङ्गीके सन्तापका वर्णन भला कौन कर सकता है ॥ ४२ ॥ विरहकी तपन बुझानेके लिये उस वियोगिनीके अङ्गोंपर सखियाँ जो कमलिनीके पत्ते रखती हैं वे मानो इसी लाजके कारण चारों ओरसे कुम्हलाने लगते हैं कि 'हम इस बेचारीका ताप नहीं दूर कर पाए' ॥ ४३ ॥ किसी विरहिणीकी दशाका वर्णन कवि करता है—'इस विरहिणीके ओठ गरम साँससे झुलस गए हैं, स्तन आँसुओंसे भीग गए हैं, चोटी कन्धेपर फैल गई है तथा मुँह सूख गया है और अब यह उजले, सुन्दर, ढीले अङ्गोंवाली तथा मोटे नितम्बवाली विरहिणी हथेलीपर गाल रक्खे, केवल एक हार पहने दिनरात कुशासनपर पड़ी रहती है' ॥ ४४ ॥ कामाग्निके सन्तापने इस

विस्रंसिनीं वेणिकामास्ते स्थण्डिल एव पाण्डुमधुरक्षामालसैरङ्गकैः ॥ ४४ ॥ निकामं क्षामाङ्गी सरसकदलीगर्भसुभगा कलाशेषा मूर्तिः शशिन इव नेत्रोत्सवकरी । अवस्थामापन्ना मदनदहनोद्दाहविधुरामियं नः कल्याणी रमयति मनः कम्पयति च ॥ ४५ ॥ निक्षिप्य काऽपि शयने विवशं शरीरं संविश्य तत्र झटिति स्वयमेव यत्नात् । उत्थाय सौधमधिरुह्य गवाक्षरन्ध्रैः पत्युर्विलोक्य पदवीं भजति प्रमोहम् ॥ ४६ ॥ निविशते यदि शूकशिखा पदे सृजति सा कियतीमिव न व्यथाम् । मृदुतनोर्वितनोतु कथं न तामवनिभृत्तु निविश्य हृदि स्थितः ॥ ४७ ॥ नीवीबन्धोच्छ्वसनमधरस्पन्दनं दोर्विषादः स्वेदश्चक्षुर्मसृणमधुराकेकरस्निग्धमुग्धम् । गात्रस्तम्भः स्तनमुकुलयोरुत्प्रबन्धः प्रकम्पो गण्डाभोगे पुलकपटलं मूर्च्छना चेतना च ॥ ४८ ॥ परिमृदितमृणालीम्लानमङ्गं प्रवृत्तिः कथमपि परिवारप्रार्थनाभिः क्रियासु । कलयति च हिमांशोर्निष्कलङ्कस्य लक्ष्मीमभिनवकरिदन्तच्छेदकान्तः कपोलः ॥ ४९ ॥ परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयतस्तनोर्मध्यस्यान्तःपरिमिलनमप्राप्य हरितम् । इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः कृशाङ्ग्याः सन्तापं वदति बिसिनीपत्रशयनम् ॥ ५० ॥ पातयति हृदयदेशे प्रियजनगर्भे पुनः पुनर्मुग्धा । वर्णितमदनातङ्का बाष्पवतीं भावमन्थरां दृष्टिम् ॥ ५१ ॥ पीनोत्तुङ्गस्तनकलशयोस्तारहारं न धत्ते हस्तेनापि स्पृशति सहसा नैव कर्पूरवीटीम् । मञ्चं नापि श्रयति शयितुं हंसतूलास्तराढ्यं तादृक्तन्वी गुरुजनभयाद्गोप्तुकामा स्वतापम् ॥ ५२ ॥ प्रयातेऽस्तं भानौ श्रितशकुनिनीडेषु तरुषु स्फुरत्सन्ध्यारागे शशिनि शनकैरुल्लसति च । प्रियप्रत्याख्यानद्विगुणविरहोत्कण्ठितदृशा तदारब्धं तन्व्या मरणमपि यत्रोत्सवपदम् ॥ ५३ ॥

वियोगिनीकी यह दशा कर दी है कि केलेके खम्भेके भीतरके गुद्देकी भाँति यह कोमल तथा उजली हो गई है तथा अत्यन्त दुबली होकर एक कलामात्र बचे हुए चन्द्रमाके समान नेत्रोंको सुख पहुँचा रही है । इस प्रकार यह सुन्दरी मनको प्रसन्न भी कर रही है तथा कँपाए भी डाल रही है ॥ ४५ ॥ कोई विरहिणी विवश होकर अपनी देह बिछौनेपर डालकर पड़ रहती है, फिर शीघ्र ही प्रयत्न करके उठती है, छतपर जाती और वहाँ झरोखोंसे उस मार्गकी ओर देखती हुई मूर्च्छित हो जाती है जिससे उसका पति आनेवाला है ॥ ४६ ॥ धानकी बालका ठूँड़तक पैरमें गड़कर बड़ा कष्ट देता है ! फिर इस कोमलाङ्गीके हृदयमें तो बिछोहरूपी पहाड़ (राजा) घुसा पड़ा है ! तब इसे क्यों न असह्य पीड़ा हो ! ॥४७॥ उस विरहिणीकी धोतीकी गाँठ ढीली पड़ गई है, नीचेका ओठ फड़क रहा है, भुजाएँ शिथिल पड़ गई हैं, पसीना छूट रहा है, आँखें कोमल, मधुर, भावपूर्ण, चिकनी तथा भोली हो गई हैं, देह जकड़-सी गई है, उठे हुए स्तन फड़क रहे हैं, कपोल काँप रहे हैं, कभी वह मूर्च्छित हो जाती है और कभी चेतमें आ जाती है ॥ ४८ ॥ इस विरहिणीके अङ्ग मसले हुए मृणालकी भाँति मलिन हो गए हैं, सखियोंके विशेष आग्रह करनेपर वह किसी-किसी प्रकार काम-काजमें हाथ भी लगाती है, तो तत्काल काटे हुए हाथी-दाँतके टुकड़ेकी कान्तिके समान उसका गोरा-गोरा गाल बिना कलङ्कवाले चन्द्रमाकी-सी शोभा देने लगता है ॥४९॥ कमलके पत्तोंके बिछौनेका छोर तो वियोगिनीके मोटे-मोटे स्तन तथा नितम्बोंकी रगड़ खाकर कुम्हला गया है, पेटके दुबले होने और रगड़ न लगनेसे उसका बीचका भाग हरा-भरा है तथा शिथिल भुजाओंके इधर-उधर फेकनेसे कुछ भाग उलट-पलट गया है । इस प्रकार बिछौनेको देखकर ही जान पड़ता है कि उस दुबली-पतली विरहिणीको कितना अधिक कष्ट है ॥ ५० ॥ कामदेवने उस भोली-भाली सुन्दरीको जो कष्ट दिए हैं उनका वर्णन करती हुई वह अपने उस हृदयपर आँसू-भरी तथा भाव-भरी चितवन चला रही है जिसके भीतर प्रियतम विराजमान हैं ॥ ५१ ॥ वह दुबली-पतली सुन्दरी मोटे तथा ऊँचे घड़ोंके समान स्तनोंपर मोतियोंका उजला हार नहीं पहनती, कपूर डाले हुए पानके बीड़े हाथसे छूतीतक नहीं, हंसके समान उजली रुईके गद्दे-बिछे पलँगपर सोनेके लिये बैठती भी नहीं और ऐसी दशामें भी बड़ोंके डरसे अपने वियोगका कष्ट छिपाना चाहती है ॥५२॥ जब सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहे थे, पक्षियोंके घोंसलोंवाले वृक्षोंकी चोटियोंपर साँझकी ललाई छा रही थी, चन्द्रदेव धीरे-से निकले आ रहे थे, ऐसे समय प्रियतमको फटकार देनेसे दुगुनी बढ़ी हुई विरह, वेदनावाली-प्रियतमको देखनेके लिये लालायित दृष्टिवाली तथा दुबले अङ्गोंवाली सुन्दरीको उस समय प्राण देना भी सुखकर प्रतीत हुआ ॥ ५३ ॥ मतवाले कोकिलके गलेकी सुन्दर कूकसे जिन दिनों दिशाएँ भयङ्कर लग रही हैं तथा चमेलीका घना

मद-कल-कलकण्ठ-कण्ठनादव्यतिकरभैरवदिङ्मुखानि तन्वी। कथमिव गमयेद्विदग्धमल्लीपरिमलकञ्चुकितानि वासराणि ॥ ५४ ॥ मदनदहनशुष्यत्क्षान्तकान्ताकुचान्तर्घनमलयजपङ्के गाढबद्धाखिलाङ्घ्रिः। उपरि विततपक्षो लक्ष्यतेऽलिर्निमग्नः शर इव कुसुमेषोरेष पुङ्खावशेषः ॥ ५५ ॥ मरालश्रेणीभिर्नियतमुपनीतं सफलतां गतिस्पर्धावैरं मृदुकलरवैरम्बुजदृशः। यदेताञ्स्पृशवत्याः प्रियविरहवत्याः कृशतनोरगादस्याः स्तम्भादहह गतिसम्भावनमपि ॥ ५६ ॥ मुक्त्वानङ्गः कुसुमविशिखान्पञ्च कुण्ठीकृताग्रान्मन्ये मुग्धां प्रहरति हठात्पत्रिणा वारुणेन। वारां पूरः कथमपरथा स्फारनेत्रप्रणालीवक्त्रोद्भ्रान्तास्त्रिवलिविपिने सारणीसाम्यमेति ॥ ५७ ॥ मुग्धा स्वप्नसमागते प्रियतमे तत्पाणिसंस्पर्शनं रोमाञ्चाञ्चितया शरीरलतया सम्भाव्य कोपात्किल। मा वा वल्लभ संस्पृशेति सहसा शून्यं वदन्ती मुहुः सख्या नो हसिता सचिन्तमसकृत्संशोचिता प्रत्युत ॥ ५८ ॥ यावत्प्रियतमसङ्गः प्रमदा प्रमदा निरुच्यतां तावत्। असति पुनर्वत तस्मिन्नबला ह्यवलेति किञ्चित्रम् ॥ ५९ ॥ लतामूले लीनो हरिणपरिहीनो हिमकरः स्खलन्मुक्ताकारा गलति जलधारा कुवलयात्। धुनीते बन्धूकं तिलकुसुमजन्मा हि पवनो गृहद्वारे पुण्यं परिणमति कस्यापि कृतिनः ॥ ६० ॥ लिखति न गणयति रेखा निर्झरवाष्पाम्बुधौतगण्डतटा। अवधिदिवसावसानं मा भूदिति शङ्किता बाला ॥ ६१ ॥ लीनानसून्सरोरुहदृष्टेरन्वेष्टुमेष कुसुमेषुः। भ्रमति द्राग्वपुरन्तः सन्तापं दीपमादाय ॥ ६२ ॥ लीलावल्लीभवनकुहरे पत्ररन्ध्राच्चकोरीचञ्चुत्रस्तं शशिकरकणं वीक्ष्य मूर्च्छामुपैति। लीलारामातिपकमु-

पराग चारों ओर उन दिनोंके अङ्गोंमें चोलीकी भाँति कसा जा रहा है अर्थात् छाया हुआ है, ऐसे वियोगके दिन वह दुबली-पतली नायिका कैसे काट पावेगी ? ॥ ५४ ॥ दुबले अङ्गोंवाली वियोगिनी सुन्दरीके स्तनोंपर लगा हुआ जो चन्दनका गाढ़ा लेप तापके कारण सूखा जा रहा है उसकी सुगन्धसे खिंचकर उसपर बैठे जिस भौंरेके पैर उस गाढ़े लेपमें धँस गए हैं और जो उड़नेके लिये अपने पङ्ख ऊपरकी ओर फड़फड़ा रहा है वह ऐसा दिखाई पड़ रहा है मानो कामदेवका सारा बाण उस नवेलीके स्तनमें घुस गया हो और उस बाणकी पूँछभर बाहर निकली रह गई हो ॥ ५५ ॥ हंसोंकी पाँतें और कमलनयनी नवेलीकी मधुर ध्वनिवाली चालमें जब होड़ होने लगी तो हंसोंकी पाँतें जीत गईं क्योंकि उस प्रियतमके बिछोहमें दुबले अङ्गोंवाली नवेलीने जैसे ही हंसोंकी रुनझुन सुनी तो वह जकड़-सी गई अतः उससे सुन्दर चालकी आशा भी नहीं की जा सकी ॥ ५६ ॥ जान पड़ता है कामदेवके पाँच फूलोंके बाणोंकी धार ठूँठ हो गई है अतः वह उन्हें छोड़कर वारुण (जलमय) बाणसे उस भोली-भाली नवेलीको बेध रहा है, नहीं तो उसके फैले हुए नेत्ररूपी नालीसे निकलता हुआ जल पेटकी सिकुड़न-रूपी वनतक पहुँचकर नदीका रूप क्यों धारण कर लेता ॥ ५७ ॥ किसी भोली सुन्दरीने स्वप्नमें प्रियतमको अपनी देह छूते देखा तो उसकी सारी देह रोमांचित हो उठी और वह बार-बार बड़बड़ाने लगी कि 'प्रिय ! मुझे मत छूओ।' उसकी यह दशा देखकर उसकी सखी प्रसन्न नहीं हुई वरन् बार-बार चिन्तित होकर दुखी होने लगी (कि जागनेपर अपने प्रियसे स्वप्नमें मिलनेकी बातका स्मरण कर-करके न जाने इसकी क्या दशा हो जाय) ॥ ५८ ॥ जबतक सुन्दरी पतिके साथ रहती है तभीतक वह मतवाली रहती है, पतिका बिछोह हो जानेपर तो वह अबला (बिना बलवाली) हो जाती है, यह कैसी विचित्र माया है ॥ ५९ ॥ कोई सुन्दरी हथेलीपर गाल रक्खे आँखोंसे आँसू बहाती हुई देहलीपर बैठी है, उसके ओठ साँसके वेगसे हिल रहे हैं। ऐसी अवस्थाका वर्णन कवि करता है—लता (भुजा) की जड़ (हथेली) पर बिना हरिण (कलंक) का चन्द्रमा (मुख) विराजमान है, कमल (नेत्र) से झरते हुए मोतियोंके समान जलधारा (आँसूकी धार) बह रही है तथा तिल के फूल (नाक) का पवन जपाकुसुम (ओठ) को हिला रहा है। जान पड़ता है किसी पुण्यात्माके द्वारपर उसके पुण्यका फल प्रकट हो आया है ॥ ६० ॥ झरनेकी भाँति बहते हुए आँसुओंसे धुले हुए गालोंवाली कोई नवेली वियोगके दिनोंकी गिनती रखनेके लिये प्रतिदिन रेखाएँ तो बनाती चलती है किन्तु उन्हें इस शंकासे नहीं गिनती कि इन रेखाओंकी गिनती अवधिके दिनोंसे कहीं अधिक न हो गई हो ॥६१॥ कमलनयनी वियोगिनीकी देहमें छिपे हुए उसके प्राणोंको ढूँढ़नेके लिये कामदेव अब सन्ताप-रूपी दीपक लेकर उसकी देहके भीतर वेगसे चक्कर लगा रहा है ॥६२॥ खेलके लिये बने हुए लताभवनके भीतर चकोरीकी चोंचसे बची हुई और पत्तोंके बीचसे छनकर होकर आती हुई चन्द्रमाकी किरण देखकर जो चञ्चल

खरितात्का कथा सा विभेति स्वालापेभ्यश्चकितनयना यत्कुहूकोमलेभ्यः ॥ ६३ ॥ वक्त्रे यां मृगनाभिपङ्करचनां खिन्नेव धत्ते परं यस्यास्सान्द्रमुरःस्थले निपतितं भारायते चन्दनम्। अङ्गान्यप्यतिलालसा वहति या क्लेशेन तस्यामपि न्यस्तश्शोकभरोऽपरः कथमहो निस्त्रिंशता वेधसः ॥ ६४ ॥ वल्लभोत्सङ्गसङ्गेन विना हरिणचक्षुषः। राकाविभावरीजानिर्विषज्वालाकुलोऽभवत् ॥ ६५ ॥ विवृद्धतापोपशमार्थमङ्गे न्यस्तं यदिन्दीवरदाम तस्याः। मुक्तेपुणा पञ्चशरेण भाति व्यापारितं धौतमिवासिपत्रम् ॥६६॥ विश्रम्य विश्रम्य वनद्रुमाणां छायासु तन्वी विचचार काचित्। तनूत्तरीयेण करोद्धृतेन निवारयन्ती शशिनो मयूखान् ॥६७॥ विश्रान्तो दिवसः प्रपञ्चितरुतैर्वाचालितः कोकिलैः सख्यस्सम्प्रति निर्भयाऽस्मि जहत प्राणेषु मे संशयम्। इत्यन्ते दिवसस्य हन्त विगतत्रासामिवाभाषिणीं ज्योत्स्नाकैरवभैरवो नयति तां मोहं प्रदोषो हतः ॥६८॥ विषयविधुरा दृष्टिः श्वासानिला ग्लपिताधरास्तनुरपि भृशं म्लाना लूनेव पल्लवमञ्जरी। अपि च लवलीपाकोद्भेदाभिरामवदावदः स्फुरति कुचयोर्मूले गण्डे च कश्चन पाण्डिमा ॥ ६९ ॥ वीणामङ्के कथमपि सखीप्रार्थनाभिर्विधाय स्वैरं रत्यां सरसिजदृशा गातुमारब्धमेव। तन्त्रीबुद्ध्या किमपि विरहक्षीणदीनाङ्गवल्लीमेनामेव स्पृशति बहुशो मूर्च्छना चित्रमेतत् ॥ ७० ॥ व्यजनमरुतः श्वासश्रेणीमिमामुपचिन्वते मलयजरसो धारावाष्पं प्रपञ्चयितुं प्रभुः। कुसुमशयनं कामास्त्राणां करोति सहायतां द्विगुणगरिमा कामोन्मादः कथं नु विरंस्यति ॥ ७१ ॥ शय्या पुष्पमयी परागमयतामङ्गार्पणादश्नुते ताम्यन्त्यन्तिकतालवृन्तनलिनीपत्राणि दाहोष्मणा। न्यस्तञ्च स्तनमण्डले मलयजं शीर्णान्तरं दृश्यते काथादाशु भवन्ति फेनिलमुखा भूषामृणाला-

---

नेत्रोंवाली विरहिणी मूर्च्छित हो जाती है वह यदि कोयलकी कूकसे भरे खेलके उपवनको देखकर डरे तो ठीक ही है पर वह तो कोयलकी कूकके समान मनोहर अपनी बोलीतकसे डरी जा रही है ॥६३॥ जो वियोगिनी मुखपर कस्तूरीकी चित्रकारी धारण करनेतकमें थकी जा रही है, जिसकी छातीपर चंदनका लेप भी भारी जान पड़ता है और जो अपने आलस-भरे अङ्गोंको भी कष्टसे ढो रही है उसपर ब्रह्माने यह शोकका भार कहाँसे ला पटका है। जान पड़ता है ब्रह्मा इन विरहिणियोंको मारनेके लिये हाथमें नङ्गी तलवार लिए खड़ा है ॥ ६४ ॥ प्रियतमकी गोदसे बिछुड़ी हुई मृगनयनी नवेलियोंको पूर्णिमाका चन्द्रमा विषैली लपटोंसे घिरा-सा जान पड़ता है ॥ ६५ ॥ वियोगके कारण बढ़े हुए तापको दूर करनेके लिये उस विरहिणीको जो नीले कमलकी माला पहना दी गई है वह ऐसी दिखाई दे रही है मानो कामदेवने उसपर नङ्गी तलवार चला दी हो ॥६६॥ कोई दुबले अङ्गोंवाली विरहिणी वृक्षोंकी छायामें रुक रुककर चलती हुई वनमें घूम रही है और हाथसे आँचल उठा-उठाकर चन्द्रमाकी आती हुई किरणें बचा रही है ॥ ६७ ॥ 'हे सखियो ! जो दिन कोयलोंके स्वरोंमें बहुत बोल रहा था वह अब वीणाकी झङ्कारोंसे विश्राम कर रहा है। अतः अब मुझे कोई डर नहीं है, तुम मेरे मरनेकी शङ्का छोड़ दो'। दिन ढलते समय निडर होकर कोई विरहिणी ऐसा कह ही रही थी कि खिली हुई चाँदनी और कोईंवाला सायङ्काल उसे फिर मूर्च्छित करने लगा ॥ ६८ ॥ उस वियोगिनीकी आँखें सम्भोगके लिये तरस-सी रही हैं, साँसके पवनसे ओठ फीका पड़ रहा है, देह कटी हुई कोमल पत्तोंवाली फुनगीकी भाँति मुरझा रही है, लवली (हरफारेवड़ी) के पके और तोड़े हुए फलकी भाँति स्तनोंके नीचेका भाग और कपोल उजले रङ्गके हो रहे हैं ॥ ६९ ॥ सखियोंके प्रार्थना करनेपर किसी-किसी प्रकार उस विरहिणी कमलनयनीने वीणा गोदमें रक्खी और प्रेमपूर्वक गाना भी आरम्भ किया किन्तु अचरजकी बात तो यह है कि मूर्च्छना (स्वरों के उतार-चढ़ाव, मूर्च्छा) उस विरहिणीको ही दुबली-पतली होनेके कारण वीणा समझकर बार-बार छूने लगी (अर्थात् वह गाते-गाते बार-बार मूर्च्छित होने लगी है) ॥ ७० ॥ जब पङ्खेकी बयारसे भी इस विरहिणीकी साँस फूलने लगती है, चन्दनके रससे आँसू और अधिक बहने लगते हैं और बिछौनेमें बिछे फूल कामदेवके बाण जैसे चुभने लगते हैं तब इसका दुगुना बढ़ा हुआ कामका वेग कैसे शान्त हो सकता है ॥ ७१ ॥ इस विरहिणीकी देहसे छू जानेके कारण फूलोंका बिछौना (सूखकर) चूर-चूर हो गया, उसके तापसे पासमें डुलाया जाता हुआ कमलिनीके पत्तोंका पङ्खा मुरझा गया, स्तनोंपर लगाया हुआ चन्दनका लेप फटा जा रहा है और देहपर सजाए हुए कमलनालके गहने ऐसे उबले जा रहे हैं कि उनपर झाग छाने लग गई है ॥ ७२ ॥ इस विरहिणीकी देह-रूपी खिली हुई चम्पाकी चमकीली मालाके कोमल किसलय

ङ्कुराः ॥ ७२ ॥ शशभृन्नवपल्लवे शशाङ्के मकरन्दस्रुतिवारिणी सरोजे । अपि चास्य मरुद्गणान्प्रसूते तिलकुसुमं स्फुटचम्पकौघदाम्नि ॥ ७३ ॥ शीघ्रं भूमिगृहे गृहाण वसतिं प्राणैः किमु क्रीडसि प्राप्तां पश्यसि किं न देवहतिकां ज्योत्स्नां गवाक्षोदरे । इत्थं मन्मथतीव्रसञ्ज्वरजुषो गेहेषु वामभ्रुवामुद्गच्छन्ति कुरङ्गलाञ्छनभयाद्दीनाः सखीनां गिरः ॥ ७४ ॥ श्रुत्वा बहिः क्वचन कश्चन काऽपि शब्दं मत्वा निवर्तनमहो दयितस्य मुग्धा । तल्पादुदीय च नियम्य च पार्श्वशब्दान् धत्ते ततः श्रुतिमनल्पकुतूहलाक्षी ॥ ७५ ॥ श्लिष्यति पश्यति चुम्बति पुनः पुनः पुलकमुकुलितैरङ्गैः । प्रियसङ्गाय स्फुरितां वियोगिनी वामबाहुलताम् ॥ ७६ ॥ सन्ध्यां कोषं तत उपगतां हन्त रात्रिं कृपाणीं चन्द्रं चक्रं विरहविधुरा तारकापङ्क्तिमुग्राम् । तूणीरान्तर्गतशरततिं प्रज्वलत्पुङ्खभागां सन्नद्धास्त्रं कलयति पुनर्मन्मथं राक्षसेन्द्रम् ॥ ७७ ॥ सा तोरणान्तिकमुपेत्य दिशोऽवलोक्य निःश्वस्य दीर्घमुपधाय करं कपोले । मत्वा च तं पुरत एव ससम्भ्रमत्वाज्ज्ञात्वाऽऽस मोहलिखितेव न किं किमासीत् ॥ ७८ ॥ सोन्मेषो न सखीजनः परिजनः प्रागल्भ्यभूमिर्न वा वात्सल्यादविभावितस्फुटवयोऽवस्थाविशेषो गुरुः । आयाता नवमल्लिकापरिमलक्रूराः शरद्वासराः कस्याख्यातु नितम्बिनी पितृगृहावस्थानदुःस्थं जनुः ॥ ७९ ॥ स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं प्रियायाः साबाधं तदपि कमनीयं वपुरिदम् । समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयोर्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ॥ ८० ॥ स्थगयति नयनास्रं छद्मना धूमधूम्रं प्रथयति च नितान्तं कार्श्यमङ्गप्रकृत्या । अहह विरहबाधां छादयत्यम्बुजाक्षी तदपि वदति साक्षी पाण्डुरो गण्डदेशः ॥ ८१ ॥ स्थितमुरसि विशालं पद्मिनीपत्रमेतत्

(हथेली) में चन्द्रमा (मुँह) रक्खा हुआ है, उस चन्द्रमा (मुँह) में दो कमल (नेत्र) टँके हैं जिनमेंसे फूलका रसरूपी जल (आँसू) बह रहा है तथा तिलका फूल (नाक) मरुद्गणों (पवन, देवता) को जन्म दे रहा है ॥ ७३ ॥ घरके भीतर तिरछी चितवनवाली सखियाँ किसी विरहिणीको कामज्वरके वेगसे भरी हुई तथा चन्द्रमाके भयसे दीन बोलीमें कह रही हैं कि 'अरे, तुम शीघ्र ही धरती-खोह (तहखानेमें) में जाकर छिप रहो, प्राणोंसे क्यों खेल रही हो ? क्या झरोखेसे आती हुई इस अभागी चाँदनीको नहीं देख रही हो?' ॥७४॥ जैसे ही किसी विरहिणीको बाहर कहीं कोई आहट लगी तो उस भोलीने समझ लिया कि प्रियतम आ गए हैं। अतः, वह पलँगसे उठकर आसपासका कोलाहल शान्त करके कुतूहल-भरे नेत्रोंसे बाहर ही कान लगाए बैठी है ॥ ७५ ॥ कोई विरहिणी प्रियतमके समागमके लिये फड़कती हुई अपनी बाईं भुजाको गले लगाती है, उसे देखती है और गद्गद होकर पुलकित होती हुई बार-बार चूमती है ॥ ७६ ॥ किसी विरहिणीने कामदेवको ऐसे अस्त्र-शस्त्रोंसे सजे हुए राक्षसराजके रूपमें देखा जिसका सबसे पहले सन्ध्यारूपी कोश (म्यान) चमका, जिससे रात्रिरूपी तलवार निकल आई, जो चन्द्रमारूपी चक्र धारण किए हुए है तथा जिसके तूणीर (तरकस) में रक्खे बाणोंकी पूँछें ही तारोंके रूपमें चमक रही हैं ॥ ७७ ॥ वह विरहिणी प्रियसे मिलनेकी आशासे घरके द्वारतक गई, उसने वहाँ चारों ओर दृष्टि दौड़ाई और लम्बी साँस खींचकर माथेपर हाथ रख लिया । फिर घबराहटमें उसे लगा मानो प्रियतम सामने खड़े हों और फिर घबराहट दूर हुई तो (अपनी दशा देखकर) वह मोहके कारण ठक रह गई । इस प्रकार उसकी क्या-क्या दशा नहीं हुई ! ॥७८॥ पिताके घरमें पड़ी हुई वह भारी नितम्बोंवाली नवेली अपने दुःखका वर्णन किससे करे ? क्योंकि न तो वहाँ नयनोंका सङ्केत समझनेवाली सखियाँ ही हैं, न अत्यन्त ढीठ सेवक-सेविकाएँ ही हैं, और न बड़ोंको प्यारके कारण उसकी चढ़ती अवस्थाका ही बोध है तिसपर नई मल्लिकाके परागसे भरे हुए शरद् ऋतुके कठोर दिन भी सिरपर आ पहुँचे हैं ॥ ७९ ॥ उस विरहिणीके स्तनोंपर लगा हुआ उशीर (खस) का लेप सूख गया है और हाथपर पहनाया हुआ मृणालका कङ्कन ढीला पड़ गया है किन्तु इस प्रकार कष्टमें पड़ी होनेपर भी उसकी देह सुन्दर दिखाई पड़ रही है । यद्यपि गर्मीकी ऋतु और कामदेवका ताप दोनों बराबर ही होते हैं फिर भी गर्मीकी ऋतु नवेलियोंपर ऐसी चोट नहीं करती जैसी कामदेवका ताप करता है ॥८०॥ यद्यपि वह कमलनयनी विरहिणी बिछोहके कष्टसे निकलते हुए आँसुओंको छिपानेके लिये धुआँ लगनेका बहाना करती है तथा दुबले होते हुए अङ्गोंके लिये अपने शरीरकी प्रकृतिको दोष देती है, फिर भी उसके उजले-उजले गाल साक्षीके समान विरहके सन्तापका ज्ञान करा ही देते हैं ॥८१॥ उस विरहिणीके हृदयमें

कथयति न तथान्तर्मन्मथोत्थामवस्थाम्। अतिशयपरितापम्लापिताभ्यां यथाऽस्याः स्तनयुगपरिणाहं मण्डलाभ्यां ब्रवीति ॥ ८२ ॥ स्विन्नौ गण्डौ स्फुरितमधरं स्पन्दितं चूचुकाग्रं स्रस्तौ बाहू मसृणमुकुले लोचने भ्रूश्चलैव। अङ्गादङ्गादजनि पुलकश्रेणिरूरू सकम्पौ किं च श्वासास्तरलितदुकूलाञ्चलाश्चञ्चलाक्ष्याः ॥ ८३ ॥

वियोगिनीविप्रलापाः—अजनि प्रतिदिनमेषा कर्दमशेषा मदङ्गसङ्गेन। प्रतिनिशमपूरि पम्पा दक्षिणसम्पातिभिः सलिलैः ॥ १ ॥ अनलस्तम्भनविद्यां सुभग भवान्नियतमेव जानाति। मन्मथशराग्नितप्ते हृदि मे कथमन्यथा वससि ॥ २ ॥ अन्तर्गता मदनवह्निशिखावली या सा बाधते किमिह चन्दनचर्चितेन। यः कुम्भकारभवनोपरि पङ्कलेपस्तापाय केवलमसौ न च तापशान्त्यै ॥ ३ ॥ अबलावनपर एको भुवनत्रितयेऽपि चेत्तदा भर्त्ता। कथमन्यथा सुधाकरचन्दनमुख्याप्रियत्वं स्यात् ॥ ४ ॥ अरतिरियमुपैति नापि निद्रा गणयति तस्य गुणान्मनो न दोषान्। विगलति रजनी न सङ्गमाशा व्रजति तनुस्तनुतां न चानुरागः ॥ ५ ॥ अवधिदिवसः प्राप्तश्चायं तनोर्विरहस्य वा रविरयमुपैत्यस्तं सख्यो ममापि च जीवितम्। तदलमफलैराशाबन्धैः प्रसीद नमोऽस्तु ते हृदय सहसा पाकोत्पीडं विडम्बय दाडिमम् ॥ ६ ॥ अहमिह स्थितवत्यपि तावकी त्वमपि तत्र वसन्नपि मामकः। न तनुसङ्गम एव सुसङ्गमो हृदयसङ्गम एव सुसङ्गमः ॥ ७ ॥ आदौ हालाहलहुतभुजा दत्तहस्तावलम्बो बाल्ये शम्भोर्निटिलमहसा बद्धमैत्रीनिरूढः। प्रौढो राहोरपि मुखविषेणान्तरङ्गीकृतो यः सोऽयं चन्द्रस्तपति किरणैर्मामिति प्राप्तमेतत् ॥ ८ ॥ आयाता मधुयामिनी यदि पुनर्नायात एव प्रभुः प्राणा यान्तु विभावसौ यदि पुनर्जन्म-

---

रक्खे कमलिनीके बड़े-बड़े पत्ते उसके हृदयकी कामपीड़ाको उतना नहीं बता रहे हैं जितना कि अत्यधिक तापसे मुरझाए हुए इसके दोनों स्तनोंका घेरा बता रहा है ॥ ८२ ॥ उस चञ्चल नयनवाली वियोगिनीके गाल पसीनेसे भीगे हैं, ओठ काँप रहे हैं, स्तनकी घुण्डियाँ फड़क रही हैं, भुजाएँ ढीली-ढीली हैं, आँखें चिकनी तथा सिकुड़ी-सी हैं, भौंहें चञ्चल हैं प्रत्येक अङ्गमें रोमाञ्च हो रहा है, जाँघें काँप रही हैं तथा उसकी साँस आँचलको हिला रही है ॥ ८३ ॥

विरहिणियोंका विलाप : यह पम्पा-सरोवर दिनके समय मेरे अङ्गोंसे छूते ही इतना सूख जाता है कि उसमें कीचड़ भर बच रहता है और रातके समय नेत्रोंसे गिरे आँसुओंसे प्रति दिन प्रातःकालतक भर जाता है ॥ १ ॥ हे सुन्दर प्रियतम ! तुम निश्चय ही कोई आग बाँधनेकी विद्या जानते हो, नहीं तो कामदेवके बाणोंकी आगसे तपे हुए मेरे हृदयमें आकर तुम कैसे निवास करते ॥ २ ॥ हृदयमें जो कामाग्निकी लपटें उठ रही हैं वे क्या स्तनोंपर चन्दन लगानेसे शान्त हो सकती हैं ? कुम्हारके आँवेपर जो मिट्टी लीपी जाती है उससे उसके भीतरका ताप बढ़ता ही है, घटता नहीं ॥ ३ ॥ हम अबलाओंकी रक्षा करनेवाला कोई एक भी स्वामी यदि तीनों लोकोंमें होता तो अमृतके भण्डार बने हुए चन्द्रमा-जैसी श्रेष्ठ वस्तु भी हमें क्यों अप्रिय लगती ! ॥ ४ ॥ जी तो घबरा रहा है, नींद आ नहीं रही है, मन प्रियतमके गुणोंको ही सोचता रहता है, दुर्गुणोंको नहीं, रात बीती जा रही है, मिलनेकी कोई आशा नहीं दिखाई देती तथा शरीर भी दुबला हुआ जा रहा है किन्तु इस बिछोहसे प्रेममें तनिक भी कमी नहीं आ रही है ॥ ५ ॥ हे सखियो ! प्रियतमके विरहका तथा मेरे शरीरका अन्त आ गया है। यह सूर्य तथा मेरा जीवन दोनों अब अस्त होना चाहते हैं। अतः, हे हृदय ! व्यर्थकी निष्फल आशाएँ करनेसे क्या लाभ है ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ, प्रसन्न हो जाओ और अब सहसा पककर फटे हुए अनारकी बराबरी कर लो अर्थात् फट जाओ ॥ ६ ॥ हे प्रियतम ! यहाँ रहती हुई भी मैं आपकी हूँ और मुझसे दूर रहते हुए भी आप मेरे हैं। हम दोनोंके शरीरका समागम होना समागम नहीं है, यथार्थमें हृदयका समागम ही समागम है ॥ ७ ॥ जो चन्द्रमा जन्मके समय विषके मेल-जोलमें था, फिर जिससे बचपनमें शङ्करके माथेकी आगसे मित्रता हो गई और युवावस्थामें जिसका राहुके मुँहके विषसे संयोग हो गया वह यदि अपनी किरणोंसे मुझे सन्तप्त करता हो तो ठीक ही है ॥ ८ ॥ वसन्त ऋतुकी रात्रि तो आ गई पर प्राणनाथ नहीं आए, ऐसी स्थितिमें यदि मेरे प्राण अग्निमें जलने लगें तो मैं अगले जन्मके लिये यह प्रार्थना करती हूँ कि बैरिन कोयलको फँसानेके लिये मुझे बहेलिएका जन्म मिले, चन्द्रमाको ग्रसनेके लिये मैं राहु बनूँ, कामदेवका नाश करनेके

अहं प्रार्थये। व्याधः कोकिलबन्धने हिमकरध्वंसे च राहुग्रहः कन्दर्पे हरनेत्रदीधितिरहं प्राणेश्वरे मन्मथः ॥ ९ ॥ आलि वालिशतया बलिरस्मै दीयतां बलिभुजे न कदापि। केवलं हि कलकण्ठशिशूनामेष एव कुशलेषु निदानम् ॥१०॥ इदानीं तीव्राभिर्दहन इव भाभिः परिवृतो ममाश्चर्यं सूर्यः किमु सखि रजन्यामुदयति। अयं मुग्धे चन्द्रः किमिति मयि तापं प्रकटयत्यनाथानां बाले किमिव विपरीतं न भवति ॥ ११ ॥ एतानि निःसहतनोरसमञ्जसानि शून्यं मनः पिशुनयन्ति गतागतानि। एते च तीरतरवः प्रथयन्ति तापमालम्बितोज्झिततरुग्लपितैः प्रवालैः ॥ १२ ॥ कति न सन्ति जना जगतीतले तदपि तद्विरहाकुलितं मनः। कति न सन्ति निशाकरतारकाः कमलिनी मलिनी रविणा विना ॥ १३ ॥ कलयति मम चेतस्तल्पमङ्गारकल्पं ज्वलयति मम गात्रं चन्दनं चन्द्रकश्च। तिरयति मम नेत्रे मोहजन्मान्धकारो विकृतबहुविकारं मन्मथो मां दुनोति ॥ १४ ॥ कालं पुरा गरलमम्बुनिधेरुदस्थादद्येन्दुनाम धवलं विषमभ्युदेति। अद्यादिदं स गिरिशो यदि हन्त हन्यात्कार्ष्ण्यं स्वकण्ठनिहितं सखि मद्भयश्च ॥१५॥ किं ते न सन्ति गिरयश्शिखरेषु येषामुत्सङ्गलोलतडितो विहरन्ति मेघाः। किं तस्य वर्त्मनि न सन्ति वनानि तानि प्रस्थानसाहसरसैकपरायणस्य ॥ १६ ॥ क्षोणीभृत्कटकप्रयाणसमये प्रेमाकुला प्रेयसी हस्तन्यस्तविशुद्धतण्डुलकणान् दातुं शिरस्यागता। संस्वेदाद्विरहानलात्करयुगे जातं च पक्वोदनं तं दृष्ट्वा गुरुसन्निधौ कृतवती नीराजनं लज्जया ॥ १७ ॥ गतोऽस्तं घर्मांशुर्व्रज सहचरीनीडमधुना सुखं सुप्या भ्रातः स्वजनचरितं वायस कृतम्। मयि स्नेहाद्बाष्पस्थगितनयनायां गतघृणो रुदन्त्यां यो यातस्त्वयि स विलपत्येष्यति कथम् ॥ १८ ॥

लिये शङ्करजीके तीसरे नेत्रकी आग बनूँ तथा प्राणनाथको भी वियोगके तापका अनुभव करानेके लिये कामदेव बनूँ ॥ ९ ॥ हे सखी! इस कौएको बलि (भोजन) देनेकी मूर्खता कभी न कर बैठना क्योंकि कूक-कूककर सतानेवाली कोयलके बच्चोंको यही पाल-पोसकर बड़ा करता है ॥ १० ॥ किसी वियोगिनी और उसकी सखीमें बातें हो रही हैं। विरहिणी : हे सखी! मुझे यह अचरज हो रहा है कि इस समय रातमें आगकी बड़ी-बड़ी लपटें लेकर यह सूर्य क्यों निकला आ रहा है? सखी : अरी पगली! यह तो चन्द्रमा है। विरहिणी: तो यह मुझे तपा क्यों रहा है? सखी : अरी भोली! अनाथों (विरहिणियों, असहायों) के लिये सभी वस्तुएँ उलटा काम करती हैं ॥ ११ ॥ मेरी देह मेरे लिये बोझ बन रही है, व्यर्थ इधर-उधर घूमने-घामनेसे लोग मेरे मनको बिना लक्ष्यका (उड़ा हुआ) समझते हैं तथा ये तीरके लटके हुए वृक्ष अपने नये-नये किसलय गिरा-गिराकर मेरे मनका सन्ताप और अधिक बढ़ा रहे हैं ॥ १२ ॥ यद्यपि संसारमें बहुतसे मनुष्य हैं फिर भी उस एक ही प्रियतमके वियोगमें मेरा मन दुखी हो रहा है क्योंकि यद्यपि आकाशमें अनेक चन्द्रमा तथा तारे हैं फिर भी कमलिनी तो बिना सूर्यके ही दुखी रहती है ॥ १३ ॥ बिछौना मुझे अङ्गारोंके समान लग रहा है, चन्दन तथा चन्द्रमा मेरा हृदय जलाए डाल रहे हैं और मनमें छाया हुआ अँधेरा आँखोंमें समाया जा रहा है। इस प्रकार अनेक प्रकारके उपद्रव करके कामदेव मुझे सन्तप्त कर रहा है ॥ १४ ॥ हे सखी! बहुत समय पहले जो विष समुद्रमें फेंक दिया गया था वही विष आज उजले-उजले चन्द्रमाके रूपमें समुद्रसे निकल रहा है। हाय! यदि शिवजी इस चन्द्रमारूपी विषको खा डालते तो उनके गलेका साँवलापन और मेरा भय दोनों दूर हो जाते ॥ १५ ॥ अत्यन्त साहसपूर्वक परदेसके लिये प्रस्थान करनेवाले मेरे प्रियतमके मार्गमें क्या ऐसे पर्वत या वन नहीं हैं जिनकी चोटियोंपर लपलपाती हुई बिजलीसे भरे बादल उमड़ रहे हों ॥ १६ ॥ महाराज जब सेना-सहित प्रस्थान करने लगे तो उनकी प्रियतमा प्रेमसे व्याकुल होकर हाथमें शुद्ध चावल (अक्षत) लेकर उनके मस्तकपर तिलक करनेके लिये आई। किन्तु विरहरूपी अग्निके ताप और हाथोंमें निकले पसीनेसे उन चावलके दानोंको पककर भात बने देखकर बड़ोंके सामने लाजके कारण उसने केवल आरती भर कर दी ॥ १७ ॥ हे भाई कौए! तुमने आत्मीय होनेके नाते मेरा बड़ा साथ दिया (भली-भाँति अपनापन निभाया) किन्तु अब सूर्य अस्त हो गए हैं अतः अपनी जीवन-सङ्गिनीके घोंसलेमें जाकर सुखसे सोओ, क्योंकि जब प्रेमके मारे मेरे नेत्र आँसुओंसे डबडबा रहे थे और मैं रो रही थी उस समय भी जो (प्रियतम) निठुर होकर चले गए, वे तुम्हारे बिलख-बिलखकर रोने-चिल्लानेसे कैसे लौट आवेंगे! ॥ १८ ॥ विषके वृक्षकी जड़के समान चन्द्रमा चमकने लगा

गरलद्रुमकन्दमिन्दुबिम्बं करुणावारिजवारणो वसन्तः। रजनी स्मरभूपतेः कृपाणी करणीयं किमतः परं विधातः ॥ १९ ॥ गुञ्जन्ति प्रतिगुञ्जमम्बुजदलद्रोणीषु भृङ्गाङ्गनाः फुल्लत्पुष्परसालवीथिशिखरे कूजन्ति माद्यत्पिकाः। कामः काममयं करोति विशिखैर्हन्तुं मुहुर्दुर्दिनं का सा तन्मलयानिलस्य सखि मे भीतिस्त्वयोद्भाव्यते ॥ २० ॥ ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावखण्डकलः शशी दहतु मदनः किं वा मृत्योः परेण विधास्यति। मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया कुलममलिनं न त्वेवायं जनो न च जीवितम् ॥ २१ ॥ ज्योत्स्नां पिबेयुः कियतीं चकोराः किं नात्र धात्रा करिणो नियुक्ताः। शीघ्रं यदेषां करपूरणेन जायेत चन्द्रः प्रभया विहीनः ॥ २२ ॥ तरुणीनां कृते प्रेयान् यदि स्याद्भुवनत्रये। तदा प्रेयः परिष्वङ्गः केवलः सखि नेतरः ॥ २३ ॥ दहनजा न पृथुर्दवथुर्व्यथा विरहजैव यथा यदि नेदृशम्। दहनमाशु विशन्ति कथं स्त्रियः प्रियमपासुमुपासितुमुद्धुराः ॥ २४ ॥ दाक्षिण्यं मलयानिलस्य विदितं शैत्यं सुधादीधितेर्वाचामेव न गोचरे मलयजस्यापि स्फुटं सौष्ठवम्। विश्लेषे तव के न मे परिचिताः प्राणेश तत्तत्कथाविष्कारे पुनरप्रमाणयति मामव्याहतेयं तनुः ॥ २५ ॥ दुर्वाराः स्मरमार्गणाः प्रियतमो दूरे मनोऽत्युत्सुकं गाढं प्रेम नवं वयोऽतिकठिनाः प्राणाः कुलं निर्मलम्। स्त्रीत्वं धैर्यविरोधि मन्मथसुहृत्कालः कृतान्तोऽक्षमी नो सख्यश्चतुराः कथं नु विरहः सोढव्य इत्थं मया ॥२६॥ निश्वासैस्सह साम्प्रतं सखिगता वृद्धिं ध्रुवं रात्रयस्सार्धं लोचनवारिणा विगलितं तत्प्राक्तनं मे सुखम्। प्राणाशा तनुतामुपैति च मुहुर्नूनं तनुस्पर्द्धया कन्दर्पः परमेक एव विजयी यातेऽत्र कान्ते स्थितः ॥ २७ ॥ पञ्चत्वं तनुरेति भूतनिवहाः स्वांशैर्मिलन्तु ध्रुवं धातार

है, करुणारूपी कमलको नष्ट करनेके लिये हाथीके समान वसन्त आ पहुँचा है तथा महाराज कामदेवकी कटारके समान यह रात भी आ पहुँची है! हे ब्रह्मा! अब और तुझे क्या करना है?॥१९॥ प्रत्येक कुञ्जमें कमलकी पंखुड़ियोंपर भौंरियाँ गुञ्जार कर रही हैं, खिले हुए आमके बौरोंपर मतवाला कोकिल कूक रहा है और कामदेव भी बड़े वेगसे बार-बार मुझे मारनेके लिये अपने बाण बरसा रहा है। हे सखी! इतना सब दुःख जब मैं भोग चुकी हूँ तब तुम मलयाचलके पवनका मुझे क्या डर दिखा रही हो॥२०॥ आकाशमें प्रत्येक रात्रिको भले ही यह पूर्ण चन्द्रमा जला करे तथा कामदेव भी भले ही मुझे जलाता रहे। यह मुझे मार डालनेके सिवा और कर ही क्या सकता है! मेरे प्राणनाथ बड़ाई करने योग्य हैं, पिताजी भी प्रशंसाके योग्य हैं, निर्मल वंशमें उत्पन्न हुई माता भी प्रशंसाके योग्य हैं और मेरा वंश भी निर्मल तथा प्रशंसाके योग्य है, एक मैं और मेरा जीवन ही प्रशंसाके योग्य नहीं है, अतः इनका नष्ट हो जाना ही अच्छा है ॥ २१ ॥ ये चकोर भला कितनी चाँदनी पियेंगे! ब्रह्माने चाँदनी पीनेके लिये हाथियोंको क्यों नहीं भिड़ा दिया जिससे उनके सूँड़में भर-भरकर पीनेसे शीघ्र ही चन्द्रमाकी सारी चाँदनी सूख जाती ॥२२॥ हे सखी! नवेलियोंका प्रियतम तीनों लोकोंमें कहीं भी हो पर वे केवल उसीका आलिङ्गन करना चाहेंगी, दूसरेका नहीं ॥ २३ ॥ अग्निसे जलनेमें उतनी पीड़ा नहीं होती जितनी विरहके तापमें जलनेसे होती है। यदि ऐसा न होता तो विरहके तापको असह्य जानकर पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पतियोंके मर जानेपर उनसे मिलनेके लिये सुखपूर्वक आगमें क्यों कूद पड़तीं! ॥ २४ ॥ मलयाचलसे बहे हुए पवनकी चतुराई प्रसिद्ध है, चन्द्रमाकी ठण्ढक भी प्रसिद्ध है तथा चन्दनकी सुन्दरताका भी वर्णन नहीं किया जा सकता। इनमेंसे मैं किसे नहीं जानती! किन्तु हे प्राणनाथ! आपके विरहमें जब इनकी बात चलती है तो मेरी देह मेरे इस अनुभवको नहीं मानती अर्थात् इन सभी वस्तुओंका मुझपर विपरीत प्रभाव पड़ने लगता है ॥ २५ ॥ कामके बाणोंको कोई रोक नहीं सकता, प्राणनाथ दूर हैं, मन अत्यन्त उत्सुक है, प्रेम बढ़ रहा है, अवस्था नई है, प्राण बड़े कठोर हैं, वंशमें कोई कलङ्क नहीं है, स्त्रियोंमें धीरज होता ही नहीं, वसन्तका समय कामदेवको बढ़ानेवाला है, यमराज कभी क्षमा नहीं कर सकते तथा चतुर सखियाँ भी पास नहीं हैं। अब ऐसी दशामें मैं यह विरह सहूँ भी तो कैसे सहूँ ॥ २६ ॥ हे सखी! मेरे प्रियतमके चले जानेपर इस समय मेरी लम्बी साँसोंके साथ रातें भी लम्बी हो चली हैं, आँसुओंके साथ मेरा पहलेका सारा सुख भी बह गया और जीवनकी आशा भी क्षीण हो गई। इस प्रकार सब तो चले गए किन्तु मेरी देहके साथ होड़ करके यह एक कामदेव ही सबको जीतकर यहाँ डटा खड़ा है ॥ २७ ॥ अब मेरे शरीरका अन्त होनेवाला है। मेरे शरीरमें रहनेवाले पृथ्वी,

प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम्। तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयाङ्गनव्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेऽनिलः ॥ २८ ॥ पिकाली वाचालीभवति बहुधाऽलीकवचने मृणाली व्यालीव व्यथयतितरामङ्गमनिशम्। विषज्वालाजालं सखि किरति पीयूषकिरणो जगत्प्राणः प्राणानपहरति केयं परिणतिः ॥ २९ ॥ प्रसर शिशिरामोदं मन्दं समीर समीरय प्रकटय शशिन्नाशाः कामं मनोभव जृम्भताम्। अवधिदिवसः पूर्णस्सख्यो विमुञ्चत तत्कथां हृदयमधुना किञ्चित्कर्तुं ममान्यदिहेच्छति ॥ ३० ॥ प्रियसखि न तथा पटीरपङ्को न च नलिनीदलमारुतोऽपि शीतः। शमयति मम देहदाहमन्तः सपदि कथा हि यथा नरेन्द्रसूनोः ॥ ३१ ॥ प्रियाश्लेषं विना हन्त भारायन्तेऽसवोऽपि यत्। तत्कथं विरहे तस्य विन्देयं स्वस्थतां सखि ॥ ३२ ॥ बकुलमालिकयापि मया न सा तनुरभूषि तदन्तरभीरुणा। तदधुना विधिना कृतमावयोर्गिरिदरीनगरीशतमन्तरम् ॥ ३३ ॥ बत सखि कियदेतत्पश्य वैरं स्मरस्य प्रियविरहकृशेऽस्मिन्रागिलोके तथा हि। उपवनसहकारोद्भासिभृङ्गच्छलेन प्रतिविशिखमनेनोट्टङ्कितं कालकूटम् ॥ ३४ ॥ बिभेमि सखि संवोद्य भ्रमरीभूतकीटकम्। यद्ध्यानादागते पुंस्त्वे तेन सार्धं रतिः कथम् ॥ ३५ ॥ भस्मीभूतः कुसुमविशिखः शम्भुनेत्राग्निनाभूज्ज्वालादायी तदनु मनसि प्राप्तजन्मा बभूव। भूयस्तस्मिन्विरहदहनैर्दाहितोऽसौ मयैवं कुत्रोत्पन्नो व्यथयति पुनर्मामहो तन्न वेद्मि ॥ ३६ ॥ मदकलकृतान्तकासरखुरपुटनिर्धूतधूलिसङ्काशम्। केतकरजो निवार्य सखि यदि कार्यं मम प्राणैः ॥ ३७ ॥ मनोरागस्तीव्रं विषमिव विसर्पत्यविरतं प्रमाथी निर्धूमं ज्वलति विधुतः पावक इव। हिनस्ति प्रत्यङ्गं ज्वर इव गरीयानति

जल, अग्नि, वायु तथा आकाश अपने-अपने भागोंमें मिल जायँ इसकी मुझे चिन्ता नहीं है किन्तु मैं ईश्वरको मस्तक नवाकर प्रणाम करके यही वरदान माँगती हूँ कि मेरे शरीरके जलका भाग प्रियतमकी बावड़ीमें, अग्निका भाग प्रियतमके दर्पणमें, आकाशका भाग प्रियतमके आँगनके खुले स्थानमें, पृथ्वीका भाग प्रियतमके मार्गमें तथा वायुका भाग प्रियतमके पङ्खेमें जा मिले ॥२८॥ अरी झूठ बोलनेवाली! यह कोयल बहुत बड़-बड़ा रही है, यह कमलनाल नागिनके समान निरन्तर शरीरको कष्ट दे रही है, हे सखी! चन्द्रमा भी अपनी लपटें बिखेरे डाल रहा है तथा सारे संसारका प्राण (पवन) भी मेरे प्राण हर रहा है। यह सब क्या हो रहा है? ॥२९॥ हे शीतल और सुगन्धित पवन! तुम धीरे-धीरे बहो। हे चन्द्रमा! तुम दिशाओंको चमकाओ तथा हे कामदेव! तुम भी जी खोलकर ऐंठो क्योंकि प्रियतमके आनेका दिन भी बीत गया। सखियो! अब तुम भी उसकी बात न छेड़ो, मेरा मन तो अब कुछ और ही करनेको उतारू हो चला है ॥३०॥ हे प्यारी सखी! घिसे हुए चन्दन तथा कमलके पत्तोंके ठण्ढे-ठण्ढे पवनसे मेरे हृदयके भीतरका सन्ताप उतना शान्त नहीं होता जितना उस राजपुत्रकी चर्चासे शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ हाय सखी! जिस प्रियतमके गले लगे—बिना प्राण भी भारी हो रहे हैं उसके बिछोहमें मैं कैसे स्वस्थ रह सकती हूँ ॥ ३२ ॥ पतिसे सम्भोग करते समय बीचमें बाधा पड़नेके डरसे मैंने अपने शरीरको मौलसिरीकी मालासे भी नहीं सजाया किन्तु आज दुर्भाग्यने हम दोनोंके बीचमें पर्वत, गुफाओं तथा सैकड़ों नगरोंका अन्तर डाल दिया ॥ ३३ ॥ हे सखी! देखो तो, प्रियतमके बिछोहमें दुबले हुए प्रेमियोंके साथ कामदेव कैसी शत्रुता करता है कि अमराईमें आमकी बौरोंपर मँडराते हुए भौंरोंके रूपमें उसने प्रत्येक बाणमें कालकूट विष लगा रक्खा है ॥३४॥ भृङ्गी कीड़ा गुनगुनाकर दूसरे कीड़ोंको भी भृङ्गी बना लेते हैं। उनकी यह क्रिया देखकर कोई विरहिणी कह रही है—'हे सखी! कीड़ेको भी भृङ्गी बनते देखकर मुझे यह डर लग रहा है कि सदा प्रियतमका ध्यान करते-करते यदि मैं भी पुरुष बन गई तो उनके साथ मेरी कामक्रीड़ा कैसे होगी!' ॥ ३५ ॥ सबको जलानेवाले कामदेवको पहले तो शङ्करजीके तीसरे नेत्रकी अग्निने भस्म कर डाला। इसके पश्चात् उसने मनमें जन्म लिया किन्तु उस मनमें भी मैंने विरहकी आग जलाकर उसे जला डाला। अब फिर वह कहाँसे उत्पन्न होकर मुझे जलाए डाल रहा है, यह मेरी समझमें नहीं आ रहा है ॥ ३६ ॥ हे सखी! यदि तुम्हें मेरे प्राण बचाने हों तो यमराजके मतवाले भैंसेके खुरसे उड़ी हुई धूलके समान इस केवड़ेके फूलका पराग झटपट यहाँसे दूर हटाओ ॥ ३७ ॥ मनका प्रेम भयंकर विषके समान सारे शरीरमें फैला जा रहा है तथा शरीरको मथ देनेवाला वही प्रेम बिना धुएँकी आगके समान भीतर ही भीतर सुलग रहा है और

इतो न मां त्रातुं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती ॥ ३८ ॥ यदीयबलमालोक्य गतः प्रेयान्वियुज्यते। आलोकये कथं सख्यस्तस्य चन्द्रमसो मुखम् ॥ ३९ ॥ याः पश्यन्ति प्रियं स्वप्ने धन्यास्ताः सखि योषितः। अस्माकं तु गते कान्ते गता निद्रापि वैरिणी ॥ ४० ॥ यात्रामङ्गलसंविधानरचनाव्यग्रे सखीनां जने वाष्पाम्भःपिहितेक्षणे गुरुजने तद्वत्सुहृन्मण्डले। प्राणेशस्य महीक्षणार्पितदृशः कृच्छ्रादपि क्रामतः किं व्रीडाहतया मया भुजलतापाशो न कण्ठेऽर्पितः ॥ ४१ ॥ यास्यामीति समुद्यतस्य गदितं विश्रब्धमाकर्णितं गच्छन्दूरमुपेक्षितो मुहुरसौ व्यावृत्य तिष्ठन्नपि। तच्छून्ये पुनरागतास्मि भवने प्राणास्त एते दृढाः सख्यस्तिष्ठत जीवितव्यसनिनी दम्भादहं रोदिमि ॥ ४२ ॥ रात्रिर्मे दिवसायते हिमरुचिश्चण्डांशुलक्षायते तारापङ्क्तिरपि प्रदीप्तवडवावह्निस्फुलिङ्गायते। धीरो दक्षिणमारुतोऽपि दहनज्वालावलीढायते हा हा चन्दनविन्दुरद्य जलवत्तप्ताङ्गारिरङ्गायते ॥ ४३ ॥ रिपुरिव सखीसंवासोऽयं शिखीव हिमानिलो विषमिव सुधारश्मिर्यस्मिन्दुनोति मनोगते। हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात्कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरङ्कुशः ॥ ४४ ॥ रोलम्बाः परिपूरयन्तु हरितो झङ्कारकोलाहलैर्मन्दं मन्दमुपैतु चन्दनवनीजातो नभस्वानपि। माद्यन्तः कलयन्तु चूतशिखरे केलीपिकाः पञ्चमं प्राणाः सत्वरमश्मसारकठिना गच्छन्तु गच्छन्त्वमी ॥ ४५ ॥ रोलम्बो मधुपः पिकस्तु परभृद्रन्ध्रानुसारी मरुद्धंसाः केवलपक्षपातनिरताश्चन्द्रोऽपि दोषाकरः। चेतो नैति शुकस्त्विहैकपठिताख्यायी पयोदो जडः कं वाहं प्रहिणोमि हन्त कठिनस्वान्ताय कान्ताय मे ॥ ४६ ॥ वरमसौ दिवसो न पुनर्निशा ननु निशैव वरं न पुनर्दिनम्। उभयमेतदुपैत्वथवा क्षयं

भयंकर ज्वरके समान प्रत्येक अङ्गको मरोड़े डाल रहा है। ऐसी स्थितिमें न तो पिता मेरी रक्षा कर सकते, न मेरी माता और न आप (सखी) ही ॥ ३८ ॥ यात्रामें चन्द्रमाका बल देखा जाता है। इसीपर कोई विरहिणी कह रही है कि 'हे सखियो! जिस चन्द्रमाका बल देखकर मेरे प्रियतम मुझसे दूर हो गए, उस चन्द्रमाका मुँह मैं कैसे देखूँ!' ॥३९॥ हे सखी! वे स्त्रियाँ धन्य हैं जो स्वप्नमें ही अपने प्रियतमका दर्शन पा लेती हैं पर प्रियतमके चले जानेपर तो मेरी वैरिन नींद भी जाती रही ॥ ४० ॥ कोई विरहिणी इस प्रकार चिन्ता करती हुई पछता रही है कि 'प्रियतमकी यात्राके समय जब सखियाँ मङ्गलाचार करनेमें लगी थीं, घरके बड़े-बूढ़ों तथा मित्रोंकी आँखें आँसुओंसे डबडबा रही थीं और प्राणनाथ जब नीचे आँखें किए हुए बड़े कष्टसे निकले जा रहे थे उस समय मुझे लज्जा क्यों लगी, मैंने उनकी भुजाएँ लेकर अपने गलेमें क्यों नहीं डाल लीं!' ॥ ४१ ॥ हे सखियो! जब प्रियतमने कहा कि 'मैं जाऊँगा' तो उनकी इस बातको मैंने सावधान होकर सुन लिया। जब वे दूर चले गए और बार-बार घूम-घूमकर खड़े होने लगे तब भी मैंने कोई ध्यान नहीं दिया और प्रियतमसे रहित सूने घरमें मैं फिर आ गई और मेरे प्राण वैसे ही कठोर बने हुए हैं। इससे जान पड़ता है कि मैं जीना चाहती ही हूँ और यह मेरा रोना-धोना केवल दिखावा-मात्र है ॥४२॥ प्राणनाथके विछोहमें रात्रि मुझे दिनके समान गरम लगती है, चन्द्रमा लाखों सूर्योंके समान तप रहा है, तारोंकी पाँतें जलते हुए बड़वानलकी चिनगारियों-सी जान पड़ती हैं और धीरे-धीरे चलनेवाला दक्षिणका पवन आगकी लपटोंसे घिरा-सा जान पड़ता है। हाय! हाय!! ये चन्दनकी बूँदें भी इस समय गरम जलके समान कष्टप्रद लग रही हैं ॥४३॥ जब प्रियतमका स्मरण आता है तब सखियाँ वैरिनके समान, शीतल वायु अग्निके समान तथा चन्द्रमा विषके समान जान पड़ता है और जब उस प्रियतमकी निष्ठुरताका स्मरण आता है तो कमलनयनी नवेलियोंके हृदयपर वह क्रूर कामदेव बिना रोक-टोकके बलपूर्वक आक्रमण करने लगता है ॥ ४४ ॥ भले ही भौंरे अपनी गुञ्जारसे दिशाओंको भर दें, चन्दनके वनसे निकला हुआ पवन धीरे-धीरे बहता रहे, मतवाला पालतू कोकिल आमके वृक्षोंपर पञ्चम स्वरसे कूकता रहे तथा पत्थरके समान कठोर ये मेरे प्राण भी शीघ्र निकल जायँ पर मुझे कोई चिन्ता नहीं ॥ ४५ ॥ भौंरा मधुप (फूलोंका रस, मदिरा पीनेवाला) है, कोयल परभृत् (दूसरोंसे पाली हुई, इसी नामवाली) है, पवन रन्ध्रानुसारी (दोष ढूँढ़नेवाला, छिद्रोंमें घुसने वाला) है, हंस केवल पक्षपाती (पक्षपात करने वाले, पंखोंसे उड़नेवाले) हैं, चन्द्रमा भी दोषाकर (दोषोंका घर, रात्रि बनानेवाले) हैं, चित्त लौटनेका नाम नहीं ले रहा है, सुग्गा केवल सीखी-पढ़ी बातको ही दुहराता है तथा बादल जड़ (मूर्ख, शीतल) हैं। हाय! ऐसी दशामें निष्ठुर

प्रियजनेन न यत्र समागमः ॥ ४७ ॥ वार्यन्तां मन्दमन्दं मधुकरनिकरप्रौढझङ्कारधाराः क्षिप्यन्तां यत्र कुत्र प्रतिदिशमधुना भूरिभाराश्च हाराः। दह्यन्तां सर्व एते कमलदलयुताः किञ्च हा पुष्पभारास्तारा नाराचधारा विकिरति हृदये मन्मथोऽयं हताशः ॥ ४८ ॥ विरमत विरमत सख्यो नलिनीदलतालवृन्तपवनेन। हृदयगतोऽयं वह्निर्झटिति कदाचिज्ज्वलत्येव ॥ ४९ ॥ शंवत्तत्त्वविबोधवत्कुसुमवत्पीयूषवन्मित्रवद्यान्यासन्भजति प्रिये मृगदृशोऽथ प्रस्थिते तत्क्षणात्। गेहं तन्मुकुरं तदेव वलयं तच्चन्दनं सा निशा कारावत्करवालवत्क्रकचवत्काकोलवत्कालवत् ॥ ५० ॥ शल्यानि मर्मण्यपि कीलितानि गलन्त्ययस्कान्तमणेः प्रभावात्। हृदि प्रविष्टस्य पुनर्जनस्य न लभ्यते निर्गमनाभ्युपायः ॥ ५१ ॥ श्रुत्वा नामापि यस्य स्फुटघनपुलकं जायतेऽङ्गं समन्ताद्दृष्ट्वा यस्याननेन्दुं भवति वपुरिदं चन्द्रकान्तानुकारि। तस्मिन्नागत्य कण्ठग्रहणसरभसस्थायिनि प्राणनाथे भग्ना मानस्य चिन्ता भवति मम पुनर्वज्रमय्याः कदा नु ॥ ५२ ॥ श्वासो बाष्पतरङ्गितस्सकरुणा मार्गे च नेत्रापणा केनेदं न कृतं प्रियस्य विरहे कस्यासवो निर्गताः। सख्येवं यदि तेन नास्मि कथिता पान्थः कथं प्रोषितः प्राणास्सम्प्रति मे कलङ्कमलिनास्तिष्ठन्तु वा यान्तु वा ॥ ५३ ॥ स्वप्नेनाद्य मया पुरः प्रियतमो दृष्टश्चिरादागतो यत्नेनाप्यनुकूलयन्नपि मया मानान्न सम्भावितः। पश्चाद्यावदुपैमि मन्मथपथारूढा तमालिङ्गितुं तावन्मे सहसैव मृत्युसदृशः प्राप्तः प्रबोधोदयः ॥ ५४ ॥ स्वयमज्ञातदुःखो यः स दुनोति न विस्मयः। त्वं स्मर प्राप्तदाहोऽपि दहसीति किमुच्यते ॥ ५५ ॥ हन्तालि सन्तापनिवृत्तयेऽस्याः किं तालवृन्तं तरलीकरोषि। उत्ताप एषोऽन्तरदाहहेतुर्नतभ्रुवो न व्यजनापनोद्यः ॥ ५६ ॥ हारो नारोपितः कण्ठे

चित्तवाले प्रियतमके पास भेजूँ भी तो किसे भेजूँ ॥ ४६ ॥ कोई विरहिणी बेचैन होकर सोच रही है 'कि दिनका समय अच्छा है, रातका नहीं। नहीं-नहीं रात अच्छी है, दिनका समय नहीं। नहीं, इन दोनोंका ही नाश हो जाय क्योंकि प्रियका समागम न तो रातमें हो रहा है न दिनमें' ॥ ४७ ॥ ये भौंरोंकी वेगभरी गुंजारें रोक दो, ये हार इस समय भार हो रहे हैं अतः इन्हें यहाँ-वहाँ चारों ओर बिखेर दो, कमलके पत्तोंके साथ फूलोंको भी जला दो क्योंकि यह नीच कामदेव मेरे हृदयपर तारे-रूपी तीखे बाण छोड़नेकी तैयारीमें है। ये सब वस्तुएँ कामके साथी हैं अतः इनके न रहनेपर वह मुझे नहीं देख पावेगा ॥ ४८ ॥ हे सखियो! ठहरो, ठहरो! कमलके पत्तोंका पङ्खा चलाना बन्द कर दो। ऐसा न हो कि हृदयमें घुसी हुई आग पवन लगनेसे और भी वेगसे जल उठे ॥ ४९ ॥ प्राणनाथके पास रहते समय जो घर आनन्ददायी था, वही उनके चले जानेपर कारागार-सा हो रहा है। जो दर्पण उस समय तत्त्वज्ञानके समान जान पड़ता था वह अब तलवारके समान चमक रहा है। जो कङ्कन फूलके समान थे वे अब आरेके समान चुभ रहे हैं। जो चन्दन अमृतके समान लगता था वह विष-सा लग रहा है और जो रात सखीके समान जान पड़ती थी वही आज मेरा काल बनी हुई है ॥५०॥ देहके कोमल भागमें गड़ाई हुई कीलें भी लौहकान्तमणिके प्रभावसे गल जाती हैं किन्तु हृदयमें घुसे हुए मनुष्यको निकालनेका कोई उपाय ही नहीं मिल रहा है ॥ ५१ ॥ जिस प्रियतमका नाम-मात्र सुन लेनेपर शरीर सब ओरसे रोमाञ्चित हो उठता है और जिसका चन्द्रमुख देखकर शरीर चन्द्रकान्तमणिके समान पिघलने लगता है वही प्रियतम जब आकर गलेमें हाथ डालकर खड़ा हो जाता है उस समय सारा मान टूट जाता है पर मुझ वज्रके हृदयवालीका ऐसा भाग्य कहाँ कि यह समय देखनेको मिले! ॥ ५२ ॥ हे सखी! यदि मेरे प्रियतमने मुझसे ऐसी बात न कही होती कि 'प्रियके बिछोहमें किसकी साँसें आँसुओंके साथ नहीं भर उठतीं? कौन चिन्तित होकर मार्गमें आँखें नहीं बिछाए रहती? किन्तु आजतक क्या कोई मरी है?' तो मैं उसे क्यों परदेस जाने देती? अब मेरे ये कलङ्की प्राण रहें या जायँ मुझे चिन्ता नहीं ॥ ५३ ॥ आज स्वप्नमें मैंने देखा कि बहुत दिनोंके पश्चात् प्रियतम आए और मुझे मनानेका प्रयत्न करने लगे किन्तु मैं रूठी बैठी रही और मानके कारण मैंने उनका तनिक भी स्वागत-सत्कार नहीं किया। फिर कामदेवके वशमें होकर मैं जैसे ही उनके गले लगनेको चली वैसे ही मृत्युके समान मेरी नींद खुल गई ॥ ५४ ॥ जिसने पीड़ा न जानी हो वह यदि किसीको कष्ट दे तो अचरज नहीं किन्तु हे कामदेव! तुम तो एक बार जल चुके हो, फिर भी मुझे जलाते हो! अतः तुम्हें क्या कहा जाय ॥ ५५ ॥ हे सखी! इस विरहिणीका ताप दूर करनेके लिये पङ्खा क्यों डुला रही हो? इस झुकी हुई भौंहवाली नवेलीको जो ताप

मया विश्लेषभीरुणा। इदानीमन्तरे जाताः पर्वताः सरितो द्रुमाः ॥ ५७ ॥

दूतीगुणाः—मिथः वियुक्तं मिथुनं समानं माधुर्य-सोल्लाससुभक्तिभिर्या। सा वाग्मिता-नर्म-कला-मनो-ज्ञतासुकौशलैर्योजतीह दूती ॥ १ ॥

स्वयंदूती—स्फुरयसि कथमधरं स्वं लक्ष्यसि तप्तो हि पान्थ रसलुब्धः। घनरससर इह लब्ध्वा कथमव-गाहनसंसुखाय नोत्सहसे ॥ १ ॥

दूतीं प्रति स्वावस्थाकथनम्—अकस्मादेकस्मिन्पथि सखि मयामुं वनतटं व्रजन्त्या दृष्टो यो नवजलधरश्या-मलतनुः। स दृग्भङ्ग्या किं वाकुरुत नहि जाने तत इदं मनो मे व्यालोलं क्वचन गृहकृत्ये न वलते ॥ १ ॥ अदृष्टसंवीक्षणं चक्षुरदृष्टसम्मीलनं मनः। अदृष्टसंस्पर्शनः पाणिरद्य मे किं करिष्यति ॥ २ ॥ कान्तः कृतान्तच-रितः कुटिला तदम्बा वज्रोपमानि वचनानि च दुर्ज-नानाम्। प्रत्यङ्गमन्तरतनोः प्रहरन्ति बाणाः प्राणाः पुनस्सखि बहिर्न खलु प्रयान्ति ॥ ३ ॥ कालो मधुः कुपित एष च पुष्पधन्वा धीरा वहन्ति रतिखेदहराः समीराः। केलीवनीयमपि वञ्जुलकुञ्जमञ्जुर्दूरे पतिः कथय किं करणीयमद्य ॥ ४ ॥ किं स्वप्नः किमु जागरः किमथवा रात्रिः किमासीद्दिनं मोहावस्थितया मया न किमपि ज्ञातं किमेतत्सखि। यन्नामश्रवणादनन्तर-मिदं वृत्तं तमेव प्रियश्चेतो दुर्लभमप्यपास्तसकलव्या-पारमाकाङ्क्षति ॥ ५ ॥ गते प्रेमाबन्धे प्रणयबहुमाने विगलिते निवृत्ते सद्भावे प्रणयिनि जने गच्छति पुरः। तदुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य प्रियसखि गताँस्ताँश्च दिवसान्न जाने को हेतुर्दलति शतधा यन्न हृदयम् ॥ ६ ॥ तुष्यन्तु मे छिद्रमवाप्य शत्रवः करोतु मे शान्तिभरं गृहेश्वरः। मणिस्तु वक्षोरुहमध्यभूषणं ममास्तु सौन्दर्यनिकेतनं प्रियः ॥ ७ ॥ निःस्नेहः पतिरुज्झिता करुणया श्वश्रू-

---

भीतर ही भीतर जला रहा है वह पङ्केसे दूर नहीं होगा, वह तो नये प्रियतमके समागमसे दूर होगा ॥ ५६ ॥ प्रियतमसे सम्भोग करते समय उनसे अन्तर होनेके डरसे मैं गलेमें हार भी नहीं पहना करती थी पर इस समय तो हम दोनोंके बीचमें कितने ही पहाड़, नदियों तथा वृक्षोंका अन्तर हो गया ॥ ५७ ॥

दूतीके गुण : जो प्रेमी और प्रेमिका मधुरता, उल्लास और परस्पर प्रेममें एक-से होनेपर भी आपसमें बिछुड़ जाते हैं उन्हें अपनी मीठी-मीठी बातें, चटक मटक, नम्रता तथा चतुरतासे जो मिला देती है, वही सच्ची दूती है ॥ १ ॥

स्वयं दूतीका काम करनेवाली : हे रसीले राही! तुम सन्तप्त (प्यासे, कामके तापसे तपे हुए) दिखाई दे रहे हो अतः अपना ओठ क्यों फड़फड़ा रहे हो? यहाँ अत्यन्त स्वादिष्ट रस (जल) का भण्डार (तालाब, मुझे) पाकर भी उसमें क्यों नहीं डुबकी लगा लेते (मेरा आनन्द क्यों नहीं ले लेते)! ॥ १ ॥

दूतीसे अपनी दशा कहना : हे सखी! इस वनके पाससे जब मैं जा रही थी उस समय संयोगसे जलभरे मेघके समान साँवले रङ्गका एक छैला मुझे दिखाई पड़ा, उसने अपनी चितवनसे क्या क्या किया, यह तो मैं नहीं जानती किन्तु उसी समयसे मेरा मन न जाने कैसा हो गया है कि घरके किसी काममें मेरा मन ही नहीं लग रहा है ॥ १ ॥ उस प्रियतमके न रहनेपर आज देखना है कि दूसरेको न देखनेकी प्रतिज्ञा करनेवाली आँखें, दूसरेमें न लगनेवाला मन तथा दूसरेको न छूनेवाले ये हाथ कैसे रहते हैं ॥ २ ॥ हे सखी! प्रियतमका व्यवहार यमराजके व्यवहारके समान कठोर है, उनकी माता बड़े टेढ़े स्वभावकी हैं, दुष्टोंकी बातें वज्रके समान लगती हैं और शरीरके प्रत्येक अङ्गपर कामदेव बाण चुभोए डाल रहा है, फिर भी प्राण बाहर नहीं निकल पा रहे हैं ॥ ३ ॥ हे सखी! वसन्तका समय है, कामदेव मानो क्रोधित हो रहा है, सुरतकी थकावट दूर करनेवाला वायु मन्द-मन्द बह रहा है, यह क्रीड़ाका उपवन भी बेतकी झाड़ियोंसे सुन्दर दिखाई दे रहा है किन्तु पतिदेव बहुत दूर हैं। कहो, ऐसी दशामें क्या करना चाहिए? ॥ ४ ॥ हे सखी! मैं ऐसी मोहमें पड़ी कि यही नहीं समझ पाई कि यह स्वप्न है या जागरण, रात है अथवा दिन, क्योंकि जिसका नाम सुननेके पश्चात् मेरी यह दशा हो गई उस न प्राप्त होनेवाले प्रियतमको भी मेरा मन सब काम छोड़कर चाहने लगा है ॥ ५ ॥ हे सखी! प्रेमके बन्धन टूट जानेपर, प्रेममें ही रूठना समाप्त हो जानेपर तथा प्रेम-लीला समाप्त हो जानेपर जब प्रियतम सामनेसे चले गए तब उन बीती बातोंको सोच-सोचकर भी मेरी समझमें नहीं आ रहा है कि हृदय टूक-टूक क्यों नहीं हो जाता ॥ ६ ॥ अवसर पाकर भले ही मेरे शत्रु प्रसन्न हों पर मेरे मनमें यही अभिलाषा रहती है कि वही सुन्दरताका भण्डार प्रियतम

जल्पं वृथा वाग्बाणैर्हृदयं भिनत्ति कलहोत्तालाः पुनर्यातरः। नित्यं निन्दति नैव नन्दति कदाप्येषा ननान्दापि तन्मातः कं शरणं व्रजामि तरुणी दीनाहमेकाकिनी ॥ ८ ॥ स्वामी कुप्यतु कुप्यतां परिजना निन्दन्तु मामन्यवर्तिक तावत्प्रथतामयन्तु जगति मौढो ममोपद्रवः। आशास्यं पुनरेतदेव यदिदञ्चक्षुश्चिरं वर्धतां येनेदं परिचीयते मुररिपोः सौन्दर्यसारं वपुः ॥ ९ ॥ हन्त कान्तमपि तं दिदृक्षते मानसं मम न साधु यत्यते। इन्दुरिन्दुमुखि मन्दमारुतश्चन्दनञ्च वितनोति वेदनाम् ॥ १० ॥

नायकां प्रति सखीवचनम्—अधिकरतलतल्पं कल्पितस्वापलीलापरिमिलननिमीलत्पाण्डिमा गण्डपाली। सुतनु कथय कस्य व्यञ्जयस्यञ्जसैव स्मरनरपतिलीलायौवराज्याभिषेकम् ॥ १ ॥ अनुदिनमधिकं ते कम्पते कायवल्ली शिव शिव नयनान्तन्नाश्रुधारा जहाति। कथय कथय कोऽयं यत्कृते कोमलाङ्गि त्यजति न परिणद्धं पाण्डिमानं कपोलः ॥ २ ॥ अभ्यस्तेऽपि नितम्बभारफलके खेदालसेयं गतिः किञ्चित्संवलिताधर्पक्ष्मविरलालोका दृशोऽन्तर्गताः। तन्मन्ये निभृतं त्वयाऽद्य हृदये कश्चिद्धृतो वल्लभो निश्वासाः कथमन्यथा द्विगुणतामेते तवैवं गताः ॥ ३ ॥ अयं विपाको वद कस्य यूनः कल्याणि कल्याणपरम्पराणाम्। यदक्षिकोणस्रवदच्छधाराहारावतारो गुणमन्तरेण ॥ ४ ॥ अलसवलितैः प्रमादार्द्रैर्मुहुर्मुकुलीकृतैः क्षणमभिमुखैर्लज्जालोलैर्निमेषपराङ्मुखैः। हृदयनिहितं भावाकूतं वमद्भिरिवेक्षणैः कथय सुकृती कोऽयं मुग्धे त्वयाद्य विलोक्यते ॥ ५ ॥ आसन्नामवलम्ब्य केसरलतामेकेन पुष्पोज्ज्वलां सव्यं निःसहया नितम्बफलके कृत्वा कराम्भोरुहम्। आमीलन्नयनान्तवान्तसलिलं श्लाघ्यस्य निन्द्यस्य वा कस्येदं दृढसौहृदे प्रतिदिनन्दीनं त्वया स्मर्यते ॥ ६ ॥

घरका स्वामी होकर मुझे शान्ति दे और वही मेरे हृदयके आभूषणका मणि बना रहे ॥७॥ हे माँ ! पति मुझे चाहते ही नहीं, सासमें दयाका नाम नहीं, वह सदा व्यर्थ ही बाणके समान चुभती हुई बातोंसे हृदय वेधा करती हैं, देवरानी-जेठानी सदा झगड़ती ही रहती हैं, ननद सदा मेरी निन्दा ही करती रहती है और कभी सीधे मुँह बात नहीं करती। ऐसी दशामें मैं असहाय दीन नवेली बताओ, किसकी शरण लूँ ! ॥ ८ ॥ कोई गोपिका कह रही है—'भले ही स्वामी मुझपर रूठे रहें, कुटुम्बी लोग क्रोध करते रहें, मेरी बुराई फैलाते रहें, इससे भी बड़े-बड़े कोई उपद्रव आते हों तो आते रहें, किन्तु मेरी तो अभिलाषा यही है कि मेरी ये आँखें और भी बड़ी-बड़ी हो जायँ जिससे श्रीकृष्णजीकी निःसीम सुन्दरताका मुझे दर्शन तो होता रहे' ॥ ९ ॥ हे चन्द्रमुखी सखी ! मेरा मन उस प्रियतमको देखना तो चाहता है पर कोई सच्चा उपाय नहीं कर रहा तथा चन्द्रमा, मन्द पवन और चन्दन ये सभी मुझे पीड़ा पहुँचा रहे हैं ॥ १० ॥

नवेलीसे सखीकी बातचीत : कोई नवेली हथेलीपर अपना गाल रखकर कुछ सोच रही है, ऐसे समय उसकी सखी उससे कहती है कि 'हे सुन्दरी ! हथेलीरूपी बिछौनेपर सोनेवाले तुम्हारे जिस गालका उजलापन ढक गया है, वह सहसा किस छैलेके कामक्रीडा-रूपी राज्यमें होनेवाले राज्याभिषेककी सूचना दे रहा है ?' ॥ १ ॥ हे कोमल अङ्गवाली ! तुम्हारा शरीर प्रतिदिन और अधिक काँपता जा रहा है और आँसुओंका तार बन्द ही नहीं होता ! कहो तो, वह कौन है जिसके लिये तुम्हारे गाल इतने अधिक उजले पड़ते चले जा रहे हैं ॥ २ ॥ बड़े-बड़े नितम्ब होनेपर भी तुम्हें चलनेका अभ्यास तो था ही किन्तु आज तुम थकी हुई-सी धीरे-धीरे चल रही हो, तुम्हारी पलकें झँप रही हैं तथा आँखें भी भीतर ही भीतर चमक रही हैं अतः जान पड़ता है कि तुमने किसी प्रियतमको चुपकेसे हृदयमें बसा लिया है, नहीं तो तुम्हारी साँसें क्यों इस प्रकार दुगुने वेगसे फूलने लगतीं ! ॥ ३ ॥ हे मङ्गलमयी ! यह किस नवयुवकके ढेर-से पुण्योंका फल है कि तुम्हारे नेत्रोंके कोनेसे निकलती हुई आँसुओंकी धार बिना डोरेका हार बन रही है ॥ ४ ॥ हे सुन्दरी ! तुम अपनी उस चितवनसे किस भाग्यवान्‌को देख रही हो जो प्रेमसे रसीली एवं बार-बार संकुचित हो-होकर मन्द-मन्द चल रही है, जो कभी सामने भी पड़ जाती है, कभी लाजके कारण चञ्चल होती है, जिसमें पलकें-तक नहीं गिर रही हैं और जिन्हें देखनेसे हृदयका भाव भी स्पष्ट जान पड़ रहा है ॥५॥ हे प्रगाढ़ प्रेम करनेवाली ! दाहिने हाथसे फूलोंसे लदी मौलसिरीकी डाली पकड़े हुए, बाँयाँ हाथ कूल्हेपर जमाए हुए तथा कुछ मुँदी हुई आँखोंसे आँसू बहाते हुए तुम प्रतिदिन किस प्रशंसा अथवा निन्दाके योग्य व्यक्तिका खिन्न होकर स्मरण किया करती हो ? ॥ ६ ॥ हे सखी ! यह तो बताओ कि तुम योगिनी हो या वियोगिनी, क्योंकि भोजनमें

आहारे विरतिः समग्रविषयग्रामे निवृत्तिः परा नासाग्रे नयनं यदेतदपरं यच्चैकतानं मनः। मौनञ्चेदमिदञ्च शून्यमखिलं यद्विश्वमाभाति ते तद्ब्रूयाः सखि योगिनी किमसि भोः किं वा वियोगिन्यसि ॥ ७ ॥ उज्जृम्भाननमुल्लसत्कुचतटं लोलद्भ्रमद्भ्रूलतं स्वेदाम्भःस्नपिताङ्गयष्टि विगलद्व्रीडं सरोमाञ्चया। धन्यः कोऽपि युवा स यस्य वदने व्यापारिताः साम्प्रतम्मुग्धे दुग्धमहाब्धिफेनपटलप्रख्याः कटाक्षच्छटाः ॥ ८ ॥ उत्पादयत्यलमिदं मनसो विषादं सीदत्सरोरुहनिभं वदनं त्वदीयम्। ज्ञात्वा निदानमहमत्र समानदुःखा प्राणैरपि प्रियतमे भवितुं समीहे ॥९॥ को धन्यस्सखि सुस्थितेन मनसा को वेधसा निर्मितः कः प्रेयान्मदनस्य कस्य फलितः प्राचीनपुण्यद्रुमः। एतद्यस्य कृते दिवानिशमविश्रान्तस्खलद्वारिभिर्मौनाल्लोचनगड्डुगैः स्नपयसे वक्षोजलिङ्गद्वयम् ॥ १० ॥ क्षामं गात्रमतीव पाण्डुवदनं क्लिष्टा कपोलस्थली कोऽसौ चेतसि वर्तते तव युवा लोकैकमान्याकृतिः। त्यक्त्वा किञ्चिदपत्रपां कथय मे खिन्नासि किं त्वं वृथा घोरः पञ्चशरो यदि त्वमबला वक्ष्यामि नातः परम् ॥ ११ ॥ गोपायन्ती विरहजनितं दुःखमग्रे गुरूणां किं त्वं मुग्धे नयनगलितं वाष्पपूरं रुणत्सि। नक्तं नक्तं नयनसलिलैरेष आर्द्रीकृतस्ते शय्योपान्तः कथयति दशामातपे शोष्यमाणः ॥ १२ ॥ चिन्ताभिः स्तिमितं मनः करतले लीना कपोलस्थली प्रत्यूषक्षणदेशपाण्डुवदनं श्वासैकखिन्नोऽधरः। अम्भःशीकरपद्मिनीकिसलयैर्नापैति तापः शमं कोऽस्याः प्रार्थितदुर्लभोऽस्ति सहते दीनां दशामीदृशीम् ॥ १३ ॥ जानीमस्तव गौरि चेतसि चिरं शम्भुः समुज्जृम्भते तापो नेत्रतनूनपादिव तनौ तीव्रः समुन्मीलति। अक्ष्णोरस्नमिषेण गच्छति बहिर्गङ्गातरङ्गावलिः पाण्डिम्नः कपटेन चन्द्रकलिकाकान्तिः समु-

---

तुम्हारी रुचि नहीं है, संसारके सभी विषयोंसे तुम्हारा मन हट रहा है, नाककी नोकपर तुम आँखें गड़ाए रहती हो, तुम्हारा मन एका ओर लगा हुआ है, तुम मौन भी दिखाई पड़ रही हो और सारा संसार तुम्हें सूना दिखाई दे रहा है। ये सब बातें तो योगिनी और वियोगिनी दोनोंमें ही पाई जाती हैं ॥ ७ ॥ हे सुन्दरी! तुम्हें बारबार जँभाई आ रही है, स्तन फड़क रहे हैं, भौंहें चञ्चल हो रही हैं, शरीर पसीनेसे नहाया जा रहा है, लज्जा भाग गई है और शरीर रोमाञ्चित हो रहा है। ऐसी दशामें क्षीरसागरके फेनके समान तुम्हारी चितवन जिसपर पड़ रही है वह अवश्य ही कोई धन्य युवक होगा ॥ ८ ॥ हे प्राणप्यारी सखी! तुम्हारा मुरझाए कमलके समान मुँह देखकर मेरे मनमें अत्यन्त खेद उत्पन्न हो रहा है। बताओ, तुम्हारे उदास होनेका क्या कारण है? क्योंकि कारण जानकर मैं अपने प्राणतक देकर भी तुम्हारा दुःख बँटाना चाहती हूँ ॥ ९ ॥ हे सखी! वह कौन भाग्यवान् है, किसे ब्रह्माने अपने हाथों रचा है, वह कौन कामदेवका प्यारा है तथा किसके पूर्वजन्मके पुण्यरूपी वृक्षमें फल लग रहे हैं जिसके लिये तुम अपना चित्त स्थिर करके दिन-रात, मौन होकर अपने नेत्ररूपी गड्डुओंसे लगातार पानीकी धार बहाती हुई छातीपर स्थित दोनो लिङ्गों (स्तनों) का अभिषेक कर रही हो? ॥ १० ॥ हे सखी! तुम्हारी देह दुर्बल है, मुख उजला है और गाल पिचक गए हैं। अतः यह बताओ कि वह कौन युवक तुम्हारे मनमें बसा है जिसकी सुन्दरताका सब लोग आदर करते हैं? लाज छोड़कर मुझसे कहो, व्यर्थमें क्यों कष्ट सह रही हो? हाँ, इतना अवश्य कहूँगी कि यदि यह बलवान् कामदेवका दिया हुआ कष्ट है तब तो तुम अबला हो, इससे अधिक कुछ न कहूँगी अर्थात् तुम्हें बलवती बननेके लिये किसीकी सहायता लेनी ही पड़ेगी ॥ ११ ॥ हे भोली-भाली! अपने बड़ोंके सामने विरहकी वेदना छिपानेके लिये आँखोंसे गिरती हुई आँसूकी धारा क्यों रोक रही हो क्योंकि प्रत्येक रात्रिमें तुम्हारे नेत्रोंसे गिरे हुए आँसुओंसे भीगा हुआ तथा फिर धूपमें सुखाया हुआ बिछौना तो तुम्हारी दशा बता ही देता है ॥१२॥ इस नवेलीका मन चिन्तासे भरा हुआ है, यह हथेलीपर गाल रक्खे हुए है, इसका मुख प्रातःकालके चन्द्रमाके समान कान्तिहीन तथा उजला है, नीचेका ओठ साँसकी गर्मीसे कुम्हला रहा है, शीतल जलकी बूँदों तथा कमलके नये पत्तोंसे भी इसका सन्ताप शान्त नहीं हो रहा है अतः प्रार्थना करनेपर भी न प्राप्त होनेवाला वह कौन व्यक्ति है जो इसकी ऐसी दीन दशाको भी सहता जा रहा है? ॥ १३ ॥ हे गोरे-गोरे अङ्गोंवाली! ऐसा जान पड़ता है कि बहुत दिनोंसे शिवजी तुम्हारे मनमें बस रहे हैं क्योंकि उनके नेत्रकी अग्निके समान तुम्हारे शरीरमें सन्ताप उठ रहा है, आँसूके रूपमें आँखोंके बाहर गङ्गाकी लहरें छलक रही हैं तथा देहके उजलेपनके रूपमें चन्द्रकलाकी कान्ति दिखाई पड़ रही है

न्मीलति ॥ १४ ॥ न प्रीतिः पवने रतिर्न रसने प्रेमा न न पङ्केरुहे न स्नेहः कुसुमे सुखं न शयने यत्नो न वा जीवने। चन्द्रे नैव चमत्कृतिर्मृगयते मोदो न मौनव्रते तेने तेन कियाँस्तपस्तरुणिमा यस्मै तवेयं दशा ॥ १५ ॥ नलिनीदलतालवीजनं सखि तन्व्या विनिवारितं मया। तनुवल्लिविभूतिशङ्कया विनिवार्यः श्वसितानिलः कथम् ॥ १६ ॥ पक्ष्माग्रग्रथिताश्रुबिन्दुनिकरैर्मुक्ताफलस्पर्धिभिः कुर्वत्या हरहासहारि हृदये हारावलीभूषणम्। वाले वालमृणालनालवलयालङ्कारकान्ते करे विन्यस्याननमायताक्षि सुकृती कोऽयं त्वया स्मर्यते ॥ १७ ॥ पाण्डु क्षामं वदनं हृदयं सरसं तवालसञ्च वपुः। आवेदयति नितान्तं क्षेत्रियरोगं सखि हृदन्तः ॥ १८ ॥ वाले नैते पयोदास्सुरपतिकरिणो नो बकाः कण्ठशङ्खाः सौदामिन्योऽपि नैताः कनकमयमिदम्मण्डनं कुम्भपीठे। नैतत्तोयं विकीर्णं पतति मदजलं श्वासवातावधूतं तत्किं मुग्धे वृथैवं मलिनयसि मुखं प्रावृडित्यश्रुपातैः ॥ १९ ॥ वाले प्रियेण विरहात्तव कर्शितायाः हस्तच्युतं वलयमेतदलब्धदेशम्। हस्ते पुनः स्थितिमगादिदमङ्गुलीयं स्थानच्युतिर्महत एव भवत्यनर्थः ॥ २० ॥ भगिनि मदनः श्रीमानेष त्वया यदि लिख्यते किमपि सुमुखि व्यग्रासीति व्रजामि निजालयम्। यदपि मकरोऽधस्तात्पौष्पं करे च शरासनं तदपि परितो दृष्टिर्देया जनस्सखि नामरः ॥ २१ ॥ मातः कं हृदये निधाय सुचिरं रोमाञ्चिताङ्गी मुहुर्जृम्भां मन्थरतारकां सुललितापाङ्गां दधाना दशम्। सुप्तेवालिखितेव शून्यहृदया लेखावशेषीभवस्यात्मद्रोहिणि किं ह्रिया कथय मे गूढो निहन्ति स्मरः ॥ २२ ॥ मुक्ताहारं न च कुचगिरेः कङ्कणं नैव हस्तात्कर्णात्स्वर्णाभरणमपि

॥ १४ ॥ हे मौनव्रत धारण करनेवाली सखी ! पवनसे तुम्हारा प्रेम नहीं है, जीभके स्वादमें कोई अनुराग नहीं, कमलोंमें कोई रुचि नहीं है, फूलोंमें कोई स्नेह नहीं है, सोनेमें कोई सुख नहीं है, जीनेका कोई उपाय नहीं, चन्द्रमामें कोई चाव नहीं और कस्तूरीसे तुम्हें कोई प्रसन्नता नहीं मिलती। अतः यह बतलाओ कि तुम्हारे प्रियतमने ऐसी कौन-सी बड़ी तपस्या की है जिसके फलस्वरूप तुम्हारी यह दशा हो रही है? ॥ १५ ॥ हे सखी ! इस दुबली नवेलीकी देहपर कमलके पत्तोंका पङ्खा चलाना तो बन्द कर दिया पर यह शङ्का होती है कि इसकी गरम साँसके पवनसे ही इसकी देह जल न जाय, अतः यह कैसे रोका जाय ? यह तो समझके बाहरकी बात है ॥ १६ ॥ हे विशाल नेत्रोंवाली ! बरौनियोंमें गुँथी हुई तथा मोतीके समान बड़ी-बड़ी आँसुओंकी बूँदोंसे अपनी छातीपर शिवजीकी हँसीके समान उजले हारका भूषण बनाती हुई तथा कोमल मृणालके नालके कङ्गनसे सुन्दर दिखाई देते हुए अपने हाथपर मुँह रखकर किस भाग्यवान्‌का स्मरण कर रही हो ? ॥ १७ ॥ हे सखी ! तुम्हारा उजला तथा दुबला मुख, प्रेमसे भरा हुआ हृदय तथा गीली देह ये सब तुम्हारे हृदयमें रहनेवाले ऐसे रोगकी सूचना दे रहे हैं जिसकी चिकित्सा दूसरे ही जन्ममें हो सकती है ॥ १८ ॥ अरी नवेली ! ये बादल नहीं हैं, वरन् इन्द्रके हाथी हैं, ये बगुले नहीं हैं, वरन् उन हाथियोंके गलेमें शङ्खोंकी मालाएँ लटक रही हैं, ये बिजलियाँ नहीं चमक रही हैं वरन् यह उन हाथियोंके माथोंपरकी सोनेकी सजावट है तथा यह पानीकी बौछार नहीं है वरन् उन हाथियोंकी साँसोंके पवनसे उड़-उड़कर उन्हींके मदका जल बह रहा है अतः झूठे ही इसे बरसात समझकर क्यों आँसू बहा-बहाकर मुख मलिन किए डाल रही हो ॥ १९ ॥ हे नवेली ! तुम प्रियतमके बिछोहमें इतनी दुबली हो गई हो कि तुम्हारे हाथसे गिरा हुआ यह कङ्गन अब फिर अपने स्थानपर नहीं पहुँच पा रहा है और उसके स्थानपर यह अँगूठी कङ्गन बनकर पहुँच गई है। बड़ोंका अपने स्थानसे हटना बड़ा अनर्थ ही समझो ॥ २० ॥ हे सुन्दर मुखवाली बहन ! तुम सुन्दर कामदेवका चित्र बनानेमें लगी हो इसलिये मैं अपने घर जा रही हूँ पर हे सखी ! तुमने यद्यपि इसके नीचे मगर बनाया तथा हाथमें फूलका धनुष बनाया है फिर भी अन्य सभी बातोंपर ध्यान रखना क्योंकि संसारमें कोई भी ऐसा अमृत पीकर नहीं आया जो इन सब वस्तुओंको देखकर भी जीता रह जाय ॥ २१ ॥ हे सखी ! तुमने किसे अपने मनमें बहुत समयसे बसा रक्खा है जिससे तुम्हारे अङ्ग रोमाञ्चित हो रहे हैं, तुम बार-बार जँभाई ले रही हो, तुम्हारे नेत्रोंकी पुतलियाँ धीरे-धीरे हिल रही हैं और नेत्रके कोने सुन्दर होते जा रहे हैं। तुम खोई हुई-सी तथा चित्रलिखी-सी हो रही हो, दुबली होती जा रही हो और तुम्हारा मन कहीं नहीं लग रहा है। अतः हे अपनेसे ही अपना द्रोह करनेवाली ! लज्जासे क्या लाभ है ? मुझसे खुलकर क्यों नहीं बता देती ? क्या कामदेव छिपे-छिपे घात कर रहा है ? ॥ २२ ॥ हे सखी ! स्वप्नमें मौलसिरीकी माला पहने हुए किसी चोरने न तो स्तनपर पड़ा

वा नीतवान्नैव तावत्। अहो स्वप्ने वकुलकुसुमं भूषणं सन्दधानः कोऽयञ्चौरो हृदयमहरत्तन्वि तन्न प्रतीमः ॥ २३ ॥ मुखं पाण्डुच्छायन्नयनयुगलं वाष्पतरलं तनुः क्षामक्षामा गतमविशदं धैर्यविगमः। ह्रियं मुक्त्वा मूढे कथयसि न मे सारवचनान्यवस्था येनेयं तव सखि मुहूर्तेन पतिता ॥ २४ ॥ मुग्धे दोर्लतिकां निधाय न कृतो द्वारोपरोधस्त्वया लग्ना नो रुदती गतासि रभसात्तस्योत्तरीयांशुके। कालेऽस्मिन्कुसुमाकरे द्विगुणितप्रेमोत्सवे रागिणां गच्छन्नग्रत एव मूढहृदये मुक्तस्त्वया वल्लभः ॥ २५ ॥ मूकीभूताः पिकयुवतयः किं वसन्तेऽपि तस्मिन्किञ्जातोऽसौ मलयमरुतां दुष्प्रवेशः प्रदेशः। किं वा तस्मिन्नमृतमहसो न प्लवन्ते मयूखाः यत्रावासं कृशतनु तव स्वान्तचोरः करोति ॥ २६ ॥ यत्तालीदलपाकपाण्डु वदनं यद्दुर्दिनं नेत्रयोर्यत्प्रेङ्खोलितकेलिपङ्कजवनाः श्वासाः प्रसर्पन्ति च। गौरी कुध्यतु वर्तते यदि न ते तत्कोऽपि चित्ते युवा धिग्धिक्त्वां खलु पांसुखेलनसखीलोकेऽपि यन्निह्नवः ॥२७॥ यत्सम्भाषणलालसेव कुरुषे वक्रेन्दुमर्धानतं धत्से वाहुलतार्गलान्कुचतटे निष्क्रान्तिभीत्येव यत्। किं वा मन्त्रयते जनोऽयमिति यत्सर्वत्र शङ्काकुला तज्ज्ञातं हृदि कोऽपि तिष्ठति युवा प्रौढश्च गूढश्च ते ॥ २८ ॥ लावण्यं सहजं क्व तन्ननु गतं पाण्डुत्वमेतत्कुतो हन्तैषा तनुवल्लरी प्रतिदिनं भूयः कृशत्वं गता। उच्छूने नयने जलं प्रवहतो नर्म्मस्मितं नाधुना तप्तं निःश्वसितं विरक्तिरशनादप्यालि किम्भूयसी ॥ २९ ॥ लावण्यद्रविणव्ययो न गणितः क्लेशो महानर्जितः स्वच्छन्दञ्चरतो जनस्य हृदये चिन्ताज्वरो निर्मितः। एषापि स्वगुणानुरूपरमणाभावाद्वराकी हता कोऽर्थश्चेतसि वेधसा विनिहितस्तन्वीमियां तन्वता ॥ ३० ॥ वासस्तदेव वपुषो वलयं तदेव

हुआ मोतीका हार चुराया, न हाथमें पहने हुए कङ्कन चुराए, न सोनेके कनफूल ही चुराए वरन् वह केवल हृदय ही चुराकर ले गया। यह चोर कौन था मैं नहीं जान पा रही हूँ ॥ २३ ॥ हे सखी! तुम्हारा मुख उजला हो रहा है, आँखोंमें आँसू भर रहे हैं, शरीर दुवला होता जा रहा है, तुम चलनेमें लड़खड़ा रही हो, धीरज तो तुममें रह ही नहीं गया। अरी पगली! तुम लाज छोड़कर सच-सच बताती क्यों नहीं कि अभी-अभी तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो गई? ॥ २४ ॥ हे सुन्दरी! जिस समय प्रियतम घरसे निकल रहे थे उस समय तुमने अपनी बाँहें फैलाकर द्वार भी नहीं रोक लिया तथा शीघ्रतापूर्वक उसकी चादर पकड़कर रोती हुई उसके पीछे भी नहीं लग गई, वरन् प्रेमियोंके प्रेमको दुगुना बढ़ानेवाले इस वसन्तके समयमें तुमने अपने सामने ही प्रियतमको चले जाने दिया। हाय-हाय! तुम कितनी मूर्ख हो ॥२५॥ हे दुवली-पतली देहवाली! जहाँ तुम्हारे हृदयका चोर रहता है वहाँ क्या वसन्तमें भी कोकिल मौन हो गए होंगे? क्या मलय पर्वतके पवन वहाँ नहीं घुस पाते होंगे? अथवा क्या अमृतसे भरे प्रकाशवाले चन्द्रमाकी किरणें वहाँ नहीं उछलती होंगी? ॥ २६ ॥ हे सखी! पके हुए ताड़के फलके समान तुम्हारा मुख पीला हो रहा है, आँखोंसे आँसुओंकी वर्षा हो रही है, कमलके वनको हिलानेवाली साँसें चल रही हैं अतः जान पड़ता है कि तुम्हारे मनमें कोई छैला बस गया है। यदि ऐसा न हो तो भगवती मेरा नाश कर दें, किन्तु धिक्कार है तुम्हें, कि धूल खेलनेके समयकी अपनी सहेलियोंसे भी अपने मनकी बातें छिपाती हो! ॥ २७ ॥ कुछ बोलनेके लिये जो तुम लालायित होकर अपना मुखकमल आधा नवा रही हो, हृदयसे किसीके निकल भागनेके डरसे अपनी भुजारूपी सिकड़ियोंको स्तनोंपर रक्खे हुई हो और सब बातोंमें यही शंका करती जाती हो कि 'लोग क्या काना-फूसी कर रहे हैं?' इससे जान पड़ता है तुम्हारे हृदयमें कोई ढीठ युवक अवश्य छिपा बैठा है ॥२८॥ हे सखी! तुम्हारी वह सहज सुन्दरता कहाँ चली गई? तुम्हारी देहमें यह उजलापन कहाँसे आ गया? हाय! लताके समान यह तुम्हारी देह दिनों-दिन दुवली होती जा रही है, सूनी आँखोंसे गरम-गरम पानी बहता रहता है, वह खिलवाड़-भरी मुस्कान सारी जाती रही, रात-दिन लम्बी-लम्बी साँसें लेती रहती हो और भोजनसे भी तुम्हें अत्यन्त विराग हो गया है। ॥२९॥ ब्रह्माने इस नवेलीको बनाते समय सौन्दर्यका भण्डार चुक जानेकी भी कोई चिन्ता नहीं की और बड़ा कष्ट भी उठाया, निश्चिन्त रहनेवालोंके मनमें चिन्तारूपी ज्वर भर दिया और यह वेचारी भी अपने गुणोंके समान पति न पाकर मानो लुट गई, तब यह नहीं समझमें आता कि इस नवेलीको बनाते समय ब्रह्माने अपने मनमें प्रयोजन कौनसा रक्खा था ॥ ३० ॥ हे सखी! वे ही पहलेके वस्त्र हैं, हाथोंका यह कङ्कन भी पुराना ही है तथा नितम्बपर यह रत्नोंकी करधनी भी पुरानी ही है पर भौंरोंकी

हस्तस्य सैव जघनस्य च रत्नकाञ्ची। वाचालभृङ्गसुभगे सुरभौ समस्तमद्याधिकं भवति ते सखि किञ्चिदानम् ॥३१॥ वियोगवह्निकुण्डेऽस्मिन्हृदये ते वियोगिनि। प्रियसङ्गःसुखायैव मुक्ताहारस्तपस्यति ॥३२॥ विलुलितमतिपूरैर्बाष्पमानन्दशोकप्रभवमवसृजन्ती तृष्णयोत्तानदीर्घा। स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते धवलवहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः ॥ ३३ ॥ विश्रान्तो दिवसस्तटीमयमटत्यस्ताचलस्यांशुमान्सम्प्रत्यङ्कुरितान्धकारपटलैर्लम्बालकाद्यौरभूत्। एह्यन्तर्विश वेश्मनः शशिमुखि द्वारस्थलीतो रणस्तम्भालम्बितबाहुवल्लि रुदती किं स्वं पथः पश्यसि ॥३४॥ शोणौ कोणौ सखि नयनयोरुद्यतौ गोपनाय शङ्कामेव स्फुटयतितरां स्वेदबिन्दुप्रचारः। अन्तः प्रेमाङ्कुरपरिकरारम्भकं कन्दमस्याः किञ्चित्किञ्चित्कथयति पुनः कापि दिव्या मुखश्रीः ॥३५॥ श्वासास्ते सखि सूचयन्त्यविरताः सन्तापबाधां परं विद्मस्तत्र न कारणं वयमिति स्वान्तेऽतिचिन्ताभरः। किं वा घर्मनिपीडिता तव तनूवल्ली निकामं प्रिये पुष्पादप्यतिकोमला मलिनतां याता मृणाली यथा ॥ ३६ ॥ सखि पतिविरहहुताशः किमिति प्रसभं न याति नयनोदैः। शृणु कारणं नितम्बिनि मुञ्चसि नयनोदकन्तु सस्नेहम् ॥ ३७ ॥ सहचरि शपथाः शतं मदीया वद विरहग्लपितां निजामवस्थाम्। सहचरि परिपृच्छ भानुकन्यानवदलिनीनलिनीनिकुञ्जशय्याः ॥ ३८ ॥ सहसा हृदये निधाय चेतो नयनादिन्द्रियमुद्रणां विधाय। अयि कण्टकिताङ्गयष्टि सत्यं कथय ध्यायसि किं रहो निषण्णा ॥३९॥ सायं दामग्रथनसमये लग्नया कर्णमूले सख्या मन्दस्मितसुभगया सादरं सूच्यमानः। धन्यः कोऽयं कमलनयने यत्कथायाः पुरस्तादङ्गुल्यग्रं निजमपि मुहुः सूचिविद्धं न वेत्सि ॥ ४० ॥ स्फुरति यदिदमुच्चैर्लोचनं सुभ्रु वामं स्तनतटमपि धत्ते चारु रोमाञ्चमा-

---

गुञ्जारसे अत्यन्त मनोहर लगनेवाले इस वसन्तमें ये सबके सब अपने नापसे बड़े क्यों होते जा रहे हैं अर्थात् ढीले क्यों पड़ते जा रहे हैं? ॥३१॥ हे वियोगिनी! विरह-रूपी अग्निके कुण्डरूपी तुम्हारे हृदयपर तुम्हारे प्रियतमके समागमका सुख पानेके लिये ही यह उपवास करने वाला मोतीका हार मानो तपस्या कर रहा है ॥ ३२ ॥ वनमें रामसे मिली हुई वियोगिनी जानकीसे उनकी सखी (वनदेवता) कह रही है कि 'हे सीते ! पतिके मिलनेके आनन्द तथा विरहके शोक इन दोनोंके कारण वेगसे तुम्हारे आँसू बह रहे हैं, प्रियतमका दर्शन पानेकी इच्छासे वे नेत्र ऊपरको उठ रहे हैं जिनमें प्रेम टपक रहा है, तुम्हारी चितवन उजली, मनोहर तथा वेगसे बहनेवाली उस दूधकी धाराके समान है जो प्रियतमको मानो नहला रही है' ॥३३॥ हे चन्द्रमुखी! दिन ढल रहा है' सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहे हैं, अन्धकार केशोंके समान आकाशमें फैल रहा है, आओ भीतर चलें, द्वारकी चौखट हाथसे थामकर मार्गकी ओर क्या ताक रही हो ॥३४॥ हे सखी ! मनमें बसे हुए प्रेमको छिपानेके कारण इस नवेलीकी आँखोंके कोने लाल हो गए हैं, फिर भी आनन्दके कारण देहसे निकलता हुआ पसीना सारी पोल खोले दे रहा है और इसके मुँहकी निराली छटा हृदयमें अङ्कुरित होते हुए प्रेमके जड़की सूचना दे ही रही है ॥३५॥ हे सखी ! निरन्तर चलनेवाली तुम्हारी लम्बी-लम्बी साँसें तुम्हारे भीतरके सन्तापसे होनेवाली पीड़ाकी सूचना रही हैं। ऐसा क्यों हो रहा है, यह तो मैं नहीं जानती, किन्तु मनमें बड़ी चिन्ता हो रही है, क्योंकि इधर मैं देख रही हूँ कि फूलसे भी अधिक कोमल तुम्हारा शरीर कड़ी धूपमें पड़े हुए मृणालके समान अत्यधिक मलिन होता जा रहा है ॥३६॥ हे सखी! बहते हुए आँसुओंकी धारोंसे विरहकी आग इसलिये नहीं बुझ पा रही है क्योंकि तुम्हारे आँसू सस्नेह (घी-युक्त, प्रेम-युक्त) हैं ॥ ३७ ॥ कोई सखी किसी नवेलीसे कहती है कि 'हे सखी ! तुम्हें सौ बार मेरी शपथ है जो तुम विरहके दुःखसे भरी अपनी दशा मुझसे कह न डलो ।' नवेली-'हे सखी ! तुम यमुना नदीके कमलोंके नये पत्तोंसे बने हुए बिछौनेसे ही मेरी दशा क्यों नहीं पूछ लेती' ॥३८॥ हे रोमाञ्चित अङ्ग-रूपी लतावाली सखी ! सच बताओ तुम हृदयमें ही अपना चित्त बाँधकर तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंको अपने-अपने कामोंसे हटाकर यहाँ एकान्तमें बैठकर किसका ध्यान कर रही हो ? ॥३९॥ हे कमलनयनी ! सन्ध्या समय जब तुम माला गूँथ रही थीं, उस समय तुम्हारे कानके पास लगकर मुस्कराती हुई सखीने जिसका सङ्केत किया था और जिसकी चर्चा सुनते समय तुम्हें उँगलीमें चुभी हुई सुईका भी ध्यान न रहा वह कौन भाग्यवान् है ? ॥४०॥ हे सुन्दर भौंहोंवाली ! यह जो तुम्हारी बाईं आँख वेगसे फड़क रही है, स्तन रोमाञ्चित हो रहे हैं और जाँघें भीतर ही भीतर काँप रही हैं, ये सब

सम्। कलयति च यदन्तःकम्पितामूरुकाण्डं ननु वदति तदद्य प्रेयसा सङ्गमं ते ॥ ४१ ॥

नायकं प्रति दूतीप्रेषणम्—अपूजितैवास्तु गिरीन्द्रकन्या किं पक्षपातेन मनोभवस्य। यद्यस्ति दूती सरसोक्तिदक्षा दासः पतिः पादतले वधूनाम् ॥ १ ॥ अयि दूति सखी त्वमेव मे मदनो हन्ति शितैः शिलीमुखैः। दयितं तमुपानयाशु तत्सुशको जीवितनिर्गमोऽन्यथा ॥ २ ॥ उल्लङ्घ्यापि सखीवचः समुचितामुल्लङ्घ्य लज्जामलं भित्त्वा भीतिभरं निरस्य च निजं सौभाग्यगर्वं मनाक्। आज्ञां केवलमेव मन्मथगुरोरादाय नूनं मया त्वं निःशेषविलासिवर्गगणनाचूडामणिः सम्भृतः ॥ ३ ॥ कामं दहन्तु मरुतो मलयाचलस्य चन्द्रोऽपि पातयतु वा नितरां स्फुलिङ्गान्। दूरे प्रियो विमलवंशमणिः पतिर्मे तत्साम्प्रतं त्वरितमानय तं कथञ्चित् ॥४॥ कामः कुप्यति चन्द्रमा अपि बलान्मां दग्धुमभ्युद्यतो वाता वाऽपि समागता यमदिशः प्राणान्निहन्तुं तथा। रक्ताक्षास्त्वरयन्ति तान्परभृताः स्वैः कूजनैर्दूति तत्प्रेयांसं तमुपानयाऽऽश्वितरथा त्राणं न मे कुत्रचित् ॥ ५ ॥ जीवामीति वियोगिनी यदि लिखेन्नैव वृत्ताः कथा अद्य श्वोऽथ मरिष्यतीति मरणे कालात्ययः किं कृतः। आगन्तव्यमिहेति सम्प्रति सखे सम्भावना निष्फला भ्रातस्सम्प्रति याहि नास्ति लिखितं तद्ब्रूहि यत्ते क्षमम् ॥ ६ ॥ तस्य त्वया कर्कशवादिनोऽपि प्रकाशनीयं मसृणत्वमेव। प्रेम्णोऽस्ति भग्नस्य न हि प्ररोहः पुष्पस्य वृन्तादिव विच्युतस्य ॥ ७ ॥ दिशि दिशि परिहासगूढगर्भाः पिशुनगिरो गुरुगञ्जनञ्च तादृक्। सहचरि हृदये निवेदनीयं भवदनुरोधवशादयं विपाकः ॥ ८ ॥ दुर्वारां कुसुमशरव्यथां वहन्त्या तन्वङ्ग्या यदभिहितं पुरस्सखीनाम्। तद्भूयः शुकशिशुसारिकाभिरुक्तं धन्यानां श्रवणपथा-

---

बता रहे हैं कि आज प्रियतमसे तुम्हारा समागम अवश्य होगा ॥ ४१ ॥

प्रियतमके पास दूती भेजना : मनोरथ सफल करनेके लिये न तो पार्वतीकी पूजा करनेकी आवश्यकता है और न कामदेवकी सहायताकी ही, क्योंकि यदि मीठी-मीठी बातें बनानेवाली चतुर दूती हो तो सभी प्रियतम अपनी प्रेयसियोंके पैरोंतले दासके समान लोटने लगें ॥ १ ॥ हे दूती! तू ही मेरी सखी है, कामदेव मुझे अपने तीखों वाणोंसे वेधे डाल रहा है अतः शीघ्र ही प्रियतमको ले आ, नहीं तो ये निकलते हुए प्राण किसी उपायसे भी रोके न रुकेंगे ॥२॥ कोई नवेली अपने प्रियतमके पास सन्देश भेज रही है, 'हे प्रियतम! मैंने सखियोंकी बातोंपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, कुलवधू होकर भी लाज नहीं की, किसीसे भी तनिक डरी नहीं तथा अपने सोहागपर इतराना भी नहीं छोड़ा और केवल अपने गुरु कामदेवकी आज्ञा सिरपर धरकर मैंने सभी रसिकोंकी समाजमें आपको सिरमौर समझा (अब तो आप मुझपर दया कीजिए) ॥३॥ सखीसे कोई विरहिणी कह रही है—'मलयाचलके पवन मुझे जी-भर जलाते रहें और चन्द्रमा भी चिनगारियाँ बरसाता रहे किन्तु निर्मल कुलका मणि मेरा जो प्यारा पति मुझसे दूर है उसे इस समय शीघ्र ही जैसे हो वैसे यहाँ ले आ' ॥ ४ ॥ हे दूती। कामदेव मुझसे रुष्ट है, चन्द्रमा भी बलपूर्वक मुझे जलानेके लिये उदय हो गया है और मेरे प्राण हरनेके लिये ये दक्षिण दिशाके पवन भी लाल-लाल आँखें निकाले आ गए हैं जिन्हें कोकिल अपनी कूकसे शीघ्रता करनेके लिये उकसा रहा है, अतः तू शीघ्र ही प्रियतमको ले आ, नहीं तो मेरे प्राण अब किसी उपायसे भी नहीं बच पावेंगे ॥ ५ ॥ हे मित्र! यदि वह वियोगिनी लिखती कि 'मैं जी रही हूँ' तब तो आप निश्चिन्त हो जाते और सारी कथा ही समाप्त हो जाती, यदि आपको यह समाचार भेजा जाता कि 'वह आज अथवा कलमें मर जायगी,' तो आप कहते कि यदि इतना असह्य कष्ट था तो मरनेमें इतनी देरी क्यों हो रही है। यह भी लिखना व्यर्थ था कि 'आपको आ ही जाना चाहिए' क्योंकि आपके आनेकी उसे कोई आशा नहीं है। अतः हे भाई! मेरे पास उसका कोई लेख तो नहीं है पर आप झटपट चले जाइए और जो उचित समझ पड़े उसे कहिए ॥ ६ ॥ उस निठुर बोलनेवालेसे भी तुम्हें चिकनी-चुपड़ी बातें ही करनी चाहिएँ क्योंकि टूटा हुआ प्रेम फिर उसी प्रकार नहीं बढ़ता जैसे डण्ठलसे टूटा हुआ फूल फिर कभी नहीं खिलता ॥७॥ हे सखी! चारों ओर नीच लोग हँस-हँसकर मेरी खिल्ली उड़ा रहे हैं, घरके बड़े-बूढ़ोंकी दृष्टि भी मुझपर अङ्कुशके समान गड़ी हुई है अतः उस हृदयके स्वामीको समझा देना कि तुम्हारे ही प्रेमके कारण उसकी यह दुर्दशा हो रही है ॥८॥ वे लोग धन्य हैं जिनके कानोंमें कामदेवके वाणोंकी चोटकी पीड़ा सहती हुई दुबले अङ्गोंवाली नवेलीकी सखियोंके सामने कही हुई वे बातें पड़ती हैं जिन्हें सुग्गेके बच्चे और मैनाएँ दुहरा देती

तिथित्वमेति ॥ ९ ॥ दूति त्वं तरुणी युवा स चपलश्श्यामास्तमोभिर्दिशस्सन्देशस्स रहस्य एव विपिने सङ्केतकावासकः । भूयोभूय इमे वसन्तमरुतश्चेतो नयन्त्यन्यथा गच्छ क्षेमसमागमाय निपुणे रक्षन्तु ते देवताः ॥ १० ॥ न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां करुणां यथा च कुरुते स मयि । निपुणं तथैनमवगम्य वदेरभिदूति काचिदिति सन्दिदिशे ॥११॥ ननु सन्दिशेति सदृशोदितया त्रपया न किञ्चन किलाभिदधे । निजमैक्षि मन्दमनिशं निशितैः कृशितं शरीरमशरीरशरैः ॥ १२ ॥ पत्रं न श्रवणेऽस्ति वाष्पगुरुणोर्नो नेत्रयोः कज्जलं रागो नाधरपल्लवे चरणयोर्युग्मे न चालक्तकः । वार्तोच्छिन्त्विपु निष्ठुरेति भवता मिथ्यैव सम्भाव्यते सा लेखं लिखतु च्युतोपकरणा न्यायेन केनाधुना ॥ १३ ॥ वाच्यं तस्मै सहचरि भवद्भूरिविश्लेषवह्नौ स्नेहैरिद्धे मम वपुरिदं कामहोता जुहोति । प्राणानस्मै तदिहमुचितां दक्षिणां दातुमीहे तत्रादेशो भवतु भवतां यस्त्वमेषामधीशः ॥ १४ ॥ विरक्तमन्यप्रमदानुरक्तं विमुक्तदाक्षिण्यलवं शठञ्च । या संवृणोते खलु दूतिका सा कोऽस्याः समप्रेम्णि जने प्रकर्षः ॥ १५ ॥ वृथा गाथाश्लोकैरलमलमलीकां मम रुजं कदाचिद्धूर्तोऽसौ कविवचनमित्याकलयति । इदं पार्श्वे तस्य प्रहिणु परिलग्नाञ्जनचयस्रवद्बाष्पोत्पीडस्थगितलिपि ताटङ्कयुगलम् ॥ १६ ॥ सन्देशं मे गृहीत्वा कुवलयनयनं कान्तमभ्येऽषि दूति ! वासन्त्योऽमी त्रियामा मलयजपवनान्दोल्यमानाश्च वल्लयः । उच्चैर्गुञ्जन्ति भृङ्गाः सुममधुरमधुस्वादनेन प्रमत्तास्त्वं कान्ता च प्रगल्भा तदिति न युवयोर्जातुचित्स्यात्प्रसक्तिः ॥ १७ ॥

नायकं प्रति नायिकासन्देशः—अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे विश्लेषभीरुता । नादृष्टे न च दृष्टेन भवता विद्यते सुखम् ॥ १ ॥ आलीभिः सह भासितं किमपि तद्धर्मापि संवीक्षितं पञ्चेषुः कुसुमैरपूजि कथमप्याधाय

हैं ॥ ९ ॥ हे दूती ! तू नवेली है, वह भी चञ्चल छैला है, चारों ओर अँधेरा छाया हुआ है, सन्देशमें वनमें मिलनेके लिये सङ्केत है, सन्देशमें गुप्त बात है, ये वसन्तके पवन भी चित्तको व्याकुल कर रहे हैं अतः जाओ, कुशलतापूर्वक तुम दोनोंका समागम हो, देवता तुम्हारी रक्षा करें ॥ १० ॥ कोई नवेली दूतीके द्वारा प्रियतमको यह सन्देश भेज रही है कि 'हे दूती ! प्रियतमके पास जाकर ऐसी चतुराईसे बात करना जिससे वह मुझे नीच न समझने लगे और मेरी दशापर उसे तरस आ जाय' ॥ ११ ॥ जब सखीने नवेलीसे पूछा कि प्रियतमके लिये कुछ सन्देश भी दो तो वह नवेली कुछ भी बोली नहीं वरन् अपनी उस देहकी ओर धीरेसे देखने लगी जो कामदेवके तीखे बाणोंसे मुरझाई चली जा रही थी ॥ १२ ॥ 'वह बड़ी निष्ठुर होकर बोलती भी है' ऐसा सोचकर आप उसकी सारी पीड़ाको झूठा ही समझ रहे हैं पर न उसके कानोंमें कनफूल है, न डबडबाई आँखोंमें काजल है, न ओठमें ललाई है और न पैरोंमें आलता ही है। वह पत्र लिखे तो किस आधारपर लिखे ॥ १३ ॥ हे सखी ! प्रियतमसे जाकर यह कहना कि हवन करनेवाला कामदेव स्नेह (प्रेम, घी) से जगी हुई आपकी वियोगाग्निमें उसके शरीरकी आहुति दे रहा है। अब उस कामदेव - रूपी पुरोहितको वह प्राणोंकी दक्षिणा देना चाहती है अतः आपकी आज्ञा होनी चाहिए क्योंकि प्राणोंके स्वामी तो आप ही हैं ॥ १४ ॥ विरागी, दूसरी स्त्रीसे प्रेम करनेवाले तथा निर्दयी (हठी) दुष्ट को भी जब दूती वशमें ले आती है तो प्रेम करनेवाले मनुष्योंपर उसका कैसा जादू चलता है, यह भी बताने की बात है ! ॥ १५ ॥ हे सखी ! प्रियतमके पास कविता लिखकर भेजना व्यर्थ है । हो सकता है कि वे उसे धूर्त्त कविकी अत्युक्ति समझकर मेरे कष्टको झूठा मान लें, अतः उनके पास मेरे कानके दोनों कनफूल भेज दो, जिनमें लिखे हुए अक्षर काजलसे मिले हुए आँसुओंके जलसे पुते हुए हों ॥ १६ ॥ तुम जा तो रही हो किन्तु हे दूती ! मेरे कमल-जैसे नेत्रवाले प्रियतमके पास मेरा सन्देश भी लेती जाओ किन्तु वसन्तकी रातें आ गई हैं, मलय पर्वतका पवन लताएँ हिला रहा है, फूलोंका मधुर रस पीकर भौंरे मतवाले होकर ऊँचे स्वरसे गूँज रहे हैं, तू भी नवेली और ढीठ है अतः सावधान रहना, कहीं अवसर पाकर तुम्हीं दोनों न लिपटने लगना ॥१७॥

प्रियतमके पास प्रेयसीका सन्देश : कोई नवेली अपने प्रियतमके पास सन्देश भेजती है कि 'हे प्रियतम ! आपके देखने तथा न देखने दोनोंमें ही सुख नहीं मिलता क्योंकि न देखनेपर देखनेकी इच्छा होती है अतः कष्ट होता है और देख लेनेपर वियोग हो जानेका दुःख बना रहता है' ॥ १ ॥ हे प्राणनाथ ! सखियोंके साथ बातचीत करते हुए भी मैं आपका

चित्ते मनाक् । तेनापि प्रिय चेत्तथा मयि कृपाकार्पण्य-मालम्बसे प्राणेश प्रबलं तदत्र निखिलं तत्प्रातिकूल्यं विधेः ॥ २ ॥ इन्दुं कैरविणीव कोकपटलीवाम्भोजिनीबान्धवं मेघं चातकमण्डलीव मधुपश्रेणीव पुष्पाकरम् । माकन्दं पिकसुन्दरीव तरुणी प्राणेश्वरं प्रोषितं चेतोवृत्तिरियं मम प्रियसखे त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते ॥ ३ ॥ नाथ त्वद्विरहे सुधानिधिरपि क्ष्वेडालयो भाव्यते शीतो दक्षिणमारुतोऽपि वत हा ज्वालाऽवलीढायते । चेतोहार्यपि सौरभं सुमनसां दुर्हृत्प्रसङ्गोपमं किं भूयो निगदेयमेतदसवोऽप्येतेऽद्य भाराय मे ॥ ४ ॥ नित्यं ब्रह्म यथा स्मरन्ति मुनयो हंसा यथा मानसं सानन्दाः स्फुटसल्लकीवनयुतां ध्यायन्ति रेवां गजाः । युष्मद्दर्शनलालसाः प्रतिदिनं युष्मान्स्मरामो वयं धन्यः कोऽपि स वासरोऽत्र भविता यत्रावयोस्सङ्गमः ॥ ५ ॥ यथा कुमुदिनी चन्द्रञ्चक्रवाकी विभाकरम् । ततः प्रभृति कान्त त्वां चिन्तयामि तथाऽनिशम् ॥ ६ ॥

नायकस्याग्रे दूत्युक्तयः—अगणितगुणेन सुन्दर कृत्वा चारित्रमप्युदासीनम् । भवतानन्यगतिः सा विहितावर्तेन तरणिरिव ॥ १ ॥ अङ्गानि मे दहतु कान्तवियोगवह्निः संरक्षतां प्रियतमो हृदि वर्तते यः । इत्याशया शशिमुखी गलदश्रुबिन्दुधाराभिरुष्णमभिषिञ्चति हृत्प्रदेशम् ॥ २ ॥ अङ्गेऽनङ्गज्वरहुतवहश्चक्षुषि ध्यानमुद्रा कण्ठे जीवः करकिसलये दीर्घशायी कपोलः । अंसे वेणी कुचपरिसरे चन्दनं वाचि मौनं तस्यास्सर्वं स्थितमपि न तु त्वां विना क्वापि चेतः ॥ ३ ॥ अङ्गेष्वाभरणं करोति बहुशः पत्रेऽपि सञ्चारिणि प्राप्तं त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायति । इत्याकल्पविकल्पतल्परचनासङ्कल्पलीलाशतव्यासक्तापि विना त्वया वरतनुर्नैषा निशां नेष्यति ॥ ४ ॥ अचकमत सपल्लवां धरित्रीं मृदुसुरभिं विरहय्य पुष्पशय्याम् । भृशमरतिमवाप्य तत्र चास्यास्तव सुखशीतमुपैतुमङ्कमिच्छा ॥ ५ ॥ अच्छिन्नं नयनाम्बु बन्धुषु कृतं

मार्ग देखती रहती हूँ तथा किसी-किसी प्रकार फूलोंसे कामदेवकी पूजा करती रहती हूँ । इतनेपर भी यदि आप मुझपर दया नहीं करते तो यही कहना पड़ेगा कि भाग्य ही बलपूर्वक मेरा विरोध कर रहा है ॥२॥ हे प्रियतम ! जैसे कुमुदिनी चन्द्रमाको, चकवी सूर्यको, पपीहोंकी मण्डली बादलको, भौंरोंके समूह वसन्तको, कोकिल आमके वृक्षोंको तथा नवेली नारी अपने पतिको देखनेके लिये उतावली रहती है उसी प्रकार मेरा मन भी तुम्हें देखनेके लिये मचल रहा है ॥ ३ ॥ हे नाथ ! आपके बिछोहमें अमृतका समुद्र भी विषके समुद्र-सा जान पड़ता है, दक्षिणका शीतल पवन भी लपलपाती लपटों-जैसा लगता है और चित्त हरनेवाली फूलोंकी सुगन्ध भी दुष्टोंके समागमकी भाँति दुखदाई हो रही है । अधिक क्या कहूँ, आज मेरे प्राण भी मुझे भार जान पड़ रहे हैं ॥ ४ ॥ हे प्रियतम ! जैसे मुनि लोग प्रतिदिन ब्रह्मका, हंस मानसरोवरका और प्रसन्न हाथी फूली हुई सलईके वनसे घिरी नर्मदाका ध्यान करते हैं उसी प्रकार आपके दर्शनकी लालसासे मैं प्रतिदिन आपका ध्यान किया करती हूँ । वह दिन हमारे-लिये कितने पुण्यका होगा जब हम-तुम दोनों गले मिलेंगे ॥ ५ ॥ हे प्रियतम ! जबसे आप गए हैं तबसे मैं दिन-रात आपका वैसे ही ध्यान करती रहती हूँ जैसे कुमुदिनी चन्द्रमाकी और चकवी सूर्यकी बाट जोहती रहती है ॥ ६ ॥

नायकसे दूतीकी बात-चीत : हे सुन्दर ! आपने उसके गुणोंपर कोई ध्यान न देकर बड़ी उदासीनताका व्यवहार किया और इस प्रकार उस नवेलीको आपने भँवरमें पड़ी हुई नैयाके समान बना दिया जिसे आपके सिवाय कोई दूसरा सहारा नहीं है ॥ १ ॥ वह चन्द्रमुखी अपने नेत्रोंसे बहते हुए आँसुओंकी धारासे तपे हुए हृदयको यह सोचकर सींचती रहती है कि प्रियकी विरहाग्नि मेरी देहको भले ही जला डाले पर हृदयमें बसनेवाले प्रियतमकी रक्षा तो करनी ही है ॥ २ ॥ उस नवेलीके शरीरमें काम-रूपी अग्नि, नेत्रोंमें ध्यानका चिह्न, गलेमें प्राण, हथेलीपर देरतक रक्खा हुआ गाल, कन्धोंपर बाल, स्तनोंपर चन्दनका लेप तथा मुखमें मौन है; फिर भी उसका चित्त तुम्हारे सिवाय और कहीं नहीं लग पाता ॥ ३ ॥ वह नवेली बार-बार अपने अङ्गोंमें गहने पहनती है, तुम्हारा पत्र पानेपर तुम्हींको पाया हुआ समझती है तथा बिछौना बिछाकर देरतक तुम्हारा ध्यान किया करती है । इस प्रकार बिछौना बिछाने, गहने पहनने तथा सैकड़ों सङ्कल्प-विकल्पमें लीन वह बेचारी तुम्हारे बिना रात नहीं काट पावेगी ॥४॥ वह नवेली कोमल तथा सुगन्धित फूलोंके बिछौनेको छोड़कर धरती-पर बिछे हुए पत्तोंके बिछौनेपर बैठने लगती है । फिर अत्यन्त व्याकुल होकर उससे भी ऊब उठती है और आपकी सुख देनेवाली शीतल गोद पानेके लिये तरसने लगती है ॥ ५ ॥ तुम

तापः सखीष्वाहितो दैन्यं न्यस्तमशेषतः परिजने चिन्ता गुरुभ्योऽर्पिता । अद्य श्वः किल निर्वृतिं व्रजति सा श्वासैः परं खिद्यते विश्रब्धो भव विप्रयोगजनितं दुःखं विभक्तं तया ॥ ६ ॥ अनयनपथे प्रिये न व्यथा यथा दृश्य एव दुःप्रापे । म्लानैव केवलं निशि तपनशिला वासरे ज्वलति ॥ ७ ॥ अनुरागवर्तिना तव विरहेणोग्रेण सा गृहीताङ्गी । त्रिपुरारिपुणेव गौरी वरतनुरर्धावशिष्टेव ॥ ८ ॥ अभिनवनलिनीकिसलयमृणालवलयादि दवदहनराशिः । सुभग कुरङ्गदृशोऽस्या विधिवशतस्त्वद्वियोगपविपाते ॥ ९ ॥ अभ्रध्वानैर्मुखरितदिशः श्रेण्यस्तोयदानां धारासारैर्धरणिवलयं सर्वतः प्लावयन्ति । तेन स्नेहं वहति विपुलं मत्सखीयुक्तमेतत्त्वं निःस्नेहो यदसि तदिदं नाथ मे विस्मयाय ॥ १० ॥ अविरलपरिवाहैरश्रुणः सारणीनां स्मरदहनशिखोष्णश्वासपूरैश्च तस्याः । सुभग वत कृशाङ्ग्याः स्पर्धयान्योन्यमेभिः कियत इव पुरोभूः पङ्किला पांसुला च ॥ ११ ॥ अस्मिञ्चन्द्रमसि प्रसन्नमहसि व्याकोचकुन्दत्विषि प्राचीनं खमुपेयुषि त्वयि गते दूरं निजप्रेयसि । श्वासः कैरवकोरकीयति मुखं तस्यास्सरोजीयति क्षीरोदीयति मन्मथो दृगपि च द्राक्चन्द्रकान्तीयति ॥ १२ ॥ आदावञ्जनपुञ्जलिप्तवपुषां श्वासानिलोल्लासितप्रोत्सर्पद्विरहानलेन च ततः सन्तापितानां दृशाम् । सम्प्रत्येव निषेकमश्रुपयसा देवस्य चेतोभुवो भल्लीनामिव पानकर्म कुरुते कामं कुरङ्गेक्षणा ॥ १३ ॥ आद्यः कोपस्तदनु मदनस्त्वद्वियोगस्तृतीयः शान्त्यै दूतीवचनमपरः पञ्चमः शीतभानुः । इत्थं बाला निरवधि परं त्वां फलं प्रार्थयन्ती हा हा पञ्चज्वलनमधुना सेवते योगिनीव ॥ १४ ॥ आलम्ब्याङ्गणवापिकापरिसरे चूतद्रुमे मञ्जरीं सर्पत्सान्द्रपरागलम्पटरणद्भृङ्गाङ्गनाशोभिनीम् । मन्ये स्वां

उसके विषयमें चिन्ता न करो, अब वह आजकलमें सुखी हो जायगी (मर जायगी) क्योंकि उसने अपने दुःखका बटवारा इस प्रकार कर दिया है कि निरन्तर गिरते हुए आँसू तो उसने अपने भाई-बन्धुओंको दे दिए, सन्ताप सखियोंको दे डाला, सारी दीनता परिवारको दे दी तथा चिन्ता अपने बड़े-बूढ़ोंको समर्पित कर दी। अब उसे केवल एक ही कष्ट है कि उसकी साँसें बड़े वेगसे चलने लगी हैं ॥ ६ ॥ प्रियतमको सामने देखते हुए भी उनसे न मिल पानेपर जो पीड़ा होती है वह उन्हें न देखनेमें नहीं होती, जैसे रातमें सूर्यकान्तमणि केवल मलिन ही रहती है किन्तु दिनमें तो सामने दिखाई देते हुए भी सूर्यसे न मिलनेके कारण जल उठती है ॥ ७ ॥ प्रेमी शङ्करजी (अर्धनारीश्वर) से जुटी हुई पार्वतीजी जैसे आधी ही बच रहती हैं उसी प्रकार प्रेमसे भरे हुए तुम्हारे विशाल विरहसे जकड़ी हुई वह सुन्दरी भी आधी रह गई है अर्थात् दुबली हो गई है ॥ ८ ॥ हे भाग्यशाली ! उस मृगनयनीके दुर्भाग्यसे उसपर तुम्हारा विरह-रूपी वज्र गिर पड़ा इसलिये कमलके नये-नये पत्ते तथा कमलनालसे बने कङ्गन आदि शीतल वस्तुएँ भी उसके लिये दावानलके समान कष्टप्रद हो रही हैं ॥९॥ अपने घोर गर्जनसे सारे संसारमें कोलाहल मचा देनेवाले बादल अपनी मूसलाधार वर्षासे धरतीको सब ओरसे भरे दे रहे हैं, अतः मेरी सखी भी स्नेह (जल, प्रेम) धारण कर रही हो तो ठीक ही है, पर हे नाथ ! मुझे अचरज तो इस बातपर हो रहा है कि आपमें तनिक भी स्नेह (जल, प्रेम) क्यों नहीं है ॥ १० ॥ हे सुन्दर ! निरन्तर बहनेवाली आँसुओंकी नदीका प्रवाह तथा कामाग्निकी लपटोंसे तपे हुए साँसके पवनका प्रवाह ये दोनों परस्पर होड़ करके उस दुबली-पतली नवेलीके सामनेकी धरतीको एक साथ कीचड़वाली तथा धूलवाली बनाए दे रहे हैं ॥ ११ ॥ हा प्रियतम ! खिले हुए कुन्दकी-सी कान्तिवाला चन्द्रमा अपनी निर्मल चाँदनी फैलाता हुआ जिस समय पूर्वके आकाशपर चढ़ रहा है उस समय तुम यहाँ उससे दूर आ बैठे हो, इसीलिये उसकी साँस कोईंकी कली हुई जा रही है (फूल रही है, बढ़ रही है), उसका मुँह कमलके समान सङ्कुचित हो रहा है, कामदेव क्षीरसागरके समान उमड़ा पड़ रहा है और आँखें चन्द्रकान्तमणि—जैसी रिस रही हैं ॥ १२ ॥ वह मृगनयनी पहले तो अपनी आँखोंपर आँजनका लेप चढ़ाती है, फिर साँसके पवनसे जगाई हुई तथा बढ़ती हुई विरहरूपी आगसे उन्हें तपाती है और फिर आँसूके जलसे उन नेत्रोंको सींचती है। यह सब ऐसा जान पड़ रहा है मानो वह कामदेवके बाणोंपर विषका लेप चढ़ाकर फिर उन्हें आगमें तपाकर पानीमें बुझा रही हो ॥ १३ ॥ वह नवेली क्रोध-रूपी अग्नि, कामरूपी अग्नि, वियोग-रूपी अग्नि, शान्त रहनेके लिये दूतीके वचन-रूपी अग्नि और चन्द्रमारूपी अग्निकी पंचाग्नि तापनेवाली योगिनी बनकर इस तपस्याके फलके रूपमें केवल तुम्हें चाह रही है ॥१४॥ रोनेका स्वर रोकनेके कारण जिस नवेलीकी

तनुमुत्तरीयशकलेनाच्छाद्य बाला स्फुरत्कण्ठध्वाननिरोधकम्पितकुचश्वासोद्गमा रोदिति ॥ १५ ॥ आलेख्यस्थं कमलनयन त्वां कथञ्चिद्विधाय यावन्नेत्रे सफलजनुषी सेहते संविधातुम्। तावत्ताभ्यां वहति विमलो हन्त पूरः सुदीर्घः पातृद्वेष्टृव्यवहृतिरियं भाग्यचक्रानुसर्त्री ॥ १६ ॥ आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते तापो निःश्वसितेन दावदहनज्वालाकरालायते। सापि त्वद्विरहेण हन्त हरिणीरूपायते हा कथं कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयञ्शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १७ ॥ उदितं प्रियां प्रदि सहार्दमिति श्रदधीयत प्रियतमेन वचः। विदितेङ्गिते हि पुर एव जने समुदीरिताः खलु लगन्ति गिरः ॥१८॥ उद्धूयेत नतभ्रूः पक्ष्मनिपातोद्भवैः पवनैः। इति निर्निमेषमस्या विरहवयस्या विलोकते वदनम् ॥१९॥ उन्मीलन्ति नखैर्लुनीहि वहति क्षौमाञ्चलेनावृणु क्रीडाकाननमाश्रयन्ति वलयक्वाणैः समुत्त्रासय। इत्थं वञ्जुलदक्षिणानिलकुहूकण्ठीषु साङ्केतिकव्याहाराः सुभग त्वदीयविरहे तस्यास्सखीनां मिथः ॥ २० ॥ उपताप्यमानमलघूष्णिमभिश्वसितैस्सितेतरसरोजदृशः। द्रवतां न नेतुमधरं क्षमते नवनागवल्लिदलरागरसः ॥ २१ ॥ कन्दर्पज्वरसञ्ज्वराकुलतनोराश्चर्यमस्याश्चिरं चेतश्चन्दनचन्द्रमःकमलिनीचिन्तासु सन्ताम्यति। किन्तु क्षान्तिवशेन शीतलतनुं त्वामेवमेकं प्रियं ध्यायन्ती रहसि स्थिता कथमसौ क्षीणा क्षणं प्राणिति ॥ २२ ॥ कार्श्यं चेत्प्रतिपत्कला हिमरुचः स्थूलैव चेत्पाण्डिमा लीना एव मृणालिका यदि पुनर्बाष्पः कियानम्बुधिः। सन्तापो यदि शीतलो हुतवहस्तस्याः कियद्वर्ण्यतां किं तु त्वत्स्मृतिमात्रमेव शरणं लावण्यशेषं वपुः ॥२३॥

साँस फूल रही है और स्तन काँप रहे हैं वह चादरसे अपनी देह ढककर आँगनकी बावड़ीके तटपर लगे हुए उस आमकी डालको थामे रोती रहती है जिसमें बौरके फैले हुए घने परागमें लिपटी हुई भौंरियाँ गुञ्जार करती हुई शोभित हो रही हैं ॥१५॥ हे कमलके समान नेत्रोंवाले! वह किसी-किसी प्रकार तुम्हारा चित्र बनाकर और जैसे ही उसे देख-देखकर अपने नेत्र सफल करने लगती है त्यों ही उसके नेत्रमें निर्मल जलकी घनी बाढ़ आ जाती है। इसी प्रकार भाग्यके फेरके अनुसार वह अपने रक्षक और भक्षकके, दोनोंके बीच पड़ी रहती है ॥१६॥ तुम्हारे वियोगमें उसे अपने रहनेका स्थान जङ्गलके समान जान पड़ता है, प्यारी सखियाँ जालके समान जान पड़ती हैं और उसके भीतरका सन्ताप साँसके पवनकी सहायतासे दावानलकी भयङ्कर लपटोंके समान हो रहा है। इस प्रकार वह विरहिणी जङ्गलके दावानलसे घिरी हुई मृगीके समान हो रही है तथा सिंहके समान घूमता हुआ कामदेव भी उसके लिये यमराज बन रहा है ॥ १७ ॥ अपनी प्यारीके विषयमें दूतीने जो प्रेमपूर्वक बातें कहीं उनपर प्रियतमने विश्वास कर लिया। ठीक भी है, जो मनुष्य किसीके हृदयका भाव पहलेसे जानता है उसके विषयमें कही हुई बातें भी उसे शीघ्र ही लग जाती हैं ॥ १८ ॥ उस विरहिणीकी सखी इसीलिये बिना पलक गिराए उसका मुँह ताक रही है कि पलकोंको गिरानेसे निकले हुए पवनके वेगसे कहीं यह विरहिणी उड़ न जाय ॥ १९ ॥ हे सुन्दर! तुम्हारे बिछोहमें बेंत, दक्षिणके पवन तथा कोयलको देख-देखकर उसकी सखियाँ संकेतोंमें बातें करती हैं। बेंत उग आनेपर एक सखी कहती है कि 'उग रहे हैं' तो दूसरी कहती है कि 'नखोंसे चूँट दो।' पवनके लिये एक कहती है—'बह रहा है' तो दूसरी कहती है—'आँचलसे रोक दो।' कोयलके लिये एक कहती है—'घरकी फुलवारीमें घुस रहा है' तो दूसरी कहती है कि 'कँगनोंकी झनकारसे डरा दो' अर्थात् कोई उसके सामने बेंत, दक्षिणके पवन तथा कोयलका नामतक नहीं लेता ॥ २० ॥ नीले कमलके समान नयनोंवाली उस नवेलीका अधर अत्यधिक गरम साँसोंसे ऐसा पपड़िया गया है कि खाए हुए पानके बीड़ेका रस भी उसे नहीं भिगो पाता ॥ २१ ॥ यह अचरजकी बात है कि कामज्वरके तापसे तपी हुई देहवाली उस नवेलीका चित्त चन्दन, चन्द्रमा तथा कमलिनीके स्मरणसे भी दुखी हो जाता है, किन्तु सहनशीलताके कारण शीतल शरीरवाले केवल अपने प्रियतमका अर्थात् आपका ध्यान करती हुई एकान्तमें वह बैठी रहती है। न जाने वह वह दुबली-पतली जी कैसे रही है! ॥ २२ ॥ उस नवेलीकी दुर्बलताके सामने प्रतिपदा तिथिके चन्द्रमाकी कला भी मोटी जान पड़ता है, उसके उजलेपनके सामने कमलनाल भी मलिन जान पड़ता है, उसके आँसुओंके सामने समुद्र भी तुच्छ जान पड़ता है और उसका सन्ताप देखकर चन्द्रमा भी शीतल जान पड़ता है। अधिक कहाँतक कहें, तुम्हारा चिन्तन ही उसके लिये एक-मात्र शरण है क्योंकि उसके शरीरमें सुन्दरताके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बचा है ॥२३॥ उसे पूछकर क्या

किं पृष्टेन द्रुततरमितो गम्यतां सा प्रिया ते दृष्टा मार्गे दिवसमखिलं साश्रमेका मयैवम्। पान्थे पान्थे त्वमिति रभसोद्ग्रीवमालोकयन्ती दृष्टे दृष्टे न भवति भवानित्युदश्रुर्वलन्ती ॥ २४ ॥ कितव प्रपञ्चिता सा भवता मन्दाक्षमन्दसञ्चारा। बहुदायैरपि सम्प्रति पाशकसारीव नायाति ॥ २५ ॥ कुशलं तस्या जीवति कुशलं पृच्छामि जीवतीत्युक्तम्। पुनरपि तदेव कथयसि मृता न कथयामि या श्वसिति ॥ २६ ॥ कुसुमशयनेऽप्यङ्गं तास्यत्यनङ्गविवर्तनं वदनपवनैश्श्यामच्छायो बभूव सखीजनः। हृदयनिहितः शीतो लेपश्छमीति रवं करोत्यहह कठिनावस्था तस्यास्त्वयैवमुपेक्ष्यते ॥ २७ ॥ कुसुमादपि स्मितदृशः सुतरां सुकुमारमङ्गमिति नापरथा। अनिशं निजैरकरुणः करुणं कुसुमेषुरुत्तपति यद्विशिखैः ॥ २८ ॥ कोदण्डो विशिखो मनोनिवसतिः कामस्य तस्या अपि भ्रूवल्ली नयनाञ्चलं मनसि ते वासः समुन्मीलति। इत्थं साम्यविधौ तयोः प्रभवति स्वामिस्तथा स्निह्यतां तन्वाना तनुतां क्रमादतनुतां नैषा यथा गच्छति ॥ २९ ॥ क्षणं मूर्च्छामेति भ्रमति परितोऽथ क्षणमपि क्षणं प्रैति स्तम्भं निरवधि भवद्ध्याननिरता। क्षणं स्वप्ने बाला तव सुभग योगं च लभते क्षणं तेजः शम्भोर्नयनजमथ ध्यायति यमम् ॥ ३० ॥ क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे नयननिमीलनखिन्नया यया ते। श्वसिति कथमसौ रसालशाखां चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥३१॥ क्षणो दिनं दिनं मासो मासः संवत्सरं तथा। अयि कान्त भवत्सङ्गमन्तराऽस्याः प्रतीयते ॥ ३२ ॥ गन्तुं प्राङ्गणतो ददाति न मुहुःस्तम्भः कुरङ्गीदृशः साकूतं स्वरभङ्गविभ्रमकला दत्ते न वक्तुं कियत्। मार्गे यान्तमवेक्षितुं

करोगे? झटपट चले जाओ, क्योंकि मार्गमें मैंने तुम्हारी प्यारीको इस दशामें देखा है कि वह अकेले दिनभर रोती हुई प्रत्येक राहीको यह समझ-समझकर और सिर ऊँचा कर-करके देखती रही कि तुम हो पर जब यह जान पाती थी कि तुम नहीं हो तो आँखोंमें आँसू भरकर एकाएक घबड़ा उठती थी ॥ २४ ॥ हे धूर्त! लाजके कारण धीरे-धीरे चलनेवाली उस नवेलीको तुमने ऐसा धोखा दिया है कि इस समय भाँति-भाँतिके लालच देनेपर भी एक बार जालमें फँसकर छूटी हुई मैनाके समान वह सामने नहीं आ रही है ॥ २५ ॥ नायक और सखीमें बातचीत हो रही है – नायक : कहो वह कुशलसे तो है? सखी : (उदासीसे) जी हाँ, जी रही है। नायक : मैं उसका कुशल पूछ रहा हूँ। सखी : मैंने तो पहले ही कहा कि जी रही है। नायक : तुम तो बार-बार वही दुहरा रही हो। सखी : तो और क्या कहूँ? जिसकी साँसें चल रही हैं उसे क्या मरी कह दूँ! ॥ २६ ॥ फूलोंके बिछौनोंपर कामकी पीड़ासे छटपटाते रहनेके कारण उसके सब अङ्ग ढीले पड़ गए हैं, उसके मुखकी गरम-गरम साँसोंसे सखियाँतक काली पड़ गई हैं तथा छातीमें लगाया हुआ ठण्ढा लेप भी तापके कारण 'छम-छम' शब्द कर रहा है। हाय! उसकी तो यह दयनीय दशा हो रही है और तुम्हारे कानपर जूँतक नहीं रेंगते ॥ २७ ॥ यह बात झूठ नहीं है कि खिले हुए नेत्रवाली नवेलीका शरीर फूलसे भी बढ़कर कोमल है, इसीलिये तो निष्ठुर कामदेव अपने फूलके बाणोंसे सदा उसे ऐसा सन्ताप दे रहा है कि देखकर दया आने लगती है ॥ २८ ॥ हे स्वामी! कामदेवके पास धनुष-बाण हैं और वह मनमें बसता है। इधर उस नवेलीके पास भी भौंहोंका धनुष और चितवनके बाण हैं तथा वह तुम्हारे मनमें बसती है; इस प्रकार वह नवेली तथा कामदेव दोनों एकसे हैं। अतः, उसपर इस ढङ्गसे अनुराग कीजिए कि दुबली होती हुई वह नवेली कहीं अतनु (कामदेव, बिना शरीरवाली) न हो जाय अर्थात् मर न जाय ॥ २९ ॥ तुम्हारे वियोगमें वह नवेली कभी तो मूर्च्छित हो जाती है, कभी चारों ओर चक्कर काटने लगती है, कभी सदा तुम्हारा ही ध्यान करती हुई निश्चेष्ट हो जाती है, कभी स्वप्नमें तुम्हारा समागम पा जाती है, कभी कामको जलानेवाले शिवजीके तीसरे नेत्रकी अग्निका ध्यान करने लगती है तथा कभी अपनी मृत्युके लिये यमराजका ध्यान करने लगती है ॥ ३० ॥ जो क्षण भर भी तुम्हारा बिछोह नहीं सह सकती थी और दुखी होकर आँखें मूँद लेती थी वह इस लम्बे वियोगमें बौरोंसे भरी आमकी डालियाँ देखकर भला कैसे जीती रह पावेगी! ॥३१॥ हे सुन्दर! आपका समागम न मिलनेके कारण उसे एक क्षण भी दिनके समान, दिन भी मासके समान और महीना भी वर्षके समान जान पड़ता है ॥ ३२ ॥ कोई नायक अपनी प्यारीसे इसलिये रूठ गया है कि मैं जब उसके यहाँसे चलने लगा, उस समय वह न तो मुझसे मिलने आई, न मुझसे एक शब्द बोली, न उसने आँखें घुमाकर मेरी ओर देखा और न सेवकों-द्वारा कुछ

न सहते त्वां वाष्पवारिप्लवस्तस्याः कञ्चुकिनो भवन्ति सुभग त्वद्दर्शने सात्त्विकाः ॥ ३३ ॥ गलत्येका मूर्च्छा भवति पुनरन्या यदनयोः किमप्यासीन्मध्ये सुभग सकलायामपि निशि । लिखन्त्यास्तत्तस्याः कुसुमशरलेखं तव कृते समाधिं स्वस्तीति प्रथमपदभागोऽपि न गतः ॥ ३४ ॥ गायति गीते शंसति वंशे वादयति सा विपञ्चीषु । पाठयति पञ्जरशुकं तव सन्देशाक्षरं रामा ॥ ३५ ॥ गृहीतं ताम्बूलं परिजनवचोभिः कथमपि स्मरत्यन्तःशून्या सुभग तव मूर्तिं प्रतिदिनम् । तथैवास्ते हस्तः कलितफणिवल्लीकिसलयस्तथैवासीत्तस्याः क्रमुकफलकालीपरिचितम् ॥ ३६ ॥ गेहादङ्गणमङ्गणादपि बहिर्वाह्याच्च पृथ्वीतलं तामार्तिं यदि वेत्ति सैव सुमुखी किञ्चान्यदाचक्ष्महे । पर्यङ्केऽपि तवाङ्गसङ्गसुभगैः स्वेदाम्भसां निर्झरैर्धारामण्डपतामनीयत तया तस्मिन्रुदत्या मुहुः ॥ ३७ ॥ चन्द्रश्चन्दनकर्दमेन लिखितं सम्मार्ष्टि दग्धाधरा कामः पुष्पशरः किलेति सुमनोवर्गं लुनीते च यत् । वन्द्यं निन्दति यच्च मन्मथमसौ भङ्क्त्वाग्रहस्ताङ्गुलीस्तत्कामं सुभग त्वया वरतनुर्वातूलतां लम्भिता ॥ ३८ ॥ चित्राय त्वयि चिन्तिते स्मृतिभुवा सज्जीकृतं सर्वं धनुर्वर्तिं धर्तुमुपागतेऽङ्गुलियुगे बाणा गुणे योजिताः । प्रारब्धे तव चित्रकर्मणि पुनस्तद्वाणभिन्ना सती भित्तिं द्रागवलम्ब्य सिंहलपते सा तत्र चित्रायते ॥ ३९ ॥ चित्रोत्कीर्णादपि विषधराद्भीतिभाजो निशायां किं नु ब्रूमस्त्वदभिसरणे साहसं नाथ तस्याः । ध्वान्ते यान्त्या यदतिनिभृतं वालया सप्रकाशत्रासात्पाणिः पथि

सन्देश ही भिजवाया । इसका चतुरतापूर्वक समाधान करती हुई दूती कहती है—'हे सुन्दर ! जब तुम चलने लगते हो तो उस मृगनयनीका स्तम्भ सात्त्विक भाव उसे आँगनसे आगे नहीं बढ़ने देता, अर्थात् वह ठक रह जाती है, आगे पैर नहीं बढ़ पाते और तुमसे मिलनेतक नहीं आ पाती । उसका स्वरभङ्ग सात्त्विक भाव उसका कण्ठ गद्गद कर देता है अतः वह कुछ बोल भी नहीं पाती और उसके नेत्रोंमें आँसुओंकी ऐसी बाढ़ आ जाती है कि वह जाते समय तुम्हें देख भी नहीं सकती । ये स्तम्भ, स्वरभङ्ग और अश्रु सात्त्विक भाव उसमें इतनी अधिकतासे उमड़ आते हैं कि रनिवासके सेवक भी उसकी दशा देख-देखकर वैसे ही हुए रहते हैं अतः वे भी बेचारे क्या सन्देश लावें !' ॥ ३३ ॥ हे सुन्दर ! रातमें वह नवेली एक बार मूर्च्छित होकर जगी कि फिर उसे मूर्च्छा आ गई । इन दोनों मूर्च्छाओंके बीचमें जो हुआ उसे सुन लीजिए । उसने आपके लिये कामकी पीड़ाके समाचारसे भरा पत्र लिखना प्रारम्भ किया किन्तु पत्रके प्रारम्भमें 'स्वस्ति' शब्द-तक भी न लिख पाई थी कि उसे तुरन्त मूर्च्छा आ गई ॥३४॥ वह नवेली तुम्हारे सन्देशके शब्दोंके गीत बना बनाकर अलापा करती है, बाँसुरीके सुरोंमें उसीकी तान लिया करती है, वीणापर उसी लयसे बजाया करती है तथा पालतू सुग्गोंको वे ही शब्द पढ़ाया करती है ॥ ३५ ॥ हे भाग्यवान् ! उस नवेलीका मन किसी भी बातमें नहीं लगता । जब सखियाँ बार-बार आग्रह करती हैं तब वह किसी-किसी प्रकार पानका बीड़ा ले तो लेती है किन्तु सदा तुम्हारे ही स्वरूपका ध्यान करते रहनेके कारण हाथमें रक्खा हुआ पान तथा सुपारीके टुकड़े ज्योंके त्यों धरे रह जाते हैं ॥ ३६ ॥ वह सुन्दर मुखवाली नवेली घरमें बैठती है तो आँगनकी ओर देखती है, आँगनमें बैठती है तो बाहरकी ओर झाँकती है और बाहर आती है तो चारों ओर दृष्टि घुमाती है । सचमुच अपनी विपत्ति वही समझती है । अधिक कहाँतक कहें ? सदा रोती रहनेवाली उस नवेलीने सङ्कल्पसे पाए हुए तुम्हारे समागमके सुखसे निकले हुए पसीनेकी धारसे पपलँगको भी बरसातका बँगला बना लिया है ॥ ३७ ॥ हे सुन्दर ! तुमने उस सुन्दरीको पूरा पागल बना डाला है क्योंकि वह तुम्हारे वियोगमें घिसे हुए चन्दनसे बने हुए चन्द्रमाको मिटा डालती है, फूलोंके कामका बाण समझकर उन्हें तोड़ डालती है तथा दोनों हाथकी उँगलियाँ मटका-मटकाकर प्रशंसा करनेके योग्य कामदेवकी निन्दा किया करती है ॥ ३८ ॥ हे सिंहल देशके महाराज ! जब वह सुन्दरी तुम्हारा चित्र बनानेको सोचती है तो उसी समय कामदेव अपना धनुष सँभालने लगता है, वह जब दोनों उँगलियोंसे तूलिका (कूँची) पकड़ना चाहती है तो कामदेव अपने धनुषकी डोरीपर बाण चढ़ाने लगता है अर्थात् जब वह चित्र बनाना आरम्भ करती है तबतक कामदेव उसे अपने बाणोंसे ऐसा बेधता है कि वह भीतसे चिपककर स्वयं चित्र बन जाती है ॥ ३९ ॥ हे नाथ ! जो नवेली चित्रमें बने हुए साँपसे भी डरती है, उसने रातमें आपके पास आते समय जो साहस किया उसका मैं क्या वर्णन करूँ ! वह अँधेरेमें चुपकेसे चली जा रही थी, मार्गमें साँपके

फणिफणारत्नरोधी व्यधायि ॥ ४० ॥ चिरमपि कलितान्यपारयन्त्या परिगदितुं परिशुष्यता मुखेन । गतघृण गमितानि सत्सखीनां नयनयुगैः सममार्द्रतां मनांसि ॥ ४१ ॥ चूडारत्नमपान्निधिर्यदि भवेच्चेत्कुन्तलं गण्डकी कावेरी यदि कङ्कणं यदि पुनर्ग्रैवेयकं गौतमी । मुक्तास्त्रक्सुरनिम्नगा यदि यदि स्यान्मेखला नर्मदा क्षौमेयं यदि कौशिकी कृशतनोस्तापस्तदाप्येति वा ॥ ४२ ॥ ज्योत्स्ना मौक्तिकदाम चन्दनरसः शीतांशुकान्तद्रवः कर्पूरं कदली मृणालवलयान्यम्भोजिनीपल्लवाः । अन्तर्मानसमास्त्वया प्रभवता तस्याः स्फुलिङ्गोत्करव्यापाराय भवन्ति हन्त किमनेनोक्तेन न ब्रूमहे ॥ ४३ ॥ तन्वङ्ग्यास्त्वमिति प्रसादविशदं नासीति खेदालसं चक्षुर्द्वारपथावतारिणि जने व्यापारयन्त्या मुहुः । हर्षार्तिप्रभवाः प्रतिक्षणभुवः स्वेदाम्बुदाहज्वरे नेत्राम्भःकणिकाः पयोधरतटे पुष्यन्ति शुष्यन्ति च ॥ ४४ ॥ तव विरहमसहमाना सा तु प्राणान्विमुक्तवती । किन्तु तथाविधमङ्गं न सुलभमिति ते न मुञ्चन्ति ॥ ४५ ॥ तव विरहे मलयमरुद्दवानलः शशिरुचोऽपि सोष्माणः । हृदयमरुतमपि भिन्ते नलिनीदलमपि निदाघरविरस्याः ॥ ४६ ॥ तव विरहे विधुवदना मदनाधिक का न सीदन्ति । सीदसि विरहे यस्यास्साधु तपस्याफलं तस्याः ॥ ४७ ॥ तव विरहे हरिणाक्षी निरीक्ष्य नवमालिकां दलिताम् । हन्त नितान्तमिदानीमाः किं हतजल्पितैरथवा ॥ ४८ ॥ तव सा कथासु परिघट्टयति श्रवणं यदङ्गुलिमुखेन मुहुः । घनतां ध्रुवं नयति तेन भवद्गुणपूगपूरितमतृप्ततया ॥ ४९ ॥ तस्या महाविरहवह्निशिखाकलापतप्ते स्थितोऽसि हृदये सततं प्रियायाः । प्रालेयशीकरसमे

फणमें जो मणि चमक रहा था, उसे उसने इस विचारसे अपने हाथसे ढक दिया कि इसके प्रकाशमें कहीं कोई मुझे देख न ले ॥ ४० ॥ कामदेवके सन्तापसे उसका मुँह सूख गया था इसलिये वह बहुत देरसे सोची हुई बातोंको भी वह कह नहीं सकती थी । हे निष्ठुर ! उसकी ऐसी दशा देखकर उसकी सखियोंकी आँखें आँसुओंसे डबडबा आई तथा मन दयासे भर आया ॥ ४१ ॥ यदि उस नवेलीके मस्तकका मणि ही समुद्र, केश ही गण्डकी नदी, कङ्कन ही कावेरी, गलेकी सिकड़ी ही गोमती, मोतीकी माला ही गङ्गा, करधनी ही नर्मदा तथा साड़ी ही कौशिकी नदी बन जायँ तब कहीं उस दुबली-पतली देहवाली नवेलीका सन्ताप दूर हो सकता है ॥ ४२ ॥ हाय ! चाँदनी, मोतीकी माला, चन्दनका रस, चन्द्रकान्तमणिका जल, कपूर, केला, कमलनाल तथा कमलके पत्ते उस विरहिणीके लिये आगकी चिनगारियाँ बने जा रहे हैं क्योंकि उसके मनमें तो तुम बसे हुए हो । आह ! पर यह सब कहनेसे लाभ क्या ! अब मैं कुछ भी नहीं कहूँगी ॥ ४३ ॥ वह पतले अङ्गोंवाली नवेली द्वारपर आनेवाले मनुष्यको देख-देखकर जब समझती है कि तुम हो तो उसकी आँखें प्रसन्नतासे खिल उठती हैं, पर जब देखती है कि यह कोई दूसरा है तब दुखी होकर मुँद जानेवाले नेत्रोंसे प्रतिक्षण हर्ष और वेदनासे निकलते हुए आँसुओंकी बूँदें (मिलनकी आशासे) पसीजे हुए तथा (वियोगके कष्टके) तापसे भरे हुए उसके स्तनोंपर गिरकर खिल भी रही हैं तथा सूख भी रही हैं ॥ ४४ ॥ तुम्हारा बिछोह न सह सकनेके कारण उस नवेलीने तो अपने प्राण छोड़ दिए किन्तु उसके प्राण ही यह सोचकर उसे नहीं छोड़ रहे हैं कि ऐसा सुन्दर शरीर संसारमें कहाँ मिल पावेगा ॥ ४५ ॥ तुम्हारे विरहमें उसके लिये मलयपर्वतका पवन दावानल बन गया है, चन्द्रमाकी किरणें भी उसे गरम जान पड़ती हैं, भौंरोंकी गुञ्जार सुनकर उसका हृदय फटा जाता है तथा कमलके पत्ते भी उसे ग्रीष्म ऋतुके सूर्यके समान उष्ण जान पड़ते हैं ॥ ४६ ॥ हे कामदेवसे भी अधिक सुन्दरतावाले ! ऐसी कौन चन्द्रमुखी है जो तुम्हारे विरहमें दुखी न होती होगी, किन्तु तपस्याका फल तो उसीका असीम समझना चाहिए जिसके बिछोहमें तुम दुखी हो जाते हो ॥ ४७ ॥ हाय ! वह मृगनयनी विरहिणी तुम्हारे बिछोहमें खिली हुई नवमल्लिकाको देखकर आह !...(मर जायगी) पर अशुभ वचन कहना उचित नहीं इसीलिये आगे मैं कुछ नहीं कहती ॥ ४८ ॥ आपकी चर्चा सुनते समय उँगलीसे कान खुजलाती हुई उस नवेलीको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो उस चर्चाको सुननेसे न अघाती हुई वह आपके गुणोंसे भरे हुए उस कानमें आपके और भी गुण ठूँस ठूँसकर भरना चाहती हो ॥ ४९ ॥ भयंकर विरहाग्निकी लपटोंसे तपे हुए उस प्राणप्यारीके हृदयमें तो आप सदा बसे रहते हैं पर हे कृपालो ! पालेकी बूँदके समान शीतल अपने हृदयमें आप उस नवेलीको क्षण भरके लिये भी नहीं बसाते, यह क्या उचित है ?

हृदि सा कृपालो बाला क्षणं वसति नैव खलु त्वदीये ॥ ५० ॥ तस्यास्तापमहं नृशंस कथयाम्येणीदृशस्ते कथं पद्मिन्यास्सरसं दलं विनिहितं यस्यास्सतापोरसि । आदौ शुष्यति सङ्कुचत्यनु ततश्चूर्णत्वमापद्यते पश्चान्मुर्मुरतां दधद्दहति च श्वासावधूतं सखीम् ॥ ५१ ॥ तापोऽम्भःप्रसृतिम्पचः प्रचयवान्बाष्पः प्रणालोचितः श्वासाः कम्पितदीपवर्तिकलिकाः पाण्डिम्नि मग्नं वपुः । किञ्चान्यत्कथयामि रात्रिमखिलां त्वन्मार्गवातायने हस्तच्छत्रनिरुद्धचन्द्रमहसस्तस्याः स्थितिर्वर्तते ॥ ५२ ॥ तीव्रः कोऽपि विजृम्भते वरतनोस्त्वद्विप्रयोगज्वरः किं ब्रूमः सुभग त्वया परिजनः कौतूहलाद्दृश्यताम् । कण्ठे शेषमधैर्यगद्गदगिरा कृत्वा सखीनां तया गौराङ्गित्वमनङ्गतापसुहृदस्सर्वाः परित्याजिताः ॥ ५३ ॥ त्वं विनिर्जितमनोभवरूपः सा च सुन्दर भवत्यनुरक्ता । पञ्चभिर्युगपदेव शरैस्तां तापयत्यनुशयादिव कामः ॥ ५४ ॥ त्वच्चिन्तापरिकल्पितं सुभग सा सम्भाव्य रोमाञ्चिता शून्यालिङ्गनसञ्चलद्भुजयुगेनात्मानमालिङ्गति । किञ्चान्यद्विरहव्यथाप्रशमनीं सम्प्राप्य मूर्च्छां चिरात्प्रत्युज्जीवति कर्णमूलपठितैस्त्वन्नाममन्त्राक्षरैः ॥ ५५ ॥ त्वद्विरहे विस्तारितरजनौ जनितेन्दुचन्दनद्वेषे । बिसिनीव माघमासे विना हुताशेन सा दग्धा ॥ ५६ ॥ त्वद्देशागतमारुतेन मृदुना सञ्जातरोमाञ्चया त्वद्रूपाङ्कितचारुचित्रफलकेनावर्जयन्त्या दृशम् । त्वन्नामामृतसिक्तकर्णपुटया त्वन्मार्गवातायने नीचैः पञ्चमगीतिगर्भितगिरा नक्तन्दिवं स्थीयते ॥ ५७ ॥ त्वयि दृष्ट एव तस्या निर्वाति मनो मनोभवज्वलितम् । आलोके हि हिमांशोर्विकसति कुमुदं कुमुद्वत्याः ॥ ५८ ॥ त्वयि दृष्टे कुरङ्गाक्ष्याः स्रंसते मदनव्यथा । यथा ह्युदयभाजोन्दौ ग्लानिः कुमुदसंहतेः ॥ ५९ ॥ त्वामञ्जनीयति

॥ ५० ॥ हे अत्याचारी ! मैं उस मृगनयनीका सन्ताप तुम्हें क्या बताऊँ ! उसके तपे हुए हृदयपर जो कमलिनीका हरा पत्ता रक्खा जाता है वह पहले तो सूखता है, फिर सिकुड़ने लगता है, फिर चूर हो जाता है तथा फिर उसकी साँसके पवनसे फुर-फुर उड़कर उस सखीको ही जलाने लगता है ॥ ५१ ॥ उसकी देहके तापसे चिल्लूभर पानी भी सूख जाता है, बढ़े हुए आँसू नालीमें बहने योग्य हो जाते हैं, उसकी साँसोंके वेगसे दीवेकी लौ हिलने लगती है और उसका शरीर भी उजला हो गया है । अधिक क्या कहें, सारी रात हाथसे चन्द्रमाकी किरणोंकी ओट किए हुए वह तुम्हारे मार्गकी ओर खुलनेवाले झरोखेपर ही बैठी रहती है ॥ ५२ ॥ हे सुन्दर ! उस सुन्दरीको आपके बिछोहका जो भयङ्कर सन्ताप है उसे क्या कहें ! आप उसके पास रहनेवालोंकी ही दशा थोड़ा देख लें—उसके तापसे उसके पास बैठी हुई सहेलियोंकी गोराई कहने-मात्रको रह गई (लुप्त हो गई) अर्थात् वे उसकी गर्मीके कारण काली पड़ गईं अतः उसने कामदेवके सन्तापमें साथ देनेवाली अपनी उन सब सखियोंको भी अधीर होकर गद्गद वाणीसे कह-सुनकर अपने पाससे हटा दिया ॥ ५३ ॥ हे सुन्दर ! तुमने कामदेवकी सुन्दरता जीत ली है और वह नवेली तुमपर रीझी हुई है। इसी डाहसे मानो कामदेव एक साथ अपने पाँचों बाणोंसे उसे वेधे डाल रहा है ॥ ५४ ॥ हे सुन्दर ! वह सदा तुम्हारा ध्यान करती हुई अपनेको तुम्हारा ही स्वरूप समझती है, अतः अपनी दोनों भुजाएँ उठाकर अपनी ही देहको लपेट लेती है और इसी प्रसन्नतामें रोमाञ्चित भी हो उठती है। अधिक क्या कहें ! तुम्हारे बिछोहके सन्तापको कुछ देर दबाए रखनेवाली मूर्च्छामें जब वह पड़ी रहती है उस समय उसके कानमें तुम्हारे नामके अक्षररूपी मंत्र जब सुनाए जाते हैं तो वह फिर चौंककर जाग उठती है ॥ ५५ ॥ तुम्हारे बिछोहमें उस नवेलीको रातें बड़ी लम्बी जान पड़ती हैं। वह चन्द्रमा तथा चन्दन दोनोंसे कुढ़ती है और माघके महीनेमें कमलिनीकी भाँति बिना आगके ही जली जा रही है ॥ ५६ ॥ वह विरहिणी आपके देशसे आते हुए धीमे-धीमे पवनसे रोमाञ्चित होती हुई, आपके परम सुन्दर चित्रमें दृष्टि उलझाती हुई तथा आपके नामरूपी अमृतसे अपने कान सींचती हुई आपके मार्गकी ओरके झरोखेमें ऊँचे स्वरसे बिलखती हुई रात-दिन धरतीपर पड़ी रहती है ॥ ५७ ॥ तुम्हारा दर्शन हो जानेपर कामदेवसे जलाया हुआ उसका मन वैसे ही शीतल हो जाता है जैसे चन्द्रमारूपी प्रियतमका दर्शन पाकर कुमुदिनीका कुमुदरूपी मुख खिल उठता है ॥ ५८ ॥ तुम्हें देखते ही यदि उस मृगनयनीकी कामपीड़ा भाग जाय तो ठीक ही है क्योंकि चन्द्रमाके उदय होनेपर क्या कुमुदोंमें सङ्कोच (खेद) रह जाता है ? ॥ ५९ ॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली

कलासु विलोकयन्ती त्वां शृण्वती कुवलयीयति कर्णपूरम्। त्वां पूर्णिमाविधुमुखी हृदि भावयन्ती वक्षोनिलीननवनीलमणीकरोति ॥ ६० ॥ त्वामन्तः स्थिरभावनापरिणतं मत्वा पुरोऽवस्थितं यावद्दोर्वलयं करोति रभसान्मुग्धा समालिङ्गितुम्। तावत्तां निजमेव देहमचिरादालिङ्ग्य बाधातुरां दृष्ट्वा वृष्टिजलच्छलेन रुदितं मन्ये पयोदैरपि ॥ ६१ ॥ दत्तोऽस्याः प्रणयस्त्वयैव भवता चेयच्चिरं लालिता दैवादद्य किल त्वमेव कृतवानस्या नवं विप्रियम्। मन्युर्दुःसह एष यात्युपशमं नो सान्त्ववादैः स्फुटं हे निस्त्रिंश विमुक्तकण्ठकरुणं तावत्सखी रोदितु ॥ ६२ ॥ दधति स्फुटं रतिपतेरिषवः शितताँ यदुत्पलपलाशदृशः। हृदयं निरन्तरबृहत्कठिनं स्तनमण्डलावरणमप्यभिनत् ॥ ६३ ॥ दृष्टे चन्द्रमसि प्रलूनतमसि व्योमाङ्गणस्थेयसि स्फूर्जन्निर्मलतेजसि त्वयि गते दूरं निजप्रेयसि। श्वासं कैरवकोरकीयति मुखं तस्यास्सरोजीयति क्षीरोदीयति मन्मथो मृगदृशो दृक्चन्द्रकान्तीयति ॥ ६४ ॥ धत्ते दृष्टिमधीरतविभ्रमलवां सा पुष्पलावीजने चैत्रस्य क्षणमादरेण महता मौहूर्तिकान्पृच्छति। श्येनात्तुष्यति कोकिलध्वनिरुषा सन्त्यज्य लीलाशुकान्निश्शोक त्वयि दुर्लभे किमपरं शक्यं वराक्या तया ॥ ६५ ॥ धातुः शिल्पातिशयनिकषस्थानमेषा मृगाक्षी रूपे देवोऽप्ययमनुपमो दत्तपादः स्मरस्य। जातं दैवात्सदृशमनयोः सङ्गतं यत्तदेतच्छृङ्गारस्योपनतमधुना राज्यमेकातपत्रम् ॥६६॥ न सवर्णो न च रूपं न संस्क्रिया नैव सा प्रकृतिः। बाला त्वद्विरहापदि जातापभ्रंशभावेव ॥ ६७ ॥ न हारं नाहारं कलयति विहारं विषमिव स्मरन्ती सा रामा सुभग भवतश्चागमदिनम्। परं क्षीणा दीना परम-

वह नवेली जब अपना शरीर सजाने लगती है तो तुम्हारे लिये आँखें फैलाकर देखती हुई तुम्हें ही अपने नेत्रोंका आँजन बना लेती है, तुम्हारी चर्चा सुनती हुई तुम्हें ही अपने कानमें कमलका कर्नफूल बना लेती है और अपने हृदयमें तुम्हारा ध्यान करती हुई छातीपर तुम्हें ही नये नीलमणिका हार बना लेती है ॥ ६० ॥ जब वह विरहिणी जमकर आपका ध्यान करती है तो उसे ऐसा लगता है कि आप उसके सामने ही खड़े हैं। उस समय जैसे ही आपका आलिङ्गन करनेके लिये वह अपनी भुजाएँ झटकेसे बढ़ाती है वैसे ही उसीकी देह उसकी भुजाओंमें आ जाती है। मुझे तो ऐसा लगता है कि उसे आपके विरहमें इस प्रकार कष्ट पाती देखकर ये बादल भी मानो दुखी होकर वर्षारूपी आँसू बहाकर रो रहे हैं ॥ ६१ ॥ हे दुष्ट! तुम्हींने उसे प्रेम दिया, तुम्हींने बहुत दिनतक उसे प्यार किया और दुर्भाग्यवश तुम्हींने आज उसका नये ढङ्गसे अपकार किया (उसकी सौतसे प्रेम किया) इसलिये उसे क्रोध आ गया। ऐसा दुःसह क्रोध ढाढ़सकी बातोंसे थोड़े ही शान्त होता है। अतः जबतक तुम उससे जाकर मिल न लोगे तबतक वह बेचारी गला फाड़-फाड़कर रोती ही रहेगी ॥ ६२ ॥ निश्चय ही कामके बाण बड़े तीखे होते हैं क्योंकि उस कमलनयनीके बड़े-बड़े कठोर स्तनोंसे सदा ढके रहनेवाले हृदयको भी वे फाड़े डाल रहे हैं ॥ ६३ ॥ अपने प्रियतम (तुम्हारे) दूर हो जानेपर जब आकाशमें अन्धकारको नष्ट करनेवाला तथा स्वच्छ चाँदनी बिखेरनेवाला चन्द्रमा दिखाई पड़ा उस समय उस मृगनयनीकी साँसें कुमुदकी कलियोंके समान खिलने लगीं अर्थात् बढ़ने लगीं, मुख भी कमलके समान मलिन होने लगा, कामपीड़ा भी क्षीरसागरके समान बढ़ने लगी तथा आँखें भी चन्द्रकान्त मणिके समान गीली होने लगीं ॥ ६४ ॥ वह विरहिणी हड़बड़ीसे भरी आँखोंसे चैतमें फूल तोड़नेवाली मालिनोंको देखती है, बड़े आदरसे ज्योतिषियोंसे पूछती है, कोयलकी कूक सुनकर क्रोधित होकर खेलके सुग्गोंको छोड़ देती है और बाजको देखकर प्रसन्न होती है। हे निर्दयी! तुम्हारे न मिलनेपर वह बेचारी और कर ही क्या सकती है! ॥ ६५ ॥ यह मृगनयनी ब्रह्माकी कलाकी कसौटी है तथा कामदेवको पराजित करनेवाले आप भी सुन्दरतामें बेजोड़ हैं, संयोगवश जो आप दोनोंका समागम हो गया है इससे शृङ्गार रसका इस समय एकच्छत्र राज्य हो गया है ॥ ६६ ॥ तुम्हारे बिछोह-रूपी विपत्तिमें पड़ी हुई वह नवेली बिगड़े हुए शब्दोंके समान हो रही है क्योंकि न तो उसका पहलेका-सा रङ्ग रह गया, न सुन्दरता रह गई, न शरीरकी सजावट रह गई और न वह पहलेका-सा स्वभाव ही रह गया तथा अपभ्रंश शब्दोंकी भी कहीं समानता नहीं मिलती, न तो शुद्ध शब्दोंकी भाँति उनका रूप ही चलता, न तो सूत्रोंसे उनकी सिद्धि ही होती और न उनका कुछ मूल ही मिलता ॥ ६७ ॥ हे सुन्दर! वह दुबली, दयनीय, दुखिया, सुन्दर मुखवाली तथा चञ्चल नेत्रवाली रमणी तुम्हारे

सुखहीना सुवदना कुहूपक्षग्लौवच्चपलनयनाङ्गीकृतगतिः ॥ ६८ ॥ नायं मुञ्चति सुभ्रुवामपि तनुत्यागे वियोगज्वरस्तेनाहं विहिताञ्जलिर्यदुपते पृच्छामि सत्यं वद। ताम्बूलं कुसुमं पटीरमुदकं यद्बन्धुभिर्दीयते स्यादत्रैव परत्र तत्किमुचितज्वालावलीदुःसहम् ॥६९॥ निश्वासा अपि मन्दतां वत गताः को हन्त वाचां क्रमस्ते ते दर्शनविभ्रमा अपि हताः सञ्चारशैली क सा। श्रोण्योर्वा स्तनयोः पृथुत्वमगमत कुत्रोदरं तत् पुनस्त्वत्पादैकगतेर्दशेयमधुना देवः प्रमाणं पुनः ॥७०॥ निवसति यदि तव हृदये सा बाला सुभग वज्रघटितेऽस्मिन्। तत्खलु कुशलं तस्या मदनशरैस्ताड्यमानायाः ॥ ७१ ॥ नीरागा मृगलाञ्छने मुखमपि स्वं नेक्षते दर्पणे त्रस्ता कोकिलकूजितादपि गिरं नोन्मुद्रयत्यात्मनः। चित्रं दुःसहदाहदायिनि धृतद्वेषापि पुष्पायुधे सा बाला सुभगं प्रति प्रतिपदं प्रेमाधिकं पुष्यति ॥ ७२ ॥ नैष्ठुर्यं कलकण्ठकोमलगिरां पूर्णस्य शीतद्युतेस्तिग्मत्वं वत दक्षिणस्य मरुतो दाक्षिण्यहानिश्च ताम्। स्मर्तव्याकृतिमेव कर्तुमवलां सन्नाहमातन्वते तद्विघ्नः क्रियते तृणादिचलनोद्भूतैस्त्वदातिभ्रमैः ॥ ७३ ॥ परस्मिन्नपि गोष्ठीषु कान्त त्वन्नाम्नि विश्रुते। सहसा सज्जकर्णाऽसौ जायते मृगलोचना ॥ ७४ ॥ पाणिर्नीरवकङ्कणः स्तनतटी निष्कम्पमानांशुका दृष्टिर्निश्चलतारका समभवन्निस्ताण्डवं कुण्डलम्। कश्चिन्नार्पितया समं कृशतनोर्भेदो भवेन्नो यदि त्वन्नामस्मरणेन कोऽपि पुलकारम्भः समुज्जृम्भते ॥ ७५ ॥ पीयूषाकरमालतीमलयभूमुख्या मताः शीतला हन्तामी अपि तीव्रदाहकतया जाता ममाशान्तये। तन्मन्ये सुभग त्वमेव शरणं वैद्यस्तवैवं करस्पर्शो भेषजमित्यनुग्रहदृशा तां साम्प्रतं जीवय ॥ ७६ ॥ प्रभो याचे भिक्षां वत नतशिरास्त्वामहमिदं न चेदस्ति प्रीतिः

आनेके दिन गिनती हुई हार नहीं पहनती, भोजन नहीं करती तथा खेलको भी विष समझती है। इस प्रकार वह अमावास्याके चन्द्रमाके समान समाप्त हुई जा रही है ॥६८॥ हे यदुवंशके स्वामी! सुन्दर भौहोंवाली नवेलियोंको यह वियोगका ताप देह-त्याग करनेपर भी नहीं छोड़ता इसलिये मैं हाथ जोड़कर आपसे पूछती हूँ। आप सच बताइए कि पान, फूल, चन्दन तथा जल आदि पदार्थ जो श्राद्धमें भाई-बन्धु दिया करते हैं उसके साथ क्या यह वियोगका असह्य ताप भी परलोकमें प्राप्त होता है? ॥ ६९ ॥ एकमात्र आपके चरणमें शरण पानेवाली उस विरहिणीकी बोलीकी तो बात क्या, उसकी साँसें भी धीमी पड़ गई हैं, वह चितवनकी सुन्दरता और चलनेका ढङ्ग तथा नितम्ब और स्तनोंकी मोटाई भी न जाने कहाँ चली गई, पेटकी क्या बात है! उसकी ऐसी दशा हो गई है, आगे आप जो उचित समझें ॥ ७० ॥ हे सुन्दर! कामदेवके बाण उसे बेधे डाल रहे हैं। अतः यदि आपके इस वज्रसे बने हृदयमें वह रहने लगे, तभी उसका कल्याण हो सकता है ॥ ७१ ॥ उस नवेलीको चन्द्रमासे घृणा हो गई है, अतः वह चन्द्रमाके समान दिखाई देनेवाले दर्पणमें अपना मुँह नहीं देखती, कोयलकी कूकसे डर जानेके कारण अपने मुखसे भी वैसी बोली नहीं निकालता पर अचरज तो यह है कि असह्य ताप देनेवाले कामदेवसे विरोध करती हुई भी वह अपने प्रियतमपर अत्यधिक प्रेम बढ़ाती जा रही है ॥ ७२ ॥ कोयलकी कूककी निठुरता, पूर्ण चन्द्रमाकी गर्मी, दक्षिणके पवनकी कठोरता, ये सभी उस नवेलीको समाप्त करनेके लिये कमर कसे हुए हैं, पर तिनके-पत्ते आदिके खड़कनेसे जो उसे आपके आनेका भ्रम हो जाता है वही उसके प्राण देनेमें बाधक हो जाता है ॥ ७३ ॥ हे प्रियतम! जहाँ भी कुछ मनुष्य इकट्ठे बैठे रहते हैं और उसमें आपका नाम कोई ले लेता है तो वह मृगनयनी वहाँ ही अपने कान लगाने लगती है ॥ ७४ ॥ उसके हाथके कंगन बजते नहीं, स्तनोंपर ढका हुआ वस्त्र भी नहीं हिलता, नेत्रोंकी पुतलियाँ एकटक रह जाती हैं तथा कुंडल भी नहीं डोलते। अब यदि तुम्हारे नामके स्मरणसे उसकी देहमें रोंगटे न उभर आते तो चित्रलिखी नवेलीमें और उसमें कोई अन्तर न रह जाता ॥ ७५ ॥ हे सुन्दर! मैं जानती हूँ कि चन्द्रमा, मालती और चन्दन ये बड़े शीतल होते हैं। किन्तु हाय! उस विरहीके सन्तापको तो ये सब भी अत्यधिक दाहक होनेसे नहीं शान्त कर पाते। तब तो मैं समझती हूँ कि आप ही उसकी शरण हैं, आप ही वैद्य हैं तथा आपके हाथका स्पर्श ही उसकी औषधि है। अतः अपनी कृपाभरी चितवनसे इस समय चलकर उसे जिला दीजिए ॥७६॥ हे नाथ! मैं सिर नवाकर आपसे भीख माँगती हूँ कि यदि उसपर आपका प्रेम न भी हो तब भी आप इस समय उसपर दया कीजिए क्योंकि वह भोले हृदयवाली आपका नाम जपती हुई प्राण छोड़ देगी। अतः, हे पुण्यात्मा!

कुरु तदपि कारुण्यमधुना। जपन्ती त्वां प्राणाँस्त्यजति बत सा मुग्धहृदया तदभ्येत्येदानीं वितर नयने तत्र सुकृतिन् ॥ ७७ ॥ प्राणेश तव विरहिणी हिमकरकिरणेषु हर्म्यमिलितेषु । सन्तापनिःसहाङ्गी मुञ्चति निचयं चकोराणाम् ॥ ७८ ॥ प्रादुर्भूते नवजलधरे त्वत्पथं द्रष्टुकामाः प्राणाः पङ्केरुहदलदृशः कण्ठदेशं प्रयान्ति । अन्यत्किं वा तव मुखविधुं द्रष्टुमुड्डीय गन्तुं वक्षः पक्षं सृजति बिसिनीपल्लवस्य च्छलेन ॥ ७९ ॥ बिभ्राणा हृदये त्वया विनिहितं प्रेमाभिधानं नवं शल्यं यद्विदधाति सा विधुरिता साधो तदाकर्ण्यताम्। शेते शुष्यति ताम्यति प्रलपति प्रम्लायति प्रेङ्खति भ्राम्यत्युल्लुठति प्रणश्यति गलत्युन्मूर्च्छति त्रुट्यति ॥ ८० ॥ भवता मदना विजितस्तेन च निहताऽबला बलात्सुमुख । अथ यदि शरणं भुवनत्रये भवान्केवलो दयितः ॥ ८१ ॥ मम रूपकीर्तिमहरद्भुवि यस्तदनुप्रविष्टहृदयेयमिति। त्वयि मत्सरादिव निरस्तदयः सुतरां क्षिणोति खलु तां मदनः ॥ ८२ ॥ मृगशिशुदृशस्तस्यास्तापं कथं कथयामि ते दहनपतिता दृष्टा मूर्तिर्मया न हि वैधवी। इति तु विदितं नारीरूपः स लोकदृशां सुधा तव शठतया शिल्पोत्कर्षो विधेर्विघटिष्यते ॥ ८३ ॥ मृणालीव क्षामा तदपि तव साहाय्यविधुरा मुहुः स्मारैर्बाणैर्गरलनिभृतैस्ताडिततरा। व्रजत्येषा मूर्च्छामथ यदि न तामेत्य सहसा विदध्यास्तद्रक्षां कथमिव भवित्री स्मर मनाक् ॥८४॥ मुहुर्व्यजनवीजनैस्सरसचन्दनासेचनैस्सरोजदलवेष्टनैरपि न चेष्टते सुन्दरी। तथापि तव नामनि प्रियसखीभिरावेदिते निवेदयति जीवितं श्रवणसीम्नि रोमोद्गमः ॥८५॥ या चन्द्रस्य कलङ्किनो जनयति स्मेराननेन त्रपां वाचा मन्दिरकीरसुन्दरगिरो या सर्वदा निन्दति। निःश्वासेन तिरस्करोति कमलामोदान्वितान्यानिलान्सा तैरेव रहस्त्वया विरहिता काञ्चिद्दशां नीयते ॥ ८६ ॥ या दक्षिणा त्वमस्यामद-

---

झटपट चलकर उसपर अपनी दृष्टि डाल आइए ॥७७॥ हे प्राणनाथ ! वियोगका सन्ताप न सह सकनेके कारण वह विरहिणी छतपर पड़ती हुई चन्द्रमाकी किरणोंको समाप्त कर डालनेके लिये वहाँ चकोरोंका समूह छोड़ देती है ॥७८॥ नये बादलोंके दिखाई देते ही तुम्हारा मार्ग देखनेके लिये उस कमलयनीके प्राण गलेतक आ जाते हैं। अधिक क्या कहूँ ? तुम्हारा मुखचन्द्र देखनेकी चाहमें उड़कर तुम्हारे पास पहुँचनेके लिये उसका वक्षःस्थल अपने ऊपर रक्खे हुए कमलके पत्तोंके रूपमें मानो पङ्ख लगा रहा है ॥७९॥ हे सज्जन ! उसके हृदयमें तुमने जो प्रेमकी नई कील गड़ा दी है उसे धारण करती हुई वह क्या करती है उसे सुनिएगा ? वह लेटती है, सूखती है, खिन्न रहती है, थकती है, अप्रसन्न रहती है, इधर-उधर फिरती रहती है, चक्कर खाती है, छटपटाती है, मरी-सी हो जाती है, गलने-सी लगती है, मूर्च्छित हो जाती है और इस प्रकार दुबली होती जा रही है ॥ ८० ॥ हे सुन्दर मुखवाले ! आपने जिस कामदेवको जीत लिया है वह बलपूर्वक उस अबलाको मारे डाल रहा है, अब यदि तीनों लोकोंमें उसे कोई बचानेवाला है तो उसके एकमात्र प्रियतम आप ही हैं ॥ ८१ ॥ निष्ठुर कामदेव मानो इसी डाहसे उसे घोर कष्ट देता जा रहा है कि जिस छैलेने मेरी सुन्दरता तथा कीर्तिको नीचा दिखाया है उसीमें इस नवेलीका मन लगा है ॥ ८२ ॥ उस मृगनयनीके सन्तापकी दशाका मैं किस प्रकार वर्णन करूँ क्योंकि मैंने आगमें पड़ी हुई चन्द्रमाकी मूर्ति देखी ही नहीं, नहीं तो उसकी समता दे ही डालती। हाँ, इतना अवश्य जानती हूँ कि लोगोंकी आँखोंके लिये अमृतके समान वह ब्रह्माकी एक अति उत्तम कला बनी हुई नवेली तुम्हारी नीचताके कारण सूखती चली जा रही है ॥ ८३ ॥ एक तो वह वैसे ही कमलनालकी भाँति दुबली तथा उजली है, दूसरे तुम्हारा समागम भी उसे नहीं मिल रहा है । तिसपर कामदेव उसे अपने विष-बुझे बाणोंसे ऐसा वेध रहा है कि वह मूर्च्छित हो-हो जा रही है। अब भी यदि चलकर तुम उसकी रक्षा नहीं करते तो तुम ही थोड़ा सोचो कि उसकी क्या दशा होगी ! ॥ ८४ ॥ उस सुन्दरीकी यह दशा हो गई है कि बार-बार पङ्खा डुलाने, गीले चन्दनका लेप करने और कमलके पत्ते लपेटनेसे भी वह नहीं हिलती-डुलती। बस जब सखियाँ उसके कानमें तुम्हारा नाम सुनाती हैं तो उसके कानके पास उठे हुए रोंगटे देखकर ही लोग समझते हैं कि वह जीवित है ॥ ८५ ॥ वह नवेली अपने निर्मल मुखसे जिस चन्द्रमाको लज्जित किया करती थी, अपनी मीठी बोलीसे घरके जिस सुग्गेकी मधुर वाणीको नीचा दिखाती थी तथा अपनी सुगन्धित साँसोंसे कमलकी सुगन्ध भरे जिस पवनको नीचा दिखाती थी, वे ही सब आज तुम्हारे बिछोहमें उस नवेलीकी दुर्दशा किए डाल रहे हैं ॥ ८६ ॥ जो

क्षिणो दक्षिणस्तदितरस्याम्। जलधिरिव मध्यसंस्थो न वेलयोस्सदृशमाचरसि॥८७॥ यावद्यावद्भवति कलया पूर्णकामः शशाङ्कस्तावत्तावद्द्युतिमयवपुः क्षीयते सा मृगाक्षी। मन्ये धाता घटयति विधुं सारमादाय तस्यास्तस्माद्यावन्न भवति सखे पूर्णिमा तावदेहि ॥ ८८ ॥ राकासुधाकरकरैर्नलिनीदलैश्च नीहारहारघनसारभरैः किमेतैः। किं वा भयेन हरिचन्दनपङ्कसेकैर्न त्वां विना मृगदृशः परितापशान्तिः ॥ ८९ ॥ रुष्टे का परपुष्टे मन्दे का हन्त मारुते चर्चा। त्वयि गतवति हृदयेशे जीवनदातापि जीवनं हरति ॥ ९० ॥ वर्षन्ति स्तनयित्नवो न सरले धारागृहे वर्तसे गर्जन्ति प्रतिकूलवादिनि न ते द्वारि स्थिता दन्तिनः। इत्येवं गमितो घनव्यतिकरः सा राजपुत्री पुनर्वातो वाति कदम्बपुष्पसुरभौ केन प्रतारिष्यते ॥ ९१ ॥ वाचस्तावदपेक्षते पिकयुवा लम्बालकानां श्रियः भृङ्गाली विरुणद्धि चूतकलिका सौभाग्यमाशंसति किञ्चान्यत्कथयामि निर्दय दशा तस्यास्तथा वर्तते निश्वासानपि हन्तुमिच्छति यथा क्रूरो वसन्तानिलः ॥ ९२ ॥ विद्वन्नास्ति निवेदनं तव पुरो यद्भावि तन्नान्यथा दोषस्तेन तवापि कः परुषता युक्तैव ते चेतसि। किं त्वेषा प्रकृतेरतीव सरला त्वन्न्यस्तचित्ताऽबलाऽधीरा मुग्धमतिः प्रयाति सलिलं देयं त्वयेत्यर्थ्यते ॥ ९३ ॥ विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्तर्जनितजडिमकाकुव्याकुलं व्याहरन्ती। तव कितव विधायामन्दकन्दर्पचिन्तारसजलनिधिमग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी ॥ ९४ ॥ विमुञ्चन्त्या प्राणांश्चिरविरहदुःखासहनया तथा सन्दिष्टं ते कठिनहृदयापश्चिममिदम्। अपत्यं बालैका मम विधिहतायास्सलिलदा तथा नेयं सेव्या व्यसनरुचये दायत इति ॥ ९५ ॥ विरहविषमः कामः कामं तनुं कुरुते तनुं दिवसगणनादक्षश्चायं व्यपेतघृ-

तुम्हें चाहती है उसे तुम चाहते नहीं किन्तु जो तुम्हें नहीं चाहती उसे तुम चाहते फिरते हो। बीचमें रहनेवाला समुद्र जैसे दोनों कूलोंसे समान व्यवहार रखता है वैसा तुम क्यों नहीं करते ॥ ८७ ॥ हे मित्र! पूर्णिमाके आनेसे पहले ही उससे जाकर मिल जाओ क्योंकि ज्यों-ज्यों चन्द्रमा एक-एक कलासे बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों वह सुन्दर शरीरवाली नवेली दुबली होती जा रही है। अतः, जान पड़ता है कि ब्रह्मा उसकी सुन्दरता ले-लेकर ही चन्द्रमाको पुष्ट कर रहा है ॥ ८८ ॥ पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणों, कमलके पत्तों, पाला, मोतीके हार तथा कपूरके ढेर, और कहनेमें डर किस बातका, यहाँतक कि नन्दन वनके चन्दनके घने लेपसे भी उस मृगनयनीका सन्ताप विना तुम्हारे नहीं शान्त हो सकता ॥ ८९ ॥ क्रोधित कोयल तथा धीमे बहनेवाले पवनकी तो बात ही क्या है, तुम्हारे (प्राणनाथके) चले जानेपर जीवन (जल, प्राण) देनेवाला (मेघ) भी उसका जीवन हरे ले रहा है ॥९०॥ बरसात होते समय तो उस राजकुमारीको हमलोग यह कहकर बहका लेती हैं कि 'हे भोले स्वभाववाली! यह बादलोंके बरसनेका शब्द नहीं है, वरन् घरमें फुहारे चल रहे हैं। हे उलटी बात बोलनेवाली! ये बादल नहीं गरज रहे हैं वरन् द्वारपर हाथी चिग्घाड़ रहे हैं।' अतः वर्षाका समय तो वह किसी-किसी प्रकार बिता लेती है किन्तु खिले हुए कदम्बके फूलोंकी सुगन्धसे भरा हुआ जो वर्षाका पवन इस समय बह रहा है उसके विषयमें उसे क्या कहकर बहलाया जाय! ॥ ९१ ॥ युवक कोयल उसकी बोली छीन रहा है, भौंरोंकी पाँत उसके लम्बे-लम्बे बालोंकी शोभा छीन रही है और आमका बौर उसके सोहागपर ताक लगाए बैठा है, हे निर्दयी! मैं और कहाँतक उसकी दशा बताऊँ! अब कठोर वसन्तका पवन उसकी साँसें भी छीननेको मचल रहा है ॥ ९२ ॥ हे विद्वान्! मैं आपके सामने क्या निवेदन करूँ! जो होगा सो ठीक ही होगा, उसमें आपका दोष भी क्या है? आपका चित्त जो कठोर हो गया है वह भी उचित ही है, किन्तु वह सरल प्रकृतिकी भोली-भाली नवेली आपमें ही चित्त लगाकर अब प्राण दे देना चाहती है। उसने आपसे यही प्रार्थना की है कि 'मुझे आप पानी दे दीजिएगा' ॥ ९३ ॥ कामदेवकी चिन्ताके महासागरमें डूबी हुई वह मृगनयनी जब तुम्हारा ध्यान करने लगती है उस समय उसका शरीर रोमाञ्चित हो उठता है, वह आनन्द-विभोर होकर सी सी करने लगती है तथा उसके मुँहसे ठीक-ठीक शब्द भी नहीं निकल पाते ॥९४॥ हे कठोर हृदयवाले! बहुत दिनोंके विरहके दुःखको सहनेमें असमर्थ होकर प्राण छोड़ती हुई उस नवेलीने तुम्हारे लिये यह अन्तिम सन्देश भेजा है कि 'मेरे मरनेके पश्चात् मुझ अभागिनको पानी देनेवाली मेरी सन्तान यही एक लड़की है अतः इसकी सेवा करते रहना तथा इसे किसी प्रमादीको न दे बैठना' ॥ ९५ ॥ इस विरहके समय कामदेव भी प्रबल होकर उसकी देह अत्यन्त दुबली किए डाल रहा है, निष्ठुर

णोपमः। त्वमपि वशगो मानव्याधेर्विचिन्तय नाथ हे किसलयमृदुर्जीवत्येवं कथं प्रमदाजनः ॥ ९६ ॥ विरहे तव तन्वङ्गी कथं क्षपयतु क्षपाम्। दारुणव्यवसायस्य पुरस्ते भणितेन किम् ॥ ९७ ॥ विलासिन्नासीने प्रतिघसतिमध्यं त्वयि तदा दशां दीप्तां कृत्वा गृहमनु पदान्येत्य कतिचित्। मरुस्त्वन्तर्वाति द्रुतमिति भवद्दर्शनधिया प्रदीपो द्वाराणां शतमिति तया किन्न शमितः ॥ ९८ ॥ विलिम्पत्येतस्मिन्मलयजरसद्रोणमहसा दिशां चक्रं चन्द्रे सुकृतमथ तस्या मृगदृशः। दृशोर्बाष्पः पाणौ वदनमसवः कण्ठकुहरे हृदि त्वं ह्रीः पृष्ठे वचसि च गुणा एव भवतः ॥ ९९ ॥ विषतां निषेवितमपक्रियया समुपैति सर्वमिति सत्यमदः। अमृतस्रुतोऽपि विरहाद्भवतो यदमूं दहन्ति हिमरश्मिरुचः ॥ १०० ॥ व्यजनं व्यजनं जलं जलं घनसारो घनसार इत्यपि। अवरोधगृहेषु सुभ्रुवां कुररीणामिव कातरो ध्वनिः ॥ १०१ ॥ शोकोत्पत्तिरशोकतः सुमनसो यद्वैमनस्योदयो वैरस्यञ्च रसालतो विकलता तावत्कलानां निधेः। किञ्चान्यन्नलदो भवत्यनलदो निर्णीतमुन्नीयते वामः केवलमेक एव न भवानस्यामशेषं जगत् ॥१०२॥ श्वासान्मुञ्चति भूतले विलुठति त्वन्मार्गमालोकते दीर्घं रोदिति निक्षिपत्यविरतं क्षामां भुजावल्लरीम्। किञ्च प्राणसमा न काङ्क्षितवती स्वप्नेऽपि ते सङ्गमं निद्रां वाञ्छति न प्रयच्छति पुनर्दग्धो विधिस्तामपि ॥ १०३ ॥ श्वासेषु प्रथिमा मुखं करतले गण्डस्थले पाण्डिमा मुद्रा वाचि विलोचनेऽश्रुपटलं देहे च दाहोदयः। एतावत्कथितं यदस्ति हृदये तस्याः कृशाङ्ग्याः पुनस्तज्जानासि ननु त्वमेव सुभग श्लाघ्या स्थितिस्तत्र या ॥१०४॥ श्वासैस्त्रुट्यति वेगभिन्नयनयोरुष्णाम्बुभिः क्लाम्यति स्वेदाम्भोलववाहिना करतलेनावर्जिता म्लायति। इत्यालोक्य तया चलद्वदनया तिर्यक्पत-

---

यमराज भी उसकी मृत्युके दिन गिन रहा है और तुम भी उससे रूठ बैठे हो; अतः हे नाथ! तुम ही सोचो कि कोंपलोंके समान कोमल वह नवेली इस प्रकार कैसे जीवित रह पावेगी ॥ ९६ ॥ वह दुबले शरीरवाली नवेली तुम्हारे बिछोहमें कैसे रात बितावे? पर अत्यन्त क्रूर व्यवहार करनेवाले तुम जैसे निठुरके सामने ये बातें कहनेसे क्या लाभ! ॥ ९७ ॥ हे विलासी! तुम्हें देखनेके लिये बड़े उत्साहसे वह हाथमें दीपक लेकर, बत्ती उकसाकर कुछ पग चली किन्तु जब उसने देखा कि तुम कुछ नवेलियाके साथ राग-रंगमें मस्त हो और पवन भी बड़े वेगसे उन सैकड़ों द्वारोंसे होकर बह रहा है तो आपका दर्शन करनेके लिये क्या उसने झटसे हाथका दीपक नहा बुझा दिया? अर्थात् बुझा ही दिया ॥ ९८ ॥ चन्दनके रसके समान चाँदनीरूपी लेपसे जब यह चन्द्रमा सारी दिशाओंके रूपमें इस मृगनयनी नवेलीके पुण्य ही लीपे डाल रहा था उस समय उसके नेत्रोंमें आँसू, हाथोंमें मुँह, गलेमें प्राण, हृदयमें तुम, पीठपर लाज और वचनोंमें तुम्हारे गुण ही थे ॥ ९९ ॥ यह सच है कि अनुचित रीतिसे उपयोग करनेपर सभी वस्तुएँ विप हो जाती हैं क्योंकि आपके बिछोहमें चन्द्रमाकी ये अमृतकी धार बहानेवाली किरणें भी उसे जलाए डाल रही हैं ॥ १०० ॥ 'पङ्खा लाओ पङ्खा, जल लाओ जल, कपूर लाओ कपूर,' इस प्रकार अन्तःपुरमें कुररीके समान बिलखती हुई नवेलियोंके दुःख-भरे शब्द गूँज रहे हैं ॥ १०१ ॥ अशोक वृक्षसे उसे शोक होता है, फूलोंसे उसका वैर है, आमसे उसे घृणा है, चन्द्रमाको देखकर वह व्याकुल हो जाती है। अधिक क्या, उशीर (खस) से भी उसे ताप ही होता है। फिर भी, मैंने तो यह निश्चय किया है कि यदि आप उसके प्रतिकूल न रहें तो सारा संसार प्रतिकूल होकर भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ पावेगा ॥ १०२ ॥ हे प्राणप्यारे! वह नायिका लम्बी-लम्बी साँसें लेती है, धरतीपर लोटती है, तुम्हारा मार्ग देखती रहती है, ऊँचे स्वरसे विलाप करती है, अपनी पतली-पतली बाँहें इधर-उधर फेंकती रहती है तथा स्वप्नमें तुम्हारा समागम पानेकी इच्छासे वह चाहती है कि नींद आ जाय। पर उसका दुर्भाग्य उसे नींद भी नहीं आने देता ॥ १०३ ॥ हे सुन्दर! उस विरहिणीकी साँसें फूल रही हैं, वह हथेलीपर गाल धरे रहती है, उसके गालोंपर पीलापन छा गया है, बोली बन्द हो गई है और नेत्रोंमें आँसुओंकी बाढ़ आ रही है। इतना तो मैंने बता दिया, अब उस दुबले अङ्गोंवालीके हृदयमें क्या है और उस हृदयकी क्या सराहनीय दशा है, यह तो केवल तुम्हीं जानते हो ॥ १०४ ॥ हे मित्र! आपकी क्रीड़ालता उसके आँसुओंके वेगसे टूटने लगती है, नेत्रोंके गरम-गरम आँसुओंसे मुरझाने लगती है तथा थोड़ा पसीजते हुए हाथ फिरानेसे भी कुम्हलाने लगती है, अतः जब उसने यह देखा तो वह उस लताकी ओरसे अपना मुँह फेरकर, तिरछी चितवनसे उसे देखती हुई, अपने हाथ

नेत्रया दूरोत्सारितहस्तया तव सखे क्रीडालता सिच्यते ॥ १०५ ॥ सखि दयितमिहानयेति सा मां प्रहितवती कुसुमेषुणाभितप्ता । हृदयमहृदया न नाम पूर्वं भवदुपकण्ठमुपागतं विवेद ॥ १०६ ॥ सखीभित्तां याच वत नतशिरास्त्वामिदमहं न चेदस्ति प्रीतिः कुरु तदपि कारुण्यकणिकाम् । अवस्था सा तस्याः सुकृतमयमस्यां किमपरं प्रमोहो विश्रामस्त्वमथ मरणं वा प्रतिकृतिः ॥ १०७ ॥ सङ्केतकुञ्जभुवि सा शयनोपधानव्यालङ्कृतं सुभग कुण्डलिनं न वेद । तत्कण्ठलग्नघनचन्दनगन्धलुब्धस्तत्रैव निश्चलमुवास चिराय सोऽपि ॥ १०८ ॥ सम्प्राप्तेऽवधिवासरे क्षणमसौ त्वद्वर्त्मवातायनं वारम्वारमुपेत्य निष्क्रपतया निश्चित्य किञ्चिच्चिरम् । सम्प्रत्येव निवेद्य केलिकुररीः सास्रं सखीभिः शिशोर्माधव्यास्सहकारकेण करुणः पाणिग्रहो निर्मितः ॥ १०९ ॥ सा न स्नाति न चानुलिम्पति न वा केशेषु धत्ते स्रजं न क्रीडासु मनो दधाति न सखीरालोकते चाटुषु । किं तु न्यस्य मुखाम्बुजं करतले वाष्पायमाणेक्षणं निःश्वासग्लपिताधरं च शयने जागर्ति ते चिन्तया ॥ ११० ॥ सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि । एतावत्यतनुज्वरे वरतनुर्जीवेन्न किं ते रसात्स्वर्वैद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोऽन्यथा हस्तकः ॥ १११ ॥ सा विरहदहनदूना मृत्वा मृत्वापि जीवति वराकी । सारीव कितव भवतानुकूलिता पातिताक्षेण ॥ ११२ ॥ सा सर्वथैव रक्ता रागं गुञ्जेव न तु मुखे वहति । वचनपटोस्तव रागः केवलमास्ते शुकस्येव ॥ ११३ ॥ सा सुन्दर तव विरहे सुतनुरियन्मात्रलोचना सपदि । एतावतीम-

---

दूर किए हुए ही उसे सींचती है ॥ १०५ ॥ कामके बाणोंसे बेधी हुई उस तुम्हारी प्रियतमाने यह कहकर मुझे तुम्हारे पास भेजा है कि 'हे सखी ! मेरे प्रियतमको यहाँ ले आओ !' किन्तु उस हृदय-शून्यने यह नहीं समझा कि ऐसा कहनेसे पहले ही उसका हृदय आपके पास पहुँच चुका ॥ १०६ ॥ मैं आपको प्रणाम करके आपसे अपनी सखीके लिये यह भीख माँग रही हूँ कि यदि आपका उसपर प्रेम नहीं है तब भी उसपर कुछ तो दया करनी ही चाहिए क्योंकि उसकी दशा बड़ी शोचनीय है । दूसरा कुछ पुण्य तो उसका दिखाई नहीं देता, जब वह मूर्च्छित होती है तभी उसे चैन मिलता है । इस प्रकार उसका दुःख दूर करनेका या तो मृत्यु ही उपाय है या आप ही ॥१०७॥ हे सुन्दर! तुमने अपनी प्यारीसे मिलनेके लिये जिस झाड़ीमें सङ्केत किया था वहाँ जब वह पहुँची तो वहाँ पड़े हुए साँपको तकिया समझकर उसीपर सिर रखकर लेट गई और साँप भी उसके गलेमें लगे हुए चन्दनकी सुगन्धके लोभसे बड़ी देरतक बिना हिले-डुले वहीं पड़ा रह गया ॥ १०८ ॥ हे निष्ठुर ! जब तुम्हारे आनेका अन्तिम दिन आ गया तो तुम्हारा मार्ग देखनेके लिये वह बार-बार झरोखेपर गई किन्तु जब तुम दिखाई न दिए तो बहुत देरतक सोचकर उसने अपने मनमें कुछ निश्चय किया, इसके पश्चात् अपने साथ खेलनेवाली कुररियोंको बिदा देकर रोती हुई, सखियोंके साथ छोटी-सी माधवी लताका आमके वृक्षके साथ विवाह कर दिया, इसलिये कि कहीं मेरे मरनेके पश्चात् मेरा ठाना हुआ यह काम रह न जाय ॥ १०९ ॥ इस समय वह विरहिणी न तो स्नान करती, न शरीरको चन्दन आदिके लेपसे सजाती, न बालोंमें माला गूँथती, न खेलमें मन लगाती और न आमोद-प्रमोदकी बातोंमें ही सखियोंकी ओर देखती वरन् हथेलीपर अपना मुखकमल रखकर आँखोंमें आँसू भरकर गरम-गरम साँससे ओठोंको झुलसाती हुई आपकी चिन्तामें बिछौनेपर जागती हुई पड़ी रहती है ॥ ११० ॥ हे अश्विनीकुमारके समान (सुन्दर तथा वैद्य) ! उसका शरीर रोमाञ्चित हो उठता है, वह सी-सी करती है, बिलखती है, काँपती है, उदास हो जाती है, आँखें मूँद लेती है, गिरती है, उठती है तथा मूर्च्छित हो जाती है । इस प्रकारकी काम-वेदनामें वह सुन्दरी आपसे रस (प्रेम, औषधि) पाकर ही जी सकती है । अतः यदि आप उसपर प्रसन्न न होते तो यही कहना होगा कि आपने अपना हाथ (बल) खो दिया ॥ १११ ॥ हे धूर्त्त ! विरहकी अग्निसे तपी हुई वह बेचारी मर-मरकर जी रही है, तुमने उसपर चितवन चलाकर उसे मैनाके समान अपने वशमें कर लिया है ॥ ११२ ॥ वह घुँघुचीके समान सारे शरीरमें तो राग (प्रेम, ललाई) धारण करती है पर मुँहपर नहीं और तुम बात बनानेमें बड़े चतुर हो इसलिये सुग्गेकी भाँति तुम्हारे केवल मुखमें ही राग (प्रेम, ललाई) है (हृदयमें नहीं) ॥ ११३ ॥ हे सुन्दर ! तुम्हारे बिछोहमें इतने बड़े नेत्रोंवाली उस सुन्दरीकी सहसा इतने ही दिनोंमें यह दशा हो गई ॥ ११४ ॥ हे भाग्यशाली ! तुम्हारी चर्चा

वस्थां याता दिवसैरियन्मात्रैः ॥ ११४ ॥ सुभग त्वत्कथारम्भे कर्णकण्डूतिलालसा । उज्जृम्भवदनाम्भोजा भिनत्त्याङ्गानि साङ्गना ॥ ११५ ॥ सौधादुद्विजते त्यजत्युपवनं द्वेष्टि प्रभामैन्दवीं द्वारात्त्रस्यति चित्रकेलिसदसो वेषं विषं मन्यते । आस्ते केवलमब्जिनीकिसलयप्रस्तारशय्यातले सङ्कल्पोपनमत्त्वदाकृतिरसायत्तेन चित्तेन सा ॥११६॥ स्पृशन्त्याः क्षामत्वं मदनशरटङ्कव्यतिकरात्कुरङ्गाद्यास्तस्याश्शृणु सुभग कौतूहलमिदम् । अपूर्वेति त्रासात्परिहरति तां केलिहरिणी न विश्वेऽप्याश्वासं दधति गृहलीलाशकुनयः ॥११७॥ स्मरदवथुनिमित्तं गूढमुन्नेतुमस्यास्सुभग तव कथायां प्रस्तुतायां सखीभिः । भवति विततपृष्ठोदस्तपीनस्तनाग्रा ततवलयितबाहुर्जृम्भितैस्साङ्गभङ्गैः ॥ ११८ ॥ स्मरशरशतविधुराया भणामि सख्याः कृते किमपि । क्षणमिह विश्राम्य सखे निर्दयहृदयस्य किं वदाम्यथवा ॥११९॥ हस्ताम्भोजे वदनमलकानायतान्बाहुमूले द्वारि स्वैरं नयनमधरे तर्जनीं सन्निधाय । दीर्घोच्छ्वासं विरतविषया स्वादमुत्कण्ठितोष्णं मुग्धाक्षी त्वां हृदि विदधती वाष्पमाविष्करोति ॥ १२० ॥ हारावशेषा ननु कण्ठनाला त्वन्नामशेषा रसना तदीया । लावण्यशेषा तनुमात्रयष्टिस्त्वद्ध्यानशेषं परमं तदायुः ॥ १२१ ॥

दूतीं प्रति नायिकाप्रश्नाः— अबलाशरणं जगत्त्रये परमेको दयितोऽग्निसाक्षिकः । अथ सोऽपि यदा न सम्मुखो वत किं दूति सुखं ततोऽन्यतः ॥ १ ॥ अलमलमघृणस्य तस्य नाम्ना पुनरपि सैव कथा गतस्स कालः । कथय कथय वा तथापि दूति प्रतिवचनं द्विषतोऽपि माननीयम् ॥ २ ॥ उल्लापयन्त्या दयितस्य दूतीं वध्वा विभूषाञ्च निवेशयन्त्या । प्रसन्नता कापि मुखस्य जज्ञे वेषश्रिया नु प्रियवार्तया नु ॥ ३ ॥ कथय निपुणे कस्मिन्दृष्टः कथं नु कियच्चिरं किमभिलिखितं किं तेनोक्तं कदा स इहैष्यति । इति वहुविधप्रेमालापप्रपञ्चितविस्तराः प्रियतमकथाः स्वल्पेऽप्यर्थे

होते ही वह नवेली कान खुजलाने लगती है, उसका मुखकमल जँभाई लेने लगता है तथा वह देह तोड़ने लगती है ॥११५॥ इस समय वह विरहिणी नवेली महलोंसे घबराती है, उसने पासका बगीचा भी छोड़ दिया है, वह चन्द्रमासे डाह करने लगी है, द्वारकी ओर देखकर वह डर जाती है तथा चित्रमें बने हुए क्रीड़ा करनेवाले पुरुषके वेषको विषके समान देखती है। अब वह केवल कमलके कोमल पत्तोंसे बने बिछौनेपर पड़ी-पड़ी ध्यानमें देखे हुए आपके स्वरूपमें मन लगाए बैठी रहती है ॥ ११६ ॥ हे सुन्दर ! कामदेवके बाणोंकी चोटसे दिन-दिन दुबली होती हुई उस मृगनयनी विरहिणीकी यह दशा हो गई है कि खेलकी हरिणी उसे पराई समझकर डरके मारे छोड़ देती है तथा घरके सब खेलके पक्षी भी उसे देखकर न पहचाननेके कारण घबरा जाते हैं ॥ ११७ ॥ उसकी छिपी हुई काम-पीड़ा उकसानेके लिये जब सखियाँ तुम्हारी चर्चा करने लगती हैं, उस समय वह नवेली जँभाई तथा अँगड़ाई लेती हुई अपनी सखीकी पीठ अपने स्तनोंसे दबाती है तथा भुजाएँ फैलाकर उसे लिपटा लेती है ॥ ११८ ॥ कामदेवके सैकड़ों बाणोंसे विंधी हुई उस सखीके विषयमें मुझे आपसे कुछ कहना है ! आप थोड़ी देर विश्राम कर लें तब कहूँ । किन्तु हे मित्र ! निष्ठुर हृदयवालेके सामने कुछ कहनेसे लाभ ही क्या है ! (अतः कुछ नहीं कहती) ॥११९॥ हथेलीपर मुख, कोखमें बिखरे हुए बाल, द्वारपर आँखें तथा ओठपर तर्जनी उँगली रखकर लम्बी-लम्बी साँसें खींचती हुई, सभी विषयोंसे वैराग्य करती हुई तथा तुमसे मिलनेकी अत्यन्त चाहसे भरी हुई वह सुनयनी नवेली, तुम्हारा ही ध्यान करती हुई आँसू बहाती रहती है ॥ १२० ॥ उसके गलेमें केवल हार, उसकी जीभमें केवल तुम्हारा नाम और उसकी दुबली-पतली देहमें सुन्दरता-मात्र रह गई है तथा उसकी आयु तुम्हारे ध्यानके कारण ही बची हुई है ॥ १२१ ॥

दूतीसे नवेलीके प्रश्न : हे दूती ! तीनों लोकोंमें वही एक प्रियतम मुझ अबलाके लिये शरण हैं जिनके साक्षी अग्नि हैं और जब वे ही रूठ बैठे हैं तो सुखकी आशा कहाँसे की जाय ! ॥ १ ॥ हे दूती ! उस निर्दयीका नाम भी न लेना, न लेना ! तुम फिर उसकी चर्चा चलाती हो ! अरे, वह समय नहीं रहा ! अच्छा, फिर भी कहो, कहो, क्योंकि शत्रुके उत्तरका भी आदर तो करना ही चाहिए ॥ २ ॥ कोई नवेली पतिकी भेजी हुई दूतीसे बातें भी करती जाती थी और गहने भी पहनती जाती थी । उस समय उसके मुखपर जो प्रसन्नता नाच रही थी वह शरीरके सजनेसे या प्रियतमकी चर्चा सुननेसे, यह नहीं समझमें आया ॥ ३ ॥ 'हे चतुर दूती ! कहो, तुमने उन्हें कहाँ, कैसे और कितनी देरतक देखा ? उन्होंने क्या लिखा ? क्या कहा ? वे यहाँ कब आवेंगे ?' इस प्रकार थोड़ा अर्थ

प्रयान्ति न नष्टताम् ॥४॥ किं त्वं दूति गता गताऽस्मि सुभगे तस्यान्तिकं कामिनः दृष्टः किं सुचिरं करोति किमसौ वीणाविनोदक्रियाम्। सौभाग्योदयगर्वितः किमवदन्नैवोत्तरं दत्तवान्किं गर्वाच्च हि वाष्पगद्गदतया धूर्तस्य माया हि सा ॥ ५ ॥ जानामि हृदयं तस्य निर्दयं दूति निर्भरम्। अथापि तत्पदद्वन्द्वान्न विरज्यति मे मनः ॥६॥ तव दूति वचः श्रुत्वा किमुक्तं शठचेतसा। अलं वा चर्चया तस्य प्रियमन्यन्निवेदय ॥ ७ ॥ नेत्राभ्यां यत्कमलवदनं काममापीय सुभ्रूस्तत्सम्भाषाऽमृतमपि चिरं मानसान्तर्निधाय। आयातासीत्यतनुसुकृते दूति धन्या त्वमस्मात्तत्सन्देशैः सुमुखि सहसा जीवयैतां निषिच्य ॥ ८ ॥

दूत्युपहासप्रश्ना—अधरेणोन्नतिभाजा भुजङ्गपरिपीडितेन ते दूति। संक्षोभितं मनो मे जलनिधिरिव मन्दरागेण ॥ १ ॥ अनेन वीतरागेण बुद्धेनेवाधरेण ते। दूति निर्व्याजमाख्याता सर्ववस्तुषु शून्यता ॥ २ ॥ किं त्वं निगूहसे दूति स्तनौ वक्त्रञ्च पाणिना। खण्डिता एव शोभन्ते शूराधरपयोधराः ॥ ३ ॥ त्वं दूति निरगाः कुञ्जं न तु पापीयसो गृहम्। किंशुकाभरणं देहे दृश्यते कथमन्यथा ॥ ४ ॥ दूति त्वया कृतमहो निखिलं मदुक्तं न त्वादृशी परहितप्रवणास्ति लोके। श्रान्तासि हन्त मृदुलाङ्गि गता मदर्थे सिध्यन्ति कुत्र सुकृतानि विना श्रमेण ॥ ५ ॥ दूति श्वासविशेष एष किमहो चण्डि त्वराधावनाद्विभ्रष्टालकवल्लरी कथमहो त्वन्नाथपादार्पणात्। निर्मृष्टाधररागपल्लवरुचिस्त्वत्का· सञ्जल्पनाद्वासस्तस्य किमङ्गसङ्गतमहो विश्वासहेतोस्तव ॥ ६ ॥ दूतीदं नयनोत्पलद्वयमहो तान्तं नितान्तं तव स्वेदाम्भःकणिका ललाटफलके

रहनेपर भी अनेक प्रकारकी प्रेमभरी बातोंसे बढ़ी हुई प्रियतमके सम्बन्धकी चर्चाएँ समाप्त ही नहीं होतीं ॥ ४ ॥ कोई नवेली प्रियतमके पाससे आई हुई दूतीसे पूछती है—क्यों दूती ! तू गई थी उस कामीके पास ? दूती : हाँ, सुन्दरी ! मैं गई थी। नवेली : तूने उन्हें देखा ? वे क्या कर रहे थे ? दूती : वे वीणा बजाकर बड़ी देरतक अपना मन बहलाते रहे। नवेली : ठीक है, वे अपने भाग्यपर इतरा रहे हैं। क्या कहा उन्होंने ? दूती : उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। नवेली : क्या घमण्डके कारण नहीं दिया ? दूती : नहीं, आँसुओंसे गद्गद हो जानेके कारण। नवेली : यह तो उस धूर्तकी दिखावेकी बातें हैं ॥ ५ ॥ हे दूती ! मैं जानती हूँ कि उनका हृदय अत्यन्त निर्दयी है किन्तु फिर भी उनके चरणोंसे मेरा मन हटता नहीं ॥ ६ ॥ क्यों दूती ! तेरी बातें सुनकर उस कठोर चित्तवालेने क्या कहा ! किन्तु छोड़ चर्चा उनकी ! ऐसी कोई दूसरी बात कर, जो अच्छी लगे ॥ ७ ॥ हे सुन्दर भौंहोंवाली दूती ! तू धन्य है ! तूने बड़े पुण्य किए हैं जो अपने नेत्रोंसे उन कमल जैसे मुखवाले प्रियतमका जी भरकर दर्शन किया है तथा उनकी अमृत-जैसी बोली मनमें धारण कर आई है। अतः हे सुमुखी ! अब इसके कानोंमें सँदेसा सुनाकर इसे जिला ले ॥ ८ ॥

दूतीसे हँसीकी बातें पूछना : हे दूती ! तेरे साँपसे डसे हुएके समान तथा ऊँचे उठे हुए ओठको देखकर मेरा मन वैसे ही मथा जा रहा है जैसे साँपोंसे लिपटे हुए मन्दराचलसे समुद्र मथा गया था ॥ १ ॥ हे दूती ! बुद्धके समान वीतराग (बिना ललाई का, आसक्तिसे रहित) तेरा यह ओठ भली भाँति बता रहा है कि संसारकी सब वस्तुएँ सूनी हैं ॥ २ ॥ हे दूती ! अपने स्तन तथा मुख हाथसे क्यों छिपाए जा रही है ! वीर लोग अधर तथा स्तन घाववाले ही सुन्दर लगते हैं ॥ ३ ॥ हे दूती ! जान पड़ता है, तू उस पापीके घर न जाकर सङ्केत की हुई झाड़ीमें चली गई नहीं तो तेरी देह टेसूके फूलोंसे सजी क्यों दिखाई देती ! ॥ ४ ॥ हे दूती ! तूने मेरी कही सारी बातें कर दिखाई। संसारमें तेरे जैसी परोपकार करनेवाली दूसरी कोई नहीं है। हे कोमल अङ्गोंवाली ! मेरे कामके लिये जाकर तू थक गई ! किन्तु ठीक है, बिना परिश्रम किए पुण्य कहाँ प्राप्त होते हैं ! ॥ ५ ॥ दूतीका वेप देखकर उसपर सन्देह करनेवाली नवेली और दूतीमें इस प्रकार बातें हुई—नवेली : अरी दूती ! तेरी साँस क्यों फूल रही है ? दूती : हे क्रोध करनेवाली ! वेगसे दौड़नेके कारण साँस फूल रही है। नवेली : अरी, तेरे बाल क्यों बिखर गए हैं ? दूती : आपके प्रियतमके पैरोंपर गिरनेसे। नवेली तेरे ओठकी ललाई भी क्यों मिट गई है ? दूती : आपका काम सफल करनेके लिये बहुत बोलनेसे ललाई छूट गई है। नवेली : और उनका वस्त्र क्यों तेरी देहमें उलझा है ? दूती : आपको विश्वास दिलानेके लिये ही मैं इसे लेती आई हूँ ॥ ६ ॥ हे सुन्दर रूपवाली दूती ! तेरे कमलके समान दोनों नेत्र अत्यधिक अलसा रहे हैं, तेरे माथेपर पसीनेकी

मुक्ताश्रियं बिभ्रति। निःश्वासाः प्रचुरीभवन्ति नितरां हा हन्त चन्द्रातपे यातायातवशाद्वृथा मम कृते श्रान्तासि कान्ताकृते ॥ ७ ॥ निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः। मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमा वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् ॥ ८ ॥ पार्श्वाभ्यां सप्रहाराभ्यामधरे व्रणखण्डिते। दूति सङ्ग्रामयोग्यासि न योग्या दूतकर्मणि ॥ ९ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन दूति मत्कार्यसिद्धये स्वमांसान्यपि दत्तानि वक्तव्येषु तु का कथा ॥ १० ॥ बिम्बोष्ठस्तव खण्डितश्चवलता दृग्भङ्गिगा चायता निःश्वासो बहुलो मुखं श्रमजलच्छन्नं च हन्त स्फुटम्। वासोऽप्येतदहो पटच्चरसमं छिन्नं समन्तादिति कापि त्वं स्खलिता क्वचित्किमथवा विद्धाऽसितैः कण्टकैः ॥ ११ ॥ रजन्यामन्यस्यां सुरतपरिवृत्तावनुचितं मदीयं यद्वासः कथमपि हृतं तेन सुहृदा। त्वया प्रत्यानीतं निजवसनदानात्पुनरिदं कुतस्त्वादृग्दूति स्खलितशमनोपायनिपुणा ॥ १२ ॥ श्वासः किं त्वरिता गता पुलकिता कस्मात्प्रसादः कृतः स्रस्ता वेण्यपि पादयोर्निपतनान्नीवी गमादागमात्। स्वेदार्द्रं मुखमातपेन गलितं दामा किमत्युक्तिभिर्दूति म्लानसरोरुहाकृतिधरस्यौष्ठस्य किं वक्ष्यसि ॥ १३ ॥ सायं स्नानमुपासितं मलयजेनाङ्गं समालेपितं यातोऽस्ताचलमौलिमम्बरमणिर्विश्रब्धमत्रागतिः। आश्चर्यं तव सौकुमार्यमभितः क्लान्तासि येनाधुना नेत्रद्वन्द्वममीलनव्यतिकरं शक्नोति ते नासितुम् ॥ १४ ॥ स्विन्नं केन मुखं दिवाकरकरैस्ते रागिणी लोचने रोषात्तद्वचनोत्थिताद्विलुलिता नीलालका वायुना। भ्रष्टं कुङ्कुममुत्त-

---

बूँदें मोतीके समान झलक रही हैं, अरे! चाँदनीमें भी तेरी साँसें फूल रही हैं! हाय! मेरे कामसे बार-बार आने-जानेके कारण व्यर्थ ही तुझे इतना कष्ट हुआ ॥ ७ ॥ तेरे स्तनोंपरका समूचा चन्दन छूट गया है, ओठकी सारी ललाई मिट गई है, आँखोंमें आँजन नहीं रह गया तथा तेरी यह पतली देह भी रोमाञ्चित हो रही है। अतः, हे झूठ बोलनेवाली तथा सखियोंके कष्टको कुछ न समझनेवाली दूती! जान पड़ता है तू यहाँसे उस पापीके घर न जाकर बावड़ीमें नहाने चली गई थी ॥ ८ ॥ हे दूती! तेरी देहमें दोनों ओर (स्तनोंपर) घाव (नखके चिह्न) लगे हैं तथा ओठ भी (दाँतसे) कटे हुए हैं अतः तू दूतीका काम करने योग्य नहीं वरन् लड़ाईका काम करने-योग्य है ॥ ९ ॥ हे दूती! अधिक क्या कहूँ, मेरा काम साधनेके लिये तूने अपना मांसतक दे डाला, सन्देश ले जाना तो बहुत छोटी-सी बात है ॥ १० ॥ हाय दूती! तेरे बिम्बाके समान ओठमें घाव लग गया है, तेरी आँखोंकी कोर अत्यधिक फैली-फैली-सी लग रही हैं, साँस फूल रही है और प्रत्यक्ष ही यह मुख भी पसीनेसे भींग रहा है। अरे, यह वस्त्र भी कथरीकी भाँति चारो ओरसे फट गया है! यह तो बता कि तू कहीं गिर पड़ी है या काले-काले (कृष्ण) काँटे तेरे छिद गए हैं? ॥ ११ ॥ हे दूती! एक रातमें रतिके पश्चात् जो उस प्रियतमने न जाने कैसे मेरा वस्त्र बदलकर अनुचित काम किया था सो तू अपना वस्त्र देकर मेरा वह वस्त्र ले आई। बिगड़ी बात बनानेमें तेरे जैसी चतुर कोई दूसरी कहाँ मिलेगी! ॥ १२ ॥ प्रियतमसे सम्भोग करके लौटी हुई दूतीसे नवेली पूछती है: हे दूती! तेरी साँस क्यों फूल रही है? दूती: मैं बड़े वेगसे गई थी। नवेली: रोमाञ्चित क्यों हो रही है? दूती: उन्होंने कृपा की है, इसी प्रसन्नताके कारण। नवेली: बाल क्यों बिखरे हैं? दूती: उनके पैरोंपर गिरनेके कारण। नवेली: तेरी नीवी (नाड़ा) क्यों ढीली हो गई? दूती: बार-बार आने-जानेके कारण! नवेली: मुखमें पसीना क्यों आ रहा है? दूती: धूप लगनेके कारण! नवेली: तू शिथिल क्यों हो रही है? दूती: बहुत बोलनेके कारण। नवेली: अब बहुत बातें न बना, तेरा ओठ जो मुरझाए कमलके समान हो रहा है, इसका क्या समाधान करेगी? ॥ १३ ॥ मार्गमें उपनायक-द्वारा उपभोग कर लिए जानेके पश्चात् स्नान आदि करके सखीके पास पहुँची हुई दूतीसे सखी व्यंग्यसे कहती है: 'हे दूती! सूर्य तो अस्ताचलकी चोटीपर पहुँच गए अर्थात् धूप भी नहीं रह गई। तूने सायङ्काल स्नान करके चन्दनका लेप भी लगा लिया है और धीरे-धीरे आनन्दपूर्वक चली आ रही है अतः थकनेका कोई कारण न होनेपर भी तेरी सारी देह थकी जान पड़ रही है और तेरी आँखें भी बिना बार-बार मुँदे नहीं ठहर पा रही हैं, अतः तेरी इस निराली सुकुमारतापर तो मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है! ॥ १४ ॥ दूतीसे नवेली पूछती है: तेरे मुहँपर पसीना क्यों आ रहा है? दूती: धूप बहुत लगी है। नवेली: आँखें क्यों लाल हैं? दूती: उनकी बातोंसे मुझे क्रोध आ गया है।

रीयकपणात्क्लान्तासि गत्यागतैर्युक्तं तत्सकलं किमत्र वद हे दूति क्षुतस्याधरे ॥ १५ ॥

वियोगिनोऽवस्थावर्णनम्—अत्राशितं शयितमत्र निपीतमत्र तोयं तया सह मया विधिवञ्चितेन। इत्यादि हन्त परिचिन्तयता वनान्ते हा तस्य लोचनपयोभिरभूत्पयोधिः ॥ १ ॥ कान्ताऽऽश्लेषपराङ्मुखं यदि दहेद्दोषाकरः कञ्चन स्थाने तर्हि यतस्स हन्त विधिना हन्तुं व्यधायीदृशान्। कष्टं यत्पुनरेष चन्दनभुवो लब्धप्रभावोऽभितः स्वर्णद्याद्यवगाहको मरुदयं दग्धं प्रचण्डो ज्वलन् ॥ २ ॥ गमनमलसं शून्या दृष्टिः शरीरमसौष्ठवं श्वसितमधिकं किं न्वेतत्स्यात्किमन्यदितोऽथवा। भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा विकारि च यौवनं ललितमधुरास्ते ते भावाः क्षिपन्ति च धीरताम् ॥ ३ ॥ चन्द्रमाश्चन्द्रमास्तावत्सुरभिः सुरभिस्तथा। संयोगो वरवर्णिन्या वैपरीत्यमतः परम् ॥ ४ ॥ चन्द्रश्चण्डकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते माल्यं सूचिकुलायते मलयजालेपः स्फुलिङ्गायते। रात्रिः कल्पशतायते विधिवशात्प्राणोऽपि भारायते हा हन्त प्रमदावियोगसमयः संहारकालायते ॥ ५ ॥ धत्ते चक्षुर्मुकुलिनि रणत्कोकिले बालचूते मार्गे गात्रं क्षिपति बकुलामोदगर्भस्य वायोः। दाहप्रेम्णा सरसबिसिनीपत्रमात्रान्तरायस्ताम्यन्मूर्तिः श्रयति बहुशो मृत्यवे चन्द्रपादान् ॥ ६ ॥ प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठे श्लथं बिभ्रत्काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासापरक्ताधरः। चिन्ताजागरणप्रताम्रनयनस्तेजोगुणैरात्मनः संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते ॥ ७ ॥ प्रियाविरहितस्यास्य हृदि चिन्ता समागता। इति मत्वा गता निद्रा के कृतघ्नमुपासते ॥ ८ ॥ मन्दं मरुद्वहति गर्जति वारिवाहो विद्युल्लता चलति नृत्यति नीलकण्ठः। एतावति व्यतिकरे तरुणस्य तस्य

नवेली : बाल क्यों बिखरे हैं? दूती : पवन वेगसे वह रहा था। नवेली : देहका केसर कैसे छूट गया? दूती : यह तो आँचलकी रगड़ खाकर छूट गया है। नवेली : इतनी थक कैसे गई? दूती : बार-बार आने-जानेसे। नवेली : यह तो सब ठीक है, किन्तु ओठमें लगे घावका क्या उत्तर है? ॥ १५ ॥

वियोगीकी दशाका वर्णन : 'मैं वही अभागा हूँ जिसने उस प्रियतमाके साथ खाया, पिया तथा निद्रा ली!' जङ्गलमें इन सब बातोंको सोचते हुए उसके नेत्रोंसे जो आँसू बहे, उसीसे समुद्र बन गए ॥ १ ॥ अपनी प्रियतमाको गले लगानेके सुखसे बिछुड़े हुए किसी विरहीको चन्द्रमा यदि जलाता है तो ठीक ही है, क्योंकि ब्रह्माने उसे ऐसे लोगोंको जलानेके लिये ही रचा है। किन्तु कष्टकी बात तो यह है कि चन्दनके वनमें घूमकर प्रभावशाली बना हुआ तथा आकाश-गङ्गा आदि नदियोंमें गोता लगानेवाला यह पवन भी दहकता हुआ जला रहा है ॥ २ ॥ चाल धीमी हो जाय, चितवन अटपटी हो जाय, शरीर मलिन हो जाय तथा साँस फूलने लगे, यही नहीं, इससे भी बढ़कर जो होना हो, हो जाय, किन्तु चिन्ता तो इस बातकी है कि संसारमें कामकी आज्ञा चलने लगी है, युवावस्थामें दोष आते चले जा रहे हैं और सुन्दर तथा आकर्षक वस्तुएँ धीरज तोड़े डाल रही हैं ॥ ३ ॥ जबतक श्रेष्ठ रूपवाली नवेलीसे संयोग रहता है तभीतक चन्द्रमा और सुगन्ध यथार्थमें चन्द्रमा और सुगन्ध रहते हैं, उससे विछोह होनेपर तो ये सभी शत्रु बन जाते हैं ॥ ४ ॥ जिस समय प्राणप्यारीसे विछोह हो जाता है उस समय चन्द्रमा सूर्यके समान गरम तथा पवनका छू जाना वज्र-सा जान पड़ने लगता है, माला सुईके समान चुभने लगती है, चन्दनका लेप आगकी चिनगारियोंके समान लगता है, रातें सैकड़ों कल्पोंके समान बीतती हैं और दुर्भाग्य-वश प्राण भी भारी जान पड़ने लगते हैं, हाय! वियोगका समय तो प्रलयकाल-सा ही बीतता है ॥ ५ ॥ प्राणप्यारीसे बिछुड़ा हुआ कोई युवक मरनेकी चाहसे बार-बार चन्द्रमाकी किरणोंका सहारा लेता है, बौरे हुए आमके उस नये वृक्षको देखता है जिसमें कोयल कूक रही है, मौलसिरीकी सुगन्धसे भरे हुए पवनके मार्गमें लेटता है तथा जलनेके लिये कमलके हरे-हरे पत्ते देहपर रखता है ॥ ६ ॥ किसी विरहीने अपने सब गहने उतारकर केवल बाईं भुजामें सोनेका एक ढीला कङ्गन-भर पहन छोड़ा है, गरम साँसोंसे उसका ओठ फीका पड़ गया है और चिन्ताके कारण जागते रहनेसे उसकी आँखें लाल हो गई हैं, किन्तु दुबला हो जानेपर भी वह अपने स्वाभाविक तेजके कारण खरादे हुए मणिके समान दुबला लख नहीं पड़ता ॥ ७ ॥ प्यारीसे बिछुड़ते ही इस विरहीके हृदयमें चिन्ता-रूपी नवेली आ धमकी, यह जानकर नींदरूपी सुन्दरी भी चल दी। ठीक भी है, कृतघ्नकी सेवा कौन करना चाहता है? ॥ ८ ॥ पवन धीरे-धीरे वह रहा है, बादल गरज रहे हैं, बिजली चमक रही है

मूर्च्छैव केवलमभूदवलम्बनाय ॥ ९ ॥ माकन्दाद्धिप मा मरन्दनिकरं मूको भव त्वं शुक स्फारं कोकिल कोमलं कलरवं भ्रातः क्षणं संहर। सौगन्ध्यं वह गन्धवाह न मनाक्सर्वैः क्षणं क्षम्यतां जानीध्वं तरुणस्य तस्य यदयं कालः करालो महान् ॥ १० ॥ यदिन्दावानन्दं प्रणयिनि जने वा न भजते व्यनक्त्यन्तस्तापं तदयमतिधीरोऽपि गहनम्। प्रियङ्गुश्यामाङ्गप्रकृतिरपि चापाण्डुमधुरं वपुः क्षामं क्षामं वहति रमणीयश्च भवति ॥ ११ ॥ रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते शय्योपान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः। दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडावनम्रश्चिरम् ॥ १२ ॥ हृद्योद्यानमरुत्तरङ्गितसरस्तीरे तरूणामधस्तल्पेऽनल्पसरोजिनीनवदलप्रायेऽपि खिन्नात्मनः। धीरस्यापि मनाङ्मनस्तृणकुटीकोणान्तराले बलाल्लग्नोऽस्येति विभाव्यते परवशैरङ्गैरनङ्गानलः ॥ १३ ॥

वियोगिनो विप्रलापाः—अद्यापि तत्प्रचलकुण्डलमृष्टगण्डं वक्त्रं स्मरामि विपरीतरताभियोगे। आन्दोलनश्रमजलस्फुटसान्द्रबिन्दुमुक्ताफलप्रकरविच्छुरितं प्रियायाः ॥ १ ॥ अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीं फुल्लारविन्दनयनां तनुरोमराजिम्। सुप्तोत्थितां मदनविह्वललालसाङ्गीं विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि ॥ २ ॥ अद्यापि तिष्ठति दृशोरिदमुत्तरीयं धर्तुं पुरः स्तनतटात्पतितं प्रवृत्ता। वाचं निशम्य नयनं नयनं ममेति किञ्चित्तदा यदकरोत्स्मितमायताक्षी ॥ ३ ॥ अद्यापि सा मनसि सम्प्रति वर्तते मे रात्रौ मयि क्षुतवति क्षितिपालपुत्र्या। जीवेति मङ्गलवचः परिहृत्य कोपात्कर्णे कृतं कनकपत्रमनालपन्त्या ॥ ४ ॥ अधूतपरिपतन्निचोलबन्धं मुषितनकारमवक्रदृष्टिपातम्।

तथा मोर नाच रहे हैं। ऐसे समय मूर्च्छाने ही उस युवकके प्राण बचा लिए ॥ ९ ॥ हे आम ! तुम अपने बौरोंका रस मत बिखेरो। अरे सुग्गे ! चुप हो जा। हे भाई कोयल ! अपनी ऊँची तथा कोमल कूक बन्द कर दे। हे पवन ! तुम सुगन्धि न फैलाओ, आज तुम सभी यह समझकर क्षमा करो कि उस युवकके लिये यह बड़ा भयङ्कर समय बीत रहा है ॥ १० ॥ यद्यपि युवक अत्यन्त धीर है किन्तु प्रियतमाके बिछोहमें उसकी यह दशा हो गई है कि वह चन्द्रमाको देखकर भी प्रसन्न नहीं होता, किसी प्रिय मित्रको देखते ही उससे अपने हृदयका घोर सन्ताप कहने लगता है, प्रियंगुके समान साँवले रङ्गकी उसकी देह पीली पड़ती जा रही है और वह दिनों-दिन दुबला होता जा रहा है, फिर भी वह सुन्दर ही लग रहा है ॥ ११ ॥ वह विरही युवक सुन्दर वस्तुओंसे चिढ़ता है, अपने सेवकोंसे पहले जैसी सेवा कराता था वैसी अब नहीं कराता, बिछौनेपर करवट बदल-बदलकर जागता हुआ रातें बिताता है और रनिवासकी नवेलियोंसे जब सरलतापूर्वक बातें करने लगता है तो धोखेसे प्यारीका नाम मुखमें आ जानेसे देरतक लाजके कारण सिर झुकाए पड़ा रहता है ॥ १२ ॥ फुलवारीके अत्यन्त सुगन्धित पवनसे हिलाई हुई लहरोंवाले तालावके किनारे वृक्षोंकी छायामें कमलिनीके ढेरसे नये-नये पत्तोंसे बिछाए बिछौनेपर भी दुखी होकर पड़े हुए उस धीर विरहीको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो उसके अंगोंको परवश देखकर उसके मनरूपी तिनकोंकी कुटियाके कोनेमें बलपूर्वक कामाग्नि भड़क उठी हो ॥ १३ ॥

विरहीका रोना-धोना : कोई विरही विलाप कर रहा है कि 'आज भी विपरीत रतिमें लगी हुई प्राणप्यारीका वह मुँह स्मरण आ रहा है जब उसके गालोंपर कानके चंचल कुंडल हिल रहे थे और जो अधिक धक्कोंसे थक जानेके कारण मोतीके दानेके समान निकली हुई पसीनेकी बूँदोंसे सज रहा था' ॥ १ ॥ आज भी असावधानीके कारण हाथसे निकली हुई विद्याके समान उस प्रियतमाकी मैं चिन्ता कर रहा हूँ जो सुनहली चम्पाके समान गोरी है, जिसकी आँखें खिले हुए कमलोंके समान हैं, जिसकी रोमावली पतली है और सोकर उठते समय जिसके अंग रतिक्रीड़ासे थककर ढीले पड़ गए थे ॥ २ ॥ वह विशाल नेत्रोंवाली नवेली ज्योंही स्तनसे खिसका हुआ आँचल सँभालने चली त्योंही मैंने कहा कि 'मेरे ही नेत्र, नेत्र हैं अर्थात् मेरे नेत्र सफल हो गए।' और मेरी इस बातको सुनकर वह जो मुस्करा उठी थी, वह दृश्य आज भी मेरे सामने नाच-सा रहा है ॥ ३ ॥ जब उस राजपुत्रीसे मैं मिलनेके लिये गया तो रातमें मुझे छींक आ गई। उस समय जान लिया जानेके डरसे उसने 'जीव' यह मङ्गल वचन तो न कहा वरन् उसे क्रोध आ गया तथा और कुछ न कहकर उसने वह कनफूल फिरसे पहन लिया जिसे पहले उतार दिया था। वह राजपुत्री आज भी मेरे चित्तपर चढ़ी है ॥ ४ ॥ गाँवकी नवेलीकी उन कामसे

प्रकटहसितमुन्नतास्य विम्वं पुरस्सुदृशः स्मरचेष्टितं स्मरामि ॥ ५ ॥ अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे। यदि मदिरायतनयनां तामधिकृत्य प्रहरतीति ॥ ६ ॥ अपसरति न चक्षुषो मृगाक्षी रजनिरियं च न याति नैति निद्रा। प्रहरति मदनोऽपि दुःखितानां बत बहुशोऽभिमुखीभवन्त्यपायाः ॥ ७ ॥ अपूर्वो दृश्यते वह्निः कामिन्याः स्तनमण्डले। दूरतो दहते गात्रं हृदि लग्नस्तु शीतलः ॥ ८ ॥ अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकथोदयम्। विनयवाधितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृतः ॥ ९ ॥ अरविन्दमिदं वीक्ष्य खेलत्खञ्जनमञ्जुलम्। स्मरामि वदनं तस्याश्चारु चञ्चललोचनम् ॥ १० ॥ अलसवलितमुग्धस्निग्धनिस्पन्दमन्दैरधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारैः। हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षैरपहृतमपविद्धं पीतमुन्मूलितञ्च ॥ ११ ॥ अलसविलसितानामुल्लसत्क्रूलतानां मसृणमुकुलितानां प्रान्तविस्तारितानाम्। प्रतिनयननिपाते किञ्चिदाकुञ्चितानां विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ॥ १२ ॥ असुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनङ्गविचेष्टितम्। अभिमुखीष्विव वाञ्छितसिद्धिषु व्रजति निर्वृतिमेकपदे मनः ॥ १३ ॥ अस्थाने जनसङ्कटे मयि मनाक्काञ्चीं समास्कन्दति व्यालोले रशनांशुके विगलिते नीते च नाभेरधः। धन्योऽयं स करः कुरङ्गकदृशा तस्मिन्नवस्थान्तरे कम्पातङ्ककरम्बिताङ्गलतया यस्यावकाशः कृतः ॥ १४ ॥ अहो अहं नमो मह्यं यदहं वीक्षितोऽनया। वालया त्रस्तसारङ्गचपलायतनेत्रया ॥ १५ ॥ आः पात्री स्यामकृतकघनप्रेमविस्फारितानां सव्रीडानां सकलकरणानन्दनाडिन्धमानाम्। तेषां तेषां हृदयनिहिताकूतनिष्यन्दिनेत्रव्यापाराणां पुनरपि तथा सुभ्रुवो विभ्रमाणाम् ॥ १६ ॥ आक्रन्दाः स्तनि-

---

भरी चेष्टाओंका स्मरण आ रहा है जिनमें उसने खोली जाती हुई चोटीकी गाँठ भी नहीं थामी, जिनमें उसने 'नहीं' भी नहीं की, वरन् जिनमें वह भोली-भाली चितवनसे देखती हुई अपना मुँह उठाए, खुलकर हँसती रही ॥५॥ लगातार मेरे मनको पीड़ित करनेवाला कामदेव बड़े-बड़े मतवाले नयनोंवाली उस नवेलीका सहारा लेकर यदि मुझे मार रहा है तो मुझे स्वीकार है ॥ ६ ॥ आँखोंके सामनेसे वह मृगनयनी हटती नहीं, रात बीतती नहीं, नींद आती नहीं और कामदेव भी बाण चलानेसे चूकता नहीं। ठीक ही है, दुखी व्यक्तियोंके ऊपर एक साथ ढेर-सी विपत्तियाँ पड़ जाती हैं ॥ ७ ॥ इस नवेलीके स्तनोंमें कोई निराली ही आग है जो दूरसे तो जलाती है किन्तु हृदयसे लगानेपर ठण्ढी जान पड़ती है ॥ ८ ॥ जब वह मेरे सामने पड़ जाती थी तो नीचे मुख करके धीरेसे देख लेती थी और जब उसे हँसी आती थी तो वह दूसरी बातोंके बहाने हँस देती थी। उसके स्वभावमें ऐसी नम्रता भरी थी कि न तो वह कामदेवका वेग छिपा ही पा रही थी, न खुलकर बता ही पा रही थी। ॥ ९ ॥ इस खिले हुए कमलपर खेलते हुए खञ्जनको देखकर उस चञ्चल नेत्रोंवाली नवेलीका मुँह स्मरण आने लगा है ॥ १० ॥ उस सुन्दर आँखवाली नवेलीकी उस चितवनने मेरे हृदयको असहाय कर दिया, हर लिया, बेध दिया, पी लिया तथा उखाड़ दिया जो अलसाई हुई, सुन्दर, चिकनी, जकड़ी हुई-सी, धीरे-धीरे डोल रही थी तथा जिसके भीतर अचरजसे भरी पुतलियाँ विकसित हो रही थीं ॥ ११ ॥ वह नवेली अपनी कनखियाँ धीरे-धीरे मटका-मटकाकर, भौंहें उचका-उचकाकर, आँखें मारती, खोलती, प्रेमसे देखती और फिर झँपाती हुई मुझपर बार-बार चितवन चला रही थी ॥ १२ ॥ वह चन्द्रमुखी मिलनेवाली नहीं और मुझपर कामदेवका यह अत्याचार हो रहा है किन्तु मन उछला पड़ रहा है। इससे जान पड़ता है कि मनोरथ सिद्ध अवश्य होनेवाला है नहीं तो मन एकाएक कैसे सन्तुष्ट हो जाता ॥ १३ ॥ एक बार बहुतसे लोगोंकी भीड़में अवसर न रहते हुए भी मैंने उस मृगनयनीकी तगड़ी खींच दी, जिससे करधनीके नीचेकी साड़ी ढीली पड़ गई और उस साड़ीको मैंने नाभिके नीचेतक सरका दिया। यद्यपि डरके मारे उसकी देहरूपी लता काँपने लगी थी फिर भी ऐसी दशामें उसने मेरे जिस हाथको अवसर दे दिया उस हाथको धन्य है! ॥ १४ ॥ अहा! मैं धन्य हूँ। मुझे नमस्कार है क्योंकि डरे हुए मृगके बड़े-बड़े चञ्चल आँखोंके समान आँखोंवाली इस नवेलीने मेरी ओर देख तो दिया! ॥ १५ ॥ आह! सुन्दर भौंहोंवाली नवेलीके स्वाभाविक तथा अत्यधिक प्रेमसे भरे हुए, लजीले, सभी इन्द्रियोंमें आनन्द भर देनेवाले तथा हृदयके भिन्न-भिन्न अभिप्राय प्रकट करनेवाले हाव-भाव आदिसे भरी चेष्टाएँ क्या मुझे फिर देखनेको मिलेंगी ॥ १६ ॥ हे मित्र बादल! तुम गड़गड़ा रहे हो तो मैं भी धाड़ मारकर रो रहा हूँ, तुम लगातार जलकी

तैर्विलोचनजलान्यश्रान्तधाराम्बुभिस्तद्विच्छेदभवाश्च शोकशिखिनस्तुल्यास्तडिद्विभ्रमैः। अन्तर्मे दयितामुखं तव शशी वृत्तिस्समैवावयोस्तत्किं मामनिशं सखे जलधर त्वं दग्धुमेवोद्यतः ॥ १७ ॥ आनन्दममन्दमिमं कुवलयदललोचने ददासि त्वम्। विरहस्त्वयैव जनितस्तापयतितरां शरीरं मे ॥१८॥ आसन्नमागमतिलङ्घ्य नतेन मूर्ध्ना पश्चात्प्रसङ्गवलितेन मुखेन यान्त्या। आरोपिताः कतिपये मयि पङ्कजाद्या साकूतहासमनतिप्रकटाः कटाक्षाः ॥१९॥ आसीनश्शयितस्स्थितः प्रचलितः स्वप्नायितो जागृतः पश्यन्मीलितलोचनो व्यवहरन्मौनं प्रपन्नोऽथवा। तां प्रेमाकुलवीक्षितां स्मितमुखीं सव्रीडमन्दागमां श्लिष्यन्तीं प्रणयार्द्रमुग्धलपितां पश्यामि नक्तन्दिवम् ॥ २० ॥ आस्तां दूरतया तदीयवदनाम्भोजामृतास्वादनं नोदेत्येव मनोरथोऽपि हृदये सत्सङ्गमाशां प्रति। उत्कण्ठाशिथिलीकृताङ्गलतिकं वीक्षेत मामेकदा सस्नेहं यदि सा सरोजवदना धन्योऽस्म्यहं तावता ॥ २१ ॥ इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमणीकृतं निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रवर्तिभिरश्रुभिः। अनतिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात्कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते॥२२॥ ऊरू रम्भा इदमपि कमलं शैवलं केशपाशो वक्त्रं चन्द्रो लपितममृतं मध्यदेशो मृणालम्। नाभिः कूपो वलिरपि सरित्पल्लवः किञ्च पाणिर्यस्यास्सा चेदुरसि न कथं हन्त तापस्य शान्तिः ॥ २३ ॥ कटाक्षेणापीषत्क्षणमपि निरीक्षेत यदि सा तदानन्दस्सान्द्रः स्फुरति निहताशेषविषयः। सरोमाञ्चोदञ्चत्कुचकलशनिर्भिन्नवसनः परीरम्भारम्भः क इव भविताम्भोरुहदृशः ॥ २४ ॥ कदा कान्तागारे परिमलमिलत्पुष्पशयने शयानश्श्यामायाः कुचयुगमहं वक्षसि वहन्। अये स्निग्धे मुग्धे चपलनयने चन्द्रवदने प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ २५ ॥ कान्तामुखं सुरतकेलिविमर्दखेदसञ्जातघर्मकणविच्छुरितं रतान्ते। आपाण्डुरं विलसदर्धनिमीलिताक्षं

धारा बहा रहे हो तो मेरे नेत्रोंसे भी लगातार आँसुओंकी धारा बह रही है, तुममें बिजली लपलपा रही है तो मेरी देहमें भी उस नवेलीके बिछोहके दुःखकी अग्निकी लपटें उठ रही हैं तथा तुम्हारे भीतर चन्द्रमा है तो मेरे हृदयमें भी मेरी प्रियतमाका मुखचन्द्र है। इस प्रकार हम-तुम दोनोंकी दशा एक ही-सी है फिर भी तुम मुझे क्यों सदा जलाए डालनेको तैयार बैठे रहते हो? ॥ १७ ॥ हे नीले कमलके समान आँखोंवाली! तुम तो मुझे बहुत सुख दे रही हो किन्तु तुम्हींसे उत्पन्न हुआ बिछोह मेरा शरीर जलाए डाल रहा है ॥ १८ ॥ वह कमलनयनी बार-बार मुँह घुमाकर तथा हँसीके बहाने मनके भाव प्रकट करके मुझपर चितवन चलाती हुई अपना सिर झुकाए मेरे पाससे निकल गई ॥ १९ ॥ जिसकी चितवनमें प्रेम भरा है, जिसके मुखमें मुस्कराहट है, जो लजाती हुई धीरे-धीरे चलती है, गले लगती है तथा प्रेमभरी बोलीसे मोहित कर देती है, उसे मैं बैठते, सोते, ठहरते, चलते, सपना देखते, जागते, देखते, आँख मूँदते, काम करते तथा चुप रहते, रात-दिन देखा करता हूँ ॥ २० ॥ उत्कण्ठासे जिसके अङ्ग शिथिल पड़ गए हैं वह कमलमुखी नवेली यदि मुझे एक बार भी प्रेमसे देख भर लेती तो उतनेसे ही मैं अपनेको ऐसा धन्य समझता कि उसके मुखकमलके अमृतका स्वाद पाना तो दूर रहा, उससे मिलनेकी आशाके भी भाव मनमें न उठते ॥२१॥ रातमें हृदयके तापसे गरम हुई बाँहपर रक्खे हुए नेत्रके कोनेसे निकलते हुए आँसुओंसे जिसका मणि मलिन हो गया है, जिसमें प्रत्यञ्चाकी रगड़का चिह्न बना हुआ है, वह सोनेका कङ्कन बार-बार उसकी कलाईसे नीचे खिसकता रहता है और मैं उसे ऊपर उठाता रहता हूँ ॥ २२ ॥ जिसकी जाँघें केलेके खम्भे, नेत्र कमल, बाल सेवार, मुख चन्द्रमा, बोली अमृत, कमर कमलनाल, नाभि कुआँ, पेटकी सिकुड़न नदी तथा हाथ नये पत्ते हैं ऐसी नवेली यदि छातीसे लग जाती तो सन्ताप क्यों न दूर हो जाता? ॥२३॥ जब उस नवेलीकी तिरछी चितवनसे क्षणभर तनिक-सा देख लिए जानेभरसे ऐसा घना आनन्द छा जाता है कि सभी विषयोंके आनन्द उसमें समा जाते हैं, तब कमलनयनीके उस आलिङ्गनके आनन्दके तो कहने क्या जिसमें स्तनोंपर उठे हुए रोंगटोंसे वस्त्रतक छिद जाते हैं ॥ २४ ॥ वह समय कब आवेगा जब प्राणप्यारीके घरमें सुगन्धित फूलोंके बिछौनेपर पड़ा हुआ, उस नवेलीके दोनों स्तन अपनी छातीसे लगाए हुए मैं यह कहते हुए एक क्षणके समान दिन बिता दूँगा कि 'हे प्रेमसे भरी सुन्दरी! हे चञ्चल नेत्रवाली! हे चन्द्रमुखी! प्रसन्न हो जाओ' ॥ २५ ॥ हे हृदय! प्यारीके उस मुखको स्मरण करते हुए तुम सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते जो सुरत-क्रियामें थक जानेसे निकले हुए पसीनेसे भरा था, जो सुरतके अन्तमें

संस्मृत्य हे हृदय किं शतधा न यासि ॥ २६ ॥ किं तिष्ठामि किमु व्रजामि किमहं जागर्मि निद्रामि किं किं जानामि किमु भ्रमामि किमु वा सुख्यामि दुःख्यामि वा । किं नास्म्यस्मि किमित्यनल्पकलिते न क्वापि पक्षे स्थितः प्राप्यानिर्वचनीयमेव कमपि क्रूरं विकारं सखे ॥ २७ ॥ किं पक्वं सुकृतं किमंह इति मे नाद्यापि संवेद्यते तन्व्याश्चेतसि किंस्विदस्मि कलितः किं नेति नैव स्फुटम् । एतत्किञ्चिदभूत्तदा मयि सकृत्कृत्वा कटाक्षं ततः स्निग्धव्याकुललोचनं तरलया सख्यस्तया वीक्षिताः ॥ २८ ॥ किं मे सद्गुरुसेवनैः प्रतिदिनं किं व्योमकेशार्चनैः किं स्यादध्ययनेन वा सुरपुरप्राप्त्याथवा किं फलम् । एतस्याः कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भप्रभावोद्भवस्वेदाम्भोभिरनङ्गवह्निरधुना निर्वापितो नो यदि ॥ २९ ॥ कुतः प्रेमलवोऽप्यस्ति खले मे हृदये खलु । सुन्दरीं तामनालोक्य यदहं प्राणिमि प्रिय ॥ ३० ॥ कुन्दं दन्तैर्मधु निगदितैः षट्पदं दृग्विलासैरेभिर्हासैरमृतलहरीं कुन्तलैरम्बुवाहम् । इन्दोर्बिम्बं वदनशशिना पङ्कजं च स्तनाभ्यां त्वं जित्वा तान्वससि हृदये तेन मां विद्विषन्ति ॥३१॥ कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न चन्द्रमरीचयो न च मलयजं सर्वाङ्गीणं न वा मणियष्टयः । मनसिजरुजं सा वा दिव्या ममालमपोहितुं रहसि लघ्वीदारब्धा वा तदाश्रयिणी कथा ॥ ३२ ॥ क्रमसरलितकण्ठप्रक्रमोल्लासितोरस्तरलितवलिलेखासूत्रसर्वस्वमस्याः । स्थितमतिचिरमुच्चैरग्रपादाङ्गुलीभिः करकलितसखीकं मां दिदृक्षोः स्मरामि ॥ ३३ ॥ क्वाकार्यं शशलक्ष्मणः क्व च कुलं भूयोऽपि दृश्येत सा दोषाणां प्रशमाय नः श्रुतमहो कोपेऽपि कान्तं मुखम् । किं वक्ष्यन्त्यपकल्मषाः कृतधियः स्वप्नेऽपि सा दुर्लभा चेतः स्वास्थ्यमुपैहि कः खलु युवा धन्योऽधरं पास्यति ॥ ३४ ॥ ग्रसति कोऽपि विमोहविधुन्तुदो हृदयचन्द्रमसं मम दारुणः । तदपि हन्त तदन्तरशायिनी लगति चिह्नमृगीव मृगे-

---

पीला पड़ गया था और जिसमें आँखें अधखुली ही रह गई थीं ॥ २६ ॥ हे मित्र ! मुझमें कोई ऐसा भयङ्कर विकार आ गया है जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता और जिसमें मुझे यही नहीं जान पड़ता कि मैं खड़ा हूँ या चल रहा हूँ, सोता हूँ या जागता हूँ, भ्रममें हूँ या सचेत हूँ, सुखी हूँ या दुखी हूँ तथा हूँ भी या नहीं । इस प्रकार अनेक तर्क-वितर्क करके भी मैं कुछ निश्चय नहीं कर पाता ॥ २७ ॥ आज भी मेरी समझमें नहीं आता कि मेरा पुण्य उदय हुआ है या पाप तथा यह भी नहीं स्पष्ट हो रहा कि उस दुबली देहवाली नवेलीके चित्तमें मैं बसा भी हूँ या नहीं ! इनमेंसे कोई एक बात अवश्य है क्योंकि उसने एक बार तो मुझपर चितवन चलाई फिर प्रेममें भरकर चिकनी और घबराई हुई दृष्टिसे वह अपनी सखियोंको देखने लगी ॥ २८ ॥ जब कि इस नवेलीके घड़ेके समान स्तनोंके कसकर आलिङ्गन करनेके प्रभावसे निकले हुए पसीनेसे मेरी कामाग्नि शान्त नहीं हो पाई तो सद्गुरुकी सेवा, प्रतिदिन शङ्करकी सेवा या अध्ययन करनेसे क्या लाभ है तथा स्वर्ग मिल जानेसे ही कौन बड़ा लाभ हो जायगा ? ॥ २९ ॥ हे प्यारे ! मेरे नीच हृदयमें सचमुच प्रेमका लेश मात्र नहीं बचा है कि मैं उस सुन्दरीको न देखकर भी जिए जा रहा हूँ ॥३०॥ हे प्यारी ! तुम जो अपने दाँतोंसे कुन्दके फूलको, बोलीसे मधुको, चितवनसे भौंरोंको, हँसीसे अमृतकी धारको, केशोंसे बादलको, मुखचन्द्रसे चन्द्रमाको तथा स्तनोंसे कमलोंको जीतकर मेरे हृदयमें विराजमान हो, इसीसे ये सब वस्तुएँ मुझसे डाह कर रही हैं ॥ ३१ ॥ तत्काल बिछाया हुआ फूलोंका बिछौना, चन्द्रमाकी किरणें, सारी देहमें पुता हुआ चन्दनका लेप तथा मणिकी माला ये सब वस्तुएँ कामदेवका ताप नहीं शान्त कर सकतीं, एकान्तमें वह स्वर्गीय नवेली अथवा उस की चर्चाएँ ही कामपीड़ाको भली-भाँति शान्त कर सकती हैं ॥ ३२ ॥ मुझे उस प्यारीकी उस अवस्थाका स्मरण आ रहा है जब वह पञ्जोंके बल खड़ी होकर, उचककर मुझे देख रही थी, उसका गला सीधा हो गया था, छाती उभर आई थी, पेटकी सिकुड़न मिट गई थी और गिरनेके डरसे वह सखीको अपने हाथसे थामे हुए थी ॥ ३३ ॥ किसीके मनमें ज्ञान और प्रलापका द्वन्द्व चल रहा है—बोध : कहाँ तो यह मेरा कुकृत्य और कहाँ चन्द्रमाका निर्मल वंश ! प्रलाप : फिर भी एक बार दिखाई पड़ जाती तो कितना अच्छा होता ! बोध : चित्तके दोषोंको दूर करनेके लिये ही तो हमारे शास्त्र हैं। प्रलाप : क्रोधमें भी उसका मुख मनोहर ही लगता है। बोध : पुण्यात्मा बुद्धिमान् लोग मेरे इस कुकृत्यपर क्या कहेंगे ! प्रलाप : वह स्वप्नमें भी नहीं मिल पा रही है। बोध : अरे चित्त ! शान्त हो जा। प्रलाप : कौन धन्य युवक है जो उसके अधर रसका पान करेगा ? ॥ ३४ ॥ यद्यपि मोहरूपी राहु मेरे हृदयरूपी

त्पणा ॥ ३५ ॥ घर्मांशुर्भगवानसूत यमुनां ताभ्या कृतं गङ्गया पाथोऽस्याः क्वथितं पुरारिमुकुटे नेत्रानलज्वालया । स्यन्दैश्चन्दनशाखिनां शतमुखैः किस्मीरनीरोर्मयस्सेवायै मलयाचलेन्द्रसरितस्सम्भूय तिष्ठन्तु मे ॥ ३६ ॥ चक्षुःप्रीत्या निषण्णे मनसि परिचयाच्चिन्त्यमानेऽभ्युपाये याते रागे विवृद्धिं प्रविसरति गिरां विस्तरे दूतिकायाः । आस्तां दूरे स तावत्सरभसदयितालिङ्गनानन्दलाभस्तद्गेहोपान्तरथ्याभ्रमणमपि परां निर्वृतिं सन्तनोति ॥ ३७ ॥ चण्डांशो विरमाशु मा मयि किराङ्गारान्करैर्दुःखिते नाहं ते व्यदधां मनागपि कदाऽप्यागः पुनः कुतकथम् । त्वञ्चेदद्य कुहापि शीतकरणं सङ्गोप्य रात्रौ कुतो भीष्मोत्तापचयप्रवर्षणपरस्त्वं किं कृते प्रोद्यतः ॥ ३८ ॥ चित्रं सा मम जीवितं क्वचिदितो याता वताहं पुनर्जीवामीत्यभिमानभारविधुरो नाद्यापि जातोऽकृती । धिग्भस्मन्यपि पावकत्वमितिवद्व्यर्थं तथामानिनं जीवत्वं क्व नु जीवनस्य विलये हा हन्त कुत्रासि मे ॥ ३९ ॥ जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः प्रकृतिमधुरास्सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये । मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः ॥ ४० ॥ जाने कोपपराङ्मुखी प्रियतमा स्वप्नेऽद्य दृष्टा मया मा मा संस्पृश पाणिनेति रुदती गन्तुं प्रवृत्ता पुरः । नो यावत्परिरभ्य चाटुकशतैराश्वासयामि प्रियां भ्रातस्तावदहं शठेन विधिना निद्रादरिद्रीकृतः ॥ ४१ ॥ जाने स्वप्नविधौ ममाद्य चुलुकोत्सेक्यं पुरस्तादभूत्प्रत्यूषे परिवेषमण्डलमिव ज्योत्स्नासपत्नं महः । तस्यान्तर्नखनिस्तुषीकृतशरच्चन्द्रप्रभैरङ्गकैर्दृष्टा काप्यवला बलात्कृतवती सा मन्मथं

चन्द्रमाको ग्रस रहा है फिर भी कलङ्करूपी मृगी-सी वह मृगनयनी मेरे हृदयमें चिपटी ही बैठी है ॥३५॥ भगवान् सूर्यने यमुनाको उत्पन्न तो किया किन्तु उत्पन्न करके उसे गङ्गासे मिलाकर धातुमाक्षिक रस बना डाला तथा गङ्गाके जलको शिवजीके माथेके तीसरे नेत्रकी आगकी लपटोंमें औटाकर उसका काढ़ा बना डाला। अतः मेरे सन्तोषके लिये मलयाचलसे निकली हुई वे नदियाँ ही अच्छी हैं जिनका जल तथा लहरें चन्दनके वृक्षोंसे गिरे फूलोंसे रङ्ग-बिरङ्गी हो रही हैं ॥ ३६ ॥ उस नवेलीपर पहले आँखें रीझीं, जिससे उसपर मन लग गया। इतनी ही पहचानसे मिलनेका उपाय सोचा जाने लगा, तबतक प्रेम और आगे बढ़ गया और दूतियोंसे बातें चलने लगीं। ऐसी दशामें प्यारीका कसकर आलिङ्गन करनेका आनन्द मिलना तो दूरकी बात है, उसके घरके पासकी गलियोंमें चक्कर लगानेसे भी एक निराले आनन्दका अनुभव होता है ॥३७॥ हे तीव्र किरणोंवाले (चन्द्रमा)! शीघ्र ही थोड़ा रुक तो जाओ, मुझ दुखीपर अपने हाथों (किरणों) से अङ्गार न बरसाओ! मैंने तो कभी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा, फिर तुम्हें क्रोध क्यों आ रहा है? और जब दिनमें तुम अपनी शीतलता छिपाकर कहीं भी छिपे रहते हो तो रातमें लगातार भयङ्कर ताप बरसाते हुए तुम कहाँसे क्या करनेके लिये निकल आते हो? ॥ ३८ ॥ बड़ा आश्चर्य होता है कि वह मेरा जीवन (प्राणप्यारी) यहाँसे कहीं चली गई और मैं जी रहा हूँ? 'मैं उसे प्राणोंसे बढ़कर चाहता हूँ' मेरा यह घमण्ड क्या अभीतक भी चूर-चूर नहीं हुआ? मुझे धिक्कार है कि राखमें आगके भ्रमके समान जो मैं अपनेको व्यर्थ ही उसे प्रेम करनेवाला समझता रहा! अरे, जब जीवन (प्राण) ही नष्ट हो गया तो जीना कैसा? आह! बड़ा कष्ट है, हाय मेरी प्यारी! तुम कहाँ हो? ॥ ३९ ॥ यद्यपि संसारमें नये चन्द्रमाकी कला आदि एकसे एक बढ़कर सुन्दर वस्तुएँ हैं तथा और भी ऐसे स्वभावसे ही सुन्दर पदार्थ हैं जो मनको प्रसन्न कर देते हैं किन्तु लोगोंके नेत्रोंके लिये चाँदनीके समान सुखदायिनी यह नवेली जो मेरे नेत्रोंके सामने आ पड़ी, यह मेरे जीवनमें ऐसा बड़ा उत्सव हुआ जैसा पहले कभी नहीं हुआ था ॥ ४० ॥ आज मैंने स्वप्नमें देखा कि मेरी प्यारी रूठकर मुख मोड़े हुए 'मुझे हाथ न लगाना!' कहकर रोती हुई आगेको बढ़ी जा रही है। मैं उसे गलेसे लगाकर बहुत-सी चिकनी-चुपड़ी बातें करके उसे मना भी न पाया कि भाई! इतनेमें ही दुर्भाग्यवश मेरी नींद खुल गई ॥ ४१ ॥ आज प्रातःकाल स्वप्नमें मेरे सामने एक ऐसा तेज दिखाई दिया जो मेरी आँखोंको ऐसी तृप्ति दे रहा था मानो चुल्लूमें पानी भरकर सींच रहा हो, जिसका घेरा बँधा हुआ था और जो दूसरी चाँदनीके समान था। उसके भीतर शरद् ऋतुके बिना कलङ्कके चन्द्रमाके समान मनोहर अङ्गवाली एक नवेली दिखाई पड़ी जिसने बलपूर्वक मन्मथ (कामदेव) को मेरे लिये मन्मथ (मनको मथ डालनेवाला) बना दिया ॥ ४२ ॥ अरे, काले रंगमें डूबी

मन्मथम् ॥ ४२ ॥ ज्योत्स्नां श्यामलिमानमानयत भोः सान्द्रैर्मषीकूर्चकैर्मन्त्रं तन्त्रमथ प्रयुज्य हरत श्वेतोत्पलानां स्मितम्। चन्द्रं चूर्णयत क्षणाच्च कणशः कृत्वा शिलापट्टके येन द्रष्टुमहं क्षमे दश दिशस्तद्वक्त्रमुद्राङ्किताः ॥ ४३ ॥ तदङ्गमपि नाम तत्सहजकान्तिपूराप्लुतं सुवर्णकदलीदलोद्दलितगर्भगौरं पुनः। कठोरमदनव्यथापिशुनपाण्डिमाधिष्ठितप्रथीयकुचमण्डलं परिरभेय वीक्षेय वा ॥४४॥ तदा मुग्धं वक्त्रं किसलयसखः सोऽधरमणिर्विशाले ते नेत्रे स्तनभरनता सा तनुलता। सलीलं तद्यातं जननयनसञ्जीवनसुधा प्रिया सा सा सा सेत्यजनि हृदयं तन्मयमहो ॥ ४५ ॥ तद्वियोगसमुत्थेन तच्चिन्ताविपुलार्चिषा। रात्रिन्दिवं शरीरं मे दह्यते मदनाग्निना ॥ ४६ ॥ तन्वी सा यदि गायति श्रुतिकटुर्वीणाध्वनिर्जायते यद्याविष्कुरुते स्मितानि मलिनैवालक्ष्यते चन्द्रिका। आस्ते म्लानमिवोत्पलं नवमपि स्याच्चेत्पुरो नेत्रयोस्तस्याः श्रीरवलोक्यते यदि तडिद्वल्ली विवर्णैव सा ॥ ४७ ॥ तप्ते महाविरहवह्निशिखावलीभिरापाण्डुरस्तनतटे हृदये प्रियायाः। मन्मार्गवीक्षणनिवेशितदीनदृष्टेर्नूनं छमच्छमिति वाष्पकणाः पतन्ति ॥ ४८ ॥ तया गाढं मुक्तो भुवि धनुषि सन्धाय निशितः कटाक्षेषुर्नान्यैस्सह पठनयोग्यः शरगणैः। पतन्गात्रे गात्रे परममृतमास्नौदिव तदा दवीयानद्यायं दलयति पुनर्न व्रणयति ॥ ४६ ॥ तरत्तारं तावत्प्रथममथ चित्रार्पितमिव क्रमादेवापाङ्गे सहजमिव लीलामुकुलितम्। ततः किञ्चित्फुल्लं तदनु घनवाष्पाम्बुलहरीपरिक्षामं चक्षुः पततु मयि तस्या मृगदृशः ॥५०॥ तस्मिन्पञ्चशरे स्मरे भगवता भर्गेण भस्मीकृते जानास्यक्षयसायकं कमलभूः कामान्तरं निर्ममे। यस्यामीभिरितस्ततश्च विशिखैरापुङ्खमग्नात्मभिर्जातं मे विदलत्कदम्बमुकुलस्पर्धोपमानं वपुः ॥ ५१ ॥ तस्यां सुतनुसरस्यां चेतो नयनं च निष्पतितम्। चेतो गुरु तु निमग्नं लघु नयनं सर्वतो भ्रमति ॥ ५२ ॥ तस्याः

हुई घनी कूँचीसे इस चाँदनी रातको काला कर दो, टोनाटोटका करके उजले कमलोंका खिलना बन्द कर दो और झटपट चन्द्रमाको चट्टानपर पटककर चूर-चूर कर दो, जिससे मैं दसों दिशाएँ उस नवेलीके मुखसे ही भरी हुई देखूँ ॥ ४३ ॥ यदि उस नवेलीके सहज सुन्दरतासे भरे हुए सोनेके केलेके खम्भेके भीतरी भागसे समान गोरे अङ्ग तथा उजले दिखाई देते हुए, घोर कामपीड़ाके कारण पीले-पीले, बड़े-बड़े स्तनोंका आलिङ्गन या दर्शन ही मिल जाता तो बड़े भाग्यकी बात होती ॥ ४४ ॥ उस समय उसका मुख सुन्दर, अधर कोंपलके समान, नेत्र बड़े-बड़े, शरीर स्तनोंके भारसे झुका हुआ और चाल हाव-भावसे भरी हुई थी। इस प्रकार जो प्यारी सबकी आँखोंके लिये सञ्जीवनी बूटी-सी जान पड़ती थी उसीके लिये इस समय विरहमें 'वह-वह' करते हुए हृदय उसीके रूपका हो गया है ॥ ४५ ॥ उसके विरहसे उत्पन्न चिन्तारूपी ज्वालासे भरी हुई कामरूपी अग्निसे रात-दिन मेरा शरीर जला जा रहा है ॥ ४६ ॥ वह दुबली-पतली नवेली जब गाने लगती है तो वीणाकी झङ्कार कड़वी लगने लगती है, उसकी मुस्कराहटके सामने चाँदनी फीकी पड़ जाती है, जब वह आँखोंके सामने आ पड़ती है तो कमल भी मैले दिखाई पड़ते हैं तथा उसकी शोभा देख लेनेपर बिजली भी मलिन दिखाई देने लगती है ॥ ४७ ॥ मेरी बाट जोहते समय दीन होकर देखती हुई प्यारीके विरहाग्निकी ज्वालासे तपते हुए स्तनवाले हृदयपर आँसूकी बूँदें छम-छम करती हुई गिर रही हैं ॥ ४८ ॥ उस समय उस नवेलीने भौंहरूपी धनुषपर चढ़ाकर जो चितवनरूपी बाण बलपूर्वक छोड़ा वह शरीरपर पड़ता हुआ अमृत-सा बरसाता था। उसकी बराबरी दूसरे बाणसे नहीं की जा सकती। किन्तु यद्यपि वह चितवन आज दूर है फिर भी हृदयको ऐसा फाड़ रही है कि घाव नहीं हो रहा है ॥ ४६ ॥ [मैं यही चाहता हूँ कि] वह मृगनयनी पहले तो आँखें तरेरकर, फिर एकटक होकर, फिर क्रमसे नेत्रके कोर सहज भावसे कुछ मूँदकर, फिर कुछ खोलकर तथा इसके पश्चात् अत्यन्त वेगसे निकले आँसुओंसे डबडबाए हुए नेत्रोंसे मुझे देखती रहे ॥ ५० ॥ उस पाँच बाणवाले कामदेवको जब भगवान् शङ्करने भस्म कर दिया तब ब्रह्माने एक दूसरा ऐसा कामदेव बनाया जिसके बाण कभी भी कम न हों। उसीके बाण मेरी देहमें चारों ओर ऐसे गड़ गए हैं कि सारा शरीर खिले हुए कदम्बकी कलियोंके समान रोमाञ्चित हो रहा है ॥ ५१ ॥ उस सुन्दरी-रूपी झीलमें जब मेरा मन तथा नेत्र दोनों कूद पड़े तो गुरु (भारी, श्रेष्ठ) मन तो उसमें डूब गया किन्तु लघु (हल्का, सुन्दर) नेत्र ऊपर ही चारों ओर चक्कर लगाने लगा ॥ ५२ ॥ अपनी मनोहर मुस्कानकी कान्ति

किं मुखपङ्कजं स्मितरुचा चन्द्रद्युतेर्निन्दकं किं वा नेत्रयुगं कटाक्षचतुरं किं भ्रूलताविभ्रमम्। किं वा स्निग्धमवेक्षितं मयि पुनर्यान्त्यां सखीनां पुरः किं किं सम्प्रति चिन्तयामि हृदये कामेन लक्ष्यीकृते ॥ ५३ ॥ तां हेमचम्पकरुचिं मृगशावकाक्षीं पार्श्वे स्थिताञ्च पुरतः परिवर्तमानाम्। पश्चात्तथा दशदिशासु परिस्फुरन्तीं पश्यामि तन्मयमहो भुवनं किमेतत् ॥ ५४ ॥ तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलस्निग्धा दृशोर्विभ्रमास्तद्वक्त्राम्बुजसौरभं स च सुधास्यन्दो गिरां वक्रिमा सा बिम्बाधरमाधुरीति विषयासङ्गेऽपि मन्मानसं तस्यां लग्नसमाधि हन्त विरहव्याधिः कथं वर्तते ॥५५॥ तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिरं विभाव्य चेतः कथं कथमपि व्यपवर्तते मे। लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य धैर्यमुन्मथ्य मन्थरविवेकमकाण्ड एव ॥ ५६ ॥ तैस्तैश्चाटुभिराज्ञया किल तदा वृत्ते रतिव्यत्यये लज्जामन्थरया तया निवसिते भ्रान्त्या मदीयेंऽशुके। तत्पट्टांशुकमुद्वहन्नहमपि स्मित्वा यदुक्तोऽधुना वेषो युज्यत एष एव हि तवेत्येतन्न विस्मर्यते ॥ ५७ ॥ दत्त्वा कटाक्षमेणाक्षी जग्राह हृदयं मम। मया तु हृदयं दत्त्वा गृहीतो मदनज्वरः ॥ ५८ ॥ दर्शनपथमुपयाता यदवधि मदिरायतेक्षणा सहसा। तदवधि हृदयेनाहं मदनेषुभयादिवोन्मुक्तः ॥ ५९ ॥ दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा न तु भिद्यते वहति विमलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्। ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदो न कृन्तति जीवितम् ॥ ६० ॥ दिव्यचक्षुरहं जातः सरागेणापि चक्षुषा। इहस्थो येन पश्यामि देशान्तरगतां प्रियाम् ॥ ६१ ॥ दूरमस्तु दरघूर्णिततारं शारदेन्दुमुखवीक्षणमक्ष्णोः। एतदेव मम पुण्यमगण्यं यत्कृशोदरि दृशोरतिथिस्त्वम् ॥ ६२ ॥ दैवादहमत्र तया चपलायतनेत्रया वियुक्तश्च।

चन्द्रमाकी कान्तिको नीचा दिखानेवाला उसका मुखकमल, सुन्दर चितवनसे भरे उसके दोनों नेत्र, उसकी भौंहोंका फड़कना, मार्गमें सखियोंके सामने प्रेममें भरकर मुझे देखना, और भी अनेक बातें हैं, मैं इस समय अपने हृदयमें किस-किसकी चिन्ता करूँ, क्योंकि मेरे हृदयको तो कामदेवने अपने बाणोंका लक्ष्य ही बना डाला है ॥५३॥ सुनहरी चम्पाके समान कान्तिवाली उस मृगनयनीको मैं अपने पास ही खड़ी हुई, सामने आकर घूमती हुई तथा दसों दिशाओंमें चमकती हुई देखता हूँ। यही नहीं, उसमें डूब जानेपर मुझे सारा संसार ही उसीसे भरा हुआ क्यों दिखाई देने लगा है ? ॥५४॥ कोई विरही युवक पहलेकी बातें सोचता हुआ कहता है—'वह उसे छूनेका सुख, वे चञ्चल तथा स्नेहपूर्ण चितवनें, वह कमल जैसे मुखकी सुगंध, वह अमृतकी वर्षा करनेवाला बोलनेका ढंग तथा वह कुँदरूके समान अधरकी मिठास, इन सबका अनुभव करके उसके साथ रहनेपर मेरा मन उन्हींमें लीन रहता था। हाय ! अब विरहकी वेदनामें वे बातें कैसे भुलाई जा सकती हैं ? ॥५५॥ चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली नवेलीको बहुत देरतक देखनेके पश्चात् मेरा चित्त लज्जाको जीतकर, नम्रताको दूर कर, धीरताको उखाड़ कर तथा असमयमें विचारहीन बनकर किसी-किसी प्रकार वहाँसे लौटा ॥ ५६ ॥ मेरे अनेक प्रकारकी चिकनी-चुपड़ी बातें करनेके पश्चात् उसकी आज्ञा होनेपर जो रति-क्रीड़ा हुई उसके पश्चात् लाजके कारण ढीली पड़कर उसने धोखेमें मेरे वस्त्र पहन लिए तथा मैंने भी उसके वस्त्र पहन लिए। मुझे इस रूपमें देखकर जो उसने मुस्कराकर यह कहा कि 'तुम्हें तो यही वेष शोभा देता है' यह आज भी मुझे नहीं भूल रहा है ॥ ५७ ॥ उस मृगनयनीने अपनी तिरछी चितवन देकर मेरा मन ले लिया और मैंने अपना मन देकर पाया काम-ज्वर ! ॥ ५८ ॥ चंचल तथा बड़े-बड़े नेत्रोंवाली वह नवेली एकाएक जबसे आँखोंके सामने पड़ी तभीसे कामके बाणोंके डरसे मानो हृदयने मुझे छोड़ दिया ॥ ५९ ॥ हृदय घबराकर फट तो रहा है किन्तु दो टुकड़े नहीं हो रहा है, शरीर व्याकुल होकर मोहमें तो पड़ा है किन्तु चेतना नहीं छोड़ रहा है, भीतरका दाह तपाए तो डाल रहा है किन्तु शरीरको भस्म नहीं कर दे रहा है तथा मर्मस्थलको छेदनेवाला दुर्भाग्य मुझपर प्रहार तो कर रहा है पर जीवनको टुकड़े-टुकड़े नहीं कर रहा है ॥ ६० ॥ जान पड़ता है आँखोंके सराग (अनुराग सहित लाल) होनेपर भी मैं दिव्यदृष्टि (न दिखाई देनेवाली वस्तुओंको देखनेवाला) हो गया हूँ, तभी तो यहाँ रहते हुए भी दूर देशमें पड़ी हुई प्यारीको देख रहा हूँ ॥ ६१ ॥ हे दुबले पेटवाली ! शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान तुम्हारे उस मुँहका दर्शन दूर रहे जिसमें पुतलियाँ घूम रही हैं, हमारी आँखोंका तो यही बड़ा भारी पुण्य है कि तुम नेत्रोंके सामने तो आ गई हो ॥ ६२ ॥ उस चंचल तथा बड़े-बड़े नेत्रोंवाली नवेलीसे मैं बिछुड़ा ही था कि दुर्भाग्य-वश मँडराते हुए घने

अविरलविलोलजलदः कालः समुपागतश्चायम् ॥६३॥ दृगन्तव्यापारप्रबलनिगडेन स्फुरदुरस्तटीकारागारे तव समुचितं बन्धनमिदम्। अरे चेतस्त्यक्त्वा यदिह जनमाजन्मसुहृदं क्षणप्राप्तामेनामधरमधुलाभेन भजसे ॥ ६४ ॥ धन्या सा गृहदेहली स्पृशति या तत्पादपद्मप्रभां जाता सा सरसी रसाद्विशति सा यस्यां विहारेच्छया। वन्द्यः कोऽपि स एव यः खलु तया नेत्रेण सम्भाव्यते धिग्धिग्वेधसमेषु मां यदनयन्नेकं कथञ्चित्कथम् ॥ ६५ ॥ न दूतीसञ्चारो न सरसपरोक्षोक्तिकलना न साम्मुख्ये हासः क्वचिदपि न वाचां व्यतिकरः। अहो चित्रं चेतः क्षणपरिचितालोकनवशान्मुहुर्धावत्यावं व्रजति सुदृशं ना विरमति ॥६६॥ नपुंसकमिति ज्ञात्वा तां प्रति प्रहितं मनः। तत्तु तत्रैव रमते हताः पाणिनिना वयम् ॥६७॥ न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं हृतेति सा। एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवर्तते ॥ ६८ ॥ नयनेन निरीक्षिता नताङ्गी हृदये हन्त पतत्रिणः पतन्ति। विषमा विषमायुधस्य यथासौ परिभूयेत परः परापराधैः ॥ ६९ ॥ न वक्षोजाश्लेषप्रभृतिकुतुकानामवगमो न पीयूषस्वादस्मितवलितवाचामनुभवः। न चासीन्मे तादृग्दृढपरिचयः पङ्कजदृशः कुतो हेतोस्तन्वी क्षणमपि न निर्याति मनसः ॥ ७० ॥ निकारकणिका कृता हरिणलोचने नो मया मुधैव करसम्पुटे मुखविधुः किमावासितः। इतीयति मयादिते तरलिताङ्गुलीकोटरैर्विलोक्य विहितस्तया रभसहासकण्ठग्रहः ॥ ७१ ॥ निद्रार्धमीलितदृशा मदमन्थराणि नाप्यर्थवन्ति न च नाम निरर्थकानि। अद्यापि मे मृगदृशा मधुराणि तस्यास्तान्यक्षराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति ॥ ७२ ॥ निद्रे लोचनमुद्रणं विरचय स्वप्न त्वमभ्याचर प्राणाभिन्नतमां चिरात्प्रियतमां मच्चेतसो गोचरम्। भ्रातर्बोध दृढानुरोध न तथा कुर्या यथा प्रेयसीप्रौढा-

---

बादल लिए-दिए वर्षा ऋतु भी आ पहुँची ॥ ६३ ॥ हे चित्त! उस नवेलीके सुन्दर वक्षःस्थल रूपी कारागारमें चितवन-रूपी बेड़ीसे तुम्हारा बाँधा जाना उचित ही है क्योंकि अपनी जीवन-सङ्गिनी उस नवेलीको छोड़कर अधरामृत-रूपी मधुके लोभसे क्षणभरके लिये मिली हुई दूसरी सुन्दरीको तुम चाहने लगे हो ॥ ६४ ॥ उस घरकी देहली धन्य है जो उसके चरणकमलकी कान्ति पाती रहती है, वह झील धन्य है जिसमें वह जल-क्रीड़ाके लिये जाती है और संसारमें वह पुरुष वन्दनीय है जिसका वह अपनी चितवनोंसे सत्कार करती है, किन्तु धिक्कार है उस ब्रह्माको जिसने न जाने क्यों इनमेंसे मुझे एक भी नहीं बनाया ॥ ६५ ॥ न तो दूतियाँ ही आई-गईं, न आड़से छिपकर बातें ही सुनी गईं, न सामने उसका मुसकराना देखा गया और न उससे कहीं बातचीत ही हुई, फिर भी आश्चर्य तो यह है कि क्षण-भरके देखने-मात्रके परिचयसे चित्त बार-बार दौड़कर उस नवेलीके ही पास जा रहा है, उससे उचट नहीं पा रहा है ॥ ६६ ॥ पाणिनि मुनिके कहनेके अनुसार मैंने तो मनको 'नपुंसक' समझकर प्यारीके पास भेजा किन्तु वह तो वहीं रम गया अतः जान पड़ता है कि वह पुरुष है और पाणिनिने हमें धोखा दिया ॥ ६७ ॥ मुझे इसका तनिक भी दुःख नहीं है कि प्यारी मुझसे दूर है, इसका भी दुःख नहीं है कि वह हर ली गई है, मुझे तो केवल इसी बातका सोच है कि उसका यौवन बीता जा रहा है ॥ ६८ ॥ उस झुके हुए अङ्गोंवाली नवेलीको देखा तो आँखोंने किन्तु कामके बाण गिर रहे हैं हृदयपर और हृदयमें ही भयङ्कर पीड़ा भी हो रही है। हाय! अपराध किया किसी दूसरेने और दण्ड भोगना पड़ रहा है किसी दूसरेको ॥६९॥ यद्यपि मैंने न तो उस नवेलीके स्तनोंका आलिङ्गन आदि किया, न मुझे उसकी अमृतमयी मधुर मुस्कानसे भरी बातें ही सुननेका अवसर मिला और न उससे मेरा कोई पुराना परिचय ही था फिर भी न जाने क्यों वह मृगनयनी क्षणभर भी मनसे हट नहीं पा रही है? ॥ ७० ॥ अपनी प्यारीको अपने हाथोंसे मुँह ढककर बैठी देखकर ज्यों ही मैंने कहा कि 'हे मृगनयनी! मैंने तो तुम्हारा तनिक भी अपमान नहीं किया, फिर क्यों तुम व्यर्थ ही अपने हाथोंकी अञ्जलिमें अपना चन्द्रमुख बसाए बैठी हो?' त्यों ही वह अपनी उँगलियाँ खोलकर मेरी ओर खिलखिलाकर हँसती हुई मेरे गलेसे लिपट गई ॥ ७१ ॥ नींदसे जिसकी आँखें आधी मुँदी हुई थीं उस मृगनयनीके मुखसे मदके कारण लटपटाकर निकले हुए वे मधुर अक्षर आज भी हृदयमें गूँज रहे हैं जिनमें कुछ तो अर्थवाले थे और कुछ निरर्थक ॥७२॥ हे नींद! मेरी आँखें मूँद दो। हे स्वप्न! बहुत दिनोंसे प्राणोंमें बसी हुई प्यारीको मेरे मनके सामने ला दो और हे भाई जागरण! तुमसे मैं बार-बार प्रार्थना करता हूँ कि ऐसा कोई काम न कर बैठना कि मेरी प्यारीका गाढ़ा आलिङ्गन छुड़ा देनेके कारण संसार-भरमें तुम्हारा अपयश हो ॥ ७३ ॥ समुद्र तथा नदियोंके जलकी

श्लेषविघट्टनेन भवतः क्रीडन्ति दुष्कीर्तयः ॥ ७३ ॥ निष्कासयन्त्यनेके सागरसरिदम्बुपूरपरिपतितम् । हृदयह्रदे निमग्नामिन्दुमुखीं मा बहिः कुरुताम् ॥७४॥ नूनमयं मे पापः कान्ताविरहो रसायनीभूतः । वर्षसहस्राभ्यधिकान्नयामि कथमन्यथा दिवसान् ॥ ७५ ॥ पञ्चसायकमहेन्द्रजादिना पाणिपद्मसमुदञ्चिता स्वयम् । मोहनाय मनसः प्रगल्भते पिच्छिकेव मम चञ्चलेक्षणा ॥ ७६ ॥ परागैः कार्पूरैस्तुहिनसलिलैश्चान्दनरसैः सुधाभिर्ज्योत्स्नाभिः स्नपितमिव यः प्रागकृत माम् । स एवासौ मारः शिव शिव वियोगे मृगदृशः करालं काकोलं किरति मयि कालानलमपि ॥ ७७ ॥ पश्यामि तामित इतः पुरतश्च पश्चादन्तर्बहिः परित एव विवर्तमानाम् । उद्बुद्धमुग्धकनकाब्जनिभं वहन्तीमासक्ततिर्यगपवर्तितदृष्टि वक्त्रम् ॥ ७८ ॥ पादाङ्गुष्ठेन भूमिं किसलयरुचिना सापदेशं लिखन्ती भूयोभूयः क्षिपन्ती मयि सितशबले लोचने लोलतारे । वक्त्रं ह्रीनम्रमीषत्स्फुरदधरपुटं वाक्यगर्भं दधाना यन्मां नोवाच किञ्चित्स्थितमपि पुरतो मानसं तद्दुनोति ॥७९॥ पीतो यतःप्रभृति कामपिपासितेन तस्या मयाधररसः प्रचुरः प्रियायाः । तृष्णा ततः प्रभृति मे द्विगुणत्वमेति लावण्यमस्ति बहु तत्र किमप्यपूर्वम् ॥८०॥ पुनरपि मिलनं यदाकदाचित्प्रियतमया कृपया भवेद्विधातुः । हरिरिव करवै हृदि प्रतिष्ठामिह रमणीं तनवै तनोरभिन्नाम् ॥८१॥ पुरस्ताद्गच्छन्ती सह सहचरीभिः प्रियतमा ममालापं श्रुत्वा सचकितपरावृत्तवदना । किमग्रे व्यासङ्गादहमहह यामीति विनयप्रणालीमालीनां यदकृत तदन्तर्व्यथयति ॥ ८२ ॥ प्रथमविरहखेदव्यापिनी यत्र बाला वसति नयनवान्तैरश्रुभिर्धौतगण्डा । प्रहतमुरजवृन्दध्वानवद्भिः पयोदैः कथमलिकुलनीलैः साऽपि दिक्सन्निरुद्धा ॥ ८३ ॥ प्राणाः प्रियतमा हन्त

बाढ़में पड़ी हुई वस्तुएँ तो बहुतेरे लोग निकाल लेते हैं किन्तु हृदय-रूपी तालाबमें डूबी हुई उस चन्द्रमुखीको कोई नहीं निकाल पा रहा है ॥ ७४ ॥ उस नवेलीका यह पापी विछोह सचमुच मेरे लिये सञ्जीवनी बूटीके समान रसायनका काम कर रहा है। यदि यह बात न होती तो सहस्रों वर्षोंके समान जान पड़नेवाले ये दिन मैं कैसे बिता रहा हूँ ॥ ७५ ॥ यह चञ्चल नेत्रवाली नवेली ऐसी जान पड़ती है मानो मेरे मनको मोहमें डालनेके लिये कामदेव-रूपी जादूगरने कमल जैसे हाथमें मोरपङ्खसे बनी हुई झाड़ू उठा रक्खी हो ॥ ७६ ॥ जिस समय वह मृगनयनी मेरे साथ थी उस समय जो कामदेव मानो कपूरके चूरेसे, पालेके जलसे, चन्दनके रससे, अमृतसे तथा चाँदनीसे नहला-सा देता था, वही कामदेव अब उसके विछोहमें मुझपर भयङ्कर विष तथा प्रलयकालके अंगारे बरसाए दे रहा है ॥ ७७ ॥ जिस नवेलीका मुख खिले हुए सोनेके मनोहर कमलके समान है तथा जिसकी प्रेमभरी चितवन आड़े-तिरछे पड़ रही है, उस नवेलीको मैं आगे-पीछे, बाहर-भीतर, चारों ओर विराजमान देख रहा हूँ ॥ ७८ ॥ मेरे मनमें केवल यही बात कसक रही है कि वह नवेली कोंपलके समान कान्तिवाले अपने पैरके अँगूठेसे किसी बहाने भूलसे धरतीपर कुछ लिख रही थी, बार-बार चञ्चल पुतलियोंवाली अपनी उजली तथा काली चितवनें मुझपर डाल रही थी तथा लज्जासे सिर झुकाकर फड़कते हुए अधरवाले मुँहमें भीतर ही भीतर कुछ गुनगुना भी रही थी किन्तु सामने खड़े देखकर भी मुझसे कुछ बोली नहीं ॥ ७९ ॥ उस प्यारीमें एक ऐसा अद्भुत लावण्य (सुन्दरता, खारापन) है कि कामाग्निके तापसे प्यासा होकर मैंने जबसे उसका अधर-रस जी भर पिया तभीसे मेरी प्यास दुगुनी बढ़ गई ॥ ८० ॥ भगवान्‌की कृपासे अब जब भी कभी उस प्यारीसे मिलाप होगा तब मैं उसे उसी भाँति हृदयमें धारण कर लूँगा जैसे विष्णुने लक्ष्मीको हृदयमें धारण कर रक्खा है तथा वैसे ही अपने शरीरसे उसे लिपटाए रहूँगा जैसे पार्वतीको शिवजी लिपटाए रहते हैं ॥ ८१ ॥ अपनी प्यारीकी उस दिनवाली बातको स्मरण कर-करके मेरा जी भीतर ही भीतर कचोट रहा है कि मेरी प्यारी अपनी सखियोंके साथ आगे-आगे जा रही थी, मेरे शब्द सुनकर चकित होकर मेरी ओर घूम-घूमकर देखती जा रही थी और सखियोंसे आग्रह कर रही थी कि मुझे आगे धक्केमें मत ले चलो ॥ ८२ ॥ हाय ! मेरे पहले-पहल विछोहसे दुखी तथा नेत्रोंसे बहते हुए आँसुओंसे धुले हुए कपोलवाली मेरी नवेली प्रिया जहाँ रहती है उधर भी ये धड़ाधड़ बजते हुए नगाड़ोंके समान गड़गड़ाते हुए तथा भौंरोंके समूहके समान काले बादल छा गए ॥८३॥ हाय ! मेरे अत्यन्त प्यारे प्राण तो दूर (प्रियतमामें) जा बसे हैं अतः मेरी दशा क्या चित्र लिखे-सी हो गई है या उस रस्सी जैसी नहीं हो गयी है जिसमें जीवित साँपका

दूरे तदपि मे स्थितिः। आलेख्यनिहितस्येव न किं वा रज्जुभोगिवत् ॥ ८४ ॥ प्रालेयाद्रिस्त्वरितमुरसि क्षिप्यतां शैत्यहेतोरास्तां यद्वा स खलु निखिलः स्याद्विलीयाश्मशेषः। त्यक्त्वा क्षारं जलधिसलिलं जाह्नवीतोयपूर्णास्तूर्णं गात्रे मम जलमुचः कञ्चुकत्वं प्रयान्तु ॥ ८५ ॥ प्रासादे सा दिशि दिशि च सा पृष्ठतः सा पुरः सा पर्यङ्के सा पथि पथि च सा तद्वियोगातुरस्य। हंहो चेतः प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवादः ॥ ८६ ॥ प्रेमार्द्राः प्रणयस्पृशः परिचयादुद्गाढरागोदयास्तास्ता मुग्धदृशो निसर्गमधुराश्चेष्टा भवेयुर्मयि। यास्वन्तःकरणस्य बाह्यकरणव्यापाररोधी क्षणादाशंसापरिकल्पितास्वपि भवत्यानन्दसान्द्रो लयः ॥ ८७ ॥ भ्रूचापवल्लीं सुमुखी यावन्नयति वक्रताम्। तावत्कटाक्षविशिखैर्भिद्यते हृदयं मम ॥ ८८ ॥ मनः प्रकृत्यैव चलं दुर्लक्ष्यं च तथापि मे। कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः ॥ ८९ ॥ मन्दस्मितेन मधुराधरपल्लवेन कुम्भोन्नमत्कुचभरेण कृशोदरेण। विद्युन्निभाङ्गलतया च विचिन्त्यमाना चेतो धुनोति च धिनोति च चञ्चलाक्षी ॥ ९० ॥ मन्दादरः कुसुमपत्रिषु पेलवेषु नूनं बिभर्ति मदनः पवनास्त्रमद्य। हारप्रकाण्डसरलाः कथमन्यथामी श्वासाः प्रनर्तितदुकूलदशास्सरन्ति ॥ ९१ ॥ मयि सकपटं किञ्चित्क्वापि प्रणीतविलोचने किमपि नयनं प्राप्ते तिर्यग्विजृम्भिततारकम्। स्थितमुपगतामालीं दृष्ट्वा सलज्जमवाञ्चितं कुवलयदृशः स्मेरं स्मेरं स्मरामि तदाननम् ॥ ९२ ॥ मुखं तस्याः स्मितस्मेरं किञ्चिदञ्चलसंवृतम्। मदालोकनलोलाक्षं स्मृत्वा मन्ये सुधा मुधा ॥ ९३ ॥ मुग्धा वदन्ति वितथं प्राणवियोगे न जीवनं सुवचम्। कथमन्यथा प्रियास्वप्रसङ्गिनोऽप्यस्य गद्यते सत्वम् ॥ ९४ ॥ मृणालीहारोऽयं न भुजगपति-

भ्रम हो जाता है? ॥ ८४ ॥ मुझे ठण्ढक पहुँचानेके लिये शीघ्र ही मेरी छातीपर पालेका पहाड़ ढहा दो। किन्तु नहीं! मेरी छातीके तापसे वह भी गल जायगा और उसमें पत्थर भर रह जायँगे। अतः समुद्रका खारा जल छोड़कर केवल गङ्गाजलसे भरे हुए मेघ ही मुझे भली-भाँति उढ़ा दो ॥ ८५ ॥ मेरे चित्तका एक विचित्र-सा स्वभाव बन गया है कि मुझे कोई दूसरी नवेली दिखाई ही नहीं देती। भवनमें, दिशाओंमें, आगे, पीछे, पलँगपर तथा मार्गोंमें, यहाँतक कि सारे संसारमें वही-वही दिखाई दे रही है, यह कहाँका नया अद्वैतवाद है? ॥ ८६ ॥ मुझे देखकर वह मृगनयनी अपनी प्रेमसे सनी, अनुरागसे भरी, परिचयके स्नेहमें पगी तथा स्वभावसे ही मधुर वे चेष्टाएँ करती रहे तो अच्छा हो जिनके अनुभवका बार-बार चिन्तन करने-मात्रसे हृदय आनन्दसे पिघला पड़ता है तथा बाहरी इन्द्रियोंकी सारी क्रियाएँ सुन्न हो जाती हैं ॥ ८७ ॥ मुझपर चोट करनेके लिये वह सुन्दर मुखवाली नवेली जबतक अपना भौंहरूपी धनुष खींचकर बाँका करे-करें, उससे पहले ही उसके चितवनरूपी बाणोंसे मेरा हृदय टूक-टूक हो जाता है ॥ ८८ ॥ एक तो यों ही मन स्वभावसे चञ्चल होता है, तिसपर दिखाई भी नहीं देता, फिर भी अचरज तो इस बातका है कि कामदेवने अपने सभी बाणोंसे एक साथ उसे वेध कैसे डाला! ॥ ८९ ॥ मधुर मुस्कानवाली, अधररूपी नये-नये मधुर पत्तोंवाली, घड़ेके समान ऊँचे स्तनोंवाली तथा पतले उदरवाली बिजलीके समान चमकते हुए शरीरवाली उस चञ्चल नेत्रवाली नवेलीका मैं जब-जब स्मरण करता हूँ तब-तब हृदय काँप भी जाता है और खिल भी जाता है ॥ ९० ॥ कोमल फूलोंके बाण अब कामदेवको नहीं सुहाते होंगे इसीलिये अब उसने पवनका अस्त्र धारण कर लिया है। यदि यह बात न होती तो हारकी लड़ीके समान सीधे बहनेवाले साँसके पवन आज आँचलका छोर हिला-हिलाकर क्यों बह रहे हैं? ॥ ९१ ॥ मैं किसी बहानेसे कुछ देख रहा था कि एकाएक मुझपर उस नवेलीकी दृष्टि आ पड़ी जिसके नेत्रोंकी पुतलियाँ तिरछी चल रही थीं। पर उसी समय सखीके पास आ पहुँचनेसे उस कमलनयनीने मुख नीचा कर लिया। उस समयका उसका मुस्कराता हुआ मुखड़ा मुझे इस समय स्मरण आ रहा है ॥ ९२ ॥ मन्द मुस्कानसे खिले हुए, घूँघटसे ढके हुए तथा मुझे देखनेके लिये चञ्चल नेत्रोंवाले उसके मुखका जब मैं स्मरण करने लगता हूँ तब अमृत भी फीका जान पड़ने लगता है ॥ ९३ ॥ मूर्ख लोग जो कहते हैं कि 'प्राणोंसे बिछुड़नेपर मनुष्य बोलने योग्य नहीं रह जाता' यह बात झूठ है। यदि यह बात झूठ न होती तो अपनी प्रियतमासे दूर बैठा हुआ यह प्राणी स्पष्ट बोल कैसे रहा है ॥ ९४ ॥ अरे कामदेव! यह कमलनालका हार है, साँप नहीं। यह चन्दनका रस है, भस्म नहीं। गलेमें ये नीले कमलकी पंखुड़ियाँ हैं, विष

श्चन्दनरसो न भस्मेदं कण्ठे कुवलयदलाली न गरलम्। सितामभोजं पाणौ लसति न कपालं मयि मुधा पुरारातिक्रोधात्स्मर किमनभिज्ञः प्रहरसि ॥ ९५ ॥ यत्र क्षिपामि दृशमन्यदिदृक्षयाहं तत्रागतः स्फुरति केवलमेतदेव । तद्वक्त्रबिम्बमरुणाधरलोभनीयं ते लोचने तदलसालसमीक्षितं च ॥ ९६ ॥ यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति नैतद्धि सम्यक्कविभिः प्रणीतम्। येनातिचार्वङ्ग्यपि मे हृदिस्था दुनोति गात्रं विरहे प्रियासौ ॥ ९७ ॥ यत्सारैरिव पङ्कजस्य घटितं यच्चन्द्रगर्भादिव प्रोत्कीर्णं यदनङ्गसायकशिखाभागेन संवर्धितम्। यत्संसिच्य सुधारसैरिव रतेरास्थानभूमीकृतं तद्भूयोऽपि कदा सरोरुहदृशः पश्यामि तस्या मुखम् ॥ ९८ ॥ यदि प्रियावियोगेऽपि रुद्यत दीनदीनकम्। तदिदं दग्धमरणमुपयोगं क यास्यति ॥ ९९ ॥ यदि स्मरामि तन्वङ्गीं जीविताशा कुतो मम। अथ विस्मृत्य जीवामि जीवितव्यसनेन किम् ॥ १०० ॥ यदैवारभ्यान्तः पदमुपहितं पद्मलदृशा तदैवेदं चेतः क्वचिदपि न रम्येऽपि रमते। इदश्चान्यज्जातं स्मरणपुनरुक्तव्यसनिनस्तदाकारास्सर्वे मम खलु पदार्थाः परिणताः ॥ १०१ ॥ यद्विस्मयस्तिमितमस्तमितान्यभावमानन्दमन्दममृतप्लवनादिवाभूत्। तत्सन्निधौ तदधुना हृदयं मदीयमङ्गारचुम्बितमिव व्यथमानमास्ते ॥ १०२ ॥ या जयश्रीर्मनोजस्य यया जगदलङ्कृतम्। यामेणाक्षीं विना प्राणा विफला मे कुतोऽद्य सा ॥ १०३ ॥ याताः किं न मिलन्ति सुन्दरि पुनश्चिन्ता त्वया मत्कृते नो कार्या नितरां कृशासि कथयत्येवं सबाष्पे मयि। लज्जामन्थरतारकेण निपतत्पीताश्रुणा चक्षुषा दृष्ट्वा मां हसितेन भाविमरणोत्साहस्तया सूचितः ॥ १०४ ॥ यान्त्याः सरःसलिलकेलिकुतूहलाय व्याजादुपेत्य मयि वर्त्मनि वर्तमाने। अन्तःस्थितद्युतिचमत्कृतिदृक्करङ्गैरङ्गीकृतं किमपि वामदृशः स्मरामि ॥ १०५ ॥ यान्त्या मुहुर्वलितकन्धर-

---

नहीं और मेरे हाथमें यह उजला कमल है, खोपड़ी नहीं है अतः क्यों व्यर्थ ही मुझे भ्रमसे शिवजी समझकर मुझपर दाँत पीस-पीसकर प्रहार कर रहे हो ? ॥९५॥ कुछ भी देखनेके लिये मैं जहाँ दृष्टि पसारता हूँ कि मेरे सामने लाल ओठोंवाला उसका सुन्दर मुख, उसके नेत्र तथा उसकी सुन्दर अलसाई चितवन चलाना ही मेरे आँखोंके सामने आ खड़ा होता है ॥९६॥ कवियोंने यह ठीक नहीं लिखा है कि 'जहाँ सुन्दर रूप है, वहाँ सुन्दर गुण भी निवास करते हैं' क्योंकि वह अत्यन्त सुन्दर शरीरवाली प्रियतमा हृदयमें रहनेपर भी अपने बिछोहसे शरीरको कष्ट ही पहुँचा रही है ॥ ९७ ॥ मैं अपनी मृगनयनी नवेलीका वह मुख पुनः कब देख पाऊँगा जो ऐसा जान पड़ता है मानो कमलसे सत्त्व निचोड़कर बनाया गया हो, चन्द्रमाके भीतरसे निकाला गया हो, कामदेवके बाणोंकी नोकसे बढ़ाया गया हो तथा जिसे रतिने अमृतके रससे सींचकर अपना निवास-स्थान बनाया हो ॥ ९८ ॥ प्राण-प्यारीके बिछोहमें यदि दीन होकर रोना ही पड़ा तो नीच मृत्यु किस दिन काम आवेगी ! ॥ ९९ ॥ जब मैं उस दुबली-पतली नायिकाका स्मरण करता हूँ तो ऐसा लगता है कि मैं जी नहीं पाऊँगा, और यदि उसे भूलकर मैं जीता भी रहा तो ऐसे जीवन-रूपी सङ्कटसे लाभ ही क्या है ? ॥१००॥ जबसे उस सुनयनीने मेरे हृदयमें बसेरा डाला है तबसे कहीं भी, किसी भी सुन्दर वस्तुमें मन नहीं लग पाता, वरन् हो यह गया है कि उसका स्मरण करते-करते संसारकी सारी वस्तुएँ उसीके रूपकी दिखाई देने लगी हैं ॥ १०१ ॥ मेरा जो मन उस नवेलीके पास रहता हुआ सदा अचरजसे भरा रहता था, कभी कोई दूसरी बात सोचतातक नहीं था तथा अमृतकुण्डमें तैरता हुआ-सा आनन्दमें मग्न रहता था वही हृदय अब उसके बिछोहमें अङ्गारोंसे घिरा हुआ-सा जला जा रहा है ॥ १०२ ॥ वह मेरी प्यारी मृगनयनी आज कहाँ है जो कामदेवकी विजय-लक्ष्मी है, जो सारे संसारकी शोभा है तथा जिसके बिना मेरे प्राण व्यर्थ हो रहे हैं ? ॥१०३॥ कोई विरही युवक अपनी परदेश-यात्राके समयका स्मरण कर रहा है—'हे सुन्दरी ! क्या परदेश गए हुए लोग फिर नहीं मिलते? मेरे लिये चिन्ता न करना क्योंकि तुम बहुत दुबली हो', ऐसा कहते-कहते मेरी आँखोंमें आँसू आ गए, उसकी छोटी-सी पुतली भी लाजसे झुक गई, उसने अपने गिरते हुए आँसू रोके, मुझे देखा और हँसकर सङ्केतसे समझा दिया कि मुझे भी मरनेका सौभाग्य प्राप्त हो जायगा ॥१०४॥ जिस समय वह सुनयनी नवेली जल-क्रीड़ा करनेकी इच्छासे तालाबकी ओर जा रही थी उस समय मुझे मार्गमें खड़ा देखकर किसी बहानेसे मेरे पास आकर, भीतरसे चमकती हुई आँखोंसे बाँकी चितवन चलाकर उसने जो किसी कार्यके लिये स्वीकृति दी वह मुझे आज भी स्मरण आ रहा है

माननं तदावृत्तवृन्तशतपत्रनिभं वहन्त्या। दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्या गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः ॥ १०६ ॥ राकासुधाकरमुखी तरलायताक्षी सस्मेरयौवनतरङ्गितविभ्रमाढ्या। तत्किं करोमि कथमत्र तनोमि मैत्रीं तत्स्वीकृतिव्यतिकरे क इहाभ्युपायः ॥ १०७ ॥ राजल्ललाटफलका कमनीयकूजत्काञ्चीगुणप्रणयिनी धृतकेशपक्षा। हा किं करोमि मम सा हृदयं प्रविष्टा नाराचयष्टिरिव पुष्पशिलीमुखस्य ॥ १०८ ॥ लज्जैवोद्घटिता किमत्र कुलिशोद्भिन्ना कपाटावली मर्यादेव विलङ्घिता सखि पुनः केयं कलिन्दात्मजा। आक्षिप्ता खलु दृष्टिरेव किमियं व्यालावली वा पुनः प्राणा एव समर्पितास्सखि पुनस्तस्मै किमेषा तनुः ॥ १०९ ॥ लावण्यं तदसा कान्तिस्तद्रूपं स वचःक्रमः। तदा सुधास्पदमभूदधुना तु ज्वरो महान् ॥ ११० ॥ लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च प्रत्युप्तेव च वज्रलेपघटितेवान्तर्निखातेव च। सा नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पञ्चभिश्चिन्तासन्ततितन्तुजालनिविडस्यूतेव लग्ना प्रिया ॥ १११ ॥ लीलास्मितेन शुचिना मृदुनोदितेन व्यालोकितेन लघुना गुरुणा गतेन। व्याजृम्भितेन जघनेन च दर्शितेन सा हन्ति तेन गलितं मम जीवितेन ॥ ११२ ॥ वारंवारं तिरयति दृशोरुद्गमं वाष्पपूरस्तत्सङ्कल्पोपहितजडिमा स्तम्भमभ्येति गात्रम्। सद्यः स्विद्यन्नयमविरतोत्कम्पलोलाङ्गुलीकः पाणिर्लेखाविधिषु नितरां वर्तते किं करोमि ॥ ११३ ॥ विपत्सिन्धुं बन्धुं विगलितजलं नेत्रयुगलं सशोकं भूलोकं भुवनवलयं खेदनिलयम्। अनङ्गं नीरङ्गं विघटितधनं कोशभवनं विधातुं किं धातस्तव हृदि न लज्जा प्रभवति ॥११४॥ विलोयेन्दुः साक्षादमृतरसवापी यदि भवेत्कलङ्कस्तत्रत्यो यदि च विकचेन्दीवरवनम्। ततः

॥ १०५ ॥ टेढ़ी कलीवाले कमलके समान मुखवाली उस सुनयनी नवेलीने मुँह घुमाकर जाते समय मानो अमृत तथा विषसे भरी हुई (सुख तथा दुःख देनेवाली) तिरछी चितवन मेरे हृदयमें गाड़-सी दी ॥१०६॥ उस नवेलीका मुँह पूर्णिमाके खिले हुए चन्द्रमाके समान है, आँखें बड़ी-बड़ी तथा चञ्चल हैं और उसके मुखपर खिले हुए यौवनकी चुलबुलाहट भी दिखाई पड़ रही है। क्या करूँ? कैसे उसे वशमें करूँ और यदि उसे मेरी मित्रता स्वीकार न हुई तब क्या किया जायगा? ॥ १०७ ॥ हाय! मैं क्या करूँ? वह चमकते हुए माथेवाली, मधुर रुनझुन करती हुई तगड़ीवाली तथा हाथसे अपनी चोटी थामे हुए नवेली मेरे हृदयमें कामदेवका बाण बनकर चुभ गई है ॥ १०८ ॥ कोई विरही युवक दूतीसे अपनी दशा बता रहा है—'हे सखी! जब मैंने लज्जाका ही द्वार खोल दिया, तब कीलोंसे जड़े हुए किवाड़की तो बात ही क्या है! जब मैंने कुलकी मर्यादा ही तोड़ दी तो मेरे लिये यमुना लाँघ जाना कौन बड़ी बात है। जब मैंने अपनी दृष्टि ही उस ओर चला दी तो साँपका क्या डर है! और जब मैंने उसे अपने प्राण ही सौंप दिए तब देहका तो कहना ही क्या है ॥ १०९ ॥ उस नवेलीकी सुन्दरता, उसकी चटक-मटक, उसका सुन्दर रूप तथा उसके बोलनेका ढङ्ग उस समय तो अमृत जैसा जान पड़ता था किन्तु इस समय भयङ्कर ज्वरके समान कष्ट दे रहा है ॥ ११० ॥ मुझे ऐसा लगता है मानो मेरे मनमें उस प्यारीकी छाया-सी पड़ रही हो, वह मेरे मनमें घुली-सी लिखी-सी, खुदीसी, जड़ी-सी वज्रलेपके समान चिपकी-सी, भीतर खोदकर गाड़ी हुई-सी, कामदेवके पाँचों बाणोंसे जड़ी-सी तथा चिन्ता-रूपी डोरे-से भली-भाँति सदाके लिये सी-सी दी गई हो ॥ १११ ॥ वह नवेली अपना जघन भाग बार-बार दिखा-दिखाकर, अपनी मन्द मुस्कानसे, पवित्र तथा कोमल बोलीसे, मनोहर दर्शनसे, गम्भीर चालसे तथा जँभाईसे मुझे ऐसा मारे डाल रही है कि मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥ ११२ ॥ अब मैं क्या करूँ? क्योंकि आँसू लगातार ऐसे निकल रहे हैं कि आँखें मुँदी जा रही हैं, उसके चिन्तनसे शरीर जकड़ा-सा जा रहा है और उसका चित्र बनाते समय उँगलियोंमें पसीना-सा आ जाता है तथा वे काँपने लगती हैं ॥ ११३ ॥ बिछोहके सन्तापसे मरती हुई नवेलीको देखकर कोई युवक ईश्वरको उलाहना दे रहा है—'हे ईश्वर! उसके परिवारको विपत्तिमें डुबोते, नेत्रोंको आँसुओंसे भरते, सारी धरतीको डुबोते, चौदहों भुवनोंको चिन्तासे भरते, कामदेवको उदास बनाते तथा निधिके भण्डारको धनहीन बनाते हुए क्या तुम्हारे हृदयको तनिक भी लाज नहीं आ रही है?' ॥ ११४ ॥ यदि चन्द्रमा गलकर स्वयं अमृत-रूपी जलकी बावड़ी बन जाता और उसका कलङ्क यदि खिले हुए नीलकमलका वन हो जाता तो हो सकता था कि उसमें स्नान कर लेनेसे मेरे अङ्ग शीतल होकर

स्नानक्रीडाजनितजडभावैरवयवैः कदाचिन्मुश्चेयं मदनशिखिपीडाव्यतिकरम् ॥ ११५ ॥ विशालाक्ष्याः कटाक्षेण विकृष्टं रश्मिनेव मे। हृदयं किं करिष्यामि न पुनर्विनिवर्तते ॥ ११६ ॥ व्रीडायोगान्नतवदनया सन्निधाने गुरूणां बद्धोत्कम्पस्तनकलशया मन्युमन्तर्निगृह्य । तिष्ठेत्युक्तं किमिव न तया यत्समुत्सृज्य वाष्पं मय्यासक्तश्चकितहरिणीहारिनेत्रत्रिभागः ॥ ११७ ॥ शरीरं क्षामं स्यादसति दयितालिङ्गनसुखे भवेत्सास्रं चक्षुः क्षणमपि न सा दृश्यत इति। तया सारङ्गाक्ष्या त्वमसि न कदाचिद्विरहितं प्रसक्ते निर्वाणे हृदय परितापं वहसि किम् ॥ ११८ ॥ शीतांशुर्विषसोदरः फणभृतां लीलास्पदं चन्दनं हारः क्षारपयोभवः प्रियसुहृत्पङ्केरुहं भास्वतः। इत्येषां किमिवास्तु वस्तु मदनज्वालाविघाताय यद्बाह्याकारपरिभ्रमेण तु वयं तत्त्वत्यजो वञ्चिताः ॥ ११६ ॥ शीतांशोरमृतच्छटा यदि करास्तस्मान्मनो मे दृशं सम्प्लुष्यन्त्यथ कालकूटपटलीसंवाससंदूषिताः । किं प्राणान्न हरन्त्युत प्रियतमासञ्जल्पमन्त्राक्षरै रक्ष्यन्ते किमु मोहमेमि हहहा नो वेद्मि केयं गतिः ॥ १२० ॥ श्वासा एव मृगीदृशो न गणिताः के नाम झञ्झानिलास्तीर्णा वाष्पपरम्परैव सरितां वृन्देषु कः सम्भ्रमः। सोढा कातरदृष्टिरेव कियती वज्राभिघातव्यथा प्रेमैवायमुपेक्षितो यदि तदा प्राणेषु कोऽनुग्रहः ॥ १२१ ॥ सङ्गमविरहवितर्के वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्याः। सङ्गे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे ॥ १२२ ॥ सम्भूयैव सुखानि चेतसि परं भूमानमातन्वते यत्रालोकपथावतारिणि रतिं प्रस्तौति नेत्रोत्सवः। यद्बालेन्दुकलोच्चयादपचितैस्सारैरिवोत्पादितं तत्पश्येयमन-

---

कामाग्निके संतापसे छूट जाते ॥११५॥ उस बड़े-बड़े नेत्रोंवाली नवेलीकी तिरछी चितवन-रूपी रस्सीसे बँधकर खिंचा हुआ मेरा मन लौटनेका नाम नहीं ले रहा है। अब मैं क्या करूँ? ॥ ११६ ॥ जिस समय नवेली बड़े-बूढ़ोंके बीचमें बैठी थी और युवक वहाँ पहुँच गया था उस समयकी उस नवेलीकी दशाका स्मरण वह युवक कर रहा है—'बड़े लोगोंके पास रहनेसे लाजके कारण उस नवेलीका मुख झुक गया, घड़ेके समान बड़े-बड़े स्तन काँप उठे, अवसर न रहते हुए भी मेरे वहाँ पहुँच जानेके कारण उसे जो क्रोध आया उसे भीतर ही भीतर पीकर उसने मुझे रोका तो नहीं किन्तु आँसू बहाती हुई मुझे ऐसी चञ्चल चितवनसे देखने लगी जैसे डरी हुई मृगी देखती है' ॥ ११७ ॥ हे हृदय! जिस प्यारीको गले लगानेका सुख न पानेपर शरीर दुर्बल हुआ जाता था, जिसे क्षण-भर भी न देखनेपर आँसू आ जाते थे और जिस मृगनयनीसे तुम कभी भी अलग नहीं हुए, आज उसके बिछोहमें सुखदायी मृत्युके अवसरपर तुम दुखी क्यों हुए जा रहे हो? ॥ ११८ ॥ चन्द्रमा तो हालाहल विषका भाई है, चन्दनके वृक्षपर साँप लिपटे रहते हैं, हारके मोती समुद्रके खारे जलसे उत्पन्न होते हैं और कमल सूर्यका प्यारा मित्र है। अतः इनमेंसे एक भी वस्तु ऐसी नहीं है जो कामाग्निकी ज्वाला शान्त कर सके। हम लोग तो ऐसे ठगे गए कि बाहरी टीमटामके धोखेमें पड़कर सत्यताको भुला ही बैठे ॥ ११९ ॥ यदि चन्द्रमाकी किरणें अमृतमयी हैं तो वे मेरे मन और नेत्रको क्यों सुखाए डाल रही हैं। अतः जान पड़ता है ऐसा नहीं है। वे कालकूट नामक भयङ्कर विषके संयोगसे (समुद्रसे चन्द्रमा और विष दोनों निकले थे) विषमयी हो गई हैं। किन्तु वे मेरे प्राण क्यों नहीं हर रही हैं? या प्रियतमाकी मन्त्र-रूपी बोलीके अक्षर ही मेरे प्राणोंको बचा रहे हों? या मैं मोहित हो रहा हूँ? हाय! समझमें ही नहीं आता कि मेरी दशा क्या हो रही है! ॥१२०॥ उस मृगनयनीकी साँसोंको जब मैंने कुछ नहीं समझा तो आँधी मेरा क्या कर सकती है! जब मैंने उसकी आँसुओंकी धार भी पार कर ली तो नदियाँ पार करना कौन बड़ी बात है! जब मैंने उसकी दुःख-भरी चितवन सह ली तो वज्रकी मारकी पीड़ा क्या है तथा जब मैंने उसका प्रेम ठुकरा दिया तब अपने प्राणोंपर कृपा करनेका प्रश्न ही कहाँ उठता है? ॥ १२१ ॥ जब मैं यह विचार करता हूँ कि उसका समागम अच्छा है या बिछोह, तब उसका बिछोह ही मुझे अच्छा लगता है, क्योंकि समागममें तो केवल वह एक ही स्थानपर मिलती थी किन्तु बिछोहमें तो मुझे सारा संसार उसीके रूपका दिखाई देने लगता है ॥ १२२ ॥ उस नवेलीसे मिलनेकी बात सोचते ही ऐसा सुख होता है कि चित्तमें एक प्रकाश-सा फैल जाता है और उस प्रकाशमें एक ऐसी रतिके समान सुन्दरी दिखाई देने लगती है कि मेरा मन उछाहमें भरकर उसकी स्तुति करने लगता है। अब ऐसा लगता है कि दूजके चन्द्रमाकी कलाओंके निचोड़े हुए सार भागसे बनाया हुआ तथा कामदेवका मङ्गलभवन बनी हुई उस नवेलीका मुख

ङ्गमङ्गलगृहं भूयोऽपि तस्या मुखम् ॥ १२३ ॥ सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारारवीन्दुषु । विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिदं जगत् ॥ १२४ ॥ स सन्तापः क्रूरः कुसुमसुभगा साऽङ्गलतिका विपक्षात्तत्तावद्भयमतनु लज्जासहचरम् । कथं तन्न प्राणानहह दयिता शान्तमथवा शिवं शिल्पाश्चर्ये नियतमिह निध्यास्यति विधिः ॥ १२५ ॥ सन्तापो हृदय स्मरानलकृतः स प्रत्यहं सह्यतां नास्त्येवोपशमोऽस्य सम्प्रति पुनः किं त्वं मुधा ताम्यसि । यन्मूढेन मया तथा कथमपि प्राप्तो गृहीत्वा परं विन्यस्तस्त्वयि सान्द्रचन्दनरसस्पर्शो न तस्याः करः ॥ १२६ ॥ समुत्तीर्णे तन्व्या निशितनयनान्तेन मृदिते स्तनद्वन्द्वस्पन्दैः स्मितलवसुधाभिः प्लुतमति । मदन्तःकेदारे मदनकृषिकारेण जनिता चिरादाशावल्ली किमिति न फलं हन्त लभते ॥१२७॥ सम्फुल्लामलनीलकञ्जविलसल्लावण्यलीलालसाश्चञ्चत्खञ्जनमञ्जुलच्छविमुषः कन्दर्पदर्पोद्धुराः । पीयूषस्नपिता इवाच्छमधुरस्निग्धास्त्रपासम्भृता भूयोभाववृताः कदा नु मयि ते दृग्विभ्रमा भाविनः ॥ १२८ ॥ सव्याजं तिलकालकान्विरलयँल्लोलाङ्गुलिः संस्पृशन्वारंवारमुदञ्चयन्कुचयुगप्रोदञ्चिनीलाञ्चलम् । यद्भ्रूभङ्गतरङ्गिताञ्चितदृशा सावज्ञमालोकितं तद्गर्वादवधीरितोऽस्मि न पुनः कान्ते कृतार्थीकृतः ॥ १२९ ॥ सा बाला वयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री वयं कातरास्सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुगं धत्ते सखेदा वयम् । साक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयं दोषैरन्यजनाश्रयैरपटवो जाताः स्म इत्यद्भुतम् ॥ १३० ॥ साभिप्रायं प्रणयसरसं प्रौढमारूढरागं पश्यन्ती मां विकचकमलश्रीमुषा लोचनेन । सख्याः कर्णे किमपि किमपि व्याहरन्ती हसन्ती मन्दं मन्दं ललितललितं मन्दिरं सा जगाम ॥ १३१ ॥ सा मे

मैं कब फिरसे देखूँगा ! ॥ १२३ ॥ दीपक, अग्नि, तारे, सूर्य तथा चन्द्रमाके रहते हुए भी सारा संसार मुझे उस मृगनयनीके बिना अँधेरेसे भरा दिखाई दे रहा है ॥ १२४ ॥ कोई विरही अपनी प्रेयसीके विषयमें सोचता है—'यह बिछोहका सन्ताप बड़ा कठोर है। उसके लता जैसे अङ्ग तो फूलसे भी कोमल हैं, शत्रुओंसे उसे सदा ही लाजसे मिला हुआ डर बना रहता है, फिर भी वह प्राण क्यों नहीं छोड़ बैठी ? किन्तु इस तर्क-वितर्कसे लाभ क्या है ! ब्रह्माने अपनी रचनामें उस मेरी प्यारीके रूपमें अचरजमयी मूर्त्ति जो ढाली है इसके लिये वे जो कुछ ठीक समझेंगे, वह स्वतः करेंगे ॥ १२५ ॥ हे हृदय ! अब प्रतिदिन कामाग्निका ताप सहते रहो। इस समय इसके शान्त होनेका कोई उपाय नहीं है, अतः तुम व्यर्थ ही क्यों छटपटा रहे हो ? क्योंकि छूनेमें सुन्दर चन्दनके रसके समान शीतल लगनेवाला उस नवेलीका हाथ मैंने पाया भी तो उसे लेकर तुमपर नहीं रक्खा ! ॥ १२६ ॥ नवेलीकी तीखी चितवन-रूपी हलसे जोती गई, दोनों स्तनोंसे मसली हुई (हेंगाई हुई) तथा मुसकान-रूपी जलसे सींची हुई मेरे हृदय-रूपी क्यारीमें कामदेव-रूपी किसानसे लगाई हुई आशा-रूपी लतामें फल क्यों नहीं लग रहे हैं ? ॥ १२७ ॥ वह दिन कब आवेगा जब खिले हुए स्वच्छ नीले कमलके समान सुन्दर तथा नटखटपनसे भरे और अलसाए हुए, फुदकते हुए खञ्जनकी सुन्दर शोभा चुरानेवाले, कामदेवकी मस्तीसे मतवाले, अमृतसे धोए गएके समान स्वच्छ, मधुर, रसीले, लजीले तथा हाव भावसे भरे हुए नेत्रोंकी वे चितवनें बार-बार मुझपर पड़ेंगी ! ॥१२८॥ क्रमसे विरही नायककी बोधावस्था तथा अबोधावस्थाका वर्णन—हे प्यारी ! बहाना करके चञ्चल उँगलियोंसे बार-बार बालोंको छूते हुए तथा स्तनोंसे हटे हुए नीले वस्त्रको बार-बार उठाते हुए जो मुझे तुमने टेढ़ी भौंहोंसे घिरी हुई आँखोंसे मेरा अपमान करते हुए देखा, इससे मैं जान गया कि तुमने मेरा मनोरथ तो सफल किया नहीं, उलटे अहंकारमें आकर मेरा अनादर किया ॥ १२९ ॥ देखो तो, यह कितने अचरजकी बात है कि दूसरेके दोषोंसे हम दोषी बने हुए हैं, क्योंकि लड़की तो वह है किन्तु दबे-दबे-से हम रहते हैं, स्त्री वह है किन्तु कायर हम हो रहे हैं, मोटे तथा ऊँचे स्तन उसके हैं किन्तु थके जा रहे हैं हम और बड़े-बड़े नितम्बोंके भारसे तो वह दबी है किन्तु चल नहीं पाते हम ! ॥ १३० ॥ वह प्रेममें भरी हुई नवेली प्रेमके रसके साथ तथा कुछ रहस्यमय ढङ्गसे खिले हुए कमलोंकी शोभा चुरानेवाले नेत्रोंसे मेरी ओर भली-भाँति देखती हुई, सखीके कानमें धीरे-धीरे कुछ कहती हुई तथा मुस्कराती हुई सुन्दर चालसे घरकी ओर चली गई ॥ १३१ ॥ भगवान् कामदेवकी पत्नी (रति) के समान वह सुन्दरी यद्यपि न तो सोते या जागते ही समय मेरी आँखोंके सामने पड़ी फिर भी उसे ऐसी विपत्तिमें पड़ी हुई सुनकर मेरा मन आनन्द, आश्चर्य,

यद्यपि सुन्दरी भगवतो मामेव चेतोभुवो न स्वप्ने न च जागरे नयनयोः पन्थानमासादिता। तामाकर्ण्य तथापि तादृशदशावैधुर्यमासेदुषीमानन्दाद्भुतशोककौतुकभयव्रीडाकुलं मे मनः ॥ १३२ ॥ सा विद्याधरकन्यका किमु भुवं पुण्यैः प्रपन्ना नृणां लावण्यामृतसागराद्विमथिता लक्ष्मीः किमन्योत्थिता। आः ज्ञातं घनसारचन्दनसुधाज्योत्स्नामृणालादिभिः प्रारब्धा हृदयं मम भ्रमयितुं पौष्पेषवी शाम्बरी ॥ १३३ ॥ सा सञ्चारचमत्कृतिर्नयनयोः स भ्रूलताविभ्रमस्तद्बिम्बाधरपाटलस्मितयुतस्यास्यस्य सा वैखरी। सेयं चङ्क्रमचातुरी चरणयोः सोऽप्यङ्गहारक्रमो दिष्ट्या तन्मम नेत्रपात्रमखिलं जायेत जीवामि च ॥१३४॥ सा सौन्दर्यनिधिर्विलासभवनं मीनध्वजस्यापि वा कान्तीनामधिदेवताधिकरणं माधुर्यसारस्य वा। तामुद्वीक्ष्य सखे तदादि गतवान्सर्वेन्द्रियाणामहं सार्धं तद्गतमानसेन गलितोत्साहः किलानीशताम् ॥ १३५ ॥ सौमित्रे ननु सेव्यतां तरुतलं चण्डांशुरुज्जृम्भते चण्डांशोर्निशि का कथा रघुपते चन्द्रोऽयमुन्मीलति। वत्सैतद्विदितं कथं तु भवता धत्ते कुरङ्गं यतः क्वासि प्रेयसि हा कुरङ्गनयने चन्द्रानने जानकि ॥ १३६ ॥ सौवर्णी ननु वल्लरी कुह गता सा यत्र राकापतिर्नित्यं सन्निहितः पुरा सलिलजद्वन्द्वं गृहीत्वाऽभवत्। यस्या दर्शनमात्रतश्च सुमनोवर्यैरपि प्रार्थिता भव्योद्रेकपरम्परामनुभवन्धन्यो जनैः कीर्तितः ॥१३७॥ स्खलदंशुकमव्यवस्थतारं स्मितकान्तिस्नपिताधरप्रवालम्। असमाप्तनकारमाप्तशोभं हरिणाङ्कं हरिणीदृशः स्मरामः ॥ १३८ ॥ स्त्रीति श्रुते गतं धैर्यं सुरूपेति किमुच्यते। कष्टं सहृदया सा चेत्सस्पृहेत्यतिदुस्सहम् ॥ १३९ ॥ स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव। मागा इत्यवरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी सर्वं तत्किल मत्परायणमहो कामी स्वतां

शोक, अभिलाषा, भय तथा लज्जासे भरा जा रहा है ॥१३२॥ वह नवेली लोगोंके पुण्यसे पृथ्वीपर आई हुई विद्याधरकी कन्या है या सुन्दरता-रूपी अमृतके समुद्रसे मथकर निकाली हुई दूसरी लक्ष्मी है? ओ हो, अब मेरी समझमें आया। यह तो मेरे मनको चक्करमें डालनेके लिये कपूर, चन्दन, अमृत, चाँदनी तथा कमलनाल आदिसे बनाई हुई कामदेवकी वह माया है जिसे कामदेवसे शम्बर दैत्य छीन लाया था ॥ १३३ ॥ वह आँखोंके चलनेका जादू, वे भौंहोंके हावभाव, वह ओठोंपर मुस्कानके साथ बोलना, वह चटक-मटक-भरी चाल और वह शरीर तथा हारका हिलना यदि भाग्यसे मेरे नेत्रोंके सामने आ जाते तो मैं सचमुच जी जाता ॥ १३४ ॥ हे मित्र! वह नवेली सुन्दरताका भण्डार है या कामदेवकी क्रीड़ाका घर है या सुन्दरताकी देवी है या मधुरताका निवास-स्थान है? क्योंकि जबसे मैंने उसे देखा तभीसे मेरा मन उसमें ऐसा रम गया कि मेरा सारा उत्साह भी ठंढा पड़ गया और मेरी सारी इन्द्रियाँ भी मेरे हाथसे निकल गईं ॥१३५॥ जानकीका हरण हो जानेके पश्चात् रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहते हैं कि 'हे लक्ष्मण! देखो यह सूर्य तप रहा है। अतः, चलो वृक्षके नीचे चले चलें। लक्ष्मणने कहा—'हे रघुवंशके स्वामी! रातके समय सूर्य कहाँ? यह तो चन्द्रमा निकल रहा है। रामचन्द्रजी बोले—'वत्स! यह तुमने कैसे पहचाना!' इसपर ज्योंही लक्ष्मणने कहा कि इसकी गोदमें हरिण है त्योंही चन्द्रमा और हरिणका नाम सुनकर विरही रामचन्द्र यह कह-कहकर बिलखने लगे कि 'हे हरिणके समान नेत्रवाली! चन्द्रमाके समान मुखवाली प्यारी जानकी! तुम कहाँ हो?' ॥ १३६ ॥ वह सोनेकी लता (प्यारी) कहाँ चली गई जिसमें दो कमलोंका जोड़ा (नेत्र) लिये हुए पूनोका चन्द्रमा (मुख) विराजमान था, जिसके लिए देवता भी तरसते हैं और जिसे देखकर मस्ती-भरे आनन्दका अनुभव करनेवाले व्यक्तिको लोग धन्य समझते हैं ॥ १३७ ॥ मृगनयनीके उस चन्द्रमुखका मुझे स्मरण आ रहा है जिसपरसे घूँघट हट गया था, जिसकी आँखोंकी पुतलियाँ चञ्चल थीं, जिसके मूँगेके समान ओठोंपर मुस्कानकी झलक थी, जिससे 'नहीं-नहीं' शब्द निकल रहा था तथा जो अत्यन्त शोभायमान था ॥१३८॥ 'वह स्त्री है' यह सुनते ही धीरज भाग जाता है, 'वह सुन्दर है' यह सुनकर तो पूछना ही क्या है, फिर 'वह सहृदया है' (सुन्दर हृदयवाली) है यह जानकर तो बड़ा कष्ट होता है तथा वह मुझे चाहती भी है यह जानकर तो इतना कष्ट होता है कि किसी प्रकार भी सहा नहीं जाता ॥ १३९ ॥ दूसरी ओरसे आँखें घुमाकर जो उसने प्रेम-भरी चितवन चलाई, नितम्ब भारी होनेके कारण जो मानो नटखटपनसे धीरे-धीरे चली तथा सखीसे जो उसने गद्गद होकर भौंहें नचा-नचाकर यह कहा

पश्यति ॥ १४० ॥ स्पर्शः स्तनतटस्पर्शो वीक्षणं वक्त्रवीक्षणम् । तस्याः केलिकथालापसमयः समयः सखे ॥ १४१ ॥ स्मेरं विधाय नयनं विकसितमिव नीलमुत्पलं मयि सा । कथयामास कृशाङ्गी मनोगतं निखिलमाकूतम् ॥ १४२ ॥ स्वप्ने दृष्टा किमपि पिशुनाशङ्कया नैव पृष्टा स्पृष्टा नीवी न खलु भयतः किङ्किणीनिक्वणानाम् । आश्लेषाय स्पृहयति मयि द्राग्व्यरंसीदसीमा निद्रामुद्रा शिव शिव दृशोरीदृशो दुर्विपाकः ॥ १४३ ॥ हा धिक्सा किल तामसी शशिमुखी दृष्टा मया यत्र सा तद्विच्छेदरुजान्धकारितमिदं दग्धं दिनं कल्पितम् । किं कुर्मः कुशले सदैव विधुरो धाता न चेत्तत्कथं तादृग्यामवतीमयो भवति मे नो जीवलोकोऽधुना ॥ १४४ ॥ हा हा देवि स्फुटति हृदयं स्रंसते देहबन्धः शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्ज्वलामि । सीदन्नन्धेतमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥ १४५ ॥ हृत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता रागोऽस्मिन्मम चेतसीव सवितुर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते । चक्राह्वोऽहमिव स्थितः सहचरीं ध्यायन्नलिन्यास्तटे सञ्जाताः सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ॥ १४६ ॥ हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम् । न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य तां मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति ॥ १४७ ॥ हे यामिनीश जडिमा कतमस्तवैष सङ्घर्षमावहसि येन मुखेन तस्याः । त्वं वह्निमुद्गिरसि तद्विरहे करोति पीयूषवर्षमिह तद्भवता विनापि ॥ १४८ ॥

नायिकां प्रति सन्देशप्रेषणम्—दैवात्पश्येर्जगति विचर-

कि 'मत जाओ,' यह निश्चय ही उसने मेरे लिये ही कहा! सचमुच कामी पुरुष समझता है कि सब मेरे ही लिये किया जा रहा है ॥ १४० ॥ हे मित्र! उसके स्तनोंका स्पर्श ही तो सच्चा स्पर्श है, उसके मुखका दर्शन ही सच्चा दर्शन है तथा उसके रागरंगकी चर्चा करनेका समय ही सच्चा समय है ॥ १४१ ॥ खिले हुए कमलके समान मुसकाती चितवन मुझपर चलाकर उस कोमल अङ्गोंवाली नवेलीने अपने मनकी सारी बातें मुझे बता डालीं ॥ १४२ ॥ कोई विरही युवक यह कहकर झींख रहा है कि 'मैंने उस नवेलीको स्वप्नमें देखा तो सही किन्तु इस डरके कारण उससे कुछ नहीं पूछ पाया कि कोई चुगलखोर न छिपकर सुन रहा हो, मैंने उसकी साड़ीकी गाँठ भी इस डरसे नहीं छुई कि कहीं करधनीके घुँघरू न बज उठें। इसलिये ज्योंही मैं उसे गले लगानेके लिये ललककर आगे बढ़ा त्योंही मेरी गहरी नींद ही टूट गई। हाय! हाय!! कैसी अभागी निकलीं ये मेरी आँखें!' ॥१४३॥ हाय! कितने दुःखकी बात है कि जिस समय उस चन्द्रमुखी नवेलीको मैंने देखा उस समय ब्रह्माने रात अँधेरी कर दी थी। यह भी कितनी खोटी बात हुई कि उस चन्द्रमुखके रहते भी अन्धकार बना रहा। यह और भी बुरा हुआ कि उसके बिछोहके सन्तापवाले समयमें उसने चाँदनी फैला दी है। क्या करूँ? मैं जो बात चाहता हूँ, ब्रह्मा सदा उससे उल्टा करता चला आ रहा है। यदि यह बात न होती तो उसने उसी रातवाला (जिस रात्रिको मैंने उसे स्वप्नमें देखा था) मेरा जीवन क्यों नहीं बना दिया? ॥ १४४ ॥ हे देवी! हृदय फटा जा रहा है, शरीरके जोड़-जोड़ खुले पड़ रहे हैं, संसार सूना जान पड़ने लगा है, शरीर धधक रहा है, सारी सुधबुध मनमारी-सी होकर अँधेरेमें डूबी जा रही है और चारों ओरसे मूर्च्छा घेरे चली आ रही है। हाय! हाय!! अब मैं अभागा क्या करूँ! ॥ १४५ ॥ कमलके वनकी सारी शोभा मिटाकर दिनकी शोभा भी मेरी प्यारीके समान चली गई, मेरे चित्तके समान सूर्यमें भी अधिक राग (अनुराग, ललाई) दिखाई देने लगा है, चकवीका ध्यान करता हुआ यह चकवा मेरे समान बावड़ीके तटपर आ बैठा है तथा सभी दिशाएँ मेरे समान संसारके लिये एकाएक अन्धकारसे भर-सी गई हैं ॥ १४६ ॥ हे मित्र! मेरे हृदयमें कामके बाण घुसे जा रहे हैं। स्वप्नमें प्यारीको मिलानेवाली नींदको भी क्या उलाहना दूँ? हे मित्र! जब मैं उस सुन्दर मुखवाली प्यारीका चित्र बनाने लगता हूँ उस समय कभी ऐसा नहीं होता कि उस चित्रके पूरा होनेसे पहले ही आँखोंमें आँसू न उमड़ आवें ॥१४७॥ हे रात्रिके स्वामी (चन्द्रमा)! तुम्हारा यह कैसा पागलपन है कि तुम उस नवेलीके मुखसे होड़ करने चले हो! क्योंकि तुम तो उसके विरहमें आग उगलते हो और वह तुम्हारे बिना भी अमृत बरसाती है। अतः उसके मुँहसे तुम क्या बराबरी करने चले हो? ॥ १४८ ॥

नवेलीके पास सन्देश भेजना : हे पवन! अपने मनसे संसारमें घूमते हुए यदि तुम कहीं भाग्यसे मेरी प्यारीको

त्रिच्छुया मत्प्रिया चेदाश्वास्यादौ तदनु कथयेर्मामकीनामवस्थाम्। आशातन्तुर्न च कथयतात्यन्तमुच्छेदनीयः प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एकः॥ १ ॥ सा दूति धत्ते यदि रोषणत्वं तद्दूषणत्वेन न शङ्कनीयम्। साधुत्वमायाति रसान्तरेण करम्बिता पुण्ड्रकशर्कराऽपि ॥ २ ॥

नायिकां प्रति नायकसन्देशः—अद्यापि सुन्दर तवाननचन्द्रबिम्बं वन्दीकृताम्बुजयुगं परिचुम्ब्य चेतः। त्वत्सङ्गमोद्भवसुखं तनुते तथापि वैरं करोति करुणाविकलो विवेकः॥ १ ॥ आस्तां तावद्वचनरचनाभाजनत्वं विदूरे दूरे चास्तां तव तनुपरीरम्भसम्भावनापि। भूयो भूयः प्रणतिभिरहं किन्तु याचे विधेया स्मारं स्मारं स्वजनगणने कापि लेखा ममापि ॥ २ ॥ इतो विद्युत्पुञ्जस्फुरितमसकृद्भाययतु मामितः केकानेका हरतु हृदयं निर्दयमिदम्। इतः कामो वामः प्रहरतु मुहुः पुङ्खितशरो गतासि त्वं दूरं चपलनयने प्राप्स्यसि कुतः॥ ३ ॥ उद्वेष्ट्य स्वयमेव लेखमुदितप्रस्वेदकम्पाकुलिस्तस्मिन्सेकविलुप्तशेषशिथिलं दृष्ट्वा लिपिप्रक्रमम्। एतत्किन्तु हताऽस्मि सम्प्रति दशा तस्यैवमासीदयं बाष्पो हन्त करस्य कम्पितमिदं हन्तेति सा रोदिति ॥ ४ ॥ एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः। स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते ह्यभोगादिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ५ ॥ एते त्वद्वदनानुकारिरुचयो राकासुधांश्वादयो नोत्वा ते स्मरणं दहन्ति वत मामन्तः स्फुरन्त्यास्तव। त्वं स्वामिन्यसि तज्जहीहि जहि वा नेदं पुनस्साम्प्रतं यत्स्वस्पर्धिभिरेव मर्दयसि मामेतैर्जघन्यैः प्रिये ॥ ६ ॥

देखना तो पहले उसे ढाढ़स बँधाना तब कहीं उससे मेरी दशा कहना और इस ढङ्गसे उससे बातें चलाना कि वह बड़े-बड़े नेत्रोंवाली नवेली मेरे मिलनेकी जिस आशासे अपने प्राणोंकी रक्षा कर रही है वह उसका जीनेका एकमात्र सहारा कहीं सहसा टूट न जाय! ॥१॥ हे दूती! यदि मेरा सँदेशा सुनकर उसे (मेरी प्यारीको) क्रोध आ जाय तो तुम उसके प्रेममें सन्देह न कर बैठना क्योंकि जैसे नीबूका रस डाल देनेसे पौंढ़े (मोटी ईख) की चीनी और भी स्वादिष्ट हो जाती है वैसे ही उसके क्रोध करनेका अर्थ होगा कि उसका प्रेम और भी अधिक बढ़ रहा है ॥ २ ॥

नवेलीके पास युवकका सन्देश : हे सुन्दरी! तुम्हारा ध्यान करते समय आज भी दो कमलोंको वन्दी कर रखनेवाले तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमण्डलका मनमें चुम्बन करके मेरा चित्त ऐसा सुखी हो जाता है मानो उसे तुम्हारे समागमका सुख मिल रहा हो किन्तु निष्ठुर विवेक मुझसे वैर करके मेरे इस किए-कराएपर पानी फेर देता है ॥ १ ॥ जब तुम मुझे मीठी-मीठी बातें करने योग्य भी नहीं समझती हो तो तुम्हें गले लगानेकी तो आशा ही कहाँ रह जाती है किन्तु मैं बार-बार हाथ जोड़कर इतनी प्रार्थना करता हूँ कि जब तुम स्मरण कर-करके अपने आत्मीय जनोंको गिनने लगो तो उनमें कहीं न कहीं मुझे भी गिन लेना ॥ २ ॥ एक ओर तो चमकती हुई बिजली मुझे बार-बार डराए दे रही है, दूसरी ओर मोरोंकी यह निष्ठुर कूक मेरा मन हरे ले रही है और इधर यह कुटिल कामदेव बाण चला-चलाकर मुझे बेधे डाल रहा है। हे चञ्चल नेत्रवाली! ऐसे संकटमें मुझे छोड़कर तुम कहाँ चली गई हो? मैं कहाँ तुम्हें ढूढ़ूँ? ॥३॥ किसी विरहिणी नवेलीने अपने पसीजते और काँपते हुए हाथोंसे प्रियतमका पत्र उठा लिया किन्तु उसीके पसीनेसे पत्रकी लिखावट लिप-पुत गई और उसे यह भ्रम हो गया कि प्रियतमके हाथ इतने अधिक काँपते हैं और इतने आँसू बहते हैं कि पत्रकी यह दशा हो गई है! अतः वह यह कह-कहकर रोने लगी कि 'हाय भगवान्! क्या मेरे प्राणनाथकी ऐसी दशा हो रही है!' ॥ ४ ॥ हे काली-काली आँखोंवाली! इस पहचानसे ही तुम समझ लेना कि मैं कुशलसे हूँ। लोगोंके कहनेसे तुम मेरे प्रेममें सन्देह न कर बैठना। न जाने लोग क्यों ऐसा कहते हैं कि विरहमें प्रेम कम हो जाता है। सच्ची बात तो यह है कि जब मनचाही वस्तुएँ नहीं मिलतीं तभी उन्हें पानेके लिये प्यास इतनी बढ़ जाती है कि ढेरका-ढेर प्रेम आकर इकट्ठा हो जाता है ॥५॥ हे प्यारी! तुम्हारे मुखकी बराबरी करनेवाली ये पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणें मेरे भीतर चमकती हुई तुम्हारा स्मरण दिलाकर मुझे जलाया करती हैं। तुम स्वामिनी हो, जो चाहो करो, तुम्हें अधिकार है किन्तु यह उचित नहीं है कि अपनेसे होड़ करनेवाली इन नीच किरणोंसे तुम मुझे जलाए डाल रही हो ॥ ६ ॥ अपने मनकी व्यथा किसे सुनाकर जी हल्का करूँ? हम दोनोंके इस गहरे प्रेमकी बात दूसरा

कस्याख्याय व्यतिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयं को जानीते निभृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम्। जानात्येकं शशधरमुखि प्रेमतत्त्वं मनो मे त्वामेवैतच्चिरमनुगतं तत्प्रिये किं करोमि ॥ ७ ॥ कान्ते ! हन्त ! सुकोमला वत मता प्राग्व्यर्थमेव भ्रमात्किन्तु त्वं भुवि निष्ठुरा निरुपमा पश्यस्यपीमं न माम्। तस्माद्वक्षसि ते पयोधरमिषाद्धात्रा निखायार्पितौ शैलेन्द्राविति साम्प्रतं न हि चिरं सौख्यं परक्लेशितुः ॥ ८ ॥ किमकारि मन्दमतिना रतिपतिना कामतन्त्रनिपुणेन। स्यूतासि हरिणनयने हन्त हृदि स्नेहतन्तुना न तनौ ॥ ९ ॥ कृष्णा ते कचसंहतिरम्बुजनयने तवाधरः शोणः। त्वं सुरतरङ्गिणी कथमभितस्तापी न ते वियोगः स्यात् ॥ १० ॥ गूढालिङ्गनगण्डचुम्बनकुचस्पर्शादिलीलायितं सर्वं विस्मृतमेव विस्तृनवतो वाले खलेभ्यो भयात्। संलापस्त्वधुना सुदुर्घटतमस्तत्रापि नातिव्यथा यत्त्वद्दर्शनमप्यभूदसुलभं तेनैव दूये भृशम् ॥ ११ ॥ चन्द्रो द्वादश भास्कराः समभवन्रात्रिर्युगानां शतं मिष्टं तिक्तरसं विलेपनमहो दोषानलो मे तव। विच्छेदान्मलयानिलः प्रियतमे किं कालकूटः श्रुतौ गीतादिध्वनिरेव वज्रसदृशोऽरण्यं विचित्रं गृहम् ॥ १२ ॥ जीमूतप्रथमाम्बुशीकरवहश्शीतः पुरो मारुतः पृथ्वीं प्रौढनिदाघचण्डकिरणप्लोषावसन्नामिव। तामाश्वासमलम्भयत्कृशतनुं प्रस्थापितः प्रेयसा सन्देशः परिपोडितः प्रणतिभिस्तस्यास्सखीनामपि ॥ १३ ॥ तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव। ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः ॥ १४ ॥ त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न जहासि मे। दिनावसाने छायेव पुरो मूलं वनस्पतेः ॥ १५ ॥ त्वदास्यश्रीश्चन्द्रे वरतनु तदारभ्य वसति व्यधात्तल्लक्ष्माभा तव कचकुले तत्प्रभृति सा। तथा दृष्टिर्लग्ना त्वयि मम तदा-

---

जानता कौन है ? हे चन्द्रमाके समान मुखवाली ! मैं तुम्हें कितना अधिक प्रेम करता हूँ, यह केवल मेरा मन ही जानता था पर वह भी इस समय तुम्हारे पास चला गया है। अब बताओ प्यारी ! मैं करूँ तो क्या करूँ ? ॥ ७ ॥ हे प्यारी ! पहलेके धोखेमें पड़कर मैं तुम्हें व्यर्थ ही कोमल समझे बैठा था पर हाय ! तुम तो ऐसी निर्दय निकलीं कि मेरी ओर आँखतक उठाकर नहीं देखतीं। जान पड़ता है तुम्हारी कठोरता देखकर ही ब्रह्माने तुम्हारी छातीपर स्तनोंके रूपमें दो पर्वत लाकर खड़े कर दिए हैं। ठीक ही हुआ। जो दूसरोंको कलपाता है वह बहुत दिनोंतक थोड़े ही कल पा सकता है ॥ ८ ॥ कामशास्त्रमें चतुर होनेपर भी इस मूर्ख कामदेवने यह क्या भूल कर दी कि उसने तुझ मृगनयनीको प्रेम-रूपी डोरेसे मेरे हृदयमें ही रखकर सी दिया, शरीरपर नहीं सिया ॥ ९ ॥ हे सुन्दरी ! जब तुम्हारी लटें कृष्णा (काली, कृष्णा नदी) हैं, तुम्हारे ओठ शोण (लाल, सोन नदी) हैं और तुम स्वयं सुरतरङ्गिणी (गङ्गा, सुरत-क्रीड़ामें रस लेनेवाली) हो तब तुम्हारा वियोग तापी (सन्ताप देनेवाला, तापी नदी) क्यों न हो ? ॥ १० ॥ हे नवेली ! चुगलखोरोंके डरके मारे मैं तुम्हें गले लगाना, तुम्हारे गाल चूमना तथा तुम्हारे स्तन छूना भी भूल गया और तुमसे चार बातें भी न कर पाया किन्तु इसका मुझे उतना कष्ट नहीं है जितना इस बातका कि अब मुझे तुम्हारा दर्शनतक दुर्लभ हो गया है ॥ ११ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारे विछोहमें यह चन्द्रमा मुझे बारहों सूर्योंके समान तपाता रहता है, एक-एक रात सौ-सौ युगोंके समान बीतती है, मीठी वस्तुएँ तीती लगती हैं, चन्दन आदिका लेप आगकी लपटके समान जलाता है, दक्षिणका पवन हलाहल विषके समान सन्ताप देता है, गानेकी तान वज्रके समान कान फोड़े डालती है और अपना सजा-सजाया सुन्दर घर भी जङ्गलके समान लगने लगा है ॥ १२ ॥ बादलोंकी नई-नई फुहारें ढोनेसे ठण्ढा और पृथ्वीके ऊपर बहता हुआ पवन ऐसा जान पड़ता है मानो वह गर्मीके भयङ्कर सूर्यके तापसे सूखी हुई और दुबली देहवाली धरती-रूपी विरहणीके प्रियतमके द्वारा भेजा हुआ आकर उसे ढाढ़स बँधा रहा हो किन्तु सखियोंकी प्रार्थना और गिड़गिड़ाहटके फेरमें वह सन्देश ही भूल बैठा हो ॥१३॥ हे दुबले शरीरवाली ! तुम्हें तो कामदेव निरन्तर सन्ताप ही देता रहता है किन्तु मुझे तो वह जलाए डाल रहा है। देखो न, दिनरूपी वियोगका समय आनेपर जितना मलिन चन्द्रमा हो जाता है उतनी मलिन उसकी प्यारी कुमुदिनी नहीं होती अर्थात् कामदेव तुमसे अधिक मुझे तपा रहा है ॥१४॥ हे प्यारी ! जैसे सन्ध्या समय दूर जाती हुई पेड़की छाया भी जड़को नहीं छोड़ती वैसे ही तुम दूर जानेपर भी मेरे हृदयसे दूर नहीं होती ॥ १५ ॥ हे सुन्दरी ! जबसे तुम्हारे मुँहकी शोभा चन्द्रमामें जा बसी तबसे उसके कलङ्ककी चमक तुम्हारे बालोंमें आ जमी और हे नवेली ! जबसे मेरी

रम्य तरुणि स्मरेपूर्णा ज्वाला मयि तव कटाक्षानुगता ॥ १६ ॥ त्वदीयमुखपङ्कजं यदि विधोरलं वार्तया तवाधरसुधा यदा भवति किं सुधा नो मुधा। त्वदङ्गपरिरम्भणं भण कृतं सुधागाहनैस्त्वदीयदृगनुग्रहस्तदपि धिग्धिगैन्द्रं पदम् ॥ १७ ॥ त्वद्रूपामृतपानदुर्ललितया दृष्ट्या क्व विश्रम्यतां त्वद्वाक्यश्रवणाभियोगपरयोः श्रव्यं कुतः श्रोत्रयोः। एभिस्त्वत्परिरम्भनिर्भररसैरङ्गैः कथं स्थीयतां कष्टं त्वद्विरहेण सम्प्रति वयं कष्टामवस्थां गताः ॥ १८ ॥ त्वया मम समेतस्य कल्पा अपि समासमाः। भवत्या विप्रयुक्तस्य कल्पकल्पः क्षणोऽपि मे ॥ १६ ॥ त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायामात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्। अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥२०॥ दूरं मुक्तालतया बिससितया विप्रलोभ्यमानो मे। हंस इव दर्शिताशो मानसजन्मा त्वया नीतः ॥ २१ ॥ धन्यस्तन्वि स एष पाण्डिमवरश्चुम्बन्कपोलस्थलं धन्यं तन्वि तदेव कार्श्यमिह यत्प्रत्यङ्गमालिङ्गति। धन्योऽयं विरहानलस्तव मनो यस्यानुवृत्तेः पदं दूरे हन्त तया तु पातकितया मादृग्जनः सीदति ॥ २२ ॥ न स्नानं न च भोजनं न पठनं नान्यत्र सौख्यं धृतिर्नान्यस्त्रीजनसेवनं न च कथानिद्राविलासोद्यमः। किन्तु त्वां परिचिन्तयामि सततं ध्यानेन चेतःस्थितां स्वप्नालोकनकामकेलिविधिना जीवामि कान्ते तव ॥ २३ ॥ नित्यं त्वद्गुणकीर्तनेन निविडं रोमाञ्चितैरङ्गकैस्त्वद्वक्त्रेन्दुविलोकनैकमनसः कान्ते सुखेनास्महे। किन्तु त्वद्विरहोत्थितोद्धुरशिखिज्वालावृताङ्गे मयि प्रस्थाप्यः कृपया निजाङ्घ्रिकमलोदन्ताम्बुदः शान्तये ॥ २४ ॥ बाष्पस्तस्य न जायते किमु न किं लेखे करः कम्पते जानीषे किमु साम्प्रतं त्वयि तथा निघ्नं तदीयं मनः।

आँखें तुमसे लगीं तभीसे कामदेवके बाणोंकी लपट तुम्हारी तिरछी चितवनके साथ लगकर मुझमें समा गई ॥ १६ ॥ तुम्हारे मुखकमलके रहते चन्द्रमाकी बात करनातक व्यर्थ है, तुम्हारे अधरामृतके रहते अमृतका नाम लेना भी व्यर्थ है, तुम्हारे शरीरके आलिङ्गनके आगे अमृतकुण्डमें डुबकी लगानेकी बात निरर्थक है और यदि तुम एक बार इधर देखने-मात्रकी कृपा कर दो तो मैं इन्द्रासनको भी लात मार दूँ ॥ १७ ॥ हे नवेली! यह कितने दुःखकी बात है कि तुम्हारे बिछोहमें मेरी इतनी दुर्गति हुई जा रही है, क्योंकि तुम्हारी सुन्दरताका अमृत पी लेनेसे हमारी दृष्टि ऐसी ललच गई है कि वह कहीं दूसरी ठौर ठहरती ही नहीं, तुम्हारी बातें सुननेवाले ये कान अब दूसरी कोई बात सुनना ही नहीं चाहते और तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे शरीरके आलिङ्गनका स्वाद ले चुकनेवाले मेरे अङ्ग भी अब कैसे वशमें रह सकते हैं? ॥ १८ ॥ जब मैं तुम्हारे साथ रहता हूँ उस समय एक कल्प भी एक क्षणके समान बीत जाता है और जब मैं तुमसे अलग रहता हूँ तो एक-एक क्षण भी एक-एक कल्प बन जाता है ॥ १६ ॥ जब मैं गेरूके रङ्गसे ऐसा चित्र बनाना चाहता हूँ कि तुम प्रेमसे रूठकर बैठी हुई हो और मैं तुम्हारे पैरों पड़कर तुम्हें मना रहा हूँ उस समय बार-बार आँखें भर आती हैं और निर्दयी यमराज चित्रमें भी हम लोगोंका मिलन नहीं सह सकता ॥ २० ॥ तुमने अपने गलेमें कमलकी जड़के समान उजले मोतियोंकी मालासे हमारे हंसके समान कामदेवको ललचा-ललचाकर अपने पास बुला लिया है ॥ २१ ॥ हे सुन्दरी! वह गोरापन भाग्यवान् है जो तुम्हारे गाल चूम रहा है, वह दुबलापन पुण्यशाली है जो तुम्हारे सारे शरीरसे लिपटा हुआ है और वह बिछोहकी आग भी धन्य है जिसे तुम्हारा मन सोचता रहता है। बस, एक मैं ही ऐसा पापी बच रहा हूँ जो तुमसे दूर रहनेकी साँसत सह रहा हूँ ॥२२॥ हे प्यारी! इस समय मैं नहाना, खाना, पढ़ना, विश्राम करना, धीरता, दूसरी नवेलीके साथ राग-रङ्ग, बातचीत, नींद, शरीरके बनाव-शृङ्गारके प्रयत्न आदि सब काम छोड़कर केवल तुम्हारा ध्यान करके तुम्हें अपने चित्तमें बैठाकर सदा तुम्हारी ही चिन्ता किया करता हूँ और स्वप्नमें तुम्हें देखकर तुम्हारे साथ कामक्रीड़ा करते हुए किसी-किसी प्रकार दिन काट रहा हूँ ॥ २३ ॥ हे सुन्दरी! जब भी मैं तुम्हारे गुणोंकी चर्चा करने लगता हूँ तभी मेरे शरीरमें कँपकँपी उठ खड़ी होती है। इस प्रकार मैं अपने मनमें तुम्हारा मुखचन्द्र देखनेकी ललक लिए हुए सुखसे दिन बिता रहा हूँ। फिर भी तुम्हारे विरहसे उठी हुई प्रचण्ड अग्निकी लपटें रह-रहकर मेरा शरीर जलाए डाल रही हैं अतः उन्हें शान्त करनेके लिये तुम कृपा करके अपने चरणोंके समाचारसे भरे हुए थोड़ेसे बादल भेज देना ॥ २४ ॥ एक ढीठ सखीने एक नवेलीके हाथसे यह कहकर उसके प्रियतमका पत्र झटक लिया कि 'क्या उसके आँसू नहीं बहते

इत्थं तामभिधाय तत्करतलादादाय पत्रं सखी काचि-
द्वाचयति प्रगल्भवचना कौतूहलेऽपि क्रमात् ॥ २५ ॥
भवतु विदितं व्यर्थालापैरलं प्रिय गम्यतां तनुरपि
न ते दोषोऽस्माकं विधिस्तु पराङ्मुखः। तव यदि
तथाभूतं प्रेम प्रपन्नमिमां दशां प्रकृतितरले का नः
पीडा गते हतजीविते ॥ २६ ॥ भवत्या विश्लेषे गुरु-
हृदयखेदेन तनुतां तनुर्नित्यं धत्ते सदृशमिति मत्तेभ-
गमने। इदं तावच्चित्रं कमलमुखि सर्वैरवयवैः सुरूपा
त्वं लोके नियतमसुरूपा भवसि नः ॥ २७ ॥ भित्त्वा
सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां ये तत्क्षीरस्रुतिसुर-
भयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः। आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया
ते तुषाराद्रिवाताः पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभि-
स्तवेति ॥ २८ ॥ मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्ले-
षहेतोर्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां मुक्ता-
स्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥ २९ ॥ मार्गे
मे निरपायतां परिणतिं कार्यस्य भद्रोत्तरां श्रुत्वा
लेखहराननान्मम परावृत्तिं च नेदीयसीम्। स्वस्थै-
वास्व तव क्लमे मम दशा या पूर्वमुक्ता मया भूयस्सं-
स्मर तां च मानिनि परो माभूद्द्विषामुत्सवः ॥ ३० ॥
यतःप्रभृति ते कान्तं मुखमालोकितं मया। कामः
कामं ममाङ्गानि व्यथयत्यभितश्शरैः ॥ ३१ ॥ यत्त्वच्चे-
त्रसमानकान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरं मेघैरन्तरितः
प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी। येऽपि त्वद्गमना-
नुकारिगतयस्ते राजहंसा गतास्त्वत्सादृश्यविनोद-
मात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते ॥ ३२ ॥ यदिन्दोर्लक्ष्मीस्ते
वदनकमले वासमकरोत्तमःस्तोमस्थेमा तव तरुणि
धम्मिल्लमभजत्। अनुप्राप्ता हारावलिमपि च ताराव-
लिरुचिः शरण्यायाः कस्ते मम शरणदाने परिभवः
॥ ३३ ॥ यदि प्राणा एव प्रणयपरिणाहः कथमयं

या लिखते समय उसका हाथ नहीं काँपता? तुम क्या समझोगी कि तुम्हारे लिये उसका जी कैसा तड़प रहा है!' और उसका कुतूहल होनेपर भी वह बहुत धीरे-धीरे पत्र पढ़ने लगी ॥ २५ ॥ अच्छा जाने दीजिए, व्यर्थकी बातोंसे क्या लाभ है! हे प्रिय! जाइए, आपका इसमें कोई दोष नहीं, इस समय तो हमारा भाग्य ही हमसे रूठा हुआ है। जब आपके अटल प्रेमकी यह दशा हो रही है तब हमारे इस स्वभावसे ही अस्थिर तुच्छ जीवनके चले जानेपर हमें क्यों दुःख होगा? ॥ २६ ॥ हे मतवाले हाथीके समान चालवाली! तुम्हारे वियोगसे घबराए हुए मनकी थकावटसे हमारे शरीरका नित्य दुबला होता जाना ठीक ही है। पर कमलमुखी! यह तो बताओ कि तुम अपने सभी अङ्गोंसे सुरूपा होते हुए भी हमारे लिये असुरूपा (असुन्दर, प्राणरूप) क्यों हो रही हो? ॥ २७ ॥ हे सुन्दर गुणोंवाली! देवदारके नये पत्ते तोड़कर उससे निकले हुए दूधके साथ लगनेसे सुगन्धित होकर दक्षिण दिशाकी ओर बहनेवाले हिमालयके वायुका हम इसलिये स्वागत करते हैं कि सम्भव है कि वह तुम्हारे शरीरका स्पर्श करके इधर चला आ रहा हो ॥२८॥ हे प्यारी! जब मैं स्वप्नमें किसी-किसी प्रकार तुम्हें पाकर तुम्हें छातीसे लगानेके लिये अपने हाथ ऊपर उठाता हूँ तब मेरी इस अवस्थाको बार-बार देखनेवाले वनदेवता अपने मोतीके समान बड़ी-बड़ी आँसूकी बूँदें पेड़ोंके पत्तों-पर ढुलकाया करते हैं ॥ २९ ॥ हे प्यारी! मेरा सारा काम बड़े अच्छे ढङ्गसे मार्गमें ही बन गया और मैं अब शीघ्र ही लौट आऊँगा यह बात तुम पत्रवाहकसे सुन ही लोगी किन्तु तबतक स्वस्थ ही रहना, घबड़ाना नहीं, क्योंकि तुम्हारी घबराहट सुनकर मेरी जो दशा हो जाती है वह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ। उसे ही फिर स्मरण करके हे मानिनि! ऐसे ढङ्गसे रहना जिससे हमारे वैरियोंको हँसनेका अवसर न मिल पावे ॥ ३० ॥ जिस समयसे मैंने तुम्हारा सुन्दर मुँह देखा है उसी समयसे कामदेव अपने बाण लेकर ऐसा पीछे पड़ा है कि हमारे अङ्ग चारों ओरसे छेदे डाल रहा है ॥ ३१ ॥ हे प्यारी! तुम्हारी आँखोंके समान सुन्दर नीलकमल पानीमें डूब गए, तुम्हारे मुँहकी परछाईंके समान दिखाई देनेवाला चन्द्रमा बादलोंमें जा छिपा और तुम्हारी चालका अनुकरण करने-वाले राजहंस भी मानसरोवरको उड़ गए इसलिये तुम्हारे समान जिन वस्तुओंको देख-देखकर मैं मन बहलाया करता था, दुर्भाग्यसे वे सभी एक-एक करके मिटी जा रही हैं ॥ ३२ ॥ हे नवेली! जब कि तुम्हारे मुखकमलने चन्द्रमाकी शोभामें स्थान पा लिया, जब अन्धकारने तुम्हारे केशोंमें अपना डेरा आ जमाया और तारोंकी चमकने तुम्हारे हारमें स्थान पा लिया तब शरण देनेमें इतनी प्रसिद्धि पा चुकनेपर भी तुम मुझे शरण देनेमें इतनी कञ्जूसी क्यों कर रही

विभिन्ना तेभ्यश्चेत्कथमियमभेदव्यवसितिः । न भिन्ना नाभिन्ना यदि भवसि किं नाम तदपि त्वमेकासि त्वं मे कुवलयदलश्रेणिनयने ॥ ३४ ॥ यदेकः कासारं रचयति तथा कूपमथवा तदाकाङ्क्षा देवो वितरतितरां श्रीपतिरपि । मया तु त्वद्धेतोः कमलमुखि सान्द्राश्रुसलिलैः कृताः पारावारास्तदपि गणना ते न हृदये ॥ ३५ ॥ रात्रिः कालयुगोपमा मलयजो गन्धानिलः किं विषं सोमः सूर्य इवाभवन्मलयजालेपः स्फुलिङ्गोपमः । तिक्तः सुस्वरगीतवाद्यपरभृत्पारावतादिध्वनिर्वज्रस्याहतिरेव कर्णयुगले विच्छेदतो मे तव ॥ ३६ ॥ वक्षोजाग्रौ कनककलशौ रम्यरोमावलीयं श्लक्ष्णा रज्जुर्लसति सरसो नाभिकूपो गभीरः । प्रौढा तृष्णा मम नयनयोर्नीरजाक्षि प्रशाम्येदेषामेषा सिचयरचिता नैव गुप्तिर्यदा स्यात् ॥ ३७ ॥ वल्गत्कचानि वलनांसहमध्यमानि कण्ठोदयत्कलरुतानि गलत्कुचानि । आस्वादिताधरदलान्यलसेक्षणानि तान्येव तन्वि सुरतानि तव स्मरामि ॥ ३८ ॥ वेणीबन्धनशेषितैर्विलुलितैरुत्तंसितः कुन्तलैर्विन्यस्तः कुचकुम्भयोरशिशिरैर्बाष्पाम्बुभिस्तप्तयोः । अक्ष्णोस्सन्ततरोदनादरुणयोराश्लेषितश्लाघितो लेखः किं तदकारि यन्न सदृशं प्रेम्णोऽतिसीम्नस्तया ॥ ३९ ॥ श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् । उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥ ४० ॥ सङ्क्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् । इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥ ४१ ॥ सुमध्ये वाग्भङ्गैर्वचनविधिमङ्गीकुरु न वा स्मितज्योत्स्नाकान्तं कुरु वदनमेतन्मयि न वा । त्रिलो-

---

हो ! ॥ ३३ ॥ हे नीले कमलके समान आँखवाली ! यदि तुम सचमुच मेरे प्राण हो तब यह प्रेमका झमेला कैसा क्योंकि प्रेम तो तब होता है जब दो हों। यदि तुम प्राणोंसे अलग हो तब तुम्हें यह एक होनेका ज्ञान कैसे हो रहा है ? इसलिये न तो तुम अलग हो, न एक हो । तब बताओ, तुम हो क्या ! मुझे तो जान पड़ता है कि तुम मेरे लिये इन दोनोंसे कोई निराली ही वस्तु हो ॥ ३४ ॥ जब कोई व्यक्ति तालाब या कुआँ खुदवाता है तो भगवान् लक्ष्मीपति उसके सब मनोरथ पूरे कर देते हैं पर हे कमलके समान मुखवाली प्यारी ! मैंने तो तुम्हारे लिये अपने आँसुओंसे न जाने कितने समुद्र बना डाले, फिर भी तुम्हारा हृदय न पसीजा, न पसीजा, न पसीजा ॥ ३५ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारे विछोहमें यह रात प्रलयकी रातके समान हो रही है, मलय पर्वतसे आनेवाला वायु विष बिखेरता-सा जान पड़ता है, चन्द्रमा भी सूर्यके समान तपने लगा है, चन्दनका लेप भी चिनगारी बनकर जला रहा है और मनोहर कूकनेवाले कोयल और कबूतर आदिकी मधुर ध्वनि भी वज्रके समान मेरे कान फोड़े डाल रही है ॥ ३६ ॥ हे कमलनयनी ! तुम्हारे दोनों स्तन सोनेके घड़े हैं, सुन्दर रोमावली बढ़िया रस्सी है और नाभि स्वादिष्ट जलसे भरा गहरा कुआँ है। यदि उस कुएँके आसपास यह वस्त्रोंकी चहारदीवारी न होती तो मेरे दोनों नेत्रोंकी यह गहरी प्यास बुझ जाती ॥ ३७ ॥ हे दुबले शरीरवाली ! तुम्हारी उन कामक्रीड़ाओंका मुझे सदा स्मरण होता रहता है जिनमें तुम्हारे बाल लहराते थे, तुम्हारी कमर हिल-डुल नहीं पाती थी, गलेसे कुछ मीठी-मीठी ध्वनि निकला करती थी, स्तन कुछ ढीले पड़ जाते थे, ओठ चूमे जाते रहते थे और आँखें अलसाई-सी हुई रहती थीं ॥ ३८ ॥ मेरी प्यारीने जो बिना चोटी किए हुए बिखरे हुए बालोंसे इस लेखको सजाया, गरम-गरम आँसुओंसे तपे हुए दोनों स्तनोंपर इसे रक्खा और सदा रोते रहनेके कारण लाल-लाल आँखोंसे लगाकर इसे सराहा यह क्या उसने वैसा नहीं किया जैसा सीमाको लाँघे हुए प्रेममें किया जाता है ? ॥ ३९ ॥ हे प्यारी ! यद्यपि मैं श्यामा लतामें तुम्हारे अङ्गकी समानता, डरी हुई हरिणीकी चितवनमें तुम्हारी चितवन, चन्द्रमामें तुम्हारे मुखकी शोभा, मोरोंकी पूँछमें तुम्हारे बालोंकी समता और नदीकी नन्हीं-नन्हीं लहरोंमें तुम्हारी भौंहोंकी फड़कन पा लेता हूँ फिर भी हे रूठनेवाली ! दुःख यही है कि तुम्हारे सब अङ्गोंकी समानता मुझे कहीं इकट्ठी नहीं मिल पाती ॥ ४० ॥ हे चञ्चल नेत्रवाली ! अत्यन्त सन्ताप देनेवाले तुम्हारे विछोहकी पीड़ाके कारण मेरे मनको कहीं ठिकाना नहीं मिल रहा है और वह दिन-रात यही दुर्लभ प्रार्थना किया करता है कि 'यह लम्बे-लम्बे पहरवाली रात किसी प्रकार क्षण-भरके समान छोटी हो जाय और यह दिनकी धूप

कीमूर्धन्या यदि विविधपुण्याधिकतया मया दृष्टासि त्वं तदिह सफलं मेऽजनि जनुः ॥४२॥ स्थानान्निर्गत्य दूरं व्रजति मयि चिरं मुक्तकण्ठं रुदित्वा पश्चादुन्मृज्य नेत्रे प्रणतिमुपगता वेपमानाङ्गयष्टिः। कान्ते यन्मामवोचः प्रलयघनघटाटोपबद्धान्धकारे काले कापालिकोऽपि प्रवसति न गृहात्तन्मनो मे दुनोति ॥ ४३ ॥ स्मर्तव्योऽहं त्वया कान्ते न स्मरिष्याम्यहं तव। स्मरणं चेतसो धर्मस्तच्चेतो भवदाहृतम् ॥ ४४ ॥ स्वप्नेऽपि देवि रमसे न मया विना त्वं स्वापे त्वया विरहितो मृतवद्भवामि । दूरीकृतासि विधिदुर्ललितैस्तथापि जीवत्यये हि मन इत्यसवो दुरन्ताः ॥ ४५ ॥ स्निग्धमालप सुरूक्षमेव वा त्वत्कथैव सखि मे रसायनम्। शीतलं सलिलमुष्णमेव वा पावकं हि शमयेदसंशयम् ॥ ४६ ॥ हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः सरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिःश्वासपवनः। नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं मम त्वद्विश्लेषात्सुमुखि विपरीतं जगदिदम् ॥ ४७ ॥

नायिकां प्रति नायकावस्थाकथनम्— पदशब्दलीनहृदयो रूपालङ्कारभावनानिपुणः। कविरिव सचिन्तमुद्रस्तरुणि तवार्थे परं स युवा ॥ १ ॥ परिहरति रतिं मतिं लुनीते स्खलतितरां परिवर्तते च भूयः। इति तव विषमा दशास्य देहं परिभवति प्रसभं किमत्र कुर्मः ॥ २ ॥ पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धयस्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः।

सब अवस्थामें मन्दी पड़ जाय' ॥ ४१ ॥ हे सुन्दर कमरवाली ! मेरा निवेदन ठुकराकर तुम मेरी बात मानो या न मानो, अपनी मुस्कान-रूपी चाँदनीसे खिला हुआ अपना मुखड़ा मेरी ओर फेरो या न फेरो पर मेरा जन्म तो इसीसे सफल हो गया कि मैंने अपने पूर्व जन्मोंके पुण्योंके प्रभावसे तुम्हारे रूपमें तीनों लोकोंमें सबसे बढ़कर सुन्दरीके दर्शन कर लिए ॥ ४२ ॥ हे प्यारी ! जिस समय प्रलयङ्कर बादलोंसे चारों ओर ऐसा भयानक अँधेरा छाया हुआ था कि अघोरी भी घरसे बाहर नहीं निकलता था, ऐसे समय मैं जब कुछ दूर चला गया तब तुम घरसे निकलकर देरतक फुक्का फाड़-फाड़कर रोती रहीं और फिर अपनी आँखें पोंछकर काँपते हुए तुमने मुझे प्रणाम किया। उसीको स्मरण कर-करके आज मेरा हृदय फटा जा रहा है ॥ ४३ ॥ हे प्यारी ! तुम मेरा स्मरण करती जाना किन्तु मैं तुम्हारा स्मरण नहीं कर पाऊँगा क्योंकि जिस मनसे स्मरण किया जाता है वह मन तो तुम अपने पास खींच ले गई हो ॥ ४४ ॥ हे देवि ! स्वप्नमें भी हमारी-तुम्हारी भेंट नहीं होती इसलिये न तो तुम्हें सुख मिल पाता है और न मुझे हो। इसीलिये मैं तुम्हारे विना मरा-सा रहता हूँ। आज दुर्दैवने तुम्हें मुझसे दूर कर दिया है, फिर भी प्राण इसलिये नहीं निकलते कि मन तो तुम्हींमें लगा हुआ है ॥ ४५ ॥ हे सखी ! तुम मीठी बातें करो या रूखी, तुम्हारी सब प्रकारकी बातें मुझे रसायन जान पड़ती हैं क्योंकि पानी चाहे ठण्डा हो या गरम, पर वह आगको तो बुझा ही डालता है ॥ ४६ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! तुम्हारे बिछोहमें यह सारा संसार मुझे ऐसा उलटा दिखाई पड़ता है कि चन्द्रमा तो सूर्य-सा जान पड़ता है, नये बादल आगकी लपटोंके समान लगते हैं, नदियोंकी लहरोंसे मिलकर बहता हुआ पवन क्रोधमें भरे साँपकी फुफकारोंके समान लगता है, नये बेलेका फूल बाणके समान बेधता है और नीला कमल तो भाला बनकर शरीरमें घुसता-सा जान पड़ रहा है ॥ ४७ ॥

नवेलीके आगे नायककी दशाका वर्णन : हे नवेली ! तुम्हारे लिये तो वह युवक आज कवि बन गया है, पल-पल उसके कान तुम्हारी पगध्वनिमें लगे हुए हैं कि कहीं तुम आ न रही हो, वह दिनरात तुम्हारी सुन्दरता और तुम्हारी सजावटके गीत गाता रहता है और उसे देखो तो ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारी चिन्तामें घुला जा रहा हो, अर्थात् जैसे कवि पद तथा शब्द जोड़नेमें लगा रहता है, शब्दके रूप अलङ्कार तथा अनुकूल क्रियाओंका मेल बैठाता रहता है और अपनी रचनाको सुन्दर बनानेके लिये सदा चिन्ता किया करता है वैसे ही वह युवक भी तुम्हारी पगध्वनि, तुम्हारा रूप, तुम्हारे अलङ्कार और तुम्हारी क्रियाओंका चिन्तन करता रहता है ॥ १ ॥ किसी बातमें उसका मन नहीं लगता, उसकी बुद्धि भ्रष्ट-सी हो गई है, वह बार-बार डगमगाकर चलता है, तुम्हारी यह कठोरता देखकर उसकी देहकी जो दशा हो गई है वह मैं क्या बताऊँ ! हमारे किए तो कुछ नहीं हो रहा है ॥ २ ॥ कामदेवके बड़े भारी तीर्थ-रूपी जिस कुञ्जमें उसने तुम्हारे साथ कामदेवकी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं, उसी कुञ्जमें वह माधव अब तुम्हारा स्मरण करता और तुम्हारी बातचीत-रूपी मन्त्रके अक्षर जपता

ध्यायँस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलीर्भूय-स्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ॥ ३ ॥ विकिरति मुहुः श्वासाञ्चाशां पुरो मुहुरीक्षते प्रविशति मुहुः कुञ्जात्कुञ्जं मुहुर्बहु ताम्यति । रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते मदनकदनक्लान्तः कान्ते प्रियस्तव वर्तते ॥ ४ ॥ सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति स्मरकथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि समागत्येति चिन्ताकुलः । मार्गं पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति स्विद्यति प्रत्युद्गच्छति मूर्च्छति स्थिरतमःपुञ्जे निकुञ्जप्रियः ॥ ५ ॥ हा कान्ते स परिष्वङ्गो भूयोऽपि वत दीयताम् । इत्येव विपलन्रात्रिं कान्तस्तेऽपनयत्यहो ॥ ६ ॥

नायकं प्रति नायिकोक्तयः—एतस्मिन्सहसा वसन्तसमये प्राणेश देशान्तरं गन्तुं त्वं यतसे तथापि न भयं तापात्प्रपद्येऽधुना । यस्मात्कैरवसारसौरभमुषा साकं सरोवायुना चान्द्री दिक्षु विजृम्भते रजनिषु स्वच्छा मयूखच्छटा ॥ १ ॥ गच्छ गच्छसि चेत्कान्त पन्थानः सन्तु ते शिवाः । ममापि जन्म तत्रैव भूयाद्यत्र गतो भवान् ॥ २ ॥ न चिरं मम तापाय तव यात्रा भविष्यति । यदि यास्यसि यातव्यमलमाशङ्कयापि ते ॥ ३ ॥ भास्वाँश्चूततरुर्गुरुर्मनसिजः कोऽप्येप भृङ्गस्तमो मन्दो गन्धवहः सितो मलयजो दोषाकरो माधवः । अङ्गारो नवपल्लवः परभृतो विज्ञो गुरोराज्ञया निर्यातोऽसि विचारिताः कथममी क्रूरा ग्रहा न त्वया ॥ ४ ॥ मा याहीत्यपमङ्गलं व्रज किल स्नेहेन शून्यं वचस्तिष्ठेति प्रभुता यथारुचि कुरुष्वैषाप्युदासीनता । नो जीवामि विना त्वयेति वचनं सम्भाव्यते वा न वा तन्मां शिक्षय नाथ यत्समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते ॥ ५ ॥ लोलैर्लोचनवारिभिश्च शपथैः पादप्रणामैः परैरन्यास्ता विनिवारयन्ति कृपणाः प्राणेश्वरं

हुआ तुम्हारे घटस्तनोंका कसकर आलिङ्गन करनेका अमृत-जैसा सुख पाना चाह रहा है ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा प्रियतम कामदेवके उपद्रवोंसे इतना दुखी हो गया है और उसकी ऐसी दशा हो गई है कि वह बार-बार लम्बी-लम्बी साँसें खींचता रहता है, सामनेकी ओर एकटक देखा करता है, बार-बार उठ-उठकर इस झाड़ीसे उस झाड़ीमें आता-जाता है, बार-बार मन मसोसकर बैठ जाता है, बार-बार बिछौना सजाता है और बार-बार घबराकर इधर-उधर देखता है ॥४॥ हे सखी ! वह बेचारा युवक इस चिन्तामें घबराया रहता है कि वह प्यारी मुझे देखेगी, कुछ प्रेमकी बातें करेगी, गले लगेगी, खिल उठेगी और मेरे साथ खेलेगी। इसी चिन्तामें वह झाड़ीमें घुसकर रहनेवाले भयङ्कर अँधेरेमें बैठा तुम्हारी बाट जोहता है, काँपता है, रोमांचित होता है, प्रसन्न होता है, पसीनेसे तर हो जाता है, तुम्हारी अगवानीके लिये बढ़ता है और फिर मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है ॥ ५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा पति यही कह-कहकर बिलख-बिलखकर रात बिता देता है कि 'हे प्यारी ! फिर भी तो एक बार वैसे ही गले लग जाओ !' ॥ ६ ॥

नायकसे नवेलीका कथन : हे प्राणनाथ ! इन वसन्तके दिनोंमें जो तुम अचानक विदेश जानेकी बात चला रहे हो, इस बातसे उतना कष्ट नहीं है किन्तु कष्ट इस बातका अधिक है कि कुमुदकी तीव्र सुगन्धिसे भरे हुए सरोवरोंकी बयारके साथ निर्मल चन्द्रमाकी किरणें स्वतन्त्र होकर चारों ओर फैल रही हैं ॥ १ ॥ हे प्रियतम ! यदि आप जा रहे हैं तो अवश्य जाइए, आपका मार्ग मङ्गलमय हो। मेरी बस एक ही अभिलाषा है कि जहाँ आप जायँ वहीं मेरा जन्म हो (अर्थात् आपके जानेपर मैं जीवित नहीं रह पाऊँगी) ॥ २ ॥ हे प्रियतम ! यदि आप जाना ही चाहते हों तो अवश्य जाइए, उसमें तनिक भी सोच-विचार न कीजिए क्योंकि आपकी यह यात्रा मुझे देरतक दुःख नहीं देगी (अर्थात् आपके जानेके पश्चात् मैं शीघ्र ही प्राण छोड़ दूँगी) ॥ ३ ॥ हे प्रियतम ! बौरा हुआ आमका वृक्ष ही सूर्य है, प्रतापी कामदेव ही बृहस्पति है, भौंरा ही राहु है, मन्द पवन ही शनैश्चर है, श्वेत चन्दन ही शुक्र है, चाँदनी रातोंवाला वसन्त ही चन्द्रमा है, लाल रंगका नया पत्ता ही मंगल है और चतुर कोयल ही बुध है तथा माता-पिताकी आज्ञासे आप विदेश जा रहे हैं। क्या आपने यात्राके समय इन सब क्रूर ग्रहोंका तनिक भी विचार नहीं किया ? ॥४॥ हे प्रियतम ! यदि कहूँ कि 'आप न जाइए' तो यह अमङ्गल तथा प्रेमसे शून्य बात होगी। यदि कहूँ कि 'रुक जाइए' तो जान पड़ेगा कि मैं आपपर अधिकार जना रही हूँ। यदि कहूँ कि 'जो आपके मनमें हो वही कीजिए' तो इससे उदासीनता झलकती है और यदि कहूँ कि 'आपके बिना मैं जीवित न रहूँगी' तो आप यह सोचने लगेंगे कि यह सम्भव है या नहीं। इसलिये हे प्रिय ! अब आप ही मुझे बताइए कि आपकी इस यात्राके समय मुझे क्या कहना चाहिए

प्रस्थितम्। पुण्याहं व्रज मङ्गलं सुदिवसः प्रातः प्रयातस्य यत्त्वत्स्नेहोचितमीहितं प्रिय मया त्वं निर्गतः श्रोष्यसि ॥ ६ ॥ सहिष्ये विरहं नाथ देह्यदृश्याञ्जनं मम। यदक्तनेत्रां कन्दर्पः प्रहर्तुं मां न शक्ष्यति ॥ ७ ॥

नायकं प्रति सखीवाक्यम्—उद्यद्बर्हिषि दुर्दरारवपुषि प्रक्षीणपान्थायुषि श्च्योतद्विप्रुषि चन्द्ररुद्‌मुषि सखे हंसद्विषि प्रावृषि। मा मुञ्चोच्चकुचान्तसन्ततगलद्बाष्पाकुलां बालिकां काले कालकरालनीलजलदव्यालुप्तभास्वत्त्विषि ॥ १ ॥ किमिति सखे परदेशे गमयसि दिवसान्धनाशया लुब्धः। वर्षति मौक्तिकनिकरं तव भवनद्वारि काञ्चनी वल्ली ॥ २ ॥ मा गच्छ प्रमदाप्रिय प्रियशतैरभ्यर्थितस्त्वं मया बाला प्राङ्गणमागतेन भवता प्राप्नोत्यवस्थां पराम्। किं चास्याः कुचभारनि सहतरैरङ्गैरनङ्गाकुलैस्त्रुट्यत्कञ्चुकजालकैर्नुदिनं निःसूत्रमस्मद्‌गृहम् ॥ ३ ॥ या बिम्बौष्ठरुचिः क्व विद्रुममणिः स्वप्नेऽपि तां लब्धवान् हासश्रीसदृशैस्तपोभिरपि किं मुक्ताफलैर्भूयते। तत्कान्तिः शतशोऽपि वह्निपतनैर्हैम्नः कुतः सेत्स्यति त्यक्त्वा रत्नमयीं प्रयासि दयितां कस्मै धनायाध्वग ॥ ४ ॥

सखीं प्रति नायिकावाक्यम्—आयाता जलदावली सरभसं विद्युत्समालिङ्गिता शैलानां परितः सशब्दमहिभुक्श्रेणी नरीनृत्यति। एवं सत्यपि हन्त सम्प्रति पतिर्देशान्तरं प्रस्थितस्तद्दुःखं विनिवेद्यतां सखि कथं कस्याधुनाग्रे मया ॥१॥ कान्तो यास्यति दूरदेशमिति मे चिन्ता परं जायते लोकानन्दकरो हि चन्द्रवदने वैरायते चन्द्रमाः। किं चायं वितनोति कोकिलकलालापो विलापोदयं प्राणानेव हरन्ति हन्त नितरामारामसन्दानिलाः ॥ २ ॥ वयो नव्यं स्वान्तं विषयतरलं

॥ ५ ॥ हे प्रियतम ! वे स्त्रियाँ कोई और ही होंगी जो अत्यन्त गिड़गिड़ाकर अपने विदेश जाते हुए प्रियको आँसू बहाते हुए, सौगन्ध देते हुए और पैरोंपर गिर-गिरकर रोकती हैं। पर मैं तो बड़ी भाग्यशालिनी हूँ। आप अवश्य जाइए, आपका मङ्गल हो। इस यात्राके समय आपका सुप्रभात हो। आपके प्रेमके योग्य बननेके लिये जो कुछ मैंने करनेका विचार किया है उसे आप विदेशमें जाकर सुन ही लेंगे (अर्थात् मैं प्राण छोड़ दूँगी) ॥ ६ ॥ हे प्रियतम ! मुझे वह आँजन दीजिए जिससे मैं अदृश्य हो जाऊँ, तब मैं आपका विरह अवश्य सह लूँगी क्योंकि उस आँजनको आँखमें लगा लेनेपर न तो कामदेव मुझे देख पावेगा न मुझपर प्रहार ही कर पावेगा ॥ ७ ॥

युवकसे सखीकी बातें : हे मित्र ! जिस वर्षाकालमें कुश फूट-फूटकर निकल रहे हैं, मेंढक टर्रा रहे हैं, विरही प्राण दे रहे हैं, बूँदें बरस रही हैं, चन्द्रमा उदास हो गया है, हंस उड़ गए हैं और कालके समान भयानक नीले बादलोंमें सूर्यका प्रकाश लुप्त-सा हो रहा है, ऐसे वर्षाकालमें तुम विशाल स्तनोंके बीच निरन्तर गिरते हुए आँसुओंसे भरी हुई उस नवेलीको मत छोड़ो ॥ १ ॥ हे मित्र ! तुम धनके लोभसे परदेसमें क्यों दिन बिता रहे हो ? तुम्हारे घरके द्वारपर तो यों ही सोनेकी लता (नवेली, दिन-रात मोती बरसा रही है अर्थात् रो रही है ॥ २ ॥ हे नवेलियोंके प्यारे मित्र ! घर छोड़कर मत जाओ, मैंने सैकड़ों बार प्रेम-भरी बातोंसे आपसे प्रार्थना की है कि आप आँगनतक भी निकलकर जाते हैं तो उस नवेलीकी बड़ी विचित्र दशा हो जाती है। यहाँतक कि उस नवेलीके अपने ही भारमे दबे हुए स्तनोंपरकी चोलीके बन्द कामकी पीड़ाके कारण ऐसे टूटते हैं कि हमारे घरमें तो नाम-मात्रको भी सूत नहीं बच पाता ॥ ३ ॥ हे विदेश जानेकी तैयारी करनेवाले ! तम उस रत्नोंसे बनी प्रियाको छोड़कर किस धनकी आशासे बाहर जा रहे हो जिसके ओठकी चमकको मूँगा स्वप्नमें भी नहीं पा सकता, जिसकी हँसीकी शोभाकी बराबरी मोती तपस्या करके भी नहीं पा सकता और आगमें सैकड़ों बार तपानेपर भी सोना जिसकी सुन्दरताकी थाह नहीं पा सकता ॥ ४ ॥

सखीसे नवेलीकी बातें : हे सखी ! एकाएक बिजलीसे भरे हुए बादल वेगसे घुमड़ आए, पर्वतोंके चारों ओर मोरके झुण्ड कूक-कूककर नाचने लगे, हाय ! यह सब होनेपर भी पतिदेव विदेश जानेको तैयार हैं, अब मैं किसके आगे कैसे अपना दुखड़ा रोऊँ ! ॥ १ ॥ प्रियतम बहुत दूर विदेशको जा रहे हैं, इस बातसे बड़ी चिन्ता हो रही है, क्योंकि सारे संसारको आनन्द देनेवाला चन्द्रमा चन्द्रमुखी नवेलियोंका वैरी बन जाता है, कोकिल अपनी मधुर कूकके स्वरमें बिलखने लगता है और उपवनोंके धीमे पवन तो प्राण ही हर लेते हैं ॥ २ ॥ हाय ! नई अवस्था है, भोगकी अभिलाषासे सदा ही मन चञ्चल रहता है, पति विदेशमें है, पिताके यहाँ पहुँचना भी अत्यन्त कठिन है और यहाँके लोग भी अत्यन्त दुष्ट हैं। इस प्रकार जब अनर्थकी सारी सामग्री उपस्थित है तब हे सखी !

हन्त सततं प्रियो दूरे देशे जनकनगरं दुर्लभतरम्। जनश्चायं दुष्टो भृशमिदमनर्थाय सततं कथङ्कारं पारं कथय सखि यामोऽस्य वयसः ॥ ३ ॥

सखायं प्रति नायकोक्ति —शेते शीतकरोऽम्बुजे कुवलयद्वन्द्वाद्विनिर्गच्छति स्वच्छा मौक्तिकसंहतिर्धवलिमा हैमीं लतामञ्चति। स्पर्शात्पङ्कजकोशयोरभिनवा यान्ति स्रजः क्लान्ततामेषोत्पातपरम्परा मम सखे यात्रास्पृहां कृन्तति ॥ १ ॥

नायिकां प्रति सखीवाक्यम्—वारंवारमुदश्रु लोचनयुगं पर्याकुलं जायते निःश्वासा विरमन्ति न क्षणममी व्याक्लिष्टदन्तच्छदाः। प्रस्थानश्रवणादपि प्रियतमस्याहो तवेयं स्थितिर्नो जाने निलयं गते तु दयिते कीदृग्दशामाप्स्यसि ॥ १ ॥

मदनं प्रत्युक्तय—अद्यापि नूनं हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलत्यौर्व इवाम्बुराशौ। त्वमन्यथा मन्मथ मद्विधानां भस्मावशेषः कथमेवमुष्णः ॥ १ ॥ अनुममार न मार कथं नु सा रतिरतिप्रथितापि पतिव्रता। अयमनाथवधूवधपातकी दयितयापि तयासि किमुज्झितः ॥ २ ॥ अपि विधिः कुसुमानि तवाशुगाँस्मर विधाय स निर्वृतिमाप्तवान्। अदित पञ्च हि ते स नियम्य ताँस्तदपि तैर्वत जर्जरितञ्जगत् ॥ ३ ॥ अस्माकमात्मभूर्भूत्वा हन्तास्मानेव हंसि यत्। रे रे कन्दर्प तन्नित्यमनङ्गत्वं सदाऽस्तु ते ॥ ४ ॥ आपुङ्खाग्रममी शरा मनसि मे मग्नाः समं पञ्च ते निर्दग्धं विरहाग्निना वपुरिदं तैरेव सार्धं मम। तत्कन्दर्प निरायुधोऽसि भवता जेतुं न शक्तः परो दुःखी स्यामहमेक एव सकलो लोकः सुखं जीवतु ॥ ५ ॥ काममेकाकिनो हन्याः प्रियाश्लेषविवर्जितान्। यदि ते विक्रमः कश्चिन्न किं हंसि तदन्यथा ॥ ६ ॥ क्व रुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम्। मृदुतीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथ

तुम्हीं बताओ कि यह नई अवस्था मैं कैसे बिताऊँ ॥ ३ ॥

मित्रसे नायकके वचन : हे मित्र ! कमल (हथेली) पर चन्द्रमा (मुख) पड़ा है, दोनों नीले कमलों (नेत्रों) से उजले-उजले मोती (आँसू) ढुलक रहे हैं, सुनहरी लता (देह) उजली हो रही है और कमलके कोशों (स्तनों) से लग-लगकर नये फूलकी मालाएँ कुहला रही हैं। इस प्रकार ये निरन्तर होनेवाले अपशकुन मेरी यात्राकी इच्छामें बाधा ही डालते जा रहे हैं ॥ १ ॥

नवेलीसे सखीके वचन : परकीया नायिकासे कोई उसकी सखी कह रही है—'हे सखी ! आँखोंसे बार-बार आँसू बह रहे हैं और आँखें चञ्चल हैं, ये बढ़ी हुई साँसें क्षणभर भी नहीं रुक पा रही हैं और ओठोंको मलिन बनाए दे रही हैं। अतः समझमें नहीं आता कि जब प्रियतमकी यात्राकी बात सुनते ही तुम्हारी यह दशा हो रही है तब उनके चले जानेपर तो तुम्हारी न जाने क्या दशा हो जायगी ॥ १ ॥

कामदेवके प्रति उक्तियाँ : हे कामदेव ! जान पड़ता है आज भी शंकरकी क्रोधाग्नि तुममें वैसी ही धधक रही है जैसे समुद्रमें बड़वानल जलता रहता है। यदि यह बात न होती तो भस्म होकर भी तुम हमें इतने दाहक क्यों जान पड़ते ? ॥१॥ हे कामदेव ! अत्यन्त प्रसिद्ध पतिव्रता रति तुम्हारे भस्म होनेपर तुम्हारे साथ ही क्यों नहीं सती हो गई ? इसका यह कारण तो नहीं है कि अनाथ नवेलियोंको मारनेवाला पापी समझकर उस रतिने भी तुम्हें छोड़ दिया ? ॥ २ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारे लिये वेगसे चलनेवाले फूलोंके बाण बनाकर ब्रह्माने तुम्हें केवल पाँच ही बाणोंके प्रयोगका अधिकार दिया किन्तु हाय ! उतने ही बाणोंसे यह संसार बिंधकर चलनी हो गया है ॥ ३ ॥ अरे कामदेव ! कितने खेद की बात है कि तू हमारे अन्तःकरणोंमें उत्पन्न होकर हमें ही मारे डालता है अतः भगवान् करे तू सदा बिना अङ्गका ही बना रह ॥ ४ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारे पाँचों बाण ऐसे सच्चे ढङ्गसे मेरे हृदयमें भिद गए तथा मेरा शरीर उन बाणोंके साथ-साथ विरहकी आगसे जल भी गया कि तुम अस्त्रहीन हो गए हो और अब तुम दूसरोंको जीत नहीं सकते। अच्छा हुआ कि केवल एक मेरे दुखिया बने रहनेसे सारा संसार तो सुखकी नींद सोएगा ॥ ५ ॥ हे कामदेव ! प्यारीके गलेसे न लगे हुए एक-एक प्राणीको अलग-अलग मारनेमें क्या पुरुषार्थ है ! तुम्हारा सामर्थ्य है तो हम तब समझें जब तुम प्रियतमाके गलेसे लिपटे हुए प्राणियोंपर आकर प्रहार करो ॥ ६ ॥ कहाँ तो हृदयोंको फाड़ देनेवाली पीड़ा और कहाँ विश्वास उपजानेवाला तुम्हारा फूलका अस्त्र ! दोनोंमें कितना अन्तर है ! इसीलिये हे कामदेव ! 'जो कोमल होता है वह बड़ा तीखा होता है' यह कहावत तुमपर बहुत सटीक घट रही है ॥ ७ ॥ हे कामदेव ! मुझे धोखेसे शिवजी समझकर तू मुझे क्यों सताए डाल रहा है ?

दृश्यते त्वयि ॥ ७ ॥ जटा नेयं वेणीकृतकचकलापो न गरलं गले कस्तूरीयं शिरसि शशिलेखा न कुसुमम् । इयं भूतिर्नाङ्गे प्रियविरहजन्मा धवलिमा पुराराति भ्रान्त्या कुसुमशर किं मां व्यथयसि ॥ ८ ॥ तद्विच्छेदकृशस्य कण्ठलुठितप्राणस्य मे निर्दयं क्रूरः पञ्चशरः शरैरतिशितैर्भिन्दन्मनो निर्भरम् । शम्भोर्भूतकृपाविधेयमनसः प्रोद्दामनेत्रानलज्वालाजालकरालितः पुनरसावास्तां समस्तात्मना ॥ ९ ॥ तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोर्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु । विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैस्त्वमपि कुसुमबाणान्वज्रसारीकरोषि ॥ १० ॥ त्वमुचितं नयनार्चिषि शम्भुना भुवनशान्तिकहोमहविः कृतः । तव वयस्यमपास्य मधुं मधुं हतवता हरिणा वत किं कृतम् ॥ ११ ॥ दग्धारमपि जित्वाऽहं पुरारातिं पिनाकिनम् । कृतार्थोऽस्मि रतिं प्राप्त इति दृप्तो निहंसि माम् ॥ १२ ॥ पञ्चत्वं यान्तु बाणाः समयपरिणतस्ते विदीर्णोऽस्तु चापः क्रूरः क्राहिवक्त्रं विशतु तव रथो मा भव त्वं शरीरी । किं ते शापेन मादृग्युवतिवधमहापातकिन्मीनकेतो शप्यः पाथोजयोनिः स खलु रचितवान्पापिनो दीर्घमायुः ॥ १३ ॥ पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय क्रीडानिर्जितविश्व मूर्च्छितजनाघातेन किं पौरुषम् । तस्या एव मृगीदृशो मनसिजप्रेङ्खत्कटाक्षानलश्रेणीजर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि सन्धुक्षते ॥ १४ ॥ बाणाः पञ्च मनोभवस्य नियतास्तेषामसङ्ख्यो जनः प्रायोऽस्मद्विध एव लक्ष्य इति यल्लोके प्रसिद्धिं गतम् । दृष्टं तत्त्वयि विप्रतीपमधुना यस्मादसङ्ख्यैरयं विद्धः कामिजनः शरैरशरणो नीतस्त्वया पञ्चताम् ॥ १५ ॥ बाणाग्निमस्तकरुणो विकिरन्ममाङ्गे प्रायो न वेत्सि विषमास्त्रवर स्वपीडाम् । सन्ताप एव

मेरे सिरपर यह जटा नहीं है, ये तो बिना कंघी किए हुए बाल हैं, यह गलेमें विष नहीं वरन् कस्तूरी है, माथेपर चन्द्रमाकी कला नहीं वरन् फूल है और यह शरीर भी भस्म लगनेसे उजला नहीं हुआ है वरन् प्रियतमके वियोगसे ऐसा हो गया है ॥ ८ ॥ उस नवेलीके विरहमें मेरे इस दुबले मनको निष्ठुर कामदेव अपने तीखे बाणोंसे निर्दयतापूर्वक भली-भाँति बेधे डाल रहा है, जब कि प्राण गलेतक आ गए हैं । अतः मैं तो यह चाहता हूँ कि प्राणियोंपर कृपा करनेवाले शिवजीके तीसरे नेत्रकी भयङ्कर अग्निकी लपटोंसे यदि वह दूसरी बार भी भली-भाँति जल जाता तो बड़ा अच्छा होता ॥ ९ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारा बाण फूलोंका है और चन्द्रमाकी किरणें शीतल हैं । ये दोनों बातें हम विछोहियोंकी समझमें झूठी जान पड़ती हैं क्योंकि चन्द्रमा तो अपनी शीतल किरणोंसे आग बिखेर रहा है और तुम भी अपने फूलके बाणोंमें वज्रकी-सी कठोरता भर लाए हो ॥ १० ॥ संसारमें शान्तिकी स्थापना करनेके लिये शिवजीने जो अपने तीसरे नेत्रकी अग्निकी ज्वालामें तुम्हारी आहुति दे डाली, यह उचित ही किया किन्तु तुम्हारे मित्र मधु (वसन्त ऋतु) को छोड़कर मधु नामक दैत्यको मारकर भी विष्णुने क्या किया ? अर्थात् कुछ नहीं ॥ ११ ॥ 'सारे संसारको जलानेवाले, पुर राक्षसके शत्रु तथा पिनाक धनुष धारण करनेवाले शिवजीपर विजय पाकर भी मैं रतिको पुनः प्राप्त करके कृतकृत्य हो गया' क्या इसी घमण्डमें चूर होकर तुम मुझे मारे डाल रहे हो ? ॥ १२ ॥ मेरी जैसी दूसरी नवेलियोंको मारनेका पाप ढोनेवाले तथा मछलीकी सवारी करनेवाले अरे कामदेव ! तेरे बाणोंका नाश हो जाय, तेरा पुराना धनुष टूक-टूक हो जाय, तेरी निष्ठुर सवारी (मछली) साँपके भयङ्कर मुँहमें पड़े और तुझे फिर कभी शरीर न मिले ! पर तुझे शाप देनेसे लाभ क्या है, शाप तो उस निगोड़े ब्रह्माको ही देना चाहिए जिसने तुझ जैसे पापियोंकी इतनी लम्बी आयु बना दी है ॥ १३ ॥ खेल-खेलमें ही सारे संसारको जीत लेनेवाले अरे कामदेव ! आमके बौर-रूपी बाण हाथसे मत उठा तथा धनुष भी न सँभाल । घायलोंको मारनेमें भला क्या वीरता की बात है ? अरे कामदेव ! उस मृगनयनीकी चञ्चल बाँकी चितवनरूपी अग्निकी ज्वालासे जला हुआ मेरा मन आजतक तनिक-सा भी तो नहीं पनप पा रहा है ॥ १४ ॥ हे कामदेव ! संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि कामदेवके पास गिने-गिनाए कुल पाँच ही बाण हैं और प्रायः हमारे जैसे असंख्य लोग ही उन-उन बाणोंके लक्ष्य हैं । यह बात मुझे उलटी ही दिखाई दे रही है क्योंकि तुमने अनगिनत बाणोंसे मार-मारकर असहाय विछोहियोंके पास पञ्चता (मृत्यु, पाँचकी संख्या) पहुँचा दी है ॥ १५ ॥ हे कामदेव ! ऐसा जान पड़ता है कि जब तुम निर्दय होकर मेरे शरीरपर बाणरूपी अग्नि बिखेरने लगते हो तब तुम्हें अपनी पीड़ाका स्मरण नहीं आता होगा । शिवजीके मस्तककी नेत्राग्निमें पड़कर क्या तुमने

भवता किमु नान्वभावि चण्डीपतेरलिकलोचनगोचरेण ॥ १६ ॥ बाणान्संहर मुञ्च कार्मुकलतां लक्ष्यं तव त्र्यम्बकः के नामात्र वयं शिरीषकलिकाकल्पं यदीयं मनः। तत्कारुण्यपरिग्रहात्कुरु दयामस्मिन्विधेये जने स्वामिन्मन्मथ तादृशं पुनरपि स्वप्नाद्भुतं दर्शय ॥ १७ ॥ भवनेत्रभवो वह्निरद्यापि त्वयि मन्मथ। ज्वलतीवान्यथा किं ते विशिखास्तत्कणा इव ॥ १८ ॥ भुवनमोहनजेन किमेनसा तव परेत बभूव पिशाचता। यदधुना विरहाधिमलीमसामभिभवन्भ्रमसि स्मर मद्विधाम् ॥ १६ ॥ माधवाल्लब्धजन्माऽहं नास्ति रुद्रस्य साध्वसम्। इति किं धृतदर्पस्त्वं व्यापादयसि मां वत ॥२०॥ रे रे निर्दय दुर्निवार मदन प्रोत्फुल्लपङ्केरुहं वाणं संवृणु संवृणु त्यज धनुः किं पौरुषं मां प्रति। कान्तासङ्गवियोगदुःखदहनज्वालावलीढं वपुः शूराणां मृतमारणे न हि परो धर्मः प्रयुक्तो बुधैः ॥ २१ ॥ रे रे यद्यपि दग्धा ते तनुर्हन्त पुरारिणा। तथाऽपि परमर्म्मान्तकारिता न व्यलीयत ॥ २२ ॥ विधिरनंशमभेद्यमवेद्य ते जनमनः खलु लक्ष्यमकल्पयत्। अपि स वज्रमदास्यत चेत्तदा त्वदिषुभिर्व्यदलिष्यदसावपि ॥ २३ ॥ वृथैव सङ्कल्पशतैरजस्रमनङ्ग नीतोऽसि मयातिवृद्धिम्। आकृष्य चापं श्रवणोपकण्ठे मय्येव युक्तस्तव बाणमोक्षः ॥ २४ ॥ सह तया स्मर भस्म झटित्यभूः पशुपतिं प्रति यामिषुमग्रहीः। ध्रुवमभूदधुना वितनोः शरस्तव कटुस्वर एव स पञ्चमः ॥ २५ ॥ स्मर नृशंसतमस्त्वमतो विधिः सुमनसः कृतवान्भवदायुधम्। यदि दृढं धनुरायसमाशुगं तव सृजेत्त्रिजगत्प्रलयं व्रजेत् ॥ २६ ॥ हृदयमाश्रयसे यदि मामकं ज्वलयसीत्थमनङ्ग तदेति कम्। स्वयमपि क्षणदग्धनिजेन्धनः क भवितासि हताश हुताशवत् ॥ २७ ॥

चन्द्रं प्रत्युक्तयः—अभिलषसि यदिन्दो वक्त्रलक्ष्मीं मृगाक्ष्याः पुनरपि सकृदब्धौ मज्ज सङ्क्षालयाङ्कम्। सुविमलमथ बिम्बं पारिजातस्य गन्धैः सुरभय वद

सन्तापका अनुभव नहीं किया था? ॥ १६ ॥ हे प्रभु कामदेव! बाणोंको लौटा लो, धनुष हाथसे छोड़ दो, तुम्हारे लक्ष्य तो शङ्करजी हैं, भला उनके सामने मेरी क्या गिनती? मेरा मन तो सिरसकी कलीके समान कोमल है, और फिर मैं तो सदा तुम्हारी आज्ञा मानता रहा हूँ, इसलिये मुझपर दया करो और फिर वैसा ही सपना-सा अचरज दिखा दो ॥१७॥ हे कामदेव! जान पड़ता है कि शिवजीके नेत्रकी अग्नि आज भी तुममें जल रही है, यदि ऐसी बात न होती तो तुम्हारे बाण चिनगारियोंके समान क्यों लगते ॥ १८ ॥ हे मरे हुए कामदेव! तुम जो संसारको मोहमें डाल देते हो, क्या इसी पापसे तुम पिशाच हो गए हो! क्योंकि वियोगकी व्यथासे दुखी हमारी जैसी नवेलियोंको कष्ट देते हुए तुम दिनरात चक्कर लगाते रहते हो ॥१६॥ हे कामदेव! क्या तुम इसी घमण्डमें चूर होकर मुझे मारे डाल रहे हो कि मैं कृष्णका पुत्र हूँ अतः शिवजीसे मुझे क्या डर है? ॥ २० ॥ हे निर्दयी और हठी कामदेव! अपने खिले हुए कमलके बाण उतार लो, धनुष नीचे रख दो। भला मुझपर क्या वीरता दिखा रहे हो? मेरा शरीर तो प्यारीके विछोहसे उत्पन्न हुई अग्निकी लपटोंमें यों ही भुन गया है। पण्डितोंने वीरोंके लिये मरे हुएको मारना कहीं उचित नहीं बतलाया है ॥ २१ ॥ अरे कामदेव! यद्यपि शिवजीने तेरे शरीरको राख कर दिया फिर भी दूसरोंके हृदय बेधनेवाली तेरी शक्ति नष्ट नहीं हुई ॥ २२ ॥ न तो मनके टुकड़े हो सकते न वह फाड़ा ही जा सकता, यही समझकर ब्रह्माने मनको ही तुम्हारे बाणोंका लक्ष्य बनाया। यदि उन्होंने तुम्हारे बाणोंका लक्ष्य वज्रको बनाया होता तो वह तो कभीका चूर-चूर हो चुका होता ॥ २३ ॥ हे कामदेव! मैंने लगातार सैकड़ों सङ्कल्प कर-करके व्यर्थ ही तुम्हें बढ़ाया। भला तुम्हीं बताओ कि कानतक धनुष खींचकर मुझपर ही बाण बरसाना क्या तुम्हें शोभा देता है? ॥ २४ ॥ हे कामदेव! शिवजीपर छोड़नेके लिये तुमने जो बाण लिया था उसके साथ ही तुम भस्म हो गए। इस समय जान पड़ता है कि अब बिना शरीरके हो जानेके कारण कोयलकी कूक ही तुम्हारा पाचवाँ बाण बन गई है ॥२५॥ हे कामदेव! तुम्हारी इतनी कठोरता देखकर ही ब्रह्माने तुम्हारे अस्त्र फूलके बना दिए हैं। यदि उन्होंने तुम्हारा धनुष कठोर तथा बाण लोहेके बना दिए होते तब तो अबतक तीनों लोकोंका विनाश हो गया होता ॥ २६ ॥ अरे कामदेव! यदि तुम हमारे हृदयमें रहते ही हो तो उसे इस प्रकार जलाए क्यों डाल रहे हो? अरे मूर्ख! स्वयं अपने ईंधनको जला डालनेवाले अग्निके समान फिर तुम कहाँ जाकर रहोगे? ॥ २७ ॥

चन्द्रमाके प्रति उक्तियाँ : हे चन्द्रमा! यदि तुम उस मृगनयनीके मुखकी सुन्दरता पाना चाहते हो तो एक बार फिर समुद्रमें डुबकी लगाओ और अपना कलङ्क धो डालो,

नो चेत्त्वं क्व तस्या मुखं क्व ॥ १ ॥ किं रे विधो मृगदृशां मुखमद्वितीयं राजीव दृप्यसि दृगम्बुजमन्यदेव। झङ्कारमावहसि भृङ्गतनुर्न तादृक्कर्माणि धिङ् न पुनरीदृशमीक्षणीयम् ॥ २ ॥ चण्डीशचूडाभरण चन्द्र लोकतमोपह। विरहिप्राणहरण कदर्थय न मां वृथा ॥ ३ ॥ तारापते कुमुदिनीमनुकूलकान्तां पादेन पीडयसि कम्पयसि द्विजातीन्। विद्वेषमाचरसि किं च वियोगिलोके नक्तञ्चरस्य भवतः करुणा कुतः स्यात् ॥ ४ ॥ द्विजराज इति भ्रान्त्या पादस्पर्शं तव व्यधाम्। हतोऽस्मि बत चाण्डालप्रसङ्गादिव सर्वथा ॥ ५ ॥ प्रियविरहमहोष्मामर्मरामङ्गलेखामपि हतक हिमांशो मा स्पृश क्रीडयापि। इह हि तव लुठन्तः शोषपीडां भजन्ते दरजरठमृणालीकाण्डमुग्धा मयूखाः ॥ ६ ॥ मुग्धस्य ते वद विधुन्तुद किं वदामि किं त्यक्तवानसि मुखे पतितं शशाङ्कम्। अस्यार्द्रबिम्बगलितेन सुधारसेन सन्धानमेति तव किं न जरत्कबन्धः ॥ ७ ॥ यत्त्वं हन्त कलङ्कितो मलिनतापात्रं प्रदोषे तथा रक्तः क्ष्वेडसहोदरः शिवशिरोधार्योऽपि वक्रो विधो। तद्दोषाकरतोचितैव भवतो युक्तं च मादृग्वधोद्योगित्वं बत किन्तु हा द्विजपतित्वं केवलं दुःसहम् ॥ ८ ॥ सन्तापय चिरं चन्द्र न तत्र प्रतिषिध्यसे। निवारय करस्पर्शं रामस्याहं परिग्रहः ॥ ९ ॥ सूतिर्दुग्धसमुद्रतो भगवतः श्रीकौस्तुभौ सोदरौ सौहार्दं कुमुदाकरेषु किरणाः पीयूषधाराकिरः। स्पर्धा ते वदनाम्बुजैर्मृगदृशां तत्स्थाणुचूडामणे हंहो चन्द्र कथं नु सिञ्चसि मयि ज्वालामुचो रोचिषः ॥ १० ॥

रोहिणीं प्रत्युक्तिः—भो रोहिणी त्वमसि रात्रिचरस्य भार्याथैनन्निवारय पतिं सखि दुर्निवारम्। जालान्तरेण मम सद्मनि सन्निविष्टः श्रोणीतटं स्पृशति किं कुलधर्म एषः ॥ १ ॥

फिर अपने निर्मल रूपमें पारिजातके फूलोंकी गन्ध बसाओ। यदि इतना न करोगे तो तुम्हीं बताओ कि कहाँ उसका मुँह और कहाँ तुम ? ॥ १ ॥ अरे चन्द्रमा ! मृगनयनी नवेलियोंका मुख कुछ निराला ही होता है। अरे कमल। वे कमलनयन कुछ और ही होते हैं, अरे भौंरे ! तू गुञ्जार अवश्य करता है पर तेरा शरीर वैसा कहाँ है ! धिक्कार है तुम सबके कार्योंको ! यह सब तो देखना भी नहीं चाहिए ॥२॥ हे शङ्करके मस्तकके भूषण ! संसारका अँधेरा दूर करनेवाले तथा वियोगियोंके प्राण हरनेवाले चन्द्रमा ! मुझे व्यर्थ ही क्यों सता रहे हो ॥३॥ हे तारोंके स्वामी चन्द्रमा ! तुम अपने वशमें रहनेवाली प्यारी कुमुदिनीपर पाद (किरण, पैर) प्रहार करके उसे कष्ट दे रहे हो, द्विजातियों (पक्षियों, ब्राह्मणों) को कँपाए डाल रहे हो और वियोगियोंसे डाह रखते हो। ठीक है, तुम नक्तञ्चर (रात्रिमें चलनेवाले, राक्षस) ठहरे, तुममें भला दया कहाँ ! ॥ ४ ॥ हे चन्द्रमा ! तुम द्विजराज (ब्राह्मण) हो इस धोखेमें मैंने तुम्हारा पाद (पैर, किरण) स्पर्श कर लिया किन्तु वह तो ऐसा कष्टदायी हो गया मानो किसी चाण्डालसे संयोग हो गया हो ? ॥५॥ हे नीच चन्द्रमा ! प्रियतमके विरहरूपी आगके तापसे सूखे हुए इस शरीरको खेलके बहाने भी न छूना। देखते नहीं, इस शरीरमें लोटते हुए अध-पके कमल-नालके टुकड़ोंकी भाँति सुन्दर तुम्हारी किरणें भी झुलसी जा रही हैं ॥६॥ हे राहु ! तुम बड़े मूर्ख हो। मैं तुमसे क्या कहूँ। मुखमें आ पड़े हुए इस चन्द्रमाको भला तुमने छोड़ क्यों दिया ? इसके गीले शरीरसे टपकते हुए अमृतसे क्या तुम्हारा धड़ तुमसे न जुट जाता ? ॥ ७ ॥ हे चन्द्रमा ? तुम जो कलङ्की हो सो ठीक ही है क्योंकि तुम मलिनताके भण्डार हो। प्रदोष (बड़े-बड़े दोषों, रात्रिके प्रथम प्रहर) में रक्त (अनुरक्त, लाल) हो वह भी ठीक है क्योंकि तुम विषके सगे भाई हो। शिवजीने तुम्हें सिरपर धारण कर लिया फिर भी तुम टेढ़े हो अतः तुम्हारा दोषाकर (दोषोंका भण्डार, रात्रिको बनानेवाला) होना और मुझ जैसे लोगोंको मारनेका उपाय करना भी ठीक ही है किन्तु हाय ! केवल यही नहीं सहा जाता कि तुम द्विजपति (ब्राह्मण) बने हुए हो ॥ ८ ॥ रामचन्द्रजीके वियोगमें सीता चन्द्रमासे कह रही हैं—'हे चन्द्र ! तू भली भाँति मुझे तपा डाल, मैं तुझे रोकती नहीं, किन्तु अपने कर (किरण, हाथ) से मुझे छूना मत, क्योंकि मैं रामकी पत्नी हूँ अर्थात् पतिव्रता हूँ' ॥ ९ ॥ हे चन्द्रमा ! तुम क्षीरसागरसे तो जन्मे हो, लक्ष्मी तथा कौस्तुभमणिके भाई हो, कुमुदोंके मित्र हो, तुम्हारी किरणें अमृतकी धार बरसानेवाली हैं, मृगनयनी नवेलियोंके मुखकमलसे तुम्हारी बराबरी की जाती है और तुम शिवजीके मस्तकके भूषण हो फिर कैसे इन धधकती हुई किरणोंसे मुझे जलाए डाल रहे हो ? ॥१०॥

रोहिणीके प्रति उक्ति : हे सखी रोहिणी ! तुम रात्रिचर (राक्षस, चन्द्रमा) की पत्नी हो इसलिये अपने

पवनं प्रत्युक्तयः—उन्मीलन्मुकुलकरालकुन्दकोशप्रच्योतद्घनमकरन्दगन्धबन्धो। तामीषत्प्रचलविलोचनां नताङ्गीमालिङ्गन्पवन मम स्पृशाङ्गमङ्गम् ॥ १ ॥ व्याधूय यद्वदनमम्बुजलोचनाया वक्षोजयोः कनककुम्भविलासभाजोः। आलिङ्गसि प्रसभमङ्गमशेषमस्या धन्यस्त्वमेव मलयाचलगन्धवाह ॥ २ ॥

मेघं प्रत्युक्तयः—मलयमरुतां व्राता याता विकासितमल्लिका परिमलभरो भग्नो ग्रीष्मस्त्वमुत्सहसे यदि। घन घटयितुं तं निःस्नेहं य एव निवर्तने प्रभवति गवां किं नश्छिन्नं स एव धनञ्जयः ॥ १ ॥ भो मेघ गम्भीरतरं नद त्वं तव प्रसादात्स्मरपीडितं मे। संस्पर्शरोमाञ्चितजातरागं कदम्बपुष्पत्वमुपैतु गात्रम् ॥ २ ॥ भ्रमय जलदानम्भोगर्भान्प्रमोदय चातकान्कलय शिखिनः केकोत्कण्ठान्कठोरय केतकान्। विरहिणि जने मूर्च्छां लब्ध्वा विनोदयति व्यथामकरुण पुनः संज्ञाव्याधिं विधाय किमीहसे ॥ ३ ॥

अशोकं प्रत्युक्तयः—रक्तस्त्वं नवपल्लवैरहमपि श्लाघ्यैः प्रियाया गुणैस्त्वामायान्ति शिलीमुखाः स्मरधनुर्मुक्तास्तथा मामपि। कान्तापादतलाहतिस्तव मुदे तद्वन्ममाप्यावयोस्सर्वं तुल्यमशोक केवलमहं धात्रा सशोकः कृतः ॥ १ ॥ रक्ताशोक कृशोदरी क्व नु गता त्यक्त्वानुरक्तं जनं नो दृष्टेति मुधैव चालयसि किं वातावधूतं शिरः। उत्कण्ठाघटमानषट्पदघटासङ्घट्टदष्टच्छदस्तत्पादाहतिमन्तरेण भवतः पुष्पोद्गमोऽयं कुतः ॥ २ ॥

तमालं प्रत्युक्तिः—धन्यस्त्वमसि तमाल स्पृष्टस्तन्व्या लतावदनया यत्। अद्य स्थावरजन्मा जातस्त्वं जङ्गमादधिकः ॥ १ ॥

मृणालहारं प्रत्युक्तिः—परिच्युतस्तत्कुचकुम्भम-

अत्यन्त ढीठ पतिको समझा दो कि यह झरोखोंसे हमारे घरमें घुसकर हमारे नितम्ब न छूया करे। तुम्हीं बताओ, क्या ऊँचे कुलवालोंकी यही करनी होती है ? ॥ १ ॥

पवनके प्रति उक्तियाँ : हे पवन ! खिली हुई कलियोंसे भरे हुए कुन्दके गुच्छोंसे निकलते हुए घने रसकी सुगन्ध लेकर पहले तनिक चञ्चल नेत्रवाली तथा झुके हुए अङ्गवाली उस नवेलीको छूकर फिर हमारे अङ्गोंको छू तो जाओ ॥ १ ॥ हे मलयाचलसे आए हुए पवन ! उस कमलनयनी नवेलीके सोनेके घड़ोंके समान स्तनोंपरसे वस्त्र हटाकर तुम जो उसके सारे शरीरका आलिङ्गन कर रहे हो इसलिये तुम्हीं धन्य हो ॥ २ ॥

मेघके प्रति उक्तियाँ : हे बादल ! मल्लिकाको खिलानेवाले मलय पर्वतके पवन और फूलोंकी गन्धसे भरी गरमी, ये सब समाप्त हो गए। ऐसे समयमें उस स्नेहहीन प्रियतमको मुझसे तुम्हीं मिला सकते हो। मैं तुम्हें ही सबसे बड़ा सहायक मानूँगी क्योंकि विराट नगरमें हरी हुई गौओंको जो लौटा लावे, वही अर्जुन है। इसमें मेरी हानि क्या होती है ॥ १ ॥ हे बादल ! तुम भरपेट गरजो जिससे कामदेवसे पीड़ा पाया हुआ मेरा शरीर तुम्हारी कृपासे नवेलीके स्पर्शसे रोमाञ्चित होकर राग (ललाई, अनुराग) से भरकर कदम्बका फूल बन जाय ॥ २ ॥ हे मेघ ! जलसे भरे हुए अपने कुटुम्बी बादलोंको चारों ओर घेर लो, चातकोंको प्रसन्न कर दो, मोरोंको बोलनेके लिये उकसा दो तथा केवड़ेको खिला दो, इसमें मेरी हानि नहीं किन्तु विरही लोग जब मूर्च्छित होकर अपनी विरह-वेदनाका समय बिता रहे हों ऐसे समयमें हे निर्दयी ! तुम उन्हें अपनी गर्जनासे जगा-जगाकर उनकी क्या दशा करना चाहते हो ? ॥ ३ ॥

अशोकके प्रति उक्तियाँ : हे अशोक ! तुम नये-नये पत्तोंसे-रक्त (लाल) हो, मैं भी बड़ाई करने योग्य प्यारीके गुणोंमें रक्त (रीझा हुआ) हूँ, तुमपर शिलीमुख (भौंरे) मँडरा रहे हैं, मुझपर भी कामदेवके धनुषसे निकले हुए शिलीमुख (बाण) बरस रहे हैं, नवेलीके पैरकी चोटसे तुम्हें भी प्रसन्नता होती है, मुझे भी। अतः, हम तुम सब प्रकारसे समान हैं। किन्तु भेद इतना ही है कि तुम अशोक (शोकरहित) हो तथा मुझे ब्रह्माने सशोक (शोकसहित) बना रक्खा है ॥ १ ॥ हे लाल अशोक ! मुझे प्रेममें भरा छोड़कर वह दुबले शरीरवाली प्यारी कहाँ चली गई ? वायुके सहारे व्यर्थ ही अपना सिर हिला-हिलाकर क्या कह रहे हो कि मैंने नहीं देखा। यदि यही बात है तो बताओ कि बिना उसकी लात खाए तुममें ये फूल कैसे निकल आए, जिनपर बड़े प्रेमसे भौंरे आ-आकर मँडरा रहे हैं ? ॥ २ ॥

तमालके प्रति उक्ति : हे तमाल वृक्ष ! तुम धन्य हो क्योंकि लताके समान उस नवेलीने तुम्हें छू तो लिया। आज स्थावर (जड़) होते हुए भी तुम जङ्गम (चलने फिरनेवाले, चाण्डाल) से भी बढ़ गए ॥ १ ॥

कमलकी डण्ठलके हारके प्रति उक्ति : हे मृणालके

ध्यात्कि शोपमायासि मृणालहार। न सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य तत्रावकाशो भवतः किमु स्यात्॥ १॥

मधुकरं प्रत्युक्तयः—उन्मीलन्नयनान्तकान्तिलहरीनिष्पीतयोः केवलादामोदादवधारणीयवपुषोः कान्तासखे न क्षणम्। यत्कर्णोत्पलयोः स्थितेन भवता किञ्चित्समुद्गुञ्जितं भ्रातस्तिष्ठति कुत्र तत्कथम मे कान्तं प्रियाया मुखम्॥ १॥ चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः। करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती॥ २॥ भ्रातर्द्विरेफ भवता भ्रमता समन्तात्प्राणाधिका प्रियतमा मम वीक्षिता किम्। ब्रूषे किमोमिति सखे कथयाशु तन्मे किं किं व्यवस्यति कुतोऽस्ति च कीदृशीयम्॥ ३॥ वदनमिदं न सरोजं नयने नेन्दीवरे एते। इह सविधे मुग्धदृशो मधुकर न मुधा परिभ्राम्य॥ ४॥

हंसं प्रत्युक्तिः—हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हृता। विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते॥ १॥

चकोरं प्रत्युक्तिः—चुलुकयसि चन्द्रदीधितिमविरलमश्नासि नूनमङ्गारान्। अधिकरणमुष्णमनयोः किमिह चकोरावधारयसि॥ १॥

कृष्णसारं प्रत्युक्तिः—स्नेहं स्वीकुरु कृष्णसार कथय क्वागान्मम प्रेयसी नो जानासि यदावयोः समजनि व्यापारतो मित्रता। स्फीते यत्किल मण्डले हिमरुचेर्जातं त्वया लाञ्छनं भव्ये भास्करमण्डले तदधुना दत्तः कलङ्को मया॥ १॥

सारङ्गं प्रत्युक्तिः—रे सारङ्गा वनवसतयस्तत्त्वमाख्यात यूयं कुत्राधीतं त्रिभुवनमनोहारि चाञ्चल्यमक्ष्णोः। आं जानीमो गमनसमये हन्त कान्तारसीमन्येकाकिन्याः कुवलयदृशो लुण्ठिता यौवनश्रीः॥ १॥

हार! उस नवेलीके स्तनोंके बीचसे गिरकर सूखे क्यों जा रहे हो? तुम्हारे पतले-पतले रेशोंके लिये भी वहाँ स्थान नहीं मिल सकता, तुम्हारी तो बात ही क्या है!॥ १॥

भौंरेके प्रति उक्तियाँ : तिरछी चितवन चलाते हुए, नयनोंकी काली कान्तिकी तरङ्गोंसे ढके हुए, सुगन्धिमात्रसे निवासस्थानका निश्चय करानेवाले, उस नवेलीके कानोंपर पहने हुए कमलोंपर बसनेवाले तथा उस प्यारीका साथ न छोड़नेवाले हे भौंरे! तुम्हारे गुनगुनानेसे जान पड़ता है कि तुम उसका समाचार जानते हो। अतः हे भाई! तनिक बताओ तो सही कि मेरी प्यारीका सुन्दर मुखड़ा कहाँ है॥१॥ हे भौंरे! तुम सचमुच बड़े भाग्यवान् हो, क्योंकि इस चञ्चल तथा कँपाती हुई चितवनवाली नवेलीको बार-बार छूते जा रहे हो, उसके कानोंके पास जाकर धीरे-धीरे ऐसे गुनगुना रहे हो मानो उसे कोई बड़ी भेद-भरी बात सुनाना चाहते हो और बार-बार उसके हाथोंके थपेड़े खाकर भी तुम उसके रसीले अधर पीते जा रहे हो। हम तो तत्त्वकी खोज करते रह गए अर्थात् न हमें तत्त्व-बोध ही हुआ और न सुन्दरी नवेलीका उपभोग ही मिल पाया॥ २॥ हे भाई भौंरे! चारों ओर घूमते समय आपने कहीं मेरी प्राणप्यारीको देखा है? क्या आप गुनगुनाकर 'हाँ' कह रहे हैं? तो मित्र! मुझे शीघ्र बताइए कि वह कहाँ है, क्या कर रही है और कैसी है?॥ ३॥ हे भौंरे! यह नवेलीका मुँह है, कमल नहीं और ये नेत्र हैं, नीले कमल नहीं हैं अतः इस सुनयनीके आस-पास क्यों व्यर्थ चक्कर लगाए जा रहे हो!॥ ४॥

हंसके प्रति उक्ति : हे हंस! तुम्हारी चालसे स्पष्ट है कि तुमने उस नवेलीकी चाल चुराई है, इससे जान पड़ता है कि उसे भी तुम्हींने चुराया होगा। उसकी चोरीका अपराध तुम्हींपर लगाया गया है इसलिये मुझे मेरी प्यारी लौटा दो॥ १॥

चकोरके प्रति उक्ति : हे चकोर! तुम अङ्गारे भी खा जाते हो और चन्द्रमाकी किरणें भी पी जाते हो तो क्या तुमने यही समझ लिया है कि दोनोंके आधार उष्ण हैं॥ १॥

काले हरिणके प्रति उक्ति : सीताके बिछोहसे दुखी सूर्यवंशी रामचन्द्र कहते हैं—'हे काले मृग! तुम मेरा प्रेम स्वीकार करके यह बताओ कि मेरी प्यारी कहाँ गई? तुम यह नहीं जानते कि मेरे-तुम्हारे व्यवहार एक-से हैं अतः हम दोनों मित्र हैं। विशाल चन्द्रमण्डलमें तुमने कलङ्क लगाया और निर्मल सूर्यमण्डल (सूर्यवंश) में मैंने'॥ १॥

मृगके प्रति उक्ति : वनमें रहनेवाले हे हरिण! सच कहो कि तीनों लोकोंके मन हरनेवाली यह नेत्रोंकी चञ्चलता तुमने कहाँ पाई? हाँ, अब समझमें आया कि जब वह कमलनयनी जङ्गलमें अकेली भटक रही थी तभी तुम लोगोंने उसके यौवनकी सुन्दरता लूटी होगी॥ १॥

मयूरविषयकोक्तिः—मृदुपवनविभिन्नो मत्प्रियाया विनाशाद्घनरुचिरकलापो निःसपत्नोऽद्य जातः। रतिविगलितबन्धे केशपाशे सुकेश्याः सति कुसुमसनाथे किं हरेदेष बर्हः॥ १॥

मुक्ताकलापं प्रत्युक्तिः—सूचीमुखेन सकृदेव कृतव्रणस्त्वं मुक्ताकलाप लुठसि स्तनयोः प्रियायाः। बाणैः स्मरस्य शतशो विनिकृत्तमर्मा स्वप्नेऽपि तां कथमहं न विलोकयामि॥ १॥

अभिसारिकासञ्चारकथनम्—अग्रे धनुश्शरकरः स्वयमस्ति कामः पश्चात्त्वरा शशधरोदयसंशयोत्था। ध्वान्तं दिनान्तविकसद्विभवं समन्तात्किं केवला पथि वधूर्दयिताभिसारे॥ १॥ अधियामिनि गजगामिनि कामिनि सौदामिनीव यं व्रजसि। जलदेनेव न जाने कति कति सुकृतानि तेन विहितानि॥ २॥ अभिसरणरसः कृशाङ्ग्यष्टेरयमपरत्र न वीक्षितः श्रुतो वा। अहिमपि यदियं निरासनाङ्घ्रेर्निविडितनूपुरमात्मनीनबुद्ध्या॥ ३॥ उत्तंसः केकिपिच्छैर्मरकतवलयैश्शमामले दोःप्रकाण्डे हारः सान्द्रेन्द्रनीलैर्मृगमदरचितो वक्त्रपत्रप्रपञ्चः। नीलाब्जैः शेखरश्रीरसितवसनता चेत्यभीकाभिसारे सम्प्रत्येणेक्षणानां तिमिरभरसखी वर्तते वेषलीला॥ ४॥ क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे प्राणाधिपो वसति यत्र मनःप्रियो मे। एकाकिनी वद कथं न बिभेषि बाले नन्वस्ति पुङ्खितशरो मदनः सहायः॥ ५॥ गर्ज वा वर्ष वा मेघ मुञ्च वा शतशोऽशनिम्। न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति॥ ६॥ चन्द्रोदये चन्दनमङ्गकेषु विहस्य विन्यस्य विनिर्गतायाः। मनो निहन्तुं मदनोऽपि बाणान्करेण कौन्दान्विभराम्बभूव॥ ७॥ जनो दुर्वञ्च्योऽयं कुलममलिनं वर्त्म विषमं पतिश्छिद्रान्वेषी प्रणयिवचनं दुष्परिहरम्। अतः काचित्तन्वी

मोरके विषयमें उक्ति : आज प्यारीके न रहनेपर धीमे पवनसे हिलते हुए मोरके घने सुन्दर बालों (पूँछ) का कोई वैरी नहीं रह गया, पहले रतिके समय जब उस सुन्दर केशवालीके बाल खुलकर बिखर जाते थे और उनमें फूल खोंस दिए जाते थे उस समय यह मोर किसे भाता था ?॥ १॥

मोतीकी मालाके प्रति उक्ति : अरे मोती ! नुकीली सुईसे जो तुम एक बार वेधे गए थे उसकी पीड़ा शान्त करनेके लिये तो तुम प्यारीके स्तनोंपर लोटते रहते हो, भला बताओ कि कामदेवके बाणोंसे सैकड़ों बार वेधा हुआ मैं स्वप्नमें भी प्यारीको कैसे न देखूँ ?॥ १॥

प्रियतमसे गुपचुप मिलनेका वर्णन : आगे तो हाथमें धनुष-बाण लेकर स्वयं कामदेव खड़ा हुआ है, पीछेसे शीघ्र ही चन्द्रमाके उदय हो जानेकी शङ्काके कारण उतावली मची हुई है और दिनका अन्त हो जानेसे चारों ओर घने अन्धकारका साम्राज्य है। ऐसे समय यह क्या कोई नई बहू है जो प्रियतमसे मिलने जा रही है ?॥ १॥ हे हाथीके समान चालवाली कामिनी ! रातमें बिजलीके समान चमकती हुई तुम जिस बादलके समान प्यारेके पास जा रही हो, उसेने पिछले जन्ममें न जाने क्या-क्या पुण्य कर्म किए होंगे॥२॥ इस दुबले अङ्गोंवाली नवेलीका पतिसे गुपचुप मिलनेमें जैसा चाव है वैसा न तो कहीं देखा गया, न सुना ही गया क्योंकि नूपुरमें लिपटे हुए साँपको भी इसने अपना नूपुर ही समझकर पैरसे झटक दिया॥ ३॥ प्रियतमसे गुपचुप मिलनेको चली हुई मृगनयनी नवेलियोंके मोरपङ्खके कुण्डल, मरकत मणि जड़े कङ्गनोंसे साँवली भुजाएँ, इन्द्रनील मणिका हार, मुँहपर कस्तूरीकी चित्रकारी, नीले कमलोंसे सजा मुकुट तथा काली धोती यह सब उनका वेष मानो अँधेरेकी सखी बन रहा है॥ ४॥ हे हाथीकी सूँड़के समान ढलुवाँ जाँघवाली ! इस अँधेरी आधी रातमें तुम कहाँ चली ? नवेली : जहाँ हमारे प्रिय प्राणनाथ रहते हैं। सखी : हे बाले ! कहो तो, तुम अकेली डरती नहीं ? नवेली : धनुषपर बाण चढ़ाए हुए कामदेव हमारे साथ ही हैं, फिर डर कैसा !॥ ५॥ हे बादल ! तुम चाहे गरजो चाहे बरसो चाहे सैकड़ों वज्र छोड़ो किन्तु अपने प्रियतमसे मिलनेको चली हुई नवेलियोंको कोई नहीं रोक सकता॥ ६॥ चन्द्रमाका उदय होनेपर अभिसारिका जब हँसकर अपने शरीरमें चन्दन पोतकर निकली उस समय कामदेवने भी उसका मन वेधनेके लिये अपने हाथोंमें खिले हुए कुन्दके फूल-रूपी बाण धारण कर लिए॥ ७॥ गुपचुप अपने प्रेमीसे रति करनेके लिये सङ्केत किए हुए स्थानपर जानेके लिये कोई पतले अङ्गोंवाली नवेली चली तो सही, किन्तु यही सोच-सोचकर वह बार-बार घरसे निकलती और घुस जाती थी कि घरके लोगोंको चकमा देकर निकल जाना टेढ़ी खीर है, मार्ग बड़ा कठिन,

रतिविहितसङ्केतगतये गृहाद्द्वारं वारं निरसरदथ प्राविशदथ ॥ ८ ॥ जलधर निर्लज्जस्त्वं यन्मां दयितस्य वेश्म गच्छन्तीम्। स्तनितेन भीषयित्वा धाराहस्तैः परामृशसि ॥९॥ जाताः प्रासादपालीकनकवलभिकान्यस्तमाणिक्यदीपच्छायाविच्छर्दतुच्छीकृतविरलतमा ये निशीथान्धकाराः। तेऽमी स्फारीक्रियन्ते प्रतिविशिखमितः कान्तसङ्केतधावद्धामभ्रमुक्तनेत्रोत्पलतरलतरत्तारकामेचकिम्ना ॥ १० ॥ तमः शान्तं शाम्यत्वयमुदित एवेन्दुरुदियान्मया गम्यं तत्र प्रियसखि स यत्र प्रियतमः। गृहग्राहोत्सङ्गे शतमिव युगानां गतमहो निशा चेदेवं स्यादयि कथय को मृत्युरपरः ॥ ११ ॥ न जल्प दशनत्विषा भवति ते तमिस्रक्षतिस्तरङ्गय दृगञ्चलं भवतु तेन गाढं तमः। अपीह सखि साध्वसं पथि जहीहि निम्नोन्नते स्मरं समदसिन्धुरं समधिरुह्य निर्गच्छसि ॥ १२ ॥ नयस्व पारं पुलिनद्वयानुगां तरङ्गडोलामधिरोप्य मामितः। प्रसीद यावन्न निशा प्रदीयते यशांसि ते गायतु पांसुलाजनः ॥ १३ ॥ प्राणेशमभिसरन्ती पथि स्खलन्ती सुपिच्छिले मुग्धा। अवलम्बनाय वारां धारासु करं प्रसारयति ॥ १४ ॥ मन्दं निधेहि चरणौ परिधेहि वासो नीलं पिधेहि वलयावलिमञ्चलेन। मा जल्प साहसिनि शारदचन्द्रकान्तदन्तांशवस्तव तमांसि समापयन्ति ॥ १५ ॥ मलयजरसविलिप्ततनवो नवहारलताविभूषिताः सिततरदन्तपत्रकृतवक्त्ररुचो रुचिरामलांशुकाः। शशभृति विततधाम्नि धवलयति धरामविभाव्यतां गताः प्रियवसतिं प्रयान्ति सुखमेव निरस्तभियोऽभिसारिकाः ॥ १६ ॥ मल्लिकाचितधम्मिल्लाश्चारुचन्दनचर्चिताः। अविभाव्याः सुखं यान्ति चन्द्रिकास्वभिसारिकाः ॥१७॥ मल्लिकामाल्यभारिण्यः सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दनाः। क्षौमवत्यो न लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिकाः ॥१८॥ मुक्तं मौक्तिकदाम हेमवलयश्रेणी समुत्सारिता वासो नीलमुरीकृतं नियमितो मञ्जीरकोलाहलः। गच्छन्त्या-

---

टेढ़ा-मेढ़ा और काँटोंसे भरा है, पति सदा मीन-मेख निकाला करते हैं और प्यारेकी बात भी छोड़ी नहीं जाती' ॥ ८ ॥ हे बादल ! तुम बड़े ही निर्लज्ज हो क्योंकि प्रियतमके घर जाती हुई मुझे अपने गर्जनसे डरा-डराकर जलधारारूपी हाथसे छू रहे हो ॥९॥ घरके छतपर बनी हुई सोनेकी कोठरीमें रक्खे हुए मणिकी दीपकोंकी फैलती हुई चमकसे आधी रातके समय जो अँधेरा हलका-सा जान पड़ रहा था वही इस समय पतिसे मिलनेके लिये गली-गलीमें दौड़ती हुई नवेलियोंकी आँखोंकी काली पुतलियोंकी चमकसे गहरा होता जा रहा है ॥१०॥ अँधेरा मिट रहा हो तो मिटे, चन्द्रमा निकल आया हो तो निकल आवे किन्तु हे प्यारी सखी! मैं तो वहाँ अवश्य जाऊँगी जहाँ प्यारे बैठे हैं क्योंकि घररूपी घड़ियालकी गोदमें बैठे-बैठे यह रात सैकड़ों युगोंके समान लम्बी बीत रही है। यदि ऐसा ही होता रहा तो कहो, मृत्यु नामकी दूसरी क्या वस्तु है? अर्थात् इस प्रकार तो मृत्युसे भी अधिक कष्ट हो रहा है ॥११॥ हे सखी ! बोलो मत, क्योंकि तुम्हारे दाँतोंकी चमकसे अँधेरा हट रहा है, तनिक अपनी काली पुतलीको मटका दो तो इससे अँधेरा घना हो जाय और ऊँचे-नीचे मार्गमें गिरनेका भय यहाँ छोड़ दो क्योंकि तुम तो कामदेवरूपी मतवाले हाथीपर बैठकर चल रही हो न ॥१२॥ हे भाई ! प्रसन्न हो जा, रात बीतनेसे पहले ही मुझे इस लहररूपी डोलेपर बैठाकर उस पार पहुँचा दे, व्यभिचारिणी नवेलियाँ तेरा बहुत गुण गावेंगी ॥१३॥ अपने प्राणनाथके पास जाती हुई भोली-भाली अभिसारिका फिसलन-भरे मार्गमें जब फिसलकर गिरने लगी तो सहारा पानेके लिये गिरती हुई जलकी धाराकी ओर हाथ बढ़ा रही है ॥१४॥ हे साहस करनेवाली ! धीरे-धीरे पैर रक्खो, नीले रङ्गकी साड़ी पहन लो, आँचलसे चूड़ियाँ ढक लो तथा बोलो मत, क्योंकि शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति सुन्दर तुम्हारे दाँतोंकी किरणें अन्धकारको मिटाए डाल रही हैं ॥१५॥ जब चन्द्रमा अपनी चाँदनी बिखेरकर सारे भूमण्डलको उजला किए दे रहा था उस समय अपनी देहोंमें चन्दनका लेप किए, मोतीके हारोंसे शरीर सजाए, कपोलोंपर हाथीदाँतके बने कनफूल लटकाए तथा उजली साड़ियाँ पहने हुए अभिसारिकाएँ किसीको न दिखाई देनेके कारण सुखसे अपने-अपने प्रियतमोंके घर चली जा रही हैं ॥ १६ ॥ अपने शरीरमें चन्दनका लेप किए हुए अभिसारिकाएँ बालोंको बेलेके फूलोंसे सजाकर चाँदनी रातोंमें भी किसीको न दिखाई देती हुई बेखटके चली जा रही हैं ॥ १७ ॥ बेलेकी माला पहने हुए, सारे शरीरमें चन्दनका लेप किए हुए तथा उजले रेशमी वस्त्र पहने हुए अभिसारिकाएँ चाँदनीमें भी दिखाई नहीं पड़तीं ॥ १८ ॥ हे दुबले शरीरवाली ! तुमने मोतीकी माला उतार दी, सोनेके कड़े हाथसे निकाल दिए, नीली साड़ी पहन ली तथा

स्तव साहसं न सहते तन्वङ्गि सङ्गोपनं धम्मिल्लच्युतमल्लिकापरिमलप्रौढो निशीथानिलः ॥ १९ ॥ मूढे निरन्तरपयोधरया मयैव कान्तः सहाभिरमते यदि किं तवात्र। मां गर्जितैरिति मुहुर्विनिवारयन्ती मार्गं रुणद्धि कुपितेव निशा सपत्नी ॥ २० ॥ मूर्तिर्नीलदुकूलिनी मृगमदैः प्रत्यङ्गपत्रक्रिया बाहू मेचकरत्नकङ्कणभृतौ कण्ठेऽम्बुसारावली । व्यालम्बालकमञ्जरीकमलिकं कान्ताभिसारोत्सवे यत्सत्यं तमसा मृगाक्षि विहितं वेषे तवाचार्यकम् ॥ २१ ॥ मेघा वर्षन्तु गर्जन्तु मुञ्चन्त्वशनिमेव वा। गणयन्ति न शीतोष्णं रमणाभिमुखाः स्त्रियः ॥ २२ ॥ यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः । अयि विद्युत्प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि ॥ २३ ॥ यद्वदहल्याहेतोर्मृषा वदसि शक्र गौतमोऽस्मीति । तद्वन्ममापि दुःखं निरवेक्ष्य निवार्यतां जलदः ॥ २४ ॥ रभसादभिसर्तुमुद्यतानां वनितानां सखि वारिदो विवस्वान्। रजनी दिवसोऽन्धकारमर्चिर्विपिनं वेश्म विमार्ग एव मार्गः ॥ २५ ॥ वातोद्धूतमुखी प्रनष्टतिलका तोयार्द्रलीनांशुका मेघानां निनदेन भीतहृदया गत्वा प्रियस्यालयम्। द्वारं नेच्छति लज्जया प्रलपितुं देहीति वर्षाहता पादौ नूपुरकर्दमप्रतिहतौ संशब्दयन्ती स्थिता ॥ २६ ॥ सञ्चरन्ति मृगनाभिचर्चिता मेचकाम्बरकृतावगुण्ठनाः। प्राणनाथमभिसर्तुमुद्यताः सुभ्रुवस्तिमिरदेवता इव ॥ २७ ॥ स्फुरदुरसिजभारभङ्गुराङ्गी किसलयकोमलकान्तिना पदेन। अथ कथय कथं सहेत गन्तुं यदि न निशासु मनोरथो रथः स्यात् ॥ २८ ॥ हृदये दयितेन हृते वपुषि सवेपथुनि पथि निरालम्बे। अयि कथय कथमनङ्ग प्रियगृहमभिसारिकां नयसि ॥ २९ ॥

नायकागमनावस्थावर्णनम्— अभ्युन्नतस्तनयुगा तरलायताक्षी द्वारि स्थिता तदुपयानमहोत्सवाय।

पायलोंकी रुन-झुन भी बन्द कर दी, इस प्रकार साहस करके प्रियसे मिलनेके लिये तुम जा तो रही हो किन्तु तुम्हारे बालोंसे गिरे हुए बेलेके फूलोंकी प्रबल गन्धमें बसा हुआ यह आधी रातका पवन तुम्हारा सारा भेद खोले दे रहा है ॥ १९ ॥ 'हे मूर्ख ! मुझ उमड़े हुए बादलवाली (उठे हुए स्तनवाली) से ही यदि वह नायक सम्भोग करता है तो इससे तुम्हें क्या ?' ऐसी गर्जनासे मुझे बार-बार रोकती हुई क्रोधित सौतके समान यह रात मेरा मार्ग रोक रही है ॥ २० ॥ तुमने सारी देहमें काला वस्त्र पहन लिया है, अङ्ग-अङ्गपर कस्तूरीसे चित्रकारी कर ली है, हाथमें साँवले रङ्गके रत्न-जड़े कङ्कन पहन लिए हैं, गलेमें नीलमकी माला धारण कर ली है तथा अत्यधिक लम्बे बालोंमें मञ्जरियाँ खोंस ली हैं। इस प्रकार हे मृगनयनी ! प्रियतमसे गुपचुप मिलनेकी तुम्हारी इस वेष-रचनाका कर्त्ता-धर्त्ता अन्धकार ही है, यह बात सत्य जान पड़ती है ॥ २१ ॥ बादल चाहे गरजें, बरसें या वज्र गिरावें, किन्तु जब नवेलियाँ अपने प्रियतमसे मिलनेको कमर कस लेती हैं तब वे सर्दी-गर्मी कुछ नहीं समझतीं ॥ २२ ॥ यदि बादल गरजते हैं तो ठीक है, क्योंकि पुरुष तो निष्ठुर होते ही हैं किन्तु अरी बिजली ! क्या तू भी स्त्रियोंका दुःख नहीं समझती ? ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! जैसे अहल्यासे मिलनेके लिये तुमने झूठ ही कह दिया था कि 'मैं ही तुम्हारा पति गौतम हूँ' उसी प्रकार मेरे दुःख देखकर भी बादलोंको बरसने-गरजनेसे रोक दीजिए ॥ २४ ॥ हे सखी ! शीघ्रतासे पतिके पास जानेको तत्पर नवेलियोंके लिये मेघ ही सूर्य है, रात ही दिन है, अन्धकार ही प्रकाश है, जङ्गल ही घर है तथा जहाँ मार्ग न हो वही मार्ग भी है ॥ २५ ॥ बरसाती पवनसे तिलक मिट जानेके कारण रूखे मुँहवाली, जलसे भीगे वस्त्रोंवाली तथा बादलोंकी गड़गड़ाहटसे डरे हुए हृदयवाली नवेली जब प्रियतमके घर पहुँची तो लाजके कारण यह तो न बोली कि 'द्वार खोलिए' वरन् बरसते हुए पानीमें ही खड़ी-खड़ी कीचड़से भरे पायलोंवाले पैर पटक-पटककर आहट देने लगी ॥ २६ ॥ अँधेरी रातमें शरीरमें कस्तूरीका लेप लगाकर तथा काले वस्त्रोंसे शरीर ढककर प्राणनाथके पास जाती हुई सुन्दर भौंहोंवाली नवेलियाँ अन्धकारकी देवता-सी जान पड़ती हैं ॥ २७ ॥ बड़े-बड़े स्तनोंके बोझसे दबी हुई तथा नये पत्तोंके समान कोमल पैरोंवाली उस नवेलीके पास यदि प्रियतमसे मिलनेकी उत्कट इच्छाका रथ न होता तो भला वह कैसे चल पाती ! ॥ २८ ॥ हे कामदेव ! जिस नवेलीका हृदय प्रियतमने चुरा लिया है और जिसकी देह काँप रही है, उस प्रियतमसे गुपचुप मिलनेवाली नवेलीको तुम सुनसान मार्गसे कैसे लिए चले जा रहे हो ? ॥ २९ ॥

प्रियतमके आनेके समयका वर्णन : बड़े-बड़े स्निग्ध नेत्रोंवाली तथा ऊँचे-ऊँचे दोनों स्तनोंवाली नवेली पतिके स्वागतरूपी उत्सवके लिये द्वारपर खड़ी होकर बिना परिश्रमके ही

सा पूर्णकुम्भनवनीरजतोरणस्रक्सम्भारमङ्गलमयत्नकृतं विधत्ते ॥ १ ॥ आगच्छन्सूचितो येन येनानीतो गृहं प्रति । प्रथमं सखि कः पूज्यः किं काकः किं क्रमेलकः ॥ २ ॥ आयतो दयितस्तवेति सहसा न श्रद्दधे भाषितं सद्यः सम्मुखतां गतेऽपि सुमुखी भ्रान्तिं निजां मन्यते । कण्ठाश्लेषिभुजेऽपि शून्यहृदया स्वप्नान्तरं शङ्कते प्रत्यावृत्तिमियं प्रियस्य कियता प्रत्येतु शातोदरी ॥३॥ द्वारोपान्तनिरन्तरे मयि तया सौन्दर्यसारश्रिया प्रोल्लास्योरुयुगं परस्परसमासक्तं समासादितम् । आनीतं पुरतः शिरोंशुकमधः क्षिप्ते चले लोचने वाचस्तत्र निवारितं प्रसरणं सङ्कोचिते दोर्लते ॥ ४ ॥ श्रुत्वायान्तं बहिः कान्तमसमाप्तविभूषया । भालेऽञ्जनं दृशोर्लाक्षा कपोले तिलकः कृतः ॥ ५ ॥ सज्जितसकलशरीरा क्षणे क्षणे मनसि किमपि गणयन्ती । उत्सवमिव तं दिवसं मनुते मुग्धा प्रियागमने ॥ ६ ॥

नायकागमने नायिकां प्रति सखीवचनम्—अपाङ्गसंसर्गि तरङ्गितं दृशोर्भ्रुवोररालान्तविकासि वेल्लनम् । विसारि रोमाञ्चितकञ्चुकं तनोस्तनोति योऽसौ सुभगे तवागतः ॥ १ ॥ आयातं सखि दयितं चिरात्प्रवासात्त्वामङ्गं तव विरहानलेन तप्तम् । सद्योऽमुं निजमृदुलाङ्गसङ्गदानात्सन्तर्पय नय भव सम्मुखी किमेवम् ॥ २ ॥ कलय वलयं धम्मिल्लेऽस्मिन्निवेशय मल्लिकां रचय सिचयं मुक्ताहारं विभूषय सत्वरम् । मृगमदमषीपत्रालेपं कुरुष्व कपोलयोः सहचरि समायातः प्रातः स ते हृदयप्रियः ॥ ३ ॥ धैर्यमाधाय लज्जां च व्यपनीय विलासिनम् । सम्भावयसि किं नैनं दिष्ट्या स्वयमुपस्थितम् ॥ ४ ॥ नित्यं मनोरथस्यापि सखि दुर्गम एव यः । अभवत्सारूपतं कामं प्रत्यक्षेण विभाति सः ॥ ५ ॥

नायकातिथ्यवर्णनम्—अश्रुभिः पाद्यमाकल्प्य प्रणीय हृदयासनम् । उपेते दयिते कान्ता परिष्वङ्गमुपानयत् ॥१॥ आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुत्प्रेक्ष्य दुर्लङ्घ्यतां गेहिन्या परितोषवाष्पकलिलामासज्य दृष्टिं मुखे । दत्त्वा पीलुशमीकरीरकवलं वेलाञ्चलेनादरादुन्मृष्टं

मङ्गल-कलश, नये कमलकी वन्दनवार और कमलके फूलोंकी मालाकी शोभा बढ़ाए दे रही है ॥ १ ॥ हे सखी ! जिस कौएने पतिके आनेकी सूचना दी वह पहले पूजाके योग्य है; या ऊँट जो उन्हें घर ले आया ? ॥ २ ॥ 'तुम्हारा पति आ गया' यह सुनकर भी वह सुन्दर मुखवाली नवेली एकाएक विश्वास नहीं कर रही है, पतिके सामने आनेपर भी उसे भ्रम ही समझ रही है, गलेमें आलिङ्गनके लिये हाथ पड़नेपर भी वह शून्य हृदयवाली उसे नया सपना ही समझ रही है। बताइए वह पतली कमरवाली नवेली प्रियतमके आनेकी बातपर भरोसा करे तो कैसे करे ! ॥ ३ ॥ जैसे ही मैं द्वारके पास पहुँचा वैसे ही सुन्दरताकी सार-जैसी वह सुन्दरी भी आपसमें सटी हुई और खिली हुई अपनी जाँघें हिलाती वहीं आ गई। उसने घूँघट काढ़ लिया, चञ्चल नेत्र नीचे कर लिए, वाणी रोक ली और अपने लता जैसे कोमल हाथ भी सिकोड़ लिए ॥ ४ ॥ कोई नवेली अपना श्रृङ्गार अभी पूरा न कर पाई थी कि उसने सुना बाहर प्रियतम आ गए हैं बस उसे ऐसी हड़बड़ी पड़ी कि उसने माथेपर आँजन, नेत्रोंमें महावर तथा गालपर तिलक लगा डाला ॥ ५ ॥ सजधजकर बैठी हुई तथा मनमें कुछ सोचती-विचारती हुई कोई भोली-भाली नवेली प्रियतमके आनेके दिनको उत्सवके समान मान रही है ॥ ६ ॥

प्रियतमके आनेपर नवेलीसे सखीकी बातें : हे सुन्दरी ! कानतक फैली हुई तुम्हारी आँखोंको छलकानेवाला, दूरतक फैली हुई भौंहोंको विकसित करनेवाला और तुम्हारे शरीरके रोमाञ्चसे युक्त चोलीको फैलानेवाला तुम्हारा प्रियतम आ गया है ॥ १ ॥ हे सखी ! बहुत दिनोंपर परदेससे लौटे हुए अपने उस प्रियतमके पास जाकर तत्काल अपने कोमल अङ्गोंका स्पर्श कराकर उसकी तपन मिटाओ जो तुम्हारे वियोगरूपी अग्निसे तपकर दुबला हो गया है। क्यों, ठीक है न? ॥२॥ हे सखी ! हाथोंमें कङ्गन पहन लो, जूड़ेमें बेलेके फूल गूँथ लो, अपने वस्त्र सँभालकर पहन लो, मोतीका हार झटपट गलेमें डाल लो और कस्तूरीके घोलसे गालोंपर चित्रकारी कर लो क्योंकि तुम्हारे हृदयका प्रियतम आज प्रातःकाल आ गया है ॥३॥ अरी ! धीरज धरकर तथा लाज छोड़कर अपने प्रियतमका सत्कार क्यों नहीं करती जो भाग्यवश स्वयं ही यहाँ चला आया है ? ॥ ४ ॥ हे सखी ! सदा मनाते रहनेपर भी जिसका आना कठिन था वह इस समय आँखोंके आगे आ पहुँचा है ॥ ५ ॥

प्रियतमके स्वागत-सत्कारका वर्णन : प्रियतमके आनेपर सुन्दरीने अपने आँसुओंसे उनके पैर धोए, उन्हें हृदयासनपर बैठाया और तत्पश्चात् उन्हें गले लगाया ॥१॥ पतिके आनेपर मरुस्थलकी कठिनाइयाँ सोचकर पहले तो

करभस्य केसरसटाभाराग्रलग्नं रजः ॥ २ । किञ्चित्कम्पितपाणिकङ्कणरवैः पृष्टं ननु स्वागतं व्रीडानम्रमुखाब्जया चरणयोर्न्यस्ते च नेत्रोत्पले । द्वारस्थस्तनयुग्ममङ्गलघटे दत्तः प्रवेशो हृदि स्वामिन्किं भवतोऽतिथेः समुचितं सख्यानयानुष्ठितम् ॥ ३ ॥ दीर्घा वन्दनमालिका विरचिता दृष्ट्यैव नेन्दीवरैः पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो नो कुन्दजात्यादिभिः । दत्तः स्वेदमुचा पयोधरभरेणार्घ्यो न कुम्भाम्भसा स्वैरेवावयवैः प्रियस्य विशतस्तन्व्या कृतं मङ्गलम् ॥ ४ ॥ बाला वन्दनमालिकाकिसलयग्रन्थीनधः कुर्वतः श्रुत्वा वल्लभवाहनस्य रटितं दासेरकस्याङ्गने । आक्रन्दात्सुहृदो वनाद्गुरुजनं नासाग्रसङ्गादसून्कान्तं स्त्रीवधपातकात्स्मरमसत्कीर्तेः परावर्तयत् ॥ ५ ॥

नायिकां प्रति नायकस्य प्रश्नः—अङ्गानामतितानवं कथमिदं कम्पश्च कस्मात्कुतो मुग्धे पाण्डुकपोलमाननमिति प्राणेश्वरे पृच्छति । तन्व्या सर्वमिदं स्वभावजमिति व्याहृत्य पक्ष्मान्तरव्यापी बाष्पभरस्तया चलितया निःश्वस्य मुक्तोऽन्यतः ॥ १ ॥ कृशा केनासि त्वं प्रकृतिरियमङ्गस्य ननु मे मलाधूम्रा कस्माद्गुरुजनगृहे पाचकतया । स्मरस्यस्मान्कच्चिन्नहि नहि नहीत्येवमवदच्छिरःकम्पं बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता ॥ २ ॥ कृशासीत्यालीना मलिनवसनासीत्यवनता चिराद्दृष्टासीति स्तनकलशकम्पं प्ररुदिता । परिष्वक्ता यावत्प्रणयपदवीं कामपि गता ततः सारङ्गाक्ष्या हृदयसदने लीनमभवत् ॥ ३ ॥

प्रणयकलहे नायिकानुनयः—अङ्गानि खेदयसि किं शिरीषकुसुमपरिपेलवानि मुधा । अयमीहितकुसुमानां सम्पादयिता तवास्ति दासजनः ॥ १ ॥ अनिर्दयोप-

---

गृहिणीने उसके मुखपर आँसूसे भरी सन्तोषकी दृष्टि डाली फिर ऊँटको पीलू, शमी और करीलकी पत्तियोंका चारा डालकर वह अपने चञ्चल आँचलके छोरसे ऊँटके गलकेशोंपर छाई हुई धूल झाड़ने लगी ॥२॥ हे स्वामी! आप जैसे ही पधारे वैसे ही काँपते हुए हाथोंके कङ्गनोंकी झनकारके स्वरमें उसने कुशल पूछा, लजाकर नीचे मुँह करके आपके चरणोंपर अपने नेत्ररूपी कमल चढ़ाए और हृदय-द्वारपर सजे हुए दो स्तनरूपी मङ्गल कलशवाले हृदय-मन्दिरमें आपको ला बैठाया। यह क्या सखीने आपका कम उचित सत्कार किया है? ॥ ३ ॥ घरमें प्रवेश करते हुए अपने प्रियतमका मङ्गलाचार अपने अङ्गोंसे ही करनेके लिये सुन्दरीने कमलके फूलोंके बदले अपनी चितवनकी ही लम्बी वन्दनवार बनाई। कुन्द और चमेलीके बदले अपनी मन्द मुसकानके ही फूल बरसाए और घड़ेके जलके बदले अपने स्तनोंके पसीनेके जलसे ही अर्घ्य दिया ॥ ४ ॥ नवेलीने आँगनमें वन्दनवारकी मालाके पत्तोंकी गाँठ खोलते समय जो अपने प्रियतमकी सवारी (ऊँट) का शब्द सुना तो उसने मित्रोंको रोनेसे, गुरुजनोंको वनसे, प्राणोंको नाकके छोरसे, प्रियतमको स्त्री-वधके पापसे और कामदेवको निन्दासे बचा लिया ॥ ५ ॥

नवेलीसे नायकके प्रश्न : 'हे भोली-भाली! तुम इतनी दुबली क्यों पड़ गई हो? इतनी काँप क्यों रही हो? और तुम्हारे गाल और मुख पीले क्यों पड़ गए हैं?' इस प्रकार प्राणनाथने पूछा तो सुन्दरीने कहा—'यह सब यों ही हो गया है' और फिर वह लम्बी साँसें खींचकर ज्यों ही चलनेको हुई कि आँखोंके कोनोंतक भरे हुए आँसू सँभाल न सकी और आँसू छलककर ढुलक ही पड़े ॥ १ ॥ जैसे ही मैंने अपनी पत्नीसे पूछा—तुम इतनी दुबली क्यों पड़ गई हो? तो उसने उत्तर दिया—मेरे अँग तो ऐसे हैं ही। मैं : तुम धुएँके रंगके समान साँवली क्यों पड़ गई हो? वह : बड़े-बूढ़ोंके लिये भोजन बनाते-बनाते मेरा रंग धुएँका-सा हो गया है। मैं : क्या मुझे भी कभी स्मरण करती थी? ऐसा पूछते ही वह नवेली सिर हिला-हिलाकर 'नहीं-नहीं' करती हुई मेरी छातीपर सिर रखकर रोने लगी ॥ २ ॥ जब मैंने उस प्यारीसे पूछा कि तुम बहुत दुबली हो गई हो तो वह लजा गई। जब मैंने कहा कि तुम्हारे वस्त्र बहुत मैले हो गए हैं तो उसने सिर झुका लिया। फिर जब मैंने कहा कि बहुत दिनोंमें दिखाई पड़ी हो तो उसके घड़ेके समान ऊँचे-ऊँचे स्तन काँप उठे और रोकर मेरे गले लगकर जबतक प्रेमकी पदवीतक पहुँचे-पहुँचे तबतक तो वह हरिणके समान आँखोंवाली नवेली मेरे हृदय-रूपी मन्दिरमें लीन हो गई ॥ ३ ॥

खेलमें रूठनेपर नवेलीको मनाना : सिरसके फूलके समान कोमल अङ्गोंको व्यर्थ ही क्यों थकाए डाल रही हो? तुम्हारे मनचाहे फूल लानेवाला यह सेवक तो उपस्थित ही है ॥१॥ कहाँ तुम्हारा रूप इतना मनोहर और कोमल! फिर यह तुम्हारा चित्त सिरसके डण्ठलके समान क्यों इतना कठोर

भोगस्य रूपस्य मृदुनः कथम्। कठिनं खलु ते चेतः शिरीषस्येव बन्धनम् ॥ २ ॥ अपराधी नूनमहं प्रसीद रम्भोरु विरम संरम्भात्। सेव्यो जनश्च कुपितः कथं नु दासो निरपराधः ॥ ३ ॥ अपराधो मया कान्ते कृतो यदि त्वया मतः। निपात्य गिरिशृङ्गोच्चौ कुचौ किन्न निपीड्यते ॥ ४ ॥ अस्तं याति शशी शशाङ्कवदने मानं विमुञ्चाधुना किं मानेन मुधा नतभ्रु गगनाद्भ्रश्यन्त्यमूस्तारकाः। इत्थं त्वामनुशिक्षयन् क्षितितलादुन्नाम्य पादं शनैः क्षीणां वीक्ष्य निशां निसर्गसुभगं गायत्यसौ कुक्कुटः ॥ ५ ॥ आताम्रतामपनयामि विलक्ष एष लाक्षाकृतां चरणयोस्तव देवि मूर्ध्ना। कोपोपरागजनितां तु मुखेन्दुबिम्बे हर्तुं क्षमो यदि परं करुणा मयि स्यात् ॥ ६ ॥ इदं दूर्वाकाण्डद्युतिमुषि कपोले कतिपयैः श्रमाम्भोभिः कीर्णं सहजबकुलामोदसुभगम्। समाकाङ्क्षे ताम्राधरमनुमनुष्य प्रियतमे मनोज्ञं ते पातुं मुखकमलमाघ्रातुमथवा ॥ ७ ॥ इन्दीवरेण नयनं मुखमम्बुजेन कुन्देन दन्तमधरं नवपल्लवेन। अङ्गानि चम्पकदलैः स विधाय वेधाः कान्ते कथं घटितवानुपलेन चेतः ॥ ८ ॥ उत्तरङ्गय कुरङ्गलोचने लोचने कमलगर्वमोचने। अस्तु सुन्दरि कलिन्दनन्दिनीवीचिडम्बरगभीरमम्बरम् ॥ ९ ॥ उदञ्चय दृगञ्चलं चलतु चञ्चरीकोच्चयः प्रपञ्चय वचःसुधा श्रवणपालिमालिङ्गतु। भ्रुवं नटय नागरि त्यजतु मन्मथः कार्मुकं मुखं च कुरु सम्मुखं व्रजतु लाघवं चन्द्रमाः ॥ १० ॥ कठिनहृदये मुञ्च भ्रान्तिं व्यलीककथाश्रितां पिशुनवचनैर्दुःखं नेतुं न युक्तमिमं जनम्। किमिदमथवा सत्यं मुग्धे त्वया हि विनिश्चितं यदभिरुचितं तन्मे कृत्वा प्रिये सुखमास्यताम् ॥ ११ ॥ कपोले पत्राली करतलनिरोधेन मृदिता निपीतो निःश्वासैरयममृतहृद्योऽधररसः। मुहुः कण्ठे लग्नस्तरलयति बाष्पः स्तनतटं प्रियो मन्युर्जातस्तव निरनुरोधे न तु वयम् ॥ १२ ॥ कल्याणाङ्गरुचानुरक्तमनसा त्वं येन सम्प्रार्थ्यसे

हो गया है ? ॥२॥ हे केलेके खम्भेके समान जाँघोंवाली ! मान जाओ, क्रोध न करो। मैं सचमुच अपराधी हूँ। यदि स्वामी क्रोधित हो ही जायँ तो यह कैसे माना जा सकता है कि सेवक निरपराध है ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी ! यदि तुम समझती हो कि अपराध मेरा ही है तो पर्वतकी चोटीके समान ऊँचे-ऊँचे इन दोनों स्तनोंसे मुझे चपेट क्यों नहीं डालती ॥४॥ हे चन्द्रवदनी ! रात बीतती जानकर यह मुर्गा धरतासे एक पैर धीरेसे उठाकर सहज सुन्दर स्वरमें गाकर तुम्हें यह सीख दे रहा है कि चन्द्रमा अब डूब रहा है, अतः इस समय रूठना ठीक नहीं है। हे बाँकी भौंहावाली ! व्यर्थ रूठनेसे क्या लाभ है ? देखो, ये तारे भी आकाशसे गिरते चले जा रहे हैं ॥५॥ हे देवि ! यह लज्जित अभागा महावरसे रँगे हुए तुम्हारे लाल चरणोंकी ललाईको अपने सिरसे पोंछ रहा है। यदि इस दासपर तुम्हारी कृपा हो जाय तो चन्द्रमाके समान मुख-मण्डलपर क्रोधसे जो ललाई उत्पन्न हो गई है उसे भी दूर करनेमें यह सेवक समर्थ है ॥ ६ ॥ हे अत्यधिक प्यारी ! दूबकी शोभाको नीचा दिखानेवाले, पसीनेकी बूँदोंसे सजे हुए गालोंवाले और मौलसिरीके फूलोंकी स्वाभाविक सुगन्धमें बसे हुए लाल-लाल ओठोंवाले तुम्हारे सुन्दर मुखरूपी कमलको सर पीने या उसे सूँघनेके लिये मैं तरस रहा हूँ अतः तुम मुझे आज्ञा दे दो ॥ ७ ॥ हे सुन्दरी ! जिस ब्रह्माने नीले कमलसे तुम्हारी आँखें, लाल कमलसे मुख, कुंदकी कलियोंसे दाँत, नये कोमल पत्तोंसे ओठ और चम्पेकी पँखुड़ियोंसे तुम्हारे दूसरे अङ्ग बनाए, उसने तुम्हारा चित्त कैसे पत्थरसे बना डाला ? ॥ ८ ॥ हे मृगनयनी ! कमलोंका घमण्ड चूर करनेवाले अपने नेत्र तो खोल दो जिससे यह नीला आकाश बड़ी-बड़ी लहरोंवाली यमुनाके जलके समान जान पड़ने लगे ॥ ९ ॥ हे चतुर नवेली ! तनिक अपनी आँखें तो उठाओ, जिससे जान पड़े कि भौंरे डोल रहे हैं। अपने मुँहसे बोली तो निकालो, जिससे जान पड़े कि कानोंमें अमृत बरस रहा है। अपनी भौंहें तो चलाओ जिससे कामदेवके हाथका धनुष छूट पड़े और अपना मुख तो तनिक इधर घुमाओ जिससे यह चन्द्रमा भी तुम्हारे सामने पानी भरे ॥ १० ॥ हे कठोर हृदयवाली ! झूठी-झूठी बातें सुनकर मुझपर सन्देह न करो, चुगलखोरोंकी बातपर विश्वास करके मुझे साँसत न दो। हे सुन्दरी ! यदि तुमने निश्चय ही कर लिया हो कि ये बातें सत्य हैं तो तुम्हें जो दण्ड उचित जान पड़े वही मुझे देकर सुखी हो जाओ ॥ ११ ॥ हे प्रार्थना न माननेवाली ! तुमने हथेलीकी रगड़से गालोंपरके बेल-बूटे हटा दिए, अमृतके समान तुम्हारे मधुर अधरको तुम्हारी साँसें मलिन किए डाल रही हैं, बार-बार गलेमें लगकर बहते हुए आँसू तुम्हारा स्तन छू रहे हैं अतः जान पड़ता है कि तुम्हें ये ही (आँसू) प्यारे हैं, हम नहीं ॥१२॥ हे सुन्दर मुखवाली !

यस्यार्थे सुमुखि त्वया पुनरसुत्यागेऽपि सन्नह्यते। सोऽयं सुन्दरि पञ्चबाणविशिखव्यालोढदोरन्तरस्वैरोत्पीडितपीवरस्तनतटस्त्वद्दोर्लतापञ्जरे ॥ १३ ॥ किं कण्ठे शिथिलीकृतो भुजलतापाशः प्रमादान्मया निद्राच्छेदविवर्तनेष्वभिमुखी नाद्यापि सम्भाविता। अन्यस्त्रीजनसङ्कथालघुरहं स्वप्ने त्वया लक्षितो दोषं पश्यसि किं प्रिये परिजनोपालम्भयोग्ये मयि ॥ १४ ॥ किं ते निसर्गरुचिरौ चरणौ कराभ्यां संवाहयामि नयने च तवाञ्जनेन। किं रञ्जयामि किमु ते स्तनयोर्विचित्रां पत्रावलीं विरचयाम्यचिरेण तन्वि ॥ १५ ॥ किं त्वां भणामि विच्छेददारुणायासकारिणि। कामं कुरु वरारोहे देहि मे परिरम्भणम् ॥ १६ ॥ किं सुकुमासनमलं मयि सम्भ्रमेण नोत्थातुमित्थमुचितं मम तन्तुमध्ये। दृष्टिप्रसादविधिमात्रहृतो जनोऽयमत्यादरेण किमिति क्रियते विलक्षः ॥ १७ ॥ किं शीकरैः क्लमविमर्दिभिराद्रैवातं सञ्चालयामि नलिनीदलतालवृन्तम्। अङ्के विधाय चरणावुत पद्मताम्रौ संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते ॥ १८ ॥ किमपि किमपि शङ्के मङ्गलेभ्यो यदन्यद्विरमतु परिहासश्चण्डि पर्युत्सुकोऽस्मि। कलयसि कलितोऽहं वल्लभे देहि वाचं भ्रमति हृदयमन्तर्विह्वलं निर्दयासि ॥ १९ ॥ कृतेऽप्याज्ञाभङ्गे कथमिव मया ते प्रणतयो धृताः स्मित्वा हस्ते विसृजसि रुषं सुभ्रु बहुशः। प्रकोपः कोऽप्यन्यः पुनरयमसीमाद्य गुणितो वृथा यत्र स्निग्धाः प्रियसहचरीणामपि गिरः॥२०॥ कृतो दूरादेव स्मितमधुरमभ्युद्गमविधिः शिरस्याज्ञा न्यस्या प्रतिवचनमुच्चैः प्रणमितम्। न दृष्टेः शैथिल्यं मिलत इति चेतो दहति मे निगूढान्तःकोपा कठिनहृदये संवृतिरियम् ॥ २१ ॥ कोऽयं कोपविधिः प्रयच्छ करुणागर्भं वचो जायतां पीयूषद्रवदीर्धिकापरिमलैरामोदिनी मेदिनी। आस्तां वा स्पृहयालु

तुम्हारे अङ्गोंकी सुन्दरतापर मन ही मन लट्टू होकर जिसने तुम्हारी विनती की, जिसके लिये तुम प्राण देनेको भी तत्पर रहती हो, वही कामके बाणोंसे बिंधे हुए हृदयवाला और तुम्हारे बड़े-बड़े स्तनोंको दबानेवाला तुम्हारा प्यारा तुम्हारी भुजाओं-रूपी लताओंसे बँधा हुआ है ॥ १३ ॥ मैंने भूलसे गलेमें पड़ी हुई बाहुरूपी लताको ढीली क्यों कर दी, नींदमें करवट लेते समय मैंने अपनी ओर मुख किए हुए तुम्हारा आदर भी नहीं किया और तुमने स्वप्नमें दूसरी स्त्रीके विषयमें बोलनेसे मुझे तुच्छ समझ लिया। हे प्रिये! तुमने मुझमें ऐसे कौन-कौनसे दोष देखे जो सब लोगोंसे मुझे उलाहना दिलवा रही हो?॥ १४ ॥ हे सुन्दरी! कहो तो अपने दोनों हाथोंसे तुम्हारे सहज सुन्दर दोनों चरण दबाऊँ, कहो तुम्हारे नयनोंमें काजल आँज दूँ अथवा कहो तो तुम्हारे स्तनोंपर शीघ्र ही विचित्र बेलबूटे रच डालूँ ॥ १५ ॥ बिछोहके समय भयङ्कर साँसत देनेवाली हे सुन्दरी! मैं तुमसे क्या कहूँ। तुम जो चाहो सो करो किन्तु एक बार मेरे गले अवश्य लग जाओ ॥ १६ ॥ हे डोरेके समान पतली कमरवाली! मेरे आते ही घबराकर इस प्रकार पलँग छोड़ना और उठ खड़े होना दोनों ही ठीक नहीं है। क्योंकि जिसपर चितवन चलाकर तुमने कृपा करके उसे अपना लिया है उसे इतना अधिक आदर दिखाकर क्यों लज्जित किए डाल रही हो॥ १७ ॥ हाथीकी सूँड़के समान जाँघोंवाली हे नवेली! फुहारोंसे भरे हुए तथा थकावट मिटानेवाले कमलिनीके पत्तेके पङ्खेसे शीतल पवन डुलाऊँ या तुम्हें गोदीमें बैठाकर आनन्दपूर्वक तुम्हारे कमलके समान लाल-लाल पैर दबाऊँ?॥१८॥ हे क्रोध करनेवाली! मुझे बड़ी शङ्का हो रही है कि कहीं कुछ अनिष्ट न हो जाय, इसलिये अब यह हँसी बन्द कर दो। अब मैं बहुत घबरा उठा हूँ। अतः मेरे सन्तोषके लिये अब कुछ बोल ही दो क्योंकि मेरा हृदय अब विह्वल होकर चक्कर खाने लगा है। ओह! तुम सचमुच बड़ी निर्दय हो ॥ १९ ॥ हे सुन्दर भौंहोंवाली! मैंने तुम्हारी आज्ञाओंका इतना उल्लङ्घन किया तिसपर भी तुम जो प्रणाम करती जा रही हो और बार-बार हाथ पकड़नेपर भी मुस्कराकर क्रोध छिपाए जा रही हो, यह तुम्हारा असीम क्रोध बड़ा अनोखा ही जान पड़ रहा है कि सखियोंकी मधुर वाणीका भी तुमपर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है ॥ २० ॥ हे कठोर हृदयवाली! मेरे आते ही तुमने जो दूरसे ही मधुर मुस्कानके साथ मेरी अगवानी की, सिर झुकाकर मेरी आज्ञाएँ पालन कीं, बात-बातमें नम्रता दिखाई, देखते समय आँखें नहीं फेरीं और मुझसे मिलनेपर भी जो तुमने अपना क्रोध भीतर ही भीतर छिपाकर इस प्रकारका व्यवहार किया वह मेरे मनको जलाए डाल रहा है ॥२१॥ हे सुन्दरी! यह क्रोध करनेका तुम्हारा कौन-सा ढङ्ग है? मुँहसे कुछ कृपाभरे वचन तो कहो कि यह धरती अमृतकी बावड़ीसे निकलते हुए गन्धसे सुगन्धित-सी हो जाय। अच्छा, रहने दो, चावसे भरी चितवन फेरकर तुम जिसपर क्रोध करती हो उसकी

लोचनमिदं व्यावर्तयन्ती मुहुर्यस्मै कुप्यसि तस्य सुन्दरि तपोवृन्दानि वन्दामहे ॥२२॥ क्षीणः क्षीणोऽपि शशी भूयो भूयोऽभिवर्धते नित्यम् । विरम प्रसीद सुन्दरि यौवनमनिवर्ति यातं तु ॥ २३ ॥ क्षीणांशुः शशलाञ्छनः सखि पुनः क्षीणो न मानस्तव स्मेरं पद्मवनं मनागपि न ते स्मेरं मुखाम्भोरुहम् । पीतं श्रोत्रयुगेन षट्पदरुतं पीतं न ते जल्पितं रक्ता शक्रदिगङ्गना रविकरैर्नाद्यापि रक्तासि किम् ॥ २४ ॥ गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी सीदत इव प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव । प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम् ॥ २५ ॥ चक्षुर्जाड्यमपैतु मानिनि मुखं सन्दर्शय श्रोत्रयोः पीयूषस्रुतिसौख्यमस्तु मधुरां वाचं प्रिये व्याहर । तापः शाम्यतु मे प्रसादशिशिरां दृष्टिं शनैः पातय त्यक्त्वा दीर्घमभूतपूर्वमचिराद्रोषं सखीदोषजम् ॥ २६ ॥ चरणकमलदासस्त्वेष सङ्कल्पसङ्गे सुमुखि यदभिधत्से त्वं वलात्कारधूर्तम् । प्रसभविधृततर्पः पीडयाम्यात्मनैव द्विरद इव सरोजं पाणिमापाटलं ते ॥ २७ ॥ जाते केलिकलाकुते कमितरि व्यर्थानुनीतौ चिरान्माने म्लायति मन्मथे विकसति क्षीणे क्षपानेहसि । स्वप्नव्याजमुपेत्य तन्निपुणया निद्रान्ध्यसाचेष्टितं मानम्लानिरभून्न येन च नचाप्यासीद्रहःखण्डनम् ॥ २८ ॥ तरङ्गय दृशोऽङ्गने रचय वन्ध्यमिन्दीवरं क्षणं वपुरपावृणु स्पृशतु काञ्चनं कालिमा । स्फुटीकुरु रदच्छदं व्रजतु विद्रुमः श्वेततामुदञ्चय मुखं मनाग्भवतु लज्जितश्चन्द्रमाः ॥ २९ ॥ त्वयि निवद्धरतेः प्रियवादिनः प्रणयभङ्गपराङ्मुखचेतसः । कमपराधलवं मयि पश्यसि त्यजसि मानिनि दासजनं यतः ॥ ३० ॥ त्वामयमावद्धाञ्जलि दासजनस्तमिममर्थमर्थयते । स्वपिहि मया सह सुरतव्यतिकरखिन्नेव मा

तपस्याओंको ही मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २२ ॥ हे सुन्दरी ! चन्द्रमा तो पूरा क्षीण होकर फिर सदा बढ़ जाया करता है किन्तु वीता हुआ यौवन फिर हाथ नहीं आता इसलिये मान जाओ, क्रोध न करो ॥ २३ ॥ हे सखी ! चन्द्रमाकी किरणें चली गईं पर तुम्हारा क्रोध न गया, कमलके वन खिल गए पर तुम्हारा मुखकमल खिलकर न हँसा, कानोंमें भौंरोंकी गुञ्जार सुनाई पड़ गई पर तुम्हारी वोली न सुनाई पड़ी और सूर्यकी किरणोंसे पूर्व दिशा भी लाल हो उठी किन्तु तुम्हारे मुखपर प्रसन्नताकी लाली न छाई ॥ २४॥ हे चन्द्रमाके समान मुखवाली ! रात वीती जा रही है, चन्द्रमा मलिन पड़ गए, यह दीपक भी मानो नींदके वश होकर ऊँघ रहा है । क्रोधकी अन्तिम अवधि तुम्हें प्रणाम है (अर्थात् मैंने तुम्हारे पैर भी पड़े, फिर भी तुम क्रोध नहीं छोड़ रही हो) अतः हे रूठनेवाली ! जान पड़ता है कि कठोर स्तनोंके साथ रहते-रहते तुम्हारा हृदय भी कठोर हो गया है ॥ २५ ॥ हे रूठनेवाली ! तनिक अपना मुखड़ा तो दिखा दो, जिससे हमारी आँखें शीतल हो जायँ। हे प्रिये ! अपनी मधुर वाणी तो तनिक सुना दो जिससे कानोंको अमृत पीनेका सुख प्राप्त हो, मुझपर प्रसन्नतासे शीतल अपनी वे चितवनें धीरे-धीरे चला दो जिससे मेरे मनका सन्ताप दूर हो और सखियोंकी चुगलीसे मनमें चढ़ा हुआ वह विशाल क्रोध तो छोड़ दो जो पहले तुममें कभी भी नहीं देखा गया ॥ २६ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! तुम्हारे चाहने मात्रसे तुम्हारा साथ देनेवाला तुम्हारे चरणकमलका यह दास, जिसे तुम वलात्कार करनेवाला धूर्त्त कहती हो, अत्यधिक सन्तप्त होता हुआ तुम्हारे गुलावी हाथको उसी प्रकार अपने आप दवा रहा है जैसे हाथी कमलको पकड़ लेता है ॥ २७ ॥ रतिकी इच्छा करनेवाले प्रियतमके मना-मनाकर हार चुकनेपर वहुत देरके पश्चात् जब नवेलीका मान कुछ कम हुआ, कामदेवका वेग वढ़ने लगा और रातका विधाता चन्द्रमा क्षीण हो चला, उस समय उस चतुर नवेलीने स्वप्नका वहाना करके विछौनेपर इस प्रकार नींदकी वेसुधीमें प्रियतमकी ओर करवट वदल ली कि न तो सच्ची वात ही खुल पाई और न उसका मान ही टूट पाया ॥ २८ ॥ हे प्रिये ! तनिक चितवन चलाओ जिससे वे आँगनमें खिले हुए नीले कमलसी जान पड़ें, ओठोंपर तनिक मुस्कराहट-सी ले आओ जिससे वे उजले मूँगेके समान जान पड़ें, अपना शरीर तनिक उघाड़ दो जिससे तुम्हारे सामने सोना भी मलिन जान पड़े और तनिक अपना मुख उठा दो जिससे आकाश दो चन्द्रमावाला वन जाय ॥ २९ ॥ हे रूठनेवाली ! एकमात्र तुम्हींसे प्रेम करनेवाले, प्रिय वोलनेवाले और स्नेह टूट जानेके भयसे भयभीत मनवाले अपने इस सेवकमें क्या तुम अपराध देख रही हो जो इसे छोड़े दे रही हो ? ॥ ३० ॥ हाथ जोड़कर यह दास केवल इसीलिये तुम्हारी प्रार्थना कर रहा है कि सम्भोगके कारण थकी

मैवम् ॥ ३१ ॥ दयिते कठिनं चेत इत्युरोजौ तवेदृशौ । अथ लज्जयसे किं नु शिरीषमृदुलां तनुम् ॥ ३२ ॥ दाक्षिण्यं नाम विम्बोष्ठि नायकानां कुलव्रतम् । तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानिबन्धनाः ॥३३॥ धृष्टः किं पुरतोऽवरुध्य विहसन्गृह्णामि कण्ठे प्रियां किं वा चाटुशतप्रचण्डरचनाप्रीतां करिष्यामि ताम् । किं तिष्ठामि कृपाञ्जलिर्निपतितस्तस्याः पुरः पादयोः सत्यं सत्यमहो न वेद्म्यनुनयस्तस्याः कथं स्यादिति ॥३४॥ परिलुठति ललाटे भङ्गुरा भ्रूलता किं मदनजयपताकाविभ्रमं बिभ्रतीयम् । स्फुरति च किमकाण्डे चण्डि विम्बाधरोऽयं मृदुपवनविधूतोन्निद्रबन्धूकबन्धुः ॥३५॥ परिहर कृतातङ्के शङ्कां त्वया सततं घनस्तनजघनयाक्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि । विशति वितनोरन्यो धन्यो न कोऽपि ममान्तरं स्तनभरपरीरम्भारम्भे विधेहि विधेयताम् ॥ ३६ ॥ पादासक्ते सुचिरमिह ते वामता कैव कान्ते सन्मार्गस्थे प्रणयिनि जने कोपने कोऽपराधः । इत्थं तस्याः परिजनकथा कोपवेगोपशान्तौ वाष्पोद्भेदैस्तदनु सहसा न स्थितं न प्रयातम् ॥ ३७ ॥ पुरोदिगनुरागिणी तदपि नानुरागोदयः कृशोदरि निशा कृशा तदपि ते न मानः कृशः । प्रसन्नमिदमम्बरं तदपि न प्रसन्नं मनो ननाद चरणायुधस्तदपि मौनमालम्बसे ॥३८॥ प्रसादे वर्तस्व प्रकटय मुदं सन्त्यज रुषं प्रिये शुष्यन्त्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चतु वचः । निधानं सौख्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः ॥ ३९ ॥ प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति कोपे न घटते करिष्याम्येवं नो पुनरिति भवेदभ्युपगमः । न मे दोषोऽस्तीति त्वमिदमपि हि ज्ञास्यसि मृषा किमेतस्मिन्वक्तुं क्षममिति न वेद्मि प्रियतमे ॥४०॥ प्रहिणु रमणि मानं मौनमुन्मुच्य साचीकृतशिरसि ममास्मिन्नर्पयस्वाङ्घ्रियुग्मम् ।

हुई तुम मेरे साथ ही सोओ और ऐसा न करो, न करो, न करो ॥३१॥ हे प्रिये! तुम्हारा चित्त अत्यन्त कठोर है इसीलिये तुम्हारे स्तन भी ऐसे हैं। अतः इन्हें लगाकर तुम सिरसके समान अपनी देहको क्यों लजा रही हो? ॥ ३२ ॥ हे कुँदरूके समान ओठवाली! प्रेमियोंकी सज्जनता ही उनके कुलका व्रत है इसलिये हे बड़े बड़े नेत्रोंवाली! मेरे प्राण तुम्हारी ही आशाके सहारे टिके हुए हैं ॥ ३३ ॥ क्या मैं सामने ढिठाईसे मुस्कराकर जाती हुई अपनी प्यारीको गलबहियाँ देकर रोक लूँ या चिकनी-चुपड़ी बातें करके उसे प्रसन्न कर लूँ या हाथ जोड़कर उसके चरणोंपर गिर पड़ूँ? सचमुच मुझे सूझ नहीं पड़ रहा है कि उसे मनाऊँ तो कैसे मनाऊँ!॥ ३४ ॥ हे क्रोध करनेवाली! तुम्हारे माथेपर जो बाँकी भौंह-रूपी लता दिखाई दे रही है वह क्या कामदेवकी विजय-पताका बनकर शोभा दे रही है और इस असमयमें ही कुँदरूके समान तुम्हारा जो ओठ फरफरा रहा है वह क्या मन्द पवनके झोंकेसे खिले हुए बन्धूक (दोपहरिया फूल) का बन्धु सूर्य है?॥ ३५ ॥ हे मनमें भय उत्पन्न करनेवाली! शङ्का मत करो। बड़े-बड़े स्तन तथा भारी जघन (पेड़ू) वाली! तुम जब हमारे मनमें बैठी ही हो तो वहाँ दूसरेको स्थान कैसे मिल सकता है? कामदेवके अतिरिक्त ऐसा कौन धन्य व्यक्ति है जो हमारे हृदयमें प्रवेश पा सके। इसलिये अब ऐसा उपाय करो जिसमें मैं तुम्हारे स्तन अपनी छातीसे लगा सकूँ ॥३६॥ किसी नवेलीको सखियाँ समझा रही हैं: 'हे सुन्दरी! जब तुम्हारे प्रियतम इतनी देरसे तुम्हारे पैरोंपर लोट रहे हैं तब भी तुममें यह टेढ़ापन कैसा? हे क्रोध करनेवाली! जब प्रियतम अच्छे मार्गसे चल रहे हैं तब उनका अपराध ही क्या है?' ज्योंही सखियोंने इतना कहा कि उस नवेलीके नेत्रोंमें भरे हुए आँसू न तो रुक ही सके, न गिर ही सके ॥ ३७ ॥ हे दुबले शरीरवाली! पूर्व दिशा लाल हो गई किन्तु तुममें अभी प्रेमकी लाली न झलकी। रात समाप्त हुई जा रही है किन्तु तुम्हारा क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ। आकाश तो स्वच्छ हो गया किन्तु तुम्हारा मन प्रसन्न न हुआ और मुर्गा भी बोलने लगा किन्तु तुम अभी चुप्पी साधे बैठी हो ॥३८॥ हे प्यारी! मनसे सन्देह दूर करो, मान जाओ, क्रोध छोड़ दो, तुम्हारे क्रोधके कारण मेरे अङ्ग-अङ्ग सूखे जा रहे हैं। अब ऐसा करो कि उनपर तुम्हारी अमृतके समान बातें पड़ें, अपने सुखके भण्डार मुखको कुछ देर इधर घुमा लो। अरी पगली! बीता हुआ समयरूपी हरिण फिर लौटकर नहीं आनेवाला है ॥३९॥ प्यारी! मुझे सूझ नहीं पड़ रहा है कि इस समय क्या करूँ क्या न करूँ क्योंकि यदि यह कहता हूँ कि 'प्रसन्न हो जाओ' तो बिना क्रोधके ऐसा कहना उचित नहीं जान पड़ता। यह कहूँ कि 'फिर ऐसा न करूँगा' तो इसका अर्थ यह है कि मैंने अपनी भूल स्वीकार कर ली और यदि कहूँ कि 'मेरा कोई दोष नहीं' तो इसे तुम झूठ मानोगी ॥ ४० ॥ हे सुन्दरी! अपना मौन तोड़कर रूठना छोड़ दो और मेरे झुके हुए सिरपर अपनी दोनों

अयि सुमुखि मयूखाः पश्य पीयूषभानोर्वरुणनगरनारीनेत्रपात्रीभवन्ति ॥ ४१ ॥ भुग्नालकं स्मितपराजितचन्द्रलेखं दग्लीलया कुवलयश्रियमाददानम्। एतन्मुखं दिविपदामपि दुर्निरीक्ष्यं तन्वङ्गि मामिव मुधा किमधःकरोषि ॥ ४२ ॥ भ्रूभङ्गं न करोषि रोदिषि मुहुर्मुग्धेक्षणे केवलं नातिप्रस्फुरिताधरानवरतं निःश्वासमेवोज्झसि। वाचं नापि ददासि तिष्ठसि परं प्रध्यातनम्राननाः कोपस्ते स्तिमितोऽतिपोडयति मां गूढप्रहारोपमः ॥ ४३ ॥ भ्रूभङ्गैः क्रियते ललाटशशिनः कस्मात्कलङ्को मुधा वाताकम्पितबन्धुपुष्पसमतां नीतोऽधरः किं स्फुरन्। मध्यश्चाधिककम्पितस्तनभरेणायं पुनः खिद्यते कोपं मुञ्च तवैव चित्तहरणायैतन्मया क्रीडितम् ॥४४॥ मधुधारेव न मुञ्चसि मानिनि रुषापि माधुरीं सहजाम्। कृतमुखभङ्गापि रसं ददासि मम निम्नगा यथाम्भोधेः ॥ ४५ ॥ मयि ते पादपतिते किङ्करत्वमुपागते। प्रिये कामातुरः कोपं कान्ते कोऽन्योऽपनेष्यति ॥ ४६ ॥ माणिक्यैर्दशनश्रियं घटयता बिम्बाधरं विद्रुमैर्मुक्ताभिः स्मितमिन्द्रनीलशकलक्षोदैश्च केशोच्चयान्। इत्थं रत्नमयं विधातुमखिलं दुर्मेधसा वेधसा तेनैवावनताङ्गयष्टि विहितं वज्रेण चेतस्तव ॥ ४७ ॥ मानं मानिनि मुञ्च देवि दयिते मिथ्या वचः श्रूयते किं कोपो निजसेवके यदि वचः सत्यं त्वया गृह्यते। दोर्भ्यां बन्धनमाशु दन्तदलनं पीनस्तनास्फालनं दोषश्चेन्मम ते कटाक्षविशिखैः शस्त्रैः प्रहारं कुरु ॥ ४८ ॥ मा मा ससाध्वसमपेहि विलोलनेत्रे दासे जने किमिति सम्भ्रमकातरासि। किं युज्यते बत मया चिरकाङ्क्षितस्य मध्ये वराङ्गि परिरम्भसुखस्य भङ्गः ॥ ४९ ॥ मुखमिन्दुर्यथा पाणिः पल्लवेन समः प्रिये। वाचः सुधा इवोष्ठस्ते बिम्बतुल्यो मनोऽश्मवत् ॥ ५० ॥ मुग्धे मानिनि कोपरीतिरियती

लातें जमा दो क्योंकि हे सुमुखि ! देखो, चन्द्रमाकी अमृतमयी किरणें अब पश्चिमकी ओर ढली जा रही हैं जहाँ उनपर वरुणके नगरकी नवेलियोंकी चितवनें पड़ेंगी ॥ ४१ ॥ हे दुबली पतली देहवाली तथा बिखरे हुए बालोंवाली ! मन्द मुस्कराहटसे चन्द्रमाको जीतनेवाला, चञ्चल चितवनसे कोईंकी शोभाको नीचा दिखानेवाला और देवताओंको भी देखनेको न मिल सकनेवाला अपना यह मुख मेरे ही लिये क्यों व्यर्थमें नीचे किए हुई हो ! ॥ ४२ ॥ हे सुनयनी ! तुम अपनी बाँकी चितवनें चलानेके बदले उलटे बार-बार रोए जा रही हो, ओठ फड़कानेके बदले तुम केवल लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ रही हो, कुछ बोलने-चालनेके बदले अपना मुख-कमल फुलाए; और झुकाए बैठी हो। इस प्रकार तुम्हारा यह छिपा हुआ क्रोध भीतरी चोटके समान मुझे कचोटे डाल रहा है ॥ ४३ ॥ तुम्हारी बाँकी भौंहें तुम्हारे मस्तकरूपी चन्द्रमामें क्यों व्यर्थ ही कलङ्क बन रही हैं ? इस फड़कते हुए ओठको पवनसे हिलता हुआ जपाकुसुम क्यों बनाए डाल रही हो ? देखो, हिलते हुए स्तनोंके बोझसे तुम्हारी कमर दबी जा रही है। अतः क्रोध छोड़ दो। मैंने तो तुम्हारा मन बहलानेके लिये ही यह सब खिलवाड़ किया था ॥ ४४ ॥ हे मान करनेवाली ! क्रोधकी दशामें भी तुम अपनी स्वाभाविक मधुरता नहीं छोड़ती क्योंकि अपना मुँह घुमाकर भी तुम मुझे वैसे ही रस दे रही हो जैसे नदियाँ समुद्रको देती हैं ॥४५॥ हे सुन्दरी ! जब कि मैं कामान्ध होकर तुम्हारे पैरोंपर मत्था टेके हुए तुम्हारा दास बना पड़ा हूँ तब हे प्यारी ! और दूसरा कौन तुम्हारा क्रोध दूर करेगा ? (अर्थात् मेरे अतिरिक्त कोई और दूसरा तुझे नहीं मनावेगा) इसलिये प्रसन्न हो जाओ ॥ ४६ ॥ हे लचीले अङ्गोंवाली ! जिस ब्रह्माने तुम्हारे दाँतोंकी शोभा माणिक्यसे, कुँदरूके समान अधरको मूँगेसे, मुस्कानको मोतियोंसे और बालोंको इन्द्रनीलमणिके चूर्णसे बनाया उसी मूर्खने तुम्हें रत्नमयी बनानेके फेरमें तुम्हारा चित्त भी वज्र (हीरे) का बना दिया ॥ ४७ ॥ हे क्रोध करनेवाली ! क्रोध छोड़ दो। हे प्रिये ! तुमने जितनी बातें सुनी है सब झूठी है। अपने सेवकपर भी कहीं क्रोध किया जाता है ? फिर भी यदि तुम सुनी हुई बातोंको सच ही मानती हो तथा मुझे अपराधी ही समझ रही हो तो मुझे दंड देनेके मुझे अपनी बाँहोंसे जकड़ लो, दाँतोंसे काट लो, मोटे स्तनोंसे मसल डालो तथा अपनी चितवन-रूपी बाणोंसे मुझे बेध डालो ॥ ४८ ॥ हे चञ्चल नयनोंवाली ! मुझसे डरकर मुझे छोड़ो मत। मुझे देखकर इतना अधिक क्यों घबराई जा रही हो। हे सुन्दरी ! तुम्हें गले लगानेके जिस सुखके लिये मैं बहुत देरसे तरस रहा हूँ उसे बीचमें ही झटककर तोड़ डालना कहाँतक उचित है ? ॥४९॥ हे प्यारी ! तुम्हारा मुख भी चन्द्रमाके समान, हाथ भी कोमल किसलयके समान, बोली भी अमृतके समान, ओठ भी बिम्बा फलके समान है किन्तु चित्त पत्थरके समान है ॥५०॥ हे भोली भाली और क्रोध करनेवाली ! रूठ बैठनेका तुम्हारा यह ढङ्ग

युक्ता न तथ्यं त्विदं कान्ते किं त्वदुपेक्षिता मम तनुः शोभेत नेहाद्भुतम्। अन्यायो भवति च्छलस्य करणे दत्ते जनेऽन्यादृशं काहेति प्रतिरुद्धवागकरवं वाक्स्तम्भनं चुम्बनैः ॥ ५१ ॥ मुग्धे विधेहि मयि निर्दयदन्तदंशं दोर्वल्लिबन्धनिविडस्तनपीडनानि। चण्डि त्वमेव मुदमञ्चय पञ्चबाणचण्डालकाण्डदलनादसवः प्रयान्ति ॥ ५२ ॥ मुहुर्मुहुरवेक्षणं सरसमञ्जसा संस्तवः समुच्चलतरङ्गिणि प्रचुरनर्ममर्मस्पृहा। मुहुर्निविडनम्रता परिजनव्यपेक्षापि नो कुतः सुमुखि शिक्षिता कथय कोपरीतिस्त्वया ॥ ५३ ॥ मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते यो बाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः। तं तावदाकुटिलपक्ष्मविलग्नमद्य कान्ते प्रमृज्य विगतानुशयो भवामि ॥ ५४ ॥ यदिदमगणयित्वा दुर्वहं श्रोणिभारं मदभिसरणलोभात्प्रस्थितं पद्मताम्रम्। अयमहमभिवाञ्छाम्यप्रमृज्यैव पांसुं सुमुखि पदतलं ते चूडितुं चुम्बितुं च ॥ ५५ ॥ यदि प्रिये वेत्सि तव प्रभुं मामनन्यसाधारणदासमङ्घ्र्योः। तदद्य वक्षो मम पात्रमस्तु स्वयंग्रहाश्लेषमहोत्सवानाम् ॥ ५६ ॥ यद्गम्यं गुरुगौरवस्य सुहृदो यस्मिंल्लभन्तेऽन्तरं यद्दाक्षिण्यवशात्प्रसह्य सहते नर्मोपचारानपि। यल्लज्जा निरुणद्धि यत्र शपथैरुत्पाद्यते प्रत्ययस्तत्किं प्रेम स उच्यते परिचयस्तत्रापि कोपेन किम् ॥ ५७ ॥ लावण्यकान्तिपरिपूरितदिङ्मुखेऽस्मिन्स्मेरेऽधुना इव मुखे तरलायताक्षि। क्षोभं यदेति न मनागपि तेन मन्ये सुव्यक्तमेव जलराशिरयं पयोधिः ॥ ५८ ॥ विकिर धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि चक्षुः परिजनपथवर्तिन्यत्र किं सम्भ्रमेण। स्मितमधुरमुदारं देवि मामालपोच्चैः प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं त्वाम् ॥ ५९ ॥ वितरय कुचयोस्त्वद्दर्शनोपक्रमाणां मदनशररुजानां शान्तये मामकीनाम्। सकृदपिपरिरम्भं सुभ्रु दोर्मूलकूलंक-

---

ठीक नहीं है। हे प्यारी! सच तो यह है कि यदि तुम ठुकरा दोगी तो मेरे शरीरकी शोभाका क्या मूल्य रह जायगा। इसमें कुछ आश्चर्य न समझो। इसलिये यह सब छल जान छोड़े। ये तुमसे उल्टी-सीधी बातें कहीं किसने ? मैं तो यह सुनकर स्वयं अवाक् रह गया था। किन्तु लो, अब चुम्बनसे तुम्हारी भी वाणी बन्द किए दे रहा हूँ ॥ ५१ ॥ हे भोली भाली! चाहे मुझे निर्दयतापूर्वक अपने दाँतोंसे काट डालो, चाहे हाथ-रूपी लताके बन्धनमें मुझे कसकर स्तनोंसे मसल डालो। हे क्रोध करनेवाली! चाहे कुछ भी करो किन्तु अब शीघ्र ही प्रसन्न हो जाओ क्योंकि चाण्डाल कामदेवके तीखे बाणोंकी चोंटसे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥ ५२ ॥ हे चञ्चल चितवनवाली सुमुखी! बार-बार रसीली चितवनें चलाना, चटपट आवभगत करने लगना, अत्यन्त रसीली बातें चलानेका डौल ढूँढ़ना, बार-बार इतनी अधिक नम्रता दिखाते रहना और सखियोंकी भी कोई बात न सुनना, यह सब क्रोध करनेका निराला ढङ्ग तुमने सीख कहाँसे लिया है ? ॥ ५३ ॥ हे सुन्दरी! तुम्हारे ओठोंको कष्ट पहुँचानेवाली जो आँसूकी बूँदें मैंने मूर्खताके कारण ठुकरा दी थीं, आज बाँकी बरौनियोंमें उलझी हुई वे आँसूकी बूँदें पोंछकर उस पापका प्रायश्चित्त किए डाल रहा हूँ ॥ ५४ ॥ हे सुन्दर मुखवाली! मैं चाहता हूँ कि नितम्बके भारकी उपेक्षा करके मेरे पास सम्भोगके लोभसे आए हुए जो तुम्हारे पैर कमलके समान लाल हो गए हैं उन्हें बिना पोंछे ही धूलसहित अपने मस्तकपर चढ़ा लूँ और चूम लूँ ॥ ५५ ॥ हे प्यारी! यह तो मैं तभी समझूँ कि तुम मुझे अपने चरणोंका असाधारण दास समझती हो जब आज अपने आलिङ्गनके महोत्सवका आधार तुम मेरी छातीको बना लो ॥ ५६ ॥ जहाँ प्रेमी एक दूसरेसे अधिक सम्मान पानेके फेरमें रहते हों, जहाँ मित्रोंको भी समझाने-बुझानेकी आवश्यकता पड़ जाती हो, जहाँ हँसीकी बातमें भी यह कहा जाता हो कि 'मैंने अपनी सज्जनतासे इसे सहन कर लिया', जहाँ लाजकी रुकावट आती रहती है और जहाँ शपथ दिलाकर विश्वास कराया जाता है वह भी क्या प्रेम कहलाता है? नहीं, वह तो परिचय-मात्र होता है। ऐसे परिचयमें व्यर्थ आँखें लाल करनेसे क्या लाभ ? ॥५७॥ हे बड़ी-बड़ी रसीली आँखोंवाली! सलोनेपन और चमकसे भरे हुए इस पूर्व दिशाके समान मुखको देखकर भी जो ये पयोधि (स्तन, समुद्र) तनिक भी नहीं उछल रहे हैं, इससे तो मैं यही समझने लगा हूँ कि ये स्पष्ट ही जड़ (मूर्ख, पानीसे भरे) हैं ॥ ५८ ॥ हे देवी! मैं तो तुम्हारा सेवक हूँ, मुझसे क्यों घबराए जा रही हो, अपनी रसीली, अनीदार और कानतक फैली हुई आँखें तनिक इधर फेरकर मन्द मुस्कानसे भरी अपनी मधुर और उदार बातें तनिक ऊँचे स्वरसे तो कहो, यह मेरे दोनों हाथोंकी अंजलि तुम्हारी सेवा करनेके लिये प्रस्तुत है ॥५९॥ हे सुन्दर भौंहों-

पघनपरिणाहख्यातयोरेतयोस्ते ॥ ६० ॥ विराममेवानलयातितोपात्तथापि रोपारुणितेव दृष्टिः। निशापतिः श्लिष्यति पश्चिमाशामथे किमाशां विफलीकरोपि ॥ ६१ ॥ विसृज सुन्दरि सङ्गमसाध्वसं ननु चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे। परिगृहाण गते सहकारतां त्वमतिमुक्तलताचरितं मयि ॥६२॥ विहाय पूर्वामधुना वतायं निशापतिः श्लिष्यति पश्चिमाशाम्। अहं तु कान्ते त्वदधीनजीवस्तथाऽपि किं तेऽरुणिता दृगेपा ॥ ६३ ॥ व्यथयति वृथा मौनं तन्वि प्रपञ्चय पञ्चमं तरुणि मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः। सुमुखि विमुखीभावं तावद्विमुञ्च न वञ्चय स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे प्रियोऽहमुपस्थितः ॥ ६४ ॥ व्यावृत्तं खलु सर्वतो विषयतस्त्वय्येव लीनं मनो नित्यं च त्वदधीनमेव नियतं मज्जीवितं मानिनि। मत्वैवं मयि नूनमन्यविषया शङ्का त्वया त्यज्यतां किंवान्यत्र निशाकरोऽभिरमते मुक्त्वा चरां कौमुदीम् ॥ ६५ ॥ शशिमुखि तव भाति भङ्गुरभ्रूर्युवजनमोहकरालकालसर्पः। यदुदितभयभञ्जनाय यूनां त्वदधरसीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ॥ ६६ ॥ शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ रम्भागर्भनिभं तवोरुयुगलं बाहू मृणालोपमौ। इत्याह्लादकराखिलाङ्गि रभसान्निःशङ्कमालिङ्ग्य मामङ्गानि त्वमनङ्गतापविधुराण्येह्येहि निर्वापय ॥ ६७ ॥ सकृदपि समर्प्य बाले मम हस्ते मदनघर्मतप्तस्य। अपहरसे कुचकुम्भं तृषितकरादमृतकुम्भमिव ॥ ६८ ॥ सन्त्येवात्र गृहे गृहे युवतयस्ताः पृच्छ गत्वाधुना प्रेयांसः प्रणमन्ति किं तव पुनर्दासो यथा वर्तते। आत्मद्रोहिणि दुर्जनप्रलपितं कर्णे वृथा मा कृथाश्छिन्नस्नेहरसा भवन्ति पुरुषा दुःखानुवर्त्या यतः ॥ ६९ ॥ सरले साहसरागं परिहर रम्भोरु मुञ्च संरम्भम्। विरसं

वाली! तुम्हारे दर्शन पानेके लिये अनेक उपाय करनेवाले और अपने कामदेवके बाणोंसे बिंधे हुए मुझ प्रेमीकी तपन बुझानेके लिये उन दोनों स्तनोंका आलिङ्गन एक बार मुझे दे डालो जिनका घेरा कन्धोंतक पहुँच रहा है और जो कठोरता और विशालताके लिये प्रसिद्ध हैं ॥६०॥ यद्यपि तुम बड़े सन्तोपकी साँसें ले रही हो तथापि तुम्हारी दृष्टि क्रोधसे लाल है, देखो चन्द्रमा पश्चिम दिशाकी छातीसे लिपटा रहा है, अतः हे सुन्दरी! अब तुम्हीं क्यों मेरी आशा झकझोरे डाल रही हो! ॥६१॥ हे सुन्दरी! बहुत देरसे मुझ प्रेमीसे पहले-पहल मिल रही हो इसकी झिझक छोड़कर मुझसे वैसे ही आ लिपटो जैसे आमके वृक्षसे अतिमुक्ता नामकी लता लिपट जाती है ॥६२॥ देखो प्यारी! यह रातका स्वामी चन्द्रमा पूर्वको छोड़कर अब पश्चिम दिशारूपी नवेलीको गले लगा रहा है, अतः जिसका जीवन ही तुम्हारे हाथमें है उसपर यह तुम्हारी चितवन क्यों टेढ़ी हुई जा रही है? ॥ ६३ ॥ हे दुबले शरीरवाली! तुम्हारी यह चुप्पी व्यर्थ सताए डाल रही है। हे तरुणी! कोयल जैसी अपनी रसीली वाणी सुनाकर और मेरी ओर अपनी आँखें फेरकर मेरी तपन बुझाओ। हे सुन्दर मुखवाली! यों मुँह न मोड़ो। हे सुन्दरी! मैं अत्यन्त प्रेमाकुल होकर तुम्हारे सामने आया हूँ, मुझे धोखा न दो ॥ ६४ ॥ हे क्रोध करनेवाली! मेरा मन सभी विषयोंसे हटकर तुममें लीन हो गया है और अब यही समझो कि मेरा जीवन भी सब प्रकारसे सदा तुम्हारे ही हाथमें है। यह समझकर मेरे विषयमें किसी प्रकारकी कोई शङ्का मत करो। भला चन्द्रमाका मन क्या चाँदनीको छोड़कर किसी दूसरेमें लग सकता है? ॥६५॥ हे चन्द्रमुखी! तुम्हारी जो सुन्दर भौंहें युवकोंको डसनेके लिये भयङ्कर काले साँप हैं उनसे उत्पन्न हुए भयको दूर करनेके लिये तुम्हारा अधर-रसरूपी अमृत ही उनके लिये सिद्ध मन्त्र है ॥ ६६ ॥ तुम्हारा मुख चन्द्रमा है, आँखें कमल हैं, हाथ लाल कमल हैं, तुम्हारी दोनों जाँघें केलेके खम्भेकी गुद्दीके समान हैं और भुजाएँ कमलनालके समान हैं। इस प्रकार हे सम्पूर्ण सुखदाक अङ्गोंवाली! तुम शीघ्र ही बेखटके कामके सन्तापसे जले हुए मेरे अङ्गोंसे लिपट जाओ। आओ, आओ, मेरी तपन मिटाओ! ॥ ६७ ॥ हे बाले। कामदेवके तापसे तपे हुए मेरे हाथोंमें अपने स्तन-रूपी घड़े एक बार सौंपकर अब प्यासेके हाथसे अमृतका घड़ा ले लेनेके समान उन्हें क्यों छीने ले रही हो! ॥६८॥ यहाँ घर-घर नवेलियाँ हैं। उनसे जाकर पूछ लो कि क्या किसीका प्रियतम ऐसे प्रणाम कर-करके मनाता है जैसा मैं तुम्हारा दास मना रहा हूँ? हे अपनी ही बुराई करनेवाली! लबारोंकी झूठी बातोंपर मत कान किया करो क्योंकि प्रेमरूपी रस भङ्ग हो जानेपर पुरुष बड़ी कठिनाईसे सुलझते हैं (पुरुषोंको एक बार भड़काकर पुनः उन्हें फन्देमें लाना बड़ा कठिन है)

विरहायासं वोढुं तव चित्तमसहं मे ॥ ७० ॥ सुतनु जहिहि मौनं मुञ्च वाचो जडत्वं प्रणयिनि मयि कोपं किङ्करे किं करोषि। अथ यदि तव चित्ते सापराधोऽस्मि बाले निजभुजयुगवल्लीवन्धनं मां विधेहि ॥ ७१ ॥ सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते किमपि मनसः सम्मोहो मे तदा वलवानभूत्। प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥ ७२ ॥ सुभ्रु त्वं कुपितेत्यपास्तमशनं त्यक्ताः कथा योषितां दूरादेव मयोज्झिताः सुरभयः स्रग्गन्धधूपादयः। रागं रागिणि मुञ्च मय्यवनते दृष्टे प्रसीदाधुना सद्यस्त्वद्विरहे भवन्ति सुभगे सर्वा ममान्धा दिशः ॥ ७३ ॥ सुभ्रु त्वं नवनीतकल्पहृदया केनापि दुर्मन्त्रिणा मिथ्यैव प्रियकारिणा मधुमुखेनास्मासु चण्डीकृता। किंत्वेतद्विमृश क्षणं प्रणयिनामेणाक्षि कस्ते हितः किं धात्रीतनया वयं किमु सखी किं वा किमस्मत्सुहृत् ॥७४॥ सूर्येऽस्ताचलमौलिमालिनि गृहे दीपावलीशालिनि प्राणस्वामिनि मानिनि प्रतिपदं सत्कारमातन्वति। यन्मानं न जहासि कोपकलनादालोहितस्तत्क्षणादिन्दुः सुन्दरि पूर्वपर्वतशिरः सीमानमारोहति ॥७५॥ सोढुमलमस्मि नाहं सुन्दरि मन्दागमाद्विलम्बं ते। पञ्चशरास्त्रहतं मां सञ्जीवय चारुगात्रि परिरम्भैः ॥ ७६ ॥ स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रा तथापि द्युतिर्माधुर्यापि सती स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा वागियम्। निःश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिताः कोपस्ते प्रकटं प्रयत्नविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ॥ ७७ ॥

सख्यनुनयः—अङ्गुल्यग्रनखेन वाष्पसलिलं निक्षिप्य निक्षिप्य किं तूष्णीं रोदिषि कोपने बहुतरं फूत्कृत्य रोदिष्यसि। यस्यास्ते पिशुनोपदेशवचनैर्मानेऽतिभूमिं गते

॥ ६९ ॥ हे भोली-भाली ! केलेके खम्भेके समान जाँघोंवाली ! यह साहस और हड़बड़ी सब छोड़ दो क्योंकि मेरा चित्त तुम्हारा बिछोह ढोनेका नीरस परिश्रम नहीं कर सकता ॥ ७० ॥ हे सुन्दर देहवाली ! अपना मौन भङ्ग करके अपनी बँधी हुई वाणी तो खोलो। मुझ प्रेमी दासपर क्यों इतना रूठ गई हो ? हे नवेली ! यदि मैं तुम्हारी समझमें सचमुच अपराधी हूँ तो मुझे अपनी भुजा-रूपी लताके बन्धनोंसे कस क्यों नहीं लेती हो ॥ ७१ ॥ हे सुन्दर शरीरवाली ! मैंने भूलसे जो तुम्हारा निरादर कर दिया था, उस बातको हृदयसे निकाल डालो। उस समय मेरे मनमें अनजाने ही कुछ नासमझी आ गई थी। जिनमें तमोगुण अधिक होता है (जिन्हें कोई बात सूझ नहीं पड़ती) वे अच्छे कामोंमें प्रायः ऐसे ही व्यवहार किया करते हैं क्योंकि अन्धा पुरुष सिरपर पड़ी हुई मालाको भी साँप समझकर दूर फेंक देता है ॥ ७२ ॥ हे सुन्दर भौंहोंवाली ! तुमने क्रोध किया तो मैंने भी भोजन छोड़ दिया, स्त्रियोंकी चर्चा छोड़ दी, सुगन्धित माला, चन्दन, धूप आदि सब छोड़ दिया। हे राग (क्रोध, ललाई) रखनेवाली ! राग (क्रोध, ललाई) छोड़ दो, मुझ सेवकपर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाओ। हे प्यारी ! आज तुम्हारे बिछोहमें मेरे लिये सारी दिशाएँ अन्धकारसे भरी जान पड़ रही हैं ॥ ७३ ॥ हे सुन्दर भौंहोंवाली ! तुम्हारा हृदय मक्खनके समान कोमल है पर झूठे ही हितैषी बननेवाले तथा मीठी-मीठी बातें करनेवाले किसी उलटी सम्मति देनेवालेने तुम्हें मुझपर क्रोधित कर दिया है। किन्तु हे मृगनयनी ! तुम स्वयं भी तो सोच-विचार कर देख लो कि तुम्हारा सच्चा हितैषी कौन है—धायके लड़के, या सखियाँ, या मेरे मित्र या मैं ॥ ७४ ॥ हे क्रोध करनेवाली ! जब कि सूर्य अस्ताचलकी चोटीपर चले गए, घरोंमें दीवे जलने लगे और प्राणनाथ बार-बार तुम्हें मना रहे हैं तब भी जो तुम क्रोध नहीं छोड़ रही हो इसीलिये यह चन्द्रमा मानो क्रोधसे लाल होकर तुरन्त उदयाचलकी चोटीपर चढ़ा आ रहा है ॥ ७५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे धीरे-धीरे आनेका विलम्ब मुझसे नहीं सहा जा रहा है इसलिये हे सुन्दर शरीरवाली ! कामदेवके बाणसे बिंधे हुए मुझ दीनको गले लगकर जिला लो ॥ ७६ ॥ यद्यपि तुम्हारी चितवन रसीली है पर आँखोंमें ललाई झलक रही है, यद्यपि तुम्हारी गद्गद वाणीमें मधुरता है फिर भी वह लड़खड़ाकर निकल रही है और यद्यपि तुम साँसें रोके जा रही हो फिर भी स्तनोंके हिलनेसे वे स्पष्ट दिखाई दे रही हैं। इस प्रकार बड़े प्रयत्नसे दबाया हुआ तुम्हारा क्रोध भी स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है ॥ ७७ ॥

सखीकी प्रार्थना : हे क्रोध करनेवाली ! अपनी उँगलियोंके नखोंसे आँसू छिड़क-छिड़ककर क्यों सिसक रही हो ? लबारोंके बहकानेपर जब तुम्हारा क्रोध अत्यधिक बढ़ जायगा तब दुखी होकर तुम्हारा प्रियतम तुम्हें मनाना

निर्विण्णोऽनुनयं प्रति प्रियतमो मध्यस्थतामेष्यति ॥१॥ अञ्चति रजनिरुदञ्चति तिमिरमिदञ्चञ्चति मनोभूः। उक्तं न त्यज युक्तं विरचय रक्तं मनस्तस्मिन् ॥ २ ॥ अनालोच्य प्रेम्णः परिणतिमनादृत्य सुहृदस्त्वया-काण्डे मानः किमिति सरले सम्प्रति कृतः। समाकृष्टा ह्येते प्रलयदहनोद्भासुरशिखाः स्वहस्तेनाङ्गारास्तदलमधुनारण्यरुदितैः ॥ ३ ॥ अयेऽस्तमयते शशी नहि कृशीभवत्याग्रहो विनश्यति तमो हठं किमणुमप्यपास्ते मनः। सखि प्रकटितोऽरुणो न करुणोदयस्ते मनाक्प्रयाति खलु यामिनी न विमनीकुथा नायकम् ॥ ४ ॥ अरुणे च तरुणि नयने तव मलिनं च प्रियस्य मुखम्। मुखमानतञ्च सखि ते ज्वलितश्चास्यान्तरे स्मरज्वलनः ॥ ५ ॥ असद्वृत्तो नायं न च खलु गुणैरेष रहितः प्रियो मुक्ताहारस्तव चरणमूले निपतितः। गृहाणैनं मुग्धे व्रजतु निजकण्ठप्रणयितामुपायो नास्त्यन्यस्तव हृदयसन्तापशमने ॥ ६ ॥ आयातः कुमुदेश्वरो विजयते सर्वेश्वरो मारुतो भृङ्गः स्फूर्जति भैरवो न निकटं प्राणेश्वरो मुञ्चति। एते सिद्धरसाः प्रसूनविशिखो वैद्योऽनवद्योत्सवो मानव्याधिरयं कृशोदरि कथं त्वच्चेतसि स्थास्यति ॥ ७ ॥ कुपितासि यदा तन्वि निधाय करजक्षतम्। बधान भुजपाशाभ्यां कण्ठमस्य दृढं तदा ॥ ८ ॥ चपलहृदये किं स्वातन्त्र्यात्स्वयं गृहमागतश्चरणपतितः प्रेमार्द्रार्द्रः प्रियः समुपेक्षितः। तदिदमधुना यावज्जीवं निरस्तसुखोदया रुदितशरणा दुर्जातानां सहस्व रुषां फलम् ॥ ९ ॥ जहीहि कोपं दयितोऽनुगम्यतां पुरोऽनुशेते तव चञ्चलं मनः। इति प्रियं काञ्चिदुपैतुमिच्छतीं पुरानुनिन्ये निपुणः सखीजनः ॥ १० ॥ त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधासंवादि बिम्बाधरम्। अस्याङ्कं तदलङ्कुरु क्षणमिह भ्रूक्षेपलक्ष्मीलवक्रीते दासजनेऽपि सेवितपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः ॥ ११ ॥ नो तल्पं

भी छोड़ देगा और तब तुम्हें फूट-फूटकर रोना ही हाथ लगेगा ॥१॥ हे प्यारी! रात हो चली है, अँधेरा बढ़ चला है, कामदेव भी तुम्हें सताए डाल रहा है। ऐसी दशामें यही अच्छा है कि तुम अपनी बातपर अड़ी रहो और उसीमें रमी रहो ॥ २ ॥ हे सरल स्वभाववाली! प्रेमका परिणाम न सोचकर और सखियोंकी बात सुनी-अनसुनी करके यह तुमने कहाँसे असमयमें ही क्रोध ठान लिया है? ऐसा करके मानो तुम अपने हाथसे प्रलय कालकी लपलपाती हुई अग्निके अङ्गारे खींच रही हो। अब तुमसे कुछ भी कहना वैसे ही व्यर्थ है जैसे जङ्गलमें रोना ॥ ३ ॥ देखो! चन्द्रमा अस्त हो रहा है पर तुम्हारा दुराग्रह नहीं कम हो पा रहा है। अँधेरा मिटा जा रहा है किन्तु तुम्हारे मनका हठ तनिक भी नहीं मिट रहा है। हे प्यारी! लाली छा गई किन्तु तुमपर तनिक भी करुणा न छाई! इधर रात भी बीती जा रही है, इसलिये अब तो प्रियतमको न सताओ ॥ ४ ॥ हे तरुणी! तुम्हारी आँखें लाल हुई कि प्रियतमका मुख फीका पड़ा और ज्योंही तुम्हारा मुख झुका कि तत्काल उसके मनमें कामाग्नि धधकी ॥ ५ ॥ तुम्हारा यह मोतीका हार और भूला पति दोनों न तो दुराचारी ही है, न गुण (सूत, सुन्दरता आदि) से रहित ही हैं तिसपर भी वे दोनों तुम्हारे चरणोंमें पड़े हैं। अतः हे पगली! इन्हें उठाकर गले लगा लो क्योंकि तुम्हारे हृदयका ताप शान्त होनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥ ६ ॥ हे दुबली-पतली! कुमुदोंके स्वामी चन्द्रमा आ पहुँचे हैं, सबका स्वामी पवन बहने लगा है, खुलकर गूँजनेवाला भौंरा पास ही उड़ रहा है और प्राणनाथ भी पासमें ही हैं। जब ये सब सञ्जीवनी औषधियाँ और सिद्धहस्त वैद्यराज कामदेव तुम्हारे पास ही उपस्थित है तब बताओ तुम्हारा क्रोधरूपी रोग तुम्हारे चित्तमें टिक कैसे पावेगा? ॥ ७ ॥ हे दुबले शरीरवाली! यदि प्रियतमपर तुम्हें क्रोध है तो इसके शरीरपर अपने नख चला-चलाकर अपनी भुजाके बन्धनसे इसका गला कसकर जकड़ लो ॥ ८ ॥ हे चञ्चल हृदयवाली! स्वयं घरमें आए हुए, चरणोंपर पड़े हुए और प्रेमसे भरे हुए प्रियतमकी भला तुमने ऐंठमें आकर क्यों उपेक्षा की? अब जीवन भर दुखी होकर केवल आँसू बहाते हुए अपने निरर्थक क्रोधका फल भोगो ॥ ९ ॥ पतिके पास जानेकी चाहसे भरी किसी नवेलीको उसकी चतुर सखियाँ यह कहकर पहलेसे ही मना रही हैं कि 'क्रोध छोड़ दो, पतिको अनुकूल बना लो नहीं तो तुम्हारे चञ्चल मनमें अन्तमें पछतावा ही पछतावा रह जायगा' ॥१०॥ हे सखी! मनमें तुम्हें बसानेवाले इस प्रियतमको बहुत दुःख है तथा कामदेवने इसे अत्यधिक तपाया है इसलिये अब यह तुम्हारा अधरामृत पाना चाहता है तो कुछ देरतक इसकी गोदमें तो जा बैठो! तनिक-सी

भजसे न जल्पसि सुधाधारानुकारा गिरो दृक्पातं कुरुषे न वा परिजने कोपप्रकाशच्छलात्। इत्थं केतकगर्भगौरि दयिते कोपस्य सङ्गोपनं तत्स्यादेव न चेत्पुनः सहचरी कुर्वीत साचिस्मितम् ॥ १२ ॥ पादानते प्रणयपेशलवाचि कान्ते त्यक्तस्त्वया यदतिकोपनया न मन्युः। तीव्रानुतापगलितः स्वयमेव मन्ये निर्याति ते तदयमश्रुजलच्छलेन ॥ १३ ॥ पुरश्चक्षूरागस्तदनु मनसोऽनन्यपरता तनोर्म्लानिर्यस्य त्वयि समभवद्यत्र च तव। युवा सोऽयं प्रेयानिह सुवदने मुञ्च जडतां विधातुर्वैदग्ध्यं विलसतु सकामोऽस्तु मदनः ॥ १४ ॥ प्रकारो मानस्य प्रियसखि यदीदृक्क्वचिदपि श्रुतो वा दृष्टो वा कथयतु तदाऽयं परिजनः। प्रियं पादप्रान्तप्रणतमवधूय त्वमधुना वृतिच्छिद्रैः पश्यन्त्यपसर हसिष्यन्त्यसुहृदः ॥ १५ ॥ मानं मानिनि मुञ्च मानसभुवः साम्राज्यमुज्जृम्भतां हा हा गच्छति यामिनी न समयो यातः पुनः प्राप्यते। अत्यल्पागसि कल्पिताधिकमये कान्ते पदान्तानते कोऽयं कोकिलवाणि केलिसमये कोपस्त्वयालम्बितः ॥ १६ ॥ मुग्धे किं नखरैः क्षिपस्यविरतं नेत्राम्बु मानोन्नते पश्यैनं चरणाग्रनम्रशिरसं स्वं कान्तमात्ताञ्जलिम्। अग्रहे तव चेतसि प्रणयिनि प्राप्तेऽतिनिर्विण्णतामन्यासक्तमनस्युपेक्षितगता फूत्कृत्य रोदिष्यति ॥ १७ ॥ मुग्धे मानं न ते कर्तुं युक्तं प्राणाधिके प्रिये। धत्से मत्स्यी कियत्कालं जीवितं जीवनं विना ॥१८॥ मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते मानं धत्स्व धृतिं बधान ऋजुतां दूरीकुरु प्रेयसि। सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीतानना नीचैः शंस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति ॥ १९ ॥ यत्पादं प्रणतः प्रियः परुषया वाचा स निर्भर्त्सितो यत्सख्या न कृतं वचो जडतया

भौंहों चला देनेपर ही वशमें आ जानेवाले तथा चरणकमलकी सेवामें लगे हुए ऐसे सेवकपर भी यह क्रोध कैसा ? ॥ ११ ॥ हे केवड़ेकी कोमल पङ्खुड़ीके समान गोरी ! क्रोधका बहाना लेकर जो तुम बिछौनेकी ओर नहीं बढ़ रही हो, मुखसे अमृतधाराके समान बातें नहीं निकाल रही हो और अपनी सखियोंसे आँखें नहीं मिला रही हो, यह तुम्हारा बनावटी क्रोध भी छिप जाता यदि तुम्हारी सखी मुँह फेरकर हँस न पड़ती ॥ १२ ॥ तुम्हारे पैरोंपर पड़कर प्रेमसे चिकनी-चुपड़ी बातें करनेवाले प्रियतमपर भी जो तुमने अत्यधिक क्रोधी होनेके कारण क्रोध नहीं छोड़ा, वही क्रोध मेरी समझमें अत्यधिक तापसे गलकर आँसुओंके रूपमें स्वयं बाहर आ रहा है ॥ १३ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! तुम्हारे लिये पहले जिसकी आँखें लाल हो उठती हैं, फिर एकमात्र तुममें जिसका मन लीन होकर शरीर मलिन हो जाता है और जिसे देखकर तुम्हारी भी ऐसी ही दशा हो जाती है वही तुम्हारा प्यारा युवक यह आ पहुँचा है अतः अब तुम खिल उठो, ब्रह्माकी चतुराई फले-फूले और कामदेव भी सन्तुष्ट हो जाय ॥ १४ ॥ हे प्यारी सखी ! ये तुम्हारे आस-पास बैठे हुए लोग ही भला बता तो दें कि ऐसा रूठना भी कहीं किसीने देखा या सुना है कि प्रियतम तो तुम्हारे पैरोंपर गिरकर तुम्हें मनाते रहें और तुम उन्हें ठुकरा दो ! अब झटपट सरक जाओ यहाँसे, नहीं तो द्वारके झरोखोंसे वैरी देखेंगे और हँसेंगे ॥ १५ ॥ हे क्रोध करनेवाली ! रूठना छोड़ दो, कामदेवकी आज्ञा सिर-माथे चढ़ाओ, हाय ! हाय !! रात बीती जा रही है। बीता हुआ समय फिर हाथ नहीं आता, हे कोयलके समान बोलनेवाली ! पतिके तनिकसे अपराधको भी अत्यधिक समझकर अब पैर पड़नेवाले प्रियतमपर भी संभोगके समय तुममें यह क्रोध कहाँसे आ गया ! ॥ १६ ॥ हे भोली-भाली सखी ! बार-बार अपने नखोंसे क्यों आँसू छिड़के जा रही हो ? हे रूठनेवाली ! हाथ जोड़कर तुम्हारे पैरोंपर सिर झुकाए हुए प्रियतमको देखो। अब भी यदि तुम्हारा मन न पसीजा तो ऐसी दशामें खिन्न होकर यदि यह किसी दूसरी नवेलीपर रीझकर तुमसे मुख मोड़ लेगा तब तुम्हें जनमभर केवल फूट-फूटकर रोना ही हाथ लगेगा ॥ १७ ॥ अरी पगली ! प्राणोंसे भी अधिक प्यारे पतिपर क्रोध करना उचित नहीं है। भला, जलके बिना मछली कितनी देर जीवित रह सकती है ? ॥ १८ ॥ 'हे भोली-भाली ! अपनी सिधाईमें ही सारा समय व्यर्थ क्यों बिताए डाल रही हो ? कुछ रूठो, कुछ मनमें धीरज बाँधो और पतिपर ऐसा सरलताका व्यवहार छोड़ दो।' जैसे ही सखीने इस प्रकार समझाया, वैसे ही नवेलीके मुखमें भयके चिह्न दिखाई देने लगे और उसने इतना ही उत्तर दिया कि 'अरी धीरे कह ! नहीं तो मेरे मनमें बसे हुए प्राणनाथ सब बात सुन लेंगे' ॥ १९ ॥ पैरों पड़कर मनानेवाले प्रियतमको भी जो इसने कठोर स्वरसे फटकार दिया, मूर्खताके कारण सखीकी बातें भी जो

यन्मन्युरेको धृतः। पापस्यास्य फलं तदेतदधुना यच्चन्दनेन्दुद्युतिप्रालेयाम्बुसमीरपङ्कजबिसैर्गात्रं मुहुर्दह्यते ॥ २० ॥ यदि कुप्यसि नास्ति रतिः कोपेन विनाऽथवा कुतः कामः। कुप्य च कोपय च त्वं प्रसीद च त्वं प्रसादय च कान्तम् ॥ २१ ॥ रमणे चरणप्रान्ते प्रणतिप्रवणेऽधुना। वदामि सखि ते तत्त्वं कदाचिन्नोचिताः क्रुधः ॥ २२ ॥ लिखन्नास्ते भूमिं बहिरवनतः प्राणदयितो निराहाराः सख्यः सततरुदितोच्छूननयनाः। परित्यक्तं सर्वं हसितपठितं पञ्जरशुकैस्तवावस्था चेयं विसृज कठिने मानमधुना ॥२३॥ विमुञ्चामुं मानं सफलय वचस्साधु सुहृदां मुधा सन्तापेन ग्लपयसि किमङ्गं स्मरभुवा। प्रियं पादप्रान्तप्रणतमधुना मानय भृशं न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः ॥ २४ ॥ वियदलिमलिनाम्बुगर्भमेघं मधुकरकोकिलकूजितैर्दिशां श्रीः। धरणिरभिनवाङ्कुराङ्कटङ्का प्रणतिपरे दयिते प्रसीद मुग्धे ॥ २५ ॥ सभयचकितं विन्यस्यन्तीं दृशं तिमिरे पथि प्रतितरु मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम्। कथमपि रहःप्राप्तामङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिः सुमुखि सुभगः स त्वां पश्यन्नुपैतु कृतार्थताम् ॥ २६ ॥ स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्रागिणि द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्प्रिये। तन्मुग्धे विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चा विषं शीतांशुस्तपनो हिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः ॥ २७ ॥ स्मेरराजीवनयने नयने किं निमीलिते। पश्य निर्जितकन्दर्पं कन्दर्पवशगं प्रियम् ॥ २८ ॥

कलहान्तरिताप्रलापाख्यानम्— अकरोः किमु नेत्रशोणिमानं किमकार्षीः करपल्लवावरोधम्। कलहं किमधाः क्रुधा खलज्ञे हितमर्थं न विदन्ति दैवदग्धाः ॥ १ ॥ अद्यारभ्य यदि प्रिये पुनरहं मानस्य चान्यस्य

इसने नहीं मानीं और हठ करके जो यह क्रोध ही किए रही उसी पापका यह फल है कि चन्दन, चाँदनी, पालेका जल, पवन, कमल और कमलनालसे भी इसका शरीर सदा भुनता रहता है ॥२०॥ हे सखी! यदि क्रोध कर रही हो तो फिर प्रेम कहाँ और विना क्रोधके काम कैसा! इसलिये तुम स्वयं भी क्रोध करो तथा अपने पतिदेवसे भी क्रोध कराओ और फिर स्वयं प्रसन्न होकर उन्हें भी प्रसन्न करो ॥ २१ ॥ हे सखी! मैं तुमसे यह तत्त्वकी बात बताए देती हूँ कि जब प्रियतम प्रणाम करनेके लिये चरणोंपर पड़ें उस समय क्रोध भुला देना चाहिए ॥ २२ ॥ हे कठोर हृदयवाली! तुम्हारे प्रियतम बाहर सिर झुकाए हुए धरती कुरेद रहे हैं, सदा रोते रहनेसे फूली आँखोंवाली सखियाँ उपवास कर रही हैं और पिंजड़ेमें पड़े हुए सुग्गोंने हँसना-बोलना छोड़ दिया है, फिर भी तुम्हारी यह दशा है! अरे अब तो क्रोध छोड़ दो ॥ २३ ॥ अरी पगली! यह रूठना छोड़ो और सखियोंकी बातें मान लो। व्यर्थ ही कामके सन्तापसे क्यों अपने अङ्ग सुखाए डाल रही हो? अब झटसे पैरोंपर पड़कर मनाते हुए प्रियतमको भलीभाँति मना लो क्योंकि गया हुआ समयरूपी हरिण फिर हाथ नहीं आता ॥ २४ ॥ अरी पगली! काले-काले भौंरोंके समान इन जलसे भरे हुए बादलोंसे आकाश घिरा हुआ है, भौंरे तथा कोयलकी ध्वनिसे दिशाएँ मनभावनी हो रही हैं और निकलते हुए नये अङ्कुरोंसे धरती हरी हो गई है, इसलिये प्रणाम करते हुए प्रियतमपर प्रसन्न हो जाओ ॥ २५ ॥ हे सुन्दर मुखवाली! अँधेरेमें डरके कारण घबराहटसे भरी हुई आँखें इधर-उधर नचानेवाली और मार्गमें वृक्षोंके सामने बार-बार खड़ी होकर धीरे-धीरे पैर रखनेवाली तुझ नवेलीको किसी प्रकार एकान्तमें पाकर अपने कामसे तपे हुए अङ्गोंसे तुझे लिपटाता हुआ तेरा प्रियतम कृतार्थ हो जाय ॥ २६ ॥ तुम जो उस प्रेमी प्रियतमपर कठोरता दिखा रही हो, उसके प्रणाम करनेपर भी पसीज नहीं रही हो, उसके अनुराग करनेपर भी उसपर तुनकती जा रही हो और उसके सम्मुख होते ही मुख फेरकर उलटा काम कर रही हो इसलिये यदि तुम्हारे लिये चन्दनका लेप भी विषके समान हो जाय, चन्द्रमा भी सूर्य बन जाय, पाला आग बन जाय और खेलकी प्रसन्नता भी विपत्ति बन जाय तो उचित ही है ॥२७॥ हे खिले हुए कमलके समान नेत्रोंवाली! तुमने आँखें क्यों मूँद रक्खी हैं? अपने उस प्रियतमको देखो जो कामको जीतकर भी इस समय कामके वशमें हो रहा है ॥ २८ ॥

लड़कर बैठी हुई नवेलीका रोना-कलपना : हे सखी! उस समय क्रोध करके पतिसे लड़कर तुमने अपनी आँखें क्यों लाल कर लीं और जब वे तुम्हें छू रहे थे उस समय उनके हाथ क्यों रोक लिए थे? हे प्रेमका ढंग जाननेवाली! सचमुच अभागे लोग अपने हितकी बातें तनिक नहीं समझते ॥ १ ॥ हे सखी! तुम्हारे

वा गृह्णीयां शठ दुर्नयेन मनसा नामापि संक्षोभतः। तस्तेनैव विना शशाङ्ककिरणस्पष्टाट्टहासा निशा एको वा दिवसः पयोदमलिनो भूयान्मम प्रावृषि ॥ २ ॥ इदं कृष्णं कृष्णं प्रियतम ननु श्वेतमथ किं गमिष्यामो यामो भवतु गमनेनाथ भवतु। पुरा येनैवं मे चिरमनुसृता चित्तपदवी स एवान्यो जातः सखि परिचिताः कस्य पुरुषा ॥ ३ ॥ उपचारानुनयास्ते कितवस्योपेक्षिताः सखीवचसा। अधुना निष्ठुरमपि यदि स वदति कलिकैतवाद्यामि ॥ ४ ॥ एषा दोषा यथाऽर्था प्रियतम भवतो हन्त जाता वियोगे स्त्रीहत्यापातकीति प्रथितिमुपगते लाञ्छनोति त्रिलोक्याम्। नैवं भूयोऽपराधं वत दयित कदाऽप्याचरिष्यामि सत्यं त्वत्यक्तां मां सुतिग्मैर्मनसिजशमनः सायकैर्हन्तुमुत्कः ॥ ५ ॥ कथमपि सखि क्रीडाकोपाद्व्रजेति मयोदिते कठिनहृदयस्त्यक्त्वा शय्यां बलाद्गत एव सः। इति सरभसध्वस्तप्रेम्णि व्यपेतघृणे स्पृहां पुनरपि हतव्रीडं चेतः करोति करोमि किम् ॥ ६ ॥ केकाभिः कलयन्तु केकिनिवहाः सम्भूय कर्णज्वरं विद्युद्भिः सह भीषयन्तु परितः पाथोधराणां घटाः। पञ्चेषुर्वधिरीकरोतु ककुभः सर्वाः शराणां रवैर्नाहं दग्धदुरन्तजीवनकृते कस्यापि वश्या सखि ॥ ७ ॥ जीवितनाथेन तदा बहुशोऽनुनयो व्यधायि हा हन्त। रोषविमूढा सशपथमथाप्यहं तं निराकार्षम् ॥ ८ ॥ तद्वक्त्राभिमुखं मुखं विनमितं दृष्टिः कृता पादयोस्तस्यालापकुतूहलाकुलतरे श्रोत्रे निरुद्धे मया। पाणिभ्यां च तिरस्कृतः सपुलकः स्वेदोद्गमो गण्डयोः सख्यः किं करवाणि यान्ति शतशो यत्कञ्चुके सन्धयः ॥ ९ ॥ पदोपान्ते कान्ते लुठति तमनादृत्य भवनान्मया निष्क्रामन्त्या सखि किमपि नालोचितमभूत्। अयं श्रोणीभारः स्तनयुगमिमौ निर्भरगुरू तदानीमेताभ्यां कथमिव विलम्बो न विहितः ॥ १० ॥ प्रयाहि तत्रैव ययानुरज्यसे किमत्र निस्त्रिंश तव प्रयोजनम्। न कञ्चुकग्रन्थिमपाकुरुष्व

सामने मैं यह कह रही हूँ कि मूर्खता तथा मनकी चञ्चलताके कारण यदि मैं आजसे अपने प्रियतमके विषयमें क्रोध या इस प्रकारकी दूसरी बातोंका नाम भी लूँ तो मेरी यह दशा हो कि चन्द्रमाकी किरणोंके प्रकाशसे उजली रातें तथा वर्षामें घिरे हुए बादलोंके अन्धकारसे भरे हुए दिन उनके बिना ही बीतें ॥ २ ॥ पहले जब मैं कहती थी—'उजला है' तो वे वे कहते थे—'हाँ'। मैं कहती थी—'जाऊँगी' तो वे कहते थे—'चल रहा हूँ'। मैं कहती थी—'क्या कीजिएगा चलकर' तो वे कहते थे—'ठीक है जाने दो' इस प्रकार जो पहले मेरे कहेमें चलता था आज वही पराया बन गया। हे सखी! पुरुष कभी किसीसे सच्चा प्रेम नहीं करते ॥ ३ ॥ सखियोंकी बातपर और उस धूर्त्त प्रियके बनावटी अनुनय-विनयपर उस समय मैंने ध्यान नहीं दिया किन्तु इस समय यदि वह रूखी बातें भी करे तो भी झगड़ा करनेके ही बहाने मैं वहाँ चली जाऊँगी ॥४॥ हे प्रियतम! जब कि तीनों लोकोंमें आपके वियोगका यह अपयश फैल रहा है कि 'यह स्त्रीकी हत्या करनेवाला पापी है और दोषी है' उस समय यह दोषा (रात, दोषोंसे भरी) भी अपने सच्चे अर्थवाली हो गई है। हे प्रियतम! मैं सत्य कहती हूँ कि अब ऐसा अपराध कभी भी नहीं करूँगी क्योंकि जब आप मुझे छोड़ देते हैं तो कामदेव मुझे अपने तीखे बाणोंसे बेधनेके लिए झट आ डटता है ॥५॥ हे सखी! खेलमें क्रोधसे जब मैंने कहा 'जाओ' तो वह कठोर हृदयवाला बिछौना छोड़कर हठ करके चला गया। उसका सारा प्रेम जाता रहा, उसमें तनिक भी दया नहीं रह गई, फिर भी यह निगोड़ा मन उसीके पीछे पागल रहता है बताओ क्या करूँ? ॥ ६ ॥ हे सखी! चाहे संसारके सारे मोर इकट्ठे होकर अपनी बोली बोल-बोलकर मेरे कान फाड़ डालें, चाहे बादलके झुण्डके झुण्ड घिर-घिरकर बिजली चमका-चमकाकर मुझे डरावें और चाहे कामदेव अपने बाणोंकी गूँजसे सब दिशाएँ बहरी कर दे, पर मैं इस क्षुद्र तथा चञ्चल जीवनके लिये किसीके आगे माथा नहीं रगड़ूँगी ॥ ७ ॥ हाय! कैसे दुःखकी बात है कि प्राणनाथने लो सौगन्ध खा-खाकर अनेक प्रकारसे मुझे मनाया किन्तु क्रोधमें मेरी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो गई कि इतनेपर भी मैंने उन्हें फटकार दिया ॥८॥ हे सखियो! ज्यों ही वे मेरे सामने आए मैंने अपना सिर झुका लिया, आँखें पैरों गड़ा लीं, उसकी बातें सुननेको उतावले कान ढक लिए और उठे हुए रोंगटोंके साथ गालोंपर छाया हुआ पसीना भी हाथसे पोंछ लिया, पर मेरी चोलीमें जो ये सैकड़ों छेद हुए जा रहे हैं इनका मैं क्या उपाय करूँ? ॥ ९ ॥ हे सखी! जिस समय प्रियतम पैरोंपर लोट रहे थे उस समय उनका अनादर करके घरसे बाहर निकलते समय मुझे कुछ भी नहीं दिखाई दिया और ये इतने भारी नितम्ब तथा मोटे-मोटे स्तनोंने भी उस समय तनिक-सी बाधा न पहुँचाई

मे कथं हृदि ग्रन्थिमपाकरिष्यसि ॥ ११ ॥ भर्तुर्यस्य कृते गुरुर्लघुरभूद्द्रोष्ठी कनिष्ठीकृता धैर्यं कोपधनं गतं सहचरी नीतिः कृता दूरतः। निर्मुक्ता तृणवत्त्रपा परिचिता स्रोतस्विनी विन्दुवत्स क्रोधादवधीरितो हतधिया मातर्वलीयान्विधिः ॥ १२ ॥ मया तावद्गोत्रस्खलितहतकोपान्तरितया न रुद्धो निर्गच्छन्नयमतिविलक्षः प्रियतमः। अयं त्वाकूतज्ञः परिणतिपरामर्शकुशलः सखीलोकोऽप्यासील्लिखित इव चित्रेण किमिदम् ॥ १३ ॥ मानव्याधिनिपीडिताहमधुना शक्नोमि तस्यान्तिकं नो गन्तुं न सखीजनोऽपि चतुरो यो मां बलान्नेष्यति। मानी सोऽपि जनो न लाघवभयादभ्येति मातः स्वयं कालो याति चलं च जीवितमिदं क्षुण्णं मनश्चिन्तया ॥ १४ ॥ मानोन्नतेत्यसहनेत्यतिपण्डितेति मय्येव धिक्कृतिरनेकमुखी सखीनाम्। दाक्षिण्यमात्रमसृणेन विचेष्टितेन धूर्तस्य तस्य हि गुणाननुपवर्णयन्ति ॥ १५ ॥ यत्पङ्केरुहलक्ष्म पाणिकमलं भाग्यालये यद्गुरुर्न्यस्तं वा मम यल्ललाटफलके भाग्याक्षरं वेधसा। तत्सर्वं सखि यो यथार्थमकरोत्तस्मिन्मकोपः कृतो धिङ्मां धिङ्मम जीवितं धिगतनुं धिक्चेष्टितं धिग्वयः ॥ १६ ॥ स्फुरसि बाहुलते किमनर्थकं त्वमपि लोचनभावमहो गता। तमहमागतमप्यपराधिनं न परिरब्धुमलं न च वीक्षितुम् ॥ १७ ॥ हन्त पुरो यो निकृतः स पुनः सुभगः कथं समायायात्। कुमुदिन्यो ननु सुलभा दुर्लभ एकः सुधासिन्धुः ॥ १८ ॥

नायकानुनयः— घनघनमपि दृष्टं व्योम वातो मरुत्वाञ्छिखिकुलकलवाचां श्रोत्रमासीन्निवासः। असुसम न मृताहं त्वद्वियोगेऽपि जाते तव घनपरिरम्भप्रार्थनाशावशेन ॥ १ ॥ त्वं तावद्बहुवल्लभो नवयुवा कान्तः सुखी निर्घृणो नो जानासि परव्यथां शठमते नैवासि दुःखी यतः। किं त्वन्याः परिपृच्छ मन्मथ-

---

॥ १० ॥ हे निर्दयी ! जिसे तुम चाहते हो उसीके पास जाओ न ! यहाँ तुम्हारा क्या काम है ? तुम मेरी चोलीकी गाँठ भले ही खोल दो किन्तु मेरे हृदयमें पड़ी हुई गाँठ कैसे खोल पाओगे ? ॥ ११ ॥ जिस प्रेमीके लिये मैंने अपने घरके बड़े-बूढ़ोंकी बात न मानी, समाजको भी कुछ नहीं समझा, अपना धीरज-रूपी धन भी खो दिया, सखियोंकी बातें भी सुनी-अनसुनी कर दीं, लाज भी तिनकेके समान दूर फेंक डाली और नदियोंको भी बूँदके समान कुछ न समझकर लाँघ डाला उस प्रियतमको भी मैंने अपनी मूर्खतासे रुष्ट कर दिया। सचमुच माँ ! सब बातोंमें भाग्य ही बड़ा प्रबल होता है ॥१२॥ प्रियतमने ज्यों ही दूसरी नवेलीका नाम लिया त्यों ही मुझे तो इतना क्रोध आ गया कि मैं रूठकर चले जाते हुए अति सुन्दर प्रियतमको न लौटा पाई किन्तु मेरे मनकी बात समझनेवाली तथा समझाने-बुझानेमें चतुर सखियाँ क्यों चित्र लिखी-सी खड़ी ताकती रह गईं ॥१३॥ हे माता ! मैं इस समय क्रोधरूपी रोगसे इतनी जली हुई हूँ कि उसके पास नहीं जा सकती। मेरी सखियाँ भी कोई ऐसी चतुर नहीं हैं कि जो मुझे हठ करके खींचकर उसके पास ले जा पहुँचावें। वह अभिमानी भी अपनी क्षुद्रताके डरसे स्वयं यहाँ आवेगा नहीं। समय भी बीतता जा रहा है। जीवनका कोई ठिकाना नहीं। यही सब सोच-सोचकर मैं चिन्तासे घुली जा रही हूँ ॥ १४ ॥ ये सखियाँ मेरा ही दोष बता-बताकर मुझे कहती हैं कि मैं दिन-रात रूठती ही रहती हूँ, किसीकी एक बात नहीं सहती और अपनेको बड़ा बुद्धिमान समझती हूँ, उधर वह धूर्त ऐसी चतुराईकी बात करता है कि ये सखियाँ उसे ही अच्छा समझकर उसीके गुन बखाना करती हैं ॥ १५ ॥ हे सखी ! जिसने मेरे हाथमें बनी हुई कमलकी रेखा, भाग्यके स्थानमें बैठे हुए बृहस्पति और मस्तकमें लिखे हुए विधनाके लेखको सच्चा कर दिखाया उस प्यारेको भी जब मैंने रुष्ट कर दिया तो मुझे, मेरे जीवनको, कामदेवको, मेरी करनीको और मेरी इस अवस्थाको सौसौ बार-धिक्कार है ॥ १६ ॥ हे मेरी बाँई बाँह ! तू भी मेरी बाँई आँखके समान व्यर्थ क्यों फड़क रही है ? मैं बताए देती हूँ कि यदि वह अपराधी प्रियतम आ भी गया तो न मैं उसे गले लगाऊँगी और न मैं उसकी ओर आँख उठाकर देखूँगी ॥ १७ ॥ हाय ! जो पहले रूठकर चले गए थे वे प्रियतम फिर कैसे बुलाए जायँ ! कोई तो ढेर-सी मिला सकती हैं, किन्तु अमृतका समुद्र कहाँ मिलता है ॥ १८ ॥

प्रियतमसे प्रार्थना : हे प्राणप्यारे ! मैंने बादलोंसे घिरे हुए आकाशको देखा, बहते हुए पवनका स्पर्श किया और कानोंसे भौंरोंकी मधुर कूक सुनी, पर इतना सब होनेपर भी मैंने तुम्हारे वियोगमें इसी आशासे प्राण नहीं छोड़े कि किसी न किसी दिन तो तुम्हें गलेसे लगा ही पाऊँगी ॥ १ ॥ अरे धूर्त प्रियतम ! मैं जानती हूँ कि तुमपर बहुत-सी नवेलियाँ प्राण देती हैं, अभी तुम्हारी नई जवानी है, तुम सुन्दर हो, सुखी हो, पर हो

शरैः पीडामसह्यामिमां त्राता नो भव येन सज्जनजनैः कापालिको नोच्यसे ॥२॥ मयि मलयसमीरो वर्षतीव स्फुलिङ्गानहह हिमकरो मामग्निना सिञ्चतीव। किमिति मकरकेतोः किं नु वदये कठोरे कथमपि तदहं ते नाथ नोपेक्षणीया ॥ ३ ॥ मुक्तो मानपरिग्रहः सह सखीसार्थेन तन्मन्त्रिणा शक्ता त्वच्चरणप्रसादरहिता नाहं क्षणं प्राणितुम्। पश्य त्वं सुकृशं शरीरकमिदं यां यामवस्थां गतं सैषाहं तव पादयोर्निपतिता नाथ प्रसीदाधुना ॥ ४ ॥

नायकयोरुक्तप्रत्युक्तयः—अकरवमधिमौलि पादपद्मावपनय मानिनि मानितामकाण्डे। यदि पररमणीं गतस्तदाऽथ स्तनयुगलिङ्गयुगं स्पृशामि तन्वि ॥ १ ॥ अज्ञानेन पराङ्मुखीं परिभवादाश्लिष्य मां दुःखितां किं लब्धं चटुल त्वयेह नयता सौभाग्यमेतां दशाम्। पश्यैतद्दयिताकुचव्यतिकरोन्मृष्टाङ्गरागारुणं वक्षस्ते मलतैलपङ्कशबलैर्वेणीपदैरङ्कितम् ॥ २ ॥ अर्धोक्ते भयमागतोऽसि किमिदं कण्ठश्च किं गद्गदश्चाटोरस्य न च क्षणोऽयमनुपक्षिप्तेयमास्तां कथा। ब्रूहि प्रस्तुतमस्तु सम्प्रति मत्कर्णौ सखीनां मुखैस्तृप्तिनिर्भरमेभिरक्षरपदैः प्रागेव मे सम्भृता ॥ ३ ॥ एवं यथाह भवती मम सर्वदोषाः कः स्वामिना कुवलयाक्षि सहानुबन्धः। एषोऽञ्जलिर्विरचितः कुरु निग्रहं मे दासेऽपराधवति कोऽवसरः क्षमायाः ॥ ४ ॥ कामस्यापि शराहतिर्न गणिता त्वं जीवनं संस्मृता नो दग्धो विरहानलेन झटिति त्वत्सङ्गमाशामृतैः। नीतोऽयं दिवसो विचित्रलिखितैस्सङ्कल्परूपैर्मया किञ्चान्यन्मनसि स्थिताऽस्ति भवती तत्र स्वयं साक्षिणी ॥ ५ ॥ किं पादान्ते पतसि विमनाः स्वामिनो हि स्वतन्त्राः कञ्चित्कालं क्वचिदभिरतस्तेन कस्तेऽपराधः। आगस्कारिण्यहमिह यया जीवितं त्वद्वियोगे भर्तुः प्राणास्त्रिय इति

बड़े निर्दयी। इसलिये न तो तुम दूसरोंकी पीर ही समझते हो न स्वयं तुम्हें किसी बातकी पीर होती है। फिर भी दूसरी स्त्रियोंसे ही पूछ तो देखो कि कामके बाणोंसे कितनी पीड़ा होती है। अब तुम मुझे बचा लो जिससे तुम्हें सज्जन लोग मसान जगानेवाला अघोरी न कहने लगें ॥ २ ॥ हे प्यारे! तुमने जो अपना हिया पत्थरका बना रक्खा है, इसीलिये यह मलयाचलका पवन मुझपर चिनगारियाँ बरसा रहा है। यह देखो, चन्द्रमा भी आग बरसाए जा रहा है और कामकी तो पूछो मत कि वह क्या चाहता है। इसलिये जो भी समझो, तुम्हें आकर मुझे उबार ही लेना चाहिए ॥ ३ ॥ हे प्यारे! सखियोंके कहने-सुननेपर मैंने अपने मनसे क्रोध निकाल फेंका। अब मैं आपके चरणोंकी कृपाके बिना क्षणभर भी जी नहीं सकती। मेरे इस दुर्बल शरीरको तो देखो कि यह कैसा हुआ जा रहा है! इसलिये हे नाथ! मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, मुझपर प्रसन्न हो जाइए ॥ ४ ॥

नायक-नायिकाकी आपसकी बातचीत : हे रूठनेवाली! मैंने तुम्हारे दोनों पैर अपने माथेपर लगा लिए हैं, अब तो यह कुसमयका रूठना छोड़ दो। तुम्हारे दोनों स्तनोंसे अपनी छाती तथा तुम्हारी योनिसे अपना लिङ्ग छूकर शपथ खाता हूँ जो आजसे कभी किसी दूसरी स्त्रीके पास जाऊँ! ॥ १ ॥ हे धूर्त्त! अनजाने ही स्वभावसे मुख फेरकर बैठी हुई मुझ दुखियाको बलपूर्वक गलेसे लगाकर और मेरे सुहागको इस दशातक पहुँचाकर बताओ तुम्हारे हाथ क्या लगा? देखो, यह तुम्हारा वक्षस्थल जो तुम्हारी किसी दूसरी प्यारीके स्तनपर लगे हुए केशरसे लाल है उसपर उसकी मैली तथा तेलभरी चोटीके चिह्न भी बने हुए हैं ॥ २ ॥ 'तुम आ गए!' यह वाक्य पूरा करनेसे पहले ही तुम इतना घबराए क्यों जा रहे हो? और तुम्हारा गला क्यों अभीसे भर्राया जा रहा है? अब यह सब इधर-उधरकी बे सिर-पैरकी बातें छोड़ो। भले आदमी! तुम्हें जो कुछ कहना हो वह सीधे-सीधे कह क्यों नहीं डालते? ये सब बातें तो सखियोंके मुँहसे मैं इतना सुन चुकी हूँ कि सुनते-सुनते मेरे कान पक गए हैं ॥ ३ ॥ हे कमलनयनी! तुम जो कह रही हो वही ठीक है। सारा दोष मेरा ही है। स्वामीके साथ भला क्या बराबरी! मैं हाथ जोड़ रहा हूँ, तुम मुझे दण्ड दो। अपराधी सेवकपर क्षमाकी बात ही क्या ॥ ४ ॥ तुम्हारा स्मरण करते हुए मैंने कामके बाणोंकी चोटको कुछ नहीं समझा, तुम्हारे मिलनेकी आशासे ही मैं विरहकी आगमें झकसे जल उठनेसे बच गया और अनेक प्रकारके सैकड़ों विचित्र सङ्कल्प कर-करके मैंने इतने दिन बिता दिए। अधिक क्या कहूँ; मेरे मनमें तो तुम ही बसी हो और इस बातको स्वयं तुम जानती भी हो ॥५॥ तुम इतने उदास होकर क्यों मेरे पैर पड़ रहे हो? स्वामी तो स्वतन्त्र होते हैं। यदि कुछ देर कहीं रम ही गए तो तुमने कौन बड़ा अपराध कर दिया? अपराध तो मैंने किया है जो तुम्हारे

ननु त्वं मयैवानुनेयः ॥६॥ किं किं वक्त्रमुपेत्य चुम्बसि बलान्निर्लज्ज लज्जा क्व ते वस्त्रान्तं शठ मुञ्च मुञ्च शपथैः किं धूर्त वाग्बन्धनैः। खिन्नाहं तव रात्रिजागरवशात्तामेव याहि प्रियां निर्माल्योज्झितपुष्पदामनिकरे कः षट्पदानां रतिः ॥ ७ ॥ कृतं मिथ्यावादैर्विरम विदितः कामुक चिरात्प्रियां तामेवोच्चैरभिसर यदीयैर्नखपदैः। विलासैश्च प्राप्तं तव हृदि पदं रागबहुलैर्मया किं ते कृत्यं ध्रुवमकुटिलाचारपरया ॥ ८ ॥ कृतकक्कतकैर्मायाशाठ्यैस्त्वयाप्यतिवर्तितं निभृतनिभृतैः कार्यालापैर्मयाप्युपलक्षितम्। भवतु विदितं नेष्टा तेऽहं वृथा परिखिद्यते अहमसहना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम् ॥ ९ ॥ तथाऽभूदस्माकं प्रथममविभक्ता तनुरियं ततो नु त्वं प्रेयान्वयमपि हताशाः प्रियतमाः। इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं मयाप्तं प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम् ॥ १० ॥ तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव प्रियापादालक्तच्छुरितमरुणद्योतिहृदयम्। ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभङ्गेन कितव त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति ॥११॥ दृशौ रुषा क्षिपसि भामिनि यद्यपीमां स्निग्धे यमेष्यति तथापि न रूक्षभावम्। त्यक्त्वा त्वरां व्रज तवस्खलितैरयं तु खेदं करिष्यति गुरुर्नियतं नितम्बः ॥१२॥ मान निराधारस्त्वं गच्छास्तु शिवस्तु पन्थास्ते। अमुना बद्धाञ्जलिना हृदयमशेषं निपीतं मे ॥ १३ ॥ यत्रार्कायितमिन्दुना सरसिजैरङ्गारपुञ्जायितं क्रुद्धायां मयि नाथ ते कदलिकाखण्डैरलातायितम्। कालोऽन्यः खलु कोऽपि सोऽमृतमयो जातो विपाक्तोऽधुना धिक्प्राणानिति निर्यदश्रुरबला मोहं वदन्ती गता ॥ १४ ॥ यदा त्वं चन्द्रोऽभूः शिशरकरसम्पर्करुचिरस्तदाहञ्जाता द्राक्शशधरमणीनां प्रतिकृतिः। इदानीमर्कस्त्वं खररुचिसमुत्सारितरसः

बिछोहमें भी जीती रही। अब तो मुझे चाहिए कि मैं तुम्हें मनाऊँ क्योंकि लोग कहते हैं कि स्त्रियाँ ही पुरुषोंकी प्राण होती हैं ॥६॥ हे निर्लज्ज ! मेरे मुँहके पास लग-लगकर चूमनेके लिये क्या मुँह बढ़ा रहे हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती ? छोड़ो-छोड़ो, धूर्त ! मेरे आँचलका छोर छोड़ो ! अरे कपटी ! मैं तुम्हारे इस सौगन्ध खाने और उलटी-सीधी बातोंमें आनेवाली नहीं हूँ। देख रही हूँ, रातभर तुम्हें नींद नहीं आई। मुझे बड़ा तरस आता है तुमपर ! जाओ, अपनी उसी प्यारीके पास चले जाओ जहाँ सारी रात बिताई है ? कहीं चढ़ाकर उतारी हुई फूलकी मालापर भौंरे थोड़े ही मँडराते हैं ॥ ७ ॥ हे कामी ! बहुत अटपट बातें न बनाओ, मैं बहुत पहलेसे ही सब समझ चुकी हूँ। अब झटपट अपनी उसी प्यारीके पास जा पहुँचो जिसके नखों, पैरों और हाव-भावोंने अत्यधिक प्रेमपूर्वक तुम्हारे हृदयमें घर कर लिया है। मुझ सीधी-सादी प्रेम करनेवालीको तुम क्या करोगे ? ॥ ८ ॥ तुमने छल-कपट करके अपनी बात छिपानी तो बहुत चाही पर मैं भी तुम्हारा सारा कच्चा चिट्ठा ताड़ गई हूँ। मैं जान गई कि तुम मुझे तनिक भी नहीं प्यार करते हो। यह झूठमूठ पछतावा दिखाना मुझे तनिक नहीं भाता। तुम्हारे प्रेमहीन मनसे इसका मेल अच्छा बैठ गया है ॥ ९ ॥ एक समय वह था कि हम दोनोंका शरीर एक था, उसके पश्चात् तुम चाहनेवाले हो गए और मैं अभागिनी तुम्हारी प्यारी हो गई, और अब तो आप स्वामी हैं और मैं पत्नी हूँ, और क्या कहूँ, मैंने अपने वज्रके समान कठोर प्राणोंका फल पा लिया ॥ १० ॥ तुम्हारी दूसरी प्रेयसीके पैरोंकी महावरसे रँगा हुआ तुम्हारा वक्षस्थल ऐसा जान पड़ रहा है मानो तुम्हारा प्रेम हृदयके बाहरतक छलका पड़ रहा हो। अरे धूर्त ! तुम्हारे इस दिखावटी प्रेमसे भरे हुए रूपको देखकर बड़ी चिन्ता और लज्जा हो रही है ॥ ११ ॥ हे प्यारी ! यद्यपि तुम क्रोध कर-करके अपनी चितवन चला रही हो किन्तु यह चितवन स्वभावसे ही इतनी रसीली है कि यह रूखी नहीं पड़ सकती। अतः अब हड़बड़ी छोड़कर धीरे-धीरे चलो नहीं तो ये भारी नितम्ब हिल-हिलकर निश्चय ही तुम्हें थका डालेंगे ॥ १२ ॥ हे मान ! अब तुम यहाँसे भागो, तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो, क्योंकि हाथ जोड़कर खड़े हुए इस (प्रियतम) ने मेरा सारा हृदय ही पी डाला है ॥ १३ ॥ 'हे नाथ ! जो समय पहले ऐसा अमृतमय था कि मेरे क्रोधित हो जानेपर आपके लिये चन्द्रमा भी सूर्य बन जाता था, कमल भी अङ्गारे और केलेके खम्भे भी जलती हुई लूक बन जाते थे, वही अब विषमय हो गया है। धिक्कार है प्राणोंको!' इस प्रकार कहती हुई तथा आँसू बहाती हुई एक अबला मूर्च्छित होकर गिर गई ॥ १४ ॥ कोई समय था जब तुम वह चन्द्रमा थे जिसके कर (किरण, हाथ) का स्पर्श अत्यन्त शीतल होता था, वह चित्त चुराए लेता था और मैं भी उस चन्द्रमाके लिये चन्द्रकान्त-मणिकी पुतली बनी उसे देख-देखकर

किरन्ती कोपाग्नीनहमपि रविग्रावघटिता ॥ १५ ॥ यद्वाचः प्रचुरोपचारचतुराः यत्साग्रहं दूरतः प्रत्युत्थानमिदं स्वहस्तनिहितं यद्भिन्नमप्यासनम्। उत्पश्यामि यदेवमेव च मुहुर्दृष्टिस्सखीसम्मुखं तच्छोके तव पङ्कजाक्षि बलवान् कोपप्रसादोदयः ॥ १६ ॥ येन श्रोत्ररसायनं मम हठाद्वाचस्तवामीलिताः भग्नं येन तव भ्रुवोर्विलसितं नेत्रोत्सवारम्भि मे। मच्चेतोनिलयश्च यस्त्वदधरः श्वासानिलैर्बाध्यते प्रत्यर्थी स मम प्रिये कथमयं मानस्त्वया स्वीकृतः ॥ १७ ॥ रोहन्तौ प्रथमं ममोरसि तव प्राप्तौ विवृद्धिं स्तनौ संलापास्तव वाक्यभङ्गमलिना मौग्ध्यं परं त्याजिताः। धात्रीकण्ठमपास्य बाहुलतिके कण्ठे तवासञ्जिते निर्दाक्षिण्य करोमि किं नु विशिखाप्येषा न पन्थास्तव ॥ १८ ॥ वधूनां सर्वासां चरणहरणैर्दूषितमिदं शिरस्ते स्पर्शार्हं सकृदपि न पादस्य हि मम। प्रहारः पादैस्त्वां रमयति स मत्तो न सुलभस्तदुत्तिष्ठ स्वामिन्भवतु तव सौभाग्यमतुलम् ॥१६॥ सत्यं तद्यदवोचथा मम महान् रागस्त्वदीयादिति त्वं प्राप्तोऽसि विभात एव सदनं मां द्रष्टुकामो यतः। रागं किं च विभर्षि नाथ हृदये काश्मीरपत्रोदितं नेत्रे जागरजं ललाटफलके लाक्षारसापादितम् ॥२०॥ साहारं वचनं प्रयच्छसि न मे नो वाञ्छितं यच्छसि प्रायः प्रोच्छ्वसिषि द्रुतं हुतवहज्वालासमं रात्रिषु। कण्ठाश्लेषपरिग्रहे शिथिलता यन्नादराच्चुम्बसे तत्ते धूर्त हृदि स्थिता प्रियतमा काचिन्ममेवापरा ॥ २१ ॥

नायकशिक्षा—अधिरजनि जगाम धाम तस्याः प्रियतमयेति रुषा स्रजावनद्धः। पदमपि चलितुं युवा न सेहे किमिव न शक्तिहरं ससाध्वसानाम् ॥ १ ॥ करजदशनचिह्नं नैशमङ्गेऽन्यनारीजनितमिति सरोषामीर्ष्यया शङ्कमानाम्। स्मरसि न खलु दत्तं मत्तयैत-

---

पसीजती रहती थी। पर इस समय जब तुम अपने कठोर तापसे रस (जल, प्रेम) सुखा डालनेवाले सूर्य बन गए हो तो मैं भी क्रोधरूपी आग उगलनेवाली सूर्यकान्तमणिकी प्रतिमा बन गई हूँ ॥ १५ ॥ हे कमलनयनी! यह जो तुम बहुत बन-बनकर बोल रही हो, दूरसे बड़ी आवभगत करके खड़ी हो रही हो, अपने हाथसे ही मेरा आसन अलग लगा रही हो तथा बार-बार सखीका मुँह देख रही हो इससे मुझे तो यह शङ्का हो चली है कि तुमपर भयङ्कर क्रोधकी कृपा हो गई है ॥ १६ ॥ हे प्यारी! मेरे कानोंको अत्यन्त रसीली लगनेवाली तुम्हारी बोली जिसने रोक रक्खी है, मेरे नेत्रोंको उत्सवके समान सुख देनेवाली तुम्हारे भौंहोंका नचाना जिसने नष्ट कर दिया है और मेरे हृदयमें बसनेवाले तुम्हारे अधरको जो साँसोंके पवनसे सुखाए डाल रहा है उस मेरे विरोधी मानको तुमने स्वीकार कैसे कर लिया? ॥ १७ ॥ पहले तो ये स्तन मेरे वक्षस्थलमें उठकर तुम्हारे वक्षस्थलकी ओर बढ़े। तुमने इस ढङ्गसे चिकनी-चुपड़ी बातें कीं कि मेरे बोलनेका सीधा ढङ्ग भी बदल गया और धायके गलेसे हटाकर मैंने अपनी बाहें पहले पहल तुम्हारे गलेमें डालीं। यह सब करनेके पश्चात् अरे निर्दयी! तुम्हें इस गलीसे कैसे निकालूँ! ॥१८॥ हे स्वामी! तुम्हारा सिर इस योग्य नहीं रह गया है कि मेरा पैरोंका स्पर्श पा सके क्योंकि यह बहुत-सी स्त्रियोंके पैरोंसे छू जानेके कारण दूषित हो गया है। इसलिये मेरे पैरोंकी जो चपेट तुम्हें प्रसन्न कर देती थी वह अब नहीं मिलेगी। अतः उठ जाओ। तुम्हारा तो बहुत बड़ा सौभाग्य है ॥ १९ ॥ हे नाथ! तुमने यह सत्य कहा था कि तुम्हारी वस्तुओंसे मुझे बड़ा प्रेम है क्योंकि दिन निकलते ही तुम मुझे देखनेके लिये घर चले आए हो, पर यह तो बताओ कि छातीपर केशरके बेलबूटेकी यह छाप, आँखोंमें जागनेकी ललाई और माथेपर महावरके रसकी ललाई कहाँसे आ गई? ॥ २० ॥ अरे धूर्त! यह जो तुम उड़ी-उड़ी-सी बातें कर रहे हो, अपने मनका भेद छिपाए जा रहे हो, रातको जलती हुई आगकी लपटोंके समान झट-झट साँस खींच रहे हो, गले लगते समय ढीले-ढीलेसे जान पड़ रहे हो और चुम्बनमें कुछ रस नहीं ले रहे हो, इससे जान पड़ता है कि मेरे समान कोई दूसरी तुम्हारी प्यारी तुम्हारे मनमें आ बसी है ॥ २१ ॥

नायकको सीख : रात बीतनेपर जब प्रियतम उसके घर पहुँचे तो प्राणप्यारीने क्रोधित होकर प्रियतमको मालासे बाँध दिया। उस समय वह युवक एक पग भी आगे न बढ़ सका। ठीक है, डरे हुए लोगोंकी शक्ति अत्यन्त थोड़ेसे भी चली जाती है ॥ १ ॥ रातमें दूसरी स्त्रीके नख और दाँतोंसे लगे हुए चिह्न देखकर डाहसे क्रोधित होकर शङ्का करती हुई और लजाती हुई अपनी पत्नीको कोई विलासी पुरुष यह कहकर फुसला रहा है कि 'तुम्हें नहीं स्मरण आ रहा है? अरे, तुम्हींने तो मदमें चूर होकर ये चिह्न लगाए हैं!' ॥ २ ॥ जब प्रेमी कुछ पास आ गया तो

त्वयैव स्त्रियमनुनयतीत्थं व्रीडमानां विलासी ॥ २ ॥ कोपात्किञ्चिदुपानतोऽपि रभसादाकृष्य केशेष्वलं नीत्वा मोहनमन्दिरं दयितया हारेण बध्वा दृढम्। भूयो यास्यति तद्गृहानिति मुहुः कण्ठार्धरुद्धाक्षरं जल्पन्त्याः श्रवणोत्पलेन सुकृती कश्चिद्रहस्ताड्यते ॥ ३ ॥ पादे मूर्धनि ताम्रतामुपगते कर्णोत्पले चूर्णिते छिन्ने हारलतागुणे करतले सम्पातजातव्रणे। अप्राप्तप्रियताडनव्यतिकरा हन्तुं पुनः कोपिता वाञ्छन्ती मुहुरेणशावनयना पर्याकुला रोदिति ॥ ४ ॥ सा बाढं भवतेक्षितेति निबिडं संयम्य बाह्वोः स्रजा भूयो द्रक्ष्यसि तां शठेति नितरां सम्भर्त्स्य सन्तर्ज्य च। आलीनां पुर एव निह्नुतिपरः कोपाद्रसन्नूपुरं मानिन्याश्चरणप्रहारविधिना प्रेयानशोकीकृतः ॥ ५ ॥ सालक्तकं शतदलाधिककान्तिरम्यं रत्नौघधामनिकरारुणनूपुरञ्च। क्षिप्तं भृशं कुपितया तरलोत्पलाक्ष्या सौभाग्यचिह्नमिव मूर्ध्नि पदं विरेजे ॥ ६ ॥ सालक्तकेन नवपल्लवकोमलेन पादेन नूपुरवता मदनालसेन। यस्ताड्यते दयितया प्रणयापराधात्सोऽङ्गीकृतो भगवता मकरध्वजेन ॥ ७ ॥

नायिकाप्रसादः—आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रिर्नैशस्यार्चिर्हुतभुज इव छिन्नभूयिष्ठधूमा। मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा गङ्गा रोधःपतनकलुषा गृह्णतीव प्रसादम् ॥ १ ॥ कुरङ्गीवाङ्गानि स्तिमितयति गीतध्वनिषु यत्सखीं कान्तोदन्तं श्रुतमपि पुनः प्रश्नयति यत्। अनिद्रं यच्चान्तः स्वपिति तदहो वेद्म्यभिनवां प्रवृत्तोऽस्याः सेक्तुं हृदि मनसिजः प्रेमलतिकाम् ॥ २ ॥ कृष्णस्निग्धकनीनिके विकसतः कर्णान्तदीर्घे दृशावुत्कम्पो हृदयस्य वेपितकुचाभोगः शनैः शाम्यति। धत्ते शीतरुचो विधुन्तुदमुखान्मुक्तस्य लक्ष्मीमिदं मुग्धाङ्ग्या विगलद्विमोहतिमिरं

नवेलीने दाँत पीसकर झटकेसे उसके बाल पकड़ लिए, अपने कमरेमें घसीट लाई, अपने हारसे उसे कसकर बाँध दिया और रुँधे हुए गलेसे पूछने लगी 'कहो' ! अब फिर उसके घर जाओगे ?' इस प्रकार अपनी नवेलीके हाथसे और कानपर टँगे हुए कमलसे कोई भाग्यशाली ही एकान्तमें पिटा करते हैं ॥ ३ ॥ जब उस नवेलीने क्रोधमें भरकर अपने प्रियतमको इतना मारा कि लात मारते-मारते पैर लाल हो गए, सिर लाल हो उठा, कानका कमल चूर-चूर हो गया, हारका डोरा टूट गया और हाथमें फफोले पड़ गए तब अपने प्रियको और भी पीटनेकी इच्छा होनेपर भी जब उसमें साहस न रहा तब वह मृगनयनी घबराकर स्वयं ही फफक-फफककर रोने लगी ॥ ४ ॥ 'क्यों ! उसे घूरकर देख रहे थे न !' यह कहकर नवेलीने अपने प्यारेको अपनी बाहोंमें कस लिया और फिर यह कह-कहकर उसे बहुत डाँटा कि 'धूर्त्त ! फिर तो उसे नहीं देखोगे ?' इस प्रकार उस क्रोधमें भरी नवेलीने अपने बजते हुए पायलवाले पैरोंसे मार-मारकर अपने उस प्रेमीको निश्चिन्त कर दिया जो सखियोंके सामने सारी बातें छिपा रहा था अर्थात् लात खाते-खाते उसने सारी बातें खोलकर कह दीं ॥ ५ ॥ उस चञ्चल कमलके समान आँखोंवाली नवेलीने जब अपने महावरके समान रँगे हुए, कमलसे भी अधिक सुन्दर, रत्नोंकी किरणोंसे लाल और बजते हुए पायलवाले पैर अपने प्रियतमपर चलाए तो प्रेमीके सिरपर लगा हुआ पैरका चिह्न ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसके सौभाग्यका चिह्न हो ॥ ६ ॥ जिस प्रेमीके सिरपर उसकी प्यारी अपने महावरसे रँगे हुए, नये पत्तेके समान कोमल, बजते हुए पायलोंवाले और कामके भारसे धीमे-धीमे उठनेवाले पैर चलाती है उसपर समझना चाहिए कि भगवान् कामदेवकी बड़ी कृपा है ॥ ७ ॥

नवेलीकी कृपा : हृदयसे रोष निकल जानेपर यह सुन्दरी नवेली चन्द्रमाके उदयके पश्चात् अन्धकारसे छूटी हुई ऐसी रातके समान हो रही है, जिसका सारा धुआँ निकल चुका है ऐसी रातकी अग्निकी ज्वालाके समान बन रही है तथा पहले करारके गिर जानेपर मटमैली होकर फिर निर्मल होती हुई गङ्गाके समान दिखाई दे रही है ॥ १ ॥ यह नवेली गानेकी तान सुनकर ही अपनी देहको हरिणीके समान हिलाती-डुलाती रहती है, पतिका समाचार सुनकर भी सखियोंसे बार-बार वही समाचार पूछती रहती है तथा बिना नींदके ही घरमें घुसी सोती रहती है, इससे जान पड़ता है कि कामदेव इसके हृदयमें प्रेम-रूपी नई लता सींच-सींचकर बढ़ा रहे हैं ॥ २ ॥ इस नवेलीकी कानतक फैली हुई वे बड़ी-बड़ी आँखें खिल रही हैं जिनमें प्रेमसे भरी हुई काली-काली पुतलियाँ दिखाई दे रही हैं, सारे स्तन-मण्डलको हिला देनेवाला हृदयका काँपना धीरे-धीरे शान्त हो रहा है और रोष-रूपी अन्धकार हट जानेपर

वक्त्रं प्रसीदत्क्रमात् ॥३॥ परिम्लाने माने मुखशशिनि तस्याः करधृते मयि क्षीणोपाये प्रणिपतनमात्रैककरणे। तया पक्ष्मप्रान्तव्रजपुटनिरुद्धेन सहसा प्रसादो बाष्पेण स्तनतटविशीर्णेन कथितः ॥ ४ ॥ भवति विततश्वासोन्नाहप्रगुणनपयोधरं हृदयमपि च स्निग्धं चक्षुर्निजप्रकृतौ स्थितम्। तदनु वदनं मूर्च्छाच्छेदात्प्रसादि विराजते परिगतमिव प्रारम्भेऽह्नः श्रिया सरसीरुहम् ॥ ५ ॥ सत्यं भामिनि दुर्जनोऽस्मि दयिते पाल्यस्तथाऽपि त्वया तद्दोषश्शतशो मृगाक्षि नियतं दीने मयि क्षम्यताम्। इत्थं जल्पति वल्लभे मृगदृशा चक्षुर्लसत्सम्भृतं रक्तत्वं विरलीकृतं च वदने दत्तं न किञ्चिद्वचः ॥ ६ ॥

परस्परप्रसादः—अनुदेहमागतवतः प्रतिमां परिणायकस्य गुरुमुद्वहता। मुकुरेण वेपथुभृतोऽतिभरात्कथमप्यपाति न वधूकरतः ॥ १ ॥ अवनस्य वक्षसि निमग्नकुचद्वितयेन गाढमुपगूढवता। दयितेन तत्क्षणचलद्रशनाकलकिङ्किणीरवमुदासि वधूः ॥ २ ॥ आगत्य प्रणिपातसान्त्वितसखीदत्तान्तरे सागसि स्वैरं कुर्वति तल्पपार्श्वनिभृते धूर्तेऽङ्गसंवाहनम्। ज्ञात्वा स्पर्शवशात्प्रियं किल सखी भ्रान्त्या स्वमश्रं शनैः खिन्नासीत्यभिधाय मीलितदृशा सानन्दमारोपितः ॥ ३ ॥ इह स्फुटं तिष्ठति नाथ कण्टकः शनैश्शनैः कर्ष नखाग्रलीलया। इति च्छलात्काचिदलग्नकण्टकं पदं तदुत्सङ्गतले न्यवेशयत् ॥ ४ ॥ उदितोरुसादमतिवेपथुमत्सुदृशोऽभिभर्तृ विधुरं त्रपया। वपुरादरातिशयशंसि पुनः प्रतिपत्तिमूढमपि बाढमभूत् ॥ ५ ॥ उपनेतुमुन्नतिमतेव दिवं कुचयोर्युगेन तरसा कलिताम्। रभसोत्थितामुपगतः सहसा परिरभ्य कश्चन वधूमरूरुधत् ॥ ६ ॥ एकस्मिञ्शयने पराङ्मुखतया वीतोत्तरं ताम्यतोरन्योन्यस्य हृदि स्थितेऽप्यनुनये संरक्षतोर्गौ-

---

क्रमसे प्रसन्न होता हुआ इस सुन्दरीका मुख राहुके मुखसे छूटे हुए चन्द्रमाकी शोभा पा रहा है ॥ ३ ॥ प्रसन्न करनेके लिये सारे उपाय निष्फल हो जानेपर जब मैंने उसे झुककर प्रणाम किया तब हथेलीपर रक्खे हुए उसके मुखपर क्रोधके चिह्न कुछ कम हुए, उसकी बरौनियोंमें उलझे हुए आँसू स्तनोंपर ढुलक पड़े और इससे अनुमान हो गया कि वह प्रसन्न हो गई है ॥ ४ ॥ लम्बी साँसोंके चलनेसे हिलते हुए स्तनवाला वक्षस्थल स्नेहसे भर रहा है, आँखें अपने पहलेके-से रूपमें आ गई हैं, मूर्च्छा नष्ट हो जानेसे मुखपर भी चमक चढ़ आई है। अतः वह मुख पाला पड़नेसे पहले शोभासे भरे हुए खिले हुए कमलकी भाँति सुन्दर दिखाई पड़ने लगा है ॥५॥ 'हे सुन्दरी! सचमुच मैं अत्यन्त दुष्ट हूँ फिर भी हे प्यारी! तुम मुझपर कृपा करो और हे मृगनयनी! मुझ सैकड़ों अपराधोंसे भरे हुए दीनको तुम क्षमा कर दो।' इस प्रकार प्रियतमके कहते ही मृगनयनी नवेलीकी आँखोंमें प्रसन्नता झलकने लगी, मुँहसे क्रोधकी ललाई ढलने लगी और उसने कोई उत्तर नहीं दिया ॥ ६ ॥

एक दूसरेपर प्रसन्न होना : कोई नवेली हाथमें दर्पण लेकर मुँह देख रही थी, तबतक प्रियतम भी पीछे आकर खड़े हो गए। उनकी परछाईं पड़नेसे ही मानो वह दर्पण इतना भारी हो गया कि उस नवेलीका हाथ काँपने लगा किन्तु किसी-किसी प्रकार उस नवेलीने दर्पणको सँभाल लिया और वह धरतीपर गिरते-गिरते बच गया ॥ १ ॥ प्रियतम कुछ ऊँचे थे अतः जब उन्होंने झुककर नवेलीको कसकर गले लगाकर ऊपर उठा लिया उस समय प्रियतमके वक्षःस्थलसे नवेलीके स्तन दब गए और हिलती हुई करधनीके घुँघरुओंकी मधुर-मधुर ध्वनि होने लगी ॥ २ ॥ अपराधी प्रियतमने पैरों पड़-पड़कर सखियोंको मनाया, फिर सखियोंने जब अवसर दिया तो वह अपनी प्यारीके बिछौनेके पास धीरे-धीरे आया और उसके अङ्ग दबाने लगा। उस स्पर्शसे ही नवेलीने समझ लिया कि ये पतिदेव हैं, फिर भी सखीका बनावटी भ्रम दिखाती हुई 'अरे तुम थकी जा रही हो' ऐसा कहकर आँखें मूँदे ही मूँदे प्रेमपूर्वक धीरेसे प्रियतमको अपने बिछौनेपर बैठा लिया ॥ ३ ॥ 'हे नाथ! मेरे पैरमें काँटा गड़ गया है, इसे अपने नखसे धीरे-धीरे खींच लीजिए।' इस प्रकार कहकर काँटा न लगनेपर भी किसी नवेलीने इस बहाने पतिकी गोदमें अपना पैर रख दिया ॥ ४ ॥ पतिके आते ही नवेलीकी जाँघें जकड़-सी गईं, शरीर काँपने लगा और लज्जासे दब-सा गया। इस प्रकार यद्यपि उसका शरीर सत्कारके कामोंमें नहीं लग रहा था फिर भी प्रियतमपर अधिक प्रेम होनेकी सूचना तो दे ही रहा था ॥ ५ ॥ एकाएक प्रियतमके घर आ जानेसे हड़बड़ाकर उठी हुई नवेलीके स्तन ऐसे उछल पड़े मानो वे उस नवेलीको पकड़कर आकाशमें उड़ा ले जाना चाहते हों। ऐसी दशामें प्रियतमने तत्काल उसका आलिङ्गन

रचम्। दम्पत्योः शनकैरपाङ्गवलनान्मिश्रीभवच्चक्षुषो-र्भग्नो मानकलिः सहासरभसव्यासक्तकण्ठग्रहः ॥ ७ ॥ एकस्मिञ्शयने सरोरुहदृशोर्विज्ञाय निद्रां तयोरेकां पल्लवितावगुण्ठनवतीमुत्कन्धरो दृष्टवान्। अन्यस्याः सविधं समेत्य निभृतव्यालोलहस्ताङ्गुलिव्यापारैर्वसनाञ्चलं चपलयन्स्वापच्युतिं क्लृप्तवान् ॥ ८ ॥ कररुद्धनीवि दयितोपगतौ गलितं त्वराविरहितासनया। क्षणदृष्टहाटकशिलासदृशस्फुरदूरुभित्ति वसनं ववसे ॥ ९ ॥ कान्ते घोरकृतान्तवक्त्रकुहरात्त्वं पुण्यपुञ्जेन मे मुक्ता क्लान्त तदर्जनश्रमभरं प्रत्यङ्गमालिङ्ग्य माम्। इत्याकर्ण्य निमीलितार्धनयनं स्मेरं शनैरानतं सोल्लासं वदनाम्बुजं मृगदृशः स्वैरं चुचुम्ब प्रियः ॥ १० ॥ कृत्वा विग्रहमश्रुपातकलुषं शय्यासनादुत्थिता क्रोधाच्चापि विहाय गर्भभवनद्वारं रुषा प्रस्थिता। दृष्ट्वा चन्द्रमसं प्रभाविरहितं प्रत्यूषवाताहता हा रात्रिस्त्वरिता गतेति पतिता कान्ता प्रियस्योरसि ॥ ११ ॥ चक्षुर्लुप्तमषीकणं कवलितस्ताम्बूलरागोऽधरे विश्रान्ता कवरी कपोलफलके लुप्तेव गात्रद्युतिः। जाने सम्प्रति मानिनि प्रणयिना कैरप्युपायक्रमैर्भग्नो मानमहातरुस्तरुणि ते चेतःस्थलीवर्धितः ॥ १२ ॥ जाता नोत्कलिका स्तनौ न लुलितौ गात्रं न रोमाञ्चितं वक्त्रं स्वेदकणाञ्चितं न सहसा यावच्छठेनामुना। दृष्टेनैव मनो हृतं धृतिमुषा प्राणेश्वरेणाद्य मे तत्केनापि निरूप्यमाणनिपुणो मानः समाधीयताम् ॥ १३ ॥ तदेवाजिह्मार्द्रं मुखमविशदस्ता गिर इमाः स एवाङ्गश्लेषो मयि सरसमाश्लिष्यति तनुम्। तदुक्तं प्रत्युक्तं यदपट्ट शिरःकम्पनपरं प्रिया मानेनेयं पुनरपि कृता मे नववधूः ॥ १४ ॥ तस्याः सान्द्रविलेपनस्तनयुगप्रश्लेषमुद्राङ्कितं किं वक्षश्चरणानतिव्यतिकरव्याजेन गोपाय्यते। इत्युक्ते क्व तदित्युदीर्य सहसा तत्सम्प्रमार्ष्टुं

करके उसे शीघ्रतासे बचा लिया ॥ ६ ॥ एक ही बिछौनेपर पति-पत्नी मुँह फेरकर चुपचाप पड़े हुए दुःखी हो रहे थे। एक दूसरेको मना लेनेकी चाह हृदयमें होते हुए भी दोनों अपने सम्मानकी रक्षा कर रहे थे किन्तु करवट बदलते समय जैसे ही धीरेसे उनकी आँखें आपसमें मिलीं तो उनकी कोपरूपी कली बिखर गई तथा हँसकर वे वेगसे एक दूसरेसे चिपट गए ॥ ७ ॥ एक ही बिछौनेपर दो नवेलियाँ सोई हुई थीं। नायकने अपना सिर उठाकर जैसे ही देखा कि एक नवेली वस्त्रसे मुँह ढके सो रही है वैसे ही तत्काल उसने दूसरीके पास जाकर चुपकेसे अपने हाथकी उँगलियोंसे उसके वस्त्र खींचकर उसे जगा दिया ॥ ८ ॥ पतिके आनेपर नवेली एकाएक अपना आसन छोड़कर उठ खड़ी हुई। यद्यपि वह साड़ीका नाड़ा थामे हुए थी फिर भी उसकी साड़ी नीचे सरक गई और जबतक वह उसे सँभालकर पहने-पहने तबतक तो सोनेकी चट्टानके समान चमचमाती हुई उसकी जाँघोंकी घनी चमकने ही वस्त्रका काम कर दिया अर्थात् चकमकाहटके कारण उसकी कोई जाँघें न देख पाया ॥९॥ 'हे प्रिये! तुम हमारे पुण्योंसे यमराजके भयङ्कर मुखरूपी गड्ढेसे छुटकारा पा गई हो अतः मेरे प्रत्येक अङ्ग आलिङ्गन करके उस पुण्यके सञ्चयसे पाई हुई थकावट दूर कर दो।' प्रियतमको ऐसा कहते सुनकर नवेलीकी आँखें आधी मुँद गईं, उसने मुस्कराते हुए अपना प्रसन्न मुख धीरेसे झुका दिया और प्रियतम उस मृगनयनीके मुखका देरतक चुम्बन करते रहे ॥१०॥ झगड़ा करके रोती हुई नवेली अपने बिछौनेसे उठी और क्रोधसे घरका भीतरी द्वार खोलकर बाहर निकली, उसने चन्द्रमाको फीका देखा तथा उसके शरीरमें प्रातःकालका पवन भी लगा अतः वह सोचने लगी कि 'हाय! अब तो यह रात शीघ्र ही बीती जा रही है!' और यह जानकर वह लौटकर अपने प्रियतमकी गोदमें जा गिरी ॥ ११ ॥ हे क्रोध करनेवाली! तुम्हारे नेत्रोंमें काजल नहीं दिखाई देता, ओठसे पानकी ललाई भी मिट गई है, बाल भी गालोंपर बिखर आए हैं और शरीरकी कान्ति भी मलिन पड़ गई है, इससे जान पड़ता है कि हे तरुणी! तुम्हारे प्रियतमने किन्हीं उपायोंसे तुम्हारे मनरूपी भूमिपर बढ़े हुए क्रोधरूपी विशाल वृक्षको उखाड़ डाला है ॥ १२ ॥ जबतक मेरे मनमें उसके लिये ललक नहीं थी, तबतक न तो शरीरमें रोमाञ्च हुआ, न स्तन फड़के और न मुखमें पसीना ही आया, किन्तु तत्काल धीरज तोड़ देनेवाले उस धूर्त प्रियतमको देखते ही एकाएक मन उसकी ओर ही खींच गया। अब क्रोध करना उचित भले ही हो किन्तु वह किया कैसे जा सकता है? ॥ १३ ॥ यह प्यारी नवेली क्रोध करके मानो फिर नई बहू-सी हो गई है, क्योंकि इसके मुँहपर नई बहूके समान ही सीधी चितवनवाली आँखें शोभित हो रही हैं, वैसी ही स्पष्ट बातें हैं तथा मेरे आलिङ्गन करनेपर वैसा ही प्रेममें भरकर गले लगना, वैसी ही बातचीत और वैसी ही सिधाईके साथ सिर हिलाना आदि भी है ॥१४॥ दूसरी स्त्रीका सहवास करके लौटे

मया संश्लिष्टा रभसेन तत्सुखवशात्तन्व्यापि तद्विस्मृतम् ॥ १५ ॥ दृष्टे लोचनवन्मनाङ्मुकुलितं पार्श्वस्थिते वक्त्रवन्न्यग्भूतं बहिरासितं पुलकवत्स्पर्शे समातन्वति। नीवीबन्धवदागतं शिथिलतां सम्भाषमाणे क्षणान्मानेनापसृतं ह्रियेव सुदृशः पादस्पृशि प्रेयसि ॥ १६ ॥ नापेतोऽनुनयेन यः प्रियसुहृद्वाक्यैर्न यः संहृतो यो दीर्घं दिवसं विषह्य हृदये यत्नात्कथञ्चिद्धृतः। अन्योन्यस्य हृते मुखे विहितयोस्तिर्यक्कथञ्चिद्दृशोः सम्भेदे सपदि स्मितव्यतिकरे मानो विहस्योज्झितः ॥ १७ ॥ निपपात सम्भ्रमभृतः श्रवणादसितभ्रुवः प्रणदितालिकुलम्। दयितावलोकविकसन्नयनप्रसरप्रणुन्नमिव वारिरुहम् ॥ १८ ॥ पदप्रणतमालोक्य कान्तमेकान्तकातरम्। मुञ्चन्ती बाष्पसन्तानं सुमुखी तेन चुम्बिता ॥ १९ ॥ परिमन्थराभिरलघूरुभरादधिवेश्म पत्युरुपचारविधौ। स्खलिताभिरप्यनुपदं प्रमदाः प्रणयातिभूमिमगमन्गतिभिः ॥ २० ॥ पश्यामः किमियं प्रपद्यत इति स्थैर्यं मयालम्बितं किं मां नालपतीत्ययं खलु शठः कोपस्तयाप्याश्रितः। इत्यन्योन्यविलक्षदृष्टिचतुरे तस्मिन्नवस्थान्तरे सव्याजं हसितं मया धृतिहरो मुक्तस्तु बाष्पस्तया ॥ २१ ॥ पिदधानमन्वगुपगम्य दृशौ ब्रुवते जनाय वद कोऽयमिति। अभिधातुमध्यवससौ न गिरा पुलकैः प्रियं नववधूर्न्यगदत् ॥ २२ ॥ मधुरोन्नतभ्रु ललितं च दृशोः सकरप्रयोगचतुरञ्च वचः। प्रकृतिस्थमेव निपुणागमितं स्फुटनृत्यलीलमभवत्सुतनोः ॥ २३ ॥ लीलातामरसाहतोऽन्यवनितानिःशङ्कदष्टाधरः कश्चित्केसरदूषितेक्षण इव व्यामील्य नेत्रे स्थितः। मुग्धा कुड्मलिताननेन दधती वायुं स्थिता तस्य सा भ्रान्त्या धूर्ततया च वेपथुमती तेना-

---

हुए मुझसे जैसे ही मेरी पत्नीने कहा कि 'तुम्हारे जिस वक्षस्थलपर उस नवेलीके स्तनोंके आलिङ्गनसे चन्दन, केशर आदिके चिह्न लग गए हैं, उसे मेरे चरणोंपर गिरनेके बहाने झुकाकर क्यों छिपा रहे हो ?' वैसे ही 'कहाँ लगा है !' कहकर उसे पोंछनेके लिये मैंने उसका आलिङ्गन किया और वह पतली नवेली भी इसी सुखमें मेरा सारा अपराध भूल गई ॥१५॥ प्रियतमको देखनेपर नेत्रोंके साथ-साथ उस नवेलीका क्रोध सिमट गया, पासमें खड़े होनेपर मुखके साथ-साथ क्रोध झुक गया, स्पर्श करनेपर रोमाञ्चके साथ वह बाहर आ गया, बातचीत करनेपर नाड़ेके समान ढीला हो गया तथा पैर छूनेपर लज्जाके साथ उस सुनयनी नवेलीका क्रोध भाग खड़ा हुआ ॥ १६ ॥ बहुत मनानेपर भी जो क्रोध दूर नहीं हो सका, सखियोंके समझाने-बुझानेपर भी मिट न सका, पति-पत्नी जिसे किसी प्रकार सहन करके हृदयमें रक्खे हुए थे और जिसके कारण दोनों मुख फेरे बैठे हुए थे वह क्रोध किसी प्रकार दोनोंकी आँखें मिलते ही और हँसते-मुस्कराते ही न जाने कहाँ चला गया ॥ १७ ॥ प्रियतमको देखकर उसके स्वागतके लिये उठते ही नवेलीके कानसे वह कमल गिर पड़ा जिसपर भौंरे गूँज रहे थे, अतः उसे देखकर ऐसा जान पड़ा मानो आँखोंके विकसित होकर फैलनेपर उन आँखोंका धक्का लग जानेसे ही वह गिर पड़ा हो ॥ १८ ॥ अत्यधिक भयसे पैरपर गिरते हुए प्रियतमको देखकर जब सुन्दर मुखवाली नवेलीने लगातार आँसू बरसाए तो प्रियतमने उसका चुम्बन कर लिया ॥ १९ ॥ घरमें आए हुए पतिके सत्कारके लिये यद्यपि नवेलियाँ बड़ी-बड़ी जाँघोंके भारसे धीरे-धीरे तथा पग-पगपर लड़खड़ाती हुई चल रही थीं फिर भी अपनी चालकी सुन्दरताके कारण वे प्रियतमके प्रगाढ़ प्रेमकी पात्र बन ही गईं ॥ २० ॥ मैं इस विचारसे चुप रह गया कि देखें यह क्या करती है, और वह इस विचारसे रूठ गई कि यह धूर्त्त मुझसे बातेंतक क्यों नहीं कर रहा है ! ऐसी अवस्थामें जब कि हम दोनों बिना मनके इधर-उधर देख रहे थे तबतक मैं किसी बहाने हँस पड़ा और वह भी मेरा धीरज तोड़नेवाले आँसू बहाने लगी ॥ २१ ॥ बैठी हुई नवेलीके पीछेसे आकर प्रियतमने उसकी आँखें मूँद लीं और पूछा कि 'बतलाओ कौन है ?' तो नवेलीने इसपर मुँहसे तो कुछ नहीं कहा किन्तु शरीरपर उठे हुए रोमाञ्चसे ही उसने बता दिया कि 'आप प्रियतम हैं' ॥ २२ ॥ मनोहर तथा बाँकी भौंहोंवाली आँखोंका चलाना तथा हाथ मटका-मटकाकर बातें करना यद्यपि ये दोनों ही उस सुन्दरीके स्वाभाविक गुण थे किन्तु वे ही चतुर आचार्य कामदेवके सिखला देनेपर नृत्यके समान जान पड़ने लगे ॥ २३ ॥ दूसरी नवेलीने किसी नायकके ओठपर दाँतका चिह्न लगा दिया था यह देख उसकी प्रियतमाने उसे कमलसे मारा और कमलका पराग आँखोंमें पड़ जानेका बहाना करके वह आँखें मूँदकर बैठ गया अतः उसकी भोली-भाली प्रियतमा इसे सत्य समझकर अपने मुँहसे उसकी आँखें फूँकने लगी और भ्रममें पड़कर उसकी धूर्तताको न समझनेके कारण भयसे

निशं चुम्बिता ॥ २४ ॥ लोलांशुकस्य पवनाकुलितांशुकान्त त्वद्दृष्टिहारि मम लोचनबान्धवस्य । अध्यासितुं तव चिरं जघनस्थलस्य पर्याप्तमेव करभोरु ममोरुयुग्मम् ॥ २५ ॥ वचोवीचोदानं स्फुरदधरपानं क्षिविनयं कृशीभूते माने मयि मृगयमाणे मृगदृशः । बभूव भ्रूभङ्गः सनयनतरङ्गः सपदि यः प्रभुत्वं व्यातेने जगदुपरि तेनेह मदनः ॥२६॥ वाचो वाग्मिनि किं तवाद्य परुषाः सुभ्रु भ्रुवो विभ्रमोऽप्युद्भ्रान्तः कुत एष लोलनयने किं लोहिते लोचने । नास्त्यागो मयि किं मुधैव कुपितेत्युक्ते पुनः प्रेयसा मानिन्या जलबिन्दुदन्तुरपटा दृष्टिः सखीष्वाहिता ॥ २७ ॥ सत्यं दुर्लभ एष वल्लभतरो रागो ममास्मिन्पुनः कोपोऽस्यातिगुरुर्न चातिनिपुणाः सख्योऽपि सम्बोधने । सञ्चिन्त्येति मृगीदृशा प्रियतमे दृष्टे श्लथां मेखलां बध्नन्त्या न गतं स्थितं न च चलद्वासोऽथवा संवृतम् ॥२८॥ सा यावन्ति पदान्यलीकवचनैरालीजनैः पाठिता तावन्त्येव कृतागसो द्रुततरं संलप्य पत्युः पुरः । प्रारेभे पुरतो यथा मनसिजस्येच्छा तया वर्तितुं प्रेम्णो मौग्ध्यविभूषणस्य सहजः कोऽप्येष कान्तः क्रमः ॥ २९ ॥ सुतनु जहिहि मौनं पश्य पादानतं मां न खलु तव कदाचित्कोप एवंविधोऽभूत् । इति निगदति नाथे तिर्यगामीलिताक्ष्या नयनजलमनल्पं मुक्तमुक्तं न किञ्चित् ॥ ३० ॥

प्रियचाटूक्तयः—अनङ्गोऽयमनङ्गत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम् । यदनेन न सम्प्राप्तः पाणिस्पर्शोत्सवस्तव ॥१॥ अनधिगतमनोरथस्य पूर्वं शतगुणितेव गता मम त्रियामा । यदि तु तव समागमे तथैव प्रसरति सुभ्रु ततः कृती भवेयम् ॥ २ ॥ अनयोरनवद्याङ्गि स्तनयोर्जृम्भमाणयोः । अवकाशो न पर्याप्तस्तव बाहुलतान्तरे ॥ ३ ॥ अन्तःकूजदुदारकण्ठमसकृन्मुञ्चेति लोलेक्षणं प्रायः स्मेरकपोलमूलममृतप्रस्यन्दि बिम्बाधरम् ।

काँपने लगी । यह सब देखकर नायक बड़ी देरतक उसका चुम्बन करता रहा ॥ २४ ॥ हे चिकनी जाँघोंवाली ! तुम्हारे नितम्ब रखनेके लिये मेरी जाँघें ही उचित स्थान हैं क्योंकि जैसे तुम्हारे नितम्बपर वस्त्र हिल रहे हैं वैसे ही मेरी जाँघपर भी पवनसे वस्त्र हिल रहे हैं और जैसे तुम्हारे नितम्ब मेरे नेत्रोंको प्यारे लगते हैं वैसे ही मेरी जाँघें भी तुम्हारी आँखोंको प्यारी लग रही हैं ॥२५॥ मानके थोड़ा कम होते ही वह मृगनयनी एकाएक जो प्रेमसे बोलने लगी, शान्तिपूर्वक ओठका चुम्बन करने लगी और प्रेमसे भौंहें बाँकी करने लगी उससे जान पड़ता है मानो कामदेवने संसारपर साम्राज्य स्थापित कर लिया ॥ २६ ॥ 'हे बहुत बोलनेवाली ! आज तुम इतनी रूखी-रूखी क्यों बोल रही हो ? हे सुन्दर भौंहोंवाली ! तुम्हारी भौंहें ऐसे भयानक रूपसे क्यों फड़क रही हैं ? हे चञ्चल आँखोंवाली ! तुम्हारी आँखें लाल क्यों हैं ? बिना अपराधके ही मुझपर क्यों व्यर्थ ही क्रोध किए बैठी हो ?' प्रियतमके ऐसा कहनेपर रूठी हुई नवेलीने आँसू-भरी आँखोंसे सखियोंकी ओर देखा ॥ २७ ॥ 'सचमुच ऐसा प्यारा प्रियतम पाना बड़ा कठिन है। मैं इससे प्रेम भी बहुत करती हूँ, किन्तु यह क्रोधी है और मेरी सखियाँ भी समझाने-बुझानेमें कुशल नहीं हैं।' यह सोचकर वह मृगनयनी अपने प्रियतमको देखकर अपनी ढीली करधनी कसती हुई आगे नहीं बढ़ी, वहीं ठहर गई और उसने अपने ढीले वस्त्र भी न सँभाले ॥ २८ ॥ सखियोंने नवेलीको जितनी झूठी-झूठी बातें सिखाई थीं उतनी ही बातें अपराधी पतिके सामने शीघ्रतासे कहकर उस नवेलीने कामदेवकी इच्छाके अनुसार व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया । सिधाई ही जिसका भूषण है उस प्रेमका यह एक स्वाभाविक तथा सुन्दर निराला ढङ्ग है ॥ २९ ॥ 'हे सुन्दरी ! क्रोध छोड़ दो, पैर पड़े हुए मुझे देखो, तुम्हारा इस प्रकारका क्रोध तो मैंने कभी नहीं देखा था।' ऐसा प्रियतमके कहते ही तनिक घूमकर नवेली आँखें मूँदकर आँसुओंकी धार बरसाने लगी किन्तु बोली कुछ नहीं ॥ ३० ॥

प्रियतमको चिकनी-चुपड़ी बातें : अनङ्ग (बिना अङ्गका, कामदेव) अपनी अनङ्गताकी आज अवश्य निन्दा करेगा क्योंकि उसने तुम्हारे हाथका स्पर्शरूपी उत्सव नहीं पाया ॥ १ ॥ हे सुन्दर भौंहोंवाली ! पहले जब मैं तुम्हारे साथ नहीं था तो मुझे रात सौगुनी बड़ी जान पड़ती थी। इस समय तुम्हारे साथ रहनेपर भी यदि पहलेकी ही भाँति सौगुनी बढ़ जाती तो मैं धन्य हो जाता ॥ २ ॥ हे निर्दोष अङ्गोंवाली ! तुम्हारे ये दोनों स्तन इतने बढ़ गए हैं कि तुम्हारी दोनों भुजाओंके बीच (वक्षस्थल) में उन्होंने तनिक स्थान नहीं छोड़ा ॥३॥ हे सुन्दरी ! वह पुरुष (मैं) धन्य है जिसने 'मुझे छोड़ दो' ऐसे अस्पष्ट शब्द कहनेवाला तुम्हारा वह मुख चूम लिया जिसकी आँखें चञ्चल थीं, गाल विकसित थे, ओठोंसे मानो अमृत चू रहा था और जिसमें हिलती हुई उँगलियोंके

आधूताङ्गुलिपल्लवाग्रमलमित्यानर्तितभ्रूलतं पीतं येन मुखं त्वदीयमवले सोऽहं हि धन्यो युवा ॥ ४ ॥ अन्तेनार्जुनतां दधाति नयनं मध्ये तथा कृष्णतां द्वैरूप्यं दधताऽमुना विरचिता कर्णेन ते विग्रहः । तत्कर्णार्जुनकृष्णविग्रहवती साक्षात्कुरुक्षेत्रतां यातासि त्वदवाप्तिरेव तरुणि श्रेयः परं गण्यते ॥५॥ अपूर्वं चौर्यमभ्यस्तं त्वया चञ्चललोचने । दिवैव जाग्रतां पुंसां चेतो हरसि दूरतः ॥ ६ ॥ अयि मन्मथचूतमञ्जरि श्रवणायतचारुलोचने । अपहृत्य मनः क्व यासि तत्किमराजकमत्र राजते ॥ ७ ॥ आकर्णय सरोजाक्षि वचनीयमिदं भुवि । शशाङ्कस्तव वक्त्रेण पामरैरुपमीयते ॥ ८ ॥ आक्षिपन्त्यरविन्दानि मुग्धे तव मुखश्रियम् । कोपदण्डसमग्राणां किमेषामस्ति दुष्करम् ॥ ९ ॥ आक्षिपसि कर्णमक्ष्णा वलिरपि बद्धस्त्वया त्रिधा मध्ये । इति जितसकलवदान्ये तनुदाने लज्जसे सुतनु ॥ १० ॥ आरुह्य शैलशिखरं त्वद्वदनापहृतकान्तिसर्वस्वः । पूत्कर्तुमिवोर्ध्वकरः स्थितः पुरस्तान्निशानाथः ॥ ११ ॥ आवर्त एव नाभिस्ते नेत्रे नीलसरोरुहे । तरङ्गा वलयस्तेन त्वं लावण्याम्बुवापिका ॥ १२ ॥ इन्दुः किं क्व कलङ्कः सरसिजमेतत्किमम्बु कुत्र गतम् । ललितसविलासवचनैर्मुखमिति हरिणाक्षि निश्चितं परतः ॥ १३ ॥ उचितं गोपनमनयोः कुचयोः कनकाद्रिकान्तितस्करयोः । अवधीरितविधुमण्डलमुखमण्डलगोपनं किमिति ॥ १४ ॥ उद्भिन्ना कलकण्ठकण्ठकुहरात् कर्णामृतस्यन्दिनी हृद्या यद्यपि मार्दवैकवसतिः सा काकलीहुङ्कृतिः । अन्यस्तन्वि तथाऽपि ते त्रिणयनप्लुष्टस्य जीवार्पणः पञ्चेषोरुचितप्रपञ्चितरसः पाकाश्रितः पञ्चमः ॥ १५ ॥ उन्मेषं यो मम न सहते जातिवैरी निशायामिन्दोरिन्दीवरदलदृशा तस्य सौन्दर्यदर्पः । नीतः शान्तिं प्रसभमनया वक्त्रकान्त्येति

साथ भौंहें भी नाच-सी रही थीं ॥ ४ ॥ हे तरुणि ! तुम्हारे नेत्र आस-पास तो अर्जुन (उजले) हैं और बीचमें कृष्ण (काले) हैं। इस प्रकार दो रूप धारण करनेवाले कर्ण (कान) ने तुम्हारी देह ऐसी सजा दी है कि तुम कर्ण, अर्जुन और कृष्णसे युक्त साक्षात् कुरुक्षेत्र हो रही हो। इसलिये तुम्हें पा लेनेसे परम कल्याण मिल जाता है ॥ ५ ॥ हे चञ्चल आँखोंवाली ! तुमने यह कोई निराले ढङ्गकी चोरी सीखी है कि दिनदहाड़े जागते हुए लोगोंके मनको दूरसे ही लूट लेती हो ॥ ६ ॥ हे कामदेव-रूपी आमकी मञ्जरी (बौर) तथा कानोंतक फैले हुए सुन्दर नेत्रोंवाली ! तुम हमारे मनको चुराकर कहाँ भागी जा रही हो ! क्या यहाँ लूट मची हुई है ? ॥ ७ ॥ हे कमलके समान आँखोंवाली ! सारे संसारमें फैली हुई यह निन्दाकी बातको तो सुनो कि मूर्ख लोग चन्द्रमाको तुम्हारे मुँहके समान बतला रहे हैं ॥ ८ ॥ हे सुन्दरी ! कमल यदि तुम्हारे मुखकी कान्तिकी निन्दा किया करें तो ठीक है क्योंकि इनके पास तो कोष (खजाना, कमलका भीतरी भाग) और दण्ड (कमल, सेना) दोनों ही हैं फिर इनके लिये क्या कठिन रह जाता है ॥ ९ ॥ तुमने अपनी आँखोंके फैलावसे कर्ण (कान, राजा कर्ण) को दबा रक्खा है और पेटमें तीन बार वलि (सिकुड़न, राजा वलि) को बाँधा है, इस प्रकार सभी दाताओंको जीतनेवाली हे सुन्दरी ! तुम मुझे अपना शरीर सौंपनेमें क्यों सकुचा रही हो ? ॥ १० ॥ तुम्हारे मुखने जिसकी सुन्दरता छीन ली है वह चन्द्रमा पहाड़की चोटीपर चढ़कर दुःखसे अपने कर (हाथ, किरण) उठा-उठाकर मानो सामने खड़ा हाहाकार कर रहा है ॥ ११ ॥ जान पड़ता है तुम सुन्दरता-रूपी जलकी बावड़ी हो क्योंकि तुम्हारी नाभि ही आवर्त्त (भँवर) है, नेत्र ही नीले कमल हैं और पेटकी सिकुड़न ही लहरें हैं ॥ १२ ॥ हे मृगनयनी ! तुम्हारा मुख देखकर पहले तो लोग यह तर्क करने लगे कि 'क्या यह चन्द्रमा है ? यदि हाँ, तो इसका कलङ्क कहाँ है ? तो क्या यह कमल है ? यदि हाँ, तो इसका पानी कहाँ चला गया ?' फिर जब सुन्दर हाव-भावसे भरी हुई बातें सुनीं तब कहीं उन्होंने निश्चय किया कि यह मुख ही है ॥ १३ ॥ सोनेके पहाड़ (सुमेरु) की शोभा चुरानेवाले इन स्तनोंको छिपा लेना तो उचित है किन्तु अपनी शोभासे चन्द्रमण्डलको छिपा देना कहाँतक उचित है ? ॥ १४ ॥ कोयलके गलेसे निकलनेवाली तथा अमृत बहाती हुई अत्यन्त कोमल कूक यद्यपि अत्यन्त मनोहर होती है किन्तु हे दुबली-पतली देहवाली ! शिवजीके तीसरे नेत्रसे जलकर भस्म हुए कामदेवको भी जिला देनेवाली तथा अनोखे रससे भरी हुई तुम्हारी बोली कुछ निराली ही है ॥ १५ ॥ 'जन्मका वैरी यह चन्द्रमा जो रातमें मेरा खिलना नहीं सह सकता उसकी सुन्दरताके अभिमानको इस कमलनयनी नवेलीने अपने मुखकी सुन्दरतासे बलपूर्वक चूर-चूर कर डाला ।' इसी प्रसन्नतासे हे

हर्पाल्लग्ना मन्ये ललिततनु ते पादयोः पद्मलक्ष्मीः ॥ १६ ॥ एको हि खञ्जनवरो नलिनीदलस्थो दृष्टः करोति चतुरङ्गबलाधिपत्यम् । किंवा करिष्यति भवद्वदनारविन्दे जानामि नो नयनखञ्जनयुग्ममेतत् ॥ १७ ॥ कमलाक्षि विलम्ब्यतां क्षणं कमनीये कचभारबन्धने । दृढलग्नमिदं दृशोर्युगं शनकैरद्य समुद्धराम्यहम् ॥ १८ ॥ कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते । बाले तव मुखाम्भोजे दृष्टमिन्दीवरद्वयम् ॥ १९ ॥ कम्बुकण्ठि चरणः शनैश्चरो राहुरेष तव केशकलापः । न च्युतं तदपि यौवनमेतत्सा पयोधरगुरोरनुकम्पा ॥ २० ॥ काश्मीरद्रवगौरि हन्त किमयं भूयोऽङ्गरागे ग्रहः को वा नीलसरोरुहाक्षि नितरां नेत्राञ्जने सम्भ्रमः । रक्ताशोकदलोपमेयचरणे किं लाक्षया दत्तया नो रागान्तरमीहते निजरुचा विभ्राजमानो मणिः ॥ २१ ॥ किं पद्मस्य रुचिं न हन्ति नयनानन्दं विधत्ते न किं वृद्धिं वा झषकेतनस्य कुरुते नालोकमात्रेण किम् । वक्त्रेन्दौ तव सत्ययं यदपरः शीतांशुरुज्जृम्भते दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तदप्यस्त्येव बिम्बाधरे ॥ २२ ॥ कुतः कुवलयं कर्णे करोषि कलभाषिणि । किमपाङ्गमपर्याप्तमस्मिन्कर्मणि मन्यसे ॥ २३ ॥ कुमुदकमलनीलनीरजालिर्ललितविलासजुषोर्दृशोः पुरः का । अमृतममृतरश्मिरम्बुजन्म प्रतिहतमेकपदे तवाननस्य ॥ २४ ॥ कृष्णार्जुनानुरक्तापि दृष्टिः कर्णावलम्बिनी । याति विश्वसनीयत्वं कस्य ते कलभाषिणी ॥ २५ ॥ केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने ह्यन्तर्वक्त्रमपि स्वभावशुचिभिः कीर्णं द्विजानां गणैः । मुक्तानां सततं निवासरुचिरं वक्षोजकुम्भद्वयं चेत्थं तन्वि वपुः प्रशान्तमपि ते रागं करोत्येव नः ॥ २६ ॥ कोपस्त्वया हृदि कृतो यदि पङ्कजाक्षि सोऽस्तु प्रियस्तव

सुन्दरी ! कमलकी शोभा मानो तुम्हारे पैरोंमें आ लिपटी है ॥ १६ ॥ यदि कमलकी पङ्खड़ीपर एक ही खञ्जन बैठे देख लेनेपर तो मनुष्य चतुरंगिणी (हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल) सेनाका स्वामी (राजा) बन बैठता है किन्तु यहाँ तुम्हारे मुख-कमलपर तो दो-दो नेत्र-रूपी खञ्जन दिखाई पड़ रहे हैं। देखिए हमें इसका क्या फल मिलता है ! ॥ १७ ॥ हे कमल-नयनी ! अपने सुन्दर बाल कुछ और देरतक बाँधती रहो जिससे उन बालोंमें उलझी हुई दृष्टिको मैं धीरे-धीरे उतार सकूँ ॥ १८ ॥ हे नवेली ! यह तो सुना जाता है कि कमलसे कमल उत्पन्न होता है किन्तु देखा नहीं जाता पर तुम्हारे मुख-कमलसे तो दो नीले कमल (नेत्र) निकलते प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं ॥१९॥ हे शङ्खके समान कण्ठवाली ! तुम्हारे पैर शनैश्चर (शनि ग्रह, धीरे चलनेवाले) और केश राहु हैं, फिर भी विशाल स्तन-रूपी बृहस्पतिकी कृपाके फलसे ही यौवनकी हानि नहीं हो रही है। (जिसकी कुण्डलीमें बृहस्पति अच्छे स्थानमें रहता है उसपर नीच ग्रहका कुप्रभाव नहीं पड़ता) ॥ २० ॥ हे केसरके लेपके समान गोरे अङ्गवाली ! तुम शरीरमें उबटन लगानेके लिये हठ क्यों कर रही हो ? हे नीले कमलके समान आँखोंवाली ! तुम आँखोंमें आँजन लगानेका प्रयत्न क्यों कर रही हो ? हे लाल अशोकके पत्तेके समान चरणवाली ! पैरोंमें महावर लगानेसे क्या लाभ होगा ! क्योंकि अपनी ही कान्तिसे चमकनेवाले मणिको बनावटी रङ्गकी आवश्यकता थोड़े ही पड़ती है ? ॥२१॥ तुम्हारा मुखचन्द्र क्या कमलोंकी कान्ति मलिन नहीं कर देता ? क्या वह आँखोंको आनन्द नहीं देता ? क्या वह देखने भरसे कामदेवको नहीं उकसा देता ? फिर इसके रहते दूसरे चन्द्रमाके उदय होनेकी क्या आवश्यकता आ पड़ी ? क्योंकि यदि उसे अमृतपर घमण्ड हो तो वह भी तुम्हारे ओठोंमें भरा ही है ॥ २२ ॥ हे मधुर बोलनेवाली ! तुमने कानोंपर नीले कमल क्यों लटका रक्खे हैं ? क्या तुम्हारी आँखोंके कोर उससे किसी बातमें कम हैं ? ॥ २३ ॥ हे सुन्दरी ! चित्तको खींचनेवाली क्रियाओंसे भरी तुम्हारी आँखोंके सामने कोई, कमल और नीले कमलकी क्या बिसात है जब अमृत, चन्द्रमा तथा कमल सभी तुम्हारे मुखसे एक साथ पराजित हो गए हैं ॥ २४ ॥ हे मधुर बोलनेवाली ! कृष्ण तथा अर्जुन (साँवले और उजलेपन) पर प्रेम रखनेवाली (से भरी) तुम्हारी चितवन कर्ण (कान) का सहारा ले रही है (तक फैली हुई है) तब इसपर कौन विश्वास कर सकता है ? (आँखें उजली, काली तथा लाल हैं और कानोंतक फैली हुई हैं) ॥ २५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे बाल बँधे हुए (नियम-आचारसे रहनेवाले) हैं, आँखें श्रुति (कान, वेद) के पारतक पहुँची हुई हैं, तुम्हारे मुखके भीतर जन्मसे ही स्वच्छ द्विज (दाँत, ब्राह्मण) भरे हुए हैं और तुम्हारे दोनों स्तन मुक्त (मोतियों, जीवन्मुक्तों) के निवासस्थान हैं। इस प्रकार तुम्हारा परम

किमत्र विधेयमन्यत् । आश्लेषमर्पय मदर्पितपूर्वमुच्चैर्दन्तक्षतं मम समर्पय चुम्बनञ्च ॥ २७ ॥ कौटिल्यं कचनिचये करचरणाधरदलेषु रागस्ते । काठिन्यं कुचयुगले तरलत्वं नयनयोर्वसति ॥ २८ ॥ गोत्रे साक्षादजनि भगवानेष यत्पद्मयोनिः शय्योत्थायं यदखिलमहः प्रीणयन्ति द्विरेफान् । एकाग्रां यद्वहति भगवत्युष्णभानौ च भक्तिं तत्प्रापुस्ते सुतनु वदनौपम्यमम्भोरुहाणि ॥ २९ ॥ जघान बाणैर्दशभिर्दशास्यशिरांसि सीताहरणे स रामः । त्वदङ्गसङ्गाय सदानुरक्ते प्रयातु मे मस्तकमेकमेव ॥ ३० ॥ तन्वि त्वद्वदनस्य विभ्रमलवं लावण्यवारांनिधेरिन्दुः सुन्दरि दुग्धासिन्धुलहरीविन्दुः कथं विन्दतु । उत्कल्लोलविलोचने क्षणमयं शीतांशुरालम्बतामुन्मीलन्नवनीलनीरजवनीखेलन्मरालश्रियम् ॥ ३१ ॥ तल्लोकोऽतिशयोक्तिमेव वदतु स्तोत्रं पुनर्मन्यतां स्रष्टुं त्वां सुभगे चकार मदनो भूतानि चैतानि यत् । पृथ्वी चम्पकपारिजातममृतं पाथो महः शारदः प्रालेयांशुरथानिलो मलयभूर्ज्योत्स्नावलिप्तं नभः ॥ ३२ ॥ तव कुवलयाक्षि वक्षसि कुण्डलिता कापि काञ्चनी कान्तिः । कुसुमेषोर्विजिगीषोर्भवति च भवतीह भूयसी कण्डूः ॥ ३३ ॥ तवाननं सुन्दरि फुल्लपङ्कजं स्फुटं जपापुष्पमसौ तवाधरः । विनिद्रपद्मं तव लोचनद्वयं तवाङ्गमन्यत्किल पुष्पसञ्चयः ॥ ३४ ॥ ताम्बूलरागोऽधरलोलुपो यद्यदञ्जनं लोचनचुम्बनोत्सुकम् । हरश्च कण्ठग्रहलालसो यत्स्वार्थः स तेषां न तु भूषणं ते ॥ ३५ ॥ त्वदङ्गमार्दवे दृष्टे कस्य चित्ते न भासते । मालतीशशभृल्लेखाकदलीनां कठोरता ॥ ३६ ॥ त्वद्वर्तुलस्थूलसुवर्णकान्ति रम्यस्तनश्रीफलयुग्ममेतत् । दृष्ट्वा वने श्रीफलमाकुलं किं लज्जाभिरालम्बितमेव वृक्षे ॥ ३७ ॥ दलदमलकोमलोत्पलपलाशशङ्काकुलोऽयमलिपोतः । तव लोचनयोरनयोः परिसरमनुवेलमनुसरति ॥ ३८ ॥ दलितकुचनखा

शान्त शरीर देखकर भी मुझे अनुराग हो रहा है ॥ २६ ॥ हे कमलनयनी ! मनमें जो तुमने क्रोध किया है यदि वह तुम्हें प्यारा हो तो ठीक है, मुझे इस विषयमें कुछ नहीं कहना है, किन्तु इससे पहले जो मैंने तुम्हें गले लगाया, ओठोंपर दन्तक्षत किए तथा चुम्बन किया वह सब मुझे लौटा दो ॥२७॥ तुम्हारे बालोंमें बाँकापन, हाथ, पैर तथा ओठपर ललाई, दोनों स्तनोंमें कठोरता और आँखोंमें चञ्चलता बसी हुई है ॥ २८ ॥ हे सुन्दरी ! जिसके वंशमें साक्षात् ब्रह्माने ही जन्म लिया है, जो प्रातःकाल जागकर सारा दिन भौंरोंको तृप्त किया करता है और सदा एकाग्रचित होकर भगवान् सूर्यकी भक्ति करता रहता है उस कमलने अपनी तपस्याके बलपर ही तुम्हारे मुखकी समता पाई है ॥ २९ ॥ सीताजीको जब रावण हर ले गया तब रामचन्द्रजीने उसके दसों सिर दस बाणोंसे काट डाले किन्तु तुम्हें पानेके लिये तो मैं सदा ही ललचाया रहता हूँ अतः मुझे एक सिर चले जानेकी कोई चिन्ता नहीं है ॥ ३० ॥ हे दुबले शरीरवाली ! तुम्हारा मुख तो सुन्दरताका समुद्र है, अतः 'क्षीरसागरकी एक बूँदके समान यह चन्द्रमा भला उसकी सुन्दरता कैसे पा सकता है ? हे चञ्चल नेत्रवाली सुन्दरी ! नीले आकाशमें रहनेवाला यह चन्द्रमा खिले हुए नीले कमलके वनमें क्रीड़ा करता हुआ हंस ही बना रहे ॥ ३१ ॥ हे सुन्दरी ! इसे संसार भले ही बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई बात माने किन्तु तुम इसे सच्ची स्तुति ही समझो कि कामदेवने तुम्हें बनानेके लिये पाँचों महाभूतोंसे इतनी वस्तुएँ रच डालीं कि पृथ्वीसे चम्पा और पारिजात, जलसे अमृत, तेजसे शरद्का चन्द्रमा, पवनसे पाला और चन्दन तथा चाँदनीसे सारा आकाश छा दिया ॥३२॥ हे कमलनयनी ! तुम्हारी छातीमें कुछ ऐसी निराली सुन्दरता जमकर बैठी हुई है कि उसके बलपर संसारको जीतनेके लिये कामदेवका शरीर सदा खुजलाता ही रहता है ॥ ३३ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख तो खिला हुआ कमल है, तुम्हारा ओठ जपाकुसुमका फूल है, तुम्हारी दोनों आँखें खिले हुए नीले कमल हैं और तुम्हारे दूसरे अङ्ग खिले हुए दूसरे-दूसरे फूल हैं ॥ ३४ ॥ हे प्यारी ! पानकी ललाई जो तुम्हारे ओठपर ललचाती है, अञ्जन जो आँखोंको चूमनेके लिये ललचता रहता है और हार जो तुम्हारे गलेमें लटके रहनेको तरसता रहता है यह सब उनका अपना स्वार्थ है, उनसे तुम्हारी कोई शोभा नहीं होती ॥ ३५ ॥ तुम्हारे अङ्गोंकी कोमलता देखकर मालती, चन्द्रमाकी कला तथा केला किसे कठोर नहीं जान पड़ते ॥ ३६ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारे गोल-गोल, मोटे-मोटे तथा सोनेके समान पीले-पीले स्तनरूपी दोनों बेल देखकर ही क्या ये बेल दुखी होकर लाजके कारण वनमें जाकर पेड़पर लटके हुए हैं ? ॥ ३७ ॥ यह भौंरेका बच्चा तुम्हारी आँखको खिले

ङ्कमङ्कपालिं रचय समाङ्कमुपेत्य पीवरोरु। अनुहर हरिणाक्षि शङ्कराङ्कस्थितहिमशैलसुताविलासलक्ष्मीम् ॥ ३९ ॥ दासे कृतागसि भवेदुचितः प्रभूणां पादप्रहार इति मानिनि नास्मि दूये। उद्यत्कठोरपुलकाङ्कितकण्टकाग्रैर्यच्छिद्यते तव पदं ननु सा व्यथा मे ॥४०॥ दिनकरकरामृष्टं बिभ्रद्द्युतिं परिपाटलां दशनकिरणैरुत्सर्पद्भिः स्फुटीकृतकेसरम्। अयि मुखमिदं मुग्धे सत्यं समं कमलेन ते मधु मधुकरः किं त्वेतस्मिन्पिबन्न विभाव्यते ॥ ४१ ॥ दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यान्वितं गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम्। रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवावहो विबुधयौवनं वहसि तन्वि पृथ्वीगता ॥ ४२ ॥ दृष्टिं देहि पुनर्बाले कमलायतलोचने। श्रूयते हि पुरा लोके विषस्य विषमौषधम् ॥ ४३ ॥ द्वेधा विधाय विधुमण्डलमानताङ्गि कर्तुं विधातरि कपोलयुगं प्रवृत्ते। तत्खण्डयुग्मगलितामृतबिन्दुपङ्क्तिसन्दोहवत्तव विराजति हारवल्ली ॥ ४४ ॥ धत्ते बर्हभरे शिखी तव न किं धम्मिल्लभारश्रियं सारङ्गो भजते न किं तव दृशोः सौभाग्यमालोकते। मत्तेभश्च शिरःपदे वहति ते वक्षोजलक्ष्मीं न किं तन्मन्ये तरुणि त्वया वितृणुते साम्यं वनश्रीरियम् ॥ ४५ ॥ न तावद्बिम्बोष्ठः स्फुरति न च रागोऽयमधरे न चामी ते दन्ताः सुदति जितकुन्देन्दुमहसः। इमां मन्ये मुद्रामतनुतरसिन्दूरसुभगामिदं मुक्तारत्नं मदननृपतेर्मुद्रितमिव ॥ ४६ ॥ नयननिपातेऽङ्कुरितः पल्लवितो वचसि पुष्पितो हसिते। फलतु कृशाङ्गि तवाङ्गस्पर्शेन मनोरथोऽस्माकम् ॥४७॥ नारब्धं कुचपरिरम्भणेषु वाम्यं वैमुख्यं किमपि न चुम्बने कदाचित्। किं नीवीगतमवले रुणत्सि

हुए निर्मल कोमल कमलकी पंखुड़ी समझकर बार-बार उसीपर टूटा पड़ रहा है ॥ ३८ ॥ हे मोटी जाँघोंवाली! मेरी गोदमें आकर, नखचिह्नोंसे सुशोभित अपने स्तनोंसे दबाकर मुझे लिपटा लो। हे मृगनयनी! अब तुम शिवजीकी गोदमें बैठी हुई पार्वतीजीके समान ही सुन्दर व्यवहार करो ॥ ३९ ॥ हे क्रोध करनेवाली! सेवक यदि अपराध करता है तो उसे लातसे मारना स्वामीके लिये उचित ही है, इसमें मुझे कोई दुःख नहीं है। मुझे दुःख तो इस बातका है कि मेरे कठोर बालरूपी उठे हुए काँटोंसे तुम्हारे पैर छिदे जा रहे हैं ॥ ४० ॥ हे सुन्दरी! तुम्हारे जिस मुखकी शोभा सूर्यकी किरणोंकी चमकसे लाल है और जिसमें दाँतोंसे निकलनेवाली किरणें ही केसरके समान दिखाई दे रही हैं ऐसा तुम्हारा मुख दिखाई तो कमलके समान दे रहा है किन्तु उसमें रस पीनेवाले भौंरे क्यों नहीं दिखाई दे रहे हैं? ॥ ४१ ॥ हे दुबली-पतली! तुम्हारी आँखें यौवनके मदसे अलसाई हुई हैं (मदालसा नामकी अप्सरा हैं), तुम्हारा मुख अपनेको चन्द्रमा समझे बैठा है (इन्दुमती नामकी अप्सरासे युक्त है), तुम्हारी चाल सभी लोगोंको प्यारी लगती है (मनोरमा है), तुम्हारी जाँघोंने अपनेमें केलेके खम्भे बसा रक्खे हैं (रम्भा नामकी अप्सरा हैं), तुम्हारे प्रेममें विचित्र कलाएँ हैं (तुम कलावती हो) और तुम्हारी भौंहोंकी रेखा बाँकी तथा सुन्दर है (चित्रलेखा नामकी अप्सरा है), इस प्रकार तुम रहती तो धरतीपर हो किन्तु अपनी देहमें स्वर्गकी सारी अप्सराएँ बसाए बैठी हो ॥ ४२ ॥ हे कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली नवेली! एक बार फिर भी मेरी ओर देख तो दो। बहुत पहलेसे ही यह बात सुनी जाती है कि विषसे ही विष नष्ट होता है अर्थात् विछोहका दुःख भी विष है और तुम्हारी चितवन भी विषके समान ही लोगोंको मूर्च्छित कर देती है ॥ ४३ ॥ हे झुके हुए अङ्गोंवाली! तुम्हारी छातीपर लहराती हुई हारकी लड़ियाँ ऐसी दिखाई दे रही हैं मानो ब्रह्मा जब चन्द्रमण्डलको बीचसे दो टुकड़े करके तुम्हारे गाल बनाने लगे उस समय उन दोनों टुकड़ोंसे टपकी हुई अमृतकी बूँदें हों ॥ ४४ ॥ क्या यह मोर अपनी पूँछमें तुम्हारे बालोंकी चमक नहीं धारण कर रहा है? क्या हरिण भी अपनी आँखोंमें तुम्हारी आँखोंकी कान्ति नहीं धारण कर रहे हैं? और क्या यह मतवाला हाथी भी अपने मस्तकपर तुम्हारे स्तनकी शोभा नहीं धारण कर रहा है? हे तरुणी! यह सब देखकर तो ऐसा जान पड़ रहा है मानो यह वन-लक्ष्मी तुम्हारी बराबरी करनेका स्वाँग रच रही हो ॥ ४५ ॥ हे सुन्दर दाँतोंवाली! तुम्हारे मुँहमें ये ओठ न तो तुम्हारे बिम्ब फलके समान हैं, न इनमें यह ललाई है और न दाँत ही कुन्द तथा चाँदनीको जीतनेवाले हैं। मैं तो समझता हूँ कि यह महाराज कामदेवकी सिन्दूरसे रची हुई वह मुद्रा है जिसमें उन्होंने मोती और रत्न रखकर मुहर मार दी है ॥ ४६ ॥ मेरे मनोरथ-रूपी बीजपर तुम्हारी चितवन पड़ते ही अङ्कुर आ

पाणि विक्रीते करिणि किमङ्कुशे विवादः ॥ ४८ ॥ निर्णेतुं शक्यमस्तीति तव मध्यं नितम्बिनि। अन्यथा नोपपद्येत पयोधरभरस्थितिः ॥ ४९ ॥ नीतानामाकुलीभावं लुब्धैर्भूरिशिलीमुखैः। सदृशे वनवृद्धानां कमलानां त्वदीक्षणे ॥ ५० ॥ पद्मातपत्ररसिके सरसोरुहस्य किं बीजमर्पयितुमिच्छसि वापिकायाम्। कालः कलिर्जगदिदं न कृतज्ञमज्ञे स्थित्वा हरिष्यति मुखस्य तवैव लक्ष्मीम् ॥ ५१ ॥ पातालमिव ते नाभिः स्तनौ क्षितिधरोपमौ। वेणीदण्डः पुनरयं कालिन्दीपातसन्निभः ॥ ५२ ॥ पादास्त एव शशिनः सुखयन्ति गात्रं बाणास्त एव मदनस्य ममानुकूलाः। संरम्भरूक्षमिव सुन्दरि यद्यदासीत्त्वत्सङ्गमेन मम तत्तदिवानुनीतम् ॥ ५३ ॥ प्रिये सदा पूर्णतरं मनोहरं ते निष्कलङ्कं मुखचन्द्रमण्डलम्। विलोक्य सव्रीडतया निशापतिर्गतः प्रतप्तो जलधेर्जलान्तरम् ॥ ५४ ॥ बन्धूकद्युतिबान्धवोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छविर्गण्डे चण्डि चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम्। नासाभ्येति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः ॥ ५५ ॥ बाले तवाधरसुधारसपानकाले चेतो मदीयमभिवाञ्छति शेषभावम्। आलिङ्गने तव विरोचनपौत्रभावमाखण्डलत्वमखिलाङ्गनिरीक्षणे ते ॥ ५६ ॥ बिम्बोष्ठ एव रागस्ते तन्वि पूर्वमदृश्यत। अधुना हृदयेऽप्येष मृगशावाक्षि दृश्यते ॥ ५७ ॥ भवत्कृते खञ्जनमञ्जुलाक्षि शिरो मदीयं यदि याति यातु। नीतानि नाशं जनकात्मजार्थं दशाननेनापि दशाननानि ॥ ५८ ॥ भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथां श्यामात्मा कुटिलः करोतु कबरीभारोऽपि मारोद्यमम्। मोहं तावदयं च तन्वि तनुतां बिम्बाधरो रागवान्सद्वृत्तः स्तनमण्डलस्तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति

गए, तुम्हारे बोलते ही पत्ते लग गए और हँसते ही फूल भी लग गए। हे दुबले-पतले अङ्गोंवाली! अब मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा शरीरका स्पर्श पाकर उसमें फल भी लग जायँ ॥४७॥ हे सुन्दरी! न तो तुमने स्तन-मर्दन करते समय ही ना-नू किया और न तो चूमते समय ही इधर-उधर किया, अब नाड़ेपर बढ़ा हुआ हाथ क्यों रोक रही हो? हाथी बिक जानेपर अङ्कुशके लिये झगड़ा कैसा? ॥ ४८ ॥ हे सुन्दर नितम्बवाली! यदि तुम्हारे कमर न होती तो ये बड़े-बड़े स्तन बिना आधारके कैसे लटके रहते! यही इस बातका सबसे बड़ा प्रमाण है कि तुम्हारे कमर है ॥ ४९ ॥ हे सुन्दरी! लालची भौंरोंसे घिरे हुए और जलमें बढ़े हुए कमलोंके समान तुम्हारी आँखें ऐसी हैं जैसी बहेलियोंके बाणसे घबराई हुई और जंगलमें पली हुई हरिणियोंकी आँखें होती हैं ॥५०॥ हे कमलका छत्र चाहनेवाली! तुम बावड़ीमें कमलके बीज क्यों बोए दे रही हो! अरी बेसमझ! यह कलियुग है, आजकल संसार में कोई उपकार नहीं मानता! ये कमल इस बावड़ीमें उगकर तुम्हारे ही मुखकी शोभा घटाने लगेंगे ॥ ५१ ॥ तुम्हारी नाभि तो पातालके समान गहरी है, स्तन पहाड़के समान ऊँचे हैं और बाल यमुनाके जलके समान काले हैं ॥ ५२ ॥ हे सुन्दरी! वे ही चन्द्रमाकी किरणें इस समय सुख दे रही हैं और वही कामके बाण इस समय हमें भले लग रहे हैं (जो तुम्हारे विछोहमें घातक थे)। इतना ही नहीं, तुम्हारे न रहनेपर जो-जो वस्तुएँ कष्ट दे रही थीं वे सब तुम्हारे साथ रहनेपर सुखदायी हो गई हैं ॥ ५३ ॥ हे प्रिये! तुम्हारे इस सदा पूर्ण रहनेवाले सुन्दर और कलंक-रहित मुख-रूपी चन्द्रमण्डलको देखकर यह चन्द्रमा लज्जासे दुखी होकर समुद्रके जलमें घुसा जा रहा है ॥ ५४ ॥ हे प्रिये! तुम्हारे ओठोंमें जपाकुसुमकी लाली है। तुम्हारे चिकने गाल महुएके फूलके समान सुन्दर हैं, तुम्हारे नेत्र भी नीले कमलकी शोभा घटा रहे हैं, तुम्हारी यह नाक भी तिलके फूलके समान है और तुम्हारे दाँत भी कुन्दके फूलके समान हैं इसलिये केवल तुम्हारे मुखमें ही अपनी सारी सामग्री पाकर फूलके बाण धारण करनेवाला कामदेव संसारको जीते जा रहा है ॥ ५५ ॥ हे बाले! तुम्हारा अधरामृत पीते समय यदि कहीं मैं सहस्र जीभोंवाला शेषनाग बन जाता, आलिङ्गनके समय सहस्र बाँहोंवाला बाणासुर बन जाता और देखते समय सहस्र आँखोंवाला इन्द्र बन जाता तो कितना अच्छा होता! ॥ ५६ ॥ हे दुबले देहवाली नवेली! पहले तो तुम्हारे ओठ ही बिम्बाके समान लाल थे पर हे मृगनयनी! इस समय तो तुम्हारे हृदयमें भी राग (प्रेम, ललाई) दिखाई दे रहा है ॥ ५७ ॥ हे खञ्जनके समान चञ्चल आँखोंवाली! तुम्हारे लिये यदि मेरा सिर भी उतर जाय तो मुझे चिन्ता नहीं। क्या सीताके लिये रावणके दसों सिर नष्ट नहीं हो गए थे? ॥ ५८ ॥ हे नवेली! तुम्हारी भौंह-रूपी धनुषपर रक्खे हुए तिरछी चितवन

॥ ५६ ॥ मालिन्यमब्जशशिनोर्मधुलिट्कलङ्कौ धत्तो मुखे तु तव दृक्तिलकाञ्जनाभाम्। दोषावितः क्वचन मेलनतो गुणत्वं वक्तुर्गुणो हि वचसि भ्रमविप्रलम्भौ ॥ ६० ॥ मुग्धे धानुष्कता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते। यया विध्यसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः ॥ ६१ ॥ मृदुलकनककान्ति श्वाससौरभ्यरम्यं वदनकमलमेतन्नेत्रमत्तद्विरेफम्। तव किमु सुसमीक्ष्य व्रीडया पद्मवृन्दं सरसि सलिलपूर्णे मर्तुकामं विवेश ॥ ६२ ॥ म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि। एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥ ६३ ॥ यः प्रागासीदभिनववयोविभ्रमावाप्तजन्मा चित्तोन्माथी विगतविषयोपप्लवानन्दसान्द्रः। वृत्तीरन्तस्तिरयति तवाश्लेषजन्मा स कोऽपि प्रौढप्रेमा नव इव पुनर्मान्मथो मे विकारः ॥ ६४ ॥ यत्पद्ममादित्सु तवाननीयां कुरङ्गलक्ष्मा च मृगाक्षि लक्ष्मीम्। एकार्थलिप्साकृत एव मन्ये शशाङ्कपङ्केरुहयोर्विरोधः ॥ ६५ ॥ यथा वहिः कण्टकितं वपुस्तव नितम्बिनि। तथा निष्कण्टकं राज्यं वर्तते ऽन्तर्मनोभुवः ॥ ६६ ॥ यन्मध्यदेशादपि ते सूक्ष्मं लोलाक्षि दृश्यते। मृणालसूत्रमपि ते न सम्माति स्तनान्तरे ॥ ६७ ॥ ये ये खञ्जनमेकमेव कमले पश्यन्ति दैवात्क्वचित्ते सर्वे कवयो भवन्ति सुतरां प्रख्यातभूमीभुजः। त्वद्वक्त्राम्बुजनेत्रखञ्जनयुगं पश्यन्ति ये ये जनास्ते ते मन्मथबाणजालविकला मुग्धे किमत्यद्भुतम् ॥ ६८ ॥ राकाविभावरीकान्तसंक्रान्तद्युति ते मुखम्। तपनीयशिलाशोभी कटिश्च हरते मनः ॥ ६९ ॥ लावण्यपूरपरिपूरितदिङ्मुखेऽस्मिन्स्मेरेऽधुना तव मुखे तरलायताक्षि। क्षोभं यदेति न मनागपि तेन मन्ये सुव्यक्तमेव जडराशिरयं पयोधिः ॥ ७० ॥ लावण्यामृतवर्षिणि प्रतिदिशं

रूपी बाण हृदयपर भले ही चोट करें, काले तथा घुँघराले बाल भले ही मार डालनेका प्रयत्न करें, ये डाह करनेवाले लाल-लाल ओठ भले ही लोगोंको मूर्च्छित कर दें परन्तु ये तुम्हारे गोल-गोल (सदाचारी) स्तन भला हमारे प्राणोंके साथ क्यों खेलवाड़ किए जा रहे हैं ? ॥ ५६ ॥ भौंरा तो कमलको कसमसा देता है और कलङ्क भी चन्द्रमाको कलङ्कित कर देता है पर वे ही तुम्हारे मुखपर पहुँचकर आँखें, काली बिन्दी और आँजन बन जाती हैं। सच है, कहीं-कहीं दोष भी मिलकर गुण बन जाते हैं जैसे बोलनेवालेकी वाणीमें भूल और धोखा भी गुण समझा जाता है ॥ ६० ॥ हे भोली-भाली नवेली ! यह तुमने धनुष चलानेकी नई कला कहाँसे सीख ली है कि विना बाण चलाए केवल गुण (धनुषकी डोर, सुन्दरता आदि गुण) से ही मनको वेध डालती हो ॥ ६१ ॥ कहो ! तुम्हारा यह कोमल, सोनेके समान चमकीला, श्वासकी सुगन्धसे मनोहर तथा नेत्र-रूपी मतवाले भौंरोंसे भरा हुआ मुखकमल देखकर ही तो कमल लज्जाके मारे जलसे भरे हुए तालाबमें डूब मरनेकी इच्छासे नहीं घुस गया है ? ॥ ६२ ॥ हे कमलके समान आँखोंवाली ! मुर्झाए हुए प्राणरूपी फूलको खिलानेवाले, तृप्त कर देनेवाले तथा सभी इन्द्रियोंको मोहनेवाले ये तुम्हारे वचन मेरे कानोंके लिये अमृत और मनके लिये सञ्जीवनी बूटी हैं ॥ ६३ ॥ तुम्हारी इस नई अवस्थाके हाव-भावसे पहले जिसका जन्म हुआ और सफल न होनेके कारण जो मनमें खलबली उत्पन्न करता रहा वही कामका विकार आज तुम्हारे उपभोगमें किसी प्रकारकी बाधा न रहनेसे आनन्द दे रहा है, तुम्हारे आलिङ्गनसे उत्पन्न होकर प्रबल प्रेम बढ़ा रहा है और नया-सा होकर बाहरी चेष्टाएँ रोककर चित्तको एकाग्र बनाए दे रहा है ॥ ६४ ॥ हे मृगनयनी ! कमल तुम्हारे मुखकी जो कान्ति पाना चाहता है वही चन्द्रमा भी पाना चाहता है। एक ही वस्तुको पानेकी चाह दोनोंमें है इसीलिये डाहके कारण दोनोंमें घोर विरोध है ॥ ६५ ॥ हे बड़े-बड़े नितम्बवाली ! जिस प्रकार तुम्हारा शरीर बाहर रोमांचित हो रहा है उसी प्रकार भीतर भी कामदेवका एकच्छत्र साम्राज्य है ॥ ६६ ॥ हे चञ्चल नयनोंवाली ! कमलकी जड़के जो डोरे तुम्हारी कमरसे भी पतले दिखाई दे रहे हैं वे भी तुम्हारे स्तनोंके बीचमें स्थान नहीं पा रहे हैं ॥ ६७ ॥ जिन लोगोंने भाग्यसे कहीं कमलपर एक ही खञ्जन देख लिया है वे कवि अनायास ही प्रसिद्ध राजा बन बैठते हैं। किन्तु हे सुन्दरी ! यह कैसी विचित्र बात है कि जिन लोगोंने तुम्हारे मुखकमलपर दो नेत्र-रूपी खञ्जन देखे हैं वे सभी कामके बाणोंसे विंधकर मूर्च्छित हो गए हैं ? ॥ ६८ ॥ पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान कान्तिवाला यह तुम्हारा मुख तथा सोनेकी चट्टानके समान सुन्दर तुम्हारी कमर दोनों ही मनको हरे ले रही हैं ॥ ६९ ॥ हे रसीली और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली ! सुन्दरताकी बाढ़से भरा हुआ और मुस्कराता हुआ तुम्हारा मुख-

कृष्णागरुश्यामले वर्षाणामिव ते पयोधरभरे तन्वङ्गि दूरोन्नते । नासावंशमनोज्ञकेतकतनुभ्रूपत्रगर्भोल्लसत्पुष्पश्रीस्तिलकः सहेलमलकैर्भृङ्गैरिवापीयते ॥ ७१ ॥ वदनेन निर्जितं तव निलीयते चन्द्रविम्बमम्बुधरे । अरविन्दमपि च सुन्दरि निलीयते पाथसां पूरे ॥ ७२ ॥ विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः । तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च ॥ ७३ ॥ विभ्रमैर्विश्वहृद्यैस्त्वं विद्ययाप्यनवद्यया । केनापि हेतुना मन्ये प्राप्ता विद्यधरी क्षितिम् ॥ ७४ ॥ वेणीं ते प्रसमीक्ष्य चित्रकुसुमैरुद्भासितां वर्हिणो लज्जन्ते निजवर्हवृन्दमधिकं भारं विदित्वा प्रिये । निर्याताः शनकैरिति स्वनिलयाद्दूरे निलीय स्थिताः पश्यैतानपि लज्जयेव मधुपान्वल्लीर्विहायोद्गतान् ॥ ७५ ॥ शिखरिणि क नु नाम कियच्चिरं किमभिधानमसावकरोत्तपः । सुमुखि येन तवाधरपाटलं दशति विम्बफलं शुकशावकः ॥ ७६ ॥ सत्यं तपः सुगत्यै यत्तप्त्वाम्बुषु रविप्रतीक्षं सत् । अनुभवति सुगतिमब्जं त्वत्पदजन्मनि समस्तकमनीयम् ॥ ७७ ॥ सदा प्रदोषो मम याति जाग्रतः सदा च मे निःश्वसतो गता निशा । त्वया समेतस्य विशाललोचने ममाद्य शोकान्तकरः प्रदोषकः ॥ ७८ ॥ साहजिकरूपवत्या भवति भवत्या विभूषणं भारः । सर्वाङ्गसौरभिण्या दमनकवल्ल्याः किमालि कुसुमेन ॥ ७९ ॥ स्तुमः कं वामाक्षि क्षणमपि विना यं न रमसे विलेभे कः प्राणान्रणमखमुखे यं मृगयसे । सुलग्ने को जातः शशिमुखि यमालिङ्गसि बलात्तपःश्रीः कस्यैषा मदननगरि ध्यायसि तु यम् ॥ ८० ॥ स्मितज्योत्स्नाभिस्ते धवलयति विश्वं शशिमुखि दृशस्ते पीयूषद्रव-

---

चन्द्र देखकर भी जो यह पयोधि (समुद्र, स्तन) तनिक भी नहीं उछल रहा है इसीसे जान पड़ता है कि यह महामूर्ख है ॥ ७० ॥ हे दुबले शरीरवाली ! सुन्दरता-रूपी जलकी वर्षा करनेवाले तथा काले अगरके लेपसे साँवले रङ्गवाले तुम्हारे स्तन-रूपी बादलके उमड़ आनेपर तुम्हारी नाक बाँसकी कोंपलके समान तथा तुम्हारी देह केवड़ेकी लताके समान खिल रही है और तुम्हारे मस्तकपर भौंह-रूपी पत्तोंके बीच पुष्पके समान खिले हुए तिलकको भौंरोंके समान बाल मानो चारों ओरसे प्रसन्न होकर घेर रहे हैं ॥७१॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे मुखसे हारा हुआ यह चन्द्रमा मेघोंके बीचमें छिप रहा है और कमल भी जलके बहावमें डूब रहा है ॥ ७२ ॥ जब-जब तुम्हारा स्पर्श होता है तब-तब मेरी इन्द्रियोंको मोहमें डालनेवाला कोई विकार उसी-उसी समय मेरी चेतनाको भ्रममें डाल देता तथा दबा लेता है। उस समय यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि यह सुख है अथवा दुःख, मूर्च्छा है या नींद अथवा विषका वेग है या मदकी मस्ती ॥ ७३ ॥ सभीके मन हरनेवाले सुन्दर व्यवहारोंसे, निर्दोष ज्ञानसे और न जाने किस-किस कारणसे तुम ऐसी जान पड़ती हो मानो धरतीपर विद्याधरी (एक देवी) आ उतरी हो ॥ ७४ ॥ सुन्दर फूलोंसे सुशोभित तुम्हारी चोटी देखकर अपनी पूँछके बालोंको भार समझकर ये मोर लजाए-से जा रहे हैं। हे प्यारी ! इसीलिये ये अपने निवास-स्थानसे धीरेसे हटकर दूर छिप गए हैं और इन भौंरोंको भी देखो जो लाजके मारे लताएँ छोड़-छोड़कर भागे जा रहे हैं ॥ ७५ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! यह सुग्गेका बच्चा (तुम्हारी नाक) किस पहाड़पर, कितने दिन-तक, कौन-सा नाम जपकर तपस्या कर आया है, जिसके फल-स्वरूप तुम्हारे कुँदरूके फलके समान लाल-लाल ओठका सदा स्वाद लेता रहता है ? ॥७६॥ तपस्यासे उत्तम गति मिलती है यह बात सच है क्योंकि जलमें तपस्या करता हुआ तथा सूर्यको देखता हुआ कमल तुम्हारे अत्यन्त सुन्दर चरणका जन्म पाकर उत्तम गतिका सुख भोग रहा है ॥ ७७ ॥ हे बड़े-बड़े नेत्रोंवाली ! पहले तो (जब तुम मुझसे अलग थी) सदा मेरे जागते-जागते रातका पहला पहर बीत जाता था और लम्बी साँसें भरते हुए रात भी बीत जाती थी किन्तु आज तुम्हारे साथ रहनेसे वही दोष भरा समय मेरे सारे दोष दूर किए दे रहा है ॥ ७८ ॥ हे सखी ! तुम्हारी सहज सुन्दरताके आगे तुम्हारे आभूषण तो भार हैं क्योंकि जिस मरुएकी लताके सभी अङ्ग सुगन्धिसे भरे होते हैं उसे फूलकी क्या आवश्यकता है ॥ ७९ ॥ हे सुन्दर आँखवाली ! वह कौन-सा प्रशंसा करने योग्य प्राणी है जिसके बिना तुम्हें क्षण भर भी चैन नहीं मिल रही है ? रणरूपी यज्ञमें किसने प्राण पाया है जिसे तुम ढूँढ़ रही हो ? हे चन्द्रमुखी । किसने सुन्दर लग्नमें जन्म ग्रहण किया है जिसका तुम आलिङ्गन करती हो ? और हे कामदेवकी नगरी ! किसने प्रबल तपस्या की है

मिव विमुञ्चन्ति परितः। वपुस्ते लावण्यं किरति मधुरं दिक्षु तदिदं कुतस्ते पारुष्यं सुतनु हृदयेनाद्य गुणितम् ॥ ८१ ॥ स्मितपुष्पोद्गमोऽयं ते दृश्यतेऽधरपल्लवे। फलं तु जातं मुग्धाक्षि चक्षुषोर्मम पश्यतः ॥ ८२ ॥ हस्तस्वेदस्नपित इव यश्चन्दनक्षोदवृन्दैरालिप्तोऽङ्कृतपरिसरः फुल्लकह्लारहारैः । आराधीत्थं तव नवकुरङ्गाक्षि वक्षोजशम्भुः साक्षात्कारं तदपि न दिशत्येष किं वा करोमि ॥ ८३ ॥ हुङ्कारैर्ददता मया प्रतिवचो यन्मौनमासेवितं यद्दावानलदीप्तिभिस्तनुरियं चन्द्रातपैस्तापिता । ध्यातं यत्सुबहून्यनन्यमनसा नक्तंदिनानि प्रिये तस्यैतत्तपसः फलं मुखमिदं पश्यामि यत्तेऽधुना ॥ ८४ ॥

नवधूसङ्गमः— अंसाकृष्टदुकूलया सरभसं गूढौ भुजाभ्यां स्तनावाकृष्टे जघनांशुके कृतमधःसंसक्तमूरुद्वयम्। नाभीमूलनिबद्धचक्षुषि तया व्रीडानताङ्ग्या प्रिये दीपः फूत्कृतिवातवेपितशिखः कर्णोत्पलेनाहतः ॥ १ ॥ अप्यौत्सुक्ये महति दयितप्रार्थनासु प्रतीपाः काङ्क्षन्त्योऽपि व्यतिकरसुखं कातराः स्वाङ्गदाने। आबाध्यन्ते न खलु मदनेनैव लब्धान्तरत्वादाबाधन्ते मनसिजमपि क्षिप्तकालाः कुमार्यः ॥ २ ॥ असम्मुखालोकनमाभिमुख्यं निषेध एवानुमतिप्रकारः। प्रत्युत्तरं मुद्रणमेव वाचो नवाङ्गनानां नव एव पन्थाः ॥ ३ ॥ आभाति बालिकेयं पाणिस्पर्शेन पुलकितावयवा। अभिनववसन्तसङ्गादाविर्मुकुलेव बालचूतलता ॥ ४ ॥ इत्थं तल्पतलाधिरोहणमियं पर्णार्पणप्रक्रिया शय्यायां वचनक्रमस्य दयितस्यैवं विधाराधना। एवं केलिगृहोपदेहलि बलादानीयमाना मुहुश्चाटूक्तिप्रकरैश्चिरं नववधूरालीभिरध्याप्यते ॥ ५ ॥ कण्ठाश्लेषिणमुन्नतस्तनभरश्रोणीतटग्राहिणं संसक्तोरुयुगं गृहीतजघनप्राकारमप्यन्ततः। द्रागेव श्लथबन्धमिन्दुवदना गाढा-

---

जिसका तुम ध्यान किया करती हो ! ॥ ८० ॥ हे चन्द्रमुखी ! तुम्हारा मुख अपनी मुस्कान-रूपी चाँदनीसे संसारको उजला बना रहा है, तुम्हारी आँखें मानो चारों ओर अमृतकी धाराएँ बरसा रही हैं और तुम्हारा शरीर मानो चारों दिशाओंमें मधुर मनोहरता बिखेर रहा है किन्तु हे सुन्दरी ! यह नहीं समझमें आता है कि तुम्हारा मन यह कठोरता कहाँसे सीख आया है ! ॥ ८१ ॥ हे सुनयनी ! तुम्हारे ओठ-रूपी पत्तेपर मुस्कान-रूपी फूल खिला देखते-देखते उसमें ये फल (स्तन) भी लग गए! ॥ ८२ ॥ हे हरिणके छौनेके समान आँखोंवाली ! मैंने तुम्हारे स्तन-रूपी शङ्करजीको हाथके पसीने रूपी गङ्गाजलसे नहलाया, चन्दनका लेप लगाया और खिले हुए कमलोंका हार पहनाया। इस प्रकार इनकी मैंने सेवा तो की किन्तु वे दिखाई नहीं दे रहे हैं ! ॥ ८३ ॥ तुम्हारी प्रत्येक बातपर केवल 'हूँ-हूँ' करके जो मैंने मौन धारण किया, दावानलके समान धधकते हुए चन्द्रमाके प्रकाशमें जो शरीरको तपाया और बहुत समयतक एकाग्र चित्त होकर दिनरात ध्यान करता रहा, हे प्यारी ! यह उसी तपस्याका फल है कि इस समय मैं तुम्हारा मुख निहार रहा हूँ ॥ ८४ ॥

नई पत्निसे सम्भोग : जब नायकने नवेलीके कन्धेसे वस्त्र खींच लिया तो नवेलीने शीघ्र ही अपनी बाँहोंसे स्तन ढक लिए, जब उसने कमरपरका वस्त्र खींचा तो उसने अपनी जाँघें सटा लीं, जब नायकने नाभिपर आँखें डालीं तो लाजके मारे झुककर नवेलीने दीपककी लौ फूँककर हिला दी और कानसे कमल उतारकर दीपकपर इसलिये फेंक मारा कि वह बुझ जाय ॥ १ ॥ पतिसे मिलनेकी प्रबल उत्कण्ठा रहनेपर भी नई बहुएँ प्रार्थना नहीं करतीं और पतिके शरीरके स्पर्शसे सुख पाना चाहते हुए भी वे अपना शरीर उन्हें अर्पण करनेमें डरती हैं। इस प्रकार नई ब्याही हुई बहुएँ कामसे केवल स्वतः ही कष्ट नहीं पातीं वरन् ऐसी दशामें दिन काटती हुई कामदेवको भी दुखी बना देती हैं क्योंकि वह भी सफल नहीं होने पाता ॥ २ ॥ नई नवेलियोंका एक निराला ही मार्ग है, उनका सम्मुख न देखना ही सामने देखना है, 'नहीं' करना ही 'हाँ' करनेका ढङ्ग है और मौन रहना ही उत्तर है ॥ ३ ॥ हाथसे छूनेपर उस बालिकाकी देहमें रोमाञ्च हो आया अतः अब वह ऐसी दिखाई देने लगी है मानो तत्काल आए हुए वसन्तके समागमसे नये आमके वृक्षमें मञ्जरियाँ फूट आई हों ॥ ४ ॥ क्रीड़ागृहकी देहलीके पास बलपूर्वक नई बहूको लाकर सखियोंने बड़ी मीठी-मीठी बातें करके बहुत देरतक उसे सिखाया कि 'बिछौनेपर इस प्रकार चढ़ना चाहिए, प्रियको पान इस प्रकार देना चाहिए, सोनेका, बोलनेका तथा प्रियतमको अपने अनुकूल करनेका यह ढङ्ग है' ॥ ५ ॥ यद्यपि नई बहू लाजसे भरी हुई थी फिर भी जब उसने देखा कि उसका सुनहला वस्त्र प्रबल झोंका नहीं सह सकता

वमर्दासहं विज्ञायात्यजदाशु 'काञ्चनपटं व्रीडाकुलापि क्षणम् ॥ ६ ॥ काञ्च्या गाढतरावबद्धवसनप्रान्ता किमर्थं पुनर्मुग्धाक्षी स्वपितीति तत्परिजनं स्वैरं प्रिये पृच्छति । मातः सुप्तिमपीह लुम्पति ममेत्यारोपित-क्रोधया पर्यस्य स्वपनच्छलेन शयने दत्तोऽवकाशस्तया ॥ ७ ॥ कान्ते काञ्चुलिकावलोकिनि कलावत्या नमन्त्या स्थितं तस्मिन्कोमलकाकुभाषिणि तया स्पन्दी निरुद्धोऽधरः । उत्थायाथ करस्पृशि प्रियतमे यूनोर्नवे सङ्गमे काञ्चीकूजितकैतवेन मदनो द्यौःशान्ति-मभ्यस्यति ॥ ८ ॥ खिद्यति कूणति वेल्लति विचलति निमिषति विलोकयति तिर्यक् । अन्तर्नन्दति चुम्बि-तुमिच्छति नवपरिणया वधूः शयने ॥ ९ ॥ चुम्बनेषु परिवर्तिताधरं हस्तरोधि रसनाविघट्टने । विघ्नितेच्छ-मपि तस्य सर्वतो मन्मथेन्धनमभूद्वधूरतम् ॥ १० ॥ चुम्बनेष्वधरदानवर्जितं सन्नहस्तमदयोपगूहने । क्लिष्ट-मन्मथमपि प्रियं सदा दुर्लभप्रतिकृतं वधूरतम् ॥ ११ ॥ दृढनिबिडनव्याजात्काञ्चीलता शकलीकृता प्रियन-यनयोर्न्यस्तौ हस्तौ तदा तरलाङ्गुली । जघननिहितो रुद्धः पाणिः श्लथं न निवारितः प्रथितमुभयं लज्जारा-गागमौ नवयोषिता ॥ १२ ॥ निर्वाणतां नयसि किं हरिणाक्षि दीपमाविर्भवन्नवरतत्रपया विलोला । ज्योत्स्नां वितन्वति सदा तव वक्त्रचन्द्रो गौराङ्गि तर्कय कुतस्तिमिरावकाशः ॥ १३ ॥ नीवीदृढार्पितकरां निविडीकृतोरुं व्रीडानतां तत इतो वदनं हरन्तीम् । आरोप्य वक्षसि सुखं परिरब्धुमेनां बालां बलादभिल-षामि न पारयामि ॥ १४ ॥ पटालग्ने पत्यौ नमयति

तो उसने उसे तत्काल उतार दिया क्योंकि वह पहले गलेमें लिपटा था, वहाँसे उड़कर उसने स्तनोंका सहारा लिया। जब वहाँ भी ठिकाना न लगा तो नितम्बपर आकर ठहर गया, फिर जाँघोंमें जा लिपटा और अन्तमें उसने पेड़ू-रूपी चारदीवारीकी भी शरण ली। पर अन्तमें जब कोई चारा न रह गया तो वह विवश होकर नीचे गिर गया ॥ ६ ॥ जैसे ही प्रियतमने बाहरसे आकर प्रियतमाको सोते देखकर सखियोंसे पूछा कि 'अरे, यह भोले नयनोंवाली अपने कमरके वस्त्रोंको करधनीसे कसे हुए सो क्यों रही है ?' वैसे ही बनावटी क्रोध दिखाकर 'अरी माँ ! ये अब मेरी नींद भी छीने ले रहे हैं !' ऐसा कहकर नवेलीने बनावटी क्रोध दिखाकर करवट बदलकर बिछौनेपर प्रियतमको भी सोनेके लिये स्थान दे दिया ॥ ७ ॥ जब नायकने चोलीपर दृष्टि डाली तो कामकलामें चतुर नवेली झुककर बैठ गई, जब नायक दीनतासे भरी मीठी-मीठी बातें सुनाने लगा तो नवेली अपना फड़कता हुआ ओठ हाथसे छिपाने लगी। इसके पश्चात् जब नायकने उठकर नवेलीका हाथ पकड़ लिया और सम्भोग करने लगा तो ऐसा जान पड़ रहा था मानो करधनीकी झनकारके रूपमें कामदेव शान्तिपाठका अभ्यास कर रहा हो ॥ ८ ॥ नई व्याही हुई बहू बिछौनेपर पड़ी है, उसके शरीरसे पसीना छूट रहा है, आँखें झँपी जा रही हैं, वह इधर-उधर करवटें बदल रही है, आँखें मूँद रही हैं, तिरछी चितवन चला रही है, मन ही मन प्रसन्न हो रही है तथा प्रियतमको चूम लेना चाहती है ॥ ९ ॥ चुम्बनके समय ओठ हटाना और करधन खिसकाते समय हाथकी आड़ देना आदि क्रियाओंसे यद्यपि नायककी इच्छा पूरी होनेमें बाधा पड़ी फिर भी नवेलीके सुरतके समय चारों ओरसे ये ही सब बातें नायकके मनमें काम जगानेके लिये ईंधन बन गईं ॥ १० ॥ यद्यपि चुम्बन करते समय नई बहुएँ मुँह घुमा लेती हैं और आलिङ्गन करते समय हाथकी आड़ देती हैं तथापि नई बहूका ऐसा प्यारा संभोग दुर्लभ ही होता है ॥ ११ ॥ जैसे ही नई बहूसे प्रियतम संभोग करने चला वैसे बलपूर्वक पकड़नेके बहाने उसने अपनी करधनी तोड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए, प्रियतमके नेत्रोंपर हाथ रक्खे तो सही किन्तु उँगलियाँ ढीली कर लीं और वह जघनपरसे प्रियतमका हाथ हटानेको अपना हाथ ले तो गई किन्तु हाथ ढीला पड़ गया और प्रियतमका हाथ न हटा पाई। इस प्रकार उसने एक साथ ही लज्जा और प्रेमके भाव प्रकट कर दिए ॥ १२ ॥ प्रियतमने पूछा : 'हे मृगनयनी ! दीपक क्यों बुझाए दे रही हो !' पत्नी : 'नई-नई रतिमें लाज लगती है।' प्रियतमने कहा : 'हे गोरी ! तुम्हारा मुखचन्द्र तो स्वयं ही चाँदनी बिखेरे दे रहा है, तब भला यहाँ कैसे अँधेरा हो पावेगा !' ॥ १३ ॥ यद्यपि मैं उस नई नवेलीको छातीसे लगाकर बलपूर्वक सुखसे उसका आलिंगन करना तो चाहता हूँ पर इसलिये नहीं कर पाता कि तत्काल वह अपनी साड़ीका नाड़ा कसकर पकड़ लेती है, जाँघें कड़ी कर लेती है, लाजसे झुक जाती है तथा इधर-उधर मुँह घुमाने लगती है ॥ १४ ॥ जब पहले पहलके रागरंगमें

मुखं जातविनया हठाश्लेषं वाञ्छत्यपहरति गात्राणि निभृतम्। न शक्नोत्याख्यातुं स्मितमुखसखीदत्तनयना ह्रिया ताम्यत्यन्तः प्रथमपरिहासे नववधूः ॥ १५ ॥ प्रायो नववधूः कान्तमालिङ्गति शनैः शनैः। चित्ताङ्कुरितकन्दर्पकदलीभङ्गशङ्कया ॥ १६ ॥ बलान्नीता पार्श्वे मुखमभिमुखं नैव कुरुते धुनाना मूर्धानं हरति बहुशश्चुम्बनविधिम्। हृदि न्यस्तं हस्तं क्षिपति गमनारोपितमना नवोढा वोढारं सुखयति च सन्तापयति च ॥ १७ ॥ भुजपञ्जरे गृहीता नवपरिणीता वरेण रहसि वधूः। तत्कालजालपतिता बालकुरङ्गीव वेपते नितराम् ॥ १८ ॥ यावकरसार्द्रपादप्रहारशोणितकचेन दयितेन। मुग्धा साध्वसतरला विलोक्य परिचुम्बिता सहसा ॥ १९ ॥ विरम नाथ विमुञ्च ममाञ्चलं शमय दीपमिमं समया सखीम्। इति नवोढवधूवचनैर्युवा मुदमगादधिकां सुरतादपि ॥ २० ॥ शयिता सविधेऽप्यनीश्वरा सफलीकर्त्तुमहो मनोरथान्। दयिता दयिताननाम्बुजं दरमीलन्नयना निरीक्षते ॥ २१ ॥ समाकृष्टे वासः कथमपि हठात्पश्यति तदा क्रमादूरुद्वन्द्वं जरठशरगौरं मृगदृशः। तया दृष्टिं दत्त्वा महति मणिदीपे निपुणया निरुद्धं हस्ताभ्यां झटिति निजनेत्रोत्पलयुगम् ॥ २२ ॥ स्फुरद्रोमोद्भेदस्तरलतरताराकुलदृशो भयोत्कम्पोत्तुङ्गस्तनयुगभरासङ्गसुभगः। अधीराक्ष्या गुञ्जन्मणिवलयदोर्वल्लिरचितः परीरम्भो मोदं जनयति च सम्मोहयति च ॥ २३ ॥ हर्षादुत्पुलकं विकासि रभसादुन्नामितं कौतुकाच्छृङ्गारादलसं भयात्तरलदृङ्नम्रं च लज्जाभरात्। आसीत्तन्नवसङ्गमे मृग-

---

प्रियतम नई ब्याही हुई बहूकी साड़ी खींचने लगते हैं तो वह नम्रता दिखलाती हुई अपना मुँह झुका लेती है और जब प्रियतम बलपूर्वक आलिंगन करना चाहते हैं तब वह धीरेसे अपने अङ्ग सिकोड़ लेती है। इस प्रकार यद्यपि वह कुछ बोल नहीं पाती किन्तु मुस्कराती हुई सखियोंपर अपनी आँखें चलाकर वह भीतर ही भीतर लजाती हुई खेद किया करती है ॥ १५ ॥ चित्तमें उगे हुए कामके कोमल अँकुएके टूट जानेके डरसे ही प्रायः नई बहू अपने प्रियतमका धीरे-धीरे आलिङ्गन करती है ॥ १६ ॥ बलपूर्वक सामने ले आई जानेपर भी वह नवेली प्रियतमके सामने अपना मुँह नहीं करती, बार-बार ऐसा सिर हिलाती है कि चुम्बन भी नहीं करने देती और प्रियतम जब छातीपर हाथ रखते हैं तो वह उनका हाथ हटाकर घरसे बाहर निकल जाना चाहती है। इस प्रकार नई ब्याही हुई बहू अपने प्रियतमको सुख भी देती है तथा उनका मन भी खिन्न करती है ॥ १७ ॥ नई ब्याही हुई नवेलीको प्रियतमने जब एकान्तमें अपनी दोनों भुजाओंसे कसकर पकड़ लिया उस समय वह जालमें पड़ी हुई छोटीसी हरिणीके समान अत्यधिक काँपने लगी ॥ १८ ॥ महावरके रससे नवेलीके जो पैर अभी-अभी रँगे गए थे उन्हें उसने अपने प्रियतमके सिरपर ऐसा चलाया कि उसके बाल लाल हो गए। तब तो वह सुन्दरी नवेली डरकर घबड़ा उठी किन्तु उसकी यह दशा देखकर प्रियतमने उसका एक एक चुम्बन कर लिया ॥ १९ ॥ 'हे नाथ! शान्त रहिए, मेरा आँचल छोड़ दीजिए, दीवा बुझा दीजिए। देखिए, सखी पासमें ही खड़ी है।' नई ब्याही हुई बहूकी इन बातोंमें युवक प्रियतमको रतिक्रीड़ासे भी अधिक आनन्द आया ॥ २० ॥ बिछौनेपर पड़ी हुई नई ब्याही हुई प्यारी नवेली सम्भोगके ढङ्गमें हाथ बँटानेमें असमर्थ होनेके कारण अपने मनोरथ सफल करनेके लिये डरके कारण आँखें मूँदे-मूँदे ही प्रियतमका मुखकमल देखने लगी ॥ २१ ॥ प्रियतमने किसी-किसी उपायसे हठपूर्वक नवेलीके वस्त्र खींच लिए और अब वह पके हुए सरकण्डेकी भाँति गोरे रङ्गकी उस मृगनयनीकी जाँघें देखने लगा। ऐसी दशामें उस नवेलीने अत्यन्त चमकते हुए मणिके दीपकपर दृष्टि तो डाली किन्तु वह बुझ नहीं सकता था। फिर जब उसे कोई उपाय न सूझा तब झटपट उसने अपने दोनों कमलनयन हाथोंसे ढक लिए ॥ २२ ॥ जब चञ्चल आँखवाली नवेली अपने कङ्गन बजते हुए हाथोंसे कसकर गले लग जाती है तो प्रियतमका मन अत्यधिक प्रसन्न भी हो जाता है और वह उसपर रीझ भी उठता है। उस समय नवेलीकी देहमें रोमाञ्च हो आता है, आँखोंकी पुतलियाँ चञ्चल हो आती हैं और भयके कारण काँपते हुए ऊँचे-ऊँचे स्तन छू लिए जानेसे उसे उस समय अत्यधिक सुख मिलता है ॥ २३ ॥ नये-नये समागममें प्रियतमको अर्पण कर देनेके लिये उत्सुक मृगनयनी नवेलीका सुन्दर मुख हर्षसे रोमाञ्चित हो गया, वेगसे खिल उठा, खेलवाड़से ऊपर उठा लिया गया, सिङ्गारसे अलसा गया, उसकी आँखें डरसे शिथिल हो गईं, लाजसे वह झुक गया और सोनेके समान गोरे गोरे गालोंपर कुछ-कुछ

दृशः कान्तार्पणायोत्सुकं किञ्चित्काञ्चनगौरगण्डगलितस्वेदाम्बु रम्यं मुखम् ॥ २४ ॥ हस्तं कम्पवती रुणद्धि रशनाव्यापारलोलाङ्गुलिं हस्तौ स्वौ नयति स्तनावरणतामालिङ्ग्यमाना बलात्। पातुं पक्ष्मलचक्षुरुन्नमयतः साचीकरोत्याननं व्याजेनाप्यभिलाषपूरणसुखं निर्वर्तयत्येव मे ॥ २५ ॥

नववधूसङ्गमे सखीवाक्यम्—कण्टकिततनुशरीरा लज्जामुकुलायमाननयनेयम्। तव कुमुदिनीव वाञ्छति नृचन्द्र बाला करस्पर्शम् ॥ १ ॥ नार्यस्तन्वि हठाद्धरन्ति रमणं तिष्ठन्ति नो वारितास्तत्किं ताम्यसि किं च रोदिषि मुधा तासां प्रियं मा कृथाः। कान्तः केलिरुचिर्युवा सहृदयस्तादृक्पतिः कातरे किं नो बर्बरककर्कशैः प्रियशतैराक्रम्य विक्रीयते ॥ २ ॥ नीरन्ध्रं परिरभ्यते प्रियतमो भूयस्तरां चुम्ब्यते तद्गाढं क्रियते यदस्य रुचिरं चाटूत्करैः स्तूयते। सख्या मुग्धवधूरसौ रतविधौ यत्नेन सा शिक्षिता निर्भ्रान्तं गुरुणा पुनः शतगुणं पञ्चेषुणा कारिता ॥ ३ ॥ बाला तन्वी मृदुतनुरियं त्यज्यतामत्र शङ्का दृष्टा क्वापि भ्रमरभरतो मञ्जरी भज्यमाना। तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः समग्रम् ॥४॥ मानः कामं पुरस्कार्यः परिष्वङ्गस्तु पृष्ठतः। न त्रासो न च संरम्भः सुन्दरीणां रतौ हितौ ॥ ५ ॥ मुग्धे नैव भयं धेयं प्रमोदावसरो ह्ययम्। त्वराऽपि न परिष्वङ्गदाने कार्या शुचिस्मिते ॥ ६ ॥ यत्तापयन्ति शिशिरांशुरुचो यदेते त्वां मोहयन्ति च विनिद्रसरोजवाताः। यत्खिद्यते तनुरियं च तदेष दोषः सत्यं तवैव सुतनु प्रचुरत्रपायाः ॥ ७ ॥ रक्षामालिकया बाले बद्धया किं प्रयोजनम्। अवश्यम्भाविनावेतौ कुचग्रहकचग्रहौ ॥ ८ ॥

सम्भोगाविष्करणम्—अयमेकोऽहमेकेति ज्ञानं तत्क्ष-

पसीना भी आ गया ॥ २४ ॥ काँपती हुई नवेलीने करधनीकी ओर बढ़ी हुई मेरे हाथकी उँगलियाँ थाम लीं और जब मैं हठपूर्वक आलिङ्गन करने लगा तो उसने अपने हाथोंसे स्तन ढक लिए। ज्योंही मैंने उसकी सुन्दर बरौनीवाली आँखें चूमनेके लिये उसका सिर उठाना चाहा, उसने मुँह फेर लिया। इस प्रकारके अपने बनावटी व्यवहारोंसे भी वह मेरी इच्छा पूरी होनेका सुख ही मुझे दे रही है ॥ २५ ॥

नई बहूसे सम्भोग करते समय सखीकी बातें : हे मनुष्योंमें चन्द्रमाके समान सुन्दर! कोईंके समान इस नवेलीके दुबले-पतले शरीरमें रोमांच हो आया है और लाजके कारण इसके नेत्र मुँदे जा रहे हैं। अब यह आपके हाथरूपी किरणोंका स्पर्श चाह रही है ॥ १ ॥ हे सुन्दरी! स्त्रियाँ तो अपने-अपने पतियोंको हठ करके रोकती हैं और रोकनेपर भी रुकती नहीं हैं इसलिये तुम क्यों रो-खीझ रही हो और उन्हींका मनचाहा कर रही हो (तुम अपने प्रियको रुष्ट कर दोगी तो दूसरी स्त्रियाँ उसे फाँस ले जायँगी) क्योंकि तुम्हारा प्रियतम बड़ा खिलाड़ी, जवान और रसिक है इसलिये पगली! ऐसे पतिका क्या अन्य स्त्रियाँ बोलियाँ बोलकर और चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर तुम्हारे विरुद्ध भड़का नहीं देंगी ॥ २ ॥ 'पतिका कसकर आलिङ्गन किया जाता है, बार-बार उनका चुम्बन किया जाता है, प्रियतमको भले जान पड़नेवाले व्यवहार किए जाते हैं और मीठी-मीठी बातोंसे प्रियतमको प्रशंसा की जाती है।' इस प्रकार भोली-भाली नई बहूको बड़ी ही सावधानीके साथ सखियोंने सुरत-क्रियाके लिये शिक्षा दी। किन्तु इसके पश्चात् तो आचार्य कामदेवने बेखटके उस उपदेशसे भी सौ गुना अधिक सिखा दिया ॥ ३ ॥ हे सुन्दर! यह शङ्का छोड़ दो कि यह अभी छोटी है, दुबली तथा कोमल शरीरवाली है। क्या कहीं भौंरेके बोझसे आमकी मञ्जरी टूटा करती है? इसलिये आप इसे एकान्तमें ले जाकर जमकर इसका आलिङ्गन कीजिए क्योंकि धीरेसे दबाई हुई ईख सारा रस नहीं छोड़ती। उसे भरपूर बल लगाकर दबाना पड़ता है ॥ ४ ॥ पहले कुछ मान करना चाहिए तत्पश्चात् प्रियतमका आलिंगन करना चाहिए। सुन्दरियोंकी रतिक्रीड़ामें डर और घबराहट दोनों ही बाधक हुआ करती हैं ॥५॥ हे भोली-भाली! यह तो आनन्दका समय है अतः इसमें डरना नहीं चाहिए और हे पवित्र मुस्कानवाली! आलिंगन करनेमें बहुत शीघ्रता भी नहीं करनी चाहिए ॥६॥ हे सुन्दरी! चन्द्रमाकी शीतल किरणें भी जो तुम्हें तपा रही हैं, खिले हुए कमलोंकी सुगन्धमें बसा हुआ पवन जो तुम्हें मूर्च्छित कर रहा है और तुम्हारा शरीर जो खिन्न हुआ जा रहा है यह सब तुम्हारी अत्यधिक झेंपका ही दोष है, यह मैं सत्य कह रही हूँ ॥७॥ हे बाले! स्तन तथा बालोंकी रखवालीके लिये उनपर मालाएँ क्यों लपेट रही हो? इनकी चाहे जितनी रक्षा करो किन्तु ये पकड़े अवश्य ही जायँगे ॥ ८ ॥

सम्भोगकी बातें : प्रियतमसे सम्भोग करते समय मुझे

ङ्गमे न मे। राग एवाधिकस्तत्र हरिद्राचूर्णयोरिव ॥ १ ॥ अर्काभिमुख्यसलिलस्थितिसाधनानि रक्ताम्बुजस्य कलितान्यधुना तपांसि। यद्भीरु तस्य परिभूतिकरं पदं त्वं लाक्षारसाङ्कुरितरागमिमं करोषि ॥ २ ॥ अहं तेनाहूता किमपि कथयामीति विजने समीपे चासीना सरलहृदयत्वादवहिता। ततः कर्णोपान्ते किमपि वदताऽऽघ्राय वदनं गृहीत्वा धम्मिल्ले मम सखि निपीतोऽधररसः ॥ ३ ॥ आमुष्मिकैहिकसुखेच्छुभिरर्चनीयं लिङ्गद्वयं पुररिपोरधिनाभितीर्थम्। प्रेयः कराग्ररुहभावितचन्द्ररेखं मोदाय कस्य कतिनो न चिराय लोके ॥ ४ ॥ उपसि परिवर्तयन्त्या मुक्तादामोपवीततां नीतम्। पुरुषायितवैदग्ध्यं लज्जावति कैर्न कलितं ते ॥ ५ ॥ कान्ते सागसि यापिते प्रियसखीवेषं विधायागते भ्रान्त्याऽऽलिङ्ग्य मया रहस्यमुदितं तत्सङ्गमाकाङ्क्षया। मुग्धे दुष्करमेतदित्यतितरामुक्त्वा सहासं बलादालिङ्ग्य च्छलिताऽस्मि तेन कितवेनाद्य प्रदोषागमे ॥ ६ ॥ किमपि कान्तभुजान्तरवर्तिनी कृतवती यदियं कलभाषिणी। तदनुकृत्य गिरा गुरुसंनिधौ ह्रियमनीयत सारिकया वधूः ॥७॥ गाढाश्लेषविशीर्णचन्दनरजःपुञ्जप्रसारादियं शय्या सम्प्रति कोमलाङ्गि परुषेत्यारोप्य मां वक्षसि। गाढौष्ठग्रहपूर्वमाकुलतया पादाग्रसन्दंशकेनाकृष्याम्बरमात्मनो यदुचितं धूर्तेन तत्प्रस्तुतम् ॥ ८ ॥ चन्दनं स्तनतटेऽधरबिम्बे यावकं घनतरं च सपत्न्याः। प्रातरीक्ष्य कुपितापि मृगाक्षी सागसि प्रियतमे परितुष्टा ॥ ९ ॥ तस्याः पाटलपाणिजाङ्कितमुरो निद्राकषाये दृशौ निर्धूताधरशोणिमा विलुलितस्रस्तस्रजो मूर्धजाः। काञ्चीदाम दरश्लथाञ्चलमिति प्रातर्निखातैर्दृशोरेभिः

यह ज्ञान ही न रहा कि एक ये हैं और एक मैं हूँ। वहाँ तो हम दोनोंका प्रेम ऐसा एकरँग होकर छा गया था जैसे हल्दी और चूना मिलकर लाल हो जाते हैं ॥ १ ॥ हे भीरु! सूर्यके सामने जलमें खड़े होकर तपस्या करनेका फल इस लाल कमलको अब मिल रहा है क्योंकि इसका ऐश्वर्य बढ़ानेवाले पैरमें तुम महावरके रङ्गसे लाल-लाल अङ्कुर बना रही हो ॥ २ ॥ हे सखी! उसने मुझे एकान्त स्थानमें यह कहकर बुला लिया कि 'मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ' और मैं भी भोला स्वभाव होनेके कारण उसके पास बैठ गई फिर उसने कुछ कहते हुए मेरे कानके पास मुँह लाकर मेरा मुख सूँघा और मेरा जूड़ा थामकर मेरा अधर-रस पी लिया ॥ ३ ॥ लोक और परलोकमें सुख चाहनेवालोंको चाहिए कि वे नाभिरूपी तीर्थके ऊपर स्थित शिवजीके दोनों लिङ्गों (दोनों स्तनों) की पूजा करें। भला बताइये, नखोंके चिह्नरूपी चन्द्रकलाको धारण करनेवाले वे लिङ्ग संसारमें किस पुण्यात्माको सदा आनन्द नहीं देते रहेंगे? ॥ ४ ॥ हे लजानेवाली! जनेऊके समान पहनी हुई मोतीकी मालाको जो तुम प्रातःकाल ठीक करके पहन रही हो इससे कौन नहीं समझ लेगा कि रातमें तुमने पुरुषके समान आचरण किया है (अर्थात् विपरीत रति की है) ॥ ५ ॥ ज्योंही प्रियतम दूसरी नवेलीका भोग करके मेरे पास आए त्योंही मैंने उन्हें निकाल बाहर किया, किंतु वे ऐसे चंट निकले कि झट मेरी प्यारी सखीका वेष बनाकर चले आए और मैंने भ्रममें पड़कर उन्हें अपनी सखी समझकर उनका आलिङ्गन करके उन्हींसे मिलनेकी इच्छाके रहस्यकी बात यह समझकर कह दी कि वह मेरी सखी है। तब तो वे बोल उठे कि 'अरी पगली! यह तो बहुत कठिन है' और यह कहकर हँसते हुए बलपूर्वक मेरा आलिंगन करके आज सायंकाल उन धूर्तराजने मुझे अच्छा छकाया ॥ ६ ॥ पतिकी भुजाओंमें जकड़ी हुई तथा मीठी बोलनेवाली नवेलीने जो कुछ बातें कीं उन्हींको सुग्गीने उसके सास-ससुरके सामने दुहराकर उसे लज्जित कर दिया ॥ ७ ॥ 'हे कोमल अङ्गवाली! कसकर आलिंगन करनेके कारण गिरी हुई चन्दनकी धूलके फैल जानेसे इस समय यह बिछौना रूखा पड़ गया है', ऐसा कहकर प्रियतमने मुझे अपनी गोदमें बैठा लिया, शीघ्रतापूर्वक मेरे ओठका चुम्बन करते हुए पैरकी उँगलियों-रूपी सँड़सीसे मेरी साड़ी खींच ली और इसके पश्चात् उस धूर्तने अपनी मनमानी करनी प्रारम्भ कर दी ॥ ८ ॥ यद्यपि अपराधी प्रियतमको देखकर नवेली रूठी हुई थी किन्तु वह प्रातःकाल सौतके स्तनपर चन्दनका लेप तथा ओठोंपर गाढ़ी लाली देखकर प्रसन्न हो गई क्योंकि उसने समझ लिया कि यदि प्रियतमने उससे सम्भोग किया होता तो अवश्य ही यह चन्दन और लाली छूट गई होती ॥ ९ ॥ नखके लाल चिह्नोंसे युक्त उस नवेलीकी छाती, नींदसे अलसाई हुई आँखें, ललाई छूटा हुआ ओठ, फूलोंकी मालासे रहित चोटी और कुछ ढीली करधनी, ये सभी कामदेवके बाण गड़े तो प्रियतमकी आँखोंमें किन्तु आश्चर्य तो यह है कि इससे बिंध गया उसका मन

कामशरैस्तदद्भुतमहो पत्युर्मनः कीलितम् ॥ १० ॥ ताडीदलं काचन कर्णपाशे निवेशयन्ती सुतनुः कराभ्याम्। रराज कर्णान्तविसर्पिदृष्टिः शाणे ददानेव कटाक्षवाणान् ॥ ११ ॥ दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णितं यद्वचस्तत्प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदतस्तस्यातिमात्रं वधूः। कर्णालम्बितपद्मरागशकलं विन्यस्य चञ्च्वाः पुटे व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम् ॥ १२ ॥ धन्यास्ताः सखि योषितः प्रियतमे सर्वाङ्गलग्नेऽपि याः प्रागल्भ्यं रचयन्ति मन्मथविधावालम्ब्य धैर्यं महत्। अस्माकं तु तदीयपाणिकमलेनोन्मोचयत्यंशुकं कोऽयं का वयमत्र किं च सुरतं नैव स्मृतिर्जायते ॥ १३ ॥ नखक्षतमुरःस्थलेऽधरदले रदस्य व्रणं च्युता वकुलमालिका विगलिता च मुक्तावली। रतान्तसमये मया सकलमेतदालोकितं स्मृतिः क्व च रतिः क्व च क्व च तवालि शिक्षाविधिः ॥ १४ ॥ निद्रातुन्दिलशोणलोचनयुगं दत्ताङ्कदन्तच्छदं पर्यस्तालकवल्लि घर्मपटलप्रामृष्टपत्त्रावलि। जृम्भाजृम्भितसीधुसौरभमिलद्भृङ्गीभिरङ्गीकृतस्तोत्रं शंसति वक्त्रमेव रजनीवृत्तान्तमेणीदृशः ॥१५॥ नीवीं प्रति प्रणिहिते नयनेऽपि तेन पद्माननेन दयितेन रहोगतेन। शय्याश्रयोऽपि वत दुर्लभतां प्रयाति बुद्धिः सखी क्वचन लीयत एव सख्यः ॥ १६ ॥ पादन्यासं कृतवति वहिः श्रोत्रयोरस्मि लीना प्राप्ते दृष्टिप्रसरपदवीं दृष्टिरेवाहमासम्। तल्पान्तस्थे हसितपुलकस्वेदकम्पाकुलाङ्गी सञ्जाताऽहं तदनु सखि मे विप्रलुप्तो विवेकः ॥ १७ ॥ प्रभाते पृच्छन्त्योरनुरहसवृत्तं सहचरीर्नवोढा न व्रीडामुकुलितमुखीयं सुखयति। लिखन्तीनां पत्राङ्कुरमनिशमस्यास्तु कुचयोश्चमत्कारो गूढं करजपदमासां कथयति ॥ १८ ॥ बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहं चकर च किल चाटु प्रौढयोषिद्व-

॥ १० ॥ कोई सुन्दर शरीरवाली नवेली ताड़के पत्तेको कनफूल बनाकर हाथोंसे जब पहन रही थी उस समय उसके कानोंतक फैली हुई चितवन ऐसी जान पड़ रही थी मानो वह अपने चितवनरूपी बाणोंको तीक्ष्ण करनेके लिये शान-पर चढ़ा रही हो ॥ ११ ॥ रात्रिमें परस्पर बातचीत करते हुए पति-पत्नीकी जो बातें पालतू सुग्गेने सुनीं उन्हीं बातोंको वह प्रातःकाल बड़े-बूढ़ोंके सामने दुहराने लगा। यह सुनकर नवेली लजा गई और उसने अपने कानमें लटके हुए पद्मराग (लालमणि) का टुकड़ा उसकी चोंचमें भेंटके रूपमें डाल दिया जिसे तोतेने अनारका दाना समझा। इस प्रकार नवेलीने सुग्गेको बोलनेसे रोक दिया ॥ १२ ॥ हे सखी! वे स्त्रियाँ धन्य हैं जो रतिक्रीड़ाके समय प्रियतमके द्वारा अपनी सारी देहका आलिङ्गन किए जानेपर भी गम्भीर होकर ढिठाई दिखलाती हैं। मेरी तो यह दशा है कि जैसे ही पतिदेव अपने हाथोंसे मेरे वस्त्र खोलने लगते हैं वैसे ही मैं ऐसी सुध-बुध खो बैठती हूँ कि मुझे यही स्मरण नहीं रह जाता कि कहाँ प्रियतम हैं, कहाँ मैं हूँ और यह सब क्या हो रहा है ॥ १३ ॥ हे सखी! छातीपर नखके चिह्न, ओठपर दाँतके चिह्न, गिरी हुई मौलसिरी और मोतियोंकी माला, इन सब वस्तुओंको मैंने सुरतके अन्तमें देखा। सुरतके समय तो मुझे स्मरण ही नहीं रहा कि यह सुरत-क्रीड़ा हो कैसी रही है और उस समय तुम्हारी सिखाई हुई बातें भी न जाने कहाँ लुप्त हो गई थीं ॥ १४ ॥ इस नवेलीकी दोनों आँखें नींदके कारण अत्यधिक लाल हो रही हैं, इसके ओठपर दाँतके चिह्न लगे हुए हैं, बाल बिखरे हुए हैं, देहपर बनी हुई चित्रकारी पसीनेसे धुल गई है और जँभाई लेते समय उसके मुखसे जो मदिराकी गन्ध निकलकर चारों ओर फैल रही है उसकी गन्धके लोभमें चारों ओर भौंरे गूँजते हुए मँडरा रहे हैं। इस प्रकार उस मृगनयनी नवेलीके रातके व्यवहार उसका मुख ही प्रकट किए दे रहा है ॥ १५ ॥ हे सखियो! एकान्तमें बैठे हुए कमल-जैसे मुखवाले प्रियतम जैसे ही नाड़ेकी गाँठकी ओर चितवनभर चलाते हैं वैसे ही बिछौनेपर बैठी हुई सखी तथा बुद्धि ये सब न जाने कहाँ लुप्त हो जाती हैं ॥ १६ ॥ हे सखी! ज्योंही मुझे बाहर प्रियतमके आनेकी आहट लगी त्योंही मैं कान लगाकर बैठ गई, फिर जब वे आँखोंके सामने आ गए तो मानो मैं स्वयं उन्हें देखनेके लिये दृष्टि ही बन गई और जब वे पलँगपर आ बैठे तो मैं हँसने लगी, मेरे रोंगटे खड़े हो गए, मैं काँपने लगी और इसके पश्चात् तो मेरा विवेक ही लुप्त हो गया कि कहाँ क्या हो रहा है ॥ १७ ॥ किसी नई ब्याही हुई नवेलीसे उसकी सखियाँ प्रातःकाल रातका समाचार पूछने लगीं। पर जब उसने लजाकर अपना सिर नीचे झुका लिया तो सखियोंको संतोष नहीं हुआ। इसी बीच यह चमत्कार हुआ कि जब वे सखियाँ उस नवेलीके स्तनोंपर चित्रकारी करने लगीं तो उनपर लगे हुए

दस्य। विदितमिति सखिभ्यो रात्रिवृत्तं विचिन्त्य व्यपगतमदयाह्नि व्रीडितं मुग्धवध्वा ॥ १९ ॥ मुग्धा त्वं सुभगे न वेत्सि मदनव्यापारमध्यापितं नूनं पद्मदलेऽपिणाऽयमलिना दष्टो न भर्त्राऽधरः। सख्येदं हसितं वधूं प्रति तदा सानन्दमाविर्भवद्वक्त्रान्तर्घनशीधुगन्धरसिकैर्भृङ्गैर्यदा गुञ्जितम् ॥ २० ॥ यद्रात्रौ रहसि व्यपेतविनयं वृत्तं रसात्कामिनोरन्योन्यं शयनीयमीहितरसावाप्तिप्रवृत्तस्पृहम्। तत्सानन्दमिलद्दृशोः कथमपि स्मृत्वा गुरूणां पुरो हासोद्भेदनिरोधमन्थरमिलत्तारं कथञ्चित्स्थितम् ॥ २१ ॥ यानि द्रवन्ति विरहे विदलन्ति यानि योगे हरेण सखि किं वलयैः फलं ते। नैवास्ति यैर्विपदि सम्पदि चोपयोगस्तैः सङ्गमं न खलु वाञ्छति कोऽपि मर्त्यः ॥ २२ ॥ रतखिन्नतनुं प्रातर्लज्जानम्रमुखीं वधूम्। स्मरन्तीं रात्रिचरितं दृष्ट्वाप्नोति न को मुदम् ॥ २३ ॥ राजते राजरामाया एष बिम्बाधरव्रणः। सुधां पीत्वेव कान्तेन तच्छेषोऽयं स मुद्रितः ॥ २४ ॥ लाक्षां विधातुमवलम्बितमात्रमेव सख्याः करेण तरुणाम्बुजजकोमलेन। कस्याश्चिदग्रपदमाशु बभूव रक्तं लाक्षारसः पुनरभूत् पुनरुक्तदूष्यः ॥ २५ ॥ वक्षस्ते दृढलग्नकर्कशकुचद्वन्द्वावभग्नान्तरं कण्ठः कङ्कणरत्नकोटिकलनासुव्यक्तमुद्राङ्कितः। व्यत्यासव्यतिषञ्जितश्च तिलकः फाले तवायं सखे कस्याश्चित्प्रकटीकरोति सुरतप्रौढिं परां सुभ्रुवः ॥ २६ ॥ शशपदमणिमालं चन्द्ररेखाभिरामं ललितपुलकजालं लक्ष्यबिन्दुप्रवालम्। वपुरनघममुष्या वक्ति कस्यापि यूनः सुरतकलहलीलासूक्ष्ममार्गाभियोगम् ॥ २७ ॥ संवरणाय वधूटी बहुपरिपाटीं करोतु किं तेन। सम्प्रति रजनिरहस्यं नयनालस्यं निवेदयति

नखके चिह्नोंने ही धीरे-धीरे उसकी सारी पोल खोल दी ॥ १८ ॥ प्रातःकाल मद उतर जानेपर उस नवेलीको इस बातपर बड़ी लज्जा हुई कि 'रातमें अत्यन्त मतवालेपनमें मैंने प्रियतमके सामने न जाने क्या-क्या बक डाला, अत्यन्त ढीठ नवेलीके समान बहुत चापलूसी की और मेरे इस सब व्यवहारको सखियोंने जान लिया है।' ॥ १९ ॥ आनन्दपूर्वक बैठी हुई नवेलीके मुखसे निकलती हुई मदिराकी घनी गन्धका रस लेनेके लिये जब भौंरे गूँजने लगे तो सखीने उस बहूसे ऐसी हँसी की कि 'हे सुन्दरी! तू बड़ी भोली है, सिखानेपर भी तू कामका व्यवहार नहीं जान पाई, तभी तो कमलकी पँखड़ीके लोभी इस रसिक भौंरे-रूपी प्रियतमने तेरे ओठका चुम्बन नहीं किया' ॥ २० ॥ जिस समय प्रेमी और प्रेमिका दोनों बड़े-बूढ़ोंके सामने बैठे हुए थे उस समय जब उन दोनोंकी आनन्दसे भरी हुई आँखें आपसमें मिलीं तो उन्हें निर्जन गृहमें निर्लज्जताके साथ और अनुरागसे भरे हुए रातके व्यवहारोंका और अभिलाषा पूरी हो जानेसे अत्यधिक प्रेम बढ़ानेवाली शय्याका स्मरण हो आया जिससे उनकी फैली हुई आँखें झँप गईं, पुतलियाँ नीची हो गईं और वे लज्जाके कारण किसी-किसी प्रकार वहाँ ठहर सके ॥ २१ ॥ हे सखी! जो प्रियतमके बिछोहके दिनोंमें ढीले पड़ जाते हैं और उनके पास रहनेपर फटने लगते हैं ऐसे कंगनोंसे भला क्या लाभ है? सम्पत्ति या विपत्तिके समय जो किसी काम न आवें ऐसोंका साथ क्या संसारका कोई मनुष्य चाहता है? ॥ २२ ॥ रतिके परिश्रमसे थकी हुई, रातके चरित्र स्मरण करती हुई और लाजसे नीचे मुख की हुई बहूको देखकर कौन प्रसन्न नहीं होता ॥ २३ ॥ इस सुन्दर नवेलीके कुँदरूके समान ओठमें जो दाँतका चिह्न लगा है वह ऐसा जान पड़ रहा है मानो प्रियतमने जिस अधरका अमृत पी लिया है उसकी सीठी वहाँ पड़ी रह गई हो ॥ २४ ॥ महावर लगानेके लिये सखीने अपने खिले हुए तरुण कमलके समान कोमल हाथसे नवेलीके पैरका आगेका भाग छूआ ही था कि पैर लाल हो उठे। इसके पश्चात् जो महावर लगाया गया वह तो उस दोपके समान प्रतीत हुआ जैसे एक बार कही हुई बात फिर दुहरा दी गई हो ॥ २५ ॥ हे मित्र! तुम्हारी छातीपर इधर-उधर लगे हुए किसीके स्तनोंके लेपकी छाप, तुम्हारे गलेपर उभड़ा हुआ किसीके कंगनके रत्नोंकी कोरकी साट और तुम्हारे मस्तकपर लगी हुई यह उलटी बिन्दी ये सब किसी सुन्दर भौंहवाली नवेलीकी ढीठतासे भरी रतिक्रीड़ा प्रकट कर रहे हैं ॥ २६ ॥ मालाकी मणि दब जानेसे जिसमें खरहेके पैरके चिह्नके समान चिह्न दिखाई दे रहे हों, जिसमें चँदवे (सिरबन्धी) के दाबका सुन्दर चिह्न बना हुआ हो, जिसमें उठे हुए रोंगटे शोभा दे रहे हों और जिसमें मूँगेके समान लाल बिन्दी लगी हुई हो, ऐसे युवकके शरीरको देखकर भोले-भाले लोग भी यही कहते हैं कि यह रतिकलहकी लीलाओंके सूक्ष्मसे सूक्ष्म ढङ्ग जाननेवाला है ॥ २७ ॥ यह नई बहू अपनी रातकी बातें छिपानेके लिये कितने भी उपाय क्यों न करे

॥ २८ ॥ सख्यस्तानि वचांसि यानि बहुशोऽधीतानि युष्मन्मुखाद्धृदयेऽहं बहुशिक्षिता क्षणमपि ध्यात्वाऽस्मि मौनं गता धूर्तेनैव च मण्डलीकृतकुचं गाढं परिष्वज्य। मां पीतान्येव सहाधरेण सहसा वक्त्रस्थितान्येव मे ॥ २६ ॥ सुप्तोऽयं सखि सुप्यतामिति गताः सख्यस्ततोऽनन्तरं प्रेमावेशितमा मया तरलया न्यस्तं मुखं तन्मुखे। ज्ञातेऽलीकनिमीलने नयनयोर्धूर्तस्य रोमाञ्चतो लज्जाऽऽसीन्मम तेन साऽप्यपहृता तत्कालयोग्यैः क्रमैः ॥ ३० ॥ हारेण च स्तनयुगं परिवृत्य पीनमत्यायतं च जघनं रशनागुणेन। मध्यस्य मण्डनविधिं न चकार काचिद्रिक्तः सनाभिरपि नैव हि माननीयः ॥ ३१ ॥

आलिङ्गनम्—अंशुकं हृतवता तनुबाहुस्वस्तिकापिहितमुग्धकुचाग्रा। भिन्नशङ्खवलयं परिणेत्रा पर्यरम्भि रभसादचिरोढा ॥ १ ॥ उत्तरीयविनयात्त्रपमाणा रुन्धती किल तदोक्षणमार्गम्। आवरिष्ट विकटेन विवोढुर्वक्षसैव कुचमण्डलमन्या ॥ २ ॥ दीपितस्मरमुरस्युपपीडं वल्लभे घनमभिष्वजमाने। वक्रतां न ययतुः कुचकुम्भौ सुभ्रुवः कठिनतातिशयेन ॥ ३ ॥ न स्म माति वपुषः प्रमदानामन्तरिष्टतमसङ्गमजन्मा। यद्बहुर्बहिरवाप्य विकासं व्यानशे तनुरुहाण्यपि हर्षः ॥ ४ ॥ पीडिते पुर उरःप्रतिपेषं भर्तरि स्तनयुगेन युवत्याः। स्पष्टमेव दलतः प्रतिनार्यास्तन्मयत्वमभवद्धृदयस्य ॥ ५ ॥ यत्प्रियव्यतिकराद्वनितानामङ्गजेन पुलकेन बभूवे। प्रापि तेन भृशमुच्छ्वसिताभिर्नीविभिः सपदि बन्धनमोक्षः ॥ ६ ॥ सञ्जहार सहसा परिरब्धप्रेयसीषु विरहय्य विरोधम्। संहितं रतिपतिः स्मितभिन्नक्रोधमाशु तरुणेषु महेषुम् ॥ ७ ॥ सम्प्रवेष्टुमिव योषित ईषुः श्लिष्यतां हृदयमिष्टतमानाम्। आत्मनः सततमेव तदन्तर्वर्तिनो न खलु नूनमजानम्

किन्तु इस समय इसके नेत्रोंका आलस्य ही रातका सारा भेद खोले दे रहा है ॥ २८ ॥ हे सखियो! तुम लोगोंके मुखसे जो बातें मैंने बार-बार सीखी थीं उन्हें रातमें प्रियतमसे कहनेके लिये मैं क्षणभर मौन होकर सोच ही रही थी कि इतनेमें उस धूर्तने मेरे उठे हुए स्तन पकड़कर, मेरा कसकर आलिंगन करके, मेरे अधरोष्ठके साथ-साथ ही मेरे मुँहमें बसी हुई वे सारी बातें पी डालीं ॥ २६ ॥ हे सखी! मेरे प्रियतमको सोते देखकर सखियाँ तो यह कहकर चली गईं कि 'हे सखी! यह सो रहा है अतः इसे सोने दो' और मुझमें ऐसा प्रेम उमड़ आया कि मैंने उसके मुखपर अपना मुख रख दिया। फिर जब उसके शरीरमें रोमाञ्च दिखाई पड़ा तब मैंने समझा कि यह धूर्त्त झूठ-मूठ आँखें मूँदे हुए है और मुझे बड़ी लज्जा आ गई किन्तु उसने उस समयकी अनुकूल क्रियाओंसे मेरी वह लाज भी छीन ली ॥ ३० ॥ किसी नवेलीने हारसे तो अपने दोनों स्तन सजा लिए और बड़े-बड़े मोटे नितम्बको करधनीसे सजा लिया किन्तु नाभिको इसलिये नहीं सजाया कि यह तो रीती है इसका क्या आदर किया जाय ॥ ३१ ॥

गले लगाना : ज्योंही नायकने नवेलीका वस्त्र खींचा त्योंही नवेलीने अपने दोनों हाथ कन्धोंपर रखकर अपने सुन्दर स्तन ढक लिए और नायकने झट उसे गले लगा लिया, जिसपर उस नई बहूने ऐसे हाथ हिलाए कि उसके शंखके चूड़े बज उठे ॥ १ ॥ ज्योंही नायकने वस्त्र खींचे कि नवेली लाजसे गड़ गई और नायककी आँख बचानेके लिये उसने नायकके विशाल वक्षस्थलसे अपने स्तन भिड़ाकर उसके गले लगकर स्तन छिपा लिए ॥ २ ॥ अत्यन्त कामोत्तेजित होकर नायकने नवेलीके स्तन दबाते हुए जब कसकर उसे छातीसे लगाया तो सुन्दर भौंहोंवाली नवेलीके दोनों स्तन अत्यन्त कठोर हो जानेके कारण तनिक भी टस-से-मस न हुए ॥ ३ ॥ पतिके गलेसे लगनेके कारण प्रसन्नचित्त नवेलियोंके शरीरमें जब हर्ष न समा सका तो उसने बाहर खड़े हुए रोंगटे भी प्रसन्न करके खड़े कर दिए ॥ ४ ॥ उस नवेलीने अपने स्तनोंसे नायककी छाती दबाकर उसे गले लगाया तो सौतका हृदय इस प्रकार टूक-टूक हो गया मानो पतिके चिन्तनसे जो उसका हृदय तन्मय हो गया था वह सौतके स्तनोंसे दबकर टुकड़े-टुकड़े हो गया हो ॥ ५ ॥ पतिके गले लगनेसे नवेलियोंके शरीरसे रोमाञ्च-रूपी पुत्र उत्पन्न हुआ इसलिये इस प्रसन्नतासे बँधे हुए नाड़े छुटकारा पा गए क्योंकि जब पुत्र उत्पन्न होता है तो उस प्रसन्नतामें शत्रु भी बन्धनसे खोल दिए जाते हैं ॥ ६ ॥ पुरुषोंने सब झगड़ा-टन्टा मिटाकर जब नवेलियोंको गलेसे लगाया तो नम्र मुस्कानसे उन्होंने रूठना छोड़ दिया और कामदेवने भी उन लोगोंपर चढ़ाए हुए अपने विशाल बाणोंको व्यर्थ समझकर उतार दिया ॥ ७ ॥ छातीसे लगाते हुए पतिके हृदयमें नवेलियाँ मानों घुस जाना चाहती थीं पर वे यह नहीं जान पाईं कि वे सदा उनके हृदयमें ही निवास करते हैं ॥ ८ ॥

॥ ८ ॥ स्रंसमानमुपयन्तरि वध्वाः श्लिष्टवत्युपसर्पति रसेन। आत्मनैव रुरुधे कृतिनेव स्वेदसङ्गि वसनं जघनेन ॥ ९ ॥ स्नेहनिर्भरमधत्त वधूनामार्द्रतां वपुरसंशयमन्तः। यूनि गाढपरिरम्भिणि वस्त्रक्नोपमम्बु ववृषे यदनेन ॥ १० ॥ ह्रीतया गलितनीवि निरस्यन्नन्तरीयमवलम्बितकाञ्चि। मण्डलीकृतपृथुस्तनभारं सस्वजे दयितया हृदयेशः ॥ ११ ॥

चुम्बनम्—आदृता नखपदैः परिरम्भाश्चुम्बितानि घनदन्तनिपातैः। सौकुमार्यगुणसम्भृतकीर्तिर्वाम एव सुरतेष्वपि कामः ॥ १ ॥ केनचिन्मधुरमुल्बणरागं बाष्पतप्तमधिकं विरहेषु। ओष्ठपल्लवमपास्य मुहूर्तं सुभ्रुवः सरसमक्षि चुचुम्बे ॥ २ ॥ पल्लवोपमिति साम्यसपक्षं दष्टवत्यधरबिम्बमभीष्टे। पर्यकूजि सरुजेव तरुण्यास्तारलोलवलयेन करेण ॥ ३ ॥ लोलदृष्टि वदनं दयितायाश्चुम्बति प्रियतमे रभसेन। व्रीडया सह विनीवि नितम्बादंशुकं शिथिलतामुपपेदे ॥ ४ ॥ ह्रीभरादवनतम्परिरम्भे रागवानवटुजेष्ववकृष्य। अर्पितोष्ठदलमाननपद्मं योषितो मुकुलिताक्षमधासीत् ॥ ५ ॥

विहारः—अम्बरं विनयतः प्रियपाणेर्योषितश्च करयोः कलहस्य। वारणामिव विधातुमभीक्ष्णं कक्ष्यया च वलयैश्च शिशिञ्जे ॥ १ ॥ आमृशद्भिरभितो वलिवीचीर्लोलमानविततांगुलिहस्तैः। सुभ्रुवामनुभवात्प्रतिपेदे मुष्टिमेयमिति मध्यमभीष्टैः ॥ २ ॥ आयताङ्गुलिरभूदतिरिक्तः सुभ्रुवां कृशिमशालिनि मध्ये। श्रोणिषु प्रियकरः पृथुलासु स्पर्शमाप सकलेन तलेन ॥ ३ ॥ आवृतान्यपि निरन्तरमुच्चैर्योषितामुरसिजद्वितयेन। रागिणामित इतो विमृशद्भिः पाणिभिर्जगृहिरे

नायकने सौतके सामने ही जब बड़े तपाकसे नवेलीको गले लगाया तो उसके वस्त्र सरकने लगे, वह पसीनेसे नहा उठी किन्तु वस्त्र पेड़पर ही ऐसे अटक गया मानो समझदार पेड़ने उसे स्वयं थाम लिया हो ॥ ९ ॥ नवेलियोंका शरीर स्नेह (प्रेम, चिकनाहट) से भरा था और भीतर आर्द्र (गीला, प्रेमभरा) था क्यों कि ज्योंही पतिने कसकर छातीसे लगाया त्योंही इतना जल शरीरसे निकल पड़ा कि सब कपड़े तर हो गए ॥ १० ॥ नायकने ज्योंही नवेलीका वस्त्र खींचा कि उसका नाड़ा खुल गया और वह लज्जित होकर अपनी करधन थामे हुए अपने विशाल स्तनोंसे अपने प्राणप्यारेकी छाती दबाती हुई उसके गलेसे लिपट गई ॥ ११ ॥

चुम्बन : नखके चिह्नोंने छातीसे लगनेका आदर किया, दाँतोंके चिह्नोंने चुम्बनका सम्मान किया और सुकुमारताके लिये बहुत प्रसिद्ध कामदेव भी सुरतके समय वाम (उल्टा, कुटिल) व्यवहार करने लगा ॥ १ ॥ विरहिणी नवेलीके ओठ सुन्दर तथा अत्यन्त लाल थे। किन्तु इतना होनेपर भी वे गरम आँसुओंसे तप गए थे। इसलिये नायक उसे छोड़कर बड़े प्रेमसे थोड़ी देरतक उसकी रसीली आँखें ही चूमता रहा ॥ २ ॥ जिस समय नायक उस नवेलीके ओठ अपने दाँतोंसे काट रहा था उस समय मानो उसके हाथ दुखी होकर कङ्कनकी खनखनाहटके बहाने चिल्लाने लग रहे थे क्योंकि हाथ और ओठ दोनों ही नई कोंपलोंके समान लाल थे इसलिये दोनों एक दूसरेके मित्र थे ॥ ३ ॥ जिस समय नायक उस चञ्चल आँखोंवाली नवेलीका मुँह चूमे जा रहा था उस समय नवेलीका नाड़ा खुला जा रहा था और लाजके साथ-साथ उसके वस्त्र भी नितम्बके नीचे सरके पड़ रहे थे ॥ ४ ॥ प्रेमी पतिने नवेलीका जूड़ा थामकर लाजसे झुका हुआ उसका वह मुँह चूम लिया जिसके ओठ नायकके मुखके पास पहुँच गए थे और आँखें झिंप गई थीं ॥ ५ ॥

विहार : जब पतिने नवेलीकी साड़ी खींची और नवेलीने अपने हाथसे उसे रोका उस समय उन दोनोंके हाथोंकी लड़ाई देखकर करधन तथा कङ्कन दोनों मानो बज-बजकर उन्हें झगड़ेसे रोकने लगे ॥ १ ॥ पेटकी सिकुड़न-रूपी लहरोंके चारों ओर नायकने पहले अपना हाथ फेरा, इस हाथफेरमें हाथकी उँगलियाँ चञ्चल होकर आगे बढ़ती जा रही थीं और इस प्रकार पुराने अभ्यासके कारण जब उसने उसकी कमर मुट्ठीसे नापी तब कहीं वह कमरका भेद समझ पाया ॥ २ ॥ नवेलीकी कमर इतनी पतली थी कि नायककी उँगली उसे लपेटकर भी बढ़ी पड़ गई अर्थात् पूरी उँगली भी कमरको न लपेट सकी। पर नितम्बपर तो पूरी हथेली ही जमकर बैठ गई ॥ ३ ॥ विशाल स्तनोंसे चारों ओरसे घिरे हुए स्त्रियोंके हृदयोंको इधर-उधर ढूँढ़नेवाले नायकके हाथोंने उनके हृदय पा लिए अर्थात् स्पर्शके सुखसे स्त्रियाँ प्रसन्न हो उठीं ॥ ४ ॥ नायककी उँगली

हृदयानि ॥ ४ ॥ आशु लङ्घितवतीष्टकराग्रे नीविमर्धमुकुलीकृतदृष्ट्या । रक्तवैणिकहताधरतन्त्रीमण्डलक्वणितचारु चुकूजे ॥ ५ ॥ ऊरुमूलचपलेक्षणमन्यैर्वतंसकुसुमैः प्रियमेताः । चक्रिरे सपदि तानि यथार्थं मन्मथस्य कुसुमायुधनाम ॥ ६ ॥ कामिनः कृतरतोत्सवकालक्षेपमाकुलवधूकरसङ्गि । मेखलागुणविलग्नमसूयां दीर्घसूत्रमकरोत्परिधानम् ॥ ७ ॥ कामिनामसकलानि विभुग्नैः स्वेदवारिमृदुभिः करजाग्रैः । अक्रियन्त कठिनेषु कथञ्चित्कामिनीकुचतटेषु पदानि ॥८॥ ग्रन्थिमुद्ग्रथयितुं हृदयेशे वाससः स्पृशति मानधनायाः । भ्रूयुगेण सपदि प्रतिपेदे रोमभिश्च सममेव विभेदः ॥ ९ ॥ चक्रुरेव ललनोरुषु राजीः स्पर्शलोभवशलोलकराणाम् । कामिनामनिभृतान्यपि रम्भास्तम्भकोमलतलेषु नखानि ॥ १० ॥ प्राप्य नाभिनदमज्जनमाशु प्रस्थितं निवसनग्रहणाय । औपनीविकमरुन्ध किल स्त्री वल्लभस्य करमात्मकराभ्याम् ॥ ११ ॥ सोष्मणस्स्तनशिलाशिखराग्रादात्तघर्मसलिलैस्तरुणानाम् । उच्छ्वसत्कमलचारुषु हस्तैर्निम्ननाभिसरसीषु निपेते ॥ १२ ॥ हिमलवसदृशः श्रमोदबिन्दूनपनयता किल नूतनोढवध्वाः । कुचकलशकिशोरकौ कथञ्चित्तरलतया तरुणेन पस्पृशाते ॥ १३ ॥

सुरतकेलिकथनम्—अकृत्रिमविलासाङ्कमशिक्षितकलाक्रमम् । अविभागाङ्गसुभगं बभूव सुरतं तयोः ॥ १ ॥ अन्यकालपरिहार्यमजस्रं यद्द्वयेन विदधे द्वयमेव । धृष्टता रहसि भर्तृषु ताभिर्निर्दयत्वमितरैरबलासु ॥ २ ॥ अभिनवपुलकालीमण्डिता गण्डपाली निगदति घनिगूढानन्दहिन्दोलिचेतः । सुदति वदति पुण्यैः कस्य धन्यैर्मनोजप्रसरमसकृदेतच्चापलं लोचनस्य ॥ ३ ॥ अविदितसुखदुःखं निर्गुणं वस्तु किञ्चिज्जडमतिरिह कश्चिन्मोक्ष इत्याचचक्षे । मम तु मतमनङ्ग-

---

जब एकाएक नायिकाके नाड़ेपर पहुँची तब नायिकाकी आँखें छिप गईं और जब नायकने उसके ओठपर दाँत लगाया उस समय उसके गलेसे ऐसा स्वर निकला जैसे वीणा बज उठी हो ॥ ५ ॥ जाँघोंकी जड़ देखनेके लिये नायककी आँखें चञ्चल हो रही थीं, इसपर स्त्रियोंने अपने कानपर रक्खे हुए फूलसे जो नायकको मारा वे उसे बाणके समान लगे। उस समय कामका 'पुष्पबाणधारी' नाम सचमुच सार्थक हो गया ॥ ६ ॥ जिस समय नायक सम्भोगके लिये तैयार हुआ उस समय नवेलीके चञ्चल हाथ और करधनमें फँसा हुआ लम्बे सूतवाला वस्त्र ऐसा प्रतीत हुआ मानो डाह करके सुरतोत्सवमें बाधा पहुँचा रहा हो ॥ ७ ॥ नायकके नख पसीनेसे कोमल पड़ गए थे इसलिये नायिकाके कठोर स्तनोंपर लगकर वे ऐसे मुड़ गए कि स्तनोंपर बहुत हल्के चिह्न लग पाए ॥८॥ रूठी हुई नवेलीका नाड़ा खोलनेके लिये ज्योंही नायकने हाथ बढ़ाए कि उस नायिकाकी भौंहें चढ़ गईं और अनुरागके कारण शरीरके रोंगटे भी खिल उठे ॥ ९ ॥ कामी पुरुषोंके हाथ नवेलियोंकी जाँघें छूनेके लिये इतने मचल रहे थे कि उन्होंने नवेलीके केलेके खम्भोंके समान चिकनी जाँघोंपर अपने नखोंसे खरोंचनेकी रेखाएँ बना ही दीं ॥ १० ॥ पहले तो नवेलीके हाथने नायिकाके नाभि-रूपी तालमें डुबकी लगाई, फिर वस्त्र लेनेके लिये आगे बढ़ा पर जब वह नवेलीके नाड़ेके पास पहुँचा तब नवेलीने अपने हाथसे मूठ-मूठकी रुकावट डाल दी ॥ ११ ॥ पहले तो युवकके हाथ नवेलीके गरम स्तन-रूपी चट्टानकी चोटीपर पहुँचते-पहुँचते पसीनेसे तर हो गए और फिर खिले हुए कमलके समान सुन्दर नवेलियोंके नाभि-रूपी गहरे तालमें कूद पड़े। क्योंकि यों भी लोग जब पसीनेसे तर हो जाते हैं तब खिले हुए कमलसे भरे जलाशयमें कूदकर अपनी तपन मिटाते ही हैं ॥१२॥ नई ब्याही बहूकी छातीपर छाई हुई ठण्ढी पसीनेकी बूँदें पोंछते हुए वह युवक बड़ी मस्तीसे उसके नन्हें-नन्हें स्तन-रूपी कलश मसले डाल रहा था ॥ १३ ॥

रति-क्रीडाका वर्णन : उन दोनों प्रेमी-प्रेमिकाओंकी रतिक्रीड़ा ऐसी हुई कि उसमें स्वाभाविक रूपसे हाव-भाव हो रहे थे, बिना सीखी-पढ़ी कलाएँ हो रही थीं और पूरे अङ्ग न दिखाई देनेसे वह और भी सुन्दर लग रही थी ॥१॥ नवेलियोंने अपने प्रियतमोंके सम्मुख ढिठाई की तथा पुरुषोंने नवेलियोंके साथ आलिङ्गन आदि कामोंमें निर्दयताका व्यवहार किया। इस प्रकार उन्होंने ये दो ऐसे काम किए जो रतिक्रीडाके अतिरिक्त दूसरे समयमें कभी भी नहीं करना चाहिए ॥ २ ॥ हे सुन्दर दाँतोंवाली ! अभी उठे हुए रोमाञ्चसे भरे तुम्हारे गाल सूचित कर रहे हैं कि तुम्हारे मनमें आनन्द छिपा हुआ भरा पड़ा है। और यह तो बताओ कि तुम्हारे नेत्रोंकी चञ्चलता किसके प्रबल पुण्यसे यह सूचना दे रही है कि तुमपर कामदेवका प्रभाव भरपूर पड़ गया है ॥ ३ ॥ कुछ मूर्ख

स्मेरतारुण्यघूर्णन्मदकलमदिराक्षीनीविमोक्षो हि मोक्षः ॥ ४ ॥ आमीलितालसविवर्तिततारकाक्षीमुत्कण्ठबन्धनदरश्लथबाहुवल्लीम्। प्रस्वेदवारिकणिकाचितगण्डबिम्बां संस्मृत्य तामनिशमेति न शान्तिमन्तः ॥ ५ ॥ आयाते दयिते मनोरथशतैर्नीते कथञ्चिद्दिने वैदग्ध्यापगमाज्जडे परिजने दीर्घां कथां कुर्वति। दष्टास्मीत्यभिधाय सत्वरपदं व्याधूय चीनांशुकं तन्वङ्ग्या रतिकातरेण मनसा नीतः प्रदीपः शमम् ॥ ६ ॥ आस्तां दूरेण विश्लेषः प्रियामालिङ्गतो मम। स्वेदः किं नु सरिन्नाथो रोमाञ्चः किं नु पर्वतः ॥ ७ ॥ आहतं कुचतटेन तरुण्याः साधु सोढमधुनेति पपात। त्रुट्यतः प्रियतमोरसि हारात्पुष्पवृष्टिरिव मौक्तिकवृष्टिः ॥ ८ ॥ ईषत्कम्पपयोधरं गुरुकटिप्रौढप्रहाराद्रुतं स्विद्यद्भालमनेकहास्यसरसं संरम्भमन्दव्यथम्। वारंवारमुरःप्रहारसुभगं सन्दश्यमानाधरं किञ्चिद्दत्तनितम्बदेशनखरं धन्यो रतं सेवते ॥ ९ ॥ ईदृशस्य भवतः कथमेतल्लाघवं मुहुरतीव रतेषु। क्षिप्तमायतमदर्शयदुर्व्यां काञ्चिदाम जघनस्य महत्त्वम् ॥ १० ॥ ईषन्मीलितदृष्टि मुग्धहसितं सीत्कारधारावशादव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौताधरम्। श्वासोत्कम्पिपयोधरोपरि परिष्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम् ॥ ११ ॥ उग्ररूपं कुचद्वन्द्वं हारगङ्गाधरं तव। चन्द्रचूडं करिष्यामि कुरु तावद्दिगम्बरम् ॥ १२ ॥ उद्धतैर्निभृतमेकमनेकैश्छेदवन्मृगदृशामविरामैः। श्रूयते स्म भणितं कलकाञ्चीनूपुरध्वनिभिरक्षतमेव ॥ १३ ॥ उरोरुहाम्भोरुहदर्शनाय विमुञ्चतः

ऐसी वस्तुको मोक्ष कहते हैं जिसमें सुख या दुःखका अनुभव ही नहीं होता और जिसमें सत्त्व, रज, तम गुणोंमेंसे किसी एक भी गुणका सम्बन्ध नहीं रहता। हमारी समझमें तो कामदेव तथा विकसित यौवनसे मतवाली और चञ्चल आँखोंवाली नवेलीके नाड़ेका मोक्ष (खोलना) ही यथार्थमें मोक्ष है ॥ ४ ॥ मुँदी हुई, आलस्यसे भरी हुई और हिलती हुई पुतलियोंसे युक्त आँखवाली उस नवेलीका स्मरण करके मेरे मनको किसी भी समय शान्ति नहीं प्राप्त होती जिसकी भुजाएँ मेरा गला लपेटनेके लिये कुछ शिथिल थीं और पसीनेकी बूँदोंसे जिसके गाल भरे हुए थे ॥ ५ ॥ बहुत दिनोंके बिछोहके पश्चात् प्रियतम आए, अनेक प्रकारके सङ्कल्प करते हुए किसी प्रकार दिन बीता और रात आई किन्तु सखियाँ ऐसी मूर्ख थीं कि उन्होंने मूर्खताके कारण बड़ी लम्बी कहानी छेड़ दी। इसपर नवेलीने यह कहकर अपना आँचल हिलाकर दीपक बुझा दिया कि 'अरे मुझे कीड़ेने काट खाया' क्योंकि उसका मन तो रतिक्रीड़ाके लिये छटपटा रहा था ॥ ६ ॥ नवेलीसे दूर रहकर वियोगी बने रहना ही अच्छा है क्योंकि प्यारीके आलिंगनके समय पसीना ही समुद्र हो जाता है और उठे हुए रोंगटे पहाड़ बन जाते हैं ॥ ७ ॥ जब नवेलीने कसकर नायकका आलिङ्गन किया तो उसका हार टूट गया और बिखरे हुए मोती ऐसे दिखाई देने लगे मानो फूलोंकी वर्षा हो रही हो। यह फूलोंकी वर्षा मानो इस प्रसन्नतामें हुई कि नवेलीके कठोर स्तनोंके धक्के नायकके वक्षःस्थलने सह लिए थे ॥ ८ ॥ जिसमें धीरे-धीरे स्तन हिल रहे हों, भारी नितम्बोंपर वेगसे धक्के लग रहे हों, माथेपर पसीना छा रहा हो, अनेक प्रकारसे रसीली हँसी हो रही हो, आलिङ्गनसे कुछ-कुछ थकावट हो रही हो, बार-बार छातीपर हाथ फेरा जा रहा हो, दाँतोंसे ओठ काटे जा रहे हों और नितम्बोंपर नखोंसे खरोंचें लग रहे हों ऐसा सुख कोई पुण्यात्मा ही पाता है ॥ ९ ॥ धरतीपर गिरी हुई लम्बी करधनीकी लड़ नवेलीके नितम्बकी चौड़ाई बतला रही थी और मानो प्रियतमसे यह भी कह रही थी कि 'हैं तो आप इतने भारी किन्तु रति करते समय इतने हल्के कैसे हो जाते हैं।' ॥ १० ॥ साँस फूलनेके कारण काँपते हुए स्तनोंपर हाथ रखनेसे आनन्द-विभोर होनेवाली और अपनी देह ढीली कर देनेवाली मृगनयनीके उस मुखका कोई पुण्यात्मा ही चुम्बन कर सकता है जिसमें आँखें अधखुली हों, मनोहर हँसी छिटकी हुई हो, सी-सी शब्द निकल रहे हों और रतिक्रीड़ाके समय टूटी-फूटी दीन वाणी निकलनेके कारण जिसके ओठोंपर दाँतका किरणें पड़ रही हों ॥ ११ ॥ तुम्हारे स्तन स्वयं ही उग्र (विशाल, शङ्कर) हैं, वे हाररूपी गङ्गाजीको धारण करके गङ्गाधर भी बने हुए हैं अतः अब तुम अपने वस्त्र हटाकर इन्हें उघाड़कर दिगम्बर बना दो और मैं इनपर नखोंसे चिह्न बनाकर इन्हें चन्द्रचूड़ बना दूँ ॥ १२ ॥ हिल-हिलकर निरन्तर बज उठनेवाली नवेलीकी करधनी तथा नूपुरकी मधुर ध्वनिसे धीरे-धीरे उठनेवाला तथा बीचमें टूट-टूट जानेवाला

कञ्चुकबन्धनानि । आनन्दनीराकुललोचनस्य प्रियस्य जातो विपुलः परिश्रमः ॥ १४ ॥ कचग्रहमनुग्रहं दशनखण्डनं मण्डनं दृगञ्जनमवञ्जनं मुखरसार्पणं तर्पणम् । नखार्दनमतर्दनं निविडपीडनं क्रीडनं करोति रतिसङ्गमे मकरकेतनः कामिनाम् ॥ १५ ॥ कान्तया सपदि कोऽप्युपगूढः प्रौढपाणिरपनेतुमियेष । संहतस्तनतिरस्कृतदृष्टिर्भ्रष्टमेव न दुकूलमपश्यत् ॥ १६ ॥ कान्ते कलितचोलान्ते दीपे वैरिणि दीप्यति । आसीदसितपद्माक्ष्याः पद्मो नयनमुद्रणम् ॥ १७ ॥ कोकः स्तोकविमुक्तमौक्तिकभरो निस्यन्दमिन्दीवरं चापं चापलवर्जितं हिमकरक्रोडे तमः क्रीडति । वातः कातरयत्यपाक्तरसं बन्धूकमेतावती वार्ता क्वापि कदापि पाणिपिहिता कस्यापि वा तिष्ठति ॥ १८ ॥ गाढालिङ्गनवामनीकृतकुचप्रोद्भिन्नरोमोद्गमा सान्द्रस्नेहरसातिरेकविगलच्छ्रीमन्नितम्बाम्बरा । मा मा मानद माति मामलमिति क्षामाक्षरोल्लापिनी सुप्ता किं नु मृता नु किं मनसि मे लीना विलीना नु किम् ॥ १९ ॥ गाढाश्लेषनिपीडनान्निपतितामालोक्य हारावलीं स्थातुं हन्त भिया क्षणं निविडया नीव्यापि न व्यापृतम् । विश्लेषज्वरवेदनासहनयोः कारुण्यकोर्णात्मना क्वापि प्रापितयोः समागमसुखं यूनोर्मनोजन्मना ॥ २० ॥ गाढोपगूहनरसालसलोचनानामेणीदृशां पुलकदन्तुरकुड्मलेषु । गण्डस्थलेषु वदनानि निवेशयन्तो धन्याः सुखेन दिवसानतिवाहयन्ति ॥ २१ ॥ चारुनूपुररणत्कृतं रते कामिनां हरति मानसं यथा । नो तथा मधुरगीतवादितं केकिचातकपिकस्वना अपि ॥ २२ ॥ चिरविरहिणो रत्युत्कण्ठा श्लथीकृतगात्रयोर्नवमिव जगज्जातं भूयश्चिरादभिनन्दतोः । कथमपि

गलेका शब्द दबा ही नहीं वरन् और भी स्पष्ट सुनाई देने लगा ॥ १३ ॥ स्तनरूपी कमल देखनेके लिये प्रियतमने ज्योंही नवेलीकी चोलीकी गाँठ खोली त्योंही उनकी आँखोंमें आनन्दका जल भर आया अतः गाँठ खोलनेमें उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा ॥ १४ ॥ रतिके समय प्रेमी-द्वारा प्रेमिकाके केश पकड़ना ही कामदेवकी उनपर कृपा है, दन्तक्षत करना ही सुशोभित करना है, आँखें मूँदना ही स्नेह है, अधरामृतका दान ही तृप्ति है, नखक्षत करना ही रक्षा करना है और कसकर दबाना ही खेल है ॥ १५ ॥ किसी नायकने जैसे ही नवेलीकी साड़ी खींचनी चाही वैसे ही नवेलीने झट उसका आलिङ्गन कर लिया। अब ऊँचे स्तनोंके कारण नायककी दृष्टि ऊपर ही उलझ गई, अतः वह यह देख ही नहीं पाया कि साड़ी पहले ही नीचे गिर चुकी है ॥ १६ ॥ जिस समय प्रियतमने आँचल पकड़ा उस समय भी वैरी दीपक जल ही रहा था । अतः नीले कमलके समान आँखवाली नवेलीके पास एक ही उपाय रह गया कि उसने अपनी आँखें मूँद लीं ॥ १७ ॥ चकवेके समान गोल स्तनोंपरसे मोतीकी माला खिसक गई, नीले कमलके समान नेत्र निश्चल हो गए, कामके धनुषके समान भौंहोंमें चञ्चलता नहीं रह गई, चन्द्रमारूपी मुखपर बालरूपी अन्धकार छा गए और जपाकुसुमके समान ओठका रस सुखाते हुए पवनने ओठ मलिन बना दिया । इतनी वस्तुएँ क्या कभी कहीं किसीके हाथसे ढकी जा सकती हैं ? ॥ १८ ॥ नायकने जब कसकर प्यारीका आलिंगन किया तो उसके स्तन चिपट गए, उसकी देहमें रोमाञ्च हो गया और प्रेमके अत्यधिक बढ़ जानेके कारण उसके सुन्दर नितम्बसे साड़ी भी सरक गई । तत्पश्चात् 'हे अत्यधिक आदर करनेवाले प्रियतम ! बस, बस, मुझे अधिक न दबाओ ।' इस प्रकार टूटे-फूटे अक्षरोंमें बोलती हुई वह न जाने सो गई या मर गई या मेरे मनमें समा गई या लुप्त हो गई ॥ १९ ॥ वियोग-रूपी ज्वरकी पीड़ा न सह सकनेवाले प्रेमी और प्रेमिकाके परस्पर मिलनेके सुखको दयालु कामदेवने जब अत्यधिक ऊँचाईपर पहुँचा दिया उस समय कसकर आलिंगनके दबावमें पड़कर हारकी लड़ियाँ टूटकर बिखर गईं । उनकी यह दशा देखकर कसी हुई नीवी (साड़ीकी गाँठ) ऐसी डर गई कि वह क्षणभर भी ठहर न पाई ॥ २० ॥ वे लोग धन्य हैं जो कसकर आलिंगन करनेके आनन्दसे अलसाई हुई आँखोंवाली मृगनयनी नवेलियोंके रोमाञ्चित कपोलोंपर अपना मुँह रक्खे हुए सुखपूर्वक दिन बिताते हैं ॥ २१ ॥ सुरतके समय नवेलीके पैरके पायलकी झनकारने जिस प्रकार प्रियतमका मन वशमें किया उस प्रकार मधुर गाने-बजाने और मोर, पपीहे तथा कोयलकी मधुर ध्वनि मनको वशमें नहीं कर पाई ॥ २२ ॥ बहुत दिनोंसे जो एक दूसरेसे बिछुड़े हुए थे, मिलनेकी चिन्तामें जो दुबले हो गए थे, जो परस्पर मिलनेपर यह कह-कहकर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे कि 'आज हमारे लिये यह संसार फिर नया-सा हो गया', किसी-किसी

दिने दीर्घे याते निशामधिरूढयोः प्रसरति कथा यद्वी यूनोर्यथा न तथा रतिः ॥ २३ ॥ टङ्कारः स्मरकार्मुकस्य सुरतक्रीडापिकीनां रवो झङ्कारो रतिमञ्जरीमधुलिहां केलीचकोरीस्वनः । तन्व्याः कञ्चुलिकापसारणभुजाक्षेपस्फुरत्कङ्कणक्वाणः प्रेम तनोतु वो नववयोलास्याय वेणुध्वनिः ॥ २४ ॥ तव तन्वि तरुणपुण्यादम्बरमणिमकरसंक्रमो जातः । अधिवेणि भवति नियमः फलमविलम्बेन भावि कामस्य ॥२५॥ तृषितः स्पृशति प्रेयान्यद्यदङ्गं मृगीदृशः । तत्तत्सङ्कुचति स्वैरं मन्मथः प्रसरत्यहो ॥ २६ ॥ त्वं मुग्धाक्षि विनैव कञ्चुलिकया धत्से मनोहारिणीं लक्ष्मीमित्यभिधायिनि प्रियतमे तद्वीटिकासंस्पृशि । शय्योपान्तनिविष्टसस्मितसखीनेत्रोत्सवानन्दितो निर्यातः शनकैरलीकवचनोपन्यासमालीजनः ॥ २७ ॥ दुकूलं दोर्मूलात्प्रणयिनि परीरम्भरसिके हरत्यम्भोजाक्षी निभृतनिभृतं नम्रवदना । प्रियाश्लेषद्वेषिण्यपसरतु लज्जा स्फुटमिति स्मितक्षीरेणैव स्तनकलशशम्भुं स्नपयति ॥ २८ ॥ दृशा सपदि मीलितं दशनरोचिषा निर्गतं करेण परिवेपितं वलयकैरथाक्रन्दितम् । प्रियैः समदयोषितां ननु विखण्ड्यमानेऽधरे परव्यसनकातराः किमिवकुर्वतां साधवः ॥ २९ ॥ दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीडितः पाणिजैराविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः । हस्तेनानमितः करेऽधरसुधास्यन्देन सम्मोहितः कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः ॥ ३० ॥ धम्मिल्लो भङ्गमेतु प्रविशतु तिलकः केशपाशान्धकारं पत्राली गण्डपालीं त्यजतु च विवरं कर्णयोर्गन्तुकामा । वामायाः कान्तदन्तक्षततिसहने एक एवाधरोऽसौ वीरः कामाहवेऽस्मिन्निति वदति मुहुर्नूपुरः

प्रकार अनेक प्रकारके विचार कर-करके बड़ी कठिनाईसे लम्बे दिन विताकर जिन्होंने रात पाई थी, उन तरुण तथा तरुणीने आपसमें ऐसी लम्बी बातें छेड़ीं कि रतिके लिये जितना समय चाहिए उतना न मिल पाया ॥२३॥ कामदेवके धनुषकी टंकार, रतिक्रीड़ा-रूपी कोयलोंका स्वर, रतिरूपी मंजरीका रस लेनेवाले भौंरोंकी गुञ्जार, क्रीड़ा करती हुई चकोरियोंकी कूक और वंशीकी ध्वनिके समान दुबली-पतली नवेलीके चोली उतारते समय इधर-उधर हाथ फेंकनेसे बजे हुए कङ्गनोंकी झनकार नई जवानीकी लीलाओंमें आपका मन लगावें ॥२४॥ हे दुबले शरीरवाली ! युवक प्रियतमके भाग्यसे ही तुम्हारी देहपर वस्त्र तथा मणिके आभूषणमें बने हुए मगरका भी संयोग हो गया है और बाल भी सुधरे हुए हैं इसलिये शीघ्र ही कार्य सफल होगा जब सूर्यकी संक्रान्ति मकर राशिमें होती है उस समय जो लोग त्रिवेणीमें स्नान-ध्यान करते हैं उसका उन्हें शीघ्र फल यह मिलता है कि उनकी मनोकामना शीघ्र पूरी होती है ॥ २५ ॥ कामातुर होकर प्रियतम मृगनयनी नवेलीका जो-जो अङ्ग छूते हैं वह-वह तो सिकुड़ जाता है किन्तु कामदेव स्वच्छन्द होकर फैलता जाता है ॥ २६ ॥ 'हे सुनयनी नवेली ! बिना चोली पहने ही तुम मनको लुभानेवाली सुन्दरता धारण किए हुए हो' ऐसा कहकर जैसे ही नायकने चोलीकी गाँठ छूनेको हाथ बढ़ाया वैसे ही बिछौनेके पास बैठी और मुस्कराती हुई सखीके खिले हुए नेत्रोंका संकेत पाकर किसी बातका बहाना करके सखियाँ धीरेसे खिसक गईं ॥२७॥ आलिंगनकी इच्छासे नायकने नवेलीकी कोखसे जब आँचल खींचा तो कमलनयनी नवेलीका मुख धीरेसे झुक गया और वह मुस्कराने लगी । उस समय ऐसा जान पड़ा मानो 'पतिके आलिङ्गनकी वैरिन यह लाज दूर हो जाय' यह संकल्प लेकर अपनी मुस्कराहट-रूपी दूधसे वह स्तनरूपी शिवलिङ्गोंको स्नान करा रही हो ॥२८॥ जब युवक उन कामिनी नवेलियोंके ओठोंका चुम्बन करने लगे उस समय तत्काल उनकी आँखें झिप गईं, दाँतोंकी किरणें बाहर निकल पड़ीं, हाथ काँपने लगे और कङ्गन चिल्लाने लगे । दूसरोंकी विपत्तिमें दुःख माननेवाले सज्जन इससे अधिक और कर ही क्या सकते हैं ॥ २९ ॥ कामसे मतवाली नवेलीने अपनी भुजाओंसे नायकको बाँध लिया, स्तनोंसे दबाया, नखोंसे खरोंटा, दाँतोंसे काटा अपने नितम्बोंसे अत्यधिक धक्के लगाए और नवेलीके हाथोंसे दबाया हुआ अधरामृत पीकर मोहित होनेसे उसे एक निराला आनन्द प्राप्त हुआ ! कामदेवकी सचमुच कैसी उल्टी रीति है ॥ ३० ॥ नवेलीके पैरोंका पायल अपनी झनकारके स्वरमें मानो बार-बार यही पुकारे जा रहे हैं कि 'बाल भले ही खुल जायँ (हार जायँ), माथेका तिलक भले ही बालरूपी अन्धकारमें छिप जाय और बेल-बूटे भी गालोंको छोड़कर भले ही कानोंके छिद्रमें घुस जाना चाहें किन्तु कामके युद्धमें नवेलीका यही एक ओठरूपी वीर ही ऐसा है जो पतिके दन्तक्षत अटल होकर सह सकता है' ॥ ३१ ॥ कामका प्रबल वेग रहनेपर भी नवेलियाँ प्रियतमके पास उदास ही रहती थीं, शरीरको

क्वाणभङ्ग्या ॥ ३१ ॥ धैर्यमुल्वणमनोभवभावा वामतां च वपुरर्पितवत्यः। व्रीडितं ललितसौरतधार्ष्ट्यास्तेनिरेऽभिरुचितेषु तरुण्यः ॥ ३२ ॥ नैषा वेगं मृदुतरतनुस्तावकीनं विसोढुं शक्ता नैनां चपल नितरां स्वेदयेन्दीवराक्षीम्। रत्यभ्यासं विदधत इति प्राणनाथस्य गत्वा कर्णोपान्ते निभृतनिभृतं नूपुरं शंसतीव ॥ ३३ ॥ पत्युः प्रवृत्तस्य रतौ जिगीषावचो निशम्याथ न किञ्चिदूचे। कलावती किं तु विहस्य तस्य कपोलयोः स्वेदमपाचकार ॥ ३४ ॥ पश्यन्तीं परिणामकेलिषु मुहुर्निःशङ्कमालिङ्ग्य तां प्रोत्कूजत्कलमग्रहीषमधरं स्पर्धावती साप्यभूत्। नाहं वेद्मि न वेत्ति सा च दयिता तत्रावयोश्चेष्टितं शय्या वेत्ति न वेत्ति वा स तु कुतः सङ्ग्रामलोलः स्मरः ॥ ३५ ॥ पश्यन्नर्धनिमीलिताक्षियुगलं वक्त्रारविन्दं मुहुः बिम्बोष्ठामृतमापिबन्मृगदृशो जिघ्रन्मुखे सौरभम्। आलिङ्गन्नतिनिर्भरं स्तनतटं सीत्कारमाकर्णयन्नेवं पञ्चभिरिन्द्रियैर्निधुवने प्राप्नोति धन्यो मुदम् ॥ ३६ ॥ पाणिः कम्पमवाप काञ्चिरपतद्ध्वस्ता त्रपा नूपुरैराक्रन्दाच्चिकुरैर्दधे विधुरता यत्रातिशीर्णोऽधरः। एको वीरतरस्स कामसमरे वक्षोभवः सुभ्रुवां येनात्याहतिजर्जरेण न मनाक्शैथिल्यमालम्बितम् ॥ ३७ ॥ पाणिपल्लवविधूननमन्तः सीत्कृतानि नयनार्धनिमेषाः। योषितां रहसि गद्गदवाचामस्त्रतामुपययुर्मदनस्य ॥ ३८ ॥ पृष्टे कञ्चुकमुक्त्यै सुतनुरसव्यं प्रहिणवति पाणिम्। हन्तुमिव चित्तहरिणं यूनस्तूणादिवेषुमादत्ते ॥ ३९ ॥ प्रत्यूहः पुलकाङ्कुरेण निबिडाश्लेषे निमेषेण च क्रीडाकूतविलोकितेऽधरसुधापाने कथाकेलिभिः। आनन्दाधिगमेन मन्मथकलायुद्धेऽपि यस्मिन्नभूदुद्भूतः स तयोर्बभूव सुरतारम्भः प्रियम्भावुकः ॥ ४० ॥ प्राप्यते स्म गतचित्रकचित्रैश्चित्रमार्द्रनखलक्ष्म कपोलैः। दधि-

---

सौंप देनेपर भी प्रतिकूलता दिखाती थीं और रतिके समय ढिठाई करती हुई भी लजा रही थीं ॥ ३२ ॥ रतिक्रियामें लगे हुए प्रियतमके कानोंके पास जाकर नवेलीके पैरके पायल धीरे-धीरे मानो यह कह रहे हैं कि 'इस नवेलीका शरीर बहुत ही सुकुमार है, यह तुम्हारे धक्के नहीं सह सकती। अतः हे चञ्चल पुरुष! इस कमलनयनी नवेलीको बहुत न सताओ' ॥ ३३ ॥ रतिक्रीड़ामें लगे हुए प्रियतमने जब अपने जीतनेकी बात कही तो वह चतुर नवेली मुँहसे तो कुछ नहीं बोली किन्तु उसने हँसकर प्रियतमके गालोंपर छाया हुआ पसीना पोंछ दिया (अर्थात् यह बतला दिया कि जीत जाते तो मुँहपर पसीना क्यों आता) ॥ ३४ ॥ रतिक्रीड़ाके समय जब वह नवेली बार-बार मेरी ओर ताक रही थी उस समय मैंने बेखटके उसका आलिङ्गन किया, वह मुँहके भीतर ही भीतर कुछ गुनगुना रही थी, फिर भी मैंने अपने दाँतोंसे उसका ओठ जकड़ लिया। इसपर भी जब वह होड़ करने लगी तो उसके पश्चात् हम दोनोंने क्या-क्या किया यह न तो मैं ही समझ पाया न वही जान सकी। बिछौना जानता है या नहीं यह नहीं कहा जा सकता। तब भला युद्धमें लगा हुआ काम उसे क्या जानेगा ॥ ३५ ॥ वह पुरुष धन्य है जो अपनी मृगनयनी प्रियतमाकी आधी मुँदी हुई आँखोंवाले मुखकमलको देखता हुआ, अधरामृत पीता हुआ, उसके मुखकी सुगन्ध सूँघता हुआ, अत्यन्त कसकर उसके स्तनोंका आलिंगन करता हुआ और उसकी सी-सी सुनता हुआ अपनी पाँचों (नेत्र, जीभ, नाक, त्वचा, कान) से रतिका सुख पाता है ॥ ३६ ॥ कामयुद्ध (रति) के समय हाथ काँपने लगे, करधनी गिर पड़ी, लाज चूर-चूर हो गई, नूपुरोंकी चिल्लाहटके स्वरोंमें बाल बिखर गए और अधर तो छिन्न-भिन्न हो गया। ऐसे समयमें सुन्दर भौहोंवाली नवेलियोंके स्तन ही ऐसे परम वीर निकले कि अत्यधिक चोट खाकर भी टससे मस नहीं हुए और अकड़े खड़े रहे ॥ ३७ ॥ मुँहसे टूटी फूटी बातें बोलनेवाली नवेलीके हाथोंका काँपना, मुँहके भीतर ही सी-सी करना और अधखुली आँखें ये सब ही एकान्तमें कामके बाण बन गए ॥ ३८ ॥ चोलीकी गाँठ खोलनेके लिये नवेलीने जो अपना दाहिना हाथ कन्धेपरसे पीठकी ओर घुमाया उस समय ऐसा जान पड़ा मानो युवकके मनरूपी हरिणको मारनेके लिये वह तरकससे बाण निकाल रही हो ॥ ३९ ॥ प्रेम और प्रेमिकाकी अत्यधिक प्यारी रतिक्रीड़ा प्रारम्भ होने लगी जिसमें रोमाञ्च-रूपी अङ्कुरोंसे कसकर आलिंगन करनेसे बाधा पड़ी, प्रेमपूर्वक एक दूसरेको देखते समय गिरती हुई पलकोंसे बाधा पड़ी, अधरामृत पानेमें अनेक प्रकारकी कहानियोंसे कामकलाके युद्धमें आनन्द मिलनेसे बाधा हुई ॥ ४० ॥ नवेलीके गालपर बने हुए बेल-बूटे छूट गए और उनमें केवल गीले नख लगनेके चिह्न दिखाई पड़ने लगे। बालोंके फूल गिर गए तो

रेऽथ रभसच्युतपुष्पाः स्वेदविन्दुकुसुमान्यलकान्ताः ॥ ४१ ॥ प्राप्य मन्मथरसादतिभूमिं दुर्वहस्तनभराः सुरतस्य। शश्रमुः श्रमजलार्द्रललाटश्लिष्टकेशमसितायतकेश्यः ॥ ४२ ॥ वाहुपीडनकचग्रहणाभ्यामाहतेन नखदन्तनिपातैः। बोधितस्तनुशयस्तरुणीनामुन्मिमील विशदं विषमेषुः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मानन्दप्रचुरं किमपीदं नेति रतिषु वचनेन। श्रुतिसीमसङ्गताक्षो मुग्धे सारङ्गमादिशसि ॥ ४४ ॥ भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूतिपिहितस्मितं याते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने। प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशरसमाकूतसुभगं सलज्जाया लज्जा व्यगमदिव दूरं मृगदृशः ॥ ४५ ॥ मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुङ्कुमार्द्रे कान्तापयोधरयुगे रतिखेदखिन्नः। वक्षो निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती धन्यः क्षपां क्षपयति क्षणलब्धनिद्रः ॥ ४६ ॥ यद्यदेव रुरुचे रुचिरेभ्यः सुभ्रुवो रहसि तत्तदकुर्वन्। आनुकूलिकतया हि नराणामाक्षिपन्ति हृदयानि तरुण्यः ॥ ४७ ॥ रतिरभसनितान्तश्रान्तकान्ताकुचान्तश्चलदमलकराग्रा नाभिदेशेष्वधो वा। स्मितमधुरमुखीनां ह्रीणनेत्रोत्पलानामधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति ॥ ४८ ॥ वारणार्थपदगद्गदवाचामीर्ष्यया मुहुरपत्रपया च। कुर्वते स्म सुदृशामनुकूलं प्रातिकूलिकतयैव युवानः ॥ ४९ ॥ विधृताः प्रियस्य केशाः कण्ठे लग्नं भुजे वलितम्। मज्जन्त्या रससिन्धौ किं किं न कृतं तया सुदृशा ॥ ५० ॥ समादिष्टं शिष्टैः परममिह यन्निर्वृतिपदं पुनर्दग्धोऽप्याशु प्रभवति यतो मन्मथतरुः। श्रुते यस्मिन्कामी भवति कृतकृत्यो रतिमुखं स सीत्कारः पायादमृतविजयी सुन्दरदृशाम् ॥ ५१ ॥ सिन्दूरं रविमिन्दुमाननमसौ धम्मिल्लराहुस्त्वयं यद्ग्राढं ग्रसतीव तत्प्रियतमे निर्णीतमौत्पातिकम्। चोले चञ्चलता भविष्यति मुहुः स्यात्कुन्तले कर्षणं नीवी स्थास्यति न स्थिरा समुदयेदङ्गे महान्सङ्गरः ॥ ५२ ॥ सीत्कृतानि भणितं करुणोक्तिः स्निग्धमुक्तमलमर्थवचांसि। हास-

---

फूलके स्थानपर पसीनेकी बूँदें झलक आईं ॥ ४१ ॥ बड़े-बड़े स्तनोंवाली नवेलियाँ कामदेवसे मतवाली होकर रतिक्रियाकी चोटीपर पहुँच गईं तथा लम्बे-लम्बे केशवाली वे नारियाँ थक गईं इसलिये उनके पसीनेसे भरे हुए माथेपर बाल चिपक गए ॥ ४२ ॥ प्रियतमने हाथोंसे दबाकर, बाल पकड़कर, धक्के देकर, नखसे खरोंटकर तथा दाँतोंसे काटकर नवेलियोंके शरीरमें रहनेवाले कामदेवको जगा दिया। इसके पश्चात् तो वह कामदेव खुले रूपमें बेखटके अपना प्रभाव दिखाने लगा ॥ ४३ ॥ हे सुन्दरी ! कानों-तक अपनी आँखें फैलाकर तुम सुरतके समयकी यह बात पक्षीको सिखा रही हो कि यह यह सुख क्या ब्रह्मके दर्शनके सुखसे बढ़कर नहीं है? ॥ ४४ ॥ जब सखियाँ मुख खुजलानेके बहाने अपनी मुस्कान छिपाकर घरसे बाहर निकल गईं उस समय बिछौनेपर बैठी हुई नवेलीका अपने पतिकी ओर देखना क्या था मानों कामका बाण ही बरस रहा था। फिर तो उस लजानेवाली मृगनयनी नवेलीकी लाज भी मानो वहाँसे दूर भाग गई ॥ ४५ ॥ मतवाले हाथीके मस्तकके समान ऊँचे, चौड़े और केशरके लेपसे सजे हुए नवेलीके दोनों स्तनोंपर रतिकी थकावटके समय अपनी छाती रखकर उसकी भुजाओंसे बँधा हुआ, झपकी लेता हुआ कोई भाग्यवान् पुरुष ही रात बिताता है ॥ ४६ ॥ प्रियतमको जो-जो काम अच्छे लगें वही-वही काम सुन्दर भौंहोंवाली नवेलियोंने एकान्तमें किए क्योंकि तरुणी नवेलियाँ अनुकूल आचरणके द्वारा ही पुरुषोंका मन अपनी ओर खींच लेती हैं ॥ ४७ ॥ रतिके परिश्रमसे अत्यधिक थकी हुई नवेलीके स्तनोंपर जिनके हाथ फिर रहे हैं और नाभि तथा उसके नीचे भी जिनके हाथ पहुँच रहे हैं ऐसे कोई-कोई भाग्यशाली ही उस नवेलीका अधरामृत पीनेका अवसर पाते हैं जिसके मुखमें मधुर मुस्कान और आँखोंमें लज्जा भरी हो ॥ ४८ ॥ कसकर छिप जाते हुए आलिंगनको न सह सकने तथा लाजके कारण नवेली टूटी-फूटी बोलीसे प्रियतमको रोक रही थी और दिखावटी प्रतिकूल आचरण करते हुए भी प्रियतम सचमुच सुनयनी नवेलियोंके साथ वैसे ही आचरण कर रहे थे जो उन्हें भा रहे थे ॥ ४९ ॥ रति-क्रीड़ाके समय प्रेमके सागरमें डुबकी लगाती हुई नवेलीने क्या-क्या नहीं किया। उसने पतिके बाल पकड़े, पतिको गले लगाया और उसकी भुजाओंसे लिपट भी गई ॥ ५० ॥ सुनयनी नवेलियोंकी वह अमृतको भी जीतनेवाली 'सी-सी' ध्वनि रक्षा करे जिसे सज्जनोंने परम मोक्ष ही मान लिया है, जिससे जला हुआ कामदेवरूपी वृक्ष भी लहलहा उठता है और जिसे सुनकर कामी निहाल हो जाता है ॥ ५१ ॥ हे प्यारी ! यह जो केशरूपी राहु सिन्दूररूपी सूर्य तथा मुखरूपी चन्द्रमाको ग्रसे ले रहा है इससे उत्पात

भूषणरवाश्च रमण्याः कामसूत्रपदतामुपजग्मुः ॥५३॥ स्वेदजलपिच्छलाभिस्तनुभिर्यूनां च शिथिलमाश्लेषम्। विपुलं पुलकशलाकापटलं झटिति प्रतिकरोति ॥५४॥ स्वामिन्प्रभो प्रिय गृहाण परिष्वजस्व किं किं शठोऽस्यकरुणोऽसि सुखोचितोऽसि। हा दुःखयस्यलमलं विरमेति वाचः स्त्रीणां भवन्ति सुरते प्रणयानुकूलाः ॥ ५५ ॥ स्विन्नं मण्डलमैन्दवं विगलितं स्रग्भारवद्धं तमः प्रागेव प्रथमानकेतकशिखावीरायितं च स्थितम्। शान्तं कुण्डलताण्डवं कुवलयद्वन्द्वं तिरोमीलितं वीतं विद्रुमसीत्कृतं नहि ततो जाने किमासीदिति ॥ ५६ ॥ स्वैरं पश्यति वल्लभे सरभसं हृत्वा दुकूलं बलादङ्गानां रतिसङ्गरव्यतिकरे सौन्दर्यरेखाक्रमम्। यत्तन्व्याः परिरभ्यमाणमदनव्रीडाविलासालसैरङ्गैरङ्गपिधानमुत्पलदृशः कस्यापि तद्गोचरम् ॥५७॥ हारस्त्रुट्यति कङ्कणं निपतति स्रक्कौमुदी क्लिश्यति ध्वान्तं धावति सीत्करोति रजनीजानिर्वलो भज्यति। काञ्ची क्षुभ्यति काञ्चनक्षितिधरे किं च क्षतं चञ्चति प्रारम्भे मदनाहवस्य विजयी देवो मनोभूरभूत् ॥ ५८ ॥ हेमकुम्भमिव तुङ्गमुरोजं वल्लभे स्पृशति चोरवदस्याः। जाग्रति स्म सहसैव तदानीं यामिका इव तनूरुहसङ्घाः ॥ ५६ ॥

विपरीतरतक्रिया — अभिमुखपतयालुभिर्ललाटश्रमसलिलैरपनीतपत्रलेखः। कथयति पुरुषायितं वधूनां मृदितहिमद्युतिनिर्मलः कपोलः ॥ १ ॥ आचम्याधरसिन्धुवारि कवरीसम्भारसम्मार्जिते स्वेदाम्भःस्नपिते कपोलविगलत्काश्मीरपङ्कोज्ज्वले। काञ्चीमन्त्ररुतेन निर्भरगलन्मुक्ताकलापस्रजा धन्यस्योरसि घूर्णमाननयना पञ्चेषुमभ्यर्चति ॥ २ ॥ आलोलामलकावलीं

होनेका निश्चय हो रहा है कि चोल (चोली, चोल देश) में अराजकता फैल जायगी, कुन्तल (केश, कुन्तल देश) ठहर न सकेगा और अङ्ग (शरीर, बिहार प्रान्त) में भयङ्कर युद्ध मच जायगा ॥५२॥ नवेलीका सी-सी करना और गलेके भीतर गूँ-गूँ शब्द होना, प्रार्थनासे भरी बोली, प्रेमसे भरी हुई बातें, रोकनेकी बातें हँसी तथा गहनेकी झनकार ही कामशास्त्रके स्पष्ट सूत्र बन गए ॥५३॥ पसीनेसे अधिक फिसलनके कारण नवयुवकोंका ढीला आलिंगन भी नवेलीके शरीरपरके रोंगटे दबाए दे डाल रहा है ॥५४॥ 'हे स्वामी ! हे प्रभो ! हे प्रियतम ! मुझे थाम लो, शरीरसे चिपका लो, तुम कैसे धूर्त हो, निर्दय हो, सुख ही लेना जानते हो ? हाय ! क्यों दुःख देते हो, बस करो, हट जाओ।' इस प्रकारकी रतिके समयकी नवेलियोंकी बातें सुन-सुनकर रसिक प्रियतमका मन सदा प्रसन्न ही होता रहता है ॥५५॥ रतिके समय चन्द्र-मण्डलके समान नवेलीके मुखपर पसीना आ गया, अन्धकारके समान काले बालोंमें बँधी हुई माला गिर गई, कानोंके कुण्डलोंका नाचना बन्द हो गया, नीले कमलके समान आँखे झिप गई और मूँगेके समान ओठों-परसे सी-सी शब्द लुप्त हो गए। इसके पचात् मैं नहीं जानता क्या - क्या हुआ ॥ ५६ ॥ काम-युद्ध (रतिक्रीड़ा) हो चुकनेपर जब प्रियतम बलपूर्वक वस्त्र खींचकर नवेलीके अंगोंकी सुन्दरता देखने लगे, उस समय आलिंगन करनेकी थकावट और लज्जासे अलसाए हुए अपने अङ्गोंसे कमलनयनीने जो अपने अङ्ग ढक लिए उसे क्या कोई देख पाया ! ॥ ५७ ॥ जब काम-युद्ध होने लगा उस समय कामदेवकी विजय हुई क्योंकि उस युद्धमें हार टूट गए, कङ्गन गिर पड़े, मालारूपी चाँदनी फीकी पड़ गई, केशरूपी अन्धकार तितर-बितर हो गए मुखरूपी चन्द्रमा सी-सी करने लगा, पेटकी सिकुड़नें टूट गई, करधनी टुकड़े-टुकड़े हो गई और सुमेरु पर्वतके समान स्तनोंपर भी क्षत (घाव) हो गए ॥ ५८ ॥ चोरके समान छिपकर जब प्रियतम अपनी प्यारीके सोनेके घड़ेके समान ऊँचे स्तन छू रहा था उसी समय एकाएक पहरेदारोंके समान रोंगटे जाग गए (नवेलीको रोमाञ्च हो आया) ॥ ५६ ॥

विपरीत रतिक्रीड़ा : मसले जानेके कारण चन्द्रमाकी चमकके समान उजले नवेलियोंके वे गाल उनके पुरुष-जैसे व्यवहार प्रकट किए दे रहे हैं जिनमें बने हुए बेल-बूटे सामनेसे गिरते हुए मस्तकके पसीनेसे छूट गए हैं ॥१॥ विपरीत रति करती हुई किसी नवेलीको देखकर कवि कह रहा है 'वह पुरुष धन्य है जिसकी छातीको अपने खुले हुए बालोंसे झाड़-पोंछकर, पसीनेके जलसे धोकर तथा अपने कपोलोंपरसे झरकर गिरे हुए केसरसे उजली करके उसपर जमकर अधरामृत-रूपी समुद्र जलका आचमन करके नेत्र घुमाती हुई नवेली करधनीके रुनझुन-रूपी मन्त्रोंसे भगवान् कामदेवकी पूजा करती है' ॥ २ ॥ उलटी रतिक्रिड़ाके समय जिसमें फूलके साथ स्वच्छ बाल हिलते रहते हैं, कानके कुण्डल डोलते रहते हैं, माथेपर पसीनेकी बूँदें आ जानेसे

सकुसुमां विभ्रच्चलत्कुण्डलं किञ्चिन्मृष्टविशेषकं तनुतरैः स्वेदाम्भसः सीकरैः। तन्व्या यत्सुरतान्ततान्तनयनं वक्त्रं रतव्यत्यये तत्त्वां पातु चिराय किं हरिहरब्रह्मादिभिर्दैवतैः ॥ ३ ॥ चलहारलताश्रिया चिरं रमणोरःस्थलरङ्गनर्तनेन। भणितध्वनिडम्बरेण सा कृतवाद्येव बभूव कामिनी ॥ ४ ॥ तन्नास्ति कारयति यन्न मनोभवस्य सा शक्तिरप्रतिहता भुवने तथा हि। उद्घाट्य पीवरपयोधरमण्डलाग्रं वल्गन्ति यत्पुरुषवत्प्रमदा अपीह ॥ ५ ॥ तमःस्तोमं सोमं गिलति वमतीवोडुनिकरं रथाङ्गद्वन्द्वेऽस्मिन्नमरतटिनी खेलति मुहुः। लतायामुत्कम्पो मदनवसतीकाञ्चनगिरिर्विपर्येति प्रायो रतिपतिमते सर्वमधुना ॥ ६ ॥ निःशेषं व्यपनीय नीविवसनं मञ्जुक्वणन्मेखलं क्रीडान्दोलनखिन्नमध्यलतिकं किञ्चित्प्रकम्पस्तनम्। उद्यत्कुण्डलताण्डवं च रुचिरं विक्रम्य कान्तोपरि क्लान्ता वक्षसि कामिनां मुकुलितप्रान्तादिकं शेरते ॥ ७ ॥ पततु तवोरसि सततं दयिताधम्मिल्लमल्लिकानिकरः। रतरसरभसकचग्रहलुलितालकवल्लरीगलितः ॥ ८ ॥ प्रशान्ते नूपुरारावे श्रूयते मेखलाध्वनिः। कान्ते नूनं रतश्रान्ते कामिनी पुरुषायते ॥ ९ ॥ प्रागल्भ्यं पुरुषायिते मम पुरः पश्येति सन्नद्धया तन्व्या ताम्यदुरोजयापि सुचिरं विक्रम्य रन्त्वं तया। श्रान्ता वक्षसि मे निपत्य च पुनः सापत्रपं सस्मितं साकूतं च समीक्षितं मृगदृशा यत्तत्कथं कथ्यते ॥ १० ॥ प्रारब्धे रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे तया साहसप्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि तत्सम्भ्रमात्। खिन्ना येन कटीतटी शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं वक्षो मीलितमैक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिध्यति ॥११॥ प्रारब्धे विपरीतनामनि रते सर्वं तदाभूत्तदा तन्वाङ्ग्यां विपरीतमेव कुटिला मुक्ताः सुवृत्ता अपि। मुक्ता

जिसमें माथेका तिलक मिट जाता है और रतिक्रीड़ा समाप्त होनेपर जिसकी आँखें अलसा जाती हैं ऐसा नवेलीका मुख सदा तुम्हारी रक्षा करे। फिर ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंकी कृपाकी आवश्यकता ही क्या है? ॥ ३ ॥ रतिके समय प्रियतमकी छातीरूपी रङ्गमञ्चपर चञ्चल हारकी लड़ियाँ नचाती हुई नवेली मानो गलेसे निकले शब्दोंसे बाजा बजा रही थी ॥ ४ ॥ किसीसे भी न रुक सकनेवाली कामदेवकी शक्ति इस संसारमें क्या नहीं करा देती! देखो, नवेलियाँ भी अपने बड़े-बड़े स्तन उघाड़कर पुरुषके सामने ही उछल रही हैं ॥ ५ ॥ कामदेवकी आज्ञा मानकर इस समय मानो सभी वस्तुएँ उलटे ही काम कर रही हैं क्योंकि केशरूपी अन्धकार चन्द्रमा (मुख)को निगलकर पसीनेकी बूँदरूपी तारे उगल रहा है। स्तनरूपी चकवा-चकवीमें हाररूपी आकाश-गङ्गा खेले जा रही है और नवेलीकी स्नेहरूपी लतामें कामदेवके रहनेका सोनेका पहाड़ (नितम्ब) हिल रहा है ॥ ६ ॥ गाँठ खोलकर साड़ी हटा दी गई, करधनी धीरे-धीरे बोलने लगी, अधिक हिलानेसे कमरमें थकावट आ गई और स्तन भी कुछ-कुछ हिलने लगे। इस प्रकार प्रियतमके ऊपर चढ़कर भली-भाँति अपना पराक्रम दिखानेके कारण नवेली थक गई और प्रियतमकी छातीपर ही पड़ी-पड़ी झपकी लेकर सो गई ॥ ७ ॥ भगवान् करे, नवेलीके साथ सुरतके समय अनुराग तथा वेगसे बाल खींचनेके कारण हिली हुई चोटीसे गिरे हुए बेलेके फूल सदा तुम्हारी छातीपर बरसते रहें ॥ ८ ॥ पायलोंकी झनकार शान्त हो गई है और करधनीकी मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही है। इससे जान पड़ता है कि प्रियतम थक गए हैं और अब नवेली ही प्रियतमके समान आचरण करने लगी है ॥ ९ ॥ 'देखो, मैं भी पुरुषोंके समान कैसा पराक्रम करती हूँ' यह कहकर नवेली विपरीत रतिमें जुट गई किन्तु बहुत देरतक भली-भाँति परिश्रम करती रहनेसे थक गई और मेरी छातीपर पड़े-पड़े उस मृगनयनीने लज्जा, मुस्कान और कुछ मनके भावके साथ जो मेरी ओर देखा उस चितवनका मैं वर्णन क्या करूँ ॥ १० ॥ जब रतिक्रीड़ारूपी प्रबलयुद्ध छिड़ गया तो प्रियतमको जीत लेनेकी इच्छासे नवेली उसके ऊपर पड़कर ही अत्यधिक प्रयत्न करने लगी जिससे उसकी कमर थक गई, भुजाएँ ढीली पड़ गईं, छाती काँपने लगी और आँखें मुँद गईं। भला, स्त्रियोंका पुरुष-जैसा प्रयत्न कहीं सफल हुआ है? ॥ ११ ॥ जब विपरीत रति प्रारम्भ हुई, उसी समय उस दुबले अङ्गवाली नवेलीमें सभी वस्तुएँ उलटी हो गईं, कुटिल (टेढ़े, नीच) बालबन्धनसे छूट गए, गोल-गोल मोती टूटकर ऐसे गिर गए मानो सदाचारी मुक्त (मोती, संसारसे छुटकारा पानेवाले लोग) भी चित्तकी चञ्चलतासे पतित हो गए हों, स्तनरूपी पहाड़ हिलने लगे, कानके ऊपर लगे हुए फूल वेद जाननेवाले

निःपतिता भवन्ति तरलास्तौ चाचलौ चेलतुः सीदन्ति श्रुतिपारगाः सुमनसः कान्ता नु कान्तायते ॥ १२ ॥ मधुपानसमुल्लसत्प्रवालं चलहेमाचलकान्तिभिर्जटालम् । विधुनिःपतदन्धकारजालं शुभकालं क्व पुनर्विलोकयामः ॥ १३ ॥ मुक्ताः पतन्ति भूमौ बालाः कलयन्ति केवलां मुक्तिम् । चुम्बत्यम्बरमवनिं विपरीते किं न विपरीतम् ॥ १४ ॥ मुग्धे तवास्मि दयिता पुरुषो भव त्वमित्युक्तया नहि नहीति शिरो विधूय । स्वस्मात्करात्प्रियकरे वलयं क्षिपन्त्या वाचं विनाभ्युपगमः कथितो मृगाक्ष्या ॥ १५ ॥ लीलाचामरडम्बरो रतिपतेर्नीलाम्बुवाहागमो रागोद्गारशिखण्डिनो मुखविधूद्धूतस्तमोविभ्रमः । तारुण्योन्मददन्तिदानविसरो रोलम्बमालाकुलो धम्मिल्लो हरिणीदृशां विजयते स्रस्तो रतिव्यत्यये ॥ १६ ॥ वक्त्रस्यन्दिस्वेदबिन्दुप्रबन्धैर्दृष्ट्वा भिन्नं कुङ्कुमं कापि कण्ठे। पुंस्त्वं तन्व्या व्यञ्जयन्ती वयस्या स्मित्वा पाणौ खड्गरेखां लिलेख ॥ १७ ॥ चलत्कुचं व्याकुलकेशपाशं स्विद्यन्मुखं स्वीकृतमन्दहासम् । पुण्यातिरेकात्पुरुषा लभन्ते पुम्भावमम्भोरुहलोचनानाम् ॥ १८ ॥ विपरीतमविपरीतं यद्गतमन्यत्तदेव विपरीतम् । तरुमारोहति लतिका नारोहति च लतिकां तरुः क्वापि ॥ १९ ॥ वियति विलोलति जलदः स्खलति विधुश्चलति कूजति कपोतः । निष्पतति तारकाततिरान्दोलति वीचिरमरवाहिन्याः ॥ २० ॥ विहायसि विहारिणी भवतु नाम सौदामिनी सुमेरुशिखरादधः पततु नाम मन्दाकिनी । परं तदिदमद्भुतं यदयमेत्य भूमीतलं नमन्नमृतदीधितिः कमलसारमाकर्षति ॥ २१ ॥ वीरायितेषु मृगशावविलोचनानां कण्ठोदितान्यचरमं कलकूजितानि । आम्रेडयद्भिरथ सौधगतैः कपोतैः शङ्के गृहीत इति सम्प्रति शिष्यभावः ॥ २२ ॥ साक्षादभूत्स्वयम्भू-

---

विद्वानोंके समान चञ्चल हो गए और नवेली भी नायकके समान व्याहार करने लगी ॥ १२ ॥ वह सुन्दर दृश्य देखनेका फिर कब सौभाग्य प्राप्त होगा जिसमें मदिरा पीनेसे मूँगेके समान ओठ खिल जाते हैं, जब स्तन भी हिलते हुए सुमेरु पर्वतके समान शोभा देने लगते हैं और चन्द्रमाके समान मुखपर बालरूपी अन्धकार बिखर जाता है ॥ १३ ॥ मुक्त (मोती, मोक्ष प्राप्त किए हुए लोग) धरतीपर गिरे जा रहे हैं, बाला (नवेलियाँ, बच्चे) केवल भोग (रति, भोजन) में जुटे हैं और अम्बर (आकाश, वस्त्र) धरती छुए ले रहा है। उलटी रतिक्रीड़ामें कहाँ उलटफेर नहीं हो जाता! ॥१४॥ प्रियतमने कहा—'हे सुन्दरी! हम तुम्हारी प्यारी हैं और तुम हमारे प्रियतम हो।' प्रियतमके ऐसा कहते ही उस मृगनयनीने सिर हिलाकर 'नहीं, नहीं' तो कहा किन्तु तत्काल अपने हाथसे कङ्गन निकालकर प्रियतमके हाथमें डाल दिए और बिना कुछ कहे ही प्रियतमकी बात स्वीकार कर ली ॥ १५ ॥ विपरीत रति करते समय मृगनयनी नवेलियोंके उन बिखरे हुए बालोंकी जय हो जो या तो उन्हीं नवेलियोंपर धीरे-धीरे डुलाए जाते हुए चँवर हैं, या कामदेवके काले बादल हैं, या अत्यधिक प्रेममें भरे हुए मोरोंकी पूँछ हैं, या मुखचन्द्रके प्रकाशसे हटता हुआ अँधेरा है या यौवनके मदसे मतवाले हाथियोंके उस मदजलकी धाराएँ हैं जिनपर भौंरे आ जुटे हों ॥ १६ ॥ नवेलीके गालोंसे बही हुई केसरसे मिली हुई पसीनेकी रेखा गलेतक पहुँची देखकर उसके पुरुषके समान व्यवहारोंको खोल देनेके विचारसे सखीने हँसकर उसके हाथमें तलवारका चित्र बनाकर उसने बतलाया कि तुमने पुरुषके समान व्यवहार किया है इसलिये पुरुषोंके हाथमें शोभित होनेवाली यह तलवार धारण करो ॥ १७ ॥ स्तन हिल रहे हों, बाल बिखर गए हों, मुख पसीनेसे भर गया हो और मन्द-मन्द मुस्कराहट छाई हुई हो, ऐसा पुरुषके समान व्यवहार कोई कमलनयनी किसी पुरुषके साथ करे तो उसे समझना चाहिए कि उसने बड़े पुण्य किए हैं ॥ १८ ॥ जिस रतिक्रीड़ाको लोग उलटी कहते हैं वही वास्तवमें सीधी है और जिसे सीधी कहते हैं वही उलटी है क्योंकि लता ही पेड़पर चढ़ती है, पेड़ नहीं लतापर चढ़ता ॥ १९ ॥ आकाशमें बालरूपी बादल चल रहे हैं, मुखरूपी चन्द्रमा झँप रहा है, कण्ठरूपी कबूतर गुटरगूँ कर रहा है, मोतीकी मालारूपी तारिकाएँ गिरी जा रही हैं और पेटकी सिकुड़नरूपी गङ्गाकी लहरें हिल रही हैं ॥२०॥ नवेलीरूपी बिजली आकाशरूपी प्रियतमके ऊपर चमके तो ठीक है। स्तनरूपी सुमेरुकी चोटीसे हाररूपी गङ्गाका नीचे गिरना भी ठीक समझमें आता है किन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि यह नवेलीका मुखरूपी चन्द्रमा धरतीपर आकर, झुककर प्रियतमके मुखरूपी कमलका रस ले रहा है (उसे चूम रहा है)! ॥२१॥ मृगनयनी नवेलीने रतिक्रीड़ामें जो पुरुषके समान व्यवहार किया उसके गलेके गुटरगूँका अन्तिम मनोहर शब्द

रथ मुक्तास्तिमिरनिकरभराः । प्रणनाम शीतरोचिस्तवपाठं मेखला विदधे ॥ २३ ॥ स्थगयति तमः शशाङ्कं चलति गिरिः स्रवति तारकापटलम् । कथयति मन्ये काञ्चीपुरसीमनि किमपि सङ्क्षोभम् ॥ २४ ॥

सुरतवर्णनम्—आकाशे नटनं सरोरुहयुगे मञ्जीरमञ्जुध्वनिः शीतांशौ कलकूजितं किसलये पीयूषपानोत्सवः । स्वर्गक्षोणिधरे नखातपरिभवो ध्वान्ते कराकर्षणं रम्भायां रसनारवस्तरुणयोः पुण्यानि मन्यामहे ॥ १ ॥ किञ्चैतैर्गुरुसेवनैः किमपरव्योमार्चनैः किं फलं किं स्यादध्ययनेन मे सुरपदप्राप्त्याथ किं वा फलम् । एतस्याः कुचकुम्भसम्भ्रमपरीरम्भप्रवाहोद्गमस्वेदाम्भोभिरनङ्गवह्निरधुना निर्वापितो नो यदि ॥२॥ गिरो यत्राधीरा भुजयुगलमाश्लेषचतुरं लुठद्बाष्पापीडं प्रसरति च चक्षुस्सरभसम् । न तन्मन्ये प्रेम प्रणयिनि चिरादृष्टिपथगे क्षणं मूकोऽन्धो वा भवति न जडो यत्प्रियजनः ॥ ३ ॥ नरैर्विफलजन्मभिर्गिरिदरी न किं सेव्यते न चेच्छ्रवणगोचरीभवति जातुचिज्जन्मनि । कपोतरवमाधुरीविरचनानुकारादरीरतासहकृशोदरीवचनकाकुरीतिध्वनिः ॥ ४ ॥ प्रतिक्षणसमुल्लसन्नवकलाकलापान्वितक्षपाकरविलोकने यदि तवास्ति कौतूहलम् । विलोकय तदा सखे सुरतसङ्गरालोकनप्रहृष्टदयितामुखं निविडकञ्चुकोत्तारणे ॥५॥ प्राङ्मा मेति ततो नवोदयगुणं मानाभिलापं ततः सव्रीडं तदनु श्लथोद्यममथ प्रभ्रष्टधैर्यं पुनः । प्रेमार्द्रस्पृहणीयनिर्भरतरं क्रीडाप्रगल्भं ततो निःसङ्गाङ्गविमर्शनाधिकसुखं रम्यं कुलस्त्रीरतम् ॥ ६ ॥ यत्र न वदनविकारः सद्भावसमर्पणं न गात्राणाम् । तस्मिन्नुद्धतभावे।पशुकर्मणि पशव एव रज्यन्ते ॥ ७ ॥ यत्र स्वेदजलैरलं विलुलितैर्व्यालुप्यते चन्दनं सच्छेदैर्भणितैश्च यत्र रणितं निह्नूयते नौपुरम् । यत्रायान्त्यचिरेण

घरके ऊपर बैठे हुए कबूतर बार-बार दुहराते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो ये नवेलियोंके शिष्य बन गए हों ॥ २२ ॥ स्तनरूपी ब्रह्माका दर्शन होनेपर जब केशरूपी अन्धकार मुक्त हो गए उस समय मुखका झुकना ऐसा जान पड़ा मानो चन्द्रमा प्रणाम कर रहा हो और बजती हुई करधनी उनकी स्तुति पढ़ रही हो ॥ २३ ॥ अँधेरेके समान बिखरे हुए बाल चन्द्रमाके समान मुखको ढके ले रहे हैं, पर्वतके समान स्तन हिलते जा रहे हैं और हाररूपी तारागण गिर रहे हैं। इन सब बातोंसे जान पड़ता है कि काञ्ची नगरकी सीमापर (कमरमें) अवश्य कोई उपद्रव होनेवाला है ॥ २४ ॥

रतिका वर्णन : आकाशमें (हाथ) नचाना, कमलोंमें मँजीरे (दोनों पैरोंमें पायल) की मधुर ध्वनि, चन्द्रमा (मुखड़े) में मनोहर शब्द, नये पत्ते (ओठ) में अमृतपानका उत्सव, स्वर्गके पहाड़ (स्तनों) पर नखकी रेखा, अन्धकार (बालों) का उँगलियोंसे खींचा जाना और केलेके खम्भे (जाँघों) पर करधनीकी झनझनाहट, यह सब तो हमारी समझमें युवती और युवकोंके पुण्यका फल है ॥ १ ॥ यदि इस समय इस नवेलीके एकाएक स्तनके आलिङ्गनसे निकले हुए पसीनेके प्रवाहसे कामाग्नि न बुझ जाती तो गुरुकी सेवाओंसे, दूसरे देवताओंके व्यर्थ पूजनसे, पढ़ने-पढ़ानेसे तथा स्वर्ग पानेसे भी क्या लाभ होता ? ॥ २ ॥ बहुत दिनोंके बिछोहके पश्चात् मिला हुआ प्रियतम जिसे देखकर क्षण भरके लिये गूँगा या अन्धा न हो जाय या ठक न रह जाय वह तो मेरी समझमें प्रेम नहीं है। सच्चा प्रेम तो वह है जिसमें प्रियतमके देखते ही वाणी चञ्चल हो उठे, दोनों भुजाएँ गले लगनेको व्याकुल हो जायँ आँखोंमें आँसू भर आवें और वे वेगसे घूमने लगें ॥ ३ ॥ कबूतरकी गुटरगूँकी मिठासका अनुकरण करनेवाली और रतिका परिश्रम सहनेमें असमर्थ नवेलीके प्रार्थनासे भरे हुए वचनोंकी ध्वनिको जिसने जीवनमें कभी नहीं सुनी उन मनुष्योंका तो जन्म ही व्यर्थ है। वे भला पर्वतकी कन्दराओंमें क्यों नहीं चले जाते ? ॥ ४ ॥ हे मित्र ! प्रतिक्षण उपजती हुई नई-नई कलाओंसे युक्त चन्द्रमा देखनेकी यदि तुम्हें बड़ी उत्कण्ठा हो तो कसी हुई चोली उतारते समय रति-रूपी युद्ध देखनेसे प्रसन्न मुखवाली अपनी प्रियतमाका मुख क्यों नहीं देख लेते ? ॥५॥ कुल-वधुओंकी वह रतिक्रीड़ा अत्यन्त मनोहर होती है जिसमें पहले तो 'नहीं-नहीं' शब्द सुनाई पड़ते हैं, फिर कभी रोष और कभी उत्कट इच्छा दिखाई पड़ती है, फिर लज्जा आ जाती है, धीरज छोड़कर प्रयत्न ढीला पड़ जाता, प्रेमपूर्वक चावसे भरी हुई क्रीड़ाएँ होती हैं और फिर बिना संकोचके ही अङ्ग छूनेमें अत्यधिक सुख मिलता है ॥ ६ ॥ जिसमें मुखको आनन्द देनेवाली (चुम्बन आदि) क्रियाएँ नहीं हुईं तथा प्रेमसे शरीरका आदान-प्रदान नहीं हुआ वह जङ्गली रतिक्रीड़ा तो पशुओंकी ही होती है और उससे पशु ही प्रसन्न होते हैं ॥ ७ ॥ हे सखियो !

सर्वविषयाः कामं तदेकाग्रतां सख्यस्तत्सुरतं भणामि धृतये शेषा तु लोकस्थितिः ॥ ८ ॥ यावद्द्वैतं बहिर्दृष्टिर्यावच्चेन्द्रियलोलता। यावन्नास्तमिता चित्तवृत्तिस्तावन्न सौरतम् ॥ ९ ॥ शङ्काश्रृङ्खलितेन यत्र नयनप्रान्तेन न प्रेक्ष्यते केयूरध्वनिभूरिभीतचकितं नो यत्र वाश्लिष्यते। नो वा यत्र शनैरलब्धदशनं बिम्बाधरः पीयते नो वा यत्र विधीयते च मणितं रतिं किं रतं कामिनोः ॥ १० ॥ सन्दष्टाधरपल्लवा सचकितं हस्ताग्रमाधुन्वती मा मा मुञ्च शठेति कोपवचनैरानर्तितभ्रूलता। सीत्काराञ्चितलोचना सरभसं यैश्चुम्बिता मानिनी प्राप्तं तैरमृतं श्रमाय मथितो मूढैः सुरैः सागरः ॥ ११ ॥ सुरते च समाधौ च माया यत्र न लीयते। ध्यानेनापि हि किं तेन किं तेन सुरतेन वा ॥ १२ ॥

सुरतनिवृत्तिः—अप्रभूतमतनीयसि तन्वी काञ्चिधाम्नि पिहितैकतरोरु। क्षौममाकुलकरा विचकर्ष क्रान्तपल्लवमभीप्सितमेव ॥ १ ॥ आयाहि रे मलयमारुत मन्दमन्दमान्दोलयन्कनकचम्पककाननानि। कन्दर्पदर्पदलने परिपीड्यमाने हारे हरे हिमकरे मकरे करे च ॥ २ ॥ आवृण्वाना झटिति जघनं सा दुकूलाञ्चलेन प्रेङ्खत्क्रीडाकुलितकबरीबन्धनव्यग्रपाणिः। ऊर्ध्वोच्छ्वासस्फुटनखपदैश्चिह्निताभ्यां स्तनाभ्यां दृष्टा धार्ष्ट्यस्मृतिनतमुखी मोहनान्ते प्रियेण ॥ ३ ॥ आस्तृतेऽभिनवपल्लवपुष्पैरप्यनारतरताभिरताभ्यः। दीयते स्म शयितुं शयनीये न क्षणः क्षणदयापि वधूभ्यः ॥ ४ ॥ उपबर्हमम्बुजदृशो निजं भुजं विरचय्य वक्त्रमपि गण्डमण्डले। निजसक्थि सक्थिनि निधाय सादरं स्वपिति स्तनार्पितकराम्बुजो युवा ॥ ५ ॥ करकिसलयं धूत्वा धूत्वा विमार्गति वाससी क्षिपति सुमनोमालाशेषं प्रदीपशिखां प्रति। स्थगयति मुहुः

वैसे तो संसारमें अनेक प्रकारकी रतिक्रीड़ाएँ होती रहती हैं किन्तु यथार्थमें जिलानेवाली रतिक्रीड़ा तो वही है जिसमें पसीनेकी घनी बूँदोंसे चन्दनका लेप छूट जाता है, जिसमें नूपुरोंकी ध्वनि भी नायिकाके अर्द्धस्फुट शब्दोंसे दब जाती है और बहुत देरतक सारी इन्द्रियाँ उसी सुखमें डूबी रह जाती हैं ॥ ८ ॥ जबतक प्रेमी और प्रेमिकामें बिलगाव रहता है, वे दोनों एक प्राण दो शरीर नहीं हो जाते, जबतक मन यहाँ-वहाँ लगा रहता है, जबतक इन्द्रियाँ चञ्चल रहती हैं और जबतक चित्तवृत्ति एकाग्र नहीं होती तबतक सच्ची रतिक्रीड़ा होती कहाँ है ? ॥ ९ ॥ जब शंकासे भरी हुई आँखोंके डरसे देखा न जा सकता हो, भुजाओंके भूषणोंकी खनखनाहटके डरसे घबराकर आलिंगन न किया जा सकता हो, बिना दाँत लगाए धीरे-धीरे ओठोंका चुम्बन न किया जा सकता हो और गलेसे एक शब्द न निकल पाता हो वह कामी और कामिनीकी रतिक्रीड़ा किस कामकी ? ॥ १० ॥ जिसके ओठ प्रियतमने दाँतसे पकड़ लिए हों, जो सकपकाकर उँगलियाँ हिला रही हो, जो 'हे धूर्त ! छोड़ो, यह मत करो, मत करो' इस प्रकारकी अपूर्ण बातें कहती हुई भौंहें नचा रही हो, जिसके नेत्र चञ्चल हों और जो सी-सी कर रही हो ऐसी रूठी हुई नवेलियोंको जो वेगसे चूम लेते हों उन्हींको वास्तवमें अमृत मिला है ; मूर्ख देवताओंने तो केवल थकनेके लिये ही समुद्र मथा है ॥ ११ ॥ जिस सुरतमें माया (कपट) दूर न हो और जिस समाधिमें अज्ञान दूर न हो वह सुरत और वह समाधि दोनों ही व्यर्थ हैं ॥ १२ ॥

रतिक्रीड़ाकी समाप्ति : प्रियतम साड़ी खींच रहे थे इसलिये चौड़ा नितम्ब ढकनेके लिये वस्त्र पूरा नहीं पड़ रहा था, केवल एक ही जाँघ ढकी जा सकती थी इसलिये नवेलीने अपने चञ्चल हाथसे झट वस्त्र खींच लिया ॥ १ ॥ हे मलयाचलके पवन ! जब कामदेवका घमंड चूर हो जाय और हार, स्तन, मुख, कुण्डल और हाथ ये सभी भली भाँति मसले जा चुकें उस समय तुम सोनेकी चम्पाके वन (नवेली) के सुनहले रोंगटे धीरे-धीरे हिलाते-डुलाते चले आना ॥ २ ॥ सुरतके अन्तमें प्रियतमने अपनी प्यारीको इस रूपमें देखा कि वह झटपट दुपट्टेके छोरसे अपना पेड़ू ढक रही है, रतिक्रीड़ामें खुला हुआ जूड़ा बाँधनेमें उसके हाथ उलझे हुए हैं, साँस खींचने और छोड़नेमें उसके स्तनोंपर लगे हुए नखके चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं और रतिकालकी ढिठाईका स्मरण हो आनेसे वह लजाकर नीचे मुख कर ले रही है ॥ ३ ॥ नये-नये पत्ते तथा फूलोंसे सजे हुए बिछौनेपर लगातार रतिक्रीड़ामें लगी हुई नवेलियोंको रातने भी सोनेका अवसर नहीं दिया ॥४॥ किसी युवकने अपनी बाँहसे नवेलीके लिये तकिया बनाया, उसके गालपर अपना मुख, जाँघपर अपनी जाँघ और उसके स्तनोंपर अपना कमलके समान हाथ रक्खा और प्रेमसे सो गया ॥ ५ ॥ कोई सुन्दरी नवेली रतिक्रीड़ा समाप्त हो जानेपर

पत्युर्नेत्रे विहस्य समाकुला सुरतविरतौ रम्या तन्वी मुहुर्मुहुरीक्षते ॥ ६ ॥ कामसङ्गरविधौ मृगीदृशः प्रौढपौरुपधरे पयोधरे । स्वेदराजिरुदियाय सर्वतः पुष्पवृष्टिरिव पुष्पधन्वनः ॥ ७ ॥ खिन्नालसनयनान्तं खिन्नालिकलग्नकुन्तलस्तवकम् । वदनमवलुप्ततिलकं मदनं नेदयति द्रवयति धृतिं मे ॥ ८ ॥ तन्द्रातुन्दिल-शोणलोचनयुगं दत्ताङ्कदन्तच्छदं पर्यस्तालकवल्लि घर्मपटलप्रोद्भिन्नपत्रावलि । जृम्भोज्जृम्भितसीधुसौरभमिलद्भृङ्गीभिरङ्गीकृतस्तोत्रं शंसति वृत्तमेव रजनी-वृत्तान्तमेणीदृशः ॥ ९ ॥ निर्लेपौ कुचकुड्मलौ कचभर-स्तत्याज बन्धं ययौ काञ्ची निर्गुणतां निरञ्जनदशा दृग्भ्यां समासादिता । नीरागोऽधरपल्लवश्च गुरुणा केनापि गौराङ्गि ते शङ्के शम्बरशासनोपनिपदां तत्त्वा-वबोधः कृतः ॥ १० ॥ निर्वृत्ते सुरतोत्सवे बहुविधे जातेऽधिकेऽङ्गक्लमे तल्पे स्वेदजलार्द्रचन्दनमये किञ्चिद्गृहीतेऽम्बरे । सान्द्रस्नेहवशाद्विशेषविषयव्या-सङ्गजिह्मात्मनोर्दम्पत्योः स्मरघस्मरातुरतया भूयोऽपि जाता स्पृहा ॥ ११ ॥ नीव्यां संयमनं कचे नियमनं श्रोणीतले चासनं निःश्वासाभ्यसनं मुखे समभवत्प्र-त्याहृतिर्भूषणे । ध्यानं प्रेमणि धारणा स्तनतटे तन्व्याः समाधिः प्रिये निर्वेदादिव किं रतान्तसुलभात्सर्वाङ्ग-योगोत्सवः ॥ १२ ॥ नेपथ्यादपि राजते हि नितरां व्यालुप्तभूषा तनुः सम्भोगश्रममीलितं विजयते चक्षुः कटाक्षादपि । गाढालिङ्गनकौतुकादपि नवं दोर्वल्लि-विस्रंसनं प्रीत्यालापरसादपि प्रियतमं मौनं कुरङ्गी-दृशः ॥ १३ ॥ पपात गङ्गा हरमौलिसङ्गादन्धन्तमोभूत-मपेतबन्धम् । तडिल्लता चञ्चलतामहासीदस्पन्दमासी-दरविन्दयुग्मम् ॥ १४ ॥ पपात मेरोः सुरसिन्धुधारा

बार-बार इधर-उधर हाथ फेंक-फेंककर वस्त्र ढूँढ़ रही है, माला बिखर जानेसे बचे हुए फूल दिएकी लौपर फेंक रही है, हँसती हुई बार-बार प्रियतमके नेत्र ढक रही है और चकपकाकर बार-बार इधर-उधर देख रही है ॥६॥ कामयुद्ध (रतिक्रीड़ा) में मृगनयनीके स्तनोंने अत्यधिक पराक्रम दिखाया था इसलिये स्तनोंपर छाई हुई पसीनेंकी बूँदें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो उनके पराक्रमपर प्रसन्न होकर कामदेवने उनपर फूल बरसा दिए हों ॥ ७ ॥ आँखें थककर अलसाई हुई हैं, फीके पड़े हुए मस्तकपर बाल बिखरे हुए हैं और तिलक छूट गया है, ऐसा नवेलीका मुख कामदेवको पास ले आ रहा है और मेरा धीरज तोड़े डाल रहा है ॥ ८ ॥ आलस्यसे भरी हुई लाल-लाल दोनों आँखें, दाँतके चिह्नोंसे युक्त ओठ, बिखरे हुए बाल, पसीनेसे छूटी हुई बेल-बूटेकी रचना, और जँभाई लेते समय मुखसे निकली हुई मदिराकी सुगन्धपर टूटी पड़ती हुई भौंरियोंके द्वारा की हुई प्रशंसा, ये सभी मिलकर प्रकट कर रहे हैं कि नवेलीने रात कैसे बिताई ॥ ९ ॥ हे गोरे अङ्गोंवाली ! तुम्हारे स्तन निर्लेप (चन्दन आदिके लेपसे रहित, संसारमें आसक्तिसे रहित) हो गए, बालोंके बन्ध (बाँधना, संसारका बन्धन) कट गए। करधनी भी निर्गुण (बिना डोरेकी, सत्त्व, रज, तम तीनों गुणोंसे रहित) हो गई। आँखें निरञ्जन (बिना आँजनकी, दोष-रहित) हो गईं। कोंपलके समान ओठ नीराग (बिना ललाईके, रागद्वेषसे रहित) हो गए। इससे जान पड़ता है कि किसी गुरु (यौवन) ने तुम्हें कामोपनिषद्का पूरा ज्ञान करा दिया है ॥ १० ॥ रतिक्रीड़ा-रूपी उत्सव समाप्त हो जानेपर भी, शरीरकी थकावट बढ़ जानेपर भी, पसीनेसे छूटे हुए चन्दनसे बिछौना भीग जानेपर, तनिक-सा वस्त्र छू जानेपर अत्यधिक प्रेमके कारण उपभोग करनेके लिये छटपटाते हुए प्रेमी-प्रेमिकामें भूखे कामकी घबराहट होनेपर भी सम्भोगकी इच्छा जाग ही गई ॥११॥ रतिक्रीड़ा समाप्त होनेपर (वैराग्यसे) योगके आठों अङ्ग नवेलीमें आ गए। क्योंकि नाड़ेका बाँधना ही यम, बालोंका बाँधना ही नियम, नितम्बका स्थिर हो जाना ही आसन, साँसका आना-जाना ही प्राणायाम, गहनोंका समेटना ही प्रत्याहार, प्रेमका स्मरण ही ध्यान, स्तनोंका सँभालना ही धारणा और प्रियतमका चिन्तन ही समाधि बन गया ॥१२॥ रतिक्रीड़ा समाप्त होनेपर मृगनयनी नवेलीका बिना गहनोंवाला शरीर, सजे हुए शरीरसे भी अधिक सुन्दर जान पड़ता था, रतिके परिश्रमसे मुँदी हुई आँखें तिरछी चितवनसे भी अधिक सुन्दर लग रही थीं, हाथोंकी शिथिलता कसकर आलिङ्गन करनेसे भी अधिक मनोहर जान पड़ रही थी और प्रेमसे बातचीत करनेकी अपेक्षा चुप रहना ही अत्यधिक प्रिय जान पड़ रहा था ॥ १३ ॥ रतिक्रीड़ा समाप्त होनेपर स्तनसे हार गिर गए, बाल खुलकर बिखर गए, नवेली शान्त हो गई और उसके नेत्र भी स्थिर हो गए, उस समय ऐसा जान पड़ रहा था मानो शङ्करजीके मस्तकसे गङ्गाजी गिर रही हों, अन्धकारका बन्धन छूट गया हो, बिजली

ववर्ष तारागणमन्धकारः। बभूव भृङ्गावलिरप्यकम्पा शशाम शम्पालतिकाविलासः ॥ १५ ॥ प्रियकृतपटस्तेयव्रीडाविलम्बनविह्वलां किमपि कृपणालापां बालां विलोक्य ससम्भ्रमः। अपि विचलिते स्कन्धावारे गते सुरताहवे त्रिभुवनमहाधन्वी स्थाने न्यवर्तत मन्मथः ॥ १६ ॥ प्रियायाः प्रत्यूषे गलितकवरीबन्धनविधावुदञ्चद्दोर्वल्लीदरदलितचेलाञ्चलमुरः। घनाकूते पश्यत्यथ मयि समन्दादिवलितं नमन्त्या यद्रूपं नहि लिखितुमीशो मनसिजः ॥ १७ ॥ प्रेक्षणीयकमिव क्षणमासन्ह्रीविभङ्गुरविलोचनपाताः। सम्भ्रमद्रुतगृहीतदुकूलच्छाद्यमानवपुषः सुरतान्ताः ॥ १८ ॥ भातु नाम सुदृशां दशनाङ्कः पाटलो धवलगण्डतलेषु। दन्तवाससि समानगुणश्रीः सम्मुखोऽपि परभागमवाप ॥ १९ ॥ मुक्ताभूषणमिन्दुबिम्बमजनि व्याकीर्णतारं नभः स्मारं चापमपेतचापलमभूदिन्दीवरे मुद्रिते। व्यालीनं कलकण्ठकण्ठनिनदैर्मन्दानिलैर्मन्दितं निष्कम्पस्तबकापि चम्पकलता साभून्न जानेऽथ किम् ॥ २० ॥ मुखं जृम्भारम्भि प्रसरति मदामोदलहरी दृशोस्तन्द्राभारः स्फुरति विगलत्यङ्गलतिका। त्वमेतादृक्कान्तिः कमलमुखि धन्यैव नितरामसौ धन्यो यस्ते सकलरजनीं जागरयिता ॥ २१ ॥ सृष्टचन्दनविशेषकभक्तिर्भ्रष्टभूषणकदर्थितमाल्यः। सापराध इव मण्डनमासीदात्मनैव सुदृशामुपभोगः ॥ २२ ॥ योषितः पतितकाञ्चनकाञ्चौ मोहनातिरभसेन नितम्बे। मेखलेव परितः स्म विचित्रा राजते नवनखक्षतलक्ष्मीः ॥ २३ ॥ रतान्ते प्राणेशे वसनमददाने कथमपि स्थिताया याचन्त्या वितर मम चेलं गुणनिधे। सरोषं पश्यन्त्याः किमपि च हसन्त्याः परि-

---

शान्त हो गई हो तथा दो कमल, बिना हिले-डुले स्थिर खड़े हों ॥ १४ ॥ रतिके पश्चात् जब बिजलीके समान दमकीली नवेलीकी चेष्टाएँ शान्त हो गईं, उस समय उसके स्तनसे गिरा हुआ हार ऐसा जान पड़ रहा था मानो सुमेरु पर्वतसे गङ्गा गिर रही हों, बालोंसे गिरे हुए फूल ऐसे जान पड़ रहे थे मानो अन्धकारसे तारोंकी वर्षा हो रही हो और आँखोंमें आई हुई स्थिरता ऐसी जान पड़ती मानो थी भौंरे स्थिर हो गए हों॥ १५ ॥ प्रियतमने नवेलीके वस्त्र चुरा लिए इसलिये वह लज्जित हो गई, वस्त्र मिलनेमें विलम्ब होनेसे घबरा-सी गई और प्रार्थना करने लगी। ऐसी दशामें एकाएक अपने सैनिकोंके चले जानेपर सुरतरूपी युद्ध समाप्त होते ही तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध धनुषधारी कामदेव अपने स्थानपर लौटकर उसने उचित ही किया ॥ १६ ॥ प्रातःकाल खुले हुए बाल बाँधते समय नवेलीके हाथ जो ऊपर उठे तो उससे उसकी छातीपरसे तनिक-सा वस्त्र हट गया। उस समय धीरेसे अपनी आँखें नचाकर जब मैं बड़े चावसे उसे देखने लगा तो यह देखते ही वह झुक गई। उसकी उस समयकी सुन्दरताका वर्णन करनेमें कामदेव भी समर्थ नहीं है ॥ १७ ॥ लाजके कारण आँखें पूरी खुल न पा रही थीं, घबराहट तथा शीघ्रताके साथ पकड़े हुए वस्त्रसे शरीर ढका जा रहा था, ऐसी सुरतके अन्तकी क्रियाएँ नाटकके समान दर्शनीय बन गईं ॥ १८ ॥ सुनयनी नवेलियोंके गोरे-गोरे गालोंपर लगे हुए दाँतके लाल-लाल चिह्न सुन्दर जान पड़े तो ठीक ही है क्योंकि उन दोनोंका रङ्ग एक दूसरेसे भिन्न था पर लाल लाल ओठपर प्रत्यक्ष लाल चिह्न सचमुच उससे बढ़ गया ॥ १९ ॥ मुखरूपी चन्द्रमाके भूषण गिर गए, बालरूपी आकाशसे पुष्परूपी तारे बिखर गए, भौंहरूपी कामके धनुषकी चञ्चलता जाती रही, नेत्ररूपी नीले कमल मुँद गए, गलेकी ध्वनिरूपी कबूतरकी गुटरगूँ शान्त हो गई, साँसके पवन धीमे पड़ गए और नवेलीरूपी चम्पाकी लताके स्तनरूपी गुच्छोंका हिलना बन्द हो गया। इसके पश्चात् क्या हुआ, मैं नहीं जानता ॥ २० ॥ हे कमलमुखी! तुम्हारे मुखपर जो बार-बार जँभाइयाँ आ रही हैं, प्रसन्नताकी लहरें फैली जा रही हैं, आँखोंमें आलस्य छाया जा रहा है और सब अङ्ग ढीले पड़े जा रहे हैं, यह तुम्हारी कुछ अनोखी ही शोभा है। तुम सचमुच धन्य हो और तुम्हें सारी रात जगानेवाला तुम्हारा यह प्रियतम भी धन्य है ॥२१॥ सम्भोगके कारण नवेलीके शरीरमेंसे चन्दनके बेल-बूटे मिट गए, गहने तथा मालाएँ शरीरसे अलग हो गईं इसलिये अपनेको अपराधी समझकर स्वयं सम्भोग ही नवेलीकी देहमें गहनेका काम करने लगा ॥ २२ ॥ रति करनेकी उतावलीमें जब नवेलीके नितम्बसे सोनेकी करधनी सरक गई, उस समय नितम्बपर लगे हुए नखके चिह्न ही सुन्दर करधनीके समान शोभित होने लगे ॥ २३ ॥ रतिक्रीड़ाके पश्चात् यद्यपि वह अनेक प्रकारकी प्रार्थना करती हुई खड़ी होकर रोषसे देखने लगी किन्तु प्रियतमने किसी प्रकार वस्त्र नहीं लौटाए। इसपर वह हँसने लगी और झुककर खड़ी हो गई। उस

चलन्नमन्त्यास्तद्रूपं नहि लिखितुमीशो मनसिजः ॥ २४ ॥ लुलितकुसुमसम्पत्केशपाशस्तरुण्या मुकुलितनयनान्तं व्रीडया नम्रमास्यम्। करतलपरिधानं नाभिमूलं रतान्ते पुनरपि रतलीलां प्रेयसः सन्तनोति ॥ २५ ॥ विश्रमार्थमुपगूढमजस्रं यत्प्रियैः प्रथमरत्यवसाने। योषितामुदितमन्मथमादौ तद्द्वितीयसुरतस्य बभूव ॥ २६ ॥ वीतोष्ठरागाणि हृताञ्जनानि भास्वन्ति लोलैरलकैर्मुखानि। प्रातः कृतार्थानि यथा विरेजुस्तथा न पूर्वेद्युरलङ्कृतानि ॥ २७ ॥ व्याधूतहारमणयः परिधूतमाल्याः मन्दस्मितप्रसरसत्रपदृष्टिपाताः। तस्या जयन्ति लुलितश्रमवारिलेशाः सीत्कारमुग्धमणितध्वनयो रतान्ताः ॥ २८ ॥ व्यामिश्रैकैकबाहु प्रवलितपृथुलैकैकचारूरुकाण्डं दष्ट्वा दष्टाधरोष्ठं दरशिथिलतनुश्लेषमालिङ्गय कान्ताः। शश्वन्निःश्वासवेगस्फुरितगुरुकुचद्वन्द्वसङ्घृष्टवक्षाः श्रान्तः शेते रतान्ते सुखमिह सुकृती लीलया कामिलोकः ॥ २९ ॥ व्यालोलः केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदलोलौ कपोलौ क्लिष्टा बिम्बाधरश्रीः कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः। काञ्ची काञ्चिद्गताशां स्तनजघनपदं पाणिना छादयन्ती भूषाहीनापि काचित्प्रियहृदयमहो प्रीणयत्येव मुग्धा ॥ ३० ॥ शयानस्योत्तानं हृदि निहितवक्षोरुहभरा तिरश्चीने वक्त्रे निबिडकलितात्मीयवदना। समाक्रम्योरुभ्यामतिदृढतरं सक्थियुगलं स्वपित्यम्भोजाक्षी शिथिलभुजबन्धेयमधुना ॥ ३१ ॥ शान्ते मन्मथसङ्गरे रणभृतां सत्कारमातन्वती वासोऽदाज्जघनस्य पीनकुचयोर्हारं श्रुतेः कुण्डलम्। बिम्बोष्ठस्य च वीटिकां सुनयना पाण्योः रणत्कङ्कणे पश्चाल्लम्बिनि केशपाशनिचये युक्तो हि बन्धक्रमः ॥३२॥ संन्यासमकृत काञ्ची जहौ कलत्रं दुकूलमबलायाः। तत्याज रागमधरो मुक्तिमुरीचक्रिरे चिकुराः ॥ ३३ ॥ सङ्गताभिरुचितैश्च-

---

समयकी उसकी सुन्दरताको लिखनेके लिये विचलित हुआ कामदेव भी सफल नहीं हो सकता ॥ २४ ॥ रतिक्रीडा समाप्त हो चुकनेपर उस नवेलीके वे बाल जिनकी फूल-रूपी सम्पत्ति बिखरकर नष्ट हो गई, जिसमें आँखें मुँदी जा रही थी ऐसे लज्जासे झुके हुए उसके मुँह, हाथके तकिए और नाभिके नीचेके भाग सबने मिलकर फिरसे प्रियतममें रति करनेकी चाह जगा दी ॥ २५ ॥ पतिने विश्रामके लिये प्रथम सुरतके अनन्तर बार-बार नवेलीका आलिङ्गन किया जिससे फिर धीरे-धीरे ऐसा काम जगने लगा मानो दूसरी बारके सुरतका प्रारम्भ-सा होने लगा हो ॥२६॥ रति हो चुकनेपर प्रातःकाल नवेलीके ललाई छूटे हुए ओठ, आँजन छूटे हुए नेत्र और बिखरकर लहराते हुए बालोंसे सजा हुआ मुख ये सब जितने अधिक सुन्दर लग रहे थे उतने अधिक पहले दिनकी सजावटमें भी नहीं लग रहे थे ॥२७॥ सुन्दरीके उस रतिके अन्तिम समयकी जय हो जिसमें हारके मणि बिखर गए हों, मालाएँ उलझ-पुलझ गई हों, मन्द मुस्कानके साथ लजीली चितवनें चल रही हों, पसीनेकी बूँदें ढुलक रही हों और 'सी-सी'के साथ मधुर भोली-भाली ध्वनि निकल रही हो ॥ २८ ॥ रतिक्रीडा समाप्त हो चुकनेपर प्रेमी और प्रेमिका दोनोंने एक दूसरेपर हाथ रख लिया हो, एक दूसरेसे जाँघें चिपका ली हों, एक दूसरेके ओठ चूमने लगे हों, ओठ चूमते समय आलिङ्गनमें ढिलाई देखकर नायकने नायिकाका कसकर आलिङ्गन कर लिया हो और नायिकाकी प्रबल साँसके कारण स्तन हिलनेसे नायकके वक्षस्थलपर उनकी रगड़ लग रही हो। इस प्रकार सुरत-क्रीड़ासे थककर कोई भाग्यशाली ही सुखकी नींद सोता है ॥ २९ ॥ जिस सुन्दरीके बाल खुलकर बिखर गए, गालोंपर पसीना छा गया, ओठकी ललाई फीकी पड़ गई, स्तनोंपरसे हार गिर गया, करधनी न जाने कहाँ चली गई, वह अपने स्तन तथा पेड़ू हाथसे ढक रही है और यद्यपि उसके शरीरपर कोई गहना नहीं रह गया फिर भी वह अपने प्राणनाथको बड़ी अच्छी लग रही है ॥३०॥ प्रियतम ऊपरको मुँह करके लेटे हुए थे, कि वह कमलनयनी नवेली उसकी छातीपर अपने दोनों स्तन और उसके तिरछे मुखपर अपना मुख सटाकर अपनी जाँघोंसे प्रियतमकी जाँघें बलपूर्वक दबाकर हाथ ढीले करके अब सो रही है ॥ ३१ ॥ कामयुद्धके समाप्त हो जानेपर सुन्दर आँखोंवाली नवेलीने युद्धमें भाग लेनेवाले सैनिकोंका सत्कार करते हुए, पेड़ूको वस्त्र, स्थूल स्तनोंको हार, कानोंको कुण्डल, कुँदरूके समान ओठको पानका बीड़ा और हाथोंको बजते हुए कङ्कण देखकर पीछे लटकनेवाले बालोंको बाँध लिया यह उचित ही किया ॥३२॥ करधनीने छूटकर मानो संन्यास ले लिया, नवेलीके वस्त्रने कलत्र (नितम्ब, पत्नी) को छोड़ दिया, ओठने राग (ललाई, आसक्ति) छोड़ दिया और बाल ऐसे छूट गए मानो मुक्ति पा गए हों ॥३३॥ रतिके समय प्रियसे मिली हुई नवेलियोंने पहले जिसे छोड़ दिया था और जो चली गई थी

लितापि प्रागमुच्यत चिरेण सखीव। भूय एव समगंस्त रतान्ते ह्रीर्वधूभिरसहा विरहस्य ॥ ३४ ॥ सव्यासव्योरुबाहुव्यतिकरमधुरं कूर्परन्यस्तशीर्षं संसक्तास्याब्जयुग्मश्वसितहृतचलच्चारुनासाविभूषम् । भूयो निद्रातिरेकात्क्रमशिथिलभुजाश्लेषदत्तावकाशोच्छ्वासोदञ्चत्कुचाग्रप्रतिहतहृदयं शेरतेऽमी रतान्ते ॥ ३५ ॥ सुतनु श्रुतिसेवनतो मन्ये नयनं निरञ्जनं जातम्। मुग्धा स्नेहात्कवरी युक्तां मुक्तिं कथं प्राप ॥ ३६ ॥ सुभ्रुवामधिपयोधरपीठं पीडनैस्त्रुटितवत्यपि पत्युः। मुक्तमौक्तिकलघुर्गुणशेषा हारयष्टिरभवद्गुरुरेव ॥ ३७ ॥ सुरतविरतक्रीडावेशश्रमश्लथहस्तया रहसि गलितं तन्व्या प्राप्तुं न पारितमंशुकम्। रतिरसजडैरङ्गैरङ्गे पिधातुमशक्तया प्रियतमतनौ सर्वाङ्गीणं प्रविष्टमधृष्टया ॥ ३८ ॥

प्रियप्रस्थानावस्थाकथनम्—आयाते श्रुतिगोचरं प्रियतमप्रस्थानकाले बलात्तल्पान्तःस्थितया तया जनमलं दृष्ट्वा चिरं मुग्धया। सोच्छ्वासं दृढमन्युनिर्भरगलद्बाष्पाम्बुधौतं तया स्वं वक्त्रं विनिवेश्य भर्तृहृदये निःशब्दकं रुद्यते ॥ १ ॥ कान्ते कथञ्चिद्वदितप्रयाणे क्षणं विनम्रा विरहार्दिताङ्गी। ततः समालोक्य कदागतोऽसीत्याख्याय कान्ता मुदमाससाद ॥ २ ॥ कान्तो यास्यति दूरदेशमिति मे चिन्ता परं जायते लोकानन्दकरो हि चन्द्रवदने वैरायते चन्द्रमाः। किञ्चायं वितनोति कोकिलकलालापो विलापोदयं प्राणानेव हरन्ति हन्त नितरामाराममन्दानिलाः ॥ ३ ॥ गच्छामीति मयोक्तया मृगदृशा निःश्वासमुद्रेकिणं त्यक्त्वा तिर्यगवेक्ष्य बाष्पकलुषेणैकेन मां चक्षुषा। अद्य प्रेम मदर्पितं प्रियसखीवृन्दे त्वया बध्यतामित्थं स्नेहविवर्धितो मृगशिशुः सोत्प्रासमाभाषितः ॥ ४ ॥ गन्तुं प्रिये वदति निःश्वसितं न दीर्घमासीन्न वा नयनयोर्ज-

---

वही लज्जा सुरतके पश्चात् विरह न सह सकी और फिर नवेलियोंके पास आ गई ॥ ३४ ॥ सुरतके पश्चात् प्रेमी और प्रेमिका दोनों सो रहे हैं, एककी दाहिनी तथा दूसरेकी बाईं जाँघें तथा बाँहें परस्पर सटी हैं। बाँहकी कुहनीपर सिर धरा है, दोनोंके मुख परस्पर मिले हैं, चलती हुई साँससे नाकके आभूषण हिल रहे हैं और गहरी नींदके कारण आलिङ्गन ढीला पड़ गया है जिससे स्तनका केवल आगेका भाग प्रियतमकी छातीपर लगा रह गया है ॥ ३५ ॥ हे सुन्दरी ! कानतक पहुँचे हुए नेत्र मानो श्रुति (वेदों) के अभ्याससे मोक्ष पा गए यह तो ठीक हुआ किन्तु तेल लगानेसे चिकने (संसारमें आसक्त रहनेवाले) बाल (मूर्ख) कैसे मुक्ति (मोक्ष) पा गए (खुल गए) ? ॥३६॥ प्रियतमके घने आलिङ्गनसे सुन्दर भौंहवाली नवेलियोंके स्तनपर लटकी हुई हारकी लड़ियाँ टूट गई और मोती बिखर जानेसे केवल डोरा ही रह गया फिर भी वह गुरु (भारी, आदरणीय) बनी रही ॥ ३७ ॥ रतिलीला समाप्त हो जानेपर दुबली-पतली नवेलीका हाथ लाज, आवेश और परिश्रमसे थक गया था अतः एकान्तमें पड़ा हुआ वस्त्र वह न पा सकी और रतिक्रीडाके आनन्दकी मस्तीमें उसके सब अङ्ग ऐसे शिथिल हो गए कि वह अपने दूसरे अङ्ग न ढक सकी इसलिये वह सकुचाती हुई अपने प्रियतमसे ही सिमटकर चिपक गई ॥ ३८ ॥

प्रियतमके प्रस्थान करनेके समयका वर्णन : प्रियतमकी यात्राका समय और यात्राकी बात ज्योंही कानोंमें पड़ी त्योंही बिछौनेपर बैठी हुई सुन्दरी नवेलीने कुछ देरतक तो प्रियतमको भली-भाँति देखा तथा लम्बी साँस ली फिर निरन्तर धधकते हुए शोकाग्निसे निकलते हुए आँसुओंसे धुला हुआ मुँह प्रियतमकी छातीमें लगाकर सिसक-सिसककर रोना प्रारम्भ कर दिया ॥ १ ॥ प्रियतमने नवेलीके सामने किसी-किसी प्रकार (डरते-डरते) अपने जानेकी बात छेड़ी तो यह सुनते ही वह नवेली कुछ देरतक तो सिर झुकाए बैठी रही और उसके अङ्ग विरहकी वेदनासे ढीले पड़ गए। फिर प्रियतमकी ओर देखकर उसने पूछा कि 'आप कब आए ?' इससे पतिकी यात्रा रुक गई और वह नवेली प्रसन्न हो गई ॥ २ ॥ हे चन्द्रमुखी सखी ! प्रियतम बहुत दूर परदेस जानेवाले हैं इस बातकी मुझे ऐसी चिन्ता है कि सारे विश्वको आनन्द देनेवाला चन्द्रमा भी वैर कर रहा है, यह कोयलकी कूक ऐसी जान पड़ती है मानो कोई विलाप कर रहा हो और ये उपवनके शीतल पवन तो प्राण ही हरे ले रहे हैं ॥ ३ ॥ जैसे ही मैंने कहा कि 'मैं जा रहा हूँ' वैसे ही प्रियतमाने लम्बी साँस ली, आँसूसे भरी हुई एक आँख तिरछी करके मेरी ओर देखा, फिर बड़े स्नेहसे पाले हुए हरिणके छौनेसे कुछ दूसरे ही अभिप्रायसे कहने लगी कि जो प्रेम आजतक तुम मुझसे करते रहे वही प्रेम अब मेरी दूसरी सखियोंसे किया करो अर्थात् मैं मर जाऊँगी ॥४॥

लमाविरासीत्। आयुर्लिपिं पठितुमेणदृशः परन्तु भालस्थलीं किमु करः समुपाजगाम ॥ ५ ॥ गन्तुर्विवस्वदुदये हृदयेश्वरस्य प्रत्यूषपक्षिनिनदश्रमजातकम्पा। निद्रां जलैरशिशिरैर्नयनाब्जजातैः कान्ता तदंसशिखरे पतितैर्जहार ॥ ६ ॥ चिन्तामोहविनिश्चलेन मनसा मौनेन पादानतः प्रत्याख्यानपराङ्मुखः प्रियतमो गन्तुं प्रवृत्तोऽधुना। सव्रीडैरलसैर्निरन्तरलुठद्बाष्पाकुलैर्लोचनैः श्वासात्कम्पकुचं निरीक्ष्य सुचिरं जीवाशया वारितः ॥ ७ ॥ दूरं सुन्दरि निर्गतासि नगरादेष द्रुमः क्षीरवानस्मादेव निवर्त्यतामिति शनैरुक्त्वाध्वगेन प्रियाम्। गाढालिङ्गनचक्रितस्तनतटाभोगस्फुटत्कञ्चुकं वीक्ष्योरःस्थलमश्रुपूरितदृशः प्रस्थानभङ्गः कृतः ॥ ८ ॥ दृष्टः कातरनेत्रया चिरतरं बद्धाञ्जलि याचितः पश्चादंशुकपल्लवेन विधृतो निर्व्याजमालिङ्गितः। इत्याक्षिप्य समस्तमर्थमघृणो गन्तुं प्रवृत्तः शठः पूर्वं प्राणपरिग्रहो दयितया मुक्तस्ततो वल्लभः ॥ ९ ॥ पितुरधिपुरं त्यक्ताः सख्यः समं निजबान्धवैर्न च परिचितिर्जाता पत्युर्गृहेऽपि कयाचन। कतिपयदिनोदञ्चत्प्रेम्णि प्रिये प्रवसत्यसौ कथयतु मनस्तापं कस्मै नवं नवकामिनी ॥ १० ॥ प्रस्थानं वलयैः कृतं प्रियसखैरस्त्रैरजस्रं गतं धृत्या न क्षणमासितं व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः। यातुं निश्चितचेतसि प्रियतमे सर्वे समं प्रस्थिता गन्तव्ये सति जीवितप्रियसुहृत्सार्थः किमु त्यज्यते ॥ ११ ॥ प्रहरविरतौ मध्ये वाह्नस्ततोऽपि परेण वा किमुत सकले यातेऽप्यह्नि प्रिय त्वमिहैष्यसि। इति दिनशतप्राप्यं देशं प्रियस्य यियासतो हरति गमनं बालालापैः सबाष्पगलज्जलैः ॥ १२ ॥ प्राणेश्वरे किमपि जल्पति निर्गमाय क्षामोदरी वदनमानमयाञ्चकार। आली पुनर्निभृतमेत्य लतानिकुञ्जमुन्मत्तकोकिलकलध्वनिमाततान ॥ १३ ॥ बाष्पाकुलं प्रलपतोर्गृ-

---

प्रियतमने जब जानेकी बात छेड़ी तो नवेलीने न तो लम्बी साँस ही खींची और न उसकी आँखोंसे आँसू ही निकले किन्तु उसके मस्तकमें लिखी हुई आयुकी वर्णमाला पढ़नेके लिये ही मानो हाथ मस्तकपर पहुँच गए ॥ ५ ॥ सूर्योदय होते ही प्रियतम जानेवाले थे अतः प्रातःकाल पक्षियोंके शब्द सुनकर नवेली काँपने लगी और सोते हुए प्रियतमके कन्धेपर उसके कमलनयनोंसे गरम-गरम आँसू निकलकर गिर पड़े जिससे उसकी नींद टूट गई ॥ ६ ॥ जानेका विचार करते ही प्रियतमका मन चिन्ता तथा मोहसे भर गया इसलिये वे कुछ देर चुप बैठे रहे, पैरों पड़ते रहे, रोकनेपर भी रुकते न रहे और आप चलनेको प्रस्तुत हो गए। नायिकाकी आँखें भी लज्जा, निःशक्तता तथा निरन्तर बहनेवाले आँसुओंसे भर गईं, उसके स्तन वेगसे साँस चलनेके कारण हिलने लगे। अतः बहुत देरतक जब नवेलीकी यह दशा देखी तो उसको जीवित रखनेके लिये प्रियतमको रुक ही जाना पड़ा ॥ ७ ॥ प्रस्थान करते हुए प्रियतमने अपनी प्रेयसीसे कहा—'हे सुन्दरी! तुम नगरसे बहुत दूर निकल आई हो। देखो यह वटका वृक्ष आ गया! अब तुम लौट जाओ। इसके पश्चात् जब नायकने उसका कसकर आलिङ्गन किया तो नवेलीके स्तन चाकके समान फैल गए जिससे उसकी चोलीके बन्द टूटने लगे। ऐसी दशामें आँखोंसे आँसू बहानेवाली नवेलीकी छाती देखकर उसने अपनी यात्रा रोक दी ॥ ८ ॥ प्रियतमके जाते समय प्रियतमाने अपनी चञ्चल आँखोंसे बहुत देरतक उसे देखा, हाथ जोड़कर प्रार्थना की, उसका वस्त्र पकड़ लिया और प्रेमसे उसके गले लगी फिर भी वह निर्दयी धूर्त पति विदेश जाने लगा किन्तु नवेलीने प्रियतमका विछोह होनेसे पहले ही अपने प्राण छोड़ दिए ॥ ९ ॥ अपने भाई-बन्धुओंके साथ-साथ पतिके गाँवमें सखियाँ भी छूट गईं, पतिके घरमें भी अभी किसीसे परिचय नहीं हो पाया और कुछ ही दिनोंसे जिस प्रियतमसे प्रेम लग रहा है वह भी विदेश चले जा रहे हैं ऐसी दशामें बेचारी नई बहू अपने मनकी तपन किसे सुनावे ॥ १० ॥ प्रियतमकी यात्रा निश्चित हो जानेपर कोई नवेली कह रही है कि 'कङ्कण पहले ही निकल गए, प्यारे मित्र आँसू भी ढुलक गए, धीरज भी नौ-दो-ग्यारह हुआ और मन भी आगे चलनेके लिये प्रस्तुत हो गया इस चलाचलीमें हे जीवन! जब जाना ही है तो अपने प्यारे मित्रोंका साथ क्यों छोड़े दे रहे हो अर्थात् उनके साथ अभी क्यों नहीं चल देते? ॥ ११ ॥ 'एक पहर या दोपहर या दिन बीते आप यहाँ अवश्य लौट आइएगा' यह कहकर वह नवेली अपने गिरते हुए आँसुओंके साथ पतिकी उस यात्राको रोक रही है जहाँ पहुँचने-पहुँचनेमें सौ दिन लगते हैं ॥१२॥ प्रियतमने ज्योंही जानेकी बात छेड़ी त्योंही नवेलीने सिर झुका लिया। इस बीच उसकी सखी धीरेसे लताकी झाड़ीमें जाकर छुपकेसे मतवाली कोयलके समान मधुर ध्वनि करने लगी। इससे सखीने यह सूचित किया कि

हिणि निवर्तस्व कान्त गच्छेति। यातं दम्पत्योर्दिनमनुगमनावधि सरस्तीरे ॥ १४ ॥ मनसि निविशते स कोऽपि तापः प्रणयिनि बाहुलतान्तरस्थितेऽपि। सरसिजमकरन्दगन्धबन्धुर्वहति यदेष शनैः शनैः समीरः ॥ १५ ॥ मुग्धा कान्तस्य यात्रोक्तिश्रवणादेव मूर्च्छिता। बुद्धा वक्ति प्रियं दृष्ट्वा किं चिरेणागतो भवान् ॥ १६ ॥ यामि न यामीति धवे वदति पुरस्तात्क्षणेन तन्वङ्ग्याः। गलितानि पुरोवलयान्यपराणि मथैव दलितानि ॥ १७ ॥ यामि प्रेयसि वारिदागमदिने जानीहि मामागतं चिन्तां चेतसि मा विधेहि कथयत्येवं सबाष्पे मयि। निःश्वासैः पवनायितं वरतनोरङ्गैः कदम्बायितं कान्त्या केतकपत्रकायितमहो दृग्भ्यां पयोदायितम् ॥ १८ ॥ यामीति प्रियपृष्टायाः कान्तायाः कण्ठवर्त्मनि। वचोजीवितयोरासीद्बहिर्निःसरणे रणः ॥ १९ ॥ यामीत्यप्रियवादिनि प्रियतमे मुद्राभवत्कङ्कणं केलीसद्मबहिर्गतैकचरणे भूमौ शरीरस्थितिः। अन्तर्धानगते पुनर्मृगदृशो वाच्या किमन्या दशा लाजास्फोट इव स्फुटत्यविरलं हारोऽपि वामभ्रुवः ॥ २० ॥ यामीत्युक्ते हृदयपतिना पञ्चशः शङ्खभूषाः स्वैरं स्वैरं झटिति गलिताः पाणिपङ्केरुहाग्रात्। नो यास्यामीत्यनुपदमिमां वाचमाकर्णयन्त्यास्तन्व्याः शेषा अपि चटचटेत्येव भङ्गं समीयुः ॥ २१ ॥ लज्जा नांशुकपल्लवे भुजलता नो द्वारदेशेऽर्पिता नो वा पादयुगे तया निपतितं तिष्ठेति नोक्तं वचः। काले केवलमम्बुदालिमलिने गन्तुं प्रवृत्तः शठस्तन्व्या बाष्पजलौघकल्पितनदीपूरेण रुद्धः प्रियः ॥२२॥ लज्जां विहाय रुदितं विधृतः पटान्ते मा गास्त्वमित्युदितमङ्गुलयो मुखेऽस्ताः। स्थित्वा पुरः पतितमेव निवर्तनाय प्राणेश्वरे व्रजति किं न कृतं कृशाङ्ग्या ॥ २३ ॥ सान्त्वप्रायैः प्रणयवचनैर्गन्तुमापृच्छमाने कान्ते तिर्य-

---

वसन्त ऋतु आ गई है अतः अब परदेश जाना उचित नहीं है ॥ १३ ॥ जब प्रियतम परदेस चले जा रहे थे तब नवेली उन्हें पहुँचानेके लिये तालाबतक उनके पीछे-पीछे गई। फिर प्रियतमने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—'गृहस्वामिनी! लौट जाओ' तो नवेलीने कहा कि 'हे प्रियतम जाओ!' इसी प्रकार कहते-कहते उन दोनोंका पूरा दिन वहीं बीत गया ॥ १४ ॥ इस समय जब कमलका रस लेकर पवन धीरे-धीरे बह रहा है तब बाँहोंमें प्रियतमके रहनेपर भी हृदयमें एक विचित्र-सी तपन उठी जा रही है ॥ १५ ॥ पतिकी यात्राकी बात सुनते ही सुन्दरी नवेली मूर्च्छित हो गई। फिर जागकर पतिको सामने देखते ही कह उठी—'क्या आपको आए बड़ी देर हो गई?' ॥१६॥ जैसे ही प्रियतमने कहा कि 'मैं जा रहा हूँ' वैसे ही नवेलीकी आगेकी चूड़ियाँ खिसककर तुरत गिर गईं और 'न जाऊँगा' यह कहते ही प्रसन्नताके कारण नवेलीका शरीर ऐसा फूल गया कि जो चूड़ियाँ बची थीं वे भी टूट गईं ॥१७॥ 'हे प्यारी! मैं जा रहा हूँ! वर्षा ऋतु आते ही मैं लौट आऊँगा! मनमें चिन्ता न करना।' इस प्रकार आँखोंमें आँसू भरकर मैंने जैसे ही कहा वैसे ही उस सुन्दरी नवेलीके श्वास आँधी बन गए, अङ्ग कदम्बके फूलके समान खिल उठे, रङ्ग केवड़ेके पत्तेके समान पीला पड़ गया और आँखें बादल बन गईं ॥ १८ ॥ जैसे ही प्रियतमने जानेके लिये नवेलीसे पूछा वैसे ही गले-रूपी रणक्षेत्रमें वाणी तथा जीवनका यह संघर्ष होने लगा कि पहले कौन बाहर निकलता है ॥१९॥ 'मैं जाता हूँ', यह अप्रिय बात ज्योंही प्रियतमने सुनाई त्योंही नवेलीकी अँगूठी कङ्कण बन गई, जब उन्होंने क्रीड़ा-गृहके बाहर एक पैर रक्खा तो नवेली धरतीपर गिर पड़ी और जब प्रियतम आँखसे ओझल हो गए तो उस मृगनयनीकी और क्या दशा कहें? अरे, उस सुन्दर भौंहवाली नवेलीका हार धानकी खीलके समान चट-चट करके तड़क उठा ॥ २० ॥ प्रियतमने ज्योंही जानेकी बात छेड़ी त्योंही नवेलीकी शङ्खकी बनी हुई पाँच-छः चूड़ियाँ तत्काल हाथसे गिर पड़ीं। फिर जैसे ही प्रियतमने कहा कि 'मैं नहीं जाऊँगा', वैसे ही वह प्रसन्नतासे इतनी फूल उठी कि उसकी बची-खुची चूड़ियाँ भी चट-चट करके टूट गईं ॥ २१ ॥ जिस समय बादल आकाशमें भरे पड़े थे उस समय नवेलीने न तो प्रियतमके वस्त्र पकड़े, न अपनी भुजाओंसे द्वार ही रोका, न उसके पैरों पड़ी, न उनसे रुकनेके लिये ही कहा किन्तु केवल बहते हुए आँसू-रूपी नदीके प्रवाह-मात्रसे ही उस जाते हुए धूर्त नायकको उसने लौटा लिया ॥ २२ ॥ पतिकी यात्राके समय उस दुबले शरीरवाली नवेलीने उसे लौटा लेनेके लिये क्या-क्या उपाय नहीं किए? लज्जा छोड़कर रोने लगी, प्रियतमके वस्त्रका छोर पकड़ लिया, कई बार कहा कि 'मत जाइए', दाँतों तले उँगली दबाई और सामने खड़ी होकर गिर भी पड़ी ॥ २३ ॥ ढाढ़स तथा प्रेमसे भरी हुई बातें चलाकर जब प्रियतम जानेके विषयमें पूछ रहे थे तो नवेलीने अपना

ऽवनमितवदना रुन्धती वाष्पपूरम्। दीर्घोच्छ्वासस्थगनविकलोत्कम्पि नासापुटान्ता संख्याशून्यं गणयति मृगीलोचना कङ्कणानि ॥ २४ ॥

नायिकानिर्गमनम्—एषा का भुक्तमुक्ता विलुलितवसना स्वेदलग्नान्तवस्त्रा प्रत्यूषे याति बाला मृग इव चकिता सर्वतः शङ्कयन्ती। केनेदं वक्त्रपद्मं ह्यधरमधुरसं खण्डितं केन पीतं स्वर्गः केनाद्य भुक्तो हरनयनहतो मन्मथः कस्य तुष्टः ॥ १ ॥ गुरुत्रासादासादितभवदुपालम्भवचसा मुहुः स्मारं स्मारं कथमपि निशीथे समगमम्। इदानीं मुञ्च त्वं दयित पुनरेष्यामि समभूदुषःकालीनोऽयं चटुलचटकालीकलकलः ॥ २ ॥ धम्मिल्लं परिबध्नती नखमुखैः सीमन्तमातन्वती पश्यन्ती नखरोत्सवं कुचयुगे सव्यापसव्यं मुहुः। नाभीसीमनि कुञ्चिताङ्गुलिदलं नीवीभरं रुन्धती शय्यागारविनिर्गतापि हृदयान्नाद्यापि निष्क्रामति ॥ ३ ॥ निद्रानिवृत्तावुदिते द्युरत्ने सखीजने द्वारपदं परास्ते। श्लथीकृताश्लेषरसे भुजङ्गे चचाल नालिङ्गनतोऽङ्गना सा ॥ ४ ॥ प्रबुद्धायाः प्रातर्लसदलसदोर्वल्लिवलयं गलन्मल्लोदाम्नः शिथिलकवरोबन्धसमये। प्रियालोके घूर्णन्नयनमसृणस्मेरमधुरो मुखे जृम्भारम्भी जयति भृशमिन्दीवरदृशः ॥५॥ प्राणेशेन प्रहितनखरेष्वङ्गकेषु क्षपान्ते जातातङ्का रचयति चिरं चन्दनालेपनानि। धत्ते लाक्षामसकृदधरे दन्तदन्तावघाते क्षामाङ्गीयं चकितमभितश्चक्षुषी विक्षिपन्ती ॥ ६ ॥

पानगोष्ठीवर्णनम्—अन्ययान्यवनितानतचित्तं चित्तनाथमभिशङ्कितवत्या। पीतभूरिसुरयापि न मेदे निर्वृतिर्हि मनसो मदहेतुः ॥ १ ॥ अप्रसन्नमपराद्धरि पत्यौ कोपदीप्तमुररीकृतधैर्यम्। क्षालितं नु शमितं नु वधूनां द्रावितं नु हृदयं मधुवारैः ॥ २ ॥ अर्पितं

मुख तिरछे घुमा लिया, निकलते हुए आँसुओंकी धार रोक ली, लम्बी साँस रोकनेके कारण उसकी नाकके आगेका भाग काँपने लगा और वह उदासीन होकर अपनी चूड़ियाँ गिनने लगी (कि कितनी ढीली होकर निकल गईं।) ॥ २४ ॥

नवेलीका बाहर आना : घबराई हुई मृगीके समान सभीसे शंका करती हुई यह कौन नवेली प्रातःकाल चली जा रही है जिसे किसीने उपभोग करके छोड़ दिया है, जिसके वस्त्र सिकुड़ गए हैं जिसका अञ्चल पसीनेसे देहमें चिपक गया है ! इसके अधररूपी अमृतसे भरे हुए मुखरूपी कमलका किसने उपभोग किया है अर्थात् किसने इसने मुखका चुम्बन लिया है और ओठमें दाँत लगाए हैं ? किसने आज स्वर्गका उपभोग पाया है और शिवजीके नेत्रसे जला हुआ कामदेव किसपर आज प्रसन्न हो गया है? ॥१॥ यद्यपि मैं सास-ससुरसे डर रही थी फिर भी आपने मुझे जो उलाहना दिया था उसका स्मरण करके किसी-किसी प्रकार रातमें मैं यहाँ चली आई। हे प्रियतम ! इस समय मुझे छोड़ दो, मैं फिर आ जाऊँगी। देखो तड़का हो गया क्योंकि चञ्चल गौरैयोंकी चहचहाहट सुनाई पड़ने लगी है ॥२॥ बाल समेटकर बाँधती हुई, नखोंसे माँग सँवारती हुई, दोनों स्तनोंपर लगे हुए नखके चिह्नोंको बार-बार दाएँ-बाएँ मुँह घुमाकर देखती हुई और उँगलियाँ टेढ़ी करके नाभिपर नाड़ेको रोकती हुई वह प्यारी यद्यपि शयनागारसे तो बाहर निकल गई किन्तु मनसे नहीं निकल पा रही है ॥ ३ ॥ सूर्य निकल आया, नींद खुल गई, सखियाँ द्वारपर आ खड़ी हुईं, प्रियतमने आलिंगन शिथिल कर दिया, फिर भी नवेली आलिंगनसे मुँह नहीं मोड़ रही है ॥ ४ ॥ प्रातःकाल जब नवेली जगी तो उसके बालोंसे बेलेके फूल झड़ रहे थे, उसकी बाँहें आलस्यसे ढीली थीं, वह अपने बिखरे हुए बाल बाँध रही थी, उसी समय जो उसने प्रियतमको देखा तो देखते ही उसकी आँखें नाचने लगीं और मन्द मुस्कराहटके साथ ही बार-बार वह जँभाइयाँ लेने लगी। उसका यह वेष अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता रहा था ॥ ५ ॥ रातमें प्रियतमने जिन अङ्गोंपर खरोंचे लगा दिए थे उन्हें प्रातःकाल किसीके देख लेनेके भयसे नवेली चन्दनके लेपसे छिपाने लगी, दाँतसे छिन्न-भिन्न हुए ओठपर लाली चढ़ाने लगी और यह सब करती हुई वह दुबले-पतले शरीरवाली नवेली चकपकाकर चारों ओर देख भी रही है कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है ॥ ६ ॥

मदिरा पीनेवालोंकी गोष्ठी : अपने प्राणनाथको सौतपर मन लगाए देखकर नवेलीका उसपरसे विश्वास हट गया। इसलिये मदिरा पीकर भी वह मतवाली न हो पाई क्योंकि मनकी प्रसन्नतासे ही तो मस्ती आती है ॥ १ ॥ प्रियतमाके अपराध करनेके कारण जो हृदय दुखी था, क्रोधसे जल रहा था और जिसमें कठोरता आ गई थी वही नवेलियोंका हृदय बार-बार मदिरा पीनेके पश्चात् धो दिया

रसितवत्यपि नामग्राहमन्ययुवतेर्दयितेन। उज्झति स्म मदमप्यपिवन्ती वीक्ष्य मद्यमितरा तु ममाद ॥ ३ ॥ आगतानगणितप्रतियातान्वल्लभानभिसिसारयिषूणाम्। प्रापि चेतसि स विप्रतिसारे सुभ्रुवामवसरः सरकेण ॥४॥ आननैर्विचकसे हृषिताभिर्वल्लभानभितनू भिरभावि। आर्द्रतां हृदयमाप च रोषो लोलति स्म वचनेषु वधूनाम् ॥५॥ आहिते नु मधुना मधुरत्वे चेष्टितस्य गमिते नु विकासम्। आबभौ नव इवोद्धतरागः कामिनीष्ववसरः कुसुमेषोः ॥ ६ ॥ ओष्ठपल्लवविदंशरुचीनां हृद्यतामुपययौ रमणानाम्। फुल्ललोचनविनीलसरोजैरङ्गनास्यचषकैर्मधुवारः ॥ ७ ॥ उद्धतैरिव परस्परसङ्गादीरितान्युभयतः कुचकुम्भैः। योषितामतिमदेन जुघूर्णुर्विभ्रमातिशयपुंषि वपूंषि ॥ ८ ॥ कस्यचित्समदनं मदनीयप्रेयसीवदनपानपरस्य। स्वादितः सकृदिवासव एव प्रत्युत क्षणविदंशपदेऽभूत् ॥ ९ ॥ कान्तसङ्गमपराजितमन्यौ वारुणीरसनशान्तविवादे। मानिनीजन उपाहितसन्धौ सन्दधे धनुषि नेषुमनङ्गः ॥ १० ॥ कान्तानवाधररसामृततृष्णयेव बिम्बं पपात शशिनो मधुभाजने यत्। निःशेषिते मधुनि लज्जितचित्तवृत्ति तत्तन्मुखापजितकान्तितयेव नष्टम् ॥ ११ ॥ कापिशायनसुगन्धि विघूर्णन्नुन्मदोऽधिशयितुं समशेत। फुल्लदृष्टि वदनं प्रमदानामब्जचारु चषकं च षडङ्घ्रिः ॥ १२ ॥ कुप्यताशु भवतानतचित्ताः कोपितांश्च वरिवस्यत यूनः। इत्यनेक उपदेश इव स्म स्वाद्यते युवतिभिर्मधुवारः ॥ १३ ॥ कुर्वता मुकुलिताक्षियुगानामङ्गसादमवसादितवाचाम्। ईर्ष्ययेव हरता ह्रियमासां तद्गुणः स्वयमकारि मदेन ॥ १४ ॥ कोपवत्यनुनयानगृहीत्वा प्रागथो

गया या शान्त कर दिया गया या पिघला दिया गया ! अर्थात् अत्यधिक प्रसन्न हो गया ॥ २ ॥ नवेलीको प्रियतमने सौतके नामसे पुकारकर जो मदिरा दी उसे पीकर भी वह मतवाली न हुई किन्तु दूसरी मदिरा न पीनेवाली जो नवेली देख रही थी वह केवल देखकर ही मतवाली हो गई क्योंकि मतवालेपनका कारण तो मन होता है ॥ ३ ॥ जब नवेलीने पासमें आए हुए प्रियतमकी आव-भगत नहीं की तो वह लौट गया। इसपर उसने स्वयं ही उसके पास जाना चाहा। उस समय पश्चात्ताप करनेवाले उस नवेलीके मनमें पैठनेका मदिराको अच्छा अवसर मिल गया ॥ ४ ॥ मदिरा पीनेसे स्त्रियोंके मुख खिल गए, पतिके सामने शरीरमें रोमांच हो आया, हृदय पिघल गया और बात करते समय क्रोधका नामतक नहीं रह गया ॥ ५ ॥ मदिराने जब नवेलियोंको अधिक सुन्दर बना दिया और वे खुलकर व्यवहार करने लगीं, उस समय कामदेवको नवेलियोंपर प्रभाव डालनेका एक नया अवसर मिल गया क्योंकि उस समय दोनोंमें ही अत्यधिक प्रेम बढ़ गया था ॥ ६ ॥ खिली हुई आँखोंरूपी कमलवाले नवेलीके मुखरूपी मधुपात्रसे ली गई मदिरा बीच-बीचमें नवेलियोंकी ओठरूपी चाट चखनेवाले कामियोंको अत्यन्त भली जान पड़ी ॥ ७ ॥ मदिराका प्रभाव बढ़ जानेपर अनेक प्रकारके हाव-भाव करती हुई नवेलियोंके डगमगाते हुए शरीर ऐसे जान पड़ रहे थे मानो एक दूसरेका सहारा पाकर मदमें चूर स्तन उसे दोनों ओरको खींच रहे हों ॥ ८ ॥ यों तो लोग मदिरा पीते समय चाट लेते ही हैं, किन्तु कामके वेगमें मतवाला बना देनेवाले नवेलीके मुखका चुम्बन करते हुए किसी छैलेके लिये मदिरा ही उलटे चाटका काम करने लगी ॥ ९ ॥ पतिसे मिलनेपर जब सुन्दरियोंका क्रोध शान्त हो गया, मदिरा पीनेसे जब उनका कलह पूरा हो गया तथा क्रोध करनेवाली नवेलियोंका पतियोंके साथ मेल-मिलाप हो गया तब कामदेवने व्यर्थ समझकर धनुषपर बाण ही नहीं रक्खा ॥ १० ॥ कोई सुन्दरी हाथमें मधुका कटोरा लेकर जो मधु पी रही थी उसमें चन्द्रमाकी परछाईं पड़ रही थी। जब मधु समाप्त हो गया तो मानो नवेलीके मुखकी कान्तिसे ही उसकी कान्ति समाप्त हो गई और वह कान्ति मनमें लजाती हुई मानो स्वयं नष्ट हो गई ॥ ११ ॥ खिले हुए नेत्रवाले तथा मदिराकी गन्धसे भरे हुए नवेलियोंके मुख और कमलसे सुशोभित मदिराका पात्र इन दोनोंको एक समान देखकर घूमता हुआ मतवाला भौंरा इस दुविधामें पड़ गया कि मैं कहाँ बैठूँ ! अर्थात् वह यही नहीं जान पाया कि कौन मदिरा-पात्र है और कौन नायिकाका मुँह ॥१२॥ मदिरा पीती हुई नवेलियोंको देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वे मदिराके रूपमें इस प्रकारके अनेक उपदेश दिए जा रही हों कि शीघ्र ही क्रोध करो और सरल चित्त बन जाओ, रुष्ट बनाए हुए प्रियतमको अपने अनुकूल बना लो ॥ १३ ॥ मदिराका मद नवेलीकी लाज भगाकर डाहके कारण मानो स्वयं ही लज्जाका काम करने लगा। तभी तो उस समय नवेलीकी आँखें मुँद गईं, वाणी रुक गई और अङ्ग ढीले

मधुमदाहितमोहा। कोपितं विरहखेदितचित्ता कान्तमेव कलयन्त्यनुनिन्ये ॥ १५ ॥ क्रान्तकान्तवदनप्रतिबिम्बे भग्नबालसहकारसुगन्धौ। स्वादुनि प्रणदितालिनि शीते निर्ववार मधुनीन्द्रियवर्गः ॥ १६ ॥ क्षीणयावकरसोऽप्यतिपानैः कान्तदन्तपदसम्भृतशोभः। आययावतितरामिव वध्वाः सान्द्रतामधरपल्लवरागः ॥ १७ ॥ क्षीवतामुपगतास्वनुवेलं तासु रोषपरितोषवतीषु। अग्रहीन्नु सशरं धनुरुज्झामास नूज्झितनिपङ्गमनङ्गः ॥ १८ ॥ गण्डभित्तिषु पुरा सदृशीषु व्याञ्जिनाञ्चितदृशां प्रतिमेन्दुः। पानपाटलितकान्तिषु पश्चाल्लोध्रचूर्णतिलकाकृतिरासीत् ॥ १९ ॥ चारुता वपुरभूषयदासां तामनूननवयौवनयोगः। तं पुनर्मकरकेतनलक्ष्मीस्तां मदो दयितसङ्गमभूपः ॥२०॥ चित्तनिर्वृतिनिधायि विविक्तं मन्मथो मधुमदः शशिभासः सङ्गमश्च दयितैः स्म नयन्ति प्रेम कामपि भुवं प्रमदानाम् ॥ २१ ॥ छादितः कथमपि त्रपयान्तर्यः प्रियं प्रति चिराय रमण्याः। वारुणीमदविशङ्कमथाविश्चक्षुषोऽभवदसाविव रागः ॥ २२ ॥ तुल्यरूपमसितोत्पलमक्ष्णोः कर्णगं निरुपकारि विदित्वा। योपितः सुहृदिव प्रविभेजे लम्भितेक्षणरुचिर्मदरागः ॥ २३ ॥ दत्तमात्तवदनं दयितेन व्याप्तमातिशयिकेन रसेन। सस्वदे मुखसुरां प्रमदाभ्यो नाम रूढमपि च व्युदपादि ॥ २४ ॥ दत्तमिष्टतमया मधु पत्युर्बाढमाप पिबतो रसवत्ताम्। यत्सुवर्णमुकुटांशुभिरासीच्चेतनाविरहितैरपि पीतम् ॥ २५ ॥ दृश्यते पानगोष्ठीषु कान्तावक्त्रगतं मधु। स्मरं सहायमासाद्य ग्रस्तो राहुरिवेन्दुना ॥ २६ ॥ धार्ष्ट्यलङ्घितयथोचितभूमौ निर्दयं विलुलितालकमाल्ये। मानिनीरतिविधौ कुसुमेषुर्मत्तमत्त

पड़ गए ॥ १४ ॥ नवेलीने पहले तो क्रोध किया और प्रियतमकी प्रार्थनाएँ ठुकरा दीं। फिर विरहसे दुखी होकर तथा मदिराके प्रभावसे भ्रममें पड़कर उसने यह समझा कि मैंने ही पतिके साथ अपराध करके उन्हें रुष्ट कर दिया है अतः वह पतिको मनाने लगी ॥१५॥ जिसमें पतिके मुखकी परछाईं पड़ी हुईं थी, जिसमें आमके बौरकी सुगन्ध बसी हुई थी, जो अत्यन्त स्वादिष्ट थी और जिसमें भौंरे गुञ्जार कर रहे थे, ऐसी शीतल मदिरा पी लेनेपर नाक-कान आदि सभी इन्द्रियाँ सुखी हो गईं ॥ १६ ॥ बार-बार मदिरा पीनेसे ओठमें लगी हुई लाली छूट गई, फिर भी प्रियतमके दाँतके चिह्नसे उसकी शोभा बढ़ ही रही थी और नवेलीके ओठपर पहले भी अधिक ललाई दिखाई पड़ रही थी ॥ १७ ॥ मदिराके प्रभावसे क्षण-क्षणपर मतवाली तथा प्रसन्नता और क्रोध करनेवाली नवेलियोंपर मानो कामदेवने पहले बाण-सहित धनुष उठाया, फिर उसे तूणीर-सहित छोड़ भी दिया ॥ १८ ॥ सुन्दर नयनवाली नवेलियोंके गोरे गालपर पड़ी हुई चन्द्रमाकी परछाईं पहले समान रङ्ग होनेके कारण अलग नहीं दिखाई पड़ रही थी किन्तु मदिरा पीनेसे जब उसके गाल लाल-लाल हो गए तब वही उजली परछाईं लोधके चूर्णके समान अलग दिखाई देने लगी ॥ १९ ॥ सुन्दरताने नवेलियोंके शरीरको, बढ़ी हुई नई जवानीने सुन्दरताको, कामदेवकी शोभाने उस जवानीको, मदने कामदेवकी शोभाको तथा पतिके समागमने मदको अलंकृत कर दिया ॥२०॥ मनको प्रसन्न करनेवाला एकान्त स्थान, कामदेव, मदिराका मद, चन्द्रमाका प्रकाश और प्रियतमका समागम ये सब नवेलीके प्रेमको बहुत ऊँचे चढ़ा ले गए अर्थात् उसका प्रेम बहुत उच्च कोटिका हो गया ॥ २१ ॥ कामसे मतवाली नवेलीने पतिके सामने आँखोंका जो अनुराग बहुत देरतक लाजके कारण छिपा रक्खा था वही राग (ललाई, प्रेम) मदिरा पी लेनेपर आँखोंमें स्पष्ट झलक उठा ॥ २२ ॥ कानके पास कजरारी आँखोंके रहते कानके ऊपर पड़े हुए नीले कमल व्यर्थ हैं मानो यही समझकर मित्रके समान मदकी लालीने नवेलीकी आँखें लाल करके उन्हें कमलसे भिन्न रँगका बना दिया ॥ २३ ॥ जब प्रियतमने प्रेमिकाका मुख पकड़कर उसमें अत्यन्त स्वादिष्ट मदिरा उँडेली और वह उसे बहुत ही स्वादिष्ट जान पड़ी, उसी समय उसका 'प्रमदा' नाम सार्थक हो गया अर्थात् वह मदिरा पीकर मतवाली बन गई ॥ २४ ॥ प्रेमिकाके हाथों दी हुई मदिरा पीते हुए प्रियतमको वह बहुत ही स्वादिष्ट जान पड़ी तभी तो सोनेके मुकुटकी निर्जीव किरणोंने भी उसे पी डाला (पीली बना दिया) ॥ २५ ॥ मदिरा पीनेवालोंकी बैठकमें, नवेलीके मुखमें पड़ी हुई मदिरा ऐसी दिखाई दे रही है मानो कामदेवकी सहायता पाकर चन्द्रमाने राहुको ग्रस लिया हो ॥ २६ ॥ नवेलियोंकी जिस रतिक्रीड़ामें ढिठाईके कारण मर्यादाका ध्यान नहीं रह गया था और कसकर खींचनेसे बालोंके फूल बिखर गए थे उसमें पहुँचकर कामदेव पागलका-सा व्यवहार करने लगा ॥ २७ ॥ मदिरा पीते

इव विभ्रममाप ॥ २७ ॥ नियतमिह पतन्ति दन्तधारा मदनमदोद्धतयोरितीव भीत्या । अधरकिसलयं विहाय यूनोर्मधु पिवतोर्नयनान्युपास्त रागः ॥ २८ ॥ पातुमाहितरतीन्यभिलेषुस्तर्पतन्त्यपुनरुक्तरसानि । सस्मितानि वदनानि वधूनां सोत्पलानि च मधूनि युवानः ॥ २९ ॥ पानधौतनवयावकरागं सुभ्रुवो निभृतचुम्बनदक्षाः । प्रेयसामधररागरसेन स्वं किलाभरमुपालि ररञ्जुः ॥ ३० ॥ पिपि प्रिय सस स्वयं मुमु सुखासवं देहि मे तत त्यज दुदु द्रुतं भभभ भाजनं काञ्चनम् । इति स्खलितजल्पितं मदवशात्कुरङ्गीदृशः प्रगे हसितहेतवे सहचरीभिरध्यैयत ॥ ३१ ॥ पीतवत्यभिमते मधुतुल्यस्वादमोष्ठरुचकं विदधङ्गे । लभ्यते स्म परिरक्ततयात्मा यावकेन वियतापि युवत्याः ॥ ३२ ॥ पीतशीधुमधुरैर्मिथुनानामाननैः परिहृतं चषकान्तः । व्रीडया रुददिवालिविरावैर्नीलनीरजमगच्छदधस्तात् ॥ ३३ ॥ पीतस्तुषारकिरणो मधुनेव सार्धमन्तः प्रविश्य चषकप्रतिबिम्बवर्ती । मानान्धकारमपि मानवतीजनस्य नूनं बिभेद यदसौ प्रससाद सद्यः ॥ ३४ ॥ प्रातिभं त्रिसरकेण गतानां वक्रवाक्यरचनारमणीयः । गूढसूचितरहस्यसहासः सुभ्रुवां प्रववृते परिहासः ॥ ३५ ॥ प्राप्यते गुणवतापि गुणानां व्यक्तमाश्रयवशेन विशेषः । तत्तथा हि दयिताननदत्तं व्यानशे मधु रसातिशयेन ॥३६॥ बद्धकोपविकृतीरपि रामश्चारुताभिमततामुपनिन्ये । वश्यतां मधुमदो दयितानामात्मवर्गहितमिच्छति सर्वः ॥ ३७ ॥ बिम्बितं भृतपरिस्रुति जानन्भाजने जलजमित्यवलायाः । घ्रातुमक्षि पतति भ्रमरः स्म भ्रान्तिभाजि भवति क विवेकः॥ ३८ ॥ बिभ्रतो मधुरतामतिमात्रं रागिभिर्युगपदेव पपाते । आननैर्मधुरसो विकसद्भिर्नासिकाभिरसितोत्पलगन्धः ॥ ३९ ॥ भर्तृभिः प्रणयसम्भ्रमदत्तां

समय प्रेमी-प्रेमिकाके कोंपलोंके समान ओठोंकी लाली मानो इसी डरसे ओठ छोड़कर नयनोंमें जा बसी कि अब कामके मदमें चूर होनेपर इन दोनोंके दाँतोंकी धारें निश्चित ही मुझपर टूट पड़ेंगी ॥ २८ ॥ नित, नये स्वादवाले, लुभा लेनेवाले और मनमें प्रेम बढ़ानेवाले नवेलियोंके मुस्कराते हुए मुख और कमलसे सजी हुई मदिरा दोनोंका ही तरुण पुरुष स्वाद लेना चाह रहे थे ॥ २९ ॥ चूमनेसे नवेलियोंके ओठोंकी लाली छूट गई थी इसलिये उन्होंने सखियोंके सामने ही चुपकेसे प्रियतमोंके मुख चूमकर उनके ओठोंपर लगी हुई पानकी लालीसे अपने ओठ रँग लिए ॥ ३० ॥ हे पि... पि....प्रियतम ! आप स-स....स्वयं अपने मु-मु...मुखसे म....म....मदिरा पिलाइए और शी-शी....शीघ्र ही सोनेका प-प....पात्र न....न...नीचे रख दीजिए' इस प्रकार मृगनयनीने रातमें मदके कारण लड़खड़ाती हुई बोलीमें जो बातें पतिसे कही थीं वे ही बातें प्रातःकाल सखियाँ हँसी करनेके लिये वैसे ही दुहराने लगीं ॥ ३१ ॥ ओठ चूमनेकी इच्छावाला पति जब मदिराके समान स्वादवाले सुन्दर ओठको चूमने लगा तो यद्यपि ओठकी लाली छूट गई थी फिर भी चुम्बनसे वह पुनः लाल हो गया ॥ ३२ ॥ प्रेमी और प्रमिका दोनोंके मुख मदिरा पीनेसे सुगन्धित हो गए थे अतः सुगन्धिके लिये डाले हुए जिस नीले कमलको उन्होंने मदिरा-पात्रमें ही छोड़ दिया था उसपर गूँजते हुए भौंरेको देखकर जान पड़ता था मानो नवेलीके मुखसे बिछुड़नेके कारण वह रोता हुआ लज्जासे मुख छिपानेके लिये नीचे चला गया हो ॥ ३३ ॥ मदिरा-पात्रमें चन्द्रमाकी जो परछाईं पड़ी थी उसके साथ ही नवेलियोंने मदिरा पी डाली। अतः इस चन्द्रमाने भीतर जाकर रूठी हुई नवेलियोंका क्रोधरूपी अन्धकार हटा दिया जिससे वे झट प्रसन्न हो गईं ॥ ३४ ॥ तीन बार मदिरा पीनेसे नवेलियों बुद्धि बढ़ गई अतः वे एक दूसरेपर अत्यधिक चुटीली बोली बोल-बोलकर और छिपी हुई भेदकी बातें खोल-खोलकर आपसमें हँसी करने लगीं ॥ ३५ ॥ गुणवानोंके भी गुण सुन्दर सहारा पाकर बढ़ जाते हैं इसीलिये तो नवेलियोंके मुखमें पड़ी हुई मदिरा भी अत्यन्त स्वादिष्ट हो गई ॥ ३६ ॥ मदिराके मद (पुल्लिङ्ग) ने कोपसे बिगड़ी हुई नवेलियोंको अत्यन्त सुन्दर बनाते हुए उन्हें प्रेमियोंके वशमें कर दिया। क्योंकि अपने पक्षका हित सभी चाहते हैं (अर्थात् मद पुल्लिङ्ग है और पुरुष पुरुषकी ही भलाई चाहते हैं) ॥ ३७ ॥ मदिराके भरे हुए पात्रमें नवेलीके नेत्रकी परछाईंको कमल समझकर भौंरा सूँघनेके लिये दौड़ रहा था। भला भ्रममें पड़े हुएको कहाँ विचार रह जाता है ! ॥३८॥ अत्यधिक प्रेममें भरे हुए प्रेमीगण एक साथ ही प्रसन्न मुख और फुलाए हुए नथुनोंसे अत्यन्त स्वादिष्ट मदिराका रस पीने लगे और नीले कमलकी सुगन्ध सूँघने लगे ॥ ३९ ॥ अत्यधिक प्रेमसे प्रियतमने जो अत्यन्त स्वादिष्ट मदिरा दी, उसे

वारुणीमतिरसां रसयित्वा । ह्रीविमोहविरहादुपलेभे पाटवं नु हृदयं नु वधूभिः ॥ ४० ॥ भर्तृषूपसखि निक्षिपतीनामात्मनो मधुमदोद्यमितानाम् । व्रीडया विफलया वनितानां न स्थितं न विगतं हृदयेषु ॥४१॥ भ्रूविलाससुभगाननुकर्तुं विभ्रमानिव वधूनयनानाम् । आददे मृदुविलोलपलाशैरुत्पलैश्चषकवीचिषु कम्पः ॥ ४२ ॥ मद्यमन्दविगलत्त्रपमोपच्चक्षुरुन्मिषितपद्मदधत्या । वीक्ष्यते स्म शनकैर्नववध्वा कामिनो मुखमधोमुखयैव ॥ ४३ ॥ मा गमन्मदविमूढधियो नः प्रोज्झ्य रन्तुमिति शङ्कितनाथाः । योषितो न मदिरां भृशमीषुः प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि ॥ ४४ ॥ मानभङ्गपटुना सुरतेच्छां तन्वता प्रथयता दृशि रागम् । लेभिरे सपदि भावयतान्तर्योषितः प्रणयिनेव मदेन ॥ ४५ ॥ मा पुनस्तमभिसीसरमागस्कारिणं मदविमोहितचित्ता । योषिदित्यभिललाष न हालां दुस्त्यजः खलु सुखादपि मानः ॥ ४६ ॥ मूर्तिमन्तमिव रागरसौघं ते परस्परसमर्पितवक्त्राः । आननासवमिषेण तदानीमक्षिपन्त हृदयेषु युवानः ॥ ४७ ॥ या कथञ्चन सखीवचनेन प्रागभिप्रियतमं प्रजगल्भे । व्रीडजाड्यमभजन्मधुपा सा स्वां मदात्मकृतिमेति हि सर्वः ॥ ४८ ॥ योषिदुद्धतमनोभवरागा मानवत्यपि ययौ दयिताङ्कम् । कारयत्यनिभृता गुणदोषे वारुणी खलु रहस्यविभेदम् ॥ ४९ ॥ रागकान्तनयनेषु नितान्तं विद्रुमारुणकपोलतलेषु । सर्वगापि ददृशे वनितानां दर्पणेष्विव मुखेषु मदश्रीः ॥ ५० ॥ रुन्धती नयनवाक्यविकासं सादितोभयकरा परिरम्भे । व्रीडितस्य ललितं युवतीनां क्षीबता बहुगुणैरनुजह्रे ॥ ५१ ॥ रूपमप्रतिविधानमनोज्ञं प्रेम कार्यमनपेक्ष्य विकासि । चाटु चाकु-

---

पीकर सुन्दरियोंकी लज्जा तथा उनका भोलापन दूर हो गया । उस समय यह नहीं जान पड़ता था कि नवेलियोंमें यह कोई नई चतुरता आ गई है या उन्हें कोई दूसरा सुन्दर-सा हृदय मिल गया है ॥ ४० ॥ नवेलियोंमें मदिरा पीनेसे उत्साह आ गया और उन्होंने सखियोंके सामने ही अपने शरीर प्रियतमोंको सौंप दिए । उस समय उनके हृदयमें रहनेवाली लाज ऐसी व्यर्थ हो गई कि न तो वह ठहर ही सकी, न जा ही सकी ॥ ४१ ॥ मदिराके पात्रोंमें हिलती हुई कोमल चञ्चल पङ्खुड़ियाँ ऐसी लगती थीं मानो नवेलियोंकी हिलती हुई भौंहोंसे मनोहर आँखोंकी चेष्टाओंका अनुकरण कर रही हों ॥ ४२ ॥ मदिरा पीनेसे जिसकी लज्जा कम हो गई है और जिसकी आँखोंकी बरौनियाँ कुछ ऊपर उठी हुई हैं ऐसी नई ब्याही हुई नवेली नीचे मुख करके छिपे-छिपे पतिका मुख देख रही है ॥ ४३ ॥ जिन नवेलियोंको अपने प्रियतमोंपर यह सन्देह था कि मदिरा पीकर जब हम मदमें चूर हो जायँगी तो हमें छोड़कर ये कहीं दूसरी स्त्रीसे संभोग करने न चले जायँ उन्होंने मदिरा ही नहीं पी क्योंकि प्रेम तो बिना कारणके भी चौकन्ना रहता है ॥ ४४ ॥ प्रियतमके समान ही मदिराके प्रभावने नवेलीका क्रोध दूर कर दिया और उसमें समागमकी इच्छा उत्पन्न कर दी, आँखोंमें राग (ललाई, प्रेम) ला दिया तथा हृदयमें प्रेम भर दिया ॥ ४५ ॥ मदिराके प्रभावसे अचेत होकर और यह निश्चय करके कि 'फिर उस अपराधीके पास न जाऊँगी' नवेलीने मदिरा नहीं पीनी चाही क्योंकि नवेलियाँ सुखको उतना महत्त्व नहीं देतीं जितना रूठनेको देती हैं ॥ ४६ ॥ एक दूसरेके मुखसे मुख मिलाकर अपने-अपने मुखकी मदिरा एक दूसरेके मुखमें डालते हुए प्रेमी-प्रेमिका ऐसे जान पड़ रहे हैं मानो उस समय मदिराके रूपमें वे एक दूसरेके हृदयमें दर्शनीय प्रेमरसका प्रवाह डाल रहे हों ॥ ४७ ॥ जो नवेली पहले सखियोंके समझानेपर किसी-किसी प्रकार पतिसे आँखें मिलाती थी वही नवेली मदिरा पी लेनेपर लजीली तथा सरल हो गई क्योंकि सभी लोग मदिरा पीकर अपने स्वभावमें आ जाते हैं अर्थात् मनका सारा भेद-भाव बाहर निकाल देते हैं ॥ ४८ ॥ मदिरा पीकर रूठी हुई नवेली काम तथा प्रबल प्रेमके वशमें आकर पतिकी गोदमें आ पड़ी क्योंकि मदिराका यह स्वभाव होता है कि वह गुण तथा दोषपर विचार न करके मनके छिपे हुए भावोंको प्रकट करा देती है ॥ ४९ ॥ यद्यपि सुन्दरीके सारे शरीरमें मदकी शोभा थी किन्तु दर्पणके समान वह उसके उस मुखमें ही झलक रही थी जिसमें लाल-लाल सुन्दर नेत्र शोभित थे और गाल मूँगेके समान गाढ़े लाल रङ्गके हो जानेके कारण रसीले हो गए थे ॥ ५० ॥ अपने गुणोंके कारण मदकी मस्ती ठीक लज्जा-जैसी चेष्टाएँ करने लगी क्योंकि उस समय नवेलियोंके नेत्र मुँदने लगे, वाणी रुक गई और आलिंगनके समय दोनों हाथ ढीले पड़ गए ॥ ५१ ॥ बिना बनावटवाला सुन्दर रूप, अकारण बढ़ा हुआ प्रेम, नवेलियोंकी स्वाभाविक चिकनी-चुपड़ी बातें ये सब उनके

तकसम्भ्रममासां कार्मणत्वमगमन्रमणेषु ॥ ५२ ॥ लब्धसौरभगुणो मदिराणामङ्गनास्यचषकस्य च गन्धः। मोदितालिरितरेतरयोगादन्यतामभजतातिशयं नु ॥ ५३ ॥ लीलयैव सुतनोस्तुलयित्वा गौरवाढ्यमपि लावणिकेन। मानवञ्चनविदा वदनेन क्रीतमेव हृदयं दयितस्य ॥ ५४ ॥ लोचनाधरकृताहृतरागा वासिताननविशेषितगन्धा। वारुणी परगुणात्मगुणानां व्यत्ययं विनिमयं नु वितेने ॥ ५५ ॥ वाससां शिथिलतामुपनाभि ह्रीनिरासमपदे कुपितानि। योषितां विदधतो गुणपक्षे निर्ममार्ज मदिरा वचनीयम् ॥ ५६ ॥ वीक्ष्य रत्नचषकेष्वतिरिक्तां कान्तदन्तपदमण्डनलक्ष्मीम्। जज्ञिरे बहुमताः प्रमदानामोष्ठयावकनुदो मधुवाराः ॥ ५७ ॥ शङ्कयान्ययुवतौ वनिताभिः प्रत्यभेदि दयितः स्फुटमेव। न क्षमं भवति तत्त्वविचारे मत्सरेण हतसंवृति चेतः ॥ ५८ ॥ शीधुपानविधुरासु निगृह्णन्मानमाशु शिथिलीकृतलज्जः। सङ्गतासु दयितैरुपलेभे कामिनीषु मदनो नु मदो नु ॥ ५९ ॥ शीधुपानविधुरेषु वधूनां विघ्नतामुपगतेषु वपुःषु। ईहितं रतिरसाहितभावं वीतलक्ष्यमपि कामिषु रेजे ॥ ६० ॥ सज्जितानि सुरभीण्यथ यूनामुल्लसन्नयनवारिरुहाणि। आययुः सुघटितानि सुरायाः पात्रतां प्रियतमावदनानि ॥६१॥ सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वादप्रकाशितमदिद्युतदङ्गे। विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम् ॥ ६२ ॥ सागसि प्रियतमे कृतकोपा याङ्घ्रियुग्मपतितेऽपि न तुष्टा। सैव मद्यपरिलुप्तविवेका तं तथैव परितोषयति स्म ॥ ६३ ॥ सावशेषपदमुक्तमुपेक्षा स्त्रस्तमाल्यवसनाभरणेषु। गन्तुमुत्थितमकारणतः स्म द्योतयन्ति मदविभ्रममासाम् ॥ ६४ ॥ सोपचार-

---

पतियोंके लिये वशीकरण बूटी बन गईं ॥ ५२ ॥ नवेलीके मुख-रूपी पात्रसे मदिराका संयोग होनेपर जो सुगन्ध अधिक बढ़ गई उससे भौंरे अधिक प्रसन्न थे अतः यह नहीं जान पड़ा कि उस गन्धमें ही नवीनता आ गई या वह गन्ध ही कुछ अधिक बढ़ गई ॥ ५३ ॥ जैसे तौलमें धोखा देनेवाला कोई नमकका व्यवसायी तौलकर भारी वस्तु ले लेता हो उसी प्रकार सुन्दरीका अहंकार दूर करनेवाले मुखने प्रियतमके गम्भीर हृदयको भी सरलतासे हल्का करके वशमें कर लिया ॥ ५४ ॥ मदिराने वस्तुओंके गुणोंमें क्या उलटफेर या अदला-बदली कर दी क्योंकि ओठकी ललाई आँखोंमें छा गई और मुखमें रहनेसे मदिरामें भी अत्यधिक सुगन्ध आ गई ॥ ५५ ॥ नाभिपरका वस्त्र ढीला होना, लज्जाका दूर हो जाना और असमयमें क्रोध करना ये यद्यपि सुन्दरियोंके लिये अत्यन्त निन्दाकी बातें हैं किन्तु मदिराने इन सभी दोषोंको उस समय गुण बना दिया ॥ ५६ ॥ ओठपर लगी हुई लालीका रङ्ग छुड़ा देनेवाली भी मदिरा कामिनियोंको अत्यधिक प्यारी जान पड़ी क्योंकि लाली छूट जानेपर ओठमें प्रियतमके दाँतका जो चिह्न स्पष्ट हो गया था उसकी परछाईं रत्नसे बने मदिरा-पात्रमें झलकने लगी थी ॥ ५७ ॥ दूसरी स्त्रीपर पतिका प्रेम होनेके सन्देहमें नवेलीने पतिको फटकार दिया। जिन लोगोंका हृदय डाहसे भरा होता है वे सत्य-असत्यका विचार नहीं कर पाते ॥ ५८ ॥ मदिरा पीनेसे मतवाली तथा पतियोंके साथ रहनेवाली नवेलियोंका क्रोध शान्त करनेवाला और लज्जाको शिथिल करनेवाला कौन था ? कामदेवका प्रभाव या मदिराका प्रभाव ? ॥ ५९ ॥ मदिरा पीकर मतवाली नवेलियोंका शरीर जब वशमें आ गया तो पुरुषोंको और तो कुछ न सूझा, उनका मन केवल रतिक्रीड़ामें ही लगकर शोभित होने लगा ॥ ६० ॥ सुन्दरीका मुख मदिराके लिये एक उचित पात्र बन गया क्योंकि मदिरा फूलसे सजी थी, सुगन्धित थी और उसमें कमल पड़े हुए थे, इधर सुन्दरियोंके मुख भी फूलोंसे सजे थे थे, सुगन्धित थे और उनमें भी नेत्ररूपी कमल खिले हुए थे ॥ ६१ ॥ अभ्यास न रहनेके कारण नवेलियोंके जो हाव-भाव भीतर ही छिपे पड़े थे उन्हें मदिराके प्रभावने वैसे ही बाहर शरीरमें ला रक्खा जैसे धातुके छिपे हुए अर्थको उपसर्ग (प्र, परा आदि) प्रकट कर देते हैं ॥ ६२ ॥ प्रियतमके अपराध करनेपर जो स्त्री क्रोधित हो गई थी और प्रियतमके पैरोंपर गिरनेपर भी जो प्रसन्न नहीं हो रही थी वही नवेली मदिरासे विचारशक्ति नष्ट हो जानेपर स्वयं अपने प्रियतमको मना रही है ॥ ६३ ॥ मुखसे अधूरी बातें निकलना, बिखरी हुई माला, वस्त्र तथा गहनोंकी चाह न करना और निरर्थक जानेके लिये उठना इन सब बातोंसे नवेलियोंमें मदिराका प्रभाव प्रत्यक्ष ही प्रकट हो रहा है ॥ ६४ ॥ वे प्रेमी मना-मनाकर, बेखटके अत्यधिक चावसे मदिराके रूपमें अपनी प्रियाओंका क्रोध दूर कर-करके मानो उन्हें अनोखा प्रेम पिला रहे थे

मुपशान्तविचारं सानुतर्षमनुतर्षपदेन । ते मुहूर्तमथ मूर्तमपीप्यन्प्रेम मानमवधूय वधूः स्वाः ॥ ६५ ॥ स्रस्तः स्रग्दामशोभां त्यजति विरचितामाकुलः केशपाशः क्षीवाया नूपुरौ च द्विगुणतरमिवाक्रन्दतः पादलग्नौ । व्यस्तः कम्पानुबन्धादनवरतमुरो हन्ति हारोऽयमस्याः क्रीडन्त्याः पीडयेव स्तनभरविनमन्मध्यभागानपेक्षम् ॥ ६६ ॥ स्वादनेन सुतनोरविचारादोष्ठतः समचरिष्ट रसोऽत्र । अन्यमन्यदिव यन्मधु यूनः स्वादमिष्टमतनिष्ट तदेव ॥ ६७ ॥ स्वादितः स्वयमथैधितमानं लम्भितः प्रियतमैः सह पीतः । आसवः प्रतिपदं प्रमदानां नैकरूपरसतामिव भेजे ॥ ६८ ॥ हावहारि हसितं वचनानां कौशलं दृशि विकारविशेषाः । चक्रिरे भृशमृजोरपि वध्वाः कामिनेव तरुणेन मदेन ॥ ६९ ॥ ह्रीविमोहमहरद्दयितानामन्तिकं रतिसुखाय निनाय । सप्रसादमिव सेवितमासीत्सद्य एव फलदं मधु तासाम् ॥ ७० ॥

द्यूतक्रीडावर्णनम्— अक्षदेवनपणीकृतेऽधरे कान्तयोर्जयपराजये सति । अत्र वक्तु यदि वेत्ति मन्मथो कस्तयोर्जयति जीयतेऽपि वा ॥ १ ॥ अद्य द्यूतजिताधरग्रहविधावीशोऽसि तत्खण्डनादाधिक्ये वद को भवानिति मृषा कोपाञ्चितभ्रूलता । सद्यः स्विन्नकराग्रकुन्तलपरायत्तीकृतास्यस्य मे मुग्धाक्षी प्रतिकृत्य तत्कृतवतो द्यूतेऽपि यन्नार्जितम् ॥ २ ॥ आश्लेषचुम्बनरतोत्सवकौतुकानि क्रीडादुरोदरपणः प्रतिभूरनङ्गः । भोगः स यद्यपि जये च पराजये च यूनोर्मनस्तदपि वाञ्छति जेतुमेव ॥ ३ ॥ आश्लेषे प्रथमं क्रमेण विजिते हृद्येऽधरस्यार्पणे नर्मद्यूतविधौ पणं प्रियतमे कान्ता पुनः पृच्छति । अन्तर्हासनिरोधसम्भृतरसोद्भेदस्फुरद्गण्डया स्वैरं सारिविसारणाय विहितः स्वेदाम्बुगर्भः करः ॥ ४ ॥

॥ ६५ ॥ जब मदिराके मदमें चूर होकर नवेली क्रीडा करने लगी तो उसका जूड़ा खुल गया और बिखरे हुए बालोंने मानो पीड़ाके कारण सजी हुई मालाकी शोभा छोड़ दी, पैरोंमें लगे हुए नूपुर दुगुने वेगसे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे और जैसे-जैसे उसका हृदय काँपनेके कारण ऊपर-नीचे होता था वैसे-वैसे स्तनोंके भारसे दबी जाती हुई कमरका ध्यान रक्खे बिना ही हार उसकी छातीपर लगातार चोट करने लगा ॥ ६६ ॥ नवेली जब मदिरा पी रही थी तो अवश्य उसमें उसके ओठका स्वाद आ गया होगा क्योंकि वही मदिरा उस युवक प्रेमीको बड़ी अनोखी लग रही है और कुछ विचित्र ही स्वाद दे रही है ॥ ६७ ॥ बड़े ही सम्मानसे दी हुई मदिराको पतियोंके साथ पीकर कामिनियाँ मतवाली हो गईं और क्षण-क्षणपर उस मदिरामें मनको प्रसन्न करनेवाला नया स्वाद आने लगा ॥ ६८ ॥ मदिराके प्रभाव (मद) ने किसी युवक कामीके समान सीधी-सादी नवेलीकी हँसीको हाव-भावोंसे सजायो, उसकी बातोंमें चतुरता ला भरी और आँखोंमें चटक-मटक ला दी ॥ ६९ ॥ कामिनियोंने जो मदिरा बड़ी प्रसन्नतासे पी थी उसने उन्हें शीघ्र ही फल दिया क्योंकि उनकी लाज उसी समय भाग गई और वे रतिक्रीडा करनेके लिये अपने-अपने प्रियतमोंके पास जा पहुँचीं ॥ ७० ॥

जुएके खेलका वर्णन : जब प्रेमी - प्रेमिकाने ओठ चूमनेका दाँव लगाकर जुआ खेलना आरम्भ किया उस समय औरकी बात तो दूर, स्वयं कामदेव ही भला आकर बता तो दें कि उनमें कौन जीतेगा कौन हारेगा ! ॥ १ ॥ 'आपने जब केवल चुम्बन-मात्रका दाँव लगाया था तो अब मेरे हार जानेपर उससे आगे बढ़नेवाले आप होते कौन हैं?' ऐसा कहकर बनावटी क्रोधसे भौंहें टेढ़ी करते हुए तत्काल अपनी पसीजती हुई उँगलियों और बालोंसे मेरा मुख ढककर बेबस करते हुए उस सुनयनी नवेलीने मेरे विरोध करते रहते हुए भी वह-वह कर डाला जो उसने जुएमें नहीं जीता था ॥ २ ॥ प्रेमी और प्रेमिकाने जुएके खेलमें आलिंगन, चुम्बन और रतिक्रीड़ाकी ही बाजी रक्खी थी और कामदेव मध्यस्थ थे ही । यद्यपि हार-जीतमें दोनोंको उपभोगका लाभ बराबर ही था फिर भी दोनोंका मन एक दूसरेको जीत लेनेके लिये व्याकुल था ॥ ३ ॥ जुएमें पहले आलिंगनका दाँव लगा, फिर सुन्दर ओठके चुम्बनका दाँव लगा, फिर हार जानेपर प्रेमीने प्रेमिकासे दूसरा दाँव पूछा । इसपर नवेलीने अपनी हँसी भीतर ही भीतर किसी प्रकार रोक ली तथा प्रेमके अत्यधिक बढ़ावसे उसके लाल-लाल गाल फड़कने लगे और उसने अपने पसीनेसे भीगे हुए हाथोंसे साड़ी नीचे सरकानेका सङ्केत किया ॥ ४ ॥ प्रियतमने जुएमें बाजी जीत ली । इसपर नवेलीने कसकर आलिंगन और चुम्बन कर लेने दिया, फिर प्रियतमके हार जानेपर उसने भी वैसा ही किया, फिर हार जानेपर पतिने भी वैसा ही किया । इस प्रकार वैसा नहीं,

गाढालिङ्गनपूर्वमेकमनया द्यूते जिते चुम्बनं तत्किञ्चित्परिरभ्य दत्तममुना प्रत्यर्पितं चानया। नैतत्ताद्गिदं न तादृशमिति प्रत्यर्पणप्रक्रमैर्यूनोश्चुम्बनमेकमेव बहुधा रात्रिर्गता तन्वतोः ॥ ५ ॥ स्मितेनोपायनं दूरादागतस्य कृतं मम। स्तनोपपीडमाश्लेषः कृतो द्यूते पणस्तया ॥ ६ ॥

सज्जाविधानम्

अभ्यङ्गारम्भः—अस्याः पीठोपविष्टाया अभ्यङ्गं वितनोत्यसौ। लसच्छ्रोणि चलद्वेणि नटद्गुरुपयोधरम् ॥ १ ॥ आवर्त्य कण्ठं सिचयेन सम्यगाबद्ध्य वक्षोरुहकुम्भयुग्मम्। कासौ करालम्बिततैलपात्रा मन्दं समासीदति सुन्दरीं ताम् ॥ २ ॥ वक्षोजौ निविडं निरुध्य सिचयेनाकुञ्च्य मध्यं शनैः कृत्वा चम्पकतैलसेकमबला सम्पीड्य मन्दं शिरः। पाणिभ्यां चलकङ्कणोद्यतझणत्कारोत्तराभ्यां करोत्यभ्यङ्गं परिपश्यतः सकुतुकं दोरन्तरं प्रेयसः ॥ ३ ॥ सुवर्णकदलीस्तम्भचारूरूः कमलेक्षणा। स्वभावादेव तद्भूयः किं तदभ्यङ्गमर्दनम् ॥ ४ ॥

सीमन्तरचनम्—अश्रान्तं दृढयन्त्रणेन कुचयोरत्यन्तकाठिन्ययोरावद्धस्फुटमण्डलोन्नतिमिलच्चोलं विमुच्योरसः। नीवीविच्छुरितं विधाय तममुं वामस्तनालम्बिनीं वेणीं पाणिनखाञ्चलैः शिथिलयत्याक्रम्य पीठं पदा ॥ १ ॥ आभुग्नाङ्गुलिपल्लवौ कचभरे व्यापारयन्ती करौ बन्धोत्कर्षनिबद्धमानसतया शून्यां दधाना दृशम्। बाहूत्क्षेपसमुन्नते कुचतटे पर्यस्तचोलांशुका ह्रीसङ्कोचितबाहुमूलसुभगा बध्नाति जूटीं वधूः ॥ २ ॥ केशान्वामकरावलम्बितशिखान्भूयो रणत्कङ्कणं व्याधूयाथ कनिष्ठिकानखमुखेनाकुञ्चिताग्र्याङ्गुलि। सीमन्तं विरचय्य तस्य करभेणोन्मृज्य पार्श्वद्वयं तान्पश्चाद्युगपत्प्रणीय करयोर्युग्मेन बध्नात्यसौ ॥ ३ ॥ जानुभ्यामुपविश्य पार्ष्णिनिहितश्रोणीभरा प्रोन्नमद्दोर्वल्ली नमदुन्नमत्कुचतटी दोव्यन्नखाङ्का-

---

वैसा नहीं कहते हुए और क्रम-क्रमसे चूमते हुए प्रेमी-प्रेमिकाओंका एक ही चुम्बन अनेक प्रकारका हो गया और ऐसा ही करते-करते रात बीत गई ॥ ५ ॥ कोई प्रेमी अपने मित्रसे कह रहा है—'जब मैं दूरसे आया तो उस सुन्दरीने मुझे मुस्कराहटकी भेंट दी और कसकर स्तन दबाते हुए बलपूर्वक आलिंगन करनेको ही जुएमें दाँवपर लगा दिया ॥ ६ ॥'

सजावट

तेल मलना : चौकीपर बैठकर जब यह नवेली तेल लगाने लगती है तब इसकी कमर चमचमाने लगती है, चोटी हिलने लगती है और बड़े-बड़े स्तन उछलने लगते हैं ॥ १ ॥ गलेमें साड़ीका पल्ला लपेटकर तथा घड़ेके समान स्तनोंको भली भाँति बाँधकर हाथमें तेलका पात्र लिए हुए यह कौन नवेली उस सुन्दरीको तेल मल रही है ? ॥ २ ॥ वह सुन्दरी आँचलसे अपने स्तन कसकर बाँधे हुए, कमर थोड़ी झुकाकर, अपने प्रियतमके सिरपर चम्पेका तेल डालकर जब धीरे-धीरे माथा दबाने लगी, उस समय उसके हाथोंके कङ्गन हिल-हिलकर झनझनाने लगे और उसका प्रियतम बड़े चावसे उसकी दोनों भुजाओंके बीचमें आँखें गड़ाकर देखने लगा ॥ ३ ॥ सोनेके केलेके खम्भेके समान जाँघोंवाली यह कमलनयनी जब स्वयं इतनी सुन्दर है तब इसे तेल मलवानेकी क्या आवश्यकता है ॥ ४ ॥

माँग सँवारना : कोई नवेली कसकर बाँधे जानेसे ऊपर उठे हुए अत्यन्त कठोर और ऊपरतक एक दूसरेसे सटे हुए स्तनोंकी चोली खोलकर, नाड़ेकी गाँठ ढीली करके, एक पैर चौकीपर रखकर बाएँ स्तनपरसे लटकती हुई चोटी अपनी उँगलियोंसे खोल रही है ॥ १ ॥ कोई सुन्दरी अपने हाथोंकी उँगलियाँ टेढ़ी करके बाल सँवार रही है, बाल सँवारनेमें मन लग जानेके कारण उसकी चितवन सूनी-सी है, भुजाएँ ऊपर उठानेसे उसके स्तन भी ऊपर उठ गए हैं अतः उनपरसे वस्त्र हट गए हैं और वह लाजके कारण अपनी बगलें कुछ सिकोड़कर जूड़ा बाँध रही है ॥ २ ॥ यह नवेली बाएँ हाथपर लटकते हुए छोरवाले बाल झाड़कर, कानी उँगली नवाकर, माँग सँवारकर, माँगके दोनों भागोंको हथेलियोंसे चिकनानेके पश्चात् अपने दोनों हाथ पीछे ले जाकर जूड़ा बाँध रही है ॥ ३ ॥ घुटनोंके बल बैठकर, नितम्बोंका भार एड़ीपर रखकर, यह हिलते हुए स्तनों और चमचमाते हुए नखोंवाली नवेली अपनी भुजाएँ उठाकर झनझनाते हुए कङ्गनोंवाले पहुँचोंसे झाड़-झाड़कर न जाने अपने बाल बाँध रही है या मेरा मन ही बाँधे डाल रही है ॥ ४ ॥ घुटनोंपर दर्पण रक्खे हुए, गला नवाए हुए, भुजाएँ उठाए हुए और हाथ मोड़े यह जो चञ्चल नेत्रवाली नवेली हाथोंसे बालोंके दो भाग करके माँग सँवारने

वलिः। पाणिभ्यामवधूय कङ्कणझणत्कारावतारोत्तरं बाला नह्यति किं निजालकभरं किं वा मदीयं मनः ॥ ४ ॥ जानुस्थापितदर्पणं परिणमद्ग्रीवं समुद्यद्भुजं न्यञ्चत्कूर्परमुन्नमद्भुजलसत्कक्षान्तरोहत्कुचम्। पाणिभ्यां प्रविभज्य केशनिचयं सीमन्तकर्मोद्यता चेतः कस्य वशीकरोति न बलाद्बाला विलोलेक्षणा ॥ ५ ॥ यथा यथाऽयं वलते भुजोऽस्या उदञ्चितः संयमने कचानाम्। तथा तथा वल्गति काममेकः स एव वक्षोरुह उत्पलाक्ष्याः ॥ ६ ॥ सम्प्राप्तचिकुरभावः कचनिचयो वा युवा करे लग्नः। स्त्रीभिर्दृढं निबध्यो न चेत्परकलत्रमनुसरति ॥ ७ ॥ स्नेहसंवर्धितान्बालान् दृढं बध्नाति सुन्दरी। करुणा हरिणाक्षीणां कुतः कठिनचेतसाम् ॥ ८ ॥

सीमन्तसिन्दूरम् अये मातर्दृष्ट्वा मुखममृतभानुभ्रमवशात्कचच्छद्मा राहुर्वसति किमु तृष्णातरलितः। किमेवं कन्दर्पान्तकतरुणि सिन्दूरसरणिच्छलाद्भोक्तुं भूयो वहिरिव रसज्ञां कलयति ॥ १ ॥ न सिन्दूरं न वा केशा वामानां शिरसि स्थिताः। पान्थानां सह रक्तेन वृजिनं हननोद्भवम् ॥ २ ॥ वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभारतिमिरत्विषां वृन्दैर्बन्दीकृतमिव नवोनार्कभरणम्। तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरीपरीवाहस्रोतःसरणिरिव सीमन्तसरणिः ॥ ३ ॥ विलोचनशरैस्तिग्मैर्निहंसि प्रमदे जनान्। क्षिप्तमन्यत्र तल्लग्नं न त्विदं नागसम्भवम् ॥ ४ ॥

तिलकः—अस्याः संयमवान्कचो मधुकरैरभ्यर्थ्यमानो मुहुर्भृङ्गीगोपनजाभिशापमचिराद्दुन्माष्टुकामो निजम्। सीमन्तेन करेण कोमलरुचा सिन्दूरबिन्दुच्छलादातप्तायसपिण्डमण्डलमसावादातुमाकाङ्क्षति ॥ १ ॥ अस्याः सुगन्धिनवकुङ्कुमपङ्कदक्षो मुग्धश्च कास्ति तिलको मदिरेक्षणायाः। आविष्टरागमभिराममुखारविन्दनिष्यन्दलग्नमिव मे हृदयं द्वितीयम् ॥ २ ॥ अस्या ललाटे रचिता सखीभिर्विभाव्यते चन्दनपत्रलेखा। आपाण्डुरक्षामकपोलभित्तावनङ्गबाणव्रणपट्टिकेव ॥ ३ ॥ अस्यास्तनुस्यन्दनसंस्थितो वै स मीनके-

---

जा रही है और हाथ उठानेसे जिसके स्तनोंकी अनोखी शोभा हो रही है वह किसका चित्त बलपूर्वक वशमें नहीं कर लेती ! ॥ ५ ॥ बाल बाँधनेके लिये जैसे-जैसे इस कमलनयनीका एक हाथ ऊपर उठता है वैसे-वैसे इसका एक-एक स्तन भी उछल-कूद करने लगता है ॥ ६ ॥ स्त्रियोंको चाहिए कि वे लम्बे-लम्बे बाल और मनचले छैलोंको बाँधकर ही रक्खें, नहीं तो बाल कमरकी ओर तथा पुरुष दूसरी स्त्रियोंका ओर बढ़ने लगते हैं ॥७॥ यह सुन्दरी स्नेहसे (तेल लगाकर, प्रेमपूर्वक) बढ़ाए हुए बालोंको भी कसकर बाधे डाल रही है। भला कठोर चित्तवाली मृगनयनी नवेलियोंको कहीं दया होती है! ॥८॥

माँगका सिन्दूर : अरी माँ ! मुँहको भ्रमसे चन्द्रमा समझकर उसका अमृत पीनेके लालचसे ही क्या राहु बालोंका रूप धरकर आ पहुँचा है ? हे कामदेवको पराजित कर देनेवाले (शिव जी) की पत्नी ! सिन्दूरकी रेखाके रूपमें क्या वही राहु अमृत चाटनेके लिये बार-बार बाहर जीभ लपलपा रहा है ॥१॥ स्वभावसे ही विपरीत इन नारियोंके सिरपर न तो ये बाल ही हैं और न यह सिन्दूर ही है वरन् यह तो बटोहियोंकी हत्याका वह काला पाप है जो उन्हींके रक्तसे सना हुआ इनके सिरोंपर जमा बैठा है ॥ २ ॥ सिन्दूरसे सजी हुई तुम्हारी वह माँगकी रेखा हम लोगोंका कल्याण करे जो ऐसी जान पड़ती है मानो तुम्हारे मुँहकी सुन्दरताकी नदीका बहता हुआ झरना हो या घने बालरूपी अँधेरेके हाथों-द्वारा बन्दी बनाई हुई बाल-सूर्यकी किरण हो ॥ ३ ॥ हे मतवाली नवेली ! अपने चितवनरूपी तीक्ष्ण बाणोंसे जो तुम मनुष्योंको मारा करती हो वही बाणका लक्ष्य, चूककर तुम्हारे माथेपर जा लगा है; यह नागसे उत्पन्न सिन्दूर नहीं है ॥ ४ ॥

बिन्दी : बालोंने हमारी भौंरियाँ छिपा ली हैं यह सन्देह करके जब भौंरोंने बालोंसे अपनी भौंरियाँ माँगीं, उस समय अपना भौंरी छिपानेका कलंक मिटानेके लिये यह बालोंका जूड़ा अपना कोमल कान्तिवाला माँगरूपी हाथ बढ़ाकर सिन्दूरकी बिन्दीरूपी गरम लोहेका गोला लेना चाहता है ॥ १ ॥ इस मदभरी आँखोंवालीके माथेपर सुगन्धित नये कुंकुमके घोलसे बनी हुई जो सुन्दर बिन्दी शोभित हो रही है वह ऐसी जान पड़ती है मानो मेरा दूसरा हृदय लाल होकर (प्रेमसे भरकर), उसके सुन्दर मुखारविन्दसे निकलकर माथेपर चिपक गया हो ॥ २ ॥ सखियोंके द्वारा इसके ललाटपर चन्दनसे रचे हुए बेल-बूटे ऐसे लग रहे हैं मानो इसके गोरे-गोरे भरे हुए कपोलरूपी चित्रफलकपर कामदेवके बाणोंके घावोंकी पट्टी हो ॥ ३ ॥ इस नवेलीके शरीररूपी रथपर चढ़े

तुर्जगतीं विजेतुम्। सकुङ्कुमालेखमिषेण वीरो व्यमोचयच्चारुतरां पताकाम् ॥४॥ कस्तूरीतिलकं वाले भाले मा कुरु मा कुरु। अद्य साम्यं भजामीति जृम्भते शशलाञ्छनः ॥ ५ ॥ केयूरं न करे पदे न कटकं मौलौ न माला पुनः कस्तूरीतिलकं तथापि तनुते संसारसारश्रियम्। सर्वाधिक्यमलेखि भालफलके यत्सुभ्रुवो वेधसा जानीमः किमु तत्र मन्मथमहीपालेन मुद्रा कृता ॥६॥ नासावंशविनिर्मुक्तमुक्ताफलसनाभिना। भाति भालतलस्थेन वाला चन्दनविन्दुना ॥७॥ वाले ललामलेखेयं भाले भल्लीव राजते। भ्रूलताचापमाकृष्य न विद्मः कं हनिष्यति ॥ ८ ॥ लोचनफुल्लाम्भोजद्वयलोभान्दोलितैकमनाः। कस्तूरीतिलकमिषादयमलिकेऽलिः समुल्लसति ॥ ९ ॥ विराजतेऽस्यास्तिलकोऽयमञ्चितो विकुञ्चितभ्रूलतिकाद्वयान्तरे। विजित्य लोकद्वितयं दिवं प्रति स्मरेण वाणो धनुषीव योजितः ॥ १० ॥ श्यामलेनाङ्कितं भाले वाले केनापि लक्ष्मणा। मुखं तवान्तरासुप्तभृङ्गफुल्लाम्बुजायते ॥ ११ ॥

कर्णभूषणम्—ताटङ्कमस्यास्तरलेक्षणाया मुक्ताफलैश्चारुरुचिं विधत्ते। मुखश्रिया चन्द्रमिवाभिभूय वन्दीकृतं तारकचक्रवालम् ॥ १ ॥ मुक्ताताटङ्कयुगं प्रतिमुक्तं कर्णपार्श्वयोरस्याः। मुखकमलमिव निषेवितुमागतममृतांशुबिम्बयुगम् ॥ २ ॥ शशी हर्तुं लोभान्मुखकमलशोभां श्रुतिफलं सिषेवे सातङ्कस्तव तरुणि ताटङ्ककपटात्। तदन्तःपीयूषं निखिलमथ निक्षेप्तुमधरे मनोजन्मा मुष्णन्मुहुरहह तुच्छं तमकरोत् ॥ ३ ॥ सौन्दर्यपात्रे वक्त्रेन्दौ कुरङ्गासङ्गभीतया। सूचितौ श्रोत्रपाशाभ्यां पाशाविव मृगीदृशा ॥ ४ ॥

नासाभूषणम्—अस्याः कामनिवासरम्यभवनं वक्त्रं विलोक्यादरान्निश्चित्येव सुधाकरं प्रियतमं भूमीगतं शोभनम्। नासामौक्तिककैतवेन रुचिरा तारापि सा

हुए वीर कामदेवने सारे संसारको जीत लेनेकी इच्छासे कुङ्कुमकी चित्रकारीके रूपमें मानो अत्यन्त सुन्दर पताका फहरा दी है ॥ ४ ॥ हे नवेली! अपने माथेपर कस्तूरीका तिलक न लगाओ, न लगाओ, क्योंकि 'आज तो मैं इसके समान हो हुआ जा रहा हूँ', यह सोचकर खरहेके चिह्नवाला चन्द्रमा फूला नहीं समाता ॥५॥ न तो इस सुन्दर भौंहवाली नवेलीके हाथोंमें कङ्गन है, न पैरोंमें नूपुर है और न सिरपर माला है, फिर भी संसार भरकी सारी सुन्दरताका सार यह कस्तूरीका तिलक ही है। देखकर हम समझते हैं मानो ब्रह्माने जो इसके माथेपर अत्यधिक महत्त्वकी बात लिख दी है उसपर महाराज कामदेवने अपनी मुहर मार दी हो ॥ ६ ॥ इस नवेलीके माथेपरकी चन्दनकी बिंदी ऐसी शोभित हो रही है मानो नाकरूपी बाँसपर निकलकर छिदा हुआ सुन्दर मोती हो ॥ ७ ॥ हे नवेली! तुम्हारे मस्तकमें यह सुन्दर रेखा (तिलक) बाणके समान शोभा पा रही है। यह तुम्हारा भौंहरूपी धनुष खींचकर न जाने किसका वध करेगी ॥ ८ ॥ नेत्ररूपी दो खिले हुए कमलोंपर ललचाए हुए भौंरे हों। मानो कस्तूरीके तिलकके रूपमें नाच-नाचकर शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ९ ॥ दोनों बाँकी भौंहोंके बीचमें इसका तिलक ऐसा शोभित हो रहा है मानो कामदेवने दोनों लोक जीतकर अब स्वर्ग जीतनेके लिये अपने धनुषपर बाण चढ़ा रक्खा हो ॥ १० ॥ हे वाले! ललाटपर काले रंगवाले चिह्नसे युक्त तुम्हारा मुख उस कमलके समान लग रहा है जिसके भीतर भौंरा सो रहा हो ॥ ११ ॥

कनफूल : इस रसीली आँखोंवाली नवेलीके कानोंमें मोती गुँथे हुए सुन्दर कनफूल ऐसे झलमला रहे हैं मानो अपने मुखकी शोभासे इसने तारों समेत चन्द्रमाको बन्दी बना रक्खा हो ॥ १ ॥ कानोंके नीचे लटकते हुए मोतीसे बने दोनों कनफूल ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो मुखकमलकी सेवा करनेको आए हुए दो चन्द्रमा हों ॥ २ ॥ हे नवेली! तुम्हारे मुखकमलकी शोभा चुरानेके लोभसे चन्द्रमा ही कनफूलका-रूप धरकर डरके मारे काँपता हुआ तुम्हारे कानोंके पास रहने लगा और इधर कामदेवने अवसर पाकर उसके बीचका सारा अमृत अधरमें डालनेके लिये उसे बार-बार चुराकर हाय! उसे खोखला बना दिया ॥ ३ ॥ उस मृगनयनी नवेलीने जो कानमें कुण्डल लटका रक्खे हैं वे मानो दो फन्दे हैं जो उसने इस डरसे लगा लिए हैं कि कहीं उसके मुखरूपी चन्द्रमामें हरिण न आ कूदे ॥ ४ ॥

नक वेसर : कामदेवके रहनेके सुन्दर भवनके समान इस नवेलीके मुखको बड़े आदरसे देखकर रोहिणी तारेने यह निश्चय किया कि ये धरतीपर उतरे हुए मेरे अत्यन्त सुन्दर प्रियतम चन्द्रमा हैं। इसलिये चन्द्रमाका विरह न सह सकती हुई वह सुन्दरी वेसरके मोतीके रूपमें उसके पास ही आ बसी है ॥ १ ॥ हे मृगके छौनेके नेत्रोंके समान नेत्रवाली सखी! यह मोती पहले तो आकाशसे गिरा, फिर बहुत दिनोंतक समुद्रमें

रोहिणी मन्ये तद्विरहासहिष्णुहृदया तत्सन्निधिं सेवते ॥ १ ॥ आकाशात्पतितं पुनर्जलनिधौ मध्ये चिरं संस्थितं पश्चाद्दुःसहदेहरन्ध्रजनितक्लेशान्वितं मौक्तिकम्। बाले बालकुरङ्गलोचनयुगे घोरं तपः सञ्चरन्नासाभूषणतामुपैति सखि ते बिम्बाधरापेक्षया ॥ २ ॥ नासामौक्तिकमबले किमधरबिम्बेन विद्रुमं कुरुषे। दृष्ट्या गुञ्जाबीजं शिव शिव भूयस्तदेव हसितेन ॥ ३ ॥ मुक्ता अपि यदास्वादं विहातुं हन्त न क्षमाः। अन्यथा लम्बमानत्वमेतदीयं कथम्भवेत् ॥४॥ ललाटे लोलाक्ष्यास्तिलकमिषधारी विधुरयं स्वमापूर्णं वाञ्छन्नधरसुधया देवहितकृत्। अतो नासाग्रेऽसौ तदुपहतये मौक्तिकमिषात्स्फुटं दैत्यामात्योऽधरशशभृतोरन्तरयतः ॥ ५ ॥ श्लेष्मागारे वसतिर्जातास्माकं तदत्र मा यात। आन्दोलनच्छलादिह निवारयन्तीव मौक्तिकानि विटान् ॥ ६ ॥ सुधामयोऽपि क्षयरोगशान्त्यै नासाग्रमुक्ताफलकच्छलेन। अनङ्गसञ्जीवनदृष्टशक्तिर्मुखामृतं ते पिबतीव चन्द्रः ॥ ७ ॥

कञ्चुकी—उपरि पीनपयोधरपातिता पटकुटीव मनोभवभूपतेः। विजयिनस्त्रिपुरारिजिगीषया तव विराजति भामिनि कञ्चुकी ॥ १ ॥

हारः—एकावलीकलितमौक्तिककैतवेन तन्व्याः समुन्नतपयोधरयुग्मसेवाम्। चक्रुर्मनांसि यमिनामतिनिर्मलानि कन्दर्पमुक्तशरपातकृतान्तराणि ॥ १ ॥ ग्रीवाद्भुतैवावटुशोभितापि प्रसाधिता माणवकेन सेयम्। आलिङ्गयतामप्यवलम्बमाना सुरूपताभागखिलोर्ध्वकाया ॥ २ ॥ घटीयन्त्रायते हारो नाभिकूपे मृगीदृशः। संसेक्तुमिव लावण्यपयसा यौवनद्रुमम् ॥ ३ ॥ निविडानुपक्तकुचकोकदम्पती मुखतारकापरिवृढेन शासितुम्। अवतारितेव निजतारकावली हरिणीदृशः स्फुरति हारवल्लरी ॥ ४ ॥ प्राणेश्वरपरिष्वङ्गविभ्रमप्रतिपत्तिभिः। मुक्ताहारेण लसता हसतीव स्तनद्वयम् ॥ ५ ॥ मणिहारलता विभाति तन्व्याः

पड़ा रहा, फिर इसने बेधे जानेकी असह्य पीड़ा भोगी तब कहीं यह तुम्हारे बिम्बाधरके बदले अब नक-बेसर बन पाया है ॥२॥ हे नवेली ! अपनी नाकके जिस मोतीको बिम्बके समान अधरकी कान्तिसे तुमने मूँगा बना दिया उसे अपनी काली चितवनसे घुँघची क्यों बनाए डाल रही हो? राम-राम ! अब तुम उसे अपनी हँसीसे फिर मोती बनाए दे रही हो ॥३॥ जान पड़ता है मुक्ता (जीवन्मुक्त, मोती) भी इसका स्वाद नहीं छोड़ सकते। यदि यह बात न होती तो यह मोती इसकी नाकमें क्यों लटकता रहता ? ॥ ४ ॥ इस चञ्चल आँखवाली नवेलीके माथेपर बिन्दीके रूपमें बैठा हुआ यह देवताओंकी भलाई करनेवाला चन्द्रमा अधरामृत पीकर पूर्ण बनना चाहता है इसलिये नाकके आगेके भागमें ये दैत्योंके मन्त्री शुक्राचार्य उसे अमृत न पीने देनेके लिये चन्द्रमा (बिन्दी) और अधरके बीचमें मोतीके रूपमें प्रत्यक्ष ही बाधा बने बैठे हैं ॥ ५ ॥ नाकपर लटके हुए मोती हिल-हिलकर मानो जारोंको यह जता रहे हैं कि तुम लोग अब यहाँ न आना क्योंकि यहाँ कफके भण्डारमें अब हम रहने लगे हैं ॥ ६ ॥ यद्यपि चन्द्रमा स्वयं अमृतमय है फिर भी अपना क्षयरोग दूर करनेके लिये वह नाकके आगे मोतीका रूप धरकर तुम्हारा मुखामृत पी रहा है क्योंकि उसने तुम्हारे अधरामृतसे कामदेवको जीवित होते देख लिया है ॥७॥

चोली : हे सुन्दरी ! तुम्हारे ऊँचे-ऊँचे स्तनोंपर पड़ी हुई चोली ऐसी सुन्दर जान पड़ती है मानो त्रिपुरासुरके शत्रु शिवजीको जीतनेकी इच्छा करनेवाले अत्यन्त वीर महाराज कामदेवका तम्बू हो ॥ १ ॥

हार : नवेलीकी एक लरकी मालामें गुँथे हुए मोतियोंके रूपमें अत्यन्त निर्मल तथा कामके बाणोंसे छिदे हुए महात्माओंके मन दोनों ऊँचे स्तनोंकी सेवा कर रहे हैं ॥ १ ॥ इस नवेलीका गला तो बड़े अचरजमें डाले दे रहा है क्योंकि यह बटु (गलेकी घाटी, बालक) से शोभित न होनेपर भी माणवक हार, बालक) से ही सजा हुआ है, आलिंगन करने योग्य होते हुए भी ऊपरसे अनुरूप (प्राणरूप) है और मृदंगके समान होते हुए भी सुन्दर है ॥ २ ॥ मृगनयनीका हार ऐसा जान पड़ रहा है मानो नाभिरूप कुएँके सुन्दरतारूपी जलसे यौवनरूपी वृक्षको सींचनेवाला रहट हो ॥ ३ ॥ मृगनयनी नवेलीके स्तनोंपर मोतीके हारकी लड़ियाँ ऐसी जान पड़ रही हैं माना मुखरूपी तारापति (चन्द्रमा) ने आपसमें अत्यन्त सटे हुए चकवी-चकवेपर शासन करनेके लिये अपनी तारारूपी पत्नियाँ भेज दी हों ॥ ४ ॥ पतिका आलिंगनरूपी आदर पाकर इस नवेलीके दोनों स्तन चमकते हुए मोतीके हारके रूपमें मानो हँस रहे हैं ॥ ५ ॥ दुबली-पतली सुन्दरीका मणियोंका हार ऐसा शोभित हो रहा है मानो

स्तनसिंहासनसीम्नि तस्थिवांसम्। अभिषेक्तुमनङ्गदेवराजं गलशङ्खाद्गलितेव दुग्धधारा ॥ ६ ॥ मातङ्गकुम्भसंसर्गजातपातकशङ्कया। स्नातीव मुक्ताहारोऽस्याः स्फुरत्कान्तिजले गले ॥ ७ ॥ मुक्तावली स्मरविदाहविपाण्डुमूले नद्धा चकास्ति सितकम्बुनि कण्ठकाण्डे। निश्चिन्वती मृगदृशो वदनं मृगाङ्कं नक्षत्रपङ्क्तिरिव सम्पतिता नभस्तः ॥ ८ ॥ सारङ्गाक्ष्याः कुचकलशयोरन्तराकाशदेशः प्राप्तच्छेदः क्वचिदपि चलत्प्रस्खलन्निःपपात। नाभीकूपः समजनि नतस्तस्य देहच्युतासौ नक्षत्राणां ततिरिव समालम्बते हारशोभाम् ॥ ९ ॥ स्तनातटे चन्दनपङ्किलेऽस्या जातस्य यावद्युवमानसानाम्। हारावलीरत्नमयूखधाराकाराः स्फुरन्ति स्खलनस्य रेखाः ॥१०॥ हारः कुरङ्गशावाक्ष्या राजति स्थूलमौक्तिकः। नाभिलावण्यपानीयघटीयन्त्रगुणोपमः ॥ ११ ॥ हारोऽयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमण्डले। मुक्तानामप्यवस्थेयं के वयं स्मरकिङ्कराः॥१२॥

कङ्कणम्—इदं ते केनोक्तं कथय कमलातङ्कवदने यदेतस्मिन् हेम्नः कटकमिति धत्से खलु धियम्। इदं तद्दुःसाधाक्रमणपरमास्त्रं स्मृतिभुवा तव प्रीत्या चक्रं करकमलमूले विनिहितम् ॥ १ ॥ कृशाङ्ग्याः कुचभारेण दूरमुत्सारितौ भुजौ। वहतः कलहायेव वाचालां वलयावलिम् ॥ २ ॥ गौराङ्ग्या भुजलावण्यमीलितं हेमकङ्कणम्। कण्ठाश्लेषे वयस्याभिः काठिन्यादन्वमीयत ॥ ३ ॥ न्यस्तानि दन्तवलयानि करे कदाचित्तानीन्दुखण्डघटितानि ममैष तर्कः। अस्या निसर्गमृदुपाणिसरोजमेषामामोचने झटिति यन्मुकुलीबभूव ॥ ४ ॥ प्रकोष्ठबन्धे बिम्बोष्ठ्यास्तस्याः काञ्चनकङ्कणम्। नालं वलयितं हस्ते हेमाब्जस्येव राजते ॥ ५ ॥ सहेमकटकं धत्ते सा करं पद्मतस्करम्। पद्मिनीवल्लभस्येव मूले वेष्टितमंशुना ॥ ६ ॥ सौवर्णकङ्कणश्रेण्या भाति तद्बाहुकन्दली। तूणचम्पकमौर्व्येव

स्तनरूपी सिंहासनपर विराजमान कामदेवरूपी देवराजका अभिषेक करनेके लिये गले-रूपी शङ्खसे दूधकी धार गिर रही हो ॥ ६ ॥ मातङ्ग (हाथी, चाण्डाल) के मस्तकके सम्पर्कसे कहीं पाप न लग गया हो इसी शङ्कासे मानो उस नवेलीका मोतीका हार सुन्दरता-रूपी जलसे भरे उसके गलेमें स्नान कर रहा हो ॥ ७ ॥ नवेलीके गलेरूपी उजले शङ्खमें लटकी हुई मोतीकी माला कामाग्निके तापसे उजली नक्षत्रोंकी उस पाँत-सी जान पड़ रही है जो आकाशसे गिरकर नवेलीके मुखरूपी चन्द्रमाकी खोज कर रही हो ॥ ८ ॥ मृगनयनी नवेलीके घड़ेके समान स्तनोंके बीचका जो आकाश टूटकर लड़खड़ाते हुए गिर पड़ा वह तो गहरी नाभि हो गया और उस आकाशसे झड़ी हुई तारोंकी पाँत ही मानो हारके रूपमें शोभित हो रही हैं ॥ ९ ॥ चन्दनके लेपसे सजे हुए इस नवेलीके स्तनोंपर हारके रत्नोंकी लम्बी किरणें ऐसी जान पड़ती हैं मानो सभी नवयुवकोंके मन फिसलानेवाली रेखाएँ हों ॥ १० ॥ मृगके छौनेके समान नयनोंवाली नवेलीका बड़े-बड़े मोतियोंवाला हार मानो नाभि-रूपी कुएँसे सुन्दरता-रूपी जल खींचनेवाला रहट है ॥ ११ ॥ मृगनयनी नवेलियोंके स्तन-मण्डलपर हार लोट रहे हैं। जब मुक्तों (मोतियों, जीवन्मुक्तोंका) यह दशा है तब हम लोगोंके विषयमें तो कहना ही क्या है जो सदा कामके दास बने रहते हैं ॥ १२ ॥

कङ्कन : हे कमलके समान मुखवाली! यह तुमसे किसने कह दिया कि यह सोनेका कङ्कन है? अरी! यह तो तुम्हारे कमल जैसे पहुँचोंमें तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये कामदेवने न जीते जा सकने योग्य पुरुषोंपर भी विजय पा लेनेवाला बड़ा भारी चक्र दे रक्खा है ॥ १ ॥ दुबले शरीरवाली नवेलीके मोटे-मोटे स्तनोंने भुजाओंको दूर हटा दिया अतः वे मानो कङ्कनोंकी झनझनाहटके स्वरोंमें उनसे झगड़ा कर रही हैं ॥ २ ॥ गोरी-गोरी नवेलीकी बाँहकी सुन्दरतामें छिपे हुए सोनेके कङ्कनको सखियाँ तब समझ पाईं, जब आलिंगन करनेपर गलेमें वह कड़ा-कड़ा-सा जान पड़ा ॥ ३ ॥ इस नवेलीके हाथमें जो हाथी-दाँतके कङ्कन कभी पहनाए गए थे वे मेरी समझमें चाँदनीसे बने जान पड़ते हैं। इसीलिये तो उन्हें उतारते समय इसके स्वभावसे कोमल कमलके समान हाथ तत्काल सिकुड़ गए ॥ ४ ॥ पके हुए कुँदरूके समान ओठोंवाली नवेलीकी भुजामें लगा हुआ सोनेका कङ्कन ऐसा सुन्दर जान पड़ रहा है मानो हाथमें सोनेके कमल (पहुँचे) का नाल लपेटकर बाँध दिया गया हो ॥ ५ ॥ सोनेके कङ्कनोंसे सजे हुए और कमलोंकी कान्ति चुरानेवाले उसके हाथ ऐसे लगते हैं मानो कमलिनीके पति (सूर्य) की किरणोंने उसकी जड़ लपेट रक्खी हो ॥ ६ ॥ सोनेके कङ्कनोंसे सजी हुई उसकी बाँह ऐसी सुन्दर लग

पुष्पचापेन वेष्टिता ॥ ७ ॥ हस्ते चकास्ति वालाया-स्तस्याः कङ्कणमालिका । मनःकुरङ्गवन्धाय पाशालीव मनोभुवः ॥ ८ ॥

मुद्रिका—अङ्गुलीषु कुरङ्गाक्ष्याः शोभते मुद्रिका-वलिः । प्रोतेव वाणैः पुष्पेषोः सूक्ष्मलक्ष्यपरम्परा ॥ १ ॥ राज्यान्तःकामदेवस्य प्राणिनो निवसन्ति ये । तैर्वन्द्या राजमुद्रेयं न तु वालाङ्गुलीयकम् ॥ २ ॥

काञ्ची—वद्धा मणिमयकाञ्ची तस्याः परिणाह-शालिनि नितम्बे । पङ्क्तिरिव सारसानां सुरसरितः पुलिनमण्डलाभोगे ॥ १ ॥ स्रस्तां नितम्बादवरोपयन्ती पुनः पुनः केसरपुष्पकाञ्चीम् । न्यासीकृतां स्थान-विदा स्मरेण द्वितीयमौर्वीमिव कार्मुकस्य ॥ २ ॥

कान्तिः—अवयवेषु परस्परविम्बितेष्वतुलकान्तिषु राजति तत्तनोः । अयमयं प्रविभाग इति स्फुटं जगति निश्चिनुते चतुरोऽपि कः ॥ १ ॥ आकारस्सुमनोह-रस्स महिमा तद्वैभवं तद्वयः सा कान्तिस्स च विश्व-विस्मयकरस्सौभाग्यभाग्योदयः । एकैकस्य विशेषवर्ण-नविधौ तस्यास्स एव क्षमो यस्याम्मिन्नुरगप्रभोरिव भवेज्जिह्वासहस्रद्वयम् ॥ २ ॥ सुन्दरी सा भवत्येवं विवेकः कस्य जायते । प्रभामात्रं हि तरलं दृश्यते नात्र संशयः ॥ ३ ॥

सहजालङ्काराः

भावः—तदेव वचनं ते चैव लोचने यौवनमपि तदेव । अन्यानङ्गलक्ष्मीरन्यदेव किमपि साधयति ॥ १ ॥ स एव सुरभिः कालः स एव मलयानिलः । सैवेयमवला किन्तु मनोऽन्यदिव दृश्यते ॥ २ ॥ हरस्तु किञ्चित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः । उमामुखे विम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोच-नानि ॥ ३ ॥

हावः—यत्किमपि प्रेक्षमाणां भणमानां रे यथा तथैव । निर्ध्याय स्नेहमुग्धां वयस्य मुग्धां पश्य ॥ १ ॥ विवृण्वती शैलसुताऽपि भावमङ्गैः स्फुरद्वालकदम्ब-

---

रही है मानो कामदेवने अपने तरकससे लगी हुई चम्पेके डोरसे लपेट रक्खा हो ॥ ७ ॥ नवेलीके हाथोंमें कङ्गनोंकी पाँत ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ रही है मानो लोगोंके मनरूपी हरिण फँसानेके लिये कामदेवके ढेरसे पाश हों ॥ ८ ॥

अँगूठी : मृगनयनी नवेलीकी उँगलियोंमें अँगूठियाँ ऐसी शोभित हो रही हैं मानो अभ्यासके लिये कामके वाणोंसे वेधी हुई सँकरी गोल-गोल चाँदमारी हो ॥ १ ॥ नवेलीकी उँगलीमें यह अँगूठी नहीं है, यह तो वह राजमुद्रा है जिसे महाराज कामदेवके राज्यमें रहनेवालोंको प्रणाम करना चाहिए ॥ २ ॥

करधनी : उसके विशाल नितम्बमें बँधी हुई उजले मणियोंकी करधनी ऐसी जान पड़ती है मानो गङ्गाके चौड़े तटपर सारस पक्षियोंकी पाँत हो ॥ १ ॥ ढीली होकर नितम्बसे नीचे सरकती हुई मौलसिरिके फूलोंकी जो करधनी बार-बार वह नवेली ऊपर उठा रही है वह ऐसी जान पड़ रही है मानो नितम्बको ही उचित स्थान समझकर कामदेवने अपने धनुषकी दूसरी प्रत्यञ्चा (डोरी) वहाँ ही बाँध छोड़ी हो ॥ २ ॥

कान्ति (चमक) : अत्यधिक चमकके कारण एक दूसरेपर चमक डालनेवाले अङ्गोंवाले उसके शरीरमें 'यहाँसे यहाँतक अमुक अङ्ग है' यह निश्चय करके स्पष्ट वतानेवाला चतुर मनुष्य संसारमें कौन है ? कोई नहीं ॥ १ ॥ उसका वह मनोहर रूप ! वह महिमा ! वह ऐश्वर्य ! वह आयु ! वह चमक-दमक ! वह संसारको अचरजमें डाल देनेवाला सौभाग्य और वह भाग्योदय ! इन सब एक-एकका वर्णन वही कर सकता है जिसे शेषनागकी भाँति दो सहस्र जीभें मिली हों ॥ २ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि उसकी तो केवल रसीली चमक-मात्र दिखाई पड़ रही है अतः यह ज्ञान तो किसीको हो नहीं पाता कि वह कोई सुन्दरी है ॥ ३ ॥

स्वाभाविक अलङ्कार

भाव : वही उसकी बोली है, वे ही उसकी आँखें हैं और वही उसकी जवानी भी है किन्तु यह कामकी निराली छटा उसे कुछ और ही बना डालना चाहती है ॥ १ ॥ वही वसन्त ऋतु है, वही मलय पर्वतका पवन है और वही यह नवेली भी है किन्तु आज इसका मन कुछ और ही दिखाई पड़ रहा है ॥ २ ॥ शिवजीका धीरज कुछ लुप्त हो गया और उन्होंने पार्वतीजीके मुखपर विम्बके समान अधरोष्ठमें वैसे ही अपनी आँखें जमा दीं जैसे चन्द्रमाका उदय होनेपर समुद्र उसपर आँखें जमा लेता है ॥ ३ ॥

हाव : अरे मित्र ! ध्यानपूर्वक उस प्रेमरसमें डूबी हुई भोली-भाली सुन्दरीको देखो जो कहीं कुछ देखती जा रही है और कुछ-कुछ वोलती भी जा रही है ॥ १ ॥ इन्द्रकी आज्ञासे हिमालयपर कामदेवके माया फैलानेपर जब पार्वतीको देखकर

कल्पैः। साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ॥ २ ॥

हेला—तथा तस्या झटिति प्रवृत्ता वध्वा सर्वाङ्गविभ्रमाः सकलाः। संशयितमुग्धभावा भवति चिरं यथा सखीनामपि ॥ १ ॥

शोभा—तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेश्य वालां क्षणं व्यलम्बन्त पुरो निषण्णाः। भूतार्थशोभाह्रियमाणनेत्राः प्रसाधने सन्निहितेऽपि नार्यः ॥ १ ॥

कान्तिः—वामं सन्धिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम्। पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम् ॥१॥

माधुर्यम्-शरकाण्डपाण्डुगण्डस्थलेयमाभाति परिमिताभरणा। माधवपरिणतपत्रा कतिपयकुसुमेव कुन्दलता ॥ १ ॥

दीप्तिः—तारुण्यस्य विलासः समधिकलावण्यसम्पदो हासः। धरणितलस्याभरणं युवजनमनसो वशीकरणम् ॥१॥ दैवाद्दृष्टा नितान्तसुमुखशशिज्योत्स्नाविलुप्ततमोनिवहे। अभिसारिकाणां विघ्नं करोष्यन्यासां विहताशे ॥ २ ॥

प्रगल्भता—तथा व्रीडाविधेयापि तथा मुग्धापि सुन्दरी। कलाप्रयोगचातुर्ये सभा स्वाचार्यकं गता ॥ १ ॥ समाश्लिष्टा समाश्लेषैश्चुम्बिताश्चुम्बनैरपि। दष्टाश्च दशनैः कान्तं दासीकुर्वन्ति योषितः ॥ २ ॥

औदार्यम्—दिवसं खलु दुःखितायाः सकलं कृत्वा गृहव्यापारम्। गुरुण्यपि मन्युदुःखे भरिमा पादान्ते सुप्तस्य ॥ १ ॥

धैर्यम्—अथ विश्वात्मने गौरी सन्दिदेश मिथः सखीम्। दाता मे भूभृतां नाथः प्रमाणीक्रियतामिति ॥ १ ॥

शिवजीका चित्त चञ्चल होने लगा उस समय अपने खिलते हुए कदम्बके फूलके समान (रोमांचित) कोमल अङ्गोंसे मनके भाव प्रकट करती हुई, तिरछी चितवनवाले मुखकमलसे शोभित पार्वती कुछ तिरछी होकर खड़ी रहीं ॥ २ ॥

हेला : नववधूके सब अङ्गोंके सब विलास झट ही ऐसे प्रवृत्त हुए जिनसे उसकी सखियोंको भी उसके मुग्धापनपर सन्देह होने लगा ॥ १ ॥

शोभा : वहाँ उन्होंने पार्वजीको पूरबकी ओर मुँह करके बैठा दिया। सिंगारकी सब सामग्री पासमें रहते हुए भी वे सब पार्वतीजीकी स्वाभाविक शोभापर ही इतनी लट्टू हो गईं कि कुछ देरतक तो वे सुध-बुध भूलकर उनकी ओर एकटक निहारती हुई बैठी ही रह गईं ॥ १ ॥

कान्ति : अहा ! इसने अपना वाँयाँ हाथ अपने नितम्बपर रख लिया है इसलिये हाथका कड़ा पहुँचेपर रुककर चुप हो गया है। दूसरा हाथ श्यामाकी डालीके समान ढीला लटका हुआ है। नीची आँखें किए हुए यह अपने पैरके अँगूठेसे धरतीपर विखरे हुए फूल सरका रही है। इस प्रकार खड़ी होनेसे इसके ऊपरका शरीर लम्बा और सीधा हो गया है। नाचनेके समय भी यह ऐसी सुन्दर नहीं लगती थी जैसी अब लग रही है ॥ १ ॥

मधुरता : इने-गिने आभूषण पहने हुए और सरकण्डेके समान पीले गालोंवाली यह सुन्दरी वैसी ही दिखाई दे रही है जैसे वसन्तसे पके हुए पत्तेवाली किसी कुन्दलतामें इने-गिने फूल बचे रह गए हों ॥ १ ॥

दीप्ति : यह नवेली तो यौवनका विलास है, बढ़ी हुई लावण्य सम्पत्तिका मधुर हास है, पृथ्वीका भूषण है और नवयुवकोंके मनको आकृष्ट करनेवाला वशीकरण मन्त्र है ॥१॥ हे रमणी ! प्रसन्न हो जाओ ! देखो तो, तुम्हारे मुखचन्द्रकी चाँदनीसे अँधेरा नष्ट हो रहा है। लौट चलो, हे मूर्ख ! तुम दूसरी अभिसारिकाओं (कृष्णाभिसारिकाओं) को भी अपने प्रियतमोंसे गुपचुप मिलनेमें क्यों विघ्न डाल रही हो ? ॥ २ ॥

प्रगल्भता : यद्यपि वह सुन्दरी अत्यधिक भोली तथा लजीली है फिर भी सभामें कला-प्रयोगकी चतुरता दिखाते समय आचार्य बन गई ॥ १ ॥ आलिंगन आदिके बदलेमें स्वयं भी वैसे ही व्यवहार करके रमणियाँ प्रियतमोंको दास बना लेती हैं ॥ २ ॥

उदारता : जैसे ही प्रियतम अपनी प्रेमिकाके पैरों पड़ने लगे तैसे ही दिनभर घरका कामकाज करके थकी हुई नवेलीका क्रोध शान्त हो गया ॥ १ ॥

धीरज : जब पार्वतीजीने, घट-घटमें रहनेवाले शिवजीको अपनी सखीके मुँहसे धीरेसे कहलाया कि मेरा विवाह करने या न करनेवाले मेरे पिता हिमालय हैं, इसलिये यदि आप मुझसे विवाह करना चाहते हों तो पहले उन्हें जाकर मना लीजिए ॥ १ ॥

हाव

लीला—तथा दृष्टं तथा भणितं तथा नियतं तथा तथा शीर्णम्। अवलोकितं सतृष्णं सविभ्रमं यथा सपत्नीभिः ॥ १ ॥

विलासः—अत्रान्तरे किमपि वाग्विभवातिवृत्तवैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्याः। तद्भूरिसात्त्विकविकारविशेषरम्यमाचार्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत् ॥ १ ॥

विच्छित्तिः—कर्णार्पितो रोध्रकषायरूक्षे गोरोचनाभेदनितान्तगौरे। तस्याः कपोले परभागलाभाद्बबन्ध चक्षूंषि यवप्ररोहः ॥ १ ॥ स्वच्छाम्भःस्नपनविधौतमङ्गमोष्ठस्ताम्बूलद्युति विशदो विलासिनीनाम्। वासस्तु प्रतनु विविक्तमस्त्वितीयानाकल्पो यदि कुसुमेषुणा न शून्यः ॥ २ ॥

विभ्रमः—अभ्युद्गते शशिनि पेशलकान्तदूतीसंलापसंवलितलोचनमानसाभिः। अग्राहि मण्डनविधिर्विपरीतभूषाविन्यासहासितसखीजनमङ्गनाभिः ॥ १ ॥

बिव्वोकः—यासां सत्यपि सद्गुणानुसरणे दोषानुवृत्तिः परा या प्राणान्वरमर्पयन्ति न पुनः सम्पूर्णदृष्टिं प्रिये। अत्यन्ताभिमतेऽपि वस्तुनि विधिर्यासां निषेधात्मकस्तास्त्रैलोक्यविलक्षणप्रकृतयो वामाः प्रसीदन्तु ते ॥ १ ॥

किलकिञ्चितम्—रतिक्रीडाद्यूते कथमपि समासाद्य समयं मया लब्धे तस्याः क्वणितकलकण्ठार्धमधरे। कृतभ्रूभङ्गासौ प्रकटितविलक्षार्धरुदितस्मितक्रोधोद्भ्रान्तं पुनरपि विदध्यान्मयि मुखम् ॥ १ ॥

मोट्टायितम्—चित्रवर्तिन्यपि नृपे तत्त्वावेशेन चेतसि। व्रीडार्धवलितं चक्रे मुखेन्दुमवशैव सा ॥ १ ॥

कुट्टमितम्—नान्दीपदानि रतिनाटकविभ्रमाणामाज्ञाक्षराणि परमाण्यथवा स्मरस्य। दष्टेऽधरे प्रणयिना विधुताग्रपाणेः सीत्कारशुष्करुदितानि जयन्ति नार्याः ॥ १ ॥ पल्लवोपमितिसाम्यसपक्षं दष्टवत्यधर-

---

हाव

चुलबुलपन : उस नवेलीकी चितवन, बोल-चाल, अपनेको सँभाले रखना और बैठना इस ढङ्गका है कि उसकी सौतें उसे बड़ी चाह और विलासके साथ देखती हैं ॥ १ ॥

चटक-मटक : इस बीच, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली मालतीका काम-सम्बन्धी विजयका आचार्यत्व (काम-कौशल) प्रकट हुआ जिसकी विचित्रता बोलनेके ढङ्गोंसे बढ़ गई थी, जो हाव-भाव तथा घबराहटसे युक्त था और जो स्वेद, रोमाञ्च आदि सात्त्विक भावोंके कारण विशेष सुन्दर हो गया था ॥१॥

बनाव-सिंगार : शृङ्गार करते समय पार्वतीजीके कानमें जो जौका अङ्कुर लगा हुआ था वह लोधके चूर्णके कारण रूखे और गोरोचनके बेलबूटोंसे अधिक गोरे-गोरे कपोलपर विशेष सुन्दरता प्राप्त करके लोगोंकी दृष्टियाँ अपनी ओर खींच रहा था ॥ १ ॥ यदि विलासवती रमणियाँ कामकलाओंके चमत्कारसे शून्य न हों तो उनके लिये निर्मल जलके स्नानसे विशुद्ध अङ्ग, पानकी लालीसे सजे हुए ओठ और सुन्दर स्वच्छ पतले वस्त्र; बस इतने ही आभूषण बहुत हैं ॥ २ ॥

हड़बड़ी : चन्द्रमाका उदय होनेपर प्यारे छैलेकी दूतियोंकी सुन्दर बातोंसे विकसित नेत्र और मनवाली नवेलियोंने इस प्रकार गहनों आदिसे अपनी सजावट की कि उनके गहनोंकी उलटा-पलटी सजावट देखकर सखियाँ हँस पड़ीं ॥१॥

ऐंठ : [अत्यधिक गर्वके कारण इच्छित वस्तुओंमें भी अनादर दिखाना] मनमें सद्गुणोंका ध्यान रहनेपर भी जो वाणीसे प्रायः सब वस्तुओंमें केवल दोष ही बतलाती हैं, जो प्राण भले ही दे दें किन्तु प्रियतमकी ओर पूरी दृष्टि नहीं देतीं, अत्यधिक चाही हुई वस्तुमें जो अपनी चाहको अरुचिके द्वारा प्रकट करती हैं, वे तीनों लोकोंसे विलक्षण प्रकृतिवाली वामा तुमपर प्रसन्न हों ॥ १ ॥

नोंक-झोंक : रतिक्रीड़ाके जुएमें जब मैंने उसका नीचेका ओठ जीत लिया तो बाँकी भौंहोंवाली उस नवेलीने अपने सुन्दर कण्ठसे अस्पष्ट शब्द करते हुए और लाज, रुलाई, मुस्कान तथा क्रोधके अस्फुट मिश्रणसे तर्राया हुआ मुख मेरी ओर कर लिया ॥ १ ॥

झेंप : राजाका चित्र देखते समय प्रेमके आवेशमें वह नवेली भूल गई कि यह चित्र है और उसने अपना मुखचन्द्र लाजके कारण कुछ टेढ़ा कर लिया ॥ १ ॥

रोना धोना : प्रियतमके ओठ चूमनेपर हाथ फटकारती हुई नवेलीका सी-सी करके वह झूठ-मूठ रोना विजयी हो रहा है जो रतिक्रीड़ारूपी नाटकके दृश्योंका मङ्गलाचरण है तथा कामकी आज्ञाका श्रेष्ठ अक्षर-समूह है ॥१॥ हाथको 'करपल्लव,' और ओठको 'अधर-पल्लव,' कहते हैं इसीलिये प्रियतमने जब नवेलीके ओठका बलपूर्वक चुम्बन किया तो उसके मणि जड़े

विस्वमभीष्टे। पर्यकूजि सरुजेव तरुण्यास्तारलोलवलयेन करेण ॥ २ ॥

ललितम्—सा राजहंसैरिव सन्नताङ्गी गतेषु लीलाञ्चितविक्रमेषु। व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धैरादित्सुभिर्नूपुरसिञ्जितानि ॥ १ ॥

विहृतम्—दूरागतेन कुशलं पृष्टा नोवाच सा मया किञ्चित्। पर्यश्रुणी तु नयने तस्याः कथयाम्बभूवतुः सर्वम् ॥ १ ॥

सम्भोगनर्म—सालोके एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिकस्य गृहीत्वा। अनिच्छतोऽपि पादौ धुनोति हसन्ती हसतः ॥ १ ॥

भयनर्म—अभिव्यक्तालीकः सकलविफलोपायविभवश्चिरं ध्यात्वा सद्यः कृतकृतकसंरम्भनिपुणम्। इतः पृष्ठे पृष्ठे किमिदमिति सन्त्रास्य सहसा कृताश्लेषं धूर्त्तः स्मितमधुरमालिङ्गति वधूम् ॥ १ ॥

संलापकः—शस्त्रप्रयोगखुरलीकलहे गणानां सैन्यैर्वृतो विजित एव मया कुमारः। एतावतापि परिरभ्य कृतप्रसादः प्रादादमुं प्रियगुणो भगवान्गुरुर्मे ॥ १ ॥

उत्थापकः—आनन्दाय च विस्मयाय च मया दृष्टोऽसि दुःखाय वा वैतृष्ण्यं नु कुतोऽद्य सम्प्रति मम त्वद्दर्शने चक्षुषः। त्वत्साङ्गत्यसुखस्य नास्मि विषयः किं वा बहुव्याहृतैरस्मिन्विश्रुतजामदग्न्यविजये बाहौ धनुर्जृम्भताम् ॥ १ ॥

परिवर्तकः—हेरम्बदन्तमुसलोल्लिखितैकभित्ति वक्षो विशाखविशिखव्रणलाञ्छनं मे। रोमाञ्चकञ्चुकितमद्भुतवीरलाभात्सत्यमद्य परिरब्धुमिवेच्छति त्वाम् ॥ १ ॥

वस्तूत्थापनम्—जीयन्ते जयिनोऽपि सान्द्रतिमिरव्रातैर्वियद्व्यापिभिर्भास्वन्तः सकला रवेरपि रुचः कस्मादकस्मादमी। एतैश्चोग्रकबन्धरन्ध्ररुधिरैराध्मायमानोदरा मुञ्चन्त्याननकन्दरानलमुचस्तीव्राऽऽरवाः फेरवाः ॥ १ ॥

कङ्कनवाले कर-पल्लव मानो अपने प्रिय मित्र अधर-पल्लवकी पीड़ासे ही कराह (झनझना) उठे हों ॥ २ ॥

लटपट चाल : यौवनके भारसे झुकी हुई पार्वतीजी जब चलती थीं तो ऐसा जान पड़ता था मानो उनके बिछुओंसे निकलनेवाली मधुर ध्वनि सीखनेके लिये ललचाए हुए राजहंसोंने अपनी हाव-भाव भरी चाल उन्हें पहले ही सिखा दी हो ॥१॥

सकपकाहट : दूर देशसे लौटकर जब मैंने कुशल पूछा तो वह बोली तो कुछ नहीं किन्तु उसकी आँसू-भरी आँखोंने सभी कुछ कह डाला ॥ १ ॥

छेड़-छाड़ : सूर्यके दिखाई देते रहनेपर भी (दिन रहते ही) गृहिणी हँसती हुई गृहस्वामीकी इच्छा न होते हुए भी उसके पैर पकड़कर हिला रही है ॥ १ ॥

नटखट-भरी छेड़-छाड़ : प्रेमीका अपराध प्रकट हो जानेसे प्रेमिका मान किए बैठी है। प्रेमी उसे मनानेके कई उपाय करता है किन्तु वह नहीं मानती। फिर बड़ी देरतक सोच-विचार करनेके पश्चात् बड़ी चतुराईसे 'अरे, यह पीछे क्या है, क्या है!' ऐसा कहकर उसे डरा देता है और ज्योंही वह डरकर उसकी ओर झुकती है त्योंही वह धूर्त्त मुस्कराहट और मधुरताके साथ उसे गले लगा लेता है ॥ १ ॥

अकड़ : परशुराम कहते हैं—'शस्त्र-प्रयोगकी क्रीडाका युद्ध करते समय मैंने देवगणोंकी सेनासे युक्त कुमार कार्त्तिकेयको जीत लिया था। मेरी इस जीतसे प्रसन्न होकर मुझे गले लगाकर सुन्दर गुणोंसे प्रसन्न होनेवाले मेरे गुरु भगवान् शङ्करने जो परशु मुझे दिया था वही यह परशु है' ॥ १ ॥

हुलास : रामचन्द्रसे परशुराम कहते हैं—'यह तो मैं ठीक नहीं कह सकता कि तुम मुझे आनन्दके लिये दिखाई पड़े हो या विस्मयके लिये, या दुःखके लिये, किन्तु आज तुम्हें देखकर मेरी आँखें न जाने क्यों तृप्त हो रही हैं, क्योंकि तुम्हारे समागमसे मुझे तो सुख नहीं होना चाहिए और अधिक क्या कहूँ! जमदग्निके पुत्र परशुरामको जीत लेनेसे प्रसिद्ध तुम्हारे हाथमें यह धनुष सुशोभित हो' ॥ १ ॥

उमंग : परशुराम रामचन्द्रसे—'यह बात बिलकुल सच है कि गणेशजीके दाँतरुपी मुसलोंके चिह्नोंवाला और स्वामी कार्त्तिकेयके अनगिनत बाणोंके घावोंवाला मेरा वक्षःस्थल तुम जैसे अद्भुत वीरसे मिलनेके कारण रोमाञ्चित होकर तुम्हारा आलिङ्गन करना चाहता है' ॥ १ ॥

बातकी उठान : यह क्या बात है कि सारे संसारके अन्धकारको जीतनेवाली प्रकाशमान सूर्यकी किरणोंको भी आकाशमें समाए हुए अँधेरेने जीत लिया है और कटे हुए धड़ोंके ऊपरके छिद्रोंसे निकलता हुआ रक्त पीनेसे पेट खूब भरे हुए, बलपूर्वक चिल्लाती हुई ये सियारिनियाँ इधर अपने मुँहके बिलोंसे आग उगल रही हैं ॥ १ ॥

अवपातः—कण्ठे कृत्वावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादाम कर्षन्क्रान्त्वा द्वाराणि हेलाचलचरणवलत्किङ्किणीचक्रवालः। दत्तातङ्को गजानामनुसृतसरणिः सम्भ्रमादश्वपालैः प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरातः॥ १॥

मौग्ध्यम्—के द्रुमास्ते क्व वा ग्रामे सन्ति केन प्ररोपिताः। नाथ मत्कङ्कणन्यस्तं येषां मुक्ताफलं फलम्॥ १॥

विक्षेपः—धम्मिल्लमर्धमुक्तं कलयति तिलकं तथाऽसकलम्। किञ्चिद्वदति रहस्यं चकितं विष्वग्विलोकते तन्वी॥ १॥

कुतूहलम् — प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद्द्रवरागमेव। उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान॥ १॥

अन्तेनानिष्टप्राप्तिकृतसम्भ्रमः — वत्सस्याभयवारिधः प्रतिभयं मन्ये कथं राक्षसात्त्रस्तश्चैष मुनिर्विरौति मनसश्चास्त्येव मे सम्भ्रमः। मा हासीर्जनकात्मजामिति मुहुः स्नेहाद्गुरुर्याचते न स्थातुं न च गन्तुमाकुलमतेर्मूढस्य मे निश्चयः॥ १॥

इष्टप्राप्तिकृतः—एह्येहि वत्स रघुनन्दन पूर्णचन्द्र चुम्बामि मूर्धनि चिरस्य परिष्वजे त्वाम्। आरोप्य वा हृदि दिवानिशमुद्वहामि वन्देऽथवा चरणपुष्करकद्वयं ते॥ १॥

वह्निजः—विरम विरम वह्ने मुञ्च धूमाकुलत्वं प्रसरयसि किमुच्चैरर्चिषां चक्रवालम्। विरहहुतभुजाहं यो न दग्धः प्रियायाः प्रलयदहनभासा तस्य किं त्वं करोषि॥ १॥

करिजः—सच्छिन्नबन्धद्रुतयुग्मशून्यं भग्नाक्षपर्यस्तरथं क्षणेन। रामापरित्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं तुमुलं चकार॥ १॥

भगदड़ : कण्ठकी सोनेकी साँकल तोड़कर, बची हुई साँकल घसीटता हुआ, अपने पैरोंकी किङ्किणीको लीलासे पैर चलकर बजाता हुआ यह बन्दर तबलेसे छूटकर कई द्वार पार करता हुआ महाराजके महलकी ओर घुस रहा है। इसे देखकर हाथी भड़क उठे हैं और भयसे घबराए हुए घोड़ोंके चरकटे उसी मार्गसे उसके पीछे दौड़े जा रहे हैं॥ १॥

भोलापन : हे नाथ! मेरे कङ्कनमें जड़े हुए मोती जिन वृक्षोंमें फले होंगे वे पेड़ कैसे होते हैं, किस गाँवमें हैं, किसने लगाए हैं?॥ १॥

अकचक : वह रमणी अपना केशपाश (जूड़ा) आधा ही सजाती है, तिलक अधूरा ही लगाती है, कुछ रहस्यभरी अधूरी बात कहती है और चकित होकर इधर-उधर देखती है॥ १॥

चाव : जब रघुके कुमार अजकी बारात निकली उस समय उसे देखनेके लिये किसी सुन्दरीने महावर लगानेवालीके हाथसे अपने गीले ही पैर झटककर अत्यन्त शीघ्रतासे जहाँसे बारात दिखाई पड़ रही थी उस झरोखेतक पहुँचकर झरोखेतकके मार्गको अपने पैरके गीले महावरसे रँग दिया॥ १॥

अनिष्टकी आशङ्कासे अनिश्चय : निर्भयताके समुद्र वत्स लक्ष्मणको राक्षससे भय हो यह मैं कैसे मान लूँ! और यह मुनि डरकर लक्ष्मणको बचानेके लिये जो चिल्ला रहा है; यह भी कैसे झूठ मान लिया जाय! मेरे मनमें भी सम्भ्रम है ही। गुरुने स्नेहपूर्वक यह उपदेश दिया था कि 'सीताको कभी अकेली न छोड़ना।' ये सारी बातें सोचकर तो मेरी बुद्धि ऐसी व्याकुल हो गई है कि मेरी समझमें नहीं आ रहा कि मैं क्या करूँ, क्या न करूँ। अतः लक्ष्मणकी सहायता करनेके लिये जाने या ठहरनेके विषयमें मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ॥ १॥

प्रियके प्राप्त होनेपर हुलास : हे पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर, बेटा राम! आओ, इधर आओ। मैं तुम्हारा सिर बहुत देरतक चूमता रहूँ और तुम्हें गले लगाए रहूँ अथवा तुम्हें अपने हृदयमें दिनरात बैठा रहूँ या तुम्हारे दोनों चरणएकमलोंकी वन्दना करता रहूँ॥ १॥

आगसे निश्चिन्तता : हे आग! शान्त हो जाओ, यह इतना धुआँ न उमड़ाओ, ये ऊँची-ऊँची लपटें क्यों उठा रही हो? अरे जब मुझे प्यारीके बिछोहकी आग नहीं जला पाई तब प्रलय-कालकी अग्निके समान तेजवाली तुम मेरा क्या बिगाड़ लोगी?॥ १॥

हाथीसे भगदड़ : उस हाथीने वेगसे अपने सिकड़ तुड़ाकर एक ही क्षणमें सेनाके रथोंकी धुरी तोड़कर छिन्न-भिन्न कर डालीं। हाथीके डरसे डरी हुई स्त्रियोंकी रक्षाके लिये सारे योद्धा जुट गए थे और सारी सेनामें भयङ्कर व्याकुलता तथा कोलाहल फैल गया था।॥ १॥

आवेगः—प्रारब्धां तरुपुत्रकेषु सहसा सन्त्यज्य सेकक्रियामेतास्तापसकन्यकाः किमिदमित्यालोकयन्त्याकुलाः। आरोहन्त्युटजद्रुमाँश्च वटवो वाचंयमा अप्यमी सद्यो मुक्तसमाधयो निजवृसीष्वेवोच्चपादं स्थिताः ॥ १ ॥

सात्त्विकभावाः—वेपते स्वेदवदना रोमाञ्चं गात्रे वपति। विलोलस्ततो वलयो लघु बाहुवल्ल्यां रणति ॥ १ ॥ मुखं श्यामलं भवति क्षणं विमूर्च्छति विदग्धेन। मुग्धा मुखवल्ली तव प्रेम्णा सापि न धैर्यं करोति ॥२॥

तत्त्वज्ञानान्निर्वेदः—प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्। सम्प्रीणिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥ १ ॥

आपदः निर्वेदः—राज्ञा विपद्बन्धुवियोगदुःखं देशच्युतिर्दुर्गममार्गखेदः। आस्वाद्यतेऽस्याः कटुनिष्फलायाः फलं मयैतच्चिरजीवितायाः ॥ १ ॥

ईर्ष्यातः—धिग्धिक्शक्रजितं प्रबोधितवता किं कुम्भकर्णेन वा स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनपरैः पीनैः किमेभिर्भुजैः। न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदरयस्तत्राप्यसौ तापसः सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसभटाञ्जीवत्यहो रावणः ॥ १ ॥

वीरशृङ्गारयोर्व्यभिचारी निर्वेदः—ये बाहवो न युधि वैरिकठोरकण्ठपीठोच्छलद्रुधिरराजिविराजितांसाः। नापि प्रियापृथुपयोधरपत्रभङ्गसंक्रान्तकुङ्कुमरसाः खलु निष्फलास्ते ॥ १ ॥

रसानङ्गः स्वतन्त्रो निर्वेदः—कस्त्वं भोः कथयामि दैवहतकं मां विद्धि शाखोटकं वैराग्यादिव वक्षि साधु विदितं कस्मादिदं कथ्यते। वामेनात्र वटस्तमध्वगजनः सर्वात्मना सेवते न च्छायापि परोपकारकरणी मार्गस्थितस्यापि मे ॥ १ ॥

घबराहट : पुत्रोंके समान स्नेहसे पाले गए वृक्षोंको सींचना छोड़कर ये तपस्वियोंकी कन्याएँ 'यह क्या हो गया!' कहकर प्रकार व्याकुल होकर देखने लगी हैं, ब्रह्मचारी शिष्य उटजके वृक्षोंपर चढ़कर देख रहे हैं और महर्षि लोग भी अपनी समाधि छोड़कर अपने आसनपर ही बिना बोले-चाले पैर ऊपर उठा-उठाकर खड़े हो रहे हैं ॥ १ ॥

सात्त्विक भाव : हे युवक! तेरे प्रेमके कारण वह नवेली तनिक भी धीरज नहीं धरती, उसके मुखपर पसीना आ जाता है, शरीरमें रोमाञ्च हो आता है, वह काँपने लगती है, उसका चञ्चल कङ्गन बाहुरूपी लतामें धीमे-धीमे शब्द करता है, उसका मुँह काला पड़ जाता है, वह क्षण भरके लिये मूर्च्छित हो जाती है तथा उसकी मुँहरूपी लता तनिक भी धीरज नहीं धरती ॥ १–२ ॥

ज्ञानके कारण मनकी शान्ति : यदि सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण करनेवाली सम्पत्ति मिल जाय तो उससे क्या! शत्रुओंके मस्तकपर पैर रखकर उन्हें जीत लिया गया हो तो क्या! मित्रों तथा स्नेही बन्धुओंको धन आदिसे सन्तुष्ट कर दिया हो तो भी क्या और शरीरधारी मनुष्य प्रलयतक जीते रहें तो भी क्या? ॥ १ ॥

विपत्तिमें मनकी शान्ति : यद्यपि विपत्ति, बन्धुओंके विछोहका दुःख, देश खो बैठना और भयङ्कर कठिन मार्गोंमें घूम-घूमकर कष्ट सहना ये सब राजाके लिये विरोधी बातें हैं किन्तु फिर भी मैं इस कड़वी, निष्फल और सदा रहनेवाली प्रकृतिका यह फल चख ही रहा हूँ ॥ १ ॥

डाहसे मनकी शान्ति : यह मेरा सबसे बड़ा अपमान है कि मेरे जैसे वीरके भी शत्रु हों, हों भी तो यह तपस्वी बाबा! और फिर वह यहीं, मेरे घरमें, लङ्कामें ही घुसकर वीर राक्षसोंको मारे जा रहा है! यह तिरस्कार सहकर भी रावण जीवित है, यह बहुत ही बड़े दुःखकी बात है। इन्द्रको जीतनेवाले मेघनादको और उसकी वीरताको धिक्कार है! कुम्भकर्णको ही नींदसे जगानेसे क्या लाभ हुआ! और छोटेसे गाँवकी भाँति स्वर्गको लूटनेवाले ये मेरे मोटे-मोटे हाथ भी व्यर्थ ही हैं ॥ १ ॥

वीर और शृङ्गारके व्यभिचारी भावके रूपमें शान्ति : जो हाथ, न तो युद्धमें वैरियोंके कठोर कण्ठमें उछलते हुए रक्तसे सुशोभित हो पाए हैं; और न प्यारीके मोटे-मोटे स्तनोंके बेल-बूटोंके कुङ्कुमके रससे ही गीले हुए हैं वे हाथ निःसन्देह निष्फल ही हैं ॥ १ ॥

स्वतन्त्र मनकी शान्ति : 'तुम कौन हो भाई!':'बताता हूँ, मैं अभागा शाखोटक हूँ!': 'तुम तो बड़ी उदासीनताके साथ बोल रहे हो।': 'तुमने ठीक समझा।': 'ऐसा क्यों?': 'सुनो, देखो—उधर बाईं ओर जो एक वटका वृक्ष है उसे बटोही कई प्रकारसे सेवन करते हैं और इधर मैं यद्यपि सड़कपर खड़ा हूँ किन्तु मेरी छाया भी किसीके कामकी नहीं है'। ॥ १ ॥

केलिः—व्यपोहितुं लोचनतो मुखानिलैरपारयन्तं किल पुष्पजं रजः। पयोधरेणोरसि काचिदुन्मनाः प्रियं जघानोन्नतपीवरस्तनी ॥ १ ॥

दिङ्मात्रम्—अन्तिकगतमपि मामियमनलोकयतीव हन्त दृष्ट्वापि। सरसनखक्षतलक्षितमाविष्कुरुते भुजामूलम् ॥ १ ॥

दैन्यम्—वृद्धोऽन्धः पतिरेष मञ्चकगतः स्थूणावशेषं गृहं कालोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्त्ताऽपि नो। यत्नात्सञ्चिततैलविन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति ॥ १ ॥

श्रमः—सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी सीता जवात्त्रिचतुराणि पदानि गत्वा। गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥ १ ॥

मदः—प्रातिभं त्रिसरकेण गतानां वक्रवाक्यरचनारमणीयः गूढसूचितरहस्यसहासः सुभ्रुवां प्रववृते परिहासः ॥ १ ॥ हावहारि हसितं वचनानां कौशलं दृशि विकारविशेषाः। चक्रिरे भृशमृजोरपि वध्वाः कामिनेव तरुणेन मदेन ॥ २ ॥

मरणम्—राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी। गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा ॥ १ ॥ हृन्मर्मभेदिपतदुत्कटकङ्कपत्रसंवेगतत्क्षणकृतस्फुरदङ्गभङ्गा। नासाकुटीरकुहरद्वयतुल्यनिर्यदुद्बुद्बुदध्वनदसृक्प्रसरा मृतैव ॥ २ ॥

जडता इष्टदर्शनात्—एवमालि निगृहीतसाध्वसं शङ्करो रहसि सेव्यतामिति। सा सखीभिरुपदिष्टमाकुला नास्मरत्प्रमुखवर्तिनि प्रिये ॥ १ ॥

अनिष्टश्रवणात्—तावन्तस्ते महात्मानो निहताः केन राक्षसाः। येषां नायकतां यातास्त्रिशिराःखरदूषणाः ॥१॥

खेल : प्यारीके नयनोंपर लगी हुई फूलोंकी धूल फूँककर दूर न कर सक पाते हुए प्रियतमको उस ऊँचे-ऊँचे मोटे-मोटे स्तनोंवाली उत्कण्ठित नवेलीने स्तनोंसे ठेल दिया ॥ १ ॥

खेलवाड़ : मुझे पास खड़े हुए देखकर भी यह कामिनी मेरी ओर नहीं ताकती और अनजान बनकर नये नख-क्षतोंवाले अपने स्तन दिखलाती है ॥ १ ॥

दीनता : बूढ़ा और अन्धा पति टूटी खाटपर पड़ा है। घरके नाते केवल थुनिया-भर बच रही है। बरसात सिरपर आ गई है किन्तु छप्परपर फूसतक नहीं है। बेटेका कुशल-पत्रतक नहीं आया। जैसे-तैसे जोड़-जोड़कर रक्खी हुई तेलकी हँड़िया भी फूट गई अतः शीघ्र ही प्रसव करनेवाली पुत्रवधूको देख-देखकर सास व्याकुल हो-होकर रोती रहती है ॥ १ ॥

थकावट : सिरसके फूलके समान कोमल अङ्गोंवाली जानकीजी अयोध्यासे कुल तीन-चार पग चलकर ही श्रीरामचन्द्रजीसे पूछने लगीं कि 'अभी कितना और चलना है?' बस, यही सर्वप्रथम रामचन्द्रकी आँखोंमें आँसू छलक आए ॥ १ ॥

जवानीकी छटा : मदिराके तीन दौर चलते-चलते तरुणियोंकी प्रतिभा जाग उठी और उनमें गूढ़ रहस्यका सङ्केत करनेवाला, व्यंग्य बोलियोंसे भरा हास-परिहास आरम्भ हो गया ॥ १ ॥ अत्यधिक उत्कट मदने भोली-भाली नवेलीमें हाव-भाव-भरी मनोहर हँसी, बोलनेकी चतुरता और आँखोंमें बाँकी चितवन, वैसे ही उत्पन्न कर दी जैसे युवक प्रियतमने नवेलीमें यों ही भाव उत्पन्न कर दिए थे। जब मदिराके मदमें भोली-भाली नई नवेलियोंकी यह दशा थी तो मतवाली प्रौढ़ा सुन्दरियोंकी हाव-भाव-भरी हँसी, बोलनेकी चतुरता तथा तिरछी चितवनकी तो बात ही क्या है? ॥ २ ॥

मरण : राम-रूपी कामदेवके असह्य बाणके हृदयमें लगते ही वह राक्षसी (ताड़का) महकते हुए रुधिर-रूपी चन्दनसे पुतकर मानो प्राणपति (यम) के स्थानपर पहुँच गई ॥ १ ॥ यह ताड़का तो मर ही गई किन्तु इसके हृदयके मर्मको छेदनेवाले रामके तीखे बाणने उसी क्षण इसके अङ्ग भी ऐसे भङ्ग कर दिए हैं कि गुफाओंके समान इसकी नाकके नथनोंसे बुलबुलोंवाला रक्त 'बुद-बुद' करके निकल रहा है ॥ २ ॥

प्रियको देखनेसे सुध-बुध भूलना : 'हे सखी! एकान्तमें चित्त स्थिर करके इस प्रकार शिवजीके साथ व्यवहार करना।' इस प्रकार सखियोंने जो उपदेश दिया उसे शिवजीके सामने पहुँचते ही पार्वतीजी पूर्णतः भूल गईं ॥ १ ॥

बुरा समाचार सुनकर ठक रह जाना : जिन राक्षसोंके सेनापति त्रिशिरा, खर तथा दूषण थे, उन असंख्य महाबली राक्षसोंको किसने मार गिराया? ॥ १ ॥

अपस्मारः—आश्लिष्टभूमिं रसितारमुच्चैर्लोलद्भुजाकारबृहत्तरङ्गम्। फेनायमानं पतिमापगानामसावपस्मारिणमाशशङ्के ॥ १ ॥

गर्वः—मुनिरयमथ वीरस्तादृशस्तत्प्रियं मे विरमतु परिकम्पः कातरे क्षत्रियासि। तपसि विततकीर्त्तेर्दर्पकण्डूलदोष्णः परिचरणसमर्थो राघवः क्षत्रियोऽहम् ॥ १ ॥

शौर्यगर्वः—धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः। यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन साध्यताम् ॥१॥

आलस्यम्—चलति कथञ्चित्पृष्टा यच्छति वचनं कथञ्चिदालीनम्। आसितमेव हि मनुते गुरुगर्भभरालसा सुतनुः ॥ १ ॥ न तथा भूषयत्यङ्गं न तथा भाषते सखीम्। जृम्भते मुहुरासीना बाला गर्भभरालसा ॥ २ ॥

अमर्षः—युष्मच्छासनलङ्घनाम्भसि मया मग्नेन नाम स्थितं प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि। क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवानद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव ॥ १ ॥

औत्सुक्यम्—आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्शबिम्बे स्तिमितायताक्षी। हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः ॥ १ ॥

अवहित्था—एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी। लीलाकमलपत्त्राणि गणयामास पार्वती ॥ १ ॥

उन्मादः—नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न तस्य शरासनम्। अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्प्रिया न ममोर्वशी ॥ १ ॥

मिरगी : पृथ्वीसे मिले हुए, घोर शब्द करते हुए, भुजाओंके समान चञ्चल लहरोंवाले तथा फेनसे भरे समुद्रको श्रीकृष्णजीने समझा कि इसे मिरगी रोग हो गया है ॥ १ ॥

तेज : सीतासे रामजी—'ये मुनि परशुराम इतने वीर हैं तो यह अच्छी बात है और मुझे प्यारी भी लग रही है। किन्तु सीते! तुम क्षत्रिया हो। तुम्हारी घबराहट और कँपकँपी दोनो ही ठीक नहीं हैं; तुम इस कँपकँपीको रोको। तपस्यामें यश प्राप्त करनेवाले तथा घमण्डके कारण खुजलाते हुए हाथोंवाले व्यक्तिका परिचर्याके लिये मैं क्षत्रिय राम भली-भाँति समर्थ हूँ ॥ १ ॥

वीरताका गर्व : अश्वत्थामासे क्रोधित कर्ण—'जबतक मैंने शस्त्र ले रक्खा है तबतक दूसरे शस्त्रधारियोंकी आवश्यकता क्या है? क्योंकि जो कार्य मेरे शस्त्रसे न सिद्ध हुआ उसे फिर सिद्ध करनेवाला है ही कौन?' ॥ १ ॥

आलस्य : भारी गर्भके भारसे अलसाई हुई सुन्दरी किसी प्रकार चलती अवश्य है और सखियोंके पूछनेपर किसी प्रकार उत्तर भी अवश्य देती है किन्तु सच पूछिए तो वह एक ही स्थानपर बैठे रहना चाहती है ॥ १ ॥ गर्भके भारसे अलसाई हुई नवेली न तो पहलेकी भाँति शरीरकी सजावट ही करती है न उस प्रकार सखियोंसे बातें ही करती है, वरन् एक ही स्थानपर बैठी-बैठी बार-बार जँभाई लेती रहती है ॥ २ ॥

क्रोध : सहदेवके द्वारा युधिष्ठिरसे भीमसेन यह बात कहला रहे हैं—'आपकी आज्ञाका उल्लंघन न करनेके कारण मैं अबतक आपकी आज्ञा-पालनरूपी जलमें डूबा रहा और आपकी आज्ञा पालन करते हुए दूसरे छोटे भाइयोंके बीच मैंने (भी) निन्दा और तिरस्कार प्राप्त किया। किन्तु आज मैं कौरवोंसे सारा बदला चुका लेना चाहता हूँ अतः रक्तसे रँगी हुई गदाको क्रोधसे घुमाते हुए तथा कौरवोंका नाश करते हुए मेरे, केवल एक दिनके लिये—एकमात्र आज-भरके लिये, न तो आप बड़े भाई ही हैं और न मैं आपका आज्ञाकारी सेवक ही हूँ ॥ १ ॥

उत्सुकता : शिवजीके पास जानेकी तैयारी करती हुई चञ्चल तथा लम्बे-लम्बे नेत्रोंवाली पार्वती अपना सुन्दर स्वरूप दर्पणमें देखती हैं तथा शिवजीके पास जानेको शीघ्रता करती हैं। सच है, स्त्रियोंकी सुन्दर वेष-भूषा तभी सफल है जब कि वह प्रियतमके नयनोंमें उतर जाय ॥ १ ॥

झेंप : सप्तर्षियोंने जब ब्याहकी बात चलाई उस समय पिताजीके पास नीचा मुँह किए हुए पार्वतीजी लीलाकमलकी पंखुड़ियाँ गिनने लगीं ॥ १ ॥

पागलपन : अरे नीच राक्षस! ठहर-ठहर! मेरी प्रियाको लेकर कहाँ चला जा रहा है?; क्या! यह तो पानीके भारसे झुका हुआ नया बादल है, यह ढीठ राक्षस नहीं है। यह तो दूरतक फैला हुआ इन्द्र-धनुष है, उस राक्षसका धनुष नहीं है! ये भी घोर वर्षाकी बूँदें हैं, बाणोंकी वर्षा नहीं और जिसे मैं उर्वशी समझ रहा हूँ, वह भी मेरी प्रिया उर्वशी नहीं है, किन्तु सोनेकी कसौटीकी रेखाके समान चिकनी और सुन्दर बिजली है ॥ १ ॥

शङ्का (*स्वदुर्नयात्*)—दूराद्वीयो धरणीधराभं यस्ताटकेयं तृणवद्व्यधूनोत्। हन्ता सुवाहोरपि ताडकारिः स राजपुत्रो हृदि बाधते माम्॥ १॥

शङ्का (*परक्रौर्यात्*)—ह्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं द्वयोर्दृष्ट्वालापं कलयति कथामात्मविषयाम्। सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा॥ १॥

स्मृतिः— मैनाकः किमयं रुणद्धि गगने मन्मार्गमव्याहतं शक्तिस्तस्य कुतः स वज्रपतनाद्भीतो महेन्द्रादपि। तार्क्ष्यः सोऽपि समं निजेन विभुना जानाति मां रावणमाः ज्ञातं स जटायुरेष जरसा क्लिष्टो वधं वाञ्छति॥ १॥

मतिः— असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः। सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥ १॥ न पण्डिताः साहसिका भवन्ति श्रुत्वापि ते सन्तुलयन्ति तत्त्वम्। तत्त्वं समादाय समाचरन्ति स्वार्थं प्रकुर्वन्ति परस्य चार्थम्॥ २॥ सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥ ३॥

असूया—अथ तत्र पाण्डुतनयेन सदसि विहितं मधुद्विषः। मानमसहत न चेदिपतिः परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम्॥१॥ अर्थित्वे प्रकटीकृतेऽपि न फलप्राप्तिः प्रभोः प्रत्युत द्रुह्यन्दाशरथिर्विरुद्धचरितो युक्तस्तया कन्यया। उत्कर्षं च परस्य मानयशसोर्विस्रंसनं चात्मनः स्त्रीरत्नं च जगत्पतिर्दशमुखो दृप्तः कथं मृष्यते॥ २॥

दौर्जन्यादसूया—यदि परगुणा न क्षम्यन्ते यतस्व गुणार्जने नहि परयशोनिन्दाव्याजैरलं परिमा-

---

अपनी दुष्टताके कारण शंका : जिस छोटेसे राजपुत्रने दूरसे ही पर्वतके समान डील-डौलवाले ताडकाके पुत्र-मारीच राक्षसको तिनकेके समान उड़ा दिया वह सुवाहुको मारनेवाला ताडकाका शत्रु राजकुमार (राम) मेरे हृदयमें चोट कर रहा है॥ १॥

दूसरेकी क्रूरतासे शङ्का : यह प्यारी (रत्नावली) अपने हृदयमें शङ्कित होनेके कारण सचमुच ही व्यथित दिखाई पड़ रही है। लोगोंके आगेसे यह लजाकर अपना मुँह यह समझकर छिपा लेती है कि उन्होंने इसका गुप्त प्रेम जान लिया है। किन्हीं भी दो मनुष्योंको बातें करते देखकर वह यही समझती है कि वे उसीके विषयकी बातें कर रहे हैं! सखियोंको अपनी ओर मुस्कराते देखकर वह अत्यधिक लजा जाती है। ये चेष्टाएँ देखकर यही समझमें आता है कि वह अत्यधिक शङ्कित हो रही है॥ १॥

स्मृति : सीताको हरकर ले जाता हुआ रावण सोच रहा है—'क्या मेरे बे-रोक टोक मार्गको आकाशमें यह मैनाक रोक रहा है? पर मैनाकमें मेरा मार्ग रोकनेकी शक्ति कहाँसे आई? वह तो इन्द्रके वज्रके डरसे स्वयं समुद्रमें छिपा पड़ा है! यह गरुड़ भी नहीं हो सकता क्योंकि गरुड तो क्या, उसके स्वमी विष्णु भी मेरा बल जानते हैं। (तब यह कौन है?) अहा! समझ गया, यह तो बूढ़ा जटायु है जो मेरे हाथों मरनेपर तुला हुआ है॥ १॥

सूझ : यह तपस्वीकी कन्या (शकुन्तला) अवश्य ही क्षत्रियसे व्याही जाने योग्य है क्योंकि श्रेष्ठ गुणोंपर रीझनेवाला मेरा मन इसे चाह रहा है। सन्देहकी बातोंमें श्रेष्ठ पुरुषोंका चित्त जो कहे वही प्रमाण होता है॥ १॥ बुद्धिमान् तथा विद्वान् व्यक्ति साहसी (एकाएक कोई काम कर बैठनेवाले) नहीं होते। कोई बात सुनकर वे उसका तत्त्व (रहस्य) जानना चाहते हैं और तत्त्व पा लेनेपर ही स्वार्थ या परमार्थवाला काम करना प्रारम्भ करते हैं॥ २॥ बिना सोचे-समझे कोई काम एकाएक नहीं करना चाहिए, ज्ञानकी कमी (मूर्खता) सारी आपत्तियोंका घर ही है। सोच-समझकर काम करनेवाले व्यक्तिके गुणोंपर रीझकर सम्पत्ति स्वयं उसे अपना लेती है (उसके पास आ विराजती है)॥ ३॥

जलन : सभामें युधिष्ठिरने जो भगवान् कृष्णका सबसे पहले पूजन किया, इसे शिशुपाल न सह सका। अभिमानी पुरुषोंका मन दूसरोंकी बढ़ती देख ही नहीं सकता॥ १॥ रावणने भिखमंगा बनकर जनकसे सीता माँगी फिर भी स्वामी रावणको मिला तो कुछ भी नहीं, उल्टे उनसे शत्रुता करनेवाले दशरथके पुत्र (रामको) वह कन्या मिल गई। शत्रुकी उन्नति, अपने मान और यशका नाश तथा स्त्रीरत्नका इस प्रकार हाथसे निकल जाना भला वह घमण्डी जगत्पति रावण कैसे सह सकेगा!॥ २॥

दुष्टतावश जलन : यदि तू दूसरोंके गुण नहीं सह सकता तो अपनेमें वैसे ही गुण ले आनेके लिये प्रयत्न

जितुम् । विरमसि न चेदिच्छाद्वेषप्रसक्तमनोरथो दिनकरकरान्पाणिच्छत्रैर्नुदञ्श्रममेष्यसि ॥ १ ॥

हर्षः—समीक्ष्य पुत्रस्य चिरात्पिता मुखं निधानकुम्भस्य यथैव दुर्गतः । मुदा शरीरे प्रबभूव नात्मनः पयोधिरिन्दूदयमूर्छितो यथा ॥ १ ॥

विषादः—एषा कुटिलघनेन चिकुरकलापेन तव निबद्धा वेणिः । मम सखि दारयति दशत्यायसयष्टिरिव कालोरगीव हृदयम् ॥ १ ॥ नन्वेष राक्षसपतेः स्खलितः प्रतापः प्राप्तोऽद्भुतः परिभवो हि मनुष्यपोतात् । दृष्टः स्थितेन च मया स्वजनप्रमाथो दैन्यं जरा च निरुणद्धि कथं करोमि ॥ २ ॥

धृतिः—कृत्वा दीननिपीडनं निजजने बद्ध्वा वचोविग्रहं नैवालोच्य गरीयसीरपि चिरादामुष्मिकीर्यातनाः । द्रव्यौघाः परिसञ्चिताः खलु मया यस्याः कृते साम्प्रतं नीवाराञ्जलिनापि केवलमहो सेयं कृतार्था तनुः ॥ १ ॥

धृतिः (ज्ञानात्)—वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः । स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः ॥ १ ॥

चापलम्—विनिकषणरणत्कठोरदंष्ट्राक्रकचविशङ्कटकन्दरोदराणि । अहमहमिकया पतन्तु कोपात्सममधुनैव किमत्र मन्मुखानि ॥ १ ॥

चिन्ता—कमलेन विकसितेन संयोजयन्ती विरोधिनं शशिनम् । करतलपर्यस्तमुखी किं चिन्तयसि सुमुखि अन्तराहितहृदया ॥ १ ॥

वितर्कः—किं लोभेन विलङ्घितः स भरतो येनैतदेवं कृतं सद्यः स्त्रीलघुतां गता किमथवा मातैव मे

कर । निन्दा कर-करके इस बहाने दूसरोंके यश घटा देना—धो देना सरल नहीं है । यदि इच्छा और द्वेषसे भरा तू निन्दा करना नहीं छोड़ेगा तो वैसे ही स्वयं थककर हार बैठेगा जैसे सूर्यकी किरणोंको हाथके छत्रके सहारे रोकनेवाला स्वयं थककर शान्त हो जाता है । इस प्रकार निन्दा कर-करके तू किसीका कुछ बिगाड़ नहीं पावेगा ॥ १ ॥

हर्ष : जैसे कोई दरिद्र पूर्वजोंकी गड़ी हुई धरोहरके घड़ेका मुख देखकर प्रसन्न हो उठता है वैसे ही बहुत आयु बीत चुकनेपर पुत्रका मुँह देखकर पिता (दिलीप) ऐसे फूले न समाए जैसे चन्द्रमाका उदय देखकर समुद्र उमड़ पड़ता है ॥ १ ॥

दुःख : हे सखी ! तेरी यह घुँघराले बालोंकी चोटी लोहेकी सलाईके समान मेरा हृदय फाड़े डाल रही है तथा भयङ्कर नागिनके समान डसे ले रही है ॥ १ ॥ हाय ! यह क्या अचरज है कि समुद्रमें लौकियाँ (तूँबियाँ) डूब रही हैं और पत्थर तैर रहे हैं ! ऐसा जान पड़ रहा है कि राक्षसोंके स्वामी (मुझ) रावणका प्रताप मन्द पड़ रहा है ! तभी तो इस मनुष्यके बच्चेसे मेरी हार हो रही है । मैंने जीते जी अपनी आँखोंसे भाई-बन्धुओंका विनाश देखा है । दीनता और बुढ़ापा दोनोंने मुझे बेबस कर दिया है । अब मैं क्या करूँ ? ॥ २ ॥

धैर्य : दीनोंका गला घोंटकर, आपसी लोगोंके साथ झगड़े ठानकर और परलोकमें होनेवाली कड़ीसे कड़ी यमयातनाका ध्यान न करके जिस शरीरके लिये मैंने ढेर सा धन इकट्ठा किया वह आज मुट्ठी-भर साँवेंके चावलोंसे ही सन्तुष्ट हो रहा है ! ॥ १ ॥

ज्ञानके कारण धैर्य : हम लोग इन वृक्षोंकी छाल (वल्कल) से ही सन्तुष्ट हैं और तुम सम्पत्तिसे सन्तुष्ट हो । इस प्रकार तुम्हारा और हमारा सन्तोष समान ही है । दरिद्र तो वह होता है जिसकी तृष्णा बहुत बढ़ी-चढ़ी होती है । अरे, मनके सन्तुष्ट रहते कौन धनी और कौन दरिद्र ! ॥ १ ॥

चपलता : रावण कह रहा है—'बार-बार पीसनेसे शब्द करती हुई कठोर डाढ़ोंरूपी आरोंसे भयङ्कर कन्दरावाले मेरे सब मुँह 'पहले मैं खाऊँ, पहले मैं खाऊँ' इस हड़बड़ीमें एक साथ ही यहाँ (इस वानर-सेनापर) गिर पड़ें तो कितना अच्छा हो ! अथवा अवसर देखकर ठीक प्रकारसे काम करूँगा' ॥ १ ॥

चिन्ता : हे सुमुखी ! कर-कमलपर मुखचन्द्र रखे हुए तू मानो सदाके विरोधी चन्द्रबिम्बको खिले हुए कमलसे मिलाती हुई मन ही मन क्या सोच रही है ? ॥ १ ॥

वितर्क : लक्ष्मण तर्क करते हैं—'क्या भरत लोभके वशीभूत हो गया जिससे उसने ऐसा किया (रामको वन भेजा है) ? या मेरी मँझली माँ कैकेयी ही दूसरी स्त्रियोंके समान सर्वथा ही खोटे विचारवाली हो गई है ! या मेरी सोची हुई ये दोनों बातें झूठ हैं क्योंकि भरत भी रामके छोटे भाई तथा मेरे बड़े भाई हैं, साथ ही माता कैकेयी पूज्य

मध्यमा। मिथ्यैतन्मय चिन्तितं द्वितयमप्यार्यानुजोऽसौ गुरुर्माता तातकलत्रमित्यनुचितं मन्ये विधात्रा कृतम् ॥ १ ॥

स्त्रीप्रशंसा—अकृत्रिमप्रेमरसा विलासालसगामिनी। असारे दग्धसंसारे सारं सारङ्गलोचना ॥ १ ॥ अधरे नववीटिकानुरागो नयने कज्जलमुज्ज्वलं दुकूलम्। इदमाभरणं नितम्बिनीनामितरद्भूषणमङ्गदूषणाय ॥ २ ॥ अबला इत्यवज्ञेया न कदाऽपि विवेकिभिः। त्रैलोक्यं यद्दृशां दासः स्यात्तन्निर्बलता कुतः ॥ ३ ॥ अमृतममृतं कः सन्देहो मधून्यपि नान्यथा मधुरमधिकं चूतस्यापि प्रसन्नरसं फलम्। सकृदपि पुनर्मध्यस्थः सन्रसान्तरविज्ञनो वदतु यदिहान्यत्स्वादु स्यात्प्रियारदनच्छदात् ॥ ४ ॥ अमृतस्येव कुण्डानि रत्नानामिव राशयः। रतेरिव निधानानि निर्मिताः केन योषितः ॥ ५ ॥ अलमतिचपलत्वात्स्वप्नमायोपमत्वात्परिणतिविरसत्वात्सङ्गमेनाङ्गनायाः। इति यदि शतकृत्वस्तत्त्वमालोचयामस्तदपि न हरिणाक्षीं विस्मरत्यन्तरात्मा ॥ ६ ॥ अवलोकनमपि सुखयति कुवलयदलचारुचपलनयनायाः। किं पुनरमृतसमानं सरभसमालिङ्गनं तस्याः ॥ ७ ॥ अविश्वसन्धूर्तधुरन्धरोऽपि नरः पुरन्ध्रीपुरतोऽन्ध एव। अशेषशिक्षाकुशलोऽपि काकः प्रतार्यते किन्न पिकाङ्गनाभिः ॥ ८ ॥ आदानपानलेपैः काश्चिद्गरलोपतापहारिण्यः। पुरतः स्थितैव सिद्धौषधिवल्ली कापि जीवयति ॥ ९ ॥ आलोलैरुपगम्यते मधुकरैः केशेषु माल्यग्रहः कान्तिः कापि कपोलयोः प्रथयते ताम्बूलमन्तर्गतम्। अङ्गानामनुलेपनं परिमलैरालेपनप्रक्रिया वेषः कोऽपि सरोजसुन्दरदृशः सूते सुखं चक्षुषोः ॥ १० ॥ आश्लेषे सुन्दरीणां स्थितवति सहसा सर्वसन्तृप्तिहेतौ व्यर्थः पीयूषमाप्तुं जलनिधिमथने यत्न इत्याकलय्य। तस्मादेते विरक्ता जगति सुमनसो यत्समस्तास्तदद्धा स्वर्गस्थानामिवैषां न कथमितरथा लाघवं स्यात्प्रतीतम् ॥ ११ ॥ आस्यं

पिताकी पत्नी हैं अतः रामके छोटे भाई तथा दशरथकी पत्नीसे ऐसा अनुचित कार्य नहीं हो सकता। ऐसा जान पड़ता है कि यह सारी अनुचित करतूत विधाताकी ही है' ॥ १ ॥

स्त्री-प्रशंसा : इस निगोड़े असार संसारमें स्वाभाविक प्रेम-रूपी रससे भरी हुई और हाव-भावसे अलसाकर चलनेवाली मृगनयनी ही सार है ॥ १ ॥ ओठमें पानके नये बीड़ेकी ललाई, नयनोंमें काजल और गलेमें उजला दुपट्टा, यही तो यथार्थमें नवेलियोंकी सजावट है, इसके अतिरिक्त और सब तो उन्हें भद्दा बना देते हैं ॥ २ ॥ बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिए कि वे स्त्रियोंको अबला (निर्बल) समझकर न दुतकारें। भला तीनों लोक जिनकी चितवनका दास है वे निर्बल कैसे हो सकती हैं। ॥ ३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि अमृत-अमृत ही है, मधु भी अत्यधिक मधुर होता है। यह भी ठीक ही है कि आमका फल भी बहुत मीठा होता है किन्तु इनके अतिरिक्त किसी रसको चखनेवाला ही कोई निर्णायक बनकर बता दे कि इस संसारमें प्रियतमाके ओठसे बढ़कर क्या कोई दूसरी स्वादिष्ट वस्तु है! ॥ ४ ॥ ऐसी सुन्दरियाँ भला किसने रचीं जो मानो अमृतकी कुण्ड हैं, रत्नोंकी ढेर हैं और रतिक्रीडाकी भण्डार हैं? ॥ ५ ॥ 'स्वप्नकी मायाके समान अत्यन्त क्षणिक और नीरस परिणामवाले स्त्रियोंके सहवाससे क्या लाभ?' ऐसी बातें सैकड़ों बार भली-भाँति सोच-विचारकर, तत्त्व समझकर भी हमारा अन्तरात्मा उस मृगनयनी नवेलीको भूलता नहीं ॥ ६ ॥ कमलकी पंखुड़ीके समान सुन्दर और चञ्चल नयनवाली जिस नवेलीको एक बार देख लेने-मात्र ही शरीर सुखी हो जाता है वह यदि आकर गले लग जाय तब तो कहना ही क्या है! ॥ ७ ॥ सब धूर्तोंका मुखिया और कभी किसीपर विश्वास न करनेवाला व्यक्ति भी स्त्रीके सामने अन्धा ही है। यदि यह बात न होती तो सब प्रकारसे चतुर कौएको क्या कोयलियाँ ठग पातीं? ॥ ८ ॥ कुछ जड़ी-बूटियाँ तो ऐसी होती हैं जो हाथमें लेनेपर, पीनेपर और लेप करनेपर विषकी गर्मी हरण कर लेती हैं किन्तु यह नवेली तो कोई ऐसी सिद्ध जड़ी है जो सामने खड़ी रहनेपर ही जिलाए दे रही है ॥ ९ ॥ इस कमलके समान सुन्दर आँखवाली सुन्दरीका वह रूप-रङ्ग नेत्रोंको सुख दे रहा है जिसके पीछे-पीछे चञ्चल भौंरे दौड़ रहे हैं, मालाएँ सजी हैं, गालोंपर ऐसी कान्ति चमक रही है जिसके भीतर पानकी लाली छाई हुई है और जिसके अङ्गोंमें सुगन्धित द्रव्योंसे उबटन लगाया गया है ॥ १० ॥ 'सब प्रकारकी सन्तुष्टि देनेवाला सुन्दरियोंका आलिङ्गन जब है ही तब अमृत पानेके लिये समुद्र मथना व्यर्थ है!' ऐसा सोचकर ही मानो सारे देवता स्वर्ग छोड़कर संसारमें विरक्त होकर घूम रहे हैं। यदि ऐसी बात न होती तो ये इतने तुच्छ क्यों जान पड़ते?

सहास्यं नयनं सलास्यं सिन्दूरबिन्दूदयशोभि भालम्। नवा च वेणी हरिणीदृशश्चेदन्यैरगण्यैरपि भूषणैः किम् ॥ १२ ॥ उडुराजमुखी मृगराजकटिर्गजराजविराजितमन्दगतिः। यदि सा वनिता हृदये निहिता क्व जपः क्व तपः क्व समाधिरतिः ॥ १३ ॥ उपनिषदः परिपीता गीतापि च हन्त मतिपथं नीता। तदपि न हा विधुवदना मानससदनाद्बहिर्याति ॥ १४ ॥ कमलशरधिरम्भासैकतानुक्रमाढ्यं कनककलशभाराक्रान्तसौदामिनीकम्। किसलयितमृणालं हारगर्भप्रवालं कुवलयितशशाङ्कं कौशलं सा विधातुः ॥ १५ ॥ कार्पासकृतकूर्पासशतैरपि न शाम्यति। शीतं शातोदरीपीनवक्षोजालिङ्गनं विना ॥ १६ ॥ किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापैर्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम्। अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां स्तनभरपरिखिन्नं यौवनं वा वनं वा ॥१७॥ गतिर्नागेन्द्राभा वचनरचना चाऽमृतसमा स्मितं ज्योत्स्नारोचिः सुकृतफलवद्दर्शनमपि। परिष्वङ्गस्तापप्रशमनविधौ स्वात्मसुखवत्सदा यासामद्धा कमलनयनास्ता ननु नुवे ॥ १८ ॥ गतिर्वेणी च नागेन वपुरूरू च रम्भया। पाणी प्रवालैरोष्ठौ च तस्यास्तुल्यत्वमाययुः ॥१९॥ ज्योत्स्नेव नयनानन्दः सुरेव मदकारणम्। प्रभुतेव समाकृष्टसर्वलोका नितम्बिनी ॥ २० ॥ तदवधि केचन वीरा धीरा वा केचन स्मृताः सन्तु। यदवधि कुरङ्गशावकलोलविलोकाविलोकिता न स्युः ॥ २१ ॥ तदाखण्डलाशा महीमण्डलाशां तथा भोगिभोगानुरागं त्यजामः। मनःक्षोभदक्षान्कृपातः कटाक्षान्कुरङ्गेक्षणाश्चेत्क्षणं पातयन्ति ॥ २२ ॥ तद्वक्त्रस्य कलङ्क एव तुलना पीयूषधाम्नाऽपि यत्कन्दर्पस्य धनुर्निदर्शनमिदं निन्दास्पदं तद्भ्रुवोः। सा तल्लोचनयोस्त्रपा कुवलयैस्साधर्म्यचिन्ताऽपि या तस्यास्तत्प्रतिबिम्बमेव नियतं

॥ ११ ॥ यदि मृगनयनी नवेलीका मुँह हँसीसे भरा हो, नयन नाच रहे हों, माथेपर सिन्दूरकी बिन्दी चमक रही हो और उसने तत्काल चोटी गूँथ ली हो तो दूसरे अनगिनत गहनोंकी उसे आवश्यकता ही क्या है? ॥ १२ ॥ यदि ऐसी नवेली हृदयमें जमकर बैठ जाय जिसका मुख चन्द्रमाके समान हो, कमर सिंहके समान हो और चाल मतवाले हाथीके समान मदमाती धीमी हो तो कहाँका जप, कहाँका तप और कहाँकी समाधि! ॥ १३ ॥ उपनिषदोंको हम भली भाँति घोंटकर पी गए और अपनी बुद्धि भी हमने सर्वथा गीताके अनुसार ही बना ली है किन्तु हाय! इतना सब करनेपर भी हृदयरूपी घरमें बैठी हुई वह चन्द्रमुखी बाहर नहीं निकल पाती! ॥ १४ ॥ कमल (पैर), तरकश (पिंडली), केलेके खम्भे (जाँघें) तथा बालूकी धरती (नितम्ब) वाली तथा सोनेके घड़ोंके भारसे लदी हुई (स्तनोंवाली) यह जो बिजली (नवेली) चमक रही है, जिसमें कमलनाल (भुजा) पर किसलय (उँगलियाँ) उगी हुई हैं, मूँगे (अधर) के भीतर मोतीका हार (दाँतोंकी पाँत) सजी है और जिसमें चन्द्रमा कमल (मुँह) बना हुआ है, इसे ब्रह्माजीकी कोई निराली ही कला समझनी चाहिए ॥ १५ ॥ रूईसे बनी हुई सैकड़ों सौड़ें भले ही भरी पड़ी हों किन्तु पतली कमरवाली नवेलीके मोटे-मोटे स्तनोंका आलिङ्गन किए बिना किसी प्रकार भी ठण्डक मिट नहीं सकती ॥ १६ ॥ व्यर्थ ही बहुत-सी ऊटपटाँग बातें बकनेसे क्या लाभ! पुरुषोंको चाहिए कि वे इन दोनोंका ही सदा सेवन करें—एक तो नई मस्ती और हाव-भावसे अलसाया हुआ तथा स्तनोंके भारसे थका हुआ यौवन और दूसरा वन ॥ १७ ॥ मैं उन कमलनयनी नवेलियोंको नमस्कार करता हूँ जिनकी चाल मतवाले हाथीके समान, बोली अमृतके समान, मुस्कान चाँदनीके समान और दर्शन पुण्योंके फलके समान है तथा सन्ताप मिटानेके लिये जिनका आलिङ्गन मानो ब्रह्मानन्द जैसा ही है ॥१८॥ उस नवेलीकी चाल हाथीके समान, चोटी नागके समान, देह रम्भा अप्सराके समान, जाँघें केलेके समान तथा हाथ और ओठ मूँगेके समान हैं ॥ १९ ॥ सुन्दरी स्त्रियाँ सारे संसारको आनन्द देनेके लिये मानो चाँदनी हैं, मस्त करनेके लिये मदिरा हैं और वशमें करनेके लिये प्रभुता (राजसत्ता) हैं ॥ २० ॥ लोग तभीतक धीर-वीर समझे जाते हैं जबतक मृगके बच्चेके समान चञ्चल नेत्रोंवाली नवेलीकी चितवन उनपर नहीं पड़ पाती ॥ २१ ॥ यदि मृगनयनी सुन्दरियाँ क्षण-भर भी मनको व्याकुल कर देनेवाली अपनी चितवन हमपर चला दें तो हम इन्द्र बननेकी, पृथ्वीपति बननेकी तथा महाराजाओंके समान ऐश्वर्य भोगनेकी साध भी छोड़ दें ॥२२॥ उसके मुँहका तिल चन्द्रमाके ही समान है, उसकी भौंहोंके रहते कामदेवका धनुष तुच्छ है और उसकी आँखोंमें जो लाज है उसकी समताके लिये सोचा जाय तो झुके हुए कमल भी बहुत कम ही समानता

मात्राविसंवादिनी ॥ २३ ॥ तरुणिमनि कृतावलोकना ललितविलासविलब्धविग्रहा। स्मरशरविसराचितान्तरा मृगनयना हरते मुनेर्मनः ॥ २४ ॥ तावदेव कृतिनां हृदि स्फुरत्येष निर्मलविवेकदीपकः। यावदेव न कुरङ्गचक्षुषां ताड्यते चपललोचनाञ्चलैः ॥ २५ ॥ तावदेव विदुषां विवेकिनी बुद्धिरस्ति भवबन्धभेदिनी। यावदिन्दुवदना न कामिनी वीक्षिता रहसि हंसगामिनी ॥ २६ ॥ दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः। विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः ॥ २७ ॥ दृशा विदधिरे दिशः कमलराजिनीराजिताः कृता हसितरोचिषा हरति चन्द्रकान्तिश्रियः। अकारि हरिणीदृशः प्रबलदण्डकप्रस्फुरद्वपुर्विपुलरोचिषा वियति विद्युतां विभ्रमः ॥ २८ ॥ द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशः प्रेमप्रसन्नं मुखं घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्राव्येषु किं तद्वचः। किंस्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तद्वपुर्ध्येयं किं नवयौवने सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः ॥ २९ ॥ द्रुतं यस्यालोकाद्विरहिजनशोकापनयनं यदङ्के सानन्दं नयनमरविन्दं विहरति। न यस्यापैति श्रीः कचनिचयराहोरपि पुरः स मे खेदं रामावदनहिमधामा शमयतु ॥ ३० ॥ न हयैर्न च मातङ्गैर्न रथैर्न च पत्तिभिः। स्त्रीणामपाङ्गदृष्ट्यैव जीयते जगतां त्रयम् ॥ ३१ ॥ नामृतं न विषं किञ्चिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम्। यस्याः सङ्गेन जीव्येत म्रियेत च वियोगतः ॥ ३२ ॥ नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीस्ताः। याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथं ताः ॥ ३३ ॥ पादसंवाहने वज्री केशसम्मार्जने फणी। अहो भाग्यं पुरन्ध्रीणां दधिसम्मन्थने रविः ॥ ३४ ॥ प्रभवति मनसि विवेको विदुषामपि शास्त्रसम्भवस्तावत्। निपतन्ति दृष्टिविशिखा यावन्नेन्दीवराक्षीणाम् ॥३५॥

कर पाते हैं ॥ २३ ॥ युवावस्थामें यहाँ-वहाँ देखती हुई, सुन्दर हाव-भावोंसे भरे हुए शरीरवाली तथा कामदेवके सैकड़ों बाणोंसे भरी हुई कमलनयनी मुनियोंका भी मन हर लेती है ॥ २४ ॥ कर्म करनेवाले मनुष्योंके मनमें तबतक ही ज्ञानका निर्मल दीपक जलता है जबतक मृगनयनी नवेलियोंके चञ्चल चितवन-रूपी आँचल उसे बुझा नहीं देते ॥ २५ ॥ विद्वानोंमें संसारके बन्धन काटनेवाली और अच्छे-बुरेका विचार करनेवाली बुद्धि तबतक ही रहती है जबतक एकान्तमें हंसके समान चालवाली चन्द्रमुखी नवेली नहीं दिखाई पड़ जाती ॥ २६ ॥ दृष्टिसे जलाए हुए कामदेवको जो अपनी दृष्टिसे ही जिला देती हैं उन शिवजीको जीतनेवाली बाँकी चितवनवाली सुन्दरियोंकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २७ ॥ मृगनयनी नवेलीकी चितवनोंने दिशाओंकी ऐसी शोभा बढ़ा दी मानो वे कमलकी पाँतोंसे सजी हों, उसका प्रबल दण्ड-सा चमचमाता हुआ शरीर अपनी मुस्कराहटकी कान्तिसे चाँदनीकी वर्षाकी शोभा भी हर रहा है और उसकी चमकने आकाशमें बिजलियों-जैसी चमक भर दी है ॥ २८ ॥ सबसे अधिक देखने-योग्य वस्तुओंमें मृगनयनीका प्रेम-भरा प्रसन्न मुँह, अत्युत्तम सूँघने-योग्य वस्तुओंमें उसके मुँहकी साँस, सुनने योग्य उत्तम वस्तुओंमें उसकी मीठी बोली, चखने-योग्य वस्तुओंमें उसके किसलय-जैसे ओठका रस और छूने-योग्य वस्तुओंमें उसकी देह ही सर्वोत्तम है, अतः रसिकोंको चाहिए कि नई जवानीमें सदा सर्वत्र उसके हाव-भावोंका ही ध्यान करते रहें ॥ २९ ॥ सुन्दरीका वह चन्द्रमाकी-सी कान्तिवाला मुँह मेरा खेद मिटा दे जिसे देखकर तत्काल विरहियोंका शोक लुप्त हो जाता है, जिसकी गोदमें नेत्ररूपी कमल आनन्दसे डोलते रहते हैं और घने बाल-रूपी राहुके रहते भी जिसकी सुन्दरता मलिन नहीं हो पाती ॥ ३० ॥ स्त्रियोंकी बाँकी चितवन ही जब तीनों लोकोंको जीत लेती है तो घोड़ा, हाथी, रथ तथा पैदल सेनाकी आवश्यकता क्या है ! ॥ ३१ ॥ बड़े-बड़े नितम्बवाली नवेलीके अतिरिक्त न तो दूसरा कोई अमृत है, न विष है क्योंकि उसके संयोगसे ही मनुष्य जी जाता है और बिछोह होते ही मर जाता है ॥ ३२ ॥ वे महाकवि निश्चय ही उल्टी बुद्धिवाले रहे हैं जिन्होंने स्त्रियोंको अबला (निर्बल) कहा है। भला बताइए, जिनके चंचल पुतलियाँ फेरते ही इन्द्र आदि देवता भी व्याकुल होकर वशमें हो जाते हैं वे अबला कैसे हो सकती हैं ! ॥ ३३ ॥ धन्य है उन श्रेष्ठ नारियोंका भाग्य ! जिनके पैर दबाने (पैरोंका मल छुड़ाने) का काम इन्द्र (ईंटका चूर्ण) करता है, बाल सँवारनेका काम शेषनाग (कंघी) करता है और दही मथनेका काम सूर्य (मथनी) करता है ॥ ३४ ॥ विद्वानोंके मनमें भी शास्त्रका ज्ञान तभीतक ठहर पाता है जबतक कमलनयनी नवेलियोंकी चितवन-रूपी छुरियाँ उन्हें वेध नहीं देतीं ॥ ३५ ॥ वे लोग बड़े मूर्ख हैं जो प्राण और प्यारीको समान बतलाते हैं क्योंकि प्यारीके गले लग जानेसे तो आनन्द

प्राणनाशच प्रियायाश्च मूढाः सादृश्यकारिणः। प्रिया कण्ठगता रत्यै प्राणा मरणहेतवः ॥ ३६॥ भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामत्र गुरवो विदग्धालापानां वयमपि कवीनामनुचराः। तथाप्येतद्ब्रूमो न हि परहितात्पुण्यमधिकं न चास्मिन्संसारे कुवलयदृशो रम्यमपरम् ॥ ३७॥ भ्रूचातुर्याकुञ्चिताक्षा कटाक्षाः स्निग्धा वाचो लज्जिताश्चैव हासाः। लीलामन्दं प्रस्थितं च स्थितं च स्त्रीणामेतद्भूषणं चायुधं च ॥ ३८॥ मनसिजशितशरतापितमनसां मोदाय सुस्मिता वनिता। तपनजतापं शमयितुमेका लेखा विधोर्निपुणा ॥ ३९॥ मन्दं स्मितं मृदु वचो नयनैकपातं किञ्चिन्निरीक्षणमहो अबलाजनस्य। वीरान्विजेतुमनघानि शितानि धात्रा शस्त्राणि हन्त विरचय्य समर्पितानि ॥ ४०॥ मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्यमार्याः समयादमिदं वदन्तु। सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणामुत स्मरस्मेरविलासिनीनाम् ॥ ४१॥ जये धरित्र्याः पुरमेव सारं पुरे गृहं सद्मनि चैकदेशः। तत्रापि शय्या शयने वरा स्त्री रत्नोज्ज्वला राज्यसुखस्य सारः ॥ ४२॥ यत्र पतत्यबलानां दृष्टिर्निशिताः पतन्ति तत्र शराः। तच्चापरोपितशरो धावत्यासां पुरः स्मरो मन्ये ॥ ४३॥ यत्रैता लहरीचलाचलदृशो व्यापारयन्ति भ्रुवं यत्तत्रैव पतन्ति सन्ततममी मर्मस्पृशो मार्गणाः। तच्चक्रीकृतचापमञ्चितशरप्रेङ्खत्करः क्रोधनो धावत्यग्रत एव शासनधरः सत्यं सदासां स्मरः ॥ ४४॥ यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य। यस्य च सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य ॥ ४५॥ यावद्दृष्टिर्मृगाक्षीणां नो नरीनर्ति भङ्गुरा। तावज्ज्ञानवतां चित्ते विवेकः कुरुते पदम् ॥ ४६॥ यासां नाम्नापि कामः स्यात्सङ्गमं दर्शनं विना। तासां दृक्सङ्गमं प्राप्य यन्न द्रवति कौतुकम् ॥ ४७॥ यासा-

---

हो जाता है किन्तु प्राणोंके गलेतक आ जानेसे तो मनुष्यके प्राण ही निकल जाते हैं ॥ ३६ ॥ वेदान्तके द्वारा जिन्होंने अपनी बुद्धि स्थिर कर ली है ऐसे लोगोंमें भी आप लोग यद्यपि श्रेष्ठ हैं किन्तु हम लोग भी पाण्डित्यपूर्ण कविता करनेवाले कवियोंके सेवक हैं। फिर भी इतना तो हम अवश्य कहेंगे कि इस संसारमें दूसरोंकी भलाई करनेसे बढ़कर न तो कोई पुण्य है और न कमलनयनीसे बढ़कर दूसरी कोई सुन्दर वस्तु है ॥ ३७ ॥ भौंहें चलानेकी चतुरतासे सिकुड़ी हुई आँखें, रसीली चितवनें, लजीली हँसी, हाव-भावके साथ रुकती हुई धीमी चाल यही सब स्त्रियोंके गहने हैं और ये ही उनके शस्त्र भी हैं ॥ ३८ ॥ जैसे चन्द्रमाकी कला ही एकमात्र गर्मीकी तपन बुझा सकती है वैसे ही कामदेवके बाणोंसे सन्तप्त मनवालोंको वह मुस्कराती हुई एकमात्र नवेली ही आनन्द दे सकती है ॥ ३९ ॥ वाह ! वीरोंको मार गिरानेके लिये ब्रह्माने अबलाओंको मन्द मुस्कान, मीठी बोली, आँखोंका कँपना और बाँकी चितवन रूपी कैसे पवित्र और तीखे शस्त्र सौंप दिए हैं ! ॥४०॥ सज्जनो ! ईर्ष्या छोड़कर तथा विचार करके आप लोग बिना मर्यादा तोड़े यह बतावें कि मनुष्योंको पर्वतपर जाकर बसना चाहिए या कामके मदसे इठलाती हुई नवेलियोंके नितम्बोंपर ? ॥४१ ॥ सारी धरतीको लोग इसीलिये जीतते हैं कि उसमें कोई सुन्दर नगर प्राप्त हो, उस नगरमें भी एक घर, घरमें भी एक कोठा, कोठेमें भी सुन्दर शय्या और शय्यापर रत्नोंसे जगमगाती हुई अत्यन्त सुन्दरी नवेली, बस, यही तो राजाओंके सुखका सार है ! ॥ ४२ ॥ मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि कामदेव अपने धनुषपर बाण चढ़ाए हुए स्त्रियोंके आगे-आगे दौड़ता रहता है क्योंकि जहाँ इनकी चितवन पड़ी, वहीं बाण बरसे ॥ ४३ ॥ लहरोंके समान चञ्चल नयनोंवाली ये स्त्रियाँ जहाँ-जहाँ अपनी भौंहें चलाती हैं वहाँ-वहाँ सदा हृदय वेधनवाले बाण बरसने लगते हैं। अतः यह बात सत्य है कि हाथमें खिंचा हुआ धनुष और सजा हुआ बाण सँभाले कामदेव शासन करनेके लिये क्रोधित होकर सदा इनके आगे-आगे दौड़ता रहता है ॥ ४४ ॥ प्रियतमा जिसके पास रहती है उसके लिये दावानल भी चन्द्रमा बन जाता है और जिसके पास प्रियतमा नहीं रहती उसके लिये चन्द्रमा भी दावानल बन जाता है ॥ ४५ ॥ ज्ञानियोंके चित्तमें तभीतक ज्ञान जमा रहता है जबतक मृगनयनी नवेलियोंकी बाँकी चितवन भली-भाँति नाचने नहीं लग जाती ॥ ४६ ॥ जिनका नाम सुनते ही काम जाग उठता है और जिन्हें बिना देखे ही सङ्गम हो जाता है उनकी चितवनोंके सामने पड़कर भी जो नहीं विचलित होता उसीपर आश्चर्य होता है ॥ ४७ ॥ जिनके आँचलके पवनसे ही दीपक मुक्त हो गया (बुझ गया) उनका आलिङ्गन करनेसे मनुष्य भला नरकमें कैसे गिरेंगे! ॥४८॥ स्त्रियाँ ही रत्नोंकी शोभा बढ़ा देती हैं; रत्नोंकी चमकसे स्त्रियोंकी शोभा नहीं बढ़ती क्योंकि बिना रत्नोंके भी स्त्रियाँ

मञ्चलवातेन दीपो निर्वाणतां गतः। तासामालिङ्गने पुंसां नरके पतनं कुतः ॥ ४८ ॥ रत्नानि विभूषयन्ति योषा भूष्यन्ते वनिता न रत्नकान्त्या। चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनाङ्गनाङ्गसङ्गात् ॥ ४९ ॥ ललाटे कस्तूरीतिलकमवलाः कज्जलरुचिं दृशोः कर्णद्वन्द्वे विमलमणिताटङ्कयुगलम्। गले मुक्तामालां शुचि वसनमङ्गे च सततं वशीकर्तुं विश्वं दधति खलु बाह्योपकरणम् ॥ ५० ॥ वचसि भवति सङ्गत्यागमुद्दिश्य वार्ता श्रुतिमुखरमुखानां केवलं पण्डितानाम्। जघनमरुणरत्नग्रन्थिकाञ्चीकलापं कुवलयनयनानां को विहातुं समर्थः ॥ ५१ ॥ विजनमिति बलादमुं गृहीत्वा क्षणमथ वीक्ष्य विपक्षमन्तिकेऽन्या। अभिपतितुमना लघुत्वभीतेरभवदमुञ्चति वल्लभेऽतिगुर्वी ॥ ५२ ॥ विनयति सुदृशो दृशः परागं प्रणयिनि कौसुममाननानिलेन। तदहितयुवतेरभीक्ष्णमक्ष्णोर्द्वयमपि रोषरजोभिरापुपूरे ॥ ५३ ॥ विपुलकमपि यौवनोद्धतानां घनपुलकोदयकोमलं चकाशे। परिमलितमपि प्रियैः प्रकामं कुचयुगमुज्ज्वलमेव कामिनीनाम् ॥ ५४ ॥ विमुञ्चति बुधो जनः सुकृतचिन्तनं दूरतो जहाति च मुनिस्तपस्त्यजति धीरतां शङ्करः। विधिर्भवति चञ्चलस्त्रिजगतीपतिः क्षुभ्यति क्षणं कुटिलदृष्टयो यदि पतन्ति वामभ्रुवः ॥ ५५ ॥ विलसितमनुकुर्वती पुरस्ताद्धरणिरुहाधिरुहो वधूर्लतायाः। रमणमृजुतया पुरः सखीनामकलितचापलदोषमालिलिंङ्ग ॥ ५६ ॥ विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशनास्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः। शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवास्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरे ॥ ५७ ॥ व्रततिविततिभिस्तिरोहितायां प्रतियुवती वदनं प्रियः प्रियायाः। यदधयदधरावलोपनृत्यत्करवलयस्वनितेन तद्विचक्रे ॥ ५८ ॥ व्रीडावेलारुद्धं सागरसलिलमिव योषितां हृदयम्। रागेन्दुरुदयमानो भूयो भूयस्तरङ्गयति ॥ ५९ ॥ श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्लादजननं न रत्नं स्त्रीभ्योऽन्यत्क्वचिदपि कृतं लोकपतिना। तदर्थं

मन हर लेती हैं किन्तु बिना स्त्रियोंके अङ्गोंमें सजे रत्न मन नहीं हर सकते ॥ ४९ ॥ माथेपर कस्तूरीका तिलक, नयनोंमें काजल, दोनों कानोंमें निर्मल मणिके कनफूल, गलेमें मोतीकी माला और देहपर पवित्र वस्त्र, इस सब बाहरी सजावटको स्त्रियाँ सारे संसारको वशमें करनेके लिये ही सदा धारण किया करती हैं ॥ ५० ॥ वेदोंको रट-रटकर मुँहोंमें बसाए हुए पण्डित लोग 'आसक्ति छोड़ने'के विषयमें जो बातें करते हैं वे उनकी बोलीतक ही रहती हैं; सचमुच लाल-लाल रत्नोंसे गुँथी हुई करधनीसे सजा हुआ कमलनयनी सुन्दरियोंका जघन-भाग कौन छोड़ सकता है ? ॥ ५१ ॥ एकान्त देखकर किसी स्त्रीने किसी पुरुषको पकड़ लिया और कोई वैरी देख न ले इस डरसे चारों ओर देखकर उसने गिर पड़ना चाहा किन्तु पुरुष दुबला था और उसे कसकर पकड़े हुए था अतः उस स्त्रीने अपनी ही देह शिथिल करके भारी कर दी ॥ ५२ ॥ जिस समय कोई प्रेमी किसी सुनयनी प्रेमिकाको प्रसन्न करनेके लिये उसकी आँखोंमें फूलका पराग फूँककर उड़ा रहा था उस समय उसकी आँखें तो फूलका पराग पड़नेसे लाल हुईं किन्तु उसकी जो वैरिन यह सब देख रही थी उसकी आँखें क्रोधके मारे लाल हो उठीं ॥ ५३ ॥ मदमाती नवेलियोंके दोनों स्तन यद्यपि रोमाञ्चित नहीं हुए थे किन्तु प्रियतमोंने उन्हें भली-भाँति मसलकर ऐसे उजले और कोमल बना दिए थे मानो उनमें घने रोंगटे उभड़ आए हों ॥ ५४ ॥ बाँकी भौंहोंवाली सुन्दरीकी तिरछी चितवनें क्षण-भर भी पड़ जाती हैं तो बुद्धिमान् मनुष्य पुण्यकी चिन्ता छोड़ देता है, मुनि तपस्या छोड़ बैठता है, शङ्कर धीरज छोड़ बैठते हैं, ब्रह्मा चञ्चल हो उठते हैं और तीनों लोकोंके स्वामी (भगवान् विष्णु) व्याकुल हो उठते हैं ॥ ५५ ॥ सामने वृक्षपर लिपटी (चढ़ी) हुई लताके समान आचरण करती हुई कोई बहू सखियोंके सामने ही सीधे-सादे भावसे बिना चञ्चलताके अपने पतिके गले जा लगी ॥ ५६ ॥ पवन और पानी पीकर तथा पत्ते खाकर रहनेवाले विश्वामित्र, पराशर आदि तपस्वी भी जब स्त्रीका सुन्दर कमलमुख देखते ही मोहित हो गए तो सदा घी, दूध और दही मिले हुए उत्तम धानके चावल खानेवाले मनुष्य यदि अपनी इन्द्रियाँ वशमें कर रक्खें तब तो विन्ध्य पर्वत भी समुद्रमें तैरने लग जाय ॥५७॥ लताओंकी झाड़ीमें प्रेमिका और प्रेमी जाकर छिप तो गए किन्तु जब प्रेमी अपनी प्रेमिकाका मुँह चूमने लगा तो उसके ओठ सिकोड़ने और प्रेमिकाके हाथ हिलानेसे कङ्कन बजनेकी ध्वनिने उसका सारा भेद खोल दिया ॥ ५८ ॥ लाज-रूपी तटकी भूमिसे रुके हुए समुद्रके जल-रूपी स्त्रियोंके हृदयोंको प्रेम-रूपी चन्द्रमा उदय (उत्पन्न) होकर बार-बार

धर्मार्थौ विभववरसौख्यानि च ततो गृहे लक्ष्म्यो मान्याः सततमबला मानविभवैः ॥ ६० ॥ सम्पन्नरमणीशीलसम्पन्नरमणीं विना । इत्यूढवान्नरमणी रमणीं रुक्मिणीं हरिः ॥ ६१ ॥ संसारेऽस्मिन्नसारे परिणतितरले द्वे गती पण्डितानां तत्त्वज्ञानामृताम्भःपुलकितमनसां यातु कालः कदाचित् । नो चेन्मुग्धाङ्गनानां स्तनजघनभराभोगसम्भोगिनीनां स्थूलोपस्थस्थलीषु स्थगितकरतलस्पर्शलोभोद्यतानाम् ॥ ६२ ॥ संसारेऽस्मिन्नसारे कुनृपतिभवनद्वारसेवाकलङ्कव्यासङ्गव्यस्तधैर्यं कथममलधियो मानसं संविदध्युः । यद्यताः प्रोद्यदिन्दुद्युतिनिचयभृतो न स्युरम्भोजनेत्राः प्रेङ्खत्काञ्चीकलापाः स्तनभरविनमन्मध्यभागास्तरुण्यः ॥६३॥ सद्रत्नस्फारहाराऽभयवरदकरा स्रस्तधम्मिल्लभारा मूलाधाराधिकारा निगमनिधिधरा काव्यकोटिप्रचारा । संसारानल्पकारा सदनभयहरा चिद्घनैकावतारा तारा शृङ्गारधारा मनसि वसतु ते सर्वदा सर्वसारा ॥ ६४ ॥ सन्तु विलोकनभाषणविलासपरिहासकेलिपरिरम्भाः । स्मरणमपि कामिनीनामलमिह मनसो विकाराय ॥ ६५ ॥ समदनमवतंसितेऽधिकर्णं प्रणयवता कुसुमे सुमध्यमायाः । व्रजदपि लघुतां बभूव भारः सपदि हिरण्मयमण्डनं सपत्न्याः ॥ ६६ ॥ समाश्लिष्टाः समाश्लेषैश्चुम्बिताश्चुम्बनैरपि । दष्टाश्च दशनैः कान्तं दासीकुर्वन्ति योषितः ॥ ६७ ॥ सुस्मिता मधुरालापा रुचिरावयवा विधिः । विधाय रमणीस्तासां मनोऽपि न व्यधात् कुतः ॥ ६८ ॥ सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वाश्च शुभां गिरम् । अग्निः सर्वाङ्गकान्तित्वं तस्मान्निष्कसमाः स्त्रियः ॥ ६९ ॥ स्फुटमिदमभिचारमन्त्र एव प्रतियुवतेरभिधानमङ्गनानाम् । वरतनुरमुनोपहूय पत्या मृदुकुसुमेन यदाहताप्यमूर्च्छत् ॥ ७० ॥ स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दति योऽलीक-

---

लहराए दे रहा है ॥ ५९ ॥ सुनने, देखने, छूने, यहाँतक कि स्मरण करने-मात्रसे भी आनन्द देनेवाला रत्न स्त्रीके अतिरिक्त ब्रह्माने दूसरा और कहीं भी नहीं रचा । उसी स्त्री-रत्नके लिये धर्म और अर्थ बने हैं और उसीके लिये बड़े-बड़े ठाट-बाट और सुख हैं इसलिये घरमें इन अबला-रूपी लक्ष्मियोंको सदा ही मान और ऐश्वर्यसे आदर देते रहना चाहिए ॥ ६० ॥ 'अत्यधिक शील (नम्रता) से भरी हुई सुन्दरीके बिना ढेरसी सम्पत्ति भी सुख नहीं दे सकती ।' यही सोचकर क्वाँरे कृष्णजीने झट रुक्मिणीसे विवाह कर लिया ॥ ६१ ॥ क्षण-क्षणपर बदलते रहनेवाले संसारमें पण्डितोंकी दो ही गति हैं—एक तो यह कि वे तत्त्व-ज्ञान-रूपी अमृतजलसे मन पुलकित करते हुए अपना समय बितावें और दूसरा यह कि स्तन और पेड़ूके भारसे आनन्ददायी सम्भोगका रस देनेवाली रसीली नवेलियोंके मोटे-मोटे नितम्बोंपर हाथ फेरनेके लिये ललचाते हुए समय बितावें ॥ ६२ ॥ इस असार संसारमें यदि उदय होते हुए चन्द्रमाकी घनी चाँदनी जैसी कान्तिवाली, चमकती हुई करधनीवाली तथा स्तनोंके भारसे झुके हुए पेटवाली ये कमलनयनी नवेलियाँ न होतीं तो दुष्ट राजाओंके द्वारपर उनकी सेवा करनेके कलङ्कसे खीझकर धीरज खो बैठनेवाले तथा निर्मल बुद्धिवाले मनुष्य अपना मन कैसे बहलाते ? ॥ ६३ ॥ उजले रत्नोंके चमकीले हारवाली, हाथमें अभय-दानकी मुद्रावाली, बिखरे हुए बालोंवाली, मूलाधार चक्रकी स्वामिनी, वेदोंका भाण्डार धारण करनेवाली, करोड़ों काव्योंका प्रचार करनेवाली, संसारका विस्तार करनेवाली, भूत-प्रेतोंका भय दूर करनेवाली, सम्पूर्ण ज्ञानकी एक मात्र भण्डार तथा सब प्रकारकी सजावटोंकी बहती हुई धारा, सबकी सार भगवती दुर्गा आपके मनमें सदा निवास करें ॥ ६४ ॥ कामिनियोंको देखना, उनसे बातें करना, और उनसे हाव-भाव-भरी हँसी क्रीड़ा और आलिङ्गन करना तो दूरकी बात है; उनका स्मरण-मात्र ही मनमें विकार उत्पन्न कर देनेके लिये बहुत है ॥६५॥ प्रेमसे भरे हुए प्रियतमने कामकी मस्तीमें आकर जैसे ही सुन्दर मध्यभाग (कमर) वाली सुन्दरीके कानमें फूल लगाया वैसे ही तत्काल सौतके सोनेके गहने लघु (हलके) होत हुए भी उसे भार जान पड़ने लगे ॥ ६६ ॥ आलिङ्गनके बन्धनमें कसी हुई, चुम्बनोंसे चूमी जाती हुई और दाँतोंसे दबाई जाती हुई सुन्दरियाँ प्रियतमको अपना दास बना लेती हैं ॥६७॥ ब्रह्माने जब रमणियोंको इतनी सुन्दर मुस्कानवाली, सुन्दर बोलनेवाली और सुन्दर अङ्गोंवाली बनाया तो उनका मन भी वैसा ही (सुन्दर) क्यों नहीं बना दिया ? ॥ ६८ ॥ सुन्दरियोंको चन्द्रमाने पवित्रता दी, गन्धर्वोंने सुन्दर बोली दी और अग्निने सारे शरीरकी सुन्दरता दी इसलिये वे सदा सोनेके ही समान हैं ॥६९॥ स्त्रियोंके सामने उनकी सौतका नाम लेना उन्हें घायल करनेका सबसे बड़ा मंत्र है क्योंकि प्रियतमने ज्योंही उस सुन्दरीको फूलसे मारते हुए सौतके

पण्डितो युवतीः । यस्मात्तपसोऽपि फलं स्वर्गः स्वर्गेऽपि योषितोऽप्सरसः ॥ ७१ ॥ स्वभ्यस्तरूपाऽपि नवैव नित्यं विनाऽपि हास्यं हसतीव कान्त्या । मदादृतेऽपि स्खलतीव भावैर्वाचं विना व्याहरतीव दृष्ट्या ॥ ७२ ॥ स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित् । मासि मासि रजो यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ ७३ ॥ स्मितमधुरं परिलोकनमचिरं मन्दं च भाषणं किमपि । मन्थरमयनं सुतनोः कस्य न हृदयं विदारयति ॥ ७४ ॥ स्मितेन भावेन च लज्जया भिया पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षणैः । वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ॥ ७५ ॥ स्त्रीमुद्रां कुसुमायुधस्य परमां सर्वार्थसम्पत्करीं ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः । ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः केचिद्रक्तपटीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे ॥ ७६ ॥ हरिणप्रेक्षणा यत्र गृहिणी न विलोक्यते । सेवितं सर्वसम्पद्भिरपि तद्भवनं वनम् ॥ ७७ ॥ ह्लादनतापनशक्ती सहजे स्तः सुभ्रुवां कटाक्षेषु । तत्राद्या प्रबला स्यान्नेदीयस्त्वे परा दवीयस्त्वे ॥ ७८ ॥

सतीवर्णनम्: — अकरुण कातरमनसा दर्शितनीरा निरन्तरालेयम् । त्वामनुधावति विमुखं गङ्गेव भगीरथं दृष्टिः ॥ १ ॥ अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिस्तस्योपचर्या स्वयम् । सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति प्राच्यैः पुत्रि निवेदितः कुलवधूसिद्धान्तधर्मागमः ॥ २ ॥ अमृतमयी निरवद्या हृद्या गम्भीरभावसम्पन्ना । पतिमनुगच्छति तन्वी गङ्गा भागीरथं रथं यद्वत् ॥ ३ ॥ असारभूते संसारे सारभूता नितम्बिनी । इति सञ्चिन्त्य वै शम्भुरर्धाङ्गे पार्वतीं दधौ ॥ ४ ॥ कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननी-

---

नामसे पुकारा त्योंही वह मूर्च्छित हो गई ॥७०॥ जो कोई झूठमूठ पण्डित बनकर नवेलियोंकी निन्दा करता है, वह अपनेको भी धोखा देता है और दूसरोंको भी, क्योंकि तपस्याका फल तो स्वर्ग है और स्वर्गमें भी अप्सरा-रूपी स्त्रियाँ ही हैं ॥७१॥ यद्यपि इसका रूप वही है जिसे नित्य देखनेका अभ्यास है फिर भी यह सदा ही नई-सी लगती है, बिना हँसीके ही अपनी कान्तिसे मानो हँस रही है, बिना मदिराके ही अपने हाव-भावोंसे लड़खड़ा रही है और बिना बोले ही चितवनके सहारे मानो बोले दे रही है ॥ ७२ ॥ स्त्रियाँ अत्यधिक पवित्र होती हैं। ये कभी किसी प्रकार दूषित हो ही नहीं सकतीं क्योंकि महीने-महीने इनका रज इनके सब पाप नष्ट करता रहता है ॥ ७३ ॥ सुन्दर शरीरवालीका मधुर मुस्कानके साथ देखना, थोड़ी देरतक धीरे-धीरे कुछ बोलना और मन्द-मन्द चलना किसका हृदय नहीं फाड़ देता ? ॥ ७४ ॥ पुरुषोंको बाँधनेके लिये स्त्रियोंके मुस्कानभरे हाव-भाव, लाज, भय, आधी बाँकी चितवन चलाकर मुँह मोड़ना, बोली, डाहके कारण झगड़ा और लीला, ये सब बन्धन ही तो हैं ॥७५॥ जो नीच बुद्धिवाले लोग कामदेवकी अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सब प्रकारकी अर्थ-सम्पत्ति देनेवाली स्त्री-रूपी मुद्राको छोड़कर झूठ-मूठका आध्यात्मिक फल चाहते हैं वे मूर्ख हैं। इसीलिये कामदेवने ही मानो उन्हें निर्दयतापूर्वक मार पीटकर, सिर मुँड़वाकर, नङ्गा करके उनमेंसे कुछको गेरुए वस्त्र पहनाकर, कुछकी जटाएँ बढ़ा दिया तथा कुछको औघड़ बना दिया है ॥७६॥ जिस घरमें मृगनयनी गृहिणी नहीं दिखाई पड़ती वह भले ही सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे भरा हो किन्तु वह घर नहीं, वन है ॥ ७७ ॥ सुन्दर भौंहोंवाली नवेलीकी चितवनमें प्रसन्न करने और सन्ताप देनेकी शक्ति स्वाभाविक ही होती है। पहली शक्ति तो तब बढ़ती है जब वह अत्यधिक सन्निकट रहती है और दूसरी शक्ति तब अत्यधिक बढ़ जाती है तब वह बहुत दूर हो जाती है ॥ ७८ ॥

सतीका वर्णन : हे निर्दयी ! यद्यपि तुम उसकी ओर नहीं देख रहे हो किन्तु कातर मनसे उसकी आँसू-भरी चितवन सदा तुम्हारे पीछे ठीक उसी प्रकार दौड़ रही है जैसे भगीरथके पीछे जलसे भरी गङ्गा दौड़ी जा रही थीं ॥ १ ॥ हे पुत्री ! महर्षियोंने कुलवधुओंके ये सच्चे धर्म बताए हैं — प्रियतमके आते ही उठ जाना, बातचीतमें नम्रता दिखाना, बैठे रहनेपर उनके चरणोंपर दृष्टि लगाए रहना, स्वयं उनकी सेवा करना, उनके सो जानेपर स्वयं सोना और उनके जागनेसे पहले ही बिछौना छोड़ देना ॥ २ ॥ अमृत (जल, अधरामृत) से भरी हुई, परम पवित्र, परम सुन्दरी तथा गम्भीर भावोंवाली (गहरी) दुबली-पतली नवेली वैसे ही पतिके पीछे चलती है जैसे गङ्गा भगीरथके रथके पीछे-पीछे चलती थीं ॥ ३ ॥ इस असार संसारमें मोटे-मोटे नितम्बवाली एक नवेली ही सार है। यही सोचकर शिवजीने पार्वतीजीको

समा। विपत्तौ बुद्धिदात्री च सा भार्या सर्वदुर्लभा ॥ ५ ॥ कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा। धर्मेऽनुकूला क्षमया धरित्री भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा ॥ ६ ॥ गतागतकुतूहलं नयनयोरपाङ्गावधि स्मितं कुलनतभ्रुवामधर एव विश्राम्यति। वचः प्रियतमश्रुतेरतिथिरेव कोपक्रमः कदाचिदपि चेत्तदा मनसि केवलं मज्जति ॥ ७ ॥ चतुर्थेऽह्नि स्नातां त्रिदिनविरहात्पाण्डुवदनां रजोमुक्तां तन्वीं चपलनयनां कामकलिताम्। हिमत्वङ्मार्जारीमलयभवगन्धप्रणयिनीमधन्यः को भुङ्क्ते च्युतकुसुमशेषामिव लताम् ॥ ८ ॥ जीवति जीवति नाथे मृते मृता या मुदा युता मुदिते। सहजस्नेहरसाला कुलवनिता केन तुल्या स्यात् ॥ ९ ॥ ढक्कामाहत्य मदं वितन्वते करिण इव चिरं पुरुषाः। स्त्रीणां करिणीनामिव मदः पुनः स्वकुलनाशाय ॥ १० ॥ तल्पे प्रभुरिव गुरुरिव मनसिजशास्त्रे श्रमे भुजिष्येव। गेहे श्रीरिव गुरुजनपुरतो मूर्तेव सा व्रीडा ॥ ११ ॥ तावत्कुलस्त्रीमर्यादा यावल्लज्जावगुण्ठनम्। हृते तस्मिन्कुलस्त्रीभ्यो वरं वेश्याङ्गनाजनः ॥ १२ ॥ दीपदशा कुलयुवती वैदग्ध्येनैव मलिनतामेति। दोषा अपि भूषायै गणिकायाः शशिकलायाश्च ॥ १३ ॥ न कार्येषु न भोगेषु नैश्वर्ये न सुखे तथा। स्पृहा स्याच्च यथा भर्तुः सा नारी सुखभागिनी ॥ १४ ॥ कल्योत्थानपरा नित्यं गुरुशुश्रूषणे रता। सुसम्मृष्टगृहा चैव गोशकृत्कृततलेपना ॥ १५ ॥ न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते। गृहं तु गृहिणीहीनं कान्तारादतिरिच्यते ॥ १६ ॥ नातः परं कुलमतः परतो न शीलं नातः परं च करुणासदनं मृगाक्ष्याः। यद्बाष्पबिन्दुर-

---

अपने आधे बाएँ अङ्गमें बैठा लिया ॥ ४ ॥ ऐसी पत्नी संसारमें सबके लिये दुर्लभ है जो काम आ पड़नेपर दासीके समान, रतिके समय वेश्याके समान, भोजन कराते समय माताके समान और विपत्तिके समय बुद्धि देनेवाली बन जायँ ॥ ५ ॥ कार्यका विचार करते समय मन्त्री, काम करते समय दासी, भोजनके समय माता, सोते समय रम्भाके समान व्यवहार करनेवाली, धर्म-कार्योंमें सदा साथ देनेवाली और पृथ्वीके समान क्षमा करनेवाली, इन छः गुणोंवाली पत्नी इस संसारमें दुर्लभ है ॥ ६ ॥ झुकी हुई भौहोंवाली कुल-वधुओंके नेत्रोंकी चञ्चलता उनके नयनके कोरोंतक ही आकर रह जाती है, मुस्कराहट अधरतक आकर समा जाती हैं, वे इतने धीरे बोलती हैं कि उनके प्रियतम-भर सुन पाते हैं और क्रोध यदि कभी उत्पन्न हुआ भी तो वह मनमें ही समा जाता है ॥ ७ ॥ मासिक-धर्मके पश्चात् चौथे दिन स्नान की हुई, पतिके तीन दिनके विछोहसे उजले मुखवाली, दुबली, चञ्चल नयनोंवाली, कामकी भावनावाली, कामके तापसे तपी हुई तथा पाला, पेड़की गीली छाल, चारपाई और चन्दनका रस चाहनेवाली उस कुल-स्त्रीका उपभोग बिना पुण्यके कौन पा सकता है जो उस लताके समान जान पड़ रही हो जिससे सब फूल झड़ गए हों ॥ ८ ॥ पतिके जीवनके सहारे जीवित रहनेवाली, उनके मरते ही मर जानेवाली और उनके प्रसन्न रहते समय प्रसन्न रहनेवाली स्वाभाविक स्नेहरूपी-रससे भरी हुई कुलवधूकी समता कौन कर सकता है ? अर्थात् उसकी समता किसीसे नहीं हो सकती ॥ ९ ॥ पुरुष भले ही नगाड़ा बजा-बजाकर मतवाले हाथियोंके समान मदमें चूर रहें किन्तु स्त्रियोंका अभिमान तो हथिनियोंके मदके समान अपने वंशका नाश करनेवाला ही होता है ॥ १० ॥ वह सुन्दरी पलँगपर स्वामिनी, कामशास्त्रमें गुरु, थकनेपर दासी, घरमें लक्ष्मी और बड़ोंके आगे तो लज्जाकी मूर्तिके समान ही जान पड़ती है ॥ ११ ॥ जबतक लज्जाका घूँघट रहता है तभीतक उत्तम कुलकी स्त्रीकी मर्यादा सुरक्षित रहती है; लज्जा समाप्त हो चुकनेपर उनसे अच्छी तो वेश्याएँ ही होती हैं ॥ १२ ॥ अधिक चञ्चलता और चतुरतासे दीपककी बत्ती और कुलवधू दोनों ही दूषित हो जाती हैं। केवल चन्द्रमाकी कला और वेश्याएँ ही ऐसी हैं जिनकी सजावट दोषा (रात, दुर्गुणों) से अधिक बढ़ जाती है ॥ १३ ॥ वही स्त्री सुख भोगनेवाली होती है जिसकी कार्यों, भोगों, ऐश्वर्यों तथा सुखमें वैसी इच्छा नहीं रहती जैसी पतिमें रहती है ॥ १४ ॥ [वही स्त्री सुखी रहती है] जो सदा तड़के सोकर उठती है, बड़ोंकी सेवा करती रहती है और अपना घर गोबरसे लीप-पोतकर स्वच्छ रखती है ॥ १५ ॥ केवल घर ही घर नहीं कहलाता; यथार्थमें गृहिणी ही घर कहलाती है, बिना गृहिणीका घर तो भयानक जंगलसे भी बढ़कर गया-बीता होता है ॥ १६ ॥ मृगनयनी नवेलीकी इससे बढ़कर कुलीनता, शील और करुणाका भण्डार और क्या हो सकता है जो कि यह अपराधी पतिके चरण अपनी

-पराधवतोऽपि पत्युरुत्सङ्गितेन चरणेन तयापनिन्ये ॥ १७ ॥ नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ १८ ॥ नित्यं स्नाता सुगन्धा च नित्यं च प्रियवादिनी । अल्पभुङ्मितवक्त्री च देवता सा न मानुषी ॥ १९ ॥ निर्व्याजा दयिते ननान्दृषु नता श्वश्रूषु भक्ता भव स्निग्धा बन्धुषु वत्सला परिजने स्मेरा सपत्नीष्वपि । भर्तुर्मित्रधने सनम्रवचना खिन्ना च तद्वैरिषु प्रायः संवननं नतभ्रु तदिदं वीतौषधं भर्तृषु ॥ २० ॥ पतिर्देवः पतिर्बन्धुः पतिः स्वर्गः पतिः सुखम् । जीवनं च पतिर्नार्या नान्यत् किञ्चिज्जगत्त्रये ॥२१॥ पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः । पत्युर्गतिसमा नास्ति दैवतं वा यथा पतिः ॥ २२ ॥ पदन्यासो गेहाद्बहिरहिफणारोपणसमो निजावासादन्यद्भवनमपरद्वीपतुलितम् । वचो लोकालभ्यं कृपणधनतुल्यं मृगदृशः पुमानन्यः कान्ताद्विधुरिव चतुर्थीसमुदितः ॥ २३ ॥ परपतिनिर्दयकुलटाशोषित शठ नेर्ष्यया न कोपेन । दग्धममतोपतप्ता रोदिमि तव तानवं वीक्ष्य ॥ २४ ॥ पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा । पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥ २५ ॥ प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः । अन्यसरितां शतानि हि समुद्रगाः प्रापयन्त्यब्धिम् ॥ २६ ॥ प्रतिरजनि प्रतिदिवसं विहर बहिश्चण्डि डिण्डिमं दत्त्वा । कोणवधूदृग्वलितैर्विश्वं पुनराकुलीभवति ॥ २७ ॥ बहिर्न लोला दृगपाङ्गमूलादुपैति कूलादिव सागरोर्मिः । न वा सतीनामभिलाषबन्धं व्यनक्ति गन्धं कलिकेव चेतः ॥ २८ ॥ बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता । न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि ॥ २९ ॥ भक्तिः प्रेयसि संश्रितेषु करुणा श्वश्रूषु नम्रं

गोदमें रखकर उनपर गिरे हुए अपने ही आँसू पोंछ रही है ॥ १७ ॥ स्त्रियोंके लिये न तो अलगसे किसी यज्ञका विधान है न उपवासका । केवल पतिकी सेवाके बलपर ही वे स्वर्गमें जा धमकती हैं ॥ १८ ॥ जो स्त्री सदा स्नान करके सुगन्धित रहती है, सदा मीठी बोली बोलती है, थोड़ा खाती है और बहुत कम बोलती है वह मनुष्य नहीं, देवता है ॥ १९ ॥ हे झुकी हुई भौंहोंवाली ! पतिसे निश्छल रहना, ननदोंके सामने नम्र रहना, सासोंको प्रसन्न रखना, बन्धुओंपर प्रेम करना, परिवारपर अनुराग रखना, सौतोंसे हँसकर बोलना, पतिके मित्रोंसे नम्रतापूर्वक बातें करना और पतिके शत्रुओंसे विरक्त रहना, प्रायः इन्हीं बातोंका पालन करना पतिमें बिना सामग्रीके ही भक्ति करना कहा जाता है ॥ २० ॥ पति ही पत्नीका देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही स्वर्ग है, पति ही सुख है और पति ही जीवन है । पतिके अतिरिक्त तीनों लोकोंमें स्त्रीका कहीं कुछ नहीं है ॥ २१ ॥ पति ही स्त्रियोंका देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही गति है, पतिके अतिरिक्त स्त्रीकी कोई दूसरी गति नहीं है, यहाँतक कि देवता भी नहीं ॥ २२ ॥ सती स्त्रियोंके लिये घरसे बाहर पैर रखना साँपके फणपर पैर रखनेके समान है, अपने घरके अतिरिक्त दूसरा घर उनके लिये दूसरे द्वीपके समान है, कृपणके धनके समान उनकी बोली संसारमें कोई सुन नहीं पाता और अपने प्रियतमके अतिरिक्त कोई भी दूसरा पुरुष उनके लिये भादोंकी चौथका चन्द्रमा ही है ॥२३॥ हे मूर्ख ! दूसरोंके पतियोंको निर्दयतापूर्वक सोख लेनेवाली कुलटासे सुखाए हुए ! मैं तुम्हें देखकर न तो ईर्ष्याके ही कारण रोती हूँ न क्रोधसे ही । मैं तो इस निगोड़ी ममताके कारण दुखी होकर तुम्हारी दुर्बलता देख-देखकर रो रही हूँ ॥२४॥ सती स्त्री यदि पतिका लोक पाना चाहे तो उसे चाहिए कि चाहे उसका पति मर गया हो या जीवित हो किन्तु वह कभी भी कोई ऐसा कार्य न करे जो पतिको अप्रिय लगता हो या लगा करता रहा हो ॥ २५ ॥ पतिपर प्रेम करनेवाली साध्वी स्त्रियाँ सौतोंके साथ रहकर भी पतिकी वैसे ही सेवा करती हैं जैसे बड़ी नदियाँ सैकड़ों छोटी-छोटी नदियोंको समुद्रके पास अपने साथ ही पहुँचा देती हैं ॥ २६ ॥ हे चण्डी ! तू भले ही दिन-रात बराबर डुग्गी पीटती हुई बाहर घूमा कर किन्तु यह समझ रख कि घरके कोनेमें छिपकर बैठी हुई बहूकी चितवनसे ही संसार व्याकुल होगा, तुझसे नहीं ॥ २७ ॥ पतिव्रताओंकी चञ्चल चितवन नेत्रके कोरोंसे बाहर वैसे ही नहीं जाती जैसे लहर समुद्रके तटसे आगे नहीं बढ़ती और उनके मनकी इच्छा वैसे ही कोई नहीं समझ पाता जैसे कलीकी गन्ध बाहर नहीं फैला करती ॥ २८ ॥ कन्या, युवती तथा वृद्धा स्त्रीको भी घरमें कोई काम स्वतन्त्रता-पूर्वक नहीं करना चाहिए ॥ २९ ॥ पतिपर भक्ति, अपने आश्रित रहनेवालोंपर दया, सासोंके सामने सिर झुका हुआ, देवरानी-जेठानियोंपर

शिरः प्रीतिर्मातृषु गौरवं गुरुजने क्षान्तिः कृतागस्यपि । अम्लाना कुलयोषितां व्रतविधिः सोऽयं विधेयः पुनर्मद्भर्तुर्दयिता इति प्रियसखीबुद्धिः सपत्नीष्वपि ॥ ३० ॥ भास्वानुद्गतवाञ्शशी विगतवान् देवाग्निकार्यार्हितः सम्भारो रचितो विशुद्धवसने कालोचिते योजिते । स्नानं नाथ विधीयतां सुमनसोऽर्च्यन्तां शिखी चेज्यतां भोज्यन्तां गृहमागता इति सती कर्त्तव्यमाभाषते ॥ ३१ ॥ मनसा वचसा सततं भवन्ति या भर्तृवत्सलाः साध्व्यः । अपि पतितं परिणीतं नयन्ति ता अक्षयं त्रिदिवम् ॥ ३२ ॥ मानाग्निवर्धनमहौषधमेतदेव स्त्रीणां सपत्नवनिताह्वयकीर्तनं यत् । अव्याजनिर्भरभयप्रणतोत्तराणां मन्ये विशेषत इदं कुलकन्यकानाम् ॥ ३३ ॥ यद्देवेभ्यो यच्च पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताऽभ्यर्चनं सत्क्रियातः । तस्यार्धं वै सा फलं नान्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ॥ ३४ ॥ यस्य भार्या शुचिर्दक्षा भर्तारमनुगामिनी । नित्यं मधुरवक्त्री च सा रमा न रमा रमा ॥ ३५ ॥ या नारी सुव्रता दक्षा विमलाऽमृतभाषिणी । सदाचारा पतिप्राणा सा स्वर्गादतिरिच्यते ॥ ३६ ॥ रूपसम्पन्नमग्राम्यं प्रेमप्रायं प्रियंवदम् । कुलीनमनुकूलं च कलत्रं कुत्र लभ्यते ॥ ३७ ॥ लज्जावशावनतमन्थरदृष्टिपातं यैश्चुम्बितं कुलवधूवदनारविन्दम् । तेषामनेकपुरुषव्रणिताधरेषु सक्तिः कथं भवति वेशवधूमुखेषु ॥ ३८ ॥ वश्यभावेन सुमनाः सुव्रता सुसमाहिता । अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी ॥ ३९ ॥ वृक्षमूलेऽपि दयिता यत्र तिष्ठति तद्गृहम् । प्रासादोऽपि तया हीनो ह्यरण्यसदृशः स्मृतः ॥ ४० ॥ शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः । भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ ४१ ॥ शुश्रूषामनुरुन्धती गुरुजने वाक्ये ननान्दुः

प्रेम, बड़ोंके प्रति आदरकी भावना और अपराधियोंपर क्षमा ये स्वाभाविक गुण तो कुलीन स्त्रियोंमें होते ही हैं; साथ ही उनमें विशेष बात यह भी होती है कि वे अपनी सौतोंको भी इसीलिये प्यार करती है कि ये मेरे प्रियतमकी प्यारी हैं ॥ ३० ॥ 'हे नाथ ! सूर्य निकल आया, चन्द्रमा अस्त हो गया, देवताओंकी पूजा और हवनकी सामग्री इकट्ठी हो चुकी है और समयानुकूल वस्त्र भी रख दिए गए हैं । अब आप स्नान करके देवताओंका पूजन कीजिए, अग्निमें आहुति दीजिए और अतिथियोंको भोजन कराइए ।' सती स्त्रियाँ सदा इस प्रकार पतिको कर्त्तव्य बतलाती रहती हैं ॥ ३१ ॥ जो साध्वी स्त्रियाँ मन और वाणीसे सदा पतिपर प्रेम करती हैं वे अपने साथ अपने पतित पतिको भी अक्षय स्वर्ग-लोक ले जाती हैं ॥ ३२ ॥ स्त्रियोंका क्रोध बढ़ा देनेके लिये सौतका नाम ले लेना एक बड़ी तीव्र औषधि है किन्तु कुलीन नवेलियोंमें यह विशेषता होती है कि वे सौतका नाम सुनते ही स्वाभाविक डरके साथ नीचे सिर झुका लेती हैं ॥ ३३ ॥ देवताओं या पितरोंका जो भी पूजन आदि सच्ची क्रियासे पति करता है उसका आधा फल पतिके अतिरिक्त दूसरेपर मन न लगानेवाली स्त्री केवल पतिकी सेवा करके ही ले लेती ॥३४॥ जिसकी पत्नी पवित्र, चतुर, पतिके अनुकूल चलनेवाली और मीठी बोली बोलनेवाली होती है वही सचमुच लक्ष्मी है; लक्ष्मी, लक्ष्मी नहीं है ॥३५॥ नियमपर अटल रहनेवाली, चतुर, स्वच्छ, अमृत जैसी मधुर बोली बोलनेवाली, अच्छे आचरणवाली और पतिके सहारे प्राण रखनेवाली स्त्रीके रहते स्वर्ग भी तुच्छ है ॥ ३६ ॥ सुन्दरी, सभ्य, प्रेमसे भरी, प्रिय बोलनेवाली, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा पतिके मनके अनुसार चलनेवाली पत्नी मिलती कहाँ है ? ॥ ३७ ॥ जिन लोगोंने लाजके कारण झुका हुआ और मन्द-मन्द चितवनवाला कुलीन स्त्रीके मुखकमलका चुम्बन किया है उनका प्रेम वेश्याओंके उन मुखोंसे कैसे हो सकता है जिनपर अनेक पुरुषोंके दाँतोंके घाव बने रहते हैं ॥ ३८ ॥ वशमें रहनेवाली, प्रसन्न चित्तवाली, नियमोंपर अटल रहनेवाली, स्थिर बुद्धिवाली और पतिके अतिरिक्त दूसरेमें मन न लगानेवाली सुन्दर मुखवाली स्त्री ही धर्मका आचरण करनेवाली कही जाती है ॥ ३९ ॥ यदि पेड़के तले भी प्रियतमा साथ हो तो वह घर ही है किन्तु उसके बिना बड़े-बड़े भवन भी वनके ही समान हैं ॥४०॥ बेटी ! बड़ोंकी सेवा करना, सौतोंसे सखियों जैसा व्यवहार करना, पतिसे अपमानित होकर भी क्रोध न करना, कुटुम्बियोंसे अत्यन्त सज्जनताका व्यवहार करना और सुख पाकर भी न, इतराना यह व्यवहार करनेवाली स्त्रियाँ घरकी स्वामिनी हो जाती हैं तथा इसके विरुद्ध आचरण

स्थिता दाक्षिण्यैकपरायणा परिजने स्निग्धा सपत्नीष्वपि । सन्नद्धातिथिसत्कृतौ गृहभरे नैस्तन्द्र्यमाविभ्रती वत्से किं बहुना भजस्व कुशलं भर्तुः प्रिये जाग्रती ॥ ४२ ॥ श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ तोषयन्ती पतिव्रता । मातापितृपरा नित्यं या नारी सा पतिव्रता ॥ ४३ ॥ सञ्चारो रतिमन्दिरावधि सखीकर्णावधि व्याहृतं चेतः कान्तसमीहितावधि महामानोऽपि मौनावधि । हास्यं चाधरपल्लवावधि पदन्यासावधि प्रेक्षितं सर्वं सावधि नावधिः कुलभुवां प्रेम्णः परं केवलम् ॥ ४४ ॥ सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्ये च दक्षया । सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ४५ ॥ साध्वी शीलवती दयावसुमती दाक्षिण्यलज्जावती तन्वी व्याजपराङ्मुखी स्मितवती मुग्धा प्रियालापिनी । देवब्राह्मणबन्धुसज्जनहिता यस्यास्ति भार्या गृहे तस्यार्थागममोक्षभोगफलदा सैकैव पुण्या लता ॥ ४६ ॥ सैव साध्वी सुभक्तश्च सुस्नेहः सरसोज्ज्वलः । पाकः सञ्जायते यस्याः करादप्युदरादपि ॥ ४७ ॥ स्नानाम्भो बहु साधिता रसवती देवाग्निकार्योचितः सम्भारो रचितो विशुद्धवसने कालोचिते योजिते । स्नानं नाथ विधीयतामतिथयः सीदन्ति नान्या त्वरा धन्यं बोधयते शनैरिति पतिं मध्याह्नसुप्तं सती ॥ ४८ ॥ हेलामात्रविसूत्रितत्रिभुवनाः कर्णाञ्चलोत्तंसितास्तारुण्यस्य मदस्य च प्रणिधयो लज्जार्धसङ्कोचिताः । तीक्ष्णा हीरकसूचयो मुनिमनोमाणिक्यवेधोद्धताः कल्पन्तां प्रमदाय वः कुलवधूलीलाकटाक्षच्छटाः ॥ ४९ ॥

स्त्रीस्वभावनिन्दा—अग्राह्यं हृदयं तथैव वदनं यद्दर्पणान्तर्गतं भावः पर्वतसूक्ष्ममार्गविषमः स्त्रीणां न विज्ञायते । चित्तं पुष्करपत्रतोयतरलं विद्वद्भिराशंसितं नारी नाम विषाङ्कुरैरिव लतादोषैः समं वर्धिता ॥ १ ॥ अत एव

करनेवाली वंशके लिये रोग बन बैठती हैं ॥ ४१ ॥ बेटी ! बड़ोंकी सेवा करते हुए, ननदोंका कहना मानते हुए, परिवारके लोगोंपर अनुकूलता और सौतोंके साथ स्नेहका व्यवहार करते हुए, अतिथि-सत्कारके लिये सदा प्रस्तुत रहते हुए, घरका भार सँभालनेमें आलस्य न करते हुए; अधिक क्या कहूँ—अपने पतिके मनका काम करनेमें सदा सजग रहते हुए तुम कल्याणका भोग करनेवाली बनो ॥ ४२ ॥ जो स्त्री माता-पिताको मानती हुई और सास-ससुरकी सेवा करती हुई पतिसे प्रेम करती है वही पतिव्रता है ॥४३॥ कुलीन स्त्रियोंका चलना रति-भवनतक, बोली सखीके कानोंतक, चित्त प्रियतमको चाहनेतक, अत्यधिक रूठना चुप रहनेतक, हँसी कोमल ओठतक और देखना पग बढ़ानेतक सीमित होता है, केवल उनका प्रेम ही असीम होता है ॥ ४४ ॥ पत्नीको चाहिए कि वह सदा प्रसन्न और घरके कामोंमें सजग रहे, अपने घरकी सब सामग्री स्वच्छ और सजाकर रखे किन्तु कभी खुले हाथ व्यय न करे ॥ ४५ ॥ जिसके घरमें कुलीन, सुशील, दयालु, चतुर, लजीली, झूठ-मूठ मुँह फेरनेवाली, मुस्कराती रहनेवाली, भोली-भाली, प्रिय बोलनेवाली और देवता, ब्राह्मण, भाई-बन्धु तथा सज्जनोंकी भलाई करनेवाली स्त्री होती है उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-रूपी फल देनेवाली पवित्र लता समझना चाहिए ॥ ४६ ॥ वही स्त्री साध्वी है जिसके हाथसे चिकना, स्वच्छ और मीठा भोजन (भात) बनता है और जिसकी कोखसे उत्तम, भक्त, सुन्दर, स्नेह करनेवाला, स्वस्थ और गुणी पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ४७ ॥ दोपहरसे सोए हुए किसी पुण्यवान् पतिको उसकी सती स्त्री यह कहकर धीरेसे जगा रही है कि—'स्नानके लिये जल तैयार है, रसोई बन गई है, देव-पूजन और हवनकी सामग्री इकट्ठी रक्खी है, समयके अनुकूल स्वच्छ वस्त्र रख दिए गए हैं, हे नाथ ! अब आप स्नान कर लीजिए। वैसे तो कोई शीघ्रताकी बात नहीं है किन्तु अतिथि कष्ट पा रहे हैं !' ॥ ४८ ॥ उत्तम कुलकी बहुओंकी लाजसे आधी मुँदी हुई आँखोंकी वे स्वाभाविक चञ्चल बाँकी चितवनें आपको मस्त किए रक्खें जो खेल-खेलमें ही तीनों लोकोंमें हड़बड़ी उपजा देती हैं, कर्णाञ्चलसे सजी रहती है, यौवन और मस्तीकी भण्डार हैं तथा मुनियोंके मन-रूपी माणिक्यको वेधनेके लिये हीरा वेधनेवाली तीखी सुई हैं ॥ ४९ ॥

स्त्रियोंके स्वभावकी निन्दा : स्त्रियोंका हृदय वैसे ही नहीं गहा जा सकता जैसे दर्पणमें पड़ी हुई मुँहकी छाया नहीं पकड़ी जा सकती । इनके मनके भाव वैसे ही उलझनसे भरे (विषम) होते हैं जैसे पहाड़ोंपरकी पगडंडियाँ ! इनका चित्त भी कमलके पत्तेपर पड़ी हुई जलकी बूँदके समान चञ्चल होता है, इसीलिये विद्वानोंका कहना है कि नारी नामसे यह विषका अंकुर ही बढ़कर दोषोंसे भरी लताके रूपमें बढ़ गया है ॥ १ ॥ [इनकी बोलीमें मधु तथा

निपीयतेऽधरो हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते। पुरुषैः सुखलेशवञ्चितैर्मधुलुब्धैः कमलं यथालिभिः ॥ २ ॥ अनङ्कुरितकूर्चकः स तु सितोपलाढ्यं पयः स एव धृतकूर्चकः सलवणाम्बुतक्रोपमः। स एव सितकूर्चकः क्वथितगुग्गुलूद्वेगकृद्भवन्ति हरिणीदृशां प्रियतमेषु भावास्त्रयः ॥ ३ ॥ अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात्परिजनस्य च। मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति सर्वदा ॥ ४ ॥ अनृतं सत्यमित्याहुः सत्यं चापि तथानृतम्। इति यास्ताः कथं धीरैः संरक्ष्याः पुरुषैरिह ॥ ५ ॥ अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता। अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥ ६ ॥ अन्यं मनुष्यं हृदयेन कृत्वा अन्यं ततो दृष्टिभिराह्वयन्ति। अन्यत्र मुञ्चन्ति मदप्रसेकमन्यं शरीरेण च कामयन्ते ॥ ७ ॥ अन्तःक्रूराः सौम्यसुखा अगाधहृदया स्त्रियः। अन्तर्विषा बहिःसौम्या भक्ष्या विषकृता इव ॥ ८ ॥ अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमाः। गुञ्जाफलसमाकारा योषितः केन निर्मिताः ॥ ९ ॥ अपण्डितास्ते पुरुषा मता मे ये स्त्रीषु च श्रीषु च विश्वसन्ति। श्रियो हि कुर्वन्ति तथैव नार्यो भुजङ्गकन्यापरिसर्पणानि ॥ १० ॥ अपसरत रे दूरादस्मात्कटाक्षविषानलात्प्रकृतिविषमाद्योषित्सर्पाद्विलासफणाभृतः। इतरफणिना दष्टः शक्यश्चिकित्सितुमौषधैश्चटुलवनिताभोगिग्रस्तं त्यजन्ति हि मन्त्रिणः ॥ ११ ॥ अलक्तको यथा रक्तो निष्पीड्य पुरुषस्तथा। अबलाभिर्बलाद्रक्तः पादमूले निपात्यते ॥ १२ ॥ अलाभात्पुरुषाणां हि भयात्परिजनस्य च। वधबन्धभयाच्चैव तथा गुप्ता हि योषितः ॥ १३ ॥ अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः। प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥ १४ ॥ असद्धर्मस्त्वयं स्त्रीणामस्माकं भवति प्रभो। पापीयसो नरान्यद्वै लज्जां त्यक्त्वा भजन्ति ताः ॥ १५ ॥ आला-

---

हृदयमें हालाहल विष रहता है] इसीलिये तनिक-सा सुख पानेके फेरमें पड़े हुए पुरुष इनके अधर तो पीते हैं किन्तु हृदय (स्तनों) को मुट्ठियोंसे मारते हैं, जैसे भौंरे कमलका रस तो पी लेते हैं किन्तु अपने पैरोंसे उसे कुचल भी डालते हैं ॥२॥ प्रियतमोंके प्रति मृगनयनी स्त्रियोंके तीन प्रकारके भाव हुआ करते हैं—१. जब उनके मुँहपर बाल नहीं उगे रहते तब वह मुख उन्हें चीनी मिले दूधके समान लगता है, २. जब बाल (मूँछ-दाढ़ी) निकल आते हैं तब वही मुँह खारे पानी और मट्ठेके समान लगते लगता है और ३. जब बाल पककर उजले हो जाते हैं तब उसे देखकर वे ऐसी घबराती हैं मानो गूगलका काढ़ा सामने आ गया हो ॥३॥ एक तो रति करनेके लिये कहनेवाले पुरुष मिलते नहीं और दूसरे कुटुम्बियोंका भय बना रहता है, इसीलिये मर्यादामें न रहनेवाली भी स्त्रियाँ सदा मर्यादामें रहती दिखाई देती हैं ॥ ४ ॥ जो स्त्रियाँ झूठको सत्य तथा सत्यको झूठ कहती हैं उनकी रक्षा भला धीर पुरुष कर ही कैसे सकते हैं ? ॥ ५ ॥ झूठ बोलना, बिना विचारे साहस कर बैठना, झूठी चिकनी-चुपड़ी बातें बनाना, मूर्खता, अत्यधिक लोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये अवगुण स्त्रियोंमें जन्मसे ही उत्पन्न रहते हैं ॥ ६ ॥ स्त्रियाँ किसी पुरुषको तो हृदयमें बिठाए रहती हैं, किसीको चितवन चलाकर बुलाती हैं, किसीको देखकर हँसती-खिलखिलाती हैं और शरीर देकर किसी दूसरेको ही चाहती रहती हैं ॥ ७ ॥ स्त्रियोंका हृदय बड़ा दुष्ट होता है, मुख बड़ा सुहावना होता है और हृदयकी तो थाह ही नहीं लगती। जान पड़ता है ऊपरसे सुन्दर दिखाई देनेवाली विषभरी खानेकी वस्तुके समान ही ये भीतरसे विषभरी तथा ऊपरसे इतनी रसीली बनाई गई हैं ॥ ८ ॥ इनके भीतर तो विष भरा हुआ है किन्तु बाहरसे इतनी सुन्दर हैं। घुँघचीके फलके समान रूपवाली इन स्त्रियोंको बना किसने दिया ? ॥९॥ वे मनुष्य मेरी समझमें मूर्ख ही हैं जो लक्ष्मी और स्त्रियोंमें विश्वास करते हैं। लक्ष्मी तथा स्त्रियोंकी गति नागिनके समान ही टेढ़ी होती है ॥१०॥ अरे मनुष्यो ! स्वभावसे टेढ़े (कुटिल), तिरछी दृष्टिरूपी विषकी आगवाले तथा विलासरूपी फनवाले इस स्त्री-रूपी साँपको दूरसे ही छोड़कर भागो, क्योंकि दूसरे साँपके डसे हुए प्राणीकी चिकित्सा तो औषधियोंसे हो भी सकती है किन्तु चञ्चल स्त्रीरूपी साँपके डसे हुए प्राणीको तो बड़े-बड़े मन्त्र जाननेवाले भी नहीं छेड़ते ॥ ११ ॥ रक्त (आसक्त) पुरुषको स्त्रियाँ महावरकी भाँति ही बलपूर्वक निचोड़कर पैरों तले मसल देती हैं ॥ १२ ॥ पुरुषोंसे मिल न पानेसे, परिवारके डरसे तथा मारे जाने और बाँधे जानेके डरसे ही स्त्रियाँ गुप्त (सुरक्षित) हैं, (वे स्वयं सुरक्षित नहीं रह सकतीं) ॥ १३ ॥ काम और क्रोधके वशमें आए हुए विद्वान् या मूर्ख पुरुषको भी कुपन्थमें ले जानेके लिये एक स्त्री ही बहुत समझो ॥१४॥ हे प्रभो ! स्त्रियोंका यह नीच

पैर्मधुरैश्च काश्चिदपरानालोकितैः सस्मितैरन्यान्विभ्रमतल्पनाभिरितरानङ्गैरनङ्गोज्ज्वलैः। आचारैश्चतुरैः परानभिनवैरन्यान्भ्रुवः कम्पनैरित्थं काश्चन रञ्जयन्ति सुदृशो मन्ये मनस्त्वन्यथा ॥ १६ ॥ आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां दोषाणां सन्निधानं कपटशतगृहं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्। दुर्ग्राह्यं यन्महद्भिर्नरवरवृषभैः सर्वमायाकरण्डं स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतमयं धर्मनाशाय सृष्टम् ॥ १७ ॥ आस्तां तावत्किमन्येन दौरात्म्येनात्र योषिताम्। विधृतं स्वोदरेणापि घ्नन्ति पुत्रमपि स्वकम् ॥ १८ ॥ उत्तमानामपि स्त्रीणां विश्वासो नैव विद्यते। राजप्रियाः कैरविण्यो रमन्ते मधुपैः सह ॥ १९ ॥ उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः। स्त्रीबुद्ध्या न विशिष्येत तस्माद्रक्ष्याः कथं हि ताः ॥ २० ॥ एकेन स्मितपाटलाधररुचो जल्पन्त्यनल्पाक्षरं वीक्षन्तेऽन्यमितः स्फुटत्कुमुदिनीफुल्लोल्लसल्लोचनाः। दूरोदारचरित्रचित्रविभवं ध्यायन्ति चान्यं धिया केनेत्थं परमार्थतोऽर्थवदिव प्रेमास्ति वामभ्रुवाम् ॥ २१ ॥ एताः स्वार्थपरा नार्यः केवलं स्वसुखे रताः। न तासां वल्लभः कोऽपि सुतोऽपि स्वसुखं विना ॥ २२ ॥ कामनाम्ना किरातेन वितता मूढचेतसाम्। नार्यो नरविहङ्गानामङ्गबन्धनवागुराः ॥ २३ ॥ कार्कश्यं स्तनयोर्दृशोस्तरलताऽलीकं मुखे दृश्यते कौटिल्यं कचसञ्चये प्रवचने मान्द्यं त्रिके स्थूलता। भीरुत्वं हृदये सदैव कथितं मायाप्रयोगः प्रिये यासां दोषगणो गुणा मृगदृशां ताः किं नराणां प्रियाः ॥ २४ ॥ कुर्वन्ति तावत्प्रथमं प्रियाणि यावन्न जानन्ति नरं प्रसक्तम्। ज्ञात्वाथ तं मन्मथपाशबद्धं ग्रस्तामिषं मीनमिवोद्धरन्ति ॥ २५ ॥ कुलीना रूपवत्यश्च नाथवत्यश्च योषितः। मर्यादासु न तिष्ठन्ति स दोषः स्त्रीषु नारद ॥ २६ ॥ के नाम न विनश्यन्ति मिथ्याज्ञानान्नितम्बिनीम्। रम्यां बुद्ध्वोपसर्पन्ति ये ज्वालां शलभा इव ॥ २७ ॥ गुणाश्रयं कीर्तियुतं च कान्तं पतिं विधेयं

व्यवहार ही हमारा सबसे बड़ा पाप है कि वे निर्लज्ज होकर पापियोंको प्रसन्न करती रहती हैं ॥ १५ ॥ सुन्दर आँखोंवाली स्त्रियाँ किसीको मधुर बोलीसे, किसीको मुस्कराहट-भरी चितवनसे, किसीको कामके मदसे भरे गोरे-गोरे अंगोंके हाव-भावोंसे, किसीको चतुरतासे भरे व्यवहारोंसे और किसीको भौंहें नचा-नचाकर जब रिझाने लगती हैं मैं समझता हूँ कि इनके मनमें कुछ और ही है ॥ १६ ॥ शंकाओंकी भँवर, ढिठाईका घर, साहसका गाँव, दोषोंका भण्डार, सैकड़ों कपटोंसे भरा हुआ अविश्वासका खेत, सारी मायाका घर तथा विष और अमृतसे भरा यह स्त्री-रूपी यन्त्र धर्मका नाश करनेके लिये रच किसने दिया जिसे बड़े-बड़े तथा अत्यन्त श्रेष्ठ मनुष्य छूते भी नहीं ॥ १७ ॥ इनकी और दुष्टता तो जाने दीजिए, ये (१० महीने) पेटमें रक्खे हुए अपने पुत्रतकको मार डालती हैं ॥ १८ ॥ उत्तम स्त्रियोंका भी विश्वास नहीं रह गया। कुमुदिनियाँ यद्यपि प्यारी हैं चन्द्रमाकी, फिर भी वे रमण करती हैं मधुपों (मदिरा पीनेवालों, भौंरों) के साथ ॥ १९ ॥ शुक्राचार्य और बृहस्पति जैसे मन्त्री जिस शास्त्रको जानते हैं, वह भी जिनके सामने कुछ नहीं है, उनकी रक्षा हो ही कैसे सकती है ॥ २० ॥ लाल ओठपर मुस्कराहटकी झलक लिए हुए स्त्रियाँ किसीके साथ तनिक-सी बातें ही कर लेती हैं, किसीको खिली हुई कुमुदिनीके समान विकसित और उल्लाससे भरी आँखोंसे देख लेती हैं और अत्यन्त सुन्दर व्यवहार तथा अत्यधिक धनवाले किसी पुरुषको मनसे सोचती-रहती हैं, अतः यह नहीं जान पड़ता कि सचमुच इनका प्रेम है किससे! ॥ २१ ॥ ये परम स्वार्थी नारियाँ केवल अपने सुखमें ही लीन रहती हैं। अपना सुख छोड़कर न तो इनका कोई प्रियतम है न पुत्र ही है ॥ २२ ॥ कामदेव नामके बहेलिएने मूर्ख बुद्धिवाले मनुष्य-रूपी पक्षियोंको फाँसनेके लिये स्त्रीरूपी जाल फैला रक्खा है ॥ २३ ॥ स्तनोंमें कठोरता, नेत्रोंमें रस, मुँहमें झूठ, बालोंमें बाँकपन, बोलीमें शिथिलता, नितम्बमें मोटापन, हृदयमें डरपोकपन और प्रियतमपर सदा छल-प्रपञ्चका प्रयोग, ये सब दुर्गुण भी जिसके संयोगसे गुण माने जाते हों उन्हें पुरुष इतना मान क्यों देते हैं! ॥ २४ ॥ स्त्रियाँ तबतक ही पुरुषके मनका किया करती हैं जबतक वे उसे अपनेमें आसक्त नहीं जान लेतीं। फिर उसे कामदेवके फाँसमें बँधा देखकर वो वे (बंशीमें लगे) मांसके टुकड़ेको निगली हुई मछलीके समान झटक देती हैं ॥ २५ ॥ हे नारद! स्त्रियोंमें यही एक बड़ा भारी दोष है कि उत्तम कुलमें उत्पन्न, सुन्दर रूपवाली तथा सौभाग्यवती होकर भी वे मर्यादामें नहीं रहा करतीं ॥ २६ ॥ जो अपने झूठे ज्ञानसे ज्वालाके समान स्त्रीको सुन्दर समझकर पतंगके समान उसकी ओर दौड़ पड़ते हैं, उनमेंसे ऐसे कौन हैं जो नष्ट नहीं हो जाते? ॥ २७ ॥ गुणोंके भण्डार, यशस्वी,

सधनं रतिज्ञम्। विहाय शीघ्रं वनिता व्रजन्ति नरान्तरं शीलगुणादिहीनम् ॥ २८ ॥ चतुरः सृजतः पूर्वमुपायास्तेन वेधसा। न सृष्टः पञ्चमः कोऽपि गृह्यन्ते येन योषितः ॥ २९ ॥ जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमम्। हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ ३० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नामापि परिवर्जयेत्। स्त्रीणामिह हि सर्वासां य इच्छेत्सुखमात्मनः ॥ ३१ ॥ ताडिता अपि दण्डेन शस्त्रैरपि विखण्डिताः। न वशं योषितो यान्ति न दानैर्न च संस्तवैः ॥ ३२ ॥ तावत्स्यात्सुप्रसन्नास्यस्तावद्गुरुजने रतः। पुरुषो योषितां यावन्न शृणोति वचो रहः ॥ ३३ ॥ दर्शनाद्धरते चित्तं स्पर्शनाद्ग्रसते बलम्। सङ्गमाद्ग्रसते वीर्यं नारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥ ३४ ॥ न कामभोगान्बहुलान्नालङ्कारार्थसञ्चयान्। तथा हि बहु मन्यन्ते यथा रत्याः परिग्रहम् ॥३५॥ न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया। न शस्त्रेण न शास्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः ॥ ३६ ॥ न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थहेतोः कथञ्चन। न ज्ञातिकुलसम्बन्धात्स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ ३७ ॥ नयनविकारैरन्यं वचनैरन्यं विचेष्टितैरन्यम्। रमयति सुरतेनान्यं स्त्री बहुरूपा निजा कस्य ॥ ३८ ॥ न लज्जा न विनीतत्वं न दाक्षिण्यं न भीरुता। प्रार्थनाभाव एवैकः सतीत्वे कारणं स्त्रियाः ॥ ३९ ॥ न विषेण न शस्त्रेण नाग्निना न च मृत्युना। अप्रतीकारपारुष्याः स्त्रीभिरेव स्त्रियः कृताः ॥ ४० ॥ न स्त्रीणामप्रियः कश्चित्प्रियो वापि न विद्यते। गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम् ॥ ४१ ॥ नातिप्रसङ्गः प्रमदासु कार्यो नेच्छेद्बलं स्त्रीषु विवर्धमानम्। अतिप्रसक्तैः पुरुषैर्यतस्ताः क्रीडन्ति काकैरिव लूनपक्षैः ॥ ४२ ॥ नासां कश्चिदगम्योऽस्ति नासां च वयसि स्थितिः। विरूपं रूपवन्तं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥४३॥ पङ्गुष्वपि च देवर्षे ये

सुन्दर, आज्ञाकारी, धनवान् तथा रतिकी कला जाननेवाले पतिको छोड़कर भी स्त्रियाँ बिना गुण, शील आदिवाले दूसरे पुरुषके पास चल देती हैं ॥ २८ ॥ पहले ब्रह्माने केवल चार (साम, दाम, भेद, दण्ड) ही उपायोंकी रचना की। किन्तु ऐसा उसने पाँचवाँ कोई उपाय नहीं रचा जिससे ये स्त्रियाँ वशमें हो सकें ॥ २९ ॥ किसी स्त्रियोंके साथ तो बातें करती हैं, किसीको हाव-भावके साथ देखती हैं और मनमें किसी दूसरेको ही सोचती रहती हैं। तब बताइए इनका प्यारा है कौन ? ॥ ३० ॥ जो मनुष्य अपनी भलाई चाहे उसे चाहिए कि वह लाख प्रयत्न करके भी उनका नामतक लेना छोड़ दे ॥ ३१ ॥ न तो स्त्रियाँ डण्डेसे पीटनेसे वशमें आतीं, न शस्त्रोंसे काट डालनेसे, न दानसे और न स्तुतिसे ही ॥ ३२ ॥ पुरुष तभीतक प्रसन्न रह सकता है और तभीतक वह बड़ोंपर प्रेम रख सकता है जबतक एकान्तमें कही हुई स्त्रियोंकी बातें उसके कानमें नहीं पड़तीं ॥ ३३ ॥ नारी तो प्रत्यक्ष राक्षसी ही है क्योंकि वह देखने-मात्रसे मन हर लेती है, छू जाते ही बल और सम्भोग करते ही वीर्य हर लेती है ॥ ३४ ॥ मन-चाहा ऐश्वर्य और ढेरसे गहनोंको भी वे उतना अच्छा नहीं समझतीं जितना रति-दानको समझती हैं ॥ ३५ ॥ स्त्रियाँ सभी प्रकारसे कुटिल (विषम) होती हैं क्योंकि न तो वे दानसे वशमें होतीं, न आदर देनेसे, न पराक्रमसे, न सेवासे, न शस्त्रसे और न शास्त्रसे ही ॥ ३६ ॥ न तो स्त्रियाँ डरसे पतिके भरोसे रहतीं, न दयासे, न धनके लालचसे और न जाति तथा कुलके सम्बन्धसे ही ॥ ३७ ॥ जो किसीको आँखें मटकाकर, किसीको बोलीसे, किसीको हाव-भावोंसे और किसी दूसरेको रतिक्रीड़ासे प्रसन्न रखती है वह अनेक रूपवाली स्त्री भला किसकी सगी हो सकती है ॥ ३८ ॥ स्त्रियाँ न तो लाजके कारण सती रह जातीं, न नम्रताके, न चतुरता (अनुकूलता) के और न डरपोक होनेके कारण ही। सच तो यह है कि रति करनेके लिये कोई कहनेवाला पुरुष ही उन्हें नहीं मिलता इसीसे वे सती रह जाती हैं ॥ ३९ ॥ न तो स्त्रियोंकी कठोरता विषसे दूर हो सकती, न शस्त्रसे और न अग्निसे ही, यहाँतक कि मौतके डरसे भी उनकी दुष्टता नहीं भूलती। अतः, जान पड़ता है कि कठोर स्त्रियोंने ही इन्हें कठोर बनाया है ॥ ४० ॥ न तो स्त्रियोंका कोई प्यारा ही है न शत्रु ही। वे तो वनमें गौओंकी भाँति सदा नया-नया ही पुरुष चाहती रहती हैं ॥ ४१ ॥ न तो स्त्रियोंके साथ अत्यधिक प्रसङ्ग ही करना चाहिए और न यही सोचना चाहिए कि स्त्रियोंके सम्पर्कसे बल बढ़ेगा क्योंकि अत्यधिक आसक्त पुरुषोंके साथ वे परकटे कौओंके समान खेल करती हैं ॥ ४२ ॥ इन स्त्रियोंकी आयुका कोई भरोसा नहीं है। ऐसा कोई पुरुष भी नहीं है जिसके साथ ये सम्भोग न कर सकें। ये तो पुरुष-मात्रका उपभोग करना जानती हैं, चाहे वह सुन्दर हो या असुन्दर ॥ ४३ ॥ हे देवर्षि (नारद)!

चान्ये कुत्सिता जनाः। स्त्रीणामगम्यो लोकेऽस्मिन्नास्ति कश्चिन्महामुने ॥ ४४ ॥ भर्ता यद्यपि नीतिशास्त्रनिपुणो विद्वान्कुलीनो युवा दाता कर्णसमः प्रसिद्धविभवः शृङ्गारदीक्षागुरुः। स्वप्राणाधिककल्पिता स्ववनिता स्नेहेन संलालिता तं कान्तं प्रविहाय सैव युवती जारं पतिं वाञ्छति ॥ ४५ ॥ भोजनाच्छादने दद्यादृतुकाले च सङ्गमम्। भूषणाद्यं च नारीणां न ताभिर्मन्त्रयेत्सुधीः ॥ ४६ ॥ माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा न माद्यति। यस्माद्दृष्टिमदा नारी तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ४७ ॥ मुक्ताहारलता रणन्मणिमया हैमास्तुलाकोटयो रागः कुङ्कुमसम्भवः सुरभयः पौष्प्यो विचित्राः स्रजः। वासश्चित्रदुकूलमल्पमतिभिर्नार्यामहो कल्पितं बाह्यान्तः परिपश्यतां तु निरयो नारीति नाम्ना कृतः ॥ ४८ ॥ यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्र प्रशासिता। राजन्निर्मूलतां याति तद्गृहं भार्गवोऽब्रवीत् ॥ ४९ ॥ यदन्तस्तन्न जिह्वायां यज्जिह्वायां न तद्बहिः। यद्बहिस्तन्न कुर्वन्ति विचित्रचरिताः स्त्रियः ॥ ५० ॥ यदि स्याच्छीतलो वह्निश्चन्द्रमा दहनात्मकः। सुस्वादः सागरः स्त्रीणां तत्सतीत्वं प्रजायते ॥ ५१ ॥ यदि स्यात्पावकः शीतः प्रोष्णो वा शशलाञ्छनः। स्त्रीणां तदा सतीत्वं स्याद्यदि स्याद्दुर्जनो हितः ॥ ५२ ॥ यस्य जिह्वासहस्रं स्याज्जीवेत्साग्रशतं च यः। अनन्यकर्मा स्त्रीदोषान्सोऽप्यनुक्त्वा लयं व्रजेत् ॥ ५३ ॥ यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निःस्त्रीकस्य क्व भोगभूः। स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ ५४ ॥ या भार्या दुष्टचरिता सततं कलहप्रिया। भार्यारूपेण सा ज्ञेया विदग्धैर्दारुणा जरा ॥ ५५ ॥ या हि शश्वद्बहुमता रक्ष्यन्ते दयिताः स्त्रियः। अपि ताः सम्प्रसज्जन्ते कुब्जान्धजडवामनैः ॥ ५६ ॥ यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मम कामिनी। स तस्या वशगो नित्यं भवेत्क्रीडाशकुन्तवत् ॥ ५७ ॥ यौवने वर्तमानानां मृष्टाभरणवाससाम्। नारीणां स्वैरवृत्तीनां स्पृहयन्ति कुलस्त्रियः

हे महामुने ! संसारमें जितने भी लँगड़े-लूले या नीच पुरुष हैं उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं है जिसके साथ ये सम्भोग न कर लें ॥ ४४ ॥ पति भले ही नीतिशास्त्रमें चतुर, विद्वान्, उत्तम कुलवाला, युवा, कर्णके समान दानी, प्रसिद्ध ऐश्वर्यवाला, शृंगारकी कलाओंका गुरु, अपनी पत्नीको प्राणोंसे बढ़कर माननेवाला, तथा स्नेहपूर्वक उसका पालन-पोषण करनेवाला हो किन्तु ऐसे प्रियतमको भी छोड़कर स्त्री जार पतिको चाहती है ॥ ४५ ॥ बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिए कि वे स्त्रियोंको भोजन, वस्त्र, ऋतु कालमें समागम और गहने आदि भले ही दें किन्तु उनसे कभी सम्मति न लें ॥ ४६ ॥ स्त्रीको देखकर ही पुरुष मतवाला हो जाता है और मदिराको पीकर भी मतवाला नहीं होता। अतः चितवन-रूपी मदिरावाली स्त्रीको तो छोड़ ही देना चाहिए ॥ ४७ ॥ मूर्ख मनुष्य भले ही नारियोंके लिये मोतीके हार, सोनेके मणि-जड़े बजते हुए बिछुए, केसरका अङ्गराग, फूलोंकी सुन्दर, सुगन्धित मालाएँ और रङ्ग-बिरङ्गे रेशमी वस्त्र जुटाया करें किन्तु बाहर-भीतर चारों ओर दृष्टि दौड़ानेवाले भले आदमी तो उन्हें 'नारी' नामका नरक ही समझते हैं ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! शुक्राचार्यने कहा है कि जिस घरमें बालक (मूर्ख), स्त्री और धूर्त्त कर्त्ता-धर्त्ता होते हैं वह निर्मूल हो जाता है ॥ ४९ ॥ जो मनमें है वह जीभपर नहीं, जो जीभपर है वह कहती नहीं और जो कहती हैं वह करतीं नहीं। सचमुच स्त्रियाँ बड़े विचित्र स्वभावकी होती हैं ॥ ५० ॥ यदि आग ठण्ढी हो जाय, चन्द्रमा जलने लगे और समुद्र मीठे जलवाला हो जाय तब स्त्रियाँ भी सती हो सकती हैं, अर्थात् न कभी यह सब होगा, न कभी स्त्रियाँ सती होंगी ॥ ५१ ॥ यदि अग्नि शीतल, चन्द्रमा गरम और दुर्जन हितकारी हो जाय तो स्त्रियाँ भी सती हो सकती हैं ॥ ५२ ॥ यदि किसीकी एक सहस्र जीभें हों, सौ वर्षसे भी अधिक आयु हो और सदा सब काम छोड़कर वह स्त्रियोंके केवल दोष ही दोष गिनता रहे तो भी वह बिना सारे दोष गिने ही मर जायगा ॥ ५३ ॥ जिसके पास स्त्री है, उसे भोगकी इच्छा है, जिसके पास स्त्री नहीं है उसे भोगकर इच्छा होगी ही कहाँसे ? स्त्रीको छोड़ दिया तो सारा संसार छूट गया और संसार छूट गया तो मनुष्य सुखी हो गया ॥ ५४ ॥ पण्डितोंको चाहिए कि वे दुष्ट चरित्रवाली तथा सदा झगड़ा-टण्टा चाहनेवाली पत्नीको स्त्री-रूपमें भयङ्कर बुढ़ापा समझें ॥ ५५ ॥ जिन स्त्रियोंका सदा बहुत मान किया जाता है तथा प्यारी समझकर जिनकी रक्षा की जाती है वे भी कुबड़े, अन्धे, मूर्ख और बौनोंसे जा फँसती हैं ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य मोहके कारण यह मानता है कि यह स्त्री मुझसे प्रेम करती है वह परकटे खेलके पक्षीकी भाँति सदाके

॥ ५८ ॥ रक्तोऽभिजायते भोग्यो नारीणां शाटको यथा। घृष्यते यो दशालम्बी नितम्बे विनिवेशितः ॥ ५९ ॥ रूक्षायां स्नेहसम्भारं कठोरायां सुमार्दवम्। नीरसायां रसं बालो बालिकायां विकल्पयेत् ॥ ६० ॥ लोकानामपि दातारं कर्त्तारं मानसान्त्वयोः। रक्षितारं न मृष्यन्ति भर्तारं परमस्त्रियः ॥ ६१ ॥ विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः। नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ६२ ॥ शम्बरस्य च या माया या माया नमुचेरपि। बलेः कुम्भीनसेश्चैव सर्वास्ता योषितो विदुः ॥ ६३ ॥ शास्त्रज्ञोऽपि प्रकटविनयोऽप्यात्मबोधेऽपि गाढं संसारेऽस्मिन्भवति विरलो भाजनं सद्गतीनाम्। येनैतस्मिन्निरयनगरद्वारमुद्घाटयन्ती वामाक्षीणां भवति कुटिला भ्रूलता कुञ्चिकेव ॥ ६४ ॥ शृणु हृदय रहस्यं यत्प्रशस्तं मुनीनां न खलु न खलु योषित्सन्निधिः संविधेयः। हरति हि हरिणाक्षी क्षिप्रमक्षि क्षुरप्रैः पिहितशमतनुत्रं चित्तमप्युत्तमानाम् ॥ ६५ ॥ सङ्गतानि मृगाक्षीणां तडिद्विलसितान्यपि। क्षणद्वयं न तिष्ठन्ति घनारब्धान्यपि स्वयम् ॥ ६६ ॥ सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति। एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥६७॥ समयज्ञानर्थवतः प्रतिरूपान्वशे स्थितान्। पतीनां तटमासाद्य नालं नार्यः प्रतीक्षितुम् ॥६८॥ समुद्रवीचीव चलस्वभावाः सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः। स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत्त्यजन्ति ॥ ६९ ॥ सुमुखेन वदन्ति वल्गुना प्रहरन्त्येव सितेन चेतसा। मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदये हालाहलं महद्विषम् ॥ ७० ॥ सुरूपं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्। योनिः क्लिद्यति नारीणामामपात्रमिवाम्भसा ॥ ७१ ॥ स्त्रीणां द्विगुण आहारो लज्जा चापि चतुर्गुणा। साहसं षड्गुणं चैव कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥ ७२ ॥ स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीणां

लिये उसके वशमें हो जाता है ॥ ५७ ॥ स्वतन्त्र नवेलियोंको चमकीले गहने पहने देखकर कुलीन स्त्रियोंके मनमें भी वैसी ही चाह जगने लगती है ॥ ५८ ॥ नितम्बोंपर पहने हुए (बैठाए हुए) दशालम्बी वस्त्रकी भाँति आसक्त पुरुषको भी वे उपभोग करके (फट जानेपर) छोड़ देती हैं ॥ ५९ ॥ मूर्ख मनुष्य रूखी, कठोर तथा नीरस नवेलीमें अत्यन्त रस, कोमलता और रसकी कल्पना करते हैं ॥६०॥ उपरके लोकोंमें गति देनेवाले, रूठने और प्रसन्न होनेवाले तथा अपने रक्षक श्रेष्ठ प्रियतमको भी स्त्रियाँ कुछ नहीं समझतीं ॥ ६१ ॥ मूर्खोंको झूठे विश्वासमें डालकर, उनसे सच्चा प्रेम न करनेवाली स्वतन्त्र व्यभिचारिणी स्त्रियाँ सदा नया-नया पुरुष ही चाहती रहती हैं ॥ ६२ ॥ शम्बर, नमुचि, बलि और कुम्भीनस जो माया जानते थे वे सब मायाएँ ये स्त्रियाँ जानती हैं ॥ ६३ ॥ नरकरूपी नगरका द्वार खोलनेके लिये तिरछी चितवनवाली नवेलियोंकी बाँकी भौंह चाबी बनी हुई हैं ही इसीलिये बड़े-बड़े शास्त्रोंको जाननेवाले, नम्रता दिखानेवाले और आत्मज्ञानमें लीन मनुष्योंमेंसे कोई विरला ही उत्तम गति पाता है ॥ ६४ ॥ हे हृदय! मुनियोंकी भी भलाई करनेवाली एक रहस्यवाली बात सुनो—स्त्रियोंका साथ कभी-कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि शान्तिरूपी कवचको अपने चितवनरूपी बाणोंसे बेधकर महात्माओंका मन भी मृगनयनी शीघ्र ही खींच लेती है ॥ ६५ ॥ कसकर आलिङ्गन करके नवेलियोंसे किया हुआ सम्भोग और घने उमड़े हुए बादलोंकी बिजलीकी तड़प, ये दोनों दो क्षण भी नहीं ठहरतीं ॥ ६६ ॥ ये बाँके नयनोंवाली स्त्रियाँ पुरुषोंके दयालु हृदयमें घुसकर उन्हें मोहित कर लेती हैं, मदमें चूर कर देती हैं, फटकारती हैं, उनसे सम्भोग करती हैं और दुखी कर देती हैं। क्या-क्या ये नहीं कर डालतीं ? ॥ ६७ ॥ पतियोंका तट पाकर स्त्रियाँ समय जाननेवाले, वशमें रहनेवाले तथा अनर्थके रूप जारोंकी प्रतीक्षा नहीं कर सकतीं ॥ ६८ ॥ समुद्रकी लहरोंके समान चञ्चल स्वभाववाली तथा साँझके आकाशकी ललाईके समान दो घड़ी प्रसन्न रहनेवाली स्त्रियाँ काम निकालकर निर्धन पुरुषोंको निचोड़े हुए महावरकी भाँति छोड़ बैठती हैं ॥ ६९ ॥ सुन्दर मुखसे तो ये प्यारी बोली बोलती हैं और स्वच्छ हृदयसे मानो प्रहार ही करती हैं। जान पड़ता है इनके मुँहमें मधु तथा हृदयमें भयङ्कर हलाहल विष भरा रहता है ॥ ७० ॥ अपने भाई या पुत्रको भी सुन्दर पुरुषके रूपमें देखकर स्त्रियोंकी योनि वैसे ही गीली हो जाती है जैसे पानीसे भरा कच्चा घड़ा ॥ ७१ ॥ स्त्रियोंमें पुरुषोंसे दुगुना भोजन, चौगुनी लाज, छहगुना साहस और अठगुना काम होता है ॥ ७२ ॥ स्त्रियोंकी स्वाभाविक चतुरता पशु-पक्षियोंमें भी दिखाई देती है, फिर जो ज्ञानवान् हैं उनका तो पूछना

संदृश्यते किमुत याः परिबोधवत्यः । प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजातमन्यद्विजैः परभृताः किल पोषयन्ति ॥ ७३ ॥ स्त्रीषु न रागः कार्यो रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति । रक्तैव हि रन्तव्या विरक्तभावा तु हातव्या ॥ ७४ ॥ स्त्रियस्तु यः कामयते सन्निकर्षं च गच्छति । ईषत्प्रकुरुते सेवां तं तमिच्छन्ति योषितः ॥७५॥ स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः । पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रेणैवोपदिश्यते ॥ ७६ ॥ स्त्रियो हि मूलं निधनस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलं व्यसनस्य पुंसः । स्त्रियो हि मूलं नरकस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलं कलहस्य पुंसः ॥ ७७ ॥ स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः । घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ७८ ॥ स्थानं नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः । तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥ ७९ ॥ स्वातन्त्र्यं पितृमन्दिरे च वसतिर्यात्रोत्सवे सङ्गतिर्गोष्ठीपूरुषसन्निधाननियमो वासो विदेशे तथा । संसर्गः सह पुंश्चलीभिरसकृद्वृत्तेर्निजायाः क्षतिः पत्युर्वार्धकमीर्ष्यितं प्रवसनं नाशस्य हेतुः स्त्रियः ॥ ८० ॥ हसन्तं प्रहसन्त्येता रुदन्तं प्ररुदन्त्यपि । अप्रियं प्रियवाक्यैश्च गृह्णन्ति कालयोगतः ॥ ८१ ॥ हासस्तूलकलिकाप्रदीपनपटुर्हस्तांघ्रिनेत्राननं तन्वङ्ग्या विषजातमेव भुजगी वेणी च रोमावलिः । किं च श्रीफलमुन्नतस्तनभरः काममनस्तामिमां सर्वाकारविषोग्रमूर्तिमबलां प्राप्यापि यज्जीवति ॥ ८२ ॥ हृदयं हरन्ति नार्यो मुनेरपि भ्रूकटाक्षविक्षेपैः । दोर्मूलनाभिदेशं प्रदर्शयन्त्यो महाचपलाः ॥ ८३ ॥

असती-चरित्रम् : अनार्यप्रज्ञानामिह जनवधूनां हि मनसो महाशल्यं कर्णे तव नवकजम्बूकिसलयः । भ्रमन्भिक्षाहेतोरधिनगरि बुद्धोऽसि न मया त्वयैतावद्वेषः पथिक न विधेयः पुनरपि ॥ १ ॥ अम्ब श्वश्रु यदि त्वया हतशुकः संवर्धनीयस्तदा लौहं पञ्जरमस्य दुर्नयवतो गाढान्तरं कारय । अद्यैनं बदरीनिकुञ्जकुहरे

ही क्या है । दूसरे देशोंको उड़ जानेसे पहले ही कोयलियाँ चकमा देकर दूसरे पक्षियोंसे अपने बच्चोंका पालन-पोषण करा लेती हैं ॥७३॥ स्त्रियोंके फेरमें कभी नहीं पड़ना चाहिए! क्योंकि जो उनपर रीझता है उसे वे बहुत नीचा दिखाती हैं। अतः, जो स्त्री स्वयं अपने ऊपर रीझी हो उसीसे प्रेम करना चाहिए, औरोंसे बाततक नहीं करनी चाहिए ॥७४॥ स्त्रियोंका कुछ ऐसा स्वभाव होता है कि जो उन्हें चाहे उनके पास आता-जाता रहे और उनकी थोड़ी भी सेवा करता रहे, उसे ही वे चाहने लगती हैं ॥ ७५ ॥ पुरुष तो कहीं शास्त्र पढ़कर पण्डित बन पाते हैं पर ये स्त्रियाँ तो पण्डित होकर जन्म ही लेती हैं ॥७६॥ पुरुषोंकी मृत्यु, दुःख, नरक और लड़ाई-झगड़े सबका कारण केवल स्त्रियाँ ही हैं ॥७७॥ स्त्रियाँ इतनी निष्ठुर, दुष्ट, असहनशील तथा साहसी होती हैं कि वे अपने थोड़ेसे लाभके लिये भी अपने विश्वासी पति या भाईतकके प्राण ले सकती हैं ॥७८॥ हे नारद ! स्त्रियाँ जो सती बनी रह जाती हैं उसका सीधा कारण यही है कि न तो उन्हें व्यभिचारके लिये कोई सूना स्थान मिल पाता, न कोई पुरुष ही संभोगके लिये कहनेवाला मिल पाता है ॥७९॥ जो स्त्री अपने पिताके घर स्वतंत्र घूमती हो, बहुतसी यात्राओं और उत्सवोंमें आती-जाती हो, सदा पुरुषोंके साथ उठती-बैठती हो, परदेसमें घूमा करती हो, व्यभिचारिणी स्त्रियोंके साथ आती-जाती हो, जिसे देखे उसी पर रीझ जाती हो, जिसका पति बूढ़ा हो या परदेशमें रहता हो, तो समझ लीजिए कि उसने कुल डुबोया ॥८०॥ ये स्त्रियाँ हँसनेवालेके सामने हँसकर, रोनेवालेके सामने तत्काल रोकर और जैसा अवसर देखा उसके अनुसार मीठी या कड़वी बात कहकर पुरुषको मुट्ठीमें कर ही लेती हैं ॥८१॥ नवेलीकी हँसीमें काम जगानेका जादू है, उसके हाथ, पाँव, नेत्र और मुँह सब एकसे एक बढ़कर विषैले हैं, उसकी चोटी और रोमावलियाँ नागिन हैं और उसके ऊँचे-ऊँचे मोटे स्तन बेलके समान कठोर हैं पर अचरज तो यह है कि ऐसी भयंकर विषकी मूर्तिवाली स्त्रीको पाकर भी मेरा मन भली-भाँति जिए जा रहा है ॥८२॥ अत्यन्त चञ्चल नारियाँ अपनी भौंहें और चितवन चलाकर तथा नाभि और काँख दिखा-दिखाकर मुनिका भी मन हर लेती हैं ॥ ८३ ॥

कुलटाके चरित्रका वर्णन : हे यात्री ! तुम्हारे कानपर टँगे हुए जामुनके पत्ते यहाँकी खोटी बहुओंके मनमें बड़े काँटेके समान चुभ रहे हैं। इस गाँवमें भीख माँगनेके लिये घूमते हुए तुमको मैं तबतक भी नहीं पहचान पाई थी। अतः अब ऐसा वेष कभी न बनाना ॥१॥ हे सास माँ ! यदि इस निगोड़े सुग्गेको पालना ही है तो इस दुष्टके लिये एक दूसरा लोहेका सँकरा पिंजड़ा बनवा लो। आज बेरकी झाड़ियोंमें इसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जो ये मेरे अंग छिद गए इसकी तो कोई चिन्ता नहीं

संलीनमन्विष्यती दृष्टा यत्र भुजङ्गमेन तदतिश्रेयः किमेभिः क्षतैः ॥२॥ अम्बा शेतेऽत्र वृद्धा परिणतवयसामग्रणीरत्र तातो निश्शेषागारकर्मश्रमशिथिलतनुः कुम्भदासी तथाऽत्र । अस्मिन् पापाऽहमेका कतिपयदिवसप्रोषितप्राणनाथा पान्थायेत्थं तरुण्या कथितमवसरव्याहृतिव्याजपूर्वम् ॥ ३ ॥ अयं रेवाकुञ्जः कुसुमशरसेवा समुचितः समीरोऽयं वेलानवविदलदेलापरिमलः। इयं प्रावृड् धन्या नवजलदविन्यासचतुरा पराधीनं चेतः सखि किमपि कर्तुं मृगयते ॥४॥ अये को जानीते निजपुरुषसङ्गो नहि तथा यथा स्त्रीणां चेतः परपुरुषसङ्गो रमयति। अपि स्वैरं भुक्ता दिवसमखिलं वासरकृता करस्पर्शादिन्दोर्मुकुलयति नेत्राणि नलिनी ॥५॥ अये कोऽयं वृद्धो गृहपरिवृढः किं तव पिता न मे भर्ता किन्तु व्यपगतदृगन्यश्च बधिरः। हुहुं श्रान्तोऽद्याहं शिशयिपुरिहैवापवरके क्व यामिन्यां यामि स्वपिमि ननु निर्दंशमशके ॥ ६ ॥ आः पाकं न करोषि पापिनि कथं पापी त्वदीयः पिता रण्डे जल्पसि किं तवैव जननी रण्डा त्वदीया स्वसा । निर्गच्छ त्वरितं गृहाद्बहिरितो नेदं त्वदीयं गृहं हा हा नाथ ममाद्य देहि मरणं जारस्य भाग्योदयः ॥ ७ ॥ आकारेण शशी गिरा परभृतः पारावतश्चुम्बने हंसश्चङ्क्रमणे समं दयितया रत्यां प्रमत्तो गजः । इत्थं भर्तरि मे समस्तयुवतिश्लाघ्यैर्गुणैः सेविते क्षुण्णं नास्ति विवाहितः पतिरिति स्यान्नैव दोषो यदि ॥ ८ ॥ आयातासि विमुञ्च वेपथुभरं दृष्टासि नो केनचिन्नीलं चोलममुं विमुञ्च हरतु स्वेदं निशीथानिलः । इत्यन्तर्भयसन्नकण्ठमसकृद्यामीति तल्पं गता जल्पन्ती परिरभ्यते सुकृतिभिः स्वैरं नवस्वैरिणी ॥ ९ ॥ आरोपिता शिलायामश्मेव त्वं भवेति मन्त्रेण। मग्नापि परिणयापदि जारमुखं वीक्ष्य हसितैव ॥ १० ॥ आस्तां विश्वसनं

पर यही बहुत समझो कि वहाँ किसी साँपने मुझे डस नहीं लिया ॥ २ ॥ किसी बटोहीको कोई नवेली मिलनेका स्थान समझाते हुए कहती है—'देखो ! यहाँ तो मेरी बुढ़िया माँ पड़ी है, यहाँ अत्यन्त बूढ़े पिता सो रहे हैं और यहाँ सारे घरका काम-काज करके थकी हुई दासी सो रही है, मेरे प्राणनाथ भी कुछ दिन हुए परदेस चले गए हैं। इस घरमें मैं अकेली एक पापिन बच रही हूँ' ॥ ३ ॥ हे सखी ! कामदेवकी सेवाके लिये यह नर्मदाके तटकी झाड़ी बड़ी अच्छी है। देखो ! तटपर खिली हुई नई इलायचीकी गन्धसे लदा पवन बह रहा है, नये-नये बादलोंसे घिरी यह सुहावनी बरसात आ पहुँची है। अतः, मेरा मन भी अब कुछ कर डालनेके लिये मचल रहा है ॥४॥ अरे ! कौन जानता है कि स्त्रियोंके मनको अपने पतिका समागम उतना आनन्द नहीं देता जितना परपुरुषका । तभी तो दिनभर सूर्यसे जीभर उपभोग करा लेनेपर भी कमलिनी चन्द्रमाकी किरणें छू जाते ही आँखें मूँदने लगी है ॥ ५ ॥ किसी बटोहीने किसी नवेलीसे पूछा—'अरे, यह घरका स्वामी बुड्ढा क्या तुम्हारा पिता है ?' तो नवेलीने जैसे ही उत्तर दिया—'नहीं, यह मेरा पति है, किन्तु इसकी आँखें फूट गई हैं और यह बहरा भी है' वैसे ही वह बटोही बोला—'हूँऽऽ, मैं थक गया हूँ, सोना चाहता हूँ, यहाँपर मच्छर-डाँस भी नहीं है। अतः, अब रातमें कहाँ जाऊँगा, यहीं सोया जाता हूँ' ॥६॥ पति-पत्नीमें टण्टा हो रहा है—पति : आह पापिन ! अभीतक रसोई क्यों नहीं बना रही है ? पत्नी : पापी तेरा बाप ? पति : रण्डी ! क्या बक रही है ? पत्नी : रण्डी तेरी माँ, तेरी बहन ! पति : अभी इस घरसे बाहर निकल ! पत्नी : चल चल ! यह तेरा घर नहीं है। पति : हाय नाथ ! अब मुझे मृत्यु दे दीजिए। अब जारका भाग्योदय हो गया है ॥७॥ मेरा पति चन्द्रमा के समान सुन्दर है, कोयलके समान मीठा बोलता है कबूतरके समान चुम्बन लेता है, हंसके समान चलता है और मतवाले हाथीके समान समर्थ होकर रति करता है। इस प्रकार नवेलियोंको अच्छे लगनेवाले सभी गुण उसमें हैं पर यदि वह विवाहित पति न होता तो उसकी बची-खुची कमी भी पूरी हो जाती ॥८॥ 'आ गई ? अच्छा, सुस्ता लो ! किसीने देखा तो नहीं ? ये काले वस्त्र उतार दो जिससे आधी रातका ठंढा पवन लगे और पसीना सूख जाय ।' इस प्रकार प्रियतमके कहनेपर मनकी घबराहटके कारण रुँधे हुए कण्ठसे बार-बार 'जाती हूँ, जाती हूँ' कहती हुई पलँगपर जा लेटनेवाली व्यभिचारिणी नवेलीको पुण्यात्मा लोग जी भरकर गले लगाते हैं ॥ ९ ॥ विवाहके समय 'अश्मा भव' (तुम पति प्रेममें पत्थरके समान स्थिर होओ) मंत्र पढ़कर जब एक व्यभिचारिणी पत्थरपर खड़ी की गई तब उस विवाहरूपी विपत्तिमें पड़ी हुई भी वह अपने यारका मुँह देखकर मुसकरा उठी ॥ १० ॥ जब उस प्रेमी नायकका अभिप्राय मैंने जान लिया तब सखियोंपर विश्वास करना तो क्या, मैं तो उसकी ओर लाजके मारे अपनी चितवन भी नहीं चला सकती।

सखीषु विदिताभिप्रायसारे जने तत्राप्यर्पयितुं दृशं सुरुचिरां शक्नोमि न व्रीडया। लोकोऽप्येष परोपहासकुशलः सूक्ष्मेङ्गितज्ञोऽप्यलं मातः कं शरणं व्रजामि हृदये जीर्णोऽनुरागानलः ॥११॥ इन्दुर्यत्र न निन्द्यते न मधुरं दूतीवचः श्रूयते नोच्छ्वासा हृदयं दहन्त्यशिशिरा नोपैति कार्श्यं वपुः। स्वाधीनामनुकूलिकां स्वगृहिणीमालिङ्ग्य यत्सुप्यते तत्किं प्रेम गृहाश्रमव्रतमिदं कष्टं समाचर्यते ॥१२॥ इह नगरे प्रतिरथ्यं भुजङ्गसम्बाधरुचिरसञ्चारे। सुन्दरि मम मतमेतन्नकुलप्रतिपालनं श्रेयः ॥ १३ ॥ इह वटवृक्षे यक्षः प्रतिवसति दिवापि यत्र भयशङ्का। तस्मिन्नभिनववध्वा नीता वीतोदयाः क्षणदाः ॥१४॥ एकान्ते वत नो गृहं शशिमुखोऽप्यन्यादृशो दृश्यते क्षिप्रं साधय यातु पुत्रि स दिने भुक्त्वान्यमावासकम्। श्वश्र्वा सम्भ्रमिता किलेति बहुशः सम्प्रेरयन्त्या वधूः पान्थं वीक्ष्य बभञ्ज सस्मितमुखी सैवार्धसिद्धोदनम् ॥ १५ ॥ एते वारिकणाः किरन्ति पुरुषान्वर्षन्ति नाम्भोधराः शैलाः शाद्वलमुद्गमन्ति न सृजन्त्येते पुनर्नायकान्। त्रैलोक्ये तरवः फलानि सुवते नैवारभन्ते जनान्धातः कातरमालपामि कुलटाहेतोस्त्वया किं कृतम् ॥१६॥ एषैव योषितां धन्या शीलं च लभते सुखम्। दिवा पतिव्रता भूयो नक्तं च कुलटा यतः ॥ १७ ॥ एष्यति मा पुनरयमिति गमने यदमङ्गलं मयाकारि। अधुना तदेव कारणमवस्थितौ दग्धगेहपतेः ॥१८॥ कार्येणापि विलम्बनं परगृहे श्वश्रून सम्मन्यते शङ्कामारचयन्ति यूनि भवनं प्राप्ते मिथो यातरः। वीथीनिर्गमनेऽपि तर्जयति च क्रुद्धा ननान्दा पुनः कष्टं हन्त मृगीदृशां पतिगृहं प्रायेण कारागृहम् ॥१९॥ कार्ये सत्यपि जातु याति न वहिर्नाप्यन्यमालोकते साध्वीरप्यनुकुर्वती गुरुजनं श्वश्रूं च शुश्रूषते। विस्रम्भं कुरुते च पत्युरधिकं प्राप्ते निशीथे पुनर्निद्राणे सकले जने शशिमुखी निर्याति रन्तुं विटैः ॥ २० ॥ कुलपतनं जनगर्हां बन्धनमतिजीवितस्य सन्देहम्।

लोग भी दूसरोंकी खिल्ली उड़ानेमें बड़े चतुर हैं और छिपा हुआ संकेत भी समझ लेते हैं। तो माँ! अब मैं किसकी शरण जाऊँ, मेरे हृदयमें तो प्रेमकी अग्नि धधक रही है ॥ ११ ॥ जहाँ बिछोहके मारे चन्द्रमाकी निंदा नहीं की जाती, दूतीकी मीठी बोली कहीं नहीं सुनी जाती, गरम साँसें जी नहीं जलातीं, देह दुबली नहीं होती और अपने वशमें रहनेवाली, आज्ञाकारी स्त्रीको गले लगाकर लोग सो जाते हैं, वह क्या प्रेम है? वह तो गृहस्थाश्रमका व्रत है, जिसका लोग बड़े कष्टसे पालन करते हैं ॥१२॥ हे सुन्दरी! नगरकी गलियोंमें इतने जार हैं कि ठीक-ठीक चल पाना कठिन है। अतः, मेरी समझमें तो अब कुल-मर्यादा पालनेमें कोई भलाई नहीं है। [इस नगरकी गलियोंमें इतने सर्प हैं कि नेवला पालनेमें ही भलाई दिखाई देती है।] ॥१३॥ जिस वटवृक्षपर यक्ष रहता है और जिसके पास दिनमें भी जाते डर लगता है उसीके नीचे उस नवेलीने न जाने कितनी अँधेरी रातें बिता डालीं ॥ १४ ॥ 'बेटी! हमारा घर निरालेमें है और इस चाँदसे मुखड़ेवाले बटोहीके भी रंग-ढंग कुछ अच्छे नहीं दिखाई देते, इसलिये झटपट रसोई बना ले जिससे यह खा-पीकर किसी दूसरे घरकी राह ले।' सासके बार-बार ऐसा कहनेपर घबराई हुई बहूने बटोहीकी ओर देखकर मुस्कराते हुए वहीं अधपके चावल उतार दिए ॥१५॥ ये मेघ पानीकी बूँदें तो बरसाते हैं किन्तु पुरुषोंकी वर्षा नहीं करते, ये पर्वत भी घास तो उगाते हैं, पुरुष नहीं और तीनों लोकोंके ये वृक्ष भी फूल ही खिलाते हैं, पुरुष नहीं। अतः, हे ब्रह्मा! मैं खिन्न होकर तुमसे पूछती हूँ कि कुलटाओंके लिये तुमने क्या किया? ॥ १६ ॥ स्त्रियोंमें यही एक धन्य स्त्री शील तथा सुख पाती है, क्योंकि दिनमें यह पतिव्रता रहती है और रातमें आनन्द लेती है ॥१७॥ इस मुँहजले घरके स्वामीके घरसे बाहर जाते समय जो मैंने अपशकुन किया था (रोई थी) कि जिससे यह लौटकर न आने पावे उसीके कारण जान पड़ता है यह लौटकर घर आ गया है ॥१८॥ कहीं किसी कामसे दूसरेके घरमें विलंब हो गया तो सास उबल पड़े कोई युवक घरमें आने-जाने लगे तो देवरानी-जेठानीके कान खड़े हो जायँ और ननद तो ऐसी कि गलीमें पैर धरा नहीं कि डाटा नहीं। सचमुच, मृगनयनी नवेलियोंके लिये पतिका घर क्या है कारागार है ॥१९॥ वह चंद्रमुखी ऐसी चंट है कि काम पड़नेपर भी बाहर पैर नहीं धरती, किसीकी ओर भर आँख ताकती नहीं, घरकी सती-साध्वी स्त्रियों-जैसा ढङ्ग बनाए रखती है, घरके बड़े-बूढ़ोंकी और सासकी सेवा करती है और ऐसे ढङ्गसे सब काम करती है कि पतिका उसपर पक्का विश्वास जमा रहे, पर जहाँ आधीरात हुई और सब लोग सोए कि वह झट जारोंसे रमण करनेके लिये घरसे निकल पड़ती है ॥२०॥ जो स्त्री दूसरे पुरुषमें आसक्त होती है वह स्त्री अपने कुलका नाश, लोक-

अङ्गीकरोति सकलं वनिता परपुरुषसंसक्ता ॥ २१ ॥ केलिः प्रदहति मज्जां श्टगारोऽस्थीनि चाटवः कटवः। वन्धक्याः परितोषो न स्यादनभीष्टदम्पत्योः ॥ २२ ॥ ग्रामतरुणं तरुण्या नववञ्जुलमञ्जरीसनाथकरम्। पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया ॥२३॥ गोष्ठेषु तिष्ठति पतिर्बधिरा ननान्दा नेत्रद्वयस्य च न पाटवमस्ति यातुः। इत्थं निशम्य तरुणी कुचकुम्भसीम्नि रोमाञ्चकञ्चुकमुदञ्चितमाततान ॥२४॥ चेत्पौरादपि शङ्कसे हिमरुचोरप्यर्चिषो लज्जसे भोगीन्द्रादपि वेद्धिभेषि तिमिरस्तोमादपि त्रस्यसि। चेत्कुञ्जादपि दूयसे जनघटध्वानादपि क्षुभ्यसि प्रायः पुत्रि हतास्मि हन्त भविता त्वत्तः कलङ्कः कुले॥ २५ ॥ जन्मैव मास्तु यदि वा न नितम्बिनीषु तत्रापि चेदहह नैव कुलाङ्गनासु। हा धिग्विधे कुलवधूरथ चेद्भवेयं नैवास्तु च क्वचन मे मनसोऽनुबन्धः ॥ २६ ॥ ज्ञातं ज्ञातिजनैः प्रमृष्टमयशो दूरं गता धीरता त्यक्ता ह्रीः प्रतिपादितोऽप्यविनयः साध्वीपदं प्रोज्झितम्। लुप्ता चोभयलोकसाधुपदवी दत्तः कलङ्कः कुले भूयो दूति किमन्यदस्ति यदसावद्यापि नागच्छति ॥ २७ ॥ ज्ञाता मैत्री सहजमधुरापातिभिर्लोचितान्तैः कर्णाकर्णि प्रथितमयशो बन्धुवर्गैरभाणि। सम्प्रत्येवं तदपि न मनाङ्मुञ्चति प्राणनाथं को जानीते कुवलयदृशः कीदृशः प्रेमबन्धः ॥ २८ ॥ ताम्बूलाक्तं दशनमसकृद्दर्शयन्तीह चेटी घोटीह्रेषा विकृतविरुतं हेतुहीनं हसन्ती। स्थानस्थानस्खलितपदविन्यासमाभासमाना यूनामग्रे वसति कुटिलं नर्तितोच्चैर्नितम्बम् ॥ २९ ॥ तिमिरेऽपि दूरदृश्या कठिनाश्लेषे च रहसि मुखरा च। दन्तमयवलयराजी गृहपतिशिरसा सह स्फुटतु ॥३०॥ दिवसे घटिकास्त्रिंशत्त्रिंशद्घटिकाः परं रजनौ। लक्षं नगरयुवानस्तात विधातः किमाचरितम् ॥ ३१ ॥ दुर्दिवसे घनतिमिरे दुःसञ्चारासु नगरवीथीषु। पत्युर्विदेशगमने परमसुखं जघनचपलायाः ॥ ३२ ॥ दृग्भङ्गभङ्गि-

निंदा, बंधन यहाँतक कि मृत्युका भी भय नहीं करती ॥ २१ ॥ सच्चरित्र पति-पत्नीसे व्यभिचारिणीको कोई सन्तोष नहीं होता, उनकी क्रीड़ासे उसकी मज्जा और श्रृंगारसे हड्डियाँ जलने लगती हैं तथा उनकी मीठी बोली भी उसे बड़ी कड़वी लगती है ॥२२॥ नई बेंतकी मंजरी हाथमें लेकर आए हुए गाँवके छैलेको देखते ही नवेलीके मुखकी कान्ति मलिन हो गई। (क्योंकि वह संकेत की हुई बेंतकी झाड़ीसे होकर लौट आया और यह वहाँ नहीं पहुँच पाई) ॥२३॥ जैसे ही नवेलीने यह सुना कि 'इसका पति गोशालामें डटा रहता है, ननद बहरी है और जेठानी दोनों आँखोंसे अंधी है, वैसे ही उसके स्तनोंपर प्रसन्नतासे रोमांच हो आया ॥२४॥ हे पुत्री! यदि तू नगरके छैलोंपर शंका करेगी, चन्द्रमाकी किरणोंसे लजावेगी, घने और अँधेरे कुंजसे भी डरती फिरेगी, मनुष्य मात्रके शब्दसे घबरावेगी तब तो तू मुझे भी चौपट कर डालेगी और इस कुलको भी कलंकित कर डालेगी ॥२५॥ एक तो मेरा जन्म हो ही नहीं, यदि हो भी तो स्त्रियोंमें न हो, यदि स्त्रियोंमें हो ही जाय तो ऊँचे कुलकी स्त्रियोंमें तो कभी न हो! किन्तु हे ब्रह्मा! यदि तेरे किसी दोषसे कुलवधुओंमें मेरा जन्म हो ही जाय तो ऐसा करना कि किसी एक पुरुषपर मेरा मन न टिकने पावे ॥२६॥ हे दूती! सब जातिवाले जान गए, चारों ओर बात फैल गई, धीरज जाता रहा, लाज भी छूट गई, ढिठाई भी की गई, पतिव्रता कहलाना छोड़ दिया, लोक-परलोकका मंगलमार्ग भी लुप्त हो गया, कुलमें भी कलंक लगाया, फिर अब रह क्या गया जिससे वह अभीतक नहीं आ रहा ॥२७॥ रसीली चितवनोंसे जोड़ी हुई प्रियतमकी मित्रता लोगोंने जान ली, कानोंकान फैला हुआ अपयश भी भाई-बन्धु कह चुके, ऐसी दशामें भी जब वह अपने प्रियतमको नहीं छोड़ना चाहती, तो कौन जाने उस कमलनयनीका प्रेम-बन्धन कैसा है! ॥२८॥ वह चेटी पानसे रचाए हुए अपने दाँत युवकोंको बार-बार दिखाती है, बनावटी स्वरमें बिना कारण ऐसे हँस रही है जैसे घोड़ी हिनहिनाती है और उनके सामने पगपगपर लड़खड़ाती हुई अपने नितम्ब आड़े-तिरछे उछाल-उछालकर व्यर्थ ही चमकी जा रही है ॥ २९ ॥ अँधेरेमें भी दूरसे दिखाई पड़नेवाली और एकान्तमें कसकर आलिंगन करनेपर बज उठनेवाली ये हाथीदाँतकी चूड़ियाँ घरके स्वामी (पति) के सिरके साथ ही फूट जायँ ॥३०॥ तीस ही घड़ियाँ दिनमें होती हैं और तीस ही रातमें होती हैं पर नगरमें युवक हैं लाखों! बापरे बाप! हे ब्रह्मा! यह तूने क्या कर डाला! ॥३१॥ व्यभिचारिणी स्त्रियोंको तभी परम सुख होता है जब बादलोंकी घटाएँ उमड़ी हों, घना अँधेरा हो, नगरकी गलियाँ ऐसी सँकरी हों जिनमें कोई सरलतासे चल न सके और पतिदेव परदेस चले गए हों ॥३२॥ हे बनावटी भिक्षुक! अपने नयनोंकी बाँकी चितवनें

मशतैरसतीरहस्यमन्वेषयन्कपटभिक्षुक लक्षितोऽसि। स्वस्य प्रभुर्न च भवामि ततः क्षमस्व भिक्षोपढौकन-मिषादयमञ्जलिस्ते ॥ ३३ ॥ दृशा किञ्चित्किञ्चिच्चलितभुजलीलाविलसितैः कराघातैः किञ्चिन्नखविलिखनैः किञ्चिदधिकम्। स्पृशन्त्यः सम्बाधे गुरुभिरनभिप्रेक्षितपथे यथेष्टं चेष्टन्ते स्फुटकुचतटाः पश्य कुलटाः ॥ ३४ ॥ देहे दुर्ललितस्य देवरशिशोः स्फोटव्रणो दारुणो यातस्तेन वनस्पतिस्त्वचमुपाहर्तुं मया गम्यते। दृप्यन्तु श्वसितानि घर्मसलिलैः पत्त्राणि लुप्यन्तु वा वक्षो वा विलिखन्तु हन्त नखरैः क्रुद्धाः कपिश्रेणयः ॥ ३५ ॥ द्वारि स्तम्भविलग्ना प्रियसखि दृष्टिं पथि क्षिपसि। प्रहिणोषि भाग्यभाजि प्रेयसि दूतीमिव भ्रमरीम् ॥ ३६ ॥ नाम्बुजैर्न कुसुमैरुपमेयं स्वैरिणीनयनपङ्कजयुग्मम्। नोदये दिनकरस्य न वेन्दोः केवलं तमसि यस्य विकासः ॥ ३७ ॥ नारीणां खलु बन्धुरन्धतमसं पाथोधरः सोदरः कुञ्जं नाभिगृहं निशा सहचरी सेव्यः स्मरः क्ष्मापतिः। इत्थं चारुचकोरचञ्चलदृशां यासां मतिर्जायते तासामेव यशः सुधांशुधवलं तासां च सौख्यं सदा ॥ ३८ ॥ नितम्बिन्यो नित्यं विनयपथविन्यस्तमनसः पताकाः स्युः पुत्रि प्रतिनियतमेताः स्वकुलयोः। गुरोरित्यादेशं सदसि सुदृशामोङ्कृतवती गतातङ्कं राधा हरिमुखमृगाङ्कं मृगयते ॥ ३९ ॥ निभृतं निभृतं निभालयन्त्या वरुणाशाभरणायितं पतङ्गम्। गुरुयन्त्रितयापि गोपवध्वा नयनान्तेन निमन्त्रितो मुकुन्दः ॥ ४० ॥ न्यस्तं पन्नगमूर्ध्नि पादयुगलं भक्तिर्विमुक्ता गुरोस्त्यक्ता प्रीतिरकारि किं न भवतो हेतोर्मया दुष्कृतम्। अङ्गानां शतयातना नयनयोः कोऽपि क्रमो रौरवः कुम्भीपाकपराभवश्च मनसो युक्तं त्वयि प्रस्थिते ॥ ४१ ॥ पतिरतीव धनी सुभगो युवा परविलासवतीषु पराङ्मुखः। शिशुरलङ्कुरुते भवनं सदा तदपि सा सुदती रुदती कुतः ॥ ४२ ॥ पर्यङ्कः स्वास्तरणः पतिरनुकूलो मनो-

---

चला-चलाकर जो तुम मनचली नवेलियोंके मनकी टोह लगाते फिरते हो, यह बात मैं ताड़ गई हूँ, किन्तु परवश हूँ इसलिये मुझे क्षमा करो। भीख डालनेके बहाने मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ ॥३३॥ जिस भीड़में घरके बड़े लोगोंकी दृष्टि नहीं पड़ पाती उसमें ये व्यभिचारिणी स्त्रियाँ अपने स्तन उघाड़-उघाड़कर ऐसी मनचाही चेष्टाएँ करती हैं कि किसीपर चितवन चलाती हैं, किसीको भुजाएँ मटका-मटकाकर दिखाती हैं, किसीको हाथसे धक्के देती हैं और किसीको नखोंसे चूँटती चलती हैं ॥३४॥ अब चाहे साँस फूले, पसीनेसे देहपर बनी हुई चित्रकारी मिट जाय, चाहे बन्दर क्रोधित होकर अपने नखोंसे मेरी छाती नोच डाले पर जेठानीजी! देवरके लाड़ले बच्चेकी देहमें हुए भयंकर फोड़ेके लिये औषधिकी छाल लेनेके लिये मैं वन जाऊँगी ही ॥ ३५ ॥ हे प्यारी सखी! द्वारपर खम्भेसे सटकर खड़ी हुई तुम ऐसी चितवन चला रही हो कि जान पड़ता है किसी भाग्यवान् प्रियतमके पास तुम अपनी दूती रूपी भौंरी भेज रही हो ॥३६॥ व्यभिचारिणी स्त्रीके दोनों कमलनयन न तो कमलोंकी बराबरी करने योग्य हैं न फूलोंकी क्योंकि ये न तो सूर्यके ही उदय होनेपर खिलते हैं न चन्द्रमाके ही उदय होनेपर। ये तो केवल अँधेरेमें ही खिलते हैं ॥३७॥ अँधेरा तो स्त्रियोंका सगा, बादल सहोदर भाई, झाड़ी जन्मभूमि, रात प्यारी सखी और स्वामी महाराज कामदेव हैं। सुन्दर चकोरके समान चंचल नयनोंवाली जिन स्त्रियोंकी ऐसी बुद्धि हो जाती है उन्हींका चाँदनी-जैसा उजला यश फैलता है और उन्हें ही सदा सुख मिलता है ॥३८॥ 'हे पुत्री! जो स्त्रियाँ सदाचारमें अपना मन लगाए रहती हैं वे अपने दोनों कुलोंकी पताका होती हैं, ऐसी अपने कुलोंकी मर्यादा है।' बड़ोंकी यह शिक्षा सुनयनी स्त्रियोंके समाजमें तो राधाने मान ली किन्तु फिर वह बेखटके श्रीकृष्णका मुखचन्द्र ढूँढ़ने लगी ॥ ३९ ॥ गोपीने जब देखा कि सूर्य धीरे-धीरे पश्चिम दिशाको सजा रहा है तो बड़ोंकी साँसतमें पड़कर भी उसने अपने नयनोंकी सैनसे गोविन्दको मिलनेका न्यौता दे डाला ॥४०॥ जब आपसे मिलनेके लिये मैंने साँपके फणपर पैर रक्खे, बड़ोंकी भक्ति छोड़ी, लोगोंसे प्रेम तोड़ा, सारे कुकर्म कर किए! तो अब आपके प्रस्थान करते समय अंगोंकी सैकड़ दुर्गतियाँ, नयनोंकी रौरव नरक जैसी पीड़ा और मनको कुंभी पाक नरक जैसा कष्ट उचित ही है ॥४१॥ यद्यपि पति अत्यंत धनी है, सुन्दर है, युवा है, दूसरी नवेलियोंसे प्रेम भी नहीं करता और पुत्र भी घरकी शोभा बढ़ा रहा है फिर भी यह सुन्दर दाँतोंवाली रो क्यों रही है? ॥४२॥ चोरी चोरी रति करनेकी लोभी कामिनियाँ सुन्दर बिछौनेवाले पलँग, आज्ञाकारी पति और मनोहर भवनको तिनका समझती हैं ॥४३॥ जो व्यभिचारिणी कमलनयनी स्त्रियाँ अपनी भोली चितवनसे पर-

हरं सदनम्। तृणमिव लघु मन्यन्ते कामिन्यश्चौर्यरतिलुब्धाः ॥ ४३ ॥ पश्यन्ति स्निग्धमुग्धं प्रतिकलमधुरैर्मोहयन्त्यङ्गहारैः साकूतैर्मन्दहासैरपि परपुरुषान् शश्वदानन्दयन्ति। चेष्टन्ते चेत एते किमपि परिचयाद्धारयिष्यन्ति तेषां प्राणान्को वेद लोके परजलजदृशां चित्तमत्यन्तलोलम् ॥ ४४ ॥ पाणौ गृहीतापि पुरस्कृतापि स्नेहेन नित्यं परिवर्धितापि। परोपकाराय भवेदवश्यं वृद्धस्य भार्या करदीपिकेव ॥ ४५ ॥ पृथ्वी तावत्त्रिकोणा विपुलनदनदीग्रावरुद्धं तदर्धं तत्राप्यर्धं युवत्यः शिशुगतवयसो रोगिणो योगिनश्च। त्याज्यास्तत्रापि मान्याः श्वशुरपितृमुखाः सन्ति शेषाः कियन्तो मिथ्यावादो ममायं मुखरमुखरवः पुंश्चली पुंश्चलीति ॥ ४६ ॥ प्रियो मयैवावचितैः प्रसूनैर्हृष्टो हरस्यातनुते सपर्याम्। अतो नतानेकलतावृतानि यास्यामि सायं विपिनानि सख्यः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मैव सत्यमखिलं नहि किञ्चिदन्यत्तस्मान्न मे सखि परापरभेदबुद्धिः। जारे तथा निजवरे सदृशोऽनुरागो व्यर्थं किमर्थमसतीति कदर्थयन्ति ॥ ४८ ॥ भद्रं तस्य तरोः स्वयं चिरकृतप्रस्थानकं कथ्यतां दुर्वारस्तमरण्यवह्निरदहद्भिद्दारुणं दुर्वचः। मा खिद्यस्व ततः प्रभृत्यनुदिनं तस्याः पतद्भिर्दृशोरम्भोभिः परिणद्धपल्लवघनच्छायस्तरुर्वर्धते ॥ ४९ ॥ भ्रूभेदैः कतिचिद्गिरा कुटिलया काश्चित्क्रियत्यः स्मितैः स्वैरिण्यः कथयन्ति मन्मथरसव्यापारवश्यं मनः। कासाञ्चित्पुनरङ्गकेषु मसृणच्छायेषु मध्यस्थितो भावः काचपुटेषु पुष्करमिव प्रव्यक्तमालोक्यते ॥ ५० ॥ मया कुमार्यापि न सुप्तमेकया न जारमुत्सृज्य पुमान्विलोकितः। अनेन गोत्रस्थितिपालनेन मे प्रसन्नतामेतु भवोपकारिणी ॥ ५१ ॥ यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः। सा चैवास्मि तथापि चौर्यसुरतव्यापारलीलाविधौ रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते ॥ ५२ ॥ यदवधि विवृद्धमात्रा विकसितकुसुमोत्करा शणश्रेणी। पीतांशुकप्रियेयं तदवधि पल्लीपतेः पुत्री

पुरुषोंको देखती हैं, अंगोंकी चटक-मटकसे उन्हें मोह लेती हैं, भेदभरी मन्द मुसकानसे उन्हें सदा आनंद देती रहती हैं और कुछ ऐसे हाव-भाव करती हैं कि परिचय मात्रसे उनके प्राण निकाल लेती हैं उनके अत्यन्त चंचल चित्तको कौन समझ सकता है ? ॥४४॥ जैसे आगे-आगे हाथमें रक्खा हुआ और सदा तेल डालकर बढ़ाया हुआ दीपक दूसरोंकी भलाई करता है वैसे ही हाथ पकड़कर आगे-आगे चलती हुई तथा स्नेहपूर्वक पालन की हुई बूढ़ेकी स्त्री अवश्य परोपकारके लिये ही होती है ॥४५॥ एक तो धरती ही तिकोनी है, उसमें आधी धरती बहुतसे नदी-नाले और पत्थरोंसे भरी है; उस आधीकी आधीमें स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े, रोगी और योगी आदि हैं, उसमें भी बड़े-बूढ़े, पूज्य, ससुर, पिता आदि हैं, अब बचे ही कितने कि बकवादी लोग मुझे 'व्यभिचारिणी-व्यभिचारिणी' कहकर झूठा दोष लगाते हैं ॥ ४६ ॥ हे सखियो! पतिदेव प्रसन्न होकर मेरे चुने हुए फूलोंसे शिवजीकी पूजामें लीन हैं। अतः, मैं फिर संझाको उसी वनमें जाऊँगी जहाँ बहुत-सी उलझी हुई लताएँ उगी हैं ॥ ४७ ॥ हे सखी ! एक ब्रह्म ही सत्य है, उसके अतिरिक्त सब झूठ है, मुझे तो अपने-परायेमें कोई भेद नहीं जान पड़ता। इसीलिए अपने प्रियतम और जारसे मेरा समान प्रेम है। फिर भी लोग न जाने क्यों मुझे कुलटा कह-कहकर व्यर्थ सताए डाल रहे हैं॥४८॥ नायक और दूतीमें बात चीत है—नायक : कहो, वह वृत्त कुशल से तो है ? तुम बहुत दिनोंपर इधर आई। एक बड़ी अप्रिय कठोर बात सुननेमें आई है कि भयंकर दावानलने उस वृत्त को जला डाला है। दूती : सोच न करो, उसी दिनसे तुम्हारी प्यारीके नेत्रोंसे निकले हुए आँसुओंसे लगातार सींचे जानेके कारण उसमें पत्ते निकल आए हैं, उसकी छाया घनी होती जा रही है और वह दिनोंदिन बढ़ रहा है ॥४९॥ कामके रससे भरी क्रीड़ामें लगे हुए अपने मनकी गतिको कुछ व्यभिचारिणी स्त्रियाँ भौंहें नचाकर जताती हैं, कुछ उल्टी-सीधी बातों-द्वारा और कुछ अपनी मुस्कान-द्वारा। पर किसीके सुन्दर चिकने अङ्गोंमें वर्तमान कामके भाव तो ऐसे झलक जाते हैं जैसे शीशेपर पानी ॥ ५० ॥ छोटेपनसे ही मैं कभी अकेली नहीं सोई और जारको छोड़कर कभी दूसरे पुरुषका मुँह नहीं देखा। मेरे इस गोत्रस्थिति-पालनसे संसारका उपकार करनेवाली देवी प्रसन्न हों ॥ ५१ ॥ जिसने मेरा कुआँरापन दूर किया वही मेरा पति अब भी है, वे ही चैतकी रातें हैं, मालतीकी गन्धसे भरे हुए वे ही प्रबल वायुके झोंके हैं, वही मैं हूँ फिर भी नर्मदाके तटपर बेंतकी झाड़ियों-तले लुक-छिपकर रति-क्रीड़ा करनेको मन लालायित हो रहा है ॥ ५२ ॥ यह

॥५३॥ यदि भवति दैवयोगात्पुमान्विरूपोऽपि बन्धकी रहसि। न तु कृच्छ्रादपि भद्रं निजकान्तं सा भजत्येव ॥ ५४ ॥ यस्य भार्या विरूपा च कश्मला कलहप्रिया। अधिकाधिकभक्षा च सा जरा न जरा जरा ॥ ५५ ॥ वयं बाल्ये बालाँस्तरुणिमनि यूनः परिणतावपीच्छामो वृद्धान् परिणयविधौ नः स्थितिरियम्। त्वयारब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैकपतिना न मे गोत्रे पुत्री क्वचिदपि सतीलाञ्छनमभूत् ॥ ५६ ॥ व्यपेतव्याहारं गतविविधशिल्पव्यतिकरं करस्पर्शारम्भे विगलितदुकूलान्तवसनम्। मुहुर्बद्धोत्कम्पं दिशि दिशि मुहुः प्रेक्षितदृशोरहल्यासुत्राम्णोः क्षणिकमिव तत्सङ्गतमभूत् ॥५७॥ शिरसि शिरसिजं दृशोर्निमेषं विटपिनि पल्लवमालये तृणं वा। गणयितुमपि पारयन्ति केचित्प्रियसखि के कथयन्तु जारसंख्याम् ॥ ५८ ॥ शुश्रूषस्व गुरून्निवर्तय सखीर्वन्दस्व बन्धुस्त्रियः कावेरीतटसन्निविष्टनयने मुग्धे किमुत्ताम्यसि। आस्ते पुत्रि समीप एव गमनादेलालतालिङ्गितन्यञ्चद्बालतमालदन्तुरदरी तत्रापि गोदावरी ॥ ५९ ॥ सन्दिग्धे परलोके जनापवादे च जगति बहुचित्रे। स्वाधीने पररमणे धन्यास्तारुण्यफलभाजः ॥ ६० ॥ सम्पत्कस्याद्य तारा भवति तरलिता यत्पुरो नेत्रतारा दृष्टा केनाद्य काञ्ची यदभिमुखगता वेपते रत्नकाञ्ची। उग्रः कस्याद्य तुष्टः सखि यदनुमते कश्चिदुग्रोऽनुतापः स्नातं केनाद्य वेणीपयसि विलुलिता यत्कृते कापि वेणी ॥ ६१ ॥ सखि सुखयत्यवकाशे प्राप्तः प्रेयान् यथा तथा न गृहे। वातादवारितादपि भवति गवाक्षानिलः शीतः ॥ ६२ ॥ सव्रीडार्धनिरीक्षणं यदुभयोर्यद्दूतिसम्प्रेषणं ह्यद्य श्वो भविता समागम इति प्रीतिप्रसादश्च यः। प्राप्ते कालसमागमे सरभसं यच्चुम्बनालिङ्गनं तत्कामस्य फलं तदेव सुरतं शेषा पशूनां स्थितिः ॥ ६३ ॥ सुखशय्या

अहीरकी पुत्री तबतक पीले वस्त्र ही पहनना चाहेगी जबतक खिले हुए फूलोंसे भरे सनके खेत हैं ॥ ५३ ॥ यदि दैवयोगसे व्यभिचारिणीको कुरूप पुरुष भी एकान्तमें मिल जाय तो वह उससे प्रेमपूर्वक सम्भोग कर लेगी किन्तु अपने सुन्दर पतिसे वह तनिक भी रमण करना नहीं चाहेगी ॥ ५४ ॥ जिसकी स्त्री कुरूपा, पापिन, झगड़ालू और बहुत भोजन करनेवाली होती है वही उसके लिये यथार्थमें बुढ़ापा है, वास्तविक बुढ़ापा बुढ़ापा नहीं ॥ ५५ ॥ ब्याहके विषयमें हमारी तो यह स्थिति रही है कि बचपन में हमने बालकोंको, युवावस्थामें युवकोंको और बुढ़ापेमें वृद्धोंको ही चाहा है पर एक तुम हो कि इसी एक पतिके साथ जीवन बितानेका निश्चय किए बैठी हो ! बेटी ! हमारे कुलमें कभी किसीको सती होनेका कलंक नहीं लगा ॥ ५६ ॥ यद्यपि शरीरपर भाँति-भाँतिकी चित्रकारीकी भी बाधा नहीं थी, हाथ लगाते ही झट साड़ीके नीचेका अन्तर्वस्त्र (साया) भी खुल गया, पर हम लोग बार-बार काँपते हुए चौंक-चौंककर चारों ओर आँखें दौड़ाकर देखते जो जाते थे इसलिये अहल्या और इन्द्रके समागमकी भाँति हमारा वह सम्मिलन भी ऐसा क्षणिक हुआ कि आपसमें एक भी बात न हो पाई ॥५७॥ हे प्यारी सखी ! सिरके बाल, पलकोंकी बरौनियाँ, वृक्षके पत्ते और घरपर छाए हुए घासके तिनके भले ही कोई गिन डाले पर यह बताना कठिन है कि मेरे चाहनेवाले कितने हैं ॥५८॥ बेटी ! बड़ोंकी सेवा करना ! अब सखियोंको विदा करो। भाई-बन्धुकी स्त्रियोंको प्रणाम करो। अरी भोली ! कावेरीके तटपर आँखें लगाए क्यों उदास हो रही है ? वहाँ भी पासमें ही थोड़ा चलकर गोदावरीके तटपर उन तमालके वृक्षोंसे ढकी हुई गुफाएँ हैं जिनपर इलायचीकी लताएँ लिपटी रहती हैं ॥५९॥ मरनेके पश्चात् क्या होगा, इसके संबंधमें संसारमें जितने मुँह उतनी बातें हैं और परपुरुषसे सम्भोग भी अनायास मिल ही जाता है, तब वे ही लोग धन्य हैं जो बेखटके यौवनका उपभोग करते हैं ॥ ६० ॥ यह कौन है जिस पर तारादेवी (लक्ष्मी) ऐसी प्रसन्न हो गई हैं कि उसके सामने पड़ते ही तारे (नेत्रोंकी पुतलियाँ) गीली हो जाती हैं, किसने काञ्चीपुरीका दर्शन किया है जिसके सामने पड़ते ही रत्नोंकी करधनी (कांची) काँपने लगती है, किसपर शिव (उग्र) जी प्रसन्न हो गए हैं जिसके लिये किसीके हृदयमें प्रबल (उग्र) पछतावा हो रहा है और किसने आज त्रिवेणी स्नान किया है जिसके लिये किसीकी चोटी (वेणी) खुल-खुल जा रही है ॥ ६१ ॥ हे सखी ! चोरी-चारी घरपर आया हुआ प्रिय जैसा सुख देता है वैसा घरका प्रियतम नहीं क्योंकि वे रोक-टोक आनेवालेकी अपेक्षा झरोखेसे आनेवाला पवन कहीं अधिक ठण्ढा होता है ॥ ६२ ॥ आपसमें लाजसे भरी तिरछी चितवनें चलाना, एक दूसरेके पास दूती भेजना, 'आज या कल मिलाप होगा,' इसी प्रसन्नतामें मस्त रहना और मिलनेका समय आनेपर वेगसे चुम्बन, आलिंगन आदि करना यही तो कामका यथार्थ

ताम्बूलं विश्रब्धाश्लेषचुम्बनादीनि । तुलयन्ति न लक्षांशं त्वरितक्षणचौर्यसुरतस्य ॥ ६४ ॥ सुभगं वदति जनस्तं निजपतिरिति नैष रोचते मह्यम् । पीयूषेऽपि हि भेषजभावोपहिते भवत्यरुचिः ॥ ६५ ॥ स्थितिर्गेहोपान्ते परिजनपरीहासकलना मुहुर्यातायाते सकृदपि गृहे व्याजगमनम् । मुहुस्तद्भोग्येऽपि क्षणपरिचयो वस्तुनि दृशः समुत्पन्नप्रेम्णः सकलमिदमापातसुखदम् ॥ ६६ ॥ हंसैः शैवलमञ्जरीति कबरी चञ्चूभिराकर्षिता वक्त्रे चन्द्रधिया चकोरवनिता चक्रे नखैरक्रमम् । भृङ्गैः पङ्कजकोरकप्रतिभया वक्षोरुहो वीक्षितस्तस्मातः करवै पुनर्न सरसीतोयावगाहोद्यमम् ॥ ६७ ॥

पान्थ-संकेतः—अहमिव दिनलक्ष्मीः प्रोषितप्राणनाथा त्वमिव पथिक पन्था मुक्तपान्थानुबन्धः । अयमपि परदेशः सोऽपि यत्रासि गन्ता मदनमधुरमूर्ते किं वृथा सत्वरोऽसि ॥१॥ इयं सुरतरंगिणी न पुनरत्र नौसंगमो भवेत्तरणिमज्जनं पथिक नैव पान्थागमः । निधाय हृदये सदा विपुलचारुकुम्भद्वयं सखे घनघनागमे घनरसस्य पारं व्रज ॥२॥ एकाकिनी यदबला तरुणी तथाहमस्मिन् गृहे गृहपतिश्च गतो विदेशे । कं याचसे तदिह वासमियं वराकी श्वश्रूर्ममान्धबधिरा ननु मूढ पान्थ ॥३॥ किमिति कृशासि कृशोदरि किं तव परकीयवृत्तान्तैः । कथय तथापि मुदे मम कथयिष्यति पान्थ तव जाया ॥४॥ कुत्रायासीः किमिवमकरोः साहसं पान्थ बन्धो यद्येतस्मिन्निवससि पुरे सावधानस्तदा स्याः । अत्रोत्तालाः सन्ति यासां विलासैरुत्पद्यन्ते सपदि मदनव्याधयो दुर्निवाराः ॥५॥ ग्रामेऽस्मिन्प्रस्तरप्राये न किंचित्पान्थ विद्यते । पयोधरोन्नतिं दृष्ट्वा वस्तुमिच्छसि चेद्वस ॥६॥

फल है और यही सुन्दर रति-क्रिया है, शेष तो पशुओंका-सा व्यवहार है ॥ ६३ ॥ सुख देनेवाली शय्या, पान और बेखटके आलिंगन-चुम्बन आदि सब, एक क्षणमें शीघ्रतापूर्वक चोरी-चोरी होनेवाली रतिक्रीड़ाके लाखवें अंशकी भी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ६४ ॥ यद्यपि लोग उसे सुन्दर कहते हैं किन्तु मेरा पति होनेसे वह मुझे वैसे ही नहीं रुचता जैसे अमृतको भी औषधिके रूपमें लेनेसे घृणा हो जाती है ॥ ६५ ॥ नये-नये प्रेममें प्रेमिकाके घरके पास खड़े रहना, बार बार उस गलीसे आना-जाना, किसी बहाने एकाध बार उसके घर भी पहुँच जाना, उसके उपयोगकी कोई वस्तु क्षण भरको देखनेको मिल जाना और लोगोंका उसीके विषयमें उपहास करना ये सब बातें आदिसे अन्ततक परम सुखदायी होती हैं ॥६६॥ हे माँ ! अब मैं तालाबके जलमें स्नान करने न जाऊँगी क्योंकि वहाँ मेरे जूड़ेको सेवारकी मंजरी समझकर हंसोंने खींच डाला, चकोरीने मेरे नखोंको चन्द्र समझकर चोंचमें दबा लिया और कमलकी कली समझकर भौंरे मेरे स्तनोंकी ओर देखने लगे ॥ ६७ ॥

बटोहीको संकेत : हे कामदेवके समान सुन्दर बटोही ! जैसे मेरे पति परदेसमें हैं वैसे ही दिनकी शोभाके पति सूर्य भी परदेस चले गए (अस्त हो गए) । जैसे तुमने यात्रियोंका साथ छोड़ दिया है वैसे ही मार्गने भी यात्रियोंका साथ छोड़ दिया है । यह भी परदेस ही है और जहाँ तुम जानेवाले हो वह भी परदेस ही है इसलिये तुम क्यों व्यर्थ जानेकी उतावली कर रहे हो ॥ १ ॥ हे मित्र बटोही ! यह गंगा आ गई, कोई नाव नहीं दिखाई दे रही, नाव भी डूब जा सकती है, कोई और व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ रहा इसलिये इस घनी बदलीकी वेलामें तुम दो बड़े-बड़े घड़े छातीसे भली भाँति चिपकाकर यह अपार जलराशि पार कर लो । [अथवा—हे मित्र बटोही ! यह मैं सुरतिमें रस लेनेवाली] फिर हमारा दोनोंका मेल क्यों नहीं हो पा रहा । देखो, सूर्य डूबा जा रहा है । किसीके आनेकी सम्भावना भी नहीं है । अतः, तुम ये विशाल सुन्दर स्तन छातीसे लगाकर इस घनी बदलीकी वेलामें प्रगाढ़ प्रेमका प्रवाह पार कर लो ॥२॥ अरे मूर्ख बटोही ! इस घरमें मैं अकेली नवयुवती अबला हूँ, मेरे पति परदेस गए हैं और यह मेरी सास बेचारी अन्धी भी है और बहरी भी ; यहाँ तुम किससे रहनेको स्थान माँग रहे हो ? ॥ ३ ॥ किसी बटोही और नवेलीमें बात हो रही है—बटोही : हे पतली कमरवाली ! तुम इतनी दुबली क्यों हो ? नवेली : तुम्हें दूसरोंके समाचारसे क्या लेना-देना ? बटोही : फिर भी कुछ तो बताओ, सुनकर मुझे प्रसन्नता ही होगी । नवेली : हे बटोही ! इसका कारण तुम्हारी स्त्री तुम्हें बतावेगी । ॥४॥ हे भाई बटोही ! तुम कहाँसे चले आ रहे हो ? यहाँ आनेका साहस तुमने कैसे किया ? यदि तुम इस नगरमें रहना ही चाहते हो तो सावधान होकर रहना क्योंकि यहाँ कुछ ऐसी मदमाती अलबेली नवेलियाँ हैं जिनके हाव-भावोंसे तत्काल ऐसी काम-व्याधि उत्पन्न हो जाती है जिसकी चिकित्सा होनी भी कठिन है ॥ ५ ॥ हे बटोही ! इस पथरीले गाँवमें और तो

त्वमिव पथिक प्रियो मे विटपिस्तोमेषु गमयति क्लेशान्। किमितोऽन्यत्कुशलं मे संप्रति यत्पान्थ जीवामि ॥७॥ नाथो मे विपणिं गतो न गणयत्येषा सपत्नी च मां त्यक्त्वा मामिह पुष्पिणीति गुरवः प्राप्ता गृहाभ्यन्तरम्। शय्यामात्रसहायिनीं परिजनः श्रान्तो न मां सेवते स्वामिन्नागमलालनीय रजनीं लक्ष्मीपते रक्ष माम् ॥८॥ निबिडतमलमालमल्लिवल्ली-विचकिलराजिविराजितोपकण्ठे । पथिक समुचित-स्तवाद्य तीव्रे सवितरि तत्र सरित्तटे निवासः ॥ ९ ॥ पान्थ मन्दमते किंवा संतापमनुविन्दसि। पयोधरं समाशास्व येन शान्तिमवाप्नुयात् ॥ १० ॥ भवनमिव मदीयं निर्जनः पान्थ पन्थाः कुसुमशर इवास्मिंस्तस्करा दुर्निवाराः। गृहप इव पतङ्गोऽप्येष यातो दिगन्तान्मदनसुभग भूयो नैव गन्तुं समीहे ॥११॥ भ्रातः पान्थ पथि त्वया न पथिकः कश्चित्समासादितो बाले नैकशतानि कीदृश इति प्रख्यायतां वल्लभः। यं दृष्ट्वा प्रमदाजनस्य भवतः स्फारे मुदा लोचने स श्रेयो दयितो ममेति पथिकायावेद्य मोहं गता ॥ १२ ॥ भो पान्थ त्वरितोऽसि तिष्ठ निमिषं किंचिद्वदामो वयं मार्गोऽयं पुरतो द्विधा खलु भवेद्वामेन नो गम्यताम्। तत्रास्ते सहकारकोमलतरोर्मूले प्रपापालिका तस्या लोचनवागुरानिपतितो न त्वं पुनर्यास्यसि ॥ १३ ॥ भो पान्थ पुस्तकधर क्षणमत्र तिष्ठ वैद्योऽसि किं गणितशास्त्रविशारदोऽसि । केनौषधेन मम पश्यति भर्तुरम्बा किं वाऽऽगमिष्यति पतिः सुचिरप्रवासी॥१४॥ यदि गन्तासि दिगन्तं पथिक पतिस्तत्र संबोध्यः। नयनश्रवणविहीना कथमुपचर्या मयैकया जननी ॥१५॥ यामिन्येषा बहलजलदैर्बद्धभीमान्धकारा निद्रां यातो मम पतिरसौ क्लेशितः कर्मदुःखैः। बाला चाहं मनसिजभयात्प्राप्तगाढप्रकम्पा ग्रामश्चौरैरयमुपहतः पान्थ निद्रां जहीहि ॥१६॥ रथ्या रजोरुणितधूसरिताङ्गयष्टेः कच्चित्पितुः स्मरसि पुत्रक निर्घृणस्य। उक्त्वैवमङ्कगत-

---

कुछ नहीं है, ये उमड़ी हुई बादलोंकी घटाएँ (ऊँचे-ऊँचे स्तन) देखकर रहना चाहो तो अवश्य रहो ॥६॥ हे बटोही! तुम्हारे ही समान मेरे प्रियतम भी वृक्षोंके तले पड़े थकान मिटाते होंगे फिर भी इससे बढ़कर कुशलता और क्या होगी कि मैं अभीतक जी रही हूँ ॥७॥ मेरे पति व्यापार करने गए हैं, यह सौत मुझे कुछ समझती ही नहीं, मुझे रजस्वला जानकर सास-ससुर भी घरके भीतर चले गए हैं, अब यह बिछावन-मात्र ही मेरा सहारा है, नौकर-चाकर भी सब थके माँदे सो रहे हैं, मेरी सेवा नहीं करते; अतः, हे स्वागत करने योग्य (वेदोंके द्वारा स्तुति किए गए)! धनवान् प्राणेश्वर (विष्णु)! इस रात मेरी रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे बटोही! बड़ी कड़ी धूप है इसलिये अच्छा हो कि तुम नदीके उस तीरपर चलकर दुपहरी बिताओ जहाँ तमालके घने वृक्ष छाए हुए हैं और मल्लिकाकी लताओंकी घनी कुञ्जें हैं ॥ ९ ॥ अरे मूर्ख बटोही! क्यों गर्मी (कामकी गरमी) से तपे जा रहे हो! मेघों (स्तनों) की अभ्यर्थना करो जिससे शान्ति मिले ॥ १० ॥ हे पथिक! मेरे घरके समान ही मार्ग भी निर्जन हो गया है, कामदेवके समान चोर भी मार्गमें बलपूर्वक आक्रमण करते हैं, मेरे पतिके समान ही यह सूर्य भी दिशाके छोरको पहुँच गया है, अतः, हे कामदेवके समान सुन्दर! अब मैं घरसे नहीं निकलना चाहती ॥ ११ ॥ नवेली : हे भाई यात्री! क्या मार्गमें तुम्हें कोई पथिक मिला था? बटोही : हाँ-हाँ नवेली! एक नहीं, सैकड़ों। पर यह तो बताओ कि तुम्हारा पति कैसा था? नवेली : जिसे देखकर प्रसन्नताके मारे स्त्रियोंके नेत्र खुले रह जाते हों वही मेरा पति है। पथिकसे ऐसा कहते ही वह अचेत हो गई ॥१२॥ हे राही! इतनी शीघ्रता क्या है? पलभर रुक जाओ, तुमसे कुछ कहना है। आगे जाकर इस मार्गमें जो दो शाखाएँ फूटी हैं, उसमें बाँएँसे न जाना क्योंकि वहाँ कोमल आमके वृक्षके तले प्याऊपर जो प्याऊवाली बैठी है उसकी चितवनके जालमें पड़कर तुम नहीं निकल पाओगे ॥ १३ ॥ हे पुस्तकधारी बटोही! पलभर ठहरो। बताओ तुम वैद्य हो या ज्योतिषी? यह बताओ कि मेरी अन्धी सासको कौन-सी औषधि खिलाई जाय कि वह देखने लगे और बहुत दिनोंसे परदेस गए हुए मेरे पति कब लौटकर आवेंगे ॥१४॥ हे राही! यदि तुम्हें बहुत दूर विदेश जाना हो तो वहाँ मेरे पतिसे यह सन्देश कह देना कि मैं अकेली इस अन्धी और बहरी सासकी कैसे सेवा करूँ ॥१५॥ हे पथिक! नींद छोड़ो, उठो। देखो बादलों की घटाएँ घिरनेसे रात भयानक अँधेरी हो गई है, घरके काम-काजसे थका हुआ मेरा पति यह सो रहा है, मैं नवेली हूँ, मनमें डर समाया हुआ है, मुझे कँपकपी छूट रही है (कामके भयसे मैं काँप रही हूँ) और यह गाँव भी चोरोंसे घिरा हुआ है ॥१६॥ 'हे पुत्र! क्या तुम्हें गलीकी (रथोंसे उड़ी हुई) लाल धूलसे रँगी हुई देहवाले

थायतमायतादया पान्थस्त्रिया प्ररुदितं करुणं दिनान्ते ॥१७॥ वाणिज्येन गतः स मे गृहपतिर्वार्तापि न श्रूयते प्रातस्तज्जननी प्रसूततनया जामातृगेहं गता। बालाहं नवयौवना निशि कथं स्थातव्यमस्मिन्गृहे सायं संप्रति वर्तते पथिक हे स्थानान्तरं गम्यताम् ॥ १८ ॥ वीक्षितुं न क्षमा श्वश्रूः स्वामी दूरतरं गतः। अहमेकाकिनी बाला तवेह वसतिः कुतः ॥१९॥ शून्यं वेश्म चिरायितो गृहपतिर्जाताधुना शर्वरी स्थातुं नोचितमत्र गच्छ निभृतं लोकैरनालक्षितः। इत्थं लोलदृशा ह्यसावभिहितो दासीमुखेनाध्वगः स्थित्वा किंचिदिव क्व यामि रजनी प्राप्तेत्युदीर्य स्थितः ॥ २० ॥ स्मर्तव्या वयमिन्दुसुन्दरमुखि प्रस्तावतोऽपि त्वया स्यादेवं यदि नाथ दास्यति विधिर्जातिस्मरत्वं मम। एकस्मिन्नपि जन्मनि प्रियतमे जातिस्मरत्वं कुतः प्राणाः पान्थ समं त्वयैव चलिताः क्वाद्यापि जन्मैकता ॥२१॥

वेश्यानिन्दा—अयं च सुरतज्वाला कामाग्निः प्रणयेन्धनः। नराणां यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥ १ ॥ इह सर्वस्वफलिनः कुलपुत्रमहाद्रुमाः। निष्फलत्वमलं यान्ति वेश्याविहगभक्षिताः ॥ २ ॥ एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतोर्विश्वासयन्ति पुरुषं न च विश्वसन्ति। तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन वेश्याः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ ३ ॥ कष्टं जीवति गणिका गणकोऽपि च राजसेवको वैद्यः। दिवसे दिवसे मरणं परस्य यच्चित्तरञ्जनं वृत्तिः ॥ ४ ॥ केशः कुन्दमिषादिवोपहसति द्रव्यैर्विहीनाञ्जनान्यूनां ग्रन्थिधनं विलोकितुमिवोन्नीवस्तनस्तिष्ठति। प्रेमच्छेदकृपाणवल्लिसुषमां रोमालिरालम्बते यस्याः सा कथमस्तु चेतसि चमत्काराय वाराङ्गना ॥ ५ ॥ जात्यन्धाय च दुर्मुखाय च जराजीर्णाखिलाङ्गाय च ग्रामीणाय च दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च। यच्छन्तीषु मनोहरं निजवपुर्लक्ष्मीलवश्रद्धया पण्यस्त्रीषु विवेककल्पलतिकाशस्त्रीषु रज्येत कः ॥ ६ ॥ धनाशा

अपने निर्दयी पिताका स्मरण आता है ?' ऐसा कहकर विह्वमात्र बची हुई बड़ी-बड़ी आँखोंवाली परदेसीकी स्त्री सायंकाल करुण स्वरमें जी-भर रोई ॥१७॥ मेरा पति व्यापार करने बाहर गया है, उसका कोई समाचार नहीं मिला, उसकी माँ प्रातःकाल ही अपने दामादके घर चली गई है, क्योंकि वहाँ बच्चा हुआ है। मैं नई-नवेली युवती हूँ फिर तुम इस घरमें रातको कैसे रह सकोगे ? संझा हो ही रही है। अतः, हे राही! तुम कोई दूसरा स्थान देखो ॥ १८ ॥ सास देख नहीं पाती, पति बहुत दूर चले गए हैं, मैं अकेली लड़की हूँ, तब बताओ तुम यहाँ कैसे रहोगे ॥१९॥ जब दासीके द्वारा चंचल नयनोंवाली नवेलीने पथिकको यह कहलाया कि घर सूना है, पति आ नहीं रहे हैं, रात हो गई है, तुम्हारा यहाँ ठहरना उचित नहीं है अतः छुपकेसे चले जाओ जिससे कोई देख न पावे, तब वह थोड़ी देर रुका और फिर यह कहकर वहीं ठहर गया कि 'रात हो गई है, अब कहाँ जाऊँ !' ॥ २० ॥ परदेश जानेवाले किसी युवक और नायिकामें बातें हो रही हैं—युवक : हे चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली ! हमें भूल न जाना। नायिका : नाथ ! आपकी कही यह बात तो तभी हो सकती है जब भगवान् मुझे जाति-स्मरत्व (पूर्व जन्मका स्मरण रखने की शक्ति) दे दें ! युवक : प्यारी ! एक ही जन्ममें पूर्व जन्मके स्मरणका क्या प्रश्न ? नायिका : पथिक ! मेरे प्राण तो तुम्हारे साथ ही चल देंगे, क्या अब भी एक ही जन्म कहा जायगा ? ॥ २१ ॥

वेश्याकी निन्दा : प्रेम-रूपी ईंधनसे जलनेवाली यह (वेश्या) कामाग्निकी रतिरूपी ज्वाला है जिसमें मनुष्योंके यौवन और धनका हवन होता है ॥१॥ संसारमें चारों ओर फले हुए, उत्तम कुलमें उत्पन्न पुत्ररूपी महावृक्षोंको जब वेश्यारूपी पक्षी खाने लगते हैं तब वे सर्वथा निष्फल हो जाते हैं ॥ २ ॥ ये वेश्याएँ केवल धनके लालचमें हँसती भी हैं, रोती भी हैं, पुरुषको तो विश्वास दिलाती रहती हैं किन्तु उसका विश्वास नहीं करतीं। इसलिये सदाचारी कुलीन मनुष्यको चाहिए कि वे इन वेश्याओंको श्मशानके घड़ोंकी भाँति छोड़ दें ॥३॥ वेश्या, ज्योतिषी, राजाका सेवक और वैद्य, इनका जीवन बड़ा कष्टमय होता है क्योंकि दूसरोंका चित्त प्रसन्न करना ही नित्यका धन्धा होनेके कारण प्रतिदिन इनकी मृत्यु होती रहती है ॥४॥ वह वेश्या चित्त प्रसन्न करनेवाली कैसे हो सकती है जिसके बाल अपने सजे हुए कुन्द-फूलोंके बहाने मानो निर्धन लोगोंकी खिल्ली उड़ाते हैं, जिसके स्तन सिर उठाए हुए मानो युवकोंके धनकी थैलीपर ताक लगाए रहते हैं और जिसकी लम्बी रोमावली प्रेमको काटनेवाली कटार-सी शोभित होती है ॥ ५ ॥ विवेकरूपी कल्पलताको काटनेवाली कटारी-रूपी इन वेश्याओंपर कौन रीझे जो जन्मके अन्धे, कुरूप, बुढ़ापेसे शिथिल अंगोंवाले, मूर्ख, नीच और गलित कोढ़वाले मनुष्योंको भी थोड़ेसे धनके लालचमें अपना मनोहर शरीर सौंप डालती हैं ॥ ६ ॥ धनका लालच, कपट-भरा प्रेम और बनावटी बातोंसे चित्त प्रसन्न करनेका ढंग, इनमेंसे एक भी गुण जब हममें नहीं है तो हम

कैतवस्नेहो वितथैश्चित्ततोषणम्। एकमप्यस्ति नास्मासु कथं वेश्यासमा वयम् ॥ ७ ॥ न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति। यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो न वेशजाताः शुचयस्तथाङ्गनाः ॥८॥ वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा। ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज॥९॥ हारहीरकहिरण्यभूषणैस्तोषमेति गणिका धनैषिणी। प्रेमकोमलकटाक्षवीक्षितैरेव जीवति कुलाङ्गनाजनः ॥१०॥

वीररसः

अद्यारभ्य कठोरकार्मुकलताविन्यस्तहस्ताम्बुजस्तावन्न प्रकटीकरोमि नयने शोणे निमेषोदयात्। यावत्सायककोटिपाटितरिपुक्ष्मापालमौलिस्खलन्मल्लीमाल्यमिलत्परागपटलैरामोदिनी मेदिनी ॥ १ ॥ अप्राकृतस्य चरितातिशयैश्च दृष्टैरत्यद्भुतैरपहृतस्य तथापि नास्था। कोऽप्येष वीरशिशुकाकृतिरप्रमेयमाहात्म्यसारसमुदायमयः पदार्थः ॥ २ ॥ अप्राप्तप्रथमावकर्तनरुषा व्यानम्रमूकीभवद्वक्त्रेष्वन्यशिरस्सु यस्य दहने छिन्नं शिरो जुह्वतः। उच्चार्य स्वयमेव मन्त्रमकरोन्नास्याहमित्यात्मनस्त्यागं पङ्क्तिमुखः स विक्रमसुहृद्वीरः कथं वर्ण्यते ॥ ३ ॥ अर्धासने समधिरोप्य सुरद्विपस्य शक्रोऽपि यद्युधि शचीं कवचीकरोति। घोरस्य तस्य सहते दशकन्धरस्य कस्साहसैकरसिकः करवालधाराम् ॥ ४ ॥ अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम्। कर्णालं सम्भ्रमेण व्रज कृप समरं मुञ्च हार्दिक्य शङ्कां ताते चापद्वितीये वहति रणधुरं को भयस्यावकाशः ॥ ५ ॥ अस्त्राणि प्लवगाधिपेन विहिताः पौलस्त्यवक्षःस्थलीसङ्घट्टामलदत्तदावविपदः सीदन्ति भूमीरुहः। उत्पाट्य

वेश्याओंके समान कैसे हो सकते हैं ।॥७॥ जैसे पर्वतकी चोटीपर कमलिनी नहीं उगती, घोड़ोंका काम गधे नहीं कर सकते और बोए हुए जौ कभी धान नहीं होते वैसे ही वेश्यालयमें जन्म लेनेवाली स्त्रियाँ भी पवित्र नहीं हो सकतीं ॥८॥ जैसे बावड़ीमें विद्वान् ब्राह्मण, मूर्ख, नीच, सभी नहाते हैं, जैसे फूली हुई जिस लताको पहले मोर अपने भारसे नवा झुकता है उसपर कौआ भी जाकर बैठता है और जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भी उसी नावसे पार जाते हैं जिससे और दूसरे लोग जाते हैं, वैसे ही अरी वेश्या ! तू भी बावड़ी, लता और नावके ही समान है। अतः, सबकी सेवा कर ॥९॥ धनकी इच्छा रखनेवाली वेश्या भले ही हार, हीरे और सोनेके गहनोंसे सन्तुष्ट हो जाय पर कुलीन स्त्रियाँ तो प्रेमभरी रसीली तिरछी चितवनको ही जीवित रहनेके लिये पर्याप्त समझती हैं ॥ १० ॥

वीर रस

आजसे मैं धनुषपर अपने हाथ-रूपी कमलकी कोर रखकर तबतक अपनी खुली हुई आँखें लाल न करूँगा जबतक अपने तीखे बाणोंसे काटे हुए राजाओंके मस्तकसे गिरी हुई बेलेकी मालासे मिली हुई धूलसे पृथ्वीको सुगन्धित न बना दूँगा ॥१॥ यह बालक साधारण नहीं है। इसके अद्भुत और अलौकिक काम देखकर मैं इसपर रीझ गया हूँ। फिर भी मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि यह बालक है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि इस वीर बालकके रूपमें कुछ ऐसी प्रतापकी राशि इकट्ठी दिखाई दे रही है जो समझमें नहीं आती ॥ २ ॥ सबसे पहले शत्रुका सिर न काट पानेके क्षोभसे जब दूसरे वीरोंके सिर लटककर मौन हो रहे थे उस समय युद्धाग्निमें कटे सिरकी आहुति देते हुए जिसने 'मैं इसका नहीं हूँ' इस अपने त्यागमय कथनको ही मन्त्र बना दिया उस विक्रमके मित्र मन्त्रमुख वीरका वर्णन कैसे किया जा सकता है ॥३॥ जिससे युद्ध करते समय इन्द्र भी ऐरावतकी पीठपरके आधे आसनपर शचीको बैठाकर उसकी ओट (आड़) में अपने प्राण बचाता है उस महाधीर रावणके खड्गकी धारको जानपर खेलकर कौन सह सकता है ! ॥ ४ ॥ अश्वत्थामा कहता है—'अस्त्रोंकी चमकसे भरी हुई शत्रुकी सेनाके रूपमें दिखाई देनेवाले इस समुद्रमें जब सब धनुर्धारियोंके गुरु मेरे पिता द्रोणाचार्य सेनापति बनकर वाडवाग्निके समान उपस्थित हैं तब हे कर्ण ! घबरानेकी कोई बात नहीं। हे कृपाचार्य ! तुम भी युद्धभूमिमें बढ़ जाओ। हे हार्दिक्य ! तुम भी मनमें शङ्का न करो। जब मेरे पिताजी स्वयं धनुष लेकर युद्धका सारा भार सँभाले हुए हैं तब डरनेकी क्या बात है ! ॥ ५ ॥ इधर सुग्रीवने अस्त्र बनाकर जो वृक्ष फेंके थे वे रावणकी छातीकी टक्करसे निकली हुई दावाग्निसे झुलस ही रहे थे कि उधर उखाड़कर फेंके हुए पर्वतके शिखरको रावणने अपनी भुजाओंसे ऐसा मसल दिया कि अपने कुञ्ज और झरनोंके जलसे ही सनकर वह कीचड़का

प्रहितश्च शैलशिखरो लङ्केन्द्रहस्तावलीपिष्टोऽयं निजकुञ्जनिर्झरजलैर्जम्बालपिण्डायते ॥६॥ अस्त्रौघप्रसरेण रावणिरसौ यं दुर्यशोभागिनं चक्रे गौतमशापयन्त्रितभुजस्थेमानमाखण्डलम्। कच्छागर्तकुलीरतां गमयता वीर त्वया रावणं तत्संमृष्टमहो विशल्यकरिणी जागर्ति सत्पुत्रता ॥ ७ ॥ आकर्णपलितः श्यामो वयसाऽशीतिपञ्चकः। रणे पर्यचरद्द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ८ ॥ आजन्मब्रह्मचारी पृथुलभुजशिलास्तम्भविभ्राजमानज्याघातश्रेणिसंशान्तरितवसुमतीचक्रजैत्रप्रशस्तिः। वक्षःपीठे घनास्त्रव्रणकिणकठिने संवणुवानः पृषत्कान्प्राप्तो राजन्यगोष्ठीवनगजमृगयाकौतुकी जामदग्न्यः ॥ ९ ॥ उरः कृत्वाऽवेध्यं मणिफलकगाढस्थितकुचं भुजावालम्ब्यैहीत्यमरवनिता व्योमगृहगा। अपद्वारेणैव त्वरितपदमाभाष्य सहसा हतं हस्तालम्बैर्हरति सुरलोकं रणमुखात् ॥ १० ॥ एकतश्च सुरसुन्दरीजनः श्रीः प्रतीच्छति युयुत्सुमन्यतः। पाप्मना सह पलायतोऽयशश्चैकतः कुलकलङ्ककारणम् ॥ ११ ॥ एकस्मिन्ननु पातितेऽपि शिरसि क्रोधोपशान्तिः कुतः स्याच्चेत्किन्तु तथा स्वमूर्धपतनं दृष्टं न यत्रारिणा। एतन्मूर्धबहुत्वतः फलमिदं त्वत्तो मया लप्स्यते छिन्नं छिन्नमवेदय राक्षसपते यस्मादसूँस्त्यक्ष्यसि ॥ १२ ॥ कण्ठश्रेणिविशीर्यमाणरुधिरप्राग्भारभग्नद्युतेर्येन स्मेरमुखेन होमशिखिनः सन्धुक्षणाकाङ्क्षिणा। भ्रूभङ्गः शितिकण्ठकण्ठफणिने फूत्कारहेतोः कृतः शौण्डीर्यव्रततुष्टधूर्जटिरयं किं वर्ण्यते रावणः ॥ १३ ॥ कपोले जानक्याः करिकलभदन्तद्युतिमुषि स्मरस्मेरं गण्डोड्डमरपुलकं वक्त्रकमलम्। मुहुः पश्यञ्शृण्वन्रजनिचरसेनाकलकलं जटाजूटग्रन्थिं द्रढयति रघूणां परिवृढः ॥ १४ ॥ कश्चिद्द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः सद्यो विमानप्रभुतामुपेत्य। वामाङ्गसंसक्तसुराङ्गनः स्वं नृत्यत्क-

---

पिण्ड बन गया ॥ ६ ॥ इन्द्रके पुत्र बालिकी प्रशंसा करते हुए कोई कह रहा है—'गौतम ऋषिके शापके कारण जिसका बाहुबल काम नहीं कर पा रहा था उस इन्द्रको रावणके पुत्र मेघनादने हराकर चारों ओर उसकी दुष्कीर्ति फैला दी। हे वीर! तुमने मेघनादके पिता रावणको जलाशयके तीरपर गढ़ेमें छिपे हुए केकड़ेके समान डरपोक बनाकर वह कलङ्क दूर कर दिया और स्पष्ट कर दिया कि अब भी अपने पिताके अपमानका बदला लेनेवाले पुत्र संसारमें जीवित हैं ॥७॥ पचासी वर्षकी अवस्थामें श्यामवर्णके द्रोणाचार्यके बाल कानतक पक चुके थे किन्तु बूढ़े होते हुए भी वे युद्ध-क्षेत्रमें सोलह वर्षके बालकके समान उछल रहे थे ॥ ८ ॥ जन्मसे ब्रह्मचारी वे परशुराम आ रहे हैं जिनके विशाल बाहुरूपी पत्थरके खम्भोंपर धनुषकी कोरकी रगड़के घट्टे चमक रहे हैं, भूमण्डलके विजयकी बात जिनके नामके साथ-साथ चलती है, जो अस्त्रोंकी चोटसे घट्टे खाई हुई कड़ी छातीपर अपने बाण पिना रहे हैं और जो राजसमाजरूपी जंगली हाथियोंका आखेट करनेके लिये सदा लालायित रहते हैं ॥ ९ ॥ नायककी सुन्दरता कहीं हृदयमें गड़कर अप्सरा-धर्मको नष्ट न कर दे इस डरसे छातीपर कठोर स्तनरूपी मणिका पटरा लगाकर हृदयको न बिंध सकने योग्य बनाकर, स्वर्गके भवनकी अप्सरा दूरसे ही बाँहें फैलाकर, शीघ्र पास पहुँचकर और अचानक 'आओ' कहकर, अपने हाथका सहारा देकर, युद्धभूमिमें मरे हुए वीरको युद्धभूमिसे स्वर्ग ले जा रही है ॥ १० ॥ इधर युद्धके लिये ललकते हुए वीरकी प्रतीक्षा देवलोककी सुन्दरी कर रही है; उधर लक्ष्मी भी उसीकी प्रतीक्षा कर रही है। एक ओर उसके पापके साथ उसका अपयश भाग निकला है तो दूसरी ओर कुलमें कलङ्क लगनेका ('धिक्कार है इसने शत्रुको पीठ दिखाई' यह बात उत्पन्न होनेका) कारण भाग निकला है ॥ ११ ॥ हे राक्षसपति रावण! तेरा एक ही सिर काटकर मेरा क्रोध तबतक भला कैसे शान्त हो पावेगा, जबतक तू अपने सब सिर कटते न देखे। तेरे बहुतसे सिर होनेका मुझे यही लाभ होगा कि तू अपना एक-एक सिर कटता देख-देखकर अपने प्राण छोड़ेगा ॥ १२ ॥ लहराती हुई जटाओंवाले शिवजीके सम्मुख सिरोंकी आहुति देते समय गलोंसे बहता हुआ अत्यधिक रक्त पड़ जानेके कारण जब अग्नि मन्द होने लगी तब उसे जगानेको फूँक मारनेके लिये जिसने मुसकराकर शिवजीके गलेपर पड़े हुए साँपको भौंहके सङ्केतसे आज्ञा दे दी और अपने अक्खड़पनसे ही शिवजीको प्रसन्न कर लिया उस रावणका क्या वर्णन किया जा सकता है? ॥ १३ ॥ इधर हाथीके बच्चेके दाँतकी कान्तिको तुच्छ करनेवाले और कामके प्रभावसे घने उठे हुए रोमाञ्चसे भरा सीताका मुखकमल देखकर और उधर राक्षसोंकी सेनाका कोलाहल सुनकर काम तथा वीरताके दोनों भावोंमें पड़कर रामचन्द्रजी अपनी जटाकी गाँठ कसकर बाँध रहे हैं ॥ १४ ॥

बन्धं समरे ददर्श ॥ १५ ॥ दृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी । तस्मिन्वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा बाह्वोर्वीर्यातिभारद्रविणगुरुपदं मामजित्वैव गर्वः ॥ १६ ॥ कोऽप्येष खण्डितशिरा विकसन्मुखश्रीः प्रारब्धताण्डवविधिः सुरकामिनीभिः । आलोक्यते निजकराभिनयानुरूपव्यापारितेक्षणनिवेदितसत्त्वसारः ॥ १७ ॥ क्षुद्राः संत्रासमेते विजहित-हरयो भिन्नमत्तेभकुम्भा युष्मद्देहेषु लज्जां दधति परममी सायका निष्पतन्तः । सौमित्रे तिष्ठ पात्रं त्वमसि न हि रुषां नन्वहं मेघनादः किञ्चित्संरम्भलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि ॥ १८ ॥ खड्गास्तिष्ठन्तु मत्तेभकुम्भकूटाट्टहासिनः । एकदोर्दण्डशेषेऽपि कः सहेत पराभवम् ॥ १९ ॥ चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान्कर्मोपदेष्टा हरिः संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता । कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशो दुन्दुभिः ॥२०॥ चापाचार्यस्त्रिपुरविजयी कार्तवीर्यो विजेयः शस्त्रव्यस्तः सदनमुदधिर्भूरियं हन्तकारः । अस्त्वेवैतत्किमु कृतवतो रेणुकाकण्ठबाधां बद्धस्पर्धस्तव परशुना लज्जते चन्द्रहासः ॥ २१ ॥ छिन्नेऽपि शस्त्रभिन्नेऽप्यापत्पतितेऽपि निर्विशेषेऽपि । हनुमति कृतप्रतिज्ञे दैवमदैवं यमोऽप्ययमः ॥ २२ ॥ जन्मेन्दोरमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां मां दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीवं रिपुं भाषसे । दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे मत्त्रासान्नृपशो विहाय समरं पङ्केऽधुना लीयसे ॥ २३ ॥ जीवतोऽपि निहतस्य वा रणे धर्म एव हि नरस्य योधिनः ।

शत्रुकी तलवारसे सिर कटते ही एक वीर तत्काल विमानपर बैठकर देवता हो गया, उसके बाँएँ भागमें एक अप्सरा आ गई और उस विमानसे ही वह रणस्थलमें नाचते हुए अपने धड़का नाच देखने लगा ॥१५॥ भीमसे दुर्योधन कहता है—'संसारका स्वामी हूँ मैं । मेरी आज्ञासे जुएमें जीती हुई इस दासी द्रौपदीको तुम्हारे जैसे भीरु, अर्जुन जैसे नरपशु और राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव आदि राजाओंके सामने बाल पकड़कर खींचा गया । वास्तवमें वैरका कारण तो यह है । तब यह बताओ कि जिन राजाओंको तुमने मार डाला उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? अपने बाहुके पराक्रमके भारकी सम्पत्तिपर विशाल अभिमान करनेवाले मुझ दुर्योधनको बिना जीते यह तुम क्यों व्यर्थ गाल बजा रहे हो ॥ १६ ॥ जिस वीरका सिर कट गया था, मुख चमक रहा था, धड़ नाच रहा था, फड़कते हुए ओठोंके साथ-साथ आँखें घूमकर उसके बलका परिचय दे रही थीं उसे वरण करनेके लिये स्वर्गकी देवियाँ प्रतीक्षा कर रही थीं ॥ १७ ॥ मेघनाद कहता है—अरे निर्बल वन्दरो ! डरो मत । मतवाले हाथियोंका मस्तक फाड़नेवाले ये हमारे बाण तुम्हारे शरीरपर पड़नेमें भी लजाते हैं । लक्ष्मण ! तुम भी खड़े रहो । मैं तुमपर क्रोध नहीं करता । मैं मेघनाद उस रामको ढूँढ रहा हूँ जिसने थोड़े ही प्रयत्नसे समुद्रको बाँध लिया है ॥ १८ ॥ मतवाले हाथियोंके मस्तकपर बरसकर हँसनेवाली इन तलवारोंकी तो बात दूर रही, केवल एक भुजा बची रहनेपर ही कौन वीर किसीसे अपमान सह सकता है ॥ १९ ॥ भीम कहते हैं—'इस रणयज्ञमें यह ऊँचे स्वरसे बजता हुआ कीर्तिका नगाड़ा ही राजाओंको निमन्त्रण है, हम चार भाई ही 'होता' हैं, कर्मका उपदेश देनेवाले भगवान् कृष्ण आचार्य हैं, नियम पालनेवाली द्रौपदीके साथ महाराज युधिष्ठिर ही यजमान हैं, कुरुवंशी दुर्योधन आदि इसमें पशु हैं और द्रौपदीके मनमें अपमानसे जो दुःख उत्पन्न हुआ है उसे दूर करना ही इसका फल है ॥ २० ॥ हे परशुराम ! धनुर्विद्याके आचार्य और त्रिपुरासुरके संहारक स्वयं शङ्कर ही तुम्हारे आचार्य हैं, स्वामिकार्तिकेयको तुमने जीत लिया है, अपने बाणोंसे समुद्र सुखाकर उसमें तुमने अपना निवास बनाया है और बार-बार तुमने इस पृथ्वीको दानमें दिया है, ये सब बातें ठीक हैं किन्तु अपने जिस फरसेसे तुमने अपनी माता रेणुकाका गला काटा है उससे होड़ करनेमें हमारे खड्गको लज्जा लगती है ॥ २१ ॥ बाणोंसे छिद जानेपर भी, शस्त्रोंसे कट जानेपर भी, विपत्तिमें पड़ जानेपर भी और अस्त्र-शस्त्र डाल देनेपर भी यदि हनुमानजी प्रतिज्ञा करके खड़े हो जायँ तो भाग्य भी दुर्भाग्य हो जाय और यमराज भी यमराज न रह जायँ ॥ २२ ॥ जलाशयमें छिपे हुए दुर्योधनसे भीम कहते हैं—'तुम अपना जन्म निर्मल चन्द्रवंशमें बतलाते हो । आज भी गदा तुम्हारे पास है, दुःशासनके गरम रुधिर-रूपी मदिरासे मतवाले मुझ भीमको तुम अपना शत्रु बतलाते हो, अपने अभिमानमें चूर होकर तुम मधु-कैटभको मारनेवाले भगवान् कृष्णके साथ भी उद्दण्डताका व्यवहार करते हो, फिर भी हे

निश्चयान्न मरणं रणाजिरे नैव भीरुरजरामरः क्वचित् ॥ २४ ॥ जीवन्नेव मृतोऽसौ यस्य जनो वीक्ष्य वदनमन्योन्यम् । कृतमुखभङ्गो दूरात्करोति निर्देशमङ्गुल्या ॥ २५ ॥ तात त्वं निजकर्मणैव गमितः स्वर्गं यदि स्वस्ति ते ब्रूमस्त्वेकमिदं वधूहृतिकथां तातान्तिकं मा कृथाः । रामोऽहं यदि तद्दिनैः कतिपयैर्व्रीडानमत्कन्धरः सार्धं बन्धुजनैः सुरेन्द्रविजयी वक्ता स्वयं रावणः ॥२६॥ ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः परस्परं सायकविक्षताङ्गाः । कुम्भेषु लग्नाः सुपुवुर्गजानां कुचेषु लग्ना इव कामिनीनाम् ॥ २७ ॥ स्वरर्धासनभाजि किन्नरगणोद्गीतैर्भवद्विक्रमैरन्तःसम्भृतमत्सरोऽपि भगवानाकारगुप्तौ कृती । उन्मीलद्भवदीयदक्षिणभुजारोमाञ्चविछोच्चरद्बाष्पैरेव विलोचनैरभिनयत्यानन्दमाखण्डलः ॥ २८ ॥ धीवरो माल्यवानेकः प्रविष्टो वाहिनीमपि । यन्नीतिगुणजालान्तः पतन्त्यनिमिषाः क्षणात् ॥ २९ ॥ धृतधनुषि शौर्यशालिनि शैला न नमन्ति यत्तदाश्चर्यम् । रिपुसंज्ञकेषु गणना कैव वराकेषु काकेषु ॥ ३० ॥ न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तदस्य च । श्रूयन्ते तानि कर्माणि यानि युद्धे हनूमतः ॥ ३१ ॥ न पाहि पाहीति यदब्रवीदमुं समोष्ठ तेनैवमभूदिति क्रुधा । रणक्षितावस्य विरोधिमूर्धभिर्विदश्य दन्तैर्निजमोष्ठमास्यते ॥ ३२ ॥ न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया । न गच्छति तथा स्वर्गं यथा मर्त्यो रणे हतः ॥ ३३ ॥ निःपीते कलशोद्भवेन जलधौ गौरीपतेर्गङ्गया होतुं हन्त वपुर्ललाटदहने यावत्कृतः प्रक्रमः । तावत्तत्र मया विपक्षनगरीनारीदृगम्भोरुहद्वन्द्वप्रस्खलदस्रवारिपटलैः सृष्टाः पयोराशयः ॥ ३४ ॥ नियन्तव्याः केन स्ववशरसनावल्लिसुभगाः स्वगाथा गायन्तो निजसदसि के नाम न भटाः । न तानुद्वयामो य इह करवालद्वयमिलज्झण-

---

नरपशु ! तुम इस समय मेरे डरसे युद्धभूमि छोड़कर यहाँ कीचड़में क्या घुसे बैठे हो ?' ॥२३॥ जीवित तथा मार खाए हुए वीर पुरुषका युद्धमें लड़ना ही परम धर्म है क्योंकि युद्धमें मृत्यु होना कोई निश्चय नहीं है और कायर भी अजर-अमर नहीं होते ॥२४॥ जिसका मुँह देखकर आपसमें लोग अपना मुँह बनाकर उसे दूरसे ही उँगली दिखाते हों वह मनुष्य जीते जी मरेके समान है ॥२५॥ प्राण छोड़ते हुए जटायुसे राम कह रहे हैं—'हे तात ! अपने शुभ कर्मोंके बलपर स्वर्ग जा रहे हो तो जाओ, तुम्हारा मंगल हो । किन्तु एक बात सुनते जाओ कि पिताजीसे सीताके हरे जानेकी चर्चा न करना । यदि मैं राम हूँ तो थोड़े ही दिनोंमें वह इन्द्रको जीतनेवाला रावण अपने बन्धुओंके साथ स्वयं जाकर और लज्जासे सिर झुकाकर उनसे ये सब बातें कह देगा ॥२६॥ एक दूसरेके बाणसे बिंधे हुए शरीरवाले और कुंडल पहने हुए तरुण क्षत्रिय, हाथियोंके कटे हुए मस्तकसे सटकर पड़े हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो नवेलियोंके स्तनोंसे सटे पड़े हों ॥ २७ ॥ किसी राजाकी प्रशंसामें कोई कह रहा है—'जब आप इन्द्रके आधे सिंहासनपर बैठते हैं उस समय किन्नर लोग आपके पराक्रमकी जो प्रशंसा करते हैं उसे सुनकर इन्द्रको डाह होता है पर इन्द्र तो अपने मनका भाव छिपानेमें बड़े कुशल हैं इसलिये आपकी उठी हुई दक्षिण भुजाके रोमाञ्चके सम्पर्कसे बहते हुए आँसूसे भरे हुए नेत्रोंसे आनन्दका ही प्रदर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ श्रेष्ठ बुद्धिवाला (धीवररूपी) माल्यवान् बन्दर (मालावाला) अकेला सेनामें (नदीमें) ऐसा पैठा कि उसके नीतिके डोरोंवाले (सूतवाले) जालमें राक्षस (बड़े मच्छ) क्षणमें ही गिरने लगे ॥२९॥ वह वीर पुरुष जब अपने हाथमें धनुष उठा लेता है उस समय पहाड़ नहीं झुक जाते यही आश्चर्य है, फिर कौवोंके समान बेचारे शत्रु तो हैं किस गिनतीमें ॥ ३० ॥ युद्धमें हनुमानजीने जो करतब दिखा दिया वह यमराज, इन्द्र, विष्णु तथा कुबेरके सम्बन्धमें भी कभी नहीं सुनाई पड़ा ॥ ३१ ॥ रणभूमिमें इस वीरके विरोधियोंके सिर मानो अपने ओठ इस क्रोधसे दाँतोंसे चबाए डाल रहे हैं कि ले मेरे ओठ ! इसके सम्मुख तूने 'बचाओ, रक्षा करो,' नहीं कहा इसीसे यह दशा हुई ॥ ३२ ॥ बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंसे, तपस्यासे अथवा विद्यासे भी मनुष्य वैसा स्वर्ग नहीं पाता जैसा युद्धमें मरकर पाता है ॥ ३३ ॥ कोई राजा स्वयं अपनी प्रशंसा करते हुए कहता है—जब अगस्त्य मुनिने समुद्र सोख लिया तब समुद्रकी पत्नी गङ्गाजी भी शङ्करके मस्तककी आगमें अपना शरीर होम कर देनेके लिये तैयार हो गईं किन्तु उसी समय मैंने शत्रुओंके नगरमें स्त्रियोंके नेत्र-कमलोंसे आँसुओंका प्रवाह बहाकर न जाने कितने समुद्र भर दिए ॥ ३४ ॥ ऐसे लोगोंको कौन रोक सकता है जिनकी स्वतन्त्र जीभरूपी लता मनमाना हिलती ही रहती है अथवा अपने घरके कितने ऐसे वीर हैं जो अपनी बड़ाई अपने मुँह गाते ही रहते हैं, किन्तु ऐसे लोग कहीं देखनेको

रकारे चक्षुर्झटिति न विलुम्पन्ति मिलिताः ॥ ३५ ॥ नो तावत्कलयामि केलिकुपणे वामभ्रुवो लोचने तावन्न प्रणयावलीढमनसः पश्यामि मातुर्मुखम्। यावत्तारकुठारपातनिपतत्प्रत्यर्थिपृथ्वीपतिभ्राम्यत्स्वर्णकिरीटवद्धशिरसो भ्राम्यन्ति नो फेरवः ॥ ३६ ॥ पूर्णे शतसहस्रे द्वे पदातीनां नरोत्तमः। प्रजज्वाल रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ३७॥ प्रागुच्चैश्शिरसं क्षुरप्रनखरैः क्रौञ्चाद्रिदन्तावलं भित्वा हंसमयानि मौक्तिकफलान्याकीर्य पर्योपितम्। सैंहीं वृत्तिमधिष्ठितेऽपि हि मयि क्षत्रेण कल्पेन ते दिष्ट्या कौतुकमाभिरामिकमसि त्वं कोऽपि वीराङ्कुरः ॥ ३८ ॥ प्रायेण सुकरं दानं प्रायेण सुकरं तपः। प्राणानपेक्षी व्यापारः पुनर्धीरस्य दुष्करः ॥ ३९ ॥ भर्तृपिण्डानृणकरो यशः क्रयमहापणः। सुराङ्गनास्वयंग्राहो रम्यः कालोऽयमागतः ॥ ४० ॥ भूमात्रं कियदेतदर्णवमितं तत्साधितं हार्यते यद्वीरेण भवादृशेन वदति त्रिःसप्तकृत्वो जयः। वीरोऽयं नववाहुरीदृशमिदं घोरं च वीरव्रतं तत्क्रोधाद्विरम प्रसीद भगवन्नात्यैव पूज्योऽसि नः ॥ ४१ ॥ भूरेणुदिग्धा नवपारिजातस्रजो रजोवासितवाहुमध्याः। गाढं शिवाभिः परिरभ्यमाणाः सुराङ्गनाश्लिष्टभुजान्तरालाः ॥ ४२ ॥ मयासेनो यस्य प्रमदयमदंष्ट्रासहचरैः शरैर्मुक्तो जीवन्द्विरिव शरजन्मा समभवत्। इमां च क्षत्राणां भुजवनमहादुर्गविषमामथं वीरो धीमानजयदधिविंशान्वसुमतीम् ॥ ४३ ॥ मा भैष्ट नैते निस्त्रिंशा नीलोत्पलदलत्विषः। एते वीरावलोकिन्या लक्ष्म्या नयनविभ्रमाः ॥ ४४ ॥ मूले पञ्च ततश्चतुष्टयमिति स्रक्सन्निवेशैः शिरःपुष्पैरन्यतमावलोकनमितैरुच्छोणितैरर्चितैः। हस्तस्पर्शवशेन मूर्ध्नि दशमं मूर्धानमारोपयन् शम्भोरद्भुतसाहसैकरसिकः कैर्न श्रुतो रावणः ॥ ४५ ॥ यद्यत्कृत्तं दशमुखशिरस्तस्य

नहीं मिलते जो दो तलवारोंकी टक्करकी झनझनाहट होनेपर आँखें न मूँदें ॥ ३५ ॥ सुन्दर भौंहोंवाली अपनी नायिकाकी सूनी आँखोंपर मैं तबतक ध्यान न दूँगा और प्रेम-भरे हृदयवाली अपनी माताका मुख भी तबतक न देखूँगा जबतक मेरे तीखे कुठारके घावसे गिरते हुए शत्रु-राजाओंके चक्कर खाते हुए सोनेके मुकुटमें फँसे हुए सिरोंके चारों ओर गीदड़ न दौड़ने लगें ॥ ३६ ॥ रणमें दो सहस्र पैदल सैनिकोंके गिर जानेपर वीर भीष्म पितामह ऐसे चमकने लगे जैसे बिना धुएँकी आग हो ॥३७॥ जिसके तीखे नखोंसे क्रौंच पर्वतके समान हाथीके बड़े भारी मस्तकके फटनेसे गिरे हुए हंसमय मोतीरूपी फल मानो 'बचाओ, बस करो' ऐसा कहकर रोक रहे हों उस सिंहजैसी वीरतावाले मुझ वीर पुरुषके सामने भी जो तुमने अपने क्षत्रियोचित कार्यसे एक मनोरम कौतुक उपस्थित कर दिया इससे जान पड़ता है कि अवश्य ही तुम किसी वीरके पुत्र हो ॥ ३८ ॥ प्रायः सब कुछ दान दे देना और तपस्यासे शरीर सुखा डालना दोनों बहुत सरल काम हैं पर प्राणोंकी चिन्ता न करके युद्धमें कौशल दिखाना बड़ा कठिन है ॥ ३९ ॥ वह सुन्दर समय आ गया जब अपना पोषण करनेवाले स्वामीके ऋणसे उऋण हुआ जा सकता है, यश मोल लिया जा सकता है और जब स्वयं अप्सराएँ आकर गलेसे लिपट जा सकती हैं ॥४०॥ परशुरामसे दशरथ कहते हैं—'पृथ्वी भरकी तो बात ही क्या, बड़े-बड़े वीरोंने समुद्रतक फैले हुए अपने राज्य आप जैसे महावीरके चरणोंमें अर्पित कर दिए। इस प्रकार इक्कीस बार आपकी विजय होती रही है फिर राम तो अभी उगते हुए वीर हैं। प्रगल्भ वीरोंका नियम बड़ा कठोर होता है। इसलिये भगवन्! आप क्रोध न कीजिए, मान जाइए, क्योंकि आप तो जन्मसे ही हमारे पूज्य हैं ॥ ४१ ॥ जो वीर रणमें मरकर देवता हो गए थे, जिनकी छातीसे पारिजातकी मालाके परागकी सुगंधिसे पूर्ण छातियोंवाली देवियाँ लिपटी हुई थीं वे भूमिमें गिरे हुए अपने उन शरीरोंको देख रहे थे जिनमें धूल लिपटी हुई थी और जिन्हें चारों ओरसे गीदड़ियाँ घेरे हुए थीं ॥४२॥ सरपतमें जन्म लेनेवाले कार्तिकेयने भी यमराजके भयानक दाँतोंके समान जिन परशुरामके बाणोंसे किसी-किसी प्रकार छुटकारा पाकर मानो फिरसे शरसे जन्म पाया उन वीर परशुरामने क्षत्रियोंके भयानक भुजारूपी घोर जंगलसे भरी हुई पृथ्वीको इक्कीस बार जीता था ॥४३॥ डरो मत! ये नीले कमलके समान चमकनेवाली तलवारें नहीं हैं, ये तो वीरोंकी ओर अनुरागसे देखनेवाली लक्ष्मीके नयेनये कटाक्ष हैं ॥ ४४ ॥ अपने सिररूपी फूलोंसे पञ्चमुखी शिवकी पूजा करते समय जिसने पहले उनके पैरोंपर पाँच सिर चढ़ा दिए, फिर शिवजीके चार सिरोंपर रक्तसे सने हुए अपने चार सिर मालाकार चढ़ा दिए और अब जो शिवजीका सर्वश्रेष्ठ पाँचवाँ सिर देखते हुए अपना दसवाँ सिर उस पाँचवें सिरपर हाथोंसे टटोल-टटोलकर चढ़ाना चाह रहा है उस अद्भुत साहसी रावणका नाम किसने नहीं सुना ॥ ४५ ॥

तस्यैव कान्तो संक्रामन्त्यामतिशयवती शेषवक्त्रेषु लक्ष्मीः। यो यः कृत्तो दशमुखभुजस्तस्य तस्यैव वीर्यं लब्ध्वा दृप्यन्त्यधिकमधिकं बाहवः शिष्यमाणाः ॥ ४६ ॥ ये लङ्काधिपतिप्रतापदहनैः प्लुष्टास्त एव ग्रहा दिक्पालाश्च कदम्बकेन हनुमद्भिर्दग्धलङ्कार्चिषाम्। आलीढाम्बरदिङ्मुखेन दधिरे सन्तोषमित्यग्निना दग्धस्यौषधमग्निरित्युपनयं स्थाने जनोक्तिर्गता ॥४७॥ येऽहम्पूर्विकया प्रहारमभजन् खड्गस्य मां छिन्धि मां छिन्धीत्युक्तिपराः पुरारिपुरतो लङ्कापतेर्मौलयः। ते भूमौ पतिताः पुनर्भवनवानालोक्य मूर्ध्नो वरं याचिष्यन्त इमे हि नो वयमिति प्रीत्याऽट्टहासं व्यधुः ॥ ४८ ॥ रथेभ्यो गजवाजिभ्यः संग्रामे वीरसङ्कराः। पातिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुनताडिताः ॥ ४९ ॥ रविमणिरपि निश्चेष्टः पादैस्तिग्मद्युतेर्मनाक्स्पृष्टः। ज्वलतितरामिति को वा मन्युं सोढुं क्षमो मानी ॥५०॥ रामः किं कुरुते न किञ्चिदपि च प्रातः पयोधेस्तटीं कस्मात्साम्प्रतमेवमेव हि ततो बद्धः किमम्भोनिधिः। क्रीडाभिः किमसौ न वेत्ति यदयं लङ्कापतिर्वर्तते जानात्येव विभीषणः स्वनिकटे लङ्कापदे स्थापितः ॥ ५१ ॥ लक्ष्मणो लघुसन्धानी दूरपाती च राघवः। कर्णो दृढप्रहारी च पार्थस्यैते त्रयो गुणाः ॥ ५२ ॥ लोकोऽशुभस्तिष्ठतु तावदन्यः पराङ्मुखानां समरेषु पुंसाम्। पत्न्योऽपि तेषां न ह्रिया मुखानि पुरः सखीनामपि दर्शयन्ति ॥ ५३ ॥ लोहितायति चादित्ये त्वरमाणो धनञ्जयः। पञ्चविंशतिसाहस्रान्निजघान महारथान् ॥ ५४ ॥ वयस्याः क्रोष्टारः प्रतिशृणुत बद्धोऽञ्जलिरयं किमप्याकाङ्क्षामः स्मरति न तथा वीरचरितम्। मृतानामस्माकं भवति परवश्यं वपुरिदं भवद्भिः कर्तव्यं न हि न हि पराचीनमरणम् ॥ ५५ ॥ वीरोऽसौ किमु वर्ण्यते दशमुखश्छिन्नैः शिरोभिः स्वयं यः पूजास्रजमुत्सुको घटयितुं देवस्य खट्वाङ्गिनः। सूत्रार्थी हरकण्ठसूत्रभुजगव्याकर्षणायोद्यतः साटोपं प्रमथैः

रावणका जो-जो सिर कटता जाता था उसकी कान्ति बचे हुए मुखोंमें समाती जाती थी, अतः, वे बचे हुए मुख और भी अधिक कान्तिवान् होते जाते थे और उसकी जो-जो भुजा कटती चलती थी उसका बल पाकर शेष भुजाएँ पराक्रमसे और भी अधिक ऐंठने लगती थीं ॥४६॥ हनुमान्-द्वारा लंका जलाए जानेपर सम्पूर्ण दिशाओं और आकाश-तक फैला हुआ चिनगारियोंका समूह देखकर उन ग्रहों और दिक्पालोंको बड़ा सन्तोष हुआ जो रावणके प्रतापरूपी अग्निसे जल चुके थे। इससे यह कहावत भी चरितार्थ हो गई कि जले की औषधि अग्नि ही है॥४७॥ शिवजीके सम्मुख रावणके जिन सिरोंने 'पहले मुझे काटो, पहले मुझे' ऐसा कह-कहकर खड्गके वार झेले थे उन्होंने धरतीपर गिरकर जब नये सिर उगे देखे तो प्रेमके मारे यह कह-कहकर ठठाकर हँसने लगे कि 'ये हम नहीं हैं' अर्थात् हमारे धोखेमें इन्हें न काटा जाय, हम और ये भिन्न-भिन्न हैं ॥४८॥ जब अर्जुनके बाण चलने लगे तब वीरोंके समूह रथ, हाथी तथा घोड़ोंपरसे गिरते और गिराए जाते हुए ही दिखाई पड़ रहे थे ॥ ४९ ॥ जब बिना प्राणवाला सूर्यकान्त मणि भी सूर्यके पाद (किरण, पैर) छू जानेपर जल उठता है तब स्वाभिमानी पुरुष अपमान हो जानेपर भला अपना क्रोध कैसे रोक सकेगा ॥५०॥ रावण : राम क्या कर रहा है? उत्तर : कुछ भी तो नहीं। रावण : तब समुद्रके तीरपर क्यों आया? उत्तर : यों ही आ गया है। रावण : समुद्रपर पुल क्यों बाँधा? उत्तर : खेल-खेलमें बाँध लिया। रावण : क्या वह नहीं जानता कि यहाँ लङ्काका स्वामी रावण रहता है? उत्तर : अवश्य जानता है किन्तु उसने तो अपने समीप ही विभीषणको लङ्कापतिके पदपर बैठा लिया है ॥ ५१ ॥ वेगसे बाण चलानेमें लक्ष्मण प्रसिद्ध थे, रामका बाण दूरतक जाता था और कर्णके बाणोंका प्रहार प्रबल होता था पर अर्जुनमें ये तीनों गुण थे ॥५२॥ युद्धमें पीठ दिखानेवाले लोग अशुभ लोकमें जायँगे यह बात तो दूरकी है, यहाँ तो उनकी स्त्रियाँ भी अपनी सखियोंके सामने लाजके मारे मुँह नहीं दिखा पातीं ॥ ५३ ॥ जयद्रथ-वधके अवसरपर संध्या समय लाल होते हुए सूर्यको देखकर उतावले अर्जुनने पचीस सहस्र महारथियोंको मार डाला ॥५४॥ हे भाई गीदड़ो! आप लोगोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि हमारी इतनी बात मान लीजिए कि मर जानेपर आगमें संस्कार हो जानेसे वीरोंकी सद्गति नहीं रुकती। इसलिये आप लोग अपने पुराने नियमोंका अर्थात् मृतकोंको खानेका नियम न पालें ॥ ५५ ॥ उस रावणका कैसे वर्णन किया जा सकता है जिसने भगवान् शंकरके लिये अपने हाथसे अपने दस मस्तक काटकर उनकी मुण्डमाला बनानेकी उत्कण्ठामें शंकरजीके गलेमें लिपटे हुए वासुकी नागको डोरा बनानेके लिये खींचनेको हाथ बढ़ाया और शंकरजीके गण प्रमथोंने भौंहें टेढ़ी करके उसे

कृतभ्रुकुटिभिशिञ्जत्वान्तरे वारितः ॥ ५६ ॥ शस्त्राशस्त्रिकथैव काननमगाद्दोर्वीणपाणिंधमाः पन्थानो दिवि संकुचन्ति वसुधा वन्ध्या न सूते भटान्। लक्ष्मीरप्यरविन्दसौधवलभीनिर्व्यूहपर्यङ्किकाविश्रान्तैरलिभिर्न कुञ्जरघटागण्डोत्करैर्मोदते ॥ ५७ ॥ शूराः श्रोत्रपथे न नः कति-कति प्राञ्चः पदं चक्रिरे तेषामेव विलङ्घ्य साम्यसरणिं जागर्ति लङ्काभटः। यद्दोर्मण्डलगाढपीडनवशान्निष्च्यूतरक्तच्छटाशङ्कासङ्करयन्ति शङ्करगिरेरद्यापि धातुद्रवाः ॥ ५८ ॥ सन्तुष्टे तिसृणां पुरामपि रिपौ कण्डूलदोर्मण्डलीक्रीडाकृत्तपुनःप्ररूढशिरसो वीरस्य लिप्सोर्वरम्। याच्ञादैन्यपराञ्चि यस्य कलहायन्ते मिथस्त्वं वृणु त्वं वृणिवत्यभितो मुखानि स दशग्रीवः कथं वर्ण्यते ॥ ५९ ॥ सम्मूर्च्छितं संयुगसम्प्रहारैः पश्यन्ति सुप्तप्रतिबुद्धतुल्यम्। आत्मानमङ्केषु सुराङ्गनानां मन्दाकिनीमारुतवाजिताङ्गम् ॥६०॥ सन्धानक्षण एव राघवशरैर्ये बाहवः खण्डितास्तद्बाणान् परिहृत्य शीघ्रमपरे कर्षन्त्यमर्षाद्धनुः। प्रारब्धां तु दशाननस्य विदलद्वर्णामपूर्णां गिरं मूर्धानः परिपूरयन्ति विशिखैरन्यत्र नीता अपि ॥ ६१ ॥ सप्तषष्टिहताः कोट्यो वानराणां तरस्विनाम्। पश्चिमेनाह्नः-शेषेण मेघनादेन सायकैः ॥ ६२ ॥ समरविहरदस्मद्बाणनिःपातभिन्नप्रतिनरपतिभिन्नाद्भास्वतो बिम्बमध्यात्। वयमहह धरायां पातयामः पताकाव्यसनपवनलोलं वारि दिव्यापगायाः ॥ ६३ ॥ सलीलयातानि न भर्तुरभ्रमोर्न चित्रमुच्चैःश्रवसः पदक्रमम्। अनुद्रुतः संयति येन केवलं बलस्य शत्रुः प्रशशंस शीघ्रताम् ॥६४॥ स्वर्गस्य मार्गा बहवः प्रदिष्टास्ते कृच्छ्रसाध्याः कुटिलाः सविघ्नाः। निमेषमात्रेण महाफलोऽयमृजुश्च पन्थाः समरे व्यसुत्वम् ॥ ६५ ॥ स्वेषूत्कृत्य हुतपु मूर्धसु जवादग्नः स्फुटित्वा बाह्व्योकीर्णेष्वलिकेषु

फटकारते हुए वासुकीको छीनकर बीचमें ही रोक दिया ॥५६॥ राजाकी प्रशंसामें कोई कवि कहता है—'आपके प्रभावसे संसारमें युद्धकी चर्चा ही जंगलकी ओर भाग गई, आकाश मार्गमें देवताओंका ताली बजाना बन्द हो गया, पृथ्वीने वीर उत्पन्न करना ही छोड़ दिया, लक्ष्मी भी बाँझ होकर मतवाले हाथियोंके मद टपकाते हुए गालोंके बदले कमलकी अटारियोंके पलँगपर विश्राम करनेवाले भौंरोंके साथ सुख पाने लगी' ॥ ५७ ॥ वैसे तो हम लोगोंके कानोंमें बहुतसे अच्छे-अच्छे वीरोंकी कहानियाँ भरी पड़ी हैं किन्तु इन सबसे बढ़कर तो लंकाका वह वीर है जिसकी भुजाओंसे निचोड़ी हुई धातुके शैलोंकी धाराएँ आज भी रक्तके फव्वारोंका भ्रम उत्पन्न कर रही हैं ॥ ५८ ॥ शिवजीसे वरदान चाहनेवाले रावणने अपनी प्रबल भुजाओंसे जो सिर काटे वे त्रिपुरके शत्रु शंकरजीकी कृपासे फिर निकल आए, पर वे मुख शिवजीसे प्रार्थना करके दीन नहीं बनना चाहते थे इसलिये जिस रावणके मुखोंमें परस्पर इसी बातपर झगड़ा होने लगा कि पहले तुम वरदान माँगो, पहले तुम माँगो, ऐसे वीरका भला कौन वर्णन कर सकता है ॥५९॥ युद्धमें प्रहारोंसे मूर्च्छित हुए वीर आकाश-गंगासे मिलकर चलते हुए पवनसे शीतल हुए अपने आपको अप्सराओंकी गोदमें लेटे देखकर ऐसा समझते हैं मानो सोकर जागे हों ॥ ६० ॥ धनुषपर बाण चढ़ाती हुई रावणकी जिन भुजाओंको रामके बाण काट डालते हैं उनके बाण छोड़कर रावणकी शेष भुजाएँ क्रोधमें भरकर दूसरा धनुष खींच रही हैं और आधी बाली मुँहसे निकलते ही बाण लग जानेसे जीभ लटपटा जानेपर भी कटकर दूर जा पड़े हुए सिर भी रावणकी उस अधूरी बाणीको पूरी कर ही दे रहे हैं ॥६१॥ अन्तमें सन्ध्या समय मेघनादने सड़सठ करोड़ बलवान् वानरोंको बाणोंसे मारकर गिरा ही दिया ॥ ६२ ॥ रणस्थलमें छोड़े हुए हमारे बाणोंके लगनेसे मरे हुए शत्रुओंने जिस सूर्यमण्डलको फाड़ दिया है उस सूर्यमण्डलसे हम आकाशगङ्गाका वह जल भूमिपर गिरा रहे हैं जो हमारी पताकाके वस्त्रोंसे फड़फड़ाकर निकलते हुए प्रबल वेगसे हिल रहा है ॥ ६३ ॥ हिरण्यकशिपुने जब रणमें इन्द्रका पीछा किया उस समय इन्द्रने ऐरावत हाथीकी मतवाली चाल तथा उच्चैःश्रवा घोड़ेकी सुन्दर धीमी चालकी प्रशंसा न करके उनके भागनेकी ही प्रशंसा की ॥ ६४ ॥ स्वर्गके जो बहुत-से मार्ग बताए गए हैं वे सब कष्टसाध्य, टेढ़े-मेढ़े और बहुत विघ्नोंवाले हैं किन्तु युद्धमें मर जाना ऐसा सीधा मार्ग है जो पलक मारते बहुत बड़ा फल देनेवाला होता है ॥६५॥ अपने सिर काट-काटकर अग्निमें उनकी आहुति दे देनेके पश्चात् आगकी प्रचण्ड गर्मीसे जब वे चिटक-चिटककर बाहर आ पड़े तो फूटे हुए कपालपर लिखी हुई देवलिपिद्वारा रामायणकी घटना जानकर भी जो अहंकारमें भरकर ब्रह्मापर और भी अधिक क्रोधित हो हो उठ रहा था उस मानियोंके शिरोमणि महावीर रावणसे कौन

देवलिपिभिर्दृष्टाऽपि रामायणम्। चित्तेनास्खलितेन यस्तदधिकं ब्रह्माणमप्रीणयत् कस्तस्मै प्रथमाय मानिषु महावीराय वैरायते ॥ ६६ ॥ स्वैरं कुरुत वै तावत् सुमनःपातमाहवे। अन्यथा सुमनःपातं कुम्भकर्णः करिष्यति ॥ ६७ ॥ स्त्रीषु प्रवीरजननी जननी तवैव देवी स्वयं भगवती गिरिजापि यस्य। त्वद्दोर्वशीकृतविशाखमुखावलोकव्रीडाविदीर्णहृदया स्पृहयाम्बभूव: ॥ ६८ ॥ हतेऽभिमन्यौ क्रुद्धेन तत्र पार्थेन संयुगे। अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥ ६९ ॥ हतोऽपि लभते स्वर्गं हन्ताऽपि लभते यशः। उभयं वो बहुगुणं नास्ति निष्फलता रणे ॥ ७० ॥ हा तात तातेति स वेदनार्तः क्रणञ्छकृन्मूत्रकफानुलिप्तः। वरं मृतः किं भवने किमाजौ सन्दष्टदन्तच्छदभीमवक्त्रः ॥ ७१ ॥

करुणरस : अक्षत्रारिकृताभिमन्युहननप्रोद्भूततीव्रक्रुधः पार्थस्याकृतशात्रवप्रतिकृतेरन्तःशुचा मुह्यतः। कीर्णा बाष्पकणैः पतन्ति धनुषि व्रीडाजडा दृष्टयो हा वत्सेति गिरः स्फुरन्ति न पुनर्निर्यान्ति वक्त्राद्बहिः ॥ १ ॥ अत्राकण्ठं विलुठ सलिले निर्जला भूः पुरस्तादुज्जह्याः शोषं वदनविहितेनामलक्याः फलेन। स्थाने स्थाने तदिति पथिकस्त्रीजनः क्लान्तगात्रीं पश्यन् सीतां किमु न कृपया वर्षितो रोदिनश्च ॥ २ ॥ अथ बद्धजटे रामे सुमन्त्रे गृहमागते। त्यक्तो राजा सुतत्यागादविश्वस्तैरिवासुभिः ॥ ३ ॥ अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि। जनस्थाने शून्ये करुणकरुणैरार्यचरितैरपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥ ४ ॥ अपहसितबान्धवे त्वया विहितं साहसमस्य तृष्णया। तदिहानपराधिनि प्रिये सखि कोऽयं करुणोज्झितक्रमः ॥ ५ ॥ अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः। जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ ६ ॥ अविशी-

---

वैर ठाने ! ॥६६॥ देवता लोग आपसमें कह रहे हैं—युद्धभूमिमें जी खोलकर फूल बरसाओ, नहीं तो कुम्भकर्ण देवताओंको ही गिरा-गिराकर मार डालेगा ॥ ६७ ॥ तुम्हारे बाहुबलसे कम बलवाले अपने पुत्र कार्तिकेयका मुख देखकर जिसका हृदय लज्जासे फटा जाता है वे भगवती पार्वती भी यही चाहती हैं कि मेरा भी पुत्र ऐसा ही होना चाहिए था। ऐसे तुम्हारे जैसे वीर पुत्रको उत्पन्न करनेवाली माता स्त्रियोंमें केवल एक तुम्हारी ही माता है ॥ ६८ ॥ रणस्थलमें अभिमन्युके मारे जानेपर क्रुद्ध अर्जुनने सात अक्षौहिणी सेना नष्ट करके जयद्रथको भी मार गिराया ॥ ६९ ॥ यदि मारे जाओगे तो स्वर्ग पाओगे, यदि शत्रुओंको मारोगे तो यश मिलेगा। दोनों प्रकारसे तुम लोगोंको लाभ ही लाभ है, वीरके लिये युद्ध कभी निष्फल नहीं जाता ॥ ७० ॥ बताओ भला मल-मूत्र और कफमें लिपटकर पीड़ासे 'हाय बप्पा! हाय बप्पा' चिल्लाते हुए घरमें मर जाना अच्छा या भयंकर मुख बनाकर ओठ चबाते हुए युद्धमें मरना अच्छा ! ॥ ७१ ॥

करुण-रस : क्षत्रियोंके योग्य काम न करनेवाले शत्रुओंके हाथसे अभिमन्युका वध हो ... ॥ १ जिस अर्जुनको भयंकर क्रोध हो आया और शत्रुका बदला न चुका सकनेसे जिसका हृदय शोकसे व्याकुल था उस ... की आँसू और लज्जासे भरी आँखें धनुषपर पड़ती हैं और वह 'हा ... प्रिय पुत्र !' शब्द कहनेको उद्यत तो होता है पर शब्द उसके मुखसे बाहर नहीं निकलते ॥ १ ॥ 'यहाँ गले-गलेतक पानीमें हलकर चलो; आगे सूखी भूमि है, और अपने मुँहका रूखापन आँवलेके फलसे दूर कर लो।' इस प्रकार स्थान-स्थानपर थकी हुई सीताजीको देखती हुई मार्गमें चलते हुए यात्रियोंकी स्त्रियाँ सहानुभूतिके साथ फूट-फूटकर रो रही थीं ॥ २ ॥ इसके पश्चात् जब रामचन्द्रजीने जटा बाँध ली और सुमन्तजी वनसे घर आ गए तो मानो पुत्रके परित्यागसे अविश्वासी बने हुए प्राणोंने भी राजाका परित्याग कर दिया ॥ ३ ॥ सोनेका हरिण बनकर पापी-राक्षसोंने अपने जिस कपट-व्यवहारके कुकृत्यसे अपने सारे कुकृत्योंको नीचा दिखा दिया उसीको सोच-सोच कर रामके मनमें बड़ा दुःख हो रहा है। सूने दंडकवनमें रामचन्द्रका यह करुणाजनक व्यवहार देखकर पत्थर भी रोए दे रहा था और वज्रका हृदय भी फटा जा रहा था ॥ ४ ॥ हे सखी ! अपने बन्धु-बान्धवोंकी चिन्ता न करके उनके लोभमें पहले तुम्हींने साहसका काम किया, अब बिना अपराधके ही अपने प्रियसे तुम यह कठोर व्यवहार क्यों कर रही हो ॥ ५ ॥ कन्या तो दूसरेकी ही सम्पत्ति होती है। आज उसे पतिके पास भेजकर मेरा मन वैसा ही हल्का हो गया है जैसे किसीकी धरोहर लौटानेपर हृदय हलका हो जाता है ॥ ६ ॥ हे सुमुखि ! तुम मेरे घरकी वह दीप-कलिका हो जिसकी सुन्दर

र्णकान्तपत्रे नव्यदशे सुमुखि सम्भृतस्नेहे। मद्गेहदीपकलिके कथमुपयातासि निर्वाणम् ॥७॥ असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान्ध्रुवम्। पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैर्द्रोणद्रौणिकृपादिभिः ॥ ८ ॥ अस्तङ्गते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा। इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥ ६ ॥ आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जमङ्गान्मां मुञ्च वागुरिक यामि कुरु प्रसादम्। सीदन्ति शष्पकवलग्रहणानभिज्ञा मन्मार्गवीक्षणपराः शिशवो मदीयाः ॥ १० ॥ आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखे सञ्जातश्च घनाघनो जलधरः शीर्णश्च वायोर्जवात्। उच्छिन्नश्च फलेग्रहिर्द्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना त्वं चूडामणितां गतश्च जगतः प्राप्तोऽसि मृत्योर्वशम् ॥ ११ ॥ इयमियं मयदानवनन्दिनी त्रिदशनाथजितः प्रसवस्थली। किमपरं दशकन्धरगेहिनी त्वयि करोति करद्वययोजनम् ॥ १२ ॥ उत्खातदैवतमिवायतनं मुरारेरस्तावलान्तरितसूर्यमिवान्तरिक्षम्। हम्मीरभूभुजि गते सुरवेश्म विश्वं पश्यामि हारमिव नायकरत्नशून्यम् ॥ १३ ॥ कनकहरिणं हत्वा रामो ययौ निजमाश्रमं जनकतनयां प्राणेभ्योऽपि प्रियामविलोकयन्। दृढमुपगतैर्बाष्पापूरैर्निमीलितलोचनो न विशति कुटीमाशातन्तुप्रणाशभयादसौ ॥ १४ ॥ कृतककुपितैर्बाष्पाम्भोभिः सदैन्यविलोकितैर्वनमसि गता यस्य प्रीत्या धृतापि तथाम्बया। नवजलधरश्यामाः पश्यन्दिशो भवतीं विना कठिनहृदयो जीवत्येव प्रिये स तव प्रियः ॥ १५ ॥ कोऽहं ब्रूहि सखे स एव भगवानार्यः सखे राघवः के यूयं बत नाथ नाथ किमिदं दासोऽस्मि ते लक्ष्मणः। कान्तारे किमिहास्महे बत सखे देव्या गतिर्मृग्यते का देवी जनकाधिराजतनया हा जानकि क्वासि हा ॥१६॥

पंखुड़ियाँ अभीतक खुली भी नहीं हैं, जो अभीतक नई बनी हुई हैं और जिसमें स्नेह भरा हुआ है, तब तुम अभीसे क्यों बुझी जा रही हो! अथवा—जिसका पतिरूपी (सुन्दर) पात्र नहीं टूटा है, जिसकी नई दशा (युवावस्था तथा बत्ती) अभी बनी हुई है, जिसमें स्नेह, प्रेम तथा तेल (भी भरा हुआ है ऐसी हे सुमुखी) मेरे घरके दीपककी ज्योति! तुम क्यों बुझ गई ॥ ७ ॥ द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्य आदि वीरोंके तीखे बाणोंसे पीड़ित होकर उसने असहाय अवस्थामें निश्चय ही सहायताके लिये मेरा स्मरण किया होगा ॥८॥ चन्द्रमाके अस्त हो जानेपर कुमुदिनीकी सारी शोभा जाती रही, अब वह पहलेकी भाँति आँखोंको सुख नहीं दे रही है। सचमुच पतिके वियोगमें स्त्रियोंको जो दुःख होता है वह अत्यन्त असह्य होता है ॥ ६ ॥ एक मृगी बहेलिएसे कह रही है—'हे बहेलिए! स्तन छोड़कर मेरे शरीरका सारा मांस लेकर मुझे छोड़ दो क्योंकि मेरे बच्चे अभी घासतक लेना नहीं जानते, वे मेरी बाट देखते होंगे और मेरे न जानेसे व्याकुल हो जायँगे ॥ १० ॥ कलाओंसे भरा हुआ स्वच्छ चन्द्रमा राहुके मुँहमें चला गया, अत्यन्त घना बादल भी वायुके वेगसे तितर-बितर हो गया, फलोंसे लदा हुआ सुन्दर वृक्ष जंगलकी आगसे जल गया और तुम जो संसारके चूड़ामणि थे मृत्युके कराल गालमें समा गए ॥ ११ ॥ कोई रामसे कह रहा है—'यह मय दानवकी पुत्री, इन्द्रको जीत लेनेवाले मेघनादकी माता और अधिक क्या कहें, रावणकी पत्नी मन्दोदरी आपको हाथ जोड़ रही है' ॥ १२ ॥ राजा हम्मीरके स्वर्ग चले जानेपर यह संसार वैसा ही दिखाई दे रहा है जैसे मूर्ति उखाड़ लेनेपर विष्णुका मन्दिर, अस्ताचलमें छिपे हुए सूर्यवाला आकाश और बीचके सुमेरु दानेसे रहित हार दिखाई देता है ॥१३॥ सोनेके हरिण (मारीच) को मारकर रामचन्द्रजीने अपने आश्रममें आकर दूरसे ही देखा कि प्राणप्यारी सीता वहाँ नहीं है। उस समय आँसूके प्रवाहसे उनकी आँखें भरी जा रही थीं और वे अपनी आशाके अवलम्बन सीताके न होनेकी आशंकासे कुटीमें घुस नहीं पा रहे थे ॥१४॥ वियोगमें विक्षिप्त रामकी हरी हुई जानकीके प्रति उक्ति: हे प्रिये! क्रोधका झूठा प्रदर्शन करके, अश्रुजल गिराकर तथा दैन्यपूर्ण दृष्टिवाली माता कौशल्यासे वन जानेके लिये रोकी जानेवाली आप जिसके स्नेहके कारण वन आईं, वही आपका प्रिय नवीन काले बादलोंसे काली-काली दिशाओंको देखता हुआ कठिन हृदय आपके बिना जी ही रहा है ॥ १५ ॥ सीताके वियोगमें विक्षिप्त राम और लक्ष्मणका संवाद—राम : बताओ मित्र मैं कौन हूँ? लक्ष्मण : आप स्वयं भगवान् हैं। राम : क्या कहा, राम? ठीक है, ठीक है। आप कौन हैं? लक्ष्मण : यह आप क्या कह रहे हैं नाथ! मैं आपका दास लक्ष्मण हूँ। राम : तो हम लोग जंगलमें क्यों खड़े हैं? लक्ष्मण : देवी सीताकी खोज कर रहे हैं। राम : कौन देवी? लक्ष्मण : राजा जनककी पुत्री। राम : हा जानकी! हाय! तुम कहाँ हो ॥१६॥

गण्डूषशोषिताब्धिप्रकटजलचरोत्फालजातस्मितानां हेलाकृष्टार्कचन्द्राभिनवकृतमहाकुण्डलाभोगभाजाम्। पीनांसस्थायिनाशाद्विरदमदमषीमांसलस्थासकानां दूरं यातस्य वत्स स्मरति दशशिरास्त्वच्छिशुक्रीडितानाम् ॥ १७ ॥ गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ। करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां बत किं न मे हृतम् ॥ १८ ॥ देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः। तं देशं नैव पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ १९ ॥ दैवे पराग्वदनशालिनि हन्त जाते याते च सम्प्रति दिवं प्रति बन्धुरत्ने। कस्मै मनः कथयितासि निजामवस्थां कः शीतलैः शमयिता वचनैस्तवाधिम् ॥ २० ॥ धृत्वा पदस्खलनभीतिवशात्करं मे यारूढवत्यसि शिलाशकलं विवाहे। सा मां विहाय कथमद्य विलासिनि द्यामारोहतीति हृदयं शतधा प्रयाति ॥ २१ ॥ ध्रुवं ध्वंसो भावी जलनिधिमहीशैलसरितामतो मृत्योः शौर्यत्कणलघुषु का जन्तुषु कथा। तथाप्युच्चैर्बन्धुव्यसनजनितः कोऽपि विषयो विवेकप्रोन्माथी दहति हृदयं शोकदहनः ॥ २२ ॥ ध्वस्तः काव्योरुमेरुः कविविपणिमहारत्नराशिर्विशीर्णः शुष्कः शब्दौघसिन्धुः प्रलयमुपगतो वाक्यमाणिक्यकोशः। दिव्योक्तीनां निधानं निधनमुपगतं हा हता दिव्यवाणी बाणे गीर्वाणवाणीप्रणयिनि विधिना शायिते दीर्घनिद्राम् ॥ २३ ॥ पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्। आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ २४ ॥ प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव सम्भवः। भूयादमुष्य भूयोऽपि भूयासमनुसञ्चरः ॥ २५ ॥ भयान्मन्दं यस्याः क्लमवति कपोले परिलुठन्मरुत्प्रत्यासन्नामलकरचनां ताण्डवयति। समाकृष्टा केशेष्वियमशरणा राक्षसवधूः प्लवङ्गैर्जन्तूनां दुरधिगमघोरा परिणतिः ॥ २६ ॥ भूमौ स्थिता रमण नाथ

बेटा मेघनाद ! दस सिरवाला रावण तुम्हारे बीते हुए बचपनकी वे खिलवाड़ें स्मरण करता है जिनमें तुम समुद्रका जल कुल्लेमें भरकर रखे समुद्रमें उछलते हुए जलचरोंको देख-देखकर मुस्कराते थे, सहज ही सूर्य-चन्द्रको खींचकर कुण्डल बना लेते थे और अपने मोटे-मोटे मांसल कन्धोंपर जब दिग्गजोंको ला धरते थे तो उनके मदजलसे तुम्हारे शरीरपर लगे हुए धब्बे ऐसे जान पड़ते थे मानो स्याहीसे लगाए गए छापे हों ॥१७॥ मरी हुई इन्दुमतीको देखकर अज कह रहे हैं—'तुम मेरी पत्नी, मन्त्रिणी, सखी तथा सुन्दर कलाओंमें मेरी प्रिय शिष्या सभी कुछ हो। तब बतलाओ, इस निर्दयी मृत्युने मुझसे तुम्हें छीनकर मेरा क्या नहीं हर लिया' ॥१८॥ देश-देशमें स्त्रियाँ प्राप्त हो सकती हैं और देश-देशमें बान्धव भी मिल सकते हैं किन्तु ऐसा कोई देश नहीं दिखाई देता जहाँपर सगे भाई मिलते हों ॥ १९ ॥ हाय ! जब भाग्यने मुख मोड़ लिया और हमारे बन्धुओंमें रत्न यह व्यक्ति भी स्वर्गका राही बन गया तो हे मन ! बताओ, अब तुम किसे अपनी दशा सुनाओगे और अपनी शीतल बातोंसे कौन तुम्हारी पीड़ा शान्त करेगा ॥२०॥ विवाहके समय पैर फिसलनेके भयसे तुमने मेरा जो हाथ पकड़कर पत्थरपर पैर रक्खा था उसी हाथको छोड़कर प्रिये ! तुम अकेली स्वर्गकी ओर कैसे चढ़ी चली जा रही हो, यही सोच-सोचकर मेरा हृदय टूक-टूक हो रहा है ॥ २१ ॥ समुद्र, पृथ्वी, पहाड़ तथा नदी सभी एक दिन नष्ट होंगे ही, तब टूटती हुई जलकी बूँदके समान सारहीन प्राणियोंके मरनेका महत्त्व ही क्या है ! फिर भी बन्धुके मरनेपर उठी हुई शोकरूपी आग मेरी विचारशक्तिको जड़से उखाड़ती हुई हृदय जलाए डाल रही है ॥ २२ ॥ देवभाषा संस्कृतके प्रेमी बाण कविको जब हम लोगोंके अभाग्यने गहरी नींदमें सुला दिया तो निश्चित है कि आज काव्य-रूपी सागर सूख गया, मीमांसा-शास्त्ररूपी माणिक्यका कोश उजड़ गया, अलौकिक उक्तियोंकी खान लुट गई और संस्कृतवादी भी समाप्त हो गए ॥ २३ ॥ शकुन्तलाको विदाई देते समय कण्व वृक्षोंसे कह रहे हैं—'जो शकुन्तला तुम लोगोंको पहले जल पिलाए बिना स्वयं जल नहीं पीना चाहती थी, जो पत्तोंके आभूषण बनाना चाहती हुई भी तुम्हारे प्रेमके कारण पत्तोंको हाथ नहीं लगाती थी, जो तुम्हारे पहले-पहल फूलनेके समय उत्सव मनाया करती थी वही शकुन्तला आज अपने पतिके घर जा रही है। अतः, तुम सब उसे जानेकी अनुमति तो दे दो ॥२४॥ जहाँ प्रिय मित्रका जन्म हो वहीं मेरा भी जन्म हो, जिससे दूसरे जन्ममें भी मैं फिर उसके पीछे-पीछे चलूँ ॥ २५ ॥ जिसके डरसे मन्दोदरीके थके हुए कपोलपर पवन धीरे-धीरे चलता हुआ आँवलेकी रचना बनाता था वही मन्दोदरी आज ऐसी अशरण हो गई है कि बन्दर उसके बाल खींच-खींचकर उसे तङ्ग किए डाल रहे हैं।

मनोहरेति सम्बोधनैर्यमधिरोपितवत्यसि द्याम्। स्वर्गं गता कथमिव क्षिपसि त्वमेणशावाक्षि तं धरणिधूलिषु मामिदानीम् ॥ २७ ॥ भूयिष्ठानि मुखानि चुम्बति भुजैर्भूयोऽभिरालिङ्ग्यते चारित्रव्रतदेवताऽपि भवता कान्तेन मण्डोदरी। हा लम्बोदरकुम्भमौक्तिकमणिस्तोमैर्ममैकावलीशिल्पे वागधमर्णकस्य भवतो लङ्केन्द्र निद्रारसः ॥ २८ ॥ मदर्थसन्दष्टमृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूर इति त्वयोदिते। विलोकयन्त्या रुदतोऽथ पक्षिणः प्रिये स कीदृग्भविता तव क्षणः ॥२९॥ मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी। गतिस्तयोरेव जनस्तमर्दयन्नहो विधे त्वां करुणा रुणद्धि न ॥ ३० ॥ मध्याह्ने दववह्निनोष्मसमये दन्दह्यमानाद्गिरेः कृच्छ्रान्निर्गतमुत्तृषं जलमथो वीक्ष्यैकरक्षाक्षमम्। प्रेम्णा जीवयितुं मिथः पिब पिबेत्युच्चार्य मिथ्या पिबन्निर्मग्नाम्यमपीतवारि हरिणद्वन्द्वं विपन्नं वने ॥ ३१ ॥ मया प्रत्यादिष्टा स्वजनमधिगन्तुं व्यवसिता स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे। पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषामर्पितवता मयि क्रूरे यत्तत्सविषमिव शल्यं दहति माम् ॥ ३२ ॥ मातस्तातः क्व यातः सुरपतिभवनं हा कुतः पुत्रशोकात् कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णां त्वमवरजतया यस्य जातः किमस्य। प्राप्तोऽसौ काननान्तं किमिति नृपगिरा किं तथाऽसौ बभाषे मद्वाग्बद्धः फलं ते किमिह तव धराधीशता हा हतोऽस्मि ॥ ३३ ॥ मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः। अमितस्य हि दातारं भर्त्तारं का न शोचति ॥ ३४ ॥ यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे। श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥ ३५ ॥

क्या भयंकर उसकी गति हुई है ॥ २६ ॥ इस पृथ्वीपर रहते समय ही तुमने मुझे 'हे रमण, हे नाथ, हे मनोहर!' कह-कहकर स्वर्गपर चढ़ा दिया था किन्तु हे मृगके बच्चोंके समान आँखोंवाली! अब स्वर्गमें जाकर तुम मुझे इस धरतीकी धूलमें क्यों फेंके दे रही हो ॥ २७ ॥ यह मन्दोदरी तुम्हारे मुखका भी चुम्बन कर रही है, तुम्हारी भुजाओंसे आलिंगन भी कर रही है, तुम्हें अपना पति मानकर अपने पत्नी-व्रतको भी धारण किए हुए है किन्तु गणेशके मस्तकपरके मोतियोंसे मेरी एक लड़ी माला रचते हुए तल्लीनताके कारण न बोलनेवाले लंकेश! आपको यह कैसी विचित्र निद्रा आ गयी है ॥ २८ ॥ 'मेरे लिये चोंचसे काटे हुए भसीड़को लेकर धीरे-धीरे आते हुए मेरे पति कितनी दूर हैं?' इस प्रकार जब तुम पूछोगी और उसके उत्तरमें रोते हुए पक्षियोंको देखोगी तब हे प्रिये! वह क्षण तुम्हारा कैसा बीतेगा! ॥ २९ ॥ घरमें मुझ इकलौते पुत्रकी बूढ़ी माँ और अभी बच्चा देकर निवृत्त हुई बेचारी हंसी है और उन दोनोंको सहारा देनेवाला केवल मैं हूँ। ऐसी दशामें मुझे दुःख देते हुए हे भगवन्! क्या आपको दया रोक नहीं रही है ॥३०॥ दोपहरके समय जब जंगलमें आगकी लपटें बढ़ रही थीं तब धधकते हुए पहाड़से हरिणका एक जोड़ा किसी-किसी प्रकार बाहर तो निकल आया किन्तु प्यासके मारे सूखते हुए उन्होंने इतना थोड़ा-सा जल देखा कि उससे एकको ही प्राणरक्षा हो सकती थी। उस समय एक दूसरेको जिलानेकी अभिलाषासे वे एक दूसरेसे 'तुम पिओ, तुम पिओ' कहते हुए और झूठ मूठ पीनेका नाट्य करते हुए कि उनका मुख भी न डूबे, वे दोनों बिना पानी पिए ही जंगलमें समाप्त हो गए ॥ ३१ ॥ शकुन्तलाके वियोगमें दुष्यन्त कहता है—'मेरे द्वारा तिरस्कार किए जानेपर जब तुम अपने स्वजनोंकी ओर चलनेको उद्यत हुई और जब तुम्हें गुरुके शिष्योंने डाटकर कहा कि तुम यहीं रहो, उस समय मुझ क्रूरकी ओर तुमने अपनी आँसुओंसे भीगी हुई जो दृष्टि डाली वह आज विषैले भालेके समान मुझे जलाए डाल रही है॥३२॥ भरत और कैकेयीमें बातचीत हो रही है—भरत : क्यों माँ, पिताजी कहाँ गए? कैकेयी : स्वर्गको? भरत : हाय क्यों? कैकेयी : पुत्रके शोकसे। भरत : वह चारों पुत्रोंमें कौन है? कैकेयी : जो तुम लोगोंमें सबसे बड़ा है। भरत : उन्हें क्या हुआ? कैकेयी : वे वन चले गए। भरत : क्यों? कैकेयी : राजाकी आज्ञासे। भरत : राजाने क्यों ऐसी आज्ञा दी? कैकेयी : मेरे वचनसे बँधकर। भरत : तुम्हें क्या फल मिला? कैकेयी : तुम्हारे लिये पृथ्वीका राज्य। भरत : हाय! तुमने तो मार डाला। ॥३३॥ पिता, भाई और पुत्र ये तो बहुत थोड़ा-थोड़ा देते हैं किन्तु सर्वस्व देनेवाले पतिके लिये भला कौन शोक नहीं करती ॥३४॥ तीखी कुशाओंसे छिदे हुए जिस हरिणके बच्चे के मुखपर तुमने घाव सुखानेवाला इंगुदीका तेल लगाया था, एक-एक मुट्ठी साँवेंके दाने खिलाकर जिसका तुमने पोषण किया था, वही तुम्हारा पाला हुआ पुत्र यह हरिणका बच्चा तुम्हारा मार्ग रोके खड़ा है ॥३५॥ जिस कोमल अंगवाली इन्दुमतीकी फूलकी

यस्याः कुसुमशय्यापि कोमलाङ्ग्या रुजाकरी। साधिशेते कथं देवी ज्वलन्तीमधुना चिताम् ॥ ३६ ॥ या केलिच्युतकेशलेशविषमां शय्यां न भेजे पुरा या जालान्तरनिर्गतार्ककिरणद्योतादपि म्लायते। सेयं निष्ठुरकाष्ठसञ्चितचितां देदीप्यमानानलां सस्मेरा भजते यदि प्रियमुखं स्नेहस्य किं दुष्करम् ॥ ३७ ॥ यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया कण्ठस्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्। वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ ३८ ॥ रामस्य हृदयाम्बोधौ विरहागस्त्यशोषिते। और्वत्वकोऽपि कामाग्निरन्तर्ज्वलति केवलम् ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणस्त्यक्तवान्प्राणान्मदर्थे मयि जीवति। अहमश्रूणि मुञ्चामि पश्यतान्तरमावयोः ॥ ४० ॥ वत्स गच्छ मम वाचिकमेतद्रामचन्द्रचरणे कथयेथाः। आवयोरिव भवेदनुरागो नावयोरिव विधिः प्रतिकूलः ॥ ४१ ॥ वनो मुनीनामटवो तरूणां दरी गिरीणां तु गवेषितैव। अतः परं लक्ष्मण पक्ष्मलाक्षीं प्राणा बहिर्भूय गवेषयन्तु ॥ ४२ ॥ विकृन्ततीव मर्माणि देहं शोषयतीव मे। दहतीवान्तरात्मानं क्रूरः शोकाग्निरुत्थितः ॥ ४३ ॥ विपिने क्व जटानिबन्धनं तव चेदं क्व मनोहरं वपुः। अनयोर्घटना विधेः स्फुटं ननु खड्गेन शिरीषकर्तनम् ॥ ४४ ॥ शीलानि ते चन्दनशीतलानि श्रुतानि भूमीतलविश्रुतानि। तथापि जीर्णौ पितरावतस्मिन्विहाय हा वत्स कथं प्रयासि ॥ ४५ ॥ शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियैः सौहृदादपृथगाशयां प्रियाम्। छद्मना परिददामि मृत्यवे सौनिको गृहशकुन्तिकामिव ॥ ४६ ॥ सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता। गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥ ४७ ॥ सम्पाद्य:

शय्या भी चुभती थी वह धधकती हुई चितापर भला कैसे सोएगी ॥ ३६ ॥ जो विलासके समय झड़े हुए थोड़ेसे बालोंसे रूखी बनी हुई शय्यापर भी नहीं सो पाती थी, जो झरोखेसे छनकर आती हुई सूर्यकी किरणोंकी गरमीसे भी झुलसी पड़ती थी, वही आज सूखी कठोर लकड़ीकी धधकती हुई चितापर हँसती-हँसती पतिका मुख चूम रही है। सचमुच, प्रेमके लिये कुछ भी कठिन नहीं है ॥३७॥ कण्व ऋषि कह रहे हैं—'आज शकुन्तलाकी बिदाई समझकर जी घबराया जा रहा है, आँसुओंसे गला भर-भर आ रहा है और चिन्ताके कारण आँखें धुँधली पड़ी हुई हैं। जब हम जैसे वनवासियोंको प्रेमके कारण ऐसी घबराहट हो रही है तब उन गृहस्थोंकी क्या दशा होती होगी जो पहले-पहले अपनी पुत्रीको उसकी ससुराल विदा करते हैं ॥३८॥ विरह-रूपी अगस्त्यसे सुखाए हुए रामके हृदय-रूपी समुद्रमें कोई बडवानलके समान कामरूपी अग्नि ही केवल हृदयको जलाए डाल रही है ॥ ३९ ॥ मेरे जीते जी लक्ष्मणने मेरे लिये अपने प्राण छोड़ दिए और मैं केवल यहाँ बैठा उसके लिये आँसू बहा रहा हूँ। हम दोनोंका यह अन्तर तो देख लो ॥४०॥ अपने पुत्रसे सीताजी कहती हैं—'जाओ बेटा, रामसे हमारा सन्देश कह देना कि हमारे-तुम्हारे प्रेमके समान सब लोगोंमें प्रेम तो रहे पर हम लोगोंके दुर्भाग्यके समान किसीका दुर्भाग्य न हो' ॥४१॥ राम कहते हैं—'हे लक्ष्मण! मुनियोंके वन, वृक्षोंके जंगल और पहाड़ोंकी कन्दराएँ तो हमने छान मारीं। अब स्वयं ही प्राण निकलकर उस सुन्दर नेत्रवाली सीताको ढूँढ़ें तो ढूँढ़ पा सकते हैं' ॥ ४२ ॥ भयंकर शोकरूपी अग्नि हमारे मर्मस्थलोंको काटे डाल रही है, शरीर सुखाए डाल रही है और हृदय जलाए डाल रही है ॥ ४३ ॥ कहाँ तो यह जटा बाँधकर जंगलोंमें रहना और कहाँ तुम्हारा यह सुन्दर शरीर! सचमुच ब्रह्माकी यह क्रिया तो ऐसी है जैसे कोई तलवार लेकर सिरसका फूल काटने चले ॥ ४४ ॥ हे पुत्र! तुम्हारा शीतल स्वभाव चन्दनके समान है और संसारमें तुम्हारा शास्त्रज्ञान प्रसिद्ध है फिर भी तुम अपने बूढ़े-माता-पिताको छोड़कर क्यों चले जा रहे हो ॥ ४५ ॥ राम कहते हैं—'जिसका मैंने बचपनसे ही पालन किया और प्रेमके कारण जिस प्यारी सीताको मैंने अपने हृदयसे कभी दूर नहीं किया, उसीको धोखा देकर मैं मृत्युके हाथमें उसी प्रकार दे रहा हूँ जैसे कोई अपनी पाली हुई चिड़िया किसी बहेलिएके हाथमें दे दे ॥४६॥ सिरसके फूलके समान कोमल सीताने अयोध्याके बाहर तीन चार पग चलकर ही पूछना प्रारंभ किया 'अभी कितनी दूर चलना है?' यह सुनते ही रामकी आँखोंमें पहले-पहल आँसुओंकी धारा फूट पड़ी ॥ ४७ ॥ जब सीताजी चलने लगीं तब उन्होंने अपनी सखीसे कहा—'हे सखी। इस चम्पकका विवाह इस लतासे कर देना। ओ हो! अभी तो मैंने इस खिलवाड़ी मृगको किसी हरिणीके हाथ देकर गृहस्थ भी नहीं बनाया।' इस प्रकार वन जाती हुई सीताने जो भर्राए गलेसे

सखि चम्पकस्य लतया सार्धं विवाहोऽनया नार्यं केलिमृगः ऽदाय हरिणीं हाहा गृहस्थः कृतः। एवम्प्रायमगादि गद्गदगिरा निर्गत्य यत्सीतया तेनाभूदभिभूय धैर्यमिह कः पुर्यां न पर्याकुलः ॥ ४८ ॥ सर्वेऽपि विस्मृतिपथं विषयाः प्रयाता विद्यापि खेदकलिता विमुखीवभूव। सा केवलं हरिणशावकलोचना मे नैवापयाति हृदयादधिदेवतेव ॥ ४९ ॥ साक्षान्मघवतः पौत्रः पुत्रो गाण्डीवधन्वनः। स्वस्रीयो वासुदेवस्य तं गृध्राः पर्युपासते ॥ ५० ॥ हत्वा पतिं नृपमवेत्य भुजङ्गदष्टं देशान्तरे विधिवशाद्गणिकास्मि जाता। पुत्रं पतिं समधिगम्य चितां प्रविष्टा शोचामि गोपगृहिणी कथमद्य तक्रम् ॥ ५१ ॥ हा मातस्त्वरितासि कुत्र किमिदं हा देवताः क्वाशिषो धिक्प्राणान्पतितोऽशनिर्हुतवहस्तेऽङ्गेषु दग्धे दृशौ। इत्थं घर्घरमध्यरुद्धकरुणाः पौराङ्गनानां गिरश्चित्रस्थानपि रोदयन्ति शतधा कुर्वन्ति भित्तीरपि ॥ ५२ ॥ हा वत्स क गतोऽसि देहि वचनं केनाधुना मद्गिरा भज्यन्तामतिदारुणाः फणिपुरद्वारार्गलाकोटयः। पौलस्त्योऽस्य न लङ्घते वचनमित्यागत्य पत्या समं पौलोमी क करोतु रावणरुषः शान्त्यर्थमभ्यर्थनम् ॥ ५३ ॥ हृद्यान्नापयातोऽसि दिक्षु सर्वासु दृश्यसे। वत्स राम गतोऽसीति सन्तापादनुमीयसे ॥ ५४ ॥ हे गोदावरि रम्यवारिरसिका पम्पे न दृष्टा त्वया सा सीता कमलानि वा हृतवती नूनं विनोदाय ते। इत्येतत्प्रतिपादपं प्रतिलतं प्रत्यापगं प्रत्यगं प्रत्येणं प्रतिवर्हिणं ततइतस्तां मैथिलीं पृच्छति ॥ ५५ ॥

हास्यरस : अङ्गुलिभङ्गविकल्पनविविधविवादप्रवृत्तपाण्डित्यः। जपचपलौष्ठः स जने ध्यानपरो नगररथ्यासु ॥ १ ॥ अत्तुं वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी तं च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजासिं-

---

बातें कही थीं उससे सारा धीरज जाता रहा और उसे सुनकर कौन इस अयोध्यामें व्याकुल नहीं है॥४८॥ इस समय सब बातें भूल गई हैं, यहाँतक कि परिश्रमसे पाई हुई विद्याने भी मुझसे मुख मोड़ लिया है। इस समय तो वह हरिणके बच्चेके समान आँखवाली नायिका ही मेरे हृदयसे देवताके समान नहीं हट रही है ॥४९॥ आह ! जो साक्षात् इन्द्रका पौत्र, अर्जुनका पुत्र और भगवान् वासुदेवका भानजा है, आज उसके भी चारों ओर गिद्ध मँडरा रहे हैं ॥ ५० ॥ किसी दही बेचनेवाली ग्वालिनका दही गिर गया। उस समय अन्य लोगोंके दुःख प्रकट करनेपर वह प्रसन्नताके साथ कह रही है—'मैंने अपने राजा पतिकी हत्या करके एक यतीके साथ निकल भागी। जब उस यतीको साँपने डँस लिया तो मैं भाग्यवश दूसरे देशमें वेश्या जा बनी। वहाँ अपने पुत्रको ही मैंने अपना पति बनाया और उस दोषको दूर करनेके लिये मैं चितापर जलने लगी। वहाँसे भी भागकर अब मैं एक अहीरकी रखेली हो गई हूँ। जिसने जीवनमें इतने उतार-चढ़ाव देखे हैं उसे इतनेसे मट्ठेके लिये भला क्या दुःख हो सकता है ॥ ५१ ॥ रानीके मरनेपर लोग विलाप कर रहे हैं—'हाय माता ! तुम कहाँ जानेकी उतावली कर रही हो ? कहो बात क्या हुई ? आज वे देवताओं तथा पूज्योंके आशीर्वाद कहाँ चले गए ? प्राण सचमुच व्यर्थ हैं जिनपर इतना बड़ा वज्रपात हुआ। आज तुम्हारे शरीरमें आग लगेगी ? आँखें भी जलेंगी ?' इस प्रकार फफक-फफककर भराए हुए कण्ठसे रोती हुई नर-नारियोंके विलापकी ध्वनि चित्रमें बने हुए व्यक्तियोंको भी रुलाए डाल रही है और भीतोंके टुकड़े-टुकड़े किए डाल रही है ॥५२॥ मेघनादके मरनेपर मन्दोदरी विलाप कर रही है—'हे बेटा ! तुम कहाँ चले गए ? तुम बोलो तो सही। अब कौन है जो मेरी बातपर पातालके अत्यन्त कठोर फाटकोंकी अर्गलाएँ भी तोड़ दे। अब अपने पतिके साथ वह इन्द्राणी भी आकर रावणके क्रोधकी शान्तिके लिये कहाँ अभ्यर्थना करेगी जो तुम्हारे पास इसलिये दौड़ी आती थी कि मेघनादकी बात रावण कभी नहीं टालता ॥५३॥ कौशल्याजी रामके वियोगमें कह रही हैं—'हे बेटा राम ! तुम मेरे हृदयसे भी नहीं गए हो और जिधर देखती हूँ उधर दिखाई भी दे रहे हो, इसलिये केवल सन्तापसे ही यह अनुमान होता है कि तुम चले गए हो' ॥ ५४ ॥ 'हे गोदावरी ! हे पम्पासर ! क्या तुमने सुन्दर जलसे प्रेम रखनेवाली उस सीताको नहीं देखा जो तुम्हारे विनोदके लिये तुम्हारे कमल ले आया करती थी ?' इस प्रकार प्रत्येक वृक्ष, लता, नदी, पर्वत, हरिण और मोरसे जानकीको पूछते हुए राम इधर-उधर घूम रहे थे ॥ ५५ ॥

हास्यरस : इस समय यह जो बार-बार उँगलियाँ नचाकर और अनेक प्रकारका वाद-विवाद करके अपनी पण्डिताई छाँटता हुआ मन्त्र जपनेका रूपक बनाकर ओठ हिला रहा है, यह वास्तवमें नगरकी गलियोंमें रहनेवाली किसी

द्वोऽपि नागाननम्। गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपालानलो निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपि हालाहलम् ॥ २ ॥ अधिकाराभिषेकेषु मृदङ्गवचनं शृणु। बद्धा दण्डहता रिक्ता भविष्यसि यथा वयम् ॥ ३ ॥ अभ्यस्तेऽपि हि नाम वस्तुनि चिरादज्ञानसम्भावनं शौचाशौचविवादिता विशकलस्मृत्यक्षरावर्त्तनम्। वारं वारमृणोपघातकथनं कोऽप्येष दम्भात्मनां प्रायो दग्धदुरीशवञ्चनविधौ जागर्त्यपूर्वः क्रमः ॥ ४ ॥ अभ्यस्य पवनविजयं व्याख्याय च शैवसंहिताः सकलाः। मरणसमये गुरूणां पदवदसवो विनिष्क्रान्ताः ॥ ५ ॥ अयं पटो मे पितुरङ्गभूषणं पितामहाद्यैरुपभुक्तयौवनः। अलङ्करिष्यत्यथ पुत्रपौत्रकान् मयाधुना पुष्पवदेव धार्यते ॥ ६ ॥ अर्थो नाम जनानां जीवितमखिलक्रियाकलापश्च। तं संहरन्ति धूर्ताश्छगलगला गायना लोके ॥ ७ ॥ अविदग्धः श्रमकठिनो दुर्लभयोषिद्युवा जडो विप्रः। अपमृत्युरुपक्रान्तः कामिव्याजेन मे रात्रौ ॥ ८ ॥ असारे खलु संसारे सारं श्वशुरमन्दिरम्। हरो हिमालये शेते हरिः शेते महोदधौ ॥ ९ ॥ आकुञ्च्य पाणिमशुचिं मम मूर्ध्नि वेश्या मन्त्राम्भसां प्रतिपदं पृषतैः पवित्रे। तारस्वरं प्रहितथूत्कमदात्प्रहारं हा हा हतोऽहमिति रोदिति विष्णुशर्मा ॥ १० ॥ आख्यायिकानुरागो व्रजति सदा पुण्यपुस्तकं श्रोतुम्। दष्ट इव कृष्णसर्पैः पलायते दानधर्मेभ्यः ॥ ११ ॥ आदौ वेश्या पुनर्दासी पश्चाद्भवति कुट्टिनी। सर्वोपायपरिक्षीणा वृद्धा नारी पतिव्रता ॥ १२ ॥ आपाण्डुरा शिरसिजास्त्रिवली कपोले दन्तावली विगलिता न च मे विषादः। एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य तातेति भाषणपराः खलु वज्रपातः

नायिकाके फेरमें पड़ा हुआ है ॥१॥ शङ्करजीने अपने घरमें जब यह उपद्रव देखा कि गणेशजीके चूहेको भूखा साँप निगल जानेको उतारू है, साँपको कार्तिकेयका मोर गड़पनेको तैयार बैठा है, हाथीके मुखवाले गणेशपर पार्वतीजीका सिंह भी दाँत गड़ाए है, पार्वतीजी भी गङ्गाजीसे खिंची रहती हैं और तीसरे नेत्रकी आग भी चन्द्रमासे दिन-रात कुढ़ती रहती है तो दुखी होकर वे हलाहल विष घूँट गए ॥२॥ जो लोग अधिकारके मदमें मतवाले रहते हैं उन्हें मृदङ्ग कहता है—'सुनो ! तुम लोग इतना अकड़ो मत, नहीं तो तुम भी वैसे ही बाँधे जाकर डण्डेसे पीटे जाओगे और खोखले कर दिए जाओगे जैसे हम किए गए हैं ॥ ३ ॥ अभ्यास की हुई बातोंके सम्बन्धमें भी यह सम्भावना सदा बनी ही रहती है कि थोड़े दिनोंमें वे स्मृतिसे उतर जायँगी। क्या पवित्र है, क्या अपवित्र है, इस सम्बन्धमें निरन्तर स्मृतिके अक्षरोंको घोखना पड़ेगा और बार-बार दम्भी लोगोंके अपघातकी बात कहनी पड़ेगी। इस प्रकार प्रायः इस जले दुरीशको ठगनेकी विधिमें यह विचित्र क्रम चलता ही रहेगा ॥४॥ पवन-विजय (योग) का अभ्यास कर लेनेपर और सारी शैव संहिताओंकी व्याख्या कर चुकनेपर भी मृत्युके समय गुरुके प्राण ऐसे निकल गए जैसे पाद निकल जाता है ॥५॥ कोई दरिद्र कह रहा है—'यही कपड़ा मेरे पिताजीके शरीरको शोभित करता रहा, इसी कपड़ेको हमारे दादा आदि भी काममें लाते रहे और यही कपड़ा हमारे पुत्रों और पौत्रोंको भी शोभित करेगा। इसीलिये मैं भी इस वस्त्रको फूलके समान धारण करता हूँ, इसे फटने नहीं देता ॥ ६ ॥ संसारमें बकरेके समान 'मैं-मैं' करनेवाले गवैए भी लोगोंका वह धन हर ले जाते हैं जो लोगोंको जीवन देता है ॥७॥ यह कामीके रूपमें रातको मेरी अपमृत्यु बनकर जो युवा ब्राह्मण यहाँ आया है यह इतना उजड्ड है कि न तो कुछ जानता ही है, न सीधे सीधे फँसने ही वाला है और न आजतक किसी स्त्रीके पाले पड़ा है ॥ ८ ॥ इस असार संसारमें ससुरके घर रहना ही सबसे बड़ा सुख है इसीलिये तो महादेवजी हिमालयमें डटे रहते हैं और विष्णुजी समुद्रमें लेट लगाए रहते हैं ॥९॥ 'जिस सिरपर बार-बार पड़ी हुई मन्त्रोंके जलकी बूँदोंने उसे पवित्र कर रक्खा था उसी सिरपर इस वेश्याने अपने अपवित्र हाथसे थप्पड़ भी जमा दिया और थूक भी दिया', यही सोच-सोचकर विष्णु शर्मा 'हाय हाय, मैं मरा' कह-कहकर चिल्ला-चिल्लाकर रो रहे हैं ॥१०॥ कहानी सुननेके लोभसे लोग धार्मिक ग्रन्थ सुननेके लिये चले तो जाते हैं किन्तु वहाँ जाकर जब दान और धर्मकी बातें सुनते हैं तो ऐसे भाग खड़े होते हैं जैसे काला नाग डसने आ पहुँचा हो ॥११॥ व्यभिचारिणी स्त्री पहले वेश्याका काम करती है, तरुणाई बीत जानेपर दासीका काम करने लगती है, फिर कुटनी बन जाती है और जब बुढ़ापेमें कोई वश नहीं चलता तब पतिव्रता बन बैठती है ॥ १२ ॥ मुझे बालोंके उजले होने, गालोंपर सिकुड़न पड़ने और दाँत गिरनेका कोई खेद नहीं है। मुझे यही बात वज्रपात-सी लगती है कि हरिणीके समान नेत्रोंवाली स्त्रियाँ मुझे मार्गमें 'बाबा' कह-कहकर पुकारती हैं ॥ १३ ॥ बाल श्वेत

॥१३॥ आपूर्यमाणपलितं सुभगत्वकामः सार्धं प्रयाति दयिता पलिताधिकेन। पुष्पेक्षणत्वमपि शश्वदपोह्य सार्क याति प्रियो निकटमेव विलोचनेन ॥ १४ ॥ आमन्त्रणजयशब्दैः प्रतिपदहुङ्कारघर्घराराबैः। स्वयमुक्तसाधुवादैरन्तरयति गायनो गीतम् ॥१५॥ उत्तिष्ठति नमति वणिक्पृच्छति कुशलं ददाति च स्थानम्। निक्षेपपाणिमार्त दृष्ट्वा धर्म्याः कथाः कुरुते ॥ १६ ॥ उदरद्वयभरणभयादर्धाङ्गाहितदारः। यदि नैवं तस्य सुतः कथमद्यापि कुमारः ॥ १७ ॥ उपभुक्तखदिरवीटकजनिताधररागभङ्गभयात्। पितरि मृतेऽपि हि वेश्या रोदिति हा तात तातेति ॥१८॥ रूक्षो दृष्टिरसुलक्षणं विहसितं मन्दं परिस्पन्दितं द्वेषो नर्मणि दूरतीर्थगमने यत्नो रतिर्लिङ्गिषु। यस्यास्त्यक्तसुखस्पृहं किल वपुः पीनालपलम्बस्तनी सक्षोरा विटचेटकैकमहिषी रण्डा शिवायास्तु वः ॥ १९ ॥ एका भार्या प्रकृतिमुखरा चञ्चला च द्वितीया पुत्रस्त्वेको भुवनविजयी मन्मथो दुर्निवारः। शेषः शय्या शयनमुदधौ वाहनं पन्नगारिः स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः ॥ २० ॥ कटी मुष्टिग्राह्या द्विपुरुषभुजग्राह्यमुदरं स्तनौ घण्टालोलौ जघनमधिगन्तुं व्यवसितौ। स्मितं भेरीनादो मुखमपि च यत्तद्भयकरं तथाप्येषा रण्डा परिभवति सन्तापयति च ॥ २१ ॥ कन्थां वहसि दुर्बुद्धे गर्दभैरपि दुर्वहाम्। शिखायज्ञोपवीताभ्यां भारः कस्ते भविष्यति ॥ २२ ॥ कमले कमला शेते हरः शेते हिमालये। क्षीराब्धौ च हरिः शेते मन्ये मत्कुणशङ्कया ॥ २३ ॥ करकजलपूतभूतलनिहितपदो विहितविकृतहुङ्कारः। अपि वितथमन्त्रगणनाव्यग्रसमग्राङ्गुलोपर्वा ॥ २४ ॥ कलमाग्रनिर्गतमषीबिन्दुव्याजेन साञ्जनाश्रुकणैः। कायस्थलुण्ठ्यमाना रोदिति खिन्नेव राज्यश्रीः ॥ २५ ॥ कांश्चिच्चाटुवचःशतैर्निजसु-

---

होनेसे तो शोभा बढ़ ही गई थी, पर साथ ही पके बालोंवाली बुढ़िया पत्नी भी चली जा रही है और आँखमें फूला भी बढ़ता जा रहा है ॥१४॥ सम्बोधन तथा जयकारोंसे पद-पदपर हुङ्कार तथा घरघराते हुए शब्दसे स्वयं बोली हुई वाह-वाहकी ध्वनिसे गवैए लोग गीतको एकदम दबा डालते हैं ॥१५॥ ठगको देखकर बनिया उठता है, झुकता है, कुशल पूछता है, स्थान देता है और बड़ी धर्मकी बातें करता है ॥१६॥ शङ्करजीने जब देखा कि दो पेट पालना दूभर है तो अपनी स्त्रीको अपने आधे अङ्गमें समेट लिया, यदि ऐसा न होता तो उनके पुत्र आजतक क्वाँरे क्यों बैठे रहते ॥१७॥ अपने पिताके मरनेपर वह वेश्या अपने ओठपर लगी हुई खैर और पानकी लाली छूटनेके भयसे 'हा पिता' कहनेके बदले 'हा तात, हा तात' कह-कहकर रो रही है कि कहीं 'पिता' कहनेसे ओठ न सट जायँ और ओठोंकी लाली न छूट जाय ॥ १८ ॥ वह रण्डा आप लोगोंका कल्याण करे जिसकी आँखें सोंरी हैं, हँसना रूखा है, चलना-फिरना दूभर है, बात-बातमें झुँझलाई जाती है, दूर तीर्थमें जानेके लिये प्रयत्नशील रहती है, साधुओंसे प्रेम रखती है, सुखकी सब इच्छाएँ मिटा चुकी है, शरीर मोटा है, स्तन लटक गए हैं और विट और-चेट भी जिसे दिन-रात घेरे रहते हैं ॥ १९ ॥ घरमें दो पत्नियाँ हैं जिनमेंसे एक तो बकवादी है और दूसरी चञ्चल है। एक जो भुवनविजयी पुत्र है भी वह कहनेमें नहीं है। सोनेके लिये शय्या भी है तो वह समुद्रमें सर्पपर है। चढ़नेके लिये सवारी भी है तो गरुड पक्षीकी है। इस प्रकार अपने घरकी अटपट दशा देखकर भगवान् विष्णु काठ बनकर रह गए ॥ २० ॥ देखो तो सही—इस राँड़की कमर इतनी पतली कि मुट्ठीमें समा जाय, पेट इतना मोटा कि दो पुरुषोंकी भुजाओंमें कहीं समा पावे। घण्टेके समान झूलते हुए स्तन इतने लम्बे कि पेढ़ूतक लटक आते हैं। हँसी भी ऐसी कनफोड़ कि नगाड़ेके समान गूँजे और मुख भी देखनेमें बड़ा भयङ्कर है, फिर भी यह हमारा अपमान करती और हमें दुःख देती ही चली जा रही है ॥ २१ ॥ अरे मूर्ख! गुदड़ी तो इतनी भारी सिरपर ढो रहा है कि गधेसे भी न सँभाली जाय, फिर चोटी और जनेऊ तेरे लिये कैसे बोझ बन गए ॥ २२ ॥ अब हमारी समझमें आया कि बस खटमलके डरके मारे ही कमलमें लक्ष्मी, हिमालयमें शङ्कर और क्षीरसागरमें विष्णु जा-जाकर सोते हैं ॥ २३ ॥ एक कुटनी किसी वेश्याको आए हुए कामीका परिचय दे रही है—अरी! यह वही तो है जो करवेके जलसे धोकर धरतीपर पैर रखता है, पाठ-पूजामें चिल्लाकर हुँः हुँः करता है और झूठे ही अपनी उँगलियोंकी पोरपर मन्त्र जपनेका ढोंग किया करता है ॥ २४ ॥ कलमकी जीभसे निकलती हुई स्याहीकी बूँदें ऐसी जान पड़ती हैं मानो राज्य-लक्ष्मी अपने काजल-मिले आँसू बहाती हुई दुखी-सी होकर रोती हुई कह रही है कि हाय! मुझे कायस्थोंने लूट लिया ॥ २५ ॥ कुटनियाँ इन मूर्ख लोगोंमेंसे किन्हींको अपनी

लाप्रेमातिरेकैः परानन्यान्वक्रवाक्यैर्धनवतः प्राप्य गेहं निजम् । प्राग्दत्तग्रहणप्रगल्भकितवव्याजादवष्टभ्य तान् कुट्टिन्यः स्फुटमप्रगल्भचरितानेतान्निहन्तुं क्षमाः ॥ २६ ॥ कार्पासकोशोज्ज्वलकेशसञ्चया पयोधरालिङ्गितमन्मथालया । गल्लौ जरद्वल्लकसन्निभावुभौ तथापि रण्डा सुरतं न मुञ्चति ॥ २७ ॥ कृषीवलानां भुवि कालवर्षादकालवर्षाद्भिषजां प्रमोदः । सस्यप्रवृद्धिं कुरुते हि पूर्वः प्रजासु रोगप्रचयं द्वितीयः ॥ २८ ॥ केशलुञ्चनसाम्येऽपि हन्त पश्यैतदन्तरम् । उपस्थाः कीटमश्नन्ति घृतभक्तं दिगम्बराः ॥ २९ ॥ कोशं कुशेशय विकासय संश्रितालौ प्रीतिं कुरुष्व यदसौ दिवसस्तवास्ते । दोषागमे निबिडराजकरप्रपातदुःस्थे समेष्यति पुनस्तव कः समीपम् ॥ ३० ॥ क्रयविक्रयकूटतुलालाघवनिक्षेपरक्षणव्याजैः । एते हि दिवसचौरा मुष्णन्ति महाजनं वणिजः ॥३१॥ खट्वा नितान्तलघुका शिथिलप्रताना द्वेष्यः पतिः स च निरन्तरचाटुकारी । तत्रापि दैवहतिकाः खलु माघरात्र्यो हा सह्यतां कथमयं व्यसनप्रपञ्चः ॥ ३२ ॥ गणयति गगने गणकश्चन्द्रेण समागमं विशाखायाः । विविधभुजंगक्रीडासक्तां गृहिणीं न जानाति ॥३३॥ गताः केचित्प्रबोधाय स्वयं तं कुम्भकर्णकम् । तदधःपवनोत्सर्गादुड्डीय पतिताः क्वचित् ॥ ३४ ॥ गत्वा द्वारवतीं नयामि दिवसानाराधयन्तो हरिं त्यक्त्वा चानशनेन जीवितमिदं मुञ्चामि भागीरथीम् । प्रातः प्रातरिति प्रवर्तितकथा निर्वेदमातन्वती रण्डा नक्तमनन्तजारसुरतप्रीता सुखायास्तु वः ॥ ३५ ॥ गौरी तनुर्नयनमायतमुन्नता च नासा कृशा कटितटी च पटी विचित्रा । अङ्गानि रोमरहितानि सुखाय भर्तुः पुच्छं न तुच्छमिति कुत्र समस्तवस्तु ॥३६॥ कन्याः कदाचन कदाचन पण्यनार्यः कन्याः कदाचन कदाचन चण्डरण्डाः । इत्थं चिरं विहरतोऽपि सखे परस्त्रीवाञ्छारसे न परितृप्यति चान्तरात्मा ॥ ३७ ॥ जग्ध्वा

पुत्री वेश्याके प्रेमकी बातें सुना-सुनाकर और कुछ धनवानोंको पुकार-पुकारकर अपने घरमें ले जाती हैं और अनेक प्रकारके छल-कपटसे उनका सब कुछ लूटकर उन्हें बेकाम कर देती हैं ॥ २६ ॥ कपासकी ढोंढ़ीके समान जिसके बाल श्वेत हो गए हैं, पेड़ूतक जिसके स्तन लटक आए हैं, और गाल पके हुए छुहारे जैसे हो गए हैं वह रण्डा फिर भी सुरत करना नहीं छोड़ती ॥ २७ ॥ किसानोंको समयपर वर्षा होनेसे और वैद्योंको अकाल-वर्षासे प्रसन्नता होती है क्योंकि समयपर वर्षा होनेसे तो धान बढ़ता है और अकाल-वर्षा होनेसे जनतामें रोग बढ़ते हैं ॥२८॥ यद्यपि उपस्थ (लिंग, योनि) और नंगे जैन साधु दोनोंके बाल उखाड़े जाते हैं पर भेद इतना ही है कि उपस्थ तो गंदी वस्तुका उपभोग करते हैं और दिगंबर साधु घी-भातपर हाथ मारते हैं ॥ २९ ॥ अरे कमल! इस समय जब कि भौंरे मँडरा रहे हैं, तू अपना कोश विकसित करके उनसे प्रेम कर ले क्योंकि यह तेरा समय है, नहीं तो रातके आने और अन्धकारके घिर जानेपर कौन तेरे पास आवेगा ॥ ३० ॥ मोल लेने, बेचने, चतुराईसे डण्डी मारने और धरोहर रखने आदि अनेक रूपोंसे ये बनिए प्रत्येक सज्जनको दिन-दहाड़े लूटते रहते हैं ॥ ३१ ॥ बड़ी नन्हीं-सी तो खाट है, बिनावट भी बड़ी ढीली हो गई है, प्रेम न होनेपर भी पति निरन्तर लल्लो-चप्पो करता ही रहता है, उसपर भी ये माघकी रातें और भी जी खाए लेती हैं। बताइए इतनी विपत्तियाँ कैसे सही जायँ ॥ ३२ ॥ वह ज्योतिषी आकाशमें विशाखा और चन्द्रमाके समागमपर तो बैठा विचार किया करता है पर अनेक कामियोंके साथ रसरंग करनेवाली अपनी स्त्रीकी ओर नहीं देखता ॥३३॥ कुछ लोग स्वयं कुंभकर्णको जगानेके लिये गए तो सही किन्तु उसके अपानवायुके झोंकेसे ऐसे उड़े कि इधर-उधर जा गिरे ॥३४॥ वह रण्डा आप लोगोंको सुख दे जो प्रतिदिन प्रातःकाल यह वैराग्य दिखाती है कि मैं द्वारिकापुरीमें जाकर भगवान् कृष्णकी सेवा करती हुई दिन काटूँगी या उपवास करके और गंगाजीमें कूदकर अपना जीवन समाप्त कर दूँगी, तथा रातके समय अनेक जारोंके साथ रमणका आनन्द भी लेती है ॥३५॥ गोरा रङ्ग, बड़ी-बड़ी आँखें, ऊँची नाक, पतली कमर, छबीली साड़ी, चिकना शरीर ये सब बातें तो पतिको सुख देती हैं किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि छोटी-सी पूँछके बिना इन बातोंका होना किसी कामका है या नहीं ॥३६॥ हे मित्र! बहुत-सी छोकरियोंसे, वेश्याओंसे और प्रचंड राँडोंसे बहुत दिनों तक विहार कर चुकनेपर भी हमारा अन्तरात्मा परस्त्री-भोगके रससे तृप्त नहीं हो पाता ॥ ३७ ॥ किसी मठधारी साधुने उड़दके बड़े खाकर पेट फूल जानेसे ऐसा फट-फट अपानवायु छोड़ा कि चिड़ियाँ उड़ गईं, घड़े फूट गए, भीतें टूट गईं, चेले

मापमयानपूपवटकानाध्मायमानोदरे फट्फट्फाडिति पायवीयपवनं योगेश्वरे मुञ्चति। उड्डीनं विहगैर्घटैर्विघटितं दोलायितं भित्तिभिः शिष्यैर्धावितमर्भकैर्निपतितं कोलाहलोऽभून्मठे ॥३८॥ जिह्वायाश्छेदनं नास्ति न तालुपतनाद्भयम्। निर्विशेषेण वक्तव्यं निर्लज्जः को न पण्डितः॥ ३९॥ तमसि वराकश्चौरो हाहाकारेण याति संत्रस्तः। गायनचौरः कपटो हा हा कृत्वा न याति लक्ष्यं च॥ ४०॥ तल्पे नितम्बतलमात्रनिरस्तवस्त्रां सङ्गत्य धृष्टवनितां हतकामवेगः। निर्वृत्यमन्ध इव मन्मथजं समग्रं लज्जानतो भवनतः सपदि व्यपैति॥ ४१॥ तस्मान्महीपतीनामसम्भवे दस्युचौराणाम्। एकः सुवर्णकारो निग्राह्यः सर्वथा नित्यम्॥ ४२॥ दत्त्वा दिशि दिशि दृष्टिं याचकचकितोऽवगुण्ठनं कृत्वा। चौर इव कुटिलचारी पलायते कुटिलरथ्याभिः॥ ४३॥ दुर्दर्शैः कृपणैः पणो यदि भवेद्बाला बलाद्भुज्यते कन्दर्पप्रतिमोऽपि हन्त तरुणो निष्कास्यते निर्धनः। आस्ते लोहमयार्गलेव भवनद्वारे चिरं जाग्रतोर्यूनोर्भाग्यविपर्ययेण जरती नाद्यापि मृत्युं गता॥ ४४॥ द्विजराजशेखरो यद्वृषभारूढः सदा सदारस्त्वम्। चक्रे हर तद्विधिना पुनरुपनयनं ललाटघटितं ते॥ ४५॥ धत्ते वक्षसि कौस्तुभोपलमयं मत्वा श्रियः सोदरं तद्धामीगृहमाकलय्य मकरावासं मनाङ्नोज्झति। तन्नामप्रणयान्न लुम्पति हरिः श्रीवत्समङ्के स्थितं किं केन क्रियतां स एव यदभूदेतादृशः स्त्रीवशः॥ ४६॥ धान्याकनागरनिशार्द्रकदाडिमत्वक्कुस्तुम्बरीलवणतैलसुसंस्कृतान्नः। मत्स्यान्सुशीतसितभक्तले ददाति स ब्रह्मलोकमधिगच्छति पुण्यकर्मा॥ ४७॥ न विद्या न च वक्तृत्वं नैषा काऽपि विदग्धता। तथापि धत्ते पात्रत्वमप्रतिग्रहभावना॥ ४८॥ नाहं स्वर्गफलोपभोगतृषितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया सन्तुष्टस्तृणभक्षणेन सततं साधो न युक्तं तव। स्वर्गं यान्ति यदि त्वया विनि-

---

भाग चले, बच्चे भहरा पड़े और मठमें इसी प्रकारका हड़कम्प मच गया॥ ३८॥ कुछ भी कह देनेसे न जीभ कटेगी, न तालू गिरेगा इसलिये बिना सोचे-समझे जो मनमें आवे वह कह डालना चाहिए क्योंकि निर्लज्ज बनकर ही लोग पण्डित बन पाते हैं॥ ३९॥ अँधेरेमें लोगोंके हा-हा करनेपर बेचारा चोर डरकर भाग खड़ा होता है पर ये धूर्त गवैए चोर जो स्वयं हा-हा करते रहते हैं इनकी चोरी कोई पकड़ नहीं पाता॥ ४०॥ बिस्तरपर केवल नितम्बतक ही धोती सरकानेवाली ढीठ स्त्रीसे रमण करके कामका सारा वेग नष्ट हो चुकनेपर यह कामी अन्धेकी भाँति तत्काल लाजसे सिर झुकाए अपने घर चला जा रहा है॥ ४१॥ राज्यमें डाकू और चोर न भी रहें तो सब प्रकारके दण्ड केवल सुनारोंको ही राजा लोग दे सकते हैं॥ ४२॥ भिखारीकी प्रार्थनासे डरा हुआ यह मनुष्य चारों ओरसे आँखें बचाता और अपना मुँह ढकता हुआ चोरके समान चक्करदार गलियोंमें होता हुआ वेगसे चला जा रहा है॥ ४३॥ जिसके पास पैसा हो वह यदि कुरूप भी हो तो नवेलीको पैसेके बलपर भोग सकता है और यदि कोई कामदेवके समान सुन्दर तरुण भी हो पर निर्धन हो तो वह घरसे निकाल दिया जाता है। एक दूसरेसे मिलनेके लिये देरतक जागते हुए चाहभरे दोनों जवानोंके भाग्यके फेरसे घरके द्वारपर लोहेकी सिक्कड़ बनकर जमी हुई यह बुढ़िया मरती भी नहीं॥ ४४॥ हे शंकरजी! मस्तकपर चन्द्रमा, सदा बैलकी सवारी और स्त्रीके साथ रहना ये तीन गुण देखकर ही ब्रह्माने आपके मस्तकमें तीसरा नेत्र भी बना डाला है॥ ४५॥ कौस्तुभ मणिरूपी पत्थरको लक्ष्मीका भाई समझकर ही भगवान् विष्णु अपनी छातीसे लगाए रहते हैं, लक्ष्मीका जन्मस्थान समझकर समुद्रको एक क्षणके लिये भी छोड़ना नहीं चाहते, लक्ष्मीके नामसे प्रेम होनेके कारण उनके नामवाले श्रीवत्स चिह्नको भी कभी छातीसे नहीं हटाते! बताइए, जब स्वयं विष्णु भगवान् ही सदा स्त्रीके फेरमें पड़े रहते हैं तब औरोंका तो कहना ही क्या॥ ४६॥ धनियाँ, सोंठ, हल्दी, अदरक, अनारका छिलका, कुस्तुम्बरी, नमक और तेलमें पकाई हुई मछलियाँ जो मुझे ठण्डे उजले भातके साथ देता है वह पुण्यात्मा ब्रह्मलोकको जाता है॥ ४७॥ न विद्या है, न बोलनेकी कला आती है, न और ही कोई गुण है फिर भी वह किसीसे कुछ लेता नहीं है इसीसे उसका आदर हो रहा है॥ ४८॥ एक बकरा किसी यज्ञ करनेवालेसे कह रहा है—'हे साधु! तुम मुझे क्यों मारे डाल रहे हो? न तो मुझे यज्ञपशु बनकर स्वर्ग जानेकी इच्छा है, न मैंने इसके लिये तुमसे प्रार्थना ही की है। मैं तो केवल घास-पात खाकर ही सन्तुष्ट हुआ पड़ा रहता हूँ। यदि सचमुच तुम्हारे हाथसे मारे जानेपर प्राणी स्वर्ग पहुँच जाते हों तो तुम अपने माता, पिता, पुत्र

हता यज्ञे यदि प्राणिनो यज्ञं किं न करोषि मातृपितृभिः पुत्रैः सदा बान्धवैः ॥ ४९ ॥ परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे मा प्राणेषु दयां कुरु। दुर्लभानि परान्नानि प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥ ५० ॥ पाणौ ताम्रघटी कुशः करतले धौते सिते वाससी भाले मृत्तिलकः सचन्दनरसो न्यस्तैकपुष्पं शिरः। दूरात्क्षिप्रपदा गतिर्दृढतरव्याश्लिष्टदन्ता गिरः सोऽयं वञ्चयितुं जगद्भगवतो दम्भस्य देहक्रमः ॥ ५१ ॥ पीठीप्रक्षालनेन क्षितिपतिकथया सज्जनानां प्रवादैर्नीत्वा यामार्धमेवं कुशकुसुमसमारम्भणव्यग्रहस्ताः। पश्चादेते निमज्जत्पुरयुवतिकुचाभोगदत्तेक्षणार्धाः प्राणायामापदेशादिह सरिति सदा वासराणि क्षिपन्ति ॥ ५२ ॥ पूर्वं चेटी ततो बेटी पश्चाद्भवति कुट्टिनी। सर्वोपायपरिक्षीणा वृद्धा वेश्या तपस्विनी ॥ ५३ ॥ प्रथमं स्ववित्तमखिलं कनकार्थी भस्मसात् स्वयं कुरुते। पश्चात्स्वधनादधिकं विनाशयति वञ्चनानिपुणः ॥ ५४ ॥ प्रेमद्रुमोद्दलनतीक्ष्णकुठारधारा रूक्षाक्षिवीक्षणवरूक्षणचित्तवृत्तिः। नार्द्रीभवन्मरुधरेव महाप्रबन्धैर्वज्रं पिनष्टि कठिनं खलु कुट्टनी सा ॥५५॥ बिलाद्बहिर्बिलस्यान्तःस्थितमार्जारसर्पयोः। मध्ये चाखुरिवाभाति पत्नीद्वययुतो नरः ॥ ५६ ॥ भक्ते द्वेषो जडे प्रीतिः प्रवृत्तिर्गुरुलङ्घने। मुखे कटुकता नित्यं धनिनां ज्वरिणामिव ॥ ५७ ॥ भगदत्तप्रभावाढ्या कर्णशल्योत्कटस्वना। सेनेव कुरुराजस्य कुट्टनी किन्तु निष्कृपा ॥ ५८ ॥ भस्माङ्गुलिर्बकोड्डायी बालशौची तथा हिहिः। धारावर्ती चक्रवर्ती षडेते पुरुषाधमाः ॥ ५९ ॥ भार्यायै पतिदेवतापरगतिं शंसत्यसत्यै पुमान् कश्चित्तां नियमैर्नियन्तुमपटुः कोपेन संन्यस्यति। अन्यो गच्छति जाह्नवीमथ परो राजानमप्यावयोर्वंशं दूषय नेति भोः कथय मे कस्तेषु मानोन्नतः ॥ ६० ॥ भृकुटीकुटिलललाटः कण्टकिताङ्गः

और बान्धवोंकी ही यज्ञमें बलि क्यों नहीं दे डालते ? ॥४९॥ अरे मूर्ख! दूसरेका अन्न मिले तो अपने प्राणोंपर दया नहीं करनी चाहिए क्योंकि प्राण तो प्रत्येक जन्ममें मिल जाते हैं किन्तु पराया अन्न कहाँ मिल पाता है ॥ ५० ॥ जिस मनुष्यके एक हाथमें ताँबेका घड़ा, दूसरेमें कुशा, शरीरपर उजले धुले हुए वस्त्र, माथेपर चन्दन मिली हुई मिट्टीका तिलक और सिरपर एक फूल रक्खा हो और वह हड़बड़ीसे दूरसे पैर उठा-उठाकर चला आ रहा हो तथा दाँत सटाकर बातें करता हो तो समझ लेना चाहिए कि संसारको चकमा देनेके लिये साक्षात् भगवान् ही कपट-शरीर धारण किए चले आ रहे हैं ॥ ५१ ॥ ये महात्मा आधा दिन तो देवासन धोने, राजाकी चापलूसी करने और सज्जनोंकी निन्दामें बिताते हैं, फिर कुछ समयतक ये कुशा तथा फूल सजाते हैं और इसके पश्चात् प्राणायाम करनेके बहाने वहाँ स्नान करनेवाली स्त्रियोंके स्तनोंपर आँख गड़ाए नदीके तीरपर अपना दिन बिता देते हैं ॥ ५२ ॥ वेश्या अपने बचपनमें दासीका, फिर सबकी स्त्रीका और बुढ़ापेमें कुटनीका काम करती है। अन्तमें जब कोई उपाय नहीं बच रहता तब तपस्विनी बन बैठती है ॥५३॥ पहले तो स्वर्णकी चाह करनेवाला व्यक्ति अपना सारा धन स्वयं फूँक देता है और फिर धूर्ततामें निपुण होकर अपने धनसे अधिक खो डालता है ॥५४॥ प्रेमरूपी वृक्षको काटनेमें पैने कुल्हाड़ेकी धारके समान, जिसकी रूखी आँखोंसे देखनेमें चित्तवृत्ति रूखी जान पड़ती है वह कभी न पसीज सकनेवाली मरुभूमिके समान कुटनी अपनी बड़ी-बड़ी बातोंसे वज्रको भी पीस डालती है ॥ ५५ ॥ दो स्त्रियोंवाला मनुष्य बिलके मुँहपर बैठे हुए उस चूहेके समान होता है जिसके लिये बाहर बिल्ली और भीतर साँप बैठा हो ॥५६॥ भक्त (भात) से द्वेष, मूर्ख (जल) से प्रेम, बड़ोंकी बात न मानने (अधिक लंघन करने) की बान और मुँहमें सदा कड़वापन ये बातें धनिकोंमें वैसी ही पाई जाती हैं जैसी ज्वरसे पीड़ित व्यक्तिमें पाई जाती हैं ॥ ५७ ॥ योनिके लोभका प्रभाव देनेवाली (पहले भगदत्तके प्रभाववाली) कानोंमें भालेके समान कठोर रूपसे चिल्लाकर बोलनेवाली (कर्ण और शल्यके समान भयंकर शब्द करनेवाली) यह कुटनी भी कौरवोंकी सेनाके समान निर्दयी (कृपाचार्यसे रहित) है ॥ ५८ ॥ ये छह व्यक्ति अधम होते हैं—उँगलीमें भस्म रमानेवाला, बगुले उड़ानेवाला, बालशौची, ही-ही करके हँसनेवाला, धारावर्त्ती और चक्रवर्ती ॥ ५९ ॥ कोई तो अपनी दुष्टा स्त्रीको पातिव्रत्यका उपदेश देता है, कोई व्यक्ति जो अपनी पत्नीको नियमसे नहीं चला सकता वह उसे क्रोधसे ठीक रखता है, तीसरा गंगाजीमें जा डूबता है, चौथा राजाके पास निपटारेके लिये पहुँचता है और कहता है कि हमारा वंश न बिगाड़ो। बताओ, इनमें किसकी नाक रह गई ॥६०॥ टेढ़े मस्तकपर टेढ़ी भौंहें, शरीरपर रोंगटे और घूमती हुई बड़ी-बड़ी आँखें लिए वह क्रोधी ब्राह्मण बड़े-बड़े कवल उठा-

कटाक्षविकटाक्षः । कवलयति पृथुलकवलैस्तण्डुलमचलं द्विजः क्रुद्धः ॥ ६१ ॥ भ्रातस्तर्क कदर्थितोऽसि कविते याताऽसि दीनां दशां मीमांसे सखि वञ्चितासि सुहृदो वेदाः कुतः शर्म वः । धूर्तैर्निस्पृहतामिषेण भवतामाधाय मौलौ पदं हत्वा वित्तवतां धनानि सुचिरं साम्राज्यमातन्यते ॥ ६२ ॥ मर्कटमुखि मरिचस्तनि मुरजोदरि मुष्टिमेयकटिदेशे । मार्जारशावनयने स्मरामि कान्ते तवाङ्गानि ॥ ६३ ॥ मातस्तातस्य मौलौ निवसति किमिदं पुत्र शीतांशुलेखा फाले किं नेत्रमेतज्ज्वलितशिखिशिखं किं गले कालकूटः । नाभेर्मूले किमेतत्तदिति तनयजां भारतीं श्रावयित्वा तिर्यग्व्यामीलिताक्षी करपिहितमुखी पार्वती वः पुनातु ॥ ६४ ॥ मुण्डो जटिलो नग्नश्छत्री दण्डी कषायचीरी वा । भस्मस्मेरशरीरो दिशि दिशि भोगो विजृम्भते दम्भः ॥ ६५ ॥ मेरुः स्थितोऽतिदूरे मनुष्यभूमिं परां परित्यज्य । भीतो भयेन चौर्याद्घोराणां हेमकाराणाम् ॥ ६६ ॥ यत्नोत्थापनमात्रनिःसहजरच्चर्मावशेषश्लथभ्रश्यच्छेफसिदुर्बलाङ्गचलनव्यर्थीयमालिङ्गने । लज्जाधायिनि खिद्यमानयुवतौ वृद्धस्य कृच्छ्रे रते यत्स्यात्तत्प्रतिभाव्य किं तु हसितुं युक्तं किमारोदितुम् ॥ ६७ ॥ यदक्षिभ्रूलतापाङ्गैः स्त्रियः कुर्वन्ति चापलम् । जघनेष्वेव तत्सर्वं पतत्यनपराधिषु ॥ ६८ ॥ यस्मिन्नास्ति कचग्रहव्यतिकरो यस्मिन्न पीनस्तनद्वन्द्वाश्लेषरसो न यत्र करजैरुच्चावचाः केलयः । प्रत्यङ्गं न च यत्र चुम्बनविधिर्नो यत्र कण्ठध्वनिः तत्पुंसः कुलगेहिनीरतमिति स्पष्टो हि विष्टिक्रमः ॥ ६९ ॥ रण्डा पीनपयोधराकृत मया चण्डानुरागाद्भुजं दोर्दण्डद्वयपीवरस्तनभरं नो गाढमालिङ्गिता । बुद्धेभ्यः शतशः शपे यदि पुनः कुत्रापि कापालिनीपीनोत्तुङ्गकुचावपीडनभरः प्राप्तः प्रबोधोदयः ॥ ७० ॥ रे रे लोकाः कुरुध्वं श्रवणपुटपिधानं द्रुतं हस्तयुग्मैः शैलाः सर्वेऽपि यूयं भवत गुरुतराः सावधाना धरित्र्याम् । शीघ्रं रे रावण त्वं

कर सामने पहाड़के समान परोसा हुआ भात भकोसे चला जा रहा है ॥ ६१ ॥ हे भाई तर्क ! तुम व्यर्थ हो । हे कविते ! तुम्हारी भी बड़ी दुर्गति हो चली है । हे सखि मीमांसा ! तुम्हें भी धोखा हो गया है । हे मित्र वेदो ! अब तुम्हारा भी कोई गुण नहीं रहा क्योंकि धूर्तोंने निःस्पृहताका ढोंग रचकर तुम्हारे सिरपर अपने पैर रखकर धनवानोंका धन लूट-लूटकर अपना साम्राज्य बना लिया है ॥ ६२ ॥ बन्दर जैसे मुखवाली, मिर्चके समान स्तनवाली, मुरजके समान पेटवाली, मुट्ठी भर कमरवाली, बिल्ली के बच्चे जैसी आँखोंवाली हे सुंदरी ! मैं सदा तुम्हारे अंगोंका स्मरण करता रहता हूँ ॥ ६३ ॥ गणेशजी पार्वतीसे पूछते हैं—'क्यों माँ ! यह पिताजीके सिरपर क्या है ? पार्वतीजी : यह चन्द्रमाकी लेखा है । गणेश : मस्तकपर क्या है ? पार्वती : जलती हुई आगकी लपटोंसे भरा नेत्र है । गणेश : गलेमें क्या है ? पार्वती : कालकूट । गणेश : और नाभिसे नीचे यह क्या लटक रहा है ? पुत्रकी यह बात सुनकर और तिरछी आँखें करके मुँह ढकती हुई पार्वतीजी आपको पवित्र करें ॥ ६४ ॥ केवल पाखण्डी लोग ही अनेक प्रकारका भोग पानेकी इच्छासे सिर मुड़ाकर या जटा रखकर, नंगे होकर, छाता या दण्डा लेकर, गेरुआ वस्त्र पहनकर और शरीरपर भस्म रमाकर इधर-उधर घूमते-फिरते हैं ॥ ६५ ॥ इन भयंकर सुनारोंकी चोरीके डरसे डरकर ही सुमेरु पर्वतको पृथ्वीतल छोड़कर बहुत दूर जाकर बसना पड़ा है ॥ ६६ ॥ प्रयत्नसे उठानेपर भी जो दुर्बल, पुरानी तथा झूलते हुए चमड़ेवाली इन्द्रिय ढीली पड़कर गिर जाती है, जिसके दुर्बल अंगोंसे आलिंगन करना भी कठिन होता है, जिसे देखके भी लज्जा आती है और जिसे देख-देखकर तरुणी दुखी हुई जाती है उस मरकट बूढ़ेसे सुरत करनेकी बातका स्मरण करके बताइए हँसना चाहिए या रोना ॥ ६७ ॥ ढिठाई तो करती हैं स्त्रियोंकी आँखें, भौंहें तथा नेत्रके कोर, पर इनके अपराधका सारा फल भोगना पड़ता है बेचारी निरपराध योनिको ॥ ६८ ॥ घरकी पत्नीके साथकी जिस रतिक्रीड़ामें न केश ही पकड़े जा सकते हैं, न मोटे स्तन ही छातीसे लगानेका रस मिलता है, न उँगलियों (नखों) के ही हाव-भाव (क्रीड़ा) होते हैं, न अंग-प्रत्यङ्गका चुम्बन हो पाता, न खुले गलेसे ध्वनि ही निकल पाती है, वह रति-क्रीड़ा है कि पुरुषके लिये साक्षात् भद्दा है ॥ ६९ ॥ मैंने किसी मोटे स्तनवाली रण्डाको अपनी भुजाओंमें कभी नहीं लगाया, बड़े-बड़े स्तनोंके बोझसे बोझीली भुजाओंसे प्रबल प्रेममें भरकर कभी आलिंगन नहीं किया । मैं बुद्धोंकी सौगन्ध खाता हूँ जो कहीं भी मुझे किसी कापालिनीके मोटे ऊँचे स्तनोंको कसकर दबानेके आनन्दका ज्ञान प्राप्त हुआ हो ॥ ७० ॥ अरे लोगो ! दोनों हाथोंसे झटपट अपने कान मूँद लो । हे पहाड़ो ! तुम भी भारी बनकर धरतीपर सावधान होकर डट जाओ । हे रावण !

विरचय वसनैर्नासिकानां पिधानं सुप्तोऽयं कुम्भकर्णः कटुरवविकटं शर्धते दीर्घमुच्चैः ॥ ७१ ॥ लभ्यानङ्गविलेपनानि सुलभास्ताम्बूलसम्पत्तयः कल्प्यन्ते च मृदूनि चीनवसनान्यभ्येति काऽपि द्युतिः । किञ्चोच्चैर्घटते विमर्दसुलभः सम्भोगलीलारसो रण्डा वित्तवतीति हन्त महतः पुण्यस्य पाकक्रमः ॥ ७२ ॥ वर्णनदयितः कश्चिद्धनदयितो दानकर्मदयितोऽन्यः रक्षादयितश्चान्यो वेश्यानां नर्मदयितोऽन्यः ॥ ७३ ॥ वाचयति नान्यलिखितं लिखितमनेनापि वाचयति नान्यः । अयमपरोऽस्य विशेषः स्वयमपि लिखितं स्वयं न वाचयति ॥ ७४ । विनापि तातेन विना जनन्या गजाननः शंभुसुताभिधानः । विनैव शास्त्राणि विनैव वेदैर्माध्यंदिनानामिव पाठकोऽभूत् ॥ ७५ ॥ विना मद्यं विना मांसं परस्वहरणं विना । विना परापकारेण दिविरो दिवि रोदिति ॥७६॥ वैराग्यभङ्गिरचनावचनैः प्रतार्य रण्डां चिराय विकटस्तनसंनताङ्गीम् । ब्रह्मोपदेशमिषसङ्गतगण्डभित्तिनिःशङ्कचुम्बनरसैः कितवा द्रवन्ति ॥७७॥ शतवेदी मे सिद्धः सहस्रवेदी रसोऽपि निर्यातः। इति वदति धातुवादी नग्नो मलिनः कृशो रूक्षः ॥७८॥ शिक्षितापि सखिभिर्ननु सीता रामचन्द्रचरणौ न ननाम । किं भविष्यति मुनीशवधूवद्भालरत्नमिह तद्रजसेति ॥ ७९ ॥ शृणु सखि कौतुकमेकं ग्राम्येण कुकामिना यदद्य कृतम् । सुरतसुखमीलिताक्षी मृतेति भीतेन मुक्तास्मि ॥८०॥ श्रमणः श्रावकवध्वाः सुरतविधौ दशति नाधरं दत्तम् । मदिराक्षि मांसभक्षणमस्मत्समये निषिद्धमिति ॥ ८१ ॥ सक्वाणं लोलनेत्रं कुलयुवतिमुखं दृश्यते सानुकम्पं रण्डानामर्धलज्जाश्रितमधिपुलकं स्पृश्यते पीनमङ्गम् । क्लीवानां खाद्यतेऽन्तश्चिरविहितघनं क्वाथमूलाश्रितोयैः पूर्वं विद्याकुलानां सकलसुखनिधिर्वैद्यविद्याभिवन्द्या ॥ ८२ ॥ सदा वक्रः सदा क्रूरः सदा पूजामपेक्षते । कन्याराशिस्थितो नित्यं जामाता दशमो ग्रहः ॥ ८३ ॥ सामगा-

---

तुम भी कपड़ेसे नाक बन्द कर लो, क्योंकि यह सोया हुआ कुम्भकर्ण अत्यन्त दुर्गन्ध-भरा भयंकर तथा दहाड़से भरा अपानवायु बड़े वेगसे छोड़ रहा है ॥७१॥ जिसके यहाँ अनेक प्रकारके कामोत्तेजक विलेपन मिल जाते हैं, पानका सामान मिल जाता है, कोमल रेशमी वस्त्र जहाँ पहने जाते हैं, नये-नये रङ्ग-ढंङ्ग बनाए जाते हैं और जिसके यहाँ रमणका सारा आनन्द भी सरलतासे मिल जाता है ऐसी धनी रण्डा बड़े पुण्यसे मिलती है ॥७२॥ कोई तो वेश्याओंके वर्णनमें, कोई उसके धनमें, कोई उसके दानमें, कोई उसकी रक्षामें और कोई उसमें साथ की हुई क्रीड़ामें ही रस लेता है ॥ ७३ ॥ यह कायस्थ न तो दूसरोंका ही लिखा पढ़ पाता है, न उसका ही लिखा कोई पढ़ पाता है किन्तु सबसे बड़ी बात इसमें एक यह है कि वह स्वयं अपना लिखा भी नहीं पढ़ पाता ॥ ७४ ॥ हाथीके मुँहवाले गणेशजीकी न माता पार्वती हैं, न पिता शिव, फिर भी वे वैसे ही शिवके पुत्र कहे जाते हैं जैसे बिना वेद-शास्त्र जाने ही मध्याह्नमें पढ़नेवाले माध्यंदिन शाखावाले बन बैठे ॥ ७५ ॥ मदिरा, मांस, दूसरोंका धन हरनेका अवसर और दूसरोंकी बुराई करनेका अवसर न पानेसे यह कायस्थ स्वर्गमें भी पड़ा रो रहा है ॥ ७६ ॥ झुके हुए विशाल स्तनोंवाली रण्डाको वैराग्यकी बातोंमें उलझाकर ब्रह्मका उपदेश करनेके बहाने उसके गालसे मुख लगाकर निर्भय होकर चुम्बन करते हुए धूर्त उसे फुसला रहे हैं ॥७७॥ स्वयं नंगा, मैला-कुचैला, दुर्बल और रूखे शरीरवाला यह धातुवादी (रसायनी) बैठा गाल बजा रहा है कि मुझे शतवेदी भी सिद्ध है और सहस्रवेदी रस भी मैंने निकाल लिया है ॥७८॥ सखियोंके सिखानेपर भी सीताजीने रामके चरणोंमें सिर नहीं झुकाया क्योंकि उन्हें डर था कि उनके पैरकी धूल कहीं मस्तकपर लगे हुए रत्नसे लग गई तो वह अहल्याके समान स्त्री न बन खड़ी हो ॥७९॥ वेश्या अपनी सखीसे कह रही है : हे सखी ! आज एक देहाती मूर्ख कामीकी अचरजभरी बात तो सुन कि मैं तो सुरतके आनन्दमें आँखें मूँदे पड़ी थी और वह मुझे मरी समझकर डरके मारे भाग खड़ा हुआ ॥ ८० ॥ कोई बौद्ध भिक्षु अपने भक्तकी स्त्रीके साथ रमण तो कर रहा है पर उसका ओठ न चूमनेका कारण देते हुए कहता है कि—'हे चंचल आँखोंवाली ! हमारे धर्ममें मांस खाना वर्जित है' ॥ ८१ ॥ वैद्यकी विद्या ही दूसरी और विद्याओंमें सबसे अच्छी है क्योंकि वैद्य तो डङ्केकी चोट कुलवधुओंके मुख और उनकी चंचल आँखोंकी ओर दयापूर्वक देखता है, रण्डाओंके आधे लाजसे भरे मोटे पुलकित अंग छूता है और काढ़ा पिला-पिलाकर नपुंसकोंका बहुत दिनोंका जुटा-जुटाया धन भी हरता है ॥ ८२ ॥ कन्याराशिमें पड़े हुए दुष्ट ग्रहके समान कन्याके साथ ब्याहा हुआ दामाद भी दसवाँ ग्रह ही होता है क्योंकि दोनों ही सदा कुटिल और क्रूर

यत्नपूतं मे नोच्छिष्टमधरं कुरु। उत्कण्ठितासि चेद्भद्रे वामं कर्णं दशस्व मे ॥८४॥ स्नानं सिन्धुजले विधाय जनतासन्ने निषण्णस्तटे काषायेण घनावकुण्ठिततनुः प्राप्तः परिव्राजकः। सूपापूपघृतोत्तरा मधुमती भिक्षा यतो लभ्यते यस्मिन्वा गतभर्तृका युवतयस्तत्तद्गृहं ध्यायति ॥ ८५ ॥ स्नायं स्नायमनारतं धनवतामग्रे निरीहव्रताः प्रायो मृत्तिलदर्भसंग्रहधनाः सम्मोहयन्तो जगत्। अम्भःकेलिकृतावतारतरुणीनीरंध्रवक्षोरुहद्वन्द्वालोकनकूणितेक्षणयुगं ध्यायन्त्यमी डाम्भिकाः ॥ ८६ ॥ स्वयं पञ्चमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ। दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद्गृहे ॥८७॥

अद्भुतरस : अम्बुजमम्बुनि जातं न हि दृष्टं जातमम्बुजादम्बु। अधुना तद्विपरीतं चरणसरोजाद्विनिर्गता गङ्गा॥ १ ॥ इदं तावच्चित्रं यदवनितले पार्वणशशी कलङ्काद्दुन्मुक्तः किमपि च तदन्तर्विलसति। प्रवालं माणिक्यं कुवलयदलं मन्मथधनुर्मनोवीणावादध्वनिरिति महच्चित्रमधरम् ॥ २ ॥ एके कुटीरकोणेऽपि न लक्ष्यन्ते स्थिताः क्वचित्। अन्येषां विभवस्यैतद् ब्रह्माण्डमपि सङ्कटम् ॥ ३ ॥ एष वन्ध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखरः। मृगतृष्णाम्भसि स्नातः शशशृङ्गधनुर्धरः ॥ ४ ॥ कथमुपरि कलापिनः कलापो विलसति तस्य तलेऽष्टमीन्दुखण्डम्। कुवलययुगलं ततो विलोलं तिलकुसुमं तदधः प्रवालमस्मात् ॥ ५ ॥ कमलमनम्भसि कमले कुवलयमेतानि कनकलतिकायाम्। सा च सुकुमारसुभगेत्युत्पातपरम्परा केयम् ॥ ६ ॥ कस्मै किं कथनीयं कस्य मनःप्रत्ययो भवति। रमयति गोपवधूटी कुञ्जकुटीरे परं ब्रह्म ॥७॥ काकुत्स्थेन शिरांसि यानि शतशश्छिन्नानि मायानिधेः पौलस्त्यस्य विमानसीमनि तथा भ्रान्तानि नाकौकसाम्। तान्येवास्य धनुःश्रमप्रशमनं कुर्वन्ति सीता-

---

बने रहते हैं और सदा अपनी पूजा चाहते रहते हैं ॥ ८३ ॥ हे सुन्दरी ! सामवेदके पाठसे पवित्र मेरा ओठ न जूठा करो। यदि तुम्हें इतना लालच ही हो तो दाँतोंसे मेरा बायाँ कान काट लो ॥ ८४ ॥ समुद्रके जलमें स्नान करके गेरुए वस्त्रोंसे भली-भाँति अपना शरीर ढके हुए यह जो संन्यासी जनताकी भीड़से भरे समुद्र तटपर बैठा है वह उन घरोंके ध्यानमें मग्न है जिनमें पूए और घीसे भरे मीठे-मीठे पदार्थ भिक्षामें मिला करते हैं या जिन घरोंमें ऐसी नवेलियाँ हैं जिनके पति परदेश चले गए हैं ॥ ८५ ॥ बार-बार स्नान करके तथा मिट्टी, तिल और कुश मात्र जुटाए रखकर धनवानोंपर अपने त्यागकी धाक जमानेवाले और संसारको ठगनेवाले ये दम्भी लोग क्रीड़ाके लिये जलमें उतरी हुई नवेलियोंके दोनों मोटे स्तनोंपर अपनी दोनों आँखें गड़ाए उन्हींके ध्यानमें मग्न हैं ॥ ८६ ॥ जिन शंकरजीके पाँच तो अपने मुख हैं, पुत्र गणेशका मुख हाथीका है, दूसरे पुत्र कार्तिकेयके छह मुख हैं, वे नंगे शिवजी कैसे जी पाते यदि घरमें अन्नपूर्णा न होतीं ॥ ८७ ॥

अद्भुत रस : जलमें कमल उत्पन्न होता देखा गया है पर कमलसे जल उत्पन्न होते नहीं देखा गया किन्तु इस समय सचमुच उलटी बात हो रही है कि भगवान्‌के चरण-कमलसे जलमयी गंगा निकल रही हैं ॥१॥ किसी नायिकाके मुख, ओठ, दाँत, आँख तथा वाणीका वर्णन करते हुए कहा गया है—'एक विचित्र बात तो यह है कि यह भूतलमें कलंक-रहित पूर्णिमाका चन्द्रमा दिखाई देता है उससे अधिक विचित्र बात यह है कि उसमें माणिक, नीला कमल, कामका धनुष और वसन्तकी वीणाकी ध्वनि सब शोभा पा रही है ॥ २ ॥ इस विश्वमें कुछ लोग तो ऐसे हैं जो कहीं किस कोनेमें सिमटे पड़े हैं जान नहीं पड़ता और दूसरे वे लोग हैं जिनके ऐश्वर्यके विस्तारके लिये यह सारा ब्रह्माण्ड छोटा पड़ता है ॥३॥ आकाशके फूलकी मालासे अपना सिर सजाकर, मरुस्थलकी मृग-मरीचिकाके जलमें स्नान करके, खरहेकी सींगसे बना हुआ धनुष लेकर, यह वन्ध्याका पुत्र चला जा रहा है ॥ ४ ॥ क्या ऊपर मोरकी पूँछ (केशावलि) चमक रही है जिसके नीचे अष्टमीका चन्द्रमा (माथा) है, नीचे चंचल दो नीले कमल (आँखें) हैं, उसके नीचे तिलका फूल (नाक) है और उसके नीचे मूँगे (ओठ) हैं ॥ ५ ॥ विना जलका एक कमल (मुख) है जिसमें नीले कमल (आँखें) खिले हैं और ये सब जिस सोनेकी लता (नायिका) में वे हैं वह भी अत्यन्त सुकुमार और सुन्दर है। यह आश्चर्यकी श्रेणी तो देखो ॥ ६ ॥ किससे क्या कहा जाय, सुनकर भी किसको विश्वास होगा कि लताकी झाड़ीरूपी कुटीमें यह गोपी परब्रह्मके साथ क्रीड़ा करती है ॥ ७ ॥ मायावी रावणके जो सिर रामचन्द्रजीने काट डाले वे देवताओंके विमानोंसे टकरा-टकराकर ऐसे चक्कर खा रहे थे मानो उनके उड़ते हुए बाल चँवरके समान हिल-हिलकर रामकी धनुष चलानेकी थकावट मिटा रहे हों ॥ ८ ॥ 'यह वामन

धैरिदं गुरुपातकं मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः। नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिनामहमयमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ॥ २ ॥ चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसंचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य । स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिरुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥ ३ ॥ त्रैलोक्यत्राणशौण्डः सरसिजवसतेः सम्प्रसूतो भुजाभ्यां सुक्षत्रं नाम वर्णः कुलिशकठिनयोर्यस्य दोष्णोर्विलीनः । ज्वालाह्लाकालकालानलकवलभयभ्रान्तदेवासुराणि व्यातन्वानो जगन्ति ज्वलति मुनिरयं पार्वतीधर्मपुत्रः ॥ ४ ॥ देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्ह्रदाः पूरिताः क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः। तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रोणात्मजः क्रोधनः ॥ ५ ॥ नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिरजलाह्लादिताङ्गः प्रकाशं विस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि । भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिखाभुक्तशेषाः कृतं वस्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत् ॥ ६ ॥ पातालतः किमु सुधारसमानयामि निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमु वाहरामि। उद्यन्तमद्य तपनं किमु वारयामि कीनाशपाशमथवा किमु चूर्णयामि ॥ ७ ॥ यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता । तद्द्यूतारणिसंभृतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ॥ ८ ॥ येन स्वां विनिहत्य मातरमपि क्षत्रास्रपूरासवास्वादोन्मत्तपरश्वधेन विदधे निःक्षत्रिया मेदिनी । यद्बाणव्रणवर्त्मनः शिखरिणः क्रौञ्चस्य हंसच्छलादद्याप्यस्थिकणाः पतन्ति स पुनः क्रुद्धो मुनिर्भार्गवः ॥ ९ ॥ यैः प्राणापहृतिः कृता मम पितुः क्रुद्धैर्युधि क्षत्रियै रामोहं रमणीर्विहाय बलवान्निःशेषमेषां हठात् । भास्वत्प्रौढकुठारकोटिघनकाकाण्डत्रुटत्कंध-

---

मर्यादा तोड़नेवाले नये पशु बन गए हो । इसलिये कृष्ण, भीम तथा अर्जुनके साथ-साथ मैं तुम लोगोंका रुधिर, मज्जा तथा मांस लेकर अभी दिशाओंको बलि चढ़ाए डाल रहा हूँ' ॥ २ ॥ द्रौपदीसे भीम कहते हैं—चंचल भुजाओंसे घुमाई हुई भयंकर गदाके प्रहारसे दुर्योधनकी जाँघें चूर-चूर करके घनी रुधिर धारासे हाथ सानकर यह भीम तुम्हारी चोटी बाँधेगा ॥३॥ देखो, यही पार्वतीके धर्मपुत्र परशुराम मुनि अपने तेजसे चमक रहे हैं जो त्रिभुवनकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, ब्रह्माकी भुजासे उत्पन्न हुए हैं और जिनके वज्रके समान कठोर बाहुओंके प्रतापसे क्षत्रिय जाति गल गई और जिनके प्रतापके आगे पड़कर देवता और असुर भी ज्वाला-रूपी जीभवाली प्रलयकालकी अग्निमें पड़नेके भयसे चारों ओर भागते फिरते हैं ॥ ४ ॥ जिस स्थानपर शत्रुओंके रुधिर से परशुरामने ताल भर दिए थे वहीं आज बाल पकड़कर एक क्षत्रियने ही मेरे पिता (द्रोण) का अपमान किया है । मेरे पास शत्रुओंको चबा जानेवाले वे सभी चमकते हुए अस्त्र हैं इसलिये जो काम परशुरामने कर दिखाया वही काम अब द्रोणका पुत्र अश्वत्थामा करने जा रहा है ॥ ५ ॥ समराग्निकी ज्वालामें जलनेसे बचे हुए वीर राजाओ ! मैं कोई राक्षस या भूत-प्रेत नहीं हूँ, शरीरमें शत्रुओंका रुधिर लगनेसे प्रसन्न तथा सबके सामने प्रतिज्ञारूपी गंभीर सागर पार करनेवाला मैं क्रोधी क्षत्रिय हूँ । ऐसा डरना भी किस कामका कि तुम लोग मारे हुए हाथी-घोड़ोंके पीछे छिपे पड़े हो ॥ ६ ॥ कोई वीर कहता है—'कहो तो मैं पातालसे अमृत ले आऊँ या चन्द्रमाको निचोड़कर उसका अमृत ले आऊँ अथवा उगते हुए सूर्यको रोक दूँ या यमराजके जालको ही टूक-टूक कर दूँ ॥ ७ ॥ अजातशत्रु युधिष्ठिरने अपना सत्यव्रत पालन करनेमें बाधा पड़नेके भयसे जो क्रोधरूपी अग्निकी भयंकर ज्वाला दबा रक्खी थी और जिसे वे सहनशील,अपने कुलमें शान्ति स्थापन करनेके विचारसे भूल भी जाना चाहते थे, जो पहले जुए-रूपी अरणीमें डाली गई थी तथा द्रौपदीकी साड़ी और बाल खींचकर जगाई गई थी वही युधिष्ठिरकी क्रोध-रूपी अग्निकी ज्वाला अब कौरव-रूपी वनमें फैलती जा रही है ॥ ८ ॥ जिसने पहले अपनी माताका सिर काटा, फिर क्षत्रियोंके रुधिरकी प्रवाहरूपी मदिरासे मतवाले फरसेसे पृथ्वीको बिना क्षत्रियकी कर दी, जिसके बाणसे बेधे हुए क्रौंच पर्वतके दरारोंसे निकलने समय हंस ऐसे दिखाई देते हैं जैसे टूट-टूटकर गिरती हुई हड्डियाँ हों, उन्हीं परशुरामने आज क्रोध किया है ॥ ९ ॥ परशुराम कह रहे हैं कि जिन क्षत्रियोंने युद्धमें क्रोध करके हमारे पिताके प्राण लिए हैं उनमेंसे स्त्रियोंको छोड़कर मैं परशुराम किसीको जीता न छोड़ूँगा और चमकते हुए प्रबल फरसेकी धारके चलानेपर एकाएक कटे हुए गलेके बिलसे निकलती हुई रुधिरकी धारासे मैं अपनी

रास्रोतोऽन्तःस्रुतशोणशोणितभरैः कुर्यां क्रुधां निर्वृतिम् ॥१०॥ यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा। यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ॥ ११ ॥ रक्तोत्फुल्लविशाललोलनयनः कम्पोत्तराङ्गो मुहुर्मुक्त्वा कर्णमपेतधीर्धृतधनुर्बाणो हरेः पश्यतः। आध्मातः कटुकोक्तिभिः स्वमसकृद्दोर्विक्रमं कीर्तयन्नंसास्फोटपटुर्युधिष्ठिरमसौ हन्तुं प्रविष्टोऽर्जुनः ॥ १२ ॥ राज्ञो मानधनस्य कार्मुकभृतो दुर्योधनस्याग्रतः प्रत्यक्षं कुरु बान्धवस्य च तथा कर्णस्य शल्यस्य च। पीतं तस्य मयाद्य पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः कोष्णं जीवत एव तीक्ष्णकरजक्षुण्णादसृग्वक्षसः ॥ १३ ॥ रे धृष्टा धार्तराष्ट्राः प्रबलभुजबृहत्ताण्डवाः पाण्डवा रे रे वार्ष्णेयाः सकृष्णाः शृणुत मम वचो यद्ब्रवीम्यूर्ध्वबाहुः। एतस्योत्खातबाहोर्द्रुपदनृपसुतातापिनः पापिनोऽहं पाता हृच्छोणितानां प्रभवति यदि वस्तत्किमेतं न पाथ ॥ १४ ॥ स रोषदष्टाधरलोहितास्यैर्व्यक्तोर्ध्वरेखा भ्रुकुटीर्वहद्भिः। तस्तार गां भल्लनिकृत्तकण्ठैर्हुङ्कारगर्भैर्द्विषतां शिरोभिः ॥१५॥ स्पृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पाञ्चालराजात्मजा येनास्याः परिधानमप्यपहृतं राज्ञां कुरूणां पुरः। यस्योरःस्थलशोणितासवमहं पातुं प्रतिज्ञातवान् सोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः ॥ १६ ॥

भयानकरसः—अद्याप्युन्मदयातुधानतरुणीचञ्चत्कराास्फालनव्यावल्गन्नृकपालतालरणितैर्नृत्यत्पिशाचाङ्गनाः। उद्गायन्ति यशांसि यस्य विततैर्नादैः प्रचण्डानिलप्रक्षुभ्यत्करिकुम्भकूटकुहरव्यक्तै रणक्षोणयः ॥ १ ॥ अन्त्राकल्पचलत्पयोधरभरव्याविद्धमेघच्छटाश्लिक्वस्थामिषगृध्नुगृध्रगरुदास्फालोच्चलन्मूर्धजा। व्यादायाननमट्टहासविकटं दूरेण तारापथात्त्रस्यत्सिद्धपुरंध्रिवृन्दरभसोन्मुक्तादुपक्रामति ॥ २ ॥ अशक्नु-

क्रोध-रूपी आग बुझाऊँगा ॥ १० ॥ अश्वत्थामा कह रहा है—'पाण्डवोंकी सेनामें अपनी भुजाओंपर गर्व करनेवाले जो-जो व्यक्ति शस्त्र धारण करते हों, द्रुपदके वंशमें जो बच्चे-बूढ़े तथा गर्भमें हैं और जिन्होंने हमारे पिताका अपमान होते देखा है अथवा मेरे घूमते समय जो भी मेरे विरोधी मिलेंगे वे संसारका नाश करनेकी शक्ति भले ही रखते हों पर मैं क्रोध करनेपर उन सबके लिये यमराज बन जाऊँगा' ॥११॥ जिसके विशाल चञ्चल नेत्र लाल कमलके समान खिले हुए हैं, जिसका शरीर बार-बार काँप रहा है, जो कठोर शब्दोंका प्रयोग किए जा रहा है, जो बार-बार अपने बाहुके पराक्रमका वर्णन कर रहा है और अभिमानसे ताल ठोक रहा है वह अर्जुन अभी कृष्णके देखते-देखते कर्णको छोड़कर धनुष-बाण लेकर निर्भय होकर युधिष्ठिरपर प्रहार करनेके लिये चला आ रहा है ॥ १२ ॥ अहङ्कारी धनुर्धर राजा दुर्योधनके देखते-देखते कौरवोंके हितैषी कर्ण तथा शल्यके सामने आज मैंने द्रौपदीके बाल तथा साड़ी खींचनेवाले जीते-जी दुःशासनके वक्षःस्थलको तीखे नखोंसे फाड़कर उसका गरम-गरम रुधिर पिया है १३ ॥ अरे ढीठ धृतराष्ट्रके पुत्रो! अरे प्रबल बाहुको वेगसे घुमानेवाले पाण्डवो! अरे कृष्णके सहित यादवो! मैं भुजा उठाकर कह रहा हूँ, सुनो! द्रौपदीको अपमानित करनेवाले इस पापी दुःशासनकी भुजाएँ उखाड़कर मैं इसके वक्षस्थलका रुधिर पी रहा हूँ। तुममेंसे कोई समर्थ हो तो इसकी रक्षा क्यों नहीं करते? ॥ १४ ॥ उसने अपने उन शत्रुओंके मस्तकोंसे भूमि पाट दी जो क्रोधसे अपने ओठ काटे डाल रहे थे, जिनकी आँखें लाल-लाल थीं, जिनकी टेढ़ी भौंहोंकी नसें तनी हुई थीं, जिनका गला बाणोंसे कट गया था और उनमेंसे हुंकारका शब्द निकल रहा था ॥ १५ ॥ जिस नरपशुने द्रौपदीके बाल खींचे, जिसने कौरवोंके देखते-देखते उसकी साड़ी भी खींची और जिसके वक्षःस्थलका रुधिर पीनेके लिये मैंने प्रतिज्ञा की थी वही दुःशासन आज मेरी भुजाओंके चक्करमें आ गया है। कौरवो! अब करो तो उसकी रक्षा ॥ १६ ॥

भयानक रस: मतवाली राक्षसिनियोंके चञ्चल हाथोंसे बजाई हुई मानवी खोपड़ियाँ जहाँ कड़-कड़ करते हुए ताल दे रही थीं और पिशाचिनियाँ नाच रही थीं, उसी रणभूमिमें आज भी हाथियोंके कटे हुए मस्तकमेंसे घुसकर निकलते हुए प्रबल वायुकी सरसराहट उसके यशका गान कर रही है ॥ १ ॥ अँतड़ियोंकी मालासे सजी जो बादलोंको ढकेले दे रही है और ओठोंके पास लगे हुए मांसके लोभी गिद्धोंका पंख लगनेसे जिसके बाल उड़ रहे हैं वही राक्षसी अट्टहासके लिये अपना भयंकर मुँह फैलाकर उस आकाश मार्गसे उतर रही है जहाँसे डरी हुई सिद्धोंकी स्त्रियाँ झटपट मार्ग छोड़-छोड़कर भाग गई हैं ॥ २ ॥ सूर्यके समान जो इन्द्र तेजस्वी रावणकी ओर देखने

वन्सोढुमधीरलोचनः सहस्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम्। प्रविश्य हेमाद्रिगुहादृगुहान्तरं निनाय बिभ्यद्दिवसानि कौशिकः ॥ ३ ॥ इदं मघोनः कुलिशं धारासंनिहितानलम्। स्मरणं यस्य दैत्यस्त्रीगर्भपाताय केवलम् ॥ ४ ॥ किंचित्कोपकलाकलापकलनाहुङ्कारविभ्रभ्रुवोर्विक्षेपादकरोदसौ रघुपतिर्लङ्कापतेः पत्तनम्। क्रन्दत्फेरु रटत्करेटु विघटद्दारु स्फुटद्गुग्गुलु प्रोत्क्रीडत्कपि निःश्वसत्फणि रणज्झिल्लि भ्रमद्द्वीपि च ॥५॥ गीर्वाणाः प्रतियन्ति नैव पिदधे कर्णौ सुधर्माधिपः कर्णाकर्णिकयन्ति हन्त निभृतं शंभुस्वयंभूगणाः। दूरादेत्य कृतान्तदूतनिवहाः स्वाकारसङ्गोपनैरुद्ग्रीवं कलयन्तिकोणपचमूनाथे शयाने रणे ॥ ६ ॥ ततः परामर्शविवृद्धमन्योर्भ्रूभङ्गदुःप्रेक्ष्यमुखस्य तस्य। स्फुरन्नुदर्चिः सहसा तृतीयादक्ष्णः कृशानुः किल निःपपात ॥ ७ ॥ निर्मज्जच्चक्षुरन्तर्भ्रमदतिकपिलक्रूरतारा नरास्थिग्रन्थि दन्तान्तरालग्रथितमविरतं जिह्वया घट्टयन्ती। ध्वान्तेऽपि व्यात्तवक्त्रे ज्वलदनलशिखाजर्जरे व्यक्तकर्मा निर्मान्ती गृध्ररौद्री दिवमुपरि परिक्रीडते ताडकेयम् ॥ ८ ॥ प्रचण्डं चामुण्डागृहमिदमुदग्राभिरभितः पताकाभिर्घोरं यममहिषजिह्वानुकृतिभिः। किमेकाकिन्यत्र प्रविशसि न किं पश्यसि पुरः शिरोभिः पान्थानां पथि विरचितां तोरणततिम् ॥ ९ ॥ प्रौढच्छेदानुरूपोच्छलनरयवशात्सैंहिकेयोपमेयत्रासाकृष्टाश्वतिर्यग्वलितरविरथेनारुणेनेक्ष्यमाणम्। कुर्वन्काकुत्स्थवीर्यस्तुतिमिव मरुतां कन्धरारन्ध्रभाजां झाङ्कारैर्भीममेतन्निपतति वियतः कुम्भकर्णोत्तमाङ्गम् ॥ १० ॥ मन्त्रान्मृत्युजितो जपद्भिरसकृद्ध्यायद्भिरिष्टान् सुरान् शुष्यत्तालुभिराकुलाकुलपदैर्निर्वाग्भिरुत्कम्पिभिः। अध्वन्यैरिह जीवितेशमहिषव्याधूम्रधूमाविला लङ्घ्यन्ते करिमांसघस्मररणत्कौलेयकाः पल्लयः ॥ ११ ॥ मन्थायस्तार्णवाम्भः प्रतिकुहरवलन्मन्दरध्वानधीरः कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्ट-

---

में असमर्थ था और जिसके आगे उसकी आँखें चौंधिया जाती थीं, वह इंद्र सुमेरु पर्वतकी कन्दराके भीतर डरकर घुसा हुआ उल्लूके समान अपना दिन बिता रहा था ॥ ३ ॥ इन्द्रके जिस वज्रकी धारमें आग रहती है उसका स्मरण करनेसे ही दैत्योंकी स्त्रियोंका गर्भपात हो जाता है ॥ ४ ॥ तनिक-सा क्रोध आ जानेपर रामने हुङ्कारके साथ भौंहें टेढ़ी करके रावणकी नगरीको ऐसी निर्जन कर दी कि उसमें गीदड़ बोलने लगे, चील-कौए चिल्लाने लगे, लकड़ियाँ फटने लगीं, गूगलके पेड़ टूटने लगे, बन्दर भागने लगे, साँप लम्बी-लम्बी साँस खींचने लगे, झींगुर झनकारने लगे और बाघ घूमने लगे ॥ ५ ॥ कोणदेशके राजाका सेनापति जब रणभूमिमें गिरा पड़ा था उस समय देवता सामनेतक न आते थे, इन्द्रने अपने कान ढक लिए थे, शंकर, ब्रह्मा और विष्णु आदि देवता छिप-छिपकर काना-फूसी करने लगे थे और यमराजके दूत अपना रूप छिपाकर दूरसे ही सिर उचका-उचकाकर देख रहे थे ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर कामके छेड़नेपर जिनका क्रोध उबल गया और जिनकी टेढ़ी भौंहोंकी ओर देखना कठिन हो गया, उन्हीं शंकरजीके तीसरे नेत्रसे चमकती तथा धधकती हुई आग सहसा भभक उठी ॥ ७ ॥ भीतर धँसी हुई आँखोंके भीतर जिसकी अत्यन्त भूरी और भयंकर पुतली चक्कर खा रही है, दाँतोंके बीच सटी हुई मनुष्यकी हड्डीको जो निरन्तर जीभसे धक्का दे रही है, अँधेरेमें भी जलती हुई आगकी ज्वालासे खुला हुआ मुँह भरकर बेखटके काम कर रही है और जो गिद्धोंकी भयंकरता फैला रही है वह ताड़का आकाशमें चक्कर लगा रही है ॥८॥ यमराजके भैंसेकी जीभके समान भयंकर झण्डियोंसे चामुण्डाका यह भयंकर मन्दिर घिरा हुआ है। अरे, अकेली ही इसमें क्यों घुसी जा रही है? क्या देखती नहीं कि आगे मार्गमें बटोहियोंके सिरोंसे बनी बन्दनवार लटक रही है! ॥ ९ ॥ विशाल खड्गसे कटकर जो उछल रहा था, जिसे देखकर राहुके आक्रमणकी शंकासे सूर्यके रथको अरुण घोड़ोंकी रास खींच-खींचकर तिरछे भगा रहे थे और जो गलेके छेदमें घुसे हुए वायुकी झनकारसे मानो रामके पराक्रमकी स्तुति कर रहा था, उस भयंकर कुम्भकर्णका मस्तक आकाशसे नीचे गिरता आ रहा है ॥१०॥ मारे डरके जिनकी बोली बन्द हो गई है, जिनके तालु सूख गए हैं और पैर लटपटाए जा रहे हैं वे बटोही बार-बार मृत्युञ्जय मन्त्र जपते हुए, इष्ट देवताओंका स्मरण करते और काँपते हुए उन पल्लियोंको लाँघे चले जा रहे हैं जो यमराजके भैंसेके रंगके समान रङ्गवाले धुएँसे भरी हैं और जिनमें हाथीके मांसपर जुटे हुए कुत्ते भौंक रहे हैं ॥११॥ मथे जाते हुए समुद्रके जलसे मन्दराचलकी कन्दराओंमें गूँजती हुई घरघराहटके समान गम्भीर, डण्डेकी चोटसे गरजते हुए, परस्पर टकराते हुए प्रलयकालके बादलोंके समान भयंकर, द्रौपदीके क्रोधकी

चण्डः। कृष्णक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम् ॥ १२ ॥ महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तकप्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः। रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः ॥ १३ ॥ माद्यन्मातङ्गकुम्भस्थलवहलवसावासनाविस्रगन्धव्यासक्तव्यक्तमुक्ताफलशकललसत्केसरालीकरालः। पर्णावैधव्यवेधाः स्वभुजबलमदग्रस्ततेजस्विधामा गुञ्जन्कुञ्जे गिरीणां हरिरिह शबरीगर्भपातं विधत्ते ॥ १४ ॥ विनिर्गतं मानदमात्ममन्दिराद्भवत्युपश्रुत्य यदृच्छयापि यम्। ससम्भ्रमेन्द्रद्रुतपातितार्गला निमीलिताक्षीव भियामरावती ॥ १५ ॥

वीभत्सरसः—अन्त्रप्रोतबृहत्कपालनलककूरक्वणत्कङ्कणप्रायप्रेङ्खितभूरिभूषणरवैराघोषयन्त्यम्बरम्। पीतच्छर्दितरक्तकर्दमघनप्राग्भारघोरोल्लसद्व्यालोलस्तनभारभैरववपुर्दर्पोद्धतं धावति ॥ १ ॥ अन्त्रैः कल्पितमङ्गलप्रतिसराः स्त्रीहस्तरक्तोत्पलव्यक्तोत्तंसभृतः पिनह्य शिरसा हृत्पुण्डरीकस्रजः। एताः शोणितपङ्ककुङ्कुमजुषः सम्भूय कान्तैः पिबन्त्यस्थिस्नेहसुराः कपालचषकैः प्रीताः पिशाचाङ्गनाः ॥२॥ उत्कृत्य ज्वलितां शवात्कथमपि प्रेताशनः पैशितीं पेशोमांसमयीं निगीर्य सहसा दन्दह्यमानोदरः। धावत्युत्प्लवते मुहुर्निपतति प्रोत्तिष्ठति प्रेक्षते विष्वक्क्रोशति सम्पिनष्टि जठरं मुष्ट्या चलन्मस्तकः ॥ ३ ॥ उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूच्छोफभूयांसि मांसान्यंसस्फिक्पृष्ठपिण्डाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा। आत्तस्नाय्वन्त्रनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः करङ्कादङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ॥ ४ ॥ प्रस्वेदमलदिग्धेन वहता मूत्रशोणितम्। व्रणेन विकृतेनेदं सर्वमन्धीकृतं जगत् ॥ ५ ॥ रक्तं नक्तंचरौघः पिबति वमति च ग्रस्तकुन्तः शकुन्तः क्रव्यं नव्यं गृहीत्वा प्रणदति मुदितो मत्तवेतालबालः। क्रीडत्यव्रीडमस्मिन्रुधिरम-

---

सूचना देनेवाले दूतके समान,कौरवोंके नाशके लिये प्रलयकालकी आँधी तथा हमारे सिंहनादकी प्रतिध्वनिके समान यह नगाड़ा किसने बजाया ॥ १२ ॥ महाप्रलयके समय प्रबल वायुसे उड़ाए हुए पुष्कर तथा आवर्तक नामक मेघोंके भयंकर गर्जनकी प्रतिध्वनिके समान कान फोड़नेवाला, भूमि तथा आकाशके बीचका भाग भर देनेवाला और पहले कभी न सुना जानेवाला यह समर-सागरका कोलाहल बार-बार आज कहाँसे सुनाई दे रहा है ॥ १३ ॥ मतवाले हाथीके मस्तककी मज्जाकी दुर्गन्धसे मिले हुए मोतियोंके टुकड़ोंसे जिसका भयानक अयाल सजा हुआ था, जिसने अपने बाहुबलके अहंकारसे बड़े-बड़े तेजस्वियोंका तेज भी दबा दिया था वह हरिणियोंको विधवा बनानेवाला सिंह पहाड़की कन्दरामें गरजता हुआ शबरीका गर्भ गिरा रहा है ॥ १४ ॥ लोगोंका अभिमान चूर करनेवाले हयग्रीवको टहलनेके लिये घरसे निकला हुआ सुनकर इन्द्र अपनी नगरी अमरावतीके फाटक इस प्रकार बन्द कर लेता था मानो उसके भयसे अमरावतीने आँखें मूँद ली हों ॥ १५ ॥

वीभत्सरस : अँतड़ीमें गुथी हुई बड़ी-बड़ी खोपड़ियाँ तथा जाँघोंकी हड्डियाँ ही जिसमें बजते हुए भयानक कंकण थीं, जो बहुतसे हिलते हुए हड्डियोंके आभूषणोंके शब्दसे आकाश गुँजाए डाल रही थीं, पीकर उगले हुए रुधिरसे जिसके शरीरका ऊपरी भाग रँग गया था, जिसके उछलते हुए भयानक स्तनोंसे शरीर अत्यन्त डरावना लग रहा था, वह पिशाचिनी अभिमानसे फूली हुई इधरसे उधर दौड़ रही है ॥ १ ॥ अँतड़ियोंसे जिन्होंने हाथके मङ्गलसूत्र बनाए हैं, स्त्रियोंके हाथरूपी लाल कमलके जिन्होंने मस्तकके भूषण बनाए हैं, कलेजेरूपी कमलकी मालाएँ सिरपर पहनी हैं, रक्तको केसरका टीका बनाकर लगाया है, वे पिशाचिनियाँ प्रसन्न हो-होकर अपने पतियोंके साथ खोपड़ियोंके कटोरोंसे मज्जाकी मदिरा पी रही हैं ॥ २ ॥ मुर्दा खानेवाला प्रेत जलते हुए मुर्देकी जलती हुई मांसकी गाँठ खींचकर खा तो गया पर एकाएक पेट जलनेसे वह दौड़ता है, उछलता है, बार-बार गिरता है, उठता है चारों ओर देखता है, चिल्लाता है, और सिर हिलाकर मुट्ठीसे पेट मरोड़ता है ॥ ३ ॥ दरिद्र प्रेतने पहले मुर्देका चमड़ा उधेड़ा, फिर कन्धे, नितम्ब, पीठ तथा पिंडलियोंमें सरलतासे मिलनेवाला अत्यन्त दुर्गन्धसे भरा फूला मांस खाया, फिर नस, अँतड़ी तथा आँखें निकालीं और फिर अब दाँत खोलकर मुर्देको अपनी गोदमें रखकर हड्डियोंके जोड़में सटा हुआ मांस नोच-नोचकर प्रसन्नतासे खा रहा है ॥ ४ ॥ पसीने, मल-मूत्र तथा रक्तसे भरे हुए और देखनेमें भद्दे घाव (योनि) ने सारे संसारको अन्धा बना डाला है ॥ ५ ॥ पिशाच रुधिर पी रहा है और उगल रहा है, पक्षी भालेको निगल रहा है, मतवाला वैतालका बालक मांस ले-लेकर प्रसन्नतासे चिल्ला-चिल्लाकर

दयशात्पूतना नूतनाङ्गी योगिन्यो मांसमेदःप्रमुदितमनसः शूरशक्तिं स्तुवन्ति ॥ ६ ॥ विकीर्णहरिचन्दनद्रविणि यत्र लीलालसा निपेतुरतिचञ्चलाश्चतुरकामिनीदृष्टयः। तदेतदुपरिभ्रमच्चिविडगृध्रजालं जनैर्लुठत्कृमि कलेवरं पिहितनासिकैर्वीक्ष्यते ॥ ७ ॥

शांतरसः—अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे। अनुचक्षुसन्स्मरन्पूर्वं गर्भे किं नाम विन्दते ॥ १ ॥ अग्रे कस्यचिदस्ति कश्चिदभितः केनापि पृष्ठे कृतः संसारः शिशुभावयौवनजराभारावतारादयम्। बालस्तं बहु मन्यतामसुलभं प्राप्तं युवा सेवतां वृद्धस्त्वं विषयाद्बहिष्कृत इव व्यावृत्य किं पश्यसि ॥२॥ अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम्। यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लम्पटत्वं नो चेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥ ३ ॥ अङ्गमङ्गेन सम्पीड्य मांसं मांसेन तु स्त्रियः। पुराहमभवं प्रीतो यत्तन्मोहविजृम्भितम् ॥ ४ ॥ अजानन्दाहार्तिं पतति शलभस्तीव्रदहने न मीनोऽपि ज्ञात्वा बडिशयुतमश्नाति पिशितम्। विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥ ५ ॥ अज्ञानं कारणं न स्याद्वियोगो यदि कारणम्। शोको दिनेषु गच्छत्सु वर्द्धतामथ याति किम् ॥ ६ ॥ अतिक्रान्तः कालो ललितललनाभोगसुखदो भ्रमन्तः शान्ताः स्मः सुचिरमिह संसारसरणौ। इदानीं स्वःसिन्धोस्तटभुवि समाक्रन्दनगिरः सुतारैः फूत्कारैः शिव शिव शिवेति प्रतनुमः ॥ ७ ॥ अद्येदं श्व इदं तथा परुदि कृत्यं परारि त्वदश्चेतश्चिन्तयसीत्थमेव सततं निर्व्याकुलं रे कुतः। तत्कालं विलसन्मनोरथलताकान्तारदावानलं यस्मिन्दण्डधरं स्मरिष्यसि सखे सोऽप्यस्ति कश्चित्क्षणः ॥ ८ ॥ अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरीरिभिः। अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम् ॥ ९ ॥ अद्वैतोक्तिपटून्वटूनपि वयं वालान्नमस्कुर्महे ये

नाच रहा है, पिए हुए रुधिरके मदमें चूर होकर पूतना लज्जा छोड़कर नाच रही है और मांस तथा मज्जा खाकर योगिनी प्रसन्न चित्तसे वीरोंके पराक्रमकी प्रशंसा कर रही है ॥ ६ ॥ जिस शरीरपर लाल चन्दन पोता जाता था, जिसपर अत्यन्त चंचल और मतवाली सुन्दरियोंकी आँखें पड़ती थीं, उसी शरीरपर बहुतसे गीध मँडरा रहे हैं, कीड़े बज-बजा रहे हैं और लोग उसे नाक मूँद-मूँदकर देख रहे हैं ॥ ७ ॥

शान्त रस : गर्भमें प्राणी न तो अपने अंग हिला सकता है, न साँस ही ले सकता है। वह पिंजड़ेमें बन्द पक्षीके समान अपने पूर्व जन्मके कर्मोंका स्मरण तो करता है पर गर्भमें बँधा हुआ होनेसे उसका किया कुछ होता नहीं ॥ १ ॥ यह संसार लड़कपनमें तो आगे रहता है, जवानीमें चारों ओर दिखाई देता है और बुढ़ापेमें पीछे चला जाता है। इसलिये बचपनमें उस आगे आनेवाले संसारको दुर्लभ समझकर उसका आदर करना भी ठीक ही है। जवानीमें भी उसका उपभोग करना ही ठीक है पर तुम तो वृद्ध हो गए और संसारके भोगोंसे बाहर निकाल दिए गए हो, फिर क्या उसकी ओर लौट-लौटकर देखे जा रहे हो ॥२॥ यदि सामने गाना हो रहा हो, पासमें दक्षिणके रसिक कवि बैठे हों, पीछे चँवर डुलानेवाली स्त्रियोंके कंगनोंकी झनकार हो रही हो तब तो संसारके सुखोंका स्वाद लेते पड़े रहो पर यदि ऐसा न हो तो हे मन! तत्काल सब छोड़-छाड़कर निर्विकल्प समाधिमें लीन हो चलो ॥ ३ ॥ स्त्रीके शरीरको अपने शरीरसे और उसके मांसको अपने मांससे दबाकर जो मैं अपनेको सुखी समझ रहा था वह सब कोरे अज्ञानकी विडम्बना थी ॥ ४ ॥ जिस प्रकार जलनेकी पीड़ाका कुछ भी ध्यान न करके फतिंगा जलती आगमें कूद जाता है और मछली बिना समझे-बूझे कँटियामें लगे हुए मांसपर मुँह मार देती है उसी प्रकार हम लोग जानबूझकर भी अनेक विपत्तियोंसे भरे हुए अपने मनोरथ नहीं छोड़ते। ओह! अज्ञान कितना प्रबल होता है ॥ ५ ॥ शोकका मूल कारण यदि अज्ञान नहीं; वरन् वियोग है तो ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं त्यों त्यों उसे (शोकको) भी बढ़ते जाना चाहिए, किन्तु वह मिट क्यों जाता है ॥६॥ सुन्दरी स्त्रियोंका भोग-सुख लेनेका समय निकल गया। मैं तो संसारके मार्गमें इतने दिनों तक चक्कर खाते-खाते थक इतना गया हूँ कि बस अब तो गंगाजीके तीरपर बैठा करुणा भरे ऊँचे स्वरसे 'शिव-शिव' पुकारा करता हूँ ॥ ७ ॥ अरे चित्त! मुझे आज यह करना है, कल यह, परसों यह, चौथे दिन यह; सदा ऐसा क्या सोचता रहता है? अरे मित्र! वह भी एक समय आवेगा जब मनोरथ-रूपी लताओंके घने जंगलके दावानल उस यमराजका स्मरण करना पड़ेगा ॥ ८ ॥ कालका यह अत्याचार तो देखो कि जिन देहधारी प्राणियोंके साथ आज ही हम

तु द्वन्द्ववदास्तदीयशिरसि न्यस्याम वामं पदम्। सिंहः स्वीयशिशून्निवेश्य हृदये सान्द्रादरादामृशत्या- वेशेन भिनत्ति सम्भ्रमपदं मत्तेभकुम्भस्थलम् ॥ १० ॥ अधीत्य चतुरो वेदान्व्याकृत्याष्टादश स्मृतीः। अहो श्रमस्य वैफल्यमात्मापि कलितो न चेत् ॥ ११ ॥ अन्तकः पर्यवस्थाता जन्मिनः संततापदः। इति त्याज्ये भवे भव्यो मुक्तावुत्तिष्ठते जनः ॥ १२ ॥ अन्यत्र भीष्माद् गाङ्गेयादन्यत्र च हनूमतः। हरिणीखुरमात्रेण चर्मणा मोहितं जगत् ॥ १३ ॥ अप्सु प्लवन्ते पाषाणा मानुषा घ्नन्ति राक्षसान्। कपयः कर्म कुर्वन्ति कालस्य कुटिला गतिः ॥ १४ ॥ अमीषां जन्तूनां कतिपयनिमेषस्थितिजुषां वियोगे धीराणां क इह परितापस्य विषयः। क्षणादुत्पद्यन्ते विलयमपि यान्ति क्षणममी न केऽपि स्थातारः सुरगिरिपयोधिप्रभृतयः ॥ १५ ॥ अये स्वर्गः स्वर्गः कतिदिवसमार्गः प्रवसतां पुरस्तुङ्गौ स्यातां यदि न कुचकुम्भौ मृगदृशः। अथायं पाथेयं सुलभमुभयं मूलफलयोः पयः स्थाने स्थाने पथि पथि च विश्रामतरवः ॥ १६ ॥ अर्थप्राणविनाशसंशयकरीं प्राप्यापदं दुस्तरां मत्यासन्नभयं न वेत्ति विभवं स्वं जीवितं काङ्क्षति। उत्तीर्णस्तु ततो धनार्थमपरां भूयो विशत्यापदं प्राणानां च धनस्य चाधमधियामन्योन्य- भावः पणः ॥ १७ ॥ अर्थिभ्यः कनकस्य दीपकपिशा विश्राणिता राशयो वादे वादिविपाणिनां प्रतिहताः शास्त्रोक्तिगर्वा गिरः। उत्खातप्रतिरोपितैर्नृपतिभिः शारैरिव क्रीडितं कर्त्तव्यं कृतमर्थिता यदि विधेस्त- त्रापि सज्जा वयम् ॥ १८ ॥ अवश्यं यातारश्चिरतर- मुषित्वापि विषया वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्। व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः स्वयं त्यक्तास्त्वेते शमसुखमनन्तं विदधति ॥ १९ ॥ अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।

हँसे; गाए और पढ़े, वे आज ही देखनेको नहीं मिल रहे हैं ॥ ९ ॥ हम आत्माकी चर्चा करनेवाले चतुर बालकोंको प्रणाम करते हैं और द्वैतका सिद्धान्त माननेवाले लोगोंके सिरपर बाँया पैर रखते हैं क्योंकि सिंह भी अपने बच्चोंको तो छातीसे लगाकर बड़े प्रेमसे थपथपाता है किन्तु मतवाले हाथीको देखते ही क्रोधसे उसका मस्तक फाड़ डालता है ॥१०॥ यदि आत्माका स्वरूप न समझ पाए तो चारों वेद पढ़ने और अठारहों स्मृतियोंका व्याख्यान करनेका परिश्रम करनेसे क्या हुआ ? ॥ ११ ॥ मृत्यु सदा दुखी रहनेवाले प्राणियोंके सिर चढ़ी रहती है इसलिये बुद्धिमान् लोग इस छोड़ने योग्य संसारमें मुक्तिके लिये ही प्रयत्न करते हैं ॥ १२ ॥ भीष्म और हनुमानको छोड़कर यह सारा संसार हरिणीके खुर जितने (योनि) के मोहमें पड़ा है। ॥ १३ ॥ कालकी ऐसी उलटी गति होती है कि उसके प्रभावसे पानीपर पत्थर तैरने लगता है, मनुष्य भी राक्षसोंको मारने लगते हैं और बन्दर भी ऐसे काम कर दिखाते हैं जो कोई कर न पावे ॥ १४ ॥ जो प्राणी इस संसारमें कुछ ही क्षण रहने-वाले हैं, उनके वियोगमें बुद्धिमान् लोग दुखी क्यों हों क्योंकि ये प्राणी क्षण भरमें उत्पन्न होते हैं और क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं, यहाँ तक कि इतना ऊँचा सुमेरु पर्वत और इतना गहरा समुद्र ये भी यहाँ टिकनेवाले नहीं हैं ॥ १५ ॥ स्वर्गके लिये चले हुए मनुष्यके सामने यदि मृगनयनीके ऊँचे-ऊँचे स्तनकलश न आ पड़ें तो भला उसके लिये स्वर्ग कितने दिनका मार्ग है ! क्योंकि उसे मार्गमें कन्द-मूल-फलका भोजन, स्थान-स्थानपर जल और प्रतिमार्ग पर विश्राम करनेके लिये वृक्ष तो सरलतासे मिल जाते हैं ॥ १६ ॥ मनुष्य जब ऐसे संकटमें पड़ जाता है कि उसे धन और जीवन दोनोंके न रहनेकी शंका होने लगती है तब वह अपने जीवनके आगे धनको कुछ नहीं समझता पर शरीरकी रक्षा होते ही वह पुनः धन जोड़नेके फेरमें पड़ जाता है। इस प्रकार मूर्ख लोग जीवनकी रक्षाके लिये धन और धनकी रक्षाके लिये जीवनका दाव निरन्तर लगाते ही रहते हैं ॥ १७ ॥ हमने याचकोंको दीपककी लौके समान रंगवाले सोनेके ढेरके ढेर दान किए, उच्च कोटिके शास्त्रार्थियोंकी शास्त्रोक्तिके गर्वसे भरी वाणी खण्डित की, सिंहासनसे हटाए और फिर सिंहासनपर बैठाए हुए राजाओंसे तोतेकी भाँति खेल भी किया। इस प्रकार जो करना था, सब कर चुके। अब यदि भाग्यमें दरिद्रता (याच-कता) ही बदी है तो हम उसके लिये भी तैयार हैं ॥ १८ ॥ कुछ दिनोंमें संसारके सारे भोग नष्ट हो जायँगे, तब प्राणीका इनसे वियोग हो ही जायगा और यदि प्राणी स्वयं इन्हें छोड़ दें तब भी वियोग हो जायगा। तब इन दोनोंमें अन्तर ही क्या रहा ? अन्तर यही है कि यदि भोग स्वयं छोड़ देते हैं तो प्राणीके मनमें दुःख होता है पर यदि प्राणी ही भोगोंको छोड़ दे तो ये अनन्त शान्तिसे पूर्ण सुख देते हैं ॥ १९ ॥ सब प्राणी पहले कारणरूपमें रहकर कार्यरूपमें आते हैं और अन्तमें फिर

अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २० ॥ अशीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि । शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥ २१ ॥ अष्टकुलाचलसप्तसमुद्रा ब्रह्मपुरंदरदिनकररुद्राः । न त्वं नाहं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥ २२ ॥ अशनं मे वसनं मे जाया मे बन्धुवर्गो मे । इति मे मे कुर्वाणं कालवृको हन्ति पुरुषाजम् ॥ २३ ॥ अस्यैकस्यापि कायस्य सहजा अस्थिखण्डकाः । पृथक्पृथग्गमिष्यन्ति किमुतान्यः प्रियोजनः ॥ २४ ॥ अहंकार क्वापि व्रज वृजिन हे मा त्वमिह भूरभूमिर्दर्पाणामहमपसर त्वं पिशुन हे । अरे क्रोध स्थानान्तरमनुसरानन्यमनसां त्रिलोकीनाथो नो हृदि वसतु देवो हरिरसौ ॥ २५ ॥ अहमिह कृतविद्यो वेदिता सत्कलानां धनपतिरहमेको रूपलावण्ययुक्तः । इति कृतगुणगर्वः खिद्यते किं जनोयं कतिपयदिनमध्ये सर्वमेतन्न किंचित् ॥२६॥ अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित् । न तं पश्यामि यस्याहं न हि सोऽस्ति न यो मम ॥२७॥ अहह गृही क्व नु कुशलो बद्धा संसारसागरे क्षिप्तः । कथमपि लभते पोतं तेनापि निमज्जति नितान्तम् ॥ २८ ॥ अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा । तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः क्वचित्पुण्यऽरण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः ॥ २९ ॥ आक्रान्तं मरणेन जन्म जरया यात्युल्वणं यौवनं संतोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढाङ्गनाविभ्रमैः । लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनैरस्थैर्येण विपत्तयोऽप्युपहता ग्रस्तं न किं केन वा ॥३०॥ आत्मन्निच्छसि हन्त शाश्वतपुरीमार्गे विहर्तुं यदि भ्रातः संयमवर्मणा कुरु तदा रक्षाविधिं सर्वतः । नो चेदिन्द्रियतस्करैस्तव हठात्तीक्ष्णाग्रभूरिस्फुरच्चिन्ताभल्लशतैर्विभिद्य मनसो ग्राह्यो विवेको मणिः ॥ ३१ ॥ आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया । तथा

कारणमें चले जाते हैं इसलिये अर्जुन ! इनकी चिन्ता ही क्या की जाय ॥२०॥ हम भिक्षा माँगकर खाते हैं, नंगे रहते हैं और भूमिपर सोते हैं, फिर हमें धनिकोंसे भला क्या लेना-देना ॥ २१ ॥ भाई ! आठों कुल पर्वत, सातों समुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, शंकर, तुम, हम और यह लोक कुछ भी जब नहीं बचा रह जायगा तब शोक किसके लिये किया जाय ? ॥ २२ ॥ मेरा भोजन, मेरा वस्त्र, मेरी स्त्री, मेरे भाई-बन्धु कह-कहकर 'मैं मैं' करनेवाले पुरुषरूपी बकरेको कालरूपी भेड़िया क्षणभरमें आ दबोचता है ॥ २३ ॥ इस एक शरीरकी साथ उत्पन्न हुई हड्डियोंके एक-एक टुकड़े भी अलग-अलग हो जायँगे, फिर भला प्रियजनोंका क्या कहना ! ॥ २४ ॥ हे अभिमान ! तुम मुझसे दूर हो जाओ, हे पापकर्म ! तुम यहाँ मत ठहरो, हे दुष्टते ! तू भी भाग खड़ी हो क्योंकि अब मुझमें अहंकार नहीं रह गया । हे क्रोध ! तू भी कोई दूसरी ठौर देख क्योंकि मेरा मन अब सभी वस्तुओंसे हट गया है । अब तो बस यही इच्छा है कि त्रिभुवनके स्वामी भगवान् विष्णु मेरे हृदयमें आकर निवास करने लगें ॥ २५ ॥ इस संसारमें मैं ही विद्वान्, कलाओंका जानकार, धनवान् और सुन्दर स्वरूपवाला हूँ; यह कह-कहकर अपने गुणोंका अभिमान करनेवाला प्राणी भला क्यों दुखी होता है जब कि इन वस्तुओंमेंसे कोई भी वस्तु थोड़े दिनोंमें कहीं रह नहीं जायगी ॥२६॥ मैं एक अकेला ही हूँ, न मेरा कोई है, न मैं किसीका हूँ। ऐसा कोई नहीं दिखाई देता जिसका मैं होऊँ या जो मेरा हो ॥ २७ ॥ आह ! बाँधकर संसारसागरमें फेंका हुआ गृहस्थ भला क्या कुशलसे रह सकता है ! किसी प्रकार पोत (नाव, पौत्र) पाता भी है तो उससे और भी डूबने लगता है ॥ २८ ॥ साँप हो या हार, बलवान् शत्रु हो या मित्र, मणि हो या मिट्टीका ढेला, फूलका बिछौना हो या पत्थर, तृण हो या स्त्रियोंका समूह, मैं तो यही चाहता हूँ कि इन सबमें समान दृष्टि रखते हुए किसी पवित्र जंगलमें 'शिव-शिव' जपते हुए अपने दिन बिताऊँ ॥ २९ ॥ मृत्युसे जन्म, बुढ़ापेसे सुन्दर जवानी, धनके लोभसे सन्तोष, तरुणी नवेलियोंकी चटक-मटकसे शान्ति-सुख-डाह करनेवाले लोगोंसे गुण, हिंसक जीवोंसे जंगल, दुष्टोंसे राजा और चंचलतासे विपत्ति भी दबी रहती है। तब बताइए,कौन किसपर छापा नहीं मारता ॥ ३० ॥ भाई आत्मा ! यदि वैकुण्ठपुरीकी गलियोंमें विचरना चाहो तो संयमरूपी कवचसे सब ओरसे अपनी रक्षा कर लो नहीं तो इन्द्रियरूपी चोर बलपूर्वक चोखे, चमचमाते हुए चिन्तारूपी सैकड़ों भालोंसे फाड़कर तुम्हारे मनका विवेक-मणि चुरा लेंगे ॥ ३१ ॥ जैसे लोग धन पानेकी इच्छासे धनवानकी लल्लो-चप्पो करते हैं वैसे ही आदरसे यदि लोग संसारके बनानेवाले ईश्वरकी स्तुति किया करें तो कौन बन्धनमें पड़ा रह जाय ॥ ३२ ॥ प्रतिदिन सूर्यके उदय और अस्तके

चेद्विश्वकर्त्तारं को न मुच्येत बन्धनात् ॥३२॥ आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालोऽपि न ज्ञायते। दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥ ३३ ॥ आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र विवृतद्वारा इव व्यापदः। जातं जातमवश्यमाशु विवशं मृत्युः करोत्यात्मसात्तत्किं तेन निरङ्कुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थिरम् ॥ ३४ ॥ आनीयते शरीरेण क्षीणोऽपि विभवो पुनः। विभवः पुनरानेतुं शरीरं क्षीणमक्षमः ॥ ३५ ॥ आपदः क्षणमायान्ति सम्पदः क्षणमेव च। क्षणं जन्माथ मरणं मुने किमिव न क्षणम् ॥ ३६ ॥ आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्रीरर्थाः संकल्पकल्पा घनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूगाः। कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम् ॥ ३७ ॥ आयुर्नीरतरङ्गभङ्गुरमिति ज्ञात्वा सुखेनासितं लक्ष्मीः स्वप्नविनश्वरेति सततं भोगेषु बद्धा रतिः। अभ्रस्तम्भविडम्बि यौवनमिति प्रेमाऽवगूढाः स्त्रियो यैरेवात्र विमुच्यते भवरसात्तैरेव बद्धो जनः ॥ ३८ ॥ आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्द्धं गतं तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः। शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते जीवे वारितरङ्गबुद्बुदसमे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ॥ ३९ ॥ आयुर्वायुव्यथितनलिनीपत्रमित्रं किमन्यत्संपच्छम्पाद्युतिसहचरी स्वैरचारी कृतान्तः। कस्मादस्मिन्भ्रमसि तमसि त्वं प्रयाहि प्रयागं पौनःपुन्यं भुवि भगवती स्वर्धुनी ते धुनीते ॥ ४० ॥ आराध्य भूपतिमवाप्य ततो धनानि भुञ्जामहे वयमिह प्रसभं सुखानि। इत्याशया बत विमोहितमानसानां कालो जगाम मरणावधिरेव पुंसाम् ॥ ४१ ॥ आलोचनं च वचनं च निगूहनं च यासां स्मरन्नमृतवत्सरसं कृशस्त्वम्।

साथ जीवन क्षीण होता जा रहा है, बहुत प्रकारके कामोंके भारसे लदे हुए कर्तव्योंके कारण समय बीतता नहीं जान पड़ता और जन्म, बुढ़ापा, विपत्ति और मृत्यु देखकर भी भय नहीं होता क्योंकि अज्ञानसे भरी हुई असावधानी-रूपी मदिरा पीकर सारा संसार आज मतवाला हो बैठा है ॥ ३३ ॥ अनेक प्रकारके सैकड़ों मानसिक तथा शारीरिक रोगोंसे लोगोंका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, सम्पत्तिके साथ-साथ विपत्तियोंका द्वार खुल जाता है और बार-बार उत्पन्न होनेवाले प्राणीको मृत्यु आ दबोचती है। तब बताइए, मनमानी करनेवाले ईश्वरने संसारमें किस वस्तुको विपत्ति-रहित बनाया है ॥ ३४ ॥ नष्ट हुए वैभवको शरीर फिर ले आ सकता है किन्तु नष्ट हुए शरीरको वैभव पुनः नहीं ला सकता ॥ ३५ ॥ क्षण-भरके लिये विपत्ति आती है, क्षण-भरको सम्पत्ति आती है, क्षणमें मरण होता है और क्षणमें जन्म; हे मुनि! इस संसारमें क्या क्षणिक नहीं है! ॥ ३६ ॥ यह आयु पानीकी लहरके समान चंचल है, तरुणाईकी शोभा भी कुछ ही दिनों-तक ठहर पाती है, धन भी मनोरथके समान आते-जाते रहते हैं, भोग भी वर्षाकालकी बिजलीके समान दिखाई पड़ते ही नष्ट हो जाते हैं, स्त्रियोंका आलिंगन भी देरतक नहीं ठहरता इसलिये इस संसारके भयरूपी सागरको पार करनेके लिये परब्रह्ममें तो चित लगा लो ॥ ३७ ॥ आयु पानीकी लहरोंके समान नाशवान् है यह जानकर लोग सुखसे बैठे रहते हैं, लक्ष्मी स्वप्नकी संपत्तिकी भाँति है यह जानकर निरन्तर भोगोंमें लिपटे रहते हैं और मेघोंकी घटाओंकी भाँति जवानी मिट जानेवाली है यह जानकर भी प्रेमसे स्त्रियोंका आलिंगन करते रहते हैं। इस प्रकार जिन बातोंको जानकर मनुष्यको संसारके कष्टसे छूट जाना चाहिए उन्हींसे वह उल्टे संसारमें बँधता जाता है ॥ ३८ ॥ मनुष्यकी सौ वर्ष आयुमेंसे आधी तो रातमें बीत जाती है, आधेके आधे भागमें लड़कपन और बुढ़ापा बीत जाता है, शेष भाग रोग, वियोग और दुःखमें बीतता है और कुछ दूसरोंकी सेवामें निकल जाता है। अतः इस जीवनमें लहर और बुलबुलेके समान क्षणिक जीवनवाले प्राणियोंको सुख कहाँ मिल पाता है ॥ ३९ ॥ यह आयु पवनसे हिलते हुए कमलके पत्तेके समान चंचल है, यह सम्पत्ति भी बिजलीकी चमकके समान क्षणिक है और यमराजपर भी किसीका वश नहीं है, ऐसी दशामें हे जीव! इस अन्धकारमें तू क्यों चक्कर लगाए जा रहा है। जा, प्रयाग चला जा। वहाँ गंगाजी तेरे इस बार-बार संसारमें जन्म लेने और मरनेकी सारी झंझट ही मिटा देंगी ॥ ४० ॥ अज्ञानी पुरुषोंका समय मरनेतक इसी आशामें बीतता है कि राजाकी सेवा करके और उनसे धन पाकर मैं इस संसारके सुख भोगूँ ॥४१॥ हे महाशयजी! जिन स्त्रियोंके नेत्र, वचन तथा वस्त्रको अमृतके समान मधुर समझकर तुम उनकी चिन्तामें दुबले

तासां किमङ्ग पिशितास्रपुरीषपात्रं गात्रं स्मरन्मृगदृशां न निराकुलोऽसि ॥ ४२ ॥ आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी । मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥ ४३ ॥ आशा निष्ठा प्रतिष्ठा मम किल महिलास्तासु सौख्यं कदा स्याद्या प्रान्त्या सा विदध्यादिह किमपि तथा मध्यमा सा परत्र । आद्या सा नोभयत्राप्यहह तदपि किं सक्ततां यामि तस्यां या प्रौढ्यादप्रगल्भे प्रतिदिवसमुभे ते कदर्थीकरोति ॥४४॥ आसंसारात्त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृङ्नो वास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो वा । योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढगूढाभिमानक्षीबस्यान्तःकरणकरिणः संयमालानलीलाम् ॥ ४५ ॥ आसन्नतामेति मृत्युरायुर्याति दिने दिने । आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव पदे पदे ॥ ४६ ॥ आस्तामकण्टकमिदं वसुधाधिपत्यं त्रैलोक्यराज्यमपि नैव तृणाय मन्ये । निःशङ्कसुप्तहरिणीकुलसंकुलासु चेतः परं वलति शैलवनस्थलीषु ॥ ४७ ॥ आस्यं यस्याः सुधांशुं कलयति नयनाभ्यां जितः पुंसमूहः कान्त्या विद्युत्कुचाभ्यां तरुणजलरुहे निर्जितेऽस्याः सुधांशुम् । कुष्ठं दुर्गन्धियुक्तं लघुकृमिविकृतं पूयमज्जास्रवाहिव्याप्तं तन्मक्षिकाभिर्गतिरिति वपुषः कुत्सिता नास्ति लोके ॥४८॥ आहारः फलमूलमात्मरचितं शय्या मही वल्कलं संवीताय परिच्छदः कुशसमित्पुष्पाणि पुत्रा मृगाः । वस्त्रान्नाश्रयदानभोगविभवा निर्यन्त्रणाः शाखिनो मित्राणीत्यधिकं गृहेषु गृहिणां किं नाम दुःखादृते ॥ ४९ ॥ इतः क्रोधो गृध्रः प्रकटयति पक्षं निजमितः सृगाली तृष्णेयं विवृतवदना धावति पुरः । इतः क्रूरः कामो विचरति पिशाचश्चिरमहो श्मशानं संसारः क इह पतितः स्थास्यति सुखम् ॥५०॥ इतो न किञ्चित्परतो न किञ्चिद्यतो यतो यामि ततो न किञ्चित् । विचार्य पश्यामि जगन्न

पड़े जाते हो उन्हींके शरीरको मांस, रुधिर और मलसे भरा हुआ समझकर तुम शांत क्यों नहीं हो जाते ॥ ४२ ॥ आशा नामकी जिस नदीमें मनोरथ ही जल है, तृष्णाएँ ही लहरें हैं, अनुराग ही ग्राह है, अनेक तर्क ही पक्षी हैं, वह धैर्यरूपी पेड़को तोड़े डाल रही है। उसकी मोहरूपी भँवरके कारण उसे पार करना कठिन है। वह बहुत गहरो है और उसमें चिन्तारूपी बड़े ऊँचे-ऊँचे कगार हैं। जो शुद्ध चितवाले योगीश्वर महात्मा उसे पार कर गए हैं वे ही प्रसन्न रहते हैं ॥ ४३ ॥ आशा, ईश्वरकी चिन्ता और प्रतिष्ठा, इन तीनों स्त्रियोंसे मुझे सुख नहीं मिल पाता क्योंकि अन्तिम स्त्री (प्रतिष्ठा) तो इस लोकमें सुख देती है, बीचवाली स्त्री (ईश्वरकी चिन्ता) परलोकमें सुख देती है और पहली (आशा) न यहाँ सुख देती है न वहाँ, फिर भी न जाने क्यों मैं उसीके फेरमें पड़ा रहता हूँ और वह ढिठाई करके प्रतिदिन उन दोनों सीधी-सादी स्त्रियोंको कष्ट दिया करती है ॥ ४४ ॥ हे भाई! जबसे संसार चला है तबसे अबतकके इस त्रिभुवनपर दृष्टि डालनेसे ऐसा एक भी व्यक्ति न देखा न सुना जिसने विषय-रूपी हथिनीके आलिंगनकी कल्पनामें पागल होनेवाले अपने मन-रूपी हाथीको बाँधनेके लिये इन्द्रिय-निग्रह रूपी खूँटा बना रक्खा हो ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार फाँसी पानेवाले व्यक्तिकी मृत्यु पास आती जाती है और उसकी आयु दिन-दिन क्षीण होती जाती है वैसी ही दशा संसारमें सबकी होती है ॥ ४६ ॥ निर्बाध और निर्विरोध पृथ्वीके प्रभुत्वकी बात तो दूर रही, मैं तो त्रिभुवनके राज्यको भी तृणके समान कुछ नहीं समझता, मेरा मन तो निर्भय हुई हरिणियोंसे भरी पहाड़की वन भूमिमें ही लगता है ॥ ४७ ॥ जिसके मुखने चन्द्रमाको जीत लिया था, जिसकी आँखोंने सब पुरुषोंको वशमें कर लिया था, जिसके स्तनोंने कमलकी कलियोंको जीत रक्खा था, उसी मुखचन्द्रमें दुर्गन्ध, कीड़े, पीप, मज्जा और रुधिरसे भरा हुआ कोढ़ फैल रहा है और मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। इससे बढ़कर शरीरकी और कौन-सी दुर्गति संसारमें हो सकती है ॥ ४८ ॥ जब वनमें बिना परिश्रमके ही भोजनके लिये फल और मूल, बिछौनेके लिये भूमि, पहननेके लिये पेड़ोंकी छाल, सन्ध्याके लिये कुशा, लकड़ी और फूल, हरिण-जैसे पुत्र, अन्न-वस्त्र, निवास और भोजन देनेवाले स्वतंत्र मित्रोंके समान वृक्ष मिल जाते हैं तब गृहस्थोंको अपने घरोंमें दुःखके अतिरिक्त इनसे अधिक और मिल क्या पाता है? ॥ ४९ ॥ इस संसाररूपी श्मशानमें पड़कर भला कौन सुख पा सकता है जिसमें एक ओर क्रोधरूपी गीध अपने पंख फैला रहा है, सामनेसे तृष्णा सियारिन मुँह बाए दौड़ी आ रही है और इधर यह क्रूर पिशाच कामदेव सदा विचरण कर रहा है ॥ ५० ॥ न तो इस लोकमें ही कुछ है, न परलोकमें ही, यहाँतक कि मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ वहाँ भी

किञ्चित्स्वात्मावबोधादधिकं न किञ्चित् ॥ ५१ ॥ इतो मृत्युरितो व्याधिरितो विपदितो जरा। चतुरङ्गा तुल्यबला हन्ति लोकमनित्यता ॥ ५२ ॥ इदं युगसहस्रस्य भविष्यदभवद्दिनम्। तदप्यद्यत्वमापन्नं का कथा मरणावधेः ॥ ५३ ॥ इन्द्रस्याशुचिशूकरस्य च सुखे दुःखे च नास्त्यन्तरं स्वेच्छाकल्पनया तयोः खलु सुधा विष्ठा च काम्याशनम्। रम्भा चाशुचिशूकरी च परमप्रेमास्पदं मृत्युतः सन्त्रासोऽपि समः स्वकर्मगतिभिश्चान्योन्यभावः समः ॥ ५४ ॥ इह शय्यागतेनापि बन्धुमध्यस्थितेन वा। मयैवैकेन सोढव्या मर्मच्छेदादिवेदना ॥ ५५ ॥ उच्छ्वासावधयः प्राणाः स चोच्छ्वासः समीरणः। समीरणाच्चलं नास्ति यत्प्राणिति तदद्भुतम् ॥ ५६ ॥ उत्तानोच्छूनमण्डूकपाटितोदरसन्निभे। क्लेदिनि स्त्रीव्रणे सक्तिरकृमेः कस्य जायते ॥ ५७ ॥ उत्तुङ्गवातायनगोपुराणि गृहाणि वित्तानि दुरर्जितानि। क्षणादधःपातकराणि हन्त चितातिथेरस्य निरर्थकानि ॥ ५८ ॥ उद्घाटितनवद्वारे पञ्जरे विहगोऽनिलः। यत्तिष्ठति तदाश्चर्यं प्रयाणे विस्मयः कुतः ॥ ५९ ॥ उल्वेन संवृतस्तस्मिन्नार्द्रैश्च बहिरावृतः। आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥ ६० ॥ एकद्वैः किमभावि सूरिभिरथ द्वित्राणि मित्राणि किं व्यापन्नानि गताश्च किं त्रिचतुरा घोरा महाव्याधयः। सप्ताष्टैरलमिष्टमेतदपि नश्चेतः क्षणान्पञ्चषान्स्वात्मन्येव रमस्व तेजसि गते कालेऽथ वा सर्वतः ॥६१॥ एकसार्थप्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम्। यद्येकस्त्वरितं यातस्तत्र का परिदेवना ॥ ६२ ॥ एकेऽद्य प्रातरपरे पश्चादन्ये पुनः परे। सर्वे निःसीम्नि संसारे यान्ति कः केन शोच्यते ॥ ६३ ॥ एणाक्षीस्पृहयालुता न कथमप्यास्ते विवेकोदयान्नित्यं प्रच्युतिशङ्कया क्षणमपि स्वर्गे न मोदामहे। अप्यन्येषु विनाशिवस्तुविषयाभोगेषु तृष्णा न मे स्वर्नद्याः पुलिने परं हरिपदध्यानं मनो वाञ्छति ॥ ६४ ॥ एता याः प्रेक्षसे लक्ष्मीश्छत्रचामर-

---

मुझे कुछ सत्य नहीं दिखाई देता। विचार-पूर्वक देखनेसे यही जान पड़ता है कि संसार झूठा है और आत्मज्ञानके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु सत्य नहीं है ॥५१॥ एक ओरसे मृत्यु, एक ओरसे रोग, एक ओरसे विपत्ति, एक ओरसे बुढ़ौती, इन चार समान बलशाली सेनाओंके द्वारा अनित्यता संसारको नष्ट करती रहती है ॥ ५२ ॥ जो आनेवाले सहस्रों युगोंका दिन था वह जब आज आ गया तब मरनेकी अवधिकी बात ही क्या है ॥ ५३ ॥ इन्द्र और गन्दे सूअरके सुख-दुःखमें अन्तर ही क्या है ? उन दोनोंको अपनी-अपनी रुचिके अनुसार अमृत और विष्ठा ही प्रिय भोजन है। इन्द्रको रम्भा अप्सरासे प्रेम है तो सुअरको सुअरीसे है। मृत्युका भय दोनोंको है और दोनोंमें अपने कर्मके अनुसार भेद है ॥ ५४ ॥ मैं चाहे शय्यापर पड़ा होऊँ, चाहे भाई-बन्धुओंके बीचमें बैठा होऊँ किन्तु शरीरके मर्मस्थान कटनेकी पीड़ा तो मुझ अकेलेको ही सहनी पड़ेगी ॥ ५५ ॥ उच्छ्वास तक ही प्राण हैं, और वह उच्छ्वास है क्या—पवन ! जिससे बढ़कर चंचल कोई दूसरी वस्तु होती नहीं, अतः प्राणी जो जी रहा है यही आश्चर्य है ॥ ५६ ॥ उलटकर फूले हुए मेंढकके फटे हुए पेटके समान सड़ी योनिमें कीड़ेको छोड़कर और कौन अनुराग करेगा ॥५७॥ ऊँची-ऊँची खिड़कियों और फाटकोंवाले घर, कष्टसे संग्रह किया हुआ धन, ये सब क्षण भरमें मनुष्यको गिरा देते हैं और चितापर पहुँचे हुए प्राणीके लिये तो ये सब व्यर्थ हैं ही ॥ ५८ ॥ जिस शरीररूपी पिंजड़ेमें इन्द्रिय-रूपी नौ द्वार खुले हैं उनमें प्राणीरूपी पक्षीका ठहरना ही आश्चर्य है, निकल जाना नहीं ॥ ५९ ॥ गर्भमें प्राणी जरायुसे तो बँधा रहता है, बाहर मांस और रुधिर आदि धातुओंसे घिरा रहता है, उसका सिर पेटमें मिला रहता है और पीठ तथा गला झुका रहता है ॥ ६० ॥ संसारमें व्यास-जैसे जो एक-दो पंडित हुए वे भी नहीं रहे, जो गिने-गिनाए दो तीन मित्र थे वे भी जाते रहे। तीन-चार भयंकर महाव्याधियाँ यदि चली भी गईं तो क्या हुआ ? ऐसी दशामें हे मन ! हम सात-आठ क्षणकी बात भी नहीं कहते। इस समय शरीरकी शक्ति भी जाती रही है और समय भी बीत चला है। इसलिये हम इतना ही चाहते हैं कि तुम केवल कुल पाँच-छह क्षण अपनेमें ही विश्राम कर लो ॥ ६१ ॥ जहाँ एक साथ बहुतसे यात्री चले जा रहे हैं वहाँ यदि कोई पहले चला गया तो दुःखकी क्या बात है ॥ ६२ ॥ इस अपार संसारमें कोई पहले कोई पीछे, कोई उसके भी पीछे, इस प्रकार सभी जाते ही रहते हैं फिर कोई किसीकी क्यों चिन्ता करे ॥ ६३ ॥ अब विचार आ जानेपर मुझे किसी प्रकारकी मृगनयनीकी चाह नहीं रही। जिस स्वर्गसे सदा गिरनेका भय हो उसे पा लेनेमें भी मुझे प्रसन्नता नहीं होती। दूसरी नश्वर वस्तुओं तथा विषयोंका भी अब मुझे लोभ नहीं रहा। अब तो मेरा मन यही चाहता है कि गंगाजीके

चञ्चलाः। स्वप्न एष महाबुद्धे दिनानि त्रीणि पञ्च वा ॥ ६५ ॥ कटुतीक्ष्णोष्णलवणक्षाराम्लादिभिरुल्बणैः। मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः ॥ ६६ ॥ कदा भिक्षाभक्तैः करकलितगङ्गाम्बुतरलैः शरीरं मे स्थास्यत्युपरतसमस्तेन्द्रियसुखम्। कदा ब्रह्माभ्यासस्थिरतनुतयारण्यविहगाः पतिष्यन्ति स्थाणुभ्रमहतधियः स्कन्धशिरसि ॥ ६७ ॥ कदा वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन्वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम्। अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ६८ ॥ कदा वा साकेते विमलसरयूतीरपुलिने चरन्तं श्रीरामं जनकतनयालक्ष्मणयुतम्। अये राम स्वामि जनकतनयावल्लभ विभो प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ६९ ॥ कदा वृन्दारण्ये नवघननिभं नन्दतनयं परीतं गोपीभिः क्षणरुचिमनोज्ञाभिरसितः। गमिष्यामस्तोषं नयनविषयीकृत्य कृतिनो वयं प्रेमोद्रेकस्खलितगनयो वेपथुभृतः ॥ ७० ॥ कदा वृन्दारण्ये विमलयमुनातीरपुलिने चरन्तं गोविन्दं हलधरसुदामादिसहितम्। अये कृष्ण स्वामिन् मधुरमुरलीवादन विभो प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ७१ ॥ कस्मात्कोऽहं किमपि च भवान्कोऽयमत्र प्रपञ्चः स्वं स्वं वेद्यं गगनसदृशं पूर्णतत्त्वप्रकाशम्। आनन्दाख्यं समरसघने बाह्यमन्तर्विहीने निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥७२॥ कस्यानित्येष्वनित्यस्य स्नेहो भवितुमर्हति। येन जन्मसहस्राणि द्रष्टव्यो न पुनः प्रियः ॥ ७३ ॥ काँश्चित्कल्पशतं कृतस्थितिचयान्काँश्चिद्युगानां शतं काँश्चिद्वर्षशतं तथा कतिपयाञ्जन्तून्दिनानां शतम्। ताँस्तान्कर्मभिरात्मनः प्रतिदिनं संक्षीयमाणायुषः कालोऽयं कवलीकरोति सकलान्भ्रातः कुतः कौशलम् ॥ ७४ ॥ कार्याकार्ये किमपि सततं नैव कर्तृत्वमस्ति जीवन्मुक्तस्थितिरवगतो दग्धवस्त्रावभासः। एवं देहे प्रविलयगते

तटपर बैठकर केवल भगवान्‌के चरणोंका ध्यान किया करूँ ॥ ६४ ॥ हे विशाल बुद्धिवाले ! यह जो छत्र और चँवरसे सजी हुई लक्ष्मीकी ओर तुम टकटकी लगाए देख रहे हो यह स्वप्नके समान तीन-चार दिनसे अधिक ठहरनेवाली नहीं है ॥ ६५ ॥ माता जो कुछ कड़वी, तीती, गरम, नमकीन, खारी तथा खट्टी वस्तुएँ खाती हैं उससे गर्भमें बैठे हुए प्राणीके सब अंगोंमें पीड़ा होती है ॥ ६६ ॥ वह दिन कब होगा जब सब इन्द्रियोंके सुखसे उदासीन इस शरीरका पोषण भिक्षाके अन्नसे और अंजलिमें लिए हुए गंगाजलसे होगा और ब्रह्मके दर्शनके अभ्यासमें शरीर न हिलनेके कारण कन्धे तथा सिरपर जंगली पक्षी सूखे काठके खम्भेके भ्रममें आ-आकर बैठेंगे ॥६७॥ वह दिन कब आवेगा जब काशीमें गंगाके तीरपर लँगोटी लगाए और हाथ जोड़े मैं हम 'हे गौरीनाथ ! हे त्रिपुरासुरके नाशक ! हे शम्भो ! हे तीन नेत्रवाले ! मुझपर प्रसन्न हो जाओ' यह कहते हुए एक-एक दिन एक-एक क्षणके समान बिता दूँगा ॥ ६८ ॥ कब मैं अयोध्यामें सरयूके निर्मल तटपर सीता और लक्ष्मणके साथ टहलते हुए रामके सामने हे राम ! हे स्वामी ! हे सीतापते ! हे व्यापक भगवान् ! कहते हुए एक-एक दिन एक-एक क्षणके समान बिताऊँगा ॥ ६९ ॥ वृन्दावनमें आनन्दमग्न सुन्दरी गोपियोंसे घिरे हुए तथा नवीन बादलके समान श्याम वर्णवाले नन्द-नन्दनको अपनी आँखोंसे देखकर मैं कब सन्तुष्ट हूँगा तथा अत्यन्त प्रेममें लड़खड़ाते और काँपते हुए अपना मनोरथ सफल करूँगा ॥ ७० ॥ मैं कब वृन्दावनमें यमुनाजीके निर्मल तीरपर बलराम तथा सुदामा आदि गोपोंके साथ टहलते हुए भगवान् कृष्णके सामने 'हे कृष्ण ! हे स्वामी ! हे मधुर मुरली बजानेवाले ! हे व्यापक भगवान् !' कहते हुए क्षणके समान दिन बिताऊँगा ॥ ७१ ॥ हम कौन हैं, कहाँसे आए हैं, आप कौन हैं, यह संसार क्या है, ये सब जानने-योग्य बातें आकाशके समान शून्य हैं। बाहर तथा भीतर आनन्द नामका प्रकाशरूपी, एक और पूर्ण तत्त्व 'ब्रह्म' समान रूपसे व्याप्त है, ऐसा समझकर मायासे दूर हटकर चलनेवाले व्यक्तिके लिये कैसा कर्तव्य और कैसा अकर्तव्य ॥ ७२ ॥ अनित्य व्यक्तिका अनित्य वस्तुओंमें स्नेह जोड़ना कहाँतक उचित है जब कि सहस्रों जन्मोंतक भी फिर अपना प्यारा देखनेको न मिल पावेगा ॥७३॥ इस संसारमें कुछ लोग सौ कल्पतक, कुछ सौ युगतक और कुछ सौ दिनतक रहते हैं। जिनकी आयु पूर्वजन्मके कर्मके अनुसार प्रतिदिन क्षीण होती रहती है उन सब जीवोंको काल अपना कवल बनाता चलता है। इसमें किसीकी कोई चतुराई नहीं चलती ॥७४॥ कर्तव्य और अकर्तव्य किसी बातका कर्ता भी आत्मा नहीं है। जीते जी मुक्त होनेवालेकी स्थिति जले हुए वस्त्रके समान होती है। इस प्रकार जीते-जी संसारके बन्धनसे छूटा हुआ जो व्यक्ति ममता छोड़कर अपने

तिष्ठमानो विमुक्तो निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥ ७५ ॥ कालेन क्षितिवारिवह्निपवनव्योमादियुक्तं जगद्ब्रह्माद्याश्च सुराः प्रयान्ति विलयं विज्ञो विचारादिति । पश्यामोऽपि विनश्यतोऽनवरतं लोकाननेकान्मुधा मायामोहमयीं भवप्रणयिनीं नास्थां जहीमो वयम् ॥ ७६ ॥ किं कन्दर्प करं कदर्थयसि रे कोदण्डटङ्कारितै रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं मुधा वल्गसि । मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते ॥ ७७ ॥ किं ते धनैर्बन्धुभिरेव वा किं दारैश्च किं ब्राह्मण यो मरिष्यति । आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं पितामहास्ते क्व गताः पिता च ॥ ७८ ॥ कुचौ तु परिचर्चितौ परिचितं चिरं चन्दनं कृताः परमुरोजयोः परिसरेऽरविन्दश्रियः । स्तुतिर्नतिरपि स्मृतिर्वरतनोः कृतैवादरादिदं तु निखिलं मया विरचितं पुनर्नेश्वरे ॥ ७९ ॥ कुटुम्बचिन्ताकुलितस्य पुंसः कुलं च शीलं च गुणाश्च सर्वे । अपक्वकुम्भे निहिता इवापः प्रयान्ति देहेन समं विनाशम् ॥ ८० ॥ कुरङ्गाः कल्याणं प्रतिविटपमारोग्यमटवि स्रवन्ति क्षेमं ते पुलिनकुशलं भद्रमुपलाः । निशान्तादस्वन्तात्कथमपि विनिष्क्रान्तमधुना मनोऽस्माकं दीर्घामभिलषति युष्मत्परिचितिम् ॥ ८१ ॥ कुतस्ते कालकाकेन कुलायः शिरसि ध्रुवम् । यद्भाति पलितव्याजात्तत्पुरीषस्य शुक्लिमा ॥ ८२ ॥ कृत्वा दीननिपीडनां निजजने बद्ध्वा वचोविग्रहं नैवालोच्य गरीयसीरपि चिरादामुष्मिकीर्यातनाः । द्रव्यौघाः परिसञ्चिताः खलु मया यस्याः कृते साम्प्रतं नीवाराञ्जलिनापि केवलमहो सेयं कृतार्था तनुः ॥ ८३ ॥ कृत्वा शस्त्रविभीषिकां कतिपयग्रामेषु दीनाः प्रजा मथ्नन्तो विटजल्पितैरुपहताः क्षोणीभुजस्ते किल । विद्वांसोऽपि वयं किल त्रिजगतीसर्गस्थितिव्यापदामीशस्तत्परिचर्यया न गणितो यैरेष नारायणः ॥ ८४ ॥ कृमयो भस्म विष्ठा वा निष्ठा यस्ये-

---

शरीरमें रहता है उस मायासे दूर विचरनेवाले व्यक्तिके लिये कैसा कर्तव्य और कैसा अकर्तव्य ॥ ७५ ॥ विचार करनेपर यह समझमें आता है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशके सहित इस सारे संसारको तथा ब्रह्मा आदि देवताओंको काल निगल जाता है। हम बहुतसे लोगोंको निरंतर मरते हुए भी देखते हैं, पर संसारके जालमें फँसानेवाली और मोहमें डालनेवाली व्यर्थकी माया-बुद्धिको नहीं छोड़ पाते ॥ ७६ ॥ हे काम ! तुम अपने धनुषकी टंकारसे अपने हाथको क्यों व्यर्थ कष्ट दे रहे हो । अरे कोयल ! तू इतनी कोयल मीठी कूकसे क्यों चिल्लाए जा रहा है। हे सुन्दरी ! तुम्हारी मीठी सरस सुन्दर और रसीली चितवन सब बेकार है क्योंकि अब मेरा चित्त शंकरके चरणोंका ध्यान-रूपी अमृत पीनेमें लग गया है ॥ ७७ ॥ हे ब्राह्मण ! जिस धन, बन्धु और स्त्रीके लिये तुम प्राण दिए डाल रहे हो उनसे क्या लाभ है ? इस शरीरमें व्याप्त होनेवाले आत्माको ढूँढ़ो और सोचो कि तुम्हारे पिता और पितामह सब कहाँ चले गए ॥ ७८ ॥ मैंने बहुत दिनोंतक सुन्दरी नवेलीके स्तनपर चन्दनका लेप किया, उसपर कमलकी मालाएँ पहिनाईं और आदरसे उसकी स्तुति की, उसके हाथ जोड़े और उसे स्मरण किया। यह सब कुछ करते हुए भी ईश्वरके लिये कुछ नहीं किया ॥ ७९ ॥ परिवारके पालन-पोषणकी चिन्तामें डूबे हुए मनुष्यके कुल, स्वभाव तथा सभी गुण कच्चे घड़ेमें रक्खे हुए जलके समान शरीरके साथ ही समाप्त हो जाते हैं ॥ ८० ॥ हे मृगी ! तुम्हारा कल्याण हो। हे जंगल ! तुम्हारा प्रत्येक वृक्ष नीरोग रहे। हे नदी ! तुम्हरा मंगल हो। हे नदीके तट ! तुम्हारा कुशल हो। हे पत्थरो ! तुम सुखी रहो, क्योंकि बुरे फल देनेवाले रनिवाससे किसी-किसी प्रकार छुटकारा पाकर हमारा मन इस समय आप लोगोंसे मिलनेके उतावला हो रहा है ॥ ८१ ॥ कालरूपी कौएने निश्चय ही तुम्हारे सिरपर अपना घोंसला बना रक्खा है, उसीकी बींट यह तुम्हारे बालोंके उजलेपनके रूपमें दिखाई पड़ रही है ॥ ८२ ॥ मैंने जिस शरीरके लिये दीनोंको दुःख दिया, अपने सम्बन्धियोंसे झगड़ा किया, परलोकमें होनेवाली भयानक दुर्गतिपर भी विचार नहीं किया और धनकी राशिका संग्रह करता रहा, वही शरीर इस समय केवल अञ्जलीभर तिन्नीके चावलसे ही सन्तुष्ट हो रहा है ॥ ८३ ॥ भोगी लोगोंकी उलटी-सीधी बातोंमें आकर जो राजा अपनी दीन प्रजाको शस्त्रका भय दिखाकर दुःख देते हैं, उनकी सेवामें लगकर हमने सब समझते हुए भी इस त्रिलोककी रचना, पालन और संहार करनेवाले भगवान् नारायणकी सेवाकी चिन्ता नहीं की ॥ ८४ ॥ जो शरीर भूमिमें गाड़ देनेपर कीड़ा, जला देनेपर भस्म और सियार तथा गिद्ध आदिसे खा लिए जानेपर मल हो जाता है उस शरीरको दूसरोंको कष्ट देनेमें लगाना कहाँकी अच्छी

यमीदृशी । स कायः परतापाय युज्यतामिति को नयः ॥ ८५ ॥ कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम् । मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशो गर्भस्थैः क्षुधितैर्भृशम् ॥ ८६ ॥ कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैराचिततनुः । क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरककपालावृतगलः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः ॥ ८७ ॥ केचिद्वदन्ति धनहीनजनो जघन्यः केचिद्वदन्ति गुणहीनजनो जघन्यः । व्यासो वदत्यखिलवेदविशेषविज्ञो नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः ॥ ८८ ॥ केनाप्यनर्थरुचिना कपटं प्रयुक्तमेतत्सुहृत्तनयबन्धुमयं विचित्रम् । कस्यात्र कः परिजनः स्वजनो जनो वा स्वप्नेन्द्रजालसदृशः खलु जीवलोकः ॥ ८९ ॥ केशः काशस्तबकविलासः कायः प्रकटितकरभविलासः । चक्षुर्दग्धवराटककल्पं त्यजति न चेतः काममनल्पम् ॥ ९० ॥ को देशः कानि मित्राणि कः कालः कौ व्ययागमौ । कश्चाहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥ ९१ ॥ कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्षमशनं शय्या श्मशाने वने । मित्रामित्रसमानता पशुपतेश्चिन्ताथ शून्यालये स्वात्मानन्दमदप्रमोदमुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥९२॥ क्लेशत्यागकृतेऽर्पितेन करणव्यूहेन देहेन च स्वानर्थं वत जन्तुरर्जयति चेन्मन्तुर्नियन्तुः कुतः । शस्त्रे शत्रुजयाय नैजगुरुणादत्तेऽथ तेनैव चेत्पुत्रो हन्ति निजं वपुः कथय रे तत्रापराधी तु कः ॥९३॥ क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः । क्वचिद्भिक्षावृत्तिः क्वचिदपि च मृष्टाशनरुचिर्महात्मा योगज्ञो न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥ ९४ ॥ क्वैतद्वक्त्रारविन्दं क्व तदधरमधु क्वायतास्ते कटाक्षाः क्वालापाः कोमलास्ते क्व च मदनधनुर्भङ्गुरो भ्रूविलासः । इत्थं खट्वाङ्गकोटौ प्रकटितदशनं मञ्जुगुञ्जत्समीरं रागान्धानामिवोच्चैरुपहसति महामोह-

---

बात है ॥ ८५ ॥ गर्भमें निवास करनेवाले सुकुमार प्राणीको जब गर्भमें रहनेवाले भूखे कीड़े दिनरात काटते रहते हैं तब वह घबराकर मूर्च्छित हो जाता है ॥ ८६ ॥ दुबला, काना, लँगड़ा, बहरा, बिना पूँछका, घाव, पीप और कीड़ोंसे भरा हुआ, भूखा, बूढ़ा, गलेमें घड़ेकी मुँहड़ी लटकाए हुए कुत्ता भी कुतियोंके पीछे दौड़ता रहता है । कामकी महिमा तो देखिए कि वह मरेको भी मारता रहता है ॥ ८७ ॥ कोई कहते हैं बिना धनका मनुष्य व्यर्थ है, कोई कहते हैं बिना गुणके मनुष्य व्यर्थ हैं, पर सब शास्त्रोंका सिद्धान्त जाननेवाले व्यासजी कहते हैं कि वास्तवमें व्यर्थ तो वही मनुष्य है जो भगवान्‌को स्मरण नहीं करता ॥ ८८ ॥ यह सब मित्र, पुत्र और बन्धु आदिका धोखा न जाने किसने फैला रक्खा है ! भला यहाँ कौन किसका परिवार है, कौन सम्बन्धी है और कौन अपना है ! यह संसार तो नटके खेलके समान है ॥ ८९ ॥ बुढ़ापेमें बाल तो काँसके फूलके समान उजले हो जाते हैं, शरीरमें ऊँटके कोहानके समान कूबड़ निकल आता है और आँखें जली हुई कौड़ीके समान हो जाती हैं फिर भी मनके मनोरथ नहीं छूटते ॥९०॥ मनुष्यको सदा यह सोचते रहना चाहिए कि यह कौन देश है, कौन हमारे मित्र हैं, कैसा समय है, हमारी कितनी आय और व्यय है, मैं क्या हूँ और मेरी शक्ति कितनी है ॥९१॥ जिसकी लँगोटी और गुदड़ी सैकड़ों छेदोंवाली और अत्यन्त पुरानी हो, जिसे बिना परिश्रमसे भिक्षा मिल जाती हो, बिना चिन्ताके भोजन चल जाता हो, वनके श्मशानमें जाकर जो नींद लेता हो, जो शत्रु और मित्र सबको समान समझता हो, जो एकान्तमें भगवान् शंकरका स्मरण करता हो और जो आनन्द-रूपी आत्माका साक्षात्कार करके प्रसन्नचित्त रहता हो वही योगी सदा सुखी रहता है ॥९२॥ संसारकी विपत्तियोंसे छुटकारा पानेके लिये ईश्वरने हमें इन्द्रिय तथा शरीर दिया है । यदि प्राणी उनसे पाप इकट्ठा करे तो इसमें परमेश्वरका क्या अपराध ? यदि कोई अपने शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिये अपने पितासे शस्त्र पाकर उसीसे अपनी हत्या कर ले तो इसमें किसका अपराध है ॥९३॥ जो योगी महात्मा कभी गुदड़ी और कभी सुन्दर रेशमी वस्त्र पहनते हैं, कभी धरतीपर और कभी पलँगपर सो रहते हैं, कभी भिक्षाके अन्नसे और कभी स्वादिष्ट भोजनसे पेट भर लेते हैं वे सुख-दुःखकी चिन्ता नहीं करते ॥ ९४ ॥ मरी हुई स्त्रीके जिस ठिकठांके एक कोनेमें पड़े हुए खुले मुखके दाँतोंमेंसे होकर सरसराता हुआ वायु प्रेममें अन्धे मनुष्योंके विशाल मोह-रूपी जालकी मानो यह कहकर हँसी उड़ा रहा है कि देखो ! आज न वह मुख-रूपी कमल है, न अधरामृत है, न तिरछी चितवन है, न कोमल आलाप हैं, न कामके धनुषके समान टेढ़ी भौंहें ही हैं ॥ ९५ ॥ यह प्राणी नटके समान कुछ समय-तक बालक, कुछ समय-तक कामी तरुण, कुछ समय-तक दरिद्र,

जालं कपालम् ॥ ६५ ॥ क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डिततनुर्नरः संसाराङ्के विशति यमधानीजवनिकाम् ॥६६॥ क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषतः सोढा दुःसहशीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तपः ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शम्भोः पदं तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चितम् ॥ ६७ ॥ क्षिपसि शुकं वृषदंशकरदने मृगमर्पयसि मृगादनवदने। वितरसि तुरगं महिषविषाणे विदधच्चेतो भोगविताने ॥ ६८ ॥ क्षोणीपर्यटनं श्रमाय विदुषां वादाय विद्यार्जिता मानध्वंसनहेतवे परिचितास्ते ते धराधीश्वराः। विश्लेषाय सरोजसुन्दरदृशामास्ये कृता दृष्टयः कुज्ञानेन मया प्रयागनगरे नाराधि नारायणः ॥ ६९ ॥ गङ्गातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य ब्रह्मज्ञानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य। किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः कण्डूयन्ते जरठहरिणाःशृङ्गमङ्गे मदीये॥१००॥ गङ्गोत्तुङ्गतरङ्गरिङ्गणलघूत्सर्पन्मरुच्छीतलान्गुञ्जन्षट्पदमञ्जुवञ्जुललसत्कुञ्जोपकण्ठान्मुदा। अध्यास्य प्रणिधाय मानसमहो शम्भोः पदाम्भोरुहे धन्याः प्राप्य परं पदं प्रतिदिनं नन्दन्ति योगं विना ॥ १०१ ॥ गतः कामकथोन्मादो गलितो यौवनज्वरः। गतो मोहश्च्युता तृष्णा कृतं पुण्याश्रमे मनः ॥ १०२ ॥ गतः कालो यत्र द्विचरणपशूनां क्षितिभुजां पुरः स्वस्तीत्युक्त्वा विषयसुखमास्वादितमभूत्। इदानीमस्माकं तृणमिव समस्तं कलयतामपेक्षा भिक्षायामपि किमपि चेतस्त्रपयति ॥ १०३ ॥ गतः कालो यत्र प्रणयिनि मयि प्रेमकुटिलः कटाक्षः कालिन्दीलघुलहरिवृत्तिः प्रभवति। इदानीमस्माकं जरठकमठीपृष्ठकठिना मनोवृत्तिस्तत्किं व्यसनिनि मुधैव ग्लपयसि ॥ १०४ ॥ गतसारेऽत्र संसारे सुखभ्रान्तिः शरीरिणाम्। लालापानमिवाङ्गुष्ठे बालानां स्तन्यविभ्रमः ॥ १०५ ॥ गतास्तात-

कुछ समयतक धनी, कुछ समयतक बुढ़ापेसे शिथिल अङ्गवाला, कुछ समयतक सिकुड़े हुए चमड़ेसे युक्त शरीरवाला बनकर इस संसाररूपी रंगमंचपर खेल खेलता हुआ यमपुरी-रूपी परदेके भीतर चला जाता है ॥९६॥ मैंने क्षमा तो किया किन्तु सहनशीलतापूर्वक नहीं, घरके सुख तो छोड़े, किन्तु सन्तोषपूर्वक नहीं, असह्य शीत वायु और धूपका दुःख तो सहा किन्तु तप नहीं किया, रातदिन जी-जानसे धनकी चिन्ता तो करता रहा किन्तु शंकरके चरणोंका ध्यान नहीं किया। इस प्रकार मैंने वे ही कर्म किए जो मुनि लोग करते हैं किन्तु उनके फलसे सदा दूर रहा ॥ ९७ ॥ भोगोंमें मन लगाना वैसा ही है जैसा बिल्लीके दाँतोंमें सुग्गा डाल देना, सिंहके मुँहमें हरिण पहुँचा देना और भैंसेकी सींगमें घोड़ेको फँसा देना ॥ ९८ ॥ मैंने केवल थकनेके लिये सारी धरतीका चक्कर लगाया, विद्वानोंसे विवाद करनेके लिये ही विद्या पढ़ी, दूसरोंका सम्मान नष्ट करनेके लिये राजाओंका साथ किया, केवल वियोगके दुःखका अनुभव करनेके लिये कमल-नयनी नवेलियोंपर दृष्टि डाली पर अज्ञानमें पड़कर प्रयागमें नारायणकी सेवा न की ॥ ९९ ॥ क्या मुझे ऐसे सुन्दर दिन मिल पावेंगे जब गंगाके तटपर हिमालयकी किसी चट्टानपर पद्मासन लगाकर ब्रह्मज्ञानके अभ्यासमें योगनिद्रा लेनेवाले मेरे शरीरको बूढ़े हरिण निर्भय होकर अपने सींगोंसे खुजलायँगे ॥ १०० ॥ वे लोग धन्य हैं जो गंगाकी ऊँची लहरोंसे मिलकर उठे हुए वायुसे शीतल बनी हुई, गुंजार करनेवाले भौंरोंसे सुन्दर लगनेवाली और बेतसे घिरी हुई झाड़ियोंके पासवाली भूमिमें प्रसन्नतासे बैठकर भगवान् शंकरके चरणकमलमें मन लगाकर योगकी क्रियाके बिना ही प्रतिदिन परम-पदका आनन्द लेते हैं ॥ १०१ ॥ संन्यासमें मन लगा लेनेसे कामकी चर्चाका पागलपन दूर हो जाता है, यौवनका ज्वर शान्त हो जाता है और अज्ञान तथा लोभ जाता रहता है ॥ १०२ ॥ वह समय बीत गया जब मैं दो पैरवाले पशु राजाओंके सामने 'आपका कल्याण हो' कहकर विषयोंके सुखका स्वाद लिया करता था। अब तो मैं सब वस्तुओंको इतना तृणके समान समझता हूँ कि भिक्षाकी आवश्यकता देखकर भी अब मुझे लाज लगती है॥१०३॥ वे दिन जाते रहे जब मुझ प्रेमीपर यमुनाकी नन्हीं-नन्हीं लहरोंके समान चंचल तथा प्रेमपूर्ण कटाक्षका प्रभाव पड़ा करता था। अब तो मेरे मनकी वृत्ति पुराने कछुएकी पीठके समान बड़ी कड़ी पड़ गई है। इसलिये हे चंचल मनोवृत्ति! अब तू मुझे क्यों सताए डाल रही है ॥ १०४ ॥ जैसे बच्चेको अपने अँगूठेके साथ अपनी ही लार पीते हुए दूधका भ्रम हो जाता है वैसे ही इस संसारके प्राणियोंको भोगमें सुखका भ्रम होने लगता है ॥ १०५ ॥ पिता, भाई आदिके मुखसे निकली हुई मीठी-मीठी बातें सुननेका समय बीत गया और धनके भोगके

भ्रातृप्रमुखसुखपीयूषमधुराः पुरा लक्ष्मीस्तैव्यव्यसनसरसास्तेऽपि दिवसाः। अदः शान्तं स्वान्तं सपदि यदि निर्वेदपदवीं भजत्यभ्यासोऽयं जनयति सुखं भावविमुखम्॥ १०६॥ गतेनापि न सम्बन्धो न सुखेन भविष्यता। वर्तमानं गुणातीतं सङ्गतिः कस्य केन वा॥ १०७॥ गन्धर्वनगराकारः संसारः क्षणभङ्गुरः। मनसो वासनैवेयमुभयोर्भेदसाधनम्॥ १०८॥ गलितानीन्द्रलक्षाणि बुद्बुदानीव वारिणि। मां जीवितनिबद्धाशं विहसिष्यन्ति साधवः॥ १०९॥ चर्मखण्डं द्विधाभिन्नमपानोद्गारधूपितम्। ये रमन्ते नरास्तत्र कृमितुल्याः कथं न ते॥ ११०॥ चलति गलितधैर्यः को न मोक्षान्तरालात्कुवलयदलनीला यत्पुरो वक्रिताङ्गी। इममुपशमरूपं मार्गमाखण्डयन्ती चलति कुवलयाक्ष्या भ्रूलता सर्पिणीव॥ १११॥ चित्तभूवित्तभूमत्तभूपालकोपासनावासनायासनानाश्रमैः। साधुता सा धुता साधिता साधिता किं तया चिन्तया चिन्तयामः शिवम्॥ ११२॥ चिरं ध्याता रामा क्षणमपि न रामप्रतिकृतिः परं पीतं रागाधरमधु न रामङ्घ्रिसलिलम्। नता रुष्टा रामा यदरचि न रामाय विनतिर्गतं मे जन्माग्र्यं न दशरथजन्मा परिगतः॥ ११३॥ चेतोहरा युवतयः स्वजनोऽनुकूलः सद्बान्धवाः प्रणतिगर्भगिरश्च भृत्याः। गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः संमीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति॥ ११४॥ जडास्तपोभिः शमयन्ति देहं बुधा मनश्चापि विकारहेतुम्। श्वा मुक्तमस्त्रं दशतीति कोपात्क्षेप्तारमुद्दिश्य हिनस्ति सिंहः॥ ११५॥ जननीजनकापत्यप्रियरमणीप्रभृतिशृङ्खलाजालम्। विदलय्य सोऽपि सुकृती विहरति गजवन्महामत्तः॥ ११६॥ जनेषु मध्ये जनवद्विचेष्टते वने मृगैश्चापि समं मृगायते। न भोगमप्यर्थयते न वर्जयत्यवाप्ततत्त्वस्य न दुर्ग्रहः क्वचित्॥ ११७॥ जन्मपल्वलमत्स्यानां चित्तकर्दमचारिणाम्। पुंसां दुर्वासना रज्जुर्नारी बडिशपि-

---

अहंकारसे भरे हुए दिन भी जाते रहे। इस समय यदि यह शान्तिपूर्ण चित्त वैराग्य धारण कर लेता तो संसारके विषयोंको छोड़कर यही अभ्यास सुख देता॥१०६॥ जब न तो बीते हुए और आनेवाले सुखमें ही कोई सम्बन्ध है और न वर्तमान सुख ही देरतक ठहरनेवाला है तब किसके साथ सम्बन्ध ही किसका है॥ १०७ यह संसार गन्धर्वनगरके समान क्षणभंगुर है। इसमें मनकी वासनाके कारण ही ईश्वर तथा जगत्में भेद जान पड़ता है॥ १०८॥ जब जलके बुलबुलेके समान इस जगत्में लाखों इन्द्र गल गए तब मुझे जीनेकी आशामें बँधे देखकर ज्ञानी लोग अवश्य मेरी हँसी उड़ायँगे॥ १०९॥ अपान वायुसे मिले हुए फटे हुए चमड़ेके टुकड़े (योनि) में जो लोग सुख मानते हैं उन्हें कीड़ोंके समान ही क्यों न मान लिया जाय॥ ११०॥ मोक्ष पाया हुआ भी ऐसा कौन पुरुष है जो अपने सामने कमलनयनाकी नीलकमलकी पंखुड़ियोंके समान बाँकी भौंहोंको नागिनकी भाँति शान्तिके मार्गको डसती हुई-सी मटकते हुए देखकर धीरज न खो दे और चञ्चल न हो जाय॥ १११॥ काम तथा धनके अभिमानमें मतवाले राजाओंके सेनाकी इच्छा, परिश्रम तथा अनेक प्रकारके भ्रमोंसे मैंने सज्जनताको दूर भगाकर मानसिक रोगोंका संग्रह किया पर अब उनकी चिन्तासे क्या लाभ? अब तो निश्चिन्त होकर भगवान्का चिन्तन करें॥ ११२॥ मैंने बहुत दिनोंतक स्त्रीका तो ध्यान किया पर क्षण भर भी रामकी मूर्तिका ध्यान नहीं किया; स्त्रीके अधरामृतका पान तो किया पर रामके चरणोदकका पान नहीं किया; रूठी हुई नायिकाके सामने तो सिर झुकाया पर रामके सामने कभी सिर नहीं झुकाया। इस प्रकार मेरा यह सुन्दर जन्म अकारथ होकर बीत गया पर दशरथके पुत्र रामसे भेंट न हो पाई॥ ११३॥ मनको मोहनेवाली नवेलियाँ, हितैषी सम्बन्धी, प्रेमभरी बातें करनेवाले सेवक, द्वारपर चिग्घाड़नेवाले हाथी और चंचल घोड़े, ये सब आँख मूँद जानेपर कोई साथ नहीं देते॥ ११४॥ मूर्ख लोग तपस्यासे देहको वैसे ही गलाते हैं जैसे कुत्ता अपने ऊपर फेंके हुए अस्त्रको ही क्रोधसे चबाने लगता है और बुद्धिमान् लोग विकारके कारण मनको वैसे ही सुखाते हैं। जैसे सिंह क्रोध करके अस्त्र छोड़नेवालेपर ही आक्रमण कर बैठता है॥ ११५॥ माता-पिता-सन्तान, प्यारी स्त्री आदि साँकलोंको तोड़कर वह पुण्यात्मा मनुष्य हाथीकी भाँति मस्त होकर विचरण कर रहा है॥ ११६॥ कोई व्यक्ति मनुष्योंके समीप मनुष्यों जैसा आचरण करता है और पशुओंके साथ पशुओं जैसा। न वह भोग चाहता है, न छोड़ता है। यथार्थमें तत्त्व प्राप्त किए हुए व्यक्तिका कहीं दुराग्रह नहीं रह जाता॥ ११७॥ जन्मरूपी गड्ढेके चित्तरूपी कीचड़में पड़े पुरुषरूपी मछलियोंको फँसानेके लिये दुर्वासनारूपी रस्सीमें स्त्रीरूपी मांस-पिण्ड लगा हुआ

णिडका ॥ ११८ ॥ जन्मान्तरसहस्राणि वियोगः सङ्गमः क्षणम् । तथापि निर्घृणं चेतःप्रियसङ्गममिच्छति॥११९॥ जन्मैव व्यर्थतां नीतं भवभोगप्रलोभिना । काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया ॥ १२० ॥ जरासुधालेपलिते शरीरान्तःपुरान्तरे । अशक्तिरार्तिरापच्च तिष्ठन्ति सुखमङ्गनाः ॥ १२१ ॥ जातोऽहं जनको ममैष जननी क्षेत्रं कलत्रं कुलं पुत्रा मित्रमरातयो वसु बलं विद्या सुहृद्बान्धवाः । चित्तस्पन्दितकल्पनामनुभवन्विद्वानविद्यामयीं निद्रामेत्य विघूर्णितो बहुविधान्स्वप्नानिमान्पश्यति ॥ १२२ ॥ जानन्त्येके प्रगुणितधियो धर्मकर्मादिशास्त्रं जानन्त्येके निपुणमतयो दैवसिद्धान्तरत्नम् । जानन्त्येतत्सकलमपरे तन्न जानन्ति केचित् लीलारब्धत्रिभुवनजयो जीयते येन मृत्युः ॥ १२३ ॥ जिह्वे लोचननासिके श्रवण हे त्वक् चापि नो वार्यसे सर्वेभ्योऽस्तु नमः कृताञ्जलिरहं सप्रश्रयं प्रार्थये । युष्माकं यदि सम्मतं तदधुना नात्मानमिच्छाम्यहं होतुं भूमिभुजां निकारदहनज्वालाकराले गृहे ॥ १२४ ॥ तडिन्मालालोलं प्रतिदिवसदत्तान्धतमसं भवे सौख्यं हित्वा शमसुखमुपादेयमनघम् । इति व्यक्तोद्गारं चटुलवचसः शून्यमनसो वयं वीतव्रीडाः शुक इव पठामः परममी ॥ १२५ ॥ तरत्तरलतृष्णेन किमिवास्मिन्धरातले । मया न कृतमज्ञेन पश्चात्तापाभिवृद्धये ॥ १२६ ॥ तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मलविवेकदीपकः । यावदेव न कुरङ्गचक्षुषां ताड्यते चटुललोचनाञ्चलैः ॥ १२७ ॥ तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि क्षुधार्त्तः सञ्शालीन्कवलयति मांसाज्यकलितान् । प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं प्रतीकारं व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥ १२८ ॥ ते तीक्ष्णदुर्जननिकारशरैर्न भिन्ना धीरास्त एव शमसौख्यभुजस्त एव । सीमन्तिनीभुजलतागहनं व्युदस्य येऽवस्थिताः शमफलेषु तपोवनेषु ॥ १२९ ॥ तैस्तैः कस्तूरिकाद्यैः स्तबकितमपि यद्याति

है ॥११८॥ यद्यपि वियोग सहस्रों जन्मोंका है और मिलन क्षण भरका, तथापि यह दुष्ट चित्त प्रियका मिलन ही चाहता है ॥११९॥ संसारके भोगोंके लोभमें पड़कर मैंने अपना जन्म इस प्रकार व्यर्थ कर डाला मानो काँचके मोलपर चिन्तामणि रत्न ही बेच डाला हो ॥ १२० ॥ बुढ़ापे-रूपी चूनेसे पुते हुए शरीररूपी अन्तःपुरमें निर्बलता, पीड़ा और विपत्ति ये स्त्रियाँ सुखपूर्वक निवास करती हैं ॥ १२१ ॥ मैं उत्पन्न हुआ हूँ, ये मेरे पिता हैं, यह मेरी माँ है, यह मेरा खेत है, यह मेरी स्त्री है, ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरा मित्र है, ये मेरे शत्रु हैं, यह मेरा धन है, यह मेरा बल है, यह मेरी विद्या है और ये मेरे बन्धु-बान्धव हैं, इस प्रकारकी कल्पनाओंमें डूबा हुआ ज्ञानवान् पुरुष भी अज्ञानरूपी निद्रामें पड़ा हुआ बराबर अनेक प्रकारके सपने देखता रहता है ॥ १२२ ॥ कुछ अत्यधिक बुद्धिमान् ऐसे हैं जो धर्म-कर्म आदिके शास्त्रको भली प्रकार जानते हैं, कुछ ऐसे हैं जो दैवी सिद्धान्तों (ज्योतिष) को भलीभाँति जानते हैं और कुछ ऐसे लोग हैं जो सब कुछ एक साथ जानते हैं किन्तु वे यह सब जानकर भी कुछ नहीं जानते क्योंकि खेल-खेलमें ही तीनों लोक जीत लेनेवाली मृत्यु किस उपायसे जीती जा सकती है यह तो वे जानते ही नहीं ॥१२३॥ हे जीभ ! हे आँख ! हे नाक ! हे कान ! हे खाल ! हम तुम्हें रोक नहीं रहे हैं । तुम्हें हमारा नमस्कार है । हम हाथ जोड़कर तुमसे विनयपूर्वक प्रार्थना कर रहे हैं कि यदि तुम्हारी भी सम्मति हो तो अब हम तिरस्कारकी अग्निकी ज्वालासे भरे हुए राजाओंके घरोंमें अपनी आहुति नहीं देना चाहते ॥ १२४ ॥ बिजलीके समान चंचल और प्रतिदिन अंधकारमें डालनेवाले इस संसारका सुख छोड़कर निर्दोष शान्ति-रूपी सुखकी खोज करनी चाहिए, यह हम लोग ऊँचे स्वरसे निर्लज्ज होकर सुग्गेके समान कहते तो रहते हैं पर सब ओरसे अपना मन नहीं खींचते ॥ १२५ ॥ भयंकर तृष्णामें पड़कर मैंने मूर्खतावश इस पृथ्वीपर अपना पछतावा बढ़ानेके लिये क्या-क्या नहीं किया ॥ १२६ ॥ बड़े-बड़े पुण्यात्माओंका निर्मल ज्ञान-दीपक तभीतक टिमटिमाता है जबतक उसे मृगनयनी नवेलियोंके चञ्चल नयनी-रूपी आँचलकी झकोर नहीं लगती ॥ १२७ ॥ प्याससे मुँह सूखनेपर लोग स्वादिष्ट और सुगन्धित जल पीते हैं, भूख लगनेपर मांस और घीसे मिला भात खाते हैं, कामाग्नि भड़कनेपर कसकर स्त्रीको छातीसे लगाते हैं, इस प्रकार रोग दूर करनेकी औषधिको ही प्राणी सुख समझे बैठा है, पर सच्चा सुख तो तब समझना चाहिए जब रोग ही न उत्पन्न हो ॥ १२८ ॥ स्त्रियोंकी भुजा-रूपी लताका वन छोड़कर जो लोग शान्ति देनेवाले तपोवनमें जा पहुँचते हैं वे ही दुर्जनोंके तिरस्कार-रूपी बाणोंसे नहीं बिंध पाते, वे ही धीर हैं और वे ही शान्तिके सुखका अनुभव करते हैं ॥ १२९ ॥ अरे

दौर्गन्ध्यमारात् दृष्ट्वा यस्येह निष्ठा कृमिकुलमथवा भूरि भस्माथवापि। कृत्वा धर्मस्य बाधामनुदिवसमरे वञ्चनात्किम्परेषामात्मन् कोऽयं विमोहस्तव तदपि वपुः पाल्यते यत्त्वयेत्थम् ॥१३०॥ त्यक्त्वा सङ्गमपारपर्वतगुहागर्भे रहः स्थीयतां रे रे चित्त कुटुम्बपालनविधौ को वाऽधिकारस्तव। यस्यैते पुरतः प्रसारितदृशः प्राणप्रियाः पश्यतो नीयन्ते यमकिङ्करैः करतलादाच्छिद्य पुत्रादयः ॥ १३१ ॥ अत्यन्तसिद्धाञ्जननिर्मलाक्षैस्तपोधनैरप्यनवेक्षितं यत्। अवेक्षते धाम तदेव काश्यामात्यन्तिकेनाक्षिनिमीलनेन ॥ १३२ ॥ त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ। विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥ १३३ ॥ दधति तावदमी विषयाः सुखं स्फुरति यावदियं हृदि मूढता। मनसि तत्त्वविदां तु विवेचके क्व विषयाः क्व सुखं क्व परिग्रहाः ॥ १३४ ॥ दन्तैः प्रस्थितमग्रतस्तदनु भोः शौक्ल्यं धृतं मूर्धजैः कर्णाभ्यामपि वाग्विलासरचना कष्टात्समाकर्ण्यते। नेत्राभ्यामपि चापलं युवतिषु त्यक्तं गतं यौवनं सार्थेऽस्मिन्श्चलिते कथं पुनरहं यातास्मि तच्चिन्तये ॥ १३५ ॥ दाराः परिभवकारा बन्धुजनो बन्धनं विषं विषयाः। कोऽयं जनस्य मोहो ये रिपवस्तेषु सुहृदाशा ॥ १३६ ॥ दिनमेकं शशी पूर्णः क्षीणस्तु बहुवासरान्। सुखाद्दुःखं सुराणामप्यधिकं का कथा नृणाम् ॥ १३७ ॥ दिवसरजनीकूलच्छेदैः पतद्भिरनारतं वहति निकटे कालस्रोतः समस्तभयावहम्। इह हि पततां नास्त्यालम्बो न चापि निवर्तनं तदिह महतां कोऽयं मोहो यदेष मदाविलः ॥ १३८ ॥ दीनोद्धरणसमुचितैरनुपचितैर्वञ्चितोऽसि यदि विभवैः। चलितं वनाय तपसे स रिपुर्यस्त्वां निवारयति ॥१३९॥ दीप्तोभयाग्रवातारिदारूदरगकीटवत्। जन्ममृत्युसमाश्लिष्टे शरीरे बत सीदति ॥ १४० ॥ दृष्ट्वा वेद्यं पर-

आत्मा! कस्तूरी आदि न जाने कितनी सुगन्धित वस्तुओंसे भली-भाँति चुपड़े जानेपर भी शरीरसे दुर्गन्धि आते देखकर और अन्तमें उसमें कीड़े पड़ना या राख होना जानकर भी भला धर्मको कुछ न समझकर दूसरोंको ठगनेसे तुझे क्या लाभ है? अरे! यह तेरा कैसा मोह है कि तू अभी तक अपने शरीरको पुष्ट करनेमें लगा है? ॥ १३० ॥ अरे चित्त! संसारसे चाह हटाकर पर्वतकी गुफाके भीतर एकान्तमें जा बस क्योंकि जब यमके दूत सामने आँखें फैलाकर देखती हुई प्राणप्यारियों तथा पुत्र आदिको तेरे हाथसे छीन ले जाते हैं तब भला कुटुम्बके पालन-पोषण करनेका तुझे अधिकार ही क्या है? ॥ १३१ ॥ वेदान्तमें बताए हुए सिद्धान्तका आँजन लगा लेनेसे जिनके ज्ञानके नेत्र खुल गए हैं वे तपस्वी भी जिस ब्रह्मको नहीं देख पाते उस ब्रह्म-तेजको प्राणी केवल काशीमें प्राण देने भरसे देख लेता है॥ १३२ ॥ खाल, मांस, रुधिर, नसें, मज्जा, हड्डी, मल, मूत्र, और पीपसे भरे हुए शरीरमें सुख माननेवालोंमें और कीड़ोंमें अन्तर ही क्या है ॥ १३३ ॥ जबतक अन्तःकरणमें तमोगुणका प्रभाव रहता है तभीतक प्राणियोंको विषयोंमें सुखका भान होता है पर जिनके मनमें सत्य और मिथ्याका ज्ञान हो जाता है उन ज्ञानियोंको विषयोंका सुख और संग्रह सब व्यर्थ जान पड़ते हैं॥ १३४ ॥ दाँत तो पहले ही गिर गए, बालोंमें उजलापन आ गया, कान भी ऐसे हो गए कि आमोद-प्रमोदकी बात नहीं सुन पाते, आँखोंने भी अपनी चंचलता छोड़ दी, यौवन भी जाता रहा। अब सब शक्तियोंके चले जानेपर मुझे केवल यही चिन्ता रह गई है कि मैं किस प्रकार जाऊँ ॥१३५॥ स्त्री तिरस्कारका कारण है, भाई-बन्धु बन्धन हैं, संसारके सब भोग विषके समान हैं फिर भी लोगोंका अज्ञान तो देखो कि वे शत्रुओंसे ही मित्रपनेकी आशा रखते हैं ॥ १३६ ॥ चन्द्रमा केवल पूर्णिमाको ही पूर्ण रहता है, शेष चौदह दिन क्षीण रहता है। इस प्रकार जब देवताओंतकको सुखकी अपेक्षा दुःख ही अधिक भोगना पड़ता है तब मनुष्योंकी तो गिनती ही क्या है ॥१३७॥ इस जीवनमें पास ही भयंकर कालरूपी प्रवाह बह रहा है, आसपास दिन और रात-रूपी करारे टूट-टूटकर गिर रहे हैं, इसमें पड़नेवालोंको न कोई सहारा मिल पाता न कोई लौट ही पाता है, फिर भी बुद्धिमान लोगोंमें यह अहंकार भरा हुआ अज्ञान आ कैसे पहुँचा ॥ १३८ ॥ दरिद्रता दूर करनेमें समर्थ थोड़े बहुत धनने यदि तुम्हें ठग लिया हो तो तपस्या करनेके लिये वन चले जाओ। जो तुम्हें रोके वही तुम्हारा शत्रु है॥१३९॥ जन्म और मृत्युसे युक्त इस शरीरमें प्राणी वैसे ही कष्ट पा रहा है जैसे दोनों सिरोंसे जलती हुई अरंडकी लकड़ीकी पोलमें पड़ा हुआ कीड़ा कष्ट पाता है॥ १४० ॥ जानने-योग्य आत्मज्ञान-रूपी परम पदको देखकर और सबके भीतर और बाहर केवल अपने एक आत्माकी सत्ता मानकर, नित्य स्वयं-प्रकाश-

मथ पदं स्वात्मबोधस्वरूपं बुद्ध्वात्मानं सकलवपुषामेकमन्तर्बहिःस्थम् । भूत्वा नित्यं सदुदिततया स्वप्रकाशस्वरूपं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥१४१॥ दृष्ट्वैव विकृतं कार्यं वायुस्पर्शविवर्जितम् । ये तु निर्व्याजमासक्तास्तेभ्योऽपि बिभिमो वयम् ॥ १४२ ॥ देशे देशे दुराशाकवलितहृदयो निष्कृपाणां नृपाणां धावंधावं पुरस्तादतिकुमतिरहं जन्म सम्पादयामि । आधायाधाय राधाधव तव चरणाम्भोजमन्तः समाधावन्येऽरण्येऽतिपुण्ये पुलकितवपुषो वासरान्वाहयन्ति ॥ १४३ ॥ दैन्यं क्वचित्क्वचन मन्मथजा विकाराः कुत्राप्यनेकविधबन्धुजनप्रपञ्चः । क्वापि प्रभुत्वघनकल्पितमीश्वरत्वमित्येकवैकृतमिदं जगदाविभाति ॥ १४४ ॥ धनं तावल्लब्धं कथमपि तथाप्यस्य नियतं विनाशेऽलाभे वा तव सति वियोगोऽप्युभयथा । अनुत्पादः श्रेयान्किमु कथय तस्याथ विलयो विनाशो लब्धस्य व्यथयतितरां न त्वनुदयः ॥ १४५ ॥ धनवानिति हि मदो मे किं गतविभवो विषादमुपयामि । करनिहतकन्दुकसमाः पातोत्पाता मनुष्याणाम् ॥ १४६ ॥ धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायतामानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशङ्कमङ्केशयाः । अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतटक्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परं क्षीयते ॥१४७॥ धर्मं प्रसङ्गादपि नाचरन्ति पापं प्रयत्नेन समाचरन्ति । आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोकेऽमृतं परित्यज्य विषं पिबन्ति ॥ १४८ ॥ धर्मात्मजेन चरणाविह वन्दितौ मे भीमेन सार्धमिह सङ्कथिताः कथाश्च । अत्रार्जुनश्च यमलौ च सहानुयाताः स्थानानि तानि खलु सन्ति न ते मनुष्याः ॥ १४९ ॥ धावन्तः प्रतिवासरं दिशि दिशि मत्याशया सम्पदां दृष्ट्वा कालवशेन हन्त पलितं कस्यापि दैवद्रुमम् । श्रावंश्रावमवज्ञयोपहसितं सर्वत्र भग्नोद्यमा जीवामः परमार्थशून्यहृदयास्तृप्ता मनोमोदकैः ॥ १५० ॥ धावित्वा सुसमाहितेन मनसा दूरा-

---

रूप होकर और मायासे दूर हटकर चलनेवाले व्यक्तिके लिये कैसा कर्तव्य और कैसा अकर्तव्य ॥१४१॥ शरीरके जिस विकृत भागको पवन भी नहीं छू जाता उसे देखकर भी जो उसपर लट्टू हुए रहते हैं उन्हें देखकर ही हमें भय लगने लगता है ॥ १४२ ॥ हे राधापते ! मैं तो अपने हृदयको दुराशामें डालकर देश-विदेश दौड़ता हुआ निर्दयी राजाओंके सामने हाथ फैला-फैलाकर अपना जन्म बिताता हूँ और उधर वे लोग कितने भाग्यवान् हैं कि अपने मनमें तुम्हारे चरण-कमलका ध्यान करते हुए प्रसन्नतासे रोमांचित होकर अत्यन्त पवित्र वनमें अपने दिन बिताते हैं ॥१४३॥ इस नश्वर संसारमें कहीं दीनता, कहीं कामचेष्टा, कहीं अनेक प्रकारसे बन्धु-बान्धवोंका झमेला, कहीं प्रभुता और कहीं धनका मद, यही सब दिखाई देता है ॥ १४४ ॥ अनेक प्रकारके कष्टसे धन मिलता भी है पर उसके भी नाश होनेपर या मिलनेपर उसका वियोग निश्चित है ही, ऐसी दशामें बताइए धनका संग्रह न करना अच्छा या उसका नाश अच्छा है ? मेरी समझमें तो संग्रह किए हुए धनका नाश हो जानेपर जितना दुःख होता है उतना धन न पानेपर दुःख नहीं होता ॥ १४५ ॥ पहले मुझे धनी होनेका अभिमान था तो इस समय निर्धन होनेका दुःख क्यों हो । हाथमें उछाली हुई गेंदके समान मनुष्योंकी दशा ऊपर-नीचे होती ही रहती है ॥१४६॥ पहाड़की गुफाओंमें रहनेवाले और परम ज्योतिका ध्यान करनेवाले वे लोग धन्य हैं जिनकी गोदमें बैठकर पक्षी बेखटके आँसूका जल पीते हैं। मनके बनाए हुए भवनके पास बावड़ीके तटपर बने हुए उपवनमें खेलका आनन्द लेनेवाले हम-जैसे लोगोंकी तो केवल आयु भर बीत रही है ॥ १४७ ॥ इस मर्त्यलोकमें आश्चर्यकी बात यह है कि लोग अवसर पाकर भी धर्मका आचरण नहीं करते, जान-बूझकर पापमें लगे रहते हैं और इस प्रकार, अमृत छोड़कर विष ही पीते हैं ॥ १४८ ॥ यहाँ युधिष्ठिरने मेरे दोनों पैरोंको प्रणाम किया था, यहाँ भीमके साथ अनेक कथाएँ कही गई थीं, यहाँ तक अर्जुन, नकुल और सहदेव भी साथ आए थे। ये स्थान तो सब वे ही हैं किन्तु वे मनुष्य एक भी नहीं हैं ॥ १४९ ॥ मैंने प्रतिदिन चारों ओर धनकी आशासे दौड़ते हुए समयके अनुसार इस अभाग्यके वृक्ष-रूपी पके बालोंको देखा, तिरस्कारसे लोगोंकी खिल्ली उड़ाते भी सुना, चारों ओर किया हुआ प्रयत्न भी विफल रहा, मनके लड्डुओंसे अघाता भी रहा, फिर भी हृदयमें सत्यका विचार कभी नहीं आ पाया ॥ १५० ॥ मैंने दौड़-दौड़कर बड़ी सावधानीसे दूरसे सबके आगे सिर झुकाया, प्रतिध्वनिके समान राजाओंको प्रिय लगनेवाली बातें कहीं, राजाके द्वारपर पहुँचकर द्वारपालसे रोके जानेपर अपमान समझकर भी मलिन मुख होकर वहीं खड़ा-तक रहा, फिर भी

च्छिरो नामितं भूपानां प्रतिशब्दकैरिव चिरं प्रोद्घुष्टमिदं वचः। द्वाराध्यक्षनियन्त्रणावरिभवम्लानवक्त्रैः स्थितं भ्रातः किं करवाम मुञ्चति मनो नाद्याप्यविद्याग्रहम् ॥ १५१ ॥ धिग्धिक्तान्क्रिमिनिर्विशेषवपुषः स्फूर्जन्महासिद्धयो निष्पन्दीकृतशान्तयोऽपि च तमः कारागृहेष्वासते। तं विद्वांसमिह स्तुमः करपुटीभिक्षान्नशाकेऽपि वा बालावक्त्रसरोजिनीमधुनि वा यस्याविशेषो रसः ॥ १५२ ॥ धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः। शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनमेते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः ॥ १५३ ॥ न चाकारि कामारिकंसारिसेवा न वा स्वेष्टमाचेष्टितं हन्त किञ्चित्। मनः प्रेयसीरूपपङ्के निमग्नं किमन्ते कृतान्ते मयावेदनीयम् ॥ १५४ ॥ न वाराधि राधाधवो माधवो वा न वाऽपूजि पुष्पादिभिश्चन्द्रचूडः। परेषां धने धन्धने नीतकालो दयालो यमालोकने कः प्रकारः ॥ १५५ ॥ न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः। नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥ १५६ ॥ नन्दन्ति मन्दाः श्रियमाप्य नित्यं परं विषीदन्ति विपद्गृहीताः। विवेकदृष्ट्या चरतां नराणां श्रियो न किञ्चिद्विपदो न किञ्चित् ॥ १५७ ॥ नलिनीदलगतजलमतितरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम्। विद्धि व्याधिव्यालग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम् ॥ १५८ ॥ नवनीलमेघरुचिरः परः पुमानवनीमवाप्य धृतगोपविग्रहः। नवनीयकीर्तिरमरैरपि स्वयं नवनीतभिक्षुरधुना स चिन्त्यते ॥ १५९ ॥ न विषयभोगो भाग्यं योग्यं खलु यत्र जन्तुमात्रमपि। ब्रह्मेन्द्ररुद्रमृग्यं भाग्यं विषयेषु वैराग्यम् ॥ १६० ॥ न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः। महद्भिः

हे भाई! मैं क्या करूँ? मेरा मन आज भी मोहका हठ नहीं छोड़ पा रहा है॥ १५१ ॥ ऐसे व्यक्तियोंको धिक्कार है जो बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त करके और शान्तिको वशमें करके भी अज्ञान-रूपी कारागारमें कीड़ेके समान बँधे हैं। इस संसारमें मैं उसी विद्वान्‌की स्तुति करता हूँ जो हाथमें रक्खे हुए भिक्षाके अन्न और शोकमें अथवा नायिकाके मुख तथा कमलिनीके मकरन्दमें समान स्वाद समझता है॥ १५२ ॥ जिसका धैर्य ही पिता, सहनशीलता ही माता, शान्ति ही पत्नी, सत्य ही पुत्र, दया ही बहन, मनको वशमें करना ही भाई, भूतल ही बिछौना, दिशाएँ ही वस्त्र और ज्ञान-रूपी अमृत ही भोजन है, उस कुटुम्बवाले योगीको किससे भय हो सकता है॥ १५३॥ मैंने न तो कामके शत्रु शंकरकी सेवा की न कंसके शत्रु कृष्णकी की, न अपनी ही भलाईका कोई काम किया। मेरा मन सदा स्त्री-रूपी कीचड़में डूबा रहा है। अब मरनेपर मैं यमराजको क्या मुँह दिखाऊँगा और क्या कहूँगा॥ १५४ ॥ हे भगवन्! मैंने न तो राधारति भगवान् कृष्णकी सेवा की, न फल-फूल आदि सामग्रियोंसे शंकरकी ही पूजा की। हे दयामय प्रभो! यमराजके पास पहुँचकर मैं क्या उत्तर दूँगा॥ १५५ ॥ मैंने संसार-रूपी वृक्षको काटनेके लिये नियमसे भगवान्‌के चरणोंका ध्यान नहीं किया, स्वर्गके द्वारके किवाड़ खोल सकनेवाले धर्मका संग्रह नहीं किया। नायिकाके मोटे स्तन तथा जाँघोंका भी आलिंगन नहीं किया। इस प्रकार मैं तो अपनी माताके यौवन-रूपी वनको काटनेवाले कुठारके ही रूपमें उत्पन्न हुआ हूँ॥१५६॥ मूर्ख ही सम्पत्ति पाकर प्रसन्न और विपत्तिमें पड़कर दुखी होते रहते हैं पर विचारशील पुरुषोंके लिये न सम्पत्ति ही कुछ होती है न विपत्ति ही॥ १५७ ॥ कमलके पत्तेपर पड़े हुए अत्यधिक हिलते-डुलते पानीके समान जीवन भी अत्यन्त चंचल है। इस शोकसे भरे हुए संसारको व्याधि-रूपी साँपसे डसा हुआ समझना चाहिए॥ १५८ ॥ नवीन काले मेघके समान सुन्दर और गोपके वेशमें अवतार लेकर घर-घर मक्खन माँगनेवाले उस प्रशंसनीय कीर्तिवाले परब्रह्मका ध्यान इस समय देवता भी करते हैं॥ १५९ ॥ जिन विषयोंमें प्राणी लगे हुए हैं उनके भोगको भाग्य न कहकर उस वैराग्यको ही भाग्य कहना चाहिए जिसके लिये ब्रह्मा, इन्द्र और शंकर भी तरसते रहते हैं॥ १६० ॥ संसारके किसी व्यवहारमें मंगल नहीं दिखाई पड़ता। सोचनेपर सत्कर्मके फलका भी अन्त दुःख ही दिखाई देता है और जिन बड़े-बड़े भोगोंको लोग बड़े पुण्यसे इकट्ठा करते हैं उनमें फँसे हुए लोगोंको भी अन्तमें दुःख ही हाथ लगता है॥ १६१ ॥ त्रिभुवनके स्वामी, देवताओंके सिरमौर और मन लगाकर ध्यान किए जाने योग्य पुरुषोत्तम नारायणके होते हुए यदि हम कुछ गाँवोंके स्वामी और थोड़ी-

पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विपयिणाम् ॥ १६१ ॥ नाथे श्रीपुरुषोत्तमे त्रिजगतामेकाधिपे चेतसा सेव्ये स्वस्य पदस्य दातरि सुरे नारायणे तिष्ठति। यं कञ्चित्पुरुषाधमं कतिपयग्रामेशमल्पार्थदं सेवायै मृगयामहे नरमहो मूढा वराका वयम् ॥ १६२ ॥ नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः। कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ॥ १६३ ॥ निःसृतोऽहं करिष्यामि सुकृतानीति चिन्तयन्। मेदोसृग्दिग्धसर्वाङ्गो जरायुपुटसंवृतः ॥ १६४ ॥ निःस्नेहो याति निर्वाणं स्नेहोऽनर्थस्य कारणम्। निःस्नेहेन प्रदीपेन यदेतत्प्रकटीकृतम् ॥ १६५ ॥ निखिलं जगदेव नश्वरं पुनरस्मिन्नितरां कलेवरम्। अथ तस्य कृते कियानयं क्रियते हन्त जनैः परिश्रमः ॥ १६६ ॥ निजा गुहेयं तरुमूलमेतदेषा सरित्तीरशिलातलानि। वनस्थितस्याप्यनुबन्ध एष सम्बन्धबुद्ध्या भवबन्धहेतुः ॥ १६७ ॥ नित्यमाचरतः शौचं कुर्वतः पितृतर्पणम्। यस्य नोद्विजते चेतः शास्त्रं तस्य करोति किम् ॥ १६८ ॥ नित्यानित्यविचारणा प्रणयिनी वैराग्यमेकं सुहृन्मित्राण्येव यमादयः शमदमप्रायाः सखायो मताः। मैत्र्याद्याः परिचारिका सहचरी नित्यं मुमुक्षा बलादुच्छेद्या रिपवश्च मोहममतासङ्कल्पवैरादयः ॥ १६९ ॥ निबद्धा स्थैर्याशा जलशशिनि कल्लोलचटुले क्षणध्वंसिस्वप्नः सुचिरमविनाशीति कलितः। यदेतस्मिन् वातप्रतिहतपताकाग्रतरले कृता काये प्रीतिः परमपुरुषार्थक्षयकरी ॥ १७० ॥ निर्वाहितमतिगहनं विना कलङ्केन यौवनं येन। दोषनिधाने जन्मनि किं न प्राप्तं फलं तेन ॥ १७१ ॥ निर्विवेकतया बाल्यं कामोन्मादेन यौवनम्।

सी सम्पत्ति देनेवाले किसी नीच पुरुषकी सेवामें इधर-उधर घूमते फिरें तो हमसे बढ़कर मूर्ख और दयाका पात्र कौन हो सकता है ॥ १६२ ॥ मैंने अपने विरोधियोंको हरानेवाली और विनय देनेवाली विद्याका अभ्यास नहीं किया, तलवारसे हाथियोंके मस्तक फाड़कर अपना यश भी स्वर्गतक नहीं पहुँचाया, चन्द्रोदयके समय नायिकाके कोमल पत्तेके समान अधरके रसका स्वाद भी नहीं लिया, इस प्रकार सूने घरमें बलते हुए दीपकके समान मेरा सारा यौवन निष्फल ही गया ॥ १६३ ॥ चर्बी तथा रुधिरसे लिपटा हुआ और जरायुमें बँधा हुआ यह जीव सोचा करता है कि मैं गर्भसे निकलनेपर अच्छे कर्म करूँगा ॥ १६४ ॥ संसारपर अनुराग न करनेवाला व्यक्ति संसारके बन्धनोंसे छूट जाता है क्योंकि अनुराग ही सारे अनर्थ की जड़ है। देखो! स्नेह (तैल) के बिना बुझते हुए दीपकमें यह बात स्पष्ट हो जाती है ॥१६५॥ यों तो सारा संसार ही नश्वर है पर उसमें भी यह शरीर तो अत्यन्त ही नश्वर है। फिर भी देखो, उसी शरीरके लिये लोग कितना परिश्रम करते हैं ॥ १६६ ॥ 'यह मेरी गुफा है, यह मेरे वृक्षके तलेकी छाया है, नदीके तीरकी ये चट्टानें भी मेरी हैं' इस प्रकार वनमें रहनेवालेको भी बन्धन है ही। यथार्थमें नाता जोड़नेवाली बुद्धि ही संसारमें फँसानेवाली होती है ॥ १६७ ॥ प्रतिदिन शरीरकी शुद्धताके लिये प्रयत्न करनेमें और पितरोंका तर्पण करनेमें जिसका मन नहीं ऊबता, उसका उद्धार शास्त्र कहाँतक कर सकता है ॥ १६८ ॥ मनुष्यको प्रतिक्षण मोक्षकी इच्छा रखनी चाहिए और उसीके बलपर मोह, ममता, अनेक प्रकारके संकल्प तथा वैर आदि मानसिक शत्रुओंका नाश करना चाहिए। सत्य तथा मिथ्या वस्तुओंपर विचार करना ही मोक्षके अभिलाषी मनुष्यकी स्त्री है, संसारसे वैराग्य ही उसका एक-मात्र मित्र है, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा तथा समाधि ही इसके हितैषी हैं, शान्ति तथा इन्द्रियोंका दमन ही उसके साथी हैं, सज्जनोंसे मित्रता, दीनोंपर करुणा, सत्कर्ममें प्रसन्नता तथा दुष्कर्मसे उपेक्षा ही उसके सेवक हैं तथा मोक्षकी इच्छा ही उसकी साथिन है ॥ १६९ ॥ पवनसे हिलती हुई पताकाकी नोकके समान चंचल इस देहपर जो हमने परम पुरुषार्थ-नाशक प्रेम किया वह वैसा ही हुआ जैसे चंचल लहरोंसे हिलती हुई जलपर पड़ती हुई चन्द्रमाकी परछाईंपर स्थिर रहनेकी आशा बाँधना और क्षणभरमें मिट जानेवाले सपनेको अनन्तकाल-तक नष्ट न होनेवाला समझना ॥ १७० ॥ दोषोंसे भरे इस जीवनमें जिसने अत्यन्त गहन जवानी बिना कलंकके बिता ली उसने क्या फल नहीं पा लिया ॥ १७१ ॥ विचार-शक्ति न रहनेसे मनुष्योंका लड़कपन, कामके पागलपनसे यौवन तथा शरीरकी शिथिलतासे बुढ़ापा सदा उपद्रवसे ही भरा रहता है ॥ १७२ ॥ गर्भसे निकलते समय भयंकर दुःखसे पीडित होकर नीचे मुख करके चिल्लाता हुआ जीव ऐसा उतान होकर भूमिपर गिरता

वृद्धत्वं विकलत्वेन सदा सोपद्रवं नृणाम् ॥ १७२ ॥ निष्क्रामन्भृशदुःखार्तो रुदन्नुच्चैरधोमुखः । यन्त्रादिव विनिर्मुक्तः पतत्युत्तानशाय्यथ ॥ १७३ ॥ नीलोत्पला-भनयनाः परमप्रेमभूषणम् । हासायैव विलासिन्यः क्षणभङ्गितया स्थिताः ॥१७४॥ नो धर्माय ततो न तत्र निरता नार्थाय येनेदृशाः कामोऽप्यर्थवतां तदर्थमपि नो मोक्षः क्वचित्कस्यचित् । तत्के नाम वयं वृथैव घटिता ज्ञातं पुनः कारणं जीवन्तोऽपि मृता इति प्रवदतां शब्दार्थसंसिद्धये ॥ १७५ ॥ न्यस्तं यथा मूर्ध्नि मुदात्ति मेषो यवाक्षताद्यं बलिकल्पितः सन् । मृत्युं समीपस्थितमप्यजानन्भुनक्ति मर्त्यो विषयाँस्तथैव ॥ १७६ ॥ परिच्छेदातीतः सकलवचनानामविषयः पुनर्जन्मन्यस्मिन्ननुभवपथं यो न गतवान् । विवेक-प्रध्वंसादुपचितमहामोहगहनो विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च कुरुते ॥ १७७ ॥ परिपक्वं समालोक्य जराक्षारावधूसरम् । शिरःकूष्माण्डकं भुङ्क्ते पुंसां कालः किलेश्वरः ॥ १७८ ॥ परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदय-क्लेशकलिलम् । प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदित-चिन्तामणिगुणे विविक्तः सङ्कल्पः किमिव हि फलं पुष्यति न ते ॥ १७९ ॥ पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमण-परिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं वस्त्रं विस्तीर्णमाशादशकममलिनं तल्पमस्वल्पमुर्वी । येषां निःसङ्गताङ्गीकरणपरिणतिः स्वान्तसन्तोषिणस्ते धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति ॥ १८० ॥ पाषाणखण्डेष्वपि रत्नबुद्धिः कान्तेति धीः शोणितमांसपिण्डे । पञ्चात्मके वर्ष्मणि चात्मभावो जयत्यसौ काचन मोह-लीला ॥ १८१ ॥ पुण्यैर्मूलफलैः प्रियप्रणयिनीं वृत्तिं कुरुष्वाधुना भूशय्यां नवपल्लवैः कुरु तृणैरुत्तिष्ठ यामो वने । क्षुद्राणामविवेकमूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा वित्तव्याध्यविवेकसङ्कुलगिरां नामापि न श्रूयते ॥ १८२ ॥ पुत्रः स्यादिति दुःखितः सति सुते तस्या-

है मानो चक्कीके पाटसे छुटकारा पाकर गिरा हो ॥१७३॥ नीले कमलके समान नेत्रोंवाली तथा परम स्नेहसे भरी हुई स्त्रियाँ क्षण भरमें ही नष्ट हो जानेवाली हैं। अतः, जो लोग इनसे अनुराग करते हैं वे केवल हँसीके पात्र होते हैं ॥ १७४ ॥ हम लोग धर्मके लिये नहीं बनाए गए हैं, इसीलिये हम लोग मन नहीं लगाते। धनके लिये भी नहीं बनाए गए क्योंकि हम दरिद्र हैं। काम भी धनवानोंको ही मिलता है इसलिये कामके लिये भी हमारा जन्म नहीं हुआ। और मोक्ष तो किसी-किसीको ही मिल पाता है। तो क्या हम लोग व्यर्थ ही बनाए गए हैं? नहीं। अब हम समझे कि हमारा जन्म उन लोगोंके शब्दको सार्थक करनेके लिये हुआ है जो हमें देखकर कहते हैं कि ये जीवित मरे हुए हैं ॥१७५॥ जैसे बलिके लिये लाया हुआ भेड़ा अपने सिर-पर रक्खे हुए जौ-अक्षत आदिको बड़ी प्रसन्नतासे खाता है वैसे ही पास आई हुई मृत्युको न समझता हुआ प्राणी भी सांसारिक भोगमें लिपटा रहता है ॥ १७६ ॥ देश और काल-का जहाँ सम्बन्ध नहीं, वाणीकी जहाँ पहुँच नहीं, किसी जन्म-में भी जो अनुभवमें नहीं आया, विचार न होनेके कारण जो अत्यन्त अज्ञानसे भरा हुआ है ऐसा कोई अद्भुत विकार हमारे मनको जड बना रहा है और सन्ताप दे रहा है ॥१७७॥ जैसे-जैसे मनुष्योंके सिररूपी कुम्हड़े (पेठा), बुढ़ापेके उजले-पनकी राख (खार) से भूरे होते चलते हैं वैसे-वैसे क्रमशः उन्हें पका जानकर स्वामी काल उन्हें तोड़ता और खाता चलता है ॥ १७८ ॥ हे हृदय ! प्रतिदिन दूसरोंकी सेवा करके उनका चित्त प्रसन्न करनेके लिये तुम विपत्ति-रूपी दलदलमें क्यों धँसे जा रहे हो ? यदि तुम स्वयं प्रसन्न हो जाओ तो तुममें चिन्तामणिका गुण आ जाय। फिर तुम्हारे पवित्र संकल्प-रूपी वृक्षमें फल आते देर क्या लगेगी ॥१७९॥ जिसका हाथ ही पवित्र पात्र है, घूम-घूमकर मिली हुई भिक्षा ही अन्न है, दसों दिशाएँ ही जिसके लम्बे-चौड़े वस्त्र हैं, पृथ्वी ही स्वच्छ और विस्तृत पलँग है, जिसने अकेले रहनेका अभ्यास कर लिया है, जिसने दीनता ठुकरा दी है और जो अपने ही मनमें सन्तुष्ट रहता है वही धन्य पुरुष कर्मको निर्मूल कर डालता है ॥ १८० ॥ अज्ञानका कितना विचित्र प्रभाव है कि लोग पत्थरको भी रत्न समझे बैठे हैं, रुधिर और मांसके लोथड़ेको प्रिया समझते हैं और पंचभूतसे बने शरीरको ही आत्मा माने बैठे हैं ॥१८१॥ अरे मन ! पवित्र कन्द-मूल फलसे अपनी जीविका चलाओ, धरतीपर नये-नये पत्ते और घास फैलाकर बिछौना बनाओ, उठो, वन चलें जहाँ विचार-शून्य तथा मूर्खतापूर्ण हृदयवाले, सदा धनके लोभसे बेढंगी बातें करनेवाले नीच धनवानोंका नाम-तक नहीं सुनाई पड़ता ॥ १८२ ॥ पहले तो मनुष्य पुत्र होनेके लिये दुखी रहता है, पुत्र हो जानेपर उसके रोगसे दुखी रहता है। यदि पुत्र गुणवान् हुआ तो उसके मरनेके भयसे

मये दुःखितस्तद्दुःखादिकमार्जने तदनये तन्मूर्खता-दुःखितः । जातश्चेत्सगुणोऽथ तन्मृतिभयं तस्मिन्मृते दुःखितः पुत्रव्याजमुपागतो रिपुरयं मा कस्यचिज्जायताम् ॥ १८३ ॥ पुत्रदारादिसंसारः पुंसां सम्मूढचेतसाम् । विदुषां शास्त्रसंसारः सद्योगाभ्यासविघ्नकृत् ॥ १८४ ॥ पुत्रमित्रकलत्रेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः । सरःपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ॥ १८५ ॥ पुनः प्रभातं पुनरेव शर्वरी पुनः शशाङ्कः पुनरुद्यतो रविः । कालस्य किं गच्छति याति यौवनं तथापि लोकः कथितं न बुध्यते ॥ १८६ ॥ पुरंदरसहस्राणि चक्रवर्त्तिशतानि च । निर्वापितानि कालेन प्रदीपा इव वायुना ॥ १८७ ॥ पूरयित्वार्थिनामाशां प्रियं कृत्वा द्विषामपि । पारं गत्वा श्रुतौघस्य धन्या वनमुपासते ॥ १८८ ॥ पूर्वं तावत्कुवलयदृशां लोललोलैरपाङ्गैराकर्षद्भिः किमपि हृदयं पूजिता यौवनश्रीः । सम्प्रत्यन्तर्निहितसदसद्भावलब्धप्रबोधप्रत्याहारैर्विशद्हृदये वर्तते कोऽपि भावः ॥ १८९ ॥ पृथिवी दह्यते यत्र मेरुश्चापि विशीर्यते । सुशोषं सागरजलं शरीरे तत्र का कथा ॥ १९० ॥ प्रचण्डवासनावातैरुद्धूता नौर्मनोमयी । वैराग्यकर्णधारेण विना रोद्धुं न शक्यते ॥ १९१ ॥ प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्याह्ने क्षुत्पिपासया । तृप्ताः कामेन बाध्यन्ते प्राणिनो निशि निद्रया ॥१९२॥ प्रादुर्भवन्ति वपुषः कति नाम कीटा यान्यत्नतः खलु तनोरपसारयन्ति । मोहः क एष जगतो यदपत्यसंज्ञां तेषां विधाय परिशोषयति स्वदेहम् ॥ १९३ ॥ प्राप्ता जरा यौवनमप्यतीतं बुधा यतध्वं परमार्थसिद्ध्यै । आयुर्गतप्रायमिदं यतोऽसौ विश्रम्य विश्रम्य न याति कालः ॥१९४॥ बहवो लाभिनोऽभूवन् बहवश्च यशस्विनः । सह लाभयशोभिस्ते न ज्ञाताः क्व गता इति॥१९५॥ बाला मामियमिच्छतीन्दुवदना सानन्दमुद्वीक्षते नीलेन्दीवरलोचना पृथुकुचोत्पीडं परीरप्सते । का त्वामिच्छति का च पश्यति पशो मांसास्थिभिर्नि-

दुखी रहता है और फिर मर जानेपर तो वह और भी दुखी हो जाता है । इसलिये पुत्र तो शत्रु होकर आता है । भगवान करे किसीको पुत्र न हो ॥१८३॥ मोहमें पड़े हुए पुरुषोंके लिये पुत्र, स्त्री आदिका संसार सत्पुरुषोंके संगके अभ्यासमें बाधा डालता है और ज्ञानियोंके लिये शास्त्रका व्यसन सुन्दर योगाभ्यासमें बाधा डालता है ॥ १८४ ॥ तालाबके कीचड़में फँसे हुए बुढ्ढे जंगली हाथीके समान यह जीव भी पुत्र, मित्र तथा स्त्रीमें आसक्त होकर दुःख भोगता है ॥१८५॥ फिर सबेरा, फिर रात, फिर चन्द्रमाका उदय, फिर सूर्यका उदय, इसमें समयका क्या बिगड़ता है, किन्तु यौवन बीतता जाता है, फिर भी न जाने लोग भलोंका कहना क्यों नहीं मानते ॥ १८६ ॥ सहस्रों इन्द्र तथा सैकड़ों चक्रवर्ती राजाओंको कालने उसी प्रकार समाप्त कर डाला जैसे वायुका झोंका दीपको बुझा डालता है ॥ १८७ ॥ याचकोंकी आशा पूरी करके, शत्रुओंका हित करके तथा शास्त्रोंके पार पहुँचकर भी जो वनवासी हो जाते हैं वे धन्य हैं ॥१८८॥ पहले तो कमलके समान नेत्रोंवाली स्त्रियोंकी अत्यन्त चंचल तथा मन लुभानेवाली चितवनें मेरी तरुणाईकी सुन्दरताको हृदय-देशमें पूजती थी पर अब तो मेरे निर्मल मनमें कौन वस्तु सत्य है और कौन मिथ्या यह ज्ञानकी धारा बहते ही किसी नये भावका उदय हो गया है ॥ १८९ ॥ जहाँ पृथ्वी भी दब जाती है, मेरु भी बिखर जाता है तथा समुद्रका जल भी सूख जाता है वहाँ इस शरीरकी गिनती ही क्या है ॥ १९० ॥ जब मन-रूपी नौका प्रबल वासनाकी आँधीसे डगमगाने लगती है उस समय वैराग्य-रूपी माँझीके बिना उसे कौन सँभाल सकता है ॥ १९१ ॥ संसारके भोगोंमें सुख माननेवाले लोग प्रातःकाल शौच तथा लघुशंकासे दोपहरमें, भूख और प्यास तृप्त होनेपर कामसे तथा रातको नींदसे विकल रहते हैं ॥ १९२ ॥ शरीरमें उत्पन्न होनेवाले न जाने कितने कीड़ोंको लोग सावधानीसे निकालकर फेंक देते हैं पर संसारके इस मोहको तो देखो कि उसी शरीरसे निकले हुए कीड़ेको अपनी सन्तान समझकर उसकी चिन्तामें अपना शरीर घुलाए डाल रहे हैं ॥१९३॥ हे बुद्धिमानो ! बुढ़ापा आ गया, तरुणाई बीत गई, अब तो आत्माके बोधके लिये प्रयत्न करो । आयु भी प्रायः समाप्त ही है और काल भी धीरे-धीरे नहीं आता, सहसा सिरपर आ चढ़ता है ॥ १९४ ॥ संसारमें बहुत बड़े-बड़े कमानेवाले और यशस्वी हुए किन्तु अपनी कमाई और कीर्त्तिके साथ ही वे सब न जाने कहाँ गए ॥ १९५ ॥ एक व्यक्ति कह रहा है कि चन्द्रमाके समान मुखवाली यह नवेली मुझे चाहती है, नीले कमलके समान आँखोंवाली यह नवेली बड़े चावसे मेरी ओर निहारती है और अपने विशाल स्तनोंसे दबाकर मेरा आलिंगन करना चाहती है । उससे कोई कह रहा है कि 'हे पशु ! कौन तुझे चाहती है ? कौन तुझे देखती है ? तू नहीं जानता कि वह मांस और हड्डियोंकी पुतली तो एक स्त्री मात्र है । वास्तवमें तो व्यापक परमात्मा ही तुम्हारा

मिला नारी वेद न किञ्चिदत्र स पुनः पश्यत्यमूर्तः पुमान् ॥ १९६ ॥ बालिकारचितवस्त्रपुत्रिकाक्रीडनेन सदृशं सुरार्चनम्। यत्र शाम्यति मनो न निश्चलं स्फीतवज्जलधिमज्जनामलम् ॥ १९७ ॥ बाल्ये नार्जनसामर्थ्यं येनासौ यौवने सुखी। यात्यर्जनेन तारुण्यं वृद्धः कामैः करोति किम् ॥ १९८ ॥ बिडालभक्षिते दुःखं यादृशं गृहकुक्कुटे। न तादृङ्ममताशून्ये कलविङ्केऽथ मूषके ॥ १९९ ॥ बीभत्सा विषया जुगुप्सिततमः कायो वयो गत्वरं प्रायो बन्धुभिरध्वनीव पथिकैर्योगो वियोगावहः। हातव्योऽयमसार एष विरसः संसार इत्यादिकं सर्वस्यैव हि वाचि चेतसि पुनः कस्यापि पुण्यात्मनः ॥ २०० ॥ बीभत्साः प्रतिभान्ति किं न विषयाः किं तु स्पृहायुष्मती देहस्यापचयो मृतौ निविशते गाढो गृहेषु ग्रहः। ब्रह्मोपास्यमिति स्फुरत्यपि हृदि व्यावर्तिका वासना का नामेयमतर्क्यहेतुगहना दैवी सतां यातना ॥ २०१ ॥ बुद्धेरगोचरतया न गिरां प्रचारो दूरे गुरुप्रथितवस्तुकथावतारः तत्त्वं क्रमेण विदुषां करुणावदाते श्रद्धावतां हृदि पदं स्वयमादधाति ॥ २०२ ॥ ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं यन्मुञ्चन्त्युपभोगवन्त्यपि धनान्येकान्ततो निःस्पृहाः। न प्राप्तानि पुरा न सम्प्रति न च प्राप्तौ दृढप्रत्ययो वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परित्यक्तुं न शक्ता वयम् ॥२०३॥ ब्रह्मा विष्णुदिने याति विष्णू रुद्रस्य वासरे। ईश्वरस्य तथा सोऽपि कः कालं लङ्घितुं क्षमः ॥ २०४ ॥ भगीरथाद्याः सगरः ककुत्स्थो दशाननो राघवलक्ष्मणौ च। युधिष्ठिराद्याश्च बभूवुरेते सत्यं क्व याता बत ते नरेन्द्राः ॥ २०५ ॥ भस्मोद्धूलन भद्रमस्तु भवते रुद्राक्षमाले शुभं हा सोपानपरम्परे गिरिसुताकान्तालयालङ्कृते। अद्याराधनतोषितेन विभुना युष्मत्सपर्यासुखालोकोच्छेदिनि मोक्षनामनि महामोहे निधीयामहे ॥ २०६ ॥ भिक्षाशनं भवनमायतनैकदेशः शय्या भुवः परिजनो निजदेहभारः।

सारा करतब देखता है ॥ १९६ ॥ देवताओंकी पूजा तो लड़कियोंकी गुड़ियाके खेलके समान है जिससे मनको शान्ति नहीं मिलती। मन तो आत्म चिंतन-रूपी समुद्रमें डुबकी लगाकर ही निर्मल, प्रसन्न तथा निश्चल हो पाता है ॥ १९७ ॥ यदि बचपनमें धन कमानेकी शक्ति रहती तो उस समय धन कमाकर मनुष्य जवानीमें निश्चिन्त होकर सुख भोगता, किन्तु धनोपार्जन करते-करते ही जवानी बीत जाती है, तब भला बुढ़ापेमें वह काम-सुखोंके लिये क्या करे? ॥ १९८ ॥ पाले हुए मुर्गेको यदि बिल्ली खा जाय तो उससे जितना दुःख होता है उतना गौरैया और चूहेके खाए जानेपर दुःख नहीं होता क्योंकि उनपर ममता नहीं होती ॥ १९९ ॥ संसारके सभी भोग घृणा करने योग्य हैं। यह शरीर तो और भी घृणित है। अवस्था भी नश्वर है। मार्गमें मिले हुए यात्रियोंके समान भाई-बन्धुओंका मिलना भी वियोगके लिये होता है। यह असार तथा नीरस संसार छोड़ देनेके योग्य है। ये बातें सुनाई तो सभीके मुँहसे देती हैं पर मनमें तो किसी पुण्यात्माके ही रहती हैं ॥ २०० ॥ संसारके विषयोंको घृणाके योग्य समझकर भी अभिलाषाकी आयु बढ़ती ही जाती है। शरीर क्षीण होते-होते मृत्युतक पहुँच जाता है फिर भी घरमें लोगोंका प्रबल अनुराग बना रहता है। मनमें भी यह बात आती है कि ब्रह्मका चिन्तन करना चाहिए किन्तु मनके बुरे संस्कार उन्हें रोक देते हैं। भाग्यने जो सज्जनोंको भयंकर भोग दिए हैं उनके कारणोंका भी आजतक कोई ठिकाना नहीं लग पाया ॥ २०१ ॥ मनकी पहुँच न होनेके कारण जहाँ न तो वाणीकी पहुँच हो पाती न गुरुका उपदेश ही काम देता है वह आत्मबोध उन श्रद्धावान् ज्ञानियोंके निर्विकार शुद्ध हृदयमें स्वयं प्रकाशित हो जाता है जो श्रवण, मनन और निदिध्यासनमें लगे रहते हैं ॥ २०२ ॥ सत्य तथा मिथ्या वस्तुके विचारसे जिन्हें ब्रह्मज्ञान हो गया है वे शुद्ध चित्तवाले लोग ऐसा दुष्कर काम करते हैं कि धनका उपभोग छोड़कर सब प्रकारकी इच्छासे रहित हो जाते हैं। हमने तो न पहले ही धन पाया, न इस समय ही पाया, न आगे ही उसे पानेका निश्चय है। केवल मनोरथमें पड़े हुए धनको नहीं छोड़ पा रहे हैं ॥ २०३ ॥ जब विष्णुके एक दिनमें ब्रह्मा, शंकरके एक दिनमें विष्णु और ईश्वरके एक दिनमें शंकर भी चल बसते हैं तब भला कालको कौन लाँघ सकता है ॥ २०४ ॥ यदि सचमुच भगीरथ, सगर, ककुत्स्थ, रावण, राम, लक्ष्मण तथा युधिष्ठिर आदि सभी राजा हुए थे? तो ये सब चले कहाँ गए? ॥ २०५ ॥ हे भस्मलेप! तुम्हारा मंगल हो। हे रुद्राक्षकी माला! तुम्हारा कुशल हो। हे शिवजीके सुन्दर मन्दिरकी सीढ़ियो! हमें इस बातका दुःख है कि आज सेवासे प्रसन्न होकर शंकरजी आप लोगोंकी पूजासे मिलनेवाले सुखरूपी प्रकाशको निर्मूल करनेवाले मोक्ष नाम-

वासश्च जीर्णपटखण्डनिबद्धकन्था हा हा तथापि विषयान्न जहाति चेतः ॥ २०७ ॥ भिक्षाहारमदैन्यमप्रतिहतं भीतिच्छिदं सर्वदा दुर्मात्सयमदाभिमानमथनं दुःखौघविध्वंसनम् । सर्वत्रान्वहमप्रयत्नसुलभं साधुप्रियं पावनं शम्भोः सत्रमवार्यमक्षयनिधिं शंसन्ति योगीश्वराः ॥ २०८ ॥ भूः पर्यङ्को निजभुजलतागेन्दुकः खं वितानं दीपश्चन्द्रो विरतिवनितालब्धयोगप्रमोदः । दिक्कन्यानां व्यजनपवनैर्वीज्यमानोऽनुकूलैर्भिक्षुः शेते नृप इव सदा वीतरागो जितात्मा ॥ २०९ ॥ भूत्वा कल्पशतायुषोऽण्डजभुवः सेन्द्राश्च देवासुरा मन्वाद्या मुनयो महीजलधयो नष्टाः पराः कोटयः । मोहः कोऽयमहो महानुदयते लोकस्य शोकावहो वन्धोः फेनसमे गते वपुषि यत्पञ्चात्मके पञ्चताम् ॥ २१० ॥ भेदाभेदौ सपदि गलितौ पुण्यपापे विशीर्णे मायामोहौ क्षयमुपगतौ नष्टसन्देहवृत्तेः । शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्त्वावबोधं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥ २११ ॥ भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचञ्चला आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलीनाम्बुवद्भङ्गुरम् । लोला यौवनलालसास्तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वं बुधाः ॥ २१२ ॥ भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः । कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥ २१३ ॥ भोगास्तुङ्गतरङ्गभङ्गचपलाः प्राणाः क्षणध्वंसिनः स्तोकान्येव दिनानि यौवनसुखं स्फूर्तिः क्रियास्वस्थिरा । तत्संसारमसारमेव निखिलं बुद्ध्वा बुधा बोधका लोकानुग्रहपेशलेन मनसा यत्नः समाधीयताम् ॥ २१४ ॥ भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं माने

के घोर अन्धकारमें मुझे ढकेले दे रहे हैं ॥ २०६ ॥ अब भिक्षा ही भोजन है, घरका कोना ही निवास-स्थान है, भूमि ही शय्या है, अपना शरीर ही परिवार है और पुराने वस्त्रोंके टुकड़ोंसे सिली हुई गुदड़ी ही वस्त्र है, फिर भी न जाने हमारा मन विषय-वासनाओंसे क्यों नहीं हट पा रहा है ॥ २०७ ॥ भिक्षाके भोजनके लिये योगीश्वर महात्मा कहते हैं कि इसमें न तो दीनता दिखलानी पड़ती न कोई रोक-टोक या भय है। इससे डाह, मद और अभिमान दूर हो जाता है, दुःख राशिका विनाश हो जाता है, यह सब स्थानोंपर प्रतिदिन सुलभ है, साधुओंका प्यारा है और शंकरका ऐसा पवित्र सत्र है जिसमें न कोई बाधा है और जो न कभी समाप्त होनेवाली है ॥२०८॥ जिसने भूतलको पलँग, अपनी भुजाको ही तकिया, आकाशको चँदवा और चन्द्रमाको दीपक समझ लिया है, जो वैराग्यरूपी स्त्रीके सम्पर्कसे प्रसन्न रहता है और दिशा-रूपी कन्याएँ जिसे सुखकर वायुका पंखा झलती हैं ऐसा भिक्षा करनेवाला, संसारमें अनुराग न रखनेवाला तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला महात्मा राजाके समान सुखकी नींद लेता है ॥ २०९ ॥ कागभुशुण्डीजी गरुडसे कह रहे हैं—हे गरुड! सैकड़ों कल्प पुरानी यह भूमि, इन्द्र, देवता, असुर, मनु आदि मुनि, द्वीप तथा पहाड़ ये सब करोड़ों वर्षोंसे भी अधिकके हो-होकर नष्ट हो जाते हैं फिर भी पंचभूतसे बने हुए फेनके समान अपने सम्बन्धीका शरीर पञ्चभूतमें मिल जानेपर लोगोंको शोकसे भरा हुआ विशाल मोह क्यों उत्पन्न होता है' ॥ २१० ॥ जिसे किसी वस्तुमें भेद और अभेदका विचार नहीं रह गया, जिसके पुण्य और पाप दोनों निकल गए, माया-मोह दोनों नष्ट हो गए, मनका सन्देह जाता रहा और जिसने सत्व, रज और तमोगुणसे परे तथा शब्दकी पहुँचसे बाहर रहनेवाले आत्मबोधको पाकर मायाके उस पारके मार्गसे भ्रमण किया है, ऐसे व्यक्तिके लिये क्या कर्तव्य और क्या अकर्तव्य ॥२११॥ हे बुद्धिमानो! मेघोंके बीच चमकती हुई बिजलीके समान ही ये सब भोग भी चञ्चल हैं। वायुसे धक्का खाकर बादलोंसे गिरते हुए जलके समान ही ये प्राण और तरुणाईके मनोरथ सब चञ्चल हैं। प्राणियोंकी इन दशाओंपर विचार करते हुए तत्काल उस योगमार्गमें मन लगा देना चाहिए जिसमें धैर्य, चित्तकी एकाग्रता और सिद्धि मिल जाती है ॥ २१२ ॥ हमने भोग नहीं भोगे भोगोंने ही हमें भोग लिया। हमने तपस्या नहीं तपी, तपस्याने ही हमें तपा दिया। समय नहीं बीता, हम्हीं बीत गए, इसी प्रकार तृष्णा नहीं पुरानी हुई, हम ही पुराने हो गए ॥ २१३॥ संसारके सब भोग ऊँची लहरोंके समान चञ्चल हैं, प्राण भी क्षणभंगुर हैं, तरुणाईके सुख भी थोड़े दिनोंके पाहुने हैं, काम करनेकी शक्ति भी स्थिर नहीं रहती। इसलिये हे बुद्धिमान्! सारे संसारको असार समझकर लोगोंपर करुणा-बुद्धि रखते हुए अपना मन कोमल बनाकर कोई ऐसा उचित उपाय क्यों नहीं करता जिससे शान्ति मिले ॥२१४॥ भोगोंमें रोगका भय, कुलमें कलंकका भय, धनमें राजाका भय, सम्मानमें दीनताका भय, बलमें शत्रुका भय, सुन्दरतामें बुढ़ापेका भय, शास्त्रमें

दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्। शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥ २१५ ॥ भ्रातः कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः। उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथाः सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः ॥ २१६ ॥ मन्त्रोद्भावितदैवतैर्न विधिवद्दासीकृताः सिद्धयो योगाभ्याससमाहितैरनुदिनं तीर्णो न मोहार्णवः। क्षुभ्यत्क्षुद्रनरेन्द्रदत्तविगलत्सम्पल्लवोल्लासितैर्धिङ्मूढैरिव पण्डितैरपि बलात्कालः कथं नीयते॥२१७॥ मन्ये मायेयमज्ञानं यत्सुखं स्वजनादपि। निदाघवारणायालं निजच्छाया न कस्यचित् ॥ २१८ ॥ मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः। क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥२१९॥ मलयानिलकालकूटयो रमणीकुन्तलभोगिभोगयोः। श्वपचात्मभुवोः किमन्तरं मम भूयात्परमात्मनि स्थितिः ॥ २२० ॥ महाशय्या भूमिर्मसृणमुपधानं भुजलता वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः। स्फुरद्दीपश्चन्द्रः स्वधृतिवनितासङ्गमुदितः सुखं शान्तः शेते विगतभवभीतिर्नृप इव ॥२२१॥ मातर्माये भगिनि कुमते हे पितर्मोहजाल व्यावर्तध्वं भवतु भवतामेष दीर्घो वियोगः। सद्यो लक्ष्मीरमणचरणभ्रष्टगङ्गाप्रवाहव्यामिश्रायां दृषदि परमब्रह्मदृष्टिर्भवामि ॥ २२२ ॥ मातर्मेदिनि तात मारुत सखे ज्योतिः सुबन्धो जल भ्रातर्व्योम निबद्ध एष भवतामन्त्यः प्रणामाञ्जलिः। युष्मत्सङ्गवशोपजातसुकृतोद्रेकः स्फुरन्निर्मलज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लाये परे ब्रह्मणि ॥ २२३ ॥ मातर्लक्ष्मि भजस्व कञ्चिदपरं मत्काङ्क्षिणी मा स्म भूर्भोगेभ्यः स्पृहयालवो नहि वयं का निःस्पृहाणामसि। सद्यःस्यूतपलाशपत्रपुटके पात्रे पवित्रीकृते भिक्षासक्तुभिरेव सम्प्रति वयं वृत्तिं समीहामहे ॥ २२४ ॥ मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।

विवादका भय, गुणोंमें दुष्टोंका भय, शरीरमें यमराजका भय, इस प्रकार इस भूतलपर केवल वैराग्यको छोड़कर सभी शेष वस्तुएँ भयसे भरी हैं ॥ २१५ ॥ हे भाई! प्रभावशाली राजा, उसके अधीन राजा, पासमें चतुर राजाओंकी सभा, चन्द्रमाके समान मुखवाली स्त्रियाँ, लाड़ले राजपुत्र, स्तुति करनेवाले भाट और उनकी सब कथाएँ जिसके प्रभावसे स्मरणीय हो गए उस कालको नमस्कार है ॥ २१६ ॥ जिन्होंने शास्त्रोंके नियमोंसे मंत्रोंके द्वारा देवताओंको प्रसन्न करके सिद्धियाँ नहीं प्राप्त कीं, प्रतिदिनके अभ्याससे मनको एकाग्र करके अज्ञान-रूपी सागर भी पार नहीं किया और जो उत्साहमें आए हुए मूर्ख राजाओंसे पाई हुई नश्वर सम्पत्ति लेकर फूले नहीं समाए ऐसे पंडित भी मूर्खोंके समान कैसे समय बिताते हैं ॥ २१७ ॥ हम समझते हैं कि यही समझ बैठनेके अज्ञानको माया कहते हैं कि हमारे सगे-संबंधियोंसे हमें सुख मिलेगा क्योंकि अपनी ही छाया धूपसे बचानेमें समर्थ नहीं होती ॥ २१८ ॥ मरना ही प्राणियोंका स्वभाव है, बुद्धिमान् मनुष्य जीवनका विकार ही समझते हैं। जो प्राणी जितनी देरतक साँस लेता हुआ संसारमें रह जाय, उसके लिये उतना ही लाभ समझना चाहिए ॥ २१९ ॥ जब मैं सारे संसारको ब्रह्म समझता हूँ तब मेरे लिये मलय पर्वतके पवन और कालकूट विषमें, स्त्रियोंके सुन्दर केश तथा साँपके शरीरमें, चांडाल तथा ब्रह्मामें अन्तर ही क्या रहा ॥ २२० ॥ जिसने भूमिको ही पलँग, बाहुको ही कोमल तकिया, आकाशको ही चँदवा, वायुको ही सुख देनेवाला पंखा, चन्द्रमाको ही जलता हुआ दीपक मान लिया है और जो अपनी धृति रूपी स्त्रीके प्रसंगसे ही प्रसन्न रहता है वही शान्तिपूर्ण व्यक्ति निर्भय होकर राजाके समान सुखकी नींद लेता है ॥ २२१ ॥ हे माता माया! हे बहन दुर्बुद्धि! हे पिता अज्ञान! आप लोग मुझे छोड़कर चले जाएँ! आप लोगोंका मुझसे सदाके लिये वियोग हो जाय! अब तो मैं भगवान् विष्णुके चरणोंसे निकली हुई गंगाके प्रवाहसे सटी हुई चट्टानपर बैठकर परब्रह्मके साक्षात्कारके लिये तत्पर बैठा हूँ ॥२२२॥ हे माता भूमि! हे पिता वायु! हे मित्र अग्नि! हे सुन्दर बन्धु जल! हे भाई आकाश! आप लोगोंसे यह हाथ जोड़कर अंतिम प्रणाम है कि आप लोगोंके सम्पर्कसे जो विशाल पुण्य मिला है उससे मुझमें ऐसा निर्मल ज्ञानका प्रकाश हो गया है कि समस्त अज्ञान दूर हो गया और मैं अब परब्रह्ममें लीन हो रहा हूँ ॥ २२३ ॥ हे माता लक्ष्मी! किसी दूसरेके पास चली जाओ, अब मेरी चाह मत करो क्योंकि मुझे भोगकी तनिक भी इच्छा नहीं। और विरक्तोंसे तुम्हारा सम्बन्ध ही क्या है? इस समय तो हम तुरन्त बनाकर धोए हुए पलासके पत्तेके दोनोंमें सत्तू खाकर ही अपना जीवन बिता देना चाहते हैं ॥ २२४ ॥ जो सहस्रों माता-पिता,

तवानन्तानि यातानि कस्य ते कस्य वा भवान् ॥२२५॥ मातुलो यस्य गोविन्दः पिता यस्य धनञ्जयः। सोऽपि कालवशं प्राप्तः कालो हि दुरतिक्रमः ॥२२६॥ माद्यन्मित्रकलत्रपुत्रकुतुपश्रेणीरणच्छृङ्खलाबन्धध्वस्तगतेर्निरुद्धमनसः क्रोधादि विद्वेषिभिः। आस्तां ज्ञानसुधारसः किमपरं संसारकारागृहे क्रूरक्रोडनिवासिनो न सुलभा वार्त्ताऽपि मोक्षं प्रति ॥२२७॥ माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थे प्रयातेऽर्थिनि क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने। युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरदरीकुञ्जे निवासः क्वचित् ॥ २२८ ॥ मान्धाता स महीपतिः क्षितितलेऽलङ्कारभूतो गतः सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः। अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो यावन्त एवाभवन्नैकेनापि समं गता वसुमती मुञ्ज त्वया यास्यति ॥ २२९ ॥ मितमायुर्वयोऽनित्यं नैति यातं कदाचन। परामृशन्ति तदपि न भवं भोगलोलुपाः ॥२३०॥ मित्रं कलत्रमितरः परिवारलोको यानैकसाधनमिमाः किल सम्पदो नः। एकः क्षणः स तु भविष्यति यत्र भूयो नायं न यूयमितरे न वयं न चैते ॥ २३१ ॥ मुण्डो जटी वल्कलवांस्त्रिदण्डो कषायवासा व्रतकर्शिताङ्गः। त्यक्तेहिको वा यदि नाप्ततत्त्वस्तदा तु तस्योभयमेव नष्टम् ॥ २३२ ॥ मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः। अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि ॥ २३३ ॥ म्रियमाणं मृतं बन्धुं शोचन्ति परिदेविनः। आत्मानं नानुशोचन्ति कालेन कवलीकृतम् ॥ २३४ ॥ यत्क्षान्तिः समये श्रुतिः शिव शिवेत्युक्तौ मनोनिर्वृतिर्भैक्ष्ये चाभिरुचिर्धनेषु विरतिः शश्वत्समाधौ रतिः। एकान्ते वसतिर्गुरौ प्रति नतिः सद्भिः समं सङ्गतिः सत्त्वे प्रीतिरनङ्गनिर्जितिरसौ सन्मुक्तिमार्गे स्थितिः ॥ २३५ ॥ यत्रानेके क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र नैकोऽपि चान्ते। इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ

सैकड़ों पुत्र-पुत्रियाँ और अनन्त सम्बन्धी चले गए उनमेंसे कौन आपका था और आप किसके थे ॥ २२५ ॥ जिसके मामा साक्षात् भगवान् कृष्ण और पिता अर्जुन थे वह अभिमन्यु भी जब कालके गालमें समा गया तब बताइए कालके पञ्जेसे कौन छूट सकता है ॥ २२६ ॥ मतवाले मित्र, स्त्री, पुत्र, कुतुप आदिकी झनझनाती हुई सिकड़ीसे बँधे हुए और क्रोध आदि शत्रुओंमें फँसे हुए मनवाले, संसाररूपी कारागारकी निष्ठुर गोदमें पड़े हुए प्राणीके लिये ज्ञानामृत पानेकी तो बात ही दूर है, वह मोक्षकी चर्चा भी नहीं चला सकता ॥ २२७ ॥ सम्मानकी कमी होनेपर, धन न रहनेपर, मँगतोंके निराश चले जानेपर, भाई-बन्धु न रहनेपर, परिवार समाप्त हो जानेपर और धीरे-धीरे जवानी ढल जानेपर बुद्धिमानोंके लिये यही एक उचित मार्ग रह जाता है कि गंगाजलसे पवित्र चट्टानोंवाली गुफाओंकी झाड़ीमें जाकर बैठ रहें ॥ २२८ ॥ भोजने अपने चाचा मुञ्जको सन्देश भिजवाया—'इस पृथ्वीके भूषण राजा मान्धाता चले गए, सागरपर पुल बाँधनेवाले और रावणको मारनेवाले राम भी चले गए, युधिष्ठिर आदि भी जितने राजा हुए वे भी जाते रहे पर यह पृथ्वी किसीके साथ नहीं गई। किन्तु हे मुञ्ज! जान पड़ता है यह तुम्हारे साथ अवश्य जायगी ॥ २२९ ॥ आयु थोड़ी है, अवस्था भी कुछ टिकनेवाली नहीं और बीती अवस्था भी फिरसे लौटकर आनेवाली नहीं। ऐसी बातें लोग सोचते तो हैं पर भोगके लोभसे संसारकी नश्वरतापर विचार नहीं करते ॥ २३० ॥ मित्र, स्त्री, परिवारके लोग और संसारका व्यवहार चलानेवाली सम्पत्ति हमारे पास भले ही हो पर एक समय ऐसा आवेगा ही जब यह, तुम, अन्य लोग तथा हममेंसे कोई न रह जायँगे ॥२३१॥ हम भले ही सिर मुड़ा लें, जटा रखा लें, पेड़की छाल पहन लें, त्रिदण्डी बन जायँ गेरुआ वस्त्र पहनकर नियम-व्रत रखकर शरीर सुखा दें और इस संसारकी सभी वस्तुओंसे विरक्त हो जायँ पर यदि आत्माका बोध न हुआ तो समझना चाहिए कि यह लोक और परलोक दोनों ही हाथसे निकल गए ॥२३२॥ अरे मूर्ख! तू मृत्युसे क्यों डरा फिरता है? क्या डरनेवालेको यमराज छोड़ देता है? वह केवल उसी व्यक्तिको नहीं छेड़ता जो संसारमें उत्पन्न न हुआ हो। इसलिये तू भी कुछ ऐसा ही उपाय कर कि फिर जन्म न लेना पड़े ॥ २३३ ॥ लोग मरते हुए तथा मरे हुए बन्धुके लिये ही विलाप करके शोक प्रकट करते हैं पर कालके मुखमें पड़े हुए अपने आपके लिये शोक नहीं करते ॥ २३४ ॥ सहनशीलता, समय-समयपर शास्त्रका अभ्यास, 'शिव-शिव' कहकर मनकी शान्ति, भिक्षामें सुख, धनसे विरक्ति, सदा समाधिमें अनुराग, एकान्तमें निवास, सज्जनोंका संग, आत्मचिंतनमें प्रेम और कामपर विजय ही मोक्ष मार्गपर पहुँचनेके लक्षण हैं ॥ २३५ ॥ जिस घरमें बहुतसे लोग थे उसमें एक ही रह गया। जिस घरमें एक ही था उसमें कुछ ही समयमें बहुतसे हो गए और अन्तमें

दोलयन्द्वाविवादौ कालः काल्या भुवनफलके क्रीडति प्राणिसारैः ॥ २३६ ॥ यत्रैकं श्रुतमक्षरं पशुपतेर्हेतुः श्रुतीनां कृतौ सद्यो रोहति चाष्टधा तनुभृतां यत्रैकमुद्यद्वपुः । यत्रैकाभ्रनदीकणेऽपि विधृते सर्वैव सा धार्यते सा दृष्टाद्भुतवैभवा कविगिरां पारे हि वाराणसी ॥२३७॥ यदस्माभिर्दृष्टं क्षणिकमभवत्स्वप्नमिव तत्कियन्तो भावाः स्युः स्मरणविषयादप्यवगताः । अहो पश्यन्पश्यन्स्वजनमखिलं यान्तमनिशं हतव्रीडं चेतस्तदपि न भवेत्सङ्गरहितम् ॥ २३८ ॥ यदा पूर्वं नासीदुपरि च तथा नैव भविता तदा मध्यावस्थाक्षणपरिचयो भूतनिचयः । अतः संयोगेऽस्मिन्परिणतिवियोगे च सहजे किमाधारः प्रेमा किमधिकरणाः सन्तु च शुचः ॥ २३९ ॥ यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारजनितं तदा दृष्टं नारीमयमखिलमेतज्जगदिति । इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते ॥ २४० ॥ यदासौ दुर्वारः प्रसरति मदश्चित्तकरिणस्तदा तस्योद्दामप्रसरसरुद्धैर्यवसितैः । क्व तद्धैर्यालानं क्व च निजकुलाचारनिगडः क्व सा लज्जारज्जुः क्व विनयकठोराङ्कुशमपि ॥ २४१ ॥ यदेतत्स्वच्छन्दं विहरणमकार्पण्यमशनं सहार्यैः संलापः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् । मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृशन्न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥ २४२ ॥ यद्वन्नद्योदधिसमरसौ सागरत्वं ह्यवाप्तौ तद्वज्जीवालयपरिगतौ सामरस्यैकभूतौ । भेदातीतं परिलयगतं सच्चिदानन्दरूपं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥२४३॥ यद्वात्मानं सकलवपुषामेकमन्तर्बहिःस्थं दृष्ट्वा पूर्णं खमिव सततं सर्वभाण्डस्थमेकम् । नान्यत्कार्यं किमपि च ततः कारणाद्भिन्नरूपं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥ २४४ ॥ यन्मध्ये

फिर एक भी न रह गया । इस प्रकार काल ही रात और दिनके दो पासे लेकर संसाररूपी जुएके चौपड़पर चलाता हुआ जीवोंको दाँवँपर लगाकर कालीके साथ खेल खेलता रहता है ॥ २३६ ॥ काशीमें ऐसी जो बड़ी-बड़ी आश्चर्यजनक घटनाएँ होती हैं उनका क्या कोई कवि वर्णन कर सकता है ? वहाँ मरते समय शिवजीसे तारक मन्त्रका एक अक्षर सुनकर प्राणी तत्काल शंकर बनकर वेदोंका निर्माता बन जाता है । उसके एक ही शरीरके आठ शरीर (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यज्ञका यजमान) हो जाते हैं और एक बूँद गङ्गाजल शरीरपर पड़ते ही सारी गङ्गाजी सिरपर आ बैठती हैं ॥ २३७ ॥ मैंने जितनी वस्तुएँ देखीं वे सब स्वप्नके समान नष्ट हो गईं । कितनी ही वस्तुएँ तो ऐसी हैं कि उनका स्मरणतक नहीं रह गया । क्या यह कम आश्चर्यकी बात है कि लोगोंको निरन्तर संसारसे चले जाते देखते हुए भी यह निर्लज्ज मन संसारका सङ्ग नहीं छोड़ पा रहा है ॥ २३८॥ ये प्राणी न तो पहले थे और न आगे रहेंगे । ये सब तो बीचमें क्षणभरके साथी हो गए हैं । इसलिये जब संयोगसे मिलना हुआ है और अन्तमें वियोग निश्चित ही है तब किस भरोसे उनसे प्रेम किया जाय और किसके लिये शोक मनाया जाय ॥ २३९ ॥ जिस समय काम-रूपी भयंकर अन्धकारमें अज्ञान बसा हुआ था उस समय यह सारा संसार स्त्रीके रूपमें दिखाई देता था । किन्तु इस समय दृढ विचार-रूपी आँजन आँखमें लगा लेनेपर हमारी दृष्टि सबको समान समझने लगी और सारा त्रिभुवन ब्रह्ममय दिखाई देने लगा है ॥ २४० ॥ जब मनरूपी हाथीसे धारा-प्रवाह मद निकलने लगता है, उस समय उसके प्रबल अहंकारपूर्ण व्यवहारके सामने धीरतारूपी खम्भा, कुलके सुन्दर आचाररूपी अलान, लज्जारूपी रस्सी और विनयरूपी कठोर अंकुश सब व्यर्थ हो जाते हैं ॥ २४१ ॥ स्वतंत्र घूमना, बिना माँगे भोजन करना, सत्पुरुषोंसे बातचीत करना, शान्ति देनेवाले शास्त्रका चिंतन करना और बाहरी वस्तुओंमें बहुत ममता न रखना किसी बड़ी तपस्याके ही फलसे होता है ॥ २४२ ॥ जैसे नदी और समुद्रका जल मिलकर दोनों पवित्र हो जाते हैं, उसी प्रकार जीव भी ब्रम्ह रूप बन जाता है । उस समय भेद-रहित, एक रूप, सत्य ज्ञान तथा आनन्दस्वरूप आत्माको जानकर मायासे शून्य मार्गमें भ्रमण करनेवाले व्यक्तिके लिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार कैसा ॥ २४३ ॥ जो व्यक्ति सभी प्राणियोंके भीतर तथा बाहर स्थित, एक, पूर्ण, आकाशके समान सब स्थानोंमें व्यापक, सभी वस्तुओंका कारण और जिसके अतिरिक्त कोई कार्य नहीं है उस आत्माका साक्षात्कार करके मायासे हटकर भ्रमण करने लगता है उसके लिये कर्तव्य और अकर्तव्य सब समान हैं ॥ २४४ ॥ जो वस्तु पहले, बीचमें और अन्तमें सुंदर दिखाई पड़ी वही अपवित्र, नाशवान् तथा घृणा करने योग्य प्रतीत हुई ॥ २४५ ॥ जिन-जिन वस्तुओंमें मेरी ममता है, उन्हीं-

यच्च पर्यन्ते यदापाते मनोरमम्। सर्वमेवापवित्रं तद्विनाशामेध्यदूषितम् ॥२४५॥ यस्मिन्वस्तुनि ममता मम तापस्तत्र तत्रैव। यत्रैवाहमुदासे तत्र मुदासे स्वभावसन्तुष्टः ॥ २४६ ॥ यस्मिन्विश्वं सकलभुवनं सामरस्यैकभूतमुर्वी ह्यापोऽनलमनिलखं जीवमेवं क्रमेण। यत्क्षाराब्धौ समरसतया सैन्धवैकत्वभूतं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥ २४७ ॥ याञ्चाशून्यमयत्नलभ्यमशनं वायुः कृतो वेधसा व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सुस्थाः स्थलीशायिनः। संसारार्णवलङ्घनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां यामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ॥ २४८ ॥ यातं यौवनमधुना वनमधुना शरणमेकमस्माकम्। स्फुरदुरुहारमणीनां हा रमणीनां गतः कालः ॥ २४९ ॥ यावन्तः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान्। तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः ॥ २५० ॥ येषां निमेषोन्मेषाभ्यां जगतां प्रलयोदयौ। तादृशाः पुरुषा याता मादृशां गणनैव का ॥ २५१ ॥ येषां वल्लभया सह क्षणमपि क्षिप्रं क्षपा क्षीयते तेषां शीतकरः शशी विरहिणामुल्केव सन्तापकृत्। अस्माकं तु न वल्लभा न विरहस्तेनोभयभ्रंशिनामिन्दू राजति दर्पणाकृतिरसौ नोष्णो न वा शीतलः ॥ २५२ ॥ येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्ति भक्तिर्नराणां येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा। येषां श्रीकृष्णलीलाललितगुणरसे सादरौ नैव कर्णौ धिक्तान्धिक्तान्धिगेतान् कथयति सततं कीर्तनस्थो मृदङ्गः ॥ २५३ ॥ येषु येषु दृढं बद्धा भावना दृष्टवस्तुषु। तानि तानि विनष्टानि दृष्टानि किमिहोत्तमम् ॥२५४॥ रक्तमांसमयः कायः स्त्रीणां स्पर्शसुखाय नः। तमेवाश्नन्ति सिंहाद्या रम्यं नास्तीह वस्तुतः ॥ २५५ ॥ रथ्यान्तश्चरतस्तथा धृतजरत्कन्थालवस्याध्वगैः सत्रासं च सकौतुकं च सदयं दृष्टस्य तैर्नागरैः। निर्व्याजीकृतचित्सुधारसमुदा निद्रायमाणस्य मे निःशङ्कं करटः कदा करपुटीभिक्षां विलुण्ठिष्यति ॥ २५६ ॥ रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्रव्यं न गेया-

---

उन्हीं वस्तुओंमें दुःख है और जिनकी मैं उपेक्षा करता हूँ वहीं मुझे सन्तोष हो जाता है और मैं प्रसन्न रहता हूँ ॥ २४६ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, जीव, जगत् और सारा ब्रह्मांड इस ब्रह्ममें इस प्रकार मिला हुआ है जैसे सारे समुद्रमें मिलकर नमक एक रूप हो जाता है। यह समझकर जो व्यक्ति मायासे दूर हटकर भ्रमण करता है उसके लिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार कैसा ॥ २४७ ॥ ईश्वरने साँपोंके लिये वायु भोजन बनाया जो विना माँगे और विना परिश्रम ही उन्हें मिल जाता है, इसी प्रकार घास खाकर वनमें सुखसे सोनेवाले पशु भी सुखी रहते हैं पर जिनकी बुद्धिने संसार-सागर पार नहीं कर पाया, ऐसे मनुष्योंके लिये ईश्वरने ऐसी जीविका बनाई कि उसके ढूँढ़ते रहनेमें ही मनुष्यके सारे गुण समाप्त हो जाते हैं ॥ २४८ ॥ इस समय मेरा यौवन भी नहीं रहा और अब केवल वनकी शरण लेना भर रह गया है। अहो! चमकीले हार और मणियोंसे सजी हुई स्त्रियोंके सम्पर्कका समय भी जाता रहा ॥२४९॥ प्राणी जितना ही अपने सांसारिक नातेको प्रिय समझता है उतनी ही उसके मनमें शोक-रूपी कीलें गड़ती जाती हैं ॥ २५० ॥ जब संसारसे ऐसे लोग ही उठ गए जिनकी पलक गिरते ही संसारका नाश और पलक उठते ही संसारकी रचना हो जाती थी, तब हम जैसोंकी गिनती ही क्या है ॥ २५१ ॥ अपनी प्रिय पत्नीके साथ जिनकी रातें क्षणके समान शीघ्र ही बीत जाती हैं उन्हींके लिये विरहमें चन्द्रमा लूकके समान कष्ट देनेवाला हो जाता है। पर हमारे पास तो न प्रिय पत्नी ही है न विरह ही, इसलिये हमारे लिये तो चन्द्रमा दर्पणके समान है, न गरम न ठंढा ॥ २५२ ॥ यशोदानन्दन श्रीकृष्णके चरण-कमलमें जिसका प्रेम नहीं है, राधापतिके गुणोंका वर्णन करनेमें जिनकी जीभको अनुराग नहीं है, श्रीकृष्णके चरित्रकी सुन्दर कथा सुननेमें जिनके कान लगते नहीं उन्हींको लक्ष्य करके कीर्तनमें बजता हुआ मृदंग कहा करता है उन्हें धिक्कार है उन्हें धिक्कार है ॥२५३॥ अपनी आँखोंसे देखी हुई जिन-जिन वस्तुओंमें मुझे स्थिरताका विश्वास था उन्हें मैंने जब नष्ट होते देखा तो बताओ फिर उत्तम वस्तु है कहाँ ॥ २५४ ॥ हमारे रुधिर और मांससे बना हुआ जो शरीर स्त्रियोंके स्पर्शका सुख पाता है उसीको सिंह आदि मांस-भक्षक जीव जब खा जाते हैं तब यही विश्वास होता है कि यह शरीर सचमुच सुन्दर नहीं है ॥ २५५ ॥ वह समय कब आवेगा जब मैं गलियोंमें पुरानी गुदड़ीके टुकड़े लपेटे घूमता हूँगा, मार्गमें चलनेवाले नगरवासी मेरी ओर भय, आश्चर्य और दयासे देखते होंगे; मैं आत्माके बोध-रूपी अमृत रसको पीकर सच्ची प्रसन्नतामें डूबा हूँगा और कौए

दिव्यं किंवा प्राणतमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये। किं तूद्भ्रान्तपतत्पतङ्गपवनव्यालोलदीपाङ्कुरच्छायाचञ्चलमाकलय्य सकलं सन्तो वनान्तं गताः॥ २५७॥ रागिण्यपि विरागिण्यः स्त्रियस्तासु रमेत कः। अहं च कलये मुक्तिं या विरागिणि रागिणी॥ २५८॥ रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वा मुधा जन्तवो धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः। व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरेवंविधेनामुना संसारेण कदर्थिताः कथमहो मोहान्न लज्जामहे॥ २५९॥ रेतःशोणितयोरियं परिणतिर्यद्वर्त्म तत्राभवन्मृत्योरास्पदमाश्रयो गुरुशुचां रोगस्य विश्रामभूः। जानन्नप्यवशी विवेकविरहान्मज्जन्नविद्याम्बुधौ शृङ्गारीयति पुत्रकाम्यति बत क्षेत्रीयति स्त्रीयति॥ २६०॥ लब्धास्त्यक्ताश्च संसारे यावन्तो बान्धवास्त्वया। न सन्ति खलु तावन्त्यो गङ्गायामपि वालुकाः॥ २६१॥ लाटीनेत्रपुटीपयोधरघटीक्रीडाकुटीदोस्तटीपाटीरद्रुमवर्णनेन कविभिर्मूढैर्दिनं नीयते। गोविन्देति जनार्दनेति जगतां नाथेति कृष्णेति च व्याहारैः समयस्तदेकमनसां पुंसामतिक्रामति॥ २६२॥ लालां वक्त्रासवं वेत्ति मांसपिण्डौ पयोधरौ। मांसास्थिकूटं जघनं जनः कामग्रहातुरः॥ २६३॥ लावण्यं तदसौ कान्तिस्तद्रूपं स वचःक्रमः। तदा सुधास्तदमभूदधुना तु ज्वरो महान्॥ २६४॥ वनान्यमूनि न गृहाण्येता नद्यो न योषितः। द्रुमा इमे न दायादास्तन्मे नन्दति मानसम्॥ २६५॥ वयं येभ्यो जाताश्चिरतरगता एव खलु ते समं यैः संवृद्धाः स्मरणपदवीं तेऽपि गमिताः। इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः॥ २६६॥ वर्तमानक्षणादूर्ध्वं स्थितौ कायस्य का प्रमा। तथापि जीवनायाहो चिन्ता कल्पान्तवर्तिनी॥ २६७॥ विद्या नाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितं शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिता। आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेऽपि नालिङ्गिताः कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः॥ २६८॥ विपत्प्रशान्त्यै सेव्यन्ते यदि

वेखटके हमारे हाथमें पड़ी हुई भिक्षा लूटते होंगे॥ २५६॥ क्या सन्तोंको रहनेके लिये सुन्दर भवन नहीं मिलते थे या सुननेको अच्छे गीत नहीं मिलते थे या प्राण-प्रियाके सुखसे प्रसन्नता नहीं होती थी किन्तु वे बुद्धिमान् लोग उड़कर गिरते हुए पतंगोंके झोंकेसे हिलती हुई दीपकके लौके समान जगत्को चंचल समझकर ही वनमें जा बसे॥ २५७॥ ऐसी स्त्रियोंपर कौन समझदार आसक्त होगा जो अनुराग करनेवालोंपर वैराग्य करती हैं। मैं तो उस मुक्तिको चाहता हूँ जो वैराग्य करनेवालोंपर अनुराग करती हैं॥ २५८॥ फिर वही रात, फिर वही दिन, यह सब समझते हुए भी लोग लगनसे अपने-अपने कामोंमें लगे हुए पहलेकी भाँति दौड़ते रहे हैं। उन्हीं काम-धंधोंमें, उन्हीं बार-बार भोगी हुई वस्तुओंमें, तथा उन्हीं संसारके झमेलों पड़े हुए हम लोग फिर भी अपने मोहपर लज्जित नहीं हो रहे हैं॥ २५९॥ यह शरीर माताके रज तथा पिताके वीर्यसे बना है, मृत्युका निवास-स्थान है, विशाल शोकका अड्डा है, रोगका विश्रामस्थान है, यह जानते हुए भी अज्ञान-सागरमें डूबा हुआ विचारहीन प्राणी शृंगार चाहता है, भूमि चाहता है और स्त्रीकी अभिलाषा करता है॥२६०॥ संसारमें जितने संबंधी मिले और छोड़कर चले गए उतने तो गंगामें बालूके कण भी नहीं हैं॥ २६१॥ सुन्दरी नवेलियोंके नेत्र, कलशके समान स्तन, क्रीड़ा-गृह, भुजाएँ और चन्दनके वृक्ष आदिके वर्णनमें मूर्ख कवि दिन बिताते हैं किंतु भगवान्में मन लगानेवाले पुरुष हे गोविन्द! हे जनार्दन! हे जगन्नाथ! हे कृष्ण! कहते हुए दिन बिताते हैं॥ २६२॥ कामके फेरमें पड़ा मनुष्य लारको मुखका आसव, मांसके लोथड़ोंको स्तन तथा मांस और हड्डियोंके समूहको शरीर समझता है॥२६३॥ वही सुन्दरता, वही शोभा, वही आकार और वही बोलनेका ढंग जो उस समय अमृतसे भरा जान पड़ता था वही अब ज्वरके समान ताप दे रहा है॥२६४॥ ये घर नहीं वन हैं, ये स्त्रियाँ नहीं नदियाँ हैं और ये भाई-बंधु नहीं वृक्ष हैं इसीलिये मेरा चित्त प्रसन्न है॥ २६५॥ जिनसे हम उत्पन्न हुए वे बहुत पहले ही चल दिए, जिनके साथ हमारा पालन-पोषण हुआ वे भी स्मरण नहीं आते; हमारा भी जाना अब पास ही है, इसलिये इस समय हमारी दशा नदीके बलुए तटपर खड़े वृक्षके समान है॥ २६६॥ वर्तमान क्षणके पश्चात् इस शरीरके रहनेका भला क्या भरोसा! फिर भी इस जीवनके लिये चिन्ता ऐसी है मानो कल्पान्त-तक जीना हो॥ २६७॥ मैंने न तो अच्छी विद्या पढ़ी, न धन कमाया, न मन लगाकर माता-पिताको सेवा की, न बड़ी-बड़ी चञ्चल आँखोंवाली स्त्रियोंको गलेसे लगाया, वरन् कौएके समान

कष्टेन भूभृतः। तत्करिष्यति कष्टापि विपत्तिमधिकं ततः ॥ २६९ ॥ विवेकः किं सोऽपि स्वरसजनिता यत्र न कृपा स किं योगो यस्मिन्न भवति परानुग्रहरसः। स किं धर्मो यत्र स्फुरति न परद्रोहविरतिः कृतं किं तद्वा स्यादुपशमफलं यन्न भवति ॥ २७० ॥ विवेक एव व्यसनं पुंसां क्षपयितुं क्षमः। अपहर्तुं समर्थोऽसौ रविरेव निशातमः ॥२७१॥ विशीर्णः प्रारम्भो वपुरपि जराव्याधिविधुरं गतं दूरे विप्रस्वजनभरणं वाञ्छितमपि। इदानीं व्यामोहादहह विपरीते हतविधौ विधेयं यत्तत्त्वं स्फुरति मम नाद्यापि हृदये ॥ २७२ ॥ विषं विषयवैषम्यं न विषं विषमुच्यते। जन्मान्तरघ्नाः विषया एकदेहहरं विषम् ॥ २७३ ॥ वेदस्याध्ययनं कृतं परिचितं शास्त्रं पुराणं स्मृतं सर्वं व्यर्थमिदं पदं न कमलाकान्तस्य चेत्कीर्तितम्। उत्खातं सदृशीकृतं विरचितः सेकोऽम्भसा भूयसा सर्वं निष्फलमालवालवलये क्षिप्तं न बीजं यदि ॥ २७४ ॥ व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्। आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥ २७५ ॥ व्योमैकान्तविहारिणोऽपि विहगाः सम्प्राप्नुवन्त्यापदं बध्यन्ते निपुणैरगाधसलिलान्मत्स्याः समुद्रादपि। दुर्नीतं किमिहास्ति किं सुचरितं कः स्थानलाभे गुणः कालो हि व्यसनप्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि ॥२७६॥ शय्या शाद्वलमासनं शुचि शिला सद्म द्रुमाणामधः शीतं निर्झरवारि पानमशनं कन्दाः सहाया मृगाः। इत्यप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे दोषोऽयमेको वने दुष्प्रापार्थिनि यत्परार्थघटनावन्ध्यैर्वृथा स्थीयते ॥ २७७ ॥ शरदम्बुधरच्छायागत्वर्यो यौवनश्रियः। आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः ॥ २७८ ॥ शान्तिकन्थालसत्कण्ठो मनःस्थालीमिलत्करः। त्रिपुरारिपुरद्वारि कदाहं मोक्षभिक्षुकः ॥ २७९ ॥ शुचां पात्रं धात्री परिणतिरमेध्यप्रचयभूरयं भूतावासो विमृश कियतीं याति न

दूसरोंके दिए टुकड़ोंके लोभमें जीवन बिताता रहा ॥२६८॥ यदि अपनी विपत्ति दूर करनेके लिये अधिक कष्ट भोगकर राजाओंकी सेवा करनी पड़े तो विपत्ति ही इससे बढ़कर क्या कष्ट दे सकती है ॥ २६९ ॥ वह विचार कैसा जिसमें स्वाभाविक कृपा नहीं। वह योग कैसा जिसमें दूसरोंकी भलाईकी इच्छा नहीं, वह धर्म कैसा जहाँ दूसरोंसे विरोधकी शान्ति नहीं, वह शास्त्रका ज्ञान कैसा जिससे शान्ति न मिले ॥ २७० ॥ जैसे रातके अँधेरेको केवल सूर्य ही दूर कर सकता है वैसे ही केवल विचारसे ही प्राणीकी विपत्ति दूर हो सकती है ॥ २७१ ॥ पहले तो हमारे जीवनका प्रारम्भ ही बिगड़ गया, बुढ़ापे और रोगने शरीर नष्ट कर डाला, ब्राह्मण और सम्बन्धियोंके पोषणकी बात तो दूर रही, इस समय नीच भाग्यके उलट जानेपर जो काम करना चाहिए वह भी अज्ञानके कारण मेरे मनमें नहीं सूझ रहा है ॥ २७२ ॥ विषयों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द) की उलझन ही विष है, विष विष नहीं है, क्योंकि विष तो एक ही देहको नष्ट करता है किन्तु विषय तो आगे आनेवाले जन्मको भी नष्ट कर डालते हैं ॥ २७३ ॥ यदि लक्ष्मीपति भगवान्‌के चरणका कीर्तन नहीं किया तो वेदका किया हुआ अध्ययन, पढ़े हुए शास्त्र-पुराणका स्मरण सब वैसे ही व्यर्थ है जैसे खोदकर बराबर किया हुआ और सींचा हुआ वह थाँवला जिसमें बीज न बोया गया हो॥२७४॥ बुढ़ाई हमारे सिरपर बाघिनके समान चढ़कर बराबर फटकारती रहती है, रोग भी शत्रुके समान शरीरपर कोड़ा फटकारते रहते हैं, आयु भी फूटे घड़ेके पानीके समान निकलती जाती है, फिर भी आश्चर्यकी बात तो देखो कि लोग बुरे काम करते ही चलते हैं ॥ २७५ ॥ आकाशमें उड़नेवाले पक्षीतक विपत्तिमें पड़ जाते हैं, बुद्धिमान् लोग अथाह समुद्रसे भी मछलियाँ पकड़ लेते हैं, इस संसारमें किसीके भले-बुरे कामपर विचार नहीं होता और अच्छे स्थानपर रहनेसे भी क्या लाभ है? क्योंकि काल तो सदा विपत्ति देनेवाले अपने लम्बे हाथसे दूरसे ही पकड़ लेता है ॥ २७६ ॥ वनमें पहुँचकर धर्मात्मा जीमूतवाहन कहता है—'यहाँ घास ही बिछौना है, सुन्दर चट्टानें ही आसन हैं, पेड़ोंकी छाया ही घर है, पीनेके लिये शीतल झरनेका जल है, खानेके लिये कन्दमूल हैं, हरिणोंका साथ है। इस प्रकार वनमें और सब सुखकी सामग्रियाँ तो बिना परिश्रमके मिल जाती हैं किन्तु एक दोष यही है कि यहाँ याचक नहीं मिलते हैं। इसलिये परोपकारका अवसर न पानेके कारण यहाँ टिकना व्यर्थ है ॥२७७॥ तरुणाई शरद्‌के बादलकी परछाँहींके समान ही तुरन्त समाप्त हो जानेवाली होती है। भोग पहले तो अच्छे लगते हैं किन्तु अन्तमें दुःख देते हैं ॥ २७८ ॥ गलेमें शान्तिरूपी गुदड़ी डालकर और हाथमें मनरूपी थाली लेकर मैं मोक्षकी भिक्षा माँगनेके लिये शंकरजीके द्वारपर

दशाम्। तदस्मिन्धीराणां क्षणमपि किमास्थातुमुचितं खलीकारः कोऽयं यदहमहमेवेति रभसः ॥ २८० ॥ श्मशाने च दिगन्ते च स एव ललनास्तनः। श्वभिरास्वाद्यते काले लघुपिण्ड इवान्धसः ॥ २८१ ॥ श्रियो दोलालोला विषयजरसाः प्रान्तविरसा विपद्गेहं देहं महदपि धनं भूरि निधनम्। बृहच्छोको लोकः सततमबला दुःखबहुलास्तथाप्यस्मिन्घोरे पथि बत रता हन्त कुधियः ॥ २८२ ॥ संसाररात्रिदुःस्वप्ने शून्ये देहमये भ्रमे। आस्थां चेदनुबध्नामि तन्मूर्खो नास्ति मत्परः ॥२८३॥ संसारे पतितानां कुशलं किं पृच्छ्यते शरीरभृताम्। पतितस्य दहनराशौ दग्धोऽसि न वेति कः प्रश्नः ॥ २८४ ॥ सत्यं मनोरमा रामाः सत्यं रम्या विभूतयः। किन्तु मत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गलोलं हि जीवितम् ॥ २८५ ॥ सत्यं वक्तुमशेषमस्ति सुलभा वाणी मनोहारिणी दातुं दानवरं शरण्यमभयं स्वच्छं पितृभ्यो जलम्। पूजार्थं परमेश्वरस्य विमलः स्वाध्याययज्ञः परं क्षुद्व्याधेः फलमूलमस्ति शमनं क्लेशात्मकैः किं धनैः ॥ २८६ ॥ सन्त्येके धनलाभमात्रगहनव्यामोहसम्मूर्च्छिताः केचिद्दैवतसुन्दरीस्तनपरीरम्भभ्रमव्याकुलाः। अन्तर्भूतसमस्ततत्त्वनिवहं चिन्मात्रशेषं शिवं दृष्ट्वा हृष्टतनूरुहाङ्कुरभराः कष्टं न शिष्टाः क्वचित् ॥ २८७ ॥ सन्ध्यावन्दन भद्रमस्तु भवते भो स्नान तुभ्यं नमो भो देवाः पितरश्च तर्पणविधौ नाहं क्षमः क्षम्यताम्। यत्र क्वापि निषद्य यादवकुलोत्तंसस्य कंसद्विषः स्मारं स्मारमघं हरामि तदलं मन्ये किमन्येन मे ॥ २८८ ॥ समाश्लिष्यत्युच्चैर्घनपिशितपिण्डं स्तनधिया मुखं लालाक्लिन्नं पिबति चषकं सासवमिव। अमेध्यक्लेदार्द्रे पथि च रमते स्पर्शरसिको महामोहान्धानां किमिव रमणीयं न भवति ॥२८९॥ सम्भोगाद्विषयामिषस्य परितः सौहित्यमस्ताखिलज्ञानोन्मेषतया कथं तव भवेदत्यास्पदं देहिनः। साध्यं तद्धि तदेव साधनमितो व्यावृत्तिरे-

---

कब पहुँचूँगा ॥ २७९ ॥ इस पृथ्वीमें शोक ही शोक है, यहाँ रहनेका परिणाम भी अमङ्गल होता है, प्राणियोंकी स्थितिमें भी न जाने कितने परिवर्तन होते रहते हैं, फिर बताइए तो सही कि ऐसे जगत्में बुद्धिमानोंको क्या क्षणभर भी ठहरना उचित है जिसमें सब लोग मैं-मैं कहते हुए अपनी दुर्गति करा रहे हैं ॥ २८० ॥ श्मशानमें या विभिन्न दिशाओंमें उसी स्त्रीके स्तनको कुत्ते ऐसे खाते हैं जैसे अन्नका छोटा-मोटा ग्रास हो ॥ २८१ ॥ लक्ष्मी झूलेकी पेंगोंके समान इधर उधर आया-जाया करती है, भोगोंका स्वाद अन्तमें नीरस हो जाता है, शरीर भी रोगका निवास-स्थान है, विशाल धनकी राशि भी मृत्यु है, संसार शोकसे भरा पड़ा है, स्त्रियाँ सर्वदा दुःख देनेवाली होती हैं, फिर भी दुर्बुद्धिवाले लोग इसी भयंकर मार्गपर चलनेके लिये उत्सुक रहते हैं ॥ २८२ ॥ जो शरीर वस्तुतः नहीं है उसका यदि मैं संसाररूपी रातमें स्वप्न देखता हूँ तथा उसकी सत्यतापर विश्वास करता हूँ तो मुझसे बढ़कर दूसरा कोई मूर्ख नहीं ॥ २८३ ॥ लोग संसारमें पड़े हुए प्राणियोंकी भला क्या कुशलता पूछते हैं, आगके ढेरमें गिरे हुए व्यक्तिसे भला यह पूछना कहाँतक ठीक है कि तुम जले या नहीं ॥ २८४ ॥ स्त्रियाँ भले ही सुन्दर हों, सम्पत्ति भी अच्छी हो किन्तु यह जीवन भी मतवाली स्त्रीकी आँखकी कोरसे कम चञ्चल नहीं है ॥ २८५ ॥ सत्य बोलनेके लिये मनोहर वाणी भी मिली हुई है, पितरोंको सुन्दर दान देनेके लिये रक्षा करनेवाला तथा भय दूर करनेवाला स्वच्छ जल भी है, परमेश्वरकी पूजा करनेके लिये निर्मल वेदपाठरूपी यज्ञ भी है, भूखरूपी रोगको शान्त करनेके लिये फल-मूल भी हैं तब दुःख देनेवाले धनके संग्रहसे क्या लाभ ? ॥ २८६ ॥ बहुतसे लोग धनके पाने मात्रके घने अज्ञानमें पड़े हुए हैं। बहुतसे लोगोंको अप्सराओंके स्तनके आलिंगनकी अभिलाषा है परन्तु जिसके भीतर सभी वस्तुएँ समा जाती हैं, जो ज्ञानस्वरूप है उस शिव (कल्याणकारी आत्मा) को देखकर प्रसन्नतासे रोमांचित होनेवाले सज्जन कहीं नहीं दिखाई पड़े, यही कष्टकी बात है ॥ २८७ ॥ हे सन्ध्यावन्दन ! तुम्हारा मङ्गल हो। हे स्नान ! तुम्हें प्रणाम है। हे देवताओ तथा पितरो ! तुम्हारा तर्पण करनेकी मेरी शक्ति नहीं है, क्षमा करना। अब मैं कहीं भी बैठकर यादवकुलके भूषण तथा कंसके नाशक भगवान्का ध्यान करके अपने पाप दूर करूँगा। अतः, अब मुझे दूसरी वस्तुकी आवश्यकता ही क्या ? ॥ २८८ ॥ स्पर्श-सुखका आनन्द लेनेवाले लोग ऊँचे कड़े मांसके पिण्डको स्तन समझकर आलिङ्गन करते हैं, लारसे लिपटे हुए मुखको मदिरासे भरे हुए प्यालेके समान पीते हैं तथा अपवित्र स्राव-भरे गीले मार्गमें आनन्दका अनुभव करते हैं। सचमुच भयंकर अज्ञानसे अन्धे लोगोंको सभी वस्तुएँ भली ही जान पड़ती हैं ॥ २८९ ॥

वामिषात्तस्यां ज्योतिरुपैत्य निन्धनमिदं दोषत्रयं धक्ष्यति ॥ २९० ॥ सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः । शरीरकस्यापि कृते मूढा पापानि कुर्वते ॥ २९१ ॥ सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः। सत्पुत्राः विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥ २९२ ॥ साक्षात्प्रेमावतारः कमलदलदृशो दिक्षु लक्ष्मीरनन्ताः सत्पुत्राः सन्ति मित्राण्यपि विषमविपत्संविभागी कुटुम्बः । एतत्सर्वं हि तावत्सुकृतविलसितं दृश्यमानं मनोज्ञं यच्चैतत्क्षिप्रनाशप्रणयि बत मनाङ्म्लायते तेन चेतः ॥ २९४ ॥ सा बुद्धिर्विलयं प्रयातु कुलिशं तत्रापि सम्पात्यतां वल्गन्तः प्रविशन्तु ते हुतभुजि ज्वालाकराले गुणाः । यैः सर्वैः शरदिन्दुकुन्दविशदैः प्राप्तैरपि प्राप्यते भूयोऽप्यत्र पुरन्ध्रिगर्भनरकक्रीडाधिवासव्यथा ॥ २९४ ॥ सार्वभौमभवनं वनवासी निस्वभावभवभावनया ते । बालिशो हि विषयेन्द्रियचौरैर्मुष्यते स्वभवने च वने च ॥ २९५ ॥ सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ॥ २९६ ॥ सूक्तिं कर्णसुधां व्यनक्तु सुजनस्तस्मिन्न मोदामहे ब्रूतां वाचमसूयको विषमुचं तस्मिन्न खिद्यामहे । या यस्य प्रकृतिः स तां वितनुतां किं नस्तया चिन्तया कुर्मस्तत्खलु कर्म जन्मनिगडच्छेदाय यज्जायते ॥ २९७ ॥ सौजन्याम्बुमरुस्थली सुचरितालेख्यद्युभित्तिर्गुणज्योत्स्नाकृष्णचतुर्दशी सरलतायोगश्वपुच्छच्छटा । यैरेषापि दुराशया कलियुगे राजावली सेविता तेषां शूलिनि भक्तिमात्रसुलभे सेवा कियत्कौशलम् ॥ २९८ ॥ स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् । स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघनं परं निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम् ॥ २९९ ॥ स्थिरापायः

सुन्दर-सुन्दर भोगकी सामग्रियाँ पाकर उनके भोगसे सन्तुष्ट होनेवाले मनुष्यका सारा ज्ञानका प्रकाश जाता रहता है, उससे मनुष्य ऊँचा पद नहीं पा सकता। भोगके विषयोंसे मन हटा लेना ही सुख तथा सुखका उपाय है। उसमेंसे विना ईंधनके ही ऐसा प्रकाश जग उठता है जो आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक तीनों दोषोंको जला डालता है ॥ २९० ॥ सब प्रकारकी अपवित्रताकी खान और सेवा-रूपी उपकारको न माननेवाले इस नाशवान् शरीरके लिये मूर्ख लोग पाप-कर्म किया करते हैं ॥२९१॥ सभी वस्तुएँ अन्तमें नष्ट हो जाती हैं, उन्नतिके पश्चात् पतन होता है, संयोगके पश्चात् वियोग होता तथा जीवनके पश्चात् मरण निश्चित है ॥ २९२ ॥ स्वयं साक्षात् प्रेमके अवतार, कमलकी पंखुड़ीके समान चौड़ी आँखवाली स्त्रियाँ, चारों ओर अनंत लक्ष्मी, अच्छे पुत्र, मित्र, भयंकर विपत्तिमें साथ देनेनेवाले परिवार, ये जो सुन्दर पूर्वजन्मके पुण्यके फल दिखाई देते हैं, ये सभी क्षणभंगुर हैं, फिर भी खेदकी बात है कि इन्हींके लिये लोग व्याकुल हुए रहते हैं ॥ २९३ ॥ उस बुद्धिका नाश हो और उसपर वज्र गिरे तथा शरद् ऋतुके चन्द्रमा और कुन्दके फूलके समानके स्वच्छ वे अच्छे-अच्छे गुण भी अग्निकी भयंकर ज्वालामें जा झुलसें जिन्हें पाकर भी फिर नारीके गर्भरूपी नरकके भीतर सड़नेका कष्ट भोगना पड़े ॥२९४॥ संसारको तुच्छ समझकर आपका ध्यान करनेवालेको वनवास भी चक्रवर्ती राजाके भवनमें निवास-सा जान पड़ता है पर अज्ञानी मनुष्य घर तथा वनमें भी भोगकी वस्तुओं तथा इन्द्रिय-रूपी चोरोंके हाथ लुट जाता है ॥२९५॥ जिस वैराग्यमें देवमन्दिरों और पेड़ोंके तले निवास है, भूमि ही शय्या और मृगचर्म ही वस्त्र रहता है और जिसमें सभी वस्तुओंका संग्रह और भोग छोड़ दिया जाता है, उस वैराग्यसे किसे सुख नहीं मिलेगा ॥ २९६ ॥ कानोंमें अमृतके समान अच्छी लगनेवाली सज्जनोंकी सुन्दर-सुन्दर बातोंसे हमें प्रसन्नता नहीं और विष उगलनेवाले नीच लोगोंकी विष भरी बातोंका हमें दुःख नहीं क्योंकि जिसका जैसा स्वभाव होगा वह तो वैसा ही जान पड़ेगा। हम तो वही काम करते हैं जिससे जन्म-मरणकी बेड़ी टूट जाय ॥ २९७ ॥ जो सज्जनतारूपी जलके लिये मरुभूमि हैं, सदाचाररूपी चित्रके लिये आकाशकी भीत हैं, अच्छे गुणरूपी चाँदनीके लिये कृष्णपक्षकी चतुर्दशी हैं, सीधेपनके लिये कुत्तेकी पूँछ हैं ऐसे बुरे विचारवाले राजाओं-तकको जिसने कलियुगमें सेवा कर ली है उसके लिये भक्तिमात्रसे वशमें होनेवाले शंकरजीकी सेवा करना कौन-सी बड़ी बात है ॥ २९८ ॥ मांसके पिंडोंकी उपमा [illegible]नेके घड़ेसे दी जाती है, कफसे भरे हुए मुखको चन्द्रम[illegible]मान बताया जाता है, मूत्रसे भीगी हुई जाँघें हाथीकी सूँड़के समान बताई जाती हैं। इस प्रकार इस घृणित शरीरको कवियोंने अपने वर्णनसे महत्त्वपूर्ण बना दिया है ॥ २९९ ॥ कायाका नाश

कायः प्रणयिषु सुखं स्थैर्यविमुखं महाभोगा रोगाः कुवलयदृशः सर्पसदृशः। महावेशः क्लेशः प्रकृतिचपला श्रीरपि खला यमः स्वैरी वैरी तदपि न हितं कर्म विहितम् ॥ ३०० ॥ स्मारस्मेरमदोन्नमत्कुचतटीकान्ताकरान्दोलितैः पुष्पाम्भोनिचितैरुशीररचितैः किं तालवृन्तैर्मम। अन्वानन्दवनं मुखं शिशयिषोरर्धप्रमीलद्दृशो यातायातपरिश्रमं शमयिता गङ्गातरङ्गानिलः ॥ ३०१ ॥ स्वमस्तकसमारूढं मृत्युं पश्येज्जनो यदि। आहारोऽपि न रोचेत किमुतान्या विभूतयः ॥ ३०२ ॥ स्वार्थ[illegible]शिरसां पक्षपातात्सुराणां दृप्तात्मानं करज[illegible] निहन्तुम्। सिंहीभूतस्त्रिभुवनगुरुः सोऽपि नारायणोऽस्मिन् रागद्वेषप्रतिहतमतेः कस्य न स्यात्पशुत्वम् ॥ ३०३ ॥ हरिष्यमाणो बहुधा परस्वं करिष्यमाणः सुखसम्पदादि। धरिष्यमाणोऽरिशिरःसु पादं न स्वं मरिष्यन्तमवैति कोऽपि ॥ ३०४ ॥ हेम्नः कार्यं हुतवहगतं हेममेवेति यद्वत्क्षीरे क्षीरं समरसतया तोयमेवाम्बुमध्ये। एवं सर्वं समरसतया तत्पदं तत्पदार्थं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥ ३०५ ॥ हेयं हर्म्यमिदं निकुञ्जभवनं श्रेयं प्रदेयं धनं पेयं तीर्थपयो हरेर्भगवतो गेयं पदाम्भोरुहम्। नेयं जन्म चिराय दर्भशयने धर्मे निधेयं मनः स्थेयं तत्र सितासितस्य सविधे ध्येयं पुराणं महः ॥ ३०६ ॥

इति श्रीमन्नारायणस्वामिभिः सङ्कलिते सूक्तिसागरे रससूक्तय
इत्यभिधानकं सानुवादं द्वितीयप्रकरणं सम्पूर्णम् ॥

निश्चित है, प्रेमियोंका सुख भी स्थिर नहीं है, विशाल भोग भी सब रोग हैं, कमलके समान आँखोंवाली स्त्रियाँ भी सर्पके समान हैं, किसी वस्तुमें बहुत लगन भी दुःख है, यह लक्ष्मी भी स्वभावसे चञ्चल है और निरंकुश यमराज भी शत्रु हैं, फिर भी मैंने अपने कल्याणके लिये आजतक कुछ नहीं किया ॥३००॥ कामके प्रबल मदसे जिन स्त्रियोंके स्तन उठे हुए हैं उनके हाथसे झले हुए तथा फूल और खसके जलसे सुगंधित पंखोंकी हमें क्या आवश्यकता है ? हम तो आनन्दवन (काशी) में आधी आँखें मूँदकर सुखसे प्राण दे दें तो गङ्गाजीकी लहरोंमें मिला हुआ पवन ही संसारमें आने-जानेकी सब थकावट दूर कर देगा ।३०१॥ अपने माथेपर बैठी हुई मृत्युको यदि लोग देख पावें तो दूसरे सुख तो क्या, भोजन भी उन्हें अच्छा न लगे ॥ ३०२ ॥ स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये सिर नवाए हुए देवताओंका पक्षपात करके अत्यन्त घमण्डी हिरण्यकशिपुको अपने वज्र-जैसे नखोंसे फाड़ डालनेके लिये त्रैलोक्यके स्वामी नारायण भी सिंह बन गए। ठीक ही है, बुद्धिमें राग-द्वेष समा जानेपर कौन पशु नहीं हो जाता ॥३०३॥ लोग प्रायः दूसरेका धन हरना चाहते हैं, पुत्र और सम्पत्ति संग्रह करना चाहते हैं, शत्रुओंको पददलित करना चाहते हैं पर कोई यह नहीं कहता कि मैं मरूँगा भी ॥ ३०४ ॥ जैसे सोनेकी बनी हुई सभी विभिन्न वस्तुएँ आगमें गलकर सोना हो जाती हैं, जैसे एकरस होनेके कारण दूधमें मिला हुआ दूध और पानीमें मिला हुआ पानी एकरूप हो जाता है, उसी प्रकार भेद न होनेके कारण सभी जीव भी ब्रह्मरूप हैं, यह समझकर जो मायासे हटकर चलता है उसके लिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार कैसा ॥३०५॥ ऊँची अँटारियाँ छोड़कर झाड़ीरूपी घरका सहारा लेना चाहिए, धनका दान देना चाहिए, तीर्थका जल पीना चाहिए, भगवान् विष्णुके चरण-कमलका अमृत पान करना चाहिए, कुशके बिछौनेपर सोकर जीवन बिताना चाहिए, धर्ममें मन लगाना चाहिए, त्रिवेणीके तटपर जाकर रहना चाहिए और सबसे प्राचीन ज्योति (आत्मा) का ध्यान करना चाहिए ॥ ३०६ ॥

॥ श्री १०८ नारायण स्वामी-द्वारा सङ्कलित सूक्तिसागरका रससूक्ति नामक
द्वितीय प्रकरण नागरी अनुवाद-सहित पूर्ण हुआ ॥

